'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक मन की वाणी।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी॥'

प्रथम संस्करण—१९८२-८३ ई०

आकार— १८×२२÷८

पृष्ठसंख्या—८५६

मूल्य— १००.०० रुपया

मुद्रक

वाणी प्रेस

मौसम बाग (सीतापुर रोड), लखनऊ-२२६०२०

विश्वनागरी लिपि

।। ग्रामे-ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे-ग्रामे कथा शुभा ।।

सब भारतीय लिपियाँ सम वैज्ञानिक है !

All the Indian Scripts are equally scientific !

भारतीय लिपियों की विशेषता।

संसार की लिपियों में नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक है। यह कथन बिलकुल ठीक है। परन्तु यह कहते समय हमें याद रखना चाहिए कि वह सर्वाधिक वैज्ञानिकता, केवल हिन्दी, मराठी, नेपाली, लिखी जानेवाली लिपि में नही, वरन् समस्त भारतीय लिपियों में मौजूद है। क, च, त, प आदि के रूपों में कोई वैज्ञानिकता नही है। वैज्ञानिकता है लिपि का ध्वन्यात्मक होना। नियमित स्वरों का पृथक् होना। अधिक से अधिक व्यंजनों का होना। सबको एक 'अ' के आधार पर उच्चरित करना। ['अ' अक्षर-स्वर, सकल अक्षरों का उस भाँति मूल आधार। सकल विश्व का जिस प्रकार 'भगवान्' आदि है जगदाधार।] एक अक्षर से केवल एक ध्वनि। एक ध्वनि के लिए केवल एक अक्षर। जैसा लिखना वैसा ही बोलना, वैसा ही अक्षर का एकाक्षरी नाम। उच्चारण-संस्थान के अनुसार अक्षरों का कवर्ग, चवर्ग आदि में वर्गीकरण। फिर प्रत्येक वर्ग के अक्षरों का क्रम से एक ही संस्थान में थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठते हुए अनुनासिक तक पहुँचना, आदि-आदि

तेलुगु-देवनागरी वर्णमाला

అ अ ఆ आ ఇ इ ఈ ई ఉ उ
क का कि की कु

ఊ ऊ ఋ ऋ ౠ ॠ ఌ ऌ ౡ ॡ
कू कृ कॄ

ఎ ऎ ఏ ए ఐ ऐ ఒ ऒ ఓ ओ
कॆ के कै कॊ को

ఔ औ అం अं అః अः
कौ कं कः

క क ఖ ख గ ग ఘ घ ఙ ङ

చ च ఛ छ జ ज ఝ झ ఞ ञ

ట ट ఠ ठ డ ड ఢ ढ ణ ण

త त థ थ ద द ధ ध న न

ప प ఫ फ బ ब భ भ మ म

య य ర र ల ल వ व శ श

ష ष స स హ ह క్ష क्ष ఱ ऱ

ళ ळ

ऐसे अनेक गुण हैं जो अभारतीय लिपियों में एकत्र, एकसाथ नहीं मिलते। किन्तु ये गुण समान रूप से सभी भारतीय लिपियों में मौजूद हैं, अतः वे सब नागरी के समान ही 'सर्वाधिक वैज्ञानिक' हैं। सब ब्राह्मी लिपि से उद्भूत हैं। ताड़पत्र और भोजपत्र की लिखाई तथा देश-काल-पात्र के अन्य प्रभावों के कारण विभिन्न भारतीय लिपियों के अक्षरों में यत्र-तत्र परिवर्तन, हिन्दी वाली 'नागरी लिपि' को कोई श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता। भारत की मौलिक सब लिपियाँ 'नागरी लिपि' के समान ही श्रेष्ठ हैं।

नागरी लिपि को 'भी' अपनाना श्रेयस्कर क्यों?

"नागरी लिपि" की केवल एक विशेपता है कि वह कमोवेश सारे देश मे प्रविष्ट है, जबकि अन्य भारतीय लिपियाँ निजी क्षेत्रों तक सीमित हैं। वही यह भी सत्य है कि नागरी लिपि में प्रस्तुत और विशेप रूप से हिन्दी का साहित्य, अन्य लिपियो मे प्रस्तुत ज्ञानराशि की अपेक्षा कम और नवीनतर है। अतः समस्त भापाओं की ज्ञानराशि को, सर्वाधिक फैली लिपि "नागरी" मे अधिक से अधिक लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से उठाकर सबको सारे राष्ट्र में, यहाँ तक कि विश्व में ले आना परम धर्म है। विश्व की सब भापाओं में उपलब्ध ज्ञान (सत्साहित्य) है आत्मा, और 'नागरी लिपि' होना चाहिए उसका पर्यटक शरीर।

अन्य लिपियों को बनाये रखना भी कर्तव्य है।

वस्तुतः यह परम धर्म है कि समस्त सदाचार साहित्य को नागरी में तत्परता और प्राचुर्य में लिप्यन्तरित करना। किन्तु साथ ही यह भी परम धर्म है कि अन्य लिपियो को उत्तरोत्तर उन्नति के साथ बरक़रार रखना। यह इसलिए कि सबका सब कभी लिप्यन्तरित नहीं हो सकता। अतः अन्य लिपियो के नष्ट होने और नागरी लिपि मात्र के ही रह जाने से अलिप्यन्तरित हमारी समस्त ज्ञानराशि उसी प्रकार लुप्त-सुप्त होकर रह जायगी जैसे पाली का वाङ्मय रह गया। हमारा प्राचीन आप्तज्ञान विलुप्त हो जायगा।

नागरी लिपि वालों पर उत्तरदायित्व विशेष!

इन दोनो परम धर्मों की पूर्ति का सर्वाधिक भार नागरी लिपि वालों पर है, इसलिए कि उनको 'सम्पर्क लिपि' का श्रेष्ठ आसन प्रदत्त है। मैं कह सकता हूँ कि उन्होंने अपने कर्तव्य का, जैसा चाहिए था, वैसा निर्वाह नही किया। परन्तु उसकी प्रतिक्रिया मे अन्य लिपि वालों को भी "अपराध के जवाब में अपराध" नही करना चाहिए। 'कोयला' बिहार का है अथवा सिंहभूमि का है, इसलिए हम उसको नहीं लेंगे, तो वह हमारे ही लिए घातक होगा। कोयले की क्षति नही होगी। अपनी लिपियों को समुन्नत रखिए, किन्तु नागरी लिपि को भी अवश्य अपनाइए।

उपर्युक्त परिवेश में नागरी लिपि का पठन और समग्र श्रेष्ठ साहित्य का नागरी में लिप्यन्तरण तो आवश्यक है ही, किन्तु अन्य लिपियाँ भी अपनी लिपि में दूसरी भाषाओं के सत्साहित्य को लिप्यन्तरित तथा अनूदित कर सकती हैं। 'अधिकस्य अधिकं फलम्।' ज्ञान की सीमा नहीं निर्धारित है। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने भी अवधी के रामचरितमानस को ओड़िआ भाषा में गद्य एवं पद्य अनुवाद-सहित, ओड़िआ लिपि में लिप्यन्तरित किया है। परन्तु सम्पर्क और एकीकरण की दृष्टि से 'नागरी लिपि' अनिवार्य है।

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता मानव मात्र की सम्पत्ति है।

अब एक क़दम आगे बढ़िए। भारतीय लिपियों की सर्वाधिक वैज्ञानिकता युगों की मानव-श्रृंखला के मस्तिष्क की उपज है। क्या मालूम इस अनादि से चल रहे जगत् में कब, क्या, किसने उत्पन्न किया? भारत संयोग से इस समय इस विज्ञान का कस्टोडियन् है, स्रष्टा नहीं। भारत भी न जाने कब, कहाँ तक और कितना था? अतः हम भारतीयों को नागरी लिपि के स्वामित्व का गर्व नहीं होना चाहिए। वह आज के मानव के पूर्वजों की देन है, सबकी सम्पत्ति है, सकल विश्व उसका समान गौरव से उपयोग कर सकता है। हमारा 'अहम्' उस लिपि की उपयोगिता को नष्ट कर देगा, जिसके हम सँजोये रखनेवाले मात्र हैं। किन्तु विदेशों में बसनेवाले बन्धुओं को भी नागरी लिपि के गुणों को अपने ही पूर्वजों की उपज मानकर परखना चाहिए। ये गुण इस निबन्ध के प्रथम अनुबन्ध में अधिकांशतः वर्णित हैं। न परखने पर उनकी क्षति है, विश्व की क्षति है। पेट्रोल अरब का है, अतः हम उसको नहीं लेंगे, तो क्षति किसकी होगी? पेट्रोल की नहीं, अपनी ही।

फिर याद दिला देना जरूरी है कि क, प आदि रूपों में वैज्ञानिकता नहीं है। वे काफ़, पे और के, पी, जैसे ही रूप रख सकते हैं, किन्तु लिपि में 'अनुबन्ध प्रथम' में ऊपर दिये हुए गुणों और क्रम को अवश्य ग्रहण करें। और यदि एक बनी-बनाई चीज को ग्रहण करके सार्वभौम सम्पर्क में समानता और सरलता के समर्थक हों, तो 'नागरी लिपि' के क्रम को अपनी पैतृक सम्पत्ति मानकर, ग़ैर न समझकर, मौजूदा रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं। वह भारत की बपौती नहीं है। आज के मानव के पूर्वजों की वह सृष्टि है। इससे विश्व के मानव को परस्पर समझने का मार्ग प्रशस्त होगा।

नागरी लिपि में अनुपलब्ध विशिष्ट स्वर-व्यञ्जनों का समावेश।

हर शुभ काम में कजी निकालनेवाले एक दूर की कौड़ी यह भी लाते हैं कि "नागरी लिपि सर्वाधिक वैज्ञानिक होते हुए भी अपूर्ण है और अनेक स्वर-व्यंजनों को अपने में नहीं रखती। उनको कहाँ तक और कैसे समाविष्ट किया जाय?" यह मात्र तिल का ताड़ है। मौजूदा कर्तव्य को टालना है।

अलबत्ता अन्य भाषाओं में कुछ व्यंजन ऐसे हैं जो नागरी में नहीं हैं— किन्तु अधिक नही। भारतीय भाषा उर्दू की क़ ख़ ग़ ज़ फ़, ये पाँच ध्वनियाँ तो बहुत समय से नागरी लिपि में प्रयुक्त हो रही हैं। दुःख है कि आज़ादी के बाद से राष्ट्रभाषा के पक्षधर ही उनको ग़ायब करने पर लगे हैं। इसी प्रकार मराठी ळ है। इनके अतिरिक्त अरबी, इब्रानी आदि के कुछ व्यञ्जन है, किन्तु उनको नागरी की दैनिक लिपि में अनिवार्यतः रखना आवश्यक नही। विशिष्ट भाषाई कार्यों में उन विशिष्ट भाषाई व्यंजनों को चिह्न देकर दरसाया जा सकता है।

तदर्थ अरबी लिपि का आदर्श सम्मुख।

और यह कोई नयी बात नहीं। नितान्त अपरिवर्तनशील कहे जाने वालों की लिपि 'अरबी' मे केवल २७-२८ अक्षर होते हैं। भाषा के मामले में वे भी अति उदार रहे। "इल्म चीन (अर्थात् दूर से दूर) से भी लाओ"— यह पैग़म्बर का कथन है। जब ईरान में, फ़ारसी की नई ध्वनियों च, प, ग, आदि से सामना पड़ा तो उन्होंने उनको अरबी-पोशाक चे, पे, गाफ़ पहना दी। जब हिन्दोस्तान आये तो ट, ड, ढ़ आदि से सामना पड़ने पर अरबी ही जामे में टे, डाल, ड़े आदि तैयार कर लिये। यहाँ तक कि सिन्धी में नागरी के सब महाप्राण और अनुनासिक, तथा सिन्धी के विशिष्ट अन्तःस्फुट अक्षरों को भी अरबी का लिबास पहना दिया गया। फिर 'नागरी' वाले तो औदार्य का दावा करते हैं, उनको परेशानी क्या है ? और नागरी में भी तो परिवर्तन होते रहे हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र मे प्रयुक्त ळ को छोड़ चुके हैं, और ड़, ढ़ आदि को अवर्गीय दशा मे जोड़ चुके हैं। नागरी लिपि मे कुछ ही व्यंजनों का अभाव है। उनमें से कुछ को स्थायी तौर पर और कुछ को अस्थायी प्रयोग के लिए गढ़ सकते हैं। 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने यह सेवा बड़ी सरलता, सफलता और सुन्दरता से की है।

स्वर और प्रयत्न (लहजा) का अन्तर।

अब रहे स्वर। जान लीजिए कि प्रमुख स्वर तीन ही हैं— अ, इ, उ; उनसे दीर्घ, संयुक्त (डिफ्थांग) बनते है। अतिदीर्घ, प्लुत, लघु, अतिलघु आदि फिर अनेक हैं जो विश्व में अनेक रूपों में बोले जाते हैं। भारतीय वैदिक एवं संस्कृत व्याकरण में अनेक हैं। वे स्वतंत्र स्वर नहीं हैं, प्रयत्न हैं, लहजा हैं। वे सब न लिखे जा सकते हैं, न सब सर्वत्र बोले जा सकते हैं। डायाक्रिटिकल मार्क्स कोशों में छाप-छापकर चमत्कार भले ही दिखा दिया जाय, प्रयोग में तो, "एक ही रूप में", अपने निजी शब्द निजी देशों में भी नहीं बोले जाते। स्वर क्या, व्यंजन तक। एक शब्द "पहले" को लीजिए। सब जगह घूम आइए, देखिए उसका उच्चारण किन-किन प्रकार से होता है। एक बिहार प्रदेश को छोड़कर कही भी "पहले" का

लेखानुरूप शुद्ध उच्चारण सुनने को नहीं मिलेगा। उसी भाँति पंजाब, बंगाल, मद्रास के अंग्रेज़ी के उद्भट विद्वान् अंग्रेज़ी में भाषण देते हैं—उनके लहजे (प्रयत्न) बिलकुल भिन्न होते हैं। फिर भी न उनका उपहास होता है, न अंग्रेज़ी भाषा का ह्रास।

शास्त्र पर व्यवहार की वरीयता।

शास्त्र और विज्ञान से हमको विरोध नहीं। लिपि की रचना, शोध, परिमार्जन, देश-काल-पात्र के अनुसार करते रहिए, परन्तु व्यवहारिकता को अवरुद्ध मत कीजिए। खाद्यपदार्थ के तत्वों का गुण-दोष, परिमाण, संतुलन, न्यूनाधिक्य, और खानेवाले की शक्ति के साथ उनका समन्वय, यह सब स्तुत्य है, कीजिए। किन्तु ऐसा नहीं कि उस समीक्षा के पूर्ण होने तक कोई भूखा रहकर मर ही जाय। थाली रखी है, उसे भोजन करने दीजिए। आज सबसे ज़रूरी है राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का एक-दूसरे की ज्ञानराशि को समझने के लिए एक सम्पर्क लिपि की व्यापकता।

'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने स्थायी और मुक़ामी तौर पर अनेक स्वर-व्यंजनों की सृष्टि की है। दक्षिणी भाषाओं में प्रयुक्त एकार तथा ओकार की ह्रस्व, दीर्घ मात्राएँ हम प्रयोग में ला रहे हैं। पढ़ने दीजिए, बढ़ने दीजिए। समस्त भाषाओं के ज्ञान-भण्डार को निजी क्षेत्रों से उठाकर धरातल तक नागरी लिपि के माध्यम से पहुँचाइए। नागरी लिपि मानव के पूर्वज की सृष्टि है, मानव मात्र की है। यहाँ से योरोप तक उसकी पहुँच है। यूरोपियों की लिपि-शैली नागरी थी। अक्षरों के रूप कुछ भी रहे हों। किन्हीं कारणों से सामीकुलों में भटककर अलफ़ा-बीटा के क्रम को थोड़े अन्तर के साथ अपना लिया। फिर पुराने संस्कारों से याद आया, तो स्वर-व्यंजन पृथक् माने। किन्तु उनके क्रम-स्थान जैसे के तैसे मिले-जुले रहे। सामीकुल की भाषाओं ने भी प्रमुख स्वर तीन ही माने हैं, ज़बर-ज़ेर-पेश (अ इ उ)। ै और ौ का उच्चारण अरबी, संस्कृत, अवधी और अपभ्रंश का एक जैसा है— (अई, अऊ)। किन्तु खड़ी बोली व उर्दू के अै, और ओ, ऐनक, औरत जैसे। यह स्वरों की भिन्नता नहीं है, वरन् लहजा (प्रयत्न) की भिन्नता है।

पूर्ण वैज्ञानिक कोई वस्तु मनुष्य के पल्ले नहीं पड़ सकती है। "पूर्ण विज्ञान" भगवान् का नाम है। सा-रे-ग-म-प-ध-नी ये सात स्वर; उनमें मध्य, मन्द, तार; कुछ में तीव्र, कोमल—बस इतने में भारतीय संगीत बँधा है। उनमें भी कुछ अदा नहीं हो सकते, अनुभूति मात्र हैं। किन्तु क्या इतने ही स्वर हैं? संगीत के स्वरों का इनके ही बीच में अनंत विभाजन हो सकता है। जैसे अणु से परमाणु का, और उसमें भी आगे। किन्तु शास्त्र एक वस्तु है, व्यवहार दूसरी। व्यवहार में उपर्युक्त षडज से

निषाद तक को पकड़ में लाकर संगीत कायम है, क्या उसको रोककर इनके मध्य के स्वरों को पहले तलाश कर लिया जाय ? तब तक संगीत को रोका जाय, क्योंकि वह पूर्ण नहीं है ? क्या कभी वह पूर्ण होगा ? पूर्ण तो 'ब्रह्म' ही है। "बेस्ट् इज् द ग्रेटेस्ट् एनिमी ऑफ् गुड्।" (Best is the greatest enemy of Good.) इसलिए शगूल और शोब्दों की आड़ न ली जाय। नागरी लिपि पर्याप्त सक्षम है।

विश्व-व्यापकता के संदर्भ में नागरी लिपि के स्वरों का रूप।

लिखने के भेद— यदि नागरी को हिन्दी क्षेत्र की ही लिपि बनाये रखना है तो इ, उ, ए, ऐ, लिखने के अपने पुरानेपन के मोह में मुग्ध रहिए। और यदि उसे राष्ट्रलिपि अथवा विश्व तक में, यहाँ तक कि सामीकुल में भी आसानी से ग्राह्य बनाना चाहते हैं तो अि, अु, अे, अै लिखिए। किन्तु कोई मजबूर नहीं करता। विनोबा जी ने भी इसका आग्रह नहीं रखा। आकार और रूप का मोह व्यर्थ है। पुराने ब्राह्मी-शिलालेखों को देखिए। आपके मौजूदा रूप वहाँ जैसे के तैसे कहाँ हैं ?

संस्कृत के तिरस्कार से भाषा-विघटन।

मेरा स्पष्ट मत है कि "संस्कृत" को राष्ट्रभाषा होना चाहिए था। वह होने पर, यह भाषा-विवाद ही न उठता। सबको ही (हिन्दी-भाषी को भी) समान श्रम से संस्कृत सीखने से हमारा अपार ज्ञान-भण्डार सबको सुलभ होता, स्पर्धा-कटुता का जन्म न होता और हिन्दी की पैठ में भी प्रगति ही होती। उर्दू-हिन्दी की अपेक्षा, अन्य सभी भारतीय भाषाएँ, संस्कृत के अधिक समीप हैं। किन्तु अब वह बात हाथ से बेहाथ है; और "हिन्दी" ही राष्ट्रभाषा सबको मान्य होना चाहिए। यह इसलिए कि हिन्दी ही एक भारतीय भाषा है जो देश के हर स्थल मे कमोवेश प्रविष्ट है।

आज क्या करना है ?

सार यह कि हुज्जत कम, काम होना चाहिए। शास्त्र पर व्यवहार प्रबल है। समय बड़ा बलवान है, वह आवश्यकतानुसार ढलाई कर देता है। हिन्दी-क्षेत्र में ही घूम-घूमकर प्रतिमा-अनावरण, हिन्दी का महिमा-गान, अनुवादों की धूम, अमुक भाषा की हिन्दी को यह देन, अमुक भाषा में हिन्दी की यह छाप— यह सब दिशाविहीनता, क़िलेबन्दी और अभियान त्यागकर नागरी लिपि में विश्व का साहित्य लाइए। टूटी-फूटी ही सही, हिन्दी बोलना भी— (ही नहीं बल्कि "भी") बोलने का अभ्यास कीजिए। लिपि और भाषा की सार्थकता होगी। मानवमात्र का कल्याण होगा। हमारी एकराष्ट्रीयता चरितार्थ होगी।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी सभापति, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ।

अनुवादकीय प्रस्तावना

सहज पंडित पोतनामात्य की जीवनी और व्यक्तित्व

भारत देश के इतिहास के मध्यकाल में महान् भक्त-कवि पैदा हुए हैं। उन्होंने अपना सारा जीवन भगवान की उपासना और भजन-कीर्तन और समाज के मार्ग-दर्शन में व्यतीत किया। कण-कण में परमात्मा को देख सकनेवाले इन महानुभावों की सामाजिक चेतना जाग्रत थी अतः उनकी रचनाओं में शाश्वत मानवीय मूल्य प्रस्फुटित हुए हैं। इन महाभक्तों के उद्भव के कारण इस युग को निस्संदेह स्वर्णयुग कह सकते हैं। भक्त पोतन्न ऐसे ही महानुभावों में से हैं जिन्होंने अपनी रचना द्वारा जनमानस को अप्रतिम रूप से प्रभावित किया। 'पोतन्न' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करतें हुए किसी पंडित ने एक वार कहा था कि शब्द पोत+अन्न से वना है, अर्थात् भवाब्धि के लिए पोत (जहाज) रूपी अग्रज हैं। वास्तव में पोतन्न सार्थक नाम वाले हैं। पोतन्न की प्रशंसा में मलयाळम के प्रसिद्ध विद्वान श्री पी० केशव पिल्लै ने कहा था:—

'Not only the Telugu world but the whoie Hindu race has reason to be thankful for the Spiritual flame he has lit admist men........ Pothana stands in the foremost ranks of selfless Hindu saints who loved man and realised God. (The Hindu— 21-8-1913)'

भक्त पोतन्न ने भक्ति के प्रामाणिक ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' का आन्ध्रीकरण कर, आन्ध्र देश को भक्ति से आप्लावित कर दिया। आन्ध्र देश के गाँव-गाँव में भागवत के पद्य पढ़े और सुने जाते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ऐसा कोई भी आदमी नहीं मिलेगा जिसे भागवत के कम से कम ४-५ पद्य कंठस्थ न हों।[1] उत्तर भारत में रामचरित मानस के समान आन्ध्र देश में पोतन्नकृत भागवत लोकप्रिय है।

नीलघनश्याम रामचंद्र के आदेशानुसार, पोतन्न ने भवबंधनों से मुक्त होने के लिए तथा अपने जन्म को सफल एवं पुनर्जन्म-राहित्य को प्राप्त करने के लिए, आन्ध्र भाषा में श्रीमद्भागवत का अनुवाद प्रस्तुत किया था। (तॆलुगु भागवत के प्रारंभिक पद्यों को देखिए।) और सचमुच पोतन्न और उनका भागवतम् दोनों अमर हो गए हैं। पोतन्न के वाद किसी भी कवि ने भागवतम् के अनुवाद के प्रयन्न का साहस तक नहीं किया।

---

१ डॉ० के० रामकोटि शास्त्री की पुस्तक 'पोतना का वैचित्र्य' से उद्धृत।
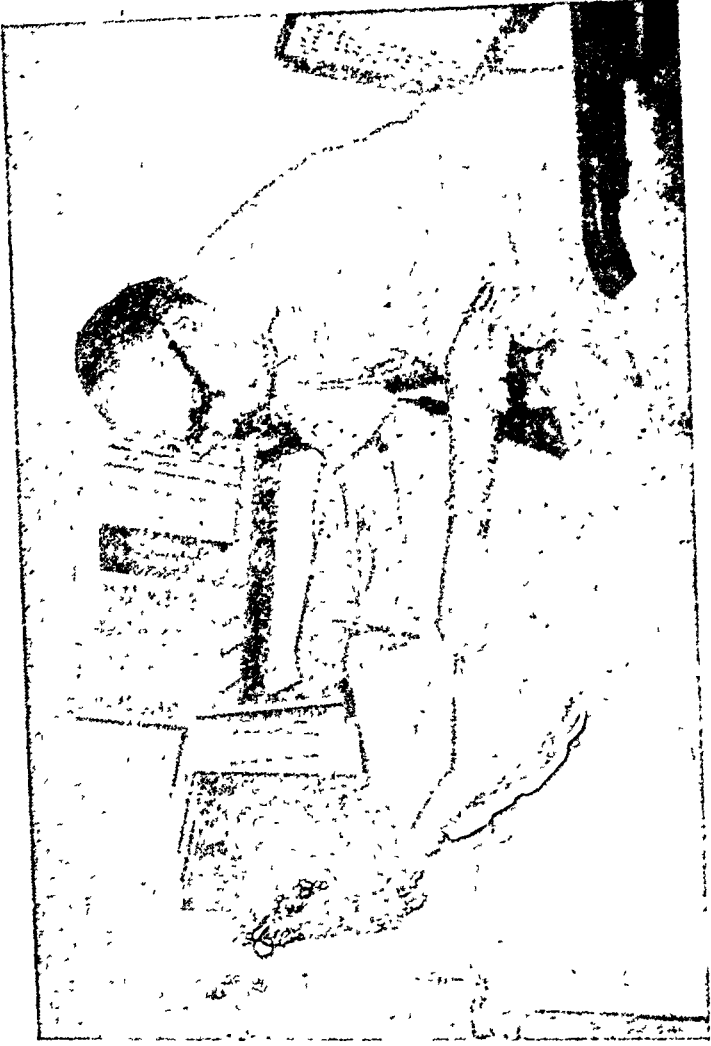
डॉ० भीमसेन निर्मल —सम्पादक

भागवतमु के प्रारंभ में स्वयं पोतन्न ने अपने वंशक्रम का विस्तार से परिचय दिया है। वे कौंडिन्यस गोत्रज और आपस्तंब धर्मसूत्रों के अनुयायी थे। पोतन्न के ही शब्दों में उनका वंशक्रम इस प्रकार है:—
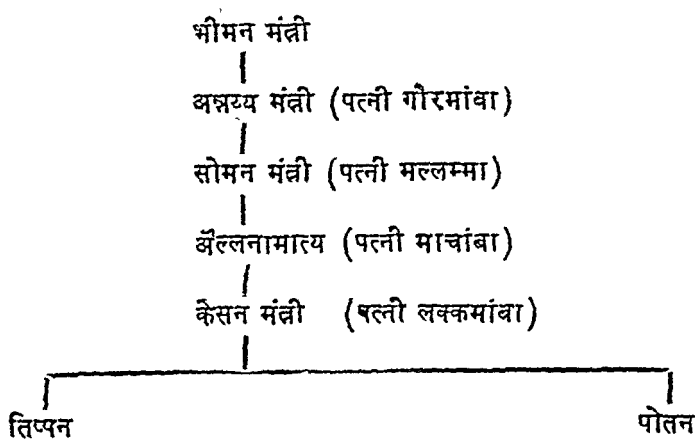
केसन मंत्री ने शैव-संप्रदाय में दीक्षा ली थी। अर्थात् उनके पूर्वज शैव-संप्राय में दीक्षित नहीं थे। लगता है कि वीरशैव परिवार में जन्म लेकर भी, भागवत आदि पुराणों के अध्ययन के कारण पोतन्न के हृदय में श्रीमन्नारायण के प्रति भक्ति-भाव अंकुरित हो गया होगा। इन्हीं परिस्थितियों में 'गंगा के किनारे एक दिन चंद्रग्रहण के समय में महेश्वर के ध्यान में मग्न रहते समय' पोतन्न को 'सीता-लक्ष्मण-युक्त श्रीरामचंद्र जी के दर्शन' हुए। इस अवसर पर पोतन्नकृत 'सीस' पद्य (१-१४) पाठकों को भाव-विभोर कर देने वाला है।

वीर-शैव और वीर-वैष्णव संप्रदायों के उफ़ान को शांत करने में महाकवि तिक्कन्न के हरिहर अद्वैत सिद्धांत ने जादू का सा काम किया। उसके बाद आन्ध्रदेश में शिव-केशव में समदृष्टि रखनेवाले स्मार्त संप्रदाय का प्रचार बढ़ता चला गया। हो सकता है कि पोतन्न भी इसी से प्रभावित हुए हों। भागवतम् के कृष्ण और शिव के अभेद का वर्णन करनेवाले पद्य इसी भाव-धारा के प्रमाण हैं।

पोतन्न के नाम से जुड़ा हुआ 'अमात्य' शब्द इस बात को प्रमाणित करता है कि वे 'नियोगी' ब्राह्मण थे। नियोगी ब्राह्मण साधारणतया राजाओं के पास मंत्री, दंडनाथ आदि पदों पर नियुक्त होते थे। कालान्तर में 'अमात्य', 'मंत्री' आदि शब्द इस शाखा के ब्राह्मणों के लिए रूढ़ हो गए। राजाओं के 'अमात्य' या 'मंत्री' न होने पर भी, इन लोगों के नामों के साथ 'अमात्य' अथवा 'मंत्री' जोड़ दिए जाते थे। साधारणतया नियोगी लोग गांवों के पटवारी हुआ करते हैं। यह इस शाखा के

ब्राह्मणों के लिए आनुवंशिक पेशा है। हो सकता है पोतन्न के पिता और अग्रज 'बम्मॆर' गाँव के 'करणमु' (पटवारी) रहे हों। पोतन्न नियोगी ब्राह्मण तो थे किंतु किसी राजा के यहाँ 'अमात्य' पद को समलंकृत नहीं किया था। उन्हें तो राजाश्रय से ही चिढ़-सी हो गई थी।

अतःसाक्ष्य के आधार पर पोतन्न के वंशक्रम के बारे में तो निश्चित रूप से मालूम हो जाता है किन्तु उनका समय, निवासस्थान, रचनाओं के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता अतः इनको लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है।

इतिहास-प्रसिद्ध सर्वज्ञसिंगम नायक (द्वितीय) के समकालीन मानकर, पोतन्न के समय का निर्धारण १५ वीं शती का उत्तरार्द्ध किया गया है। विद्वानों के मतों पर चर्चा के बाद डा० दिवाकर्ल वेंकटावधानी जी ने लिखा है कि यह मानना समुचित रहेगा कि पोतन्न सन् १४३० के आस-पास जन्म लेकर, सन् १५०० तक जीवित रहे होंगे। किंवदंतियाँ हैं कि कविसार्वभौम श्रीनाथ, पोतन्न के साले थे। श्रीनाथ राजाओं के आश्रय में रहकर विलासमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्होंने कई बार पोतन्न से कहा कि अपनी कृति किसी राजा को समर्पित करो और सुखों का उपभोग करो। पोतन्न कहते थे—

> बाल रसाल साल नव पल्लव कोमल काव्य कन्यकन्
> कूळ्ळ किच्चि यप्पडुपु गूडु भुजिंचुट कंटॆ सत्कवुल्
> हालिकुलैन नेमि गहनांतर सीमल कंदमूल कौ-
> द्दालिकुलैन नेमि ? निजदारसुतोदरपोषणार्थ मै।

(बाल रसाल साल नव पल्लव-सम कोमल काव्य-कन्यका को नीच और कौलवों के हाथ बेच देकर प्राप्त धन से सुख भोगने की अपेक्षा, सत्कवि अपनी दारा और सुत (संतान) के उदर-पोषण के लिए हालिक (किसान) बनें तो क्या हुआ ? अथवा जंगलों में कंदमूल खोद-समेट लाने वाले हुए तो क्या हुआ ?)

कहा जाता है कि अपने घर आए हुए श्रीनाथ को पोतन्न ने अपनी रचना में से गजेन्द्रमोक्षण की कथा सुनाई तो 'सिरिकि जॆप्पडु...' (७-९६) को सुनकर श्रीनाथ ने हँसकर कहा कि तुम्हारे भगवान तो मूर्ख लग रहे हैं। गजेंद्र को बचाने के लिए उसे साधन-संपन्न बनकर आना चाहिए था। उस समय तो पोतन्न चुप रह गए। दूसरे दिन उन्होंने एक उपाय किया। जब दोनों भोजन कर रहे थे, उस समय एक पत्थर कुएँ में डलवाया और किसी से कहलवाया कि श्रीनाथ का लड़का कुएँ में गिर गया है। यह सुनना था कि श्रीनाथ पत्तल के सामने से उठ खड़े हुए

और दौड़ते हुए कुएँ के पास पहुँच गए और हाहाकार करने लगे। पोतन्न भी पीछे-पीछे वहाँ पहुँच गए और श्रीनाथ से पूछा कि निसेनी और रस्सी के वग़ैर वेटे को कैसे बचाओगे ? तब श्रीनाथ को अपनी भूल का इहसास हो गया। साधारण से पिता के हृदय में अपनी संतान के लिए इतना उत्कट वात्सल्य है तो परमात्मा के हृदय में अपने भक्त के प्रति कितनी उत्कट भावना रहेगी !

एक बार कहते हैं, दरिद्रता की यातनाओं को सह न सकने के कारण पोतन्न के मन में पलभर के लिए यह भाव आया कि अपनी कृति किसी राजा को समर्पित कर दें। तत्काल आँखों से आँसू बहाती हुई माँ भारती उनके समक्ष हो गई। तव उन्हें देखकर पोतन्न ने कहा—

काटुककंटिनीरु चनुगट्टु पयिवड नेलयेड्चेंदो
कैटभदैत्यमर्दनुनि गादिलि कोडल ! यो मदंब ! यो
हाटकगर्भुराणि ! निनु नाकटिकि गोंनिपोयि यल्ल क-
र्णाट किराट कीचकुल कम्म द्रिशुद्धिग नम्मु भारती !

(हे कैटभदैत्यमर्दन विष्णु) की लाड़ली बहू ! हे मेरी माँ ! हे हाटक-गर्भ (ब्रह्मा) की रानी ! हे भारती ! कजरारी आँखों से आँसू वहाती क्यों रो रही हो ? मैं अपनी भूख मिटाने के लिए तुम्हें ले जाकर, उन कर्नाट-किरात-कीचकों के हाथ नहीं वेचूँगा। त्रिकरण शुद्धि से मेरी बात पर विश्वास करो।)

जो हो, पोतन्न ने अपने समकालीन अन्य कवियों के समान राजाश्रय की ईषन्मात्र भी इच्छा नहीं की और अपनी कृति भागवतमु श्रीहरि को ही समर्पित किया। (१-२७ से ३१)

पोतन्न के जन्मस्थान के बारे में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं रहा है। कुछ लोग उन्हें वरंगल के निकट 'बम्मॅर' नामक गाँव के निवासी मानते हैं तो कुछ लोग कड़पा जिले के 'ऑटिमिट्टा' के निवासी। संप्रति अधिकांश इसी मत को मानने के पक्ष में हैं कि पोतन्न वरंगल[1] ('एकशिला' नगर का तेलुगु रूपांतर) के निकटस्थ 'बम्मॅर' के ही निवासी थे। 'बम्मॅर' के पास गोदावरी नदी है, जिसका उल्लेख भागवत की भूमिका में 'गंगा' के नाम से हुआ। भाषा-वैज्ञानिक शोध के आधार पर भी पोतन्न को तेलंगाना का निवासी प्रमाणित करते है। वरंगल सदियों से तेलंगाने का प्रमुख नगर है। भागवतमु की भूमिका भाग में एकशिला-नगर में स्थित अपने गुरु-वृद्ध-बंधुजनों से पोतन्न ने अनुमति ग्रहण की थी। (१-२१)

---

१ ओरु (एक) + कल्ल (पत्थर) = वरंगल = एकशिला

तेलुगु साहित्य में नई नहीं है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि आठ स्कंध ही पोतन्न के लिखे हुए हैं। इनमें भी कुछ अंशों को नारय्या ने लिखा, ऐसा माना जाता है।

भोगिनी दंडकमु, वीर भद्रविजयमु और नारायण शतक के कर्तृत्व के बारे में मतभेद होने पर भी, भागवतमु के कर्तृत्व के बारे में कोई मतभेद नहीं है, भागवतमु के आधार पर पोतन्न के व्यक्तित्व का अनुमान लगाना समुचित होगा।

पोतन्न गृहस्थ होते हुए सांसारिक विषयवासनाओं से अलिप्त थे। वे विरागी गृहस्थ, कर्मयोगी और महाभक्त थे। अत्यंत साधु प्रकृति के थे। उन्होंने गृहस्थ जीवन को भक्तिमार्ग का बाधक नहीं माना। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे समरसता के उपासक थे। वे शांत प्रकृति के थे। सर्वावस्थाओं में उनका मन 'श्रीनारायण-पाद-पद्मों' पर ही लगा रहता था। अपने आराध्य के प्रति उनके मन में अचंचल विश्वास था।

सात्विक गुणों से युक्त इस महातपस्वी के करकमलों द्वारा व्यासकृत श्रीमद्भागवत का आंध्रीकरण आन्ध्र जनता के चिरसंचित पूततप का परिणाम है। यही कारण है कि आंध्र भागवतमु रसज्ञ पाठकों को भक्तिरसामृत में सराबोर कर देता है। आंध्र-साहित्य-क्षेत्र में पोतन्न के समान साधु, निर्भीक और निराडंबर जीवन व्यतीत करनेवाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं हुआ है। 'शशि' के समान सर्वत्र उनकी शीतल चाँदनी का प्रभाव देखा जा सकता है।

कृतिसौंदर्य

सो. ललित स्कंधमु, कृष्णमूलमु, शुका-लापाभिराममंबु, मं-
जुलता-शोभितमुन्, सुवर्णसुमनस्सुज्ञेयमुन्, सुंदरो-
ज्ज्वलवृत्तंबु, महाफलंबु विमल-व्यासालावालंबुनै
वेलयुन् भागवताख्य कल्पतरुवुर्विन् सद्विज श्रेयमै। (1-20)

[भागवत नामक कल्पतरु ललित स्कंध वाला, और कृष्णमूल है। शुक (शुक महर्षि और तोता) के आलापों से अभिराम और मंजुलता से (मंजु-लताओं से) शोभित है। सुवर्ण (अक्षर, रंग)-सुमन (मन, फूल) से सुज्ञेय और सुंदर उज्ज्वल वृत्त (कथा, परिधि) वाला है। महाफल (मोक्ष, फल) वाला और विमल व्यास के आलवाल से युक्त है। ऐसा यह कल्पतरु पृथ्वी पर सद्विजों के लिए श्रेयोदायक होते हुए विलसित होगा।]

श्लेष के द्वारा कल्पतरु और भागवतमु में अभेद मानते हुए पोतन्न

यथा 'रथमु' को 'रधमु' और 'ग्रंथ' को 'ग्रंध' कहा जाता है। इसका कारण दोनों अक्षरों का रूपसाम्य माना जाता है।

संस्कृत के कई लकारान्त शब्दों में 'ल' के स्थानों पर 'ळ' का प्रयोग होता है। यथा कला=कळा, मंगल=मंगळ, गरल=गरळ, मुरली=मुरळी, सरल=सरळ आदि।

तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के उच्चारण में अन्तर स्पष्ट है।

तॅलुगु के कुछ शब्दों में अर्धानुस्वार का प्रयोग है। यह उस स्थान पर प्राचीन काल में प्रयुक्त अनुस्वार का बचा हुआ है। इसका न तो उच्चारण होता है, न आधुनिक काल में प्रयोग ही होता है। चिह्न को लिप्यन्तरण में छोड़ दिया गया है। तॅलुगु में वर्गान्त अनुनासिक के स्थान पर सर्वथा अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाता है। किन्तु देवनागरी लिप्यन्तरण में ह्रस्व ॲ और ऑ की मात्राओं के 'पश्चात्-अनुनासिक' को मुद्रण की सुविधा के लिए वर्गान्त अनुनासिक ढंग पर लिखना अपनाया गया है यथा रॅण्ट, रॅण्डु, वॉन्दुटयु आदि।

साधारणतया तॅलुगु के शब्द दीर्घान्त नहीं होते। अतः संस्कृत शब्द तॅलुगु में ह्रस्वान्त रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा पिता=पित, कमला=कमल, पार्वती=पार्वति, गौरी=गौरि, अपराधी=अपराधि आदि।

तॅलुगु वाक्य के मध्य में स्वर का कदापि प्रयोग नहीं होता। स्वर अपने से पूर्व के व्यंजन से जुड़ जाता है। बहुधा क, च, ट, त, प ये व्यंजन (इन्हें सरलाक्षर कहते है) ग, ज, ड, द, ब, में बदल जाते हैं। इस नियम को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। यथा कृत=गृत्य, प्रणव=ब्रणव, परिचित=वरिचित, चंड=जंड आदि।

कुछ शब्दों के अन्त में नकार (हलन्त) होता है। सन्धि के नियमों के अनुसार वह पश्चात्-स्वर में मिल जाता है। यथा, विदूरुन्+अकृत्रिम=विदूरुनकृत्रिम, अरुदुगान्+इन्द्रिय=अरुदुगानिन्द्रिय आदि।

संस्कृत के शत-प्रतिशत शब्दों का प्रयोग तॅलुगु में होता है। हाँ, कुछ शब्दों के अर्थ हिन्दी से भिन्न है।

अनुवादक-मंडल की ओर से निवेदन

आदरणीय मित्र डॉ० गजानन नरसिंह साठे (पूना) के प्रोत्साहन से भुवन वाणी ट्रस्ट के पुनीत कार्यक्रमों में भाग लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ था और उन्हीं की प्रेरणा और श्रद्धेय नंदकुमारजी अवस्थी के तत्त्वावधान में 'रंगनाथ रामायण' का नागरी लिप्यन्तरण सहित हिन्दी अनुवाद के कार्य को संपन्न कर पाया। रामायण की कथा को काव्य का रूप देने वाली एक मात्र कवयित्री आतुकूरि मॉल्ल कृत रामायण का, मेरे शिष्य डा० रामुलु

ने नागरी लिप्यन्तरण सहित हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया था। जब ये दोनों ग्रंथ छप रहे थे, तब मान्यवर डा० एम० चेन्नारेड्डी (उस समय उत्तर प्रदेश के राज्यपाल) भुवन वाणी ट्रस्ट के कार्यों से अवगत हुए, कार्य की भूमि-भूरि प्रशंसा की और कहा था कि पोतन्नकृत भागवतमु तो तेलुगु जनता के हृदय का प्रतिनिधित्व करता है। अतः तेलुगु भागवतमु को भुवन वाणी ट्रस्ट अपनी योजना मे ले ले।

श्रद्धेय अवस्थी जी ने इस कार्य का भार मेरे कंधों पर रख दिया। मुझ अल्पज्ञ और (शारीरिक और मानसिक रूप से) बलहीन व्यक्ति को तेलुगु भागवतमु के बृहदाकार को देख सकोच-सा हुआ। तब अवस्थी जी स्वयं हैदराबाद पधारे और मुझे आश्वस्त किया और कहा कि दो तीन मित्रों के सहयोग से सही, इस कार्य को सम्पन्न करना होगा। उनके सत्परामर्श से मैंने इस गुरुतर भार को स्वीकार लिया।

डा० सी० हेच० रामुलू ने सूर और पोतन्न के काव्य में भक्ति भावना शीर्षक विषय पर, मेरे निर्देशन मे, शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था। मैंने रामुलू को प्रथम तीन स्कधों के कार्य का भार सौंपा था। डा० रामुलू संप्रति आर्ट्स ऐंड सायन्स कालेज, वरंगल मे प्राध्यापक हैं। अध्यवसायी और साहित्यिक अभिरुचि वाले लेखक हैं।

दूसरे सहयोगी डा० एम० वी० वी० ऐ० आर० शर्माजी हैं। इन्होंने भी, मेरे निर्देशन मे, हिन्दी और तेलुगु शतक साहित्य पर शोध कार्य किया था। डा० शर्मा खम्मम के सरकारी डिग्री कालेज के अवकाश-प्राप्त प्राध्यापक है। इन्होने तेलुगु के दो प्रसिद्ध शतक--- कुमारी शतक और सुमती शतक का हिन्दी अनुवाद किया था। ये हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं में समान अधिकार के साथ लिखने की सामर्थ्य रखते हैं। पोतन्न भागवत के चतुर्थ, नवम और [illegible] (उत्तर) इनके ही श्रम का फल है।

डा० श्रीमती नीरजा चक्रवर्ती ने मद्रास विश्वविद्यालय से शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया था। इन्होंने राष्ट्रभाषा प्रवीण की परीक्षा पास की थी। इनके पिता श्रीतिरुमल रामचन्द्र संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के उद्भट विद्वान् हैं। श्रीमती नीरजा को लेखन कार्य से अभिरुचि है। भागवत सप्त स्कंध का सानुवाद लिप्यन्तरण डॉ० नीरजा चक्रवर्ती ने सम्पन्न किया।

डा० एम० रंगय्या ने 'हिन्दी और तेलुगु के आधुनिक काव्य में प्रगतिवाद' विषय पर, मेरे निर्देशन में, शोध प्रबंध प्रस्तुत किया था। डा० रंगय्या संप्रति सरकारी सिटी कालेज, हैदराबाद में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। इनको कविता लिखने और तेलुगु कविताओं के हिन्दी अनुवाद करने की अभिरुचि है। इनका योगदान पञ्चम स्कंध के समग्र कार्य में है।

अंत में श्रद्धेय श्री एस० वी० शिवराम शर्माजी का सहयोग अविस्मणीय है। श्री शर्माजी वयोवृद्ध हिन्दीसेवी और विद्वान् हैं। हिन्दी और तेलुगु व्याकरणों के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित इनकी पुस्तक पर्याप्त लोकप्रिय हुई है। श्रीमद्भागवत के प्रस्तुत नागरी संस्करण के नवम् (पूर्व), एकादश तथा द्वादश स्कंध हमारे इन्हीं विद्वत्प्रवर की देन है।

उपरोक्त सभी सहृदय सहयोगी मित्रों के कारण मैं इस बृहद् कार्य को संपन्न कर पाया हूँ। स्वयं पोतन्न ने कहा था कि—

"भागवतमु देलिसि पलुकुट चित्रंबु, शूलिकैन दम्मिचूलिकैन
विबुधजनुल वलन विन्नंत कन्नंत, तेलियवच्चिनंत तेटपरतु ॥ (1-17)

[भागवतमु को समझकर कहना शूली (शिव) या कमलज (ब्रह्मा) के लिए भी कठिन है। अतः विबुध जनों द्वारा जितना सुना, समझा, उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करूँगा।]

तपःशक्ति से संपन्न, परम सात्त्विक भक्तशिरोमणि और सहज पंडित पोतन्न को ही भागवत का अनुवाद कष्टसाध्य प्रतीत हुआ तो हम जैसे लोगों की क्या हस्ती है? फिर भी हम लोगों ने साहस से काम लिया। स्वसन्निधानम् सूर्यनारायण शास्त्री, आचार्य डा० दिवाकर्ल वेंकटावधानी, श्री तिरुमल रामचद्र आदि विद्वानों ने हमारा यथोचित मार्ग-दर्शन किया। श्रीएविकराल कृष्णमाचार्य जी के भागवतामृत नामक पुस्तक (अव तक नौ खंड प्रकाशित) से भी हमें पर्याप्त सहायता मिली। डा० वारणासि राममूर्ति 'रेणु' जी ने आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के लिए 'भागवत परिमल' नाम से प्रह्लाद चरित्र, गजेंद्रमोक्षण, वामनावतार, रुक्मिणी परिणय नामक चार उपाख्यानों का हिन्दी पद्यानुवाद किया था। उस पुस्तक से भी हम लाभान्वित हुए। इन सबका हम हृदय से आभार मानते हैं।

भुवन वाणी ट्रस्ट के अध्यक्ष श्रद्धेय नंदकुमार जी अवस्थी तथा प्रिय वंधु श्रीविनयकुमार जी अवस्थी के प्रति आभार-प्रदर्शन के लिए हमारे पास शब्द ही नही है। इतना ही कह सकता हूँ कि यह प्रयास जितना हमारा है, उतना ही उनका भी है।

यदि इस कार्य द्वारा सुधी पाठकों को पोतन्न के भक्ति-पारम्य और काव्य-रचना-कौशल से परिचित करा सकें तो हम अपने प्रयास को सफल मानेंगे।

गान्धीनगर,
हैदराबाद ५००३८०

भीमसेन निर्मल

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

तेलुगु महाभागवतमु

के

हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण एवं सम्पादन

पर

सन्नद्ध साक्षात् षडानन !

आन्ध्र-प्रदेश के छः भगीरथ विद्वान्। विवरण हेतु देखिए डॉ० निर्मल की प्रस्तावना।

डॉ० भीमसेन निर्मल

रीडर, उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

(सम्पादक समग्र ग्रन्थ)

डॉ० एम० वी० वी० आई० आर० शर्मा

जुबिलीपुरा, खम्मम

स्कन्ध ४, ६, १० (उत्तर)

विद्वत्प्रवर श्री एस० बी० शिवराम शर्मा
एस० वी० एच० कालोनी, मलाकापेट, हैदराबाद
स्कन्ध ८, १० (पूर्व), ११, १२
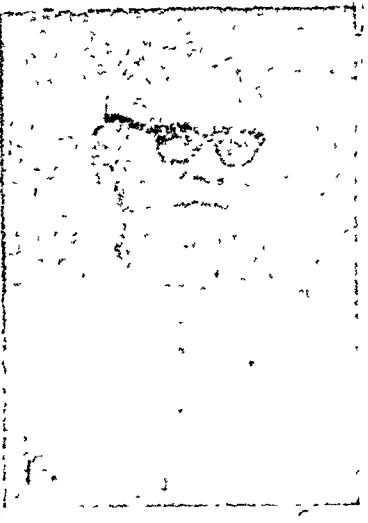
डॉ० श्रीमती नीरजा चक्रवर्ती
आदर्शनगर, हैदराबाद
७ वाँ स्कन्ध

डॉ० एम० रंगय्या
प्राध्यापक, राजकीय सिटी कालेज, हैदराबाद
स्कन्ध ५ व ६
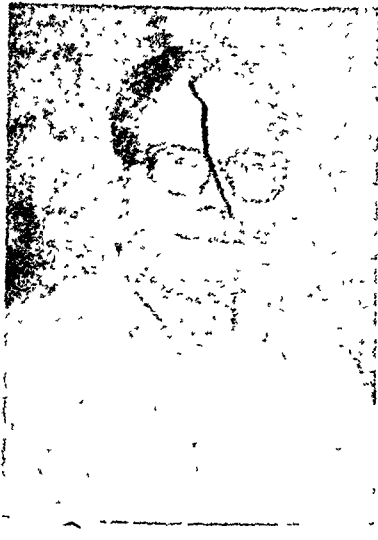
डॉ० सी० एच० रामुलू
प्राध्यापक, आर्ट्स तथा साइंस कालेज, वारंगल
स्कन्ध १, २ व ३

प्रकाशकीय प्रस्तावना

देवनागरी अक्षयवट

भुवन वाणी ट्रस्ट के 'देवनागरी अक्षयवट' की देशी-विदेशी प्रकाण्ड-शाखाओं मे, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी, कश्मीरी, गुरमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, मलयाळम, तमिळ, कन्नड, तॆलुगु, ओड़िया, बँगला, असमिया, नेपाली, अंग्रेजी, हिब्रू, ग्रीक, अरामी आदि के वाङ्मय के अनेक अनुपम ग्रन्थ-प्रसून और किसलय खिल चुके हैं, अथवा खिल रहे हैं। इस नागरी अक्षयवट की तॆलुगु शाखा में, अमात्यवर सन्त पोतन्न प्रणीत श्रीमद्-आन्ध्रमहाभागवतमु के हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण के प्रथम खण्ड (स्कन्ध १-४) का यह प्रस्तुत संस्करण तीसरा पल्लव-रत्न है। इससे पूर्व, तॆलुगु का वृहत् ग्रन्थ रंगनाथ रामायण और मॊल्ल रामायण, प्रकाशित हो चुके हैं।

विश्वबन्धुत्व और राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में लिपि और भाषा

भूमण्डल पर देश-काल-पात्र के प्रभाव से मानव जाति, विभिन्न लिपियाँ और भाषाएँ अपनाती रही है। उन सभी भाषाओं में अनेक दिव्य वाणियाँ अवतरित है, जो विश्वबन्धुत्व और परमात्मपरायणता का पथ-प्रदर्शन करती हैं; किन्तु उन लिपियों और भाषाओं से अपरिचित होने के कारण हम इस तथ्य को नही देख पाते। अपनी निजी लिपि और अपनी निजी भाषा मे ही सारा ज्ञान और सारी यथार्थता समाविष्ट मानकर, दूसरे भाषा-भाषियों को उस ज्ञान से रहित समझते हुए हम भेद-विभेद के भ्रमजाल में भ्रमित होते हैं।

भूमण्डल की बात तो दूर, हमारे अपने देश 'भारत' में ही अनेक भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित हैं। एक ब्राह्मी लिपि के मूल मे उत्पन्न होने के बावजूद उन सबसे परिचित न होने के कारण हम अपने को परस्पर विघटित समझने लगते हैं। सारी लिपियाँ और भाषाएँ सीखना-समझना सम्भव भी नही है।

सुतरां, यथासाध्य विश्व, और अनिवार्यतः स्वराष्ट्र की सभी भाषाओं के दिव्य वाङ्मय को राष्ट्रभाषा हिन्दी और सम्पर्कलिपि नागरी में, सानुवाद लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से बढ़ाकर उसको सारे राष्ट्र को सुलभ कराना, समस्त सदाचार-साहित्य-निधि को सारे देश की सम्पत्ति बनाना, यह संकल्प भगवान की प्रेरणा से सन् १९४७ में मैंने अपनाया, और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु १९६९ ई० में 'भुवन वाणी ट्रस्ट' की स्थापना हुई।

विश्वबन्धुत्व के सम्बन्ध में ट्रस्ट की अपेक्षाएँ

प्रश्न यह उठता है कि विश्ववाङ्मय के परस्पर लिप्यन्तरण और

अनुवाद से मानव मात्र में सद्भावना की उपलब्धि क्या सम्भव है ? मेरा नम्र निवेदन है कि यह कठिन है। सृष्टि के आरम्भ से विविध भूखण्डों में समय-समय पर अवतारी पुरुष और आप्त ग्रन्थ प्रकट होते रहे हैं। फिर भी संगठन और विघटन, दोनों ही वर्तमान हैं। उनमें जरूर चढ़ाव-उतार होता रहता है। तब हमारे टिट्टिभि-प्रयास की क्या बिसात है ? साथ ही दूसरा प्रश्न हम रखते है कि यह मानते हुए कि विश्व का समस्त वाङ्मय मानव मात्र की सम्पत्ति है, क्या वह समग्र मानव की पहुँच में न बनाया जाय ? किसी एक वाङ्मय को यदि हम ग़ैर मानकर उससे विरक्त रहते हैं तो हम अपने को निर्धन बनाते हैं। उसी भाँति यदि कोई समूह किसी वाङ्मय विशेष को अपनी ही पूँजी मानकर शेष मानव समाज को उससे वञ्चित रखता है तो वह व्यक्ति अथवा समूह उस कृपण के सदृश है जो किसी निधि का न स्वयं उपभोग कर पाता है, न किसी अन्य को उपभोग करने देता है।

ट्रस्ट की यह मान्यता है कि धरातल का समस्त वाङ्मय मानवमात्र की सम्पत्ति है। लिपि और भाषा के पट को अनावृत कर उस सबको सर्वसुलभ बनाना चाहिए। भले ही मानव की पार्थक्य-भावना का मूलनाश न हो, परन्तु एकीकरण की ओर कर्तव्य करते रहना हमारे लिए श्रेयस्कर है। छोटे से भी छोटा सत्कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता, नष्ट नहीं होता—

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ॥"

—गीता ६ : ४०

नागरी लिपि पर उत्तरदायित्व

नागरी लिपि पर यह उत्तरदायित्व ठीक ही रहा कि राष्ट्र की सभी लिपियों के साहित्य को नागरी जामा पहनाकर उसको राष्ट्र भर में फैलाए। देश का सकल साहित्य देश के कोने-कोने में सुपरिचित हो। नागरी लिपि का ही फैलाव इतना विशाल है कि इस उत्तरदायित्व को वहन कर सके।

नागरी लिपि हेतु आन्ध्रप्रदेश का योगदान

श्री भण्डारम भीमसेन जोस्युलु साहित्य-जगत में डॉ० भीमसेन निर्मल के नाम से प्रख्यात हैं। एम० ए०, पीएच्० डी० (हिन्दी), एम० ए० (तॆलुगु), राष्ट्रभाषा-प्रवीण, हिन्दी-प्रचारक, साहित्य-रत्न, साहित्य-सुधाकर आदि उपाधियों से समलङ्कृत इन विद्वान का जन्म ३० नवंबर, १९३० ई० में मेदक (आन्ध्र) में हुआ। न केवल तॆलुगु और हिन्दी के अनेक ग्रन्थों के सफल अनुवादक, वरन् अहर्निश राष्ट्रभाषा के अनन्य सेवक हैं।

भुवन वाणी ट्रस्ट का उनसे सम्बन्ध विविध भाषाओं के सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण को लेकर आज से लगभग १० वर्ष पूर्व हुआ। तब से वे ट्रस्ट की विद्वत्-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य हैं और उनका योगदान महान है। तेरहवी शती के सुप्रसिद्ध तॅलुगु ग्रन्थ 'रंगनाथ रामायण' का सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण १३३६ पृष्ठों के वृहदाकार में, केवल उनके अथक श्रम के फलस्वरूप भुवन वाणी ट्रस्ट से प्रकाशित हुआ, उसी शती में विरचित भक्त महिला मॉल्ल विरचित 'मॉल्ल रामायण' (३०८ पृष्ठ) का सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण भी डॉ० निर्मल की ही देख-रेख में उनके योग्य शिष्य डॉ० सी० एच० रामुलु द्वारा सम्पूर्ण होकर ट्रस्ट से प्रकाशित हुआ।

पोतन्न महाभागवतमु

उपरोक्त दो तॅलुगु ग्रन्थों के प्रकाशित होने के वाद आन्ध्र के राष्ट्र-प्रसिद्ध भक्त अमात्यवर पोतन्न द्वारा प्रणीत "महाभागवतमु" को नागरी जगत के सम्मुख लाने की उत्कट अभिलाषा हुई। मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक! तॅलुगु के सम्वन्ध मे डॉ० निर्मल से प्रार्थना की। हमारी विद्वत्-परिषद् के वरिष्ठ सदस्य होने के नाते वे स्वयं उत्सुक हुए। किन्तु काम वहुत वड़ा था। न केवल आकार, वरन् भागवत जैसा जटिल, विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ, फिर तॅलुगु की समासवहुला भाषा को नागरी तथा हिन्दी पाठक के समक्ष सुवोध शैली में प्रस्तुत करना— एक महान् भगीरथ प्रयास था।

षडानन सन्नद्ध !

परन्तु भाषाई सेतुवन्ध के सत्कार्य पर भगवान की कृपा है। डॉ० निर्मल के निवास पर, हैदराबाद में वैठक हुई। कार्य को मिल-वांट कर सम्पूर्ण करने का निर्णय हुआ। इस पुनीत कार्य में साक्षात् षडानन सन्नद्ध हो गये और लगभग चार वर्षों में डॉ० निर्मल सहित छः विद्वानों ने इस भागीरथी भागवत-गंगा को राष्ट्र मे प्रवाहित कर ही दिया। डॉ० निर्मल ने अपने वक्तव्य में इन महानुभावों का आत्मीयता से भरा हुआ वर्णन दिया है। पाठकों से परिचय हेतु अन्यत्र हम उनके चित्र देते हुए, भागवत के किन अंशो की पूर्ति किनके द्वारा हुई, यह विवरण दे रहे हैं। न केवल हम, वरन् सारा राष्ट्र, इस पुष्कल एवं निस्पृह योगदान के लिए इन विद्वानों का कृतज्ञ रहेगा।

हिन्दी-पाठक ध्यान दें

यह लिखा जा चुका है कि तॅलुगु एक समास-वहुला भाषा है। विना मूलपाठ के, केवल हिन्दी भावानुवाद तो एक प्रवाहमय भाषा में देना सरल है। परन्तु समानान्तर तॅलुगु पाठ का नागरी-लिप्यन्तर रहते हुए हिन्दी-शब्दानुवाद प्रस्तुत करना कठिन है। उसमें वह स्वतंत्र धाराप्रवाह

ने सद्विजों के लिए श्रेयोदायक इस पुराण की प्रशंसा की है। लौकिक जीवन में काव्यरसानंद का प्रदाता एवं पारलौकिक जीवन में मोक्षानंद का प्रदाता बन यह काव्य पंडित और पामरों के लिए एक समान प्रिय है। पोतन्न कहते हैं—

आ. वेदकल्पवृक्ष विगळितमै शुक मुख सुधाद्रवमुन मौनसियुन्न
भागवत पुराण फल रसास्वादन पटवि गनुडु रसिक भावविदुलु। (1-35)

इस पद्य में रसिक भावविदों से पोतन्न ने भागवतपुराण-फल के रसास्वाद का निवेदन किया है। यह पुराण कलियुग के मानव, जो आलसी, मंदबुद्धिवाले, अल्पतर आयु वाले, उग्ररोग संकलित हैं और जो कोई सुकर्म नहीं कर सकते, ऐसे लोगों के लिए सर्वसौख्यप्रद एवं आत्म-शांतिप्रद है।(१-४२) हरि के गुणों से युक्त भाषण (कथन) वाणी के लिए भूषण हैं, अघपेषण हैं, मृत्युचित्त के लिए भीषण हैं, हृदय के लिए तोषण (संतोषप्रद) हैं, कल्याण-विशेषण है।(१-४४) इस पुराण में भागवत में परमार्थभूत बन, अखिल सुखद, समस्त (सब कुछ) होते हुए भी न होते हुए रहनेवाले परमतत्त्व को जाना जा सकता है। भागवत को सद्भक्ति-युक्त हो सुनना चाहनेवालों के विमलचित्तों में भगवान निवास करेगा। अतः सज्जनों को, मात्सर्य एवं कापट्य से रहित लोगों को कामना-रहित हो, भगवान की लीलाओं के श्रवण-गान में लगा रहना चाहिए। (१-३४)

भक्तिरस के परमश्रेष्ठ ग्रंथ श्रीमद्भागवतम् का अनुवाद भक्ति के प्रसार-प्रचार और श्रीकृष्ण के लीला-गायन के लिए पोतन्न ने किया है।

पोतन्न ने पूर्वकवियों का समादर करके, वर्तमान कवियों के लिए प्रियवचन कहकर, भावि-कवियों का सम्मान करके, रचना का प्रारंभ किया।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं, शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं, मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

कवित्रय (नन्नय, तिक्कन्न, एरप्रिगड) के महाभारत की रचना के बाद, भास्कर, मल्लिकार्जुन भट्ट, कुमार रुद्रदेव, अय्यलार्य के संयुक्त प्रयास रूप भास्कर रामायण के बाद पोतन्न ने महाभागवत के आन्ध्रीकरण कार्य को अपने हाथ में लिया। इसका स्पष्ट उल्लेख महाभागवतमु की पीठिका के निम्न पद्य से हो जाता है:—

ऒनरन् नन्नयतिक्कनादि कवुलीयुर्वि बुराणावळुल्
तॆनुंगु जेयुचु मत्पुराकृत शुभाधिक्यंबु दा नॆट्टिदो
तॆनुंगु जेयरु मुन्नु भागवतमुन् दीनिर्गिचि ना
जननंबुन् सफलंबु जेसॆद पुनर्जन्मंबु लेकुंडगन्॥ (1-19)

[नन्नय, तिक्कन्न आदि कवियों ने इस पृथ्वी पर पुराण-समूहों का आन्ध्रीकरण करते समय, मेरे पूर्वजन्म सुकृत (पुण्य) के कारण भागवत का आन्ध्रीकरण नही किया। मैं इसका तेलुगु में अनुवाद करके, अपने जीवन को सफल बनाऊँगा जिससे मुझे जन्मराहित्य (मुक्ति) मिल जाए। भागवत का अनुवाद कर सकना अनेक सहस्र जन्मों के संचित पुण्य का ही फल है (१-१३)।] पोतन्न का विनम्र स्वभाव निम्न पद्यों में और भी स्पष्ट हो जाता है।

पलिकॅडिदि भागवतमट, पलिकिंचु विभुंडु रामभद्रुंडट, ने
वलिकिन भवहरमगुनट, पलिकॅद वेरॉड्ड गाथ पलुकगनेला ? (1-16)

[वर्णन करना तो भागवत का है। कहलानेवाला विभु तो रामचंद्र है। कहने पर भवहर होगा। इस दशा में अन्य कथाएँ कहना क्यों ? यही कथा कहूँगा।]

और,

भागवतमु दॅलिसि पलुकुट चित्रंबु शूलिकॅन दम्मिचूलिकॅन
विबुधवरुल वलन विन्नंत गन्नंत दॅलिय वच्चिनंत तेटपरतु ॥ (1-17)

[भागवत को समझकर कह सकना शूली (शंकर), कमलज (ब्रह्मा) के लिए भी संभव नही है। तब मेरी क्या हस्ती है ? अत: विबुधवरों से जितना सुना-समझा है, जितना समझ पाया हूँ, उतना स्पष्ट करूँगा।]

श्रीकैवल्य-पद-प्राप्ति, जन्मराहित्य, भवहरता का गुण आदि से भागवत-रचना का उद्देश्य स्पष्ट होता है। कहलानेवाला तो प्रभु रामचंद्र है, इससे अपने व्यक्तिगत प्रयास की अपेक्षा परमात्मा पर अटूट विश्वास के दर्शन होते हैं। जितना समझ पाया हूँ। उतना स्पष्ट करूँगा, इससे उनके रचना-विधान का लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। स्पष्ट करने का मतलब है भागवत के रहस्य को विवरणात्मक रूप से समझाना। विबुधवर से पोतन्न का संकेत श्रीधर की ओर है। भागवत के लिए श्रीधरीय व्याख्या अत्यंत प्रसिद्ध है। कहा गया है कि—

व्यासोवेत्ति शुकोवेत्ति राजावेत्ति न वेत्ति वा।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंह प्रसादतः॥

आन्ध्र के सभी विद्वान् मुक्त कंठ से इस बात को मानते हैं कि पोतन्न ने श्रीधरीय व्याख्या को ही अपने अनुवाद के लिए मूलाधार बनाया। कहीं-कहीं उन्होने इतर पुराण ग्रंथों से भी सहायता ली, कहीं अपने भावावेश के अनुरूप मौलिक कल्पनाएँ की। इस प्रकार मूल के १८००

का अनुवाद लगभग ३००० गद्य-पद्यों का बृहद् ग्रंथ बन गया है तॆलुगु का महाभागवतमु।

पोतन्न के अनुवाद-विधान पर प्रकाश डालते हुए डा० धूळियाळ श्रीराममूर्तिजी ने लिखा है कि—

१. मूल के सर्वार्थों को स्पष्ट करना चाहिए।

२. मूलनिष्ठ अनुवाद करना पोतन्न का ध्येय नहीं था।

३. विषय के विवरण के साथ, व्याख्यागत विशेषताओं को भी स्थान देना चाहिए।

४. समस्त अर्थों की भावना करके, उनके सौंदर्य को दीप्त करना चाहिए।

५. समस्त रचना में दिव्य-अनुभूति प्रतिभासित होनी चाहिए।

उपरोक्त गुणो का समावेश करने के लिए पोतन्न ने कितनी श्रद्धा, कितनी निष्ठा के साथ मूल भागवत का और श्रीधरीय व्याख्या का अध्ययन किया होगा, यह उनके भागवतमु के सुष्ठु अध्ययन से मालूम हो जायेगा।

अब संक्षेप में पोतन्न की रचना-शैली को सोदाहरण समझाने का प्रयास करूँगा।

पोतन्न ने मूल का कहीं विस्तार किया तो कहीं मूल को संक्षिप्त बना दिया। विस्तार करने में कहीं श्रीधर व्याख्या की सहायता ली तो कहीं मूल के सूच्य अंशों का स्वयं ही विवरणात्मक रूप से विस्तार कर दिया। कहीं मूलनिष्ठ अनुवाद किया तो कहीं मूल से भिन्न। ऐसे प्रसंग बहुत कम है जहाँ मूल को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया और जहाँ मूल से हटकर अनुवाद किया। एक ही ऐसा प्रसग है जिसे पोतन्न ने भागवत से हटकर अन्य ग्रंथ से लिया। वह है नरकासुर संहार के प्रसंग में सत्यभामा का श्रीकृष्ण के साथ युद्धभूमि पर जाना। इस प्रसंग को पोतन्न ने विष्णु पुराण या हरिवंश से लिया होगा। इस प्रसंग का विस्तृत और काव्यमय वर्णन पोतन्न ने किया है। इस प्रसंग के बाद हरि और नरकासुर का संवाद भी मूल में नही है।

हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद का संवाद, गजेंद्र-मोक्षण की कथा में अनेक पद्य, वामनावतार प्रसंग के अनेक पद्य, गोपियों की विरह-वेदना, रुक्मिणी-विवाह प्रसंग के कई पद्य आदि ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ पोतन्न ने अपनी मौलिक प्रतिभा से समयोचित और काव्योचित रूप से प्रसंग का विस्तार किया है।

श्रीधर कृत 'भागवत भावार्थ दीपिका' की सहायता से पोतन्न ने मूल तत्त्व संबंधी विषयों की मानो व्याख्या प्रस्तुत की। यह पोतन्न के ध्येय के

अनुरूप ही है। ऐसे स्थानों में मूल के साथ-साथ श्रीधरीय व्याख्या का अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

मूल में सूच्य रूप से बताए गए प्रसंगों का पोतन्न ने अपनी ओर से विवरण प्रस्तुत किया है।

मूल श्लोक के भाव तॆलुगु पद्य के दो या तीन चरणों में आ गए तो पोतन्न ने शेष चरणों की पूर्ति अपनी ओर से कर दी है।

पोतन्न ने काव्य के औचित्य की दृष्टि से कहीं-कहीं कुछ सुन्दर परिवर्तन किए हैं। जान-बूझकर अथवा प्रमाद से कुछ स्थानों पर मूल से भिन्न अनुवाद किया है। किन्तु ऐसे प्रसंग बहुत कम हैं। ऐसे प्रसग भी बहुत कम है जहाँ मूल अंश का संक्षिप्तीकरण किया गया है।

गीता, पुराण, उपनिषद् आदि ग्रंथों के पठन, श्रवण आदि से भी प्राप्त न होनेवाले भक्ति-ज्ञान-वैराग्य भागवत के कथा-श्रवण से सहज ही प्राप्त होते हैं। कर्म-ज्ञानमार्गों की अपेक्षा सर्वसुलभ भक्ति तत्त्व को ही भागवत में प्राधान्य दिया गया है। पोतन्न का हृदय सहज ही भक्ति-भाव से परिपूर्ण था। सत्त्वगुणसम्पन्न ऐसे महाभक्त द्वारा श्रीमद्भागवत का आन्ध्रीकरण आन्ध्रों के पुण्य का ही फल है। महाभक्त पोतन्न भक्ति-रसपूर्ण प्रसंगो के वर्णन मे भावविभोर हो जाते हैं और पाठकों को भी भक्तिरसानंद में ऊभचूभ कर देते हैं। भागवत के प्रारंभ में ही शौनक आदि मुनि सूत से यों प्रश्न करते हैं:—

नलिननयन-भक्ति नावचे गाक संसार जलधि दाटि चनगरादु
वेयुनेल माकु विष्णभावंबु तॆलुपवय्य सूत धीसमेत ! (1-48)

(नलिन-नयन वाले विष्णु की भक्ति रूपी नाव के अतिरिक्त [और किसी साधन से] संसार-जलधि को पार नहीं किया जा सकता। हजार बातें क्यों ? हे सूत ! हे धीसमेत ! हमें विष्णुभाव के बारे में समझाओ।)

भागवत का अर्थ ही भगवान से संबधित है। भगवान की लीलाओं के वर्णन से युक्त होने के कारण ही इस पुराण का नाम 'भागवत' पड़ा है। वेद-विभाग करके, पंचमवेद कहलानेवाले 'महाभारत' की रचना करने के बाद भी भगवान व्यास को संतोष नहीं हुआ। वे अतीव व्याकुल हुए। तब धर्मज्ञ नारद ने उनसे यों कहा:—

अंचितमैन धर्मचयमंतयु जॆप्पिति वंदुलोन
निंचुक गानि विष्णुकथलेपॆंड जॆप्पनु धर्ममुल् प्रपं-
चिंचिन मॆच्चुने गुणविशेषमुलॆन्निन गाक नीकुनी
कोंचॆमु वच्चुटॆल्ल हरि गोरि नुतिंपमि नार्यपूजिता ! (1-93)

[हे आर्यो से पूजित व्यास ! श्रेष्ठ समस्त धर्मों के बारे में बताया

किन्तु उनमें ढंग से विष्णुकथाएँ नहीं बताईं। केवल धर्मों के बारे में बताने पर कोई प्रशंसा क्यों करेगा ? भगवान के गुण-विशेषों को गिनाने (वर्णन करने) पर ही कोई प्रशंसा करेगा। तुम्हारी इस व्याकुलता का कारण हरि के गुणों की, चाहकर, प्रशंसा न करना ही है।]

अतः निखिल बंध-विमोचन के लिए वासुदेव के लीला-विशेषों का, भक्ति के साथ वर्णन करना चाहिए। (१-९५) इस प्रकार नारद से प्रेरणा पाकर भगवान व्यास ने भक्तिभाव के साथ भगवान की लीलाओं का वर्णन करते हुए, भागवत की रचना की। भागवत पुराण में वर्णित भक्ति की महिमा ऐसी है कि सप्ताह-भर भागवत का श्रवण मात्र करने से राजा परीक्षित को मुक्ति लाभ हो गया। भागवत में कई बार भक्तिमार्ग की सरलता का उल्लेख किया गया है। भागवत के इस परमतत्त्व को आत्मसात् कर चुकनेवाले महानुभाव होने के कारण पोतन्न ने उन उपाख्यानों का दिल खोलकर वर्णन किया जिनमें भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है अथवा भगवान की लीलाओं का चित्रण करने का अवसर है। प्रह्लाद की कथा, अंबरीष की कथा, गजेंद्र की कथा, कुचेल (सुदामा) की कथा, वामन की कथा, रुक्मिणी की कथा, गोपी-प्रेम की कथा, ध्रुव की कथा आदि सभी प्रसंगों में पोतन्न का हृदय भक्तिपारवश्य से तन्मय हो गया है। तब पोतन्न की लेखनी अलौकिक काव्यानंद-प्रदायिनी बन गई है।

भक्ति की एकादश भूमिकाओं का— महत्सेवा, महद्दयापात्रता, महद्धर्मपात्रता, हरिगुण श्रुति, रत्यंकुरोत्पत्ति, स्वरूपाधिगति, प्रेमवृद्धि, प्रेमस्फूर्ति, भगवद्धर्मनिष्ठा, तद्गुणशालिता, प्रेमपराकाष्ठा— पोतन्न ने यथोचित वर्णन किया है। भक्तिरूपी प्रेम-पराकाष्ठा को प्राप्त गोपियों के विरह-वर्णन तो अनुभूति का विषय है। पोतन्न की भाव-प्रवणता के लिए उस प्रसंग को पढ़ते ही बनता है। उदाहरण के लिए एक पद्य को लीजिए:—

> **नीवडवि बवल् दिरुग नी कुटिलालक लालितास्य मि-**
> **च्छाविधि जूडकुन्न निमुषंबुलु माकु युगंबुलै चनुन्**
> **कावुन रात्रुलेन निनु गन्नुल निंडुग जूडकुंड ल-**
> **क्ष्मीवर ! रेप्पलड्डमुग जेसेनिदेल विधात क्रूडै। 10-पू-1049**

[हे लक्ष्मीवर (श्रीकृष्ण) ! जब तुम दिन के समय वनों में विचरते रहते हो तब तुम्हारे घुँघुराले लटों से लालित मुख को जी भर न देख सकने के कारण हमारे लिए पल युग के समान व्यतीत होते हैं। अतः हम लोग कम से कम रात के समय तो तुम्हें आँख भर (अपलक) देखना चाहती हैं किन्तु विधाता ने क्रूर बन पलकों को बीच में ला खड़ा कर दिया।]

भक्तजन भक्ति के विविध प्रकारों का आश्रय ले भगवान को प्राप्त करते हैं। उसका सुंदर वर्णन निम्न पद्य में किया गया है।

> कामोत्कंठत गोपिकल्, भयमुनं गंसुंडु, वैरक्रिया-
> सामग्रिन् शिशुपाल मुख्य नृपतुल्, संबंधुलै वृष्णुलुन्
> प्रेमन्मीरलु, भक्ति मेमु निदे चक्रि गंटिमेंट्लैन मु-
> दामध्यानगरिष्ठुडैन हरि जेंदन्वच्चु धात्रीश्वरा ! (7-18)

[हे धात्रीश्वर ! कामोत्कंठा से गोपिकाओं ने, भय के मारे कंस ने, वैर भाव से शिशुपाल आदि राजाओं ने, संबंधी होकर वृष्णियों (यादवों) ने, प्रेम के कारण आप लोगों (धर्मराज आदि) ने, भक्ति के कारण हम लोगों (नारद आदि) ने चक्री (विष्णु) को प्राप्त किया है। किसी भी प्रकार से हरि को प्राप्त किया जा सकता है।]

पोतन्न सहज भक्त और सहज पंडित हैं। इसलिए उनके काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। डा० वेंकटावधानी जी के शब्दों में 'कवि के मनस्तत्त्व और काव्य के वस्तुतत्त्व की समरसता के कारण आन्ध्र भागवत अद्वितीय सौंदर्य और माधुर्य का आलवाल बना है।'

सहज-पांडिती-वैभव से युक्त होने पर भी, पोतन्न ने संस्कृत और आन्ध्र के अनेक पूर्वकवियों की रचनाओं का सुष्ठु अध्ययन किया था। भागवत की रचना करने के पूर्व उन्होंने 'वीरभद्र विजयमु' और 'भोगिनी-दंडकमु' की रचना की थी। पद्य रचना में उनका हाथ मँज गया था। फिर भी 'कहलानेवाला है रामभद्र' कहकर, सब कुछ भगवान के चरणों में समर्पित किया था। आन्ध्र भागवत की प्रत्येक पंक्ति में इस भगवदावेश के दर्शन होते हैं। कहते हैं कि एक बार पोतन्न ने निम्न पंक्ति लिख दी और उसके बाद कुछ न सूझने के कारण नदी की ओर घूमने गए।

'सिरिकिं जॅप्पडु शंखचक्रयुगमुं जेदोयि संधिपडे' (7-96)

जब लौटकर उन्होंने देखा तो शेष तीन पंक्तियाँ लिखी हुई थी। उन्होंने अपनी पुत्री से पूछा कि उन तीन पंक्तियों को किसने लिखा है? पुत्री ने कहा कि अभी-अभी तो आप [illegible] और कुछ लिखा था। भगवान की अपार करुणा से पोत[illegible] मुग्ध रह गए। इस प्रकार का भावावेश भागवतमु के प्रत्येक प्रसं[illegible] में दखने को मिलता है।

पोतन्न वर्णन करने में [illegible] सिद्धहस्त हैं कि पाठक की आँखों के समक्ष सजीव बिंब खड़ा हो जाता है। ऐसा लगता है कि पोतन्न अपनी चर्मचक्षुओं के सम[illegible] घटित दृश्य का आँखों देखा वर्णन कर रहे हैं। वामनावतार के प्रसंग में वामन के त्रिविक्रम बनने का दृश्य इसका सुंदर

उदाहरण है। इस प्रकार के उदाहरणों से भागवतमु भरा पड़ा है। प्रकृति-वर्णन के अवसर पर पोतन्न के प्रकृति-परिशीलन की सामर्थ्य के दर्शन होते हैं। वचनों (गद्य) में पोतन्न ने श्लेष, विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग कर, अपने पांडित्य को प्रदर्शित किया है। ये वचन 'कादंबरी' का स्मरण दिलाते रहते हैं।

जहाँ-जहाँ तत्वमूलक विषयों की चर्चा हुई है, वहाँ-वहाँ पोतन्न ने वचन का ही प्रयोग किया है। इसीलिए पोतन्न के पद्यों की अपेक्षा वचन भाग दुर्वोध वने हैं। पद्य में पोतन्न का हृदय है तो वचन में उनका मस्तिष्क !

पद्य रचना में पोतन्न की विशेषता प्रवाहयुक्तता है। उनके पद्यों की गति गंगा-प्रवाह के समान निर्वाध और अजस्र है। पोतन्न को शब्द ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं, वे सहज-सरल ढंग से मानो अपने आप आकर पद्य की पंक्तियों में जड़ जाते हैं। मानों अनुभवी मालाकार की माला के फूल हों। अलंकारों का भी यही हाल है। ऐसा नही लगता कि जान-बूझकर अलंकारों का प्रयोग किया गया हो। वे भी सहज-स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं। पोतन्न की कविता में अन्त्यानुप्रास, श्लेष, यमक, उपमा आदि अलंकारों की भरमार है। पोतन्न की शैली सर्वत्न प्रसादगुण-युक्त और अन्वयक्लेश से रहित है। सभी विद्वान इस वात को मुक्तकंठ से मानते हैं कि तेलुगु भाषा के माधुर्य से परिचित होने के लिए पोतन्नकृत भागवतमु को ही पढ़ना चाहिए।

श्रीमद्‌भागवत भक्तिरस का आकर ग्रंथ है। भक्ति रस के पोषण में पोतन्न तन्मयी भाव से वर्णन करते है। गजेंद्रमोक्षण की कथा, प्रह्लाद चरित्न, अंवरीषोपाख्यानमु आदि पोतन्न के भक्तिरस-पोपण के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। भक्ति के अतिरिक्त प्रसंगानुकूल अन्य रसों का पोषण भी पोतन्न ने सफलता के साथ किया है। नरकासुर और सत्यभामा के युद्ध-प्रसंग में वीर और शृंगार रस का जो सम्मिश्रण किया है, वह अनुपम है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के रुक्मि को अपमानित करते समय हास्य और वीभत्स का सफल सम्मिश्रण किया गया है।

चरित्न-चित्नण में भी पोतन्न की मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। पात्नों की रूप-रेखाओं के, हाव-भावों के चित्नण में जिस सूक्ष्मता से पोतन्न ने काम लिया है, वह उन्हें महाकवियों की अग्रश्रेणी में विठाता है।

प्रसंगवशात् पोतन्न ने अपने काव्य में जगह-जगह मानव जीवन के उच्च आदर्शों का उल्लेख किया है। ये संकेत उनकी प्रवुद्ध सामाजिक चेतना के प्रमाण माने जा सकते हैं। भक्ति एकांत साधना नहीं, उस साधना-मार्ग में मानव-कल्याण के महत् आदर्श निहित हैं।

इस प्रकार भागवत पुराण के आन्ध्रीकरण में पोतन्न ने मूल की रक्षा करते हुए, अपनी मौलिक कल्पना द्वारा उसे एक प्रबंध काव्य का रूप प्रदान किया है। भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों दृष्टियों से पोतन्न भागवतमु तेलुगु साहित्य का अपूर्व मणिदीप है।

तॆलुगुभाषा और लिपि

तॆलुगु मूलत: द्रविड़भाषा-परिवार से सम्बद्ध भाषा है, किन्तु वह संस्कृत से इतनी प्रभावित है कि कुछ विद्वान् उसे संस्कृत-जन्य ही मानते हैं। उत्तर और दक्षिण के सन्धिस्थल पर स्थित होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि तॆलुगु अथवा आन्ध्र भाषा संस्कृत भाषा तथा साहित्य से अत्यधिक प्रभावित हो जाय।

अन्य भारतीय भाषाओं के समान ही तॆलुगु ने भी नागरी-वर्णमाला को अपनाया है। किन्तु नागरी-वर्णमाला की अपेक्षा तॆलुगु में ऋ दीर्घ (ॠ), ह्रस्व ए (ऎ) और ह्रस्व ओ (ऒ), च और ज के दन्त्य रूप (च़ ज़), घर्षण ध्वनि वाला र (ऱ) और ळ अधिक हैं।

Italian of the Esst मानी गई तॆलुगु की विशेपता 'अजन्त' (स्वरान्तता) होना है। अर्थात् प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई न कोई स्वर (अधिकतर 'उ' या 'इ') होता है और उसका पूरा-पूरा उच्चारण होता है। शब्द के मध्य में आने वाले स्वर का भी पूरा-पूरा उच्चारण होता है। अत: नागरी लिपि में दिए गए तॆलुगु शब्दों को पढ़ते समय, उनके स्वरान्त उच्चारण पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। 'जल' लिखकर हिन्दी की भाँति उसे 'जल्' न पढ़कर 'ल' को सस्वर पढ़ना चाहिए।

'ऋ' का उच्चारण बहुधा 'रु' के समान होता है। यथा 'ऋण', 'कृष्ण', 'गृह' आदि का उच्चारण 'रुण', 'क्रुष्ण', 'ग्रुह' के समान होता है।

'ए' और 'ओ' के ह्रस्व रूप भी प्रचलित हैं। उनके लिए 'ऎ' और 'ऒ' तथा उनकी मात्राओं के लिए ॆ और ॊ का उपयोग किया गया है।

'ऌ' और 'ॡ' सिखाए तो जाते हैं पर उनका प्रयोग न के बराबर होता है।

'च' और 'ज' के दन्त्य और तालव्य दोनों प्रकार के उच्चाण तॆलुगु में विद्यमान हैं। दन्त्य उच्चारण को सूचित करने के लिए अक्षर के नीचे एक बिन्दु लगाया गया है।

तॆलुगु में सरल 'र' के अतिरिक्त घर्षण ध्वनि वाला 'ऱ' का भी प्रयोग होता है।

तॆलुगु में बहुधा 'थ' का उच्चारण 'ध' के समान किया जाता है।

साध्य नहीं है। विशेषरूप से तेलुगु के भाषानुवाद में, जहाँ संस्कृत के समान ही सन्धि और समासों एव विशेषणों की भरमार से एक ही वाक्य का प्रसार कई-कई पंक्तियों तक चला जाता है। अतः हिन्दी पाठकों से प्रार्थना है कि अटपटेपन को दोष न समझ कर धैर्य से पढ़कर पुनः एक वार उस अनुवाद को मस्तिष्क में दुहरा कर हिन्दी का मुहावरा दें और तब तेलुगु काव्य-सुधा का आनन्द प्राप्त करें।

दूसरी बात ध्यान देने की और है। संस्कृत के अनन्त शब्द तेलुगु में पैठ कर मिलते-जुलते रूप में परिवर्तित हो गये है। यथा, नूतन को नुत्न; वातुलसुत को वातूलसुत; पिता को पित; अपराधी को अपराधि। इनको अशुद्ध न समझें। जिस प्रकार संस्कृत शब्द हिन्दी में सामान्य परिवर्तन को ग्रहण कर लेते हैं, (नवम को नवाँ, नालि को नाली)। वैसे ही तेलुगु में भी। उनको तेलुगु में परिवर्तित संस्कृत शब्द समझें, न कि अशुद्ध।

आभार-प्रदर्शन

सदाशय श्रीमानों और उत्तरप्रदेश शासन (राष्ट्रीय एकीकरण विभाग) के प्रति भी हम आभारी हैं, जिनकी अनवरत सहायता से 'भाषाई सेतुकरण' के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन चलता रहता है।

सौभाग्य की वात है कि भारत सरकार के राजभाषा विभाग (गृह मंत्रालय) तथा शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय ने राष्ट्रभाषा हिन्दी सहित सभी भाषाओं की समृद्धि और व्यापकता के लिए एक जोड़लिपि "नागरी" के प्रसार पर उपयुक्त वल दिया। उनकी उल्लेखनीय सहायता से हमको विशेष वल मिला है और उसी के फलस्वरूप तेलुगु के लोकप्रख्यात संतकवि अमात्यवर पोतन्न प्रणीत ग्रन्थरत्न "आन्ध्रमहाभागवतमु" के प्रथम खण्ड का प्रकाशन प्रस्तुत वर्ष में सम्पूर्ण हो सका है। आशा है, शेष दो खण्ड (स्कन्ध ५-९ और १०-१२) भी शीघ्र ही मुद्रित होकर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत हो जायेंगे।

विश्ववाङ्मय से निःसृत अगणित भाषाई धारा।
पहन नागरी पट, सवने अव भूतल-भ्रमण विचारा॥

अमर भारती सलिला की शुचि तेलुगु सुपावन धारा।
की नागरी-सुमण्डित छवि से अव जगमग जग सारा॥

नन्दकुमार अवस्थी

२५ मार्च, १९८३ प्रतिष्ठाता, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

विषय-सूची

तृतीय स्कन्ध 284-572।

चतुर्थ स्कन्ध 573-856।

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(प्रथम स्कन्ध)

सम्पादक

डॉ० भीमसेन निर्मल

सानुवाद लिप्यन्तरणकार

डॉ० सी० एच० रामुलु

ॐ

अमात्यवर श्री पोतन्न प्रणीत

आन्ध्र महाभागवतमु

(प्रथम स्कन्ध)

मङ्गलाचरण

श्रीकैवल्यपदंबु जेरुटकुनै चिंतिचॆदन् लोक र-
क्षैकारंभकु भक्तपालन कळासंरंभकुन् दानवो-
द्रेकस्तंभकु गेळिलोलविलसद्दृग्जाल संभूत ना-
ना कंजात भवांडकुंभकु महानंदांगना डिंभकुन् ॥ 1 ॥

उ.* वालिन भक्ति म्रॊक्केद नवारित तांडवकेळिकिन् दया
शालिकि शूलिकिन् शिखरिजामुखपद्म मयूखमालिकिन्

मंगलाचरण

श्रीकैवल्यपद (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए [मैं] लोकों की रक्षा का शुभारम्भ करनेवाले, भक्त-पालन की कला का संरम्भ करनेवाले, दानवों के उद्रेक (आवेग) को स्तम्भित करनेवाले (नाश करनेवाले), दृष्टियों के केली-विलास-मात्र से (रासलीला-केली-विलास-क्रीड़ामात्र, संकलपमात्र से ही— परब्रह्म तत्त्व) कंजातभव (ब्रह्मा) के भवाण्डों (जगतों) की रचना करनेवाले कुम्भकार तथा महानन्द की अंगना (यशोदा) के पुत्र कृष्ण (श्लेष— महाआनन्द की अंगना पराशक्ति का शिशु) का चिन्तन करता हूँ । १ [उ.]* अनुकूल भक्तियुत हो, अवाध ताण्डव-केली में रमने वाले, दयाशाली, शूली (त्रिशूलप्राणी), शिखरिजा (गिरिजा) के मुखपद्म के लिए मयूखमाली (सूर्य), बालशशांक (बालचन्द्र) को सिर पर धारण

---

* उत्पलमाल, वचनमु, शार्दूलमु, मत्तेभमु, तेटगीति, सीसमु, आटवॆलदि, कंदमु, चम्पकमाला, गीतमु, तरल को पूर्ण रूप न देकर, इस प्रकार [उ.], [व.], [शा.], [म.], [ते.], [सी.], [आ.], [कं.], [च.], [गी.], [त.] संकेत किया गया है ।

बालशशांकमौळिकि गपालिकि मन्मथ गर्वपर्वतो-
न्मूलिकि नारदादि मुनिमुख्यमनस्सरसीरुहाळिकिन् ॥ 2 ॥

उ. आतत सेव सेसॆद समस्त चराचर भूतसृष्टि वि-
ज्ञातकु भारतीहृदयसौख्यविधातकु वेदराशि नि-
र्णेतकु दैवतानिकरनेतकु गल्मषजेतकुन् नत-
त्रातकु धातकुन् निखिलतापसलोक शुभप्रदातकुन् ॥ 3 ॥

व. अनि निखिलप्रधानदेवतावंदनंबु सेसि ॥ 4 ॥

उ. आदरमॊप्प म्रॊक्किकडुदु नद्रिसुताहृदयानुरागसं
पादिकि दोषभेदिकि ब्रसन्नविनोदिकि विघ्नवल्लिका
च्छेदिकि मंजुवादिकि नशेषजगज्जननंदवेदिकिन्
मोदकखादिकिन् समदमूषकसादिकि सुप्रसादिकिन् ॥ 5 ॥

उ. क्षोणितलंबु नॆन्नुदुरु सोकग म्रॊक्कि नुतिंतु सैकत
श्रोणिकि जंचरीकचयसुंदरवेणिकि रक्षितानत
श्रेणिकि दोयजातभव चित्तवशीकरणैक वाणिकिन्
वाणिकि नक्षदाम शुक वारिज पुस्तक रम्य पाणिकिन् ॥ 6 ॥

करनेवाले (चन्द्रमौली), कापालिक (कपाल को धारण करनेवाले), मन्मथ के गर्व रूपी पर्वत को उन्मूलित (समूल नाश) करनेवाले, नारद आदि प्रमुख मुनिगण के मन रूपी सरसीरुह (कमल) के लिए भ्रमर (शिवजी) की वन्दना करता हूँ। २ [उ.] समस्त चराचर जगत की जीवराशि की सृष्टि के विज्ञाता, भारती (सरस्वती) के हृदय के सुख का विधाता, वेद-राशि के निर्णायक, देवता-निकर (समूह) के नेता, (जीवों के) सकल कलुषों के जेता, नत-त्राता, धाता, निखिल तापसलोक के शुभप्रदाता (ब्रह्मा) की आतत (निरन्तर) सेवा करता हूँ। ३ [व.] ऐसा, सकल प्रमुख देवताओं की वन्दना कर, ४ [उ.] अद्रिसुता (गिरिजा) के हृदय के अनुराग (वात्सल्य) को पानेवाले, दोषों को दूर भगानेवाले, (सदा) प्रपन्न [जनों] को विनोद प्रदान करनेवाले, विघ्नवल्लिका का छेदन करनेवाले, मंजुल (मधुर) वार्त्तालाप करनेवाले, समस्त जगत के जन्म-रहस्य को जाननेवाले, मोदकों (लड्डुओं) को प्रीति से भक्षण करनेवाले, सम्यक् रीति से मूषक को वाहन-रूप में प्रयुक्त करनेवाले, शुभ (मंगल) को प्रसादित करनेवाले [गणेश] की सादर वन्दना करता हूँ। ५ [उ.] धरती पर माथा टेककर, नमस्कार कर, रेती के टीले-सम नितम्ब-वाली, चंचरीक-चय (भ्रमर-पंक्ति) के समान सुन्दर वेणी वाली, आनत-श्रेणी (शरणागतों) की रक्षा करनेवाली, तोयजात-भव (ब्रह्मा) के चित्त को वश में करनेवाली एक वाणी (प्रणव) वाली, वाणी की, स्फटिक-माला,

शा. पुट्टं बुट्ट शरंबुनन् मीलव नंभोयानपात्रंबुनन्
नॅट्टं गलगनु गाळि गौल्वनु बुराणिपन् दौरकौटि मी
दॅट्टे वॅट जरितु दत्सरणि नाकीवम्म यो यम्म मेल्
पट्टु न्मानकुमम्म नम्मिति जुमी ब्राह्मी दयांभोनिधी ॥ 7 ॥

उ. अम्मलगन्नयम्म मुगुरम्मल मूलपुटम्म चालपॅ-
द्दम्म सुरारुलम्म कडुपारडिपुच्चिनयम्म तन्नु लो
नम्मिन वेल्पुटम्मल मनम्मुल नुंडॅडियम्म दुर्ग मा
यम्म कृपाब्धि यीवुत महत्त्व कवित्व पटुत्व संपदल् ॥ 8 ॥

म. हरिकिन् वट्टपुदेवि पुन्नॅमुलप्रोवर्थंबु पॅन्निक्क चं
दुरु तोबुट्टुवु भारतीगिरिसुतल् तोनाडु पूबोणि ता
मरलं बुंडॅडि मुद्दरालु जगमुल् मन्निचु निल्लालु भा
सुरतन् लेमुलु वापु तल्लि सिरि यिच्चुन् नित्यकल्याणमुल् ॥ 9 ॥

व. अनि यिष्टदेवतलं जिंतिंचि, दिनकर कुमार प्रमुखुलं दलंचि, प्रथम कविता विरचन विद्याविलासातिरेकि वाल्मीकि नुतियिंचि, हयग्रीवदनुजकर

शुक, वारिज (कमल) [और] पुस्तक को रम्य रूप में करों में धारण करनेवाली (सरस्वती) की स्तुति करता हूँ। ६ [शा.] हे ब्राह्मी! दयाम्भोनिधी (दया की सागर)! [मैं] खखोडल में पैदा नहीं हुआ (अर्थात् वाल्मीकि नहीं हूँ); शर में पैदा नही हुआ (अर्थात् कार्तिकेय—कुमार स्वामी —नही हूँ), अम्भोयानपात्र (नाव) को खेते समय सद्योजात नहीं हुआ (अर्थात् ऋषि व्यास नहीं हूँ)। काली की सेवा नहीं की (कालिदास नही हूँ)। पुराणकथन के लिए उद्यत हुआ, अब किसी प्रकार आगे बढ़ने की सरणि (रीति-शैली) मुझे प्रदान करो। ओ माँ! सहारा देना छोड़ना नहीं, [तुम्हीं पर] विश्वास रखा है। ७ [उ.] माताओं को जन्म देनेवाली जननी, तीनों माताओं के मूल में स्थित जननी, बहुत बड़ी (वृद्ध) माँ, जिस माँ ने सुरारियो (राक्षसों) की माताओं के पेट को व्यर्थ कर दिया (राक्षसों का वध किया), जिन देवताओं की माताओं ने अपने मन में विश्वास रखा, उनके मन में प्रतिष्ठित रहनेवाली माँ, दुर्गा, मेरी माँ, जो कृपासागर है, [मुझे] महत्त्वशाली, कविता-पटुता की सम्पदाएँ प्रदान करे। ८ [म.] हरि की पटरानी, पुण्यों की राशि, चन्द्र की सहोदरी, भारती (सरस्वती) [एवं] गिरिसुता (पार्वती) के साथ खेलने वाली कुसुमांगी, भासुरता से अभावों को दूर कर देनेवाली माँ श्रीलक्ष्मी नित्य कल्याण (सदा मंगल) (हमें) प्रदान करती रहेगी। ९ [व.] इस प्रकार इष्टदेवताओं का चिन्तन कर; सूर्य, कुमार प्रमुखों का स्मरण कर, प्र-प्रथम कविता-रचना की विद्या के विलास में अतिरेक (आधिक्य) वाले

परिमिळित निगमनिवहविभागनिर्णयनिपुणतासमुल्लासुंडगु व्यासुनकु म्रॊक्कि, श्रीमहाभागवतकथा सुधारस प्रयोगिकि शुकयोगिकि नमस्करिंचि, मृदुमधुरवचनरचनपल्लवितस्थाणुनकुन् बाणुनकुं ब्रणमिल्लि, कतिपयश्लोक सम्मोदित सूरु मयूरु नभिनंदिंचि महाकाव्यकरणकळाविलासुं गाळिदासुं गॊनियाडि, कविकमलविसररवि भारवि बॊगडि, विदळिताघु माघु स्तुतियिंचि यांध्रकविता गौरवजन मनोहारि नन्नयसूरि गॆवारंबु सेसि, हरिहर चरणारविंदवंदनाभिलाषि दिक्कन मनीषिन् भूषिंचि, भक्ति-विशेषित परमेश्वरुंडगु प्रबंध परमेश्वरु व्रणुतिंचि, मरियु नितर पूर्वकविजन संभावनंबु गाविंचि, वर्तमानकवुलकुं ब्रियंबुवलिकि, भाविकवुल बहूकरिंचि, युभय-काव्यकरणदक्षुंडनै ॥ 10 ॥

उ. इम्मनुजेश्वराधमुल किच्चि पुरंबुलु वाहनंबुलुन्
सॊम्मुलु गॊन्नि पुच्चुकॊनि सॊक्कि शरीरमु बासि कालुचे
सम्मॆट वाटुलं बडक सम्मति श्रीहरि किच्चि चॆप्पॆ नी-
बम्मॆर पोतराजॊकडु भागवतंबु जगद्धितंबुगन् ॥ 11 ॥

वाल्मीकि की स्तुति कर, हयग्रीव नामक दनुज के करों से मिलाए गए (प्राप्त), निगम (वेद) समूह का विभाजन व निर्णय करने की निपुणता से समुल्लसित व्यास को प्रणाम कर, श्रीमहाभागवत-कथा के सुधारस का प्रयोग करनेवाले शुकयोगी को नमस्कार कर, मृदु मधुर वचनों से पूर्ण रचना से, स्थाणु (चट्टान) को पल्लवित करने वाले बाणभट्ट को प्रणाम कर, कतिपय श्लोकों के द्वारा ही आनन्द प्रदान करने में सूर (पण्डित) कवि मयूर का अभिनन्दन कर, महाकाव्यकरण की कला से विलसित कालिदास की प्रशंसा कर, कवि-कमलसमूह के लिए रवि-समान भारवि की संस्तुति कर, अघ (पाप) को विदलित करनेवाले कवि माघ की स्तुति कर, आन्ध्र कविता में गौरव [रखनेवाले] जन के मन को [अपनी कविता-शक्ति से] हरण करनेवाले नन्नयसूरि का स्तोत्र कर, हरिहर के चरण-कमलों की वन्दना में अभिलाषा रखनेवाले मनीषी तिक्कना को [नाना प्रकार के स्तुति-वचनों से] विभूषित कर, भक्ति की विशिष्टता के कारण परमेश्वर कहलानेवाले, प्रबन्ध [-काव्य-निर्माण में] परमेश्वर (कविराज) को प्रणाम कर तथा अन्य पूर्व कविजन की समुचित रीति से सम्भावना (आदर-सत्कार) कर, वर्तमान (समकालीन) कवियों के लिए प्रिय भाषण कर, भावी कवियों (भविष्य के कवि) का बहुमान (आदर) कर, उभयकाव्यकरण (दोनों संस्कृत, तॆलुगु में काव्य-रचना) में दक्ष (समर्थ) होकर, १० [उ.] इन अधम मनुजेश्वरों (राजाओं) को देकर (काव्य भेंट कर) कुछ नगर, वाहन, गहने ग्रहण कर, थककर [संसार के सुख-दुःख के कारण], शरीर त्याग कर, कालपुरुष (यमराज) से हथौड़ों की मार सहने की इच्छा न कर, सम्मति कर

ते. चेतुलारंग शिवुनि बूजिपडेनि, नोरुनॊव्वंग हरिकीर्ति नुडुवडेनि
दययु सत्यंबु लोनुगा दलपडेनि, गलुगनेटिकि दल्लुलकडुपुचेटु ॥ 12 ॥

व. अनि मदीय पूर्वजन्मसहस्रसंचिततपःफलंबुन श्रीमन्नारायण कथा प्रपंच विरचनाकुतूहलुंडनै यॊक्क राकानिशाकालंबुन सोमोपरागंबुराक गनि सज्जनानुमतंबुन नभ्रंकषशुभ्र समुत्तुंग भंगयगु गंगकुं जनि क्रुंकुलिडि वॆडलि महनीयमंजुल पुलिनतलमंडपमध्यंबुन महेश्वर ध्यानंबु सेयुचु गिंचिदुन्मीलित लोचनुंडनै युन्नयॆड ॥ 13 ॥

सी. मेरुगु चॆंगटनुन्न मेघंबु कैवडि नुविद चॆंगटनुंड नॊप्पुवाडु
चंद्रमंडल सुधासारंबुपोलिक मुखमुन जिरुनव्वु मॊलचुवाडु
वल्लीयुततमाल वसुमतीजमुभंगि बलुविल्लु मूपुन बरगुवाडु
नीलनगाग्र सन्निहितभानुनि भंगि घनकिरीटमु दल गल्गुवाडु

आ. पुंडरीकयुगमुबोलु कन्नुलवाडु, वॆडद युरमुवाडु विपुल भद्र
मूर्तिवाडु राजमुख्युडॊक्करुडु ना, कन्नुगवकु नॆदुरगानबडियॆ ॥ 14 ॥

व. ए ना राजशेखरुनि देरिचूचि भाषिप यत्नंबु सेयुनॆड नतंडु दा रामभद्रुंड

(सद्बुद्धि से, भली-भाँति सोच-विचारकर) श्रीहरि को समर्पित कर (और) इरु बम्मेर पोतराजु ने भागवत को जगत-हित के रूप में कहा। ११ [ते.] हाथ थक जाएँ ऐसा, जो शिवजी की पूजा नहीं करता, मुख थके ऐसा जो हरि-कीर्ति का गान नहीं करता, दया और सत्य के अधीन अपने-आप को जो नहीं मानता, माताओं की कोख को पीड़ा देने के अतिरिक्त —ऐसे जनों का पैदा होना ही क्यों? (निरर्थक है।)। १२ [व.] ऐसा विचारकर अपने सहस्र पूर्वजन्मों के संचित किये हुए तपःफल के कारण श्रीमन्नारायण की कथा-समूह की रचना के कौतूहल (उत्साह) को लेकर, एक राका निशा-समय में सोम (चन्द्र)-ग्रहण के आगमन को देखकर, सज्जनों की अनुमति से, आकाश को छूनेवाली उत्तुंग तरंगों वाली गंगा नदी में जाकर स्नान कर (बाहर) निकलकर, महनीय सुन्दर पुलिन-तल के मण्डप के मध्य में महेश्वर का ध्यान करते हुए, किंचित् उन्मीलित लोचनों से (आँख मूँदे हुए) रहा, तब। १३ [सी.] विद्युत् से विलसित शोभायमान मेघ के सम, भामिनी (सीता) के समीप रहने पर सुन्दर रूप से भासित होनेवाले, चन्द्र-मण्डल के सुधा सार के सम मुख पर सुस्मिति के साथ प्रदीप्त होनेवाले, लता से युक्त तमाल वृक्षों के समान बड़े धनुष के पीठ पर विलसित होनेवाले, नील नग के अग्र भाग पर सन्निहित (निकट) रहनेवाले सूर्य के समान घन किरीट से सुशोभित होनेवाले, [आ.] कमल-युगल के समान आँखों वाले, विशाल वक्षःस्थल वाले, अत्यधिक शुभाकार वाले, एक राजप्रमुख ने मेरी आँखों के सामने (प्रगट हो) दर्शन दिये। १४ [व.] मेरे उस राजशेखर को निहारकर बात करने का प्रयत्न करने पर

मन्नामांकितंबुगा श्रीमहाभागवतंबु दॆनुंगु सेयुमु नीकु भवबंधंबुलु वॆंगुननि यानतिच्चि तिरोहितुंडय्यॆ। अंत ने। समुन्मीलित नयनुंडनै वॆरगुपडि चित्तंबुन ॥ 15 ॥

कं. पलिकॆडिदि भागवतमट, पलिकिंचु विभुंडु रामभद्रुंडट ने-
वलिकिन भवहरमगुनट, पलिकॆद वेरॊंडुगाथ बलुकग नेला ॥ 16 ॥

आ. भागवतमु दॆलिसि पलुकुट चित्रंबु, शूलिकैन दम्मिचूलिकैन
विबुध जनुलवलन विन्नंत कन्नंत, तॆलिय वच्चिनंत तेटपरुतु ॥ 17 ॥

कं. कॊंदरिकि दॆनुगु गुणमगु, गॊंदरिकिनि संस्कृतंबु गुणमगु रॆंडुन्
गॊंदरिकि गुणमुलगु ने, नंदरि मॆप्पितु गृतुल नय्यैयॆडलन् ॥ 18 ॥

म. ऒनरन् नन्नय तिक्कनादि कवुली युर्वि बुराणावळुल्
तेनुगुल् सेयुचु मत्पुराकृत शुभाधिक्यंबु दानॆट्टिदो
तेनुगुं जेयरु मुन्नु भागवतमुन् दीनिन् दॆनिंगिंचि ना
जननंबुन् सफलंबु चेसॆद बुनर्जन्मंबु लेकुंडगन् ॥ 19 ॥

म. ललितस्कंधमु गृष्णमूलमु शुकालापाभिरामंबु मं-
जुलता शोभितमुन् सुवर्ण सुमनस्सुज्ञेयमुन् सुंदरो-

उसने अपना नाम रामभद्र बताकर कहा कि 'मेरे नाम पर श्रीमहाभागवत का तॆलुगु में अनुवाद करो। [करने पर] तुम्हारे भवबन्धन छूटेंगे', ऐसी आज्ञा देकर तिरोहित (अदृश्य) हुए। तब मैंने उन्मीलित नयन वाला हो (आँखें खोलकर) आश्चर्यचकित होकर चित्त में (विचार किया कि)। १५ (कं.) सुना है, प्रकट होता है (हुआ चाहता है) भागवत, प्रकट करानेवाला रामभद्र है, [और] मेरे बोलने पर (रचने पर) भवहरण होगा, अस्तु, अवश्य कहूँगा, अन्य कथागान क्योंकर करूँ? १६ [आ.] भागवत (तत्त्व) को जानकर कथन करना विचित्र (विलक्षण) होगा। त्रिशूली (शिव) या पद्मज (ब्रह्मा) का भागवत-कथन करना कठिन है। [फिर भी] विबुधजनों (विद्वानों) से जहाँ तक सुना, देखा और जितना समझ पाया, वहाँ तक स्पष्ट (कहूँगा)। १७ [कं.] कुछ लोगों को तॆलुगु पसन्द है, कुछ लोगों को संस्कृत इष्ट है, कुछ को दोनों अच्छे लगते हैं, [इस स्थिति में] मैं कृतियों में यत्र-तत्र सबको संतृप्त करूँगा। १८ [म.] नन्नय, तिक्कन आदि कवियों ने इस पृथ्वी पर, पुराणावली को तॆलुगु में अनुवाद करते हुए, मेरे पुराकृत पुण्य के शुभ की अधिकता, जाने वह कैसी है, [उसी के कारण], [इससे] पहले भागवत को तॆलुगु में नहीं किया, (अस्तु) इसे तॆलुगु में (अनुवाद) कर अपने जन्म को सफल बनाकर, (मेरा) पुनर्जन्म न हो, ऐसा कर लूँगा। १९ [म.] जिसके स्कन्ध (अध्याय, शाखाएँ) ललित हैं, जिसका मूल (तना, आधार) कृष्ण है, शुक

ज्ज्वल वृत्तंबु महाफलंबु विमल व्यासालवालंबुनै
वॅलयुन् भागवताख्य कल्पतरु वुर्विन् सद्विजश्रेयमै ॥ 20 ॥

व. इट्लु भासिल्लॅडु श्रीमहाभागवतपुराण पारिजातपादप समाश्रयंबुन हरि करुणाविशेषंबुन गृतार्थत्वंबु सिद्धिंचेननि बुद्धि नॅरिंगि लेचि मरलि कॊन्नि दिनंबुलुनु नेकशिलानगरंबुनकुं जनुदॆंचि यंदु गुरुवृद्धबुधबंधु जनानुज्ञातंडनै ॥ 21 ॥

ग्रंथकर्तृ वंशवर्णनमु

सी. कौंडिन्यगोत्र संकलितु डापस्तंबसूत्रुंडु पुण्युंडु सुभगुडैन
भीमन मंत्रिकि ब्रियपुत्रु डन्नय कलकंठि तद्भार्य गौरमांब
कमलाप्तु वरमुन गनिन सोमनमंत्रि वल्लभ मल्लम वारि तनयु
डॅल्लन यतनिकि निल्लालु माचम वारि पुत्रुडु वंशवर्धनुंडु
आ. ललितमूर्ति बहुकळानिधि केसन, दान मान नीतिधनुडु घनुडु
तनकु लक्कमांब धर्मगेहिनि गाग, मनिये शैवशास्त्रमतमु गनिये ॥22॥

(तोता, शुक महर्षि) के वार्त्तालाप के कारण जो अभिराम है, मंजुलताओं से जो सुशोभित है, सुवर्ण (सुन्दर अक्षर), सुमन (सुन्दर मन, पुष्प) के लिए सुज्ञेय (जानने योग्य), सुन्दर उज्ज्वल वृत्त (कथा, वृन्त) जिसके हैं, जो महापुण्य (मोक्ष) दायक है, विमल व्यास से जो विलसित है, वह भागवत नामक कल्पतरु पृथ्वी (भूलोक) में स्थित सज्जनों के लिए श्रेयोदायक शुभकर [अवश्य] सिद्ध होगा। २० [व.] इस प्रकार भव्य रूप से भासित होनेवाले भागवत पुराण रूपी पारिजात वृक्ष के समाश्रय में हरि की करुणा को विशिष्ट रूप में प्राप्त करने से कृतार्थता सिद्ध हुई, ऐसा बुद्धि से जानकर लौट गया। फिर कतिपय दिनों के पश्चात् एकशिला नगर चलकर, वहाँ स्थित अपने गुरु, वृद्ध, बुध, बन्धुजन से आज्ञापित होकर,। २१

ग्रन्थकर्ता के वंश का वर्णन

[सी.] कौण्डिन्यस गोत्र में उत्पन्न हुए, आपस्तम्ब सूत्री, पुण्य-चरित्र वाले, सुभग भीमन मंत्री का प्रियपुत्र अन्नय मंत्री और उनकी पत्नी कलकण्ठ वाली गौरमाम्बा को कमलाप्त (सूर्य) के वर प्रसाद से सोमन मंत्री पैदा हुए। मंत्री सोमन और उनकी पत्नी मल्लम्मा के पुत्र एल्लन हुए। एल्लन और पत्नी माचमाम्बा के वंशवर्द्धक सुपुत्र [आ.] ललित मूर्ति तथा वहुकलाओं के निधि केसन हुए। केसन दानमान (तथा) नीति में धनी एव घनात्मा (महान्) हुए। उन्होंने धर्मपत्नी लक्कमाम्बा (लक्ष्मम्मा) के साथ शैवशास्त्र-मत को (शिव-तत्त्व ज्ञान) को प्राप्त किया। २२

कं. नडवदु निलयमु वॅलुवडि, तडवदु परपुरुपु गुणमु वन पति नॉडुवुन्,
गडवदु वितरण करुणलु, विडुवदु लक्कांव विवुध विसरमु वॉगडन् ॥23॥

उ. मानिनु लीडुगारु वहुमान निवारित दीनमानस
ग्लानिकि दानधर्म मतिगौरव मंजुलतागभीरत
स्थानिकि मुद्दसानिकि सदाशिवपादयुगार्चनानुकं
पानय वाग्भवानिकिनि वम्मॅर केसय लक्कसानिकिन् ॥ 24 ॥

कं. आमानिनि कुर्दयिचिति, मेमिरुवर मग्रजातु डीश्वरसेवा
कामुडु तिप्पय; पोतय नामव्यक्तुंड साधुनययुक्तुंडन् ॥ 25 ॥

व. अयिन ना चित्तंवुन वॅन्निधानंवुनुं वोनि श्रीरामचंद्र सन्निधानंवु गल्पिचुकॉनि ॥ 26 ॥

षष्ठ्यंतमुलु

उ. हारिकि नंदगोकुल विहारिकि जक्रसमीरदैत्य सं
हारिकि भक्त दुःखपरिहारिकि गोपनितंविनी मनो
हारिकि दुष्टसंपदपहारिकि घोषकुटीपयोघृता
हारिकि वालकग्रहमहासुरदुर्वलिता प्रहारिकिन् ॥ 27 ॥

[कं.] वह (अपने) निलय (घर) के वाहर निकलती नही, पराये पुरुष के रूप, गुण नही देखती, निजपति की प्रशंसा करती, वितरण (दान) [तथा] करुणा आदि से रहित हो वह दिन विताती नही, विवुधजनों की स्तुति करने में थकती नहीं। २३ [उ.] मानिनियाँ उसकी वरावरी नहीं कर सकतीं। वह अपने वहुमान (आदर) से दीनों के मन की ग्लानि को दूर करती है। वह दान-धर्म, मति-गौरव (बुद्धि क [illegible]) मंजुलता तथा गम्भीरता का स्थान है, वह मुग्धा है, सदाशिव के चरण-युगल की अर्चना में अनुकम्पा (अनुराग) नय (नीति) के कारण वाग्भवानी (वचोशैली में पार्वती) है। वम्मेर के केसन की पत्नी लक्कसानी (ऐसी) है। २४ [कं.] उस मानिनी के हम दोनों पैदा हुए। अग्रज, तिप्पय ईश्वरसेवा में इच्छुक है [और मैं] पोतना नामधारी व्यक्ति हूँ, जो साधुता और नीति से युक्त हूँ। २५ [व.] ऐसा मैंने अपने चित्त में अतुल निधि-सम श्रीरामचन्द्र को समक्ष (सम्मुख) में प्रस्थापित कर। २६

पष्ठि विभक्त्यन्त वाले पद्य

[उ.] हारी (हार धारण करनेवाले) को, नन्द के गोकुल में संचरण करनेवाले को, भक्तों के दुःख को मिटा देनेवाले को, गोपांगनाओं के मन में रमनेवाले को, दुष्टसम्पदा (राक्षसवल, आसुरीवृत्ति) के अपहरण करनेवाले को, घोष ग्राम (ग्वालों के गाँव) की कुटियों में स्थित दूध व घी की चोरी

उ. शीलिकि नीतिशालिकि वशीकृत शूलिकि बाणहस्तनि-
मूर्लिकि घोरनीरदविमुक्तशिलाहत गोपगोपिका
पालिकि वर्णधर्म परिपालिकि नर्जुनभूजयुग्म सं-
चालिकि मालिकिन् विपुल चक्रनिरुद्ध मरीचिमालिकिन् ॥ 28 ॥

उ. क्षंतकु गाळियोरग विशाल फणोपरिनर्तन क्रिया
रंतकु नुल्लसन्मगधराज चतुर्विधघोर वाहिनी
हंतकु निंद्रनंदननियंतकु सर्वचराचरावळी
मंतकु निर्जितेंद्रियसमंचित भक्तजनानुगंतकुन् ॥ 29 ॥

उ. न्यायिकि भूसुरेंद्रमृतनंदनदायिकि रुक्मिणी मन
स्स्थायिकि भूतसम्मद विधायिकि साधुजनानुराग सं-
धायिकि पीतवस्त्र परिधायिकि पद्मभवांड भांड नि-
र्मायिकि गोपिकानिवहमंदिरयायिकि शेषशायिकिन् ॥ 30 ॥

व. समर्पितंबुगा ने नंध्रभाषनु रचियिपंबूनिन श्रीमहाभागवतंबुनकुं ब्रारंभं
बॅट्टिदनिन ॥ 31 ॥

करनेवाले को, बच्चे चुरानेवाली महाराक्षस स्त्री (पूतना) के मारनेवाले (वध करनेवाले) को। २७ [उ.] शीलवान् को, नीतिमान् को, शिवजी को वश में कर रखनेवाले को, वाणासुर के हस्तों के संहारक को, भयंकर वादलों से छोड़े गए शिलाओं के आघात से गोप और गोपिकाओं का पालन (रक्षा) करनेवाले को, वर्णाश्रमधर्म का पालन करनेवाले को, अर्जुन नामक वृक्ष-युगल का उद्धार करनेवाले को, पुष्पमालाधारी को, विपुल चक्र से मरीचिमाली (सूर्यकिरणों) का निरोध (सैंधव-वध के समय) करनेवाले को। २८ [उ.] क्षमता वाले को, कालिय उरग (नाग) के विशाल फन पर नाट्य करनेवाले को, उल्लसित (उत्साहित) मगधराज (जरासंध) के चार प्रकार की भयंकर सेनावाहिनियों के समाप्त करनेवाले को, इन्द्र-नन्दन (अर्जुन) को नियंत्रित करनेवाले को, सकल चराचरसमूह की रक्षा करनेवाले को, इन्द्रियों (वासनाओं) को समुचित रूप से जीतनेवाले भक्त-जनों का अनुगमन करनेवाले को,। २९ (उ) न्यायी को, ब्राह्मण के मृतपुत्र (सान्दीपनि का पुत्र) को वापस ला देनेवाले को, रुक्मिणी के मन मे स्थिर रूप से रहनेवाले को, प्राणि कोटि को समुचित रूप से (विधि-विधान में रखकर) पालन करनेवाले को, साधुजन के अनुराग का संधान करनेवाले को, पीले वस्त्र को धारण करनेवाले को, पद्मभव (ब्रह्मा) के ब्रह्माण्ड-भाण्ड के निर्माता को, गोपिकासमूह के मन्दिर में गमन करनेवाले को, शेषतल्प पर शयन करनेवाले को। ३० [व.] समर्पित करने के लिए मैं आन्ध्र भाषा में रचना करने को उद्यत हुआ, ऐसे श्रीमहाभागवत का प्रारम्भ किस प्रकार का है? [पूछने पर—]। ३१

अध्यायमु—१

सी. विश्वजन्मस्थिति विलयंबु लॅव्वनिवलन नेर्पडु ननुवर्तनमुन
व्यावर्तनमुन गार्यमुलं दभिज्ञुडै तान राजगुचु जितमुन जेसि
वेदंबु लजुनकु विदितमुल् गाविचॅ नेव्वडु बुधुलु मोहितु रॅव्व
निकि नॅंडमावुल नीट गाचादुल नन्योन्य वुद्धि दा नडरुनट्लु

आ. त्रिगुणसृष्टि यॅंदु दीपिंचि सत्यमु भंगि दोचु स्वप्रभानिरस्त
कुहकु डॅव्वडतनि गोरि चिंतिचॅद ननघु विश्वमयुनि ननुदिनंबु ॥ 32 ॥

व. इट्लु "सत्यं परं धीमहि" यनु गायत्री प्रारंभंबुन गायत्रीनाम ब्रह्मरूपंबै मत्स्य पुराणंबुलोन गायत्रि नधिकरिंचि धर्मविस्तरंबुनु वृत्रासुर वधंबुनु नॅंदु जॅप्पंबडु नदिय भागवतंबनि पलुकुटं जेसि यी पुराणंबु श्रीमहा-भागवतंबन नॉप्पुचुंडु ॥ 33 ॥

सी. श्रीमंतमै मुनि श्रेष्ठकृतंबैन भागवतंबु सद्भक्तितोड
विनगोरु वारल विमलचित्तंबुल जॅच्चॅर नीशुंडु चिक्कु गाक
यितर शास्त्रंबुल नीशुंडु चिक्कुनॅ मंचिवारलकु निर्मत्सरुलकु
गपट निर्मक्तुलै कांक्षसेयक यिंदु दगिलियुंडुट महातत्त्ववुद्धि

अध्याय—१

[सी.] विश्व के सृष्टि, स्थिति और विलयकार्य जिसके कारण सम्पन्न होते हैं, अनुवर्तन (अनुकूल वर्तन) तथा व्यावर्तन (प्रतिकूल वर्तन) से कार्यों में अभिज्ञ होकर स्वयं राजा (प्रभु) होते हुए, वेदों को मन में सिरजो कर, ब्रह्मा को जिसने विदित कराया है, बुधजन (देवतागण, विद्वज्जन) जिस पर मोहित होते हैं, [आ.] जिसमें त्रिगुण अलग-अलग सृष्ट होकर मृगतृष्णा मे पानी तथा काँच आदि में अन्य वस्तुओं के भ्रम-समान, सत्य के समान दिखाई पड़ते है, जो अपने प्रभाव से माया को निरस्त कर देता है, जो अनघ है, विश्वमय है, उसकी [प्राप्ति की] इच्छा कर, प्रतिदिन चिन्तन करता हूँ। ३२ [व.] इस प्रकार 'सत्यं परमं धीमहि' नामक गायत्री मंत्र के प्रारम्भ में स्थित गायत्री नाम से ब्रह्मस्वरूप (का विवरण) मत्स्यपुराण में किया गया। [उस] गायत्री का अधिकरण कर (प्रमाण के रूप में स्वीकार कर), धर्म का विस्तार तथा वृत्रासुर के वध का जहाँ कथन होता है, वह भागवत कहलाता है, अस्तु यह पुराण श्रीमहाभागवत के नाम से प्रसिद्ध हो गया। ३३ [सी.] श्रीयुत हो, मुनिश्रेष्ठ (व्यास) के द्वारा विरचित इस भागवत को सद्भक्ति के साथ सुनने की इच्छा करनेवालो के विमल चित्तों में ईश (परमात्मा) वश में हो जाता है, अन्यथा अन्यान्य शास्त्रों के द्वारा ईश कभी वश में होनेवाला है क्या ? (नहीं), इसलिए

ते. परग नाध्यात्मिकादि तापत्रयंबु, नडचि परमार्थभूतमै यखिलसुखद
मै समस्तंबु गाकयु नय्युनुंडु, वस्तुवेरुगंग दगुभागवतमु नंदु ॥34॥
आ. वेदकल्पवृक्षविगळितमै शुक, मुखसुधाद्रवमुन मोनसियुन्न
भागवतपुराण फलरसास्वादन, पदवि गनुडु रसिक भावविदुलु ॥ 35 ॥

नैमिशारण्य वर्णनमु

क. पुण्यंबै मुनिवल्लभ, गण्यंबै कुसुमफलनिकायोत्थित सा
द्गुण्यमयि नैमिशाख्यारण्यंबु नुतिपदगु नरण्यंबुललोन् ॥ 36 ॥
व. मरियुनु मधुवैरि मंदिरंबुनुं बोलें माधमीमन्मथ सहितंबै, ब्रह्म गेहंबुनुं बोल शारदान्वितंबै, नीलगळसभानिकेतनंबुनुं बोलें वह्निवरुण समीरणचंद्ररुद्र-हैमवती कुबेरवृषभगालवशांडिल्यपाशुपत जटिपटलमंडितंबै, बलभेदि-भवनंबुनुं बोलें नैरावतामृत रंभागणिकाभिरामंबै, मुरासुरुनिनिलयंबुनुं बोलें नुन्मत्त राक्षसवंशसंकुलंबै, धनदागारंबुनुं बोलें शंखकुंदमुकुंद

सज्जनों का, मात्सर्य-बुद्धि रहित वालों का, छल-कपट रहित हो, कामनाएँ न कर, महत् तत्त्व बुद्धियुत हो, इसमें (भागवत में) रमते रहने में श्रेय है। [ते.] आध्यात्मिक तापत्रय का दमन कर, परमार्थ का मूल होकर, समस्त (सब कुछ) होकर भी समस्त न होनेवाले उस वस्तु (तत्त्व) को भागवत द्वारा जाना जा सकता है। ३४ [आ.] वेद रूपी कल्पवृक्ष से विगलित हो, शुक [योगी] के मुख के द्वारा प्रवाहित अमृत की धारा के रूप में, सुविख्यात भागवत नामक पुराण रूपी फल के रस के आस्वादन की योग्यता को रसिक भावविद् (तत्त्वज्ञ) प्राप्त कर लें। ३५

नैमिशारण्य का वर्णन

[कं.] पुण्य (फलद) हो, मुनिवल्लभों (मुनिश्रेष्ठों) से गणनीय हो, कुसुम और फल के समूहों से उत्थित (पैदा किये गए) सद्गुणसम्पन्न हो, नैमिश नामक अरण्य [सब] अरण्यों में प्रशंसनीय है। ३६ [व.] इतना ही नहीं, मधुवैरी (विष्णु) के मन्दिर (वैकुण्ठ) के समान, माधवी (लक्ष्मी, एक लता) तथा मन्मथ (कामदेव, एक वृक्ष, कामचिन्ता नामक वृक्षों) से युक्त हो, ब्रह्म-मन्दिर के समान शारदान्वित (सरस्वती, एक वृक्ष) हो, नील-गल (शिव) के सभा-निकेतन के समान वह्नि, वरुण, समीरण, चन्द्र, रुद्र, हैमवती, कुबेर, वृषभ, गालव, शाण्डिल्य, पाशुपत[1] [आदि] जटि (यति, जटाएँ) पटल (समूह) मण्डित हो, जलभेदी (इन्द्र) के भवन के समान, ऐरावत, अमृत, रम्भा गणिकाओं[1] से अभिराम हो, मुरा नामक असुर के निलय के समान उन्मत्त, राक्षस, वंशसंकुल (भरा) हो, धनद (कुबेर) के

---

१ ये सभी वृक्षों के नाम भी हैं।

सुंदरंबै, रघुरामु युद्धंबुनुं बोलॆ निरंतर शरानलशिखाबहुळंबै, परशुरामु भंडनंबुनुं बोलं नर्जुनोद्भेदंबै, दानवसंग्रामंबुनुं बोलॆ नरिष्टजंभनिकुंभ-शक्ति युक्तंबै, कौरव संगरंबुनुं बोलं द्रोणार्जुन कांचनस्यंदन कदंब-समेतंबै, कर्णुकलहंबुनुं बोलॆ महोन्नतशल्य सहकारंबै, समुद्र सेतुबंधनंबुनुं बोलॆ नलनीलपनसादि प्रदीपितंबै, भर्गु भजनंबुनुं बोलॆ नानाशोकलेखा कलितंबै, मरु कोदंडंबुनुं बोलॆ बुन्नागशिलीमुख भूषितंबै, नरसिंहरूपंबुनुं बोलॆ गेसर करज कांतंबै, नाट्यरंगंबुनुं बोलॆ नटनटीसुषिरान्वितंबै, शैलजा निटलंबुनुं बोलॆ जंदनकर्पूर तिलकालंकृतंबै, वर्षागमंबुनु बोलॆ निंद्रबाणासन मेघकरककमनीयंबै, निगमंबुनुं बोलॆ गायत्री विराजितंबै, महाकाव्यंबुनुं बोलॆ सरस मृदुलताकलितंबै, विनतानिलयंबुनुं बोलॆ सुपर्णरुचिरंबै, यमरावती पुरंबुनुं बोलॆ समनोललितंबै, कैटभोद्योगंबुनुं बोलॆ मधुमानितंबै, पुरुषोत्तम सेवनंबुनुं बोलॆ नमृत फलदंबै, धनंजय समीकंबुनुं बोलॆ नभ्रंकषपरागंबै, वैकुंठपुरंबुनुं बोलॆ हरिखड्गपुंडरीक विलसितंबै, नंदघोषंबुनुं बोलॆ गृष्णसार सुंदरंबै, लंकानगरंबुनुं बोलॆ राममहिषी वंचकसमेतंबै, सुग्रीव सैन्यंबुनुं बोलॆ गज गवय शरभशोभितंबै, नारायण स्थानंबुनुं बोलॆ नीलकंठ हंसकौशिक

आगार के समान, शंख, कुन्द, मुकुन्द [आदि] से सुन्दर हो, रघुराम के युद्ध के समान निरन्तर शर, अनल, शिखा, बहुल हो, परशुराम के युद्ध के समान, अर्जुन से उद्भेदित हो, दानवों के संग्राम के समान, अरिष्ट, जम्भ, निकुम्भ, शक्ति से युक्त हो, कौरव-संग्राम के समान द्रोण, अर्जुन, कांचन, स्यंदन कदंब समेत हो, कर्ण के कलह (युद्ध) के समान महान उन्नत शल्य-सहकार सहित हो, समुद्र पर सेतुबन्धन के समान नल, नील, पनस आदि (प्रमुख वीर, वृक्ष विशेष) से प्रदीप्त हो, भर्ग (शिव) के भजन के समान नाना [प्रकार के] अशोक, लेखाओं से युक्त हो, मन्मथ के कोदण्ड के समान, पुन्नाग, शिलीमुख से विभूषित हो, नरसिंह-रूप के समान, कैसर, करज से कांत (सुन्दर) हो, रंगमंच के समान, नट-नटी, सुवीर से अन्वित हो, शैलजा (पार्वती) के निटल (माथे) के समान चन्दन, कर्पूर, तिलक से अलंकृत हो, वर्षा के आगमन के समान इन्द्र के बाणासन (धनुष,इन्द्रधनुष), मेघ और करका (बिजली) से कमनीय हो, निगम के समान, गायत्री से विराजित होते हुए, महाकाव्य के समान सरस मृदुलताओं से आकलित होकर, विनतालय के समान सुवर्ण रुचिर हो, अमरावती के समान, सुमन से ललित हो, कैटभ के उद्योग के समान, मधु (शहद, मधु नामक राक्षस) से मान्य हो, पुरुषोत्तम की सेवा के समान, अमृतफलदायक हो, धनञ्जय के समीक (सेना) के समान अभ्रंकष (आकाश को चूमनेवाले, एक वृक्ष) पराग से युक्त हो, वैकुण्ठपुरी के समान हरि, खड्ग, पुंडरीक-विलसित हो, नन्दघोष (नन्द का गाँव) के समान, कृष्णसार से विलसित

भारद्वाज तित्तिरिभासुरंबै, महाभारतंबुनुं बोलॅ नेकचक्रबक कंकधार्तराष्ट्र शकुनि नकुलसंचार सम्मिळितंबै, सूर्यरथंबुनुं बोलॅ नुरुतर प्रवाहंबै, जलद-काल संध्यामुहूर्तंबुनुं बोलॅ बहुविततजाति सौमनस्यंबै यॉप्पु नैमिशंबनु श्रीविष्णुक्षेत्रंबु नंदु शौनकादि महामुनुलु स्वर्गलोक गीयमानुंडगु हरि जेरु-कॉरकु सहस्रवर्षंबु लनुष्ठानकालंबुगागल सत्रसंज्ञिकंबैन यागंबुसेयुचुंडि रंडॉक्कनाडु वारलु रेपकड नित्यनैमित्तिकहोमंबु लाचरिंचि सत्कृतुंडै सुखासीनुंडै युन्न सूतुनि जूचि ॥ 37 ॥

शौनकादि ऋषुल प्रश्न

कं. आ तापसु लिट्लनिरि वि, नीतुन् विज्ञानफणितनिखिलपुराण
व्रातुन् नुतहरिगुण सं, घातुन् सूतुन् नितांतकरुणोपेतुन् ॥ 38 ॥

म. समतं दॉलिलि पुराणपंक्तु लितिहासश्रेणुलुं धर्मशा-
स्त्रमुलुन् नीवु पठिंचि चॅप्पितिवि वेदव्यास मुख्युल्, मुनुल्,
सुमतुल् सूचिन वॅन्नि यन्नियुनु दोचुन् नीमदिन्, दत्प्रसा
दमुनं जेसि यॅरुंग नेर्तुवु समस्तंबुन् बुधेंद्रोत्तमा ! ॥ 39 ॥

हो, सुन्दर लंका नगरी के समान, राममहिषी (सीता) के वंचकों को लिये हुए, सुग्रीव-सेना के समान गज, गवय, शरभ (आदि) से सुशोभित हो, नारायण (ऋषि नारायण) के स्थान के समान, नीलकण्ठ, हंस, कौशिक, भरद्वाज, तित्तरि से युक्त हो, महाभारत के समान, एकचक्र, बक्र, कंक, धार्तराष्ट्र, शकुनि, नकुल आदि के संचार-सहित हो, सूर्य के रथ के समान तीव्रगति से प्रवाहित होनेवाले प्रवाहों से युक्त हो, वर्षाकाल के सन्ध्या-समय के समान बहु वितत जातियों से विस्तृत हो, शोभायमान नैमिशारण्य नामक श्रीविष्णूक्षेत्र (वैष्णव-क्षेत्र) में शौनकादि महामुनियों ने स्वर्ग-लोक में गेयमान (प्रशंसित) हरि की प्राप्ति के निमित्त हज़ारों वर्ष के अनुष्ठान-काल के सत्र नामक यज्ञ को सम्पन्न करते हुए एक दिन, प्रातःकाल में नित्यनैमित्तिक हवन आदि सत्कार्य को पूर्ण कर, सुखदायक आसन जमाये उपविष्ट (बैठे हुए) सूत को देखकर (पूछा)। ३७

शौनकादि मुनियों का प्रश्न

[कं.] विनीत शास्त्र तथा विज्ञानमय वाक्यों में [निहित] सकल पुराणों के समूह वाले को, हरिगुणसमूह की स्तुति करनेवाले को, नितान्त करुणा से युक्त सूत से उन तापसियों ने इस प्रकार कहा। ३८
[म.] हे बुधेन्द्रोत्तम ! पूर्व में पुराणों की पंक्तियों (समूहों) को, इतिहास-श्रेणियों को, धर्मशास्त्र को समुचित रीति से [तुमने] पढ़कर, कहा था। वेदव्यासादि, मुनि, [तथा] सुमतिवालों ने जिन तथ्यों के दर्शन किये थे, वे सब

कं. गुरुवुलु प्रिय शिष्युलकुं, वरम रहस्यमुलु दॅलिय वलुकुदु रचल
स्थिरकल्याणं बॅय्यदि, पुरुपुलकुनु निश्चयिंचि वोधिपु तगन् ॥ 40 ॥

क. मन्नाडवु चिरकालमु, गन्नाडवु पॅक्कुलैन ग्रंथार्थंबुल्
विन्नाडवु विनदगिनवि, युन्नाडवु पॅद्दलॉद्द नुन्तमगोष्ठिन् ॥ 41 ॥

च. अलसुलु मंदवुद्धियुतु लल्पतरायुवु लुग्ररोग सं-
कलितुलु मंद भाग्युलु सुकर्ममुलॅय्यवि सेय जालरी
कलियुगमंदु मानवुलु गावुन नॅय्यदि सर्वसौख्यमै
यलवडु नेमिटं वॉडमु नात्मकु शांति मुनींद्र चॅप्पवे ॥ 42 ॥

सी. एव्वनि यवतारमॅल्ल भूतमुलकु सुखमुनु वृद्धियु सौरिदिजेयु
नॅव्वनि शुभनाम मॅप्रॉद्दु नुडुवंग संसारवंधंवु समसिपोवु
नॅव्वनि चरितंवु हृदयंवु जेर्चिन भयमौदि मृत्युवु परुवुवॅट्टु
नॅव्वनिपदनदि नेपारुजलमुलु सेविप नैर्मल्यसिद्धि गलुगु

ते. दपसु लॅव्वनिपादंवु दगिलि शांति, तॅरगुगांचिरि वसुदेवदेवकुलकु
नॅव्वडुदयिंचॅ दत्कथलॅल्ल विनग, निच्चपुट्टेडु नॅरिंगिपु मिद्धचरित! ॥43॥

क. भूपणमुलु वाणिकि नघ, पेपणमुलु मृत्युचित्त भीपणमुलु हृ-
त्तोपणमुलु गल्याण वि, शेपणमुलु हरिगुणोपचित भापणमुल् ॥ 44 ॥

तुम्हें मन में सूझते हैं। तत् प्रसाद के फलस्वरूप तुम समस्त को जान सकते हो। ३९ [कं.] गुरुजन अपने प्रिय शिष्यों को जिस परम रहस्य को विदित करते हैं, पुरुपों (जीवों) के लिए अचल (शाश्वत, स्थिर) कल्याण-कारक जो वस्तु है, निर्णय कर (विवेचना कर) [उस तत्त्व को] उचित रूप से समझाओ। ४० [कं.] चिरकाल से जीवित रहकर, अनेकों ग्रन्थों के अर्थ (मर्म) को जान गये हो, सुनने योग्य सव कुछ सुन चुके हो, श्रेष्ठ जनों के पास उत्तम संगोष्ठियों में रह चुके हो। ४१ [च.] हे मुनीन्द्र! इस कलियुग के मानव आलसी, मन्द वुद्धि वाले, अल्पायु वाले, उग्र रोग से पीड़ित, मन्द भाग्य वाले हैं, ये कोई सुकर्म कर नही पाते। अतः जो सर्व-सौख्यप्रद होकर, आत्मा की शान्ति को प्राप्त कर सकनेवाला है, (उसे) विदित करो। ४२ [सी.] वह किसका अवतार है, जो सकल भूतगण को सुख प्रदान कर क्रमशः वृद्धि (पोपण) करता है, जिसके शुभ नाम के सदा कीर्तन करने से संसार के वन्धन मिट जाते हैं, जिसके चरित को हृदय में धारण करने से मृत्यु डरकर भाग खड़ी होती है, जिसके पद (चरण) से प्रवाहित होनेवाले जल (गंगाजल) के सेवन करने से निर्मल तत्त्व की सिद्धि (प्राप्ति) हो जाती है, [ते.] तापसी लोगों ने जिसके चरणों की प्राप्ति कर शान्ति के विधान को प्राप्त कर लिया है, वसुदेव-देवकी ने जिसको जन्म दिया, उसकी समस्त कथाएँ सुनने की इच्छा जगी, अतः प्रशस्त चरित वाले (सूत)! तुम [उन्हें] वताओ। ४३ [कं.] हरिगुणों

कं. कलिदोष निवारकमै, यलघु यशुल् वॊगडुनट्टि हरिकथनमु नि
मॆलगति गोरॆडु पुरुषुडु, वॆलयग नॆव्वाडु दगिलि विनडु महात्मा!॥ 45 ॥

आ. अनघ विनु रसज्ञुलै विनुवारिकि माटमाट कधिकमधुरमैन
यट्टि कृष्णुकथन माकर्णनमुसेय, दलपुगलदु माकु दनिविलेदु ॥ 46 ॥

म. वरगोविंद कथासुधारस महावर्षोरुधारा परं
परलंगाक बुधेंद्रचंद्र ! यितरोपायानुरक्ति न्नवि
स्तर दुर्दांतदुरंत दुस्सहजनुस्संभावितानेक दु-
स्तर गंभीर कठोर कल्मष कनद्दावानलं बारुने ॥ 47 ॥

सी. हरिनामकथन दावानल ज्वालल गालवे घोराघ-काननमुलु
वैकुंठदर्शन वायुसंघंबुचे दॊलगवे बहुदुःख-तोयदमुलु
कमलनाभध्यान कंठोरवंबुचे गूलवे संताप-कुंजरमुलु
नारायणस्मरण प्रभाकरदीप्ति दीरवे षड्वर्ग-तिमिरततुलु

आ. नळिननयन भक्ति नावचेगाक सं, सार जलधि दाटि चनगरादु
वेयुनेल माकु विष्णुप्रभावंबु वॆलुपवय्य सूत ! धीसमेत ! ॥ 48 ॥

से भरे समुचित भाषण (वचन) वाणी के लिए भूषण (अलंकार) हैं, पापों को दूर भगानेवाले हैं, मृत्युचित्त के लिए भयंकर हैं, (जीव कोटि के) हृदय के लिए सन्तोषदायक है और कल्याण-विशेष को प्रदान करनेवाले हैं। ४४ [कं.] हे महात्मा ! कलियुग के दोषों (पापों) के निवारण करनेवाले, (तथा) अलघु यशस्वियों द्वारा गान किये जानेवाली हरिकथा को, निर्मल गति (मोक्षपद) की कामना करनेवाला पुरुष (जीव) सुनना क्यों नहीं चाहता। ४५ [आ.] अनघ ! और सुनो। रसज्ञ हो सुननेवाले के लिए वार-वार सुनते-सुनते मधुर, मधुरतर, मधुरतम जान पड़नेवाली कृष्ण-कथा के श्रवण करने की इच्छा है। उसके बिना हमें तृप्ति नहीं मिलेगी। ४६ [म.] हे बुधेन्द्रचन्द्र ! गोविन्द की वर-कथा रूपी सुधा-रस की महान वर्षा की धारा की परम्पराओं के बिना अन्य उपायों को चाहने से (अनुसरण करने से) विस्तृत, भयंकर, दुस्सहज रूप से सम्भावित अनेक दुस्तर व गम्भीर एवं कठोर पाप रूपी प्रज्वलित दावानल बुझ सकता है क्या ? (नहीं)। ४७ [सी.] हरिनाम-संकीर्तन रूपी दावानल की ज्वालाओं से भयंकर पाप रूपी कानन क्यों नहीं जल जाएँगे, वैकुण्ठ के दर्शन रूपी वायुसमूह से बहुदुःख रूपी तोयद (बादल) क्यों न हट जाएँगे, कमलनाभ वाले (विष्णु) के ध्यान रूपी सिंह से सन्ताप रूपी हाथी क्यों न मर जाएँगे, नारायण के स्मरण रूपी प्रभाकर (सूर्य) की दीप्तियों (कान्तियों) से अरिषड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) रूपी अन्धकारसमूह क्यों न मिट जाएँगे। [आ.] [अस्तु,] सूतजी ! हे धीमान् ! नलिन नयन वाले (विष्णु) की भक्ति रूपी नाव के बिना, संसार

व. मरियु कपट मानवुंडुनु गूढुंडुनैन माधवुंडु रामसहितुंडै यतिमानुषंबुलैन पराक्रमंबुलु सेसॆनट। वानि विवरिंपुमु। कलियुगंबु रागलदनि वैष्णवक्षेत्रंबुन दीर्घ सत्रनिमित्तंबुन हरिकथलु विन नॆडगलिगि निलिचितिमि। दैवयोगंबुन,

कं. जलराशि दाटगोरॆडि, कलमु जनुल् गर्णधारु गांचिन भंगिन्
गलिदोष हरणवांछा, कलितुलमगु मेमु निन्नु गंटिमि सूता! ॥ 50 ॥

कं. चारुतरधर्मराशिकि, भारकुडगु कृष्णु डात्मपदमुन केगन्
भारकुडु लेक यॆव्वनि, जेरॆनु धर्मंबु वलुपुसॆडि मुनिनाथा! ॥ 51 ॥

अध्यायमु—२

सूतुंडु नारायणकथाप्रशंस चेयुट

व. अनि यिट्लु महनीय गुणगरिष्ठुलयिन शौनकादिमुनिश्रेष्ठु लडिगिन रोमहर्षण पुत्रुंडै युग्रश्रवसुंडनु पेर नॊप्पि निखिल पुराण व्याख्यान वैखरी समेतुंडैन सूतुंडु ॥ 52 ॥

म. समुड यॆव्वडु मुक्तकर्मचयुडै सन्यासियै यॊटिवो
व महाभीति नॊहो! कुमार यनुचुन् व्यासुंडु सीरंग वृ

रूपी सागर को पार करना असम्भव है, हजारों बातें क्यों, हमें विष्णु के प्रभाव को विदित करो। ४८ [व.] और सुना है, कपट मानव तथा गूढ़ (रहस्य) पुरुष माधव ने राम (बलराम) सहित हो अति मानुष (मानव जाति में असम्भव) पराक्रम (पूर्ण कार्य) कर दिखाये। उन सबका विवरण सुनाओ। कलियुग आनेवाला है, इसलिए दैवयोग से वैष्णव क्षेत्र में दीर्घ यज्ञ के सन्दर्भ में अवकाश प्राप्त होने से हरिकथाश्रवण की इच्छा लिये हम उपस्थित हुए हैं। ४९ [कं.] सूत! जलराशि (सागर) को पार करने के इच्छुक [जन] के, नाव में नाविक को पाने की भाँति, कलिदोष को मिटाने की तीव्र इच्छा से प्रेरित, हम तुम्हें देख पाये हैं। ५० [कं.] हे मुनिनाथ! चारुतर (सुन्दर) धर्मराशि के भारवहन करनेवाले कृष्ण जब आत्मपद को प्राप्त हुए, तब भारक (भार वहन करनेवाले) के अभाव में दार्ढ्य (दृढ़ता) रहित हो, धर्म ने किसके यहाँ प्रस्थान किया ? । ५१

अध्याय—२

सूत का नारायण-कथा की प्रशंसा करना

[व.] इस प्रकार महनीय गुणों से सम्पन्न शौनकादि श्रेष्ठ मुनियों के पूछने पर रोमहर्षण का पुत्र उग्रश्रवस नाम से विख्यात सकल पुराणों के व्याख्यान की रीति के ज्ञाता सूत के। ५२ [म.] समदर्शी होकर

क्षमुलुं दन्मयतं ब्रतिध्वनुलु सक्कं जेसॅ मुन्नट्टिभू
तमयुन् म्रॊक्कॆद बादरायणि दपोधन्याग्रणिन् धीमणिन् ॥ 53 ॥

सी. कार्यवर्गंबुनु गारणसंघंबु नधिकरिंचि चरिंचु नात्मतत्त्व
मध्यात्म मनबडुनट्टि यध्यात्ममु दॆलिवि सेयगजालुदीपमगुचु
सकलवेदमुलकु सारांशमै येकमै यसाधारणमगु प्रभाव
राजकंबैन पुराणमर्मंबुनु गाढसंसारांधकारपटलि

ते. दाटगोरॆडि वारिकि दयदलिर्प, ने तपोनिधि विवरिंचॆ नेर्पडंग
नट्टि शुकनामधेय महात्मगेयु, विमल विज्ञान रमणीयु वेड्क गॊलुतु ॥54॥

कं. नारायणुनकु नरुनकु, भारतिकिनि म्रॊक्कि व्यासुपदमुलकु नम
स्कारमु सेसि वचिंतु नु, दारग्रंथंबु दळितननुबंधंबुन् ॥ 55 ॥

व. अनि यिट्लु देवतागुरु नमस्कारंबुचेसि यिट्लनियॆ। मुनींद्रुलारा! नन्नु मीरलु निखिललोकमंगळंबैन प्रयोजनं बडिगितिरि। एमिटं गृष्णसंप्रश्नंबु सेयंबडु नॆव्विधंबुन नात्म प्रसन्नंबगु निर्विघ्नयु निर्हेतुकयुनैन हरिभक्ति यॆ रूपंबुनंगलुगु नदि पुरुषुलकु बरमधर्मंबगु। वासुदेवुनि यंदु ब्रयोगिपंबडिन भक्तियोगंबु वैराग्यविज्ञानंबुलं बुट्टिंचु। नारायणकथलवलन नॆय्येधर्मंबुलु

कर्माचरण में युक्त होकर, संन्यासी के रूप में एकान्त में जाने पर महाभीति से 'ओह ! कुमार !' कहते हुए ऋषि व्यास पुकार उठे ! तब वृक्षादि (चराचर) प्रतिध्वनित हुए, ऐसा जो भूतमय, बादरायण, तपोधनियों में अग्रणी तथा धीमान् को प्रणाम करता हूँ। ५३ [सी.] कार्य-वर्ग (-समूह) तथा कारण-समूह को प्रमाण मानकर विचरण करनेवाला आत्मतत्त्व, अध्यात्म कहलाता है। अध्यात्म ज्ञान को विदित करनेवाला दीपक बनकर, सकल वेदों के सारभूत, एक मात्र, असाधारण प्रभाव मण्डित पुराण (भागवत पुराण) के मर्म को, संसार के गहन अन्धकार-पटल [ते.] को पार करना चाहनेवालों पर दया कर, जिस तपोनिधान ने समझाते हुए विवरण किया, ऐसे शुक नामधारी की, जो महात्माओं द्वारा प्रशंसित है, विमल विज्ञान से रमणीय उत्साह के साथ आराधना करता हूँ। ५४ [कं.] नारायण को, नर को तथा भारती को प्रणाम कर, व्यास के चरणों में नमस्कार कर, शरीर के बन्धनों को विदलित करनेवाले उदार (ज्ञान से प्रकाशित) ग्रन्थ का कथन करूँगा। ५५ [व.] इस प्रकार देवता तथा गुरुजनों को नमस्कार कर कहा— 'हे मुनीन्द्रो ! मुझसे आप लोगों ने निखिल लोकों के मंगलकारी (शुभ-प्रद) प्रयोजन के बारे में पूछा। जिससे कृष्ण संप्रश्न किया जाता है, जिस विधि से आत्मा को आनन्द की प्राप्ति होती है, निर्विघ्न तथा निर्हेतुक हरिभक्ति जिस रीति से प्राप्त होती है, वही तत्त्व पुरुषों (जीवों) के लिए परमधर्म है। वासुदेव (कृष्ण) के प्रति की जानेवाली भक्ति के कारण वैराग्य तथा विज्ञान उत्पन्न होंगे। नारायण

दगुलववि निरर्थकंबुलु। अपवर्गपर्यंतंबैन धर्मंबुन कर्थंबु फलंबु गादु। धर्मंबुनंदु व्यभिचारियैन यर्थंबुनकु गामंबु फलंबु गादु। विषयभोगंबैन कामंबुन किंद्रियप्रीति फलंबु गादु। ऎंतदडवु जीविंचु नंतिय कामंबुनकु फलंबु। तत्त्वजिज्ञासगल जीवुनकु गर्ममुलचेत नॆय्यदि सुप्रसिद्धंबदियु नर्थंबु गादु। तत्त्वजिज्ञास यनुनदि धर्मजिज्ञास। कॊंदरु धर्मंबे तत्त्वमनि पलुकुदुरु। तत्त्वविदुलु ज्ञानमनुपेर नद्वयमैनयदि तत्त्वमनि यॆरुंगुदुरु। आ तत्त्वंबौपनिषदुलचेतं ब्रह्ममनियु हैरण्यगर्भुलचेतं बरमात्म यनियु सात्वतुलचेत भगवंतुंडनियुनु बलुकंबडु। वेदांतश्रवणंबुन ग्रहिंपंबडि ज्ञानवैराग्यमुलतोडं गूडिन भक्तिचेत दत्परुलैन पॆद्दलु क्षेत्रज्ञुंडैन यात्मयंदु बरमात्मं बॊडगंदुरु। धर्मंबुनकु भक्ति फलंबु। पुरुषुलु वर्णाश्रम धर्मभेदंबुलं जेयु धर्मंबुनकु माधवुंडु संतोषिंचुटये सिद्धि। एकचित्तंबुन नित्यंबुनु गोविंदु नाकर्णिपनु वर्णिपनु दगु। चक्रायुधध्यानमनु खड्गंबुन विवेकवंतु लहंकारनिबद्धंबैन कर्मंबु द्रुंचिवैतुरु। (भगवंतुनियंदु श्रद्धयु, नपवर्गदंबगु तत्कथा श्रवणादुलंदत्यंतासक्तियु, पुण्यतीर्थावगाहन महत्सेवादुलचे सिद्धिंचु) कर्मनिर्मूलन हेतुवलैन कमललोचनु कथलं दॆव्वंडु रतिसेयु, विननिच्चगिंचु, वानि कितरंबु लॆव्वियु रुचि पुट्टिपनेरवु। पुण्य श्रवणकीर्तनुंडैन कृष्णुंडु दन कथलु विनुवारि हृदयंबुलंदु निलिचि शुभंबु लाच-

---

की कथाओं से जिन धर्मों का सम्बन्ध नहीं है, वे सब निरर्थक हैं। अपवर्ग तक [ले जानेवाले] धर्म का उद्देश्य फल की प्राप्ति नहीं है। धर्म में अव्यभिचारी (अनन्य भाव) अर्थ का फल काम (इच्छाओं की पूर्ति) नहीं है। विषय-भोग में आसक्त काम का फल इन्द्रिय-प्रीति (इन्द्रिय-तृप्ति) नहीं है। जब तक जीवित होगा तब तक काम का अनुभव करता रहेगा, यही उसका फल है। तत्त्व-जिज्ञासा रखनेवाले जीव के लिए कर्मों से जो प्रसिद्ध होता है, वह भी अर्थ (काम्य) नहीं है। तत्त्व-जिज्ञासा धर्म-जिज्ञासा (ही) है। कुछ लोग धर्म को ही तत्त्व मानते हैं। तत्त्वविद् तो ज्ञान के नाम पर अद्वय, [illegible], अद्वैत) को तत्त्व के रूप में जानते हैं। वह तत्त्व उपनिषदों को मान[illegible]ों से ब्रह्म तथा हैरण्यगर्भी (ब्रह्मवादियों) से परमात्मा, सात्वत लोगों (भागवत-मार्गानुयायी) से भगवान् कहा जाता है। वेदान्त का श्रवण करने से (उस तत्त्व का) ग्रहण कर, ज्ञान एवं वैराग्य संयुत भक्ति में तत्पर श्रेष्ठ जन क्षेत्रज्ञ आत्मा में परमात्मा के दर्शन करते हैं। धर्म का फल भक्ति है। वर्णाश्रम धर्म के भेदों के पुरुष के द्वारा किये जानेवाले धर्म (धर्माचरण) से माधव का सन्तुष्ट होना ही सिद्धि (फल) है। एकाग्रचित्त से, नित्य गोविन्द के [गुणों का] श्रवण, वर्णन करना समुचित है। चक्रायुध (विष्णु) का ध्यान रूपी खड्ग से विवेकी जन अहंकार में निबद्ध कर्मों को काट फेंकते हैं। भगवान् में श्रद्धा,

रिंचु अशुभंबुलु निरसिंचु। अशुभंबुलु नष्टंबुलयिन भागवतशास्त्र सेवा-विशेषंबुन निश्चलभक्ति युदयिंचु। भक्ति गलुग रजस्तमोगुण प्रभूतंबुलैन कामलोभादुलकु वशंबुगाक चित्तंबु सत्त्वगुणंबुन प्रसन्नंबगु। प्रसन्न मनस्कुंडैन मुक्त संगुंडगु। मुक्तसंगुंडैन नीश्वर तत्त्वज्ञानंबु दीपिंचु। ईश्वरुंडु गानंबडिन जिज्जडग्रथन रूपंबैन यहंकारंबु भिन्नंबगु। अहंकारंबु भिन्नंबैन नसंभावनादि रूपंबुलगु संशयंबुलु विच्छिन्नंबुलगु। संशय विच्छेदंबैन ननारब्धफलंबुलैन कर्मंबुलु नशिंचुं गावुन ॥ 56 ॥

कं. गुरुमतुलु दपसु लंतः, करणंबुलु शुद्धिसेयु घनतरभक्तिन्
हरियंदु समर्पितुरु, परमानंदमुन भिन्नभवबंधनुलै ॥ 57 ॥

त. परमपूरुषुडोक्क डाद्युडु पालनोद्भव नाशमुल्
सौरिदि जेयु मुकुंद पद्मजशूलिसंज्ञल ब्राकृत
स्फुरित सत्त्वरजस्तमंबुल बोंदु नंदु शुभस्थितुल्
हरि चराचरकोटि किच्चु ननंत सत्त्व निरूढुडै ॥ 58 ॥

मोक्षप्रदायक उसके कथा-श्रवण आदि में अत्यन्त आसक्ति तथा पुण्यतीर्थों में अवगाहन (स्नान करना), महत् (बड़े लोगों की) सेवाओं से सिद्ध होने-वाले कर्म (बन्धन) को निर्मूल करने में हेतुभूत (कारणभूत) कमललोचन (विष्णु) की कथाओं में जो रति (प्रेम) रखता है, श्रवण की जो कामना करता है, उसके लिए इतर (अन्य) वस्तु रुचि उत्पन्न नहीं कर सकतीं (रुचिकर नहीं होतीं)। पुण्य-श्रवण कीर्तनों से संस्तुत होनेवाले कृष्ण अपनी कथाओं को सुननेवालों के हृदय में स्थित होकर शुभ प्रदान करते हैं। अशुभ निरस्त होते हैं। अशुभों के नष्ट होने पर भागवतशास्त्र की सेवा-विशेष के फलस्वरूप निश्चल भक्ति का उदय होता है। भक्ति के उत्पन्न होने पर रजस्तमो गुणों से उत्पन्न होनेवाले काम तथा लोभ आदि के वश में न होकर, सत्त्वगुण के प्रतिष्ठित होने से चित्त प्रसन्न होता है। प्रसन्न चित्त वाला होने से, मुक्तसंग (सांसारिक विषयों से मुक्त) होता है। मुक्तसंग होने पर ईश्वर (परमात्मा) का तत्त्वज्ञान प्रदीप्त हो जाता है। ईश्वर के दर्शन होने पर चित् और जड़ता की ग्रन्थि के रूप में स्थित अहंकार नष्ट हो जाता है। अहंकार के छिन्न हो जाने पर असम्भावनादि के रूप संशयों का विच्छेद हो जाता है, संशय के मिट जाने से अनारब्ध फलरूप कर्मों का विनाश हो जाता है। अतः, । ५६ [कं.] गुरुमति (श्रेष्ठ बुद्धिमान), तापसी लोग अन्तरंग को शुद्ध करने के लिए भवबन्धनों को छिन्न करनेवाली घनतर (महती) भक्ति को परम आनन्द के साथ हरि में समर्पित करते हैं। ५७ [त.] परमपुरुष एक है, जो आदि है। पालन, उद्भव, नाश क्रमशः करते हुए मुकुन्द (विष्णु), पद्मज (ब्रह्मा), शूली (शिव) के नामों से प्रकृति के स्फुरण (प्रेरणा) से सत्त्व (रक्षण), रजस् (सृजन), तमस्

व. मट्रियु नॊक विशेषंबु गलदु। काष्ठंबुकंटॆ धूमंबु, धूमंबुकंटॆ त्रयीमयंबैन वह्नि यॆट्लु विशेषंबगु नट्लु तमोगुणंबुकंटॆ रजोगुणंबु, रजोगुणबुकंटॆ ब्रह्म-प्रकाशकंबगु सत्त्वगुणंबु विशिष्टंबगु। तॊल्लि मुनुलु सत्त्वमयुंडनि भगवंतु हरि नधोक्षजुं गॊलिचिरि। कॊंदरु संसारमंदलि मेलुकोरकु नन्युल सेविंचुचुंदुरु। मोक्षार्थुलैन वारलु घोररूपुलैन भूतपतुल विडिचि, देव-तांतर निंदसेयक, शांतुलै नारायणकथलयंदे प्रवर्तिंचुदुरु। कॊंदरु राजसतामसुलै सिरियु नैश्वर्यंबुनु प्रजलनुं गोरि पितृभूतप्रजेशादुल नारा-धिंचुदुरु। मोक्षमिच्चुटं जेसि नारायणुंडु सेव्युंडु। वेदयोग योग क्रिया-ज्ञान तपोगति धर्मंबुलु वासुदेव परंबुलु। निर्गुणुंडैन परमेश्वरुंडु गलुगुचु लेकुंडुचु गुणंबुलतोडं गूडिन तन मायचेत नितयु सृजियिंचि, गुणवंतुनि चंदंबुन निजमायाविलसितंबुलैन गुणंबुललो प्रवेशिंचि, विज्ञान विजृं-भितुंडै वॆलुंगु। अग्नि यॊक्करुंडय्यु वॆक्कु म्राकुलंदु देजरिल्लुचु वॆक्कंडै तोचु तॆरंगुन विश्वात्मकुंडैन पुरुषुंडॊक्कडु, तनवलनं गलिगिन निखिलं भूतंबुलंदु नंतर्यामि रूपंबुन दीपिंचु। मनोभूत सूक्ष्मेंद्रियंबुलतोडंगूडि

(लय) को प्राप्त कराता है। अनन्त सत्त्वस्थिति में प्रतिष्ठित होकर, हरि चराचर कोटि को शुभ स्थिति प्रदान करता है। ५८ [व.] और एक विशेषता है। काष्ठ (लकड़ी) की अपेक्षा धुआँ, धुएँ की अपेक्षा त्रयीमय वह्नि (अग्नि) जिस प्रकार विशिष्ट होती है, उसी प्रकार तमोगुण से बढ़कर रजोगुण, रजोगुण से बढ़कर ब्रह्मप्रकाशक होने के कारण सत्त्वगुण विशिष्ट होता है। पूर्व में मुनिगण ने सत्त्वमयी मानकर, भगवान हरि, अधोक्षज (विष्णु) की उपासना की। कुछ लोग संसार में शुभ की इच्छा कर अन्यों की सेवा करते रहते है। मोक्षार्थी लोग घोर (भयंकर) रूप वाले भूतपतियों को त्यागकर अन्य देवताओं की निन्दा न करते हुए, शान्त-चित्त हो, नारायण की कथाओं में प्रवृत्त रहते है। कुछ लोग राजसी, तामसी होकर सम्पदा, ऐश्वर्य तया प्रजाओं (सन्तान) की कामना कर पितृ-भूत-प्रजेश आदि की आराधना करते हैं। मोक्षप्रदाता होने के कारण नारायण सेव्य है। वेद, यज्ञ, योग, क्रिया, ज्ञान, तप (आदि) रूप में धर्म वासुदेव के अधीन हैं। निर्गुण हो परमेश्वर (उत्पन्न) होते हुए और न होते हुए, गुणों से युक्त अपनी माया से इस समस्त की सृष्टि कर, गुणवान के सदृश अपनी माया के (लीला) विलास रूपी गुणों में प्रविष्ट हो, विज्ञान में विजृंभित होकर, ज्योतित होता है। अग्नि एक होकर भी, अनेक वृक्षों में तेज रूप में विलसित हो, अनेक हो प्रतिभासित होने की रीति से विश्वात्मा एक (परम) पुरुष, अपने कारण से उत्पन्न हुए सकल प्राणियों में अन्तर्यामी हो दीप्त होता है। मन से उद्भूत सूक्ष्म इन्द्रियों के साथ गुणमय भावों से, अपने से निर्मित भूतों (प्राणियों) में न फँसकर (आसक्त न

गुणमयंबुलैन भावंबुलं दनचेत निर्मितंबुलैन भूतंबुलंदु दगुलु वडक तद्गुणंबु लनुभवंबु सेयुचु लोककर्त्तयैन यतंडु देवतिर्यङ्मनुष्यादि जातुलंदु लील नवतरिंचि लोकंबुल रक्षिचुननि मरियु सूतु डिट्लनियें ॥ 59 ॥

अध्यायमु—३

सी. महदहंकार तन्मात्र संयुक्तुडै चारुषोडशकळा सहितुडगुचु
बंचमहाभूत भासितुंडै शुद्धसत्त्वुडै सर्वातिशायि यगुचु
जरणोरुभुजमुख श्रवणाक्षिनासा शिरमुलु नानासहस्रमुलु वेलुग
नंबरकेयूर हारकुंडल किरीटादुलु पेक्कुवेलमरुचुंड

ते. बुरुषरूपंबु धरियिंचि परुडनंतु
डखिल भुवनैक कर्तयै यलघुगतिनि
मानितापार जलराशि मध्यमुननु
योगनिद्राविलासियै योप्पुचुंडु ॥ 60 ॥

भगवंतुनि येकविंशत्यवतारमुलु

व. अदि सकलावतारंबुलकु मोदलिगनियैन श्रीमन्नारायण देवुनि विराजमानंबैन दिव्यरूपंबु। दानि बरमयोगींद्रुलु दर्शिचुदुरु। अप्परमेश्वरु

होकर) उन गुणों को भोगते रहनेवाला, वह लोककर्ता देवता, तिर्यक, मनुष्य आदि जातियों (योनियों) में लीलारूप से अवतरित होकर, लोकों की रक्षा करता है। आगे सूत ने ऐसा कहा। ५९

अध्याय—३

[सी.] महत्, अहंकार (तथा) तन्मात्राओं से युक्त होकर सोलह सुन्दर कलाओं-सहित हो, पंचमहाभूतों से भासित हो, शुद्धसत्त्व तथा सर्वातिशायी (सबसे बढ़कर) हो, अनेकों सहस्र चरण, ऊरु, भुज, मुख, श्रवण, आँख, नाक, शिरों से प्रदीप्त होने पर, अनेक हजारों की संख्या में अम्बर, केयूर, हार, कुण्डल, किरीट आदि के शोभित होने पर, [ते.] पुरुष रूप को धारण कर, पर (सबसे उत्तम) अनंत, अखिल भुवनों का एक कर्ता हो, अलघु गति से, मान्य अपार जलराशि (सागर) के मध्य में योगनिद्रा का विलासी शोभायमान हो रहता है। ६०

भगवान के इक्कीस अवतार

[व.] वह सकल अवतारों की पहली निधि के रूप में विराजमान श्रीमन्नारायण का दिव्य रूप है। उसके दर्शन परमयोगीन्द्रजन करते हैं।

नाभीकमलंबुवलन सृष्टिकर्तललोन श्रेष्ठुंडैन ब्रह्म युदयिंचॆ। अतनि यवयव स्थानंबुलयंदु लोकविस्तारंबुलु गल्पिपं बडियॆ। मॊदल नद्देवुंडु कौमाराख्यसर्गंबु नाश्रयिंचि ब्राह्मणुंडे दुश्चरंबैन ब्रह्मचर्यंबु चरियिंचॆ। रॆंडवमारु जगज्जननंबुकॊरकु रसातलगतयैन भूमिनॆत्तुचु यज्ञेशुंडे वराह-देहंबु दाल्चॆ। मूडवतोयंबुन नारदुंडनु देवऋषियै कर्मनिर्मोचकंबैन वैष्णव तंत्रंबु सॆप्पॆ। नाल्गवपरिधर्मभार्या सर्गमुनंदु नरनारायणाभिधानुंडै दुष्करंबैन तपंबुसेसॆ। पंचमावतारंबुनं गपिलुंडनु सिद्धेशुंडे यासुरियनु ब्राह्मणुनकु तत्त्वसंघ निर्णयंबुगल सांख्यंबु नुपदेशिंचॆ। आरव शरीरंबुन ननसूयादेवियंदु नत्रिमहामुनिकि गुमारुंडै यलर्कुनिकि ब्रह्लादमुख्युलकु नात्मविद्य दॆलिपॆ। एडवविग्रहंबुन नाकूति यंदु रुचिकि जन्मिंचि यज्ञुंडन ब्रकाशमानुंडै यामादि देवतल तोडं गूडि स्वायंभुवमन्वंतरंबु रक्षिंचॆ। अष्टम मूर्तिनि मेरुदेवियंदु नाभिकि जन्मिंचि युरुक्रमुंडनं ब्रसिद्धुंडै विद्वज्जनुलकु बरमहंस मार्गंबु प्रकटिंचॆ। ऋषुलचेतं गोरंबडि तॊम्मिदव जन्मंबुन बृथुचक्रवर्तियै भूमिनिधेनुवुंजेसि समस्त वस्तुवुलं बिदिकॆ। चाक्षुषमन्वंतर संप्लवंबुन दशमंबैन मीनावतारंबु नॊंदि महीरूपमगु नावनॆक्किंचि

उस परमेश्वर के नाभिकमल से सृष्टिकर्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उसके अवयवों के (विविध) स्थानों में लोक-विस्तार (अनेक लोक) कल्पित हुए। पहले उस देव ने कौमार नामक सृष्टि का आश्रय लेकर ब्राह्मण हो, दुश्चर (कठिन) ब्रह्मचर्य का पालन किया। दूसरी बार जगत की सृष्टि के लिए रसातलगत भूमि को उठाते हुए, यज्ञेश हो वराह-देह को धारण किया। तीसरी बार नारद नामक देवऋषि बन, कर्मविमोचक वैष्णव-तंत्र का उपदेश दिया। चौथी बार धर्मभार्या नामक सर्ग में नर-नारायण नाम से जन्म लेकर दुष्कर तपस्या की। पाँचवें अवतार में कपिल नामक सिद्धेश हो, आसुरी नामक ब्राह्मण को तत्त्व-संघ (-समूह) के निर्णय-स्वरूप सांख्य [वेदान्त] का उपदेश दिया। छठे शरीर में अनसूयादेवी में अत्रि महामुनि के पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर, अलर्क तथा प्रह्लाद प्रमुखों को आत्मविद्या सिखायी। सातवें विग्रह (रूप) में आकूति में रुचि के द्वारा जन्म लेकर, यज्ञ नाम से प्रकाशित हो, यामादि देवताओं के साथ ही स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की। आठवी मूर्ति (अवतार) में मेरुदेवी में नाभि को [पुत्र-रूप में] पैदा हो, उरुक्रम नाम से प्रसिद्ध होकर, विद्वज्जनों को परमहंस (समस्त का त्याग कर, ज्ञानमार्ग में विचरण करनेवालों) का मार्ग विदित किया। ऋषिवरों की कामना से नवें जन्म में पृथु चक्रवर्ती के रूप में पैदा होकर, भूमि को धेनु बनाकर, समस्त वस्तुओं का दोहन किया। चाक्षुषमन्वन्तर के जलप्रलय के सन्दर्भ में दसवाँ, मीनावतार धरकर, मही रूपी नाव पर चढ़ाकर वैवस्वत मनु का उद्धार

वैवस्वतमनुवु नुद्धरिंचें। समुद्रमथन कालंबुन वदुनोकंडवमारु कमठाकृतिनि मंदराचलंबु दन पृष्ठकर्परंबुन नेर्परियं निलिपें। धन्वंतरि यनु पंड्रेंडुव तनुवुन सुरासुर मथ्यमान क्षीरपाथोधि मध्यभागंबुन नमृतकलशहस्तुंडै वेंडलें। पदमूडवदियैन मोहिनी वेषंबुन नसुरुल मोहितुलं जेसि सुरल नमृताहारुलं गाविंचें। पदुनालगवदियैन नरसिंहरूपंबुनं गनककशिपुनि संहरिंचें। पदियेनवदियैन कपटवामनावतारंबुन बलिनि बदत्रयंबु याचिंचि मूडुलोकमुल नाक्रमिंचें। पदियारवदियैन भार्गवरामाकृतिनि गुपितभावंबु दाल्चि ब्राह्मणद्रोहुलैन राजुल निरुवदियोकमारु वधियिंचि भूमिनि क्षत्रियशून्यंबु गाविंचें। पदियेडवदियैन व्यासगात्रंबुन नल्पमतुलैन पुरुषुलं गरुणिंचि वेदवृक्षंबुनकु शाखलेर्परिंचें। पदुनेनिमिदववैन रामाभिधानंबुन दैवकार्यार्थंबु राजत्वंबु नोंवि, समुद्रनिग्रहादि पराक्रमंबु लाचरिंचें। एकोनविंशति विंशतितमंबुलैन रामकृष्णावतारंबुलचे यदुवंशंबुन संभविंचि विश्वंभराभरंबु निवारिंचे। कलियुगाद्यवसरंबुन रक्षस सम्मोहनंबु कीकट देशंबुन जिनसुतुंडै येकविंशतितमंबैन बुद्धनामधेयंबुनं दैजरिल्लु युगसंधियंबु वसुंधराधीशुलु चोरप्रायुलै संचरिंप विष्णुयशुंडनु विप्रुनिकि कलिकयनु पेर नुद्भविंपगलंडनि यिट्लनियें ॥ 61 ॥

किया। समुद्र-मन्थन-काल में ग्यारहवीं वार कमठाकृति (कूर्माकार) में मन्दराचल को अपने पीठ पर चतुरता से धारण किया। धन्वन्तरि नामक वारहवें शरीर में, सुरासुर द्वारा मथ्यमान क्षीरसागर के मध्यभाग में अमृतकलशधारी हो प्रकट हुए। तेरहवें अवतार में मोहिनी का वेष धारण कर, असुरों को मोहित कर, सुरों को अमृताहारी वनाया। चौदहवें अवतार (में) नरसिंह रूप में कनककशिपु (हिरण्यकशिपु) का संहार किया। पन्द्रहवें में कपट-वामनावतार में राजा वलि से पदत्रय (तीन चरण) [भर भूमि] की याचना कर, तीनों लोकों में समा गया। सोलहवें अवतार में भार्गवराम की आकृति में क्रोधी रूप धारण कर ब्राह्मणद्रोही राजाओं का वध, इक्कीस वार कर, भूमि को क्षत्रियशून्य वनाया। सत्रहवें अवतार में व्यास शरीर को धारण कर, अल्प मति वाले पुरुषों पर कृपा कर वेदवृक्ष को अनेक शाखाओं में विभाजित किया। अठारहवें में राम के नाम से दैवकार्य (देवताओं के काम) के निमित्त राजत्व को प्राप्त कर, समुद्र का निग्रह करना आदि पराक्रमपूर्ण कार्य किये। उन्नीसवें तथा वीसवे अवतार में यदुवंश में राम (वलराम) और कृष्ण नाम से अवतरित होकर, विश्वम्भरा (पृथ्वी) के भार का निवारण किया। कलियुग के प्रारम्भकाल में राक्षसों को सम्मोहित करने के लिए कीकट देश में जिनसुत हो, इक्कीसवें अवतार में जैन तथा वौद्ध के नाम से तेजोमूर्ति हुआ। युगसन्धि में वसुन्धराधीशों (राजा लोग) के चोरों के सदृश

म. सरसि वासिन वेयुकालुवल योजन विष्णुनंदेन श्री
   कर नाना प्रकटावतारमु लसंख्यातंबु लुर्वीशुलुन्
   सुरलुन् ब्राह्मण संयमींद्रुलु महर्षुल् विष्णुनंशांशमुल्
   हरि कृष्णुंडु जलानुजन्मु डॆंडले दाविष्णुडो नेर्पडन् ॥ 62 ॥

कं. भगवंतुडगु विष्णुवु जगमुल कॆव्वेळ राक्षसव्यथ गलुगुन्
   दग नव्वेळल दयतो, युगयुगमुन वुट्टि काचु नुद्यल्लीलन् ॥ 63 ॥

आ. अतिरहस्यमैन हरिजन्मकथनंबु मनुजुडॆव्वडेनि मापुरेपु
   जाल भक्तितोड जदिविन संसार, दुःखराशि वासि तॊलगिपोवु ॥ 64 ॥

व. विनुंडु। अरूपुंडै चिदात्मकुंड परगु जीवुनिकि वरमेश्वरु माया गुणंबु-लैन महदादिरूपंबुलचेत नात्मस्थानंबुगा स्थूलशरीरंबु विरचितंबैन, गगनं बुनंदु ववनाश्रित मेघसमूहंबुनु, गालियंदु वार्थिवधूळिधूसरत्वंबुनु नेरीति नट्लु द्रष्टयगु नात्मयंदु दृश्यत्वमु बुद्धिमंतुलु गानि वारिचेत नारोपिपवडु। ई स्थूल रूपमुकंटॆ नदृष्टगुणंबै यश्रुतंबैन वस्तुवगुट व्यक्तंबुगाक सूक्ष्मंबै करचरणादुलु लेक जीवुनिकि नॊंडोकरूपमु विरचितमै युंडु। सूक्ष्मुंडैन जीवुनिवलन नुत्क्रांति गमनागमनंबुल बुनर्जन्मंबु दोचु। एपुडी स्थूलसूक्ष्म रूपंबुलु रॆंडु विद्यंजेसि यात्मकु गल्पिपवडॆ ननियॆडि हेतुवुवलन स्वरूप-

---

आचरण करने पर विष्णुयश नामक विप्र के यहाँ कल्कि नाम से उत्पन्न होगा। ऐसा कहा, आगे [सूत ने ऐसा कहा]। ६१ [म.] सरोवर से निकले हुए हज़ारों नहरों के समान विष्णु मे से श्रीकर वनकर, नानावतार असंख्य रूप में प्रकट होते हैं। उर्वीश (राजा लोग), सुर, ब्राह्मण, संयमीन्द्र, महर्षि, विष्णु के अंश-जात हैं। हरि कृष्ण हैं, वलराम के अनुजन्म हैं। इसमें कोई सन्देह नही है। ६२ [कं.] जगतों को जब-जब राक्षसों से व्यथा (पीडा) होती है, तब-तब विलम्ब न कर युग-युग में उत्पन्न हो, भगवान विष्णु [अपनी] उद्यत लीला से रक्षा करता है। ६३ [आ.] अति रहस्यपूर्ण हरिजन्म की कथा को जो कोई मनुष्य रात-दिन अत्यन्त भक्ति के साथ पढ़ेगा, तो संसार की दुःख-राशि का विनाश होगा। ६४ [व.] सुनिए! अरूप और चिदात्मक (चैतन्ययुक्त) हो, विलसित होनेवाले जीव का, परमेश्वर (परमात्मा) की माया के गुण महद् आदि रूपों से आत्मस्थान के रूप मे स्थूल शरीर विरचित हुआ, गगन में पवन के आश्रित हुए मेघसमूह की भाँति, वायु में पार्थिव धूल के समन्वित होने की रीति, दृष्टा बनी आत्मा में दृश्यत्व (गुण) बुद्धि-रहित लोगों से आरोपित होता है। इस स्थूल रूप के अतिरिक्त जीव का अदृश्य गुण वाला, अश्रुत वस्तु होने के कारण अव्यक्त, सूक्ष्म, कर-चरणादि-रहित कोई दूसरा ही रूप विरचित रहता है। सूक्ष्म रूप में स्थित जीव के उत्क्रान्ति (निकल जाना), गमन तथा आगमन की रीति पुनर्जन्म लगता है। जब स्थूल तथा सूक्ष्म रूप

सम्यग् ज्ञानंबुन ब्रतिषेधिंपबडु नपुड जीवुंडु ब्रह्मयगु। सम्यग् ज्ञानंबुन दर्शनंबु विशारदुंडैन यीश्वरुनिदै क्रीडिंचु नविद्य यनंबडुचुन्न माय यॆप्पुडु विद्यारूपंबुनं बरिणतयगु नप्पुडु जीवोपाधियैन स्थूल सूक्ष्मरूपंबु वर्हिंचि, काष्ठंबु लेक तेजरिल्लु वह्निचंदंबुन दान युपरत यगु। अपुडु जीवुंडु ब्रह्मस्वरूपुंडै परमानंदंबुन विराजमानुंडगु। इट्लु तत्त्वज्ञुलु सॆप्पुदु रनि सूतुं डिट्लनियॆ ॥ 65 ॥

च. जननमुलेक कर्ममुलजाडल बोक समस्तचित्त व-
र्तनुडगु चक्रिकिन् गवुलुदारपदंबुल जन्मकर्ममुल्
विनुतुलु सेयुचुंड्डुरु वेद रहस्यमुलंदु नेंदु जू-
चिन मरिलेवु जीवुनिकि जॆप्पिनकंबडि जन्मकर्ममुल् ॥ 66 ॥

म. भुवनश्रेणि नमोघलीलुडगुचुन् बुट्टिंचु रक्षिंचु नं
तविधिजेयु मुनुंगडंडु बहुभूतव्रातमं दात्मतं-
त्र विहारस्थितुडै षडिंद्रय समस्तप्रीतियुन् दव्वुलन्
दिविभंगिन् गॊनु जिक्क डिंद्रियमुलन् द्रिप्पुन् निबंधिचुचुन् ॥ 67 ॥

च. जगदधिनाथुडैन हरि संततलीललु नामरूपमुल्
दगिलि मनोवचोगतुल दार्किकचातुरि यॆंतगलिगनन्

दोनों विद्या के कारण आत्मा के लिए कल्पित (रूपायित) हुए, इस हेतु से स्वरूप के सम्यक् ज्ञान से प्रतिषेधित (अज्ञान के आवरण व माया को हटाकर) होने से जीव ब्रह्म हो जाता है। सम्यक् ज्ञान ही दर्शन है। विशारद (निपुण) ईश्वर की होकर क्रीड़ा करनेवाली, अविद्या कहलाने वाली माया जब विद्या-रूप में परिणत होगी तब जीव की उपाधिस्वरूप स्थूल व सूक्ष्म रूप को जलाकर, लकड़ी के बिना तेजवान होनेवाली अग्नि के समान उस (परमतत्त्व) में उपरत (स्थिर) होगा। तब जीव ब्रह्म-स्वरूप में परमानन्द की स्थिति को प्राप्त होगा। इस प्रकार तत्त्वज्ञ कहते हैं, ऐसा कहकर सूत ने इस प्रकार कहा। ६५ [च.] जन्म-रहित हो, कर्म की स्थिति को प्राप्त न होकर, समस्त के चित्त को प्रवर्तित करनेवाले चक्रि (विष्णु) के जन्म-कर्मों की उदात्त पदावली से कविगण विनुति (प्रशंसा) करते रहते हैं। वेदों के रहस्यों में कहीं भी ढूँढ़ लें तो जीव के लिए कहे गये जन्म और कर्म उसके (विष्णु) लिए नहीं हैं। ६६ [म.] भुवन श्रेणी (चौदह भुवनों) की अमोघ (व्यर्थ न होनेवाली) लीला से सृष्टि, तथा अन्त करते हुए बहुभूत-व्रात में (असंख्य प्राणिकोटि में) आत्म-तन्त्र-विहार से स्थित होकर भी उससे अलिप्त रहता है, और षट् इन्द्रियों में प्रीति रखते हुए भी आकाश की भाँति दूर से ही ग्रहण करते हुए इन्द्रियों में फँसता नहीं, (तथा वह) इन्द्रियों को संचालित करता और निबद्ध करता है। ६७ [च.] जगत के अधिनायक हरि की निरन्तर होनेवाली

मिगिलि कुतर्कवादि दग मेरलु चेसि यॆरुंगनेर्चुने
यगणित नर्तनक्रममु नज्ञुडॆट्लॆगि नुतिपनोपुने ॥ 68 ॥

उ. इंचुक मायलेक मदि नॆप्पुडु वायनि भक्तितोड व-
तिंचु नॆव्वडेनि हरि दिव्यपदांबुज गंधराशि से-
विंचु नतं डॆरुंगु नरविंदभवादुलकैन दुर्लभो
दंचितमैन या हरि युदार महाद्भुत कर्ममार्गमुल् ॥ 69 ॥

म. हरिपादद्वय भक्ति मीवलन निट्लारुढमै युंडुने
तिरुगंबारदु चित्तवृत्ति हरिपै दीपिंचि मी लोपलन्
धरणीदेवतलार ! मीरलु महाधन्युल् समस्तज्ञुलुन्
हरिचिंतन् मिमु जेंद वॆन्नडुनु जन्मांतर्व्यथायोगमुल् ॥ 70 ॥

श्रीमद्भागवत रचनादि वृत्तांतमुलु

सी. पुण्यकीर्तनुडैन भुवनेशुचरितंबु ब्रह्मतुल्यंबैन भागवतमु
सकलपुराणराजमु दॊल्लि लोकभद्रमुग बुण्यमुग मोदमुग ब्रीति
भगवंतुडगु व्यास भट्टारकु डॊनर्चि शुकु डनियॆडु तन सुतुनि चेत

लीलाओं को, नाम व रूप से जानने के लिए मन तथा वचन की रीतियाँ समर्थ नहीं हैं। तर्क की चतुरता जितनी भी क्यों न हो, कोई कुतर्कवादी (उसके) सीमा बाँधकर जान सकेगा क्या ? (नही) और उसके अगणित रूप के वर्तन (आचरण) क्रम को जानकर अज्ञानी स्तुति कैसे कर सकता है ? (नही।) । ६८ [उ.] किंचित् भी माया (छल, कपट) से रहित हो, मन मे निरन्तर भक्ति के साथ आचरण करनेवाला ही, हरि के दिव्य चरण-कमलों की गन्धराशि की सेवा करनेवाला (भक्त) ही, अरविन्दभव (ब्रह्मा) आदि के लिए भी दुर्लभ (अज्ञेय) और उन्नत उस हरि के उदार महान्, अद्भुत कर्म-मार्गो को जान सकता है। ६९ [म.] हरि के चरणयुगल की भक्ति आपके मन में इस प्रकार आरूढ़ हो रहती है, हरि पर चित्त की वृत्ति दीप्त होकर कभी पीछे नही हटती। हे धरणी के देवताओ ! आप लोग महाधन्य हैं। (आप) समस्त के ज्ञाता हैं। हरि का चिन्तन करने के कारण आपको कभी जन्म-जन्मान्तरों की व्यथायोग (व्यथाएँ) प्राप्त नहीं हो सकतीं। ७०

श्रीमद्भागवत की रचनादि के वृत्तान्त

[सी.] (सदा) पुण्यसंकीर्तनों से संस्तुत होनेवाले भुवनेश (विष्णु) का चरित्र लिये हुए ब्रह्म-तुल्य भागवत सकल पुराणों में श्रेष्ठ है, जिसे पूर्व में लोककल्याणकारी, पुण्यरीति, मोद [तथा] प्रेम से भगवान व्यास भट्टारक ने रचना की और शुक नामक अपने पुत्र के द्वारा पढ़वाया।

जर्दिविचॅं नितयु सकल वेदेतिहासमुललोपलनॅल्ल सारमैन
यी पुराणमॅल्ल नॅलमि ना शुकयोगि, गंगनडुम वच्चिय घनविरक्ति
यॉदवि मुनुलतोड नुपविष्टुडगु परी, क्षिन्नरेंद्रुडडुग जॅप्पॅ विनुडु ॥ 71 ॥

व. कृष्णुंडु धर्मज्ञानादुलतोडं दनलोकंबुनकुं जनिनपिम्मटं गलिकाल दोषांधकारंबुन नष्टदर्शनुलैन जनुलकु निप्पुडी पुराणंबु गमलबंधुनि भंगि युन्नदि। ना डंबु भूरितेजुंडै कीर्तिचुचुन्न विप्रऋषिवलन ने बठिंचिन क्रमंबुन ना मदिकि गोचरिंचिनंतयु विनुपिचॅंदननिन सूतुनकु मुनिवरुंडैन शौनकुं डिट्लनिये ॥ 72 ॥

अध्यायमु—४

शा. सूता! ये युगवेळ नेमिटिकि नॅच्चोटन् मुनिश्रेष्ठु ने
श्रोतल् गोरिरि येमि हेतुवुनकै शोधिंचि लोकैकवि-
ख्यातिन् व्यासुडु मुन्नु भागवतमुं गल्पिचॅं दत्पुत्रु डे
प्रीतिन् राजुन की पुराणकथ जॅप्पॅन् जॅप्पवे यंतयुन् ॥ 73 ॥

व. बुधेंद्रा! व्यासपुत्रुंडैन शुकुंडनु महायोगि समदर्शनुं डेकांत मतिमाया-

---

सकल वेद तथा इतिहास के सारस्वरूप यह समस्त पुराण को उस शुक योगी ने अत्यन्त विरक्त भाव को लेकर, गंगा के मध्य मुनियों के साथ उपविष्ट राजा परीक्षित के पूछने पर, (यह पुराण) कह सुनाया। सुनो। ७१ [व.] धर्म, ज्ञान आदि के साथ कृष्ण के अपने लोक को प्रस्थान करने के पश्चात् कलिकाल के दोष रूपी अन्धकार (अज्ञान) के कारण दर्शन भाग्य से वंचित जनों को अब यह पुराण कमलबन्धु (सूर्य) के सदृश है। उस दिन वहाँ अत्यधिक तेज सम्पन्न हो स्तुति करनेवाले विप्र-ऋषि (ब्रह्मर्षि, शुकयोगी) के द्वारा मैंने जिस क्रम (रीति) से पढ़ा था, मेरे मन को जितना ज्ञान हुआ, वह सब सुनाऊँगा। ऐसा सूत के कहने पर मुनिवर शौनक ने ऐसा कहा। ७२

अध्याय—४

[शा.] हे सूत! किस युग की वेला में, क्यों और कहाँ, मुनिश्रेष्ठ से, किन श्रोताओं के इच्छा प्रकट करने पर, किस हेतु से शोध करके, व्यास ने सब लोकों में विख्याति से भागवत की कल्पना (रचना) की, और उसके पुत्र ने किस प्रेम से राजा को इस पुराण की कथा को विदित किया? उन समस्त [वृत्तान्तों] को विदित करो। ७३ [व.] हे बुधेन्द्र! व्यास का पुत्र शुक नामक महायोगी समदर्शी है। एकान्त मति वाला है, माया-शयन (माया के निहित स्थान) का ज्ञाता है, गूढ़ पुरुष (छिपकर रहने

शयनंबुवलनं दॆलिसिनवाडु गूढुंडु मूढुनिक्रिय नुंडु निरस्तखेदुं डदियुंगाक ॥ 74 ॥

त. शुकुडु गोचियुलेक पै जनजूचि तोयमुलंदु ल-
ज्जकु जॊलिपक चीरलॊल्लक चल्लुलाडॆडि देवक
न्यकलु "हा शुक" यंचु वॆन्क जनंग व्यासुनि जूचि यं
शुकमुलन् धरियिंचि सिग्गुन स्रुविक रंदरु धीनिधी ! ॥ 75 ॥

व. मरियु नग्नुंडु दरुणुंडुनै चनु तन कॊडुकुं गनि वस्त्रपरिधानं बॊनरिंपक, वस्त्र धारियु वृद्धुंडुनैन तनुं जूचि चेलंबुलु धरियिंचु देवरमणुलं गनि व्यासुंडु गारणं बडिगिन वारलु नी कॊडुकिदि सति वीडु पुरुषुंडनि भेद-दृष्टि लेकयुंडु। मरियु नतंडु निर्विकल्पुंडुगान नीकु नतनिकि महांतरंबु गलदनिरि। अंत शुकुंडु कुरुजांगलदेशंबुलु सॊच्चि हस्तिनापुरंबुन वौरजनंबुलचे नॆट्लु ज्ञातुडय्यॆ ? मरियु नुन्मत्तुनि क्रिय मूढुनि तॆरंगुन जडुनिभंगि नुंडु नम्महायोगिकि राजर्षियैन परीक्षन्महाराजुतोड संवादं बॆट्लु सिद्धिंचॆ ? बहुकाल कथनीयंबैन श्रीभागवत निगमव्याख्यान मे रीति साग ? अय्योगिमुख्युंडु गृहस्थुल गृहंबुन गोवुनु बिदिक्किन यंततडवु गानि

वाला) है, मूढ़ की भाँति रहते हुए खेद-रहित (दुःख-रहित) हो विचरण करनेवाला है, इसके अतिरिक्त। ७४ [त.] हे धीनिधी ! शुकयोगी के कौपीन भी धारण न कर, जाते देखकर भी लज्जा को छोड़, विचलित न हो, वस्त्रों को त्यागकर जल-क्रीड़ाएँ करनेवाली देव-कन्यकाएँ 'हा शुक !' कहते हुए पीछे से आनेवाले व्यास को देख पतले वस्त्र पहनकर भी लज्जा से सिकुड़ गईं। ७५ [व.] और नग्न रूप से जानेवाले अपने तरुण पुत्र को देख वस्त्र धारण नहीं किया, वस्त्रधारी तथा वृद्ध मुझे देख वस्त्र पहना। [ऐसा पहननेवाली] देव-रमणियों को देख व्यास के कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि तुम्हारा पुत्र यह स्त्री है, यह पुरुष है, ऐसी भेद-दृष्टि से रहित है, और वह निर्विकल्प है, इसलिए तुममें और उसमें महान् अन्तर है। तब [उस स्थिति में] शुकयोगी कुरु-भूमियों में प्रवेश कर हस्तिनापुर के पुरजनों के द्वारा पहचाना कैसे गया? फिर उन्मत्त की रीति, मूढ़ की नाईं, भाँति, स्थित जड़ की उस महायोगी का और राजर्षि परीक्षित महाराजा के साथ संवाद (सम्भाषण) कैसे सम्भव हुआ ? बहुत समय पर्यन्त (तक) कथनीय (कहने योग्य) श्रीभागवत रूपी वेद का व्याख्यान कैसा सम्पन्न हुआ ? कहते हैं, योगियों में प्रमुख (शुक) गृहस्थों के घर पर गोदोहन समय तक भी (अल्प काल तक भी) रुकता नहीं। वह गोदोहन मात्र समय तक भी जिन स्थानों में विचरण करता है, वे तीर्थ [स्थान] बन जाते हैं। (तब) इतने बड़े समय तक एक प्रदेश में कैसा टिक (कर) रहा ? भागवत जनों में श्रेष्ठ

निलुवडंड्रु । अतंडु गोदोहन मात्रकालंबु संचरिंचिन स्थलंबुलु तीर्थंबुलगु। पेंद्दकाल मेकप्रदेशंबुन नेंट्लुंडे ? भागवतोत्तमुंडैन जनपालु जन्मकर्मंबु ले प्रकारंबुलु ? विवरिंपुमु ॥ 76 ॥

सी. पांडव वंशंबु बलमु मानंबुनु वर्धिल्ल गडिमि नॅव्वाडु मनियॆ
वरिपंथिराजुलु भर्मादिधनमुल नर्चितु रॆव्वनि यंघ्रियुगमु
गुंभजकर्णादि कुरुभट व्यूहंबु सॊच्चि चॆंडाडॆ ने शूरु तंड्रि
गांगेय सैनिकाक्रांत गोवर्गंबु विडिपिंचि तॆच्चॆ ने वीरु तात

आ. यट्टि गाढकीर्ति यगु परीक्षिन्महा, राजु विडुवदगनि राज्यलक्ष्मि
वरिहरिंचि गंग ब्रायोपविष्टुडै यसुवुलुंड नेल यडगियुंडॆ ? ॥ 77 ॥

उ. उत्तमकीर्तुलैन मनुजोत्तमु लात्महितंबु लॆन्नडुन
जित्तमुलंदु गोररु हसिंचियु, लोकुलकॆल्ल नर्थसं
पत्तियु भूतियुन् सुखमु भद्रमु गोरुदु रन्यरक्षणा
त्युत्तममैनमेनु विभुडूरक येल विरक्ति वासॆनो ॥ 78 ॥

कं. सारमुल नॆल्ल नॆरुगुदु, पारगुडवु भाषलंदु बहुविध कथनो
दारुडवु माकु सर्वमु वारमु मुट्टंग दॆलिय बलुकु महात्मा ! ॥ 79 ॥

जनपाल (राजा) के जन्म और कर्म किस प्रकार के हैं ? विवरण दीजिए (समझाकर कहिए)। ७६ [सी.] पाण्डव वंश के बल और मान को प्रवर्धित करते हुए कौन पराक्रम के साथ जीवित रहा, परिपंथि (शत्रु) राजा भर्म (सुवर्ण) आदि धन-राशियों से किसके चरणयुगल की अर्चना करते हैं, किस शूर के पिता ने कुम्भज (द्रोण) कर्ण आदि कौरव भट-समूह में प्रविष्ट होकर, सबको तितर-बितर कर दिया, गांगेय (भीष्म) के सैनिकों के द्वारा आक्रमित गोवर्ग को किसके दादा छुड़ाकर लाये, [आ.] ऐसे अत्यधिक यश वाले महाराजा परीक्षित ने राजा के लिए अपरित्याज्य राज्य-लक्ष्मी को किस विधि से छोड़कर गंगाजल मात्र लेते हुए प्रायोपवेश (अनशन व्रत) कर, प्राणों के रहते दबकर क्यों रहा ? ७७ [उ.] उत्तम कीर्ति वाले मनुजोत्तम आत्महित (स्वार्थ) को कभी मन से मजाक के लिए भी नहीं चाहते, [अपितु] सब लोगों को अर्थ-सम्पत्ति, ऐश्वर्य, सुख, कल्याण की कामना करते हैं। अन्यों के रक्षण में [समर्थ] उत्तम शरीर को राजा ने यों ही विरक्त हो क्यों छोड़ा ? ७८ [कं.] हे महात्मा ! [तुम] सकल (शास्त्र) सार को जानते हो, भाषाओं में पारंगत हो, अनेकानेक प्रकार से कथा-कथन में उदार हो, हमें सब कुछ पूरा-पूरा विदित करो। ७९

व्यासुडु व्याकुलचित्तुंडै चिंतिंचुट

व. अनियडिगिन शौनकादि मुनिश्रेष्णुलकु सूतुं डिट्लनियॆं । तृतीयंबैन द्वापर युगंबु दिरुगु समयंबुन नुपरिचरवसुवु वीर्यंबुन जन्मिंचि वासवि नादगु सत्यवतियंदु बराशरुनिकि हरिकळंजेसि विज्ञानियैन वेदव्यासुंडु जन्मिंचि यॊक्कनाडु वदरिकाश्रमंबुन सरस्वतीनदीजलंबुल स्नानादिकर्मंबुलं दीर्चि शुचियै परुलु लेनिचोट नॊंटि गूर्चुंडि, सूर्योदयमु वेळ अतीतानागत वर्तमानज्ञुंडै या ऋषि व्यक्तंबुगानि वेगंबुगल कालंबुनं जेसि युगधर्मंबुलकु भुवि सॉकर्यंबु वॊडु । युगयुगंबुल भौतिकशरीरंबुलकु शक्ति सन्नमगु । पुरुषुलु निस्सत्त्वुलु धैर्यशून्युलु मंदप्रज्ञु लल्पायुवुलु दुर्बलुलु नय्येंदरनि तन दिव्यदृष्टिजूचि सर्ववर्णाश्रमंबुलकु हितंबु सेयंदलंचि, नलुगुरु होतलचेत ननुष्ठिपंदगि प्रजलकु शुद्धिकरंबुलैन वैदिककर्मंबुलगु यज्ञंबु लॆडतॆगकुंडुकॊरकु नेकंबैन वेदंबु ऋग्यजुस्सामाथर्वणंबुलनु नालुगु नामंबुल विभागिंचि, यितिहास पुराणंबु लन्नियु वंचमवेदंबनि पल्कॆ नंदु ॥ 80 ॥

सी. पैलुंडु ऋग्वेद पठनंबु दॊरकॊनॆ सामंबु जैमिनि चदुवुचुंडॆ
यजुवु वैशंपायनाख्युंडु गैकॊनॆ दुदि नथर्वमु सुमंतुडु पठिंचॆ

व्याकुल चित्त हो व्यास का चिन्तित होना

[व.] ऐसा पूछने पर शौनक आदि श्रेष्ठ मुनियों से सूत ने इस प्रकार कहा। तृतीय [युग] द्वापर के अन्तकाल में उपरिचर वसु के वीर्य से जन्म लेकर, वासवी कहलानेवाली सत्यवती में पराशर को, हरिकला के कारण ज्ञानी वेदव्यास ने जन्म लिया। एक दिन वदरिकाश्रम में सरस्वती नदी के जल में स्नानादि कर्मों से निवृत्त हो, शुचि हो, किसी के न रहते एकान्त में बैठकर, सूर्योदय वेला में [सोचा कि] अतीत, अनागत (भविष्य), वर्तमान को जानकर, व्यक्त न होनेवाले वेगशील काल के कारण युग धर्मों को भुवि में सांकर्य उपस्थित होगा। युग-युग में (क्रमशः) भौतिक शरीरों की शक्ति कम होगी। पुरुष सत्त्वहीन, धैर्यशून्य, मन्दप्रज्ञ (मन्द बुद्धि वाले), अल्पायु, दुर्बल होंगे, ऐसा अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर (जानकर), सकल वर्णाश्रम के हित करने की सोचकर, चार होताओं से अनुष्ठित करने योग्य प्रजा को शुद्ध करने में समर्थ वैदिक कर्म, यज्ञों के निरन्तर सम्पन्न होते रहने के निमित्त, एक ही वेद को ऋक्, यजु, साम, अथर्वण नामक चार भागों में विभाजन कर इतिहास, पुराण सबको पंचमवेद नाम से अभिहित किया, उसमें। ८० [सी.] पैल ने ऋग्वेद के पठन को प्रारम्भ किया, जैमिनि ने सामवेद का पठन शुरू किया। वैशम्पायन नामक ऋषि ने यजुर्वेद ले लिया। अन्तिम [वेद] अथर्वण का सुमन्त ने पठन किया। अखिल पुराणेतिहास को मेरे पिता रोमहर्षण ने निष्ठा से धारण किया। तब

नखिलपुराणेतिहासमुल् मातंड्रि रोमहर्षणुडु निरूढिदाल्चें
दमतमवेद मा तपसुलु भागिंचि शिष्यसंघमुलकु जेप्पिरंत

गी. शिष्युलेल्लरु नात्मीय शिष्यजनुल
कंबुबहुमार्गमुलु चेप्पियनुमतिप
बेक्कुशाखलु गलिगि यी पृथिविलोन
निगम मोप्पारें भूसुर निवहमंदु ॥ 81 ॥

व. इट्लु मेधाहीनुलैन पुरुषुलचेत नट्टि वेदंबुलु धरियिंपबडुचुन्नवि मरियु दीनवत्सलुंडैन व्यासुंडु स्त्रीशूद्रुलकुं द्रैवर्णिकाधमुलकु वेदंबुलु विननर्हंबुलु गावुन, मूढुलकेल्ल मेलगुननि भारताख्यानंबु चेसियु नम्मुनि भूतहितमंदु दन हृदयमु संतसिपकुन्न सरस्वती तटंबुन नोंटिनुंडि हेतुवु वितर्किंपुचु बनलोनिट्लनियें ॥ 82 ॥

सी. व्रतधारिनै वेद वह्नि गुरुश्रेणि मन्नितु विहितकर्ममुल गोरत
पडकुंड नडुपुदु भारतमिषमुन बलिकिति वेदार्थ भावमेल्ल
मुनुकोनि स्त्रीशूद्र मुखरधर्ममुलंदु देलिपिति मे जेल्ल दीनजेसि
यात्म संतसमंद दात्मलो नीशुंडु संतसिपकयुन्न जाडदोचें

आ. हरिकि योगिवरुल कभिलषितंबैन, भागवत विधंबु बलुकनेति
मोसमय्यें देलिवि मोनयदु मरचिति, ननुचु वगचुचुन्न यवसरमुन ॥83॥

अपने-अपने वेदों को विभाजित कर उन तापसियों ने शिष्यसमूह को पढ़ाया। (गी.) तव सब आत्मीय शिष्यों ने अपने-अपने शिष्यवर्ग को उसमें वहुमार्ग वताते हुए, अनुमति देने पर, अनेक शाखाओं से युक्त हो पृथ्वी में, भूसुर निवह (समूह) में निगम (वेद) सुशोभित हुआ। ८१ [व.] इस प्रकार मेधा-हीन पुरुषों से ऐसे वेद धारण किये जा रहे हैं। फिर दीन-वत्सल व्यास ने स्त्री-शूद्रों को, त्रैवर्णिक अधमों को वेद-श्रवण के लिए अनर्ह निश्चित किया। अतः मूढों को शुभ होगा, ऐसा भारत का आख्यान करने पर (विरचित करने पर) भी भूतहित में अपने हृदय को शान्त व प्रसन्न न पाकर सरस्वती तट पर एकान्त में [इसके] हेतु पर तर्क-वितर्क करते हुए अपने में इस प्रकार कहा। ८२ [सी.] व्रतधारी हो, वेद की अग्नि को, गुरुश्रेणी को मान्य समझता हूँ; विहित कर्मों का लोप न करते हुए चलाता हूँ, भारत के मिस समस्त वेदार्थभाव को कह सुनाया, प्रथमतः [उसमें] स्त्री, शूद्र के लिए मुख्य धर्मों को प्रकट किया, इसके फलस्वरूप आत्मा आनन्दित नहीं होती, आत्मा में ईश्वर के प्रसन्न न होने का आभास हुआ। [आ.] हरि, योगीवरों को अभिलषित भागवत के विधान को नही कहा, धोखा खा गया, बुद्धि सार्थक न हुई! ऐसा कहते हुए [व्यास के] दुःखी होते समय। ८३

व्यासुनिकडकु नारदुडु वच्चुट

सी. तनचेति वल्लकीतंत्रीचयंबुन राततनारायण शब्दमोप्प
नानन संभूत हरिगीतरवसुधाधारल योगींद्रतति मोक्क
गपिल जटाभार कांतिपुंजंबुन दिशलु प्रभातदीधिति वहिंप
दनुलग्नतुलसिकादाम गंधंबुलु गगनांतरालंबुगप्पिकोनग

आ. वच्चे मिटनुंडि वासवीनंदनु, कडकु मादलाट गणकलोड
भद्र विमल कीर्ति पारगु डाल्ड, नयविशारदुंडु नारदुंडु ॥ 84 ॥

कं. कनिये नारदु डंतन् विनयैकविलासु निगम विभजन विद्या
जनि तोल्लासुन् भवदुःखनिरासुन् गुरुमनो विकासुन् व्यासुन् ॥ 85 ॥

व. इट्लु निजाश्रमंबुनकु वच्चिन नारदु नेरिगि लेचि व्यासुंडु विधियुक्तंबुगा बूजिंचिन नतंडु लेनगवु नेगडेडिमोगंबु तोड विपंचिकातंत्रि मोन मीटुचु निट्लनिये ॥ 86 ॥

व्यास के यहाँ नारद का आगमन

[सी.] अपने हाथ की वीणा की तन्त्रियों के समूह से ननन (निरन्तर) नारायण शब्द के शोभित होने पर, आनन-संभूत (मुख से उत्पन्न) हरिगीत-रव [रूपी] सुधा की धाराओं के कारण योगीन्द्रगण के परवश होने पर, कपिल वर्ण के जटा-भार के कान्तिपुञ्जों के कारण प्रभात के दीधिति (प्रकाश) को दिशाओं के धारण करने पर, तनुलग्न तुलसी की मालाओं की सुगन्ध के गगन के अन्तराल में फैलने पर, [आ.] भद्र विमल कीर्ति-पारग (-पार, अन्त देखनेवाला), आल्ढ नयविशारद (नीतिमान्), नारद आकाश से, वासवी[1]-नन्दन (व्यास) के पास करुणा से दान करने के लिए पधारे। ८४
[कं.] तब नारद ने विनय ही जिसका विलास (शोभा) है, निगम (वेद) के विभाजन की विद्या से उत्पन्न आनन्द से उल्लसित, भवदुःख को दूर करनेवाले गुरु (अधिक) मनो-विकास वाले व्यास को देखा। ८५
[व.] इस प्रकार अपने आश्रम में पधारे हुए नारद को जान (देख) कर, व्यास ने उठकर विधिवत् पूजा की, [करने पर] उसने (नारद ने) सुस्मित वदन वाले हो, विपंचिका (वीणा) की तंत्री को उँगलियों से बजाते हुए ऐसा कहा। ८६

---

१ सत्यवती उपरिचर-वसु की पुत्री है, अतः वासवी है।

अध्यायमु—५

उ. धातवु भारतश्रुतिविधातवु वेदपदार्थजात वि-
ज्ञातवु गाममुख्यरिपुषट्क विजेतवु ब्रह्मतत्त्व नि-
र्णेतवु योगिनेतवु विनेतवु नीवु चलिंचि चॅल्लरे
कातरु कैवडिन् वगव गारणमेमि पराशरात्मजा ! ॥ 87 ॥

व. अनिन वाराशयु डिट्लनियॅ ॥ 88 ॥

कं. पुट्टिति वजुतनुवुन जे पट्टितिवि पुराणपुरुषु भजनमु पद्मुल्
मॅट्टितिवि दिक्कुलं दुदि मुट्टितिवि महाप्रबोधमुन मुनिनाथा ! ॥ 89 ॥

व. अदियुनुं गाक नीवु सूर्युनिभंगि मूडुलोकमुलं जरितुवु। वायुवु पगिदि नखिल जनुललोन मॅलंगुदुवु। सर्वज्ञुंड वगुटं जेसि ॥ 90 ॥

कं. नी कॅरुगरानि धर्ममु, लोकमुलनु लेदु बहुविलोकिवि नीवुन्
ना कॊरत यॅट्टि दंतयु, नाकुन् विवरिंपुमय्य नारद करुणन् ॥ 91 ॥

व. अनिन नारदुं डिट्लनियॅ ॥ 92 ॥

उ. अंचितमैन धर्मचय मंतयु जॅप्पिति वंदुलोन निं
चिचुकगानि विष्णुकथलेपंड जॅप्पवु धर्ममुल् प्रपं

अध्याय—५

[उ.] हे पराशरात्मज (व्यास) ! तुम धाता (वेद-निर्माता) हो, भारत रूपी श्रुति के विधाता हो, वेदों के पदार्थ-जाल-ज्ञाता हो, कामादि प्रमुख छः शत्रुवर्ग के विजेता हो, ब्रह्मतत्त्व के निर्णेता हो, योगियों के नेता हो; विनेता (विशिष्ट नीतिप्रदायक) हो, [ऐसे] तुम्हारा विचलित होना उचित है ? कातर के समान दुःखी होने का कारण क्या है ? ८७ [व.] कहने पर पाराशर्य ने इस प्रकार कहा। ८८ [कं.] हे मुनिनाथ ! [तुमने] अज (ब्रह्मा) के तन से जन्म लिया, पुराण-पुरुष (विष्णु) के भवन को ग्रहण किया, दिशाओं की सीमाओं को जान गये, महाप्रबोध (उत्तम ज्ञान) के पार (अन्त) को देख लिया। ८९ [व.] इसके अतिरिक्त तुम सर्वज्ञ होने के कारण सूर्य की भाँति तीन लोकों में विचरण करते हो, वायु की भाँति अखिल जनों में विचरण करते हो। ९० [कं.] नारद ! तुम्हारे लिए अविदित कोई धर्म, लोकों में नही हैं, वहुविलोकी (वहुत कुछ देख चुके, अनुभवी) हो, इसलिए मेरा अभाव किस प्रकार का है, करुणा करके मुझे वह सब समझाओ। ९१ [व.] [ऐसा] कहने पर नारद ने इस प्रकार कहा। ९२ [उ.] हे आर्य-पूजित ! उचित रीति से तुमने उसमें (भारत में) समस्त धर्मचय कह दिया था। [किन्तु] उसमें किंचित्

चिंचिन मॆच्चुने गुणविशेषमु लॆन्निनगाक नीकु नी
कॊंचॆमु वच्चुटॆल्ल हरि गोरि नुतिपमि नार्यपूजिता ! ॥ 93 ॥

म. हरिनामस्तुति सेयु काव्यमु सुवर्णांभोज हंसावळी
सुरुचिभ्राजितमैन मानस सरस्स्फूर्तिन् वॆलुंगॊंदु श्री
हरिनामस्तुति लेनि काव्यमु विचित्रार्थान्वितंबय्यु श्री
करमैयुंड दयोग्य दुर्मदनद त्काकोल गर्ताकृतिन् ॥ 94 ॥

म. अपशब्दंबुल गूडियुन् हरिचरित्रालापमुल् सर्वपा-
पपरित्यागमु सेयुगावुन हरिन् भाविंचुचुं बाडुचुन्
जपमुल् सेयुचु वीनुलन् विनुचु नश्रांतंबु गीतिपुचुन्
दपसुल् साधुलु धन्युलौदुरुगदा सत्त्वज्ञ ! चिंतिपुमा ॥ 95 ॥

व. मुनींद्रा ! निर्गतकर्मंबै निरुपाधिकंबैन ज्ञानंबु गलिगिननु हरिभक्तिलेकुन्न शोभितंबुगादु। फलंबुगोरक कर्ममीश्वरुनकु समर्पणंबु सेयकुन्न नदि प्रशस्तंबै युंडदु। भक्तिहीनंबुलैन ज्ञान वाचा कर्मकौशलंबुलु निरर्थकंबुलु। कावुन महानुभावुंडवु, यथार्थदर्शनुंडवु, सकलदिगंतधवळकीर्तिवि, सत्यरतुंडवु, धृतव्रतुंडवु नगु नीवु निखिलबंधमोचनंबु कॊरकु वासुदेवुनि

भी विष्णुकथाओं को सविवरण कहा नहीं। धर्मों की गणना करने की अपेक्षा गुण-विशेषों की स्तुति करने पर ही प्रशंसा प्राप्त होगी। हरि की चाह कर स्तुति न करने पर ही तुम्हें अभाव-सा लग रहा है। ९३ [म.] हरिनाम की स्तुति करनेवाला काव्य सुवर्ण-अंभोज (कमल), तथा हंसावली की सुरुचि से भ्राजित (प्रकाशमान) मानसरोवर की भाँति दीप्तिमान् होता है। श्रीहरिनाम की स्तुति-रहित काव्य विचित्र अर्थ से अन्वित होते हुए भी, श्रीकर होकर नहीं रहता [इसके अतिरिक्त] वह अयोग्य, दुर्मलिनयुक्त [illegible]कोल-निर्मित-गर्त (-गड्ढे) के समान होता है। ९४ [म.] हे तत्त्वज्ञ ! अपशब्दों से युक्त होकर भी, हरिचरित्र के आलाप (वर्णन, वचन) सर्व पापों को परित्याग कराते हैं, अस्तु, हरि की भावना करते हुए, गाते हुए, जय करते हुए, कानों से सुनते हुए, अविराम स्तुति करते हुए, तापसी [और] साधुजन धन्य हो जाते हैं न। विचार कर देखो न। ९५ [व.] हे मुनीन्द्र ! कर्म से परे, निरुपाधिक (देहरहित) ज्ञान का सम्पादन करने पर भी हरिभक्ति-रहित होने पर, [वह ज्ञान] शोभाकर नहीं होता; फल की इच्छा न कर, कर्म को ईश्वर को समर्पित न करें, तो वह प्रशस्त नहीं होता। भक्ति-रहित होनेवाले ज्ञान, वचन और कर्म के कौशल निरर्थक (व्यर्थ) हैं। इसलिए तुम महानुभाव हो, यथार्थ (सत्य) के दर्शन करनेवाले हो, सकल दिगन्त में [व्याप्त] धवल कीर्ति वाले हो, सत्यरत हो, धृतव्रती हो, ऐसे तुम निखिल बन्धनों से मुक्ति के

लीलाविशेषंबुलु भक्तितोड वर्णिपुमु। हरिवर्णनंबु सेयक प्रकारांतरंबुन नर्यांतरंबुलु बिवक्षिंचि तद्विवक्षाकृतरूप नामंबुलं जेसि पृथग्दर्शनुंडैन वानि मति पॅनुगालि त्रिप्पुनंबडि तप्पंजनु नावचंदंबुन नॅलवु चेरनेरदु। काम्यकर्मंबुलंदु रागंबुगल प्राकृत जनुलकु नियमिंचिन धर्मंबुलु सॅप्पि शासकुंडवगु नीवु वगचुट तगदु। अदि यॅटलनिन, वारलदिये धर्मंबनि काम्यकर्मंबुलु सेयुचु दत्त्वज्ञानंबु मरतुरु। अदि गावुन तत्त्वज्ञुंडवै व्यथावियोगंबु सेयुमनि मरियु निट्लुलनियॅ ॥ 96 ॥

च. ऑऱिगॅडुवाडु कर्मचय मॅल्लनु मानि हरिस्वरूपमुन्
नॅऱय नॅऱिगि यव्वलन नेरुपुचूपु गुणानुरक्तुडै
तॅऱकुवलेक क्रुम्मरुचु देह धनाद्यभिलाषयुक्तुडै
यॅऱुगनि वानिकि दॅलिय नीश्वरुलील लॅऱुंग जॅप्पवे ॥ 97 ॥

च. तनकुलधर्ममुन् विडिचि दानववैरि पदारविंदमुल्
पनिवडि सेवसेसि परिपाकमु वॊंदक यॆव्वडेनि ज
च्चिन मरुमेननैन नदि सिद्धिवहिंचु ददीयसेव बा
सिन गुलधर्म गौरवमु सिद्धिवहिंचुनॆ यॆन्निमेनुलन् ॥ 98 ॥

लिए वासुदेव (विष्णु) की लीलाओं का भक्ति के साथ वर्णन करो। हरि का वर्णन न कर, प्रकारान्तर से अर्थान्तरों का विवेचन कर तत्-विवक्षा (कथन) के आकार में रूप व नाम के कारण पृथक् दर्शन करनेवाले की मति (बुद्धि) वात्याचक्र मे फँसकर गलत (दिशा में) चलनेवाले नाव की नाईं गम्य स्थान को प्राप्त नहीं हो सकती। काम्यकर्म में अनुराग रखनेवाले प्राकृत जनों को नियमित धर्म का विवरण कहकर शासक हुए, ऐसा तुम्हारा चिन्तित होना समुचित नहीं है। पूछोगे कि वह कैसा, तो वे उसी को धर्म मानकर, काम्यकर्म करते हुए तत्त्वज्ञान को विस्मृत कर जाते हैं। इसीलिए तत्त्वज्ञ बनकर, तुम व्यथा का वियोग कर (छोड़) दो। और [आगे] ऐसा कहा। ९६ [च.] जाननहार (ज्ञानी) समस्त कर्म-चय को त्यागकर (कर्मसंन्यास कर), हरि के स्वरूप को पूरी तरह से जानकर, उसके फलस्वरूप चातुर्य दिखाता है। गुणों में अनुरक्त होकर, अविराम घूमते हुए (आवागमन चक्र में फँसकर) देह-धनादि की अभिलाषाओं से युक्त होकर रहनेवाले अज्ञानी [जन] को ईश्वर की लीलाएँ विदित करो न। ९७ [च] अपने कुल-धर्म को छोड़कर, दानव-वैरि (विष्णु) के पदारविन्दों (चरण-कमलों) की सप्रयत्न सेवा कर [कर्म के] परिपक्व न होने के कारण, कोई मर जाय, [तव] दूसरे शरीर (जन्म) में उसकी सिद्धि हो जाती है। उसकी (विष्णु की) सेवा से दूर रहकर कितने जन्म क्यों न हो, कुलधर्म के गौरव से सिद्धि (मुक्ति) कैसे प्राप्त होगी?

व. अदि गावुन नॅरुकगलवाडु हरिसेवकु यत्नंबु सेयंदगु। कालक्रमंबुन सुख-दुखंबुलु प्राप्तंबुलैनन‌ु हरिसेव विडुवंदगदु। दानं जेसि ब्रह्मस्थावरपर्यंतंबु दिरुगुचुन्न जनुलकुं नॅय्यदि पॉदरा दट्टिमेलु सिद्धिचु (कॉरकु) हरिसेव सेयवलयु। हरिसेवकुंडगुवाडु जननंबु नॉदियु नन्युनिक्रिय संसारंबुनं जिक्कडु। क्रम्मर हरिचरणस्मरणंबु जेयुचु, भक्तिरस वशीकृतुंडै विडुव-निच्चगिंपडु। मरियुनु, ॥ 99 ॥

सी. विष्णुंडु विश्वंबु विष्णुनिकंटॅनु वेरेमियुनु लेदु विश्वमुनकु
भववृद्धिलयमु ला परमेशुचेनगु नी वॅरुंगुदुगादॅ नी मुखमुन
नॅरिंगिपबडुदि येकदेशमुन नी भुवनभद्रमुनकै पुट्टिनट्टि
हरिकळाजातुंड वनि विचारिंपुमु कावुन हरि पराक्रमुलॅल्ल

आ. विनुतिसेयु मीवु विनिक्रियुजदुवुनु, दान मतुलनयमु दपमु धृतियु
गलिमिकॅल्ल फलमुगादॅ पुण्यश्लोकु, गमलनाभु वॉगड गलिगॅनेनि ॥100॥

नारदुनि पूर्वजन्म वृत्तांतमु

व. महात्मा ! नेनु पूर्वकल्पंबुनं दॉल्लिटि जन्मंबुन वेदवादुल यिंटि दासिकिं

(असम्भव है।)। ९८ [व.] यह ऐसा होने से समझदार को हरि की सेवा के लिए यत्न करना चाहिए। कालक्रम से सुख और दुःख के प्राप्त होने पर भी, हरि की सेवा छोड़नी नही चाहिए। उसके फलस्वरूप ऊर्ध्व में ब्रह्म तक, नीचे स्थावर तक भ्रमण (आवागमन) करनेवाले जनों के लिए, अप्राप्त शुभ की सिद्धि के लिए हरि की सेवा करनी चाहिए। हरि का सेवक जन्म लेकर भी अन्यों के समान संसार के बन्धन में फँसता नही। बार-बार हरि का स्मरण करते हुए, भक्ति-रस के वश में हो, (उसे) छोड़ना नही चाहता। और फिर। ९९ [सी.] विष्णु ही विश्व है। विष्णु के अतिरिक्त और कुछ है नही। विश्व के लिए सृष्टि, वृद्धि तथा लय उस परमेश्वर के द्वारा सम्पन्न होते हैं, [यह सब] तुम जानते ही हो। [क्योंकि] तुम्हारे मुख के द्वारा ही यह विदित कराया गया है। विचार करो कि तुम एक स्थान पर इस भुवन (लोक) के मंगल के लिए हरिकला को लेकर जन्म लिये हो। इसलिए तुम हरि के सब पराक्रमों की स्तुति करो। [आ.] उस पुण्यश्लोक तथा कमलनाभ वाले की स्तुति कर सकोगे तो वही तुम्हारे आकर्णन (सुनकर प्राप्त ज्ञान), पढ़ाई, दान, अतुल नीति, तप, धृति, सम्पदा का फल है न ! — १००

नारद के पूर्वजन्म का वृत्तान्त

[व.] महात्मा ! पूर्वकल्प में, पूर्वजन्म में वेदवादियो के घर की

बुट्टि, पिन्ननाडु वारलचे वंपंबडि यीक वानकालंबुन जातुर्मास्यंबुन नेकस्थलनिवासंबु सेय निश्चयिंचु योगिजनुलकुं बरिचर्य सेयुचु ॥ 101 ॥

कं. ओटमितो नॆल्लप्पुडु पाटवमुन बनुलुसेसि बालुरतो ने
याटलकु बोक नीक जं, जाटंबुनु लेक भक्ति सलुपुदु ननघा ! ॥ 102 ॥

कं. मगळ मनुचुनु वारल, यॆंगिलि भक्षितु वान कॆंडकु नोडन्
मुंगल निलुतुनु नियतिनि, वॆंगलि क्रिय जनुदु ने विवेकमुतोडन् ॥ 103 ॥

व. इट्लेनु वर्षाकाल शरत्कालंबुलु सेविंचितिनि । वारुनु नायंदु गृपसेसि रंत ॥ 104 ॥

शा. वारल् कृष्णचरित्रमुल् चदुवगा वर्णिपगा बाडगा
ना रावंबु सुधारस प्रतिममै यश्रांतमुन् वीनुलं
दोरंबं परिपूर्णमैन मदि संतोषिंचि ने नंतटन्
बारंभिंचिति विष्णु सेव कितरप्रारंभ दूरुंडनै ॥ 105 ॥

व. इट्लु हरिसेवारतिं जेसि प्रपंचातीतुंडनै ब्रह्मरूपकुंडनैन नायंदु स्थूलसूक्ष्मंबैन यी शरीरंबु निजमायाकल्पितंबनि यम्महात्मुलगु योगिजनुल मूलंबुन रजस्तमोगुण परिहारिणियैन भक्ति संभविंचॆ । अंत जातुर्मास्यंबु निंडिन नय्योगिजनुलु यात्रसेयुवारलै यिव्विधंबुन ॥ 106 ॥

दासी से मैं पैदा हुआ । बचपन में उनके द्वारा भेजा जाकर, एक वर्षाकाल में चातुर्मास्य में एक ही स्थान पर रहने का निश्चय करनेवाले योगीजनों की सेवा करता रहा । १०१ [कं.] हे अनघ ! धीरता से, सदा पटुता से काम (सेवा) कर [साथी] बच्चों के साथ खेलने न जाकर, बिना किसी झमेले के, भक्ति करता रहा । १०२ [कं.] उनकी जूठन को शुभ समझकर भक्षण करता । वर्षा (तथा) धूप की परवाह न करता । नियमित रूप से उनके सामने (सेवा-निमित्त) खड़ा रहता और [अन्तरंग में] विवेकी होकर भी मूढ़ की नाईं [उनके समीप] रहता है । १०३ [व.] इस प्रकार वर्षाकाल (तथा) शरत्काल में [मैंने] सेवा की । उन्होंने भी मुझ पर दया की । तब १०४ [शा.] उनके कृष्णचरित के पढ़ते, वर्णन करते, गाते रहने पर, वह स्वर, सुधारस के सम होकर, निरन्तर कानों को परिपूर्णता से भरता रहा । [रहने पर] मन में प्रसन्न होकर मैंने तब अन्य संकल्पों को त्यागकर, विष्णु-सेवा का प्रारम्भ किया । १०५ [व.] इस प्रकार हरि की सेवा में रत हो (सेवासक्त हो), संसार (प्रकृति) से अतीत हो तथा ब्रह्मरूपक अपने स्थूल-सूक्ष्म रूप वाला यह शरीर अपनी माया से कल्पित है, ऐसा [मुझे] ज्ञान हुआ । उन महात्मा योगीजनों के द्वारा [मुझमें] रजस्-तमोगुण की परिहारक भक्ति उत्पन्न हुई । तब चातुर्मास्य के पूरे होने पर वे योगीजन यात्रा करने को उद्यत हुए । इस

म. अपचारंबुलु लेक नित्यपरिचर्या भक्ति युक्तुंडनै
चपलत्वंबुलनु मानि ने गॉलुवगा संप्रीतुलै वारुनि
ष्कपटत्वंबुन दीनवत्सलतो गारुण्य संयुक्तुलै
युपदेशिंचिरि नाकु नीश्वररहस्योदारविज्ञानमुन् ॥ 107 ॥

व. एनुनु वारि युपदेशंबुन वासुदेवुनि मायानुभावंबु दॅलिसिति। ईश्वरुनि यंदु समर्पितंबैन कर्मंबु दापत्रयंबु मान्प नौषधंबगु। ये द्रव्यंबुवलन ने रोगंबु जनियिंचॅ ना द्रव्य मा रोगंबुनु मानुपनेरदु द्रव्यांतरंबुल चेत नैन चिकित्स मानुपनोपु। इव्विधंबुन गर्मंबुलु संसारहेतुकंबुलय्यु नीश्वरार्पितंबुलै तामु तम्मु जॅरुपुकॉन नोपियुंडु। ईश्वरुनियंदु जेयबडु कर्मंबु विज्ञान हेतुकंबै योश्वर संतोषणंबुनु, भक्तियोगंबुनुं बुट्टिंचु। ईश्वर शिक्षं जेसि, कर्मंबुलु सेयुवारलु गृष्णगुणनामवर्णन स्मरणंबुलु सेयुदुरु। प्रणवपूर्वकंबुलुगा वासुदेव प्रद्युम्न संकर्षणानिरुद्धमूर्ति नामंबुलु नालुगु भक्ति बलिकि नमस्कारंबु सेसि, मंत्रमूर्तियु मूर्ति शून्यंडु नैन यज्ञपुरुषुनि बूजिंचु पुरुषुंडु सम्यग्दर्शनुंडगु ॥ 108 ॥

कं. ए निव्विधमुन जेयग, दानवकुलवैरि नाकु दनयंदलि वि-

प्रकार, १०६ [म.] कोई अपचार न कर, नित्य परिचर्या (सेवा) में भक्तियुत हो, चपलता को त्यागकर, मेरे सेवा करने पर वे सन्तुष्ट हुए, उन्होंने निष्कपट तथा दीनवत्सल भाव से, करुणासंयुत हो, मुझे ईश्वर-रहस्य सम्बन्धी उदार-विज्ञान का उपदेश किया। १०७ [व.] मैं भी उनके उपदेश से वासुदेव के मायानुभाव को जान गया। ईश्वर (परमात्मा) में समर्पित कर्म ताप-त्रय को दूर करने का औषध हो सकता है। जिस द्रव्य (पदार्थ) से जो रोग पैदा होता है, वह द्रव्य उस रोग का निवारण नहीं कर सकता। अन्य द्रव्यों से ही चिकित्सा हो सकती है। इस प्रकार संसार के कारण-भूत होकर भी कर्म ईश्वरार्पित होकर, अपना विनाश कर पाते हैं। ईश्वर में समर्पित होकर किये जानेवाले कर्म विज्ञान के हेतुभूत हो, ईश्वर के सन्तोष (तथा) भक्तियोग को उत्पन्न करते है। ईश्वर की शिक्षा से कर्म करने वाले कृष्ण के गुण, नाम का वर्णन तथा स्मरण करते हैं। प्रणवपूर्वक वासुदेव, प्रद्युम्न, संकर्षण, अनिरुद्धमूर्ति के चार नामों को भक्ति के साथ उच्चारण कर, नमस्कार कर, मन्त्रमूर्ति (मन्त्र ही जिसका रूप है), मूर्ति-शून्य (निराकार), यज्ञपुरुष (विष्णू) की पूजा करनेवाला पुरुष सम्यक्दर्शी (समदर्शी) होता है। १०८ [कं.] इस प्रकार मेरे करने पर, दानवकुल-वैरी (विष्णु) ने मुझे अपने में स्थित विज्ञान प्रदान किया। मेरे अनुष्ठान को वह जानता है, (अतः) तुम (व्यास) इसका अनुष्ठान करो। १०९ [कं.] मुनिकुल में तुम बहुश्रुत हो। तुम्हारे

ज्ञानमु निच्चेनु मदनुष्ठानमु नतडॅरुगु नीवु सलुपुमु दीनिन् ॥ 109 ॥

कं. मुनिकुलमुलोन मिक्किलि, विनुकुलु गलवाड वीवु विभु कीर्तुलु नी
वनुदिनमु बॊगड विनियॆडि, जनमुलकुनु दुःखमॆल्ल शांतिबॊंदुन् ॥110॥

अध्यायमु—६

व. इट्लु नारदु जन्मकर्मंबुलु विनि क्रम्मर व्यासुं डिट्लनियॆ ॥ 111 ॥

म. विनु मा भिक्षुलु नीकु निट्लु करुणन् विज्ञानमुं जॆप्पि पो-
यिन बाल्यंबुन वृद्धभावमुन नीकी रीति संचारमुल्
चने नी किप्पुडु पूर्व कल्पमति ये जाडं ब्रदीपिंचॆ द-
त्तनुवुं बासिनचंद मॆट्लु चॆपुमा दासीसुतत्वंबुतोन् ॥ 112 ॥

व. अनि यिट्लु व्यासुं डडिगिन नारदुं डिट्लनियॆ। दासीपुत्रुंडनैन येनु भिक्षुलवलन हरिविज्ञानंबु गलिगि युन्नंत ॥ 113 ॥

सी. मम्मु नेलिनवारि मंदिरंबुन गल पनुलॆल्ल ग्रममुन भक्ति जेसि
तन पराधीनत नलपडु सॊलसिति नलसिति नाकॊटि ननुचु वच्चु
मापुनु रेपुनु मातल्लि मोहंबु सॊंपार मुद्दाडु चुंचु दुव्वु
देहंबु निवुरु मोदिंचु गौगिट जेर्चु नर्मिलितो निट्लु नन्नु मनुप

द्वारा विभु (विष्णु) की कीर्तियाँ नित्य संस्तुत होकर, सुननेवाले जनों के सब दुःख [अवश्य] शान्त हो जाते हैं (मिट जाते हैं)। ११०

अध्याय—६

[व.] इस प्रकार नारद के जन्म तथा कर्म के बारे में सुनकर, फिर व्यास ने कहा। १११ [म.] सुनो! उन भिक्षुओं (साधु-सन्तों) ने करुणा के साथ तुम्हें विज्ञान सिखाकर प्रस्थान किया तो बचपन में वृद्धभाव के कारण तुम्हें इस प्रकार का संचार कैसे प्राप्त हुआ? अब तुम्हें पूर्वकल्प की मति (बुद्धि) [पूर्वजन्म के ज्ञान] की बातें कैसे दीप्त (ज्ञात) हुईं? दासीपुत्र रूपी उस शरीर के छूटने का विधान बताओ। ११२ [व.] इस प्रकार व्यास के पूछने पर नारद ने कहा। दासीपुत्र बने मेरे भिक्षुओं के द्वारा हरि का ज्ञान प्राप्त करके रहते समय। ११३ [सी.] हमारे मालिक के घर के सब काम समुचित रीति से, भक्ति के साथ पूरा करते हुए भी पराधीनता (अस्वतंत्रता) की भावना मन में न लाती (और) थकी-माँदी होकर भी बेटा भूखा होगा, ऐसा समझकर [मेरी माँ दौड़ी] आती है। दिन-रात मेरी माँ अति मोह से चुम्बन लेती, पुचकारती, [वात्सल्यपूरित हो] देह का स्पर्श करती, प्रसन्न होती, प्रेम से अंक में लेती। इस

आ. नेनु विडिचि पोक यिट नुंडितिनय्य, मोहिगाक यॆरुक मोसपोक,
मारु चिंत लेक मौनिनै येनॆंड्ल, वाडनगुचु गॊन्नि वासरमुलु ॥ 114 ॥

व. अंत ॥ 115 ॥

कं. सदनमु वॆलुवडि तॆरुवुन, जॆदरक मातल्लि रात्रि जीकटिवेळन्
मॊदवुं बिदुकग नॊक फणि, पदभागमु गरचॆ ग्रौक्कवडि मुनिनाथा! ॥116॥

कं. नीलायत भोगफणा, व्याळानल विषमहोग्र वह्निज्वाला
मालाविनिपातितयै, व्रालॆन् ननुगन्न तल्लि वसुमति मीदन् ॥ 117 ॥

उ. तल्लि धरित्रिपै नॊरगि तल्लडपाटुनु जॆंदि चित्तमुन्
वल्लटिलंग व्राणमुलु वासिन जूचि कलंग कॆनु ना-
युल्लमु लोन मोहरुचि नॊदक संगमुवासॆ मेलु रा-
जिल्लॆ नटंचु विष्णुपदर्चित यौनर्पग बुद्धि सेयुचुन् ॥ 118 ॥

व. उत्तराभिमुखुंडनै येनु वॆडलि, जनपदंबुलुनु पुरंबुलुनु वट्टणंबुलुनु ग्रामंबुलुनु वल्लॆलुनु मंदलुनु महोद्यानंबुलुनु किरात पुळिंद निवासंबुलुनु वनंबुलुनु चित्रधातु विचित्रितंबुलैन पर्वतंबुलुनु समदकरि करविदळित शाखलुगल शाखलुनु, निवारित पथिकजन श्रमातिरेकंबुलैन तटाकंबुलुनु, बहुविध विहंग निनद मनोहरंबुलै विकचारविंद मकरंद पान परवश परिभ्रमद्-

प्रकार मेरा पोषण करती। [आ.] उसे न छोड़कर मैं घर में रह गया। मोही न होते हुए, धोखा न खाते हुए, अन्य चिन्ता न करते हुए, मौन हो कुछ दिन विताये और पाँच वर्ष का हुआ। ११४ [व.] तब। ११५ [कं.] मोहित मुनिनाथ! घर के वाहर निकलकर, रात में, अँधेरे के समय, मार्ग से न हटकर, मेरी माँ गाय का दूध दुहने गई, तो कुचला जाकर एक फणि (सर्प) ने पैर डँस लिया। ११६ [कं.] नीले, लम्वे, बड़े फन वाले सर्प के आनन के विष रूपी महोग्र अग्नि-ज्वालाओं की मालाओं के कारण मेरी जन्मदात्री माँ वसुमती (धरती) पर गिर गई। ११७ [उ.] माँ के धरित्री पर गिरकर, वेहोश होकर, चित्त मे व्याकुल होकर प्राण छोड़ते देखकर मैं व्याकुल न होकर अपने मन में मोह की रुचि (व्याप्ति) को प्राप्त न होने देकर, संगति (स्नेह) के मिट जाने से शुभ हुआ, ऐसा विचार कर बुद्धि (मन) में विष्णु के चरणों का ध्यान करता रहा। ११८ [व.] उत्तर की ओर मैं चल निकला, जनपद, पुर, पट्टण, गाँव, पल्ली, टोली, महान उद्यान और किरात, पुलिन्द के वासस्थान, और वन, और चित्र धातुओं से विचित्रित पर्वत और समद-करियों के सूँड़ों से विदलित किये गये शाखाओ वाले वृक्ष और यात्रीजनों के श्रम का निवारण करनेवाले तालाव और नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से मनोहर तथा विकसित कमलो के मकरन्द को पीकर परवश (वेसुध) हो, भ्रमण करनेवाले भौरों के कारण सुन्दर वने

भ्रमर सुंदरंबुलैन सरोवरंबुलुनु, दाटि चनुचु क्षुत्पिपासा समेतुंडनै
नदीह्लदंबुन ग्रुंकुलिडि शुचिनै नीरु द्रावि गत श्रमुंडनै ॥ 119 ॥

कं. सालावृक कपि भल्लुक, कोलेभ लुलाय शल्य घूक शरभ शा-
दूल शश गवय खड्ग, व्याळाजगरादि भयद वनमध्यमुनन् ॥ 120 ॥

व. दुस्तरंबैन नल वेणु कीचक गुल्म लता गह्वरंबुल पोंत नोक्क रावि क्रानु
डग्गर गूर्चुंडि ये विन्न चंदंबुन ना हृदयगतुं बरमात्मस्वरूपु हरि
र्जितिंचिति ॥ 121 ॥

शा. आनंदाश्रुलु गन्नुल न्वेडल रोमांचंबुतो दत्पद
ध्यानारूढुड नैन ना तलपुलो न द्देवुडुं दोचॅ ने
नानंदाब्धि गतुंडनै यॅरुंगले नैतिन् ननु न्नीश्वरुन्
नाना शोकहमैन यत्तनुवु गान न्नेरकट्लंतटन् ॥ 122 ॥

व. लेचि निलुचुंडि क्रम्मर नद्देवुनि दिव्याकारंबु जूड निच्छिंचुचु हृदयंबुन
निलुपुकोनि यातुरुं बोलॅ चूचियुं गानक, निर्मनुष्यंबैन वनंबुनं जरियिंचु
चुन्न ननु नुद्देशिंचि वागगोचरुंडैन हरि गंभीर मधुरंबुलैन वचनंबुलु शोकं
बुपशमिंपं जेयु चंदंबुन निट्लनियॅ ॥ 123 ॥

सरोवरों को पार कर जाते हुए, भूखा-प्यासा हो, नदी के ह्रद में स्नान कर, शुचि हो, पानी पीकर थकान को दूर कर लिया। ११९ [कं.] सालावृक (बड़े भेड़िये), कपि, भल्लूक, कोल (जंगली सुअर), इभ (हाथी), लुलाय (जंगली भैंसे), शल्य (साही नामक जन्तु, जिसके शरीर पर लम्बे काँटे होते हैं), घूक (उल्लू), शरभ (एक कल्पित मृग जो आठ पैरों वाला बताया जाता है), शार्दूल (शेर), शश (खरगोश), गवय (नीलगाय), खड्गमृग, व्याल (साँप), अजगर आदि (के संचार से) भयानक वनमध्य में, १२० [व.] दुस्तर (दुर्गम) वन में नालवेणु (काला बाँस), कीचक (वंशवृक्ष), गुल्म-लता-गह्वरों के समीप एक वटवृक्ष के नीचे बैठकर जैसे मैंने सुना था, वैसे ही मेरे हृदयगत परमात्मास्वरूप हरि का ध्यान किया। १२१ [शा.] आनन्द के आँसू टपकाते हुए, रोमांचित हो, उसके पदध्यान में निमग्न मेरे मन में वह देव दिखाई पड़ा, (और) आनन्द-सागर में डूबा मैं उनको और मुझे जान न सका, नाना प्रकार के शोकों को दूर करनेवाले उस शरीर को पा न सका। तब। १२२ [व.] उठ खड़ा हो, फिर से उस देव के दिव्य रूप को देखने की इच्छा (लालसा) हृदय में लिये, आतुर की भाँति, देखकर भी न देख सक, निर्जन वन में संचार करनेवाले मेरे प्रति लक्ष्य कर, वाणी के द्वारा अगोचर उस हरि ने गम्भीर एवं मधुर वचनों के द्वारा शोक को शान्त करने की शैली में इस प्रकार कहा। १२३

उ. एल कुमार ! शोषिलग नी जननंबुन नन्नु गानगा
जालवु नीवु काममुख षटकमु निर्दळितंबुसेसि नि-
र्मूलित कर्मुलैन मुनिमुख्युलु गानि कुयोगि गानगा
जालडु नीवु कोर्कि कोनसागुटकै निजमूर्ति जूपितिन् ।। 124 ।।

कं. नावलनि कोर्कि यूरक, पोवदु विडिपिंचु दोषपुंजमुलनु म-
त्सेवं बुट्टुनु वेळम, भाविंपग नादुभक्ति वालक ! विटे ।। 125 ।।

कं. नायंदु गलुगु नी मदि, वायदु जन्मांतरमुल वालक ! नी वी
कायंबु विडिचि मीवट, मा यनुमति बुट्टगलवु मद्भक्तुडवै ।। 126 ।।

म. विनु मी सृष्टि लयंबु नोंदि युगमुल् वेय्यैन कालंबु या-
मिनियै पोयेडि बोवगा गलुगु जू मीदं बुनः सृष्टि यं-
दु निरूढ स्मृतितोड बुट्टेदवु निर्दोषुंडवै ना कृपन्
घनतं जेंदेदु शुद्धसात्त्विककुललो गण्युंडवै यर्भका ! ।। 127 ।।

व. अनि यिट्लाकाशंबु मूर्तियु, ऋग्वेदादिकंबु निश्वासंबुनुगा नोप्पि सर्व नियामकंबैन महाभूतंबु वलिकि यूरकुन्न, नेनुनु मस्तकंबु वंचि म्रोक्कि, तत्करुणकु संतसिंचि, मदमु दिगनाडि, मत्सरंबु विडिचि, कामंबु जयिंचि,

[उ.] कुमार ! [अपने-आप को] सुखाकर (शोषित कर) मुझे तुम प्राप्त नहीं कर सकोगे। कामादि षट् [रिपुओं] का दमन कर कर्म को निर्मूल करने वाले मुनिमुख्यों को छोड़ कुयोगी मेरे दर्शन नहीं कर सकता। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, इसलिए मैंने [एक बार] निजमूर्ति[1] दिखायी। १२४ [क.] बालक ! सुनो तो, मेरे प्रति [तुम्हारी] कामना व्यर्थ नहीं जाती। पापपुंजों से पिंड छुड़ाएगी। मेरी सेवा से, सोचने पर, अविलंब मेरे प्रति भक्ति उत्पन्न हो जायेगी। १२५ [कं.] बालक ! मुझमें लगा तुम्हारा मन जन्मांतरों में भी मुझसे अलग नहीं होगा। तुम्हारे इस शरीर को छोड़ने के पश्चात् मेरी अनुमति से मेरे भक्त के रूप में जन्म लोगे। १२६ [म.] अर्भक (बालक) ! सुनो, इस सृष्टि के लय को प्राप्त होने के बाद हजार युगों का काल एक रात्रि की भाँति बीत जाएगा। उसके पश्चात् पुनः सृष्टि होगी। उसमें तुम निश्चल स्मृति के साथ निर्दोष हो पैदा हो जाओगे। मेरी कृपा पाकर शुद्ध सात्विक लोगों में गणमान्य हो महत्त्व को प्राप्त करोगे। १२७ [व.] इस प्रकार आकाश ही जिसकी मूर्ति (आकार) है, ऋग्वेदादि जिसके निःश्वास-रूप में विलसित हैं, उस सर्वनियामक महाभूत के ऐसा कहकर चुप होने पर, मैंने भी सिर झुकाकर प्रणाम कर, उसकी कृपा के लिए आनन्दित हो, मद को त्यागकर, मत्सर छोड़कर, काम

१ निज (अपनी, नि+ज=अजन्म) रूप।

क्रोधंबु वर्जिंचि, लोभमोहंबुलु वेंडल नडिचि, सिग्गु विडिचि, यनंतनामंबुलु पठियिपुचु वरमभद्रंबुलैन तच्चरित्रंबुल जिंतिपुचु, निरंतर संतुष्टुंडनै कृष्णुनि बुद्धि निलिपि निर्मलांतःकरणंबु तोड विषय विरक्तुंडनै कालमुन कॅदुरु चूचुचु भूमि दिरुगुचु नुंड नंत गॉंतकालंबुनकु मॅरुमु मॅरिसिन तॅरंगुन मृत्युवु दोचिनं. वंचभूतमयंबै गर्मस्वरूपंबैन पूर्वदेहंबु विडिचि, हरिकृपा वशंबुन शुद्ध सत्त्वमयंबैन भागवत देहंबु सॉच्चितिनि। अंतं द्रैलोक्यंबु संहरिंचि प्रळयकाल पयोराशि मध्यंबुन शयनिचु नारायण मूर्ति यंदु निदुरवोव निच्चगिंचु ब्रह्म निश्वासंबु वेंट नतनि लोपलं ब्रवेशिंचितिनि, अंत सहस्रयुग परिमितंबैन कालंबु चनिन लेचि लोकंबुलु सृजियिंप नुद्योगिंचु ब्रह्म प्राणंबुलवलन मरीचि मुख्युलगु मुनुलु, नेनुनु जनियिंचितिमि। अंदु नखंडित ब्रह्मचर्युंडनै येनु मूडुलोकंबुल बहिरंतरंबुलंदु महाविष्णुनि यनुग्रहंबुन नड्डंबुलेक यीश्वरदत्तयै ब्रह्माभिव्यंजकंबुलैन सप्तस्वरंबुलु दनयंतन म्रोयुचुन्न यी वीणालापरति जेसि नारायण कथागानंबु सेयुचु जरियिपु चुंडुदु ॥ 128 ॥

आ. तीर्थपादुडैन देवुंडु विष्णुंडु, दनचरित्र मेनु दविलि पाड,
जीरबड्डवानि चॅलुवुन नेतॅंचि, यनुडु ना मनमुन गानवच्चु ॥ 129 ॥

को जीतकर, क्रोध का वर्जन कर, लोभ-मोहों को भगाकर [लोक] लाज छोड़कर, अनन्त नामों का पठन करते हुए, परम-कल्याण-कारक उसके चरित्रों का चिन्तन करते हुए, निरन्तर सन्तुष्ट हो (कृष्ण पर) चित्त को प्रतिष्ठित कर, निर्मल अन्तःकरण के साथ विषय [वासनाओं] से विरक्त हो, काल (उचित समय) की प्रतीक्षा करते हुए, धरती पर भ्रमण करता रहा। तब कुछ समय पश्चात् बिजली की चमक की भाँति, मृत्यु के दीखने पर, पंचभूतमय (तथा) कर्म-स्वरूपी पूर्व-देह को त्यागकर, हरि-कृपावश से शुद्ध सत्त्वमय भागवत (भक्त) देह में प्रवेश किया। तब तीन लोकों का उपसंहार कर, प्रलयकाल के पयोराशि (क्षीरसागर) के मध्य [शयन करनेवाले] नारायण-मूर्ति में नींद लेने के इच्छुक ब्रह्मा के निःश्वास के साथ उनमें प्रवेश किया। तब हजार युग परिमित काल के बीत जाने पर, उठकर, सृजन-कार्य को उद्यत होनेवाले ब्रह्मा के प्राणों से मरीचि आदि प्रमुख मुनिवरों [और] मैंने जन्म लिया। उनमें अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए, तीनों लोकों के भीतर-बाहर, महाविष्णु की कृपा से, बिना किसी रोक-टोक के ईश्वर-प्रदत्त ब्रह्मतत्त्व को अभिव्यंजित करनेवाले सप्त स्वरों के अपने-आप मुखरित होनेवाले इस वीणा की आलाप-रति से नारायण-कथा का गायन करते हुए संचरण करता रहता हूँ। १२८ [आ.] तीर्थपाद[1] (पुण्यचरण वाला) भगवान विष्णु,

कं. विनु मी ससारंवनु, वननिधिलो मुनिगि कर्मवांछलचे वे-
दन वॊंदॆडुवानिकि वि, ष्णुनि गुण वर्णनमु तॆप्प मुम्मु मुनींद्रा!॥ 130 ॥

च. यम नियमादि योगमुल नात्म नियंत्रित मय्यु गाम रो-
षमुल व्रचोदितंब यगु शांति वॊंहिपदु विष्णु सेवचे
ग्रममुन शांति गॆकॊनिनकंवडि नादु शरीर जन्मक-
र्ममुल रहस्यमॆल्ल मुनिमंडन ! चॆप्पिति नीवु कोरिनन् ॥ 131 ॥

व. अनि यिट्लु भगवंतुडगु नारदुंडु व्यासमुनींद्रुनि वीड्कॊनि वीण वायिंपुचु यदृच्छा मार्गंबुनं जनियॆ ननि सूतुं डिट्लनियॆ ॥ 132 ॥

कं. वायिंचु वीण नॆप्पुडु, म्रोयिंचु मुकुंद गीतमुलु जगमुलकुन्
जेयिंचु जॆवुलपंडुवु, मायिंचु नघाळि निट्टि मति मरि गलडे ! ॥ 133 ॥

अध्यायमु—७

व. अनि नारदुं गॊनियाडिन सूतुनि जूचि नारदुमाटलु, विन्नवॆनुक भगवंतुंडॆन वादरायणुं डेमिसेसॆननि शौनकुंडडिगिन सूतुं डिट्लनियॆ।

अपने चरित को मेरे आसक्ति से गायन करने पर, पुकारने पर आनेवाले के समान आकर, वह महान्, मेरे मन में दर्शन देता है। १२९ [कं.] सुनो ! हे मुनीद्र ! इस संसार रूपी सागर में डूबकर, कर्म की कामनाओं में रत हो पीड़ा पानेवालों के लिए विष्णु का गुण-वर्णन निश्चित रूप से नाव है। १३० [च.] मुनिवर ! यम-नियमादि योग से आत्मा के नियंत्रित होने पर भी, काम, रोष [आदि] से प्रचोदित हो शान्ति को प्राप्त नहीं करता। विष्णु-सेवा से ही क्रमशः शान्ति को प्राप्त करता है। वह रीति (तथा) अपने शरीर के जन्म एवं कर्म के सारे रहस्य तुम्हारे चाहने पर मैंने बता दिया है। १३१ [व.] ऐसा कहकर भगवान नारद व्यास मुनीन्द्र से विदा लेकर, वीणा-वादन करते हुए अपनी इच्छा के मार्ग से चले गये। [ऐसा] कह सूत ने यों कहा। १३२ [कं.] सदा वीणा का वादन करता है, मुकुन्द (विष्णु) के गीत प्रतिध्वनित करता है, जगों (लोकों) को कर्णपर्व कराता है। अघालि (पापराशि) को मिटा देनेवाला, ऐसा बुद्धिमान (ज्ञानी) कोई और है ? (नहीं है।)। १३३

अध्याय—७

[व.] इस प्रकार नारद की स्तुति करनेवाले सूत को देखकर शौनक ने प्रश्न किया कि "नारद के वचन सुनने के पश्चात् भगवान् वादरायण ने

---

१ जिसके चरण तीर्थ-स्थान रूपी हैं। जिसके चरणों से तीर्थ (गंगा) का उद्भव हुआ।

ब्रह्मनदियैन सरस्वति पश्चिमतीरंबुन ऋषुलकु सत्रकर्मवर्धनंबै बदरी तरुषंडमंडितंबैन (शम्याप्रासंबनि) प्रसिद्धंबगु नाश्रमंबु गलदु। अंदु जलंबुलु वार्चि कूर्चुंडि व्यासुंडु तनमदि दिरंबु चेसिकोनि भक्ति युक्तंबैन चित्तंबुनं बरिपूर्णुंडैन योश्वरुं गांचि योश्वराधीन मायावृतंबैन जीवुनि संसारंबु गनि जीवुंडु मायचेत मोहितुंडै गुण व्यतिरिक्तुंडय्यु मायासंगति दानु द्रिगुणात्मकुं डनि यभिमानिचुचुं द्रिगुणत्वाभिमानंबुनं गर्तयु भोक्तयु ननु ननर्थंबु नोंदु ननियु नय्यनर्थंबुनकु नारायण भक्तियोगंबु गानि युपशमनंबु वेरोकटि लेदनियुनु निश्चयिंचि ॥ 134 ॥

म. अवनी चक्रमुलोन ने पुरुषुडे याम्नायमुन् विन्न मा-
धवुपै लोकशरण्युपै भवमुलं दप्पिंचगा जालु भ-
वित विशेषंबु जनिंचु नट्टि भुवन क्षेमकरंबैन भा-
गवताम्नायमु बादरायणुडु दा गल्पिंचे नेपोप्पगन् ॥ 135 ॥

व. इट्लु भागवतंबु निर्मिंचि मोक्षार्थियैन शुकुनिचे जदिविंचे ननि चेप्पिन विनि शौनकुंडु, निर्याणतत्परुंडुनु सर्वोपेक्षकुंडुनैन शुकयोगि येमिटिकि भागवतं बभ्यसिंचे ननवुडु सूतुं डिट्लनियें ॥ 136 ॥

क्या किया ?" (तब) सूत ने ऐसा कहा। ब्रह्मनदी सरस्वती के पश्चिम तट पर ऋषियों के लिए सत्रकर्म (सत्र नामक यज्ञ) प्रवर्द्धित करनेवाला बदरी-तरु (बेर-वृक्ष) षंड (समूह) से मण्डित (शम्याप्रास नामक) प्रसिद्ध आश्रम है। उस जल में स्नान कर, उपविष्ट हो व्यास ने अपने मन को स्थिर (अचंचल) कर, भक्तियुक्त चित्त में परिपूर्ण ईश्वर को देख, ईश्वर के अधीन माया से आवृत जीव के संसार को देखकर, जीव माया से विमोहित हो (सहज) गुणों के विपरीत, माया की संगति से अपने को त्रिगुणात्मक मानकर, अभिमान करते हुए, त्रिगुणत्व के अभिमान के कारण कर्ता, भोक्ता के भाव से अनर्थ को पाता रहेगा, ऐसे अनर्थ का उपशमन (शान्ति) करने में समर्थ नारायण के भक्तियोग के अतिरिक्त कोई दूसरा [उपाय] नही, ऐसा निश्चित रूप से विचार कर, । १३४ [म.] अवनीचक्र में पुरुष जिस आम्नाय (वेद) के सुनने से भव (संसार के दुःख) से बचाने में समर्थ लोकशरण्य माधव पर भक्ति-विशेष उत्पन्न हो जायगी, भुवन की रक्षा के लिए शुभकर ऐसे भागवत आम्नाय (वेद या शास्त्र) का बादरायण (व्यास) ने बड़ी चतुरता से कल्पना (रचना) की। १३५ [व.] इस प्रकार भागवत का निर्माण (रचना) कर, मोक्षार्थी शुक से पढ़वाया। यह कहने पर सुनकर शौनक के प्रश्न करने पर कि 'निर्वाण-तत्पर (तथा) सबकी उपेक्षा करनेवाला शुकयोगी ने क्यों भागवत का अभ्यास (अध्ययन) किया ?' उत्तर में सूत ने कहा। १३६ [कं.] नव्यचरित्रवाले !

कं. धीरुलु निरपेक्षुलु ना, त्मारामुलु नैन मुनुलु हरिभजनमु नि-
ष्कारणम चेयुचुंदुरु, नारायणु डट्टिवाडु नव्यचरित्र ! ॥ 137 ॥

कं. हरिगुणवर्णन रतुडै, हरितत्परुडैन वादरायणि शुभ त-
त्परतं बठिंचॆ द्रिजग, द्वरमंगळमैन भागवत निगमंबुन् ॥ 138 ॥

कं. निगममुलु वेयु जदिविन, सुगमंबुलु गावु मुक्ति सुभगत्वंबुल्
सुगमंबु भागवत मनु, निगमंबु बठिंप मुक्ति निवसनमु बुधा ! ॥ 139 ॥

अर्जुनुंडु पुत्रघातियगु नश्वत्थामनु अवमानिंचुट

व. अनि पलिकि राजर्षियैन परीक्षिन्महाराजु जन्मकर्म मुक्तुलुन, पांडवुल महाप्रस्थानंबुनु, कृष्णकथोदयंबुनु जॆप्पॆद। कौरवधृष्टद्युम्नादुल युद्धंबुन वीरुलयिनवारलु स्वर्गंबुनकुं जनिन वॆनुक, भीमु गदाघातंबुन दुर्योधनुंडु दॊडलु विरिगि कूलिन नश्वत्थाम दुर्योधनुनकुं ब्रियंबु सेयुवाडै निदुरवोवु द्रौपदीपुत्रुल शिरंबुलु खंडिंचि तॆच्चि समर्पिचॆ। अदि क्रूरकर्मंबनि लोकुलु निंदितुरु ॥ 140 ॥

उ. बालुरचावु कर्णमुल बट्टु गलंगि यलंगि योरुवं-
जालक बाष्पतोय कणजालमु चॆक्कुल राल नेड्चि पां-

(सुनो!) धीर, निरपेक्ष भावनारत, आतमाराम, मुनिगण निष्कारण (बिना किसी फल की इच्छा के) हरिभजन करते है। नारायण ऐसा [पुण्यचरित का] है। १३७ [कं.] हरि के गुण-वर्णन में रत (आसक्त) होकर, हरि में तत्पर हो, बादरायणी (शुक) ने शुभ तत्परता के साथ तीनों जगतों के लिए मंगलकर भागवत रूपी वेद का पठन किया। १३८ [कं.] बुधवर! हज़ार निगम (वेद) भी क्यों न पढ़ें मोक्ष (तथा) सुभगतत्त्व (शुभतत्त्व) सुगम नहीं होते। भागवत नामक निगम का पठन मुक्ति का निलय (सुगम हो जाता) है। १३९

अर्जुन का पुत्रघाती अश्वत्थामा को अपमानित करना

[व.] ऐसा कहकर, राजर्षि परीक्षित के जन्म-कर्म से मुक्ति, पाण्डवों का प्रस्थान, (तथा) कृष्णकथा के सम्बन्ध में सुनाऊँगा। कौरव, धृष्टद्युम्न आदि वीरों के युद्ध में स्वर्ग सिधारने के बाद, भीम के गदाघात से जांघों के टूटकर धराशायी बने दुर्योधन को प्रिय (इष्टकार्य) करने के निमित्त अश्वत्थामा ने सोनेवाले द्रौपदी-पुत्रों (उपपाण्डवों) के सिरों का खण्डन कर, (उनको) लाकर समर्पित किया। उसे क्रूरकर्म कहकर लोग निन्दा करते हैं। १४० [उ.] बालकों की मृत्यु की वार्त्ता कानों में पड़ने पर व्याकुल हो, क्रोधी हो, (दुःख) सहन न कर सक, तोयकणजाल

चालतनूज नेलवडि जालिबडं गनि यॅत्ति मंजुवा-
चालत जूपुचुं जिकुरजालमु दुव्वुचु ग्रीडि यिट्लनॅन् ॥ 141 ॥

म. धरणीशात्मज वीवु नीकु वगवन् धर्मंबॅ? तद्द्रौणि नि-
ष्करुणुंडै विदळिंचॅं बालकुल, मद्गांडीव निर्मुक्तभी-
कर बाणंबुलु नेडु वानि शिरमुन् खंडिंचि नेवॅत्तुद-
च्छिरमुन् द्रॉक्कि जलंबुलाडु मिचटन् शीतांशुबिंबानना! ॥ 142 ॥

व. अनि यीडंबरिचि तनकु मित्रुंडुनु सारथियु नैन हरि मेलनुचुंड गवचंबु दॉडिगि गांडीवंबु धरियिंचि कपिध्वजुंडै गुरुसुतुनि वॅंट रथंबु दॉलिंचिन ॥ 143 ॥

शा. तन्नुं जंपॅदनंचु वच्चु विजयुं दर्शिंचि तद्द्रौणि या-
पन्नुंडै शिशुहंत गावुन निजप्राणेच्छ बारॅन् वडिन्
मुन्ना ब्रह्म मृगाकृति दनयकुन् मोहिंचि क्रीडिप ना-
सन्नुंडै हरु जूचि पारुपगिदिन् सर्वेंद्रिय भ्रांतितोन् ॥ 144 ॥

व. इट्लोपिनंत दूरंबुनुं वरुविडि वॅनुक जूचि, रथतुरंगंबु ललयुट दॅलिसि, निलिचि प्राणरक्षणंबुनकु नॉंडुपायंबु लेदनि निश्चयिंचि, जलंबुल वाचि,

---

(आँसू) के गालों पर गिरने (वहने) पर, विलाप कर पांचाल-तनूजा (द्रौपदी) अति दीनावस्था में धरा पर गिर गयी। [उसे] देखकर, उठाकर, मंजु-वाचालता (मधुर वचन) कहते हुए, वाल सँवारते हुए, क्रीड़ी (अर्जुन) ने ऐसा कहा। १४१ [म.] हे शीतांशु विम्बानने (चन्द्रमुखी)! तुम धरणीशात्मजा (राजा की वेटी) हो, तुम्हें ऐसा रोना धर्म (समुचित) है क्या? उस द्रौणि (द्रोणपुत्र, अश्वत्थामा) ने निष्करुण-भाव से (निर्दयी हो) वालकों का वध किया। मेरे गाण्डीव से निर्मुक्त (छोड़े गए) भीकर वाणों से आज उसका सिर काटकर लाऊँगा। उसके सिर को पैरों तले कुचलकर यहाँ नहाओ। १४२ [व.] ऐसा समझा-बुझाकर अपने मित्र तथा सारथी हरि के प्रशंसा करते रहने पर, कवच पहनकर, गाण्डीव धारणकर, कपिध्वजी वन (कपिध्वजयुक्त रथ पर आरूढ़ होकर) गुरुसुत (अश्वत्थामा) के पीछे, रथ चलाया, (तव)। १४३ [शा.) अपना वध करने की [वात] कहकर आनेवाले विजय (अर्जुन) को देख अश्वत्थामा आपन्न हो, शिशुहन्ता होने के कारण, निज-प्राण-इच्छा से शीघ्र गति भाग खड़ा हुआ, जिस प्रकार ब्रह्मा पूर्व में मृग की आकृति की पुत्री (सरस्वती) पर मोहित हो क्रीड़ा (संभोग) करने के उत्कट इच्छुक वनते समय, समीप पहुँचनेवाले हर (शिव) को देख सर्वेन्द्रियों के भ्रान्त होने पर भाग खड़ा हुआ था। १४४ इस प्रकार जहाँ तक सम्भव हो सके वहुत दूर दौड़कर, पीछे मुड़कर देख, रथ के घोड़ों के थक जाते जानकर, रुककर प्राण-रक्षा

द्रोणनंदनुंडु समाहितचित्तुंडै, प्रयोगंबु कानि युपसंहारंबु नेरकयुं बाण संरक्षणार्थंबुनकै पार्थुनि मीद ब्रह्मशिरोनामकास्त्रंबु प्रयोगिंचिन नदि प्रचंड तेजंबुन दिगंतराळंबुलु निंडि प्राणभयंकरंबै तोचिन हरिकि नर्जुनुं डिट्लनियें ॥ 145 ॥

सी. पद्मलोचन ! कृष्ण ! भक्तामयप्रद ! विनुमु संसाराग्नि वेगुचुन्न
जनुल संसारंबु संहरिंपग नीवु दक्क नन्युलुलेरु तलचि चूड
साक्षात्करिंचिन सर्वेश्वरुंडवु प्रकृतिपरुंडवु परमपुरुष !
नी प्रबोधमुचेत नी माय नंतयु नणतुवु निश्श्रेय सात्मयंदु

आ. माययंदु मुनिगि मनुवारलकु गृप, जेसि धर्ममुख्यचिह्नमैन
शुभमु सेयुचुंदु सुजनुल नवनिलो, गाव बुट्टुदुवु जगन्निवास ! ॥ 146 ॥

कं. इदि यॊक तेजमु भूमियु, जदलुनु दिक्कुलुनु निंडि सर्वंकषमै
यॆंदुरै वच्चुचु नुन्नदि, विदितमुगा नॆरुग जॆप्पवे देवेशा ! ॥ 147 ॥

व. अनिन हरि इट्लनियें ॥ 148 ॥

शा. जिह्मत्वंबुन वारि द्रोणजुडु दुश्शीलुंडु प्राणेच्छुडै
ब्रह्मास्त्रं बदे येय वच्चॆ निदॆ तद्बाणाग्नि बीभत्स ! नी

का कोई अन्य उपाय नहीं है, ऐसा निश्चय कर, द्रोणनन्दन (अश्वत्थामा) स्नान कर एकाग्रचित्त हो, प्रयोग के अतिरिक्त उपसंहार न जानकर भी, [अपने] प्राणों की रक्षा के लिए, पार्थ पर, ब्रह्मशिरोनामक अस्त्र का प्रयोग किया। [प्रयोग करने पर] वह प्रचण्ड तेज के साथ दिगन्तराल में व्याप्त हो प्राण-भयंकर बन दृष्टिगत होने पर, अर्जुन ने हरि से ऐसा कहा। १४५ [सी.] हे पद्मलोचनवाले ! हे कृष्ण ! भक्तों को अभय प्रदान करनेवाले ! सुनो, संसार की अग्नि में तप्त होनेवाले जनों के संसार (माया) का संहार करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य नही है। सोचकर, देखने पर साक्षात्कार होनेवाले सर्वेश्वर, और प्रकृति से परे रहनेवाले परमपुरुष हो ! निःश्रेयस् (मोक्ष) की कामना करनेवाली आत्मा में, अपने प्रबोध के फलस्वरूप अपनी माया को दबा देते हो। [आ.] (और) माया में डूबकर जीवन बितानेवालों पर कृपा कर धर्म के मुख्य चिह्न रूपी शुभ (मंगल) का प्रदान करते हो। हे जगन्निवास ! धरती पर सुजनों की रक्षा के लिए पैदा होते हो। १४६ [कं.] देवेश ! यह एक तेज है, जो भूमि, आकाश, दिशाओं में व्याप्त हो, सबको अपने में समाये हुए सामने उपस्थित है, यह क्या है ? विदित करो न ! १४७ [व.] ऐसा कहने पर हरि ने इस प्रकार कहा। १४८ [शा.] वक्ररीति (अधर्म गति) से भाग खड़े हो, द्रोणज (अश्वत्थामा) ने, जो दुश्शील (दुश्चरित्र) है, प्राणों की इच्छा कर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया, यह वही

ब्रह्मास्त्रंबुन गानि दीनि मरलिपन् राडु संहार मी
ब्रह्मपत्य मॅरुंग डेयुमु वडिन् ब्रह्मास्त्रमुन् दीनिपै ॥ 149 ॥

व. अनिन नर्जुनुंडु जलंबुलु वार्चि हरिकि ब्रदक्षिणंबु वच्चि द्रोणनंदनुडेसिन ब्रह्मास्त्रंबुमीद दन ब्रह्मास्त्रंबु प्रयोगिंचिन ॥ 150 ॥

म. अवनि व्योममुलंदु निंडि तमलो ना रॅंडु ब्रह्मास्त्रमुल्
रवि वह्नि द्युति बोरुचुं द्रिभुवन त्रासंबु गाविपगा
त्रिवशभ्रांति युगांतमो यनि प्रजल् वीक्षिप नावेळ मा-
धवु नाज्ञन् विजयुंडु सेसॅ विशिख द्वंद्वोपसंहारमुन् ॥ 151 ॥

व. इट्लस्त्रद्वयंबु नुपसंहरिंचि धनंजयुंडु, द्रोणनंदनुं गूड नरिगि तरिमि पट्टुकॉनि रोषारुणित लोचनुंडै याज्ञिकुंडु रज्जुवुनं बशुवुं गट्टिनचंदंबुन बंधिंचि शिबिरंबुकडकुं गॉनि चनि हिंसितु ननि तिगिचिनं जूचि हरि यिट्लनियॆ ॥ 152 ॥

उ. मारु पडंगलेनि यसमर्थुल सुप्तुल नस्त्रविद्यलं
देरनि पिन्नपापल वधिंचॆ निशीधमुनंदु ग्रूरुडै
पारुडे वीडु पातकुडु प्राणभयंबुन वॆच्च नूर्चुचुं
बारॅडि वीनि गावकु कृपामति नर्जुन ! पापवर्जना ! ॥ 153 ॥

बाणाग्नि है। हे वीभत्स (अर्जुन) ! तुम्हारे ब्रह्मास्त्र के बिना इसका उपसंहार नहीं हो सकता। इसका उपसंहार ब्राह्मणपुत्र नहीं जानता। उस पर शीघ्र ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करो। १४९ [व.] [कृष्ण के] ऐसा कहने पर अर्जुन ने नहाकर, हरि की प्रदक्षिणा कर, (और) द्रोणनन्दन से प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र पर अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। तब। १५० [म.] भूमि और आकाश में व्याप्त हो, अपने में दोनों ब्रह्मास्त्र रवि और अग्नि की द्युति-सदृश संघर्ष करते हुए, तीनों भुवनों को त्रास देने लगे। प्रजा के विवश तथा भ्रान्त हो, युगान्त (प्रलय) तो नहीं है, ऐसा समझते हुए, (भयभीत हो) देखते समय माधव की आज्ञा पाकर विजय (अर्जुन) ने दोनों विशिखों (अस्त्रों) का उपसंहार किया। १५१ [व.] इस प्रकार दोनों अस्त्रों का उपसंहार कर धनंजय (अर्जुन) ने द्रोणनन्दन (अश्वत्थामा) का पीछा कर, पकड़ लिया, (और) रोष से अरुण बने लोचनों से याज्ञिक (यज्ञ करनेवाला यजमान) के रस्सी से पशु को बाँधने की रीति से बाँधकर, शिविर को ले जाकर हिंसा करने को उद्यत हो बंधनों के ढीला कर देने पर, देखकर हरि ने ऐसा कहा। १५२ [उ.] हे अर्जुन ! कृपावर्जन करनेवाले ! सामना करने में असमर्थ, सुप्त (सोनेवाले) [और] अस्त्र-विद्याओं में जो पारंगत नहीं हैं, ऐसे छोटे शिशुओं का रात्रि के समय क्रूर हो [अश्वत्थामा ने] वध किया। यह कहाँ का ब्राह्मण है ? पातकी

च. वॆरचिनवानि दैन्यमुन वॆडुरु नॊंदिनवानि निद्र मै
मरचिनवानि सौख्यमुग मद्यमु द्राविनवानि भग्नुडै
परचिनवानि साधु जडभावमु वानिनि गावुमंचु वा
चरचिनवानि गामिनुल जंपुट धर्ममु गादु फल्गुना ॥ 154 ॥

शा. स्वप्राणंबुल नॆव्वडेनि गरुणासंगंबु चालिंचि य-
न्य प्राणंबुलचेत रक्षणमु सेयन् वा डधोलोक दुः
खु प्राप्तुंडगु राजदंडमुन सत्कल्याणुडौ नेन नी
विप्रुं दंडितु जेयु मेटिकि महाविभ्रांतितो नुंडगन् ॥ 155 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन गृष्णु डानतिच्चिन ब्राह्मणुंडु (गृतापराधुंडयिन वध्युंडु गाडनु धर्मंबु दलंचि) चंपक द्रुपदराजपुत्रिकि दनचेसिन प्रतिज्ञ दलंचि बद्धुंडैन गुरुनंदनुं दोड्कॊनि कृष्णुंडु सारथ्यंबु सेय शिविरंबु कडकु वच्चि ॥ 156 ॥

कं. सुरराजसुतुडु सूपॆनु, दुरवधि सुतशोक युतकु द्रुपदुनि सुतकुन्
वरिचलितांगश्रेणि, बरुष महापाशबद्ध पाणिन् द्रौणिन् ॥ 157 ॥

व. इट्लर्जुनुंडु दॆच्चि चूपिन बालवध जनित लज्जा पराङ्मुखुंडैन गुरुनि कॊडुकुं जूचि स्रोविक (सु स्वभावयगु) द्रौपदि यिट्लनियॆ ॥ 158 ॥

(पापी) है। प्राणभय से गरम साँस भरते हुए भागनेवाले इसकी रक्षा मत करो। १५३ हे फल्गुण (अर्जुन)! भयभीत होनेवाले का, दीनभाव से व्याकुल होनेवाले का, निद्रा के कारण शरीर को भूलनेवाले का, सुख से मद्यपान किये हुए का, भग्न हृदयवाले का, साधु तथा जड़-भाव वाले का, रक्षा के लिए पुकारनेवाले का तथा कामिनियों (स्त्रियों) का वध करना धर्म नहीं है। १५४ [शा.] कोई भी करुणा छोड़कर (क्रूर कर्म कर) अन्य प्राणियों का वध कर अपने प्राणों की रक्षा चाहता है, तो वह अधोलोक को प्राप्त होकर दुःखों को प्राप्त करेगा। [ऐसे व्यक्ति को] राजदण्ड की प्राप्ति हो जाए, तो वह उसके लिए सत्कल्याणकारक होगा। तब इस विप्र को दण्डित करो। महाविभ्रान्त बने रहने की आवश्यकता क्या है ?। १५५ [व.] इस प्रकार कृष्ण से आज्ञापित हो ब्राह्मण का कृतापराधी होने पर भी [ब्राह्मण] वध्य नहीं है, इस धर्म को मानकर वध न कर द्रुपदराज की पुत्री (द्रौपदी) को अपने किये हुए प्रतिज्ञा का स्मरण कर, [पाश] बद्ध गुरुनन्दन को लेकर कृष्ण के सारथ्य करने पर शिविर पहुँचकर,। १५६ [कं.] सुरराज के सुत (अर्जुन) ने असीम पुत्रशोक में डूबे हुए, द्रुपदसुता (द्रौपदी) को विचलित अंग समूहवाले, (खूब मार खाये हुए) परुष (कठोर) महापाश-बद्ध (बँधे हुए), द्रौणी (द्रोण-पुत्र) को दिखाया। १५७ [व.] इस प्रकार अर्जुन के

म. परगन् मा मगवार लंदरुन् मुन् बाणप्रयोगोपसं
हरणा द्यायुधविद्य लन्नियुनु द्रोणाचार्युचे नभ्यसिं
चिरि पुत्राकृति नुन्न द्रोणुडवु नी चित्तंबुलो लेशमुन्
गरुणासंगमु लेक शिष्यसुतुलन् खंडिपगा बाडिये ! ॥ 159 ॥

कं. भूसुरुडवु बुद्धि दया, भासुरुडवु शुद्धवीर भट संदोहा
ग्रेसरुडवु शिशुमारण, मासुरकृत्यंबु धर्ममगुने तंड्री ॥ 160 ॥

शा. उद्रेकंबुन रारु शस्त्रधरुलै युद्धावनिन् लेरु किं
चिद्द्रोहंबुनु नीकु जेयरु बलोत्सेकंबुतो जीकटिन्
भद्राकारुल बिन्नपापल रण प्रौढक्रिया हीनुलन्
निद्रासक्तुल संहरिप नकटा ! नी चेतुलॆट्लाडॆनो ! ॥ 161 ॥

उ. अक्कट ! पुत्र शोकजनिताकुलभाव विषण्णचित्तनै
पोक्कुचु नुन्नभंगि निनु बोर गिरीटि निबद्धु जेसि मे
डिक्कड कोडिच तॆच्चुट सहिंपनिदे भवदीयमात मे
डॆक्कड निट्टिशोकमुन नेक्रिय नेड्चुचु बोक्कुचुन्नदो ! ॥ 162 ॥

व. अनि कृष्णार्जुनुलं जूचि यिट्लनियॆ ॥ 163 ॥

लाकर दिखाने पर, वालवध से उत्पन्न लज्जा से पराङ्मुखी वने हुए गुरु के पुत्र को देख नमस्कार कर [सुस्वभाववाली] द्रौपदी ने ऐसा कहा। १५८ [म.] प्रसिद्ध-रूप से मेरे पतियों ने पूर्व में वाण-प्रयोग तथा उपसंहार आदि सब आयुध विद्याओं को द्रोणाचार्य के द्वारा अभ्यास किया है। पुत्राकार में स्थित (तुम) द्रोण हो ! चित्त में किंचित् भी करुणा को न रखकर, शिष्यसुतों को खण्डित (वध) करना समुचित है क्या ? १५९ [कं.] हे तात ! भूसुर (ब्राह्मण) हो ! बुद्धि में दया को भासित करनेवाले हो। शुद्ध वीरों के भट-समूह में अग्रसर हो। (ऐसे तुम्हारे लिए) शिशुओं का वध-जैसा आसुरी कृत्य धर्म कैसा होगा ? १६० [शा.] [मेरे पुत्र] आवेश में शस्त्र लेकर (तुम पर दौड़े) नहीं आये, युद्धभूमि में (सामना करने के लिए) नहीं थे, तुम्हारे प्रति किंचित् मात्र द्रोह नहीं किया। बल के आधिक्य के कारण, भद्र आकार वाले (सुन्दर रूपवाले) रण-प्रौढ़-कार्य [कुशलता] से हीन छोटे वच्चों को, जो निद्रा में आसक्त थे, अँधेरे में संहार करने के लिए हाय ! तुम्हारे हाथ कैसे आगे बढ़े ! १६१ [उ.] हाय ! पुत्रशोक से उत्पन्न व्याकुल भाव से विषाद चित्तवाली हो, दु:खी होनेवाली मुझे देखकर युद्ध में संघर्ष कर तुम्हें बाँधकर (अर्जुन का) आज यहाँ घसीट लाना असहनीय है। भवदीय माता आज शोक (पुत्रशोक) में कहाँ किस रीति रोती, विकल हो रही होगी ! १६२ [व.] [ऐसा] कह कर कृष्णार्जुन को देख (द्रौपदी ने) कहा। १६३ [उ.] द्रोण के साथ

उ. द्रोणुनितो शिखिवडक द्रोणकुटुंबिनि युन्न दिट न
क्षीण तनूजशोक विवशीकृतनै विलपिंचु भंगि नी
द्रौणि दॆरलिच तॆच्चुटकु दैन्यमु नॊंदुचु नॆंत पॊक्कुवो
प्राण वियुक्तुडैन, नतिपापमु ब्राह्मणहिंस मानरे ॥ 164 ॥

कं. भूपालकुलकु विप्रुल, गोपिंपग जेयदगदु कोपिंचिन व-
ह्निकोपानलंबु मोदलिकि, भूपालाटवुल गाल्चु भूकंपमुगन् ॥ 165 ॥

व. अनि यिट्लु धर्म्यंबुनु सकरुणंबुनु निर्व्यळीकंबुनु समंजसंबुनु श्लाघ्यंबुनुंगा द्रौपदि पलुकु पलुकुलकु धर्मनंदनुंडु संतसिल्लॆ। नकुल सहदेवसात्यकि धनंजय कृष्णुलु सम्मतिचिरि। सम्मतिपक भीमुंडिट्लनियॆ ॥ 166 ॥

च. कॊडुकुल वट्टि चंपॆननि कोपमु नॊंददु वालघातकुन्
विडुवु मटंचु जॆप्पॆडिनि वॆर्रिदि द्रौपदि वीड्डु विप्रुडे?
विडुवगनेल? चंपुडिटु वीनिनि मीरलु चंपरेनि ना
पिडिकिटि पोटुनन् शिरमु भिन्नमु सेसॆद जूडु डिंदरुन् ॥ 167 ॥

व. अनि पलिकिन नश्वत्थामकु द्रौपदि यड्डंबु वच्चॆ। भीमुनि संरंभंबु सूचि हरि चतुर्भुजुंडै रॆंडुचेतुल भीमुनि वारिंचि कडम रॆंडुचेतुल द्रुपद पुत्रिकनु दलंगं द्रोब्वि, नगुचु भीमुन किट्लनियॆ ॥ 168 ॥

अग्निप्रवेश न कर, द्रोण-कुटुम्बिनी (द्रोण की पत्नी) घर पर रह गयी। वह अक्षीण (तीव्र) पुत्रशोक में विवश हो मेरे विलाप करने के समान तब इस द्रौणि को इस प्रकार लाये जाने के कारण और प्राणवियुक्त करने (मार डालने) पर दीन हो वह कितनी विकल होगी? ब्राह्मण-हिंसा को, जो अति पापकर है, छोड़ दो न! १६४ [कं.] विप्रों पर भू-पालकों को क्रोध करना नहीं चाहिए। क्रोध करने पर उस क्रोध की अग्नि भूपालक (राज-लोक)-रूपी वन को भूकम्प के समान पूरी तरह जला डालेगी (नाश करेगी)। १६५ [व.] इस प्रकार धर्मोचित, सकरुण, प्रिय, कारणरहित, समुचित श्लाघ्य रूप में कहनेवाली द्रौपदी के वचनों के कारण धर्मनन्दन (युधिष्ठिर) आनन्दित हुए। नकुल, सहदेव, सात्यकि, धनंजय (अर्जुन) [तथा] कृष्ण मान गये। असम्मति प्रकट करते हुए भीम ने कहा। १६६ [च.] पुत्रों को पकड़कर इसने वध किया, [ऐसा मानकर] क्रोधित नहीं होती, वालघातक को छोड़ने के लिए कहनेवाली द्रौपदी पगली है। यह विप्र कैसे है? इसे छोड़ना क्यों? आप लोग इसका वध कीजिए! अन्यथा आप लोगों के देखते-देखते मुष्टिघात से इसका सिर छिन्न-भिन्न कर डालूंगा। १६७ [व.] ऐसा कहने पर [भीम के वचन सुनकर] द्रौपदी अश्वत्थामा की रक्षा के लिए आड़े आयी। भीम का संरम्भ

उ. अव्युड् गाडु वीडु शिशुहंत दुरात्मकुडाततायि हं-
तव्युड् ब्रह्मबंधुडगु दप्पदु निक्कमु "ब्राह्मणो न हं-
तव्य" यटंचु वेदविदितं बगु गावुन धर्मदृष्टिग-
र्तव्यमुवीनि गाचुट यथास्थिति जूडुमु पांडवोत्तमा ! ॥ 169 ॥

व. अनि सरसालापंबुलाडि पवननंदनु नोडंबरूचि यर्जुनुं जूचि द्रौपदिकि नाकु भीमसेनुनकुनु सम्मतंबुग मुन्नु नीचेसिन प्रतिज्ञयु सिद्धिंचुनट्लु ना पंपु सेयुमनि नारायणुं डानतिच्चिन नर्जुनुंडु तदनुमतंबुन ॥ 170 ॥

शा. विश्वस्तुत्युडु शक्रसूनुडु महावीरुंडु घोरासिचे
नश्वत्थाम शिरोजमुल् दरिगि चूडांत महारत्नमुन्
शश्वत्कीर्ति वेलुंग बुच्चुकोनि पाशव्रातबधंबुलन्
विश्वासंबुन नूड्चि द्रोब्बे शिबिरोर्वी भागमुं बासिपोन् ॥ 171 ॥

कं. निब्बरपु बालहंतयु, गोब्बुन देजंबु मणियु गोल्पडि नतुडै
प्रब्बिन चिंतन् विप्रुडु, सिब्बितितो नोडलि गब्बु सेडिवडि जनियेन् ॥172॥

देखकर ने हरि चतुर्भुज बनकर, दो हाथों से भीम को रोककर, दूसरे दो हाथों से द्रुपदपुत्री को हटाकर, हँसते हुए भीम से इस प्रकार कहा— । १६८ [उ.] हे पाण्डवोत्तम ! रक्षा करने योग्य नहीं है, यह शिशुहन्ता, दुरात्मा, आततायी (अत्याचारी) है। ब्रह्मबन्धु (ब्राह्मण) होने पर भी सत्य ही (निश्चित ही) यह हन्तव्य है। 'ब्राह्मणो न हन्तव्य' वचन वेद-विहित होने के कारण धर्मदृष्टि (धर्मबुद्धि) से कर्तव्य जानकर इसकी रक्षा करो, यथास्थिति का (जो परिस्थिति है) [उस पर] विचार करो। १६९ [व.] ऐसे सरस-वचन कहकर, पवन-नन्दन (भीम) को समझा-बुझाकर, नारायण ने अर्जुन को देखकर कहा कि द्रौपदी, मुझे [और] भीमसेन को सम्मत (स्वीकार) हो ऐसा [और] पूर्व में की गयी तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो जाए, ऐसा मेरी आज्ञा के अनुसार करो। [ऐसी आज्ञा देने पर] अर्जुन ने उसके अभिमत के अनुसार। १७० [शा.] विश्व के लोगों से स्तुत्य, शक्रसुत (इन्द्रसुत) [तथा] महावीर (अर्जुन) ने भयंकर खड्ग से अश्वत्थामा के शिरोज (केश) काटकर, चूड़ा (शिखा) के महारत्न को, शाश्वत कीर्ति को, प्रकट करते हुए लेकर, रस्सियों के बन्धनों को काटकर विश्वास के साथ [इस विश्वास के साथ कि कोई अन्य उसे हानि नहीं पहुँचाएगा], शिविर की भूमि से [बाहर] धकेल दिया। १७१ [कं.] निस्संकोच भाव वाला बालहन्ता, अपने तेज और मणि को तुरन्त शीघ्र खोकर, विनत हो, अतिशय चिन्ताग्रस्त हो, विप्र लज्जा के कारण शरीर के तेज के (मद के) नष्ट होने पर शीघ्र वहाँ से चला गया। १७२ [आ.] धन खींच लेना चाहिए, या शिरोमुण्डन कर देना चाहिए, या मन्दिर-प्रवेश से वंचित

आ. धनमु गॊनुट यॊँडॆदल गॊङ्गुट यॊँडॆ, नालयंबु वॆँडलनडुचु टॊँडॆ
गानि चंपदगिन कर्मंबु सेसिन, जंपदगदु विप्रजाति बतिकि ॥ 173 ॥

अध्यायमु—८

व. इट्लश्वत्थामं ब्राणावशिष्टुं जेसि वॆँडलनडिचि पांडवुलु पांचालीसहितुलै पुत्रुलकु शोकिंचि मृतुलैन बंधुवुल कॆल्ल दहनादि कृत्यंबुलु जेसि जलप्रदानंबु सेयुकॊरकु स्त्रील मुंदल निडुकॊनि गोविंदुंडुनुं दारुनु गंगकुं जनि तिलोदकंबुलु सेसि क्रम्मर विलपिंचि हरिपादपद्मजात पवित्रंबुलैन भागीरथीजलंबुल स्नातुलै युन्नयॆँडं बुत्रशोकातुरुलैन गांधारी धृतराष्ट्रुलनु, गुंती द्रौपदुलनु जूचि माधवुंडु मुनींद्रुलु दानुनुं बंधुमरण शोकातुरुलैन वारल बगवु मानिचि मन्निचॆँ निव्विधंबुन ॥ 174 ॥

शा. पांचाली कबरी विकर्षण महापाप क्षतायुष्कुलं
जंचद्गर्वुल धार्तराष्ट्रुल नॆनि जंपिंचि गोविंदु डि-
प्पिंचॆन् राज्यमु धर्मपुत्रुनकु गल्पिंचॆन् महाख्याति जे
यिंचॆन् मूडु तुरंग मेधमुलु देवेंद्र प्रभावंबुनन् ॥ 175 ॥

कर देना चाहिए, किन्तु विप्रजाति (ब्राह्मण) को, वध करने योग्य दुष्कर्म करने पर भी, पति (राजा) को मार डालना नहीं चाहिए। १७३

अध्याय—८

[व.] इस प्रकार अश्वत्थामा को प्राणों से बचा छोड़कर (शिविर के) बाहर कर, पाण्डवों ने पांचाली-सहित हो, पुत्रों के लिए शोक कर, समस्त मृत बन्धुजनों के दहन-संस्कार आदि कृत्य किये। जलप्रदान करने के लिए स्त्रियों को आगे कर, स्वयं गोविन्द के साथ गंगा को जाकर, तिलोदक देकर, पुनः विलाप कर, हरि के चरण-कमलों से पवित्र बने भागीरथी (गंगा-) जल में स्नान किया। उस समय पुत्रशोक में व्याकुल हुए गांधारी तथा धृतराष्ट्र, कुन्ती तथा द्रौपदी को देख माधव ने मुनीन्द्रों के साथ बन्धुजनों की मृत्यु से शोकातुर लोगों को समझा-बुझाकर (सान्त्वना देकर) उनका दुःख दूर किया। और इस प्रकार — । १७४
[शा.] पांचाली की कबरी (जूड़ा) पकड़कर अपमानित करने के महापाप के कारण अपनी आयु को क्षीण कर लेनेवाले (और) विजृंभित गर्व वाले धार्तराष्ट्रों (दुर्योधन, दुश्शासन आदि) का युद्ध मे वध करवाकर, गोविन्द ने धर्मपुत्र (धर्मराज) को राज्य दिलवाया और देवेन्द्र-प्रभाव वाले तीन अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करवाकर, महायशस्वी बनाया। १७५

श्रीकृष्णुंडुत्तरा गर्भस्थुंडगु परीक्षितुनि दन चक्रंबुचे रक्षिंचुट

व. अंत वासुदेवुंडु व्यास प्रमुख भूसुरपूजितुंडै, युद्धव सात्यकुलु गोलुव, द्वारकागमन प्रयत्नंबुन बांडवुल वीड्कोनि, रथारोहणंबु सेयु समयंबुन दत्तरपडुचु नुत्तर सनुदेंचि कल्याण गुणोत्तरुंडैन हरि किट्लनियें ॥ 176॥

म. इदें कालानल तुल्यमैन विशिखं बेतेंचें देवेश ! ने-
डुदरांतर्गत गर्भ दाहमुनकै युग्राकृतिन् वच्चुचु-
न्नदि दुर्लोक्यमु मानुपन् शरण मन्यं बेमियुन् लेदु नी
पदपद्मंबुलॅ कानि योंडॅरुग नी वाणाग्नि वारिंपवे ॥ 177 ॥

कं. दुर्भर वाणानलमुन, गर्भमुलोनुन्न शिशुवु घन संतापा
विर्भावंबुनु बोंदेडि, निर्भर कृप गावुमय्य ! निखिलस्तुत्या ! ॥ 178 ॥

कं. चॅल्लॅलि कोडल नी मे, नल्लुडु शत्रुवुल चेत हतुडय्यॅनु सं
फुल्लारविंदलोचन !, भल्लाग्नि नणंचि शिशुवु ब्रतिकिंपगदे ॥ 179 ॥

आ. गर्भमंदु गमल गर्भांड शतमुलु, निमुडुकोन नटिंचु नीश्वरेश
नीकु नॊक्क मानिनी गर्भरक्षण, मॆंत बरुवु निर्वहिंतु गाक ॥ 180 ॥

श्रीकृष्ण का उत्तरा के गर्भस्थ परीक्षित की रक्षा अपने चक्र के द्वारा करना

[व.] तब वासुदेव व्यास आदि प्रमुख ब्राह्मणों से पूजित हो, उद्धव (तथा) सात्यकि से सेवाएँ लेते हुए, द्वारका को प्रस्थान करने के प्रयत्न में पाण्डवों से विदा लेकर, रथारोहण करते समय, व्याकुल होते हुए उत्तरा ने आकर कल्याणगुणोत्तम हरि से ऐसा कहा। १७६ [म.] हे देवेश ! यह (देखो) काल की अग्नि के समान बाण आ गया। आज उदर (पेट) के अन्तर्गत स्थित गर्भ के दाह के लिए उग्ररूप से आ रहा है। यह दुर्लोक्य है। [इस विपत्ति से] बचाने के लिए अन्य कोई शरण्य नहीं है। आपके पदपद्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती। इस वाणाग्नि को हटा दो न ! (रक्षा करो)। १७७ [कं.] हे सकल लोकों में स्तुत्य ! वाणों की दुर्भर अग्नि से गर्भस्थ शिशु महादुःखी हो रहा है। निर्भर (पूर्ण) कृपामती हो रक्षा करो। १७८ [कं.] मैं तुम्हारी बहिन की बहू हूँ, और तुम्हारा भानजा शत्रुओं के हाथों मारा गया। हे प्रफुल्लित अरविन्द लोचनवाले ! भल्ल (बाण) की अग्नि से शिशु को जीवित कर दो। १७९ [आ.] अपने गर्भ में शत-शत ब्रह्माण्डों को समा लेकर अभिनय करनेवाले हे ईश्वरेश्वर ! तुम्हारे लिए एक मानिनी के गर्भ की रक्षा करना कोई भार रूपी कार्य होगा क्या ? रक्षा करो न ! । १८० [व.] [ऐसा] कहने पर आश्रित-वत्सल परमेश्वर ने सुभद्रा की बहू के दीनालापों

व. अनिन नाश्रित वत्सलुंडैन परमेश्वरुंडु सुभद्र कोडलि दीनालापंबु लवधरिंचि, यिदि द्रोणनंदनुंडु लोकमंतयु नपांडवं बय्यॆडु ननि येसिन दिव्यास्त्रमनि यॆरिंगि। अंत पांडवुल कभिमुखंबै, द्रोण नंदनु दिव्यास्त्र निर्गत निशित मार्गणंबु डग्गरिन बॆगडिलक, वारुनु प्रत्यस्त्रंबु लंदुकॊनि पॆनंगु समयंबुन ॥ 181 ॥

म. तन सेवारतिं चित गानि परचिंता लेशमुन् लेनि स-
ज्जनुलं पांडुतनूजुलन् मनुपु वात्सल्यंबुतो द्रोणनं-
दनु ब्रह्मास्त्रमु नड्डुमुपॆट्ट वनिचॆन् दैत्यारि सर्वारि सा-
दन निर्वक्रमु रक्षिताखिल सुधांधश्चक्रमुं जक्रमुन् ॥ 182 ॥

म. सकल प्राणि हृदंतराळमुल भास्वज्ज्योतियै युंडु सू-
क्ष्मकळं डच्युतु डय्यॆडन् विरटजा गर्भंबु दा जक्रह-
स्तकुडै वैष्णवमाय गप्पि कुरुसंतानार्थियै यड्डुमै
प्रकटस्फूर्ति नणंचॆ द्रोणतनय ब्रह्मास्त्रमुन् लीलतोन् ॥ 183 ॥

व. इट्लु द्रोणतनयुं डेसिन प्रतिक्रिया रहितंबैन, ब्रह्मशिरं बनियॆडि दिव्यास्त्रंबु वैष्णवतेजंबुन निरर्थकंबय्यॆ। निजमाया विलसनमुन सकललोक

को अवधारण कर (सुनकर) द्रोणनन्दन (अश्वत्थामा) के द्वारा 'सारा लोक अपाण्डव हो जाय' इस उद्देश्य से प्रयुक्त दिव्यास्त्र है, यह जान गये। तब द्रोणनन्दन के दिव्यास्त्र से निकली शर-परम्परा के पाण्डवों के अभिमुख हो आते हुए समीप पहुँचने पर, भयभीत न हो, पाण्डवों के प्रत्यस्त्र लेकर संघर्षरत होते समय में। १८१ [म.] अपनी (श्रीकृष्ण की) सेवा-रति के अतिरिक्त किञ्चित् भी अन्य चिन्ता न करने वाले सज्जन पाण्डुपुत्रों पर वात्सल्य-भाव से, रक्षा करने हेतु ब्रह्मास्त्र को रोकने के निमित्त दैत्यारि ने सर्व-अरि-वर्ग के पराक्रम को मिटाने में अप्रतिम, अखिल-सुधा-अन्धस् (देवताओं) की रक्षा करनेवाले चक्र को भेजा। १८२ [म.] सकल प्राणियों के हृदन्तराल में ज्योतिस्वरूप सूक्ष्मकला के रूप में विराजमान अच्युत ने तब विरटजा (उत्तरा) के गर्भ (पुत्र) को स्वयं चक्रपाणी हो (चक्र धारण कर) वैष्णव-माया से आच्छादित कर, कुरु-सन्तान की रक्षा के लिए कटिबद्ध होकर प्रकट रूप से द्रोणतनय (अश्वत्थामा) के ब्रह्मास्त्र को लीला-स्वरूप (सरल रीति से) दबा दिया। (ब्रह्मास्त्र का निवारण किया)। १८३ [व.] इस प्रकार द्रोणपुत्र के द्वारा प्रेषित, प्रतिक्रिया-रहित (अकाट्य), ब्रह्मशिर नामक दिव्यास्त्र वैष्णव तेज के कारण निरर्थक (बेकार) हो गया। अपनी माया के विलास के कारण सकल लोक के सृष्टि, स्थिति (तथा) संहार करनेवाले हरि के लिए धरणीसुर (ब्राह्मण— अश्वत्थामा) के बाण का निवारण करना

सर्गस्थिति संहारंबु लाचरिंचुनट्टि हरिकि, धरणीसुर बाण निवारणंबु विचित्रंबुगादु। तत्समयंबुन संतसिंचि, पांडव पांचालपुत्रिका सहितयै गोंति गमनोन्मुखुंडैन हरिं जेरवच्चि यिट्लनियें ॥ 184 ॥

कुंतीदेवि श्रीकृष्णुनि स्तुतिंचुट

क. पुरुषुं डाद्युडु प्रकृतिकि, वरुडव्ययु डखिल भूत बहिरंत र्भा-
सुरुडु नवलोकनीयुडु, परमेश्वरुडैन नीकु प्रणुतुलगु हरी ! ॥ 185 ॥

व. मरियु जवनिक मरुवुन नाट्यंबु सलुपु नटुनि चंदंबुन, माया जवनिकांतराळंमुन निलुवंबडि, महिमचे बरमहंसलु, निवृत्तराग द्वेषुलु, निर्मलात्मुलु नैन मुनुलकु नदृश्यमानुंडवै, परिच्छिन्नुंडवु गानि नीवु मूढदृक्कुलु, गुटुंबवतुलु नगु माकु नॆट्लु दर्शनीयुंड वय्येदु ? श्रीकृष्ण ! वासुदेव ! देवकीनंदन ! नंदगोपकुमार ! गोविंद ! पंकजनाभ ! पद्म मालिकालंकृत ! पद्मलोचन ! पद्मसंकाश चरण ! हृषीकेश ! भक्तियोगंबुनं जेसि नमस्करिंचॆद नवधरिंपुमु ॥ 186 ॥

सी. तनयुल तोडने दह्यमानंबगु, जतु गृहंबंदुनु जावकुंड
गुरुराजु वॆट्टिचु घोरविषंबुल मारुत पुत्रुंडु सडियकुंड

विचित्र [कार्य] नहीं है। उस समय में सन्तोष पाकर, पाण्डव तथा पांचाल-पुत्री (द्रौपदी) के साथ कुन्ती ने चल पड़ने को उद्यत हरि के समीप पहुँचकर इस प्रकार कहा। १८४

कुन्तीदेवी का श्रीकृष्ण की स्तुति करना

[कं.] हे हरि ! परमपुरुष, श्रेष्ठ, प्रकृति से अतीत (परे), अव्यय, अखिल भूतों (प्राणि-कोटि) में भीतर-बाहर भासित होनेवाले, अवलोकनीय (दर्शन करने योग्य) [और] परमेश्वर हो, तुम्हें प्रणाम। १८५ [व.] और यवनिका के पीछे नाट्य करनेवाले नट की भाँति, मायापट के अन्तराल में स्थित हो, [अपनी] महिमा के कारण परमहंसों को, राग-द्वेष-रहित जनों को, निर्मल आत्मावाले मुनियों को अदृश्यमान होते हुए, परिच्छिन्न (सृष्टि से अलग दिखायी) नहीं होते हो। ऐसे तुम मूढ़ दृष्टिवाली, कुटुम्बवती हो, हमें कैसे दर्शनीय होते (दिखायी देते) हो ? [फिर भी तुम्हारे दर्शन करती ही रहती हैं, भक्ति के प्रभाव से] कृष्ण ! वासुदेव ! देवकीनन्दन ! नन्दगोपकुमार ! गोविन्द ! पंकजनाभ ! पद्ममालिकालंकृत ! पद्मलोचन वाले ! पद्मसंकाश चरणवाले ! हृषीकेश ! भक्तियोग से नमस्कार करती हूँ। ध्यान दो ! १८६ [सी.] पुत्रों-सहित दह्यमान (जलनेवाले) लाक्षागृह में मर

धार्तराष्ट्रुडु समुद्धति जीर लॊलुवंग द्रौपदि मानंबु दलगकुंड
गांगेय कुंभज कर्णादि घनुलचे ना विड्डलनि लोन नलगकुंड
ते. विरटु पुत्रिक कडुपुलो वॆलयु चूलु, द्रोणनंदन शरवह्नि द्रुंगकुंड
मर्रियु रक्षिंचितिवि पॆक्कुमार्गमुलनु, निन्नुनेमनि वर्णितु नीरजाक्ष !॥187॥

म. बल्लिदुंडगु कंसुचेतनु बाधनॊंदुचुनुन्न मी
तल्लि गाचिन भंगि गाचिति धार्तराष्ट्रुलचेत ने
वल्लडंबुन जिक्ककुंडग दावकीन गुणव्रजं
बॆल्ल संस्तुति सेसि चॆप्पग नॆंतदान जगत्पती ! ॥ 188 ॥

क. जननमु नैश्वर्यंबुनु, धनमुनु विद्ययुनु गल मदच्छन्नु लकिं
चन गोचरुडगु निन्नुन्, विनुतिंपग लेरु निखिल विबुधस्तुत्या ! ॥ 189 ॥

व. मर्रियु भक्तधनुंडुनु, निवृत्त धर्मार्थ काम विषयुंडुनु, आत्मारामुंडुनु, रागादि रहितुंडुनु, कैवल्यदान समर्थुंडुनु, कालरूपकुंडुनु, नियामकुंडुनु, नाद्यंत शून्युंडुनु, विभुंडुनु, सर्वसमुंडुनु, सकलभूत निग्रहानुग्रहकरुंडु नैन निन्नु दलंचि नमस्करिंचॆद नवधरिंपुमु। मनुष्युल विड्डंबिंचु भवदीय

जाने से, कुरु राजा दुर्योधन के द्वारा प्रयुक्त घोर विषों के कारण मारुत-पुत्र (भीम) का मरने से, धार्तराष्ट्र (दुश्शासन) के उद्धत हो वस्त्रापहरण करते समय द्रौपदी को मान-भंग से, गांगेय (गंगा का पुत्र, भीष्म), कुम्भज (द्रोण), कर्ण आदि घन (महान) वीरों के हाथों में युद्ध में मेरे पुत्रों को मरने से, [ते.] विराट-पुत्री के गर्भ में विलसित पिण्ड को द्रोणनन्दन (अश्वत्थामा) के शर (वाण) की वह्नि (अग्नि) से खंडित होने से, और भी कई मार्गों में (उपायों से) [कई वार] तुमने हमारी रक्षा की। हे नीरजाक्ष (कमल-लोचनवाले) ! [उन सवका] मैं कैसे वर्णन करूँ ? १८७ [म.] हे जगत्पति ! वल्लिद (कठिन, क्रूर) कंस से पीड़ित होनेवाली तुम्हारी माँ की रक्षा करने की रीति से, धार्तराष्ट्रों के हाथ व्याकुल वनी मुझे भीत होने से तुमने वचाया। तावकीन-गुणव्रज (तुम्हारे गुणगणों) की स्तुति कर कहने में मैं कहाँ समर्थ हूँ। १८८ [कं.] हे सकल विवुधों से स्तुत्य ! जन्म, ऐश्वर्य, धन और विद्या से युक्त जन, जो मद से आच्छन्न हैं, अकिंचन-गोचर हो तुम्हारी स्तुति नही कर सकते। १८९ [व.] और भक्तजन ही जिसका धन हैं, जो धर्म, अर्थ, काम विषयों से निवृत्त हो गया है, जो आत्माराम है, जो रागादि-रहित है, जो कैवल्य (मोक्ष) को प्रदान करने में समर्थ है, जो कालस्वरूप है, जो नियामक है, जो आदि-अन्त-रहित है, जो विभु है, जो समदृष्टि वाला है, जो सकल भूतों (प्राणि-कोटि) पर निग्रह-अनुग्रह करनेवाला है, ऐसे तुम्हारा स्मरण कर, नमस्कार करती हूँ, ध्यान दो ! मनुष्यों को भ्रम में

विलसनंबु निर्णयिप नॅव्वडु समर्थुंडु? नीकु ब्रियाप्रियुलु लेरु; जन्मकर्म शून्युंडवैन नीवु तिर्यगादि जीवुलयंदु वराहादि रूपंबुलनु, मनुष्युलंदु रामादि रूपंबुलनु, ऋषुलयंदु वामनादि रूपंबुलनु, जलचरंबुलयंदु मत्स्यादि रूपंबुलनु, नवतरिंचुट लोकविडंबनार्थंबु गानि, जन्मकर्म सहितुंडवगुटं गादु ॥ 190 ॥

उ. कोपमुतोड नीवु दधिकुंभमु भिन्नमु सेयुचुन्नचो
गोपिक द्राट गट्टिन विकुंचित सांजन बाष्प तोयधा-
रा परिपूर्ण वक्त्रमु गरंबुल ब्रामुचु वॅच्च नूर्चुचुं
बापडवै नटिंचुट गृपापर! ना मदि जोद्यमय्यॅडिन् ॥ 191 ॥

कं. मलयमुन जंदनमु क्रिय, वॅलयग धर्मजुनिकीर्ति वॅलयिंचुटकै
यिलपै नभवुडु हरि यदु, कुलमुन नुदयिंचॅ नंड्रु, गॊंदरनंता! ॥ 192 ॥

कं. वसुदेव देवकुलु दा, पसगति गतभवमुनंदु ब्राथिंचिन सं-
तसमुन बुत्रत नॊंदिति, वसुरुल मृतिकंचु गॊंद रंड्रु, महात्मा! ॥193॥

कं. जलराशिलो मुनिगॆडि, कलमु क्रियन् भूरिभार कर्शित यगु नी
यिल गाव नजुडु गोरिन, गलिगिति वनि कॊंद रंड्रु, गणनातीता! ॥194॥

डालनेवाले तुम्हारे विलास का निर्णय करने में कौन समर्थ है? (अर्थात् कोई भी नहीं।) तुम्हें प्रिय-अप्रिय कोई नहीं है। जन्म और कर्म से शून्य तुम्हारा तिर्यक (पशु) आदि जीवों में वराह आदि रूपों में, मनुष्यों में रामादि रूपों में, ऋषियों में वामनादि रूपों में, जलचरों में मत्स्यादि रूपों में, अवतरित होना लोकों (लोगों) को मात्र विडम्बना (धोखा) देने के लिए है, जन्म और कर्म से युक्त (फँसे) रहने के लिए नहीं है। १९० तुम्हारे दधि-कुम्भ को फोड़ने पर, क्रोध में आकर गोपिका के रस्सी से बाँध देने पर, विकुंचित [तथा] कजरारी आँखों से आँसू की धाराओं से परिपूर्ण वक्त्र (मुख) को हाथों से मलते हुए, गरम आहें भरते हुए, (अबोध) बालक के रूप में अभिनय करना, हे कृपावर! मेरे मन में आश्चर्यप्रद है। १९१ [कं.] हे अनन्त! कुछ लोग कहते हैं कि मलय [वन] में चन्दन की भाँति, धर्मराज की कीर्ति को उद्दीप्त करने के निमित्त अभव (जन्म-रहित) हरि ने यदुकुल में जन्म लिया। १९२ [कं.] हे महात्मा! कुछ लोग कहते हैं कि वसुदेव तथा देवकी के गतजन्म में तपस्या कर प्रार्थना करने के कारण, आनन्द के साथ उनको पुत्र-रूप में, असुर-वध के लिए पैदा हुए हो। १९३ [कं.] हे गणनातीत (जिसको गिना नहीं जा सकता)! जलराशि में डूबनेवाली नौका की भाँति इस धरती के अत्यधिक भार से कृशित होने पर, उसकी रक्षा करने की अज (ब्रह्मा) की इच्छा पर तुम उत्पन्न हुए हो, ऐसा कुछ लोग कहते

ते. मऱचि यज्ञान काम कर्ममुल दिरुगु
वेदनातुरुलकु दक्षिवृत्ति जेय
श्रवण चिंतन वंदनार्चनमुलिच्चु,
कॊऱकु नुदयिंचितंड्रु निन् गॊदऱभव ! ॥ 195 ॥

म. निनु जिंतिपुचु वाडुचुं बॊगडुचु न्नी दिव्य चारित्रमुल्
विनुचुं जूतुरुगाक लोकुलितरान्वेषंबुलं जूतुरे
घन दुर्जन्म परंपरा हरण दक्षंबै महायोगि वा-
ग्विनुतंबैन भवत्पदाब्ज युगमुन् विश्वेश ! विश्वंभरा ! ॥ 196 ॥

व. देवा ! निराश्रयुलमै भवदीय चरणारविंदमुल नाश्रयिंचि नी वारलमैन मम्मु विडिचि विच्चेय नेल ? नी सकरुणावलोकनंबुल नित्यंबुनु जूडवेनि यादव सहितुलैन पांडवुलु जीवुनि वासिन यिंद्रियंबुल चंदंबुन गीर्तिसंपदलु लेक तुच्छत्वंबु नॊंदुदुरु। कल्याणलक्षण लक्षितंबुलैन नी यडुगुलचेत नंकितंबैन यी धरणीमंडलंबु नीवु वासिन शोभितंबु गादु। नी कृपा वीक्षणामृतंबुन निक्कडि जनपदंबुलु गुसुम फल भरितंबुलु, नोषधि तरु लता गुल्म नद नदी नग सागर समेतंबुलुनै युंड्रु ॥ 197 ॥

हैं। १९४ [ते.] हे अभव (जन्म-रहित) ! अपने-आपको (निज स्थिति को) भूलकर अज्ञान से काम-कर्म (फल की इच्छा से किये जानेवाले काम) आदि मे विचरण करनेवाले वेदनातुर लोगो की वेदना के निवारण हेतु श्रवण, चिन्तन, वन्दन, अर्चना [आदि] प्रदान करने हेतु तुम उदित हुए हो, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। १९५ ! [म.] हे विश्वेश ! हे विश्वंभर (विश्व का भरण करनेवाले) ! तुम्हारा चिंतन करते हुए, [गुण] गान करते हुए, प्रशंसा करते हुए, तुम्हारे दिव्य चरित्र सुनते हुए लोग तुम्हारे पदाब्जयुग्म को, जो घन-दुर्जन-परंपरा के हरण मे दक्ष (समर्थ) हैं [और] महायोगि-वाग्विनुत (महायोगियों के वचनो द्वारा प्रशंसित) हैं, इतर (अन्य) [प्रकार के] अन्वेषणों से देख सकते हैं क्या ? (नहीं) १९६ [व.] हे देव ! निराश्रय बनकर, तुम्हारे चरणारविंदों का आश्रय पाकर, [तुम्हारे] अपने हुए। ऐसे हमें छोड़ जाना क्यों ? अपने करुणापूरित अवलोकनो (चितवनो) से प्रतिदिन नही देखोगे, तो यादव-सहित पाण्डव, जीव से बिछुड़े हुए इन्द्रियों की रीति, कीर्ति व सम्पदाओं से वंचित हो तुच्छत्व (क्षुद्रत्व) को प्राप्त करेंगे। कल्याण लक्षणों से विलसित तुम्हारे चरणों से अंकित यह धरणीमण्डल तो [तुम्हारे] बिछुड़ जाने पर [यह] शोभित नहीं होगा। तुम्हारी कृपा की चितवनों के अमृत के कारण यहाँ के जनपद कुसुम-फल-भरित, [तथा] ओषधियों, तरु, लता, गुल्म, नद, नदी, नग (पहाड़), सागर-सहित हो सुविलसित रहेंगे। १९७

उ. यादवुलंदु बांडुसुतुलंदु नधीश्वर ! नाकु मोहवि-
च्छेदमु सेयुमय्य ! घर्नासधुवु जेरेंडि गंग भंगिनी
पादसरोज चिंतनमुनै ननिशंबु मदीयबुद्धि न-
त्यादरवृत्तितो गदियु नट्लुग जेयगदय्य ! यीश्वरा ! ॥ 198 ॥

शा. श्रीकृष्णा ! यदुभूषणा ! नरसखा ! शृंगार रत्नाकरा !
लोकद्रोहि नरेंद्रवंश दहना ! लोकेश्वरा ! देवता
नीक ब्राह्मण गोगणार्ति हरणा ! निर्वाण संधायका !
नीकुन् म्रोक्केंद द्रुंपवे भवलतल् नित्यानुकंपानिधी ! ॥ 199 ॥

व. अनि यिट्लु सकल संभाषणंबुल नुतियिंचु गोंति माटलकु नियकोनि, गोविंदुड् माया निरूढ संदहास विशेषंबुन मोहंबु नोंदिचि, रथारूढुंडै करिनगरंबुनकु वच्चि, कुंती सुभद्रादुलन् वीड्कोनि, तन पुरंबुनकु विच्चेय नर्मकिंचि, धर्मराजुचे गिंचित्कालंबु निलुवुमनि, प्रार्थितुंड निलिचि। अंत बंधुवध शोकातुरुंडैन धर्मजुड् नारायण व्यास धौम्यादुलचेत देलुपंबडियु देलियक मोहितुंडै निर्विवेकंबुन निट्लनियें ॥ 200 ॥

म. तन देहंबुनकै यनेक मृगसंतानंबु जंपिचु दु-
र्जनु भंगिन् गुरु बालक द्विजतनूज भ्रातृसंघंबु नि-

[उ.] हे अधीश्वर ! यादव [तथा] पाण्डुपुत्रों में (के प्रति), मेरे मोह का विच्छेद करो। महासागर को प्राप्त होनेवाली गंगा की भाँति तुम्हारे चरण-सरोज के चिन्तन में अनिश (दिन-रात) मेरी बुद्धि अत्यन्त आदर भाव से नियराए (रमी रहे), ऐसा करो न हे ईश्वर ! १९८ [शा.] हे श्रीकृष्ण ! हे यदुभूषण (यदुकुल के लिए अलंकारस्वरूप) ! हे नर-सखा (अर्जुन के सखा) ! हे शृंगार-रत्नाकर (शृंगाररस के सागर) ! लोकद्रोही-नरेन्द्र वंशों को जलाकर नाश कर देनेवाले ! हे लोकेश्वर ! देवतानीक (समूह)-ब्राह्मण (तथा) गोगण की आर्ति को मिटानेवाले ! निर्वाण (जन्मराहित्य) के संधायक (प्रदान करनेवाले) ! नित्य-अनुकम्पा के निधी ! तुम्हें प्रणाम करती हूँ। भवलताओं को काट दो न। १९९ [व.] इस प्रकार अनेक सम्भाषणों (वचनों) से स्तुति करनेवाली कुन्ती की बातों को मानकर, गोविन्द ने माया-निरूढ विशेष-मन्दहास से मोहित कर, रथारुढ़ हो करिनगर (हस्तिनापुर) को आकर, कुन्ती, सुभद्रादि को विदा कर अपने पुर को पधारने का संकल्प कर, धर्मराज से किंचित् समय के लिए रुक जाने को प्रार्थित हो, रुक गया। तब बन्धुओं के वध से शोकातुर हो धर्मज ने नारायण, व्यास, धौम्य आदि से समझाए जाने पर भी अबोध हो, मोहित हो निर्विवेक से ऐसा कहा। २०० [म.] अपनी देह के लिए अनेक पशुओं का वध करनेवाले दुर्जन की भाँति

ट्लनि जंपिचिन पापकर्मुनकु राज्यकांक्षिकिन् नाकु हा
यन लक्षावधिनैन घोर नरक व्यासंगमुलमानुने ॥ 201 ॥

व. मरियु प्रजापरिपालन परुंडैन राजु धर्मयुद्धंबुन शत्रुवुल वधियिंचिन बापंबु लेदनि शास्त्रवचनंबु गलदु। अयिन नदि विज्ञानंबु कोंड्रकु समर्थंबु गादु। चतुरंगंबुल ननेकाक्षौहिणी संख्यातंबुलं जंपिचिति। हतबंधुलैन सतुल केनु जेसिन द्रोहंबु दप्पिचुकोंन नेर्पु लेदु। गृहस्थाश्रम धर्मंबुलैन तुरंगमेधादि यागंबुलचेतं बुरुषुंडु ब्रह्महत्यादि पापंबुलवलन विडिवडि निर्मलुंडगु ननि निगमंबुलु निगमंचु। पंकंबुन पंकिल स्थलंबुनकुनु मद्यंबुन मद्यभांडमुनकुनु शुद्धि संभविपनि चंदंबुन, बुद्धिपूर्वक जीवहिंसनंबुलैन यागंबुल चेतं बुरुषुलकु पापबाहुळ्यंबु कानि पापनिर्मुक्ति गादनि शंकिंचेद ॥ 202 ॥

अध्यायमु—९

कं. अनि यिट्लु धर्मसूनुडु, मौनसि निराहार भावमुन देवनदी
तनयुडु गूलिनचोटिकि, जनियें प्रजाद्रोह पापचलितात्मुंडै ॥ 203 ॥

गुरु, बालक, द्विज, तनूज (पुत्र) [तथा] भाइयों के समूह का वध करा देने वाला पापकर्मा एवं राज्य का आकांक्षी हूँ। ऐसे मुझे लाखों वर्षों की अवधि पर्यन्त [अति पीड़ाकर] घोर नरक यातनाएँ कैसे दूर होंगी ? २०१
[व.] और फिर प्रजा के पालन में निमग्न राजा के लिए धर्मयुद्ध में शत्रुओं का वध करना कोई पाप है, ऐसा शास्त्र-वचन (शास्त्रों की मान्यता) है। फिर भी वह विज्ञान की दृष्टि में समर्थ (अच्छा अर्थ वाला) नही है। चतुरंग-सेनाओं को, असंख्य अक्षौहिणियों को मरवाया। मारे गये वन्धुजनों वाली सतियों के प्रति मैंने जो द्रोह किया, उससे बचने का कोई उपाय नही है। तुरंग (अश्व-) मेधादि यज्ञ, जो गृहस्थाश्रम के धर्म हैं, करने से पुरुष ब्रह्महत्यादि पापों से छूटकर निर्मल हो जाता है, ऐसा निगम (वेद) नियमित करते है। पंक से पंकिल-स्थल को एवं मद्य से मद्य-भरे घड़े को शुद्धता प्राप्त नहीं होती, उसी रीति से बुद्धिपूर्वक (जान-बूझकर) जीव-हिंसा से युक्त यज्ञ के कारण पुरुषों को पाप की बहुलता ही होगी, पापविमोचन नहीं होगा, ऐसा मेरा सन्देह है। २०२

अध्याय—९

[कं.] इस प्रकार प्रजाद्रोह के पाप की चिन्ता में विचलित मन वाले धर्मराज ने सप्रयत्न निराहारव्रत (अनशनव्रत), लिये हुए, देवनदी-तनय (गंगापुत्र-भीष्म) के गिरे हुए स्थान को प्रस्थान किया। २०३

धर्मराजु श्रीकृष्णसहितुंडै शरतल्पगतुंडगु भीष्मुनिकड केगुट

व. अय्यवसरंबुनं दक्किन पांडवुलुनु, फल्गुनसहितुंडैन पद्मलोचनुंडुनु, कांचन समुचितंबुलैन रथंबुलॅक्कि धर्मजुं गूडिचन, नतंडु गुह्यक सहितुंडैन कुबेरुनि भंगि नॊप्पॆ। इट्लु पांडवुलु परिजनुलु गॊलुव बद्मनाभ सहितुलै कुरुक्षेत्रंबुन केगि, दिवंबुनुंडि नेलं गूलिन देवत तॆरंगुन संग्राम पतितुंडैन गंगानंदनुनकु नमस्करिंचिरि। अंत बृहदश्व भरद्वाज परशुराम गौतम पर्वत नारद बादरायण कश्यपांगिरस कौशिक धौम्य सुदर्शन शुक वसिष्ठाद्यनेक राजर्षि देवर्षि ब्रह्मर्षुलु शिष्य समेतुलै चनुदॆंचिनं जूचि संतसिंचि देशकालविभाग वेदि यैन भीष्मुंडु वारलकुं बूजनंबुलु सेयिंचि ॥ 204 ॥

कं. मायांगीकृत देहुं, डै यखिलेश्वरुडु मनुजु डैनाडनि प्र-
ज्ञायत चित्तंबुन गां, गेयुडु पूजनमु सेसॆं गृष्णुन् जिष्णुन् ॥ 205 ॥

व. मरियुं गंगानंदनुंडु विनयप्रेम सुंदरुलैन पांडुनंदनुलं गूर्चुंड नियोगिंचि, महानुराग जनित बाष्प सलिल संदोह सम्मिळित लोचनुंडै यिट्लनियॆ ॥ 206 ॥

धर्मराज का श्रीकृष्ण-सहित हो शरतल्पगत भीष्म के यहाँ जाना

[व.] उस अवसर पर शेष सब पाण्डव और फल्गुन (अर्जुन) सहित हो पद्मलोचन वाले (कमलनयन वाले कृष्ण) सोने के रथों पर आरूढ़ हो, धर्मराज को साथ लेकर चल पड़े, तब वह गुह्यक (यक्ष)-सहित कुवेर की भाँति सुशोभित हुआ। इस प्रकार पाण्डव परिजनों की सेवाएँ लेते हुए, पद्मनाभ (विष्णु) के साथ कुरुक्षेत्र को गये। आकाश से धरती पर गिरे हुए देवता की रीति युद्ध में धराशायी बने गंगानन्दन (भीष्म) को नमस्कार किया। तब वृहदश्व, भरद्वाज, परशुराम, गौतम, पर्वत, नारद, वादरायण, कश्यप, अंगीरस, कौशिक, धौम्य, सुदर्शन, शुक, वशिष्ठ आदि अनेक राजर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षियों के अपने-अपने शिष्यगण के साथ आये हुए देखकर आनन्दित हो, देशकाल-परिस्थिति के ज्ञाता भीष्म ने उन सबकी पूजाएँ करवाकर, २०४ [कं.] अखिलेश्वर (सर्वेश्वर) ने माया से अंगीकृत देहवाला हो, मानव-रूप ले लिया, ऐसा प्रज्ञापूर्ण (ज्ञान से पूर्ण) चित्त से गांगेय (भीष्म) ने जानकर उस कृष्ण व जिष्णु (विजयशीलो) की पूजा की। २०५ [व.] और फिर गंगानन्दन ने विनय, प्रेम से सुशोभित पाण्डुनन्दनों को बैठने की आज्ञा कर, अत्यन्त अनुराग से उत्पन्न आँसू की धाराओं से युक्त लोचनवाले होते हुए, इस प्रकार कहा। २०६ [आ.] वत्स ! धरणीसुर (तथा) हरि और धर्म को

आ. धरणीसुरुलु हरियु धर्मंबु दिक्कुगा,
क्रतुकदलचि मीरु बहुविधमुल
नन्नलार ! पडिति रापत्परंपर,
लिट्टि चित्रकर्म मद्यु गलदे ! ॥ 207 ॥

उ. संतस मिंत लेदु मृगशाप वशंबुन बांडु भूविभुं
डंतमु नॊंदि युंड मिमु नर्भकुलं गॊनिवच्चि कांक्षतो
नितटि वारिगा वॆनिचॆं नॆन्नडु सौख्यमु पट्टु गान दी
कुंति यनेक दुःखमुल गुंदुचु नुन्नदि भाग्यमॆट्टिदो ! ॥ 208 ॥

उ. वायु वशंबुलै यॆगसि वारिधरंबुलु मिट गूडुचुं
बायुचु नुंडु कैवडि प्रपंचमु सर्वमु गालतंत्रमै
पायुचु गूडुचुंडु नॊकभंगि जरिंपदु काल मन्नियुं
जेयुचुनुंडु गालमु विचित्रमु दुस्तर मॆट्टिवारिकिन् ॥ 209 ॥

उ. राजट धर्मजुंडु सुरराज सुतुंडट धन्वि शात्रवो
द्वेजकमैन गांडिवमु विल्लट सारथि सर्व भद्र सं-
योजकुडैन चक्रियट युग्र गदा धरुडैन भीमुड-
य्याजिकि दोडु वच्चुनट यापद गल्गुट येमि चोद्यमो ! ॥ 210 ॥

आधार मानकर जीने की इच्छा से तुम लोगों ने अनेक प्रकार के दुःख झेले। ऐसे विचित्र कर्म और कहीं सम्भव नहीं होते। २०७ [उ.] कुन्ती ने (अपने जीवन में) आनन्द नहीं पाया है मृग के शाप के कारण पाण्डु राजा के समाप्त होने पर, जब तुमने अर्भकों (नादान शिशुओं) को लाकर, कांक्षा (महत्त्वाकांक्षा) से (पाल-पोसकर) इतना बड़ा बनाया है। कभी इसने अपने सुख का ध्यान नहीं रखा है। इस प्रकार कुन्ती दुःखित है, पता नहीं इसका भाग्य कैसा लिखा है। २०८ [उ.] वायु के वश हो [ऊपर] उठकर बादल आकाश में जिस प्रकार इकट्ठे होते और बिखर जाते रहते हैं, उसी प्रकार समस्त जगत काल के वश हो बिछुड़ जाते और एकत्रित होते हुए कभी एक-जैसा संचरण नहीं करता। काल सब कुछ करता रहता है, काल [की गति] विचित्र है, [कितना भी महान व्यक्ति क्यों न हो, उसके लिए भी] काल दुस्तर है। २०९ [उ.] सुना है, धर्मज (युधिष्ठिर) राजा है, सुरराज-सुत (अर्जुन), धनुर्धर है, शत्रुओं को उत्तेजित करनेवाला गाण्डीव धनुष है, सर्वभद्र (सर्वमंगल) को सम्पन्न करनेवाला चक्रि (चक्रधारी विष्णु) सारथी है, उग्र रूप में गदा धारण करनेवाला भीमसेन उस युद्ध में साथ दे रहा है, फिर भी विपत्ति आ पड़ी है ? (यह) कैसा आश्चर्यजनक है ! २१०

आ. ईश्वरुंडु विष्णुडॆव्वेळ नॆव्वनि, नेमि सेयु बुरुषुडेमि यॆरुगु ?
नतनि मायतकु महात्मुलु विद्वांसुलु, लणगि सॆलगुचुंडु रंधुलगचु ॥211॥

व. कावुन दैवतंत्रं बैन पनिकि वगवं बनिलेदु। रक्षकुलु लेनि प्रजल नुपेक्षिपक रक्षिपक बुंडरीकाक्षुंडु साक्षात्करिंचिन नारायणुंडु तेजोनिरूढुंडु गाक यादवुलंदु गूढुंडै तन मायचेत लोकंबुल मोहातिरेकंबु नॊंदिचुनु। अतनि रहस्यप्रकारंबुलु भगवंतुंडैन शिवुं डॆरुगु। मरियु देवर्षियगु नारदुंडुनु, भगवतुंडगु कपिलमुनियु नॆरुंगुदुरु। मीरु कृष्णुंडु देवकीपुत्रुंडनि मातुलेयुंडनि तलंचि दूत सचिव सारथि बंधुमित्रप्रयोजनंबुल नियमिंचुटु रिन्निटं गीरतलेदु। रागादि शून्युंडु, निरहंकारुं, डद्वयुंडु, समदर्शनुंडु, सर्वात्मकुंडुनैन यीश्वरुनकु नतोन्नतभाव मतिवैषम्यंबु लॆक्कडिवि ? लेवु। अयिन भक्तवत्सलुंडु गावुन, नेकांत भक्तुलकु सुलभुंडै युंडु ॥ 212 ॥

सी. अतिभक्ति नॆव्वनियंदु जित्तमु जेर्चि यॆव्वनिनाम मूहिंचि पॊगडि
कायंबु विडुचुचु गाम कर्मादि निर्मूलनुंडै योगि मुक्तिनॊंदु
नट्टि सर्वेश्वरुंडखिल देवोत्तमुं डॆव्वेळ नाणंबुलेनु विडुतु
नंदाक निंदॆ मंदहासुडै विकसित वदनारविंदुडै वच्चि नेडु

[आ.] ईश्वर (अधिकारी) विष्णु कब, किसका, क्या करेगा, पुरुष क्या जाने ? उसकी मायाओं के कारण महात्मा लोग, विद्वान् भी अन्धों की नाईं उसके आधीन हो आचरण करते रहते है। २११ [व.] इसलिए दैवतंत्र के कार्य के लिए चिन्तित नहीं होना है। रक्षक-रहित प्रजा की उपेक्षा न कर रक्षा करने के निमित्त पुण्डरीकाक्षवाला नारायण के रूप में साक्षात्कृत (प्रगट) हुए। तेजोसम्पन्न हो, यादवों में गूढ़रूप में स्थित हो अपनी माया के कारण लोकों में मोहातिरेक पैदा करते हैं। उसके रहस्य के प्रकारों को भगवान शिवजी जानते हैं। फिर देवर्षि नारद, भगवान कपिलमुनि जानते हैं। आप लोग कृष्ण को देवकी-पुत्र तथा मातुलपुत्र (फूफी का बेटा) मानकर, (उनको) दूत, सचिव, सारथी, बन्धु, मित्रादि रूप में प्रयोजन के लिए नियमित करने में दोष नहीं है। (क्योंकि) रागादि-शून्य, निरहंकारी, अद्वय (द्वैतभाव से रहित), समदर्शी, सर्वात्मा ईश्वर के लिए नत-उन्नत (ऊँच-नीच) भाव से [उत्पन्न] मति का वैषम्य कहाँ होते हैं ? नहीं हैं। फिर भी भक्तवत्सल होने के कारण एकान्त (अनन्य) भक्तों के लिए सुलभ हो रहते है। २१२ [सी.] अत्यन्त भक्ति से जिसमें मन लगाकर, जिसके नाम की भावना करते हुए, स्तुति करते हुए काम-कर्म-आदि का निर्मूलन कर योगी, (अपना) शरीर छोड़ मोक्ष को प्राप्त करता है, ऐसा सर्वेश्वर, अखिल देवों में श्रेष्ठ मेरे प्राणत्याग करने

ते. नालुगु भुजमुलु गमलाभनयनयुगमु
नॊप्पगन्नुल मुंदट नुन्नवाडु
मानवेश्वर ! ना भाग्यमहिम जूडु
मेमि सेसितिनो ! पुण्यमितनि गूर्चि ॥ 213 ॥

व. अनि यिट्लु धनंजय संप्रापित शरपंजरुडैन कुरुकुंजरुनि वचनंबुलु विनयंबुन नाकर्णिंचि मुनुलंदरु विनुचुनुंड धर्मनंदनुंडु मंदाकिनी नंदनुवलन नरजाति साधारणंबुलगु धर्मंबुलुनु वर्णाश्रम धर्मंबुलुनु राग वैराग्योपाधुलतो गूडिन प्रवृत्ति निवृत्ति धर्मंबुलुनु दान धर्मंबुलुनु, राजधर्मंबुलुनु, स्त्री धर्मंबुलुनु, शम दमादिकंबुलुनु, हरितोषणंबु लगु धर्मंबुलुनु, धर्मार्थ काममोक्षंबुलुनु नानाविधोपाख्यानेतिहासंबुलुनु संक्षेप विस्तार रूपंबुल नॆरिगॆ। अंत रथिक सहस्रंबुलगु गमिकाडैन भीष्मुंडु स्वच्छंदमरणुलैन योगीश्वरुलकु वांछितंबगु नुत्तरायणंबु चनुदेंचिन नदि दनकु मरणोचित कालंबनि निश्चयिंचि ॥ 214 ॥

शा. आलापंबुलु मानि चित्तमु मनीषायत्तमुं जेसि दृ-
ग्जालंबुन् हरिमोमुपै वरपि तत्कारुण्य वृष्टिन् विनि-
र्मूलीभूत शरव्यथा निचयुडै मोदिंचि भीष्मुंडु सं
शीलं बॊप्प नुतिंचॆ गल्मष गजश्रेणी हरिन् श्रीहरिन् ॥ 215 ॥

की वेला तक यही मन्दहास से विकसित वदनारविन्द वाला हो आकर आज, यह देखो ! [ते.] मानवेश्वर (धर्मराज) ! चार भुजाओं से कमलाभ (कमल-सम)-नयन-युगल से मेरी आँखों के सम्मुख उपस्थित हुआ। मेरे अपने सौभाग्य को देखो, इसके प्रति कैसा पुण्य कार्य (मैंने) किया होगा ! २१३ [व.] कहकर, इस प्रकार धनंजय (अर्जुन) से सम्प्राप्त शरपंजर में स्थित कु[illegible] (भीष्म) के वचन विनम्र हो सुनकर, सकल मुनियों के सुनते समय, धर्मनन्दन (धर्मराज) ने मन्दाकिनीनन्दन (भीष्म) के द्वारा नरजाति (मानव) के लिए साधारण धर्म, वर्णाश्रम धर्म, राग, वैराग्य आदि उपाधियों से युक्त प्रवृत्ति तथा निवृत्ति धर्म, दानधर्म, राजधर्म, स्त्रीधर्म, शम-दम आदि और हरि को प्रसन्न करनेवाले धर्म, (तथा) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (नाना विध उपाख्यान, इतिहास आदि) संक्षेप तथा विस्तार रूप में जान लिया। अनेक हज़ार रथिकों के गणनायक (अधिपति) भीष्म ने निश्चय किया कि इच्छा-मृत्यु को पानेवाले योगीश्वरों से वांछित (अभिलषित) उत्तरायण के आगमन को जान, वही अपने लिए मृत्यु के लिए समुचित काल है। २१४ [शा.] आलाप छोड़कर (मौन हो), चित्त को मनीषा (प्रज्ञा) में समायत्त कर, दृष्टियों को हरि के मुख पर केन्द्रीकृत कर, उसकी करुणापूरित दृष्टि से शराघात-जनित-दुःख-समूह

व. इट्लु परमेश्वरुंडैन हरियंदु निष्कामुंडै धारणावति यैन बुद्धिनि समर्पिंचि, परमानंदंबु नोंदि, प्रकृतिवलन नैन सृष्टिपरंपरल बरिहरिंचु तलंपुन मंदाकिनी नंदनुं डिट्लनियें ॥ 216 ॥

भीष्मुडु श्रीकृष्णुनि स्तुतिचुट

म. त्रिजगन्मोहन नीलकांति तनु बुद्दीपिप बाभात नी-
रजबंधु प्रभमैन चेलमु पयिन् रंजिल्ल नीलालक
व्रज संयुक्त मुखारविंद मतिसेव्यंबै विजृंभिप मा
विजयुं जेरेंडु वन्नेलाडु मदि नावेशिंचु नेल्लप्पुडुन् ॥ 217 ॥

म. हय रिंखामुख धूळि धूसर परिन्यस्तालकोपेतमै
रयजात श्रमतोय बिंदुयुतमै राजिल्लु नेम्मोमुतो
जयमुं बार्थुन किच्चुवेड्क नति शस्त्राहति जाल नों-
च्चियु बोरिंचु महानुभावु मदिलो जिंतिंतु नश्रांतमुन् ॥ 218 ॥

म. नरुमाटल्विनि नव्वुतो नुभयसेना मध्यम क्षोणिलो
बरु लीक्षिप रथंबु निल्पि पर भूपालावळि जूपुचुं

को निर्मूलित कर भीष्म ने अपने सौशील्य के अनुसार कल्मष रूपी गजसमूह के लिए हरि (सिंह) श्रीहरि की स्तुति की। २१५ [व.] इस प्रकार परमेश्वर हरि में निष्काम भाव से धारणावती बुद्धि को समर्पित कर, परमानन्दित होकर, प्रकृतिजन्य सृष्टि (जन्म-मरण) की परम्पराओं का परिहार करने (निवारण करने) के विचार से मन्दाकिनी-नन्दन (भीष्म) ने इस प्रकार कहा। २१६

भीष्म का श्रीकृष्ण की स्तुति करना

[म.] तीन जगतों को मोहित करनेवाली नीलकान्ति के शरीर को उद्दीप्त करने पर, प्रभात के नीरजबन्धु (सूर्य) की प्रभा (कान्ति) के समान वस्त्र के विलसित होने पर, नील-अलकावली (नील-केशजाल) से युक्त मुखारविन्द (मुखकमल) के अतिसेव्य होकर, विजृंभित होने पर, हमारे विजय (अर्जुन) के समीप पहुँचनेवाला सुन्दर [व्यक्ति] मेरे मन में सदा प्रतिष्ठित रहे। २१७ [म.] घोड़ों के खुरों से उठी धूल के कारण मुख के धूलि-धूसरित [तथा] विखरे हुए केशजाल वाला, अतिवेग तथा श्रम से उत्पन्न पसीने की बूंदों से विराजित सुन्दर मुख वाला, पार्थ को आनन्द से विजय प्रदान करानेवाला, मेरे शस्त्र के आघात से अतिपीड़ित होकर भी संघर्ष करानेवाले महानुभाव का अश्रान्त (सदा) मन में चिन्तन करता हूँ। २१८ [म.] नर (अर्जुन) की बातें सुनकर, मुस्कुराते हुए, दोनों सेनाओं के मध्यभूमि पर शत्रुओं के देखते रहने पर, रथ को खड़ा कर, परभूपालावली

वर भूपायुवु लॆल्ल जूपुलन शुंभत्केळि वंचिचु नी
वरमेशुंडु वॆलुंगुचुंडॆडु मनः पद्मासनासीनुडै ॥ 219 ॥

कं. तनवारि जंपजालक, वॆनुककु वो निच्चगिंचु विजयुनि शंकन्
घन योगविद्य वापिन, मुनिवंद्युनि पादभक्ति मीनयुन् नाकुन् ॥ 220 ॥

सी. कुप्पिंचि यॆगसिन गुंडलंबुल कांति, गगनभागंबॆल्ल गप्पिकॊनग
नुरिकिन नोर्वक युदरंबुलोनुन्न, जगमुल व्रेगुन जगति गदल
जक्रंबु जेपट्टि चनुदेंचु रयमुन, वॆनुन्न पच्चनि पटमु जाइ
नम्मिति नालावु नगुवाटु सेयक, मन्निपुमनि क्रीडि मरल दिगुव

ते. गरिकि लंघिंचु सिंहंबुकरणि मॆरसि,
नेडु भीष्मुनि जंपुदु निन्नुगातु
विडुवु मर्जुन ! यनुचु मद्विशिखवृष्टि,
दॆरलि चनुदेंचु देवुंडु दिक्कु नाकु ॥ 221 ॥

म. तनकुन् भृत्युडु वीनि गाचुट महाधर्मंबु वॊम्मंचु न-
र्जुनसारथ्यमु पूनि पग्गमुलु चे जोद्यंबुगा वट्टुचुन्
मनिकोल न्वडि जूपि घोटकमुल न्मोदिंचि तार्टिपुचुन्
जनुल न्मोहमु नोंदजेयु परमोत्साहुं प्रशंसिचंदन् ॥ 222 ॥

(पराये शत्रु-राजवर्ग) को दिखाते हुए, शत्रु राजाओं की आयु को दृष्टियों के शुम्भत् (प्रकाशित) क्रीड़ा से वंचित करनेवाला परमेश्वर, मन रूपी पद्म पर आसीन होकर, ज्योतित होता रहे । २१९ [कं.] अपने लोगों का वध न कर सक, पीछे हटने को चाहनेवाले विजय (अर्जुन) के सन्देह का घनतर योगविद्या से निवारण करनेवाला, मुनिजनों से वन्दित [सर्वेश्वर] के चरणों में भक्ति मुझमें उत्पन्न हो जाय । २२० [सी.] दम भरकर उछलने वाले के कुण्डलों की कान्ति के समस्त गगन-भाग में छा जाने पर, दौड़ने पर सहन न कर सक, उदर में स्थित जगत के भार से [इस] जगत के हिल जाने पर, चक्र धारण कर आते समय वेग के कारण ऊपर के पीत पट (पीला वस्त्र) के सरक जाने पर, "मैंने तुम पर वहुत भरोसा रखा है, मेरी सामर्थ्य को जग-हँसी का पात्र मत वनाओ, क्षमा कर दो" कहते हुए क्रीड़ि (अर्जुन) के पीछे की ओर खींचते समय, [ते.] हाथी पर आक्रमण करनेवाले सिंह की भाँति प्रकाशित हो, 'आज भीष्म को मार डालूँगा, तुम्हारी रक्षा करूँगा, छोड़ दो अर्जुन !' कहते हुए मेरी विशिख-वृष्टि (शर-परम्पराओं) से वचकर, आनेवाला देव (श्रीकृष्ण) मेरे लिए शरण्य है । २२१ [म.] यह मेरा भृत्य (सेवक) है, इसकी रक्षा करना महान धर्म है, (ऐसा मानकर,) अर्जुन के सारथ्य को स्वीकार कर, विचित्र रीति से पगहे (लगाम) ग्रहण कर तीव्रगति से चावुक दिखाकर,

कं. पलुकुल नगवुल नडपुल,
नलुकल नवलोकनमुल नाभीरवधू
कुलमुल मनमुल तालिमि,
कौलकुलु वदलिचु घनुनि गोलिचेंद मदिलोन् ॥ 223 ॥

आ. मुनुलु नृपुलु सूड मुनु धर्मजुनि सभा, मंदिरमुन याग मंडपमुन
जित्रमहिमतोड जेलुवोंदु जगदादि, देवुडमरु नादु दृष्टियंदु ॥ 224 ॥

म. ऒक सूर्युंडु समस्तजीवुलकु दा नॊक्कॊक्कडै तोचु पो-
लिक ने देवुडु सर्वकालमु महालीलन् निजोत्पन्न ज-
न्यकदंबंबुल हृत्सरोरुहमुलन् नाना विधानून रू-
पकुडै यॊप्पुचुनुंडु नट्टि हरि ने ब्राथितु शुद्धुंडनै ॥ 225 ॥

व. अनि यिट्लु मनो वाग्दर्शनंबुलं बरमात्मयगु कृष्णुनि हृदयंबुन निलिपिकॊनि निश्वासंबुलु मानि निरुपाधिकंबैन वासुदेव ब्रह्मंबुनंदु गलसिन भीष्मुनि जूचि सर्वजनुलु दिनावसानंबुन विहंगंबु लूरकयुंडु तॆरंगुन नुंडिरि। देव मानव वादितंबुलै दुंदुभि निनदंबुलु मॊरसॆ। साधुजनकीर्तनंबुलु मॆरसं। कुसुमवर्षंबुलु गुरिसॆ। मृतुंडैन भीष्मुनिकि धर्मजुंडु परलोक क्रियलु सेयिचि मुहूर्त मात्रंबु दुःखितुंडय्यॆ। अंत

घोड़ों को मारते हुए, हाँकते हुए प्रजा को मोहित करनेवाला परम-उत्साही (उत्साह वाले) की मैं प्रशंसा करूँगा। २२२ [कं.] बातों से (वतरस से), हँसी (विनोद) से, चालों से, खीझते हुए, अवलोकनों (तिरछी नज़रों) से, आभीर-वधूकुल के मन की सहन-शक्ति (धैर्य) की सीमाओं का भंग करनेवाले घन (महान् व्यक्ति) की मन में आराधना करूँगा। २२३ [आ.] मुनियों [तथा] नृपों के देखते, धर्मराज के सभामन्दिर में, यज्ञवेदिका पर विचित्र महिमा से युक्त हो, ज्योतित होनेवाला जगत का आदिदेव मेरी दृष्टियों (आँखों) में प्रतिष्ठित रहेगा। २२४ [म.] एक सूरज के समस्त जीवों के लिए (प्रत्येक को) अलग-अलग दर्शन देते हुए भी, एक होने की रीति, जो देव सर्वकालों में महान् लीला से, अपने से उत्पन्न जन्य-कदम्बों (जीव-समूहों) के हृदय रूपी कमलों में नाना प्रकार के अनून रूपों में विद्यमान रहता है, ऐसे हरि की शुद्धात्मा हो मैं प्रार्थना करता हूँ। २२५ [व.] इस प्रकार मन, वाक् एवं दृष्टियों से परमात्मा श्रीकृष्ण को हृदय में प्रतिष्ठित कर, निःश्वास रोककर, निरुपाधिक (आधार-रहित, देह-रहित) वासुदेवब्रह्म में मिलनेवाले भीष्म को देखकर, सब लोग दिन के अवसान-समय (सायंकाल) के बाद विहगगण (पक्षीगण) के मौन रहने के समान मौन रह गये। देव (तथा) मानवों से बजाई गयी दुंदुभि की ध्वनियाँ हुईं। साधुजन के कीर्तन मुखरित हुए। कुसुमवृष्टियाँ हुईं। मृत हुए भीष्म को धर्मराज परलोक-क्रियाएँ करवाकर, मुहूर्त-मात्र के लिए

नच्चटि मुनुलु गृष्णुनि दमहृदयंबुल निलिपि कॉनि संतुष्टांतरंगुलगुचु ददीय दिव्यनामंबुलचे स्तुतियिंचि स्वाश्रमंबुलकु जनिरि। पिदप नय्युधिष्ठिरुंडु कृष्णसहितुंडै गजपुरंबुनकुंजनि गांधारी सहितुंडैन धृतराष्ट्र नॊडंबरचि वारि सम्मतंबुन वासुदेवानुमोदितुंडै, पितृ पैतामहंबैन राज्यंबु गैकॊनि, धर्म मार्गंबुनं बालनंबु सेयुचुंडॆ ननि सूतुंडु चॆप्पिन विनि शौनकुंडिट्लनियॆ ॥ 226 ॥

अध्यायमु—१०

आ. धनमु लपहरिंचि तनतोड जॆनकॆंडु, नाततायि जनुलननि वधिंचि
वंधुमरण दुःखभरमुन धर्मजु, डॆट्लु राज्यलक्ष्मि निच्चगिंचॆ ॥ 227 ॥

व. अनिन सूतुं डिट्लनियॆ ॥ 228 ॥

कं. कुरुसंततिकि वरीक्षि, न्नरवरु नंकुरमु सेसि नारायणु डी
धरणी राज्यमुनकु नी, श्वरुगा धर्मजुनि निलिपि संतोषिंचॆन् ॥ 229 ॥

व. इट्लु जगंबु परमेश्वराधीनंबु गानि स्वतंत्रंबुगा दनुनदि मॊदलगु भीष्मुनि वचनंबुल हरि संभाषणंबुल धर्मनंदनुंडु प्रवर्धमान विज्ञानुंडुनु,

---

दुःखित हुए। तव वहाँ के मुनियों ने कृष्ण को अपने हृदयों में प्रतिष्ठित कर, अन्तरंग में सन्तुष्ट हो, उसके दिव्य नामों की स्तुति की और अपने-अपने आश्रम को प्रस्थान किया। उसके पश्चात् युधिष्ठिर कृष्ण को साथ लेकर गजपुर (हस्तिनापुर) जाकर, गान्धारी समेत धृतराष्ट्र को समझाकर, उनकी सम्मति से वासुदेव का अनुमोदन (स्वीकृति) पाकर, पितृ (तथा) पितामह के राज्य को ग्रहण कर, धर्ममार्ग के अनुसार पालन करता रहा। इस प्रकार सूत के कहने पर शौनक ने फिर ऐसा कहा (पूछा)। २२६

अध्याय—१०

[आ.] धन का अपहरण कर अपने को छेड़नेवाले आततायी (अत्याचारी) जनो को युद्ध में वध कर, वन्धुओं की मृत्यु के भार से दुःखी धर्मराज ने फिर से राज्यलक्ष्मी की इच्छा कैसे की ?। २२७ [व.] कहने पर (पूछने पर) सूत ने ऐसा कहा। २२८ [क.] कुरु-सन्तति के लिए राजा परीक्षित को अंकुर वनाकर, धरणी-राज्य के लिए ईश्वर (अधिपति) के रूप में धर्मज को प्रतिष्ठित कर, नारायण सन्तुष्ट हुए। २२९ [व.] इस प्रकार सारा जगत परमेश्वर के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, आदि भीष्म के वचन [तथा] हरि के सम्भाषणों से धर्मनन्दन

निर्वतित शंकाकुळंकुंडुनु नै नारायणाश्रयुंडैन यिंद्रुंडुनु बोलॅ जतुस्सागर वेलालंकृतंबगु वसुंधरामंडलंबु सहोदरसहायुंडै येलुचुंडॅ ॥ 230 ॥

सी. संपूर्णवृष्टि बर्जन्युंडु गुरियिंचु निल यॅल्ल गोर्कुल नीनुचुंडु
गोवुलु वर्षिचु घोषभूमुल वालु फलवंतमुलु लता पादपमुलु
पंडु सस्यमुलु दप्पक ऋतुवुलनॅल्ल धर्ममॅल्लॅडलनु दनरि युंडु
दैव भूतात्म तंत्रमुलगु रोगादि भयमुलु सॅंदवु प्रजल कॅंदु

आ. गुरुकुलोत्तमुंडु कुंतीतनूजुंडु, दानमान घनुडु धर्मजुंडु
सत्यवाक्यधनुडु सकल महाराज्य, विभव भाजि यॅन वेळ यंदु ॥ 231 ॥

श्रीकृष्णुंडु द्वारका नगरमुन करुगुट

व. अंत गृष्णुंडु चुट्टालकु शोकंबु लेकुंडं जेयुकॉऱकुनु, सुभद्रकुं बियमु सेयुकॉऱकुनु, गजपुरंबुनं गॉन्नि नॅललुंडि, द्वारकानगरंबुनकुं बयाणंबु सेयंदलंचि, धर्मनंदनुनकुं गृताभिवंदनुंडगुचु नतनिचे नालिंगितुंडै यामंत्रणंबु वडसि, कॉंदऱु दनकुं नमस्करिंचिनं गौगिलिंचुकॉनि, कॉंदऱु दनुं गौगिलिप नानंदिंचुचु रथारोहणंबु सेयु नवसरंबुन, सुभद्रयु द्रौपदियु

प्रवर्द्धमान विज्ञान वाला [तथा] निर्वतित-शंका-कलंक वाला बन, नारायण के आश्रित इन्द्र के समान, चार सागरों की वेलाओं (तटों) से अलंकृत (परिवेष्टित) वसुन्धरा-मण्डल का [अपने] सहोदरों (भाइयों) की सहायता से पालन करता रहा। २३० [सी.] कुरु-कुल-उत्तम, कुन्ती-पुत्र, दान तथा मान में महान, सत्यवाक्यधनी धर्मराज के सकल मही राज्य को वैभव के साथ राज्य का पालन करते समय पर्जन्य पूर्ण रूप से वर्षा करवाता, धरती पर सब इच्छाएँ पूर्ण होतीं (सभी जन सुखी रहते), गौमाताएँ घोषभूमियों (गोशालाओं से युक्त प्रदेशों) में दूध की वर्षा करतीं, लता और पादप (वृक्ष) फलते, समस्त ऋतुओं में फ़सल अवश्य होती, सर्वत्र धर्म व्याप्त रहता, दैव-तथा भूत [तथा] आत्म-तन्त्र कोई रोग आदि भय प्रजा को न होता। २३१

श्रीकृष्ण का द्वारका नगरी को प्रस्थान करना

[व.] तब कृष्ण ने बन्धुजनों का शोक मिटाने के निमित्त, [तथा] सुभद्रा को प्रिय (प्रसन्न) करने के लिए, गजपुर (हस्तिनापुर) में कतिपय मास निवास कर, द्वारका नगर के लिए प्रस्थान करना चाहकर, धर्मनन्दन को अभिवन्दन (नमस्कार) कर, उससे आलिंगित होकर (तथा) [पुनरागमन के लिए] आमंत्रित हुआ। कुछ के नमस्कार करने पर आलिंगन कर, कुछ के आलिंगन करने पर आनन्दित होते हुए, रथ पर आरूढ़ होते समय, सुभद्रा,

गुंतियु नुत्तरयु गांधारियु धृतराष्ट्रुंडुनु विदुरुंडुनु युधिष्ठिरुंडुनु युयुत्सुंडुनु गृपाचार्युंडुनु नकुल सहदेवुलुनु वृकोदरुंडुनु धौम्युंडुनु सत्संगंबु वलन मुक्त दुस्संगुंडगु बुधुंडु सकृत्काल संकीर्त्यमानंबै रुचिकरंबगु नॆव्वनि यशंबु नाकर्णिंचि विडुवनोप डट्टि हरितोडि वियोगंबु सहिंपक, दर्शन स्पर्शनालाप शयनासन भोजनंबुलवलन निमिष मात्रंबुनु हरिकि नॆडलेनि वारलैन पांडवुलं गूडिकॊनि, हरि मरलवलॆ ननि कोरुचु हरि चनिन मार्गंबु चूचुचु, हरि विन्यस्तचित्तुलै लोचनंबुल बाष्पंबु लोलुक नंतनंत निलुवंबडिरि अय्यवसरंबुन ॥ 232 ॥

सी. कनकसौधमुलपै गौरव कांतलु गुसुमवर्षंबुलु गोरि कुरिय
मौक्तिकदाम समंचित धवळात-पत्रंबु विजयुंडु पट्टुचुंड
नुद्धव सात्यकु लुत्साहवंतुलै रत्नभूषित चामरमुलु वीव
गगनांतराळंबु गप्पि काहळ भेरि पणवशंखादि शब्दमुलु मोरय

आ. सकल विप्रजनुलु सगुणनिर्गुणरूप, भद्रभाषणमुलु पलुकुचुंड
भुवन मोहनुंडु पुंडरीकाक्षुंडु, पुण्यराशि हस्तिपुरमु वॆडलॆ ॥ 233 ॥

व. तत्समयंबुनं बौरसुंदरुलु प्रासाद शिखरभागंबुल निलिचि, गोपाल

द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, विदुर, युधिष्ठिर, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल-सहदेव, वृकोदर, धौम्य, सत्संगति के कारण दुस्संगति से मुक्त बुध (बुद्धिमान) कभी संकीर्तित रुचिकर जिसका यश सुन-सुनकर, जिसे छोड़ नहीं सकता, ऐसे हरि से वियोग को सह न सक, दर्शन, स्पर्श, आलाप (सम्भाषण), शयन, आसन, भोजन आदि से निमिषमात्र (पल-भर) के लिए हरि से दूर न होनेवाले, पाण्डवों के साथ सब लोग हरि के लौटने की इच्छा करते हुए, हरि के गये मार्ग की ओर देखते हुए, हरि में विन्यस्त (रखे हुए) चित्त वाले हो, आँखों मे आँसू के उमड़ने पर, यहाँ-वहाँ खड़े रहे। तब। २३२ [सी.] कनक-सौधों (स्वर्ण-भवनों) पर कौरव-वनिताओं के चाव से कुसुमवृष्टि करने पर, मोतियों की मालाओं से सुसज्जित, धवल-आतपत्र (छत्र) के अर्जुन के धरे रहने पर, (तथा) उद्धव और सात्यकि के उत्साही हो रत्नों से विभूषित चामरों के डुलाने पर, काहल, भेरी, पणव, शंख आदि के शब्दों के गगन के अन्तराल में व्याप्त होने पर, [आ.] सब विप्रजनों के सगुण-निर्गुण रूप सम्बन्धी मंगलवाक्य कहते समय (स्तुति करते समय), भुवनों को मोहित करने वाला पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन वाला), पुण्यराशि (कृष्ण) हस्तिनापुर से निकल पड़ा। २३३ [व.] उस समय में पुर की सुन्दरियाँ प्रासादों के शिखर भागों में स्थित हो, गोपाल सुन्दर के सन्दर्शन कर, मार्ग

सुंदरुनि संदर्शिंचि, मार्गंबुल रेंडुदेसल गरारविंदंबुलु साचि योंडोरुलकुं जूपुचुं दमलोनं, दोल्लिटं ब्रळयंबुन गुणंबुलं गूडक जोवुलु लीनरूपंबुलै युंड ब्रपंचंबु प्रवर्तिपनि समयंबुन ब्रपंचात्मकुंडु नद्वितीयुंडु नगुचु मेलै दीपुंचु पुराणपुरुषुंडीतंडनुवारुनु, जीवुलकु ब्रह्मत्वंबु गलुग लयंबु सिद्धिचुट येट्लनुवारुनु, जीवोपाधि भूतंबुलैन सत्त्वादि शक्तुल लयमु जीवलयमनु वारुनु, ग्रम्मरं नप्परमेश्वरुंडु निज वीर्य प्रेरितयै निजांशभूतंबुलैन जीवुलकु मोहिनियैन सृष्टि सेय निश्चयिंचि, नामरूपंबुलु लेनि जीवुलंदु नामरूपंबुलु गल्पिचु कोंरकु वेदंबुल निर्मिचि मायानुसरणंबु सेयु ननुवारुनु, निर्मल भक्ति समुत्कंठा विशेषंबुल नकुंठितुलै जितेंद्रियु लगु विद्वांसु लिम्महानुभावु निजरूपंबु दर्शितुरनुवारुनु, योगमार्गंबुलंगानि दर्शिपरादनुवारुनै मरियु ॥ 234 ॥

म. रमणी ! दूरमुवोयें गृष्णुरथमुन् रादिंक वोक्षिप नी
कमलाक्षुं बोंडगानलेनि दिनमुल् गल्पंबुलै तोचु गे-
हमुलं दुंडगनेल पोयि परिचर्यल् सेयुचुन् नेंम्मिनुं
दमु रम्मा ! यनें नोक्क चंद्रमुखि गंदर्पाशुगभ्रांतयै ॥ 235 ॥

की दोनों दिशाओं में करारविन्द (कर-कमल) फैलाकर, एक-दूसरे को दिखाते हुए, परस्पर सम्भाषण करने लगीं कि पूर्व में प्रलयकाल में गुणों की संगति न पाकर जीव के (परमात्मा में) लीन-रूप मे स्थित रहते समय, संसार का प्रवर्तन (सृजन) न होने से पूर्व प्रपंचात्मक (जगदात्मा), अद्वितीय हो, दीप्तिमान होनेवाले पुराणपुरुष यही हैं, ऐसा कुछ लोग कहते। जीवों को ब्रह्मत्व की प्राप्ति, लय की सिद्धि कैसे होती है, तो जीव के लिए उपाधि (आधार) स्वरूप सत्त्वादि शक्तियों के लय ही जीवलय है, ऐसा कुछ लोग कहते। (और) कुछ लोग कहते हैं कि फिर उस परमेश्वर ने अपने वीर्य से प्रेरित हो अपने अंश से उत्पन्न जीवों को मोहित करनेवाली सृष्टि के रचने का निश्चय कर, नाम-रूप-रहित जीवों में नामरूपों की भावना (कल्पना) करने के लिए वेदों का निर्माण कर, माया का अनुसरण करता है। निर्मल भक्ति की विशेष उत्कंठा से अकुंठित हो, जितेन्द्रिय होनेवाले विद्वान् लोग इस महानुभाव के निजरूप (सत्यरूप) के दर्शन करते हैं, तो कुछ लोग कहते हैं कि योगमार्ग से ही इनके दर्शन होते। और, । २३४ [म.] रमणी ! कृष्ण का रथ दूर चला गया। अब दिखायी नहीं पड़ेगा। इस कमलाक्ष को देखे बिना दिन कल्प-समान लगते हैं। अब गेहों (घरों) में रहना ही क्यों, उनके साथ चलकर सेवाएँ करते हुए, सन्तोष के साथ रहेंगी, चलो। ऐसा एक चन्द्रमुखी ने कन्दर्पाशुग-भ्रान्ता (कामदेव के बाण से भ्रान्ता) हो कहा। २३५

म. तरुणी ! यादवराजु गाडितडु वेदव्यक्तुडै यॉक्कडे
वरुसन् लोकभव स्थिति प्रळयमुल् वर्तिपगा जेयु दु-
स्तर लीलारतुडैन यीशु डितनिन् दर्शिचिति बुण्य भा-
सुर ने नंचु नटिचॅ नॉक्कतॅ महा शुद्धांतरंगंबुनन् ॥ 236 ॥

क. तामसगुणुलगु राजुलु, भूमि न्नमर्विचि प्रजल वॉलियिपग स-
त्वमलडैनुत यीतडु, भामिनि ! वारल वधिचु न्रतिकल्पमुनन् ॥ 237 ॥

सी. ई युत्तमश्लोकु डॅलसि जन्मिचिन यादव कुलमॅल्ल ननघमय्यॅ
नी पुण्यवर्तनु डे प्रॉद्दुनुंडिन मथुरापुरमु दॉड्ड महिम गनियॅ
नी पूरुषश्रेष्ठु नीक्षिचि भक्तितो द्वारकावासुलु धन्युलैरि
यी महावलशालि यॅरिगि शासिपग निष्कंटकंवय्यॅ निखिल भुवन

ते. मी जगन्मोहनाकृति निच्चगिचि,
पंचशर भल्लजाल विभज्यमान
विवश मानसमै वल्लवीसमूह,
मितनि यधरामृतमु, ग्रोलु नॅल्लप्रॉद्दु ॥ 238 ॥

उ. ई कमलाक्षु नी सुभगु नी करुणांवुधि न्राणनाथुगा
जेकॉनि देड्क गापुरमु सेयुचुनुंडॅडि रुक्मिणीमुखा

[म.] तरुणी ! यह यादव [वंश का] राजा नही है। वेद के द्वारा प्रकट होकर, एक ही ईश, जो लोक की सृष्टि, स्थिति, प्रलय को सम्भव कराता है, जो दुस्तर लीला में रत होनेवाला है [वह यही है]। पुण्य के प्रभाव से मैंने इसके दर्शन किये है, कहती हुई एक [भामा] महान् शुद्ध (पवित्र) अन्तरंग से नाच उठी। २३६ [कं.] भामिनी ! तामस गुणवाले राजा लोगों के धरती पर उत्पन्न हो, प्रजा को त्रास देने पर, यह सत्त्व गुण से अमल तनु वाला हो प्रतिकल्प मे उनका वध करता है। २३७ [सी.] इस उत्तमश्लोक वाले के जन्म लेने से समस्त यादवकुल अनघ (पापरहित) हुआ। इस पुण्यचरित वाले के सदा निवास करने से मथुरापुरी बड़ी महिमामयी बन गयी। इस पुरुषश्रेष्ठ के भक्तियुत दर्शन करने के कारण द्वारकावासी धन्य हुए। इस महान बलशाली के जानकर शासन करने से निखिल भुवन निष्कंटक (राक्षसादि की बाधाओं से मुक्त) हुए। [ते.] इसकी जगत को मोहित करनेवाली आकृति (रूप) की इच्छा (वरण) कर, पंचशर वाले (मन्मथ) के बाणों के लगने पर विवश मानसवाली हो वल्लवी (गोपी)-समूह सदा इसके अधरामृत का पान करता है। २३८ [उ.] इस कमलाक्ष वाले, इस सुभग (सुन्दर) रूप वाले, इस करुणासागर को प्राणनाथ (पति) के रूप में पाकर, गृहिणी के रूप मे सेवा करने के लिए रुक्मिणी आदि अनेक

नेक पतिव्रतल् नियति निर्मल मानसलै जगन्नुता-
स्तोक विशेष तीर्थमुल दौल्लिलटिवामुल नेमि नोचिरो ॥ 239 ॥

व. अनि यिट्लु नानाविधंबुलैन पुरसुंदरी वचनंबु लाकर्णिंचि, कटाक्षिंचि नगुचु नगरंबु वेडलॅ। धर्मजुंडुनु हरिकि रक्षकंबुलै कौलिचि नडुवं जतुरंगंबुलु बंपिन दत्सेनासमेतुलै तन तोडि वियोगंबुनकु नोर्वक दूरंबु वॅनुतगिलिन कौरवुल मरलिचि, कुरु जांगल पांचाल शूरसेन यामुन भूमुलं गडचि, ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र मत्स्य सारस्वत मरुधन्व सौवीराभीर विषयंबु लतिक्रमिंचि, तत्तद्देशनिवासु लिच्चिन कानुकलु गौनुचु नानर्त मंडलंबु सौच्चि पद्मबंधुंडु पश्चिमसिंधु निमग्नुंडैन समयंबुन बरिश्रांत-वाहुंडै चनि चनि ॥ 240 ॥

अध्यायमु—११

म. जलजाताक्षुडु शौरि डगरॅ महासौधाग्र शृंगारकन्
गलहंसावृत हेमपद्म परिघा कासारकन् दोरणा

पतिव्रताओं ने, पता नहीं, पूर्वजन्मो में नियम से, निर्मल मन वाली हो, जगत में स्तुत्य अस्तोक (अनल्प) किन विशिष्ट तीर्थों में कैसे व्रत रचे होंगे। २३९ [व.] इस प्रकार नगर की सुन्दरियों के नानाविध वचन सुनकर, उन पर कृपादृष्टि पसारते हुए, मुस्कुराते हुए नगर के बाहर चले। हरि की रक्षा तथा सेवा के निमित्त धर्मज के अपनी चतुरंग सेनाओं को भेजने पर, उसकी (कृष्ण की) सेवाओं से युक्त हो (करते हुए), अपने वियोग के दुःख को सह न सक (वहुत) दूर तक पीछे चले आये हुए कौरवों (कुरुवंशजों) को वापस भेजकर, कुरु, जांगल, अंग, पांचाल, शूरसेन, यामुना-भूमियों को पार कर [तथा] ब्रह्मवर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत, मरुधन्व, सौवीर, आभीर विषय (देश) को पार कर उन-उन देशवासियों के दिये हुए भेंट स्वीकार करते हुए, आवर्त-मण्डल (-प्रदेश) में प्रवेश कर, पद्मबन्धु (सूर्य) के पश्चिम सिन्धु में अस्त होते समय घोड़ों के थक जाने तक चलकर। २४०

अध्याय—११

[म.] जलजाताक्ष (कमल-नयन वाला) शौरी (कृष्ण) महा सौधों (भवनों) के अग्रभागों से अलंकृत, कलहंसों से आवृत स्वर्ण-कमल से भरे हुए, परिखा से युक्त, तोरणावली से ताराओं को आच्छादित (मात) करनेवाली, तरुलताओं मे फल, पुष्प, अंकुर, कोरकों (कली) से युक्त

वळि संछादित तारकन् दरु लता वर्गानुवेलोदय-
त्फल पुष्पांकुर कोरकन् मणिमय प्राकारकन् द्वारकन् ॥ 241 ॥

व. इट्लु तन प्रियपुरंबु डग्गट्रि ॥ 242 ॥

म. अन्यसन्नुत साहसुंडु मुरारि यॉत्तॅ यदूत्तमुल्
धन्युलॅ विन पांचजन्यमु दारिताखिल जंतु चै-
तन्यमुन् भुवनैकमान्यमु दारुणस्वन भीत रा-
जन्यमुन् वरिमूर्छिताखिल शत्रु दानवसैन्यमुन् ॥ 243 ॥

शा. शंखारावमु वीनुलन्विनि जनुल् स्वर्णांबर द्रव्यमुल्
शंखातीतमु गॉंचु वच्चिरि दिदृक्षा दर्पितोत्कंठ न
प्रेंखद् भक्तुलु वंश काहळ महाभेरी गजाश्वावळी
रिंखारावमु लुल्लसिल्ल दनुजारि जूड नासक्तुलै ॥ 244 ॥

कं. बंधुलु पौरुलु दॅच्चिन, गंदेभ हयादुलैन कानुकलु दया
सिंधुडु गैकॉनॅ नंबुज, बंधुडु गॉनु दत्त दीपपंक्तुल भंगिन् ॥ 245 ॥

व. इट्लात्मारामुंडु पूर्णकामुंडु नैन यप्परमेश्वरुनिकि नुपायनंबु लिच्चुचु नागरुलु विकसित मुखुलै, गद्गद भाषणंबुलतोड डय्यकुंड नडपु नय्यकु नॅय्यंपु जूपुल नड्डंबुलेनि बिड्डलचंदंबुन म्रॉविक यिट्लनिरि ॥ 246 ॥

मणिमय प्राकार वाली द्वारकापुरी के समीप पहुँच गये। २४१ [व.] इस प्रकार अपने प्रियपुर के समीप पहुँचकर। २४२ [म.] शत्रुओं के द्वारा संस्तुत साहस वाले मुरारि ने, यदुकुल श्रेष्ठों के धन्य बन सुनने पर, सकल जन्तु (प्राणि)-चतन्य को विदारित करनेवाला, भुवनों में एकमात्र मान्य (तथा) दारुण (भयंकर) ध्वनि से राजकुल को भयभीत करनेवाला, अखिल शत्रु दानव-सेना को परिमूच्छित करनेवाले पांचजन्य को मुखरित किया। २४३ [शा.] कानों से शंखध्वनि सुनकर सोना, वस्त्र आदि सामग्री को शख की संख्या से अधिक ले आकर, दर्शन की लालसा में चले आनेवाले भक्तों, वंशी, काहल, महाभेरी, [तथा] गज, अश्व-समूहों के खुरों की ध्वनियो से [हृदय के] उल्लसित होने पर, दनुजारि (राक्षसान्तक) के दर्शन करने की आसक्ति से लोग आये। २४४ [कं.] बन्धुजन, नागरिक जन के लाये हुए गन्धेभ (मस्त हाथी), घोड़े आदि भेंट दया के सागर ने स्वीकार किया, जिस प्रकार अम्बुजबन्धु (सूरज) [समर्पित] दीपपंक्तियों को लेता है। २४५ [व.] इस प्रकार आत्माराम (तथा) पूर्णकाम परमेश्वर को उपायन (उपहार, भेंट) समर्पित करते हुए, नागरिकों ने [आनन्द से] विकसित मुख वाले हो, गद्गद भाषण करते हुए, [अपने को] थक जाने से [बचाते हुए] चलानेवाले पिता को, स्नेह की दृष्टियों से, अड़चन के बिना [नियरानेवाले] शिशुओं के समान, प्रणाम

शा. नी पादाब्जमु ब्रह्मपूज्यमु गदा ! नी सेव संसार सं-
तापध्वंसिनियौ गदा ! सकल भद्रश्रेणुलं ब्रीतितो
नापादिंसु गदा ! प्रपन्नुलकु गालाधीश ! कालंबुनि-
र्व्यापारंबु गदय्य ! चालरुगदा ! वर्णिप ब्रह्मादुलुन् ॥ 247 ॥

कं. उन्नारमु सौख्यंबुन, विन्नारमु नी प्रताप विक्रम कथलन्
मन्नारमु धनिकुलमै, कन्नारमु तावकांघ्रि कमलमुलु हरी ! ॥ 248 ॥

कं. आराटमु मदि नॅरुगमु, पोराटमु लिड्लकडल बुट्टवु पुरिलो
जोराटन मॅगयदु नी, दूराटन मोर्वलेमु तोयजनेत्र ! ॥ 249 ॥

उ. तंड्रुलकॅल्ल दंड्रियगु धातकु दंड्रिवि देव ! नीवु मा
तंड्रिवि तल्लिवि बतिवि दैवमवुन् सखिविन् गुरुंड वे-
तंड्रुलु नी क्रियं ब्रजल धन्युलजेसिरि ? वेल्पुलैन नो
तंड्रि ! भवन्मुखांबुजमु धन्यत गानरु मा विधंबुनन् ॥ 250 ॥

कं. चॅच्चॅर गरिनगरिकि नी, विच्चेसिन निमिषमैन वेय्येंड्लगु नी
वॅच्चोटिकि विच्चेयक, मच्चिकतो नुंडुमय्य ! मा नगरमुनन् ॥ 251 ॥

कर, ऐसा कहा । २४६ [शा.] तुम्हारे चरण-कमल ब्रह्मा के द्वारा पूज्य हैं न ! तुम्हारी सेवा संसार के सन्ताप (दुःख) को ध्वंस करनेवाली है न ! प्रपन्नों (शरणागतों) के लिए प्रेम के साथ सकल भद्रश्रेणियों (मंगलों) को प्रदान करते हो न ! हे काल के अधीश ! काल तो निर्व्यापार (दिखायी पड़नेवाले आचरण वाला नही) है न ! ब्रह्मादि भी [ऐसे तुम्हारा] वर्णन करने में असमर्थ हैं न ! २४७ [कं.] हे हरि ! हम सुख से हैं, तुम्हारे प्रताप-विक्रम की कथाओं को सुन चुके हैं, हम धनी [स्मरण के कारण] हो जीवित है, (और) तुम्हारे चरण-कमलों के दर्शन (आज) कर पाये हैं । २४८ [कं.] हे तोयजनेत्र (कमलनेत्र) वाले ! (आपकी कृपा के वल के कारण) मन में व्याकुलता को हम नहीं जानते, झगड़े हमारे घरों में होते नहीं, नगर में चोरों के भ्रमण का नाम नहीं, [बस] तुम्हारे दूर-भ्रमण को हम सह नहीं सकते । २४९ [उ.] देव ! पिताओं के पिता विधाता के पिता (परमपिता) तुम हो ! तुम हमारे पिता हो; माँ हो, पति हो, देवता हो, सखी (सखा) हो, गुरु हो । तुम जैसा किस पिता ने [अपनी] प्रजा को ऐसा धन्य बनाया ? देवता भी क्यों न हों, तुम्हारे मुख-कमल [के दर्शन] से हम जैसा धन्य नहीं होते । २५० [कं.] झट तुम करिनगरी (हस्तिनापुर) को गए थे । [तुम्हारे प्रवास-काल का] एक निमिष भी [हमारे लिए] एक हज़ार वर्ष-सम लगता है, अतः तुम कहीं मत जाओ, प्रेम के साथ हमारे नगर में ही रहो न तात ! २५१ [आ.] हे नीरजलोचनवाले ! अन्धकार-वैरी

आ. अंधकारवैरि यपराद्रि कव्वल, जनिन नंधमैन जगमुभंगि
निन्नु गानकुन्न नीरजलोचन !, यंधतमसमतुल मगुदुमय्य ! ॥ 252 ॥

व. अनि यिट्लु प्रजलाडेडि भक्तियुक्त मधुर मंजुलालापंबु गर्णकलापंबुलुगा नवधरिंचि, सकरुणावलोकनंबुलु वर्षिचुचु हर्षिचुचुं दनराक विनि महानुरागंबुन संरंभ वेगंबुल मज्जन भोजन शयनादि कृत्यंबु लॊल्लक, युग्रसेनाक्रूर वसुदेव वलभद्र प्रद्युम्न सांबचारुधेष्ण गद प्रमुखयदु कुंजरुलु गुंजर तुरग रथारूढुलै दिक्कुंजर सन्निभंबैन यॊक्क कुंजरंबु मुंदर निडुकॊनि सूत मागध नट नर्तक गायक वंदिसंदोहंबुल मंगळभाषणंबुलुनु, भूसुराशीर्वाद वेदघोषणंबुलुनु, वीणा वेणु भेरी पटह शंख काहळ ध्वानंबुलुनु रथारूढ विभूषण भूषित वार युवती गानंबुलुनु नसमानंबुलै चॆलंग नॆदुरुकॊनि, यथोचित प्रणाम नमस्कार परिरंभ करस्पर्शन संभाषण मंदहास संदर्शनादि विधानंबुल बहुमानंबुलु सेसि, वारलुंदानुनु भुजगेंद्र पालितंबैन भोगवतीनगरंबु चंदंबुन स्वसमान वल यदु भोज दाशार्ह कुकुरांधक वृष्णि वीर पालितंबुनु, सकलकाल संपद्य मानांकुर पल्लव कोरक कुट्मल कुसुम फल मंजरी पुंजभार विनमित

(सूर्य) के अपराद्रि (पश्चिम पर्वत) के पीछे चले जाने पर, जिस प्रकार सारा जगत अन्धकारमय हो जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे दर्शनों के बिना हम लोग अन्धकार व तमस् से युक्त मतिवाले (अज्ञानी) हो जाएँगे तात ! २५२

[व.] इस प्रकार प्रजा के भक्तियुक्त-मधुर-मंजुल आलाप (वचन) कानों के लिए कलाप (आभरण) हों, ऐसा सुनकर, करुणापूरित दृष्टियाँ वर्षित करते हुए, हर्षित होते हुए, अपने आगमन [का समाचार] सुनकर, महान् अनुराग के संरम्भ के साथ, मज्जन (स्नान), भोजन, शयन आदि कृत्यों (कामों) को न चाहते हुए, उग्रसेन, अक्रूर, वसुदेव, बलभद्र, प्रद्युम्न, साम्ब, चारुधेष्ण, गद आदि यदुकुंजरो के हाथी, घोड़े, रथों पर आरूढ़ हो, दिग्गज के समान एक हाथी को सामने रखकर, सूत, मागध, नट, नर्तक, गायक, वन्दीगण के मंगल-भाषणों तथा भूसुरों के आशीष [और] वेदों के संघोषों तथा वीणा, वेणु, भेरी, पटह, शख, काहल की ध्वनियों तथा रथारूढ़ [और] विभूषणो के द्वारा भूषित (अलंकृत) वारवनिताओं (वेश्याओं) के गानों के अनुपम रीति से व्याप्त होने पर, अगवानी कर, यथायोग्य प्रणाम, नमस्कार, आलिंगन, करस्पर्श, सम्भाषण, मन्दहास, सन्दर्शन आदि विधानों से अनेक प्रकार से सम्मानित किया। उनके साथ स्वयं भुजगेन्द्र (नागेन्द्र) के द्वारा [परि] पालित भोगवती नगरी (नाग-नगरी) की भाँति तथा अपने समान बलशाली, यदु, भोज, दाशार्ह, कुकुर, अन्धक, वृष्णि आदि वीरों से परिपालित तथा सकल कालों (ऋतुओं) में सम्पन्न अंकुरों, पल्लवों, कलियो, कुड्मलों (सद्यःविकसित

लता पादपराज विराजितोद्यान महावनोप-वनाराम भासितंबुनु, वनांतराळ रसाल साल शाखांकुर खादन क्षुण्ण कषायकंठ कलकंठ मिथुन कोलाहल फलरसास्वाद परिपूर्ण शारिका कीरकुल कलकल कल्हारपुष्प मकरंदपान परवश भृंगभृंगी कदंब झंकार सरोवर कनककमल मृदुल कांडखंड स्वीकार मत्तवरटायत्त कलहंसनिवह क्रेंकारसहितंबुनु, महोन्नत सौधजालरंध्र निर्गत कर्पूरधूप धूमपटल सुदर्शन संजात जलधर भ्रांति विभ्रांत समुद्धत पिछ नर्तन प्रवर्तमान मत्तमयूर केकारव महितंबुनु, नानारूप तोरणध्वज वैजयंतिकानिकाय निरुद्ध तारकाग्रह प्रकाशंबुनु, मुक्ताफल विरचित रंगवल्लिकालंकृत मंदिरद्वार गेहळी वेदिका प्रदेशंबुनु, घनसार गंधसार कस्तूरिका संवासित वणिग्गेह गेहळी निकर कनकगळंतिका विकीर्यमाण सलिल धारा संसिक्त विपणिमार्गंबुनु प्रतिनिवास वहिरंगण समर्पित रसालदंड फल कुसुम गंधाक्षत धूपदीप रत्नांबरादि विविधोपहारंबुनु, प्रवाळ नील मरकत वज्रवैडूर्य निर्मित

कलियों), कुसुमों, फलों, मञ्जरीपुंजों के भार से विनमित (झुके हुए) लता-वृक्ष (समूह) राज-से विराजित उद्यान, महावन, उपवन, आराम से भासित (सुन्दर बने) तथा वनान्तराल के रसाल सालवृक्ष की शाखाओं के अंकुर खाकर पूर्णरूप से कषाय कण्ठ-कलकण्ठ से युक्त मिथुनों के कोलाहल, [और] फल रस का आस्वाद न कर परितृप्त होनेवाले शारिका-कीर-कुल के कल-कल [और] कल्हार (उत्पल) पुष्पों के मकरन्द-पान से परवश (तन्मय) बने भृंग-भृंगी के समूह के झंकार [और] सरोवर में कनक-कमल के मृदुल काण्ड के टुकड़ों को स्वीकार कर मत्त होनेवाले वरटा (हंसी) से आयत्त (तैयार किए गए) कलहंस-समूह के क्रेंकार ध्वनि से युक्त, महोन्नत सौधजाल के रन्ध्रों से निकलनेवाले कर्पूर-धूप के धुएँ के समूह को देख, जल-धर (बादल) की भ्रान्ति से विभ्रान्त हो पिंछों (पंखों) को उठाकर नाचने में लगे हुए उन्मत्त मयूरों के केकारव से महित (आधिक्य से युक्त), नाना रूप वाले तोरण-ध्वज-वैजयन्ती के निकाय (समूह) से रोके गए तारे और ग्रहों के प्रकाश से युक्त, मुक्ताफलों (मोतियों) से विरचित रंगवल्ली (रंगोली) से अलंकृत मन्दिरों के द्वारों की देहलियों के वेदिका-प्रदेशों और घनसार, गन्धसार, कस्तूरी से सुवासित व्यापारियों के मुख-द्वारों के समूहों के समक्ष, कनक-गलंतिका (फव्वारों) से बिखेरे जानेवाली जलधाराओं से भीगे बाजारों से युक्त प्रत्येक घर के बाहर के आँगन में स्थापित आम तथा दंडि वृक्षों के फल, कुसुम, गन्ध, अक्षत, धूप, दीप, रत्नाम्बर आदि विविध उपहारों से युक्त प्रवाल, नील, मरकत, वज्र, वैदूर्य से निर्मित गोपुर तथा अट्टालिकाओं से युक्त, इन्द्रनगर के वैभव को मात करनेवाले, ऐसे श्रेष्ठ

गोपुराट्टालकंबुनु, विभवनिर्जित महेंद्रनगरालकंबुनु नैन पुरवरंबु प्रवेशिंचि राजमार्गंबुन वच्चु समयंबुन ॥ 253 ॥

म. कन्नुलारग नित्यमुन् हरि गांचुचुन् मनुवारल-
य्युन् नवीन कुतूहलोत्सवयुक्ति नागरकांत ल-
त्युन्नतोन्नत हर्म्यरेखल नुंडि चूचिरि निक्कि चे
सन्नलं दमलोन दद्विभु सौकुमार्यमु सूपुचुन् ॥ 254 ॥

सी. कलुमुल नीनॅडि कलकंठि यॅलनाग वर्तिचु नॅव्वनि वक्षमंबु
जनदृक्चकोरक संघंबुनकु सुधा पानीयपात्रमे भव्युमुखमु
सकल दिक्पालक समितिकि नॅव्वनि वाहुदंडंबुलु पट्टुगॊम्म
लाश्रित श्रेणि के यधिपति पाद-राजीवयुग्मंबुलु चेरुगडलु

आ. भुवनमोहनुंडु पुरुषभूषणु डॅव्व, डट्टि कृष्णुडरिगॆ हर्म्यशिखर
राजमानलगुचु राजमार्गंबुन, राजमुखुलु गुसमराजि गुरिय ॥ 255 ॥

म. जलजाताक्षुडु सूड नौप्पॆ धवळ-च्छत्रंबुतो जामरं
बुलतो बुष्पपिशंग चेलमुलतो भूषामणि स्फोतुडै
नलिनी वांधवुतो शशिद्वयमुतो नक्षत्रसंघंबुतो
वलभिच्चापमुतो दटिल्ललतिकतो भासिल्लु मेघाकृतिन् ॥ 256 ॥

नगर में प्रविष्ट हो, राजपथ पर चले आते समय। २५३ [म.] प्रतिदिन (सदा) हरि को आँख भर देखते हुए जीनेवाले होते हुए भी नये कौतूहल तथा उत्सव-के युक्ति (आनन्द) से नगर की कान्ताएँ अति ऊँचे हर्म्य (भवन) के झालरों से एड़ियों पर खड़ी हो देखते हुए, इशारों से उस विभु की सुकुमारता को दिखाती रहीं। २५४ [सी.] संपदाओं को देनेवाली कलकण्ठ वाली युवती (लक्ष्मी) जिसके वक्ष में निवास करती है, जनता की दृष्टि रूपी चक्रवाक-समूह के लिए जिसका भव्य मुख सुधा का पात्र है, सकल दिक्पालों की समिति के लिए जिसका बाहुदण्ड आधार है, आश्रित श्रेणी के लिए जिस अधिपति के चरण-कमल युगल ही प्राप्यस्थान हैं, [आ.] भुवन-मोहन, पुरुषों में भूषणस्वरूप जो है, ऐसा कृष्ण हर्म्य-शिखरों (अट्टालिकाओं) से युक्त भवनों से विराजित राजपथ पर, राजमुखियों (चंद्रवदनाओं) के कुसुमराशि की वर्षा करने पर आगे बढ़ चला। २५५ [म.] जलजाताक्ष वाला (कमलनयन वाला) धवल-छत्र, चामर, पुष्पपिशंग (पुष्परज) वर्ण के वस्त्र, भूषामणियों से सुशोभित स्फीत वक्ष वाला कृष्ण, सूर्य, शशिद्वय, नक्षत्रसमूह, इन्द्रधनुष तथा तटिल्लता (विद्युल्लता) से युक्त मेघ के आकार में भासित हुआ। २५६ [व.] इस प्रकार माता-पिता के घर में प्रवेश कर, देवकी आदि सात माताओं को प्रणाम किया। [करने

व. इट्लु तल्लिदंड्रुल निवासंबु सॊच्चि देवकीप्रमुखुलैन तल्लुल केड्वुरकु म्रॊक्किन ॥ 257 ॥

कं. विड्डडु म्रॊक्किन दल्लुलु,
जड्डन नंकमुल नुनिचि चन्नुलतुदि बा-
लॊड्डगिल प्रेमभरमुन,
जड्डुवडं दडिपि रक्षिजलमुल ननघा ! ॥ 258 ॥

व. तदनंतरं बष्टोत्तरशताधिक षोडशसहस्र सौवर्ण सौध कांतंबैन शुद्धांतंबु सॊच्चि हरि तन मनंबुन ॥ 259 ॥

म. ऒक भामाभवनंबु मन्नु सॊर वेरॊक्कर्तु लो गुंदुनो !
सुकरालापमुलाडदो ! सॊलयुनो ! सुप्रीति नीक्षिपदो !
विकलत्वंबुन नुंडुनो ! यनुचु नव्वेळन् वधूगेहमुल्
प्रकटाश्चर्य विभूति जॊच्चॆ बहुरूप व्यक्तुडै भार्गवा ! ॥ 260 ॥

व. आ समयंबुन ॥ 261 ॥

कं. शिशुवुल जंकलनिडि तनु
कृशतलु विरहाग्नि दॆलुप गृहगेहळुलन्
रशनलु जारग सिग्गुल,
शशिमुखु लॆदुरेगि रपुडु जलजाक्षुनकुन् ॥ 262 ॥

पर] २५७ [कं.] हे अनघ [परीक्षित] ! [सुनो !] बेटे के प्रणाम करते ही माताओं ने तुरत अंक (गोद) में लेकर, स्तनों के अंतिम भाग में (चूचुकों में) दूध के उमड़ आने पर, प्रेमातिरेक से, आसक्ति के उत्पन्न होने पर आँसुओं की धाराओं से [श्रीकृष्ण को] भिगो दिया। २५८ [व.] उसके अनन्तर [पश्चात्] एक सौ आठ, और सोलह हजार सुवर्ण के सौधों से कान्त (मनोहर) शुद्धान्त (अंतःपुर)-भवन में प्रवेश कर हरि ने अपने मन में [विचार किया]। २५९ [म.] हे भार्गव ! एक भामा के भवन मे पहले प्रवेश करने पर दूसरी शायद [मन] में दुःखी होगी ! [शायद] सुखकर आलाप (संभाषण) नही करेगी, विमुख बन जाएगी [अथवा] सुप्रीति से देखेगी नहीं [अथवा] व्याकुलता से रहेगी। ऐसा विचार करते हुए वधुओं के घरों (प्रियाओं के मन्दिरों) में प्रकटित (अभिव्यक्त) आश्चर्य कर विभूति (ऐश्वर्य) से बहुरूपों (अनेकानेक रूपों) में व्यक्त हो, प्रवेश किया। २६० [व.] उस समय में। २६१ [कं.] शिशुओं को गोद में लिये हुए, तनु की कृशता से विरह की अग्नि को व्यक्त करने पर, गृह गेहलियों (-देहलियों) पर, अशनाओं (नीवियों) के ढील पड़ जाने पर तब लजाती हुई शशि-मुखी [रमणियाँ] जलजाताक्ष (कमल-नयन वाले) की

म. पति ना यिंटिकि मुन्नु वच्चॅ निदॅ ना प्राणेशु डस्मद्गृहा
गतुडय्यॅन् मुनु सेरॅवो दॉलुत मत्कांतुंडु नाशालके
नितरालभ्य शुभंबु गंटि ननि तारिटिट नॅचिचि र-
य्यतिवल् नूरु वदारुवेलु नॅनमं डिव्वेळ नात्मेश्वरुन् ॥ 263 ॥

व. वारलं जूचि हरि यिट्लनियॅ ॥ 264 ॥

म. कॉडुकुल् भक्ति विधेयु लौदुरुगदा ? कोडंड्रु मी वाक्यमुल्
कडवं वारक युंदुरा ? विबुध सत्कारंबु गाविंतुरा ?
तॉडवुल् वस्त्रमुलुं पदार्थ रस संदोहंबुलुं जालुना !
कडमल् गावुगदा ? भवन्निलयमुल् गल्याण युक्तंबुले ? ॥ 265 ॥

सी. तिलकमेटिकि लेदु ? तिलकिनी तिलकम! पुव्वुलु दुरुमवा ? पुव्वुबोणि !
कस्तूरि यलदवा? कस्तूरिका गंधि! तॉडवुलु तॉडववा? तॉडवु तॉडव!
कलहंस वॅपुदे ? कलहंस गामिनि ! कीरंबु जदिविंतॅ ? कीरवाणि !
लतल दोंपितुवा? लतिका ललित देह! सरसि नोलाडुदॅ? सरसिजाक्षि!

आ. मृगिकि मेतलिडुदॅ ? मृगशाव लोचन !
गुरुल नादरिंतॅ ? गुरु विवेक !

अगवानी (स्वागत) करने चलीं। २६२ [म.] मेरे घर को पति प्रप्रथम पधारे हैं, यही मेरे प्राणेश ने मेरे गृह में प्रवेश किया है, मेरी शाला में पहले-पहल मेरे कान्त ने आगमन किया है, अन्य जन को अप्राप्य शुभ को मैंने पाया है, ऐसा समझते हुए एक हज़ार सोलह और आठ भामाओं ने आत्मेश्वर की अपने-अपने घर में अर्चना की। २६३ [व.] उनको देखकर, हरि ने ऐसा कहा। २६४ [म.] पुत्र भक्ति के कारण विधेय हैं न ? बहुएँ आपकी बातें टालती नहीं हैं न ? पण्डितों का आदर-सत्कार करती हैं न ? भूषण, वस्त्र, पदार्थ, रस-समूह पर्याप्त हैं न ? किसी चीज़ की कमी तो नहीं है न ? आपके मन्दिर कल्याणयुक्त (मंगलयुत) है न ? २६५ [सी.] तिलकिनी (स्त्रियों में तिलक, श्रेष्ठ) ! तिलक क्यों नहीं लगाती हो ? पुष्पांगी ! फूलों को क्यों नही सजाए ? हे कस्तूरिकागन्धी ! कस्तूरी का क्यों लेपन नहीं कर लेती ? भूषणों के लिए आभूषणस्वरूपा ! विभूषण क्यों नही धारण करती ? कलहंस-गामिनी (हंस-समान गमनवाली) ! कलहंस का पालन करती हो न? हे कीरवाणी (तोते के समान बोलीवाली) ! तोते को पढ़ाती हो न ? लतिकालतिक देहवाली (लतांगी) ! लताओं का पोषण करती हो न ? सरसिजाक्षी (कमलाक्षी) ! सरोवर में केली करती हो न ? [आ.] मृगशावक-लोचन वाली (बालमृग-नयन वाली) ! मृगी को चारा खिलाती हो न ? गुरु-विवेक वाली (बड़ी बुद्धिमती) !

बंधुजनुल ब्रोतें ! वंधु-चिंतामणि !
यनुचु सतुल नडिगें नच्युतुंडु ॥ 266 ॥

व. अनि यडिगिन वारलु हरिं बासिन दिनंबुलंदु शरीर संस्कार केळीविहार हास मंदिरगमन महोत्सव दर्शनंबु लॉलुलनि यिल्लांड्रु गावुन ॥ 267 ॥

म. सिरि चांचल्यमु तोडि दय्यु दनकुं जित्तेश्वरुंडंचु ने
पुरुष-श्रेष्ठु वरिंचें परमुन् बुद्धिन् विलोकंबुलन्
गरयुग्मंबुल नौगिलिंचिरि सतुल् गल्याण बाष्पंबुला
भरण श्रेणुलुगा प्रतिक्षण नवप्राप्तानुरागंबुलन् ॥ 268 ॥

म. पंचवाणुनि नीरु चेसिन भर्गुनि दनविल्लु व-
र्जिंचि मूर्छिल जेय जालु विशेष हास विलोकनो
दंचिताकृतुलय्यु गांतलु दंभचेष्टल माधवुन्
संचलिंपग जेय नेमियु जालरैरि बुधोत्तमा ! ॥ 269 ॥

व. इव्विधंबुन संग विरहितुंडैन कंसारि संसारि कैवडि विहरिंप नज्ञान विलोकुलैन लोकुलु लोकसामान्य मनुष्युंडनि तलंतुरु। आत्माश्रयंबैन बुद्धि यात्मयंदुन्न यानंदादुलतोडं गूडनि तेरंगुन नीश्वरुंडु प्रकृतितोडं गूडियु

गुरुओं का आदर करती हो न? वन्धुचिन्तामणि ! [वन्धुजनों (रिश्तेदारों) के लिए चिन्तामणि-समान] ! वन्धुजनों की रक्षा व आदर करती हो न? इस प्रकार अच्युत (कृष्ण) ने अपनी सतियों से कुशल पूछा। २६६ [व.] ऐसा पूछने पर, वे हरि के वियोग के दिनों में शरीर के संस्कार (अलंकार-शृंगार करना), केली-विहार, हास, वन-मन्दिर में प्रवेश (एवं) महान्-उत्सव के दर्शन से दूर रहनेवाली गृहिणियाँ हैं, अतः। २६७ [म.] चांचल्य से युक्त होते हुए भी लक्ष्मी ने अपने चित्त का ईश्वर (अधिकारी) मानकर जिस पुरुषश्रेष्ठ का वरण (चयन) किया, उस परात्मा को बुद्धि से (मन से) विलोकनों से [तथा] करयुग्मों से, कल्याणकर वाष्पों (आँसुओं) के आभरण-श्रेणियाँ वनने पर, प्रतिक्षण नव-अनुराग की प्राप्ति करते हुए, आलिंगन किया। २६८ [म.] हे बुधोत्तम ! पंचवाणवाले (मन्मथ) के गर्व को भस्म कर देनेवाले भर्ग (शिवजी) को भी अपने धनुष (प्रण) छोड़कर मूर्च्छित करा देने में समर्थ रमणियाँ, विशिष्ट रूप के हास, विलोकन, सुन्दर आकृतियों से युक्त होते हुए भी [वे] कान्ताएँ अपने दम्भ (कपट) की चेष्टाओं से माधव को संचलित (विचलित) न कर सकीं। २६९ [व.] इस प्रकार संगविरहित कंसारि (कंस का शत्रु = कृष्ण) के सांसारी (संसार [गृहस्थी] के वंधनों में बँधे व्यक्ति) की भाँति विहार करने पर, अज्ञान की दृष्टि से लोग, [उसे] लोक-साधारण मनुष्य मानते हैं। आत्माश्रित बुद्धि के आत्मा में स्थित आनन्दादि के साथ संगति न करने की रीति, ईश्वर प्रकृति के साथ रहते हुए भी, उस

ना प्रकृति गुणंबुलैन सुखदुःखंबुल जॆंदक युंडु। परस्पर संघर्षणंबुलचे वेणुवुल वलन वह्निबुट्टिंचि वनंबुल दहिंचु महावायुवु चंदबुन, भूमिकि भारहेतुवुलै यनेकाक्षौहिणुलतोडं ब्रवृद्ध तेजुलगु राजुल कन्योन्य वैरंबुलु गल्पिंचि निरायुधुंडै संहारंबु सेसि, शांतुंडै पिदपं गांतामध्यंबुन ब्राकृत मनुष्युंडुनुं बोलॆं, संचरिंपुचुंडॆं ना समयंबुन ॥ 270 ॥

कं. मतुली श्वरुनि महत्त्वमु,
मित मॆरुगनि भंगि नप्रमेयुडगु हरि
स्थिति नॆरुगक कामुकुडनि,
रतमुलु सलुपुदुरु तिगिचि रमणुलु सुमती ! ॥ 271 ॥

कं. ऎल्लपुडुनु मा इंड्लनु, वल्लभुडु वसिंचु नेनु वल्लभलमु श्री
वल्लभुन कनुचु गोपी, वल्लभुचे सतुलु नमतवल वडि रनघा ! ॥272॥

व. अनि चॆप्पिन विनि सूतुनकु शौनकुं डिट्लनियॆ ॥ 273 ॥

अध्यायमु—१२

उत्तरकु परीक्षित्तु जन्मिंचुट

सी. गुरुनंदनुंडु सक्रोधुडै येसिन ब्रह्मशिरोनाम बाण वह्नि
गप्पिंचु नुत्तर गर्भंबु ग्रम्मरु वब्जलोचनु चेत ब्रतिकॆ नंड्रु

प्रकृति के गुणात्मक सुख-दुःखादि में लीन न होकर परे रहता है। परस्पर संघर्ष से वेणुओं (वंशवृक्ष-बाँस) मे अग्नि को उत्पन्न कर, वनों को जलाने वाली महान् वायु की भाँति, भूमि के लिए भार-हेतु होनेवाले अनेक अक्षौहिणियों के साथ प्रवृद्ध तेजवाले राजाओं में परस्पर वैरभाव की कल्पना (सृष्टि) कर, नारायण विना आयुध के संहार कर, शान्त होने के वाद (फिर) कान्ताओं के बीच में प्राकृतिक मनुष्य की भाँति संचार करते रहे। उस समय। २७० [कं.] हे सुमती ! यति लोगों के ईश्वर के महत्त्व (एवं) सीमा को न जान पाने की रीति, अप्रमेय हरि की [निज] स्थिति को न जानकर (तथा) कामी है, ऐसा जानकर रमणियाँ [उसे] आकर्षित कर रतिक्रीड़ा करती हैं। २७१ [कं.] हे अनघ (पाप-रहित) ! हमारे घरों में वल्लभ सदा निवास करता है, (और) हम श्रीवल्लभ की वल्लभाएँ हैं, कहते हुए सतियाँ गोपीवल्लभ को ममता के जाल में फँस गईं। २७२ [व.] ऐसा कहने पर, सुनकर, सूत से शौनक ने यों कहा (पूछा) ! २७३

अध्याय—१२

उत्तरा के परीक्षित का पैदा होना

[सी.] गुरुनन्दन (अश्वत्थामा) के (द्वारा) क्रुद्ध हो फेंके गये ब्रह्मशिरो

गर्भस्थुडगु वालु गंसारि ये रीति ब्रतिकिंचॆ ? मृत्युवु भयमु वापि
जनिर्यिं. यतडॆन्नि संवत्सरमु लुंडॆ? नॆव्भंगि वर्तिचॆ नेमि सेसॆ?

आ. विनुमु शुकुडु वच्चि विज्ञान पद्धति
नतनि कॆट्लु सूपे नतडु पिदप
दन शरीर मे विधंबुन वर्जिचॆ ?
विप्रमुख्य ! नाकु विस्तरिंपु ॥ 274 ॥

व. अनिन सूतुं डिट्लनियॆ। धर्मनंदनुंडु चतुस्समुद्र मुद्रिताखिल जंवूद्वीपराज्यंबु नार्जिचियु, मिन्नुमुट्टिन कीर्ति नुपार्जिच्चियु, नंगनातुरंग मातंग सुभट कांचनादि दिव्यसंपदलु संपादिंच्चियु, वीरसोदर विप्र विद्वज्जन विनोदंबुलं ब्रमोदिंचियु, वैभवंबु ललवरिंचियु, ग्रतुवु लाचरिंचियु, [दुष्ट शिक्षण, शिष्ट रक्षणंबु लॊनरिंचियु] मुकुंद चरणारविंद सेवारतुंडॆ, समस्त संगंबुलंदु नभिलाषंबु वर्जिचि, यरिषड्वर्गंबु जयिंचि राज्यंबु सेयुचु ॥ 275 ॥

ते. चंदनादुल नाकट स्रग्गुवाडु, दनिवि नॊंदनि कॆवडि धर्मसुतुडु
संपदलु पॆक्कु गलिगियु जक्रिपाद, सेवनंबुल वरिपूर्ति सॆंदकुंडॆ ॥ 276 ॥

नामक वाण की अग्नि से कम्पित होनेवाले उत्तरा का गर्भ (शिशु) पद्मलोचन वाले कृष्ण के कारण बच गया, [ऐसा] कहते हैं। गर्भस्थ बालक को कंसारि ने किस प्रकार जीवित किया ? मृत्यु के भय से मुक्त हो, पैदा होकर, कितने वर्षों तक वह जीवित रहा ? कैसे व्यवहार किया ? (जीवन किस प्रकार विताया ?) [और] क्या किया ? सुनो, [आ.] शुकयोगी ने आकर वैज्ञानिक (आध्यात्मिक) पद्धति (मार्ग) उसे कैसे दिखाया [और] उसके पश्चात् अपने शरीर को कैसे त्याग दिया ? हे विप्रप्रमुख ! विस्तार से कहो। २७४ [व.] कहने (पूछने) पर, सूत ने इस प्रकार कहा। धर्मनन्दन के चारों सागरों की सीमाओं से परिवेष्ठित अखिल जम्बूद्वीप के राज्य का सम्पादन करके भी, आकाश को छूनेवाले यश को प्राप्त करके भी, अंगना, तुरग (घोड़े), मातंग (हाथी), सुभट (सिपाही), कांचन (सोना) आदि दिव्य संपदाओं का सम्पादन करके भी, वीर-सहोदर [तथा] विप्र-विद्वद्जन के विनोदों से प्रमोदित होकर भी, वैभवों से विलसित होकर भी, यज्ञ करके भी [दुष्ट-शिक्षण, शिष्ट-रक्षण करके भी] मुकुन्द के चरणारविन्दों (चरण-कमलों) की सेवा में रत हो, समस्त संगतियों में अभिलाषा (कामना) का वर्जन कर (त्यागकर), अरिषट्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) को जीतकर राज्य करते हुए, २७५ [ते.] भूख से पीड़ित व्यक्ति के चन्दन आदि (के लेपन) से तृप्त न होने की रीति धर्मसुत (युधिष्ठिर) अनेकों सम्पदाओं के होते हुए भी, चक्रि (विष्णु) के चरणों की सेवा के

सदयं डॆव्वडीको ! यटंचु मदिलो जर्चिपुचुन् शावकुं
डॆट्टुरें चूड नदृश्युडय्यॆ हरि सर्वेशुंडु विप्रोत्तमा ! ॥ 285 ॥

व. अंत ननुकूल शुभ ग्रहोदयंबुनु, सर्व गुणोत्तर फल सूचकंबुनैन मंचि लग्नंबुनं बांडव वंशोद्धारकुंडैन कुमारुंडु जन्मिंचिन, धर्मनंदनुंडु धौम्यादि भूसुरवर्गंबु रप्पिंचि, पुण्याहंबु सदिविंचि, जातकर्मंबुलु सेयिंचि, कुमारु जन्ममहोत्सव कालंबुन भूसुरुलकु विभवाभिरामंबुलैन गो भू हिरण्य हयानेक ग्रामंबुलुनु स्वादु रुचि संपन्नंबुलैन यन्नंबुलु निडिन, वारलु धर्मपुत्रुन किट्लनिरि ॥ 286 ॥

च. प्रकटित दैवयोगमुन पौरवसंतति यंतरिंपगा
विकलत नोंदनीक प्रभविष्णुडु कृष्णुडनुग्रहिंचि शा-
वकु व्रतिकिंचॆ गावुन नृपालक बालकुंडिक शात्रवां-
तकुडगु विष्णुरातुडन धात्रि प्रसिद्धिकि नॆक्कु बूज्युडै ॥ 287 ॥

व. अनिन भूदेवोत्तमुलकु नरदेवोत्तमुं डिट्लनियॆ ॥ 288 ॥

शा. ओ पुण्यात्मकुलार ! ना पलुकु मीरूर्हिपुडा म्रॊक्कॆदन्
मा पॆद्दल् चिरकीर्तुलै सदयुलै मन्नारु राजर्षुलै
यी पिन्नातडु वारि पोलॆडि गदा ! यॆल्लप्पुडुन् माधव
श्री पादांबुज भक्ति युक्तुडगुचुन् जीविंचुने ? चूडरे ! ॥ 289 ॥

देखने पर, सर्वेश्वर हरि अदृश्य हो गया । २८५ [व.] तब अनुकूल शुभ ग्रहों के उदय [युक्त], सर्वगुणोत्तर फल-सूचक शुभवेला में पाण्डववंश के उद्धारक पुत्र के जन्म लेने पर, धर्मनन्दन ने धौम्य आदि भूसुर-वर्ग को बुलाकर, पुण्याहवाचन पढवाकर, जातकर्म करवाकर, पुत्रजन्म के महोत्सव के काल (समय) मे, भूसुरों को वैभव से अभिराम (सुन्दर) गो, भू, हिरण्य (स्वर्ण), हय (घोड़े), अनेक गाँव और स्वादुरुचिसंपन्न (रुचिकर) भोजन देने पर उन लोगो ने धर्मपुत्र से इस प्रकार कहा । २८६ [च.] प्रकटित दैवयोग से पौरव (पुरु की) सन्तति के समाप्त होने की व्याकुलता न रहे, ऐसा प्रभविष्णु कृष्ण ने शिशु को बचाया, इसलिए नृपबालक (राजकुमार) अब शत्रुओं को समाप्त करनेवाला होगा, विष्णुरात के नाम से धरती पर विख्यात एव पूज्य होगा । २८७ [व.] ऐसा कहने पर भूदेवोत्तमों (ब्राह्मणो) से नरदेवोत्तम ने इस प्रकार कहा । २८८ [शा.] हे पुण्यात्माओ! आप लोग मेरे वचन ध्यान से सुनिए । प्रणाम करता हूँ । हमारे पूर्वज शाश्वत कीर्तिशाली, दयाशाली, राजर्षि हो विराजमान रहे । यह बालक भी उनकी भाँति सदा माधव के श्रीचरणकमलो मे भक्तियुक्त हो जीवन बितायेगा या नही, देखिए न! २८९ [व.] कहने पर सुनकर (ब्राह्मणों ने कहा) नरेन्द्र! आपका पोता

व. अनिन विनि नरेंद्रा ! भवदीय पौत्रुंडु मनुपुत्रुंडैन यिक्ष्वाकु चंदंबुनं बजल रक्षिंचु श्रीरामचंद्रुनि भंगि ब्रह्मण्युंडु सत्य प्रतिज्ञुंडु नगु डेग वेंटनंटिन विट्टु भीतंबै वेनुककु वच्चिन कपोतंबु गाचिन शिवि चक्रवर्ति भंगि शरण्युंडुनु, वितरण खनियु नगु दुष्यंत सूनुंडैन भरतु पगिदि सोमान्वय ज्ञाति वर्गंबुलकु यज्वलकु ननगंळ कीर्ति विस्तरिंचुचु, धनंजय कार्तवीर्युल करणि धनुर्धराग्रेसरुंडगु। कीलि पोलिक दुर्दर्षुंडगु। समुद्रुनि तेरंगुन दुस्तरुंडगु। मृगेंद्रुनि कैवडि विक्रमशालि यगु। वसुमति वोलें नक्षयकांति युक्तुंडगु। भानुनि लागु प्रतापवंतुंडगु। वासुदेवु वड्वुन सर्वभूत हितुंडगु। तल्लि दंड्रुलमाड्कि सहिष्णुडगु। मरियुनु ॥ 290 ॥

सी. समदर्शनंबुन जलजात भवुडन वरम प्रसन्नत भर्गुडनग
नेल्लगुणंबुल निंदिराविभुडन नधिक धर्ममुन ययाति यनग
धैर्यसंपद बलि दैत्यवल्लभुडन नच्युत भक्ति प्रह्लादु डनग
राजितोदारत रंतिदेवुंडन नाश्रित महिम हेमाद्रि यनग

ते. यशमु नार्जिंचु, वेद्दल नादरिंचु,
नश्वमेधंबु लोनरिंचु, नात्मसुतुल

मनुपुत्र इक्ष्वाक की भाँति प्रजा की रक्षा करेगा। श्रीरामचन्द्र की भाँति ब्रह्मण्य (वेदोक्त धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला [तथा] सत्यप्रतिज्ञ रहेगा। चील के पीछे पड़ने पर, अधिक भयभीत हो लौट [शरण में] आये कपोत (कबूतर) की रक्षा करनेवाले चक्रवर्ती शिवि के समान शरण्य एवं वितरण [गुण] की खान होगा। [तथा] दुष्यन्त-पुत्र भरत की नाईं सोमवंश के बन्धुवर्ग यज्ञ करनेवाले को अपार यश का विस्तार होगा, धनंजय (अर्जुन), कार्त्तवीर्य की भाँति धनुर्धरों में अग्रेसर (श्रेष्ठ) होगा। कीलि (अग्नि) के समान दुर्दप (जिसे भयभीत करना संभव न हो) होगा। समुद्र के समान दुस्तर होगा। मृगेन्द्र (सिंह) के समान पराक्रमी होगा। वसुमती (धरती) के समान अक्षय क्षांतियुक्त (क्षमाशील) सहिष्णु होगा। भानु (सूर्य) की भाँति प्रतापवान होगा। वासुदेव के विधान से सर्वभूतहितैषी होगा। माता-पिता के समान सहिष्णु होगा। और भी, २९० [सी.] समदर्शिता में जलजातभव (ब्रह्मा) के समान, परम प्रसन्नता में भर्ग के समान, सब गुणों में इन्दिरा के विभु (विष्णु), अत्यधिक धर्म [बुद्धि] में ययाति, धैर्य-सम्पदा में राक्षसराजा बली, अच्युत [की] भक्ति में प्रह्लाद, राजित-उदारता में रन्तिदेव, आश्रित जनों की रक्षा करने में हिमाद्रि के समान हो, [ते.] यश का सम्पादन करेगा, बड़ों का समादर करेगा, अश्वमेध करेगा, महान् पुत्रों को जन्म देगा, दुष्टों को पकड़कर दण्डित करेगा। मानवेन्द्र ! तुम्हारा

धनुल वुट्टिचु, दंडिचु खलुल वट्टि,
मानधनुंडु नी मनुमंडु मानवेंद्र ! ॥ 291 ॥

भु. हरिचुं गलिप्रेरिताघंबु लॅल्लन्
भरिचुन् धरन् रामभद्रुंडु वोलॅन्
जरिचुन् सदा वेदशास्त्रानु वृत्तिन्
वरिचुन् विशेषिंचि वैकुंठु भक्तिन् ॥ 292 ॥

व. इट्लु पॅक्केंड्लु जीविंचि, भूसुर कुमारक प्रेरितंबैन तक्षक सर्प विषानलंबुनं दनकु मरणंबनि यॅरिंगि, संगवर्जितुंडै, मुकुंद पादारविंद भजनंबु सेयुचु शुकयोगींद्रुनि वलन नात्मविज्ञान संपन्नुंडै, गंगातटंबुन शरीरंबु विडिचि, निर्गत भयशोकंबैन लोकंबु प्रवेशिंचुनु। अनि जातक फलंबु सॅप्पि लब्धकामुलै भूसुरुलु चनिरि। अंत ॥ 293 ॥

कं. तनतल्लि कडुपु लोपल,
मुनु सूचिन विभुडु विश्वमुन नॅल्ल गलं
डनुचु वरीक्षिपग जनु,
लनघु वरीक्षिन्न रेंद्रुडंड्रु नरेंद्रा ! ॥ 294 ॥

आ. कळल चेत राजु ग्रममुन वरिपूर्णु, डैन भंगि दात लनुदिनंबु
वोषणंबु सेय वूर्णुडय्यॅनु धर्म, पटल पालकुंडु वालकुंडु ॥ 295 ॥

पोता [ऐसा] मानधनी होगा। २९१ [भु.] कलि से प्रेरित समस्त अघों (पापों) का हरण करेगा (दमन करेगा); रामभद्र (श्रीराम) के समान धरा का भरण (पोषण) करेगा। सदा वेद व शास्त्रों के अनुसार आचरण करेगा। विशेष रूप से वैकुण्ठवासी (विष्णु) की भक्ति का वरण करेगा। २९२ [व.] इस प्रकार कई वर्ष जीवित रहकर, भूसुर-कुमारक से प्रेरित होनेवाले तक्षक सर्प के विष की अग्नि से अपनी मृत्य निश्चित है, यह जानकर संगवर्जित हो (विषय-संगति छोड़कर), मुकुन्द (विष्णु) के पादारविंदों का भजन करते हुए, शुकयोगींद्र के द्वारा आत्म-विज्ञान से सम्पन्न होकर, गंगा तट पर शरीर त्यागकर, भय और शोक-विरहित लोक में प्रवेश करेगा। ऐसा जातक-फल कहकर, इष्टकामनाएँ (धर्मराज से) प्राप्त कर, भूसुर (ब्राह्मण) चले गए। तब। २९३ [कं.] हे नरेन्द्र ! अपनी माता की कोख में पूर्व में जिस विभु के दर्शन किये थे, वह विश्व-भर में व्याप्त है, ऐसा परखकर जानने के कारण [इसे] अनघ (पुण्यात्मा लोग) परीक्षित् नरेन्द्र कहेंगे। २९४ [आ.] जिस प्रकार राजा (चन्द्र) क्रमशः सकल कलाओं के साथ क्रमशः परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार दादाओं के प्रतिदिन पोषण करने पर धर्म-पटल (-समूह) के पालक बालक पूर्ण रूप से विकसित हुआ। (प्रवर्द्धित हुआ)। २९५ [व.] और धर्मराज के अपने

व. मरियु धर्मजुंडु बंधुसंहार दोषंबु वायुकौरकु नश्वमेध यागमु सेयंदलंचि प्रजलवलनं गरदंडंबुल नुपार्जितंबैन वित्तंबु चालक चित्तंबुनं जिंतिंचुनेड, नच्युत प्रेरितुलै भीमार्जुनादुलु, दौलिल मरुत्तुंडनु राजु मखंबुचेसि परित्यजिंचि निक्षेपिंचिन सुवर्ण पात्रादिकंबैन वित्त मुत्तर दिग्भागंबु वलन बलवंतुलै तेच्चिन, ना राज-सत्तमुंडुनु समायत्त यज्ञोपकरणुंडै, सकल बंधुसमेतंबुग गृष्णुनि नाह्वानंबु चेसि, पुरुषोत्तमु नुद्देशिंचि मूडु जन्नंबुलु गाविंचे। तदनंतरंब कृष्णुंडु बंधु प्रियंबु कौरकु गरिनगरंबुनं गौन्नि नेललुंडि, धर्मपुत्रादुलचे नामंत्रणंबु-वडसि, यादव समेतुंडै धनंजयुंडु तोडरा निजनगरंबुनकु जनिये।

अध्यायमु—१३

अंतकु मुन्नु विदुरुंडु तीर्थयात्रकु जनि, मैत्रेयु मुंदट गर्म योग व्रतादि विषयंबुलैन प्रश्नलु गौन्नि चेसि, यतनिवलन नात्मविज्ञानंबु देलिसि, कृतार्थुडै हस्तिपुरंबुनकु वच्चिन ॥ 296 ॥

कं. बंधुडु वच्चे नटंचुनु, गांधारीविभुडु मौदलुगा नंदरु सं-
बंधमुलु नेऽपि प्रीति न, मंथरगति जेसि रपुडु मन्ननलनघा ! ॥ 297 ॥

वन्धुजनों के संहार करने के दोष को मिटाने के निमित्त अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा कर, प्रजाओं से कर और दंड के रूप में उपार्जित धन के पर्याप्त न होने की चिन्ता चित्त में करने पर, अच्युत (कृष्ण) की प्रेरणा से भीम, अर्जुन आदि के, पूर्वकाल में मरुत नामक राजा के यज्ञ-कर छोड़ दिये सुवर्ण-पात्रादि [में निक्षिप्त] धन को उत्तर दिशा से, बलवान होकर लाने पर, उस राजसत्तम (राजेन्द्र) ने यज्ञ की सामग्री को समायत्त कर (इकट्ठा कर) सकल वन्धुओं के साथ कृष्ण का स्वागत कर, पुरुषोत्तम को उद्दिष्ट कर, तीन यज्ञ किये। उसके पश्चात् कृष्ण वन्धुप्रीति के लिए करिनगर में कतिपय महीने बिताकर, धर्मपुत्रादि से आमंत्रित होकर [पुनरागमन के लिए], यादवों को साथ लेकर धनंजय के साथ आने पर, निज (अपने) नगर को गया।

अध्याय—१३

इसके पहले तीर्थयात्रा को जाकर, मैत्रेय के सम्मुख कर्मयोग, (तथा) व्रत आदि विषयगत कतिपय प्रश्न पूछकर, उनसे आत्मविज्ञान को जानकर (प्राप्त कर), कृतार्थ हो विदुर हस्तिनापुर में आया। २९६ [कं.] हे अनघ! [सुनो] तब यह कहकर कि वन्धु आ गया है, गान्धारी-विभु (धृतराष्ट्र) आदि सब सम्बन्धियों ने प्रेम से अमंथरगति से (शीघ्रता से)

व. अंत धर्मनंदनुंडु विदुरुनिकि मज्जन भोजनादि सत्कारंबुलु सेयिंचि
सुखासीनुंडै तनवार लंदरु विन निट्लनियॆ ॥ 298 ॥

सी. ऐ वर्तनंबुन नितकालमु मीरु संचरिंचितिरय्य ? जगतिलोन
नॆ तीर्थमुलु गंटिरॆक्कड नुंटिरि ? भाविंप मीवंटि भागवतुलु
तीर्थसंघंबुल धिक्करिंतुरु गदा ! मीयंदु विष्णुंडु मॆरय कतन
मीरॆ तीर्थंबुलु मी कंटॆ मिक्किलि तीर्थंबु लुन्नवे? तॆलिसि चूड

ते. वेरॆ तीर्थंबु लवनिपै वॆदकनेल,
मिम्मु बॊडगानि भाषिंचु मेलॆ चालु
वार्तलेमंड्रु ? लोकुलु वसुधलोन,
मीकु सर्वंबु नॆरिगॆडि मेरगलदु ॥ 299 ॥

म. तंड्रि सच्चिन मीद मा पॆदतंड्रि बिड्डलु दॊल्लि पॆ-
क्कंड्रु सर्पविषाग्नि बाधल नासि पॆट्टग मम्मु नि-
ल्लांड्र नंतमु बॊंदकुंडग लालनंबुन मीरु मा-
तंड्रि भंगि समुद्धरिंतुरु तद्विधंबु दलंतुरे ? ॥ 300 ॥

कं. पक्षुलु तम रॆक्कललो, वक्षंबुलु रानि पिल्लपदुबुल ममतन्
रक्षिंचिनक्रिय मीरलु, पक्षीकरणंबु सेय ब्रतिकितिमि गदे ! ॥ 301 ॥

कं. मन्नारा ? द्वारकलो, नुन्नारा ? यदुवु लंबुजोदरु करुणन्
गन्नारा ? लोकुलचे, विन्नारा ? मीरु वारि विध मॆट्टिदियो ॥ 302 ॥

आदर-सत्कार किए। २९७ [व.] तब धर्मनन्दन ने विदुर का स्नान तथा भोजन आदि से आदर सत्कार करवाकर, सुखोपविष्ट कर, अपने सब (सम्बन्धी) सुनें, ऐसा कहा (पूछा) ! २९८ [सी.] इस अवधि में किस प्रकार आपने संचार किया ? जगत में कौन से पुण्यतीर्थ देखे और कहाँ-कहाँ रहे ? विचार करने पर आप जैसे भागवत-जन तीर्थ-संघों (समूहों) की उपेक्षा करते हैं न ! आपमे विष्णु ज्योतित है, अतः आप ही तीर्थ हैं, परखकर देखें तो आपसे बढकर तीर्थ है ? (नहीं।) धरती पर अन्य तीर्थों के लिए ढूंढ़ना ही क्यो ? [ते.] आपको देख [आपके साथ] भाषण करना ही बस है। लोग दुनिया मे क्या कहते है ? वार्त्ताएँ (समाचार) कौन सी हैं ? आपमें सब कुछ जानने की शक्ति है। २९९ [म.] पिता की मृत्यु के बाद हमारे ताऊ के अनेक बेटों के, पूर्व में, साँप के विष, अग्नि आदि से यातनाएँ देने पर हमें एवं हमारी पत्नियों को समाप्त होने (मर जाने) मे बचाकर लालन करते हुए, आपने हमारे पिता की भाँति समुद्धार किया, उस रीति का कभी स्मरण करते है न ! ३०० [कं.] पक्षीगण के अपने पंखों में अभी पंख निकल न आनेवाले शिशु-समूहों को ममता के साथ रक्षा करने की रीति आपके पक्षीकरण (पक्षपात) करने पर हम जीवित रहे न ! । ३०१ [कं.] यदु

च. अन विनि धर्मराजुनकु ना विदुरुंडु समस्त लोकव-
र्तनमु ग्रमंबुतोड विशदंबुग जॅप्पि, यदुक्षयंबु सॅ-
प्पिन नतडुग्रशोकमुन बॅग्गिलु चुंडॅडि नंचु नेमियुन्
विनुमनि चॅप्पडय्यॅ यदुवीरुल नाशमु भार्गवोत्तमा ! ॥ 303 ॥

आ. मेलु चॅप्प नेनि मेलंड्रु लोकुलु, चेटु चॅप्प नेनि चॅट्ट यंड्रु
अंतमीद शूद्रुडैन कतंबुन्, शिष्टमरण मतडु सॅप्पडय्यॅ ॥ 304 ॥

व. अदि यॅट्लनिन मांडव्यमहामुनि शापंबुनं दॉलि यमुंडु शूद्रयोनियंदु विदुरुंडै जन्मिंचियुन्न नूरुसंवत्सरंबु लर्यमुंडु यथाक्रमंबुन बापकर्मुल दंडिचॅ। इट युधिष्ठिरुंडु राज्यंबु गैकॉनि लोकपाल संकाशुलैन तम्मलुं दानुनु कुलदीपकुंडैन ननुमनि मुद्दु सेयुचु बॅद्दकालंबु महावैभवंबुन सुखियै युंडॅ ॥ 305 ॥

कं. बालाजन शाला धन, लीला वनमुख्य विभवलीन मनीषा
लालसुलगु मानवुलनु, गालमु वंचिंचु दुरवगाहमु सुमती ! ॥ 306 ॥

व. अदि निमित्तंबुनं गालगति यॅरिगि विदुरुंडु धृतराष्ट्रुन किट्लनियॅ ॥ 307 ॥

(यादव लोग) अम्बुजोदर (विष्णु) की करुणा को पाकर सुख से जीवित हैं न ? उन लोगों के बारे में आप लोगों ने जो सुना है, वह विधान कैसा है ? ३०२ [च.] हे भार्गवोत्तम ! [सुनो] धर्मराज की बातें सुनकर उस विदुर ने समस्त लोकों के आचरण को क्रम से विशद (विस्तार) रूप में बताया, (किन्तु) यदुकुल के क्षय (विनाश) को विदित करने पर वह (धर्मराज) उग्रशोक में अति दुःखित होगा, ऐसा मानकर यदुवीरों के विनाश के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं बताया। ३०३ [आ.] शुभ [समाचार] कहने पर लोग भला कहते हैं, अशुभ कहने पर लोग बुरा कहते हैं, तिस पर स्वयं शूद्र होने के कारण शिष्ट मरण के बारे में उसने कुछ न कहा। ३०४ [व.] वह कैसा है, पूछोगे तो, माण्डव नामक महामुनि के शाप के कारण पूर्व में यमराज के शूद्र योनि में विदुर के रूप में जन्म लेने के कारण, उस सौ वर्ष के काल में अर्यम (पितृ-देवताओं में एक) ने यथाक्रम से पापकर्मियों को दण्डित किया। यहाँ युधिष्ठिर ने राज्य ग्रहण कर लोकपालकों के समान अनुजों के साथ स्वयं कुलदीपक पोते को लाड़-प्यार करते हुए बहुत समय तक महावैभव के साथ सुखी हो रहा। ३०५ [कं.] हे सुमती ! [सुनो] बालाजन (कन्यका-समूह) शाला (भवन) और धन एवं विहार-वन आदि के वैभव में लीन (मग्न) प्रजा (तथा) लालसा वाले मनुष्यों को काल धोखा देता है, इस [धोखे की] रीति (गति) को समझना कठिन है। ३०६ [व.] उस कारण से काल की गति को जानकर, विदुर ने धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा। ३०७

गांधारी धृतराष्ट्रुलु देहत्यागमु चेयुट

मं. कनकागार कळत्र मित्र सुत संघातंबुलन् मुंदट
गनि प्राणेच्छल नुंडु जंतुवुल नेकालंबु दुर्लंघ्यमै
यनिवार्यस्थिति जंपु नट्टि निरुपायंबैन कालंबु व-
च्चॆ नुपांतंबुन मारु दीनिकि मदिन् जिंतिपु धात्रीश्वरा ! ॥ 308 ॥

शा. पुट्टंधुंडवु, पॆद्दवाडवु, महा भोगंबुला लेवु, नी
पट्टॆल्लं जॆडिपोयॆ, दुस्सह जराभरंबु पै गप्पॆ, नी
चुट्टा लॆल्लनु वोयि रालु मगडुन् शोकंबुनन् मग्नुलै
कट्टा ! दायलपंच नुंड दगवे, कौरव्य वंशाग्रणी ! ॥ 309 ॥

कं. पॆट्टितिरि चिच्चु गृहमुन, वट्टितिरि तदीयभार्य, वाडवुलकुं
गॊट्टितिरि, वारु मनुपग, नॆट्टॆन भरिपवलॆनॆ ? यी प्राणमुलन् ॥ 310 ॥

कं. विड्डलकु बुद्धि सॆप्पनि, ग्रुड्डिकि विडंबु वंडिकॊनि पॊडिदॆं पै
वड्डाडनि भीमुं डॊर, गॊड्डॆमु लाडंग गूडु गुडिचॆद वधिपा ! ॥ 311 ॥

कं. कनियॆदवो बिड्डल निक, मनियॆदवो तॊंटिकंटॆ मनुमल माटल्
विनियॆदवो यिच्चॆदर, म्मनियॆदवो दानमुलकु नववीसुरुलन् ॥ 312 ॥

गान्धारी तथा धृतराष्ट्र का देह-त्याग करना

[म.] हे धात्रीश्वर ! कनक-आगार (स्वर्ण-गृह), कलत्र (पत्नी), मित्र, सुत (पुत्र) के समूह को [अपने] सामने देखते हुए प्राणों की इच्छा से रहनेवाले प्राणि-कोटि के लिए सदा दुर्लंघ्य होकर, काल अनिवार्य रूप से मार डालता है, ऐसे उपाय-रहित काल निकट आ गया हैं। इसके प्रतीकार का उपाय क्या है ? इसके वारे में मन में विचार करो ! ३०८ [शा.] हे कौरववंश के अग्रणी ! जन्म से अन्धे हो, वड़े (बूढ़े) हो, महान् भोग तो [अव] नहीं हैं, तुम्हारी समस्त पकड़ (अधिकार) समाप्त हो गयी, दुस्सह जरा-भार छा गया, तुम्हारे सव वन्धुजन चले (मर) गये, पत्नी के साथ स्वयं शोकमग्न हो, हाय ज्ञातिजनों के आँगन (आश्रय) में रहना कहाँ का न्याय है ? ३०९ [कं.] घर में आग लगायी थी, तदीय (उनकी) पत्नी को अपमानित किया था, भयानक जंगलों को भेजा था, (और आज) उनकी दया पर जिस किसी तरह इन प्राणों को धारण करना (जीवन विताना) क्यों ? ३१० [कं.] हे अधिप (राजा) ! अपने वेटों को सीख न देनेवाले इस अन्धे को पिण्ड पकाकर डाल दो। यह हमारे सिर आ पड़ा है। ऐसा भीम के कटोर (चुटीले) वचन कहने पर, सुनते हुए भोजन कैसे करते हो ? ३११ [कं.] अव आगे क्या वच्चों को जन्म दोगे (या) पूर्व-काल से अधिक वैभव से जीओगे, (या) पोतरों की (तोतली)

कं. देहमु नित्यमु गादनि, मोहमु दॅग गोसि सिद्धमुनिवर्तनुडै
गेहमु वॅलुवडु नरुडु, त्साहमुतो जेंदु मुक्ति-संपद ननघा ! ॥ 313 ॥

व. अनि विदुरुंडु धृतराष्ट्रुनकु विरक्तिमार्गंबुपदेशिंचिन नतंडु, प्रज्ञाचक्षुंडै संसारंबु दिगनाडि, मोहपाशंबुल वलन नूडि, विज्ञानमार्गंबुनं गूडि, दुर्गमंबगु हिमवन्नगंबुनकु निर्गमिंचिन ॥ 314 ॥

शा. अंधुंडैन पतिन् वरिंचि, पतिभावासक्ति नेत्रद्वयी
बंधाच्छादनमुन् धरिंचि, नियम प्रख्यातयै युन्न त-
द्गांधार क्षितिनाथु कूतुरुनु योगप्रीति चित्तंबुलो
संधिल्लं बतिवेंट नेगॅ नुदय त्साध्वीगुणारूढयै ॥ 315 ॥

च. वॅनुककु राक चॊच्चु रणवीरुनि कैवडि राजदंडनं
बुनकु भयंबुलेक वडि बोयॅडु धीरुनि भंगि नप्पुडा
वनित दुरंतमैन हिमवंतमु पॊंत वनांत भूमिकिं
बॅनिमिटि तोड निंचुकयु भीतिवहिंपक येगॅ ब्रीतितोन् ॥ 316 ॥

व. इट्लु विदुर सहितुलै गांधारी धृतराष्ट्रुलु वनंबुनकुं जनिन, मरुनाडु धर्मनंदनुंडु प्रभातंबुन संध्यावंदनंबु चेसि, नित्यहोमंबुलु गाविंचि,

---

वोली सुनोगे (या) अवनीसुरों (ब्राह्मणों) को दान लेने बुलाओगे ? [ये सब अब नहीं कर सकोगे]। ३१२ [कं.] हे अनघ ! शरीर नित्य (शाश्वत) नहीं है, ऐसा सोचकर मोह को काटकर सिद्ध-मुनि-वर्तन से (सिद्ध और मुनियों के समान आचरण करते हुए) घर छोड़नेवाला, मनुष्य उत्साह के साथ मुक्ति-संपदा को पा लेगा। ३१३ [व.] इस प्रकार विदुर के धृतराष्ट्र को वैराग्य-मार्ग का उपदेश देने पर, वह प्रज्ञा (ज्ञान) की आँखों वाला होकर, संसार (गृहस्थ-बंधनों) को त्यागकर, मोहपाशों से छूटकर, विज्ञान के मार्ग को अपनाकर, दुर्गम हिमवत्-नग (हिमालय पर्वत) को चल पड़ा। ३१४ [शा.] अन्धे पति का वरण कर, पति-भाव की आसक्ति में दोनों नेत्रों को बन्धन से आच्छादित कर, नियम [पालन] में विख्यात बनी वह, गान्धार-क्षितिनाथ (राजा) की पुत्री, योग की प्रीति के चित्त में युक्त होने पर, उदित साध्वी गुणों से प्रतिष्ठित हो पति के साथ चल पड़ी। ३१५ [च.] पीछे न आकर [आगे] घुस जानेवाले युद्धवीर की भाँति, राजदण्ड के भय से रहित हो [आगे] वेग से चलनेवाले धैर्यशाली की रीति, वह वनिता तब दुरन्त (अंतहीन) हिमालय के निकट के वन के भीतर की भूमि में किंचित् भी भयभीत न होते हुए, प्रीति से पति के साथ गयी। ३१६ [व.] इस प्रकार विदुर-सहित हो गान्धारी एवं धृतराष्ट्र के वन में प्रस्थान करने के पश्चात् दूसरे दिन धर्मनन्दन ने प्रभात में सन्ध्या-

ब्राह्मणोत्तमुलकु गो हिरण्य तिल वस्त्रादि दानंबु लिच्चि, नमस्करिंचि, गुरुवंदनंबु कॊऱकु बूर्वप्रकारंबुनं दंड्रि मंदिरंबुनकुं जनि ,यंदु विदुरसहितुलैन तल्लि दंड्रुलं गानक मंजुपीठंबुनं गूर्चुन्न संजयुन किट्लनियॆ ।। 317 ।।

सी. मा तल्लि दंड्रुलु मंदिरंबुन लेरु संजय ! वा रॆंदु जनिरॊ नेडु
मुंदरगानडु मुसलि मा पॆदतंड्रि, पुत्रशोकंबुन बॊगुलु दल्लि
सौजन्यनिधि प्राण सखुडु मा पिनतंड्रि, मंदबुद्धुलमैन मम्मु विडिचि
यॆंदुबोयिरॊ ? मुव्वुरॆरिगिपु गंगलो दन यपराधंबु दडविकॊनुचु

आ. भार्यतोड दंड्रि परितापमुन वडु, गपट मिंत लेदु, करुण गलदु
पांडु भूविभुंडु परलोकगतुडैन, मम्मु विन्नवांड्र मनिचॆ नतडु ।। 318 ।।

व. अनिन संजयुंडु दया स्नेहंबुल नतिकर्शितुंडगुचु तन प्रभुवु पोयिन तॆरंगॆरुंगक कॊंतदड वूरकुंडि तद्वियोग दुःखंबुन गन्नीरु करतलंबुन दुडिचिकॊनुचु, बुद्धि बलंबुनं जित्तंबु धैर्यायत्तंबु सेसि तन भर्तु पादंबुल मनंबुन नॆन्नचु धर्मजुन किट्लनियॆ ।। 319 ।।

ते. अखिल वार्तलु मुन्नु नन्नडुगुचुंडु,
नडुगडो रेयि मीतंड्रि यवनिनाथ !

वन्दन कर, प्रतिदिन के [समान] हवन कर, ब्राह्मण-श्रेष्ठों को गाय, हिरण्य (सोना), तिल, वस्त्र आदि दान देकर, नमस्कार कर, गुरुवन्दन (वड़ों की वन्दना) करने के निमित्त यथाप्रकार पिता के मन्दिर जाकर, वहाँ विदुर-सहित माता-पिता को न देख, मंजु (सुन्दर) पीठ पर उपविष्ट संजय से ऐसा कहा (पूछा) ! ३१७ [सी.] सजय ! हमारे माता-पिता मन्दिर (घर) में नही है। पता नही, वे आज कहाँ चले गये। हमारा ताऊ वूढा है, आगे का दिखता नही। पुत्र-शोक में माँ व्याकुल है। सौजन्य की निधि और प्राणसखा हमारा चाचा है। मंद बुद्धि वाले हमें छोडकर पता नही, ये तीनो कहाँ गये ! अपने अपराधों को टटोलते हुए कही गंगा मे तो डूब नही गये ! [आ.] पत्नी-सहित पिता दुःखी होता रहता है। छल-कपट किंचित् भी नही है, (और हमारे प्रति) करुणा-भाव है ! पाण्डु-भू-विभु (राजा) के परलोक-गत होने के पश्चात् उसने हम छोटों की रक्षा (पालन-पोषण) की थी। ३१८ [व.] कहने पर संजय ने दया तथा स्नेह के कारण अति कृशीभूत होकर अपने प्रभु के प्रस्थान की रीति को न जान सक, कुछ समय तक चुप रहकर उनके वियोग के दुःख से उत्पन्न आँसुओं को करतल (हथेली) से पोंछ लेते हुए, बुद्धिवल से चित्त में धैर्य बाँधकर मन में अपने राजा के चरणों की स्तुति कर धर्मराज से इस प्रकार कहा। ३१९ [ते.] अवनीनाथ ! [इससे] पूर्व सकल समाचार मुझसे पूछ लेनेवाले तुम्हारे पिता ने मुझसे कल रात को

मंदिरमुलोन विदुरुतो मंतनंबु,
निन्न याडुचुनंडेनु नेडु लेडु ॥ 320 ॥

व. विदुर गांधारी धृतराष्ट्रुलु नन्नु वंचिंचि येंदु बोयिरो ? वारल निश्चयंबु लेट्टिदो ? येरुंग ननि संजयुंडु दुःखिंचु समयंबुन दुंबुरुसहितुंडै नारदुंडु वच्चिन लेचि, नमस्करिंचि, तम्मुलुं दानुनु नारदुं बूजिंचि कौंतेयाग्रजुं डिट्लनियें ॥ 321 ॥

उ. अक्कट ! तल्लिदंड्रुलु गृहंबुन लेरु, महात्म ! वारु ने
डेक्कड बोयिरो येरुग नेप्पुडु बिड्डल पेरु गुच्चिचता
वोक्कुचुनुंडु दल्लि; येटु वोये नोको ! विपदंबुराशिकिन्
निक्कमु गर्णधारुडवु नीवु जगज्जन पारदर्शना ! ॥ 322 ॥

व. अनिन विनि सर्वज्ञुंडैन नारदुंडु धर्मजुन किट्लनियें। ईश्वर वशंबु विश्वंबु। ईश्वरुंडे भूतंबुल नोकटितो नोकटि जेर्चु नेडवापु। सूचीभिन्न नासिकलंडु रज्जुप्रोतंबु लगुचु गंठरज्जुवुल गट्टंबडिन वलीवर्दबुलं बोले गर्तव्याकर्तव्य विधायक वेदलक्षण यगु वाक्तंत्रि यंदु वर्णाश्रमलक्षणंबुलु गल नामंबुलचे बद्धुलैन लोकपाल सहितंबुलै लोकंबु लीश्वरादेशंबु वहिंचु। क्रीडासाधनंबुनगु नक्षकंदुकादुल केट्लु संयोग वियोगंबु

कुछ नहीं पूछा। मन्दिर (घर) में विदुर के साथ कल वार्त्तालाप करता रहा और आज वह नही है। ३२० [व.] विदुर तथा गान्धारी, धृतराष्ट्र पता नही मुझे धोखा देकर कहाँ गये ? (पता नहीं उनके निर्णय किस प्रकार के हैं ?) [मैं] नहीं जानता, ऐसा कहते हुए संजय के दुःखी होते समय, तुम्बुर के साथ नारद के आते ही, उठकर [स्वागत कर] प्रणाम कर, अनुजो के साथ नारद की पूजा कर, कौन्तेयाग्रज (युधिष्ठिर) ने इस प्रकार कहा। ३२१ [उ.] हाय ! माता-पिता घर मे नहीं है। हे महात्मा ! पता नही, वे आज कहाँ चले गये है। सदा पुत्रों के नाम ले-लेकर पूछते हुए (स्मरण करते हुए) माता दुःखी होती रहती, पता नही, कहाँ चली गयी है। विपत्तियों की अंबुराशि (सागर) के लिए तुम सचमुच कर्णधार (नाविक) हो। हे जगत् के लोगों के पार (लक्ष्य, गम्य) को जाननेवाले ! ३२२ [व.] कहने पर, सुनकर सर्वज्ञ नारद ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि विश्व सारा ईश्वर के वश में है। ईश्वर ही सब प्राणियों को एक-दूसरे से मिलाता है (और) बिछोह करवाता है। सूची-भिन्न नासिकाओ में रस्सियों से बँधकर, कण्ठों के रस्सियों के द्वारा बाँधे जानेवाले वलीवर्द (बैलों) के सदृश कर्तव्य तथा अकर्तव्य का विधान करनेवाले, वेदों के लक्षणयुक्त वचनों के तंत्रों में वर्णाश्रम के लक्षणों के नाम से निबद्ध हो लोकपालो के सहित

लट्लु क्रीडिंचु नीश्वरुनिकि ग्रीडासाधनंबुलैन जंतुवुलकु संयोगवियोगंबुलु गलुगुचुंडु। समस्तजनंबुनु जीवरूपंबुन ध्रुवंबुनु, देहरूपंबुन नध्रुवंबुनै युंडु। मरियु नॊक्कपक्षंबुन ध्रुवंबु नध्रुवंबु गाकयुंडु। शुद्धब्रह्मरूपंबुन ननिर्वचनीयंबुग रॆंडुनै युंडु। अजगरंबुचेत म्रिंगंबडिन पुरुषुडन्युल रक्षिंपलेनि तॆरंगुन वंचभूतमयंबै कालकर्म गुणाधीनंबैन देहंब परुल रक्षिंप समर्थंबु गादु। करंबुलुगल जंतुवुलकु गरंबुलु लेनि चतुष्पदादु लाहारंबुलगु। चरणंबुलुगल प्राणुलकु जरणंबुलुलेनि तृणादुलु भक्षणीयंबुलगु। अधिक जन्मंबुलुगल व्याघ्रदुलकु नल्पजन्मंबुगल मृगादुलु भोक्ष्यंबुलगु। सकल देहिदेहंबुलंदु जीवुंडु गलुगुटं जेसि जीवुनिकि जीवुंड जीविकयगु। अहस्त सहस्तादि रूपंबैन विश्वमंतयु नीश्वरुंडुगा नॆरिंगुमु। अतनिकि वेरु लेदु। निज माया विशेषंबुन मायाविये जाति भेद रहितुंडैन यीश्वरुंडु वहुप्रकारंबुल भोगि भोग्य रूपंबुल नंतरंग वहिरंगंबुल दीपिंचु। कान यनाथुलु दीनुलु नगु नादु तलिदंड्रुलु ननुं वासि येमय्येदरो? यॆट्लु वर्तिंचुदुरो? यनि वगवं वनि

लोक सब ईश्वर के आदेशों का वहन करते हैं। खेल के साधन अक्ष, कन्दुक आदि के लिए संयोग तथा वियोग जिस प्रकार घटित होते है, उसी प्रकार क्रीड़ा (लीला) करनेवाले ईश्वर के लिए क्रीड़ा की सामग्री बने जन्तुओं (प्राणि-कोटि) को संयोग तथा वियोग घटित होते रहते हैं। समस्त जन जीव के रूप में स्थिर (तथा) देह के रूप में अस्थिर (अशाश्वत) होते है। और भी एक प्रकार से ध्रुव (स्थिर) तथा अध्रुव (अस्थिर) नहीं होते हैं। शुद्धब्रह्म के रूप में अनिर्वचनीय हो दोनों रूपों मे बने रहते हैं। अजगर से निगला गया पुरुष (जीव) दूसरों की रक्षा करने में जिस प्रकार असमर्थ होता है, उसी प्रकार पंचभूतमय हो कालकर्म तथा गुणों के आधीन होकर [यह] शरीर दूसरों की रक्षा करने में समर्थ नहीं होता। हाथ वाले जानवरों को करहीन चार पैर वाले [जानवर] आदि आहार बनाते है। चरण वाले प्राणियो के लिए चरण-हीन तृण आदि भक्षणीय होते हैं। अधिक जन्म वाले [व्याघ्रादि] (बलशाली) के लिए अल्प-जन्म वाले (बलहीन) मृग आदि भोज्य बनते है। सकल देहियों की देहों में जीव के रहने से, जीव के लिए जीव ही जीविका (जीने का साधन) होता है। हस्त वाले (तथा) अहस्त रूपों में स्थित विश्व ईश्वर का ही स्वरूप है, यह जान लो। उससे परे और कुछ नही है। अपनी विशिष्ट माया के कारण मायावी बन, जाति-भेद-रहित ईश्वर अनेक प्रकार से भोगी (तथा) भोग्य रूपों में अन्तरंग तथा बहिरंग में प्रदीप्त होना है। इसलिए अनाथ तथा दीन हो मुझसे बिछुड़कर मेरे माता-पिता का क्या हो जाएगा? कैसे जीवन बिताएँगे? ऐसा दुःखी होने की

लेदु। अज्ञानमूलंबगु स्नेहंबुन नैन मनोव्याकुलत्वंबु परिहरिंपु मनि मरियु निट्लनियें ॥ 323 ॥

आ. अट्टि कालरूपु डखिलात्मुडगु विष्णु
डसुर नाशमुनकु नवतरिंचि
देवकृत्यमेल्ल दीर्चि चिक्किनपनि
कॅदुरु सूचुचुंडु निप्पुडधिप ! ॥ 324 ॥

म. एंतकाल गृष्णुडीश्वर डिद्धरित्रि जरिंचु, मी-
रंतकालमु नुंडु डंदरु, नव्वलं बनिलेदु, वि-
भ्रांति मानुमु, कालमुं गडवंग नेव्वरु नोप, री
चिंत येल ? नरेंद्रसत्तम ! चॅप्पेदन् विनुमंतयुन् ॥ 325 ॥

व. धृतराष्ट्रुडु गांधारी विदुर सहितुंडै हिमवत्पर्वत दक्षिणभागंबुन नोक्क मुनिवनंबुनकुं जनि, तोल्लि सप्तऋषुलकु संतोषंबु सेयुकोरकु, नाकाश गंग येडु प्रवाहंबुलै पारिन पुण्यतीर्थंबुनं गृतस्नानुंडै, यथाविधि होम मोनरिंचि, जलभक्षणंबु गाविंचि, सकल कर्मंबुल विसर्जिंचि, विघ्नंबुलु जेंदक, निराहारुंडै, युपशांतात्मुडगुचु, पुत्रार्थ दारैषणंबुलु वर्जिंचि, विन्यस्तासनुंडै, प्राणंबुलु नियमिंचि, मनस्सहितंबुलैन चक्षुरादींद्रियंबुल नारिंटिनि विषयंबुलं बर्वतिपनीक निर्वर्तिंचि, हरि भावना रूपंबगु

आवश्यकता नहीं है। अज्ञान-मूलक स्नेह के कारण उत्पन्न मानसिक व्याकुलता को छोड़ दो। और आगे ऐसा कहा। ३२३

[आ.] अधिप ! (राजा !) ऐसे कालस्वरूप, एवं अखिलात्मा हो विष्णु, असुरों के विनाश के लिए अवतरित होकर, देवकार्य को सम्पन्न कर और अब हाथ लगे (अगले) कार्य की प्रतीक्षा करते रहता है। ३२४

[म.] नरेन्द्र-सत्तम (राजाओं में श्रेष्ठ) ! सब कुछ कह देता हूँ, सुनो ! जब तक कृष्ण व ईश्वर इस धरती पर होंगे, तब तक आप लोग होंगे, उसके पश्चात् कोई आवश्यकता नहीं है। विभ्रान्ति (अज्ञान) छोड़ दो। काल के बीत जाने पर कोई भी नही रहेगा। यह चिन्ता क्यों ? ३२५

[व.] धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा विदुर को साथ लेकर हिमालय पर्वत के दक्षिण भाग में एक मुनिवन को गया, पूर्व में सप्त ऋषियों को सन्तुष्ट करने के लिए आकाशगंगा सात प्रवाहों में विभाजित हो प्रवाहित हुई, उस पुण्यतीर्थ में स्नान कर, विधिवत् हवन कर, जल भक्षण कर, सकल कर्मों को छोड़कर, विघ्नरत न होकर, निराहारी हो, उपशान्त आत्मावाला हो, पुत्र, अर्थ, दारा रूपी ईषणों को त्यागकर, मुख ऊपर उठाकर, प्राणों को नियंत्रित कर, मन के साथ चक्षु आदि छः इन्द्रियों को विषयों में संचार करने से निरोधित (रोक) कर, हरिभावना-स्वरूप धारणा-योग से

धारणायोगंबुचे रजस्सत्त्वतमोरूपंबुलगु मलंबुल मूटिनि हरिंचि, मनंबु नहंकारास्पदंबैन स्थूलदेहंबु वलनं बापि, बुद्धियंबु नेकीकरणंबु चेसि, यट्टि विज्ञानात्मनु दृश्यांशंबु वलन वियोगिंचि, क्षेत्रज्ञुनि यंदु वोंदिंचि, द्रष्ट्रंशंबु वलन क्षेत्रज्ञुनि वापि, महाकाशंबु तोड घटाकाशमुं गलुपु कैवडि नाधार भूतंबैन ब्रह्म मंदु गलिपि, लोपलि गुणक्षोभंबुनु, वॆलुपलि यिंद्रिय विक्षेपंबुनु लेक निर्मूलित मायागुण वासनुंडगुचु, निरुद्धंबुलगु मनश्चक्षुरादींद्रियंबुलु गलिगि, यखिलाहारंबुलनु वर्जिंचि, कॊय्यडु चंदंबुन ॥ 326 ॥

म. उटजांतस्थल वेदिकन् नियतुडै युन्नाडु ने डादिगा
निटपै नेनवनाडु मेन् विडुवगा निज्याग्नि योगाग्नि त-
त्पट्टु देहंबु दर्हिप जूचि, नियम प्रख्यात गांधारि यि-
ट्टट्टु वो नॊल्लक, प्राणवल्लभुनितो नग्नि बडुं भूवरा ! ॥ 327 ॥

कं. अंतट वारल मरणमु, वितयगुचु जूडवडिन विदुरुडु चिंता
संताप मॊंदव ब्रीत, स्वांतुंडै तीर्थमुलकु जनियॆडु नधिपा ! ॥ 328 ॥

व. अनि विदुरादुल वृत्तांतं वंतयु धर्मनंदनुन कॆरिंगिंचि तुंबुरु सहितुंडै नारदुंडु स्वर्गंबुनकु निर्गमिंचिन वॆनुक, धर्मजुंडु भीमुनि जूचि यिट्लनियॆ ॥ 329 ॥

रजस्, सत्त्व, तमस् रूपी तीन मलों (दोषों) को हटाकर, मन को अहंकार का निलयस्वरूप स्थूल देह से अलग कर, बुद्धि में एकीकृत कर, ऐसे विज्ञानात्मा को दृश्य-अंश से अलग कर, क्षेत्रज्ञ में प्रतिस्थापित कर, द्रष्टा के अंश से क्षेत्रज्ञ को अलग कर, महाकाश से घटाकाश को मिलाने की रीति आधार-भूत ब्रह्म से मिलाकर, आन्तरिक गुण के संक्षोभ तथा बाह्य इन्द्रियों के विक्षेप से विरहित हो, मायागुणों की वासनाओं को निर्मूल कर, मन, चक्षु, आदि इन्द्रियों को निरोधित कर, सकल आहार को त्यागकर, ठूँठ के समान। ३२६ [म.] भूवर ! उटज (झोंपड़ी) के भीतर की वेदिका पर नियत रूप से स्थित है। आज से सात दिन के बाद शरीर छोड़ने पर, इज्य (यज्ञ) अग्नि और योग की अग्नि के उस पटु देह को जलाते देखकर, नियम के लिए विख्यात गान्धारी इधर-उधर जाने की इच्छा न कर, प्राणवल्लभ (धृतराष्ट्र) के साथ अग्नि में कूद पड़ेगी। ३२७ [क.] हे अधिप ! तब विचित्र रीति से हुई उनकी मृत्यु को देखकर, [पहले] विदुर चिन्ता एवं सन्ताप को पाकर, फिर प्रीत-स्वान्तवाला (सन्तुष्ट) बनकर, तीर्थों के लिए चल पड़ेगा। ३२८ [व.] इस प्रकार विदुर आदि के सकल वृत्तान्त को धर्मनन्दन को विदित कर तुम्बुर के साथ नारद के स्वर्ग के लिए प्रस्थान करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने भीम को देखकर ऐसा कहा। ३२९

अध्यायमु—१४

धर्मराजु दुर्निमित्तंबुलं गनि चिंतिचुट

सी. ऑक्क कालमुन वंडु नोषधीचयमु वेरोंककालमुन बंडकुंडु नंड्र,
क्रोधंबु लोभंबु ग्रूरतवोंकुनु दीपिप नरुलु वर्तितु रंड्र,
व्यवहारमुलु महाव्याजयुक्तमु लंड्र, सख्यंबु वंचना सहित मंड्र,
मगलतो निल्लांड्र मच्चरिचेद रंड्र, सुतुलु दंड्रुल दॆगजूतु रंड्र,

ते. गुरुल शिष्युलु दूषिचि कूड रंड्र,
शास्त्रमार्गमु लॆव्वियु जरुग वंड्र,
न्यायपद्धति वुधुलेन नडवरंड्र,
कालगति वितयै वच्चॆ गंटॆ नेडु ॥ 330 ॥

म. हरि जूडन् नरुडेगिनाडु नॆल लेडय्यॆंगदा! राक्का
लरु लॆव्वारुनु, यादवुल् समदलोल स्वांतु लेवेळ सु-
स्थिरुलै युंडुदुरा? मुरारि सुखियै सेसंबुतो नुंडुना?
यॆरवै युन्नदि वित्तमीश्वर कृतं वॆट्लोकदा? मारुती! ॥ 331 ॥

कं. मानसमु गलगुचुन्नदि, मानवु वहु दुर्निमित्त मर्यादलु, स-
न्मानव देहक्रोडलु, मान विचारिप नोपु माधवु डनुजा! ॥ 332 ॥

अध्याय—१४

युधिष्ठिर का दुश्शकुनों को देख चिन्तित होना

[सी.] कहते हैं कि एक ऋतु में पैदा होनेवाली ओषधियाँ (धान्य-समूह) अन्य ऋतुओं में पैदा होती नहीं, क्रोध, लोभ, क्रूरता, असत्य को प्रकट करते हुए लोग अपना जीवन व्यतीत करते है, [जीवन के सारे] व्यवहार व्याज (स्वार्थ) पूर्ण हैं, सख्यता वंचना से युक्त है, पतियों से पत्नियाँ मात्सर्य वरतती हैं, पुत्र पिताओ का वध करना चाहते हैं, [ते.] शिष्य लोग गुरुओं का दूषण कर [उन्हे] छोड़ देते हैं, शास्त्र-मार्ग के अनुसार कोई भी नहीं चलता, बुधवर (ज्ञानी लोग) भी न्याय-मार्ग पर नहीं चलते। देखा, आज काल की गति विचित्र रूप से आ उपस्थित है। ३३० [म.] हे मारुती (भीमसेन)! हरि के दर्शन करने जाकर नर (अर्जुन) को एक महीना बीत गया। (अब तक) कोई दूत भी नहीं आया। समद (मस्त) लोलस्वांत (चंचल चित्त) वाले यादव सदा सुस्थिर होंगे न? मुरारि (कृष्ण) सुखी तथा सकुशल होगा न? चित्त में व्याकुलता है, पता नहीं. ईश्वर की इच्छा किस प्रकार की है? ३३१ [कं.] हे अनुज! मन विकल बन रहा है, अनेक अपशकुन मर्यादा (सीमा)

कं. मनवुलु चॆंप्पक मुंदर, मनदार प्राण राज्य मान श्रीलन्
मनुपुवु ननि या देवुडु, मनमुन दलपोसि मनिचॆं मनलं गुरुणन् ॥ 333 ॥

कं. नारदु डाडिन कैवडि, ग्रूरपु गालंबु वच्चॆं गुंभिनि मीदन्
घोरमुलगु नुत्पातमु, लारभटि जूडवडियॆं ननिलज ! कंटे ॥ 334 ॥

सी. ओडक नामुंडु नौक सारमेयंबु मॊरुगुचु नुन्नदि मोरयॆत्ति
यादित्यु डुदयिंप नभिमुखियै नक्क वापोयॆं मंटलु वात गलुग
मिक्किलु चुन्नवि मॆरसि गवादुलु गर्दभादुलु दीचि ऋंदुकोनियॆं
नुत्तमाश्वमुलकु नुदयिचॆं गन्नीरु मत्तगजंबुल मदमु लुडिगॆं

आ. गालु दूत भंगि गविसॆं गपोतमु
मंड दग्नि होम मंदिरमुल
जुट्टु वॊंगलु दिशल सॊरिदि नाच्छादिचॆं
धरणि मासॆं जूडु धरणि गदलॆं ॥ 335 ॥

कं. वातमुलु विसरॆं रेणु, व्रातमु लाकसमु गप्पॆं वडि सुडिगॊनि नि-
र्घातमुलु वडियॆं घन सं, घातंबुलु रक्तवर्ष कलितमु लय्यॆन् ॥ 336 ॥

कं. ग्रहमुलु पोराडॆडि ना, ग्रहमुलु विनवडियॆं भूतकलकलमुल, दु-
स्सहमुलगुचु शिखिकीला, वहमुलक्रिय दोचॆं गगन वसुधांतरमुल् ॥337॥

तोड़ रहे हैं, मानव की देह-क्रीड़ाएँ (आचरण) पतनोन्मुख है, इनका विचार करने की समर्थता माधव में ही है। ३३२ [कं.] निवेदन (प्रार्थना) करने से पहले ही हमारे पत्नी, प्राण, राज्य, मान, लक्ष्मी, धन (राज्य आदि) की रक्षा करने का मन में ठानकर, उस देव ने करुणा-कलित हो हमारी देखभाल की थी। ३३३ [क.] अनिलज (पवन-सुत, भीमसेन) ! देखा है न, नारद के वचनों के अनुसार क्रूर काल आसन्न हुआ है। कुंभिनी धरतो पर भयंकर उत्पात अतिसंरंभ से देखे जा रहे हैं। ३३४ [सी.] मेरे सम्मुख एक कुत्ता सिर उठाकर, अश्रान्त (अन-थके) भौंक रहा है, सूर्योदय होने के बाद एक सियार सूर्याभिमुखी हो, मुँह से ज्वालाएँ उत्पन्न होने पर, रो रहा है। चील, गधे आदि अमंगलप्रद [जानवर] झुंड बाँधकर विचर रहे हैं, श्रेष्ठ घोड़ों के आँसू निकल आ रहे है। मस्त हाथियों का मद चूर हुआ। [आ.] कबूतर कालपुरुष के दूत के समान समीप आ रहा है। हवन-मंदिरों में अग्नि प्रज्वलित नहीं हो रही है। सब दिशाओं में धुआँ क्रम से छा गया। देखो ! सूर्य मलिन हुआ, धरती काँप उठी। ३३५ [कं.] वात (तूफान) बह उठे। धूलिकण आकाश में छा गये ! वेग से लग-लगकर निर्घात (गाज) गिरने लगे। मेघ-समूह रक्त की वर्षा से युक्त हुए। ३३६ [कं.] ग्रह संघर्ष कर रहे है, उन ग्रहों में प्राणिकोटि की कलकल (चीत्कार)

कं. दूडलु गुड्डववु चन्नुलु, दूडलकुनु गोवुलीवु दुग्धमु, लॉडलं
वीडलु मानवु, पशुवुल, गूडवु वृषभमुलु दट्टि पिकुट्टल नॅक्कुन् ।। 338 ।।

कं. कवलॅडु वेल्पुल रूपुलु
वदलॅडु गन्नीरु वानिवलनं जॅमटल
वॉदलॅडि ब्रतिमलु वॅलि जनि
मॅदलॅडि नॉक्कॉक्क गुडिनि मेदिनि यंदुन् ।। 339 ।।

कं. काकंबुलु वापोयॅडि, घूकंबुलु नगर बगलु गुंड्रलु गॉलिपॅन्
लोकंबुलु विभ्रष्ट, श्रीकंबुल गति नशिंचि शिथिलमु लय्यॅन् ।। 340 ।।

म. यव पद्मांकुश चाप चक्र झष रेखालंकृतंबैन मा-
धवु पादद्वय मिक मुट्टॅड्डु पवित्रत्वंबु ने डादिगा
नवनीकांतुकु लेवुवो ! पलुमरु न्नवंद वामाक्षि बा-
हुवु लाकंपमु नॉंदुचुंडु, निल के युग्रस्थितु लवच्चुनो ! ।। 341 ।।

व. मरियु महोत्पातंबुलु पॅक्कुलु पुट्टुचुन्नयवि। मुरांतकुनि वृत्तांतंबु विनरादु। अनि कुंतीसुताग्रजुंडु भीमुनितो विचारिंचु समयंबुन ।। 342 ।।

ध्वनियाँ सुनने में आईं। वसुधा तथा आकाशमंडल असहनीय (भयंकर) अग्निज्वालाओं के सदृश भासित हुए। ३३७ [कं.] बछड़े स्तन्यपान नहीं करते, बछड़ों को गायें दूध नहीं पिलातीं, शरीर की पीड़ाएँ नहीं मिटती। वृषभगण गायों से मिलते नहीं, छोटी आयु वाली गायों से संभोग करते हैं। ३३८ [कं.] देवों की कुछ मूर्तियाँ हिल रही हैं, कुछ आँसू टपका रही हैं, कुछ पसीना बहा रही हैं, धरती के किसी-किसी मन्दिर की मूर्ति बाहर निकल आ रही है। ३३९ [कं.] कौए रो रहे हैं। उल्लू दिन में ही राजमंदिरों में चक्कर लगा रहे हैं। सारे लोक विभ्रष्ट-श्रीक (नष्ट संपत्ति वाले) के समान नष्ट हो, शिथिल हुए। ३४० [म.] यव, पद्मांकुश, चाप, चक्र, झष की रेखाओं से अलंकृत, माधव के चरण-युगल को स्पर्श करने की पवित्रता आज से अवनी-कान्ता (धरणी-रमणी) को नहीं है न ! वार-वार मेरे वाम (बायाँ) अक्षि (आँख) तथा हाथ कम्पित हो रहे हैं, पता नहीं, पृथ्वी को किस प्रकार की उग्र स्थितियाँ (भयानक दुस्थिति) सम्प्राप्त होंगी। ३४१ [व.] और अनेक प्रकार के उत्पात हो रहे हैं। मुरान्तक (श्रीकृष्ण) का समाचार सुनने में नहीं आया। इस प्रकार कुन्ती-सुताग्रज (युधिष्ठिर) के भीमसेन के साथ चिन्तित होते समय में। ३४२

अर्जुनुंडु द्वारकनुंडि वच्चि श्रीकृष्ण निर्याणमुनु दॆलियजॆप्पुट

कं. खेदमुन निंद्रसूनुंडु, यादवपुरिनुंडि वच्चि, यग्रजु गनि, त-
त्पादमुल नयन सलिलो, त्पादकुडै पडियॆं दीनुभंगि नरेंद्रा ! ॥ 343 ॥

कं. पल्लटिलिन युल्लमुतो, दल्लडपडुचुन्न पिन्न तम्मुनि गनि वॆं-
ल्वॆल्ल नगु मोगमुतो जनु, लॆल्लनु विन धर्मपुत्रुडिट्लनि पलिकॆन् ॥344॥

सी. मातामहुंडॆन मन शूरुडुन्नाडॆ ? मंगळमे मन मातुलुनकु ?
मोदमे नलुगुरु मुगुरु मेनत्तल ? क्रानंदमे वारि यात्मजुलकु ?
नक्रूर कृतवर्म लायुस्समेतुले ? जीवितुडे युग्रसेन विभुडु ?
गल्याण युक्तुले गद सारणादुलु माधवु तम्मुलु मानधनुलु ?

ते. नंदमे ? मन सत्यक-नंदनुनकु
भद्रमे ? शंवरासुर - भंजनुनकु
गुशलमे ? बाणदनुजेंद्रु कूतुपतिकि,
हर्षमे ? पार्थ ! मुसलिकि हलिकि वलिकि ॥ 345 ॥

व. मरियुनु नंधक मधु यदु भोज दाशार्ह वृष्णि सात्वतु लनियॆडि वंशंबुलु
वीरुलुनु, हरि कुमारुलैन सांब सुषेण प्रमुखुलुनु, नारायणानुचरुलैन

अर्जुन का द्वारका से लौटकर कृष्ण के निर्याण (महाप्रस्थान)
की वार्त्ता (समाचार) बताना

[कं.] नरेन्द्र ! [मुनो] इन्द्रसुत (अर्जुन) खेद से, यादवपुरी से लौटकर, नयन-सलिल आँसू उत्पादक होते हुए (बहाते हुए), दीन की भाँति उनके चरणों मे गिर पड़ा। ३४३ [क.] विचलित हृदय से व्यथित होनेवाले छोटे भाई को देख, मुख की कान्तियाँ समाप्त होने पर, सब लोग सुनें, ऐसा युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा (पूछा)। ३४४ [सी.] हे पार्थ ! अपने मातामह (नाना) शूर (कुंतिभोज) [सकुशल] हैं न ? हमारे मातुल (मामा) कुशल तो हैं न ? चार और तीन फूफियाँ मुदिता हैं न ? उनके पुत्रों को तो आनन्द है न ? अक्रूर, कृतवर्मा (आदि) आयु-सहित हैं न ? विभु (राजा) उग्रसेन जीवित हैं न ? माधव के भाई गद, सारण आदि मानधनी मंगल से है न ? [ते.] सत्यक-नंदन (सात्यकि) सुखी हैं न ? शंवरासुर का भंजन (वध) करनेवाला (प्रद्युम्न) कुशल है न ? वाण नामक राक्षस राजा की बेटी का पति (अनिरुद्ध) कुशल है न ? मुसली (मूसल धारण करनेवाला, हलधर, बलराम) जो बली है, पति है, हर्ष से है न ? ३४५ [व.] और फिर अंधक, मधु, यदु, भोज, दाशार्ह, वृष्णि, सात्वत नामक वंशों के वीर और हरि के कुमार साम्ब, सुषेण आदि, और नारायण के अनुचर (साथी) उद्धव आदि, कृष्ण के सहचर

युद्धवादुलुनु, कृष्णसहचरुलैन सुनंद नंदादुलुनु सुखानंदुले ? यनि यंदर नडिगि, धर्मजुंडु ग्रम्मर निट्लनियें ।। 346 ।।

सी. वैकुंठवासुल वडुवुन नेव्वनि बलमुन नानंद भरितुलगुचु
वेंद्रवक यादववीरुलु वर्तितु, रमरुलु गोलुवुंडु नट्टि कोलुवु
चविकें नाकर्षिचि चरणसेवकुलैन बंधु मित्रादुल पदयुगमुन
नेव्वडु द्रोक्किंचें, निंद्रपीठमु मीद, वज्रंबु जळिपिंचि व्रालुवानि

ते. प्राणवल्लभ कॅंगेल बादु चेसि,
यमृत जलमुल बोषिप नलरु पारि
जात मॅव्वडु कोनिवच्चि सत्यभाम
किच्चें, नट्टि महात्मुन किपुडु शुभमें ? ।। 347 ।।

शा. अन्ना ! फल्गुन ! भक्तवत्सलुडु ब्रह्मण्युंडु गोविंदु डा
पन्नानीक शरण्यु डीशुडु जगद्भद्रानुसंधायि श्री-
म न्नव्यांबुज पत्रनेत्रुडु सुधर्मामध्य पोठंबुनं
दुन्नाडा ? बलभद्रुगूडि, सुखियै युत्साहियै, द्वारकन् ।। 348 ।।

कं. आ रामकेशवुलकुनु, सारामलभक्ति नीवु सलुपुदुवु गदा ?
गारामुलु सेयुदुरा ? पोरामुल बंधु लॅल्लप्रोद्दु जितारी ! ।। 349 ।।

शा. मुन्नुग्राटविलो वराहमुनकै मुक्कंटितो बोरुचो,
सन्नाहंबुन गालकेयुल वॅडि जक्काडुचो व्राभव

(सखा) सुनन्द, नन्द आदि सुखी (तथा) आनन्द से है न ? ऐसा सबके बारे में पूछकर, युधिष्ठिर ने फिर कहा। ३४६ [सी.] यादव वीर किसके बल पर वैकुण्ठवासियों की तरह भय छोड़कर, आनन्द-भरित होकर रहते हैं ? अमरों की सभा-वेदिका की ओर आकृष्ट कर, चरण-सेवक बने बन्धु मित्रों के द्वारा किसने चरण दबवाये ? इन्द्रपीठ पर वज्र [-आयुध] को चमकाते हुए टूट पड़नेवाला कौन है ? [ते.] प्राण-वल्लभा के [अपने] रक्तिम हाथों से आलवाल बनाने के लिए अमृत-जल से पोषित हो विलसित होनेवाले पारिजात को लाकर किसने सत्यभामा को सौंपा ? ऐसा महात्मा अब कुशल से तो है न ? ३४७ [शा.] तात ! फल्गुन ! भक्त-वत्सल, ब्रह्मण्य, गोविन्द, आपन्न-गण (आर्तजन) के शरण्य, ईश, जगत के लिए शुभ का प्रदान करनेवाला, श्रीमत् नवकमल-पत्र-सम लोचन वाला, सुधर्म [इन्द्र की सभा] के मध्य पीठ (सिंहासन) पर आसीन होकर, द्वारका में बलभद्र के साथ सुखी, उत्साही हो विराजित है न ? ३४८ [कं.] जितारी (शत्रुओं को जीतनेवाले) ! (यह बताओ कि) उन बलराम और केशव की तुम सार-निर्मल भक्ति करते हो न ? तुम्हारे आने-जाने पर आप्तजन बन्धुगण सदा प्यार करते है न ? ३४९ [शा.] पूर्व में

स्कन्नुंडै चनु कौरवेंद्रु पनिकै गंधर्वुलं द्रोलुचो,
गन्नीरॅन्नडु देवु तंड्रि ! चॅपुमा ! कल्याणमे ! चक्रिकिन् ॥ 350 ॥

व. अदियिनं गाक ॥ 351 ॥

कं. ओडितिवो शत्रुवुलकु, नाडितिवो साधु दूषणालापंबुल्,
गूडितिवो परसतुलनु, वीडितिवो मानधनमु वीरुल नडुमन् ॥ 352 ॥

कं. तप्पितिवो यिच्चॅद ननि, चॅप्पितिवो कपटसाक्षि; चेसिन मेलुं
दॅप्पितिवो शरणार्थुल, रॉप्पितिवो द्विजुल वसुल रोगुल सतुलन् ॥353॥

कं. अडिचितिवो भूसुरुलनु,
गुडिचितिवो बाल वृद्ध गुरुवुलु वॅलिगा,
विडिचितिवो याश्रितुलनु,
मुडिचितिवो परुल वित्तमुल लोभमुनन् ॥ 354 ॥

अध्यायमु—१५

व. अनि पलिकिनं गन्नीरु करतलमुनं दुडिचि कॉनुचु, गद्गद स्वरंबुन

भयंकर अरण्य में वराह के लिए त्रिनेत्र वाले (शिवजी) से संघर्ष करते समय, सप्रयत्न तीव्रगति से कालकेयों को पराजित करते समय, प्राभव-स्कन्न (पराक्रम के च्युत) होकर जानेवाले कौरवेन्द्र (दुर्योधन) के कार्य के लिए गन्धर्वों को भगाते समय, [उन विकट परिस्थितियो में भी तुमने] कभी आँसू न वहाये, तात ! बताओ ! चक्रि (कृष्ण) कल्याण-कलित है न ? ३५० [व.] इसके अतिरिक्त (यह नहीं तो)। ३५१ [कं.] शत्रुओं के हाथों पराजित हुए क्या ? साधुओं के प्रति दूषण-भाषण किया क्या ? परायी स्त्रियों का संगम किया क्या ? वीरों के बीच में मानधन (गौरव) को छोड़ दिया (अपमानित हुए) क्या ? ३५२ [कं.] दान देने का वचन देकर मुकर गये क्या ? किसी के प्रति कपटपूर्ण साक्ष्य दिया क्या ? किसी के प्रति किए गए भलाई का [दुबारा याद दिलाकर] उपालंभ दिया क्या ? [अथवा] शरणार्थियों, ब्राह्मणों, पशुओं, रोगियों, सतियों को (तुमने) कहीं भगा दिया क्या ? ३५३ [कं.] भूसुरों को दबाया (मार डाला) क्या ? बालक, वृद्ध, गुरुजनों को छोड़कर, अलग से भक्षण किया क्या ? आश्रितों [जनों] की रक्षा नहीं की क्या ? पराये धन को लोभ के कारण कहीं हड़प लिया क्या ? ३५४

अध्याय—१५

[व.] इस प्रकार कहने (पूछने) पर, करतलों (हथेलियों) से आँसू पोंछ लेते हुए, गद्गद स्वर से, महानिधि को खो देनेवाले ग़रीब के समान,

महानिधि गोलुपोयिन पेदचंदंबुन निट्टूर्पुल निगुडिपुचु, नर्जुनुंडन्न क्रिट्लनियें ॥ 355 ॥

कं. मन सारथि, मन सचिवुडु,
मन विययमु, मन सखुंडु, मन बांधवुडुन्
मन विभुडु, गुरुवु,
देवर मनलनु दिगनाडि चनियें, मनुजाधीशा ! ॥ 356 ॥

कं. कंटकपु नृपुलु सूडग, मिटं गंपिचु यंत्रमीनमु गोलन्
गॅंटिचि मनमु वालुं, गॅंटि जेकॉटि मतनि करुणन कादे ? ॥ 357 ॥

कं. दंडि ननेकुलतो ना, खंडलु डॅदुरैन गॅलिचि खांडव वनमुं
जंडार्चिकि नर्पिचिन, गांडीवमु निच्चें जक्रि गलुगुट गादे ? ॥ 358 ॥

कं. दिक्कुल राजुल नॅल्लनु
स्रुक्कंचि धनंबु गॉनुट, मयकृतसभ मु-
न्नॅक्कुट, जन्नमु सेयुट,
निक्कमु हरिमनकु दंड निलिचिन गादे ? ॥ 359 ॥

म. इभजिद्वीर्य ! मखाभिषिक्तमगु नी यिल्लालि धम्मिल्लमुन्
सभलो शात्रवु लीड्चिनन् मुडुव का चंद्रास्य दुःखिपगा

आहें भरते हुए, अर्जुन ने अग्रज से यों कहा । ३५५ [कं.] मनुजाधीश ! अपना सारथी, अपना सचिव (मंत्री); अपना संबंधी, अपना सखा, अपना बांधव, अपना विभु, गुरु, देव हमें छोड़कर चला गया । ३५६ [कं.] क्रूर राजाओं के देखते-समय, आकाश में कम्पित होनेवाली (हिलती-डुलती) मीन को बाण से गिराकर, हमने मीनाक्षी (द्रौपदी) को उसकी करुणा के बल से प्राप्त किया था न ? ३५७ [कं.] अनेकों प्रचण्ड वीरों को साथ लेकर आखंडल (इन्द्र) के मेरा सामना करने पर, उसे जीतकर, खाण्डव वन को चडार्चि (प्रचंड अग्नि) को समर्पित करने पर, [उसने] गाण्डीव धनुष को दिया । [यह] चक्री के रहने के कारण ही है न ? ३५८ [कं.] [सकल] दिशाओं में स्थित राजाओं का वध कर, [उनका] धन लेना, मय-कृत (निर्मित) सभा में पूर्व में रहना (दरबार लगाना), [वहाँ] यज्ञ रचना, [ये सब कार्य] सचमुच हरि के बलबूते पर ही सम्पन्न हुए न ? ३५९ [म.] इभ-जित्-वीर्य (गज को जीतनेवाले वीर) ! मखाभिषिक्त (यज्ञ में अभिषिक्त) तुम्हारी गृहिणी के धम्मिल्ल (जूड़े) को [पकड़कर] सभा में शत्रुओं के खींचने पर (अपमानित करने पर) उस चन्द्रमुखी के [जूड़ा] न बाँधकर दुःखी होने पर उसको अभयदान कर, प्रतिज्ञा कर, आपके शत्रुओं की कान्ताओं के

नभयं विच्चि प्रतिज्ञ चेसि भवदीयाराति कांता शिरो-
ज भर श्रीलु हरिपडे ? विधवलै सौभाग्यमुल् वीडगन् ॥ 360 ॥

शा. वैरुल् गट्टिन पुट्टमुल् विडुवगा वारिप ना वल्लभुल्
रारीवेळ, नुपेक्षसेय दगवे ? रावे ? निवारिंपवे ?
लेरे ? त्रा तलु कृष्ण ! यंचु सभलो लीनांगियै कुय्यिडन्
गारुण्यंबुन भूरि वस्त्रकलितंगा जेयडे ? द्रौपदिन् ॥ 361 ॥

सी. दुर्वासु डॊकनाडु दुर्योधनुडु वंप पदिवेल शिष्युलु भक्ति गॊलुव
जनुदेंचि मनमु पांचालियु गुडिचिन वॆनुक नाहारंबु वेडुकॊनिन
बॆट्टॆव ननवुडु बॆट्टकुन्न शपिंतु ननुचु दोयावगाहमुन केग
गडवल नन्न शाकमुलु दीरुट चूचि पांचाल-पुत्रिक पर्णशाल

ते. लोन वॆरचिन, विच्चेसि लोवि लोनि
शिष्ट शाकान्न लवमु प्राशिंचि, तपसि
कोप मुडिगिंचि, परिपूर्ण कुक्षि जेसॆ,
निट्टि त्रैलोक्य संतर्पि यॆंदुगलडु ? ॥ 362 ॥

सी. पंदिकै पोराड फालाक्षु डॆव्वनि बलमुन ना किच्चॆ बाशुपतमु !
नॆव्वनि लावुन नी मेन देवेंद्रु पीठार्धमुन नुंडु पॆंपु गंटि !

केशों की श्री [पतियों के प्राण] हरण कर, उन्हें विधवाएँ बनाकर, सौभाग्य का हरण कर दिया था न ! ३६० [शा.] पहने हुए वस्त्रों को शत्रुओं के हटाने पर (वस्त्रापहरण करते समय में), रोकने के लिए इस समय मेरे पति नही आते, उपेक्षा करना न्याय (उचित) है ? आओ न ! निवारण करो न ! हे कृष्ण ! कोई त्राता नहीं है क्या ? कहते हुए संकुचित देहवाली हो, द्रौपदी के पुकारने पर करुणा से [द्रौपदी को] असंख्य वस्त्र-युक्त किया था न ? ३६१ [सी.] दुर्योधन के भेजने पर दुर्वासा मुनि ने एक दिन अपने दस हजार शिष्यों के भक्ति-सहित सेवाएँ करने पर, आकर, हमारे और पांचाली के भोजन करने के बाद, भोजन देने की प्रार्थना की। न देने पर अभिशाप देने की धमकी देकर, तोय-अवगाह के लिए (स्नान करने) गया था। तब पात्रों में अन्न तथा शाकों के समाप्त होते देखकर पांचाल-पुत्री (द्रौपदी) पर्णशाला में भयभीत रही। [ते.] सहसा आकर अन्नपात्रों में अवशिष्ट (बचे हुए) शाक एवं अन्न के टुकड़े को खाकर, तापसी के क्रोध को शान्त कर, उसके पेट भर दिया था। ऐसे तीनों लोकों को संतृप्त करनेवाला और कहाँ है ? ३६२ [सी.] सूकर (सुअर) के लिए संघर्ष करने पर, फालाक्षवाले (शिवजी) ने किसके बल के कारण मुझे पाशुपत [अस्त्र] प्रदान किया ? किसके बल पाकर इस शरीर से देवेन्द्र के पीठार्ध पर प्रतिष्ठित रहने का बड़प्पन पाया ? काल-

गालकेय निवात कवचादि दैत्युल जंपिति नॆव्वनि संस्मरिंचि !
गोग्रहणमु नाडु कुरुकुलांभोनिधि गडच्चिति ! नॆव्वनि करुण जेसि.

आ. कर्ण सिंधुराज कौरवेंद्रादुल,
तलल पागलॆल्ल दडवि तॆच्चि
ये महात्मु बलिमि निच्चिति!,
विरटुनि पुत्रि यडुग बॊम्मपोत्तिकलकु ॥ 363 ॥

म. गुरु भीष्मादुलु गूडि पन्निन कुरुक्षोणीश चक्रंबुलो
गुरु शक्तिन् रथयंतये, नॊगलपै गूर्चुंडि, या मेटि ना
शरमुल् वारकमुन्न वारल बलोत्साहायुरुद्योग त-
त्परतल् चूड्कुल संहरिंचॆ नमितोत्साहंबु नाकिच्चुचुन् ॥ 364 ॥

म. असुरेंद्रुं डॊनरिंचु कृत्यमुलु प्रह्लादुं ब्रवेशिंचि गॆ-
ल्व समर्थंबुलु गानिकैवडि गृपाश्वत्थाम गांगेय सू-
र्यसुत द्रोण धनुर्विमुक्त बहु विव्यास्त्र प्रपंचंबु ना
दॆसकुन् राक तॊलंगु माधवु दयादृष्टिन् नरेंद्रोत्तमा ! ॥ 365 ॥

च. वसुमति, दिव्यबाणमुल व्रक्कलु वापि, कॊलंकुसेसि, ना
रसमुल माटुगा बऱपि, रथ्यमुलन् रिपुलॆल्ल जूड, सा

केय, निवात-कवच आदि राक्षसों का संहार किसे स्मरण करते हुए किया था ? गो-ग्रहण के समय में कुरुकुल रूपी सागर को किसकी करुणा पाकर मैंने पार किया ? [आ.] किस महात्मा की करुणा के बल के कारण कर्ण, सिन्धुराज, कौरवेन्द्र आदि की पगड़ियाँ मैंने लायी थी और राजा विराट की पुत्री के माँगने पर, उसकी गुड़ियों के वस्त्रों के रूप में (खेलने के निमित्त) दिया था। ३६३ [म.] गुरु (द्रोण) और भीष्म आदि सबने मिलकर कुरुराज के चक्र (व्यूह) में, महाशक्ति के साथ रथ पर प्रतिष्ठित हो, जूकों पर बैठकर, उस अतुलित पराक्रमशाली ने मेरे शरो द्वारा मरने से पहले, उनके बल, उत्साह, आयु, उद्योग (प्रयत्न), तत्परता (आदि), का अपनी दृष्टियों से संहार करते हुए, मुझे अमित उत्साह प्रदान किया था। ३६४ [म.] हे नरेन्द्रोत्तम ! (राजश्रेष्ठ) असुरेन्द्र (हिरण्यकशिपु) के (घोर) कृत्य प्रह्लाद में प्रविष्ट होकर, उसको जीतने में समर्थ न होने की रीति, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, गांगेय (भीष्म), सूर्यसुत (कर्ण), द्रोण (आदि) के धनुषों से छूटे हुए नाना प्रकार के दिव्यास्त्रों के समूह माधव की दयादृष्टि से मेरी ओर न पटकते हुए दूर से ही हट जाते रहे। ३६५ [च.] भूवर ! अपने दिव्य बाणों से वसुमति को टुकड़े-टुकड़े कर, सरोवर तैयार कर, बाणों से [सूर्य को] छिपाकर, घोड़ों को,

हसमुन नीट वॅट्टिति रणावनि सैंधवु जंपुनाड्डु ना
कसुर विरोधि भद्रगति नंदयि यच्चिन गाद ? भूवरा ! ॥ 366 ॥

सी. चॅलिकाड ! रम्मनि चीर नवीक वेळ मन्निचु नीकवेळ मरदि ! यनुचु
बंधुभावंबुन वाटिचु नौकवेळ दातयै यौकवेळ धनमु लिच्चु
मंत्रियै यौकवेळ मंत्र मादेशिचु योद्धयै यौकवेळ बुद्धिसॅप्पु
सारथ्य मौनरिचु जनविच्चु नौकवेळ ग्रीडिचु नौकवेळ गेलिसेयु

ते. नौवक शय्यासनंबुन नुंडु, गन्न, तंड्रिकैवडि जेसिन तप्पु गाचु
हस्तमुलु वट्टि पौत्तुन नारगिचु, मनुज-वल्लभ ! माधवु मरवरादु ॥367॥

कं. विजय ! धनंजय ! हनुम-
ध्वज ! फल्गुन ! पांडुराजतनय ! नर महें
द्रज ! मित्रार्जुन ! यंचुनु-
भुजमुलु तल फडन राकपोकल जीरुन् ॥ 368 ॥

कं. वारिज गंधुलु दमलो, वारिपगरानि प्रेम यादमु सेयन्
वारिजनेत्रुडु ननु दग, वारिड्लकु बनुपु नलुक वारिप नृपा ! ॥ 369 ॥

कं. निच्चलु लोपलिकांतलु, मच्चिक दनतोडनाडु माटलु नाकुन्
मुच्चटलु सॅप्पु मॅल्लन, विच्चलविडि दौडलमीद विच्चेसि नृपा ॥ 370 ॥

समस्त शत्रुओं के रहने पर, साहस के साथ पानी में छिपाकर युद्धभूमि में सैन्धव का वध करना [उस दिन] मेरे लिए असुर-विरोधी कृष्ण के भद्रगति से रक्षक होने के कारण ही [सम्भव हुआ] न ! ३६६ [सी.] सखा ! आओ, कहकर बुलाते हुए एक समय सम्मान करता, और एक समय 'साला' कहते हुए बन्धु भावना को प्रकट करता। एक समय दाता के रूप में धन प्रदान करता, और एक समय मन्त्री हो मंत्र का उपदेश करता; एक वेला में योद्धा हो बुद्धि सिखाता, कभी सारथी बन लाड़-प्यार दिखाता, एक समय क्रीड़ा करता और कभी परिहास करता। [ते.] एक शय्या, एक आसन पर विराजित करता, पिता-समान [वात्सल्य भाव से] किए गए अपराधों को क्षमा करता। कभी हाथ पकड़कर बिठाता और साथ बैठाकर भोजन करता। हे मनुजवल्लभ (राजा) ! माधव को भुलाया नहीं जा सकता। ३६७ [कं.] विजय ! धनंजय ! हनुमद्ध्वज ! फल्गुन ! पाण्डुराजपुत्र ! नर ! महेन्द्रसुत ! मित्र ! अर्जुन ! कहते हुए भुजाओं और सिर को हाथों से स्पर्श करते हुए, आते-जाते पुकारता (बुलाता)। ३६८ [कं.] हे नृप ! वारिजगन्धियों (कमल-गन्ध वाली) अवारित प्रेम के कारण आपस में विवाद करते देखकर, कमल-नयन वाला उन कान्ताओं का मान दूर करने के निमित्त उनके घर मुझे भेज देता। ३६९

च. अटमटमय्यॆ ना भजन मंतयु भूवर ! नेडु चूडुमा
यिट्टुवलॆ गारविंचु जगदीशुडु कृष्णुडु लेनि पिम्मटन्
बट्टुतर देहलोभमुन प्राणमुलुन्नवि वॆंटबोक, ने
गटकट ! पूर्वजन्ममुन गर्ममु लॆट्टिवि चेसिनाडनो ! ॥ 371 ॥

शा. कांतारंबुन नॊंटि दोडुकॊनि रागा जूचि, गोविंद शु-
द्धांतस्त्रील बदाक्रवेल मद रागायत्तुलै ताकि, ना
चॆंतन् बोयलु मूगि पट्टिकॊन, ना सीमंतिनीसंघमुन्
भ्रांतिन् भामिनि भंगि नुंटि विडिपिंपन लेक, धात्रीश्वरा ! ॥ 372 ॥

शा. आ तेरा रथिकुंडु ना हयमु ला यस्त्रासनं बा शर
व्रातं बन्युल दॊलिलि जंपुनु, दुदिन् व्यर्थंबुलै पोयॆ म
च्चेतोधीशुडु चक्रि लेमि, भसितक्षिप्ताज्य मायावि मा
यातंत्रोषर भूमि बीजमुल मर्याद न्निमेषंबुनन् ॥ 373 ॥

म. यदुवीरुल् मुनिनाथु शापमुन गालाधीनुलै, यंदरुन्
मदिरापान विवर्धमान मद सम्मर्दोग्र रोषांधुलै,
कदनंबुल् दमलोन मुष्टिहतुलं गाविंचि नीरैरि, म-
ष्ट दशं जिक्किरि नल्गु रेवु रचटन् सर्वंसहावल्लभा ! ॥ 374 ॥

[कं.] हे नृप ! कामना लिये हुए कान्ताओं के अपने साथ होनेवाले प्रेम-पूर्ण वचनों के सम्बन्ध में स्वेच्छा से मेरे जाँघों पर पधारकर [सिर रख लेटकर], बे-रोक-टोक सुनाता। ३७० [च.] भूवर ! आज मेरा भजन (पूजा) वृथा हुआ। देखिए तो ! इस प्रकार सम्मान (प्यार) देनेवाला जगदीश्वर कृष्ण के न होने के बाद शरीर के पट्टुतर लोभ के कारण प्राण [उसके] साथ न जाकर, रुके हुए हैं। हाय ! मैंने पूर्वजन्म में कैसे कर्म किये हैं ! ३७१ [शा.] धात्रीश्वर ! कान्तार (घने जंगल) में अकेला मेरे गोविन्द के शुद्धान्त (अंतःपुर) की स्त्रियों को, दस हजार कान्ताओं को ले चलते देख भीलों ने मद-राग-आयत्त (-पूर्ण) हो, मेरे समीप (समक्ष) सबको पकड़कर, [मुझे भी] घेर लिया था और मैं उस सीमंतिनी-समूह (स्त्री-समूह) को छुड़ा न सक, भ्रान्त हो, भामा (अबला) की भाँति रहा। ३७२ [शा.] वह रथ, वह रथिक, वे घोड़े, वह अस्त्रासन (धनुष), वह शर-समूह —उन्हीं ने पूर्व में अन्यों को (शत्रुवर्ग को) मार डाला था। वे सब, मेरी चेतना के अधीश्वर चक्री के अभाव में, राख में डाले गये घी के समान, माया तंत्र से ऊसर भूमि में बोये गये बीजों के मायावी (जादूगर) के चले जाने के बाद अदृश्य हो जाने की भाँति अन्त में व्यर्थ हुए। ३७३ [म.] सर्वंसहावल्लभा (राजा) ! मुनिनाथ के शाप के कारण यदुवीर काल के अधीन हो, सब मदिरापान से विवर्द्धमान

कं. भूतमुल वलन नॆप्पुडु, भूतमुलकु जन्म मरण पोषणमुलु नि-
र्णीतमुलु सेयुचुंडुनु, भूतमयुं डीश्वरुंडु भूपवरेण्या ! ॥ 375 ॥

कं. वलमुलुगल मीनंबुलु, वलविरहित मीनमुलनु भक्षिंचु क्रियन्
वलवंतुलैन यदुवुलु, वलरहितुल जंपि रहितभावमुल नृपा ! ॥ 376 ॥

म. वलहीनांगुलकुन् वलाधिकुलकुं ब्रत्यर्थि भावोद्यमं
वुलु गल्पिंचि, विनाशमु न्नॊंदपि, यी भूभारमुं बापि, नि-
श्चलवुद्धिन् गृतकार्युडै चनियें ना सर्वेश्वरुं डच्युतुं
डलघुं डेमनि चॆप्पुदुन् ! भगवदीयायत्त मुर्वीश्वरा ! ॥ 377 ॥

व. मरियु देश कालार्थ युक्तंबुलु, नंतःकरण संतापशमनंबुलु नैन हरिवचनंबुलं दलंचि, चित्तंबु परायत्तंबै युन्नदि। अनि यन्नकुं जॆप्पि, निरुत्तरुंडै, गोविंद चरणारविंद चिंतामलवुद्धियैं, शोकंबु वर्जिंचि, सदा ध्यान भक्तिविशेषंबुलं गामक्रोधादुल जयिंचि, तॊल्लि तन कुभयसेना मध्यंबुन ननंतुं डानतिच्चिन गीतलु दलंचि, कालकर्म भोगाभिनिवेशंबुलचेत नावृतंबैन विज्ञानंबु ग्रम्मर नधिगमिंचि, शोक हेतु वहंकार ममकारात्मकंबैन द्वैतभ्रमं बनियुनु, द्वैत

(बढ़े हुए) मद के घर्षण से उग्र रोष में अन्धे हो, युद्ध कर, परस्पर मुष्टि-घातों से मार डालकर, सर्वनाश को प्राप्त हुए, [उनमें] चार-पाँच लोग नष्टदशा से बचे रहे। ३७४ [कं.] हे भूपवरेण्य (राजश्रेष्ठ) ! भूत-मय (प्राणि-कोटि में अन्तर्निहित रहनेवाला) ईश्वर भूतों के द्वारा सदा भूतों के लिए जन्म, मृत्यु और पोषण के विधान को निर्धारित करते रहता है। ३७५ [क.] हे नृप (राजा) ! वलशाली मछलियों के वलहीन मछलियों को खा जाने की रीति वलवान यादव लोगों ने बल-रहित लोगों-को अहित भाव से मार डाला ! ३७६ [म.] हे उर्वीश्वर (राजा) ! वलहीन अंगों वालों एवं वलाधिक लोगों में परस्पर प्रत्यर्थि (विरोधी) भाव के उद्यम (आन्दोलन) की कल्पना कर (पैदा कर), विनाश कर, इस भू-भार को दूर कर निश्चल बुद्धि से अपने कार्य को पूरा कर, उस सर्वेश्वर, अच्युत, अलघु ने प्रस्थान किया। मैं और क्या कहूँ ? यह सब भगवान की इच्छा पर संघटित हुआ है। ३७७ [व.] और देश और काल के लिए [अनुकूल] अर्थ से युक्त अन्तःकरण के सन्ताप का उपशमन कर देनेवाले हरिवचनों का स्मरण कर, [मेरा] चित्त वेवस हो रहा है। भाई से कहकर, विना उत्तर पाये, गोविन्द के चरण-कमलों का आत्मबुद्धि से अमल चिन्तन करते हुए, शोक का वर्जन (त्याग) कर, सदा ध्यान तथा विशिष्ट भक्ति से, काम, क्रोध आदि को जीतकर पूर्व में उभय सेनाओं के बीच में अपने को आज्ञापित हुए (निर्देशित) गीता का स्मरण कर, काल, कर्म, भोग में अभिलाषा से आवृत विज्ञान का अधिगमन (पार) कर, शोक के कारण-स्वरूप अहंकार तथा ममकार-स्वरूप द्वैत भ्रम-जन्य है, और द्वैत-भ्रम का

भ्रमंबुलकु गारणंबु देहंबनियुनु, देहंबुनकु बीजंबु लिंगं बनियुनु, लिंगंबुनकु मूलंबु गुणंबु लनियुनु गुणमुलकु निदानमु प्रकृतियनियुनु, ब्रह्माहमनियेडु ज्ञानंबुन लीनयै प्रकृति लेकुंडुननियु प्रकृति यडंगुटयु नैर्गुण्यं बनियुनु, नैर्गुण्यंबु वलन गार्यलिंग नाशंबनियुनु, गार्यलिंग नाशंबुन नसंभवं बगुननियुनु प्रकृति बासि क्रम्मर स्थूल शरीर प्राप्तुंडु गाक पुरुषुंडु सम्यग्भोगंबुन नुंडुननियुनु, निश्चयिंचि, यर्जुनुंडु विरक्तुंडै यूरकुंडे। धर्मजुंडु भगवदीय मार्गंबु देलिसि, यादवुल नाशंबु विनि, नारदु वचनंबु दलंचि निश्चलचित्तुंडै स्वर्गगमनंबुनकु यत्नंबु सेयुचुंडे। आ समयंबुन ॥ 378 ॥

कं. यदुवुल नाशमु माधवु, पदवियु विनि कुंति विमलभक्तिन् भगव-
त्पदचिंता तत्परयै, मुदमुन संसार मार्गमुनकुं बासेन् ॥ 379 ॥

व. इट्लु कंटकंबुनं गंटकोन्मूलनंबु सेसि कंटकंबुलु रेंटिनि बरिहरिंचु विज्ञाणि तेरंगुन, यादवरूप शरीरंबुनं जेसि यीश्वरुंडु लोक-कंटक-शरीरंबुलु संहरिंचि निजशरीरंबु विडिचे। संहारमुनकु निज शरीर परशरीरमुलु रेंडु नीश्वरुनकु समंबुलु। निजरूपंबुन नुंडुचु, रूपांतरंबुल धरिंचि क्रम्मर

कारण देह है और इस देह का बीज लिंग है, लिंग का मूल गुण है, गुणों का निदान (निलय) प्रकृति है, और यह प्रकृति ब्रह्माहम् (मैं ब्रह्म हूँ) नामक ज्ञान में लीन होने पर प्रकृति नहीं रहती (द्वैतभाव नहीं रहता)। प्रकृति के समाप्त होने पर निर्गुण का तथा, निर्गुण तत्त्व से कार्यलिंग का नाश होता है, कार्यलिंग का नाश होने से असम्भव (भव [जन्म] का न होना) होता है। प्रकृति को त्यागकर, फिर स्थूल शरीर को प्राप्त न होकर पुरुष (जीव) सम्यक् रूप से भोग में रहता है, ऐसा निश्चय कर, अर्जुन विरक्त हो, मौन रहा। धर्मराज भगवान का मार्ग (महाभिनिष्क्रमण) जानकर यादवों के विनाश के बारे में सुनकर, नारद के वचनों का स्मरण कर, निश्चल चित्त वाला हो, स्वर्ग को प्रस्थान करने के प्रयत्न करने लगा। उस समय। ३७८ [क.] यादवों का नाश, माधव के परमपद को प्राप्त होना [आदि] सुनकर, विमल भक्ति से कुन्ती ने भगवान के चरणों की चिन्ता में तत्पर हो, आनन्द के साथ संसार-मार्ग को त्याग दिया। ३७९ [व.] इस प्रकार काँटे से काँटे को निकालकर दोनों काँटों को हटानेवाले चतुर [व्यक्ति] की भाँति यादव के रूप में शरीर धारण कर ईश्वर ने लोक-कण्टक-शरीरों का संहार कर निज-शरीर को त्याग दिया। संहार के लिए अपना शरीर और पराया शरीर दोनों ईश्वर के लिए समान हैं। निज रूप में स्थित होते हुए, रूपान्तरों को धारण कर, फिर अन्तर्धान (अदृश्य) होनेवाले अभिनेता (नट) की रीति लीला-परायण नारायण मत्स्य, कूर्म आदि रूपों को धारण (और) परिहार करता (हटाते) रहता है, ऐसा कहकर, फिर

नंतर्थानंबु नॊंदु नट्टुनिकैवडि लीलापरायणुंडैन नारायणुंडु मीन कूर्मादि रूपंबुलु धरियिंचुं वरिहरिंचु ननि चॆप्पि मरियु निट्टलनियॆ ॥ 380 ॥

कं. ए दिनमुन वैकुंठुडु, मेदिनिपै दाल्चिनट्टि मेनु विडिचॆना
डा दिनमुन नशुभ प्रति, पादकमगु कलियुगंबु प्राप्तं बय्यॆन् ॥ 381 ॥

धर्मराजु परीक्षिन्महाराजुनकु पट्टमुगट्टि महाप्रस्थानंबुन करुगुट

सी. कलिवर्तनंबुन ग्रौर्य हिंसासत्य दंभ कौटिल्या द्यधर्मचयमु
पुरमुल गृहमुल भूमुल दनलोन गलुगुट दलपोसि करिपुरमुन
मनुमनि राजवै मनु दीविंचि सिंधुतोय कणाभिषिक्तु जेसि
यनिरुद्ध नंदनुंडैन वज्रुनि दॆच्चि मधुर बट्टमुगट्टि ममत वासि

आ. करुल दुरगमुलनु गंकणादिकमुल, मंत्रिजनुल बुधुल मानवतुल
नखिलमैन धनमु नभिमन्यु सुतुनकु, नप्पगिंचि बुद्धि नाश्रयिंचि ॥382॥

व. विरक्तुंडैन धर्मनंदनुंडु प्राजापत्य मनियॆडि यष्टि गाविंचि, यग्नुल नात्मारोपणंबु सेसि, निरहंकारुंडुनु निर्दळि ताशेष बंधनुंडु नै, सकलेंद्रियंबुल मानसंबुन नणंचि, प्राणाधीन वृत्तियगु मानसंबुनु प्राणमंदु, प्राणमु नपानमुनंदु, नुत्सर्ग सहितंबैन यपानमु मृत्युवंदुनु, मृत्युवुनु पंच भूतंबुलकु

से कहा। ३८० [कं.] जिस दिन वैकुण्ठ के स्वामी ने मेदिनी (धरती) पर धारण किये हुए शरीर को छोड़ दिया, उसी दिन अशुभ का प्रतिपादन करनेवाला कलियुग प्राप्त हुआ। ३८१

महाराजा परीक्षित को पट्टाभिषिक्त कर धर्मराज का महाप्रस्थान करना

[सी.] कलि के वर्तन से (चल पड़ने पर) क्रूरता, हिंसा, असत्य, दम्भ, कुटिलता आदि अधर्म-समूह के पुरों, घरों, भूमियों में एवं अपने में उत्पन्न होने का विचार कर, अपने पोते को हस्तिनापुर का राजा बनाकर, जीने का आशीष देकर, सागरजल के कणों से अभिषिक्त कर, अनिरुद्धपुत्र वज्रि को लाकर, [आ.] मथुरा नगरी का राजा बनाकर, ममता को छोड़कर, हाथियों, घोड़ों, कंकण आदि तथा मंत्रीजन, बन्धुगण, मानवतियों को, अखिल (समस्त) धन को अभिमन्यु-पुत्र (परीक्षित) को सौंपकर बुद्धि का आश्रय लेकर, ३८२ [व.] विरक्त बने धर्मनन्दन प्राजापत्य नामक यज्ञ रचकर, अग्नियों को आत्मा में स्थापित कर, अहंकार-विरहित हो, अशेष-बन्धनों का विदारण कर, सकल इन्द्रियों से मन को दबाकर, प्राण के अधीन वृत्ति वाले मन को प्राण में, प्राण को अपान में, उत्सर्ग (बाहर निकलनेवाले) से युक्त अपान को मृत्यु में, मृत्यु को पंचभूतों के समूह

नैश्यंबैन देहंबुनंदुनु, देहमु गुणत्रयमु नंदुनु, गुणत्रयंबु नविद्ययंदुनु, सर्वारोपहेतुवगु नविद्यनु जीवुनि यंदुनु, जीवुंडेन तन्नु नव्ययंबैन,ब्रह्ममंदुनु लयिपं जेसि, बहि रंतरंग व्यापारंबुलु विडिचि, नारचीरलु धरियिंचि, मौनियु निराहारुंडुनु मुक्तकेशुंडुनु नै युन्मत्त पिशाचबधिर जडुल चंदंबुन निरपेक्षकत्वंबुन ॥ 383 ॥

कं. चित्तंवुन ब्रह्ममु ना, वृत्तमु गाविंचु कोनुचु विज्ञान धना
यत्तुलु दीलिल वॅलिगॅडि, युत्तर दिश केगॅ निर्मलोद्योगमुनन् ॥ 384 ॥

सी. अंत नातनि तम्मुलनिल पुत्रादुलु गलिराकचे बापकर्मुलगुचु
जरियिंचु प्रजल संचारंबु लीक्षिंचि यखिल धर्मंबुल नाचरिंचि
वैकुंठ चरणाब्ज वर्तित हृदयुलै तद्भक्ति निर्मलत्त्वमुनु जेंदि
विषय युक्तुलकु ब्रवेशिपगा राक निर्धूत कल्मष निपुण मतुलु

ते. बहुळ विज्ञानदावाग्नि भसित कर्मु,
लैन येकांतुलकु लक्ष्यमै वॅलुंगु
मुख्य नारायण स्थानमुनकु जनिरि,
विगतरजमैन यात्मल विप्रवर्य ! ॥ 385 ॥

व. अंत विदुरुंडु प्रभासतीर्थंबुन हरियंदु जित्तंबु सेर्चि, शरीरंबु विडिचि, पितृवर्गंबुतोड दंडधरुंडगुटं जेसि निजाधिकार स्थानंबुनकुं जनियॆ।

देह में, देह को गुणत्रय में, गुणत्रय को अविद्या में, सबको आरोपित करने का कारणस्वरूप अविद्या को जीव में (तथा) जीवित रहनेवाले अपने-आप को अव्यय ब्रह्म में विलीन कर, बाह्य और अन्तरंग व्यापारों को छोड़कर, सन के बने वस्त्र धारण कर, मौनी, निराहारी, मुक्तकेशी हो उन्मत्त, पिशाच, बधिर एवं जड़ की भाँति निरपेक्ष भाव से, ३८३ [कं.] चित्त में ब्रह्म को स्थिर करते हुए, पूर्वकाल से विज्ञान के धनी जनों से दीप्तिमान होनेवाली उत्तर की दिशा में निर्मल प्रयत्न से प्रस्थान किया। ३८४ [सी.] विप्रवर ! तब उसके भाई अनिलपुत्र (भीमसेन) आदि कलि के आगमन से पापकर्मा हो, संचरण करनेवाले प्रजा के व्यवहार को देखकर, अखिल धर्मों का आचरण कर, वैकुण्ठ-स्वामी के चरण-कमलों में हृदय रखकर, भक्ति की निर्मलता को प्राप्त कर, विषयों की युक्तियों के प्रवेश के लिए कल्मषों का क्षालन करनेवाले निपुण मति वाले [ते.] तथा अत्यधिक विज्ञान रूपी दावाग्नि से कर्मों को भस्म कर, ऐकान्तिक (परमात्मा एक है, इस ज्ञान से युक्त) व्यक्तियों से प्रदीप्त होनेवाले मुख्य नारायण-स्थान (वैकुण्ठ) को रजस् (अहं) से वियुक्त आत्माओं से युक्त हो, प्राप्त हुए। ३८५ [व.] तब विदुर प्रभास तीर्थ में हरि में चित्त स्थिर कर, शरीर को छोड़कर, पितृवर्ग के साथ, दण्डधर होने के कारण अपने अधिकार

द्रुपदराज पुत्रियु पतुल वलन ननपेक्षितयै वासुदेवुनंदु जित्तंबु सेर्चि तत्पदंबु सेरॆं। इट्लु ॥ 386 ॥

कं. पांडव कृष्णुल यानमु, पांडुरनुति नॆव्वडैन वलिकिन विन्नन्
खंडित भवुडै हरि दा, सुंडै कैवल्यपदमु सौच्चु नरेंद्रा ! ॥ 387 ॥

अध्यायमु—१६

व. अंत नटं परीक्षित्कुमारुंडु जातकर्मविदुलैन भूसुरोत्तम शिक्षावशंबुन महाभागवतुंडै, धरणीपालनंबु सेयुचु, नुत्तरुनि पुत्रिक निरावति यनु मत्तकाशिनि वॆंड्लियाडि, जनमेजय प्रमुखुलैन नलुवुरु कॊडुकुल नुत्पादिंचि, गंगातटंबुन गृपाचार्युंडु गुरुवैयुंड, यागभागंबुलकु वच्चिन देवतल नीक्षिपुचु, भूरि दक्षिणंबुलुगा मूडश्वमेधंबु लाचरिंचि, दिग्विजयकालंबुन गोमिथुनंबु दन्नुचुन्न शूद्रुंडुनु, राजचिह्न मुद्रितुंडु नगु कलि बट्टि निग्रहिंचॆं। अनि चॆप्पिन शौनकुंडु पौराणिकुन किट्लनियॆं ॥ 388 ॥

के स्थान (यमलोक) को गया। द्रुपद राजा की पुत्री (द्रौपदी) भी पतियों के द्वारा उपेक्षिता होकर, वासुदेव मे चित्त को एकाग्र कर, उसके पद (परमपद) को प्राप्त हो गई। इस प्रकार, ३८६ [कं.] नरेन्द्र ! (सुनो) पाण्डवों तथा कृष्ण के प्रयाण का पवित्र-बुद्धि से जो कोई बोलेगा, सुनेगा, वह खण्डित-भव जन्म-बन्धनों से मुक्त होकर, हरिदास बन, कैवल्य (मोक्ष) पद को प्राप्त करेगा। ३८७

अध्याय—१६

[व.] तब, वहाँ परीक्षित कुमार ने जातकर्म के ज्ञाता, ब्राह्मणों की शिक्षा के कारण, महाभागवत हो, धरती का पालन (राज्य) करते हुए, उत्तर की पुत्री इरावती नामक मत्तकाशिनी (वय वाली) से विवाह कर, जनमेजय आदि चार बेटों को पैदा कर, गंगा तट पर कृपाचार्य के गुरु बनकर रहने पर, तब याग-भाग के लिए आये हुए देवताओं के दर्शन करते हुए, असंख्य दक्षिणाओं से युक्त तीन अश्वमेध रचकर, दिग्विजय के समय में गो-मिथुन को लात मारनेवाले शूद्र (तथा) राजचिह्न से मुद्रित कलि को पकड़कर दण्डित किया। ऐसा कहने पर शौनक ने पौराणिक से इस प्रकार कहा (पूछा)। ३८८

परीक्षिन्महाराजु भू धर्मदेवतल संवादं बालिचुट

कं. भूवर-रूपुडु शद्रुडु, गोवुं दा नेल तन्ने ? गोरि परीक्षि-
वृभूवरुडु दिशल गेलुचुचु, नेविधि गलि निग्रहिंचें ? नेरिगिपगदे ॥389॥

म. अरविंदाक्ष पदारविंद मकरंदासक्तुलै युन्न स-
त्पुरुष श्रेष्ठुल वृत्तमुल् विनक दुर्बुद्धिन् विलंघिचि दु-
र्नर वार्ताकथन प्रपंचमुलु गर्ण प्राप्तमुल् सेसि वा
सरमुल् व्यर्थत द्रोब्बुचुंड जन दी संसार मोहंबुनन् ॥ 390 ॥

सी. मनुवु नित्यमु गादु मरणंबु निजमनि येरिगि मोक्षस्थिति निश्चयिंचु
नल्पायुवुलमु मा कन्य दुर्जन चरित्रमु लोलि गर्णरंध्रमुल बेट्टि
बंगारु वंटि यी ब्रतिकेंडु कालंबु वोनाडगा नेल ? पुण्यचरित !
माधव पदपद्म मकरंदपानंबु सेयिंपवे ! येमु सेयुनट्टि

आ. सत्त्रयागमुनकु सम्मुनींद्रुलु सीर, वाडे दंडधरुडु वच्चे जूडु
चंप डीकनिनैन जन्नमय्येडु दाक, विनुचुनुंडु दगिलि विष्णुकथलु ॥391॥

कं. मंदुनकु मंदबुद्धिकि, मंदायुवुनकु निरर्थ मार्गुनकुनु गो-
विंद चरणारविंद म, रंदमु गोन देंडपि लेदु रात्रि बवलुन् ॥ 392 ॥

भू तथा धर्मदेवता के संवाद को महाराजा परीक्षित का सुनना

[कं.] राजा के रूप में शूद्र ने गाय को क्यों लात मारी ? राजा परीक्षित ने दिशाओं को जीतते हुए किस प्रकार कलि को दण्डित किया ? बताइये न ? ३८९ [म.] अरविन्दाक्ष (कमल-नयन वाले) के चरण-कमलों में आसक्त हुए श्रेष्ठ पुरुषों के वृत्त (कथा) न सुनकर दुर्बुद्धि से [सदाचार की सीमाओं को] लाँघकर दुष्ट नरों की कथाओं के विवरण सुनकर इस संसार के मोह में व्यर्थ ही दिन बिताना उचित नहीं है। ३९० [सी.] पुण्यचरित वाले ! जीवन शाश्वत नहीं है, मृत्यु तथ्य है, ऐसा जानकर मोक्ष की स्थिति को चाहनेवाले अल्पायु वाले हैं। हमें अन्य दुष्ट जनों के चरित को कान लगाकर सुनते हुए, सोने के समान (बहुमूल्य) इस जीवन-काल को व्यर्थ गँवाना क्यों ? माधव के पद-पद्म के मकरन्द का रस-पान कराओ ! [आ.] हम जिस सत्र यज्ञ को रच रहे हैं, उसमें [भाग लेने के लिए] श्रेष्ठ मुनिवरों के बुलाने पर, वह देखो, दण्डधर (यमराज) आ गया। यज्ञ के पूरा होने तक किसी को मार डालेगा नहीं, विष्णु की कथाएँ सुनता रहेगा ! ३९१ [कं.] मन्द (आलसी) को, मन्द बुद्धि वाले को, मन्दायु (जिसकी आयु मंद है) को, निरर्थक मार्ग वाले (प्रयोजन-रहित उपाय करनेवाले) को, रात और दिन में (पल भर के लिए भी) गोविन्द के चरण-कमल के मकरन्द को प्राप्त करने का अवकाश नहीं

व. अनि शौनकुंडु वलिकिन सूतुंडिट्लनियॆं। परीक्षन्नरेंद्रुडु निजवाहिनी संदोह संरक्षितंबगु कुरुजांगल देशंबुनं गलि प्रवेशंबु नाकर्णिंचि युद्धकुतूहलत नंगीकरिंचि, यॊक्कनाडु समुल्लासंबुन बाणासनंबु गैकॊनि नीलि नीरद निभ तुरंग निवह योजितंबुनु, फलित मनोरथंबु नैन रथंबु नारोहणं बुचेसि, मृगेंद्र ध्वजंबु वॆलुंग, रथ करि तुरंग सुभट संघटित चक्रंबु निर्वक्रंबुनं गॊलुव, दिग्विजयार्थंबु वॆडलि, पूर्व दक्षिण पश्चिमोत्तर समुद्र लग्नंबुलैन यिलावृत, रम्यक, हिरण्मय, हरिवर्ष, किंपुरुष, भद्राश्व, केतुमूल, भारतवर्षंबुलु, नुत्तरकुरुदेशंबुलुनु जयिंचि पुष्कल धनप्रदान पूर्वकुलगु सपर्यल नभ्यर्चितुंडै तत्तद्देश मंगळपाठक संघात गेगीयमान पूर्वराज वृत्तांतंबु लाकर्णिंपुचु, पाठकपठित पद्यंबुलंदु पांडवुलकु भक्तवत्सलुंडैन पुंडरीकाक्षुं डाचरिंचिन सारथ्य सख्य सभापतित्व साचिव्यरचन वीरासन दूतभावादि कर्मंबुलु, नश्वत्थामास्त्रतेजंबु वलन दनु रक्षिंचुटयु, यादव पांडवुल स्नेहानुबंधंबुनु, वारलकुं गलिगिन भगवद्भक्तिविशेषंबुनु विनि, याश्चर्यंबु नॊंदुचु, वंदि बृंदंबुलकु महाधनंबुलु, हारांबराभरण संदोहंबुलु नॊसंगुचु पद्मनाभ पादपद्म भजन

है। ३९२ [व.] इस प्रकार शौनक के कहने पर सूत ने ऐसा कहा। राजा परीक्षित ने अपनी सेना-समूह से संरक्षित होनेवाले कुरुजांगल देश में कलि के प्रवेश की वार्त्ता (समाचार) सुनकर, युद्ध-कौतूहल से स्वीकार कर, एक दिन उल्लास के साथ बाणासन (धनुष) धर कर, नीलमेघ के समान हाथी, घोड़ों के समूह को लेकर मनोरथ (इष्ट-कामना) को साध्य करानेवाले रथ पर आरूढ़ होकर झण्डे पर मृगेन्द्र (सिंह) के दीप्त होते हुए, रथ, हाथी, घोड़े, सुभटों से युक्त संघटित सेना-समूह के अवक्र गति से सेवाएँ करते रहने पर, दिग्विजय के लिए निकलकर पूरब, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा समुद्र से लगे हुए (तीरस्थ) इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, हरिवर्ष, किंपुरुष, भद्राश्व, केतुमाल भारतवर्ष, उत्तर कुरु देशों को जीतकर असंख्य धनराशियों से युक्त, उनकी सेवाओं से अर्चित होकर, उन-उन देशों के मंगल-पाठक (वन्दी-) गणों से गाए गए पूर्वकाल के राजाओं के चरितों को सुनते हुए, पाठकों से पठित पद्यों के द्वारा पाण्डवों को भक्तवत्सल पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन) वाले के द्वारा आचरण किया गया सारथ्य, सख्यता, सभा-पतित्व, व्यूह-रचना, वीरासन, (धर्मनिर्णय), दूतभाव आदि कर्म (तथा) अश्वत्थामा के अस्त्र के तेज से अपनी रक्षा करना, यादवों और पाण्डवों का स्नेह तथा अनुबन्ध और उनमें जाग्रत् भगवान की भक्ति की विशिष्टता के सम्बन्ध में सुनकर, आश्चर्यान्वित होते हुए वन्दी-वृन्द को महान् धनराशियाँ, हार, वस्त्र, आभरण-समूह प्रदान करते हुए पद्मनाभ के पादपद्म-भजन में परवश हो, पवित्र मन वाला हो रहा। उस समय

परतंत्र पवित्र मानसुंडै युंडे। अय्येड वृषभरूपंबुन नेकपावंबुन संचरिंचु धर्मदेवुंडु, वन समीपंबुन लेगलेनि लेगटि क्रिय चंदंबुन, हतप्रभये नेत्रंबुल सलिलंबुलु गुरियुचु गोरूपये युन्न धात्रि किट्लनियें। ३९३

म. नयनांभः कणजालमेल विडुवन् ? ना तल्लि ! नी मेनु सा-
मयमै युन्नदि मोमु वाडिनदि नी मन्निंचु चुट्टालकुन्
भयदुःखंबुलु नेडु वोंदवु गदा ? बंधिंचि शूद्रुल् पद-
त्रयहीनन् ननु बट्टवत्तु रनियो ? तापंबु नी केटिकिन् ॥ 394 ॥

सी. मखमुलु लेमि नमर्त्युल किटमीद मखभागमुल लेक मानु ननियों ?
रमणुलु रमणुल रक्षिप रनियों ? तत्पुत्रुल दंड्रुलु प्रोवरनियों ?
भारति गुजनुल ब्रापिंचु ननियों ? सद्विप्रुल नृपुलु सेविप रनियों ?
कुलिश हस्तुडु वान गुरियिंपकुंडग ब्रजलु दुःखंबुल बडुदु रनियों ?

आ. हीनवंशजातु लेलेद रनियों ? रा,
ज्यमुलु पाडिगलिगि जरग वनियों ?
मनुजु लन्नपान मैथुन शयनास,
नादि कर्मसक्तु लगुदु रनियों ॥ 395 ॥

वृषभ-रूप में एक चरण पर संचरण करनेवाले धर्मदेव ने, अपने समीप सद्योजात बछड़े से रहित गाय के समान, हृतप्रभ (निस्तेज) हो, नेत्रों से जलधारा बहाते हुए, गो-रूप में स्थित धरती के प्रति इस प्रकार कहा। ३९३ [म.] आँखों से जलधारा क्यों बहाती हो, मेरी माँ ! तुम्हारा शरीर सामय (रोगपूर्ण) है, मुख कुम्हला गया है ! तुमसे समादृत बन्धुजनों को भय और दुःख नहीं हुए न ? पदत्रयहीन मुझे पकड़ बाँधने को शूद्र आ रहे हैं, यह सोच तुम्हें ताप क्यों ? ३९४ [सी.] मखों (यज्ञों) के अभाव में अमर्त्य (देवता) लोग अब आगे यज्ञ-भाग से वंचित रहेंगे, ऐसी चिन्ता है क्या ? रमण (पति) अपनी रमणियों की रक्षा नहीं करेंगे, [इसलिए चिन्ता है क्या ?] उनके पुत्रों को पिता लोग (पितृजन) पोषण नहीं करेंगे, [ऐसा सोच दुःख है क्या ?] भारती (सरस्वती) कुजनों को प्राप्त होगी [ऐसा दुःख है क्या ?] राजा लोग सद्ब्राह्मणों की सेवा नहीं करेंगे, [ऐसा सोचती हो क्या ?] कुलिश-हस्त वाले (इन्द्र) के वर्षा न कराने पर प्रजा त्रस्त होगी [ऐसा सोच दुःखी हो रही हो क्या ?] [आ.] हीनवंश में जन्म लेने वाले शासन करेंगे, [इस चिन्ता में हो क्या ?] राज्य में दूध की नदियाँ बहेंगी नहीं, [ऐसा दुःखी हो क्या ?] खाने, पीने, सोने और मैथुन आदि क्रियाओं में मनुष्य आसक्त हो रहेंगे, [इस दुःख से पीड़ित हो क्या ?] ३९५ [म.] माँ ! तुम्हारे समस्त भार को कम करने के लिए चक्रायुध ने इतने वर्ष लीला से मानव की आकृति में विचरण कर, आचरण

म. जननी ! नी भरमॆल्ल डिपुटकुनै चक्रायुधुं डिन्नि हा
यनमुल् गेळि नराकृतिन् मॆलगि नित्यानंदमुं जेसि पो-
यिन ने निक ननाथनैति गुजनुं डॆव्वाडु शासिंचुनो ?
पॆनुदुःखंबुलु नेमि पॊंदु ननियो ? भीतिल्लि चिंतिचुटल् ॥ 396 ॥

कं. दॆप्परमगु कालमुपै,
नॆप्पुडु देवतलकॆल्ल निष्टंबगु नी
यॊप्पिदमु गृष्णु डरिगिन, दर्पंगदा !
तल्लि ! नीवु तल्लडपडगन् ॥ 397 ॥

व. अनिन भूदेवि यिट्लनियॆ ॥ 398 ॥

कं. ई लोकंबुनबूर्वमु, नालुगुपादमुल नीवु नडतुवु ने डा
श्रीललनेशुडु लेमिनि, गालमुचे नीकु नॊंटिकालय्यॆं गदे ! ॥ 399 ॥

व. मरियु सत्य शौच दया क्षांति त्याग संतोषार्जवंबुलुनु, शम दम तपंबुलुनु, साम्यंबुनु, परापराधसहनंबुनु, लाभंबुगलयॆड नुदासीनुंडै युंड्टयुनु, शास्त्रविचारंबुनु, विज्ञान विरक्तुलुनु, ऐश्वर्य शौर्य प्रभा दक्षत्वंबुलुनु स्मृतियुनु, स्वातंत्र्यमुनु, कौशल कांति धैर्य मार्दव प्रतिभातिशय प्रश्रय शीलंबुलुनु, ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रिय मनोबलंबुलुनु, सौभाग्य गांभीर्यंबुलुनु, स्थैर्य श्रद्धा कीर्ति मान गर्वाभावंबुलु ननियॆडि मुप्पदि तॊम्मिदि गुणंबुलु

कर, शाश्वत आनन्द को प्रदान किया था। अब मैं अनाथ हो गई हूँ। कौन कुजन शासन करेगा ? [अब आगे] अनन्त दुःख प्राप्त हो जायेंगे ? इस चिन्ता से भयभीत हो गई हो ? ३९६ [कं.] माँ ! दुस्सह काल में सदा सकल देवताओं के लिए इष्ट प्रदान करनेवाली तुम्हारी सन्तुष्टि, कृष्ण के चले जाने पर दूर हो गई न ! तुम व्याकुल हो रही हो न ! ३९७ [व.] कहने पर भूदेवी ने इस प्रकार कहा। ३९८ [कं.] इस लोक में पूर्व तुम चार चरणों से चलते थे, [किन्तु] आज श्रीललना (लक्ष्मी) के ईश (विष्णु, श्रीकृष्ण) के अभाव में कालवश हो, तुम एक चरण वाले हो गये हो न। ३९९ [व.] और, सत्य, शौच, दया, क्षान्ति, त्याग, सन्तोष, आर्जव (ऋजुवर्तन) एवं शम, दम, तप, साम्य, दूसरों के अपराधों का सहन करना, लाभ-प्राप्ति के सन्दर्भ में उदासीन हो रहना, शास्त्र-विचार करना और विज्ञान से विरक्त हो रहना, ऐश्वर्य, शौर्य प्रभा की दक्षता, स्मृति, स्वातंत्र्य, कौशल, कान्ति, धैर्य, मार्दव, प्रतिभा की अतिशयता, प्रश्रय [आदि] शील, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय मनोबल तथा सौभाग्य, गम्भीरता, स्थैर्य, श्रद्धा, कीर्ति, मान, गर्व का अभाव आदि उनचालीस गुण हैं, इनके अतिरिक्त ब्रह्मण्यता, शरण्यता आदि महागुणसमूह कृष्ण भगवान में प्रवर्तित होते

ब्रह्मण्यता शरण्यतादि महागुण समूहंबुनु, कृष्णदेवुनियंदु वर्तिचु नवियुनुंगाक गावुन ॥ 400 ।

कं. गणनातीतमुलगु स, द्गुणमुलु गल चक्रि सनिन घोरकलि प्रे-
रणमुन बापसमूह, व्रणयुतुलगु जनुल जूचि वगचेंद दंड्री ॥ 401 ॥

कं. देवतलकु ऋषुलकु बितृ, देवतलकु नाकु नीकु धीयुतुलकु ना-
ना वर्णाश्रममुलकुनु, गोवुलकुनु बाध यनुचु गुंदेंद ननघा ! ॥ 402 ॥

सी. ब्रह्मादु लॅव्वनि भद्रकटाक्ष बीक्षणमु वांछितुरु सत्तपमुल
गमलालयमु मानि कमल यॅव्वनि पादकमलंबु सेविंचु गौतुकमुन
भव्यचित्तंबुन परमयोगीन्द्रुलु निलुपुदुरॅव्वनि नियति तोड
वेदंबु लॅव्वनि विमल चारित्रमुल् विनुतिंपगा लेक वॅगडु वडियॅ

आ. नट्टि वासुदेवु नब्ज वज्रांकुश, चक्र मीन शंख चाप केतु
चिह्नितंबुलैन श्रीचरणमु लिक, सोक वनियु वगतु सोकॅनय्य ! ॥ 403 ॥

कं. हरिपादंबुलु सोकॅडि
सिरिकतमुन निखिल भुवन सेव्यत्वमुतो
स्थिरनैंति निन्नि दिनमुलु,
हरि ना गर्वंबु मान्पि यरिगॅ महात्मा ! ॥ 404 ॥

कं. लीलाकारमु दाल्चॅनु श्रीलल, नेशुंडु खलुल शिक्षिंचि भवो-
न्मूलनमु सेयु कॊॅरकुनु, नालुगु पादमुल निन्नु नडिपिंचुटकुन् ॥ 405 ॥

हैं, इसलिए । ४०० [कं.] तात ! गणनातीत सद्गुणों से युक्त चक्रि (विष्णु) के चले जाने के वाद घोर कलि की प्रेरणा से पापसमूह रूपी व्रण (फोड़े-फुंसियों) वाले लोगों को देखकर चिन्ता करती हूँ । ४०१ [कं.] हे अनघ ! देवताओं को, ऋषियों को, पितृ-देवताओं को मुझे और तुझे, उन वर्णाश्रमों को, गायों को पीड़ा होगी, ऐसा सोच दुःखी होती हूँ । ४०२ [सी.] ब्रह्मादि लोग अपनी सत् तपस्याओं से जिसकी मंगल एवं कृपादृष्टियों की कामना करते हैं, कमलों के आलय (क्षीरसागर) को छोड़ कर कमला (लक्ष्मी) कौतूहल से जिसके चरण-कमलों की सेवा करती है, परम योगीन्द्रगण अपने भव्य-चित्त में नियमित रूप से जिसको स्थिर रखते हैं, जिसके विमल चरितों की स्तुति करने में सारे वेद समर्थ न हो, मौन पड़ गये, [आ.] ऐसे वासुदेव के कमल तथा वज्र, अंकुश, चक्र, मीन, शंख, धनुष, ध्वज के चिह्नों से विलसित होनेवाले श्रीचरणों का स्पर्श अब न होगा, यही दुःख सता रहा है । ४०३ [कं.] महात्मा ! हरि के चरण-स्पर्श से श्रीविलसित होने के कारण अखिल भुवनों की सेवाएँ लेते हुए इतने दिनों तक स्थिर रही । हरि मेरे गर्व को समाप्त कर चला गया । ४०४ [कं.] श्रीविष्णु ने दुष्टों को दण्डित कर, संसार का उन्मूलन करने

उ. आ मधुरोक्तु ला नयमु ला दरहासमु ला दयारसं
बा मुरिपॅंबु ला तगवु ला गमनक्रिय ला मनोहर
प्रेमकरावलोकनमु ब्रीति गनुंगॉनलेमि माधवुन्
गामिनु लेल? निर्दळितकर्मुलु योगुलु वायुनेर्तुरे? ॥ 406 ॥

कं. मॅल्लन ना पॅ यादव, वल्लभु डडुगिडग मोहवशनै ने रं-
जिल्लग रोमांचमु क्रिय, मॉल्लमुलै मॉलचु सस्यमुलु मार्गमुलन् ॥ 407 ॥

व. अनि यिट्लु पूर्ववाहिनियैन सरस्वती तीरंबुन धर्मदेवुंडुनु भूमियु वृषभ धेनु रूपंबुल भाषिप राजऋषियैन परीक्षिद्भूवरुंडु डग्गरियॅ। आ समयंबुन ॥ 408 ॥

अध्यायमु—१७

कलिपुरुषुंडु धर्म देवतनु दन्नुट

शा. कैलासाचल सन्निभंबगु महागंभीर गोराजमुन्
गालक्रोधुडु दंडहस्तुडु नृपाकारुंडु ग्रूरुंडु जं-
घालुं डॉक्कडु शूद्रुडु असुरगति गारुण्य निर्मुक्तुडै
नेलं गूलग दन्ने वंचितिलगा निर्घात पादाहतिन् ॥ 409 ॥

के लिए, तुम्हें चार चरणों में सम्यक् रूप से चलाने के लिए लीला-स्वरूप को धारण किया था। ४०५ [उ.] उन मधुर भाषणों को उन नयवचनों को, उन मुस्कानों को, उस दया-रस को, उस प्यार को, प्रेमकलहों को, गमन की उन क्रियाओं को, उस मनोहर प्रेमपूर्ण अवलोकनों को प्रीत से न पाकर, माधव को कामिनियाँ ही क्यों? कर्मबन्धनों से मुक्त योगी भी क्या छोड़ सके? ४०६ [कं.] धीरे से मुझ पर यादववल्लभ के चरण धरते ही मोहवश हो मेरे प्रसन्न होने पर रोमांच की रीति (समान), मार्ग पर मनोहर सस्य (फ़सल) फूट निकलते हैं। ४०७ [व.] इस प्रकार पूर्व दिशा में प्रवाहित होनेवाली सरस्वती के तट पर धर्मदेव तथा भूमि के वृषभ तथा धेनु के रूप में सम्भाषण करते रहने पर राजऋषि परीक्षित उनके समीप पहुँच गये। उस समय। ४०८

अध्याय—१७

कलिपुरुष का धर्मदेवता को लात मारना

[शा.] कैलास गिरि के समान, महागम्भीर गोश्रेष्ठ को, काल के समान क्रोधी, दण्डधर, नृपाकार वाले, क्रूर जंघाल (शीघ्र गति से चलने वाला) शूद्र ने असुर की रीति से, करुणा-विरहित हो, निर्घात-

शा. आ लोलांगक, नश्रुतोयकण जालाक्षिन्, महांभारवन्,
बालारूढ तृणावळी कबळ लोभव्याप्त जिह्वाग्र, नां-
दोळ स्वांत, सजीववत्स, नुदय दु:खान्वितन्, घर्म की
लालापूर्ण शरीर, ना मोंदवु नुल्लंघिचि तन्नेन् वडिन् ॥ 410 ॥

व. इट्‌ला धेनु वृषभंबुल रेंटिनि गंटकुंडै तन्नुचुन्न राजलक्षण मुद्रितुंडैन शूद्रुनि जूचि, सुवर्ण परिकर स्यंदनारूढुंडगु नभिमन्यु-नंदनुंडु गोदडंबु सगुणंबु सेसि मेघगंभीर वचनंबुल निट्‌लनियें ॥ 411 ॥

शा. निन्नुं गोम्मुल चिम्मेनो ? कदिसेनो ? निर्भीतिवै गोवुलं
दन्नं गारणमेमि ? मद्‌भुज सनाथ क्षोणि ने वेळलं-
दुन्नेरंबुलु सेयरा देरुगवा ? धूर्तत्त्वमुन् भूमि भृ-
त्सन्नाहंबु नोनचें देव्वडवु ? निन् शासिचेंदन् दुर्मती ! ॥ 412 ॥

कं. गांडीविधु जक्रियु भू, मंडलि नेंडबासि चनिन मदमत्तुडवै
दंडिपवगनि वारल, दंडिचेंदु नीव तगदु दंडनमुनकुन् ॥ 413 ॥

पादाहति (गाज के समान चरणाघात) से ऐसी लात मारी कि वह मूत्र छोड़, नीचे गिर पड़ी। ४०९ [शा.] उस लोलायमान अंग वाली (कांपते हुए अवयव वाली) को, अश्रुतोय (जल) कण जाल से युक्त आँखों वाली को, महान् अम्भारव करने (रँभाने) वाली को, तभी उगे हुए तृणावली को कवल बनाकर खाने के लोभ से व्याप्त जिह्वाग्र वाली को, अन्तराल में आन्दोलिता को, अजीव वत्स (मरे हुए बछड़े) वाली को, उदित दु:ख से युक्ता को, पसीने से तर-बतर हुए शरीर वाली, उस गाय को, उछलकर, ज़ोर से (उसने) लात मारी। ४१० [व.] इस प्रकार उस धेनु और वृषभ दोनों को कण्टक (त्रासक) हो लात मारनेवाले, राजलक्षणों से मुद्रित (चिह्नित) शूद्र को देखकर, सोने (सुवर्ण) की सामग्री से अलंकृत स्यंदन (रथ) पर आरूढ़ अभिमन्यु-नन्दन (परीक्षित) ने कोदण्ड को सगुण, (ज्या से युक्त) कर, मेघ के समान गम्भीर वचनों से ऐसा कहा। ४११ [शा.] तुम्हें [उसने] सींगों से मारा क्या ? समीप पहुँचा क्या ? निडर हो गायों को इस प्रकार लात मारने का कारण क्या है ? मेरे कांधों पर स्थित होने के कारण धरणी सनाथ है। किसी भी समय में (कभी) किसी को अपराध नहीं करना चहिए; जानते नहीं हो क्या ? धूर्तता और राजा के समान आटोप (आडंबर) दिखानेवाले कौन हो तुम ? दुर्मती ! तुम्हें दण्डित करूँगा। ४१२ [कं.] गाण्डीवी (अर्जुन), चक्रि (कृष्ण) के भूमण्डल को छोड़ जाने पर मदमत्त हो, जिन्हें दण्डित नहीं करना चाहिए ऐसे लोगों को दण्डित कर रहे हो, ऐसे तुम्हीं दण्ड के योग्य हो। ४१३ [व.] (उससे ऐसा) कहकर, वृषभ के प्रति इस प्रकार

व. अनि वृषभंबु नुद्देशिंचि यिट्लनियें ॥ 414 ॥

म. कुरुधात्रीश्वर बाहु वप्रयुगळी गुप्त क्ष्मामंडलिन्
बरिकिंपन् भवदीय नेत्रजनितांभः श्रेणि दक्कन् जनुल्
दीरुगं जूड रधर्म संजनित जंतु श्रेणि बाष्पंबुलन्
गुरुशक्तिन् विदळिंतु जूडु मितनिन् गोमूर्ति देवोत्तमा ! ॥ 415 ॥

कं. जालि बडनेल ? ना शर, जालंबुल पालु सेसि चंपेद वीनिन्
भूलोकंबुन निनु ने, नालुगुपादमुल निपुड नडिपितु जुमी ॥ 416 ॥

उ. वाचवियैन गड्डि दिनि वाहिनुलंदु जलंबु द्रावगा
नी चरणंबु लॅव्वडिट्टु निर्दळितंबुग जेसॅ, वाडु दा
खेचरुडैन वानि मणिकीलित भूषणयुक्त बाहुलन्
वे चनि तूंचिवैतु विनुवीथिकि नेगिन नेल डागिनन् ॥ 417 ॥

व. अनि मरियु गोरूपयैन भूदेवितो निट्लनियें ॥ 418 ॥

च. अगणित वैभवंबुडगु मुरांतकु डॅक्कड बोयॅ ? नंचु नॅ-
व्वगल नशिंचि नेत्रमुल वारिकणंबुलु देकुमम्म ! लो-
वॅगडकुमम्म ! मद्विशिखबृंदमुलन् वृषलुन् वधिंतु ना-
मगटिमि जूडु नी वॅरपु मानगदम्म ! शुभप्रदायिनी ! ॥ 419 ॥

कहा । ४१४ [म.] गोमूर्ति में स्थित देवोत्तम ! कुरुधात्रीश्वर के बाहु रूपी वप्र (प्राकार)-युगल मे गुप्त (रक्षित) क्ष्मामंडली (भूमंडल) में मेरे देखने में भवदीय (आपके) नेत्र-जनित-अंभ-श्रेणी (आँसू) को छोड़, प्राणियों के आँसुओं को अधर्म के कारण उत्पन्न होते किसी ने नहीं देखा । इसे गुरु-शक्ति से विदलित कर दूंगा । अब देखो ! ४१५ [कं.] [तुम्हे] दुःखी होना क्यों ? मेरे शर-जाल (समूह) के भागी बनाकर इसका वध करूँगा । भूलोक में अभी तुम्हें चार चरणों से निश्चित रूप से चलाऊँगा । ४१६ [उ.] स्वादिष्ट घास चरकर, वाहिनियों (नदियों) का जल पीनेवाले तुम्हारे चरणों को किसने इस प्रकार निर्दलित (विदारित) किया है ? वह स्वयं खेचर (गगनचारी) भी क्यों न हो, उसके मणियों-जड़े हुए आभरणों से विभूषित हाथो को मैं जाकर तोड़ दूंगा, भले ही आकाश वीथी में चला जाए या जमीन के अन्दर छिप जाए । ४१७ [व.] कहकर फिर गोरूप में स्थित भूदेवी से ऐसा कहा । ४१८ [च.] अगणित वैभवशाली मुरान्तक (कृष्ण) कहाँ चले गये ? ऐसा सोच, अधिक दुःख से कृशीभूत होकर नेत्रों में वारिकण (आँसू) मत लाओ माँ ! अन्तराल में व्याकुल मत होना माँ ! अपने विशिख (बाणो के) बृंदों (समूहों) से वृषल का वध करूँगा । मेरे पौरुष (शौर्य) को देखो ! हे शुभप्रदायिनी ! माँ ! भय को छोड़ दो न । ४१९ [कं.] माँ ! साधुप्राणियों को पीड़ा देनेवाले

कं. साधुवुलगु जंतुवुलकु, बाधलु गाविचु खलुल भंजिपनि रा-
जाधमु नायुस्स्वर्ग श्री धनमुलु वोटिवोवु सिद्धमु तल्ली ! ॥ 420 ॥

कं. दुष्टजन निग्रहंबुनु, शिष्टजनानुग्रहंबु जेयग नृपुलन्
स्रष्ट विधिचॆं बुराण, द्रष्टलु सॆप्पुदुरु परमधर्ममु साध्वी ! ॥ 421 ॥

व. अनिन धर्मनंदन पौत्रुनकु वृषभमूर्ति नुन्न धर्मदेवुं डिट्लनियॆ ॥ 422 ॥

उ. क्रूरुलॆं जंपि साधुवुलकुन् विजयं बॊनर्चिचिनट्टि या-
पौरववंशजातुडव् भाग्यसमेतुड वौदु तॊल्लि मी-
वा रिट्टिवारिवारवुट वारिजनेत्रुडु मॆच्चि दौत्य सं-
चारमु सेसॆ गादॆ ! नृपसत्तम ! भक्ति लतानुबद्धुडै ॥ 423 ॥

व. नरेंद्रा ! मेमु प्राणुलकु दुःखहेतुवुलमु गामु। मावलन दुःखबुनॊंदॆडु पुरुषुंडु लेडु। वादिवाक्य भेदंबुल योगीश्वरुलु मोहितुलै, भेदंबु नाच्छादिंचि, तमकु नात्म सुखदुःखंबुल निच्चु प्रभुवनि चॆप्पुदुरु। दैवज्ञुलु ग्रहदेवतादुलकु प्रभुत्वंबु संपादिंतुरु। मीमांसकुलु गर्मंबुनकुं ब्राभवंबु प्रकटिंतुरु। लोकायतिकुलु स्वभावंबुनकु प्रभुत्वंबु संपादिंतुरु इंदॆव्वरिकिनि सुखदुःखप्रदानंबु सेय विभुत्वंबु लेदु। परुलवलन दुःखंबु

खलों (दुष्टों) को दण्डित न करनेवाले राजाधम (नीच राजा) की आयु, स्वर्ग तथा श्रीधन (संपत्ति) निश्चित रूप से रीते हो जाएँगे। ४२० [कं.] हे साध्वी ! दुष्टजननिग्रह (शिक्षण) [तथा] शिष्टजन-अनुग्रह (रक्षण) करने के लिए सृष्टिकर्ता ने राजाओं को विहित (नियमन) किया है, ऐसा पुराणों के द्रष्टा कहते हैं। [यही] परमधर्म है। ४२१ [व.] [ऐसा] कहने पर धर्मनन्दन के पोते (परीक्षित) से वृषभ-रूप में स्थित धर्मदेव ने इस प्रकार कहा। ४२२ [उ.] हे नृपसत्तम (राजश्रेष्ठ) ! क्रूरों [जनों] का वध कर साधु [जनों] को विजयी बनानेवाले पौरव वंश में उत्पन्न हुए हो। भाग्य-शाली हो जाओगे। पूर्वकाल से आपके लोगों के (पूर्वजों के) ऐसा होने के कारण वारिज-नेत्र (कमलनयन) वाले ने प्रसन्न होकर, भक्तिलता से अनुबद्ध होकर, (बँधा जाकर) दूतकार्य सम्पन्न किया था न ? ४२३ [व.] हे नरेन्द्र ! हम प्राणियों को दुःख-हेतु नहीं है। हमारे कारण दुःखित होनेवाला कोई पुरुष (जीव) नही है। वाद करनेवाले के वाक्य के भेदों से भोगीश्वर मोहित होकर भेद को आच्छादित कर (माया से आवृत होकर), अपनी आत्मा को सुख-दु.ख प्रदान करनेवाला प्रभु है, ऐसा कहते है। दैवज्ञ लोग ग्रह, देवता आदि को प्रभुता सम्पादित (प्रदान) करते हैं। मीमांसक [जन] कर्म का प्रभाव मानते है। लोकायती लोग स्वभाव पर प्रभुता आरोपित करते हैं। इनमें किसी पर भी सुख-दुःख प्रदान करने की सामर्थ्य नहीं है। अन्यों से दुःख प्राप्त हुआ तो परायों ने

वच्चिन नधर्मंबु परुलु चेसिरनि विचारिंपवलदु। तर्किपनु निर्देशिंपनु रानि परमेश्वरुनि वलन सर्वमु नगुचुंडु। अनिन धर्म देवुनिकि धर्मनंदन-पौत्रु डिट्लनियें ॥ 424 ॥

आ. धर्ममूर्तिवय्य ! धर्मज्ञ ! वृषरूप ! परमधर्म मीवु पलुकु त्रोव
पापकर्मि सेयु पापंबु सूचिप, बापकर्मु डेगु पथमुवच्चु ॥ 425 ॥

व. मरियु देवमायवलन भूतंबुल वाङ्मनंबुलकु वध्य धातुक लक्षण वृत्ति सुलभंबुनं देलियरादु। नीवु धर्म देवतवु। कृतयुगमुनं दपश्शौच दया सत्यंबुलु नालुगुनु नीकुं वादंबु लनि चॅप्पुदुरु। (त्रेतायुगंबुन बूर्वोक्त पाद चतुष्कंबुन ग्रमंबुनं दपश्शौच दया सत्यंबुलं दुरीयपादंबु क्षीणंबय्यें। अवशिष्टंबगु भवदीय चतुर्थपादंबुन द्वापरंबुनं बादद्वयंबु नशिचॅं। कलियुगंबुनंदु निव्वडुवुनन यिप्पुडु नीकुं) वादत्रयंबु भग्नंबय्यें। अवशिष्टंबगु भवदीय चदुर्थपादंबु नधर्मंबु गल्यंतमुन निग्रहिंप गमनिंचुचुन्नदि। विनु मदियुनु गाक ॥ 426 ॥

म. भरमुं वापि रमाविभुंडु गरुणं बादंबुलं द्रोवकगा
स्थिरमै वेड्क नितकालमु सुखश्री नोंदि भूदेवि त-

अधर्म किया है, ऐसी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जिसके वारे में तर्क एवं निर्देश नही कर सकते ,उस परमेश्वर से सव सम्पन्न होता रहता है। [ऐसा] कहने पर धर्मदेव से धर्मनन्दन के पोते (परीक्षित) ने इस प्रकार कहा। ४२४ [आ.] हे धर्मज्ञ ! वृषरूप में स्थित तुम धर्ममूर्ति हो। परम धर्मात्मा हो। तुम्हारे वताये मार्ग के अनुसार पापकर्मा के पाप की सूचना (व्योरा) देने पर पापकर्मों का पथ प्राप्त होता है (दूसरों के पाप का विवरण देनेवाला स्वयं उसी पापमार्ग का अनुयायी होता है।)। ४२५ [व.] और फिर देवमाया के कारण प्राणि-कोटि के वाक् तथा मन को वध्य एवं घातक लक्षणों की वृत्ति सरल रीति से विदित नहीं होती। तुम धर्मदेवता हो। कहते हैं कि कृतयुग में तप, शौच, दया, सत्य, (नामक) चारों तुम्हारे चरण हैं। [त्रेतायुग में, पहले कहे गये चार चरणों में क्रम से तप, शौच, दया, सत्य में अंतिम चरण क्षीण हुआ। वचे हुए तुम्हारे चरणों में द्वापर में दो चरण नष्ट हुए। कलियुग में इस प्रकार, अव तुम्हारे] तीन चरण भग्न हुए। अवशिष्ट तुम्हारे चतुर्थ चरण का भंग करने के लिए कलि [युग] के अंत तक [कलिपुरुष] कोशिश करता रहेगा। सुनो, इसके अतिरिक्त। ४२६ [म.] हे धर्मज्ञ ! देखा ! रमाविभु (विष्णु) के [अपने] भार को दूर कर करुणा से चरणों से दवाते रहने (स्पर्श करते रहने) पर, स्थिर हो, आनन्द के साथ इतने काल तक सुख और श्री के साथ विलसित रही और [आज भूदेवी] उन चरणों के स्पर्श के

चरणस्पर्शमु लेमि शूद्रकुलजुल् शासितु रंचुनिरं
तर शोकंबुन नीरु गन्नुल निंडेन् धर्मज्ञ ! वीक्षिंचिते ॥ 427 ॥

परीक्षिन्महाराजु कलिनि निग्रहिंचि धर्म परिपालनंबु सेयुट

व. अनि यिट्लु धर्म भूदेवतल बुज्जगिंचि महारथुंडैन विजयपौत्रुंडु ग्रीष्मकारु मेरुंगु चक्कदनंबु धिक्करिंचि, दिक्कुलकु वेक्कसंबैन यडिदंबु बेडिदंबु झळिपिंचि, पापहेतुवैन कलि रूपुमाप नुद्योगिंचिन, वाडु राजरूपं बुडिगि, वाडिन मोगंबुतोड भयविह्वलुंडै हस्तंबुलु सांचि तत्पादमूल विन्यस्त मस्तकुंडै प्रणामंबु सेसि ॥ 428 ॥

कं. कंपिंचें वेह्मेल्लं जंपकु मी
राजतिलक ! शरणागतु र-
क्षिंपु मनि तनकु म्रोक्किन,
जंपक कलि जूचि नगुचु जनपति वलिकेन् ॥ 429 ॥

कं. अर्जुनकीर्ति समेतुं, डर्जुन पौत्रुंडु भयरसावृत जनुलन्
निर्जितुल जंप नोल्लडु, दुर्जन भावंबु विडिचि तोलगु दुरात्मा ! ॥430॥

व. नीवु पापबंधुंडवु। मदीय बाहुपालितंबैन महीमंडलंबुन निलुव वलदु।

अभाव में, शूद्रकुल में उत्पन्न लोग [अपने ऊपर] शासन करेंगे, ऐसा सोच निरन्तर शोक के कारण आँखों में आँसू भर लायी है। ४२७

परीक्षित महाराजा का कलि को दण्डित कर धर्म के अनुसार शासन करना

[व.] कहकर इस प्रकार धर्म तथा भूदेवताओं को समझा-बुझाकर (सान्त्वना देकर) महारथी [और] विजय (अर्जुन) का पोता नवविद्युत् के सौन्दर्य का धिक्कार करते हुए दिशाओं को भयकम्पित कर देनेवाले खड्ग को भयंकर रूप से चमका (घुमा) कर, पाप के हेतुस्वरूप कलि को मिटाने को उद्यत हुआ। उसने राजा के रूप को छोड़कर, कुम्हलाये मुख के साथ, भयविह्वल हो, हाथ फैलाकर उसके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया। ४२८ [कं.] हे राजतिलक ! समस्त शरीर कम्पित हुआ। मुझे मारो मत। शरणागत हूँ। रक्षा करो। ऐसा कहते हुए अपने को प्रणाम करने पर [कलि का] वध न कर, कलि को देख राजा ने हँसते हुए कहा। ४२९ [कं.] अरे दुरात्मा ! अर्जुन (श्वेत) कीर्ति से युक्त, अर्जुन का पोता, भयरस से आवृत (भयभीत) हुए जन को, हारे हुए लोगों को मारता नहीं, दुर्जन (दुष्ट) भाव को छोड़कर (मेरे सामने से) हट जाओ। ४३० [व.] तुम पापियों के बंधु (रिश्तेदार) हो। मेरी बाहुओं से शासित होनेवाली इस महीमण्डल में (तुम) ठहरना नहीं।

राजदेहंबुनंदु वर्तिंचु निन्नु नसत्य लोभ चौर्य दौर्जन्य दुराचार माया कलह कपट कलुषालक्ष्म्यादु लाश्रयिंचु। सत्य धर्मंबुलकु निवासंबगु ब्रह्मावर्तदेशंबुन यज्ञविस्तारनिपुणुलैन वारु यज्ञेश्वरुंडैन हरि गूर्चि यागंबु सेयुचुन्नवारु। यजिंचु वारलकु सुख प्रदानंबु सेयुचु, सकल भूतांतर्यामियै भगवंतुंडैन हरि जंगमस्थावरंबुलकु नंतरंग बहिरंगंबुल संचरिंचु वायु चंदंबुन, नात्मरूपंबु मनोरथंबु निच्चु गावुन निबुंड वलव दनुचु दंडहस्तुंडैन जमुनिकैवडि मंडलाग्रंबु साचिन राजुनकुं गलि यिट्लनियॆं ॥ 431 ॥

कं. जगतीश्वर ! नी यडिदमु,
धग धगित प्रभलतोड दट्चुग मॆरयन्
वॆंगडॆं जित्तमु गुंडॆलु,
वगिलॆडि निक नॆंदु जॊत्तु भाविपगदे ॥ 432 ॥

व. नरेंद्रा ! निनु नारोपित शरशरासुनिग सर्वप्रदेशंबुलंदुनु बिलोकिंपुचु नुन्नवाड। नॆ नॆक्कडनुंड्डु नानतिम्मनिन राजन्यशेखरुंडु प्राणिवध स्त्री द्यूत पानंबु लनियॆडु नालुगु स्थानंबुल निच्चि, मरियु नडिगिन सुवर्णमूलंबगु नसत्य मद काम हिंसा वैरंबु लनियॆडु पंचप्रदेशंबुल नीसंगि, इतर स्थलंबुल स्पृशियिंपकुंड नियमिंचॆ। इट्लु कलि-निग्रहंबु

राजा की देह में विचरण करनेवाले तुम असत्य, लोभ, चोरी, दौर्जन्य, दुराचार, माया, कलह, कपट, कलुष (दोष, पाप), अलक्ष्मी (शुभ लक्षणों का न होना) आदि (गुणो) का आश्रय लो। सत्य तथा धर्म के निवास स्वरूप ब्रह्मावर्त देश में यज्ञ के विस्तार करने में निपुण (चतुर) लोग यज्ञेश्वर-हरि के प्रति यज्ञ कर रहे हैं। यज्ञ करनेवालों को सुख प्रदान करते हुए, सकल प्राणियों के अन्तर्यामी, भगवान हरि जंगमस्थावर (चर-अचर) के अन्तरंग, वहिरंग में संचार करनेवाली वायु की भाँति, आत्मा-रूप में स्थित हो, मनोरथ (कामना) की पूर्ति करते रहता है, इसलिए तुम्हारा यहाँ ठहरना ठीक नहीं है, ऐसा कहते हुए दण्डधर वने यमराज की भाँति स्थित हो, मण्डलाग्र (तलवार) को फैलानेवाले राजा को देखकर, कलि ने इस प्रकार कहा। ४३१ [कं.] जगदीश्वर ! तुम्हारे खड्ग के धग्-धग् कान्तियों के साथ वार-वार चमकते देखकर मेरा चित्त भयभीत हुआ। सोचो, दिल फटता जा रहा है। अब मैं कहाँ प्रवेश करूँ। ४३२ [व.] नरेन्द्र ! तुम्हें [शर-शरासन से युक्त] सब प्रदेशों में (सर्वत्र) देख रहा हूँ। मैं कहाँ रहूँ? आज्ञा दो, ऐसा पूछने पर राज-शेखर ने प्राणियों का वध, स्त्री (व्यभिचार), द्यूत (जुआ), मदिरापान, नामक चार स्थान देकर और पूछने पर सुवर्ण-मूलक (धन के मूल स्थान), असत्य, मद, काम, हिंसा, वैर नामक पाँच प्रदेश देकर, अन्य स्थानों को न छूने का

चेसि, हीनंबुलैन तपश्शौच दय लनियेँडु मूडु पादंबुलु वृषभमूर्ति यैन धर्मदेवुनि किच्चि, विश्वंभरकु निर्भरंबैन संतोषंबु संपादिंचि ॥ 433 ॥

कं. गजनामधेय पुरमुन, गजरिपुपीठमुन घनुडु गलिमर्दनुडु
गजवैरि पराक्रमुडै, गजिबिजि लेकुंड दाल्चें गौरव लक्ष्मिन् ॥ 434 ॥

अध्यायमु—१८

व. इट्लु कृष्णुनि यनुग्रहंबुन नश्वत्थाम बाणवावकंबु वलन ब्रतिकि, परीक्षिन्नरेंद्रुडु ब्राह्मणशापप्राप्त तक्षकभयंबुवलन ब्राणंबुलु वोवुननि यॅरिंगि, सर्वसंगंबुलु वर्जिचि शुकुनकु शिष्युंडै, विज्ञानंबु गलिगि गंगा तरंगिणी तीरंबुनं गळेबरमु विडिचें विनुडु ॥ 435 ॥

कं. हरिवार्त लॅरुगुवारिकि, हरिपदमुलु दलचुवारि कनवरतंबुन्
हरिकथलु विनॅडिवारिकि, मरणागत मोहसंभ्रममु ले दनघा !॥ 436 ॥

कं. शुभचरितुडु हरि यरिगिन,
ब्रभविंचि धरित्रिनॅल्ल ब्रबियु गलि दा

नियमन किया। इस प्रकार कलि को दण्डित कर, वृषभ-मूर्ति धर्मदेव के नष्ट हुए तप, शौच, दया, नामक तीन चरणों को प्रदान कर, विश्वम्भरा (धरती) को अत्यन्त सन्तोष प्रदान कर। ४३३ [कं.] गजनाम वाले (हस्तिना) पुर में गजरिपु-आसन (सिंहासन) पर घनात्मा (महान्), कलि-मर्दन ने गजवैरि (सिंह) के पराक्रम के साथ, कौरव लक्ष्मी को व्याकुलताओं के बिना धारण किया। ४३४

अध्याय—१८

[व.] इस प्रकार कृष्ण के अनुग्रह से अश्वत्थामा के बाणों की अग्नि से [बचकर] जीवित रहकर, राजा परीक्षित ने ब्राह्मण के शाप से प्राप्त तक्षक के भय से प्राण जायेंगे, यह जानकर सर्वसंगतियों को त्यागकर, शुक का शिष्य बनकर विज्ञान की प्राप्ति कर, गंगा तरंगिणी (नदी) के तीर पर कलेवर (शरीर) छोड़ दिया। सुनो! ४३५ [कं.] अनघ! हरि की वार्ताएँ (समाचार, रहस्य) जाननेवालों को, हरि के चरणों का ध्यान करनेवालों को, सदा हरिकथाओं का श्रवण करनेवालों को मृत्यु के आगमन से [उत्पन्न] मोह एवं सम्भ्रम (भ्रान्ति) प्राप्त नहीं होते। ४३६ [कं.] भार्गव मुख्य! शुभ चरित वाले हरि के प्रस्थान करने के पश्चात् उत्पन्न होकर, सारी धरती में अतिशयता से फैलकर उस अभिमन्युसुत (परीक्षित)

नभिमन्युसुतुनि वेळनु,
अर्भविपक यणगियुंडॆ भार्गवमुख्या ! ॥ 437 ॥

व. इव्विधंबुन जतुस्समुद्र मुद्रिताखिल महीमंडल साम्राज्यंबु पूज्यंबुगा जेयुचु नभिमन्युपुत्त्रुंडु ॥ 438 ॥

उ. चेसिनगानि पापमुलु सेंदवु चेयदलंचि नंतटन्
जेसॆद नन्न मात्रमुन जेंदुगदा ! कलिवेळ पुण्यमुल्,
मोसमु लेददंचु नृपमुख्युडु गाचॆ गलिन् मरंदमु-
ल्लासमुतोड ग्रोलि विरुलं दॆग जूडनि तेटि कैवडिन ॥ 439 ॥

व. मरियुं ब्रमत्तुलै यधीरुलगु वारलयंदु वृकंबु चंदंबुन नॊदिगि दाचुकॊनियुंडि चेष्टिंचु गानि, धीरुलैन वारिकिं गलि वलनि भयंबु लेदनि कलि मंतंबु नॊंदिपडय्यॆ। अनिन विनि ऋषुलु सूतुन किट्लनिरि ॥ 440 ॥

सी. पौराणिकोत्तम ! ब्रदुकुमु पॆक्कॆंड्लु तामरसाक्षुनि धवळ यशमु
मरणशीलुरमैन मा कॊरॆगिंचिति कल्पितंबगु क्रतुकर्ममंद
वॊगल्चे बॊगिलि यबुद्धचित्तुलमैन ममु हरिपद पद्म मधुरसंबु
द्राविंचितिवि नीवु धन्युल मैतिमि स्वर्गमेमियु नपवर्ग मेनि

के [शासन] काल में अपने प्रभाव को दिखा न सक, कलि [पुरुष] स्वयं दबा रहा। ४३७ [व.] इस प्रकार चारों समुद्रों से परि-सीमित अखिल महीमण्डल (धरती) के साम्राज्य पर पूज्य-बुद्धि से शासन करते हुए अभिमन्यु-पुत्र ने [विचार किया कि] ४३८ [उ.] कलि के समय में (कलियुग में) में करने पर ही कही पाप लग जाते है, केवल सोचने पर पाप [का फल] नहीं लगता। [कलियुग में] पुण्यकार्य करने का विचार करने पर, करने के कथन मात्र करने से पुण्य [का फल] मिल जाता है न ! अतः कोई धोखे (हानि) की बात नही है, ऐसा सोच नृप-मुख्य (परीक्षित) ने मधुपान के बाद उल्लसित हो फूलों का नाश न करनेवाले मधुकर की भाँति, कलि की रक्षा की (वध नही किया।) । ४३९ [व.] और (यही नहीं) प्रमत्त हो, अधीर बने रहनेवालों के अन्तरंग में वृक (भेड़िये) की भाँति सिकुड़ छिपे रहकर [मौक़ा पाकर] चेष्टा करता है, किन्तु धैर्यवान लोगों को कलि से कोई भय नही है, ऐसा जानकर उसको समाप्त (वध) न किया। ऐसा कहने पर, सुनकर, ऋषियों ने सूत से इस प्रकार कहा। ४४० [सी.] हे पौराणिक-उत्तम (कथावाचकों में श्रेष्ठ) ! अनेक वर्ष जीते रहो ! मरणशील हमें तामरसाक्ष (कमल नयनवाले) के धवल यश को क्रतुकर्म के समय विदित किया (बताया), [क्रतुकर्म के] धुएँ से परितप्त हुए हम अबुद्ध चित्त वालों (अज्ञानी) को हरिचरण-कमलों का मधुरस पिलाया। हम धन्य हुए। स्वर्ग हो या अपवर्ग भागवतों की

ते. भागवत संग लवभाग्य फलमु कोडँ ?,
प्रकृति गुणहीनुडगु चक्रि भद्र गुणमु
लीश कमलासनादुलु नॅरुगलेरु,
विनियु विनजाल ननियेॅडि वॅर्रि गलडॅ ? ॥ 441 ॥

कं. श्रीपंबुलु खंडित सं, तापंबुलु गल्मषांधतमस् महोद्य-
द्दीपंबुलु पाषंड दु, रापंबुलु विष्णुवंदनालापंबुल् ॥ 442 ॥

कं. पावनमुलु दुरितलता, लावनमुलु नित्यमंगळ प्राभव सं-
जीवनमुलु लक्ष्मी सं, भावनमुलु वासुदेव पदसेवनमुल् ॥ 443 ॥

आ. परमभागवतुडु पांडवपौत्रुंडु,
शुकुनि भाषणमुल शुद्धबुद्धि
यें विराजमानुडै मुक्तियगु विष्णु
पादमूल मॅट्लु पडसॅ ? ननघ ! ॥ 444 ॥

व. महात्मा ! विशिष्ट योगनिष्ठाकलितंबु, विष्णुचरित ललितंबु, परमपुण्यंबु, सकलकळ्याणगुण गण्यंबु भागवतजनापेक्षितंबु नॅन पारीक्षितंबगु भागवताख्यानंबु विनिपंपु मनिन सूतुं डिट्लनियॅ ॥ 445 ॥

कं. मिमुबोटि पॅद्दवारलु, कमलाक्षुनि चरित मडुगगा जॅप्पॅडि भा-
ग्यमु गलिगॅ नेडु मा ज, न्ममु सफलंबय्यॅ वृद्धमान्युल मगुटन् ॥ 446 ॥

संगति के भाग्य [के फल] की लवलेश भी बराबरी कर सकता है ? [ते.] प्रकृति के गुणों से हीन (अतीत) चक्री के भद्र गुणों को ईश्वर, कमलासन (ब्रह्मा) आदि जान नहीं पाते। सुनकर भी (सुनने) का अवसर मिलने पर भी, न सुन सकनेवाला पागल कोई होगा ? ४४१ [कं.] विष्णु की वन्दना तथा (विष्णु के बारे में) सम्भाषण श्रीप्रद (सम्पत्ति प्रदान करनेवाले) हैं, सन्तापों को खण्डित करनेवाले हैं, कल्मष रूपी अन्ध-तमस् को हटानेवाले महा-उद्यत्-दीप हैं। पाषंडों के लिए दुराप (दुर्गम) हैं। ४४२ [कं.] वासुदेव का पदसेवन पावन हैं, दुरित रूपी लताओं के लिए लावन (कुदाल) है, नित्य-मंगल-प्राभव (-वैभव) के लिए संजीवन हैं और लक्ष्मी के सम्भावन (सम्मान) के मार्ग हैं। ४४३ [आ.] अनघ ! परमभागवत, पाण्डवपौत्र (परीक्षित) ने शुक के सम्भाषणों से शुद्ध-बुद्धि के साथ विराजमान हो, मुक्तिस्वरूप विष्णु-चरण के मूल को कैसे प्राप्त किया। ४४४ [व.] हे महात्मा ! विशिष्ट योग की निष्ठा से कलित, विष्णु के चरित से ललित, परमपुण्य [दायक] सकल कल्याण कर गुणों से गण्य (गणनीय), भागवत जनों के द्वारा अपेक्षित और परीक्षित से संबंधित भागवत का आख्यान सुनाओ। कहने पर सूत ने इस प्रकार कहा। ४४५ [कं.] आप जैसे बड़ों के कमलाक्ष [वाले] के चरित

कं. कुलहीनुडु नारायण,
विलसत्कथनमुलु दगिलि विनिर्पिचिनद-
त्कुलहीनत वासि महो-
ज्ज्वल कुलजत्वमुनु बॊंदु सन्मुनुलारा ! ॥ 447 ॥

सी. एव्वनि गुणजालमॆन्न जिह्वलु लेक नळिनभवादु लनंतुडंड्र.
कोरॆडु विभुदॆव्रकोटि नॊल्लक लक्ष्मि प्रार्थिचॆ नॆव्वनि पावरजमु
ब्रह्म एव्वनि पादपद्मंबु गडिगिन जलमु धन्यत निच्चॆ जनुल कॆल्ल
भगवंतु डनियॆडि भद्र शब्दमुनकु नॆव्वडधीकृति नेपु मिगुलु

आ. ने महात्मु नाश्रयिचि शरीरादि, संगकोटि नॆल्ल संहरिंचि
ाभवमुन मुनुलु पारमहंस्यंबु, नॊंदि तिरिगि राकयुंदु रॆलमि ॥ 448 ॥

च. क्रममुन मिटिकॆ यॆगयु गाक विहंगमु मिटिदैन पा-
रमु गननेर्चुनॆ ? हरिपराक्रम मोपिनयंत गाग स-
र्वमु विवरिप नॆव्वडु प्रवर्तकु डय्यॆमुलार ! नादु चि-
त्तमुनकु नॆंत गान वडॆ दप्पक चॆप्पॆद मीकु नंतयुन् ॥ 449 ॥

[के बारे में] पूछने पर, कहने का सौभाग्य आज प्राप्त हुआ। वृद्धजनों के द्वारा सम्मान्य होने से हमारा जन्म सफल हुआ। ४४६ [कं.] मुनिवर ! कुल-हीन के नारायण की विलसत् (उज्ज्वल) कथाओं को चाव से सुनाने पर, [वह] कुलहीनता से छूट (मुक्त हो) कर महोज्ज्वल कुलजत्व को प्राप्त होगा। ४४७ [सी.] जिसके गुणसमूह की गिनती करने के लिए जिह्वाओं के [बस] न होने पर, ब्रह्मादि लोग जिसे अनन्त कहते हैं, इच्छा (वरण) करनेवाले देवताओं को न चाहकर, लक्ष्मी ने जिसकी चरणधूलि के लिए प्रार्थना की, जिसके पाद-पद्म को धोकर उस जल को ब्रह्मा ने सकल जनों को दिया, भगवान नामक भद्रशब्द के अर्थ तथा आकार को जिसने सार्थक रूप में विलसित किया, [आ.] जिस महात्मा के आश्रित होकर मुनिलोग शरीर आदि अंग-कोटि का संहार कर, प्राभव से परम हंसत्व को प्राप्त कर, वापस नहीं लौटते हुए, शाश्वत तत्त्व को प्राप्त करते हैं, [वह नारायण ही है]। ४४८ [च.] मुनियो ! पक्षी क्रम से आकाश में भले ही उड़ जायें, (किन्तु) वह आकाश का पार पा सकता है क्या ? उसी प्रकार हरि-पराक्रम को यथाशक्ति ही कोई बता सकता है, (किन्तु) सब कुछ का विवरण देने में कौन समर्थ होगा ? [अस्तु] मेरे चित्त में जितना परिलक्षित हुआ, उतना अवश्य आपको सुना दूँगा। ४४९

परीक्षिन्महाराजु श्रृंगिवलन शापंबु नोंदुट

कं. वेदंड पुराधीशुडु, कोदंडमु चेतबट्टिकोनि गहनमुलो
वेदंडादुल नोंकना, डे दंडल बोवनीक येंगचेंन् बलिमिन् ॥ 450 ॥

कं. ओग्गमुलु द्रव्वि पडुमनि, योग्गेंडु पेनुवेरल वलल नुग्रमृगम्मुल्
डग्गरिन जंपुवेडुक, वेग्गलमै चित्तमंदु वेटाडिपन् ॥ 451 ॥

कं. कोलमुल गवय वृक शा, र्दूलमुल दरक्षु खड्ग रोहिष हरि शुं-
डालमुल शरभ चमर, व्यालमुल वधिचें विभुडु वडि नोलमुल् ॥ 452 ॥

कं. मृगयुलु मेंच्च नरेंद्रुडु, मृगराजपराक्रममुन मेंरसि हरिंचेंन्
मृगधरमंडलमुन गल, मृग मोक्कटि दक्क वन्यमृगमुल नेल्लन् ॥ 453 ॥

व. इट्लु वाटंबैन वेट तमकंबुन मृगंबुल वेंटं दगिलि बुभुक्षापिपासल बरिश्रांतुंडै धरणीकांतुंडु चल्लनि नीटि कोलंकुलु गानक कलंगेंडु चित्तंबुतो जनिचनि योक्क तपोवनंबु गनि यंदु ॥ 454 ॥

सी. मेंलगुट जालिंचि मीलितनेत्रुडै शांतुडै कूचुंडि जडत लेक
प्राण मनो बुद्धि पंचेंद्रियंबुल, बहिरंग वीथुल बारनीक
जागरणादिक स्थान त्रयमु दाटि परममै युंडेडि पदमु देंलिसि
ब्रह्मभूतत्त्व संप्राप्त्यविक्रियुडयि यति दीर्घ जटलु दन्नावरिंप

महाराजा परीक्षित का श्रृंगी के द्वारा शापग्रस्त होना

[कं.] वेदंड (हस्तिना)-पुराधीश [परीक्षित] ने कोदण्ड को हाथ में लेकर, अरण्य में वेदंड (हाथियों) आदि का शिकार करते हुए, उनको कहीं भाग जाने न देकर विजृंभण किया। ४५० [कं.] [जानवरों के] गिरने के लिए गड्ढे खोदकर, उग्र मृगों के लिए बड़े-बड़े जालों को फैलाकर, समीप पहुँचकर मारने के उत्साह के अत्यधिक होने पर, शिकार किया। ४५१ [कं.] कोल (जंगली वराह), गवय, वृक (भेड़िये), शार्दूल, तरक्षु, खड्ग-मृग, रोहिष (लाल हिरन), हरि (सिंह), शुंडाल (हाथी), शरभ, चमर, व्याल (साँप) आदि का राजा ने झट भालों से वध किया। ४५२ [कं.] शिकारियों के प्रशंसा करने पर, नरेंद्र (राजा) ने मृगराज (सिंह) पराक्रम से प्रकाशित होकर मृगधर-मण्डल (चंद्र) में स्थित एक मृग (हिरन) को न छोड़कर, सब वन्यमृगों का वध किया। ४५३ [व.] इस प्रकार अनुकूल बने आखेट में अत्यन्त अभिलाषा के कारण, मृगों (पशुओं) के पीछे पड़कर, बुभुक्षा (भूख) और पिपासा (प्यास) से परिश्रान्त होकर, धरणीकान्त (राजा) ने शीतल जलकुण्ड को [कहीं] न पाकर, व्याकुल चित्त से जा-जाकर, एक तपोवन को देखकर, उसमें। ४५४ [सी.] विचलित होना छोड़कर (न हिलते-डुलते), निमीलित नेत्रों (बन्द आँखों) वाला हो, शान्त हो, जड़ता को छोड़कर, प्राण, मन, बुद्धि,

ते. नलघु रुरुचर्मधारियै यलरुचुन्,
तपसि वॊडगनि शोषित तालुडगुचु
नॆंडि तडिलेनि कुत्तुक नॆलुगु डिद,
मंदभाषल डग्गरि मनुजविभुडु ॥ 455 ॥

कं. तोयमुलु दॆम्मु मा की, तोयमु वेटाडुवेळ दॊलिलि पॊडम दी
तोयमु क्रिय जलदाहमु, तोयमु वारलुनु लेरु दुस्सह मनघा ! ॥456॥

व. अनि भूवरुंडु शमीक महामुनि समाधि निष्ठुंडुनु, हरिचिंता-परुंडुनै युंडुट विचारिपक ॥ 457 ॥

उ. कन्नुलुमूसि ब्राह्मणुडु गर्वमु तोडुत नुन्नवाडु चे-
सन्नल नैन रम्मनडु सारजलंबुलु दॆच्चि पोयडे
मन्नन लैन जेयडु समग्रफलंबुलु वॆट्ट डित सं-
पन्नत नॊदॆने ? तन तपश्चरण प्रतिम प्रभावमुल् ॥ 458 ॥

आ. वारि गोरुचुन्नवारिकि शीतल, वारि निडुट यॆट्टि वारिकैन
वारितंबुगानि वलसिन धर्मंबु, वारि यिडडु दाहवारि गाडु ॥ 459

च. अनि मनुजेश्वरुंडु मृगयावसरायत तोयदाह सं-
जनित दुरंत रोषमुन संयमि दन्नु दिरस्करिंचि पू-

पंचेन्द्रियों को वहिरंग की वीथियों में प्रवाहित न होने देकर, जागरण आदि स्थान-त्रय को पारकर, परमस्वरूप पद को जानकर, ब्रह्मभूतत्व को सम्प्राप्त करने की क्रियाशीलता से युक्त हो (ब्रह्मतत्त्व में अद्वैत प्राप्त कर) अतिदीर्घ जटाओं के आवृत करने पर, [ते.] अलघु (महान्, श्रेष्ठ) रुरु (हिरन) के चर्म को धारण कर, विलसित होनेवाले तापसी को देखकर, शोषित (शुष्क) तालु (कौआ) वाले हो, गले के सूखने पर, मन्दवाणी में मनुजविभु (राजा) ने कहा। ४५५ [कं.] अनघ ! हमें तोय (जल) दो। शिकार करते समय पूर्व में (इससे पहले) यह तोय (प्रकार से) नहीं हुआ। इस तोय (प्रकार) से जलदाह (प्यास) नहीं लगा। तोय (बराबरी) वाले भी (परिजन भी) साथ नहीं हैं। दुस्सह [पीड़ा हो रही] है। ४५६ [व.] इस प्रकार भूवर ने महामुनि शमीक के समाधि-निष्ठ (स्थित) और हरि के चिन्तन में लीन होने की स्थिति का विचार न कर, ४५७ [उ.] ब्राह्मण आँखें बन्द कर गर्व के साथ है, इशारों से भी बुलाता नहीं, सारजल लाकर डालता (देता) नही, कोई आदर करता नहीं, समग्र (पके) फल ला देता नहीं, अपनी तपस्या के आचरण के अप्रतिम प्रभाव के कारण इतना सम्पन्न (घमण्डी) हो गया है ? ४५८ [आ.] वारि (जल) की चाह करनेवालों को शीतल वारि देना किसी को भी वारित न होनेवाला (अनिवार्य) धर्म है, [यह मुनि] वारि (जल) नहीं देता [और] दाहवारि (प्यास बुझानेवाला) नहीं बनता। ४५९ [च.] [इस प्रकार] सोचकर

जनमुलु सेयडंचु मृतसर्पमु नीक्कटि विटि कोपुनन्
बनिवडि तॅच्चि वॅचॅ नटु ब्रह्ममुनींद्रुनि यंसवेदिकन् ॥ 460 ॥

व. इट्लु वृथा रोषदर्पंबुन मुनिमूपुन गतासुवैन सर्पंबु निडि, नरेश्वरुंडु दन पुरंबुनकुं जनियॅ। अंत समीप वर्तुलैन मुनि कुमारुलु सूचि शमीकनंदनुंडैन श्रृंगिकडकुं जनि ॥ 461 ॥

कं. नर गंध गज स्यंदन, तुरगंबुल नेलु राजु तोयातुरुडै
परगन्नी जनकुनिमॅड, तुरगमु दगिलिचि पोयॅ नोडक तंड्री ! ॥ 462 ॥

व. अनि पलिकिन समान वयो रूप मुनिकुमार लालासंगियैन श्रृंगि श्रृंगबुलं तोडि मूर्ति धरियिंचिनट्लु विजृंभिचि रोषसंरंभंबुन नदरिपडि बलयन्नंबुल भुजिचि पुष्टंबुलगु नरिष्टबुलं बोलॅ बलिसियु, द्वारंबुलं गाचिकॉनियुंडु सारमेयंबुल पगिदि दास भूतुलगु क्षत्रियाभासु लॅट्लु ब्राह्मणोत्तमुलचे स्वरक्षकुलुग निरूपितुलैरि ? अट्टि वारि लॅट्लु तद्गृहंबुल भांड सहितंबगु नन्नंबु भुजिप नर्हुलगुदुरु ? तत्कृतंबुलैन द्रोहंबु लॅट्लु निजस्वामि जेंदु ननि मट्टियु निट्लनियॅ ॥ 463 ॥

मनुजेश्वर ने मृगया (शिकार) के अवसर पर आयत (अधिक) तोयदाह (प्यास) के कारण संजनित (उत्पन्न) दुरन्त (अत्यन्त) रोष (क्रोध) से, यह सोचकर कि संयमी (मुनि) मेरा तिरस्कार कर, [और] पूजन नहीं करता (आदर नही करता), एक मृतसर्प को धनुष की नोक से जान-बूझकर लाकर ब्रह्मज्ञानी मुनीन्द्र के अंस-वेदिका पर (छाती, गले में) डाल दिया। ४६० [व.] इस प्रकार व्यर्थ के रोष तथा दर्प के कारण, मुनि के कंधे पर मृत सर्प को डालकर, नरेश्वर अपने नगर को चला गया। तब समीप विचरण करनेवाले मुनिकुमारों ने देखकर, शमीक-नंदन श्रृंगी के पास जाकर [कहा], ४६१ [कं.] तात ! नर (प्रजा), गंधगज (मस्त हाथी), स्यंदन (रथ), तुरगों का पालन करनेवाले राजा ने तोयातुर (जल के लिए व्याकुल) हो आकर, बिना किसी संकोच के तुम्हारे पिता के गले में सर्प को लगा (डाल) कर चला गया। ४६२ [व.] ऐसा कहने पर आयु तथा रूप में अपने समान मुनिकुमारों के साथ लीला-संगी (खेल में मग्न) श्रृंगी ने श्रृंगों (सींगों) के साथ मूर्ति (रूप) धारण किया हो, ऐसा विजृंभण कर, रोष तथा संरम्भ के साथ विचलित हो, बलि के अन्न खाकर मोटे हुए अरिष्ट (कौए) के समान मोटे बने और द्वार पर रखवाली करनेवाले सारमेय (कुत्तों) के समान दास-भूत क्षत्रिय के आभास-स्वरूप राजा लोग ब्राह्मण श्रेष्ठों से अपने रक्षक के रूप में कब निरूपित हुए ? ऐसे लोग उनके घरों में भाण्डों (पात्रों) में स्थित भोजन करने में समर्थ कैसे होंगे ? उनके किये हुए द्रोह-कार्य (दुष्ट कार्य) अपने स्वामी को कैसे छू सकेंगे ? और कहा। ४६३ [उ.] दूषण करनेवालों के प्रति भी दूषण

उ. आडडु दन्नु दूपणमु, लाश्रमवासुलगानि वैरुलं
गूडडु, कंदमूलमुलु कूडुग विचु समाधि चित्तुडै
वीडडु लोनि चूड्कुलनु, विष्णुनि दक्क यर प्रपंचमुं
जूडडु मद्गुरुंडु फणि जुट्टग नेटिकि ? राचवानिकिन् ॥ 464 ॥

उ. पोमु हिरण्यदानमुलु पुच्चु कोनंग, धनंबु लेमियुं
देमु, सवंचनंबुलुग दीवेन लिच्चुचु वेसरिपगा
रामु, वनंबुलन् गृह विरामुलमै निवसिप जेल्लरे !
पामुनु वैवगा दगुनें ? ब्रह्ममुनींद्रु भुजार्गळंबुनन् ॥ 465 ॥

कं. पुडमि गल जनुलु वोगडग,
गुड्तुरु गट्टुदुरु गाक कुवलयपतुले
यडवुल निडुमल वडियेंडि,
वड्गुल मेंड निडग दगुनें ? पन्नगशवमुन् ॥ 466 ॥

कं. भगवंतुडु गोविंदुडु, जगति वेंडवासि चनिन शासिपंगा
दगुवरुलु लेमि दुर्जनु, लेंगसि महासाधु जनुल नेचेंद रकटा ॥ 467 ॥

कं. वालकुलार ! धरित्री, पालकु शपियितु ननुचु वलुविडिनि विलो
लालकुडगु मुनिकुंजर, वालकु डरिगें द्रिलोकपालकु लदरन् ॥ 468 ॥

नहीं करता, (परुपवचन नहीं बोलता), आश्रमवासियों के अतिरिक्त शत्रुवर्ग से मिलता नही, कन्दमूल को भोजन के रूप में ग्रहण करते हुए समाधि में अपने चित्त को रख, आन्तरिक दृष्टि को छोडता नहीं (अन्तर्लीन हो रहता)। विष्णु के विना अन्य संसार को देखता नहीं, ऐसे मेरे गुरु (पिता) के गले में क्षत्रिय (राजा) को सांप क्यों लपेटना चाहिए ? । ४६४ [उ.] हिरण्य-दान (स्वर्णदान) लेने के लिए हम नहीं जाते, (किसी से) किसी प्रकार का धन नहीं लाते, वंचनायुक्त रूप से आशीप देते हुए सताने नही आते, वन-प्रान्तों में गृहविराम होकर (गृहों पर आसक्ति छोड़कर) निवास करना भी संगत नही है क्या ? ब्रह्मज्ञानी मुनीन्द्र की भुजाओं रूपी अर्गला पर सांप को डालना कहाँ उचित है ? ४६५ [कं.] धरती पर स्थित जनता की स्तुतियाँ करने पर, कुवलय-पति (राजा) खा सकते हैं, पहन सकते हैं (ठाट-बाट से रह सकते है, कौन रोकता है ?) किन्तु वनों में कष्टों के पल्ले पड़कर रहनेवाले वलहीनों के गले मे पन्नगशव (सांप का शव) डालना ठीक है क्या ? ४६६ [कं.] भगवान गोविन्द (कृष्ण) के जगत को छोड़ चले जाने के पश्चात्, शासन (दंडित) करनेवाले योग्य लोगों के अभाव में दुर्जन लोग विजृंभित होकर महासाधुजनों को हाय ! सताते है ! । ४६७ [कं.] हे वालको (मित्रो) ! राजा को शाप दे दूंगा, कहते हुए, अधिक तीव्रता (तीव्रगति) से, लटों के विखर जाने पर, मुनिकुंजर (मुनिश्रेष्ठ)

व. इट्लु रोषिंचि कौषिकी नदिकिं जनि जलोपस्पर्शनंबु सेसि ॥ 469 ॥

उ. ओडक विंटिकोपुन मृतोरगमुं गोनि वच्चि माऊमा
टाडकयुन्न मज्जनकु नंसतलंबुन वेट्टि दुर्मद
क्रीड जरिंचु राजु हरकेशवु लड्डिडननैन जच्चुवो-
येडवनाडु तक्षक फणींद्र विषानल हेति संहतिन् ॥ 470 ॥

व. अनि शमीक महामुनिकुमारुंडैन शृंगि परीक्षिन्नरेंद्रुनि शपियिंचि, निजाश्रमंबुनकुं जनुदेंचि, कंठलग्न काकोदर कळेबरुंडैन तंड्रि जूचि ॥ 471 ॥

कं. इट्लैड नी कंठमुनकु, निय्युरगशवंबु देच्चि यिडु चेर्चिन या
य्य्य निक नेमि सेयुदु ? नेय्यंबुलु लेवु सुम्मु नृपुलकु दंड्री ! ॥ 472 ॥

शा. प्रारंभंबुन वेटवच्चि धरणीपालुंडु मा तंड्रिपै
नेरं बेमियु लेवु सर्पशवमु न्नेडुग्रुडै वैचिना-
डीरीतिन्, फणि क्रम्मरन् ब्रतुकुनो ! हिंसिचुनो ! कोरलन्
रारे ! तापसुलार ! दीनि दिवरे ! रक्षिपरे ! म्रोक्कैदन् ॥ 473 ॥

व. अनि सर्पंबु दिगुचु नेर्पु लेक येलुंगेत्ति विलपिंचुचुन्न कुमारकु रोदनध्वनि

का बालक त्रिलोकपालकों के भयभीत होने पर [नदी के पास] गया। ४६८ [व.] इस प्रकार रोषी (क्रोधी) हो कौशिकी नदी को जाकर, जल का उप-स्पर्श कर, ४६९ [उ.] बिना संकोच के धनुष की नोक से मृतसर्प को लाकर, जवाब न देनेवाले मेरे पिता के अंसतल (भुजाओं के ऊपरी भाग) पर डालकर, दुर्मद (गर्व) से विचरण करनेवाला राजा, हर और हरि भी क्यों न रक्षा करने आ जायें तो भी तक्षक नामक फणीन्द्र के विष की ज्वालाओं रूपी आयुध की वार से [आज से] सातवें दिन अवश्य मर जाएगा। ४७० [व.] [इस प्रकार] कहकर शमीक महामुनि के पुत्र शृंगी ने परीक्षित राजा को शाप देकर, अपने आश्रम में आकर, कंठ में लगे काकोदर (सर्प) से युक्त कलेवर वाले पिता को देखकर [कहा]। ४७१ [कं.] हे पिता ! इस प्रकार यहाँ तुम्हारे कण्ठ पर सर्प उरग (शव) को लाकर रखनेवाले उसको और क्या करूँ ? [शाप देना भी पर्याप्त नहीं है।] सच है, राजाओं के मन में (किसी के प्रति) स्नेह नहीं होता। ४७२ [शा.] धरणीपाल (राजा) ने पहले शिकार करने आकर, बिना किसी अपराध के, मेरे पिता के ऊपर, उग्र हो, इस प्रकार आज सर्प-शव को लाकर डाला ! पता नहीं, फणि (साँप) फिर से जीवित हो गया हो ! दाढ़ों से हिंसित करेगा ! आओ न तपस्वीयो ! इसे हटा दो ! रक्षा करो न ! प्रणाम करता हूँ ! । ४७३ [व.] [इस प्रकार] कहकर, साँप को हटाने की चतुराई न जानकर, ज़ोर-ज़ोर से रोनेवाले पुत्र के रोदन की ध्वनि को

विनि, यांगिरसुडैन शमीकुंडु समाधि जालिंचि मॆल्लन गन्नुलु दॆरचि मूपुन व्रेलुचुन्न मृतोरगंबु वीक्षिंचि तीसि पारवैचि कुमारकुं जूचि ॥ 474 ॥

कं. ऐकीडु नाचरिंपमु, लोकुलकुन् मनमु सर्वलोक समुलमुन्
शोकिंपनेल पुत्रक ! काकोदर मेलवच्चॆ ? गंठंबुनकुन् ॥ 475 ॥

व. अनि यडिगिन तंड्रिकि गॊडुकु राजुवच्चिच सर्पंबु वैचुटयुं दानु शपिंचुटयुनु विनिपिंचिन वंड्रि कॊडुकु वलन संतसिंपक यिट्लनियॆ ॥ 476 ॥

कं. वॆट्टिदमुगु शापमुनकु, दट्टपु द्रोहंबुगादु धरणीकांतुं
गट्टा ! येलशपिंचिति ? पट्टी ! तक्षक विषाग्नि पालगु मनुचुन् ॥477॥

आ. तल्लि कडुपुलोन दग्धुडै क्रम्मर,
गमलनाभु करुण गलिगिनाडु
बलिमि कलिगि प्रजल वालिपुचुन्नाडु,
दिट्टघडुग ! राजु विट्ट दगुनॆ ? ॥ 478 ॥

उ. कापरिलेनि गॊर्रियल कैवडि गंटक चोरकोटिचे
नेपरियुन्न वी भुवन मीशुडु कृष्णुडु लेमि निट्टिचो
भू परिपालनंबु समबुद्धि नितं डोनरिंप जॆल्लरे !
यी परिपाटि द्रोहमुन किट्लु शपिंपगनेल ? बालका ! ॥ 479 ॥

सुनकर, अंगीरस के पुत्र शमीक ने समाधि (ध्यान) को समाप्त कर, धीरे से आँखें खोलकर, कन्धे पर लटकते हुए, मरे सर्प को देखकर, [उसे] निकाल फेंककर पुत्र को देखकर [कहा]। ४७४ [कं.] पुत्र ! लोगों के प्रति (किसी के प्रति) [हम] कोई बुराई (हानि) नहीं करते। हम सब लोगों को सम भाव से देखते हैं। शोक करना (दुःखी होना) क्यों ? गले में यह काकोदर कैसे आ गया ? ४७५ [व.] ऐसा पूछने पर पिता से पुत्र ने राजा का आना, साँप का डालना और अपना शाप देना कह सुनाया। [तब] पिता ने पुत्र के किए पर प्रसन्न न होकर इस प्रकार कहा। ४७६ [कं.] क्रूर-शाप के लिए योग्य उत्कट द्रोह नहीं है। हाय ! (तुमने) धरणीकान्त (राजा) को तक्षक के विष की अग्नि के भागी बन जाने का शाप क्यों दिया ? ४७७ [आ.] माता के गर्भ में दग्ध होकर, फिर कमलनाभ वाले (विष्णु) की कृपा से उत्पन्न हुआ। वह बलशाली बन कर, प्रजा पर शासन कर रहा है। अरे समर्थ ब्रह्मचारी ! राजा को गाली (शाप) देना ठीक है क्या ? ४७८ [उ.] अरे बालक ! गड़रिये के न होने पर भेड़ों के समान यह भुवन ईश कृष्ण के न होने पर कंटक (अत्याचारी), चोर कोटि के कारण औन्नत्य खोकर है। ऐसे [अवसर] पर समबुद्धि से यह भू-परिपालन कर रहा है, [ऐसा] नहीं करना चाहिए ? इतने छोटे से द्रोह (अपराध) के लिए ऐसा शाप क्यों देना ? ४७९ [सी.] अब

सी. पापंबु नी चेत न्रापिंचे मन किक राजु नशिंचिन राज्यमंदु
बलवंतुडगुवाडु बलहीनु पशुदार हय सुवर्णादुल नपहरिंचु
जार चोरादुलु संचरिंतुरु प्रज कन्योन्य कलहंबु लतिशयिल्लु
वैदिकंबै युन्न वर्णाश्रमाचार धर्म मिंचुक लेक तप्पिपोवु

आ. नंतमीद लोकु लर्थकामंबुल, दगिलि संचरिंप धरणि नेल्ल
वर्ण संकरमुलु वच्चुनु मर्कट, सारमेय कुलमु मेर बुत्र ! ॥ 480 ॥

उ. भारतवंशजुं बरम भागवतुन् हयमेधयाजि ना
चारपरुन् महानय विशारदु राजकुलैक भूषणुन्
नीरमु गोरि नेडु मन नेलकुवच्चिन भक्ति नथि स-
त्कारमु सेसि पंप जनु गाक ! शपिंपग नीकु धर्ममे ? ॥ 481 ॥

क. भूपतिकि निरपराधमु,
शापमु दा निच्चें बुद्धि चापलमुन मा
पापडु वी डीनरिंचिन,
पापमु दोलंगिचु कृष्ण ! परमेश ! हरी ! ॥ 482 ॥

कं. पीडिंचिन विट्टिटन गोट्टिटन,
बचुंचुंदुरु गानि परम भागवतुलु दा-
रीडबडरु मारु सेयग,
गोडुका ! विभु डेग्गुसेय गोरडु नीकुन् ॥ 483 ॥

तुम्हारे कारण अब हमें पाप सम्प्राप्त हुआ। राजा के नाश होने के बाद राज्य में बलशाली व्यक्ति शक्ति-हीन [लोगों] के पशु, दारा (पत्नी), घोड़े, सोने (गहने) आदि का अपहरण करेगा। जार और चोर संचरण करेंगे। प्रजा में परस्पर कलह बढ़ जायेंगे। वेदानुसार स्थित वर्णाश्रम-धर्म, आचार-धर्म किंचित् भी न रहकर हट जायेगा। [आ.] तब लोगों के अर्थ और काम में रत होकर संचरण करने पर समस्त धरती पर बन्दर और कुत्तों की जाति की भाँति वर्णसंकर जातियाँ पैदा हो जायेंगी। ४८० [उ.] भरतवंश में उत्पन्न परम भागवत, जिसने अश्वमेध यज्ञ किया, आचारवान, महानय-विशारद, राजकुल के लिए एकैक भूषण, [ऐसे परीक्षित के] जल चाहकर हमारे प्रान्त (आश्रम) में आने पर, भक्ति के साथ अर्थि (चाहकर) समादर कर भेजना योग्य (समुचित) होता है ! शाप देना [कहाँ का] तुम्हारा धर्म है रे ! । ४८१ [कं.] हे कृष्ण ! परमेश्वर ! हरि ! निरपराधी भूपति को बुद्धि की चंचलता के कारण, मेरे पुत्र ने शाप दे दिया। ऐसे बालक के किए पाप को हटा दो न। ४८२ [कं.] चुभोने, गाली देने, मारने पर भी भागवत जन (भक्त) सहन करते हैं, किन्तु बदला लेने को तैयार नहीं होते। पुत्र ! विभु तुम्हारा बुरा करना नहीं

कं. चॅलगरु कलगरु साधुलु,
मिळितमुलै परुल दलन मेलुं गीडुन्
नॅलकॉनिनन्नॅन, नात्मकु,
नॉलयपु सुख दुःख चयमु लुग्रमु लगुचुन् ॥ 483 (अ) ॥

व. अनि इट्लु शमीक महामुनींद्रुडु कॉडुकु सेसिन पापंबुनकु संतापंबु नॉंदुचुंडॆ ॥ 484 ॥

अध्यायमु—१९

व. अंत शमीक प्रेषितुंडगु शिष्युनि वलन ना मुनिकुमारकु शापंबु विनि या यभिमन्यु पुत्रुंडु काम क्रोधादि विषयासक्तुडगु तनकु तक्षक विषाग्नि विरक्ति बीजंबगु ननुचु गरिनगरंबुनकुं जनि येकांतंबुन ॥ 485 ॥

परीक्षिन्महाराजु विप्रशापंबु नॅरिंग प्रायोपविष्टुंडगुट

उ. एटिकि वेट वोयिति? मुनींद्रुडु गाढसमाधि नुंडगा
नेटिकि दद्भुजाग्रमुन नेसिति सर्पशवंबु दॅच्चि? ने
डेटिकि वाप साहसमु ली क्रिय जेसिति? दैवयोगमुन्
दाटग रादु वेगिरम तथ्यमु गीडु जनिचु घोरमै ॥ 486 ॥

चाहते! ४८३ [कं.] साधुजन [दूसरों के कार्य में] हस्तक्षेप नही करते, दूसरों से भला-बुरा दोनों के मिलकर होने पर भी, वे आत्मा के लिए कोई सुख-दुःख-चय नहीं होते! ४८३ (अ) [व.] कहकर इस प्रकार शमीक महामुनि पुत्र के किये पाप के लिए सन्ताप करता रहा। ४८४

अध्याय—१९

[व.] तब [शमीक-प्रेषित शिष्य के द्वारा] उस मुनिपुत्र के शाप को सुनकर अभिमन्युपुत्र [काम क्रोध, अदि विषयो में आसक्त] अपने लिए [तक्षक के विष की अग्नि] वैराग्य का बीज होगा, ऐसा जानकर हस्तिनापुर को चलकर, एकान्त में (विचार किया)। ४८५

महाराजा परीक्षित का विप्र-शाप को जानकर प्रायोपविष्ट होना

[उ.] क्यों शिकार करने गया? मुनीन्द्र के गाढ़-समाधि में स्थित रहते समय सर्पशव को लाकर उनके भुजाग्र पर डाला क्यों? आज क्यों मैंने पाप [प्रद]-साहस इस क्रिया (रीति) से किया? दैवयोग (नियति) को पार नही किया जा सकता। शीघ्र ही अवश्य भयंकर अहित होनेवाला है। ४८६ [उ.] साँप के विष की अग्निज्वालाओं से प्राण भले ही चले

उ. पामु विषाग्नि कीललनु प्राणमु लेगिन नेगु गाक यी
भूमियु राज्यमुन् सतुलु भोगमु बोयिन बोवु गाक सौ
दामिनि बोलु जीवनमु दथ्यमुगा वलपोसि यिक ने
नेमनि मारु दिट्टुदु ? मुनींद्रकुमारकु दुर्निवारकुन् ॥ 487 ॥

आ. राजननुचु वोथि राज्यगर्वंबुन,
वनमु कीरकु वारि वनमु सौच्चि
दंदशूक शवमु दंड्रिपै वैचिन,
बौलिय दिट्टकेल पोवु ? सुतुडु ॥ 488 ॥

कं. गोवुलकुन् ब्राह्मणुलकु, दैवतलकु नॅल्ल प्रौद्दु दॅपुन गीडुं
गाविंचु पाप मानस, मे विधमुन बुट्टकुंड ने वारितुन् ॥ 489 ॥

व. अनि वितर्किंचे ॥ 490 ॥

कं. दामोदर पदभक्ति, गामादुल गॅल्चिनाडु गावुन गरुणन्
भूमीशु डलुग डय्यॅनु, सामर्थ्यमु गलिगि दोष संगिन् शृंगिन् ॥ 491 ॥

व. अंत मुनिकुमारुंडु शपिंचिन वृत्तांतमंतयु निट्लु वितर्किंचि तक्षक व्याळ विषानल ज्वाला जालंबुनं दनकु सप्तम दिनंबुन मरणं बनि यॅरिंगि,

---

जायें, यह धरती, राज्य, सतीगण, भोग [आदि] भले ही चले जायें, सौदामिनी (चंचला) जैसे जीवन को तथ्य (शाश्वत सत्य) मानकर उस दुर्निवार मुनिकुमार का अब मैं कैसे प्रतिदूषण (प्रतिशाप) करूँ ? ४८७ [आ.] [अपने-आप को] राजा मानकर, राजगर्व से वन (जल) के लिए उनके वन में प्रवेश कर, दंदशूक (सर्प)-शव को पिता पर डालने पर, बेटा मृत हो जाने का क्यों दूषण (शाप) न करेगा ? ४८८ [कं.] गोगण, ब्राह्मण और देवताओं के प्रति नित्य ही साहस से बुरा करनेवाले पाप-मानस (पाप-भाव) को किस विधि से, उत्पन्न होने से रोकूँ ? ४८९ [व.] ऐसा तर्क-वितर्क किया, ४९० [कं.] दामोदर (विष्णु) की पदभक्ति से काम आदि को जीत लेनेवाला होने से ,करुणा कर, दोष-संगी शृंगी पर, समर्थ होते हुए भी, भूमीश क्रोधी नहीं हुआ। ४९१ [व.] तब मुनिकुमार के शाप के सारे वृत्तान्त का इस प्रकार विचार कर, तक्षक-व्याल (सर्प) के विष की अग्नि की ज्वालाओं के समूह से सातवें दिन अपनी मृत्यु को निश्चित जानकर, भूलोक, स्वर्गलोक के भोगों को हेय मानकर, राज्य का विसर्जन (त्याग) कर, निरशन (अनशन) की दीक्षा के आचरण का संकल्प कर। ४९२ [म.] तुलसी [दल] संयुत (सहित) दैत्यों को जीतनेवाले (विष्णु) के पदरज-समूह से बढ़कर महोज्ज्वल हो, दिक्पाल-संघ के सहित, जगत के सौभाग्य का संधायिनी होकर, कलि की समस्त दोषावली को दूर करनेवाली दिविषद् (स्वर्ग)-गंगा के प्रवाह के

भूलोक स्वर्गलोक भोगंबुलु हेयंबुलनि तलँचि, राज्यंबु विसर्जिंचि, निरशन दीक्षाकरणंबु संकल्पिंचि कौनि ॥ 492 ॥

म. तुलसी संयुत दैत्याजि त्पदरज स्स्तोमंबु कंटॆम् महो
ज्ज्वलमै दिक्पतिसंघ संयुत जग त्सौभाग्य संधायियै
कलिदोषावळि नॆल्ल बापु दिविषद्गंगा प्रवाहंबु लो
पलिकि बोयि मरिष्यमाणु डगुचुं बायोपवेशंबुनन् ॥ 493 ॥

कं. चित्तमु गोविंद पदा, यत्तमु गाविंचि मौनियै तनलोन नॆ-
त्तॆरमु लेक भूवर- सत्तमुडु वसिंचॆ मुक्त संगत्वमुनन् ॥ 494 ॥

व. इट्लु पांडव पौत्रुंडु मुकुंद चरणारविंद वंदनानंद कंदायमान मानसुंडै विष्णुपदी तीरंबुनं बायोपवेशंबुन नुंडुट विनि सकललोक पावन मूर्तुलु महानुभावुलु नगुचु दीर्थंबुनकु दीर्थत्वंबु लीसंग समर्थुलैन यत्रि, विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ, पराशर, (व्यास), भरद्वाज, परशुराम, देवल, गौतम, मैत्रेय, कण्व, कलशसंभव, नारद, पर्वतादुलैन ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि पुंगवुलु, कांडऋषुलैन यरुणादुलु मरियु नाना गोत्र संजातुलैन ऋषुलुनु शिष्य प्रशिष्य समेतुलै येतॆंचिन वारलकु दंड प्रणामंबुलु सेसि कूर्चुंड नियोगिंचि ॥ 495 ॥

कं. क्रम्मर नम्मुनि वरुलकु, नम्मनुजेंद्रुंडु म्रॊक्कि हर्षाश्रुतलुल्
ग्रम्मग मुकुलित करुडै, सम्मतमुग जॆप्पॆ नात्म संचारंबुन् ॥ 496 ॥

भीतर प्रवेश कर, मरिष्यमाण (म्रियमाण) होते हुए, प्रायोपविष्ट हुआ। ४९३ [कं.] चित्त को गोविन्द के चरणों में लगाकर, मौनी हो, अपने-आप में किसी प्रकार की व्याकुलता के विना भूवर-श्रेष्ठ मुक्त-संगी बनकर रहा। ४९४ [व.] इस प्रकार पाण्डवों के पोते के मुकुन्द के चरणारविंद की वन्दना के आनन्द मूल रूपी मन वाला होकर, विष्णुपदी (गंगा) के तट पर, प्रायोपविष्ट होते सुनकर, सकल लोकों में पवित्र मूर्ति वाले, महानुभाव, तीर्थों को तीर्थत्व प्रदान करने मे समर्थ अत्रि, विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ, पराशर, [व्यास], भरद्वाज, परशुराम, देवल, गौतम, मैत्रेय, कण्व, कलशसम्भव, नारद, पर्वत आदि ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि-पुंगव, काण्ड-ऋषि (वेद-विभागों को कांडों में विभाजित करनेवाले ऋषि) कहलानेवाले अरुण आदि तथा नाना गोत्रों में उत्पन्न ऋषिगण के [अपने शिष्य तथा प्रशिष्यों के साथ] आने पर उनको दण्डप्रणाम कर उपविष्ट कराकर, ४९५ [कं.] और फिर उन मुनिवरों को मनुजेन्द्र (राजा) ने प्रणाम कर, आँखों में आँसू भर आने पर, हाथ जोड़कर, अपनी आत्मा के विचार प्रकट किये। ४९६ [उ.] सहनशक्ति के अभाव में महासर्प को लगाकर, क्रोधी हो, तापसी के पीठ पर रखनेवाला दारुण

उ. ओपिकलेक चच्चिन महोरगमुं गॅनिवच्चि कोपिनै
तापसु मूपुपै निडिन दारुण चित्तुड मत्तुडन् महा
पापुड मीरु पापतृण पावकु लुत्तमु लय्यलार! ना
पापमु वायु मार्गमु गृपापरुलार! विधिंचि चॅप्परे! ।। 497 ।।

उ. भूसुरपाद रेणुवुलु पुण्युल जेयु नरेंद्रुलन् धरि
त्री-सुरुलार! मी चरण रेणु कणंबुलु मेनुसोक ना
चेसिनपाप मंतयु नशिंचे गृतार्थुडनैति नॅद्दि ने
जेसिन मुक्ति पद्धतिकि जॅच्चॅर बोवगवच्चु जॅप्परे! ।। 498 ।।

कं. भीकरतर संसार व्याकुलतन् विसिगि देहवर्जनगति ना
लोकिंचु नाकु दक्षक, काकोदर विषमु मुक्ति कारण मय्यॅन् ।। 499 ।।

कं. एपारु नहंकार, व्यापारमुनंदु मुनिगि वर्तिपंगा
नापालिटि हरि भूसुर, शाप व्याजमुन मुक्तसंगुनि जेसॅन् ।। 500 ।।

म. उरगाधीश विषानलंबुनकु मे नॉप्पितु शंकिप नी-
श्वर संकल्पमु नेडु मानदु भविष्य ज्जन्म जन्मंबुलन्
हरि चिंता रतियुन् हरि प्रणुति भाषाकर्ण नासक्तियुन्
हरि पादांबुज सेवयुन् गलुग मी रर्थिन् बसादिंपरे ।। 501 ।।

कं. चूडुडु ना कळ्याणमु, पाडुडु गोविंदु मीदि पाटलु दयतो
वाडुडु हरिभक्तुल कथ, ले डहमुललोन मुक्ति केगग निच्चटन् ।। 502 ।।

(कठिन) चित्तवाला, मत्त (घमंडी) तथा महापापी हूँ। आप लोग पाप रूपी तृण (घास) के लिए पावक (आग) हैं, उन्नत हैं! आर्य! कृपामती! मेरे पाप को मिटाने के उपाय का विधान करके (निर्णय कर के) दीजिए ४९७ [उ.] धरित्रीसुर! भूसुरों के पादरेणु राजाओं को पुण्यवान करते हैं। आपके चरण-रेणु-कणके [मेरे] शरीर-स्पर्श करते ही मेरा किया समस्त पाप नष्ट हो गया, कृतार्थ हुआ। कौन सा कर्म करने से मुक्ति-पद्धति (मार्ग) को शीघ्र जा सकता हूँ, उसे बता दीजिए न। ४९८ [कं.] भीकर-तर संसार की व्याकुलता से ऊबकर, देह को त्यागने की रीति को विचारनेवाले मुझे तक्षक-काकोदर का विष मुक्ति का कारण बन गया। ४९९ [कं.] उत्कट अहंकार के व्यापार में सदा डूबकर विहार करते रहने पर हरि ने भूसुर के शाप के मिस मुझे मुक्त-संग बना दिया। ५०० [म.] उरगाधीश (सर्पराज) के विष की अग्नि को शरीर सौंप दूंगा। इसमें कोई सन्देह नहीं करूँगा। ईश्वर का संकल्प आज न होकर नहीं रहेगा। [किन्तु] भविष्य के जन्म-जन्मान्तरों में भी हरि के चिन्तन की रीति, हरि के प्रणति (स्तोत्र), संभाषण सुनने की आसक्ति हरि के चरणांबुज की सेवा प्राप्त हो जाय, ऐसा मुझे चाहकर [उपाय] प्रसादित करें। ५०१ [कं.] मेरा कल्याण (शुभ)

कं. अम्मा ! निनु जूचिन नरु,
बॊम्मायनि मुक्तिकडकु बुत्त वट कृपन्
लॆम्मा नी रूपमुतो,
रम्मा ना कॆदुरु गंग ! रम्यतरंगा ! ॥ 503 ॥

व. अनि तनकुमीद नय्यॆडि जन्मांतरंबुलंदैन सर्वजंतु सौजन्यंबु संधिल्लुं गाक यनि, गंगा तरंगिणी दक्षिण कूलंबुनन् बूर्वाग्र दर्भासनंबुन नुत्तराभिमुखुंडै युपवेशिंचि, जनमेजयु रप्पिंचि राज्यभारंबु समर्पिंचि, यत्नंबु संसार बंधंबुनकु दप्पिंचि चित्तंबु हरिकि नॊप्पिंचि, परमभागवतुंडैन पांडवपौत्रुंडु प्रायोपविष्टुंडैयुन्न समयंबुन ॥ 504 ॥

कं. ऒत्तिलि पॊगडुचु सुरलु वि,
यत्तलमुन नुंडि मॆच्चि यलरुल वानल्
मॊत्तमुलै कुरिसिरि नृप,
सत्तमुपै भूरि भेरि शब्दंबुलतोन् ॥ 505 ॥

व. आ समयंबुन सभासीनुलैन ऋषु लिट्लनिरि ॥ 506 ॥

म. क्षितिनाथोत्तम ! नी चरित्रमु महाचित्रंबु मी तातलु लु-
ग्र तपोधनयुलु विष्णुपार्श्व पदविन् गामिंचि राजन्य शो-

हो, ऐसा देखिए (कीजिए)। कृपा कर गोविन्द सम्बन्धी गीत गाइए और हरिभक्तों की कथाएँ कहिए, ताकि सात दिनों में मैं यहाँ से मुक्ति के लिए प्रस्थान करूँ! ५०२ [क.] माँ ! गंगा ! रम्य तरंग वाली ! सुना है, तुम्हारे दर्शन करनेवालों पर दया करके 'जाओ' कहकर मुक्ति के यहाँ भेज देती हो। अपना [निज] रूप लेकर मेरे सम्मुख आ जाओ ! ५०३ [व.] और यह कहकर कि आगे के (भावी) जन्मान्तरों में भी [मुझमें] सर्वजन्तु (प्राणियों) के प्रति सौजन्यभाव बना रहे। (और) गंगा नदी के दक्षिण कूल (तट) पर, पूर्वाग्र वाला (जिसके कोने पूर्व की तरफ़ हों), दर्भासन बिछाकर, उत्तर की ओर अभिमुख हो, उपविष्ट हो (बैठकर) जनमेजय को बुलाकर (उसे) राज्य-भार सौंपकर, संसार में बँधे, रहने के प्रयत्न को छोड़कर, चित्त को हरि पर स्थिर रख, परम भागवत पाण्डव-पौत्र प्रायोपविष्ट हुआ, उस समय में, ५०४ [कं.] बड़ी प्रशंसा करते हुए, देवताओं ने वियत्तल (आकाश) से प्रशंसा करते हुए, नृपसत्तम (राजा) पर भूरि-भेरी की ध्वनियों के साथ लगातार पुष्प-वर्षा की। ५०५ [व.] उस समय में सभा में आसीन (बैठे हुए) ऋषियों ने इस प्रकार कहा। ५०६ [म.] क्षितिनाथ-उत्तम (श्रेष्ठ राजा) ! तुम्हारा चरित्र अतिविचित्र है। तुम्हारे दादा उग्रतपोधनी हैं। विष्णु के पार्श्व में स्थित रहने के पद की कामना कर, अनेक राजाओं से

भित कोटीर मणिप्रभान्वित महापीठंबु वर्जिंचि उ-
न्नतुलै नीवु महोन्नतुंडवु गदा! नारायण ध्यायिवै ॥ 507 ॥

म. वसुधाधीश्वर! नीवु मर्त्यतनुवुल् वर्जिंचि निश्शोकमै
व्यसन च्छेदकमै रजोरहितमै वर्तिंचु लोकंबु स-
र्वसमत्वंबुन जेरु नंतकु भवद्वाक्यंबुलन् विंचु ने
देसकुं बोवक चूचुचुंडेदमु नी दिव्य प्रभावंबुलन् ॥ 508 ॥

व. अनि इट्लु पक्षपात शून्यंबुलुनु महनीय माधुर्य गांभीर्य सौजन्य धुर्यंबुलुनु नैन भाषणंबु लाडुचु मूडुलोकंबुलकु नव्वलिदैन सत्यलोकंबुनंदु मूर्ति मंतंबुले नेगडुचुन्न निगमंबुल चंदंबुनन् देजरिल्लुचुन्न ऋषुलं जूचि भूवरुंडु नारायण कथा श्रवण कुतूहलुंडै नमस्करिंचि यिट्लनियें ॥509॥

कं. एडु दिनंबुल मुक्ति, गूडग ने रीति वच्चु गुरु संसार
क्रीडन मे क्रिय नेडतेंगु, जूडुडु मा तंड्र लार! श्रुतिवचनमुलन् ॥ 510 ॥

शा. प्राप्तानंदुलु ब्रह्मबोधन कळापारीणु लात्म प्रभा
लुप्ताज्ञानुलु मीर लार्युलु दयाळुत्वाभिरामुल् मनो
गुप्तंबुल् सकलार्थ जालमुलु मीकुं गानवच्चुं गदा!
सप्ताहंबुल मुक्ति कोंगेडु गतिन् जर्चिंचि भाषिंपरे ॥ 511 ॥

सुशोभित कोटिर (किरीट)-मणियों की प्रभा से विलसित महापीठ (सिंहासन) को त्यागकर, उन्नत हुए। तुम नारायण के ध्यान में महोन्नत हुए हो। ५०७ [म.] वसुधाधीश्वर! मर्त्य-तनु (-शरीरों) को छोड़कर, शोकरहित, व्यसन का छेदक, रजो [गुण] रहित होकर प्रवर्तित होनेवाले लोक को सर्व समभाव से तुम्हारे प्राप्त होने तक तुम्हारे वचनों को सुनते हुए, कहीं अन्यत्र न जाते हुए, तुम्हारे दिव्य प्रभाव को देखते रहेंगे। ५०८ (व.) कहकर, ऐसे पक्षपात शून्य (रहित), महनीय माधुर्य, गाम्भीर्य, सौजन्यपूर्ण वचन कहते हुए, तीनों लोकों के उस पार के सत्यलोक में मूर्तिमान हो, प्रसिद्ध वेदों के समान तेजोमान ऋषियों को देखकर भूवर ने नारायण के कथा-श्रवण मे कौतूहल-भाव रखकर, नमस्कार कर, इस प्रकार कहा। ५०९ [कं.] मेरे पिताओ (गुरजनो)! सात दिनों में किस विधि से मुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं, (और) गुरु संसार की क्रीड़ा को किस रीति से तोड़ सकते है? इसे श्रुतिवचन सम्मत रूप से वताइए। ५१० [शा.] [आप लोग] आनन्द को प्राप्त कर चुके हैं। ब्रह्म-बोधन की कला में पारंगत हैं, आत्म-प्रभा से अज्ञान को लुप्त कर चुके हैं, आप आर्य (श्रेष्ठ) हैं, दयालुता से अभिराम है। मन मे गुप्त रूप में स्थित सकल अर्थ-समूह आपको दिखाई पड़ते है न! सात दिनों में मुक्ति को प्राप्त करने की विधि को चर्चित कर कहिए न। ५११ [व.] इस प्रकार उत्तरा के

व. अनि युत्तरानंदनुंडाडिन वचनंबुलकु मुनुलंदरु प्रत्युत्तरंबु विमर्शिचुनॆड दैवयोगंबुन ॥ 512 ॥

शुकमहर्षि परीक्षिम्महाराजु नॊद्द कॆतॆंचुट

सी. प्रति निमेषमु परब्रह्मंबु वीक्षिचि मदि जॊविक वॆलुपल मरचुवाडु
कमलंबु मीदि भृंगमुल कंवडि मोमुपै नॆरसिन केशपटलि वाडु
गिरिव्रासि माय नंगीकरिचनि भंगि वसनंबु गट्टक वच्चुवाडु
संगि गाडनि वॆंट जाटु भूतमुलु ना बालुर हास शब्दमुलवाडु

ते. महित पद जानु जंघोरु मध्य हस्त,
बाहु वक्षो गळानन फालकर्ण
नासिका गंडमस्तक नयन युगळु,
डॆन यवधूतमूर्ति वाडरुगुदॆंचॆ ॥ 513 ॥

उ. ईरनि लोकुलं गिनिसि यॆग्गुलु वल्कनि वाडु गोरिकल्
गोरनिवाडु गूटुवल गूडनिवाडु वृथाप्रपंचमुन्
जेरनिवाडु दैवगति जेरिन लाभमु सूचि तुष्टुडै
नेरनि वानि चंदमुन नेर्पुलु सूपॆडुवाडु वॆडियुन् ॥ 514 ॥

नन्दन (परीक्षित) के कहे वचनों के प्रति-उत्तर देने के लिए (सब मुनि) विचार करते रहे। उस समय दैवयोग से। ५१२

शुक महर्षि का राजा परीक्षित के यहाँ आगमन

[सी.] प्रति निमेष (पल) परब्रह्म के दर्शन कर, मन ही मन परवश हो, बाहर की दुनिया को भूलनेवाला, कमलों पर मँड़रानेवाले भ्रमरगण की भाँति मुख पर बिखरे हुए केश पटलि (जाल) वाला, रेखा खींचकर माया को अस्वीकृत करने की रीति (शरीर-बंधन तक ही माया के अस्तित्व को मानकर), बिना वस्त्र पहने आनेवाला, यह संगी नहीं (मुक्तसंगी) है, ऐसा कहते हुए बच्चों-सहित सब प्राणियों के हँसी-मजाक़ करते हुए आने पर भी ध्यान न देनेवाला, [ते.] महिमा से युक्त चरण, घुटने, जांघ, ऊरु, मध्य (कमर), हाथ, बाहु (भुजाएँ), वक्ष, गला, आनन (मुख), फाल (माथा), कर्ण, नासिका, गाल, मस्तक, नयन-युगल वाला, अवधूत मूर्ति वाला आ पहुँचा। ५१३ [उ.] न देनेवाले लोगों पर क्रोधित होकर भला-बुरा न कहनेवाला, कोई इच्छाएँ न रखनेवाला, भीड़ के साथ न रहनेवाला, वृथा (निरर्थक)-संसार की संगति न करनेवाला, दैवयोग से प्राप्त लाभ को देखकर सन्तुष्ट हो, अनजाने की भाँति चतुराई (अभिनय) बरतनेवाला, और भी, ५१४ [आ.] उस महात्मा के सोलह साल की

आ. अम्महात्मु षोडशाब्द वयो रूप, गमन गुण विलास कौशलमुलु
मुक्तिकांत सूचि मोहि यगु नन, नितर कांतलॅल्ल नेमि चॅप्प ॥ 515 ॥

आ. वॅऱ्ऱितनमु मानि विज्ञानमूर्तियै, ब्रह्मभावमुननु बर्यटिंप
वॅऱ्ऱियनुचु शुकुनि वॅंट नेतॅंतुरु, वॅलदु लर्भकुलुनु वॅरॅ लगुचु ॥ 516 ॥

व. इट्लु व्यासनंदनुंडैन शुकुंडरुगुदॅंचिन नंदलि मुनींद्रु ला महानुभावुनि प्रभावंबुतॅरंगॅरुंगुदुरु गावुन निजासनंबुलु विडिचि प्रत्युत्थानंबु सेसिरि। पांडव पौत्रुंडु ना योगिजन-शिखामणिकि नतिथिसत्कारंबु गाविंचि दंड प्रणामंबु सेसि पूजिंचॅ। मऱ्ऱियु ग्रह नक्षत्र तारक मध्यंबुनं देजरिल्लु राकासुधाकरुंडुनुं बोलॅ ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि मध्यंबुनं गूचुंडि विराजमानुंडैन शुकयोगींद्रुं गनुंगॉनि ॥ 517 ॥

उ. फालमु नेलमोपि भयभक्तुलतोड नमस्करिंचि भू-
पालकुलोत्तमुंडु करपद्ममुलन् मुकुळिंचि नेडु ना
पालिटि भाग्यमॅट्टिदियो! पावनमूर्तिवि पुण्यकीर्ति वी
वेळकु नीवु वच्चिति विवेक विभूषण! दिव्यभाषणा! ॥ 518 ॥

म. अवधूतोत्तम! मंटि नेडु निनु डायं गंटि नी वंटि वि-
प्रवरुन् बेकॉनु नंतटन् भसितमौ पापंबु ना बोटिकिन्

आयु, रूप, गमन, गुण-विलास तथा कौशल को देख मुक्तिकान्ता (स्वयं) ही जब मोहित हो जाए तो अन्य वनिताओं की क्या कहूँ? ५१५ [आ.] पागलपन छोड़कर विज्ञान की मूर्ति बनकर (आत्मज्ञानी हो), ब्रह्मभाव (परब्रह्मतत्त्व) में लीन हो, विचरण करने पर, शुक को पागल कहते हुए, रमणियाँ तथा अर्भक (बालक) पागल (आकृष्ट) हो पीछे-पीछे चलते हैं। ५१६ [व.] इस प्रकार व्यास-नन्दन (-पुत्र) शुक [योगी] के आने पर, वहाँ के मुनीन्द्रों ने उस महानुभाव के प्रभाव की रीति (महत्त्व) को जाननेवाले होने के कारण अपने-अपने आसन छोड़कर प्रति-उत्थान किया (स्वागत किया)। पाण्डव-पौत्र ने योगिजन-शिखामणि (श्रेष्ठ) का अतिथि-सत्कार कर, दण्डप्रणाम कर, पूजा की। और फिर ग्रह, नक्षत्र, तारिकाओं के मध्य तेजोरूप में विराजित होनेवाले राका-सुधाकर (चन्द्र) की भाँति ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि के मध्य उपविष्ट शुक योगी को देखकर, ५१७ [उ.] धरती पर माथा टेककर भय तथा भक्ति के साथ नमस्कार कर, भूपाल-कुलोत्तम (राजा) ने कर-कमल मुकुलित (जोड़) कर कहा कि हे विवेक-विभूषण! दिव्यभाषण वाले! तुम पावनमूर्ति हो। पुण्य कीर्ति वाले हो। पता नहीं, आज मेरा भाग्य कैसा है जो इस समय यहाँ पधारे हो! ५१८ [म.] अवधूतों में उत्तम! [तुम्हें पाकर मैं] जी गया, आज तुम्हें निकट से देख पाया। तुम जैसे

भवदालोकन भाषणार्चन पद प्रक्षाळन स्पर्शना
दि विधानंबुल मुक्ति चेपट्टुट चिंतिपंग नाश्चर्यमे ? ॥ 519 ॥

कं. हरिचेतनु दनुजेंद्रुलु, धर मग्गॅडु भंगि नी पदस्पर्शमुचे
गुरु पातक संघंबुलु, पॅरिमालुगदय्य योगिभूषण ! विंटे ॥ 520 ॥

म. ऑलमिन् मेनमरंदियै सचिवुडै ये येटि मा तातलन्
वलिमिन् गाचि समुद्रमुद्रित धरं बट्टंबु गट्टिच्चॅ न-
ग्यलघुं डीशुडु चक्रि रक्षकुडु ना कन्युल् विपद्रक्षकुल्
गलरे ? वेडॅद भक्ति ना गुणनिधि गारुण्य वारान्निधिन् 521 ॥

सी. अव्यक्तमार्गुडवैन नी दर्शन माऱडि वोनेर दभिमतार्थ
सिद्धि गाविंचुट सिद्धंबु नेडॅल्लि देहंबु वर्जिचु देहधारि
केमि चिंतिंचिन नेमि जपिंचिन नेमि गाविंचिन नेमि विनिन
नेमि सेविंचिन नॅन्नडु संसार पद्धति वासिन पदवि गलुमु

ते. नुंडुमनराडु गुरुडवु योगविभुड,
वरय मॉदवुनु पिदिकिन यंततडवु
गानि यॅक दॅसनुंडवु करुण तोड,
जॅप्पवे तंड्रि मुक्तिकि जेरु तॅरुवु ॥ 522 ॥

विप्रवर का नाम लेते ही पाप भस्म हो जाता है। भवत् (तुम्हारे) दर्शन, भाषण, अर्चना, पद-प्रक्षालन (चरण धोना), स्पर्श आदि विधि-विधान से मुझ जैसे व्यक्ति को मुक्ति की प्राप्ति होना सोचने पर कहीं आश्चर्य की बात होगी ? (नहीं है)। ५१९ [कं.] योगिभूषण ! सुना है कि हरि के हाथों में जिस प्रकार दनुजेन्द्र मिट्टी में मिल जाते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे चरण स्पर्श से गुरु (बड़े) पाप-समूह मिट जाते हैं। ५२० [म.] अतिशय रूप से भतीजा हो, सचिव हो, जिस श्रेष्ठ व्यक्ति ने, हमारे दादाओं को बल से रक्षा कर, समुद्र मुद्रित धराराज्य का पट्टाभिषिक्त किया, ऐसे अलघु (महान्) ईश, चक्री, रक्षक को छोड़ विपदाओं से मेरी रक्षा करनेवाले अन्य कौन है। [अस्तु] भक्ति के साथ उस गुणनिधि, करुणा वारान्निधि (सागर) की प्रार्थना करूँगा। ५२१ [सी.] अव्यक्त मार्ग वाले तुम्हारे दर्शन का व्यर्थ न जाकर, [मेरे] अभिमत (इष्ट) की सिद्धि करना तो निश्चित है। आज कल मे शरीर को छोड़नेवाले देहधारी को कौन-सा चिन्तन करने से, कौन-सा जप करने से, क्या करने से, क्या सुनने से, किसकी सेवा करने से संसार की पद्धति से छूटे [मुक्ति] पद की प्राप्ति होगी। [बताओ।] [ते.] तुम गुरु एवं योगिराज हो, ठहर जाने के लिए तो नहीं कह सकता, क्योंकि सुना है कि गोदोहन-समय पर्यन्त भी तुम एक जगह नहीं ठहरते। तात ! कृपा कर मुक्ति पाने की रीति बताओ न। ५२२

व. अनि परीक्षिन्नरेंद्रुडु बादरायणि नडिगें ननि चेंप्पि ॥ 523 ॥

कं. राजीवपत्र लोचन ! राजेंद्र किरीटघटित रत्नमरीचि
भ्राजित पादांभोरुह ! भूजन मंदार ! नित्य पुण्यविचारा ! ॥ 524 ॥

मा. अनुपम गुणहारा ! हान्यमानारिवीरा !
जन विनुत विहारा ! जानकी चित्त चोरा !
दनुज घनसमीरा ! दानव श्री विदारा !
घन कलुष कठोरा ! कंधि गर्वापहारा ! ॥ 525 ॥

ग. इति श्रीपरमेश्वर करुणाकलित कविता विचित्र, केसनमंत्रि पुत्र, सहज पांडित्य, पोतनामात्य प्रणीतंबैन, श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबुनंदु, नैमिशारण्य वर्णनंबुनु, शौनकादुल प्रश्नंबुनु, सूतुंडु नारायणावतार सूचनंबु सेयुटयु, व्यास चिंतयु, नारदागमनंबुनु, नारदुनि पूर्वकल्प वृत्तांतंबुनु पुत्रशोकातुरयैन द्रुपद राजनंदन कर्जुनुं डश्वत्थामनु देच्चि यॊप्पगिंचि विडिपिंचुटयु, भीष्मनिर्याणंबुनु, धर्मनंदनु राज्याभिषेकंबुनु, गोविंदुनि द्वारकागमनंबुनु, विराट कन्यका गर्भ पीड्यमानुंडैन यर्भकु नश्वत्थाम बाणानलंबु वलनं वापि विष्णुंडु रक्षिंचुटयु, परीक्षिज्जन्मंबुनु

[व.] इस प्रकार राजा परीक्षित ने बादरायण (शुकयोगी) से पूछा। यह कहकर। ५२३ [कं.] राजीवपत्न लोचन वाले (कमलदल लोचन वाले)! राजेन्द्रों के किरीटों में विजड़ित रत्नों की मरीचियों (कान्तियों) की लहरियों से विलसित चरण-कमल वाले! भू-जन के लिए मन्दार-स्वरूप! नित्य (सदा) पुण्य विचार करनेवाले! ५२४ [मा.] अनुपम गुणों के हार वाले! हन्यमान (मार डाले जानेवाले) अरिवीर वाले! जन-विनुत-विहार (आचरण) वाले! जानकी के चित्त की चोरी करने वाले! दनुज (राक्षस) रूपी मेघों के लिए समीर! दानव की श्रीसम्पदाओं को विदारित करनेवाले! महान् कलमष के लिए कुठार-स्वरूप! कंधि (समुद्र) के गर्व को हटानेवाले! [श्रीरामचन्द्र! नमन स्वीकार हो।] ५२५ [ग.] यह श्री परमेश्वर की कृपा से विलसित, कविता से विचित्र केसन मंत्री का पुत्र, सहजपण्डित, पोतनामात्य से प्रणीत (विरचित) श्रीमहाभागवत नामक महापुराण के नैमिशारण्य-वर्णन और शौनकादि का प्रश्न और सूत के नारायण के अवतार की सूचना देना, और व्यास की चिन्ता और नारद का आगमन और नारद के पूर्वकल्प का वृत्तान्त-(कथा); पुत्र-शोकातुरा द्रुपदराजनन्दना की तृप्ति के लिए अर्जुन के अश्वत्थामा को पकड़ लाकर सौंपना और छुड़ाना और भीष्म का निर्याण और धर्मनन्दन का राज्याभिषिक्त होना और गोविन्द का द्वारका-गमन, विराट की कन्या के गर्भ में पीड़ित होनेवाले अर्भक (शिशु) को अश्वत्थामा

गांधारी धृतराष्ट्र विदुर निर्गमंबुनु, नारदुंडु धर्मजुनिकि गालसूचनंबु सेयुटयु, कृष्णावतार विसर्जनंबु विनि पांडवुलु महापथंबुनं जनुटयु, दिग्विजयंबु सेयुचु नभिमन्यु पुत्रुंडु शूद्रराज लक्षणुंडगु कलि गर्वंबु सर्वंबु मापि गोवृषाकारंबुल नुन्न धरणी धर्मदेवतल नुद्धरिंचुटयु, श्रृंगिशाप भीतुंडै, युत्तरानंदनुंडु गंगातीरंबुनं ब्रायोपवेशंबुन नुंडि शुक दर्शनंबु सेसि मोक्षोपायं बडुगुटयु, ननु कथलुगल प्रथम स्कंधमु संपूर्णमु ।। 526 ।।

के बाणों की अग्नि को दूर कर विष्णु का रक्षा करना और परीक्षित का जन्म, गान्धारी-धृतराष्ट्र-विदुर का निर्गमन और नारद के धर्मराज को काल की सूचना देना, कृष्णावतार के विसर्जन को सुनकर पाण्डवों का महाप्रस्थान करना; और दिग्विजय करते हुए अभिमन्युपुत्र के शूद्रराज कलि के समस्त गर्व को मिटाकर, गोवृषाकार में स्थित धरती तथा धर्मदेवताओं का उद्धार करना, और श्रृंगी के शाप से भयभीत हो, उत्तरानन्दन के गंगा तट पर प्रायोपविष्ट हो, शुक के दर्शन कर, मोक्ष का उपाय पूछ लेना, आदि कथाओं से युक्त प्रथम स्कन्ध सम्पूर्ण है । ५२६

ॐ

(द्वितीय स्कन्धमु)

कं. श्रीमद्भक्त चकोरक, सोम ! विवेकाभिराम ! सुरविनुत गुण-
स्तोम ! निरलंकृतासुर, रामा सीमंतसीम ! राघव रामा ! ॥ 1 ॥

अध्यायमु—१

व. महनीय गुण गरिष्ठुलगु नम्मुनि श्रेष्ठुलकु निखिल पुराणव्याख्यान वैखरी समेतुंडैन सूतुं डिट्लनियॆ। अट्लु परीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुं डिट्लनियॆ ॥ 2 ॥

शुकुंडु परीक्षितुनकु मुक्ति मार्गंबु दॆलुपुट

सी. क्षितिपति ! नी प्रश्न सिद्धंबु मंचिदि यात्मवेत्तलु मॆत्तु रखिलशुभव
माकर्णनीयंबु लयुतसंख्यलु गल वंडु मुख्यंबिदि यखिल वरमु

(द्वितीय स्कन्ध)

[कं.] हे भक्त रूपी चकोरकों के लिए चन्द्र ! विवेक से अभिराम ! सुरों से विनुत (संस्तुत) गुण-स्तोम (समूह) वाले ! असुर-रामाओं (राक्षस-स्त्रियों) की [सीमन्त रेखाओं को] निरलंकृत कर देनेवाले (राक्षसों का वध कर, उनकी सतियों के सुहाग मिटा देनेवाले) ! हे राघव राम ! (तुम्हें नमन) । १

अध्याय—१

[व.] महनीय गुणों से गरिष्ठ (श्रेष्ठ) उन मुनिश्रेष्ठों से निखिल (सकल) पुराणों के व्याख्यान की वैखरी (रीति) से युक्त सूत ने यों कहा । इस प्रकार परीक्षित-नरेन्द्र से शुकयोगीन्द्र ने ऐसा कहा । २

शुक का परीक्षित को मुक्ति-मार्ग विदित करना

[सी.] क्षितिपति (राजा) ! तुम्हारा प्रश्न श्रेष्ठ है । आत्मविद् पुरुष (इसे सुनकर) प्रसन्न होंगे । [यह] सकल शुभदायक है । आकर्णनीय (सुनने योग्य) [वचन] दस हज़ारों की संख्या में हैं । उनमें यह प्रधान

गृहमुललोपल गृहमेधुलगु नरुलात्मतत्त्वमु लेशमैन नॆऱुग
रंगनारतुल निद्रासक्ति जनु रात्रि, पोव गुटुंबार्थबुद्धि नहमु

आ. पशु कलत्र पुत्र बांधव देहादि, संघमॆल्ल वमकु सत्यमनुचु
गापुरमुलु सेसि कडपट जत्तुरु, कनियु गान रंत्यकालसरणि ॥ 3 ॥

कं. कावुन सर्वात्मकुडु म, हाविभुडु विष्णु डीशु डाकर्णिपन्।
सेविपनु वर्णिपनु, भाविपनु भाव्यु डभव भाजिकि नधिपा! ॥ 4 ॥

आ. जनुलकॆल्ल शुभमु सांख्ययोगमु दानि, वलन धर्मनिष्ठवलन नॆन
नंत्यकालमंदु हरिचिंतसेयुट, पुट्टुवुनकु फलमु भूवरेंद्र! ॥ 5 ॥

ते. अरसि निर्गुण ब्रह्मंबु नाश्रयिंचि,
विधि निषेधमु लॊल्लनि विमलमतुलु
सेयुचुंदुरु हरिगुण चिंतनमुलु,
मानसंबुल नॆप्पुडु मानवेंद्र ॥ 6 ॥

सी. द्वैपायनुंडु मा तंड्रि द्वापरवेळ ब्रह्मसम्मितमैन भागवत
पठनंबु सेयिंचॆ ब्रह्म-तत्परुडनै युत्तमश्लोक लीलोत्सवमुन
नाकृष्ट चित्तुंडनै पठिंचिति नीवु हरिपाद भक्तुंडवगुट जेसि
यॆरिगिंतु विनवय्य! यी भागवतमुन विष्णुसेवाबुद्धि विस्तरिल्लु

है, यह अधिकतर (श्रेष्ठ) है। [अपने-अपने] घरों में गृहमेधी (गृहस्थ) मनुष्य आत्मतत्त्व को लेश (किंचित्) भी न जानते है, अंगना-रति (स्त्रीसुख) तथा निद्रा की आसक्ति में रात और परिवार के लिए सोचने में दिन बीतता है। [आ.] पशु, कलत्र (पत्नी), पुत्र, बांधव, देह आदि समूहों को अपने लिए सत्य मानकर, गृहस्थी मे मग्न हो अन्त में मर जाते हैं। अन्त्यकाल की सरणि (विधान) को देखकर (जानकर) भी अनदेखा कर जाते हैं। ३ [कं.] इसलिए हे अधिप (राजा)! अभव-भाजी (जन्म-राहित्य की सिद्धि की इच्छा करनेवालों) के लिए [वह] सर्वात्मा, महाविभु, विष्णु, ईश, श्रवण, सेवा, वर्णन तथा भावना (ध्यान) करने योग्य है। ४ [आ.] हे भूवरेन्द्र! समस्त जन के लिए सांख्ययोग शुभकर है। उसके द्वारा अथवा धर्मनिष्ठा के कारण ही सही अन्त्य काल मे हरि की चिन्ता (चिन्तन) करना जन्म लेने का फल है। ५ [ते.] हे मानवेन्द्र (राजा)! सोच-विचार कर निर्गुण-ब्रह्म के आश्रित होकर, विधि-निषेध को न चाहनेवाले, विमल मति वाले [अपने] मन में सदा हरिगुणों का चिन्तन करते रहते हैं। ६ [सी.] मेरे पिता द्वैपायन (व्यास) ने द्वापर की वेला मे, ब्रह्म-सम्मित (-उपदिष्ट) भागवत का पठन करवाया। [मैंने] ब्रह्म-तत्पर होकर, उत्तम श्लोक वाले (श्रेष्ठ गुणों से विलसित होनेवाले) की लीला के उत्सव से आकर्षित-चित्त वाला होकर पठन (अध्ययन) किया। तुम्हारे हरिचरण के भक्त होने के कारण विदित करूँगा। सुनो! इस भागवत से विष्णु-सेवा

आ. मोक्षकामुनकु मोक्षंबु सिद्धिंचु, भवभयंबु लॆल्ल बासिपोवु
योगि संघमुनकु नुत्तम व्रतमुलु, वासुदेव नामवर्णनमुलु ॥ 7 ॥

त. हरि नॆऱुंगक यिंटिलो बहुहायनंबुलु मत्तुडै
पॉरलुचुंडॆडि वॆर्रि मुक्तिकि बोवनेर्चुने ? वाडु सं-
सरणमुं बॆडबाय डॆन्नडु सत्य मा हरिनाम सं-
स्मरण मोक्क मुहूर्तमात्रमु सालु मुक्तिदमौ नृपा ! ॥ 8 ॥

सी. कौरवेश्वर ! तॊल्लि खट्वांगुडनु विभुंडिल नेडु दीवुल नेलुचुंडि
शक्रादि दिविजुलु संग्रामभूमुल नुग्रदानवुलकु नोडि वच्चि
तमकु दो डडिगिन धरनुंडि दिविकेगि दानवविभुल नंदर वधिंप
वरमित्तु मनुचु देवतलु संभाषिंप जीवितकालंबु चॆप्पु डिदिय

आ. वरमु नाकु नॊंडु वरमॆल्ल ननवुडु, नायु वॊक मुहूर्त मंततडवु
गल दटंचु बलुक गगनयानमुन न, म्मानवेश्वरुंडु महिकि वच्चि ॥ 9 ॥

कं. गिरुलं बोलॆडि करुलनु हरुलं दन प्राणदयितलै मनियॆडु सुं-
दरुलनु हित वरुलनु बुध, वरुलनु वर्जिंचि गाढ वैराग्यमुनन् ॥ 10 ॥

कं. गोविंद नाम कीर्तन गाविंचि भयंबु दक्कि खट्वांग धरि-
त्री-विभुडु सुरगोनियॆनु, गैवल्यमु दॊल्लि रॆंडु गडियल लोनन् ॥ 11 ॥

की बुद्धि का विस्तार होगा, [आ.] मोक्षकामी को मोक्ष की सिद्धि होगी, सभी भव-भय (सांसारिक ताप) मिट जायेंगे। वासुदेव के नाम-वर्णन (गुणगान) योगि-संघ (-गण) के लिए श्रेष्ठ व्रत है। ७ [त.] हे नृप (राजा) ! हरि को जाने बिना, घर में अनेक वर्ष तक मत्त हो, लोटने वाला पागल कहीं मुक्ति को प्राप्त कर सकता है ? वह सृष्टिक्रम (सांसारिक बंधनों) से कभी मुक्त नहीं हो पाता। सत्य यह है कि हरिनाम का, एक क्षण मात्र भी, संस्मरण करना मोक्षदायक है। ८ [सी.] कौरवेश्वर ! पूर्व में खट्वांग नामक राजा, इस धरती के सात द्वीपों पर राज्य करते समय, इन्द्र आदि दिविजों के संग्राम-भूमियों में उग्र राक्षसों से हारकर, आकर सहायता चाहने पर, धरा से स्वर्ग को जाकर, सभी राक्षस राजाओं का वध करने पर, देवताओं ने संभाषण किया कि वर देंगे। तब [मेरे] जीवन काल (आयु) को विदित कीजिए। [आ.] [राजा के] इसके अतिरिक्त अन्य वर न चाहने पर (जीवनकाल) एक घड़ी (४८ मिनट) भर है, ऐसा उनके कहने पर, गगनयान से वह मानवेश्वर मही (धरती) पर (उतर) आ गया। ९ [कं.] गिरि-समान हाथियों को, हरियों-(अश्वों) को, प्राणवल्लभा हो जीवन व्यतीत करनेवाली सुन्दरियों को, हितवरों को, बुधवरों को छोड़कर, गाढ-वैराग्य के साथ, १० [कं.] गोविन्द नाम का कीर्तन कर, भय से छूटकर, धरित्रीविभु (राजा) खट्वांग ने

व. विनुमु नीकु नेडु दिवसंबुलकुं गानि जीवितांतंबु गादु। तावत्कालंबुनकुं बारलौकिक साधन भूतंबगु परम कल्याणंबु संपादिपवच्चु। अंत्यकालंबु डग्गरिन वॆंगडिलक देहि देह पुत्र कळत्रादि संदोह जालंबु वलनि मोहसालंबु निष्काम करवालंबुन निर्मूलंबु सेसि; गेहंबु वॆडलि पुण्यतीर्थ जलावगाहंबॊनर्चि, येकांत शुचि प्रदेशंबुन विधिवत्प्रकारंबुनं गुशाजिन चेलंबुल तोडं गल्पितासनुंडै। मानसंबुन निखिल जगत्पवित्रीकरण समर्थंबगु अकारादि त्रिवर्ण कलितंबै ब्रह्मबीजंबैन प्रणवंबु संस्मरिंपुचु, वायुवुल जयिंचि, विषयंबुल वॆंट नंटि गॆंटि पाऱॆडि यिंद्रियंबुल बुद्धि सारथियै मनो नामकंबुलैन पग्गंबुल बिग्गं वट्टि, त्रॊग्ग दिगिचि, दट्टंबुलैन कर्मघट्टंबुल निट्टट्टु मॆट्टॆडु मनंबुनु शेमुषीबलंबुन निरोधिंचि भगवदाकारंबुतोड वंधिंचि, निर्विषयंबैन मनंबुन भगवत्पादाद्यवयवंबुलु क्रमंबुन ध्यानंबु सेयुचु रजस्तमोगुणंबुल चेत नाक्षिप्तंबु विमूढंबु नगु चित्तंबुन दद्गुणंबुलवलन नय्यॆडि मलंबुलं धारणावशंबुन वो नडिंचि, निर्मल चित्तंबुनं बरमंबैन विष्णुपदंबुनकुं जनु, धारणानियमंबु गलुग

पूर्व [काल] मे दो घड़ियों के भीतर कैवल्य (मोक्ष) को प्राप्त किया था। ११ [व.] सुनो! सात दिनों के बाद ही कहीं तुम्हारे जीवन का अन्त होगा। उस काल के भीतर ही परलोक के सिद्धिस्वरूप परम-कल्याण का सम्पादन कर सकते हो। अन्तकाल के निकट आ जाने पर, भीत न होकर, देही, देह, पुत्र, कलत्र आदि [पारिवारिक जन] समूह के प्रति मोह रूपी साल [वृक्ष] को, निष्काम रूपी करवाल (तलवार) से निर्मूल कर, घर से निकलकर, पुण्यतीर्थ के जल में स्नान कर, एकान्त [एवं] शुचिपूर्ण प्रदेश में विधिवत् प्रकार से कुश तथा अजिन (चर्म) के वस्त्र से आसन बनाकर (बिछाकर), उपविष्ट होकर, मन में [सकल जगत को पवित्र करने में समर्थ] अकारादि (अ, उ, म) तीन अक्षरों से विलसित हो, ब्रह्मबीज बने हुए प्रणव का संस्मरण करते हुए, वायुवों को जीतकर विषयों को पीछे (दूर) भगाकर, दौड़ लगानेवाले इन्द्रियों के लिए सारथी के रूप में बुद्धि को बनाकर, मन रूपी पगहे को कसकर पकड़कर, झुकाकर (अपने वश में कर), घने कर्म रूपी वनों में इधर-उधर भटकनेवाले मन को शेमुषी (बुद्धि) बल से रोककर, भगवान के आकार (रूप) के साथ बाँधकर, विषय-रहित मन से भगवान के चरण आदि अंगों का क्रमशः ध्यान करते हुए, रजस्, तमस् गुणों से आक्षिप्त (आकृष्ट) हो, विमूढ़ बने हुए चित्त में उन गुणों के कारण एकत्रित मल (दोष) को धारणा के बल से दमन कर, निर्मल चित्त से परम (सर्वश्रेष्ठ) विष्णुपद को प्राप्त करेगा। धारणा नियम के प्राप्त होने पर सुखात्मक विषयों का अवलोकन करनेवाले योगी को भक्ति के लक्षण से युक्त योग की सिद्धि शीघ्र हो जाती है। ऐसा कहने पर योगीन्द्र से नरेन्द्र ने

सुखात्मकंबगु विषयंबु नवलोकिंचु योगिकि भक्ति लक्षणंबैन योगंबु वेगंबॅ सिद्धिंचु। अनिन योगींद्रुनकु नरेंद्रुंडिट्लनियॅ ॥ 12 ॥

कं. धारण ये क्रिय निलुचुनु ?
धारण के रूप ? मॅद्दि धारण यनगा ?
धारण पुरुषु मनोमल,
मे रीति हरिंचु ? नाकु नॅरिंगिप गदे ॥ 13 ॥

व. अनिन विनि राजुनकु नवधूत-विभुंडिट्लनियॅ ॥ 14 ॥

आ. पवनमुलु जयिंचि परिहृत संगुडै,
यिंद्रियमुल गर्वमॅल्ल मापि
हरि विशालरूपमंदु जित्तमु सेर्चि,
निलुपवलयु बुद्धि नॅरिपि बुधुडु ॥ 15 ॥

व. विनुमु। भगवंतुंडैन हरि विशड्विग्रहंबुनंदु भूत भविष्यद्वर्तमानंबैन विश्वंबु विलोक्यमानंबगु। धरणी सलिल तेजस्समीरण गगनाहंकार महत्तत्त्वंबु लनियॅडि सप्तावरणंबुल चेत नावृतंबगु महांडकोशंबैन शरीरंबुनंदु धारणाश्रयंबैन वैराजपुरुषुंडु देजरिल्लु। अम्महात्मुनिकि बादमूलंबु पाताळंबु, पार्ष्णिभाग पादाग्र भागंबुलु रसातलंबु, गुल्मंबु महातलंबु, जंघलु तलातलंबु, जानुद्वयंबु सुतलंबु, ऊरुवुलु वितलातलंबुलु, जघनंबु महीतलंबु, नाभी विवरंबु नभस्तलंबु, वक्षंबु ग्रहतारका मुखर ज्योतिस्समूह

इस प्रकार कहा। १२ [कं.] धारणा किस क्रिया (विधि) से स्थिर हो रहेगी ? धारणा का रूप क्या है ? धारणा [का अर्थ] क्या है ? पुरुष (जीव) के मन के मल (पाप) का हरण धारणा किस प्रकार करती है ? (पूर्ण रूप से) मुझे विदित करो न ! । १३ [व.] कहने पर, सुनकर, राजा से अवधूत-विभु ने इस प्रकार कहा। १४ [आ.] विवेक के साथ पवनों को जीतकर, [विषय-] संगित छोड़कर, इन्द्रियों का समस्त गर्व मिटा कर, हरि के विशाल रूप (विश्वरूप) में चित्त लगाकर, विद्वान् (ज्ञानी) को अपनी बुद्धि को स्थिर रखनी चाहिए। १५ [व.] सुनो ! भगवान हरि के विराट् विग्रह में भूत, भविष्य, वर्तमान स्वरूप विश्व दर्शनीय होता है। धरणी, सलिल, तेज, समीरण, गगन, अहंकार, महत्तत्त्व कहलानेवाले सात आवरणों से आवृत हो, महान अण्ड कोश-स्वरूप शरीर में धारणा के आश्रयरूप वैराज (विराट्) पुरुष तेजोमान रहता है। उस महात्मा का पाद-मूल पाताल है, पार्ष्णि भाग (एड़ी) (तथा) पादाग्रभाग (उँगलियाँ) रसातल है, गुल्फ महातल है, जाँघ तलातल हैं, दोनों घुटने सुतल हैं, ऊरु वितल, अंतल है, जघन महीतल है, नाभी विवर (नाभि-रन्ध्र) नभःस्थल है, वक्षःस्थल ग्रहतारिकादि से मुखर ज्योति-समूह-समेत नक्षत्रलोक है, ग्रीवा (गर्दन) महर्लोक है, मुख जनलोक है, ललाट तपोलोक है, शीर्ष (सिर)

समेतंबगु नक्षत्रलोकंबु, ग्रीवमु महर्लोकंबु, मुखंबु जनलोकंबु, ललाटंबु तपोलोकंबु, शीर्षंबुलु सत्यलोकंबु, बाहुदंडंबु लिंद्रादुलु, कर्णंबुलु दिशलु, श्रवणेंद्रियंबु शब्दंबु, नासापुटंबु लश्विनीदेवतलु, घ्राणेंद्रियंबु गंधंबु, वदनंबु वह्नि, नेत्रंबु लंतरिक्षंबु, चक्षुरिंद्रियमु सूर्युंडु, रेयिंबगळ्ळु ड्रॅप्पलु, भ्रूयुग्म विजृंभणंबु ब्रह्मपदंबु, तालुवुलु जलंबु, जिह्वेंद्रियंबु रसंबु, भाषणंबुलु सकलवेदंबुलु, दंष्ट्रलु दंडधरुंडु, दंतंबुलु पुत्रादि स्नेहकळलु, नगवुलु जनोन्माद कारणियगु माय, कटाक्षंबुलु दुरंत संसर्गंबुलु, पॅदवुलु व्रीडालोभंबुलु, स्तनंबुलु धर्मंबु, वंन्न, धर्म मार्गंबु, मेढ्रंबु प्रजापति, वृषणंबुलु मित्रावरुणुलु, जठरंबु समुद्रंबुलु, शल्यसंघंबुलु गिरुलु, नाडी निवहंबुलु नदुलु, तनूरुहंबुलु तरुवुलु, निश्वासंबुलु वायुवुलु, कालंबु गमनंबु, कर्मंबुलु नानाविध जंतुसन्निवह संवृत संसरणंबुलु, शिरोजंबुलु मेघंबुलु, कट्टु पुटटंबुलु संध्यलु, हृदयंबु प्रधानंबु सर्वविकारंबुलकु नाश्रयभूतंबैन मनमु चंद्रुंडु, चित्तंबु महत्तत्त्वंबु, अहंकारंबु रुद्रुंडु, अश्वाश्वतर्युष्ट्र गजंबुलु नखंबुलु, कटि प्रदेशंबु पशु मृगादुलु, विचित्रंबुलैन यालापनैपुणंबुलु पक्षुलु, बुद्धि मनुवु, निवासंबु पुरुषुंडु षड्जादुलयिन स्वर विशेषंबुलु गंधर्व विद्याधर सिद्ध चारणाप्सर स्समूहंबुलु, स्मृति प्रह्लाद प्रमुखुलु, वीर्यंबु दैत्य दानवानीकंबै युंडु। मरियु नम्महाविभुनकु मुखंबु ब्राह्मणुलु,

---

सत्यलोक है, बाहुदण्ड इन्द्र आदि है, कान दिशाएँ हैं, श्रवणेन्द्रिय शब्द है, नासापुट (नाक) अश्विनी देवता है, घ्राणेन्द्रिय गन्ध है, वदन वह्नि (अग्नि) है, नेत्र अन्तरिक्ष हैं, चक्षुरिन्द्रिय सूर्य है, रात और दिन पलकें हैं, भ्रूयुग्म का विस्तार (माथा) ब्रह्मपद है, तालू जल है, जिह्वेन्द्रिय रस (रुचि) है, भाषण सकल वेद है, दंष्ट्राएँ दण्डधर (यमराज) है, दाँत पुत्रादि स्नेह [युक्त] कलाएँ है, हास जनों को पागल कर देनेवाली माया है, कटाक्ष (दृष्टियाँ) दुरन्त (अनत) संसर्ग (सृष्टियाँ) है, ओंठ व्रीडा एवं लोभ हैं, स्तन धर्म है, रीढ़ धर्ममार्ग है, मेढ़ प्रजापति है, वृषण मित्रावरुण हैं, जठर समुद्र है, शल्यसमूह गिरियाँ है, नाड़ी-निवह नदियाँ हैं, रोम तरुवर हैं, निःश्वास वायु हैं, काल गमन है, कर्म नाना प्रकार के जन्तु-जाल के संवरण और संसरण है, शिरोज (केश) मेघ है, वस्त्र संध्याएँ हैं, हृदय प्रधान (मूल प्रकृति) है, सकल विकारों का आश्रय-स्वरूप मन चन्द्र है, चित्त महत्तत्त्व है, अहंकार रुद्र है, घोड़े, खच्चर, ऊँट, हाथी [ये सब] नख हैं, कटिप्रदेश पशु एव मृग आदि है, विचित्र (निराले) स्वरों की निपुणताएँ पक्षी हैं, बुद्धि मनु है, [उसका] निवास पुरुष है, षड्जादि विशेष स्वर गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण अप्सरा-समूह है, स्मृति प्रह्लादादि प्रमुख है, वीर्य दैत्य-दानव-आनीक (सेना) है। और भी उस महाविभु का मुख ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, जाँघ वैश्य है, चरण शूद्र है, नाम नाना प्रकार

भुजंबुलु क्षत्रियुलु, ऊरुलु वैश्युलु, चरणंबुलु शूद्रुलु, नामंबुलु नानाविधंबुलैन वसु रुद्रादि देवताभिदानंबुलु, द्रव्यंबुलु हविर्भागंबुलु, कर्मंबुलु यज्ञ प्रयोगंबुलु। इट्टि सर्वमयुंडैन परमेश्वरुनि विग्रहंबुन मुमुक्षुंडैन वाडु मनस्संधानंबु सेयवलयु ननि चॅप्पि वॅंडियु निट्लनियं ॥ 16 ॥

कं. हरिमयमु विश्वमंतयु, हरि विश्वमयुंडु संशयमु पनिलेदा
हरिमयमु गानिद्रव्यमु, परमाणुवु लेदु वंशपावन ! विंटे ॥ 17 ॥

सी. कललोन जीवुंडु कौतूहलंबुन बॅक्कु देहंबुल बोरु वडसि
यिंद्रियंबुल वॅंट नॅल्लवृत्तंबुलु नीक्षिंचि मरि तन्नु नॅरुगु करणि
नखिलांरात्मकुडगु परमेश्वरुडखिल जंतुल
हृदयमुलनुंडि बुद्धिवृत्तुल नॅल्ल बोद्धयै वीक्षिंचु बंधबद्धुडु गाडु प्राभवमुन

ते. सत्युडानंद बहुळ विज्ञानमूर्ति, यतनि सेविंप तगुगाक यन्यसेव
गलुगनेरवु कैवल्य गौरवमुलु पाय वॅन्नडु संसार बंध मधिप ! ॥ 18 ॥

अध्यायमु—२

म. बहुवर्षंबुलु ब्रह्म दॉल्लि जग मुत्पादिंप विज्ञाणि गा-
क हरि प्रार्थन धारणा वशमुनं गादे ! यमूढोल्लस-

के वसु, रुद्रादि देवताओं के अभिधान (नाम) हैं, द्रव्य हविर्भाग है, कर्मयज्ञ के प्रयोग (आचरण) हैं। ऐसे सर्वमय परमेश्वर की मूर्ति में मुमुक्षु को [अपने] मन का सन्धान करना चाहिए, ऐसा कहकर फिर इस प्रकार कहा। १६ [कं.] हे वंशपावन ! सुनो ! समस्त विश्व हरिमय है, हरि विश्वमय है, हरिमय जो नही है, ऐसा द्रव्य परमाणु भी (रत्ती भर भी) नहीं है, यह मानने में संशय की आवश्यकता नहीं है। १७ [सी.] हे अधिप ! सपने में जीव के कौतूहल के साथ अनेकों शरीर धारण कर, यश पाकर, इन्द्रियों के पीछे (अनुसरण करते हुए) सकल वृत्तान्तों को देखकर, फिर अपने-आप को जानने की रीति, अखिल-अन्तरात्मा होकर परमेश्वर सकल जन्तुओं (प्राणियों) के हृदयों में स्थित होकर, बुद्धि की समस्त वृत्तियों में बोद्धा हो (साक्षी हो) देखता रहता है। [अपने] प्राभव से वह बन्धन में बद्ध नहीं होता। वह [ते.] सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप, बहुल-विज्ञान की मूर्ति है। उसकी सेवा करना समुचित है। अन्य की सेवा करने से कैवल्य और गौरव प्राप्त नहीं होते और संसार का बन्धन कभी छूटता नहीं। १८

अध्याय—२

[म.] नरनाथ ! [सुनो !] पूर्व में ब्रह्मा अनेक वर्षों तक जगत के

नमहनीयोज्ज्वल बुद्धियै भुवन निर्माण प्राभावंबुनन्
विहरिंचे नरनाथ ! जंतु निवहाविर्भाव निर्णतयै ॥ 19 ॥

व. विनु मूढुंडु शब्दमय वेद मार्गंबैन कर्मफल बोधन प्रकारंबुन व्यर्थंबुलैन स्वर्गादि नानालोक सुखंबुल निच्छयिंचु। मायामय मार्गंबुन वासनामूलंबुन सुखंबनि तलंचि निद्रिंचुवाडु कललु गनु तेरंगुन वरिभ्रमिंचु। निरवद्य सुख लाभंबुनु जेंदडु। तन्निमित्तंबुन विद्वांसुंडु नाममात्र सारंबुलगु भोग्यंबुललोन नेंतट देह निर्वणंबु सिद्धिंचु नंतिय कैकोनुचु नप्रमत्तुंडै संसारंबु सुखमनि निश्चयिंपक योंडु मार्गंबुन सिद्धि गलदनि चूचि परिश्रमंबु नोंदकुंडु ॥ 20 ॥

सी. कमनीय भूमि भागमुलु लेकुन्नवे ? पडियुंडुटकु दूदिपरुपु लेल ?
सहजंबुलगु करांजलुलु लेकुन्नवे ? भोजन भाजन पुंज मेल ?
वल्कलाजिनावळुलु लेकुन्नवे ? कट्ट दुकूल संघात मेल ?
गोनकोनि वसियिंप गुहलु लेकुन्नवे ? प्रासाद सौधादि पटल मेल

ते. फल रसाढ्युलु गुरियवे ? पादपमुलु,
स्वादु जलमुल तुंडवे ? सकलनदुलु

उत्पादन करने में विज्ञानवान (निपुण) न होकर, हरि की प्रार्थना-धारणा के कारण ही न, (वह) अमूढ़ता (ज्ञान) के महनीय उल्लास की उज्ज्वल बुद्धि से भुवनों के निर्माण में प्रभावशाली हो, जंतुनिवह (प्राणि-कोटि) के आविर्भाव (सृष्टि) के निर्णय करने में समर्थ हुआ था। १९ [व.] सुनो ! मूढ़ [व्यक्ति] शब्दमय रूपी वेदमार्ग के कर्मफल-बोधन के आनुसार व्यर्थ हो स्वर्गादि नानालोक (सम्बन्धी) सुखों की कामना करता है। मायामय मार्ग में वासना के मूल (कारण) से [सुख मानकर] सोनेवले के सपने देखने के समान परिभ्रमण करता (भटकता) है। निरवद्य (अनिंद्य)-सुख की प्राप्ति नहीं करता। उस कारण विद्वान् [नाम मात्र के सार से युक्त] भोगों में देह-निर्वाह के लिए जितनी आवश्यकता हो, उतना ही ग्रहण करते हुए, अप्रमत्त हो, संसार को सुख न मानकर, अन्य मार्ग से सिद्धि की प्राप्ति होगी, ऐसा जानकर श्रम (परवाह) नहीं करता। २० [सी.] कमनीय भूमिभाग नही है क्या ? जो पड़े रहने के लिए (सोने के लिए) गद्दीदार बिस्तर चाहिए ? सहज रूप वाले कर-अंजलियाँ नही है क्या जो भोजन-पात्र (वर्तन) का समूह चाहिए ? वल्कल-अजिन-कुश-अवलियाँ (समूह) नहीं है क्या जो पहनने के लिए रेशमी कपड़ों की ढेर चाहिए ? चाहकर निवास करने के लिए गुफाएँ नही हैं क्या जो प्रासाद, सौध आदि [भवन] समूह चाहिए ? [ते.] पादप (वृक्ष) रसीले फल देते हैं न ! सकल नदियाँ स्वादिष्ट जल से [भरी]

वीसग भिक्षमु बॅट्टरे ? पुण्यसतुलु,
धनमदांधुल कौलुवेल ? तापसुलकु ॥ 21 ॥

कं. रक्षकुलु लेनिवारल, रक्षिचॅद ननुचु जक्रि राजै युंडन्
रक्षिपुमनुचु नौक नरु, नक्षमु बाथिप नेल ? यात्मज्ञुनकुन् ॥ 22 ॥

व. अनि यिट्लु स्वतस्सिद्धुंडु, आत्मयु, नित्युंडुनु, सत्युंडुनु, भगवंतुंडुनैन वासदेवुनि भजियिंचि तदीय सेवानुभवानंदंबुन, संसार हेतुवगु नविद्यचे बुद्धिमंतुंडु विडुवंबडुं गावुन ॥ 23 ॥

म. हरि जिंतिपक मत्तुडै विषय चिंतायत्तुडै चिक्कि वा-
सरमुल् द्रौब्बेडु वाडु किंकर गदासंताडितोरस्कुडै
धरणीशोत्तम ! दंडभृन्निवसन द्वारोपकंठोग्र वै-
तरणी-वह्नि-शिखा परंपरलचे दग्धुंडु काकुंडने ? ॥ 24 ॥

कं. मौत्तुदुरु गवल मंटल, कॅत्तुदु रडडंबु देह मितितलुगा
नौत्तुदु रसि पत्रिकलुनु, हत्तुदुरु कृतांतभटुलु हरि विरहितुलन् ॥ 25 ॥

व. मरियु हरि चरणकमल गंध रसास्वादनं बॅरुंगनि वारलु निजकर्म बंधंबुन दंडधरद्वार देहळी समीप जाज्वल्यमान वैतरणी तरंगिणी दहन दारुण

रहती हैं न ! पुण्य सतियाँ आदर के साथ भिक्षा देती हैं न ! [इन परिस्थितियों में] धनमद से अन्धे बने हुए लोगों की सेवा करने की तापसियों को क्या आवश्यकता है ? २१ [कं.] जिनके रक्षक नहीं हैं, उनकी रक्षा मैं स्वयं करूँगा, (ऐसा) कहनेवाले चक्रि के राजा हो रहने पर, रक्षा करो कहते हुए आत्मज्ञ [व्यक्ति] किसी एक अक्षम (असमर्थ) नर से प्रार्थना क्यों करें ? २२ [व.] [ऐसा] कहकर, स्वतः सिद्ध, आत्मस्वरूप, नित्य, सत्य, भगवान वासुदेव का भजन करके, उसकी सेवा के आनन्द में (मग्न हो) संसार के कारणस्वरूप अविद्या से बुद्धिशाली छूट पायेगा । अतः, २३ [म.] हे धरणीशोत्तम ! हरि की चिन्ता न करते हुए, मत्त हो, विषय की चिन्ता में मग्न हो, [उनमें] फँसकर, दिन बितानेवाला (यम के) किंकरों के गदाघातों से पीड़ित उर (वक्षःस्थल) वाला होकर, दंडभृत् (यम) के निवास के द्वार के पास स्थित उग्र वैतरिणी की अग्नि-शिखाओं की परम्पराओं में दग्ध होकर नहीं रहेगा ? (अवश्य होकर रहेगा) । २४ [कं.] गदाओं से मारेंगे, ज्वालाओं में डाल देंगे, असिपत्रिकाओं से शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े कर देंगे, हरि-विमुख लोगों को कृतांत (यम)-भट मारेंगे । २५ [व.] और हरिचरण-कमलों की गन्ध रूपी रस-रुचि को न जाननेवाले अपने कर्म-बन्धन के कारण दंडधर (यमराज) के द्वार की देहली के समीप जलती हुए वैतरणी-तरंगिणी (-नदी) की दारुण-ज्वालाओं में जलनेवाले देहधारियों के साथ-ज्वाला शिखासमूह में अवगाहन (दग्ध होते) करते रहेंगे । और भी

ज्वाला जाला दंदह्यमान देहुलं गूडि शिखि शिखावह गाहंबुल नॊंदुचुंडु-दुरु। मरियु विज्ञान संपन्नुलं मनु प्रपन्नलॆंतयु मायापन्नुलु गाक विन्नाणंबुनं दम तम हृदयांतराळंबुलं प्रादेशमात्र दिव्य देहुंडुनु, दिगिभराज शुंडादंड संकाश दीर्घ चतुर्भाहुंडुनु, भोगैश्वर्य प्रदुंडुनु, कंजात शंख चक्र गदा धरुंडुनु, कंदर्प कोटि समान सुंदरुंडनु, राका विराजमान राज-मंडल सन्निभ वदनुंडुनु, सौभाग्य सदनंडुनु प्रभात काल भासमान भास्करबिंब प्रति विराजित पद्मराग रत्नराजि विराजमान किरीटि कुंडलुंडुनु, श्रीवत्स लक्षण लक्षित वक्षोमंडलुंडुनु, रमणीय कौस्तुभरत्न खचित कंठिकालंकृत कंधरुंडुनु, निरंतर परिमळ मिळित वनमालिका बंधुरुंडुनु, नानाविध गंभीर हारकेयूर कटक कंकण मेखलांगुळीयक विभूषणव्रात समुज्ज्वलुंडुनु, निटलतट विलंबमान विमल स्निग्ध नील कुंचित-कुंतलुंडुनु, तरुण चंद्र चंद्रिका धवळ मंद हासुंडुनु, परिपूर्ण करुणावलोकन भ्रूभंग सूचित सुभग संततानुग्रह लीला विलासुंडुनु, महायोगि राज विलसित हृदयकमल कर्णिकामध्य संस्थापित चरण किसलयुंडुनु, संततानंद मयुंडुनु, सहस्र कोटि सूर्य संघात सन्निभुंडुनु, महाविभुंडु नैन परमेश्वरुनि मनोधारणावशंबुन निलिपिकॊनि, तदीय गुल्फ चरण जानु जंघा-

---

विज्ञान से सम्पन्न होकर जीनेवाले प्रपन्न (शरणार्थी) [लोग] माया के आपन्न (वश में) न होकर चतुराई से अपने-अपने हृदय के अन्तराल में प्रादेशमात्र दिव्य देह वाले, दिग्गज के सूँड़ों के समान दीर्घ चतुर्भुज वाले, भोग तथा ऐश्वर्य को प्रदान करनेवाले, कंजात (कमल), शंख, चक्र, गदाधारी, कोटि मन्मथों के समान सुन्दर रूप वाले, राका में सुशोभित चन्द्र के समान सुन्दर मुख वाले, सौभाग्य के निलय, प्रभातकाल में सुशोभित होनेवाले भास्कर-बिम्ब के समान पद्मराग आदि रत्नराजि से विराजमान (मण्डित) किरीट तथा कुण्डल धारण करनेवाले, श्रीवत्स के लक्षणों से लक्षित (चिह्नित) वक्षःस्थल वाले, रमणीय कौस्तुभरत्न-खचित कण्ठिका से अलंकृत कंधर (कण्ठ) वाले, निरन्त रपरिमल से मिलित (संपन्न) वनमालिका से शोभित होनेवाले, नानाप्रकार के गम्भीर हार, केयूर, कटक, कंकण, मेखला, अंगुलीयक [आदि] विभूषणों के समूह से अलंकृत हो समुज्ज्वल रूपवाले, निटलतट (माथे) पर झूलनेवाले विमल-स्निग्ध नील कुंचित केश वाले, तरुण चन्द्र की चन्द्रिका रूपी धवल मन्दहास वाले, परिपूर्ण करुणा के अवलोकन से युक्त, भ्रूभंग से सूचित सुन्दर तथा संतत-अनुग्रह के लीला-विलास वाले, महायोगिराज के हृदय-कमल में विलसित कर्णिका के मध्य संस्थापित चरण-किसलय वाले [संतत आनन्दमय वाले], हजारों, करोड़ों सूर्यों के संघात (समूह) सम [प्रकाश] वाले, [ऐसे] महाविभु परमेश्वर को मनोधारणा के द्वारा वश में कर, स्थिर कर, तदीय (उसके) गुल्फ,

द्यवयवंबुलु क्रमंबुन नोकटिनि नोकटि ब्रतिक्षणंबु ध्यानंबु सेयुचु नेंतकालंबुनकु बरिपूर्ण निश्चल भक्तियोगंबु सिद्धिचु नंत कालंबुनं ददीय चिंता तत्परुलै युंड्डुरु अनि मरियु निट्लनियें ॥ 26 ॥

सी. आसन्न मरणार्थियैन यतीशुंडु कालदेशमुलनु गाचिकोनडु
तनुवु विसर्जिचु तलपु जनिचिन भद्रासनस्थुडै प्राणपवनु
मनसु चेत जयिचि मानस वेगंबु बुद्धिचे भंगिचि बुद्धि वेच्चि
क्षेत्रज्ञुतो गूर्चि क्षेत्रज्ञु नात्मलोपल जेर्चि यात्मनु ब्रह्ममंदु

ते. गलिपि योक्कटि गाविचि गारवमुन,
शांतितोड निरूढुडै सकलकार्य
निवह मॅल्लनु दिगनाडि नित्यसुखमु,
वलयु ननि चूच नट्टीद वसुमतीश ! ॥ 27 ॥

व. विनमप्परमात्मयैन ब्रह्ममुनकु दक्क काल देश सत्त्व रज स्तमो गुणाहंकार महत्तत्त्व प्रधानंबुलकु सामर्थ्यंबु लेदु। कावुन बरमात्म व्यतिरिक्तंबु लेदु। देवादुलं दात्मत्वंबु विसर्जिचि, यन्य सौहृदंबु मानि, पूज्यंबैन हरिपदंबुनु ब्रतिक्षणंबुन हृदयंबुन नालिंगनंबु सेसि, वैष्णवंबैन परमपदंबु सर्वोत्तमं बनि सत्पुरुषुलु दॅलियुदुरु। इव्विधंबुन विज्ञानदृग्वीर्य ज्वलनंबुन निर्दग्ध विषयवासनुंडै क्रमंबुन निरपेक्षत्वंबुन ॥ 28 ॥

चरण, जानु, जंघा आदि अवयवों का, क्रम से एक के वाद एक का, प्रतिक्षण ध्यान करते हुए, जव तक परिपूर्ण एवं निश्चल भक्तियोग की सिद्धि न हो, तव तक उसकी चिन्ता में तत्पर हो रहते हैं। और फिर ऐसा कहा। २६ [सी.] हे वसुमतीश ! मृत्यु के आसन्न होने पर यतीश काल एवं देश की प्रतीक्षा नहीं करता, शरीर को विसर्जन करने के विचार के उत्पन्न होने पर भद्रासनस्थ हो, प्राणवायु को मन से जीतकर, मानस के वेग को बुद्धि से भंग कर (अवरुद्ध कर), बुद्धि को लाकर क्षेत्रज्ञ से जोड़कर, क्षेत्रज्ञ को आत्मा में प्रतिष्ठित कर, आत्मा को ब्रह्म से मिलाकर, [ते.] आदर के साथ, शान्ति के साथ निरूढ़ (स्थिर) हो, सकल कार्यसमूह को छोड़कर नित्यसुख की कामना से प्रतीक्षा करता रहता है। २७ [व.] सुनो ! उस परमात्मा ब्रह्म के अतिरिक्त काल, देश, सत्त्व, रजस्, तमोगुण, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रधान (प्रकृति, बुद्धि) पर किसी की भी सामर्थ्य नहीं है। इसलिए परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। देहादि में आत्मत्व को छोड़कर, अन्यों के प्रति सौहार्द्र को छोड़कर, पूज्य हरिपद को प्रतिक्षण हृदय से आलिंगन कर, वैष्णवात्मक परमपद [सर्वोत्तम है, ऐसा] सत्पुरुष लोग समझ लेते हैं। इस प्रकार विज्ञान की दृष्टि रूपी वीर्य (शक्ति)

सी. अंध्रिमूलमुन मूलाधार चक्रंबु वीडिंचि प्राणंबु विगिय बट्टि
नाभीतलमु जेर्चि नयमुतो मॅल्लन हृत्सरोजमु मीदि कॅगयबट्टि
यटमीद नुरमंदु हत्तिंचि क्रम्मर दालु मूलमुनकु दाट्रिमि निलिपि
ममततो भ्रूयुग मध्यंबु जेर्चि दृक्कर्ण नासास्य मार्गमुलु मूसि

ते. यिच्छलेनि योगि यॉक्क मुहूर्तार्थ,
मिद्रियानुषंग मितलेक
प्राणमुलनु वंचि ब्रह्मरंध्रमु चिच्चि,
ब्रह्ममंदु गलयु बौरवेंद्र ! ॥ 29 ॥

व. मरियु देहत्याग कालंबुन निंद्रियंबुल तोडि संगंबुलु विडुयनिवाडु वानितोडन गुणसमुदाय रूपंबगु ब्रह्मांडंबुनंदु खेचर सिद्ध विहार योग्यंबु नणिमादि सकलैश्वर्य समेतंबुनैन परमेष्ठिपदंबु जेरु। विद्या तपो योग समाधि भजनंबु सेयुचु ववनांतर्गत लिंगशरीरुलैन योगीश्वरुलकु ब्रह्मांड-बहिरंतराळंबुलु गतियनि चॅप्पुदुरु। एरिङ्किमि गर्मंबुल नट्टि गति वॊंद शक्यंबु गादु। योगि यगुवाडु ब्रह्मलोकंबुनकु नाकाशपथंबुनं बोवुचु सुषुम्नानाडिवेंट नग्नि यनु देवतं जेरि ज्योतिर्मयंबैन तेजंबुन निर्मलुंडै यॅंदुनं दगुलु पडक तारामंडलंबु मीद सूर्यादि ध्रुवांत पदंबुल

की ज्वालाओं में विषयवासनाओं को निर्दग्ध कर (भस्म कर), क्रमशः निरपेक्षत्व से— २८ [सी.] हे पौरवेन्द्र (राजा) ! अंघ्रि (चरण) के मूल में मूलाधार चक्र को दबाकर, प्राणों को खीचकर, नाभिस्थल में लाकर, चतुराई से धीरे-धीरे हृदय-कमल तक ऊर्ध्वगमन कराकर, उसके पश्चात् उर में सटाकर, फिर से तालु के मूल तक भगाकर [वहाँ] स्थिर कर, ममता के साथ भृकुटिमध्य में पहुँचाकर आँख, कान, नाक, मुख (आदि) मार्ग बन्द कर, [ते.] इच्छा-रहित योगी एक अर्ध-मुहूर्त (२४ मिनट) काल तक किंचित् भी इन्द्रिय-संगति न रखकर, प्राणों को झुकाकर, ब्रह्मरन्ध्र को वेधकर, ब्रह्म में जाकर मिल जाता है। २९ [व.] और फिर शरीर का त्याग करते समय इन्द्रियों के साथ संगति न छोड़नेवाला व्यक्ति उनके साथ [गुण-समुदाय-स्वरूप] ब्रह्माण्ड में खेचर, सिद्धों के विहार-योग्य अणिमा आदि सकल ऐश्वर्य से युक्त परमेष्टि के पद को प्राप्त होगा। विद्या, तप, योग, समाधि, भजन करते हुए पवन के अन्तर्गत लिंगशरीरी होनेवाले योगीश्वरों को ब्रह्माण्ड के बाह्य एवं अन्तराल ही गति है, ऐसा कहते है। किसी में कर्मों के कारण ऐसी स्थिति पाने की सामर्थ्य नहीं होती। योगी होनेवाला (व्यक्ति) ब्रह्मलोक को आकाश-पथ से जाते हुए, सुषुम्ना नाड़ी के साथ अग्नि कहलानेवाले देवता को प्राप्त कर, ज्योतिर्मय-स्वरूप तेज से निर्मल हो कहीं भी लगे न रहकर (कहीं न फँसकर) तारामण्डल के ऊपर सूर्यादि ध्रुव तक के अन्तपदों का क्रमगति से

ग्रमक्रमंबुन नतिक्रमिंचि, हरि संबंधंबैन शिशुमार चक्रंबु जेरि यौंटरि यगुचु परमाणु भूतंबैन लिंगशरीरंबुतोड ब्रह्मविदुलकु नेलवैन महर्लोकंबु जौच्चि महाकल्प कालंबु क्रीडिंचुचु गल्पांतंबुन ननंत मुखानल ज्वाला-जाल दंदह्यमानंबगु लोकत्रयंबु नीक्षिंचुचु, दन्निमित्त संजात दाहतापंबु सहिंपजालक ॥ 30 ॥

सी. इल मीद मनुवु ली रे डुवुर जनुवेळ दिवसमै येच्चोट दिरुगुचुंडु
महनीय सिद्ध विमानसंघमु लेंदु दिनकर प्रभमुलै तेजरिल्लु
शोक जरा मृत्यु शोषण भय दुःख निवहंबु लेंदु जनिंपकुंडु
विष्णुपद ध्यान विज्ञान रहितुल शोकंबु लेंदुंडि चूडवच्चु

आ. परम सिद्धयोगि भाषणामृत मेंदु,
श्रवणपर्व मगुचु जरुगु चुंडु
नट्टि ब्रह्मलोकमंदु वसिंचुनु,
राजवर्य ! मरल राडु वाडु ॥ 31 ॥

व. मरियु नौक्क विशेषंबु गलदु। पुण्यातिरेकंबुन ब्रह्मलोकगतुलैन वार कल्पांतरंबुनं बुण्यतारतम्यंबुल नधिकार विशेषंबु नौंदुवारलगुदुरु।

अतिक्रमण कर, हरि से सम्बन्धित शिशुमार चक्र (कच्छप रूपी तारक-समूह) तक पहुँचकर [अकेला होकर] परमाणु-स्वरूप लिंगशरीर के साथ ब्रह्मविदों के निलय महर्लोक में प्रवेश कर, महाकल्प काल तक क्रीड़ा करते हुए, कल्पान्त में अनन्त मुखों से अग्निज्वाला की लपटों से जल जानेवाले लोकत्रय को देखते हुए, उसके कारण उत्पन्न होनेवाले दाहताप का सहन न कर सक, ३० [सी.] हे राजवर्य ! उस ब्रह्मलोक में जाकर रहता है, जहाँ इला (पृथ्वी) पर चौदह मनुओं के [शासन-] काल की अवधि एक दिन भर में व्यतीत होती है, जहाँ महनीय सिद्धों के विमान-संघ (-समूह) दिनकर की प्रभाओं से युक्त होकर शोभित होता है, जहाँ शोक-जरा-मृत्यु-शोषण-भय-दुःख [आदि का] निवह (समूह) उत्पन्न नहीं होता, जहाँ से विष्णुपद के ध्यान-विज्ञान से रहित [जनों] के शोक देखे जा सकते हैं, [आ.] जहाँ परम-सिद्ध योगियों के भाषणामृत श्रवण-पर्व के रूप में होता (सुनाई पड़ता) रहता है। [वहाँ जानेवाला] फिर लौटकर नहीं आता। ३१ [व.] एक विशेषता और है। पुण्य के आधिक्य से ब्रह्मलोक को प्राप्त होनेवाले, कल्पान्तर में पुण्य के तर-तम के कारण अधिकार-विशेष को प्राप्त होनेवाले हो जाते हैं। ब्रह्मादि देवताओं के भजन के [मार्ग] में चले जानेवाले [ब्रह्मा के जीवनकाल पर्यन्त] ब्रह्मलोक

ब्रह्मादि देवता भजनंबुनं जनुवारु ब्रह्म जीवित कालंबुदनुक ब्रह्मलोकंबुन वसिंयिंचि मुक्तुलगुदुरु नारायण चरणकमल भक्ति परायणत्वंबुन जनिनवारु निजेच्छावशंबुन निरर्गळगमनुलै ब्रह्मांडंबु भेदिंचि महोन्नत वैष्णवपदारूढुलै तेजरिल्लुदुरु। ईश्वराधिष्ठितंबैन प्रकृति यंशंबुन महत्तत्त्वमगु। महत्तत्त्वांशंबुन नहंकारंबगु। अहंकारांशंबुन शब्दतन्मात्रं बगु। शब्दतन्मात्रांशंबुन गगनमगु। गगनांशंबुन स्पर्शतन्मात्रंबगु। स्पर्शतन्मात्रांशंबुन समीरणंबगु। समीरणांशंबुन रूपतन्मात्रंबगु। रूपतन्मात्रांशंबु वलन तेजंबगु। तेजोंशंबुन रसतन्मात्रंबगु। रसतन्मात्रांशंबु वलन जलंबगु। जलांशंबुन गंधतन्मात्रंबगु। गंधतन्मात्रांशंबुन पृथिवि यगु। वानि मेळनमुनं जतुर्दश भुवनात्मकंबैन विराड्रूपंबगु। आ रूपमुनकु गोटियोजन विशालंबैन यंडकटाहंबु प्रथमावरणंबैन पृथ्वि यगु। दीनि पंचाशत्कोटि विशालंबनि कोंदरु पलुकुदुरु। अय्यावरणंबु मीद सलिल तेजस्समीर गगनाहंकार महत्तत्त्वंबु लनियेडु यावरणंबुलु क्रमंबुन नोंडोंटिकि दशगुणोत्तराधिकंबुलै युंडु। अट्टि येडिंटि मीद प्रकृत्यावरणंबुलु महाव्यापकंबगु ब्रह्मांडंबु

में निवास करते हुए [मुक्त हो जाते हैं!] नारायण के चरण-कमल की भक्ति में परायण हो चल वसनेवाले अपनी इच्छा के वशीभूत होकर निरर्गल (अवाध) गति वाले हो, ब्रह्माण्ड को वेधकर महोन्नत वैष्णव पद पर प्रतिष्ठित होकर तेजस्वी हो जाते हैं। ईश्वर से अधिष्ठित प्रकृति के अंश से महत्तत्त्व वन जाता है। महत्तत्त्व के अंश के कारण अहंकार वन जाता है। अहंकार के अंश के कारण शब्द तन्मात्र हो जाता है। शब्द-तन्मात्रा के अंश से गगन [की उत्पत्ति] होती है। गगन के अंश से स्पर्श तन्मात्र हो जाता है। स्पर्श तन्मात्रा के अंश के कारण समीरण (पवन) वन जाता है। समीरण के अंश से रूप तन्मात्रा हो जाता है। रूप तन्मात्रा के अंश से तेज वन जाता है। तेज के अंश को लेकर रस तन्मात्रा वन जाता है। रस तन्मात्रा के अंश के कारण जल वन जाता है। जल के अंश से गन्ध तन्मात्रा वन जाता है। गन्ध तन्मात्रा के अंश के कारण पृथ्वी वन जाती है। उन सवके सम्मिलन से चतुर्दश भुवनात्मक विराट्रूप हो जाता है। उस रूप के लिए कोटि योजन-विशाल अण्डे के आकार वाले कटाह के रूप में पृथ्वी प्रथम आवरण वनेगी। यह पचास करोड़ विशाल है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। उस आवरण पर जल, तेज, वायु, गगन, अहंकार, महत्तत्त्व नामक आवरण क्रमशः एक से एक दस गुना वढ़कर रहते है। ऐसे सातवें आवरण पर प्रकृति का आवरण महा विस्तृत हो ब्रह्माण्ड को भेदकर, वैष्णवपद का आरोहण करनेवाला [व्यक्ति] निर्भीक हो, धीरे से [लिंग-शरीर में] पृथ्वी-रूप को प्राप्त कर

भेदिंचि वैष्णव पदारोहणंबु सेयुवाड निर्भयुंडै, मॅल्लन लिंग देहंबुन बृथिव्यात्मकत्वंबु नौंदि, यट्टि पृथिव्याप्तकत्वंबुन घ्राणंबुनं गंधंबुनु, जलात्मकत्वंबुन रसनेंद्रियंबुन रसंबुनु, तेजो रूपकत्वंबुन दर्शनंबुन रूपंबुनु, समीरणात्मकत्वंबुन देहंबुन स्पर्शंबुनु, गगनात्मकत्वंबुन श्रवणंबुन शब्दंबुनु नतिक्रमिंचि भूत सूक्ष्मेंद्रिय लयस्थानंबैन यहंकारावरण संप्राप्तुंडै, यंदु मनोमयंबुनु देवमयंबुनु नैन सात्त्विकाहंकार गमनंबुन महत्तत्त्वंबु सॊच्चि गुणत्रयंबुनु लयिंचिन प्रधानंबु नौंदि, प्रधानात्मकत्वंबुन देहंबु नुपाधि परंपरावसानंबुनं ब्रकृति बासि यानंद मयुंडै यानंदंबुनं बरमात्म रूपंबैन वासुदेव ब्रह्ममंदु गलियु ननि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 32 ॥

आ. परम भागवतुलु पाटिंचु पथ मिदि,
या पथमुन योगी यरिगॆ नेनि
मगुडिराडु वाडु मरि संशयमु लेदु,
कल्पशतमुलैन कौरवेंद्र ! ॥ 33 ॥

व. विनुमु । नीवडिगिन सद्योमुक्तियु क्रममुक्तियु ननियॆडि नी रॆंडु मार्गंबुलुनु वेदगीतंबुलंदु विवरिंपबडियॆ । वीनि दॊलिलि भगवंतुंडैन वासुदेवुंडु ब्रह्मचेत नाराधितुंडै चॆप्पॆ । संसार प्रविष्टुंडैन वानिकि दपोयोगादुलैन मोक्षमार्गंबुलु पॆक्कु गलवु । अंदु भक्तिमार्गंबु कंटॆ सुलभंबु लेदु ॥ 34 ॥

इस प्रकार के पृथ्वी के व्याप्तकत्व से घ्राण में गन्ध, जलात्मकता से रसना-इन्द्रिय में रस, तेजरूपकता से रूप, पवनात्मकता से शरीर में स्पर्श, गगनात्मकता से श्रवण में शब्द को पार कर भूतकोटि के सूक्ष्म इन्द्रियों का लयस्थान स्वरूपी अहंकार को आवरण के रूप में प्राप्त कर, उसमें मनोमय (तथा) देवमय सात्त्विक अहंकार के गमन से महत्तत्त्व में प्रवेश कर, गुणत्रय का लय कर, प्रधान (परमतत्त्व) को प्राप्त कर, प्रधानात्मकता से शरीर की उपाधि के कारणस्वरूप परम्परा को, समाप्त कर, प्रकृति को हटाकर, आनन्दमय हो, आनन्द में परमात्मा रूपी वासुदेव ब्रह्म में मिल जाता है, ऐसा कहकर फिर (आगे) इस प्रकार कहा । ३२ [आ.] हे कौरवेन्द्र ! परम भागवत लोगों के अनुसरण करने का यह मार्ग है । इस पथ से योगी यदि चलेगा तो शतकल्प भी क्यों न हों लौटकर नहीं आएगा, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं । ३३ [व.] सुनो ! तुमसे पूछे गये सद्योमुक्ति, क्रममुक्ति नामक दोनों मार्गों का विवरण वेद गीतों में किया गया है । इनको पूर्व में भगवान वासुदेव ने ब्रह्मा के द्वारा आराधित होकर कहा । संसार में प्रविष्ट होनेवाले जन के लिए तप, योग आदि मोक्षमार्ग अनेकों हैं । उनमें भक्तिमार्ग से बढ़कर सरल कोई और नहीं है । ३४

शुकुडु परीक्षित्तुनकु भक्तिमार्गंबे मुख्यंबनि तॆलुपुट

म. विनु मंभोज-भवुंडु मुन्नु मदिलो वेदंबु मुम्मारु ध-
र्मनयज्ञत्वमु दोप नंतयु वरामर्शिचि मोक्षंबु द-
क्किन मार्गंबुल वेंट लेदनुचु भक्तिं जितचेसेन् जना-
र्दनु नात्माकृति निर्विकारु डगुचुन् दन्मार्ग निर्णेतयै ॥ 35 ॥

सी. अखिल भूतमुलंदु नात्मरूपंबुन नीशुंडु हरि युंडु नॆल्लप्रोद्दु
बुद्ध्यादि लक्षणंबुल गानबडुनु महासेवनीयु डहर्निशंबु
वंदनीयुडु भक्तवात्सल्य संतत नियतुडै सततंबु नियतबुद्धि
नात्मरूपकुडगु हरि कथामृतमुलु गर्णपुटंबुल गांक्ष दीर

ते. ग्रोलुचुंडेडि धन्युलु कुटिल बहुळ,
विषय मलिनीकृतांगमुल् वेग बिडिचि
विष्णुदेवुनि चरणारविंदयुगमु
कडकु जनुदुरु सिद्धंबु कौरवेंद्र ! ॥ 36 ॥

शुक का परीक्षित को भक्तिमार्ग को ही मुख्य (प्रधान) बताना

[म.] सुनो ! अंभोजभव (ब्रह्मा) ने पूर्व में [अपने] मन में वेद का तीन बार धर्म, नय एवं ज्ञान के स्फुरण होने पर परामर्श कर (परिशीलन कर) अन्य मार्गों से मोक्ष को अलभ्य जानकर, जनार्दन की, आत्माकृति (अपने स्वरूप वाले) की, निर्विकारी हो, भक्तिभाव से चिन्तन किया और उस [भक्ति] मार्ग का निर्णेता बन गया। ३५ [सी.] हे कौरवेन्द्र ! सकल भूतों (प्राणियों) में आत्मा-रूप से ईश्वर हरि सदा स्थित रहता है। बुद्धि आदि लक्षणों से दृष्टिगत होता है। महत् सेवा के योग्य है, अहर्निश (दिन-रात) (सदा) वन्दनीय है, भक्तों पर वात्सल्य भाव से संतत (सतत, सदा) नियत रहनेवाला [ऐसे हरि की] सतत नियत बुद्धि से आत्म-रूपी हरि की कथा रूपी अमृत को बड़ी चाव से कर्णरन्ध्रों से प्राप्त करनेवाले [ते.] धन्यजन कुटिल एवं [अनेक] विषयों के कारण मलिन बने हुए (दूषित बने हुए) (अपने) अंगों को (शरीरों को) छोड़कर विष्णु भगवान के चरण-अरविंद-युगल के यहाँ निश्चित रूप से चले आयेंगे (विष्णु-पद को प्राप्त करेंगे)। ३६

अध्यायमु—३

कं. मानुषजन्ममु नोंदिन, मानवुलकु लभ्यमानमरणुलकु महा
ज्ञानुलकु जेयवलयु वि, धानमु निर्गविंपबडियें धरणीनाथा ! ॥ 37 ॥

व. विनुमु। ब्रह्मवर्चस कामुडैन वानिकि वेदविभुंडगु चतुर्मुखुंडुनु, निंद्रियपाटव कामुनिकि निंद्रुंडुनु, प्रजाकामुनकु दक्षादि प्रजापतुलुनु, भोजन कामुनकु नदितियु, स्वर्गकामुनिकि नादित्युलुनु, राज्यकामुनिकि विश्वदेवतलुनु, देश प्रजा साधन कामुनिकि साध्युलुनु, श्री कामुनिकि दुर्गयु, तेजस्कामुनकु नग्नियु, धनकामुनकु वसुवुलुनु, वीर्यकामुनकु वीर्यप्रबुलगु रुद्रुलुनु, नायुष्कामुनकु नश्विनीदेवतलुनु, पुष्टिकामुनकु भूमियु, प्रतिष्ठाकामुनिकि लोकमातलैन गगन भूदेवतलुनु, सौंदर्यकामुनकु गंधर्वुलुनु, कामिनीकामुन कप्सरसयगु नूर्वशियु, सर्वाधितपत्यकामुनकु ब्रह्मयु, कीर्तिकामुनकु यज्ञोपाधिकुंडगु विष्णुवुनु, वित्तसंचय कामुनकुं ब्रचेतसुंडुनु, विद्या कामुनकु नुमावल्लभुंडुनु, दांपत्यप्रीति कामुनकु नुमा देवियु, धर्मार्थकामुनकु नुत्तमश्लोकुंडगु विष्णुवुनु, संतानकामुनकु बितृदेवतलुनु, रक्षाकामुनकु यक्षुलुनु, बलकामुनकु मरुद्गणंबुलुनु, राजत्व कामुनकु मनुरूप देवतलुनु, शत्रुमरण कामुनकु गोणपालकुंडैन राक्षसुंडुनु, भोगकामुनकु जंद्रुंडुनु, भजनीयु लगुदुरु। मरियु ॥ 38 ॥

अध्याय—३

[कं.] हे धरणीनाथ ! मानव-जन्म को प्राप्त मानवों को, मरनेवाले लोगों को, महाज्ञानियों को करने योग्य विधान स्पष्ट किया गया है। ३७

[व.] सुनो ! ब्रह्मतेज के कामी को वेदविभु, चतुर्मुख ब्रह्मा, इन्द्रिय-पटुता की कामना करनेवाले को इन्द्र, प्रजा (संतति) कामी को दक्ष प्रजापति, भोजन-कामी को अदिति, स्वर्गकामी को आदित्य, राज्याकांक्षी को विश्व देवतागण, देश की प्रजा को साध्य (वश में) करना चाहनेवाले को साध्य, श्रीकामी को दुर्गा, तेजोकामी को अग्नि, धनाकांक्षी को वसुगण, वीर्यकामी को वीर्य प्रदान करनेवाले रुद्रगण, आयुष्कामी को अश्विनी देवता, पुष्टिकांक्षी को भूमि, प्रतिष्ठाकांक्षी को लोकमाता कहलानेवाले गगन-भूदेवता, सौन्दर्यकामी को गन्धर्व, कामिनीकामी को अप्सरा उर्वशी, सर्वाधिपत्यकामी को ब्रह्मा, कीर्तिकामी को यज्ञशरीरी विष्णु, धनसंचय करनेवाले को प्रचेतस, विद्याकामी को उमावल्लभ, दाम्पत्य प्रीति की आकांक्षा करनेवाले को उमादेवी, धर्मार्थ की कामना करनेवाले को उत्तमश्लोक वाले विष्णु, सन्तानकामी को पितृदेवता, रक्षा चाहनेवाले को यक्ष, बल की कामना करनेवाले को मरुद्गण, राजत्व कामी को मनुरूप देवतागण, शत्रुओं की मृत्यु चाहनेवाले को गोणपालक राक्षस, भोगकामी

कं. कामिपकयुनु सर्वमु, गामिचियुनैन मुक्ति गामिचि तगन्
लो मिचि परमपुरुषुनि, नेमिचि भजिचु दत्त्वनिपुणुं डधिपा ! ॥ 39 ॥

म. अमरेंद्रादुल गॊल्चुभंगि जनु डा यब्जाक्षु सेविपगा
विमलज्ञान विरक्ति मुक्तुलॊदवुन् वेयेल भूनाथ ! त-
त्कमलाधीश कथा सुधारस नदी कल्लोल माला परि-
भ्रम मॆव्वारिकि नॆन गर्णयुगळी-पर्वंबु गाकुंडुने ? ॥ 40 ॥

व. अनि राजुनकु शुकुंडु सॆप्पॆ ननिन विनि शौनकुंडु सूतुन
किट्लनियॆ ॥ 41 ॥

कं. वर तात्पर्यमुतो निट्टु,
भरतान्वय विभुडु शुकुनि पलुकुलु विनि स-
त्वरता युतुडै श्रेय-
स्करतामति नेमि यडिगॆ ? गणुतिप गदे ! ॥ 42 ॥

कं. ऒप्पॆडि हरिकथ लॆय्यवि चॆप्पॆडिनो यनुचु माकु जित्तोत्कंठल्
गुप्पलु गॊनुचुन्नवि रुचु, लुप्पतिल न्नी मनोहरोक्तुलु विनगन् ॥ 43 ॥

व. अनिन विनि सूतुं डिट्लनियॆ ॥ 44 ॥

को चन्द्र, भजनीय होते हैं। और, ३८ [कं.] अधिप ! तत्त्वनिपुण (व्यक्ति) कामना न कर, सब कुछ की कामना करते हुए भी अन्तरंग में मुक्ति की कामना कर, उचित रूप से [अपने] अंतरंग को वश में कर, परमपुरुष का नियमित रूप से भजन (सेवा) करता है। ३९ [म.] भूनाथ ! हजार बातें क्यों ? अमरेन्द्र आदि के सेवा करने की रीति से कोई भी [व्यक्ति] अब्जाक्ष (कमल-नयन वाले विष्णु) की सेवा करे तो विमल ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। उस कमलाधीश (कमला के अधीश्वर लक्ष्मीपति) की कथा के सुधारस रूपी नदी की लहरों की माला में परिभ्रमण करना (सरावोर हो जाना) किसी के लिए भी कर्णयुगल का पर्व क्यों न होगा ? ४० [व.] इस प्रकार राजा से शुक ने कहा। [यह] सुनकर शौनक ने सूत से ऐसा कहा। ४१ [कं.] वर (श्रेष्ठ) तात्पर्य (भाव) से इस प्रकार भरतान्वय (वंश) के विभु (राजा, परीक्षित) ने शुक के वचन सुनकर, सत्वरता से युक्त हो (तुरत) श्रेयस् की कामना की मति लिये हुए क्या पूछा था ? (उसका) विवरण दो न। ४२ [कं.] कौन-सी मनोहर हरिकथाएँ कही है, यह जानने के लिए हमारे चित्त में उत्कंठाएँ अधिक बढ़ रही हैं। तुम्हारे मनोहर वचन सुनने के लिए रुचि (अभिरुचि) उत्पन्न हो रही है। ४३ [व.] कहने पर सुनकर सूत ने इस प्रकार कहा। ४४ [कं.] लहलहाती अलकावली (लट) के साथ

कं. तूलॅडि कूकटि तोडनु, बालुरतो नाडुचुंडि बाल्यमुन मही
पालुडु हरि चरणार्चन, हेलल तोडुतनु नुंडॆ नॆंतयु नियतिन् ॥ 45 ॥

व. अट्टि परम भागवतुंडैन पांडवयेुनकु वासुदेव परायणुंडैन शुकुं डिट्लनियॆं ॥ 46 ॥

सी. वासुदेव श्लोक वार्त लालिपुचु गालमे पुण्युंडु गडुपुचुंडु
ननि यायुवु दक्क नन्युल यायुवु नुदयास्तमयमुल नुग्रकरुडु
वंचिचि कॊनिपोवु वाडदि यॆरुगक जीवितु बॆक्कॆंड्लु सिद्ध मनुचु
नंगनापुत्र गेहाराम वित्तादि संसार हेतुक संगसुखमु

ते. दगिलि वर्तिप गालमु तद्र यॆरिगि,
दंडधर किंकरुलु वच्चि ताडनमुलु
सेसि कॊनिपोव बुण्यंबु सेय नैति;
बापरति नैति ननि विट्टु बलवरिंचु ॥ 47 ॥

व. अदि गावुन ॥ 48 ॥

सी. अलरु जॊंपमुलतो नभ्रंकषंबुलै ब्रतुकवे ? वनमुल बादपमुलु
खादन मेहनाकांक्षल बशुवुल जीविंपवे ? ग्राम सीमलंदु
नियतिमै नुच्छ्वास विश्वास पवनमुल् प्रापिंपवे ? चर्म भस्त्रिकलुनु
ग्राम सूकर शुनक श्रेणु लिटिट दिरुगवे ? दुर्योग दीनवृत्ति

बच्चों से खेलते हुए, बचपन में राजा हरि-चरणों की अर्चना की [भक्ति रूपी] हेला (विलास) के साथ अत्यन्त नियमित रूप से रहा । ४५ [व.] ऐसे परम भागवत बने हुए पांडवेय (पाण्डव-पौत्र) से वासुदेव-परायण शुक ने इस प्रकार कहा । ४६ [सी.] वासुदेव की स्तुति करने वाली वार्त्ताओं (कथाओं) का श्रवण करते हुए जो पुण्यात्मा समय बिताता है, उसकी आयु को छोड़कर अन्यों की आयु को उदय और अस्त के समय में उग्रकर (सूर्य) धोखे से ले जाता है । इसे न जानकर अनेक वर्षों तक अवश्य जीवित रहेंगे, ऐसा मानकर, अंगना (स्त्री), पुत्र, गेह, आराम (वन), वित्त, धन आदि संसार के कारणस्वरूप [वस्तुओं की] संगति के सुख में लगकर रहने से, [ते.] काल [जीवन] समाप्ति को जानकर, दण्डधर (यमराज) के किंकरों के आकर मारते हुए ले जाने पर, तब विकल हो प्रलाप करेगा कि मैंने कोई पुण्य नहीं किया और [जीवन भर] पापरत हो रहा । ४७ [व.] इसलिए; ४८ [सी.] हे अधिप ! पुष्प-गुच्छों से युक्त हो, आकाश को छूते हुए वन में पादप (वृक्ष) जीते नहीं हैं ? ग्रामसीमाओं (गाँवों) में खाना एवं मैथुन की आकांक्षा में मग्न हो पशु जीते नहीं हैं ? चर्मभस्त्रिकाएँ नियमित रूप से पवन के उच्छ्वास, निःश्वास को प्राप्त नहीं करतीं ? दुष्ट-योग तथा दीनभाव लिये हुए सुअर तथा

ते. नुण्ट्र खरमुलु मोयवे युरुभरमुलु,
पुंडरीकाक्षु नॅरुगनि पुरुप-पशुवु
लडवुलंदु निवासमुलंदु ब्राण,
विपय भर वृत्तितो नुंट विफल मधिप ! ॥ 49 ॥

सी. विष्णु कीर्तनमुलु विननि कर्णंबुलु कोंडल बिलमुलु कुवलयेश !
चक्रि पद्यंबुलु चदुवनि जिह्वलु कप्पल जिह्वलु कौरवेंद्र !
श्री मनोनाथु वीक्षिपनि कन्नुलु केकि पिछाक्षुलु कीर्तिदयित !
कमलाक्षु पूजकु गानि हस्तंबुलु शवमु हस्तंबुलु सत्यवचन !

आ. हरि पद तुलसी दळामोदरति लेनि,
मुक्कु पंदिमुक्कु मुनिचरित्र !
गरुडगमनु भजनगति लेनि पदमुलु,
पादपमुल पादपटल मनघ ! ॥ 50 ॥

सी. नारायणुनि दिव्य नामाक्षरमुलपैं गरगनि मनमुलु गठिन शिललु
मुरवैरि कथलकु मुदिताश्रु रोमांच मिळितमै युंडनि मेनु मोद्दु
चक्रिकि म्रोक्कनि जडुनि योदल नुन्न कनक किरीटंबु गट्टॅ मोपु
माधवार्पितमुगा मननि मानवु सिरि वन दुर्ग चंद्रिका वैभवंबु

कुत्तों के समूह घर-घर घूमते नहीं हैं ? [ते.] ऊँट और गधे अत्यधिक भार को ढोते रहते नहीं है ? पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) वाले को न जानने वाले पुरुप रूपी पशु का वनों में, निवास स्थानों में प्राणों की रक्षा तथा विषयवासनाओं को तृप्त करते हुए रहना विफल (सार्थक नहीं) है। (ऐसे नर का जीवन उपरोक्त पशुओं की अपेक्षा व्यर्थ ही है)। ४९ [सी.] हे कुवलयेश (राजा) ! विष्णु के कीर्तन न सुननेवाले कान पर्वतों की गुफाएँ हैं। हे कौरवेन्द्र ! चक्रि के पद्य जो जीभ नहीं पढ़तीं, वे मेंढकों की जिह्वाएँ हैं। हे कीर्ति ही जिसकी प्रिया हो (कीर्तिवान्) ! श्री मनोनाथ (विष्णु) के दर्शन न करनेवाली आँखें मोरपंख की आँखें हैं। हे सत्य वचन वाले ! कमलाक्ष की पूजा के लिए निरुपयोगी हाथ शव के हाथ हैं। [आ.] मुनिचरितवाले ! हरि के चरणों के तुलसीदल की [सुगन्ध में] आमोदरति न रखनेवाले की नाक सुअर की नाक है। हे अनघ ! गरुड़-गमन वाले के भजन (सेवा)-स्थान तक न जानेवाले चरण वृक्षों की जड़ों के समूह है। ५० [सी.] नारायण के दिव्य नाम वाले अक्षरों पर द्रवीभूत न होनेवाले मन कठिन शिलाएँ है। मुरवैरी (विष्णु) की कथाएँ [सुनकर,] आनन्दित हो आँसू बहाते हुए रोमांचित न होनेवाले शरीर ठूँठ हैं। चक्रि को नमस्कार न करनेवाले जड़ के सिर पर स्थित कनक-किरीट लकड़ियों की गठरी है। माधव को अर्पित होकर जीवित न रहनेवाले मानव की सम्पत्ति दुर्गमवन में स्थित चन्द्रिका का वैभव [के समान] है।

आ. कैटभारि भजन गलिगि युंडनिवाडु,
गालिलोन नुंडि कदलु शवमु
कमलनाभु पदमु गननि वानि ब्रतुकु,
पसिडिकायलोनि प्राणि ब्रतुकु ॥ 51 ॥

अध्यायमु—४

व. अनि यिट्लु पलिकिन वैयासि वचनंबुल नौत्तरेयुंडु गंदळित हृदयंबै निर्मल मतिविशेषंबुन ॥ 52 ॥

आ॰ सुतुल हितुल विडिचि चुट्टाल विडिचि यि-
ल्ललि विडिचि पशु गृहाळि विडिचि
राजु हृदय मिडियें राजीवनयनुपै,
धनमु विडिचि जड्डु-दनमु विडिचि ॥ 53 ॥

व. इट्लु मृत्युभयमु निरसिंचि, धर्मार्थकामंबुलु सन्यसिंचि, पुरुषोत्तमुनंदु जित्तंबु विन्यसिंचि, हरिलीला लक्षणंबु लुपन्यसिपु मनु तलंपुन नरेंद्रु डिट्लनियें ॥ 54 ॥

कं. सर्वात्मु वासुदेवुनि, सर्वज्ञुडवैन नीवु संस्तुति सेयन्
सर्वभ्रांतुलु वदलें म, होर्वीसुरवर्य ! मानसोत्सव मगुचुन् ॥ 55 ॥

[आ.] कैटभारि (विष्णु) के भजन से रहित व्यक्ति हवा में हिलनेवाला शव (के समान) है। कमलनाभवाले के चरणों को प्राप्त न करनेवाले का जीवन स्वर्णफल (धतूरे) में बन्धे हुए प्राणि (कीड़े) का जीवन (समान) है। ५१

अध्याय—४

[व.] इस प्रकार कहे वैयासी (व्यासपुत्र) के वचन सुनकर, उत्तरापुत्र ने हृदय में निर्मल बुद्धि की विशिष्टता को धारण किया। ५२ [आ.] सुतों को, हितैषियों को छोड़कर, बन्धुजनों को छोड़कर, सती को छोड़कर, पशु एवं गुहावली को छोड़कर, धन छोड़कर, जड़ता त्यागकर, राजा ने राजीवनयन (कमल-नयन) वाले पर हृदय स्थिर किया। ५३ [व.] इस प्रकार मृत्यु-भय का तिरस्कार कर, धर्म, अर्थ, काम को छोड़कर, पुरुषोत्तम में चित्त लगाकर, हरिलीला के लक्षणों के बारे में भाषण कराने की प्रार्थना (विनती) को मन में लिये हुए, ऐसा कहा। ५४ [कं.] महान्-उर्वीसुर-श्रेष्ठ ! (ब्राह्मणोत्तम !) (तुम) सर्वज्ञ हो। तुम्हारे सर्वात्मा वासुदेव की संस्तुति करने पर, मन में उत्सव (आनन्द) हुआ [और] सब प्रकार की भ्रांतियाँ छूट गईं। ५५ [सी.] हे

सी. ईशुंडु हरि विष्णुडी विश्वमंतयु वुट्टिंचु रक्षिंचु वॊलियजूचु
बहु शक्तियुतुडगु भगवंतु डव्ययु डादि ने शक्तुल नाश्रयिंचि
ब्रह्म शक्रादि रूपमुल विनोदिंचॆ ग्रममुननो येककालमुननो
प्रकृति गुणंबुल वर्ति्ट ग्रहिंचुट येकत्वमुन नुंडु नीश्वरुंडु
आ. भिन्न मूर्ति यगुचु वॆवकुविधंबुल, नेल युंडु नितनि केमि वच्चॆ
नुंडकुन्न दापसोत्तम ! तॆलुपवे !, वेड्कतोड नाकु वेदवेद्य ! ।। 56 ।।

व. अनिन नुत्तरानंदनु वचनंबुलकु निरुत्तरुंडु गाक सदुत्तर-प्रदान-कुतूहलुंडै
लोकोत्तर-गुणोत्तरुंडैन तापसोत्तमुंडु दन मनंबुन ।। 57 ।।

म. परुडे यीश्वरुडे महामहिमुडे प्रादुर्भव स्थान सं-
हरण क्रीडनुडे त्रिशक्ति-युतुडे यंतर्गत ज्योतिये
परमेष्ठि प्रमुखामराधिपुलकुन् ब्रापिंप राकुंडु दु-
स्तर मार्गंबुन देजरिल्लु हरि कि दत्त्वार्थिनै म्रॊक्कॆदन् ।। 58 ।।

व. मरियु सज्जन दुरित संहरणुंडुनु, दुर्जन निवारकुंडुनु, नखिल सत्त्वरूपकुंडुनु,
परमहंसाश्रम प्रवर्तमान मुनिजन हृदय कमल कर्णिका मध्यदीपकुंडुनु,
सात्वत श्रेष्ठुंडुनु, परम भक्ति युक्त सुलभुंडुनु, भक्तिहीन जन दुर्लभुंडुनु,

---

तापसोत्तम ! हे वेदविद् ! मुझे उत्साह के साथ विदित करो कि ईश (अधिकारी) हरि, विष्णु इस विश्व का सृजन, पालन, (एव) समापन करता है, बहुशक्तियुत अव्यय भगवान ने आदि (प्रारभ) में किन शक्तियों के आश्रित होकर, ब्रह्मा, शक्र (इन्द्र) आदि रूपों में विनोद किया। [सृष्टि का कार्य] क्रम से किया या एक ही काल में किया ? प्रकृति के गुणों के अनुसार [सृष्टि-कार्य] करते हुए एकत्व में स्थित रहनेवाले ईश्वर, [आ.] अनेक प्रकार के रूपों में क्योंकर रहता है ? नहीं रहने पर उसका क्या होता है (क्या बिगड़ता है) ? ५६ [व.] उत्तरानन्दन के ऐसे वचनों को सुनकर, निरुत्तर न होकर, सही उत्तर देने को कौतूहल से लोकोत्तर गुणों से श्रेष्ठ तापस-उत्तम ने अपने मन में, [इस प्रकार विचार किया।] ५७ [म.] पर (सबसे अतीत) हो, ईश्वर (अधिपति) हो, महामहिमामयी हो, सृष्टि-स्थिति-संहार की क्रीड़ा में मग्न हो, त्रिशक्ति से युक्त हो, अन्तर्गत ज्योति हो, परमेष्ठि (ब्रह्मा) प्रमुख अमराधिपों को भी अप्राप्य दुस्तर मार्ग में तेजोमय होनेवाले हरि को तत्त्वार्थी हो [मैं] नमस्कार करता हूँ। ५८ [व.] और सज्जनों के पापों को मिटानेवाले, दुष्टों का निवारण करनेवाले, अखिल (समस्त) सत्त्व के रूपात्मक, परमहंसों के आश्रमों में (संन्यासी की स्थिति में) रहनेवाले मुनिजनों के हृदय-कमल-कर्णिकाओं के मध्य दीप्तिमान होनेवाले, सात्वत (यादवों में एक शाखा) लोगों में श्रेष्ठ, परम भक्तियुक्त लोगों के लिए सुलभ, भक्तिहीन जनों के लिए दुर्लभ, निरतिशय निरुपम एवं निरवधिक रूपों वाले,

निरतिशय निरुपम निरवधिक प्रकारुंडुनु, निजस्वरूप ब्रह्मविहारुंडुनु नैन यप्परमेश्वरुनकु नमस्करिंचेद ॥ 59 ॥

उ. ए विभु वंदनार्चनमु ले विभु चिंतयु नामकीर्तनं
बे विभु लील लद्भुतमु लॅव्वनि संश्रवणंबु सेय दो-
षावलि बासि लोकुमु शुभायतवृत्ति जॅलंगु नंड्रु ने
ना विभु नाश्रयिंचेद नघौघ निवर्तनु भद्र कीर्तनुन् ॥ 60 ॥

उ. ए परमेशु पादयुग सॅप्पुडु गोरि भजिंचि नेर्परुल्
लोपलि बुद्धिलो नुभय लोकमुलंदुल सक्ति बासि ये-
तापमु लेक ब्रह्मगति वारु गतश्रमुले जरिंतु रे
ना परमेशु म्रोक्केंद नघौघ निवर्तनु भद्रकीर्तनुन् ॥ 61 ॥

चं. तपमुलु सेसियैन मरि दानमु लॅन्नियु जेसियैन ने
जपमुलु सेसियैन फलसंचय मॅव्वनि जेर्पकुन्न हे-
यपदमुले दुरंत विपदंचित रीतिग नॊप्पुचुंडु न-
य्यपरिमितुन् भजिंचेद नघौघ निवर्तनु भद्रकीर्तनुन् ॥ 62 ॥

म. यवन व्याध पुळिंद हूण शक कंकाभीर चंडाल सं-
भवुलुं दक्किन पापवर्तनुलु ने भद्रात्मु सेविंचि भा-

निजस्वरूप में ब्रह्मतत्त्व में विहार करनेवाले उस परमेश्वर की वन्दना करता हूँ। ५९ [उ.] जिस विभु की वन्दना एवं अर्चना, जिस विभु का चिन्तन और नाम-कीर्तन, जिस विभु की लीलाएँ अद्भुत है [और] जिसके संश्रवण करने से दोषावली (पापावली) से छूटकर [नर] शुभ-आयत (-विस्तार) की वृत्ति से शोभित होते है, मैं उस विभु की शरण में जाता हूँ, जो पाप-प्रवाह को हटानेवाला है, जो शुभ कीर्तनों (जिसकी स्तुति शुभ प्रदान करती है) वाला है। ६० [उ.] जिस परमेश के चरण-युगल की, कामना कर, चतुर लोग सदा भजन कर आन्तरिक बुद्धि में दोनों लोकों के प्रति आसक्ति न रखते हुए, विना किसी ताप के ब्रह्मगति को प्राप्त कर, श्रम दूर कर लेते हुए, आनन्द के साथ संचरण करते हैं, उस परमेश को मैं नमस्कार करता हूँ, जो पाप-प्रवाह को हटानेवाला है, शुभ-कीर्तनों वाला है। ६१ [चं.] तप करके भी और अनेक प्रकार के दान करके भी, अनेकों जप करके भी प्राप्त होनेवाले फलसंचय को जिसे समर्पित न करने पर, जीवन हेय बनकर भयंकर विपत्तियों से युक्त होकर तड़पता है, ऐसे अपरिमित (असीम) का भजन करता हूँ, जो पाप-प्रवाह को हटाने वाला है, शुभकीर्तनों वाला है। ६२ [म.] यवन, व्याध, पुलिन्द, हूण, शक, कंक, आभीर, चण्डाल (आदि) वंशों में उत्पन्न होनेवाले लोग और [अन्य] पापी लोग जिस भद्रात्मा की सेवा कर भागवत-श्रेष्ठों को प्राप्त

गवत श्रेष्ठुल डासि शुद्धतनुलन् गल्याणुलै युंडु रा
यविकारं भ्रभविष्णु नादु मदिलो नश्रांतमुन् म्रॊक्कॆदन् ॥ 63 ॥

म. तपमुल् सेसिनचो मनो नियतिनो दान व्रतप्रीतिनो
जपमंत्रंबुलनो श्रुति स्मृतुलनो सद्भक्तिनो यॆट्लु ल-
ब्धपवुंडै ननि ब्रह्म रुद्र मुखरुल् भाविंतु रॆव्वानि न-
य्यपवर्गाधिपु डात्ममूर्ति सुलभुंडौ गाक ना कॆप्पुडुन् ॥ 64 ॥

कं. श्रीपतियु यज्ञ पतियु प्र,
जा पतियुन् बुद्धिपतियु जगदधिपति युन्
भूपतियु यादव श्रे,
णीपतियुं गतियु नैन निपुणु भजितुन् ॥ 65 ॥

म. अणुवो काक कडु न्महाविभवुडो यच्छिन्नुडो छिन्नुडो
गुणियो निर्गुणियो यटंचु विबुधुल् गुंठीभवत्तत्त्व मा-
र्गणुलै ये विभु पादपद्म भजनोत्कर्षंबुलन् दत्त्ववो-
क्षणमुं जेसॆद रट्टि विष्णुन् बरमुन् सर्वात्मु सेविंचॆदन् ॥ 66 ॥

म. जगदुत्पादन बुद्धि ब्रह्मकु मदिन् संधिप नूहिंचि ये
भगवंतुंडु सरस्वति बनुप ना पद्मास्य दा नव्विभुन्
मगनिगा वरियिंचि तद्भुवन साम्राज्यस्थितिन् सृष्टि पा-
रगु जेसॆन् मुनु ब्रह्म नट्टि घनु नारंभितु सेविंपगन् ॥ 67 ॥

कर, शुद्ध शरीर वाले हो कल्याण की स्थिति में रहते हैं, ऐसे अविकार, प्रभविष्णु (सृष्टिकर्ता) का सदा अपने मन में नमस्कार (ध्यान) करता हूँ। ६३ [म.] [अनेकों] तप कर या मन को नियमित कर या दानव्रत-प्रीति से, जप-मंत्रादि से, या श्रुति एवं स्मृतियों के कारण या सद्भक्ति करने से, किस प्रकार से वह प्राप्त होगा ? ब्रह्मा, रुद्र आदि प्रमुख लोग जिसका विचार व ध्यान करते हैं, वह मोक्षाधिकारी, आत्ममूर्ति मेरे लिए सदा सुलभ हो रहे। ६४ [कं.] श्रीपति, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धिपति, जगत के अधिपति, भूपति, यादव श्रेणीपति, सबके लिए गतिस्वरूप जो निपुण है, उसका भजन [मैं] करता हूँ। ६५ [म.] अणु है या अधिक महाविभु है, अच्छिन्न है या छिन्न, गुणी है या निर्गुणी, ऐसा कहते हुए विबुध (ज्ञानी लोग) तत्त्वमार्ग की खोज में कुण्ठित होते हुए, जिस विभु के चरण-कमलों के भजन के उत्कर्ष से तत्त्व को देख लेते हैं, ऐसे विष्णु, परमेश, सर्वात्मा की सेवा करता हूं। ६६ [म.] जगत् की सृष्टि करने की भावना को ब्रह्मा के मन में सन्धान करने के निमित्त जिस भगवान् के सरस्वती के भेजने पर, उस पद्ममुखी ने उस विभु (ब्रह्मा) को पति के रूप में वरण कर, उस भुवन के साम्राज्य की स्थिति में सृष्टिकार्य में ब्रह्मा को प्रारम्भ

सी. पूर्णुडय्युनु महाभूतपंचक योगमुन मेनुलनु बुरमुलु सृजिंचि
पुरमुललो नुंडि पुरुषभावंबुन दीपिंचु नॆव्वडु धीरवृत्ति
बंचभूतमुलनु बदुनोकं डिद्रियमुल ब्रकाशिंपिंचि भूरिमहिम
षोडशात्मकुडन शोभिल्लि जोवत्वनृत्य विनोदंबु नॆऱपुचुंडु

ते. नट्टि भगवंतु डव्ययु डच्युतुंडु,
मानसोदित वाक्पुष्प मालिकलनु
मंजुनवरस मकरंद महिम लुट्ट,
शिष्ट हृद्भाव लीलल जेयुगात ॥ 68 ॥

उ. मानधनुल् महात्मुलु समाधिनिरूढुलु यन्मुखांबुज
ध्यान मरंद पानमुन नात्मभयंबुल बासि मुक्तुलै
लूनत नोंद रट्टि मुनिलोक शिखामणिकिन् विशंकटा
ज्ञानतमो नभोमणिकि साधुजनाग्रणि केनु म्रॊक्कॆदन् ॥ 69 ॥

व. अनि यिट्लु हरि गुरु वंदनंबु सेसि शुक योगींद्रुं डिट्लनियॆ ॥ 70 ॥

म. अविरोधंबुन नीवु नन्नडुगु नी यर्थंबु मुन् ब्रह्म मा-
धवु चेतन् विनि नारदुं डडिगिनन् दथ्यंबुगा जॆप्पॆ मा-

में प्रारंगत बनाया था, ऐसे घनात्मा (महान्) की सेवा का प्रारम्भ करता हूँ। ६७ [सी.] पूर्ण होते हुए भी पंचमहाभूत के योग से शरीरों, पुरों का सृजन कर, पुरों में स्थित हो जो पुरुषभाव को दीप्त करता रहता है, और धीरवृत्ति से पंचभूतों को, ग्यारह इन्द्रियों में प्रकाशित करवाते हुए, भूरि (अत्यन्त) महिमा के साथ षोड़शात्मा हो सुशोभित होते हुए, जीवन के नृत्य (नाटक) को विनोद के लिए जो घटित करता रहता है, [ते.] वह भगवान्, अव्यय, अच्युत, मानस से उत्पन्न होनेवाले वाक् रूपी फूलों की मालाओं में, मंजुल तथा नवरसों से पूर्ण मकरन्द की महिमाओं से भरे हुए शिष्ट हृदयों की भावलीलाओं में अभिव्यक्त होता रहे। ६८ [उ.] मानधनी, महात्मा, समाधिनिष्ठ लोग जिसके मुख-कमल के ध्यान रूपी मधुरस का पान कर आत्मभय से विरहित तथा मुक्त हो, मृत नहीं होते (अमर हो जाते हैं), ऐसे मुनिलोक श्रेष्ठ को, निर्भीक हो विचरण करनेवाले अज्ञान रूपी तम के लिए नभो-मणि (सूर्य) को, साधुजन के अग्रणी को मैं नमस्कार करता हूँ। ६९ [व.] इस प्रकार हरि एवं गुरु की वन्दना कर, शुक योगीन्द्र ने ऐसा कहा। ७० [म.] हे मानवलोकेश्वर (राजा)! अविरोध [भाव] से तुमसे पूछे गये अर्थ (तात्पर्य) का जिसे पूर्व में माधव के द्वारा ब्रह्मा ने सुनकर, नारद के पूछने पर सही-सही (स्पष्ट) बताया था, सुन्दर रूप में श्रवणीय हो (सुनने योग्य) हो, अति अद्भुत रूप से

नव लोकेश्वर ! नारदुंडु वॅनुकन् नाकुं बसारिचॅ सं-
श्रवणीयंबु महाद्भुतंबु विनु मा संदेह विच्छेदमुन् ॥ 71 ॥

अध्यायमु—५

नारदुंडु ब्रह्मनु प्रपंच प्रकारं बडुगुट

व. नारदुंडु ब्रह्म किट्लनियॅ ॥ 72 ॥

म. चतुरास्युंडवु वेल्पु पॅद्दवु जग त्सर्गानुसंधायि वी-
श्रुति-संघातमु नी मुखांबुजमुलन् शोभिल्लु शब्दार्थ सं-
युतमै सर्वमु नी करामलकमै युंडुं गदा ! भारती
सति यिल्लालट नीकु नो जनक ! ना संदेहमुन् वापवे ! ॥ 73 ॥

शा. प्रारंभादि विवेक मॅव्वडीसगुन् ? ब्रारंभ संपत्ति का-
धारं बॅय्यदि ? येमि हेतुवु ? यदर्थंबे स्वरूपंबु सं-
सारानुक्रम मूर्णनाभि पगिदिन् सागितु वॅल्लप्पुडुन्
वारं बॅन्नडु लेदु नी मनुवु दुष्प्रापंबु वाणीश्वरा ! ॥ 74 ॥

शा. नाकुं जूडग नीवु राज वनुचुन्नाडन् यथार्थस्थितिन्
नी कंटॅ घनु डॅवक राजु गलडो नी वितकुन् राजवो

सन्देह के मूल का विच्छेद करनेवाले तत्त्व को पूर्व में नारद ने मुझे प्रसादित किया था। सुनो ! ७१

अध्याय—५

नारद का ब्रह्मा से संसार-क्रम पूछना

[व.] नारद ने ब्रह्मा से कहा (पूछा)। ७२ [म.] [तुम] चतुर्मुख वाले हो, देवताओं में बड़े हो, जगत् की सृष्टि का सन्धान करनेवाले हो, ये श्रुतिसमूह (वेद) तुम्हारे मुखारविन्दों मे शोभित होते हैं [और] शब्द तथा अर्थ के साथ सब कुछ तुम्हारे लिए करामलक [हाथों में आँवले के समान सुलभ] होता है न ! सती भारती तुम्हारी गृहिणी है न ! पिताजी ! मेरे सन्देह का निवारण करो न ! ७३ [शा.] हे वाणीश्वर ! प्रारम्भ (सृष्टि का) आदि का विवेक (ज्ञान) को कौन प्रदान करता है ? [सृष्टि के] प्रारम्भ की सम्पत्ति का आधार क्या है ? कारणस्वरूप कौन है ? क्या प्रयोजन है ? उसके लिए किस रूप में संसार के अनुक्रम को ऊर्णनाभि (मकड़ी) के समान सदा चलाते रहते हो ? फिर उसका कोई पार (अंत) नही है (सृष्टिकार्य का कहीं अंत नहीं है)। ऐसा तुम्हारे जीवन की गति दुष्प्राप्य है (समझ में आती नहीं है)। ७४ [शा.] मेरी

नी के लाभमु रादलंचि जगमुल् निर्मिचॅ दी चेतना
नीकं बॅंदु जनिंचु नुंडु नणगुन् निक्कंबु भाषिपुमा ॥ 75 ॥

म. सदस त्संगति नाम रूप गुण दृश्यंबैन विश्वंबु नी
हृदधीनंबु गदा! घनुल् समुलु नी कॅव्वारुनुन् लेरु नी
पद मत्युन्नत मिट्टि नीवु तपमुल् प्रावीण्य युक्तुंडवै
मदि ने यीश्वरु गोरि चेसितवि तन्मार्गंबु सूचिपवे ॥ 76 ॥

शा. अंभोजासन! नीकु नीशुडु गलं डंटेनि दत्पक्षमं
दंभोजातभवांड मे विभुनि लीलापांग संभ्रांतिचे
संभूतंबगु वर्तमानमगु संछन्नंबगन् द· द्विभुन्
संभाविपग वच्चु ने तलप ने चंदंबु वाडाकृतिन् ॥ 77 ॥

कं. तोयज संभव! ना की, तोयमु विवरिंपु चाल दोचिन ने ना
तोयमु वारिकि नन्युल, तोयमुलं जॅंदकुंड ध्रुवमॅरिंगितुन् ॥ 78 ॥

व. देवा! भूतभविष्य द्वर्तमानंबुलगु व्यवहारंबुलकु नीव विभुंडवु। नी वॅरुंगनि यर्थं बिचुकयु लेदु। विश्वप्रकारंबु विनिपिंपु मनिन विनि विकसित मुखुंडै विरिंचि यिट्लनियॆ ॥ 79 ॥

दृष्टि में तुम राजा हो। यथार्थ स्थिति है कि तुमसे बड़ा कोई राजा और है क्या? अथवा तुम ही एक मात्र राजा (अधिकारी) हो क्या? किस लाभ की प्राप्ति के लिए जगतों का निर्माण करते हो? यह सब चैतन्य-अनीक (-समूह) (प्राणि-कोटि) किसमें से पैदा होती और समाप्त होती है? उस (परम) सत्य को विदित करो न। ७५ [म.] सत्, असत् की संगति में नाम-रूप गुण से दृश्यमान यह विश्व तुम्हारे हृदय के अधीन होता है न! तुम्हारे बराबर, कोई घनात्मा नही है, तुम्हारा पद अति-उन्नत है, ऐसे तुमने प्रवीणता के साथ मन में जिस ईश्वर (अधिकारी) के प्रति, कामना कर, तप किये थे, उस मार्ग की सूचना दो न (विदित करो)। ७६ [शा.] हे अम्भोजासन वाले (कमलासन वाले)! तुम्हारे लिये भी कोई ईश यदि है तो, किस विभु की लीला के अपांग (कटाक्ष) से, अंभोजातभव-अंड (ब्रह्मांड) का सृजन, स्थिति, तथा समापन होता रहता है? उस विभु की भावना (कल्पना) की जा सकती है क्या? वह किस आकार-प्रकार से रहता है? ७७ [क.] हे तोयज-संभव (ब्रह्मा)! मुझे इस विधान का विवरण दो, उसके स्फुरण से मैं [अपने] बराबर के लोगों को, वे अन्य मार्गों में भटक न जायें, इस प्रकार तथ्य से विदित करूँगा। ७८ [व.] देव! भूत, भविष्य, वर्तमान की संघटनाओं के तुम विभु हो। तुम्हें अविदित कोई अर्थ (विधान) कुछ भी नहीं है। विश्व के प्रकार (क्रम) को सुनाओ।

कं. रारा ? वुधुलु विरक्तुलु, गारा ? यीरीति नडुगगा नेररु वि
स्मेरावहमु भवन्मत, मौरा ! ना पेंडि मर्म मडिगिति वत्सा ! ॥ 80 ॥

शा. नाना स्थावर जंगम प्रकरमुल् नायंत निर्मिप वि-
ज्ञाणं वेमियु लेक तोट्रपडगा नाकुन् समस्तानु सं-
धानारंभ विचक्षणत्वमु महोदारंवुगा निच्चें मु
न्ने ना यीश्वरु नाज्ञ गाक जगमुल्निर्मिप शक्तुंडने ॥ 81 ॥

म. अनघा ! विश्वमुनॅल्ल दीप्तमुग जेयन् ने समर्थुंडने ?
यिन चंद्रानल तारका ग्रहगणं वे रीति ना रीति नॅ-
व्वनि दीप्तं व्रतिदीप्तं मय्यॅ भुवन व्रातंवु, दद्दीप्ति चे
ननुदीप्तंवगु नट्टि यीश्वरुन के नश्रांतमुन् म्रोक्कॅदन् ॥ 82 ॥

म. विनुमा यीश्वरु दृष्टिमार्गमुन नावेशिप शंकिचि सि-
ग्गुन संकोचमु नोंदु माय वलनं गुंठीभव त्प्रज्ञ चे
ननु लोकेश्वरु डंचु म्रोक्कु मतिहीन व्रातमुं जूचि ने
ननिशंवु न्नगि धिक्करितु हरिमाया कृत्यमंचुन् सुता ! ॥ 83 ॥

व. मरियु देहंवुनकु द्रव्यंवुलैन महाभूतंवुलुनु, जन्मनिमित्तंवुलैन कर्मंवुलुनु, कर्मक्षोभकंवैन कालंवुनु, काल परिणाम हेतुवैन स्वभावंवुनु, भोक्तयैन

[ऐसा] कहने पर सुनकर, विकसित मुख वाले हो विरिंचि (ब्रह्मा) ने इस प्रकार कहा। ७९ [कं.] [पूर्व में] वुध नहीं आए क्या ? [वे] विरक्त नहीं हुए क्या ? किन्तु कोई इस प्रकार पूछ नहीं पाया। ओहो ! तुम्हारा अभिमत विस्मित करनेवाला है। वेटे ! तुमने मेरे प्रभु के मर्म को पूछ लिया। ८० [शा.] नाना प्रकार के चर-अचर [प्राणियों] के समूह की सृष्टि स्वयं करने की निपुणता के विलकुल न होने से लड़खड़ा गया। तव मुझे समस्त प्रकार के सन्धान (सम्मेलन) के आरम्भ के विवेक को महान् उदारता से प्रदान किया। उस ईश्वर की आज्ञा के विना मैं इन जगतों का निर्माण करने में शक्तिशाली कहाँ हुआ ? ८१ [म.] अनघ ! समस्त विश्व को प्रदीप्त करने में मैं समर्थ हूँ क्या ? सूर्य, चन्द्र, अग्नि, तारे, ग्रहगण जिस रीति से जिसके कारण प्रदीप्त हुए, उसी प्रकाश से यह भुवन-समूह अनुदीप्त हुए है। ऐसे ईश्वर को मैं सदा नमस्कार करता हूँ। ८२ [म.] वेटे ! सुनो ! ईश्वर की दृष्टि के मार्ग में प्रवेश करने मे संकोच कर, माया के कारण लाज और संकोच को प्राप्त कर, अपनी प्रज्ञा के कुण्ठित होने पर मुझे लोकेश्वर समझकर प्रार्थना करनेवाले मतिहीन जनसमूह को देखकर मैं इसे भी हरि की माया समझकर, धिक्कारते हुए हँस लेता हूँ। ८३ [व.] और शरीर के लिए द्रव्य वने हुए महाभूतों को, जन्म के कारण-स्वरूप कर्मों को, (और) कर्मों

जीवुंडुनु, वासुदेवुंडुगा नेरुंगुमु । वासुदेव व्यतिरिक्तंबु लेदु । सिद्धंबु । नारायण नियम्यंबुलु लोकंबुलु । देवतलु नारायण शरीर संभूतुलु वेद याग तपो योग गति विज्ञानंबुलु नारायण परंबुलु । ज्ञान साध्यंबगु फलंबु नारायणाधीनंबु कूटस्थुंडु, सर्वात्मकुंडु, सर्वद्रष्टयु नैन यीश्वरुनि कटाक्ष विशेषंबुन सृजियिंपं बडि, प्रेरितुंडनै, सृज्यंबैन प्रपंचंबु सृजियिंचुंडुदु। निर्गुणुंडैन यीश्वरुनि वलन रजस्सत्त्व तमो गुणंबुलु प्रभूतंबुलै, युत्पत्ति-स्थिति लयंबुलकु बालुपडि, कार्य कारण कर्तृत्व भावंबुलंदु द्रव्यंबुलैन महाभूतंबुलु, ज्ञानमूर्तुलैन देवतलु, क्रियारूपंबुलैन यिंद्रियंबुलु नाश्रयंबुलुगा नित्यमुक्तुंडय्युनु, माया समन्वितुंडैन जीवुनि बंधिंचु । जीवुलकु नावरणंबुलै युपाधिभूतंबुलैन मूडु लिंगंबुलं जेसि परुलकु लक्षितंबु गाक तनकु लक्षितंबैन तत्त्वंबु गल यीश्वरुं डिव्विधंबुनं ग्रीडिंचुचुंडु ॥ 84 ॥

कं. आ यीशु डनंतुडु हरि, नायकु डी भुवनमुलकु नाकुन् मीकुन्
मायकु ब्राणि व्रातमु, केय्येडलन् लेदु नीश्वरेतरमु सुता ! ॥ 85 ॥

व. विनुमु माया विभुंडैन यीश्वरुंडु दन माय जेसि दैवयोगंबुनं ब्राप्तंबुलन काल जीवादृष्ट स्वभावंबुलु विविधंबुलु सेय निश्चयिंचि गैकोनिये। ईश्वराधिष्ठितंबैन महत्तत्त्वंबु वलन नगु कालंबुन गुणव्यतिकरंबुनु,

---

के क्षोभकारक काल को, काल के परिणाम के हेतुभूत स्वभाव को, और भोक्ता (भोगनेवाले) जीव को वासुदेव ही जान लो! वासुदेव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह तथ्य है। लोक सब नारायण से नियोजित हैं। [समस्त] देवता नारायण के शरीर से संभूत (उत्पन्न) हैं। वेद, याग, तपोयोग, गति, विज्ञान (सब कुछ) नारायण-परक हैं। ज्ञान से साध्य होनेवाला फल नारायण के अधीन है। कूटस्थ (शरीर में जीव के रूप में स्थित), सर्वात्मा सर्वद्रष्टा ईश्वर के कृपाविशेष के कारण सृजित होकर, प्रेरित होकर, सृजित हुए संसार का, सृजन करता रहता हूँ। निर्गुण ईश्वर के कारण रजस्, सत्त्व, तमोगुण उत्पन्न होकर, उत्पत्ति, स्थिति, लय [के कार्य में] प्रवर्तित हो, कार्य-कारण-कर्तृत्व भावनाओं में, द्रव्य (अंश) बने महाभूत, ज्ञानमूर्ति देवता, क्रिया रूपी इन्द्रिय इनके आश्रित होकर, नित्यमुक्त होते हुए भी, माया से समन्वित जीव को बाँध लेते हैं। जीवों के आवरण हो, उपाधि-स्वरूप तीन (त्रिगुण, पंचभूत, और इंद्रिय) लिंगों (चिह्नों) में दूसरों को दिखाई न पड़ते हुए, अपने आप को दिखाई पड़नेवाले तत्त्व वाला ईश्वर इस प्रकार क्रीड़ा करते रहता है। ८४ [कं.] पुत्र! वह ईश अनन्त है। इन भुवनों का, मेरा, तुम्हारा (और) माया का, प्राणिसमूह का नायक हरि है। कहीं भी ईश्वर के अतिरिक्त और (अन्य) कुछ नहीं है। ८५ [व.] सुनो! माया के विभु ईश्वर ने अपनी माया के कारण दैवयोग से प्राप्त काल, जीव, अदृष्ट, स्वभावों को नाना

स्वभावंबुन बरिणामंबुनु, जीवादृष्ट भूतंबैन कर्मंबुन जन्मंबुनु नय्यें। रजस्सत्त्वंबुलचे नुपबृंहितमै विकारंबु नोंदिन महत्तत्त्वंबु वलनं दमः प्रधानंबै द्रव्यज्ञान क्रियात्मकंबगु नहंकारंबु गलिगें। अदियु रूपांतरंबु नोंदुचु, द्रव्यशक्तियैन तामसंबु क्रियाशक्तियैन राजसंबु, ज्ञान शक्तियैन सात्विकंबुनु नन मूडु विधंबु लय्यं। अंदु भूतादियैन तामसाहंकारंबु वलन नभंबु गलिगें। नभंबुनकु सूक्ष्मरूपंबु, द्रष्टृ दृश्यंबुलकु बोधकंबैन शब्दंबु गुणंबगु। नभंबु वलन वायुवु गलिगें। वायुवुनकु परान्वयंबुन शब्दंबु स्पर्शंबु ननु रेंडु गुणंबुलु गलिगि युंडुनु। अदि देहंबुनंदुंडुटं जेसि प्राणरूपंबै यिंद्रियमन श्शरीर पाटवंबुलन योज स्सहो बलंबुलकु हेतुवै वर्तिचु। वायुवु वलन रूप स्पर्श शब्दंबु लनियेंडि गुणंबुलु मूटि तोड देजंबु गलिगें। तेजंबु वलन रस रूप स्पर्श शब्दंबु लनियेंडि नालगु गुणंबुलतोड जलंबु गलिगें। जलंबु वलन गंध रस रूप स्पर्श शब्दंबु लनियेंडि गुणंबु लयिदिंटितो बृथिवि कलिगें। वैकारिकंबैन सात्त्विकाहंकारंबु वलन जंद्र दैवतंबैन मनंबु गलिगें। मरियु दिक्कुलु, वायुवु अर्कुंडु, प्रचेतस्सु, अश्विनुलु, वह्नि, इंद्रुडु, उपेंद्रुंडु, मित्रुंडु प्रजापतियु ननियेंडि दश देवतलु गलिगिरि। तैजसंबैन राजसाहंकारंबु वलन दिग्दैवतंबैन श्रवणेंद्रियंबु, वायुदैवतंबैन

प्रकार से रचने का निश्चय कर लिया। ईश्वर से अधिष्ठित महत्तत्त्व से होनेवाले काल से गुण के व्यधिकरण, (तथा) स्वभाव से परिणाम, जीव के अदृष्टभूत कर्म से जन्म हुए। रजस्, सत्त्व के कारण विस्तृत होकर, विकार को प्राप्त महत्तत्त्व से तमःप्रधान होकर, द्रव्यज्ञान क्रियात्मक होनेवाला अहंकार उत्पन्न हुआ। वह भी रूपान्तरित होता हुआ द्रव्य शक्ति वाला तामसी, क्रिया शक्तिवाला राजसी; ज्ञान शक्तिवाला सात्त्विकी —ऐसे तीन प्रकार का हो गया। उनमें भूत आदि [गुण] तामसाहंकार से आकाश हुआ। नभ से सूक्ष्म रूप वाला, द्रष्टा और दृश्य के लिए बोधक शब्द-गुण पैदा होता है। नभ से वायु पैदा हुआ। वायु परा-अन्वय (दूसरे से मिलन) से शब्द-स्पर्श कहलानेवाले दो गुणों को लिये होता है। उसके देह में स्थित होने के कारण प्राण रूपी हो इन्द्रिय-मन-शरीर को पटुता देनेवाले हो, ओजस्, सहस्, बल के लिए हेतु-भूत हो प्रवर्तित होता है। वायु से रूप, स्पर्श, शब्द कहलानेवाले तीन गुणों के साथ तेज उत्पन्न हुआ। तेज से रस, रूप, स्पर्श, शब्द कहलानेवाले चार गुणों के साथ जल पैदा हुआ। जल से गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द कहलानेवाले पाँच गुणों के साथ पृथ्वी आविर्भूत हुई। विकार पानेवाले सात्त्विक अहंकार से चन्द्र जिसका देव है, वह मन पैदा हुआ। और दिशाएँ, वायु, अर्क (सूर्य), प्रचेतस, अश्विनी देवता, वह्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र, प्रजापति कहलानेवाले दस देवता पैदा हुए। तेजस्वरूप राजसी

त्वगिंद्रियंबु, सूर्यदैवतंबैन नयनेंद्रियंबु, प्रचेतोदैवतंबैन रसनेंद्रियंबु, अश्विनीदैवतंबैद्रदै घ्राणेंद्रियंबु, वह्निदैवतंबैन वागिंद्रियंबु, इंद्रदैवतंबैन हस्तेंद्रियंबु, उपेंद्रदैवतंबैन पादेंद्रियंबु, मित्रदैवतंबैन गुदेंद्रियंबु, प्रजापति-दैवतंबैन गुह्येंद्रियंबु ननियेंडि दशेंद्रियंबुलुनु, बोधजन कांतःकरणैक भागंबैन बुद्धियु, क्रियाजनकांतःकरणंबैन प्राणंबुनु गलिगें। इट्टि श्रोतादुलगु दशेंद्रियंबुलतो गूडिन भूतेंद्रिय मनोगुणंबुलु वेर्वेरुग ब्रह्मांड शरीर निर्माणंबुनं दसमर्थंबुलगु नपुडु भगवच्छक्ति प्रेरितंबु लगुचु नेकीभविंचि समष्टि व्यष्ट्यात्मकत्वंबु नंगीकरिंचि चेतना चेतनंबुलं गल्पिचें। अट्टि यंडंबु वर्षायुत सहस्रांतंबु दनुक जलंबुनं दुंडें। काल कर्म स्वभावंबुलं दगुलुवडक समस्तमुनु जीवयुक्तमुग जेयु नीश्वरुं डचेतनंबुनु सचेतनंबुग नोनर्चें। अंत गाल कर्म स्वभाव प्रेरकुंडैन परमेश्वरुंडु जीवरूपंबुन महावरण जलमध्य स्थितंबैन ब्रह्मांडंबु लोनु चोच्चि सविस्तरंबु गाविंचि यट्टि यंडंबु भेदिंचि निर्गमिंचें। एट्लंटेनि ॥ 86 ॥

कं. भुवनात्मकु डा ईशुडु, भवनाकृतितोड नुंडु ब्रह्मांडंबुन्
विवरमुलो बदुनालुगु, विवरंबुलुगा नोनर्चे विशदंबुलुगन् ॥ 87 ॥

म. बहु पादोरु भुजान नेक्षण शिरः फाल श्रवो युक्तुडै
विहरिंचुन् बहुदेहि देहगतुडै विद्वांसु लूहिंचि त-

अहंकार से दिशाएँ जिसके देवता हैं, ऐसा श्रवणेन्द्रिय, वायु जिसका देवता है, ऐसा त्वक्-इन्द्रिय, सूर्य जिसका देवता हो, ऐसा नयनेन्द्रिय, प्रचेत देवता है ऐसा रसनेन्द्रिय, अश्विनी जिसके देवता हैं ऐसा घ्राणेन्द्रिय, वह्नि देवता है वागिन्द्रिय, इन्द्र देवता है ऐसा हस्तेन्द्रिय, उपेन्द्र देवता है ऐसा चरणेन्द्रिय, मित्र देवता है ऐसा गुदेन्द्रिय, प्रजापति देवता है ऐसा गुह्येन्द्रिय, [ऐसा] कहलानेवाले दस इन्द्रिय, बोधजनक अन्तःकरण स्वरूप बुद्धि; क्रियाजनक अन्तःकरण स्वरूप प्राण उत्पन्न हुए। ऐसे श्रोत्रादि दस इन्द्रियों से युक्त हो भूतेन्द्रिय मन तथा गुण ने अलग-अलग [ब्रह्माण्ड-शरीर के निर्माण में जब असमर्थ हुए तब भगवान की शक्ति से प्रेरित होकर एक होते हुए समष्टि तथा व्यष्ट्यात्मकता को स्वीकार कर चेतन, अचेतन की कल्पना की।] ऐसा अण्ड दस सहस्र सहस्र (कोटि) वर्षों तक जल में रहा। काल, कर्म, स्वभावों में लिप्त न होते हुए समस्त को जीव युक्त बनानेवाले ईश्वर ने अचेतन को सचेतन बनाया। तब काल-कर्म स्वभाव के प्रेरक परमेश्वर ने जीवरूप में महाआवरण के जल के बीच में स्थित ब्रह्माण्ड में प्रवेश कर, उसका विस्तार किया। और [ऐसे अण्ड को भेदकर बाहर निकल पड़ा। वह कैसे सम्भव हुआ, ऐसा पूछने पर], ८६ [कं.] वह ईश भुवनात्मक है। भुवन की आकृति में स्थित ब्रह्माण्ड में विवरण (विशद) रूप से चौदह विवर (रन्ध्र) बनाये। ८७ [म.] हे मेधानिधि!

द्बहुरूपावयवंबुलन् भुवन संपत्तिन् विचारिंतु रा-
महनीयाद्भुतमूर्ति योगिजन हृन्मान्युंडु मेधानिधी ! ॥ 88 ॥

व. विनुमु चतुर्दश लोकंबुलंदु मीदि येडु लोकंबुलु, श्री महाविष्णुवुनकुं गटि प्रदेशंबुन नुंडि यूर्ध्वदेहे मनियुनु, गिंदि एडु लोकंबुलु जघनंबुन नुंडि यथोदेह मनियुनं बलुकुदुरु। प्रपंच शरीरकुंडगु भगवंतुनि मुखंबु वलन ब्रह्म कुलंबु, बाहुवुल वलन क्षत्रियकुलंबु, ऊरुवुल वलन वैश्यकुलंबु, पादंबु वलन शूद्रकुलंबु जनियिंचें ननि चॅप्पुदुरु। भूलोकंबु गटि प्रदेशंबु, भुवर्लोकंबु नाभि, सुवर्लोकंबु हृदयंबु, महर्लोकंबु वक्षंबु, जनलोकंबु ग्रीव, तपोलोकंबु स्तनद्वयंबु, सनातनंबुनु ब्रह्म निवासंबुनु नैन सत्यलोकंबु शिरंबु, कटि प्रदेशंबतलंबु, तॊडलु वितलंबु, जानुवुलु सुतलंबु, जंघलु तलातलंबु, गुल्फंबुलु महातलंबु, पादाग्रंबुलु रसातलंबु, पादतलंबु पातालंबु ननि लोकमयुंगा भाविंतुरु। कॊंदऱु मऱियुं पादतलंबु वलन भूलोकंबुनु, नाभिवलन भुवर्लोकंबुनु, शिरंबु वलन स्वर्लोकंबुनु गलिगॆ ननि लोककल्पनंबु नॆंतुरु।

अध्यायमु—६

पुरुषोत्तमुनि मुखंबु वलन सर्वजंतु वाचाजालंबुनु वदधिष्ठात यगु वह्निपु

(धीनिधि) बहु चरण, जाँघ, भुजाएँ, मुख, आँख, सिर, माथे, कानों से युक्त हो अनेक देहों को धारण करनेवाला देहगत होकर विहार करता है। उस महनीय अद्भुत मूर्ति का, योगिजन के हृदय में मान्य होने वाले का, विद्वान लोग भावना कर, उसके अनेक अंगों रूपी भुवनों की सम्पदा का चिन्तन करते हैं। ८८ [व.] सुनो ! चौदह लोकों में ऊपर के सात लोक श्रीमहाविष्णु के कटि प्रदेश से ऊपर ऊर्ध्वदेह और नीचे के सात लोक जघन के नीचे अधोलोक कहलाते है। सारा संसार ही जिसका शरीर हो उस भगवान् के मुख से ब्रह्मकुल, बाहुओं से क्षत्रियकुल, जांघों से वैश्यकुल, चरणों से शूद्रकुल उत्पन्न हुए, ऐसा कहते हैं। कटि प्रदेश को भूलोक, नाभि को भुवर्लोक, हृदय को स्वर्लोक, वक्ष को महर्लोक, गर्दन को जनलोक, स्तनद्वय को तपोलोक, सिर को अतिपुरातन ब्रह्मनिवास बने हुए सत्यलोक, कटिप्रदेश को अतल, जघन को वितल, घुटनों को सुतल, जाँघ को तलातल, गुल्फ (टखने) को महातल, चरणाग्र को रसातल, चरणतल को पाताल, कहकर ऐसा [लोकमय की] भावना करते है। और भी कुछ लोग चरणतल से भूलोक, नाभि से भुवर्लोक, सिर से स्वर्लोक उत्पन्न हुए, ऐसा लोकों की कल्पना की गणना करते हैं।

अध्याय—६

पुरुषोत्तम के मुख से सर्वजन्तुओं का शब्दसमूह तथा उसकी

नुदयिंचें। चर्म रक्त मांस मेद शल्य मज्जा शुक्लंबुलु सप्तधातुवु लंडुरु। पक्षांतरंबुन रोमत्वङ्मांसास्थि स्नायु मज्जादि प्राणंबुलनु सप्तधातुवु लनि यंदुरु। अंदु रोमंबु लुष्णिक्छंदं बनियु, त्वक्कु धात्री छंदंबनियु, मांसंबु त्रिष्टुप्छंदं बनियु, स्नायु बनुष्टुप्छंदं बनियु, अस्थि जगती छंदं बनियु, मज्ज पंक्तिच्छंदं बनियु, प्राणंबुलु बृहती छंदं बनियु नादेशितुरु। हव्य कव्यामृतान्नंबुलकु मधुरादि षड्रसंबुलकु रसनेंद्रियंबुनकु रसाधीश्वरुंडैन वरुणुनिकिनि हरि रसनेंद्रियंबु जन्मस्थानंबु। सर्व प्राणादुलकु वायुवुनकु विष्णु नासिका विवरंबु निवासंबु। समीप दूर व्यापिगंधंबुनकु नोषधुलकु नश्विनी देवतलकु भगवंतुनि घ्राणेंद्रियंबु निवासंबु। देवलोक सत्यलोकंबुलकु तेजंबुनकु सूर्युनिकि सकल चक्षुवुलकु लोकलोचनु चक्षुरिंद्रियंबु स्थानंबु। दिशलकु नाकाशंबुनकुश्रुति भूतंबुलैन यंशंबुलकु शब्दंबुनकु सर्वेश्वरुनि कर्णेंद्रियंबु जन्मस्थानंबु। वस्तुसारंबुलकु वर्णनीय सौभाग्यंबुलकुं बरम पुरुषुनि गात्रंबु भाजनंबु। स्पर्शंबुनकु वायुवुनकु सकल स्निग्धंबुलकु दिव्यदेहुनि देहेंद्रियंबु गेहंबु। यूप प्रमुख यज्ञोपकरण साधनंबुलगु तरु गुल्म लतावुलकु बुरुषोत्तमुनि रोमंबुलु मूलंबुलु। शिलालोहंबुलु सर्वमयुनि नखंबुलु। मेघजालंबुलु हृषीकेशुनि केशंबुलु। मेरुंगुलु विश्वेश्वरुनि श्मश्रुवुलु। भूर्भुवस्सुवर्लोक

अधिष्ठाता अग्नि उत्पन्न हुई। चर्म, रक्त, मांस, मेदा, शल्य (हड्डियाँ), मज्जा, शुक्ल को सप्तधातु कहते हैं। दूसरे पक्ष में रोम, त्वचा, मांस, अस्थि, स्नायु, मज्जा, प्राण आदि को सप्तधातु कहते हैं। उनमें रोमों को उष्णिक् छन्द और त्वक् को धात्री छन्द और मांस को त्रिष्टुप् छन्द, और स्नायु को अनुष्टुप् छन्द, अस्थि को जगती छन्द, मज्जा को पंक्ति छन्द, प्राणों को बृहती छन्द, मानकर आदिष्ट (अभिहित) करते हैं। हव्यकव्यामृत अन्नों का,मधुर आदि षट्रसों का, रसनेन्द्रिय का, रसाधीश्वर बने हुए वरुण का जन्म-स्थान हरि का रसनेन्द्रिय है। सर्व प्राणी आदियों का, वायु का निवास स्थान विष्णु का नासिकारन्ध्र है। समीप-दूर तक व्याप्त होनेवाले गन्धों का, ओषधियों का, अश्विनी देवताओं का वासस्थान भगवान का घ्राणेन्द्रिय है। देवलोक-सत्यलोक का, तेज का, सूर्य का, सकलचक्षुओं का लोक-लोचन (भगवान) का चक्षुरिन्द्रिय वासस्थान है। दिशाओं का, आकाश का, श्रुति-भूत अंशों का, शब्द का जन्मस्थान सर्वेश्वर का कर्णेन्द्रिय है। वस्तु-सार (श्रेष्ठ भाग) का, वर्णनीय सौभाग्यों का, परमपुरुष का गात्र भाजन (पात्र, आधार) है। स्पर्श का, वायु का, सकल स्निग्धों का, दिव्य देह वाले का देहेन्द्रिय घर है। यूप-प्रमुख (-आदि) यज्ञोपयोगी वस्तुओं के साधनभूत तरुगुल्मलतादि के लिए पुरुषोत्तम के रोम मूल हैं। शिला, लोह (धातु) सर्वमय के नाखून हैं। मेघजाल हृषीकेश के केश हैं।

रक्षकुलैन लोक पालकुल पराक्रमंबुलकु, भूरादि लोकंबुल क्षेमंबुनकु, शरणंबुनकु नारायणुनि विक्रमंबुलु निकेतनंबुलु। सर्व कामंबुलकु नुत्तमंबुलैन वरंबुलकु दीर्घपावुनि पादारविंदंबु लास्पदंबुलु। जलंबुलकु, शुक्लंबुनकु, पर्जन्युनकु, प्रजापति सर्गंबुनकु, सर्वेश्वरुनि मेढ्रंबु संभव-विलयंबु। संतानंबुनकु, गामादि पुरुषार्थंबुलकु, चित्त सौख्यरूपंबु लगु नानंदंबुलगु, शरीर सौख्यंबुनकु नच्युतुनि युपस्थेंद्रियंबु स्थानंबु। यमुनिकि, मित्रुनिकि, मल विसर्गंबुनकु भगवंतुनि पायिवद्रियंबु भवनंबु। हिंसकु निऋतिकि मृत्युवुनकु निरयंबुनकु निखिल-रूपकुनि गुदंबु निवासंबु। पराभवंबुनकु, नधर्मंबुनकु नविद्यकु ननंतुनि पृष्ठ भागंबु सदनंबु। नद नदी निवहंबुनकु नीश्वरुनि नाडी संदोहंबु जन्म मंदिरंबु। पर्वतंबुलकु नधोक्षजुनि शल्यंबुलु जनक स्थलंबुलु। प्रधानंबुनकु नन्नरसंबुनकु समुद्रंबुलकु भूतलयंबुनकु ब्रह्मांडगर्भुनि युदरंबु निवेशंबु। मनोव्यापार रूपंबगु लिंग शरीरंबुनकु महामहिमुनि हृदयंब सर्गभूमि यगु। मरियु ॥ 89 ॥

आ. नीलकंधरुनकु नीकु नाकु सनत्कु
मार मुख्य सुत समाजमुनकु
धर्म सत्त्व बुद्धि तत्त्वमुलकु नीश्व
रात्म विनुमु परममैन नेलवु ॥ 90 ॥

चपलाएँ विश्वेश की मूँछें हैं। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक के रक्षक बने हुए लोकपालों के पराक्रमों का, भू आदि लोकों के शुभों के लिए, शरण के लिए नारायण का पराक्रम निकेतन है। सर्वकामनाओं का, अत्युत्तम वरों का, तीर्थ चरणवाले के चरण-कमल निलय हैं। जलों का, शुक्ल का, पर्जन्य का, प्रजापति की सृष्टि का, सर्वेश्वर का मेढ्र निलय है। सन्तान का, कामादि पुरुषार्थों का, चित्त के सौख्य रूपी आनन्दों का, शरीर के सुख का अच्युत की उपस्था [नामक]-इन्द्रिय स्थान है। यमराज का, मित्र का, मल विसर्जन का भगवान का पायु इन्द्रिय भवन है। हिंसा का, निर्ऋति (अशुभ) का, मृत्यु का, निरय (नरक) का, अखिल रूपात्मक का गुदा नामक इन्द्रिय निवास है। पराभव का, अधर्म का, अविद्या का, अनन्त का पृष्ठ भाग सदन है। नद एवं नदी समूहों का, ईश्वर का नाड़ी संदोह (मण्डल) जन्मस्थान है। पर्वतों का, अधोक्षज की हड्डियाँ जन्म-स्थल हैं। प्रधान (मूल प्रकृति) का, अन्नरस का, समुद्रों का, भूतलय का, ब्रह्माण्डगर्भ वाले का उदर निवासस्थान है। मनो-व्यापार रूपी लिंग (मानसिक) शरीर का, महामहिम का, हृदय सर्गभूमि (उत्पत्ति-स्थान) है। और, ८९ [आ.] सुनो! नीलकन्धर (शिव) का, तुम्हारा, मेरा, १ मार आदि पुत्रवर्ग का, धर्म, सत्त्वबुद्धि तत्त्वों का ईश्वरात्मा

सी. नर सुरासुर पितृ नाग कुंजर मृग गंधर्व यक्ष राक्षस महीज
सिद्ध विद्याधर जीमूत चारण ग्रह तारकाप्सरोगण विहंग
भूत तटिद्वसु पुंजंबुलुनु नीवु मुक्कंटियुनु महामुनुलु नेनु
सलिल नभस्स्थलचरमुलु मोवलेन विविध जीवुलतोडि विश्वमेल्ल

आ. विष्णुमयमु पुत्र ! वेयेल ब्रह्मांड, मतनि जेनलोन नणगि युंडु
बुद्धि नेरुगरादु भूत भवद्भव्य, लोकमेल्ल विष्णुलोन नुंडु ॥ 91 ॥

कं. मंडलमुलोन भास्करुडुंडुचु जगमुलकु दीप्तिनोसंगेडि क्रिय ब्र-
ह्मांडमुलोपल नच्युतुडुंडुचु बहिरंतमुल नोगि वेलिगिंचु ॥ 92 ॥

उ. अट्टि यनंत शक्ति जगदात्मुनि नाभि सरोजमंदु ने
बुट्टि यजिंपगा मनसु पुट्टिन यज्ञ पदार्थ जातमुल्
नेट्टन गानरामिकिनि निर्मलमैन तदीय रूपमुन्
गट्टिग बुद्धिलो निलिपि कंटि नुपायमु नामनंबुनन् ॥ 93 ॥

सी. पशु यज्ञ वाट यूपस्तंभ पात्र मृद्घट शराव वसंत कालमुलुनु
स्नेहौषधी बहुळोह चातुर्होत्र मत नामधेय सन्मंत्रमुलुनु
संकल्प ऋग्यजु स्साम नियुक्त वषट्कार मंत्रानुचरणमुलुनु
दक्षिणल् देवता द्यनुगत तंत्र व्रतोद्देश धरणी सुरोत्तमाळु

ही परम निलय है। ९० [सी.] पुत्र ! नर, सुर, असुर, पितृ [देवता], नाग (सर्प), कुंजर (हाथी), मृग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महीज (वृक्ष), सिद्ध, विद्याधर, जीमूत (मेघ), चारण, ग्रह, तारका, अप्सरागण, विहग, [आ.] भूत (प्राणि), तटि (विद्युत्), वसुगण (संपदाएँ), तुम ,त्रिनेत्र (शिव) और महामुनि, मैं, जलचर, नभचर, थलचर, आदि अनेक जीवों के साथ युक्त सारा विश्व विष्णुमय है। [आ.] हजार (बातें) क्यों ? ब्रह्माण्ड उसकी वितस्ति (१२ अंगुल भर की जगह) में दवा रहता है। इसे बुद्धि से जाना नहीं जा सकता (और) भूत, वर्तमान, भविष्य का समस्त लोक विष्णु में स्थित रहता है। ९१ [कं.] (सूर्य) मण्डल में भास्कर जिस प्रकार रहकर, जगतों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में रहते हुए अच्युत बाहर और भीतर के प्रदेशों को क्रम से प्रकाशित करता है। ९२ [उ.] ऐसी अनन्त शक्ति वाले, जगदात्मा के नाभिकमल में पैदा होकर, मैंने यज्ञ करने पर, यज्ञ-पदार्थों के वारे में विचार करने पर भी कुछ भी न दिखाई पड़ा, तव उसके निर्मल रूप को दृढ़ रीति से, बुद्धि में स्थिर किया, (तव) अपने मन में एक उपाय सूझा। ९३ [सी.] पशु, यज्ञस्थल, यूपस्तम्भ, पात्र, (बरतन) मिट्टी के बने घड़े, शराव (कड़ाही), वसन्तकाल, स्नेह (घृत), ओषधियाँ, बहुलोह, चातुर्होत्रमत नामक सन्मन्त्र, संकल्प, ऋक्, यजु, साम से निर्णीत हुए वषट्कार [आदि] मंत्रों का अनुचरण, दक्षिणाएँ (दान), देवतादि, अनुगत तंत्र, व्रत आदि के

ते. लर्पणंबुलु बोधायनादि कर्म सरणि,
मॊदलगु यज्ञोपकरण समिति
यंतयुनु नम्महात्मुनि यवयवमुलु,
गाग गल्पिंचि, विधिवत्प्रकारमुननु ॥ 94 ॥

कं. यज्ञांगि यज्ञफलदुडु, यज्ञेशुडु यज्ञ भोक्तयगु भगवंतुन्
यज्ञ पुरुषुना मानस, यज्ञमु गाविंचिति ददर्पण बुद्धिन् ॥ 95 ॥

कं. अप्पुडु ब्राह्मणुलॆल्लं, दप्पक ननु जूचि समुचित क्रियुलगुचो
न प्परमेशुन कभिमत, मॊप्पग दगु सप्ततंतुवुन् गाविंपन् ॥ 96 ॥

च. मनुवुलु देव दाननवुलु मानवनाथलु मर्त्यकोटि दा-
रनयमु वारि वारिकि प्रियंबगु देवतलन् भजिंपुचुन्
घनतर निष्ठ यज्ञमुलु गैकॊनि चेसिरि तत्फलंबुल
ग्यनुपम मूर्ति यज्ञमयुडैन रमावरुनंदु जॆंदगन् ॥ 97 ॥

कं. सुव्यक्त तंत्ररूपकु
डव्यक्तु डनंतु डभवु डच्युतु डीशु
डव्ययुडगु हरि सुरगण
सेव्युडु ग्रतु फलवुडगुट जेसिरि मखमुल् ! ॥ 98 ॥

कं. अगणुं डगु परमेशुडु, जगमुलु गल्पिंचु कॊरकु जतुरत माया
सगुणुंडगु गावुन हरि, भगवंतुं डनग बरगॆ भव्यचरित्रा ! ॥ 99 ॥

उद्देश्य से भूसर आदि [ते.] अर्पणाएँ, बोधायन आदि के [यज्ञ] कर्म के विधान आदि, यज्ञ के सब उपकरण (वस्तुओं) को उस महात्मा के अंगों के रूप में भावना कर, विधिवत् प्रकार से— ९४ [कं.] यज्ञांगी, यज्ञ फल देने वाला, यज्ञेश, यज्ञभोक्ता, भगवान को यज्ञपुरुष मानकर उसी को अर्पण करने की बुद्धि से मैंने मानसयज्ञ किया। ९५ [कं.] तब समस्त ब्राह्मणों ने अवश्य मुझे देखकर समुचित रीति से (प्रसन्न हो) क्रियारत होकर, उस परमेश की इच्छा के अनुकूल सप्ततंतु नामक यज्ञ किया। ९६ [च.] मनुगण, देव, दानव, राजा, मर्त्य-कोटि (प्राणिकोटि) ने निरंतर अपने-अपने इष्ट देवताओं का भजन करते हुए, घनतर-निष्ठा से यज्ञ किये और उन फलों को भी उस अनुपम मूर्ति में यज्ञमय बने हुए रमावर (विष्णु) को समर्पित किया। ९७ (कं.) तंत्र-रूप में सुव्यक्त, अव्यक्त-[पुरुष], अनन्त, अभव, अच्युत, ईश, अव्यय, हरि के सुरगणों से सेव्य होने के कारण, यज्ञ का फल देनेवाले होने के कारण यज्ञ किये। ९८ [कं.] भव्य चरित वाले! अगुणी परमेश, जगतों की कल्पना (रचना) करने के लिए चतुर रीति से माया (रूपधारी हो) सगुण बन जाता है, इसलिए हरि भगवान कहलाया। ९९

कं. विश्वात्मुडु विश्वेशुडु, विश्वमयुंडखिलनेत विष्णुंडजु डी
विश्वमुलो दा नुंडुनु, विश्वमु दनलोन जाल वॅलुगुचु नुंडन् ॥ 100 ॥

च. अतनि नियुक्तिजेंदि सचराचर भूतसमेत सृष्टि ने
विततमुगा सृजितु प्रभविष्णुडु विष्णुडु ब्रोचुँ बार्वती-
पति लय मोंद जेयु हरि पंकरुहोदरु डादिमूर्ति य-
च्युतुडु त्रिशक्ति युक्तुडगुचुंडु निटिंतकु दान मूलमै ॥ 101 ॥

कं. विनु वत्स ! नीवु नन्नडि, गिन प्रश्नकु नुत्तरंबु गेवल परमं
बुनु ब्रह्मं बी यखिलं, बुन कगु नाधारहेतु भूतमु सुम्मी ! ॥ 102 ॥

कं. हरि भगवंतुडु नंतुडु, गरुणांबुधि सृष्टि कार्य कारण हेतु
स्फुरणं डव्विभु कंटें, बर डन्युडु लेडु तंड्रि ! परिकिंपंगन् ॥ 103 ॥

सी. इदि यंतलुनु निक्क मे बोंक नुत्कंठ मति दद्गुण ध्यान महिम जेसि
परिकिंप ने नेमि पलिकिन नदि यॅल्ल सत्यंब यगु बुधस्तुत्य ! विनुमु
धीयुक्त ! मामकेंद्रियमुलु मरचियु बोरय वसत्य विस्फुरण मॅंदु
नदिगाक मत्तनु वाम्नाय तुल्यंबु नमरेंद्र वंदनीयंबु नय्यॆ।

ते. दविलि यद्देवदेवुनि भवमहाब्धि,
तारणंबुनु मंगळ कारणंबु

[कं.] विश्वात्मा, विश्वेश, विश्वमय, सबके नेता, विष्णु, अज, इस विश्व में स्वयं स्थित (व्याप्त) हो रहता है, विश्व के अपने में अत्यधिक रूप से प्रकाशित होने पर, विलसित हो रहता है। १०० [च.] उससे नियुक्त होकर सचर-अचर प्राणिसमूहों की सृष्टि मैं विस्तृत रूप से करता हूँ। प्रभविष्णु (सृष्टिकर्ता), विष्णु [उसका] पालन करता है, [और] पार्वतीपति [उसका] लय करता है। पंकरुह-उदर (कमलनाभ) हरि आदिमूर्ति है, अच्युत तीन शक्तियों से युक्त होते हुए इन सबका मूल होकर रहता है। १०१ (कं.) वत्स ! सुनो ! मुझसे पूछे गये तुम्हारे प्रश्न का उत्तर केवल परम एवं ब्रह्म है, जो इस अखिल [सृष्टि] का आधारभूत है, ऐसा निश्चित रूप से जान लो। १०२ [कं.] पुत्र ! हरि भगवान है, अनन्त है, करुणासार है, परखकर देखने पर स्पष्ट होता है कि सृष्टि-कार्य के कारणस्वरूप के स्फुरण (ज्ञान) करानेवाला उस विभु के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। १०३ [सी.] बुधस्तुत्य ! यह सब सत्य है। मैं झूठ नहीं बोलता। उत्कण्ठामति से, उसके गुणों का ध्यान तथा महिमा के कारण परखकर देखकर मैं जो कुछ भी बोलूंगा, वह सब सत्य हो जाता है। सुनो धीशाली ! मेरे इन्द्रिय भूलकर भी असत्य के विस्फुरण को प्राप्त नहीं होते। इसके अतिरिक्त, मेरा शरीर उत्तम वेद-तुल्य बनकर, अमरेन्द्र से वन्दनीय हुआ। [ते.] कुतूहलमति से मैं उस देवदेव के संसार-सागर के तारण (तथा) मंगलों के कारण-

नखिल संपत्करंबुनै यलरु पाद
वनजमुन के मोनर्चे द वंदनमुलु ॥ 104 ॥

उ. आ नलिनाक्षु नंदनुडु नय्यु प्रजापति नय्यु योग वि-
द्यानिपुणुंड नय्युनु बर्वपडि मज्जनन प्रकारमे
येनु नॅरुंग नव्विभुनि यिद्ध महत्व मॅरुंग नेर्तुने !
कानबडुन् रमेश परिकल्पित विश्वमु गौतकीतयुन् ॥ 105 ॥

म. विनु वे येटिकि दापस-प्रवर ! यव्विश्वात्मु डीशुंड दा
वन माया महिमांतमुं वॅलियगा दर्शबु दा जाल उ-
ग्रनु नेनैननु मीरलैन सुरलैनन् वामदेवुंडुनै
ननु निक्कं वॅरुगंग जालुदुमॅ ! विज्ञान क्रियायुक्तुलन् ॥ 106 ॥

व. अम्महात्मुंडैन पुंडरीकाक्षुंडु सर्वज्ञुं डंटेनि ॥ 107 ॥

कं. गगनमु तन कडपल दा,
दग नॅरुगनि करणि विभुडु दा नॅरुगडनन्
गगन प्रसवमु लेदन,
नगुने सर्वज्ञतकुनु हानि दलंपन् ॥ 108 ॥

च. तलकोनि यम्महात्मकुडु दाल्चिन यय्यवतार कर्ममुल्
वॅलयग नस्मदादुलमु वेयु विधंबुल सन्नुतितु म-

स्वरूप अखिल सम्पदाओं को प्रदान करते हुए सुशोभित होनेवाले चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ। १०४ [उ.] उस नलिनाक्ष (विष्णु) के पुत्र होकर, प्रजापति होकर योगविद्यानिपुण होकर भी मैं अपने जन्म के प्रकार को नहीं जानता, उस विभु के सुप्रसिद्ध महत्त्व को कैसे जान पाऊँ ! [उसी की कृपा से] रमेश के द्वारा परिकल्पित विश्व कुछ-कुछ दृष्टिगत होता है। १०५ [म.] तापस-प्रवर ! सुनो ! हज़ार बातें क्यों ? वह विश्वात्मा ईश स्वयं अपनी माया की महिमा का पार सत्यरूप से जान नहीं पाता। तब मैं, आप लोग, सुर (और) वामदेव (शिव), निश्चित रूप से, विज्ञान एवं क्रियायुक्तियों से कहीं जान पायेंगे ? १०६ [व.] वह महात्मा पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) सर्वज्ञ है, [तब अपने बारे में क्यों नहीं जानता ?] ऐसा कहने पर। १०७ [कं.] जैसे गगन के अपनी सीमाओं के अन्त को न जानने की रीति, विभु अपने-आप को नहीं जानता। [और यह] गगन-कुसुम (असंभव) नहीं है, ऐसा कहना उसकी सर्वज्ञता को हानि पहुँचाने वाली है ? (नहीं है)। १०८ [च.] उस महात्मा के धारण किये हुए अवतारों के कर्मों (कार्यों) को प्रकट करते हुए हम जैसे लोग हज़ारों रीतियों से स्तुति करते हैं। उस अलघु, अनन्त, चित्-अचित् के आत्मस्वरूप आदिपुरुष, अनीश, [जिसका कोई ईश (अधिपति) नहीं है] ईश्वर को जानने में हम कैसे समर्थ होंगे। चाहकर उस दिव्य चरित वाले की वन्दना

म्यलघु ननंतुनि जिदचिदात्मकु नाद्यु ननीशु नीश्वरुन्
वॅलियग नेर्तुमे ! तविलि दिव्यचरित्रुन केनु म्रोक्कॅदन् ॥ 109 ॥

म. परमात्मुंडजु डी जगंबु प्रतिकल्पंबंबु गल्पिंचु दा
बरिरक्षिंचुनु द्रुंचु नट्टि यनघुन् ब्रह्मात्मु नित्युन् जग
द्भरितुन् गेवलु नद्वितीयुनि विशुद्ध ज्ञानु सर्वात्मु नी-
श्वरु नाद्यंत विहीनु निर्गुणुनि शश्वन्मूर्ति चिंतिचॅदन् ॥ 110 ॥

च. सरसगतिम् मुनींद्रुलु प्रसन्न शरीर हृषीक मानस
स्फुरण गलप्पु डव्विभुनि भूरिकळा कलित स्वरूपमुं
दरमिडि चूतुरप्पुडु कुतर्क तमोहरि चेत नज्ञतन्
बॉरसिन यप्पुडव्विभुनि मूर्ति गनुंगॊनलेरु नारदा ! ॥ 111 ॥

व. अनि वॅंडियु निट्लनु। अनघा ! इम्महनीय तेजोनिधि मॊदलि यवतारंबु सहस्र शीर्षादि युक्तंबयि प्रकृति प्रवर्तकंबगु नादि पुरुष रूपंबगु। अंदु गाल स्वभावंबुलनु शक्तु लुदयिंचॅ। अंदु गार्य कारण रूपंबैन प्रकृति जनिंचॅ। प्रकृति वलन महत्तत्त्वंबुनु दानि वलन नहंकार त्रयंबुनु बुट्टॅ। अंदु राजसाहंकारंबुल वलन निंद्रियंबुलनु, सात्त्विकाहंकारंबु वलन निंद्रिय गुणप्रधानंबुलैन यधिदेवतलनु, तामसाहंकारंबुवलन भूतकारणंबुलैन शब्द स्पर्श रूप रस गंध तन्मात्रंबुलुनु

करता हूँ। १०९ [म.] परमात्मा, अज, इस जगत को प्रतिकल्प में सृजन करता है, स्वयं इसकी रक्षा करता है, नाश करता है। ऐसे अनघ (पापरहित), ब्रह्मात्मा, नित्य, जगतों में भरे रहनेवाले का, केवल (सब में उसके सिवा और कुछ न हो), अद्वितीय, विशुद्धज्ञानी, सर्वात्मा, ईश्वर, आदि-अन्त-विहीन, निर्गुण (तथा) शाश्वत मूर्ति का चिन्तन करता हूँ। ११० [च.] नारद ! सरसंगति से मुनीन्द्र लोग प्रसन्न शरीर में सकल इन्द्रियों का मानसिक स्फुरण (ज्ञान) होने के [शुभ] समय में उस विभु की भूरि (अनन्त) कलाओं से कलित स्वरूप को आदर्श-रूप में देख लेते हैं, [किन्तु] कुतर्क के तम (अज्ञान) से हत हो, अज्ञान को प्राप्त होने की वेला में उस विभु की मूर्ति को देख नहीं पाते हैं। १११ [व.] और फिर ऐसा कहा— हे अनघ ! इस महनीय तेजोनिधि का पहला अवतार हजारों शिरों से युक्त हो [अपनी] प्रकृति के अनुरूप प्रवर्तित होनेवाले आदिपुरुष का रूप हुआ। उसमें काल तथा स्वभाव नामक शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। उसमें कार्य-कारण-रूपात्मक प्रकृति का जन्म हुआ। प्रकृति से महत्तत्त्व का और उससे अहंकारत्रय का जन्म हुआ। उसमें राजसी अहंकार से इन्द्रिय, सात्त्विक अहंकार से इन्द्रियगुण-प्रधान अधिदेवता, तामसी अहंकार से भूत (प्राणी)-कारणभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध [आदि] तन्मात्राओं का जन्म हुआ। पंच तन्मात्राओं से गगन, अनिल, वह्नि, सलिल, धरा आदि

बॊडमॆ। पंचतन्मात्रंबु वलन गगनानिल वह्नि सलिल धरादिकमैन भूतपंचकंबु गलिगॆ। अंदु ज्ञानेंद्रियंबुलैन त्वक्चक्षु श्श्रोत्र जिह्वा घ्राणंबुलुनु, कर्मेंद्रियंबुलैन वाक्पाणि पाद पायूपस्थलुनु, मनंबुनु जनियिंचॆ। अन्निटि संघातंबुन विश्वरूपुंडैन विराट्पुरुषुंडु पुट्टॆ। अतनि वलन स्वयं प्रकाशुंडैन स्वराट्टु संभविंचॆ। अंदु जराचर रूपंबुल स्थावर जंगमात्मकंबैन जगत्तु गलिगॆ। अंदु सत्त्वरज स्तमो गुणात्मकुलमैन विष्णुंडुनु हिरण्य गर्भुंडु नैन येनुनु रुद्रुंडुनु गलिगितिमि। अंदु सृष्टि जनन कारणुंडैन चतुर्मुखुंडु पुट्ट, वानिवलन दक्षादुलगु प्रजापतुलु दॊम्मंड्र गलिगिरि। अंदु भवत्प्रमुखुलैन सनक सनंदनादि योगींद्रुलुनु, नाक लोक निवासुलयिन वासवादुलनु, खगलोक पालकुलगु गरुडादुलुनु, नृलोकपालकुलगु मनु मांधातृ प्रभृतुलुनु, तललोक पालकु लगु ननंत वासुकि प्रभृतुलुनु, गंधर्व सिद्ध विद्याधर चारण साध्य रक्षो यक्षोरग नागलोक पालुरुनु, मरियु ऋषुलुनु, पितृदेवतलुनु, दैत्य दानव भूत प्रेत पिशाच कूश्मांड पशु मृगादुलु नुद्भविंचिरि। इट्टि जगत्प्रथमोद्भंबु महत्तत्त्व सृष्टि यनंबडु। द्वितीयं बंड-संस्थितं बनं दगु। तृतीयंबु सर्वभूतस्थंबन नॊप्पु। अंदेश्वर्य तेजोबल संपन्नुलैन पुरुषुलु सर्वात्मुंडैन नारायणुनि यंश संभवुलुगा नॆरुंगुमु। अप्पुंडरीकाक्षुनि लीलावतारंबु

भूतपंचक (पंचभूत) पैदा हुए। उसमें ज्ञानेन्द्रिय कहलानेवाले त्वक्, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण तथा कर्मेन्द्रिय कहलानेवाले वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और मन पैदा हुए। सबके सम्मिश्रण से विश्वरूपात्मक विराट् पुरुष पैदा हुए। उससे स्वय प्रकाशित होनेवाले स्वराट् (अपने पर स्वयं शासन करनेवाला) उद्भूत हुए। उसमें से चर-अचर-रूपात्मक, स्थावर जंगमात्मक जगत उत्पन्न हुआ। उसमें सत्त्व, रजस्, तमो (गुणात्मक विष्णु और हिरण्यगर्भ मैं और रुद्र) पैदा हुए। उसमें सृष्टि के जन्मकारण चतुर्मुख उत्पन्न हुए। उससे दक्ष आदि नौ प्रजापति पैदा हुए। उनमें तुम जैसे प्रमुख योगीन्द्र सनक, सनन्दन आदि, नाक (स्वर्ग) लोक के निवासी वासव आदि और खगलोक के पालक गरुडादि और नरलोक के पालक मनु, मान्धाता आदि, तल (अधो) लोक के पालक अनन्त, वासुकी आदि और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, साध्य, राक्षस, यक्ष, उरग, नागलोक के पालक और ऋषिगण और पितृदेवता, दैत्य, दानव, भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड (एक प्रकार का भ्रूण), पशु, मृगादि पैदा हुए। ऐसे जगत की प्रथम सृष्टि महत्तत्त्व सृष्टि कहाती है। द्वितीय अण्डसंस्थित कहलाता है। तृतीय सर्वभूतों से स्थित विराजमान होता है। उनमें ऐश्वर्य, तेज, बल से सम्पन्न होकर पुरुषों को सर्वात्मा नारायण के अंश-सम्भव रूप में जान लो। उस पुण्डरीकाक्ष के लीला-अवतार अनन्त हैं। उनके कर्मों

लनंतंमुलु। तत्कमंबुलु लॆक्कबॆट्ट नॆव्वरिकि नलवि गादु। ऐननु नाकुं दोचिनंत नी कॆरिंगिचॆद। विनुमु ॥ 112 ॥

श्रीमन्नारायणुनि लीलावतारंबुल यभिवर्णनमु

उ. अन्य कथानुलापमु लहर्निशमुन् विनुनट्टि सत्क्रिया
शून्यमुलैन कर्णमुल सूरिजन स्तुत सर्वलोक स-
म्मान्यमुलै तनर्चु हरि मंगळ दिव्यकथामृतंबु सौ-
जन्यत ग्रोलुमय्य! बुधसत्तम! ये विवरिंचि चॆप्पॆदन् ॥ 113 ॥

व. अनि पलिकि नारदुं जूचि मरियु निट्लनियॆ ॥ 114 ॥

अध्यायमु—७

म. कनकाक्षुंडु भुजा विजृंभणमुनन् क्ष्माचक्रमुं जाप चु-
ट्टिन माड्किन् गॊनिपोव यज्ञमय दंष्ट्रि स्वाकृति दालिच य-
द्दनुजाधीश्वरु दाकि यब्धिनडुमन् दंष्ट्राहति द्रुंप धा-
त्रिनि गूलॆन् गुलिशाहति बडु महाद्रि बोलि यत्युग्रतन् ॥ 115 ॥

व. मरियुनु यज्ञावतारंबु विनुमनि यिट्लनियॆ ॥ 116 ॥

की गिनती करना किसी के वश की बात नहीं है। फिर भी मेरी समझ में जहाँ तक आया है, उतना तुम्हें विदित कर दूंगा। सुनो। ११२

श्रीमन्नारायण के लीला-अवतारों का अभिवर्णन

[उ.] हे बुधश्रेष्ठ! अन्य कथाओं को अहर्निश (रात-दिन) सुनकर, सत्क्रियाशून्य बने कानों से न होकर सूरि (पण्डित)-जनों से संस्तुत-सर्वलोक-सम्मान्य बनकर, विलसित होनेवाले हरि की मंगलकर (एवं) दिव्य कथा के अमृत को सौजन्यता से पान करो, मैं विवरण के साथ सुनाता हूँ। ११३ [व.] ऐसा कहकर नारद की ओर देखकर और इस प्रकार कहा। ११४

अध्याय—७

[म.] हिरण्याक्ष के अपने भुजबल के विजृम्भण से धरती को चटाई की तरह लपेटकर ले जाने पर, यज्ञमय-दंष्ट्री (-वराह) ने स्वाकृति (स्व-स्वरूप) धारण कर, उस दनुजाधीश्वर (राक्षस) का सामना कर, अब्धि (सागर) के मध्य में बड़ी दंष्ट्राओं के आघात से [उसका] वध करने पर, धरा पर कुलिश-आहति (वज्रपात) से गिरनेवाले महापर्वत के समान बहु भयंकर रीति से धरा पर गिर पड़ा। ११५ [व.] और भी यज्ञावतार के

सी. प्रकटरुचिकि प्रजापतिकिनि स्वायंभवुनि कूतु राकूतियनु लतांगि
कर्थि जन्मिंचि सुयज्ञुंडु ना नोप्पु नतडु दक्षिण यनु नतिवयंबु
सुयम नामामर स्तोमंबु वुट्टिंचि यिंद्रुडै वॅलसि युपेंद्र लील
नखिललोकंबुल यार्ति हरिंचिन नतनि मातामहुंडैन मनुवु

ते. दन मनंबुन दच्चरित्रमुन कलरि,
परमपुण्युंडु हरि यनि पलिकॅ गान
संचित ज्ञान विधियै सुयज्ञु डॅलमि,
दापसोत्तम ! हरि यवतार मय्यॅ ॥ 117 ॥

व. अनि चॅप्पि कपिलुनि यवतारंबु विनुमनि यिट्लनियॅ ॥ 118 ॥

च. धृतमति देवहूतिकिनि दिव्यविभुंडगु कर्दम प्रजा-
पतिकि प्रमोदमोप्प नवभामलतो गपिलुंडु पुट्टि ये
गति हरि बोंदु नट्टि सुभगंबगु सांख्यमु तल्लि किच्चि दु-
ष्कृतमुलु वापि चूपॅ मुनिसेतमै तनराऱु मोक्षमुन् ॥ 119 ॥

व. मर्ट्रियु दत्तात्रेयावतारंबु विनुमु ॥ 120 ॥

सी. तापसोत्तमु डत्रि दनयुनि गोरि रमेशु वेडिन हरि येनु नीकु
ननघ ! दत्तुडवैति वनि पल्कु कतमुन नतडु दत्तात्रेयुडै जनिंचॅ

बारे में सुनो, कहकर ऐसा कहा । ११६ [सी.] हे तापसोत्तम ! प्रकट रुचि (विस्तृत कान्ति) वाले प्रजापति को स्वयम्भू की पुत्री आकूति नामक लतांगी में चाहकर जन्म लेकर सुयज्ञ नाम से विख्यात हुआ । वह दक्षिणा नामक स्त्री में सुयम नामक अमर-स्तोम (-समूह) को जन्म देकर, इन्द्र हो, विलसित होकर, उपेन्द्र की लीला से अखिल लोकों का दुःख हरने पर, उसके मातामह (दादा) मनु ने, [ते.] अपने मन में उसके चरित्र के कारण हर्षित होकर, कहा कि [वह] परम पुण्यात्मा हरि है । अतः अंचित-ज्ञाननिधि सुयज्ञ प्रेम से हरि का अवतार हुआ । ११७ [व.] ऐसा कहकर कपिल का अवतार [के बारे में] सुनो, कहकर (आगे) ऐसा कहा । ११८ [चं.] धृत-मतिवाली देवहूति को और दिव्य विभु कर्दम प्रजापति को अत्यधिक आनन्दित करते हुए नव-भानुओं (-कान्तियों) के साथ कपिल ने जन्म लेकर, हरि को पाने का सौभाग्यप्रद [मार्ग] सांख्य [तत्त्व] को माता को दे (विदित) कर, दुष्कृत (पाप) मिटाकर, मुनियों से सेवित होते हुए सुशोभित मोक्ष को प्रदान किया । ११९ [व.] फिर दत्तात्रेय अवतार के बारे में सुनो । १२० [सी.] तापसोत्तम अत्रि (ऋषि) के पुत्र की कामना कर रमेश से प्रार्थना करने पर हरि के 'हे अनघ ! [मैं] दत्त हुआ' कहने के कारण वह दत्तात्रेय हो पैदा हुआ । उस महात्मा के चरण-अब्ज-पराग-संदोह (समूह) से पवित्र शरीरवाले होकर, हैहय, यदुवंश के लोग ऐहिक-

नम्महात्मुनि चरणाब्ज पराग संदोहंबुचे बूतदेहुलगुचु
हैहय यदुवंशुलैहिकामुष्मिक फलरूपमगु योग बलमु बडसि

ते. संचित ज्ञान फल सुखैश्वर्यशक्ति,
शौर्यमुलु पोंदि तमकीर्ति चदल वॅलुग
निदु नंदुनु वासिकिनॅक्कि रट्टि,
दिव्यतरमूर्ति विष्णुनुतिप दरमे ! ॥ 121 ॥

व. बॅंडियु सनकाद्यवतारंबु विनुमु ॥ 122 ॥

सी. अनघात्म ! नेनु गल्पादिनि विश्वंबु सृजियिंप दलचि यंचित तपंबु
र्नथि जेयुचु सन यनि पलुकुटयु नदि गारणंबुन सनाख्यलनु गल स-
नंदन सनक सनत्कुमार सनत्सुजातुलु नलुवुरु संभविंचि
मानसपुत्रुलै महि नुति कॅक्किरि पोयिन कल्पांतमुन नशिंचि

ते. यट्टि यात्मीयतत्त्वंबु पुट्ट जेसि,
सांप्रदायिक भंगिनि जगति नॅल्ल
गलुग जेसिरि यव्विष्णुकळल दनरि,
नलुवु रय्युनु नॉक्कडै नयचरित्र ! ॥ 123 ॥

व. मरियु नरनारायणावतारंबु विनुमु ॥ 124 ॥

कं. गणुतिपग नरनारा, यणुलन धर्मुनकु नुदय मंदिरि दाक्षा
यणियैन मूर्तिवलनं, ब्रणुत गुणोत्तमुलु परम पावन मूर्तुल् ॥ 125 ॥

आमुष्मिक फलस्वरूप योगवल को प्राप्त कर, [ते.] संचित ज्ञान के फल, सुख, सम्पदा, शक्ति तथा ऐश्वर्य को प्राप्त कर, अपनी कीर्ति के आकाश में प्रकाशित होने पर, यहाँ और वहाँ (सर्वत्र) विख्यात हुए। ऐसे दिव्यतर मूर्ति विष्णु की स्तुति करना संभव है ? (नहीं है)। १२१ [व.] और फिर (आगे) सनकादि का अवतार सुनो। १२२ [सी.] अनघात्मा ! मैं कल्पादि में विश्व की सृष्टि करने के विचार से योग्य तप चाहकर करते हुए 'सन' कहने पर, उसके कारण से सन् नामधारी सनन्दन, सनक, सनत्कुमार, सनत्सुजात चार (पुत्र) पैदा होकर [मेरे] मानसपुत्र हो महि (पृथ्वी) पर विख्यात हुए। नय चरितवाले ! पूर्वकल्पान्त में (आप लोगों ने) विनाश को प्राप्त, [ते.] आत्मतत्त्व का सृजन (पुनरुद्धार) कर साम्प्रदायिक (परंपरागत) रीतियों को समस्त जगत में व्याप्त किया (और) विष्णु-कलाओं को पाकर चार होकर भी एक हो रहे। १२३ [व.] और फिर नरनारायण का अवतार सुनो ! १२४ [कं.] गणना (स्तोत्र) करने पर, नरनारायण नाम से, धर्म [पुरुष] को दाक्षायणी मूर्ति से प्रणुत (स्तुत्य) गुणोत्तम वाले, परमपावन मूर्ति वाले पैदा हुए। १२५ [कं.] [उन]

कं. अनघुलु बदरीवनमुन, विनुत तपोवृत्ति नुंड विबुधाधिपुडुन्
मनमुन निजपद हानिकि, घनमुग जिंतिंचि दिविज कांतामणुलन् ॥126॥

कं. रांविबि तपोविघ्नमु, गाविपुंडनुचु वलुक गडुवेडुकतो
भावभवानीकिनु लन, गा वनितलु सनिरि बदरिका वनमुनकुन् ॥127॥

व. अंदु ॥ 128 ॥

म. नरनारायणुलुन्न चोटिकि मरुन्नारी समूहंबु भा-
स्वरलीलं जनि रूप विभ्रम कळा चातुर्य मेपारगा
बरिहासोक्तुल नाटपाटल जरिपं जूचि निश्चिततन्
भरितध्यान तपः प्रभाव निरति बाटिंचि निष्कामुलै ॥ 129 ॥

कं. क्रोधमु दपमुल कॅल्लनु, बाधकमगु टॅरिंगि दिविज भामलपैन
म्मेधानिधु लौक यितयु, ग्रोधमु देरैरि सत्त्वगुण युतुलगुटन् ॥ 130 ॥

कं. नारायणुडप्पुडु वन, यूरुवु वॅस जीरनंबु नुदयिंचॅनु वॅ
पारंग नूर्वशी मुख, नारी जनकोटि दिविजनारुलु मॅच्चन् ॥ 131 ॥

कं. अरुवुलंदु जनिंचिन, कारणमुन नूर्वशियन घनतकु नॅक्कॅन्
वारल रूप विलास वि, हारमुलकु नोडि रंत नमरी जनमुल् ॥ 132 ॥

व. अंत वामु नरनारायणुल तपोविघ्नंबु गाविपं बूनि सेयु विलासंबुलु

अनघों के वदरीवन में विनुत (स्तुति करने योग्य) तपस्या करते रहने पर, विबुधाधिप (इन्द्र) ने मन में अपने पद की हानि की अधिक चिन्ता कर, देवकान्तामणियों को, १२६ [कं.] बुलवाकर कहा कि तप को भंग करो। कहने पर, अति उत्साह से वनिताओं ने भावभव (मन्मथ) की सेनाओं के समान, बदरीवन को प्रस्थान किया। १२७ [व.] वहाँ। १२८ [म.] नरनारायण के स्थान को अमर नारीगण अत्यन्त सुन्दर रीति में चलकर गये। अपने रूप, विभ्रम कला (एवं) चातुरी को प्रकट करते हुए, परिहासपूर्ण वचन कहते हुए, नाचते, गाते हुए, संचार करते देखकर, निश्चिन्त हो भक्ति (पूर्ण) ध्यान, तप के प्रभाव की निरंतरता का, निष्काम होकर निर्वाह किया। १२९ [कं.] सब तपों के लिए क्रोध बाधाकर होता है। (यह) जानकर उन मेधानिधियों ने सत्त्वगुण से युक्त होने के कारण उन देवरमणियों पर किंचित् भी क्रोध न किया। १३० [कं.] नारायण के तब अपने जांघ को चीरने पर, वहाँ से अति शोभा से उर्वशी आदि नारीजन-कोटि (-समूह) दिविज-नारीवर्ग के प्रशंसा करने पर उत्पन्न हुआ। १३१ [कं.] ऊरुओं से जन्म लेने के कारण (वह) उर्वशी के नाम से विख्यात हुई। उनके रूप-विलास के विहार (संरम्भ) को देखकर अमर कान्ताओं ने हार मान ली। १३२ [व.] तब नर-

मानसिक संकल्प मात्रंबुन सृष्टिस्थिति संहारंबु लोनपं जालु। न ग्महात्मुल दॅसं बनिकिराक कृतघ्नुकुं जेयु-नुपकृतुलं बोलॅ निष्फलंबुलैन सिग्गुनं गुंदुचु नूर्वशि दमकु मुख्युरालिगा गैकोनि तम वच्चिन जाडने मरलिरंत ॥ 133 ॥

कं. कामुनि दहिचॅ ग्रोध म, हामहिमनु रुद्रुडट्टि यतिकोपमु ना
धीमतुलु गॅलिचि रनिनं, गाममु गॅल्चुटलु चॅप्पगा नेमिटिकिन् ॥ 134 ॥

व. अट्टि नरनारायणावतारंबु जगत्पावनंबै विलसिल्लॅ। वॅंडियु ध्रुवावतारंबु विवरिचॅद विनुनु ॥ 135 ॥

सी. मानित चरितु बुत्तानपादुंडनु भूवरेण्युनकु सत्पुत्रु डनग
नुदयिंचि महिम बॅंपोंदि बाल्यंबुन जनकुनि कडनुंडि सवति तल्लि
तनु नाडु वाक्यास्त्र तति गुंदि महित तपंबु गाविंचि कायंबुतोड
जनि मिट ध्रुवपद स्थायियै यट मीद नर्थि वर्तिचु भृग्वादि मुनुलु

ते. चतुरगति ग्रिंद वर्तिचु सप्तऋषुलु, पॅंपु वॊंपिप दन्नु नुतिपुचुंड
ध्रुवुडु ना नॅप्पि यव्विष्णुतुल्युडगुचु, नुन्न पुण्यात्मु डिप्पुडुनुन्नवाडु ॥136॥

व. पृथुनि यवतारंबु विनुमु ॥ 137 ॥

नारायण के तप को भंग करना चाहकर करनेवाले विलास (शृंगार-क्रीड़ाएँ) [मानसिक संकल्पमात्र से सृष्टि-स्थिति तथा संहार करने में समर्थ बने हुए] उन महात्माओं के सामने व्यर्थ सिद्ध हुए, जिस प्रकार कृतघ्न के प्रति किये जानेवाले उपकार बेकार हो जाते है। [तब] शर्म के मारे दुःखी हो, उर्वशी को अपनी मुख्या [नायिका] मानकर, जिस रास्ते से आयीं, उसी रास्ते से लौट चलीं। १३३ [कं.] रुद्र ने क्रोध की महा-महिमा (अधिकता) से काम को जलाया था। ऐसे अतिक्रोध को भी इन धीमानों ने जीत लिया। ऐसे लोगों ने काम को जीत लिया, यह कोई बड़ी बात नही है। १३४ [व.] ऐसे नरनारायण का अवतार जगत के लिए पावन हो विलसित हुआ, [और आगे] ध्रुव के अवतार का विवरण करता हूँ, सुनो! १३५ [सी.] मान्य चरित वाले उत्तानपाद नामक भूवरेण्य (राजा) को सत्पुत्र के रूप में उदित हो, महिमा के साथ विलसित हो, पिता के पास रहकर सौतेली माँ के कहे गये वाक्-बाण-समूह से दुःखित होकर, महित-तपस्या कर, शरीर के साथ जाकर गगन में ध्रुवपद पर स्थित हो रहा। चाहकर भृगु आदि मुनि लोग [ते.] [तथा] चतुरगति से नीचे वर्तित सप्तर्षियों के विस्तार से दीप्त होते हुए, अपनी स्तुति करने पर ध्रुव नाम से वह पुण्यात्मा विष्णु के समान विराजमान है। १३६ [व.] पृथु का अवतार सुनो। १३७ [उ.] विप्रभाषण रूपी पवि (वज्र) के प्रहार

उ. वेनुडु विप्रभाषण पवि प्रहर च्युत भाग्य पौरुषुं
डै निरयंबुनं बडिन नात्मतनूभवुडै पृथुंडु ना
बूनि जनिंचि तज्जनकु बुन्नरकंबुन बापॅ मेदिनिन्
धेनुवु जेसि वस्तुवितति वितिकॅन् हरि सत्कळांशुडै ॥ 138 ॥

व. अनि मर्रियु वृषभावतारंबु नॅर्रिगितु विनुमु। आग्नीध्रुंडनु वानिकि सुदेविवलन नाभि यनु वाडुदयिंचॅ। अतनिकि मेरुदेवियंदु हरि वृषभावतारंबु नॊंदि, जड स्वभावंबैन योगंबु दाल्चि प्रशांतांतः करणुंडुनु विमुक्त संगुंडुनुनै, परम हंसाभिगम्यंबैन पदं विदि यनि महर्षुलु पलुकुचुंडं जरिंचॅ। मर्रियु हयग्रीवावतारंबु सॅप्पॅद विनुमु ॥ 139 ॥

च. अनघचरित्र ! मन्मखमु नंदु जनिंचॅ हयान नाख्यतन्
विनुत सुवर्ण वर्णुडुन वेदमयुं डखिलांतरात्मकुं
डनुपम यज्ञ पूरुषुडुनै भगवंतुडु दत्समस्त पा-
वनमगु नासिका श्वसन वर्गमुलं दुदयिंचॅ वेदमुल् ॥ 140 ॥

व. मर्रियु मत्स्यावतारंबु विनुमु ॥ 141 ॥

सी. घनुडु वैवस्वत मनुवुकु दृष्टमै यरुदेंचिनट्टि युगांत समय
मंदु विचित्र मत्स्यावतारमु दाल्चि यखिलावनी मयंबगुच जाल
सर्वजीवुलकु नाश्रयभूतुडगुचु नेकार्णवंबैन तोयमुल नडुम
मन्मुखश्लथ वेद मार्गंबुलनु जिक्कु पडकुंड शाख लेर्पडग जेसि

से च्युत बने भाग्य तथा पौरुष वाला हो वेन निरय (नरक) को प्राप्त हुआ। उसके आत्मतनूभव (पुत्र) हो जन्म लेकर पृथु ने अपने जनक को पुन्नाम नरक से बचाया; हरि की सत्कलाओं से युक्त होकर, पृथ्वी को धेनु बनाकर, सकल वस्तुओं का दोहन किया। १३८ [व.] कहा। अब वृषभावतार को विदित करूँगा ! सुनो ! अग्निध्रु को सुदेवी में नाभि नामक [व्यक्ति] पैदा हुआ। उसको मेरुदेवी में हरि ने वृषभावतार में जन्म लेकर जड़ स्वभाव वाले योग को धारण कर प्रशान्त अन्तःकरण वाला तथा मुक्तसंगी हो, परम हंसों के लिए अभि-गम्य-पद यही है, कहते हुए महर्षियों की स्तुति करने पर, संचार किया। और हयग्रीव-अवतार सुनाऊँगा, सुनो ! १३९ [चं.] अनघ चरितवाले ! मेरे (मेरे प्रति किये गये) यज्ञ में हयान (हयग्रीव) नाम से, सुवर्ण वर्ण वाले, वेदमय, अखिलान्तरात्मा, अनुपम यज्ञपुरुष भगवान ने जन्म लिया। उसके, समस्त को पावन बनानेवाले नासिका-श्वसन वर्गों (निःश्वास-समूहों) से वेदों का उदय हुआ। १४० [व.] और मत्स्यावतार [के बारे में] सुनो ! १४१ [सी.] वत्स ! घनात्मा (महान्) वैवस्वत मनु को दिखाई पड़ते हुए आने वाले युग के अन्त समय (प्रलयकाल) में विचित्र मत्स्यावतार को धारण

ते. दिव्युलथिपना कथिदंच्चि यिच्चि,
मनुवु नॅक्किचि पॅन्नाव वनधि नडुम
मुनुग कुंडग नरसिन यनिमिषाव
तार मेरिंकि नुतियिप दरमॆ ? वत्स ! ॥ 142 ॥

व. मरियु गूर्मावतारंबु विनुमु ॥ 143 ॥

म. अमृतोद्पावन यत्नुलै विबुध दैत्यानीकमुल् मंदरा
गमु गव्वंबुग जेसि यब्धि दरुवंगा गव्वपुं गॊंड वा-
र्धि मुनुंगन् हरि गूर्म रूपमुन नद्रि वाल्चॆ दत्पर्वत
भ्रमण व्याजत वीपु तीट शमिपं जेयगा नारदा ! ॥ 144 ॥

व. वॆंडियु नृसिंहावतारंबु विनुमु ॥ 145 ॥

म. सुरलोकंबु गलंचि देवसमितिन् स्रुक्किचि युद्यद्गदा
धरुडै वच्चु निशाचरुं गनि कन द्दंष्ट्राकराळास्य वि-
स्फुरित भ्रूकुटितो नृसिंहगति रक्षोराज वक्षंबु भी-
कर भास्व न्नखिराजि द्रुंचॆ द्रिजग त्कल्याण संधायियै ॥ 146 ॥

व. अदि मूलावतारंबु सॆप्पॆद विनुमु ॥ 147 ॥

म. करिनाथुंडु जलग्रह ग्रहण दुःखाक्रांतुडै वेयि व-
त्सरमुल् गुय्यिडुचुंड वेल्पुलकु विश्वव्याप्ति लेकुंडटन्

कर, अखिल अवनि में भरकर सकल जीवकोटि के लिए आश्रयभूत होते हुए, एकार्णव बने जल के बीच में, मेरे मुख से श्लथ हुए वेद-मार्गों को उलझने न देकर, शाखाओं में विभाजित कर, [ते.] देवताओं के प्रार्थना करने पर, मुझे इच्छा से ला देकर, मनु को बड़े नाव पर चढ़ाकर, सागर के मध्य डूब न जाए, ऐसा रक्षा करनेवाले अनिमिषावतार (मत्स्य) वाले की स्तुति करना किसके बस की बात है ? १४२ [व.] और कूर्मावतार [के बारे में] सुनो ! १४३ [म.] हे नारद ! अमृत के उत्पादन के प्रयत्न में देव-दानवों के समूह के मन्दराचल को मथानी बनाकर, सागर का मन्थन करने पर, मथानी रूपी पर्वत के सागर में डूब जाने पर, हरि ने कूर्म-रूप धारण कर, उस पर्वत को भ्रमित करने (घुमाने) के मिस अपने पीठ की खुजली का शमन किया। १४४ [व.] और नृसिंहावतार सुनो ! १४५ [म.] सुरलोक को कल्लोलित कर, देवसमूह को व्याकुल कर ऊपर उठाई गदा को धारण कर आनेवाले निशाचर (राक्षस) को देखकर, चमकती दंष्ट्राओं से कराल बने मुख से, विस्फुरित भृकुटि के साथ नृसिंह की गति (विधान) से, राक्षस राजा के वक्ष को त्रिजगत का कल्याण करने के निमित्त, भीकर-भास्वर नाखूनों से चीरकर वध किया। १४६ [व.] आदिमूलावतार को विदित करूँगा, सुनो ! १४७ [म.] तापसी ! करिनाथ (हाथी) के

हरि नीवे शरणंबु ना कनिन कु य्यालिचि वेवेग वा-
श्चरमुं ड्रुंचि करींद्रु गाचॆ महितोत्साहंबुनं दापसा ! ॥ 148 ॥

व. मरियुनु वामनावतारंबु विनुमु ॥ 149 ॥

सी. यज्ञेश्वरुंडगु हरि विष्णु डदिति संतानंबुनकु नॆल्ल दम्मु डय्यु
वॆंपारु गुणमुल बॆद्दयै वामन मूर्तितो बलिचक्रवर्ति जेरि
तद्भूमि मूडु पादम्मुल नडिगि पद त्रयंबुननु जगत्रयंबु
वंचिचि कॊनियॆनु वासवुनकु राज्य मॊसंग नीश्वरु डय्यु मोरगि

ते. यर्थिरूपंबु गैकॊनि यडुग वलसॆ,
धार्मिकुल सॊम्मु विनयोचितमुन गानि
वॆडगुदनमुन नूरक निग्रहिंचि,
चलन मंदिपरादु निश्चयमु पुत्र ! ॥ 150 ॥

च. बलि निजमौळि नव्वटुनि पाद सरोरुह भव्यतीर्थमु
त्कलिक धरिंचि तन्नु जगत्रयमुन् हरि किच्चि कीर्तुलन्
निलिपॆ वसुंधरास्थलिनि निर्जरलोक विभुत्व हानिकिन्
दलकक शुक्रु माटलकु दारक भूरि वदान्य शीलुडै ॥ 151 ॥

जलग्रह (मकर) की पकड़ में [आकर] दुःखी हो, हज़ार वर्ष तक आर्तनाद करते रहने पर, देवताओं में विश्वव्याप्त [होने के] तत्त्व के न होने पर, 'हरि ! तू ही मेरे लिए शरण्य है', ऐसी प्रार्थना करने पर, अति उत्साह से (हरि ने) तुरत गति से वाश्चर (मकर) का वध कर करीन्द्र की रक्षा की थी। १४८ [व.] और वामनावतार को सुनो ! १४९ [सी.] पुत्र ! यज्ञेश्वर हरि विष्णु अदिति की समस्त सन्तान के लिए छोटा भाई होकर भी विस्तृत गुणों से बड़ा होकर, वामनमूर्ति (बौने रूप) के साथ बलि चक्रवर्ती के यहाँ पहुँच, तीन चरण भर की भूमि माँगकर, पदत्रय [के बहाने] से, वंचना कर जगत्रय को ले लिया, ऐसे वासव (इन्द्र) को राज्य प्रदान करने के लिए ईश्वर (समर्थ) होकर भी धोखा देकर, [ते.] याचक का रूप धारण कर भीख माँगना पड़ा। धार्मिक जनों की सम्पत्ति को विनय तथा उचित रीतियों से ग्रहण करना चाहिए, धृष्टता से, निग्रह (झगड़) कर ग्रहण करना (बल-पूर्वक लेना) नहीं चाहिए। इसे निश्चित रूप से जानना चाहिए। १५० [च.] [राजा] बलि ने उस ब्रह्मचारी के चरण-कमलों के पुण्यतीर्थ को अपने सिर पर उत्कंठा से धारण कर, अपने-आपको, जगत्रय को, वसुंधरा-स्थल (भूमि) तथा निर्जरलोक पर के अधिकार (प्रभुता) की हानि के कारण भी विचलित न होकर, शुक्राचार्य के वचनों के कारण मार्ग से न भटक कर, अत्यधिक रूप से वदान्यशीली (दानगुणशीली) हो, हरि को प्रदान (समर्पित) कर, यश

व. मरियु नप्परमेश्वरंडु नारदा ! हंसावतारंबु नौंदि यतिशय भक्ति योगंबुन संतुष्टांतरंगुडगुचु नीकु नात्मतत्त्व प्रदीपकंबगु भागवत पुराणं बुपदेशिंचें। मन्वावतारंबु नौंदि स्वकीय तेजः प्रभावंबुन नप्रतिहतंबैन चक्रंबु धरियिंचि दुष्टवर्तनुलैन राजुल दंडिपुचु, शिष्टपरिपालनंबु सेयुचु, नात्मीयकीर्ति चंद्रिकलु सत्यलोकंबुन वॆलिगिंचें। मरियु धन्वंतरि यन नवतरिंचि तन नाम स्मरणंबुन भूजनंबुलकु सकल रोग निवारणमु सेयुचु नायुर्वेदंबु गल्पिचें। वॆंडियु परशुरामावतारंबु विनुमु ॥ 152 ॥

म. धरणीकंटकुलैन हैहय नरेंद्र व्रातमुन् भूरि वि-
स्फुरितोदार कुठार-धार गलनन् मुय्येडु मारुल् पॊरि
बॊरि मर्दिचि समस्तभूतलमु विप्रुल् वेडगा निच्चि ता
जिरकीर्तिन् जमदग्नि-रामुडन् मिंचॆन् दापसेंद्रोत्तमा ! ॥ 153 ॥

व. मरियु श्रीरामावतारंबु सॆप्पॆद विनुमु ॥ 154 ॥

सी. तोयजहित - वंश - दुग्ध - पारावार - राका - विहार-कैरव- हितुंडु
गमनीय कोसल क्ष्माभृत्सुतागर्भ शुक्ति संपुट लसन्मौक्तिकंबु

को स्थिर कर लिया। १५१ [व.] नारद ! और उस परमेश्वर ने हंसावतार में अत्यन्त भक्तियोग में [मग्न हो], अन्तरंग में सन्तुष्ट होकर, तुम्हें आत्मतत्त्व को प्रदीप्त करनेवाले भागवतपुराण का उपदेश किया। मनु के अवतार में अपने तेज तथा प्रभाव से अप्रतिहत चक्र को धारण कर, दुष्टवर्तन (दुश्चरित्र) वाले राजाओं को दण्डित करते हुए, शिष्टों का पालन करते हुए, अपनी कीर्ति-चन्द्रिकाओं को सत्यलोक में प्रकाशित किया। और धन्वन्तरि नाम से अवतरित होकर अपने नाम के स्मरण करनेवाले भूलोक के जनों के सकल रोगों का निवारण करते हुए, आयुर्वेद का सृजन किया। और परशुराम का अवतार सुनो ! १५२ [म.] तापसेन्द्रोत्तम ! धरणी-कंटक (भूलोक के लिए पीड़ा देनेवाले) बने हुए हैहय राजवंश के राजाओं के समूह को अत्यन्त शक्तिशाली तथा उदार कुठार की धारा से, युद्धभूमि में इक्कीस बार, बार-बार मारकर, विप्रों के प्रार्थना करने पर, इस समस्त भूतल को [उन्हें] सौंपकर स्वयं जमदग्नि-राम के नाम से शाश्वत कीर्ति के उत्कर्ष को प्राप्त किया। १५३ [व.] और आगे श्रीरामावतार [के बारे में] सुनाऊँगा ! सुनो ! १५४ [सी.] तोयजहित (सूर्य) वंश रूपी दुग्ध-पारावार (क्षीरसागर) के रात्रियों में विहार करनेवाले कैरव-हित (चंद्र), कमनीय कोसल राजा की सुता (कौसल्या) के गर्भ-शुक्ति के संपुट में विलसत्-मुक्ता, अपनी सेवा करनेवाली प्रजा के दुःख रूपी गाढ़-अन्धकार को हटानेवाले पंकरुह (कमल)-सखा (सूर्य), दशरथेश्वर की यज्ञभूमि के आँगन का कल्पवृक्ष,

निजपाद-सेवक-व्रज-दुःख-निविडांधकार-विस्फुरित-पंकरुह-सखुडु
दशरथेश्वर - कृताध्वर - वाटिका - प्रांगणाकर - देवतानोकहंबु

ते. चटुल-दानव-गहन - वैश्वानरंडु, रावणाटोप - शैल - पुरंदरंडु
नगुचु लोकोपकारार्थ मवतरिंचे, रामुडै चक्रि लोकाभिरामु डगुचु ॥155॥

कं. चित्रमुग भरत लक्ष्मण, शत्रुघ्नुल कथि नग्रजन्मुंडगुचुन्
धात्रिन् रामुडु वेलसे व, वित्रुडु दुर्भवलता-लवित्रुंडगुचुन् ॥ 156 ॥

व. अंत ॥ 157 ॥

सी. किसलय खंडेंदु बिस कुंदु पद्माब्ज पद फाल भुज रद पाणि नेत्र
गाहक करभ चक्र वियत्पुलिन शंख जंघोरु कुचमध्य जघन कंठ
मुकुर चंदन बिंब शुक गज श्रीकार गंड गंधोष्ठ वाग्गमन कर्ण
जंपकेंदु स्वर्ण शंपा धनु नील नासिकास्यांग दृक् भ्रू शिरोज

ते. वलि सुधावर्त कुंतल वासनाभि, फलित जनकावनीपाल कन्यका ल
लाम वरिणयमय्ये ललाट नेत्र, कार्मुक ध्वंस मुंकुव गाक नतडु ॥ 158 ॥

व. अंत ॥ 159 ॥

कं. रामुन् मेचक जलद, श्यामुन् सुगुणाभिरामु सद्विभव सु
त्रामुन् दुष्ट निशाट वि, रामुं बोम्मनियें बंक्तिरथु डडबलकुन् ॥ 160 ॥

चटुल दानव-गहन (-वन) [ते.] के वैश्वानर (अग्नि) रावण के गर्व रूपी शैल के लिए पुरन्दर (इन्द्र) होते हुए, लोक-उपकार के लिए चक्रि ने लोकाभिराम होकर अवतार धारण किया। १५५ [कं.] विचित्र रूप से भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के अग्रजन्म होकर, दुष्ट-भवलता के लिए लवित्र (हँसिया) बनकर इस धरा पर राम प्रकट हुए। १५६ [वं.] तब, १५७ [सी.] किसलय, खंडेन्दु (चन्द्रखण्ड), बिस (कमलनाल), कुन्द, पद्म, अब्ज के समान [क्रमशः] चरण, फाल (ललाट), भुजा, दंतपंक्ति, कर, नेत्रों वाली [तथा] काहल (बड़ी तुरही), करभ (हाथी का सूँड़), चक्र (चक्रवाक) वियत् (आकाश), पुलिन (और) शंख के समान (क्रमशः) जंघा, ऊरु, कुच, मध्य (कटि), जघन, कण्ठवाली, (तथा) मुकुर (दर्पण) [तथा] चन्दन, बिम्ब (अनार), शुक, गज, श्रीकार के समान (क्रमशः) गण्ड (गाल), सुगन्ध, ओंठ, वाक्, गमन, कर्ण (कान) वाली, (तथा) चम्पक, इन्दु, स्वर्ण, शम्पा, धनु, नील (इंद्रनील रत्न) के समान (क्रमशः) नासिका, (सुगन्ध) आस्य (मुख) अंग, दृष्टि, भ्रू, शिरोज वाली (तथा) [ते.] वलि (त्रिवलि) सुधा के आवर्त (भँवर) के समान कुन्तल (केश), वासना से अभिकलित, जनक राजा की पुत्री-ललाम को ललाट-नेत्रवाले (शिव) के धनुष के विध्वंस रूपी कन्या-शुल्क देकर उसने (राम ने) विवाह कर लिया। १५८ [व.] तब, १५९ [कं.] राम को, नीलमेघश्याम को,

व. इट्लु पंचिन ॥ 161 ॥

च. अरुदुग लक्ष्मणुंडु जनकात्मजयुं दन तोड नेगुदें
नरिगि रघूत्तमुंडु मुदमारग जोच्चें दरक्षु सिंह सू-
कर करि पुंडरीक कपि खड्ग कुरंग वृकाहि भल्ल का-
सर मुख वन्यसत्वचय चंडतराटवि दंडकाटविन् ॥ 162 ॥

कं. आ वनमुन वसियिंचि नृ, पावन नयशालि यिच्चें नभयमुलु जग-
त्पावन मुनि संततिकि गृ, पावन निधियैन रामभद्रुं डेलमिन् ॥ 163 ॥

कं. खरकर कुल जलनिधि हिम,
करुडगु रघुराम विभुडु गड्रकरितोडन्
खरुनि वधिचेंनु घन भी,
कर शरमुल निखिल जनुलु गर मरुदनगान् ॥ 164 ॥

कं हरिसुतु बरिचरुगागौनि, हरिसुतु दुनुमाडि प नचें हरिपुरमुनकुन्
हरि विभुनकु हरिमध्यनु, हरि राज्य पदंबु निच्चें हरि विक्रमुडै ॥165॥

व. अंत सीतानिमित्तंबुनं त्रिलोक कंटकुडगु दशकंठुं दुनुमाडुटकुनै कपिसेना समेतुंडै चनि दुर्गमंबैन समुद्रंबु तेरुवु सूपकुन्न नलिगि ॥ 166 ॥

सुगुणाभिराम को, सद्वैभवों के कारण सुत्राम (इन्द्र) को, दुष्ट निशाटों (राक्षस) को मिटानेवाले को पंक्तिरथ (दशरथ) ने वनों में जाने के लिए कहा। १६० [व.] ऐसा भेजने पर; १६१ [च.] दुर्लभ रूप से लक्ष्मण और जनक-सुता के अपने साथ चलने पर, जाकर रघुराम ने दंडकाटवि में, जो तरक्षु (भालू), सिंह, सूकर, करि (हाथी), पुंडरीक (शेर), कपि, खड्गमृग, कुरंग (हिरन), वृक (भेड़िये), अहि (साँप), भल्ल (जंगली सुअर), भैंसे आदि जंगली जानवरों से भरा हुआ था और अत्यन्त भयानक था, अत्यंत आनन्द के साथ प्रवेश किया। १६२ [कं.] उस वन में निवास कर, नृपों की रक्षा करने में नयशाली, कृपासागर रामभद्र ने प्रेम से जगत को पावन करनेवाले मुनिगण को अभयदान किया। १६३ [कं.] खरकर (सूर्य) कुल के जलनिधि के हिमकर (चन्द्र)-[रूपी] विभु रघुराम ने काठिन्य अथवा सामर्थ्य के साथ घन एवं भीकर शरों से अखिल लोकों के जन के 'ऐसा कभी नहीं हुआ' कहते रहने पर खर का वध किया। १६४ [कं.] हरिसुत (सुग्रीव) को परिचर (सेवक) के रूप में लेकर, हरिसुत (वालि) का वध कर हरिपुर (वैकुण्ठ) को भेज दिया। हरि-विक्रमी हो (सिंह के समान पराक्रमी हो) हरिविभु (सुग्रीव) को हरिमध्या (सिंहमध्या-रमणी) तथा हरिराज्य (वानर-राज्य) का पद दे दिया। १६५ [व.] तब सीता के लिए त्रिलोक-कंटक (तीन लोकों को पीड़ा देनेवाले) दशकण्ठ (रावण) को मारने के लिए

म. विकट भ्रूकुटि फालभागु डगुचुन् वीरुंडु ग्रोधारुणां-
बकुडै चूचिनयंत मात्रमुन नप्पाधोधि संतप्त तो-
यकण ग्राह तिमिंगिल प्लव ढुली व्याळ प्रवाळोर्मिका
बक कारंडव चक्रमुख्य जल सत्व श्रेणितो निंकिनन् ॥ 167 ॥

व. अय्यवसरंबुन समुद्रुंडु गरुणासमुद्रुंडगु श्रीरामभद्रुनि शरणंबु सोच्चिनं गरुणिंचि यॅप्पटियट्ल निलिपि, नलुनिचे सेतुवु वंधिंपिचि, तन्मार्गंबुनं जनि ॥ 168 ॥

म. पुरमुल् मूडुनु नोक्कवाणमुन निर्मूलंबु गाविचु शं-
करु चंदंबुन नेर्चॅ राघवुडु लंकापट्टणं बिद्ध गो-
पुर शालांगण हर्म्य राजभवन प्रोद्यत्प्रतोळी कवा-
ट रथाश्व द्विप शस्त्रमंदिर निशाट श्रेणितो व्रेलिमडिन् ॥ 169 ॥

कं. रावणु नखिलजग द्वि, द्रावणु बरिमार्चि निलिपॅ रक्षोविभुगा
रावणु ननुजन्मुनि नॅ, रावण सितकीर्ति मॅरसि राघवु डॅलमिन् ॥ 170 ॥

सी. धर्म संरक्षकत्व प्रभावुंडय्यु धर्म विध्वंसकत्वमुन बॊदलि
खर दंडनाभि मुख्यमु पॊंदकुंडियु खरदंड नाभि मुख्यमुन मॅरसि

कपि-सेना के साथ जाकर दुर्गम सागर के [पार करने के लिए] मार्ग न बताने पर रूठकर, १६६ [म.] विकट-भ्रूकुटि (भौंह) से युक्त माथे वाला हो, वीर (राम) के क्रोध के कारण लाल बने हुए नेत्रों से देखने पर वह पाथोधि (सागर) ग्राह, तिमिंगल, मेंढक, ढुलि (कछुवे), व्याल (साँप), प्रवालों से युक्त लहरें, वक, कारंडव, चक्रवाक आदि जल के दल-बल के साथ संतप्त तोय (जल)-कण वाला हो सूख गया ! १६७ [व.] उस अवसर पर समुद्र के, करुणा-समुद्र श्रीरामभद्र की शरण में आने पर, करुणा कर (कृपाकर), यथावत्-स्थित कर, नल के द्वारा सेतु बँधवाकर, उस मार्ग से जाकर, १६८ [म.] तीनों पुरों को एक वाण से निर्मूल कर देनेवाले शंकर की रीति राघव ने लंकानगरी के प्रसिद्ध गोपुर, शालाएँ, आँगन, हर्म्य (अट्टालिकाएँ), राजभवन, प्रोद्यत (ऊपर उठाए गए) प्रतोली (तोरण), कवाट (द्वार) तथा रथ, अश्व, द्विप (गज), शस्त्रों के मन्दिर तथा राक्षसवर्ग को एक साथ भस्म कर दिया । १६९ [कं.] अखिल जगतों को त्रास देनेवाले रावण का वध कर, रावण के अनुजन्मा (भाई विभीषण) को रक्षा करनेवाले विभु के रूप में प्रतिष्ठित कर, ऐरावत की भाँति सित-कीर्ति से विलसित हुआ । १७० [सी.] धर्म-संरक्षण के प्रभाव को धारण करनेवाले होकर भी धर्म (धनुष) का विनाश करने में विख्यात हो, खरदण्ड (कठिन दण्ड) की ओर प्रवृत्त न होकर भी खर (राक्षस) को दण्डित करने में विख्यात हो, पुण्यजनों का आवन (रक्षा)

पुण्यजनावन स्फूर्ति बॅपोंदियु बुण्यजनांतक स्फुरण दनरि
संतताश्रित विभीषणुडु गाकुंडियु संतताश्रित विभीषणत नौप्पि

ते. मिंचि तनकीर्ति चेत वासिचें दिशलु,
तरमें ? नुतियिंप रामु नॅव्वरिकिनैन
जारुतरमूर्ति नवनीश चक्रवर्ति,
प्रकट गुणसांद्रु दशरथ - रामचंद्रु ॥ 171 ॥

व. अट्टि रामावतारंबु जगत्पावनंबु नस्मत्प्रसादकारणंबुनै नुति कॅक्कॅ।
इंक कृष्णावतारंबु विवरिंचॅद विनुमु ॥ 172 ॥

सी. तापसोत्तम ! विनु दैत्यांशमुल बुट्टि नरनाथु लतुल सेनासमेतु
लगुचु धर्मेतरुलै धात्रि बॅक्कु बाधल नलंचुट जेसि ! धरणि वगल
बॊंदुचु वापोव भूभार मुडुपुटकै हरि परुडु नारायणुंडु
चॅच्चॆर दन सितासित केश युगमुन बलरामकृष्ण रूपमुल दनरि

ते. यदुकुलंबुन लीलमै नुदयमय्यॆ, भव्ययशुडगु वसुदेव भार्यलैन
रोहिणियु देवकियुननु रूपवतुल, यंदु नुन्मत्त दैत्य संहारियगुचु ॥173॥

व. इट्लु पुंडरीकाक्षुंडगु नारायणुंडु समस्त भूभार निवारणंबु सेयं दन
मेनि केश द्वयंबु चालुननि यात्मप्रभावंबु दॅलुपु कॊरकु निजकळा संभवुलैन

करनेवाले होकर भी, पुण्यजनांतकों (राक्षसों) का वध करने में प्रसिद्ध हो, संतत आश्रितों के प्रति विभीषण (भयंकर) न होकर भी, संतत-आश्रित होनेवाले विभीषण से युक्त हो विराजमान होकर, [ते.] अपनी कीर्ति को दिशाओं में व्याप्त करनेवाले, चारुतरमूर्ति, अवनीश-चक्रवर्ती (राजाओं का राजा), प्रकट-गुणशाली, दशरथ के पुत्र रामचन्द्र की स्तुति करना किसी के बस की बात है क्या ?, १७१ [व.] इस प्रकार का रामावतार जगत के लिए पावनकर [और] अपने लिए प्रसाद (संतोष अथवा अनुग्रह) का कारण हो विख्यात हुआ। अब कृष्णावतार का विवरण करूँगा ! सुनो ! १७२ [सी.] तापसोत्तम ! सुनो ! दैत्य के अंशों से पैदा होकर नरनाथ (राजा) अतुल सेना समेत होते हुए, धर्मेतर (धर्म-विरुद्ध आचरण करनेवाले) हो, धरती को अनेकों प्रकार की पीड़ाएँ देने पर, धरती के दुःखी होते रोदन करने पर, भूभार को मिटाने के लिए परात्पर हरि अपने शरीर पर के सफ़ेद और काले बालों को प्रसरित कर, तद्द्वारा बलराम (और) कृष्ण के रूपों में विलसित होकर, [ते.] यदुकुल में लीला से, भव्य यशवाले वसुदेव की पत्नियाँ रोहिणी और देवकी नामक रूपवतियों [के गर्भ] से, उन्मत्त राक्षसों के संहारी के रूप में उत्पन्न हुआ। १७३ [व.] इस प्रकार पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन) नारायण ने समस्त भूभार का निवारण करने के लिए अपने शरीर के केशद्वय बस हैं, ऐसा जानकर

रामकृष्णुल देहवर्णंबुलु श्वेत कृष्णंबुलनि निर्देशिचु कोड़कु सितासित केशद्वय व्याजंबुन राम कृष्णाख्यल नवतरिचें। अंदु भगवंतुंडुनु साक्षाद्विष्णुंडुनु नैन कृष्णुंडु जन मार्गवर्तियय्यु नतिमानुष कर्मंबु लाचरिचुटं जेसि केवल परमेश्वरुंडय्यें। अम्महात्मुं डाचरिचु कार्यंबुलु लॅक्कवॅट्ट नॅव्वनिकि नलवि गादु। अयिननु नाकु गोचरिचि नंतयु नॅरिगिचॅद विनुमु ॥ 174 ॥

कं. नूतन गरळस्तनि यगु, पूतन बुरिटिंटिलोन वीत्तुल शिशुवै
चेतनमुल हरियिचि प, रेत नगरमुनकु ननिचॅ गृष्णुडु पॅलुचन् ॥ 175 ॥

कं. विकटमुग निज पदाहति, ब्रकटमुगा मूडुनॅलल बालकुडै या
शकट निशाटुनि नंतक, निकटस्थुनि जेसॅ भक्त निकरावनुडै ॥ 176 ॥

कं. मुद्दुल कौमरुनि व्रेतल,
रद्दुलकै तलिल श्रोल रज्जुन गट्टन्
वद्दुलकु मिन्नु मुट्टिन,
मुद्दुल वडि गूल्चॅ जनसमाजमु वीगडन् ॥ 177 ॥

म. मदि गृष्णुंडु यशोद विड्ड डनि नम्मंभजाल योगींद्र ! त-
द्वदनांभोजमुलो जराचर समस्त प्राणिजाताटवी

अपने प्रभाव को विदित करने के लिए, अपनी कला से उत्पन्न राम और कृष्ण के शरीर के वर्ण श्वेत तथा कृष्ण (काला) हों, ऐसा निर्देश करते हुए, सित-असित (सफ़ेद, काले) केशद्वय के मिस से राम तथा कृष्ण के नाम से अवतार ग्रहण किया। उसमें भगवान् तथा साक्षात्-विष्णुस्वरूप कृष्ण ने जन (साधारण मानव) के मार्ग के अनुवर्ती होकर भी अति-मानुष (अलौकिक)-आचरण करते हुए केवल परमेश्वर [निरूपित] हुए। उस महापुरुष के कार्यों की गणना करना किसी के लिए भी संभव नहीं है। फिर भी मैं जहाँ तक जानता हूँ, विदित करूँगा ! सुनो ! १७४ [कं.] नूतन गरल-स्तनी बनी पूतना के प्रसूति-गृह में [प्रवेश करने पर] बीथड़ों में स्थित शिशु होकर (पूतना की) चेतनाओं को हरकर कृष्ण ने सरलता से [उसे] परेतनगर (यमपुरी) को भेज दिया। १७५ [कं.] भक्त-निकर (-समूह) के रक्षक हो प्रकट-रूप से तीन महीनों का बालक हो, विकट-रूप से अपने पदाहति से (लात मारकर) उस शकटासुर को अन्तक (यमराज) के निकटस्थ कर दिया। १७६ [कं.] [अपने] लाड़ले पुत्र के ग्वालिनों के साथ करनेवाले अचगरी से [तंग आकर] माता के रस्सी से ऊखल को बाँधने पर, आकाश को छूनेवाले वृक्षों को जन-समाज से संस्तुत होते हुए [कृष्ण ने] गिरा दिया। १७७ [म.] योगीन्द्र ! यशोदा का पुत्र है, ऐसा मन में विश्वास कैसे हो ? अपने (कृष्ण के)

नद नद्यद्रि पयोधि युक्तमगु नानालोक-जालंबु भा-
स्वदनूनक्रिय जूपँ दल्लिकि महाश्चर्यंबु वाटिल्लगन् ॥ 178 ॥

चं. वर यमुनानदी ह्लद निवासकुडै निजवक्त्र निर्गत
स्फुरित विषांबुपानमुन भूजनुलन् मृति बोंद जेयु भी-
कर गरळ द्विजिह्वुडगु काळिय पन्नगु ना ह्लदंबु वॅ-
ल्वॅर वॅडलिचि काचॅ यदुसिंहुडु गोपक गो गणंबुलन् ॥ 179 ॥

म. तनया ! गोपकु लोक्क रातिरिनि निद्रं जॅंद गार्चिच्चु व-
च्चिन गृष्णा ! ममु नग्नि पीडितुल रक्षिपं दगुं गाववे ।
यनिनं गन्नुलु मीरु मोड्पुडिदॅ दावाग्निन् वॅसन्नार्तु ने
नन वारट्ल योनर्प म्रिंगॅ शिखि बद्माक्षुंडु लीलागतिन् ॥ 180 ॥

कं. मंदुनि गति यमुनांबुवु, लंदु निशिं ग्रुंकि बद्धुडै चिक्किन या
नंदुनि वरुणुनि बंधन, मंदु निवृत्तुनिग जेसॅ हरि सदयुंडै ॥ 181 ॥

म. मयसूनुंडु निजानुवर्तुल महामायन् महीभृ द्गुहा
श्रयुलंगा नोनरिंचि तत्पथमु नीरंध्रंबु गाविंचिनन्
रयमोप्पन् गुटिलासुराधमुनि वोरन् द्रुंचि गोपावळिन्
दयतो गाचिन कृष्णु सन्महिम मेतन्मात्रमे ? तापसा ! ॥ 182 ॥

वदन-अंभोज में समस्त चराचर प्राणि-कोटि, अटवी (वन), नद, नदी, अद्रि (पर्वत), पयोधि (सागर) के साथ नाना लोकजाल को, भास्वत-अनून-क्रिया (प्रकाशमान अनुपम विधान) से माता को महाश्चर्य पैदा हो, ऐसा दर्शाया । १७८ [चं.] श्रेष्ठ यमुना नदी के ह्लद में निवास करते हुए अपने वक्त्र (मुख) से निर्गत (निकले) स्फुरित (स्पंदित) विषजल के पान से जनता को मार डालनेवाले भीकर गरल से युक्त दो जीभ वाले कालिय [नामक] पन्नग (साँप) को उस ह्लद से शीघ्र बाहर निकालकर यदुसिंह (कृष्ण) ने गोप तथा गोगण की रक्षा की । १७९ [म.] हे पुत्र ! एक रात में गोपकों के सोते समय भयंकर दावानल के आ जाने पर, 'कृष्णा ! हमें, अग्नि से पीड़ितों को बचाओ' कहने पर, 'आप लोग आँखें बन्द कर लीजिए, अभी मैं दावाग्नि को झट बुझाऊँगा' ऐसा कहकर, उनके वैसा करने पर पद्माक्ष लीला से शिखि (अग्नि) को निगल गया । १८० [कं.] मन्द की रीति यमुनाजल में रात में बद्ध हो फँसे हुए उस नन्द को वरुण के बन्धन से, दयावान हो हरि ने छुड़ा दिया । १८१ [म.] तापसी ! मयसुत के निज-अनुवर्तियों (-अनुचरों) [गोपालकों] को महा माया से महीभृत् (पर्वत) की गुफा के आश्रित कर (भीतर ले जाकर) उसका रास्ता बन्द कर देने पर, उस कुटिल असुर-अधम का युद्ध में वध कर, दया के साथ गोपालों की रक्षा करनेवाले कृष्ण की सन्महिमा

कं. दिविजेंद्र प्रीतिग व, ल्लजजनु लेटेट जेयु ललित सवनो
त्सवमुन् हरि मान्चिन गो, पवरुलु गाविपकुन्न वलरिपु डलुकन्॥ 183 ॥

ते. मंद गॉदल मंद नमंद वृष्टि, ग्रंवु कॉनुडंचु निव्रुंडु मंद कंपं
जंड पवन समुद्भूत चटुल विलय, समय संवर्त काभील जलधरमुलु॥184॥

शा. सप्तस्कंध शिखाकलाप रुचिमत्सौदामिनी वल्लिका
दीप्तोदग्रत मुहुर्मुहु स्स्तनित धात्रीभाग नीरंध्रमै
सप्ताश्वस्फुर दिंदुमंडल नभ स्संछादिताशांतर
व्याप्तांबोध निरर्गळ स्फुट शिला वाःपूर धाराळमै ॥ 185 ॥

व. कुरियु वानजल्लु पॅल्लुन रिम्मुलुगॉनि सॉम्मुलु वोयि गोप गोकुलं
बाकुलंबु नॉदि कृष्ण! कृष्ण! रक्षिपु; रक्षिपु मनि यार्ति नॉदि कुय्यिड
नय्यखंड करुणारस समुद्रुंडु भक्तजन सुरद्रुमुंडु नगु पंडरीकाक्षुंडु ॥ 186 ॥

शा. सप्ताब्दंबुल वालुडै निज भुजास्तंभंबुनन् लीलतो
सप्ताहंबुलु शैल राजमचल च्छत्रंबुगा दाल्चि सं-

की गणना कर सकते हैं ? (नहीं) १८२ [कं.] दिविजेन्द्र (इन्द्र) की प्रीति के लिए ग्वालों द्वारा प्रतिवर्ष मनाया जानेवाले सवनोत्सव (यज्ञ) को हरि ने वंद करा दिया। गोपवरों के [यज्ञ] न करने पर बलरिपु (इन्द्र) क्रोधित हो, १८३ [ते.] 'झुण्ड (गोवृंद) विकल हो जाने पर, तुम लोगों को अमंद वर्षा घेर ले' कहते हुए इन्द्र ने झुंड (व्रज) पर चंड-पवन से समुद्भूत और चटुल-विलय (-प्रलय) समय के संवर्तक (भँवरों से युक्त) आभील (भयकर) जलधरों (मेघों) को भेजा। १८४ [शा.] मोर के सप्तस्कन्ध (मोरपंख के वर्ण) के कलाप की रुचि (कान्ति) से युक्त, सौदामिनी (बिजली) की वल्लिकाओं (नैरंतर्य) से दीप्त हो, उदग्र हो, बार-बार तमस् से पिहित (आच्छादित) कर, धात्री भाग पर घना होते हुए, सप्तपाश्व (सूर्य) के प्रकाश (तथा) इन्दु के मण्डल से युक्त आकाश को संच्छादित करनेवाले तथा दिशान्तरों में व्याप्त अंभोदों (मेघों) के निरर्गल (अबाध) गति से फूटते ओलों से भरी वर्षा की धाराओं से युक्त [वर्षा के] धाराल (पुष्कलता) से १८५ [व.] वरसनेवाली बौछार की अधिकता के कारण विचलित हो गोपों तथा गोपकुल के बेहोश होकर आकुल हो, 'कृष्ण! कृष्ण! रक्षा करो! रक्षा करो!' कहते हुए, आर्त्त हो गुहार (प्रार्थना) करने पर, उस अखण्ड करुणा रस समुद्र (तथा) भक्तजन-सुरद्रुम (कल्पवृक्ष) पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन, कृष्ण) ने, १८६ [शा.] सात साल के वालक ने अपनी भुजा रूपी स्तम्भ पर लीला से [कई] सप्ताहों तक शैल (पर्वत)-राज को अचल छत्र के रूप में धारण कर, गो-गोपालक व-व्रात (-वृन्द) के प्राणों की रक्षा की। सप्तांभोधि (सातों समुद्रों) से

गुप्त प्राणुल जेसें माधुवुडु गो गोपालक व्रातमुन्
सप्तांबोधि परीत भूधरन काश्चर्यबें। चिंतिपगन्॥ 187 ॥

सी. सांद्र शरच्चंद्र चंद्रिका धवळित विमल बृंदावन वीथियंदु
रासकेळी महोल्लासुडै युत्फुल्ल जलजाक्षु डोक निशासमयमुननु
दनराउ मंद्र मध्यम तारमुल निपु दळुकोत्त राग भेदमुल दनरि
धंवत ऋषभ गांधार निषाद पंचम षड्ज मध्यमस्वरमु लोलि

ते. गळलु जातुलु मूर्छनल् गलुग वेणु
नाळ विवरांगुळी न्यासलालनमुन
महितगति बाडॆ नव्यक्त मधुरमुगनु,
बंकजाक्षुंडु दारुवु लंकुरिप ॥ 188 ॥

म. हरि वंशोद्गत मंजुल स्वर निनादाहूतलै गोप सुं-
दरु लेतेर धनाधिपानुचर गंधर्वुंडु गोंपोव द-
त्तरुणुल् गुय्यिड शंखचूडुनि भुजादर्पंबु मार्पिचि ता
वरिरक्षिचिन यट्टि कृष्णुनि नुतिपन् शक्यमे येरिकिन् ॥ 189 ॥

चं. नरक मुर प्रलंब यवन द्विप मुष्टिक मल्ल कंप शं-
बर शिशुपाल पंचजन पौंड्रक पल्वल दंतवक्त्र वा-

परिवृत भूधर (भूमि को धारण करनेवाले) के लिए सोचने पर क्या [यह] आश्चर्य [जनक] होगा ! १८७ [सी.] शरत्चन्द्र की सान्द्र-चन्द्रिकाओं के धवलित (सफ़ेद बनाए हुए) [तथा] विमल वृन्दावन की वीथि में, रासकेलि के महोल्लास के साथ उत्फुल्ल-जलजाक्ष (कमल-नयनवाले) ने एक [बार] रात्रि की वेला में, शोभित मन्द्र, मध्यम, तार को पूरनेवाले प्रकाशमान राग भेदों से शोभित होकर धैवत, ऋषभ, गान्धार, निषाद, पंचम, षड्ज, मध्यम स्वरों को क्रम से [ते.] कलाओं, जातियों, मूर्छनाओं के साथ वेणु-नाल के विवरों पर अँगुलियों का विन्यास करते हुए, लालन करते हुए, अव्यक्त मधुर लीला में दारु (काठ) भी अंकुरित हो जायँ, ऐसा पंकजाक्ष (कमलाक्ष) ने गान किया। १८८ [म.] हरि के वंश [वेणु] से उद्गत मंजुल स्वर के निनाद से आहूत होकर गोप-सुन्दरियों के आने पर धनाधिप (कुबेर) के अनुचर एक गन्धर्व के [आकर] उनको ले जाने पर, उन रमणियों के हाहाकार करने पर, उस शंखचूड़ के भुजा-दर्प (-गर्व) को समाप्त कर, रक्षा करनेवाले कृष्ण की स्तुति करना किसके वश की बात है ! १८९ [चं.] नरक, मुर, प्रलम्ब, यवन, द्विप, मुष्टिक, मल्ल, कम्प, शम्बर, शिशुपाल, पंचजन, पौण्ड्रक, पल्वल, दन्तवक्त्र, वानर, खर, साल्व, वत्स, बक, नाग, विडूरथ, रुक्मि, केलि, दुर्दुर, वृष, धेनुक, प्रमुख (आदि) दुष्ट निशाटों (राक्षसों) का

नर खर साल्व वत्स बक नाग विडूरथ रुक्मि केळि द-
र्दुर वृष धेनुक प्रमुख दुष्ट निशाटुल द्रुंचॆ न्रेलिमिडिन् ॥ 190 ॥

व. मरियुनु ॥ 191 ॥

म. वल भीमार्जुन मुख्य चापधर रूप व्याजतं गूरुलन्
खलुलन् दुष्ट धरातलेश्वरुल संग्रामैक पारीण दो-
र्बल केळि दुनुमाडि सर्वधरणी भारंबु मार्चिचि सा-
धुल रक्षिंचिन यट्टि कृष्णुनि ननंतुं गॊल्तु नॆल्लप्पुडुन् ॥ 192 ॥

व. अट्टि लोकोत्कृष्टुंडैन कृष्णुनि यवतार माहात्म्यं बॆरिगिंचिति। इंक
व्यासावतारंबु विनुमु ॥ 193 ॥

उ. प्रत्युगमंदु संकुचित भावुलु नल्पतरायुवुल् सुदो-
र्गत्यगुलैन मर्त्युल कगम्यमुलै स्वकृतंबु नित्यमुल्
सत्यमुनैन वेदतरु शाखल दा विभजिंचि नट्टि या
सात्यवतेय मूर्तिययि जातमुनॊंदॆ हरि प्रसन्नुडै ॥ 194 ॥

व. मरियु बुद्धावतारंबु विनुमु ॥ 195 ॥

म. अतिलोलात्मु लसूनृतोक्तुलुनु वेदाचार संशीलु रु-
द्धत पाषंड मतोपधर्म्युलु जगत्संहारु लैनट्टि या
दिति संजातु लधर्मवासनल वर्तिपं ददाचार सं-
हृति मार्चिचि हरिंचॆ दानवुल वद्माक्षुंडु बुद्धाकृतिन् ॥ 196 ॥

चुटकी भर (क्षण) में वध किया। १९० [व.] और, १९१ [म.] वलराम, भीम, अर्जुन प्रमुख (आदि) धनुर्धरों के रूप के मिस क्रूरों, खलो (तथा) दुष्ट धरातलेश्वरों (राजाओं) को संग्रामैक-पारंगत-दोर्बल (-भुजवल) की केलि में वध कर, समस्त धरती के भार को दूर कर साधु [जनों] की रक्षा करनेवाले अनन्त, कृष्ण की सदा सेवा करता हूँ। १९२ [व.] ऐसे लोकों में उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) कृष्ण के अवतार के माहात्म्य को (मैंने) विदित किया। अब व्यासावतार को सुनो। १९३ [उ.] हर युग में संकुचित भाव वाले, अल्पतर-आयु वाले, अधिक दुर्गति को पानेवाले, मर्त्यों के लिए अगम्य बनकर, स्वकृत (स्वय निर्मित), नित्य, सत्य रूपी वेद तरु की शाखाओं को स्वयं विभाजित करनेवाले उस सात्यवतेय (सत्यवती-पुत्र) के रूप में हरि प्रसन्न हो पैदा हुए। १९४ [व.] और बुद्धावतार को सुनो। १९५ [म.] अति भाषण वाले और लोलात्मा (चंचल स्वभाव वाले), अनृत भेदाचार से युक्त शीलवाले, उद्दण्ड पाखण्ड मत के छोटे-मोटे धर्मों का आचरण करनेवाले, जगत का संहार करनेवाले दिति की सन्तान (दानवों) के अधार्मिक वासनाओं के साथ संचार करने पर, वध कर, उनके आचरण को बुद्ध की आकृति से पद्माक्ष (विष्णु) ने

व. मरियुं गल्क्यवतारंबु विनुमु ॥ 197 ॥

म. वनजाक्ष स्तव शून्युलुन् वषडिति स्वाहास्वधा वाक्य शो-
भन राहित्युलु सूनृतेतरुलुनुं बाषंडुलुन्नैन वि-
प्रनिकायंबुनु शूद्र भूविभलुनुन् बाटिल्लिनन् गल्कियै
जननं बंबि यधर्ममु न्नडचि संस्थापिंचु धर्मंबिलन् ॥ 198 ॥

व. अनि मरियु बितामहुंडु नारदुन किट्लनियें। मुनींद्रा ! पुंडरिकाक्षुं-डंगीकरिंचु लीलावतार कथावृत्तातंबु ने नीकु नेरिंगिचु नितकु मुन्न हरि वराहाद्यवतारंबु लंगीकरिंचि तत्प्रयोजनंबुलु दीर्चें। मन्वंतरावतरंबुलु नंगीकरिंचिनवियु, नंगीकरिंपं गलयवियुनै युन्नवि। वर्तमानंबुन धन्वंतरि परशुरामावतारंबुलु दाल्चि युन्नवाडु। भाविकालंबुन श्रीरामाद्यवतारंबुल नंगीकरिंपं गलवाडु। अम्महात्मुंडु सृष्ट्यादि कार्य भेदंबुल कौरकु माया गुणावतारंबु नोंदु। बहुशक्ति धारणुंडैन भगवंतुंडु सर्गंबुनं दपंबुनु, एनुनु, ऋषि गणंबुलुनु, नवप्रजापतुलुनु नै यवतरिंचि विश्वोत्पादनंबु गाविंचु। धर्मंबुनु, विष्णुंडुनु, यज्ञंबुलुनु, मनुवुलुनु, इंद्रादि देवगणंबुनु, धात्रीपतुलुनै यवतरिंचि जगंबुल रक्षिपुचुंडु। अधर्मंबुनु रुद्रुंडुनु, महोरगंबुलुनु, राक्षसानीकंबुलुनै विलयंबु नोंदिंचु।

हटाया। १९६ [व.] और कल्कि अवतार को सुनो। १९७ [म.] वनजाक्ष (विष्णु) की स्तुति से शून्य (भक्तिहीन), वषट्, स्वाहा, स्वधा वाक्यों की शोभा से रहित (यज्ञ न करनेवाले), सूनृतेतर (झूठे), पाखण्डी बने हुए विप्रगण तथा शूद्र राजाओं के बढ़ जाने पर कल्कि के रूप में जन्म लेकर इस धरती पर अधर्म का दमन कर, धर्म की स्थापना करेगा। १९८ [व.] और फिर पितामह ने नारद से इस प्रकार कहा, मुनीन्द्र ! पुण्डरीकाक्ष के धारण किये हुए लीला-अवतारों की कथा सम्बन्धी वृत्तान्तों को मैंने तुम्हें विदित किया। पूर्व में हरि ने वराह आदि अवतारों को लेकर उन-उन प्रयोजनों को संपन्न किया। मन्वन्तर-अवतार स्वीकार किए हुए और स्वीकार करने योग्य भी हैं। वर्तमान में (आज-कल) धन्वन्तरि [और] परशुरामावतार धारण किये हुए है। भाविकाल में श्रीराम आदि अवतारों को स्वीकारने वाला है। वह महात्मा सृष्टि आदि कार्य-भेदों (अलग-अलग कार्यों) को सम्पन्न करने के लिए माया [से युक्त] सगुण अवतार धारण करता है। अत्यधिक शक्ति को धारण करनेवाला भगवान् सृष्टि के आदि में मेरे (ब्रह्मा), ऋषि-गण के (एवं) नव प्रजापति के रूप में अवतरित होकर विश्व का उत्पादन करता है। धर्म, विष्णु, यज्ञ, मनु, इन्द्रादि देवगण, धात्रीपति हो- अवतरित होकर जगतों की रक्षा करता रहता है। अधर्म, रुद्र, महासर्प, राक्षसवर्ग होकर विलय करता रहता है। इस प्रकार परमेश्वर तथा सर्वात्मक हरि

इट्टॆट्टिंगुनं बरमेश्वरुंडुनु, सर्वात्मकुंडुनैन हरि विश्वोत्पत्ति स्थिति लय हेतुभूतुंडै विलसिल्लु। धरणीरेणुवुलैन गणुतिंप नलवियगुं गानि यम्महात्मुनि लीलावतारादभुत कर्मंबुलु लॆक्ककवॆट्ट नॆव्वनिकि नशक्यंबै युंडु। नीकु संक्षेपरूपंबुन नुपन्यसिंचिति। सविस्तरंबुगा नॆरिंगिंप नाकुं वरंबुगादु। अन्युलं जॆप्पनेल ? विनुमु ॥ 199 ॥

चं. अमर त्रिविक्रमस्फुरण नंदिन यम्महितात्मु पाद वे-
गमुन हतंबुलैन त्रिजगंबुल कावल नॊप्पु सत्यलो-
कमु चलियिंचिनं गरुण गैकॊनि काचि धरिंचु पादप-
द्ममु तुदिनुन्न यप्रतिहतंबगु शक्ति गणिंप शक्यमे ! ॥ 200 ॥

म. हरि मायाबल मे नॆरुंग नट शक्यंबे ! सनंदादि स-
त्पुरुष व्रातमु कैन बुद्धि नितरंबुन् मानि सेवाधिक-
स्फुरणं दच्चरितानुराग गुण विस्फूर्तिन् सहस्रास्य सुं-
दरतन् वॊल्पगु शेषुडु न्नॆरुंग डन्नन् जॆप्पले रॊडॊरुल् ॥ 201 ॥

चं. इतरमु मानि तन्नु मदि नॆंतयु नम्मि भजिंचुवारि ना-
श्रित जन सेवितांघ्रि सरसीरुहुडैन सरोजनाभु डं-

विश्व की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का हेतुभूत होकर विलसित होता है। धरणी के रेणुओं (धूलिकणों) की गणना कर सकते हैं, किन्तु उस महात्मा के लीलापरक अवतारों [तथा] अद्भुत कर्मों की गणना करना किसी के लिए भी संभव नहीं है। [मैंने] संक्षेप में भाषण के द्वारा तुम्हें सुना दिया। सविस्तृत रूप में विदित करना मेरे वस की बात नहीं है। अन्य लोगों का क्या कहना ? सुनो ! १९९ [चं.] शोभा से त्रिविक्रम (वामनावतार) के विधान से मण्डित होनेवाले उस महितात्मा के पाद (चरण) वेग से हत हो, तीन जगतों के उस पार विलसित होनेवाले सत्यलोक के संचलित होने पर, कृपा कर, रक्षा कर धारण करनेवाले चरण-कमल की छोर में स्थित अप्रतिहत शक्ति की गणना संभव है क्या ? २०० [म.] हरि का मायाबल मैं ही नहीं जान सकता। सनन्द आदि सत्पुरुष-व्रात (-गण) के लिए बुद्धि से अन्य [विषयों के बारे में] विचार करना छोड़कर, अत्यधिक सेवा के प्रकाश से उसके चरित पर अनुरागगुण के तेज के विकास से, हज़ारों मुखों से सुन्दर रूप में सुशोभित होनेवाले आदिशेष भी नहीं जानता। तब दूसरों की बात क्या कहें ! २०१ [चं.] अन्य [विषयों] को छोड़कर, उसी पर मन में अधिक भरोसा रखकर, सेवा करनेवाले आश्रित जनों से सेवित अंघ्रि-सरसीरुह (चरण-कमलों) वाला, कमलनाभ वाला, [उन भक्तजनों पर] निष्कपट चित्त से अत्यन्त दया दिखाता है। ऐसे लोग [आश्रित जन]

चित दयतोड निष्कपट चित्तमुनं गरुणिचु नट्टि वा-
रतुल दुरंतमै तनरु नव्विभु माय दरितु रॆप्पुडुन् ॥ 202 ॥

व. मरियुनु संसार मग्नुलै दिवसंबुलु द्रोब्बि यंतंबुन शुनक सृगाल भक्ष्यंबुलैन कायंबुलंदु ममत्वंबु सेयक भगवदर्पणंबु सेसिन पुण्यात्मुलु गॊंदरु गलरु, ऒर्रिगितु विनुमु। एनु नी ब्रह्मत्वंबुनं जॆंदु राजसंबु विडिचि यम्महात्मु पादारविंदंबुल भक्ति निष्ठुंडनै, शरणागतत्वंबुन भजिंचु नप्पुडु दॆलियुदु। राजसगुणुंडनै तॆलियजाल। शास्त्रंबुलु प्रपंचिपक केवल भक्ति ज्ञानयोगंबुन सेवितु। मरियु सनकादुलगु मीरुनु, भगवंतुंडैन रुद्रुंडुनु, दैत्यपतियैन प्रह्लादुंडुनु, स्वायंभुव मनुवुनु, अतनि पत्नि यगु शतरूपयु, तत्पुत्रुलगु प्रियव्रतोत्तानपादुलनु वारलुनु, तत्पुत्रिकलु, प्राचीन बर्हियु ऋभुवुनु, वेनजनकुंडगु नंगुंडुनु, ध्रुवुंडुनु गडवं जालुदुरु। वॆंडियु ॥ 203 ॥

सी. गाधि गयादु लिक्ष्वाकु दिलीप मांधातलु भीष्म ययाति सगर
रघु मुचुकुंदैळ रंति देवोद्धव सारस्वतोदंक भूरिषेण
श्रुतदेव मारुति शतधन्व पिप्पल बलि विभीषण शिबि पार्थ विदुरु
लंबरीष पराशरालर्क देवल सौभरि मिथिलेश्व राभिमन्यु

ते. लार्ष्टि षेणादुलैन महात्मु लॆलमि,
दविलि यद्देवु भक्ति जित्तमुल निलिपि

अतुल तथा दुरन्त (दुस्तर) हो विराजमान उस विभु की माया को सदा पार कर जाते हैं। २०२ [व.] और संसार में मग्न हो दिन गँवाकर, अन्तकाल में कुत्ते और लोमड़ियों से खाये जानेवाले शरीरों पर ममता न कर, [जीवन को] भगवान को समर्पित करनेवाले कुछ लोग हैं। उनके बारे में विदित करूँगा! सुनो! मैं इस ब्रह्मत्व में स्थित राजस् को छोड़कर उस महात्मा के पादारविंदों में भक्तिनिष्ठ हो, शरणागतभाव से भजन करते समय उसे जान पाता हूँ। राजस् गुण वाला हो रहते समय नहीं जान सकता। शास्त्रों का प्रवचन न करते हुए, केवल भक्ति-[तथा] ज्ञानयोग से सेवा करता हूँ। (और) [सनकादि] आप लोग, भगवान रुद्र, दैत्यपति प्रह्लाद, स्वायंभू मनु, उसकी पत्नी शतरूपा और उसके पुत्र [प्रियव्रत, उत्तानपाद नामवाले] उसकी पुत्रियाँ, प्राचीन बर्हि, ऋभु, वेन का जनक अंग, ध्रुव, (आदि) पार पा सकते हैं। और, २०३ [सी.] गाधि, गय आदि, इक्ष्वाकु, दिलीप मान्धाता, भीष्म, ययाति, सगर, रघु, मुचुकुन्द, ऐल, रन्तिदेव, उद्धव, सारस्वत, उदंक, भूरिषेण, श्रुतदेव, मारुति, शतधन्वा, पिप्पल, बलि, विभीषण, शिबि, पार्थ, विदुर, अम्बरीष, पराशर, अलर्क, देवक, सौभरि, मिथिलेश्वर, अभिमन्यु, [ते.] आर्ष्टिषेण आदि महात्मा लोग प्रेम से, लगन से उस देव के प्रति चित्त में भक्ति स्थापित

तत्परायण भक्ति दुर्वीतमैन,
विष्णुमाय दरितुरु विमल मतुलु ॥ 204 ॥

म. अनघा वीरल नॅन्न नेमिटिकि ? दिर्यग्जंतु संतान प-
क्षि विशाटाटवि काघजीव निवह स्त्री शूद्र हूणावुलै
ननु नारायण भक्तियोग महितानंदात्मुलैरेनि वा
रनयंबुन् धरियिंतु रव्विभुनि मायवैभवांभोनिधिन् ॥ 205 ॥

व. कावुन ॥ 206 ॥

कं. शश्वत्प्रशांतु नभवुनि, विश्वात्मु प्रबोधमात्रु विभु संशुद्धुन्
शाश्वतु समुसदसत्परु नीश्वरु जित्तमुन निलुपु मॅपुडु मुनींद्रा ! ॥ 207 ॥

व. अट्लैन नप्पुण्यात्मुल ननवद्य शीलुर नविद्य लज्जावनत-वदनयै पौबै जालक वैमुख्यंबुनं दव्वुदव्वुल दलंगिपोवु मप्पिुडु ॥ 208 ॥

चं. हरि बरमात्मु नच्युतु ननंतुनि जित्तमुलो दलंचि सु-
स्थिरत विशोक सौख्यमुल जेंदिन धीनिधु लन्य कृत्यमुल्
मरच्चियु जेय नॊल्लरु तलंचिन नट्टिदयो सुरेंद्रुडुं
वरुवडि नुद्यिय द्रव्वेडु निपान खनित्रमु मानु कॆवडिन् ॥ 209 ॥

उ. सर्वफल प्रदातयुनु सर्वशरण्युडु सर्वशक्तुडुन्
सर्वजग त्प्रसिद्धुडुनु सर्वगतुं डगु चक्रपाणि यी

कर, वे विमलमति वाले उसी की तत्पर भक्ति के कारण दुर्दान्त (भयंकर, दुर्गम) विष्णुमाया को तर जाते हैं। २०४ [म.] अनघ ! इनकी गिनती क्या करूँ ? तिर्यक् जन्तु सन्तान हो, पक्षी हो, निशाचर हो, आटविक (बहेलिया) [आदि] पापी [जन] समूह हो, स्त्री, शूद्र, हूण, आदि भी क्यों न हों नारायण के भक्ति-योग के कारण अत्यन्त आनन्दात्मा वाले बनें तो वे अवश्य उस विभु के, माया-वैभव के सागर को तर जाते हैं। २०५ [व.] इसलिए, २०६ [कं.] मुनीन्द्र ! शाश्वत रूप में प्रशान्त [पुरुष] अभव, विश्वात्मा, एकमात्र प्रबोधात्मा (ज्ञानी), विभु, संशुद्ध, शाश्वत, समभाव वाले, सत्-असत् और पर बने हुए ईश्वर को सदा चित्त में प्रतिष्ठित कर लो। २०७ [व.] ऐसा कर लेने पर, उन पुण्यात्माओं को अनवद्य (निर्दोष) शीलवालों के समीप पहुँच न सक, अविद्या लज्जा के कारण सिर झुकाकर, विमुख भाव से दूर-दूर से ही हटकर चली जाती है। और, २०८ [चं.] हरि, परमात्मा, अच्युत, अनन्त को चित्त में धरकर सुस्थिरता से शोकरहित हो, सुख पानेवाले धीनिधि (बुद्धिमान) लोग भूलकर भी अन्य कार्य (पाप-कार्य) करना नही चाहते, जैसे कि सुरेन्द्र सलिल की अभिलाषा से (प्यास लगने पर) झट सब्बल लेकर कुआँ खोदने नही जाता। २०९ [उ.] सर्व (सकल) फलों

सर्व शरीरुलुन् निगमसंगति जेंदि विशीर्यमाणुलै
पविनचो नभंबु गति ब्रह्ममु दा जेंडकुंडु नेप्पुडुन् ॥ 210 ॥

उ. कारणकार्य हेतुवगु कंजदळाक्षुनि कंटे नन्यु लें
ड्वारुनु लेरु तंड्रि! भगवंतु ननंतुनि विश्वभावनो
दारुनि सद्गुणावळु लुदात्तमतिन् गोनियाडकुंडिनन्
जेरवु चित्तमुल् प्रकृति जेंदनि निर्गुणमैन ब्रह्ममुन् ॥ 211

म. निगमार्थ प्रतिपादक प्रकटमै निर्वाण संधायिगा
भगवंतुंडु रचिंप भागवत कल्पक्ष्माजमै शास्त्ररा-
जि गरिष्ठंबगु नी पुराणकथ संक्षेपंबुगा जेप्पितिन्
जगति न्नीवु रचिंचु दीनि नतिविस्तारंबुगा बुत्रका ॥ 212 ॥

चं. पुरुषभवंबु नोंदुट यपूर्वमु जन्ममुलंदु नंदु भू-
सुरकुलमंदु बुट्टु टति चोद्यम यिट्लगुटन् मनुष्युल
स्थिरमगु कार्य दुर्दशल चेत नशिंपक विष्णुसेवना
परत दर्चि नित्यमगु भव्यपदंबुनु नोंदुटोप्पदे ॥ 213 ॥

म. उपवास व्रत शौच शील मख संध्योपास नाग्निक्रिया
जप दानाध्ययनादि कर्ममुल मोक्षप्राप्ति सेकूर द-

के प्रदाता, सबके लिए शरण्य, सर्वशक्तिमान, सकल जगतों में प्रसिद्ध, सर्वगत (सर्वान्तर्यामी) होनेवाले चक्रपाणि में ये सकल शरीरधारी निगम-संगति होने पर [अस्तित्व में] आकर, फिर [प्रलयकाल मे] लय हो जाते हैं। [किन्तु] आकाश की भाँति, ब्रह्म सदा अपरिवर्तनशील रहता है। २१० [उ.] तात! कारण तथा कार्य का मूल तत्त्व कमल-नयन वाले को छोड़ अन्य कोई नहीं है। भगवान, अनन्त, विश्वभावना में उदार [बने उसकी] सद्गुणावली की प्रशंसा उदात्तमति यदि नहीं करेंगे तो चित्त निर्गुण ब्रह्म की प्रकृति को प्राप्त नही कर सकता। २११ [म.] पुत्र! वेदों के अर्थ का प्रतिपादन तथा प्रकट करानेवाला हो, निर्वाण पद सम्पादित करानेवाले के रूप में भगवान ने इसकी रचना करने पर यह भागवत रूपी कल्पवृक्ष का, जो शास्त्रगण में श्रेष्ठ है, इस पुराण-कथा को मैंने संक्षेप में कह सुनाया। तुम जगत में अति विस्तृत रूप से इसकी रचना करो। २१२ [चं.] पुरुषभव (नरजन्म) अपूर्व है, और उसमें भूसुर (ब्राह्मण)-कुल में पैदा होना अत्यन्त आश्चर्यकर है। ऐसा होने से मनुष्यों के लिए अस्थिर रूप वाले कार्यों की दुर्गति में पड़कर नष्ट न होते हुए, विष्णु की सेवा में तत्पर होकर, शोभित हो, नित्य (शाश्वत) भव्य पद (मोक्ष) को प्राप्त करना उचित है न! २१३ [म.] स्वच्छ (अनन्य) भक्ति के साथ हरि, पुंडरीक नयन वाले, सबसे बड़े, रमाधिप,

च्चपु भक्तिन् हरि बुंडरीक नयनुन् सर्वातिशायिन् रमा-
धिपु वापघ्नु वरेण्यु नच्युतुनि नर्थि गौलवलेकुंडिनन् ॥ 214 ॥

कं. वनजाक्षु महिम नित्यमु, विनुतिंपुचु नौरुलु वौगड विनुचुन्मदिलो
ननुमोदिंपुचु नुंडिडि, जनमुलु वन्मोहवशत जनरु मुनींद्रा ! ॥ 215 ॥

कं. अनिवाणीशुडु नारद, मुनिवरुनकु जॆप्पि नट्टि मुख्य कथा सू-
चन मति भक्ति परीक्षि, ज्जनपालुनितोड योगिचंद्रुडु सॆप्पॆन् ॥ 216 ॥

अध्यायमु—८

परीक्षितुडु शुकुनि प्रपंचोद्भवाविकं बडुगुट

सी. विनु शुकयोगिकि मनुजेशु डिट्लनु मुनिनाथ ! देवदर्शनमु गलुग
नारदमुनिकि बंकेरुहभवु डॆरिंगिचन तॆरगु सत्कृप दलिपं
गणुतिंप सत्त्वादि गुण शून्युडगु हरि कमलाक्षु लोकमंगळमु लैन
कथलु ना कॆरिंगिंप गॆकॊनि निस्संगमैन ना हृदयाब्जमंदु गृष्णु

पापों को मिटानेवाले, परेश, अच्युत की चाहकर सेवा न करने पर, उपवास, व्रत, शौच, शील, मख (यज्ञ), सन्ध्योपासना, अग्निक्रिया (हवन), जप, दान, अध्ययन आदि कर्मों के करने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। २१४
[कं.] मुनीन्द्र ! वनजाक्ष ! (कमलनयन) की महिमाओं की नित्य स्तुति करते हुए, दूसरों से सदा सुनते हुए, (उसी को) मन में स्थापित करनेवाले लोग उस मोह (माया) के वश में नहीं होते। २१५
[कं.] इस प्रकार वाणीश (ब्रह्मा) के नारद मुनिवर से कथित मुख्य कथा की सूचना की मति से भक्ति के साथ योगीन्द्र (शुक) ने राजा परीक्षित को कह सुनाया। २१६

अध्याय—८

परीक्षित का शुक [योगी] से प्रपंच (संसार) की उत्पत्ति आदि पूछना

[सी.] सुनो ! मनुजेश (राजा) ने शुकयोगी से कहा (पूछा) कि मुनिनाथ ! देवदर्शन हो, ऐसा नारद मुनि को ब्रह्मा के द्वारा विदित किये हुए (तत्त्व की) रीति को सत्कृपा के विकसित होने पर [मुझे बताओ] गणना (स्तुति) करने पर सत्त्वादि गुण शून्यवाले हरि की, कमलनयन वाले की लोक-मंगल कारी कथाओं को मुझे विदित करो, [करने पर उन्हें] ग्रहण कर निस्संग बने अपने हृदय-कमल में कृष्ण, [ते.] भव्य चरित वाले, आदि-अन्त-भाव-शून्य वाले, चिन्मय मूर्तिवाले, अनघ, लक्ष्मी-समेत (विष्णु) को प्रतिष्ठित

ते. भव्यचरितुनि नाद्यंत भावशून्यु,
जिन्मयाकारु ननघु लक्ष्मी समेतु
निलिपि यस्थिर विभवंबु,
निखिल हेय भाजनं बॅन यी कळेबरमु विडुतु ॥ 217 ॥

व. अवियुनं गाक यॅव्वडु श्रद्धा भक्तियुक्तुंडै कृष्णु गुणकीर्तनंबुलु विनुचुं बलुकुचुंडु नट्टिवानि हृदय पद्मंबु नंदु गर्णरंध्रमार्गंबुनं ब्रवेशिंचि, कृष्णुंडु विश्रमिंचि, सलिलगतंबैन कलुषंबुनु शरत्कालंबु निवारिंचु चंदंबुन नात्मगतंबयिन मालिन्यंबु नपकर्षिंचु गावुन ॥ 218 ॥

म. भरितोदग्र निदाघतप्तुडगु नप्पांथुं डरण्यादि स
चरण क्लेश समुद्भवं बगु पिपासं जेंदि यात्मीय मं-
दिरमुं जेरि गतश्रमुं डगुचु नॅंदेंनि जनं बोनि भं
गि रमाधीशु पदारविंद युग संगीभूतुडै मानुने ॥ 219 ॥

व. अदियुनं गाक सकल भूत संसर्ग शून्यंबैन यात्मकु भूत संगमंबे प्रकारंबुनं गलिगॅं? अदि निर्णिमित्तंबुनं जेसियो, कर्मंबुनं जेसियो, या क्रमंबु ना कॅरिंगिपुमु ॥ 220 ॥

सी. ऍव्वनि नाभियं दॅल्ल लोकांग संस्थान कारण पंकजंबु वॊडमॅ
नं बुर्वयिंचि सर्वावयव स्फूर्ति बनरारु नट्टि पितामहुंडु

कर, अस्थिर वैभववाले, सब प्रकार से हेय इस (कलेवर) शरीर को छोड़ दूँगा। २१७ [व.] इसके अतिरिक्त श्रद्धा [एवं] भक्तियुक्त हो कृष्ण के गुणों का कीर्तन सुनते हुए, बोलते रहनेवाले व्यक्ति के हृदय-पद्म में कर्णरंध्र मार्ग से (कानों के द्वारा) प्रवेश कर, कृष्ण विश्राम करता है [और] पानी में मिले हुए कलुष (मैल) को शरत्काल के हटा देने की रीति से आत्मगत मलिन को हटा देता है। इसलिए। २१८ [म.] भरित-उदग्र (अत्यधिक) निदाघ (धूप) से तप्त पांथ (पथिक) अरण्य आदि में संचार करने के क्लेश से उत्पन्न पिपासा (प्यास) के मारे, अपने घर पहुँचकर गत-श्रम हो (थकान को दूर कर) और कहीं न जाने की रीति से रमाधीश (विष्णु) के पदारविन्द (चरण-कमल) युगल की संगति कर, (कोई) कहीं जा सकता है? २१९ [व.] इसके अतिरिक्त सकल भूतकोटि के संसर्ग (संगति) से शून्य आत्मा को [फिर से] भूत (प्राणियों) संसर्ग किस प्रकार से सम्भव हुआ? वह निर्निमित्त (कारणहित) है या कर्म के कारण [सम्भव हुआ], वह क्रम मुझे विदित करो। २२० [सी.] अति दया-सागर! योगिकुल सागर के चन्द्र! यह बताओ कि किसकी नाभि से सकल लोकों की सृष्टि का कारणभूत पंकज पैदा हुआ, [और] उसमें उत्पन्न हो सकल अंगों के साथ विराजमान हो, पितामह (ब्रह्मा) ने संकल्प कर

गणगि यॆव्वनि यनुग्रहमुन निखिल भूतमुल सृजिंचॆ नुत्कंठतोड
नट्टि विधात ये यनुवुन सर्वेशु रूपंबु गनुगॊनॆ रुचिरभंगि

ते. ना परंज्योतियैन पद्माक्षुनकुनु,
नळिनजुनकु प्रतीक विन्यास भाव
गतुलवलननु भेदंबु गलदॆ चॆप्पुम ?,
यति दयासांद्र ! योगिकुलाब्धिचंद्र ॥ 221 ॥

व. मरियुनु भूतेश्वरुंडैन सर्वेश्वरुं डुत्पत्तिस्थिति लय कारणं बैन तन मायनु विडिचि माया नियामकुंडै ये ये प्रदेशंबुलु शयनंबु सेसॆ नदियुनुं गाक पुरुषावयवंबुलचे बूर्वकालंबुन लोकपाल समेतंबुलैन लो कंबुलु गल्पितंबुलय्यॆ ननियु लोकंबुलु पुरुषावयवंबु लनियु जॆप्पं बडियॆ। अदियुनुं गाक महाकल्पंबुलुनु नवांतर कल्पंबुलुनु भूत भविष्यद्वर्तमान कालंबुलुनु स्थूल देहाभिमानुलै जनियिंचिन दैव पितृ मनुष्यादुलकुं गलुगु नायुः प्रमाणंबुनु, बृहत्सूक्ष्म कालानुवर्तनंबुनु ने ये कर्मंबुलं जेसि जीवु ले ये लोकंबुल नॊंदुदुरु? मरियु ने ये कर्मंबुलं जेसि देवादि शरीरंबुलं बॊंपितुरु ? अट्टि कर्ममार्ग प्रकारंबुन, सत्त्वादि गुणंबुल परिणामंबुलगु देवादि रूपंबुल गोरु जीवुलकु ने ये कर्म समुदायंबु वॆट्टु सेयंदगु ? ऎव्वनिकि नर्पिपं बगु ? अवि यॆव्वनि चेत ग्रहिपं बडु ? भू पाताळ ककु व्व्योम ग्रह नक्षत्र

किसकी कृपा पाकर सकल प्राणियों का बड़ी उत्कंठा से सृजन किया। ऐसे विधाता ने किस विधान से सर्वेश के रूप को रुचिर विधि से दर्शन किये ? [ते.] [और] उस परमज्योति-स्वरूप पद्माक्ष और नलिनज (ब्रह्मा) के प्रतीक-विन्यास [और] भावगतियों में भेद है क्या ? बताओ न। २२१
[व.] और भूतेश्वर सर्वेश्वर ने उत्पत्ति, स्थिति, लय-कारक अपनी माया को छोड़कर, माया का नियामक हो किन-किन प्रदेशों में शयन किया। इसके अतिरिक्त पुरुष अंग से पूर्वकाल में लोकपालों के साथ लोक कल्पित हुए और लोक पुरुपावयव [रूपी] कहलाए। इसके अतिरिक्त महाकल्प एवं अवान्तर कल्प (दो कल्पों की मध्यावधि) में स्थूल देह के अभिमानी हो उत्पन्न देव, पितृ, मनुष्यादि को संभावित आयु के प्रमाण (और) [छोटे-बड़े] काल के अनुसरण करते हुए किन-किन कर्मों के करने पर जीव किन-किन लोकों को प्राप्त करते रहते हैं ? और किन-किन कर्मों के करने से देव आदि-शरीरों को प्राप्त करते हैं ? ऐसे कर्म-मार्ग के अनुसार सत्त्वादि गुण के परिणामस्वरूप देव आदि रूपों को चाहनेवाले जीवों को किन कर्मों का आचरण किस विधान से करना चाहिए ? किसे समर्पित करना चाहिए ? वे किससे गृहीत होते हैं ? भू [लोक], पाताल, ककुभ (दिशा), व्योम, गगन, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत और सरित (नदियाँ), सागर, द्वीप आदि कैसे उत्पन्न हुए ? उन-उन स्थानों में लोगों की सृष्टि कैसे हुई ? बाहर-भीतर

पर्वतंबुलुनु, सरित्समुद्र द्वीपंबुलुनु, ने प्रकारंबुन संभविंचें? आ या स्थानंबुलं गल वारि संभवंबु लेलाटिवि? बाह्याभ्यंतरंबुलं गलुगु ब्रह्मांड प्रमाणं बेंत? महात्मुल चरित्रंबु लॅट्टिवि? वर्णाश्रम विनिश्चयंबुलुनु, ननुगतंबुलै याश्चर्यावहंबुलगु हरि यवतार चरित्रंबुलुनु, युगंबुलुनु, युग प्रमाणंबुलुनु, युगधर्मंबुनु, प्रतियुगमंदुनु मनुष्युल के ये धर्मंबु लाचरणीयंबु लगु नट्टि साधारण धर्मंबुलुनु, विशेष धर्मंबुलुनु, जाति विशेष धर्मंबुलुनु, राजर्षि धर्मंबुलुनु, आपत्काल जीवन साधन भूतंबुलगु धर्मंबुलुनु, महदादि तत्त्वंबुल संख्ययुनु, संख्या लक्षणंबुनु, आ तत्त्वंबुलकु हेतुभूत लक्षणंबुलुनु, भगवत्समाराधन विधंबुनु, अष्टांग योग क्रमंबुनु, योगीश्वरुल यणि मा द्यैश्वर्य प्रकारंबुनु, वारल यर्चिरादि गतुलुनु, लिंगशरीर विलयंबुननु, ऋग्यजुस्सामाथर्व वेदंबुलुनु, उपवेदंबु लयिन यायुर्वेदादुलुनु, धर्म शास्त्रंबुलुनु, 'नितिहास पुराणंबुल संभवंबुनु, सर्वभूतंबुल यवांतर प्रळयंबुनु, स्थिति महाप्रळयंबुलुनु, निष्टा पूर्तंबुलनु यागादि वैदिक कर्मजालंबुनु, वापीकूप तटाक देवालयादि निर्माणंबु लन्नदानं बारामप्रतिष्ठ मॉदलगु स्मार्त कर्मंबुलुनु, काम्यंबुलैन यग्निहोत्रंबुल यनुष्ठान प्रकारंबुनु, जीवसृष्टियुनु धर्मार्थकामंबु लनियॅडु त्रिवर्गाचरण प्रकारंबुनु, मलिनो पाधिक पाषंड संभवंबुनु, जीवात्म बंध मोक्ष प्रकारंबुनु, स्वरूपवस्थान

स्थित ब्रह्माण्ड का प्रमाण (नाप) क्या है? महात्माओं के चरित्र कैसे हैं? वर्णाश्रमों के निर्णय और उनके द्वारा निर्णीत हो चलनेवाले एवं आश्चर्य को उत्पन्न करनेवाले हरि के अवतारों के चरित्रों और युग (तथा) युग-प्रमाण, युगधर्म (आदि) प्रत्येक युग के मनुष्यों के लिए जो-जो धर्म आचरण योग्य है, वे साधारण धर्म, विशिष्ट धर्म, जाति-विशेष के धर्म, राजर्षि के धर्म, आपत्काल में जीवन चलाने के साधनभूत धर्म, महत् आदि तत्त्वों की संख्या, संख्या का लक्षण, उन तत्त्वों के लिए कारणस्वरूप लक्षण, भगवान की समाराधना करने का विधान, अष्टांग योग का क्रम, योगीश्वरों के अणिमा आदि ऐश्वर्यों की पद्धति, उनके अर्चिस् आदि गतियाँ, लिंग शरीर का विलय. ऋक्, यजु, साम, अथर्ववेद तथा उपवेद कहलाने वाले आयुर्वेद आदि, और धर्मशास्त्र और इतिहास, पुराणों की उत्पत्ति, सर्वभूतों का अवान्तर-प्रलय और स्थिति का महाप्रलय, इष्ठापूर्त नामक याग आदि वैदिक कर्म-जाल, वापी, कूप, तटाग, देवालय आदि का निर्माण, अन्नदान, उपवन की प्रतिष्ठा आदि स्मार्त कर्म, काम्य (चाहने योग्य) अग्निहोत्रों के अनुष्ठान करने का विधान, और जीवों की सृष्टि तथा धर्म, अर्थ, काम नामक त्रिवर्ग के आचरण का प्रकार, मलिन [जीवन] उपाधि से होनेवाले पाखण्ड कार्य जीवात्मा के बन्धन तथा मोक्ष का प्रकार और स्वरूप (आत्मा) की स्थिरता का विधान, सर्व स्वतंत्र ईश्वर के अपनी

विधंबुनु, सर्व स्वतंत्रुंडैन यीश्वरुं: डात्म मायं जेसि सर्व कर्म साक्षि यै क्रीडिंचुट युनु, मरियु माय नॆडबासि युदासीन गति विभुंडै क्रीडिंचु तॆरंगु मॊदलगु समस्तमु क्रमंबुन नापन्नुंड नैन नाकु नॆरिंगिपुमु। ब्राह्मण शापंबुन जेसि, शोक व्याकुलित चित्तुंडवै यनशन व्रतुंडवैन नीवु विनुट यॆट्लनि संदेहिप वलवदु। त्वदीय मुखारविंद विनिस्रुत नारायण कथामृतपान कुतूहलि नैन नाकु निंद्रियंबुलु वशंवुलै युंडु। अदि गावुन ने नडिगिन प्रश्नंबुलकु नुत्तरंबुलु सविस्तरंबुलुगा नानतिच्चि कृतार्थुनि जेय वरमेष्ठि तुल्युंडवगु नीव पूर्व संप्रदायानुरोधंबुन नर्हुंडवगुदु वनि विष्णुरातुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुंडु ब्रह्मरातुंडैन शुकयोगि नडिगिन नतंडु ब्रह्मनारद संवादंबुनु, नेक संप्रदायानुरागतंबुनु, गतानुगतिक प्रकारंबुनुनै तॊल्लि सर्वेश्वरुंडु ब्रह्म कल्पंबुन ब्रह्मकुपदेशिंचिन भागवत पुराणंबु वेदतुल्यंबु नी कॆरिंगितु विनु मनि चॆप्पॆ ननि सूतुंडु शौनकादि मुनुलकुं जॆप्पिनट्लु शुक योगींद्रुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुन किट्लनियॆ ॥ 222 ॥

अध्यायमु—९

सी. भूपालकोत्तम! भूत हितुंडु सुज्ञान स्वरूपकुंडैन यट्टि
प्राणिकि देह संबंध मॆट्लगु नन्न महिनॊप्पु नीश्वर मायलेक

माया के कारण सर्व-कर्म साक्षी के रूप में क्रीड़ा करना और फिर माया से छूटकर उदासीन गति से विभु हो लीला करने की रीति आदि समस्त क्रम (के सम्बन्ध में) आपन्न होनेवाले (शरणार्थी) मुझे विदित करो। ब्राह्मण के शाप के कारण शोक-व्याकुल चित्त वाला हो, अनशन व्रत करते हुए तुम्हारा सुनना कैसे होगा, इसका सन्देह मत करो। त्वदीय (तुम्हारे) मुखारविन्द से प्रवाहित होनेवाले नारायण की कथामृत को पान के लिए कुतूहल बने मुझे इन्द्रिय वशवर्ती होकर रहते हैं। इसलिए मेरे पूछे गये प्रश्नों के उत्तर विस्तृत रूप से देकर मुझे कृतार्थ करने में परमेश्वर के समान, प्राचीन सम्प्रदाय (रीति) के अनुसार योग्य हो, ऐसा जानकर विष्णु के द्वारा [संसार में) लाये गये (उत्पादित) राजा परीक्षित ने ब्रह्मा के द्वारा लाये गये (उत्पादित) शुकयोगी से पूछा। उसने ब्रह्मा और नारद के संवाद को और एक सम्प्रदाय के अनुगत, गतानुगतिक बने पूर्व में सर्वेश्वर के द्वारा ब्रह्मकल्प में ब्रह्मा को उपदिष्ट भागवत पुराण, जो वेद-तुल्य है, तुम्हें विदित करूँगा! सुनो! कहते हुए सूत ने शौनकादि मुनियों से कहा था, ऐसा कहते हुए शुकयोगीन्द्र ने परीक्षिन्नरेन्द्र से इस प्रकार कहा। २२२

अध्याय—९

[सी.] हे भूपालकोत्तम (राजश्रेष्ठ)! भूतों (प्राणियों) के हित

कलुगवु, निद्रवो गललोन दोचिन देहबंधंबुल तॅऱगु वलॅनु
हरि योगमाया महत्त्वंबुनं बांचभौतिक देह संबंधुडगुचु

ते. नट्टि मायागुणंबुल नात्म योलि,
बाल्य कौमार यौवन भावमुलनु
नर सुपर्वादि मूर्तुल बॉरसि येनु,
नायदिदि यनु संसार माय दगिलि ॥ 223 ॥

व. वर्तिपु चिट्लुन्न जीवुनिकि भगवद्भक्ति योगंबुन मुक्ति संभविचुट यॅट्लन्न नॅप्पुडेनि जीवुंडु प्रकृति पुरुषातीत मयिन ब्रह्मस्वरूपंबु नंदु महित ध्यान निष्ठुंडगु नप्पुडु वित मोहुंडै यहंकार ममकारात्मकंबैन संसरणंबु दॊऱंगि मुक्तुंडै युंडु। मऱियु जीवेश्वरुलकु देहसंबंधंबुमुलु गानंबडुचुंडु। अट्टि देहधारियैन भगवंतुनंदु भक्ति जेसि जीवुनि मुक्ति ये तॆऱंगुनं गलुगु ननि यडिगितिवि। जीवुं डविद्या महिमं जेसि कर्मानुगतंबैन मिथ्यारूप देहसंबंधुंडु। भगवंतुंडु निजयोगमाया महिमं जेसि स्वेच्छा परिकल्पित चिदघन लीला विग्रहुंडु। कावुन भगवंतुंडैन यीश्वरुंडु स्वजनंबु मुक्ति साधन ज्ञानार्थंबु कल्पितंबनि चतुर्मुखुनकु वदीय निष्कपट तपश्चर्यादि सेवितुंडै निजज्ञानानंदघनमैन स्वरूपंबु सूपुचु नानतिच्चॆं। अदि गावुन

करनेवाले सुज्ञान स्वरूपक प्राणी को देह का सम्बन्ध कैसे सम्भव हुआ, ऐसा पूछो तो इस धरती पर ईश्वर की माया के अभाव में कुछ भी सम्भव नहीं होता। सो जाने पर, सपने में, दिखाई पड़नेवाले देहवन्धनों की तरह हरि (अपनी) योगमाया की महिमा से पाँच भौतिक देह से सम्बन्धित होते हुए, [ते.] ऐसी माया के गुणों के कारण क्रम से बाल्य, कौमार, यौवन आदि भावों में, [तथा] नर-सुपर्व (-देवता) आदि मूर्तियों (रूपों) को धारण कर, मैं और यह मेरा है (ममत्व) की भावना से संसार की माया में लगकर, २२३ [व.] संचरण करते हुए जीवन बितानेवाले जीव को भगवान के भक्तियोग से मुक्ति को पाना सम्भव कैसे होगा? ऐसा पूछो तो कभी जीव के प्रकृति-पुरुष से अतीत ब्रह्मस्वरूप में ध्याननिष्ठ होने पर, [वह] विगतमोही हो, अहंकार-ममकार संबंधी संसरण (सांसारिक बंधन) से छूटकर मुक्त हो रहता है। और जीव तथा ईश्वर के देह सम्बन्ध दिखाई पड़ते हैं। ऐसे देहधारी बने भगवान् से भक्ति करने से जीव को मुक्ति किस प्रकार मिलेगी? ऐसा तुमने पूछा। जीव अविद्या की महिमा से कर्मानुगत होनेवाले मिथ्यास्वरूप देह का सम्बन्धी है। भगवान् अपनी योगमाया की महिमा से स्वेच्छा रूप से [चित्त से] परिकल्पित चित् से युक्त लीला रूपी मूर्ति है। इसलिए भगवान ईश्वर ने स्वजद (अपने भक्तों) की मुक्ति के साधन के रूप में ज्ञान को निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा से अपनी निष्कपट तपस्या आदि से सेवित हो ज्ञान तथा आनन्द के स्वरूप के

जीवुनिकि भगवद्भक्ति मोक्ष प्रदायकंबगु। इंदुल कॊक इतिहासंबु गल दॆर्रिगिंतु। आकर्णिपुमु। दान भवदीय संशय निवृत्ति यय्यॆडु ननि शुक योगींद्रुंडु राजेंद्रुन किट्लनियॆ। ॥ 224 ॥

ब्रह्मतपंबुनकु मॆच्चि श्रीमन्नारायणुंडु वरं बिच्चुट

सी. हरि पादभक्ति रहस्योपदेष्टयु नखिल देवतलकु नधिविभुंडु
नैन विधात गल्पादियंदुनु निजाश्रय पद्ममुन कधिष्ठान मरय
नर्थिचि जलमुल नन्वेषणमु सेसि नळिनंबु मॊदलु गानंगलेक
विसिवि क्रम्मरनु दद्बिसरुहासीनुडै 'सृष्टि निर्माणेच्छ जित्तमंदु

ते. जाल नूहिंचि तत्परिज्ञान महिम,
सरणि मनमुन वोपक जडनु पडुचु
लोकजालंबु पुट्टिंप लेक मोहि,
तात्मुडै चिंतनोंदु नय्यवसरमुन ॥ 225 ॥

व. जलमध्यंबुन नुंडि यक्षर समाम्नायंबुन स्पर्शंबुलंदु षोडशाक्षरंबु मरियु नेकविंशाक्षरंबु नैन नी यक्षर द्वयंबु वलन नगुचु, महामुनि जन धनंबैन तप यनु शब्दंबु रॆंडुमारु लुच्चरिपंबडि विनंबडिन, नट्टि शब्दंबु वलिकिन पुरुषुनि वीक्षिपंगोरि नलुदिक्कुलकुं जनि वॆदकि यॆंदुनं गानक

दर्शन देते हुए आज्ञा दी। इस कारण से भगवद्भक्ति जीव को मोक्ष-दायक होती है। इसके पीछे एक इतिहास है, विदित करूँगा, सुनो! 'इसके द्वारा तुम्हारे सन्देह दूर हो जाएँगे', कहते हुए शुकयोगीन्द्र ने राजेन्द्र से इस प्रकार कहा। २२४

ब्रह्मा की तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीमन्नारायण का वर-प्रदान करना

[सी.] हरि-चरणों की भक्ति के रहस्य का उपदेष्टा (उपदेश देने वाला) और सकल देवताओं का अधिविभु (अधिकारी) विधाता ने कल्प की आदि में अपने आश्रय-पद्म के आधार को जानने की इच्छा से जलों का अन्वेषण कर नलिन (कमल) का मूल (आदि) को प्राप्त न कर सक, थककर, फिर से उस बिसरुह (कमल) पर बैठकर, सृष्टि के निर्माण की इच्छा लिये चित्त में बहुत कुछ कल्पना कर, [ते.] उस परिज्ञान की महिमा की रीति के मन में सूझ न पाने से जड़ होकर, लोकजाल को जन्म न दे सक, मोहितात्मा हो चिन्तित होते समय में, २२५ [व.] जल के मध्य में स्थित होकर अक्षर-समाम्नाय (वर्णमाला) के स्पर्श अक्षरों में सोलहवें अक्षर (त) तथा इक्कीसवे अक्षर (प), इन दो अक्षरों से बनने वाले, महामुनिजन के धनस्वरूप 'तप' शब्द के दो बार उच्चरित होते सुन पड़ने पर, ऐसे शब्द के बोलनेवाले पुरुष को देखने की इच्छा कर, चार

मरलि निजस्थानंबैन पद्मंबुनं दासीनुंडै यॊविकचुक चिंतिंचि यट्टि शब्दंबु दन्नु दपंबु सेयुमनि निर्यमिचुटगा दलंचि, प्राणायाम परायणुंडै, ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रियंबुल जयिंचि, येकाग्र चित्तुंडै, सकललोक संताप हेतुवैन तपंबु वेयि दिव्यवत्सरंबुलु गाविप, नीश्वरुंडु प्रसन्नुंडै पॊडचूपिन, ना कमल संभवुंडु दत्क्षणंबु राजस, तामस मिश्र सत्त्व गुणातीतंबुनु, शुद्ध सत्त्व गुणा वासंबनु, अकाल विक्रमंबुनु, सर्वलोकोन्नतंबुनु, सकल सुरगण स्तुत्यंबुनु, लोभ मोह भय विरहितंबुनु, अपुनरावृत्ति मार्गंबुनु, अनंत तेजो विराजितंबुनु नैन वैकुंठ पुरंबु बॊडगनि यंदु ॥ 226 ॥

सी. सूर्य चंद्रानल स्फुरणल जॊरनीक निज दीधिति स्फूर्ति निव्वटिल्ल
दिव्य मणि प्रभा दीपित सौध विमान गोपुर हर्म्य मंडपमुलु
प्रसव गुच्छ स्वच्छ भरित कामित फल संतान पादप समुदयमुलु
कंचन दंडसंगत मारु तोद्धूत तरळ विचित्र केतन चयमुलु

ते. विकच कैरव दर दरविंद गतम, रंदरस पान मोदितेंदिंदिर प्र-
भूत मंजुल निनद प्रबुद्ध राज, हंस शोभित वर कमलाकरमुलु ॥ 227 ॥

सी. वलनॊप्पगा "न दैवं केशवात्परं" बनि पल्कु राज कीरावळियुनु
महिम "सर्वं विष्णुमयमु जगत्त" नि चदिवॆडु शारिका समुदयंबु

दिशाओं में चलकर (उसके) कहीं भी दिखाई न पड़ने पर, फिर से अपने स्थान पद्म पर आसीन हो, किंचित् विचार करने पर, ऐसे शब्द का अपने को तप करने के लिए नियोजित करते जानकर, प्राणायाम-परायण होकर, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को जीतकर, एकाग्रचित्त वाले होकर, ईश्वर के प्रसन्न हो दर्शन देने पर, उस कमल-संभव ने (ब्रह्मा ने) उसी क्षण में राजस्, तामस् के मिश्रित सत्त्वगुण से अतीत, शुद्ध सत्त्वगुण का आवास, अकाल विक्रम से युक्त, सर्वलोकों में उन्नत, सकल सुरगण से स्तुत्य, लोभ-मोह (आदि) भय से विरहित, अपुनरावृत्ति-मार्ग (पुनरावृत्ति से रहित मार्ग), अनन्त तेज से विराजित, सुशोभित वैकुण्ठपुर को देखकर, उसमें, २२६ [सी.] सूर्य, चन्द्र, अग्नि की कान्तियों का स्फुरण न होने (सूझने न) देकर, अपनी दीधिति (प्रभा) की स्फूर्ति के व्यक्त होने पर, दिव्य मणियों की कान्तियों से प्रकाशित होनेवाले सौध, विमान, गोपुर, हर्म्य (अट्टालिका), मण्डप (आदि), फूलों के गुच्छों, स्वच्छ तथा इष्टफलों की सन्तति को पाकर सुविलसित होनेवाले वृक्ष, कांचन (स्वर्ण) दण्ड की संगति पाकर पवन से फरफराये जानेवाले चित्र-विचित्र झण्डों के समूह, [ते.] विकसित कुमुदिनियों, कमलों के मकरन्द रसपान से आनन्दित होनेवाले भ्रमर गणों तथा मंजुल ध्वनियाँ करनेवाले राजहंसों के साथ सुशोभित वर-कमलाकर (-सरोवर), २२७ [सी.] 'न दैवं केशवात्परं' (केशव के

नेपारगा "जितं ते पुंडरीकाक्ष !" यनि लील वाडु पिकावळियुनु
ललि मीऱगा "मंगळं मधुसूदन" यनि पल्कु केकुं लनारतंबु

ते. तविलि श्रौषड्वषड्स्वधेत्यादि शब्द,
कलितमुग म्रोयु मधुप निकायमुलुनु
गलिगि यखिलैक दिव्यमंगळ विलास,
महिम जॆन्नॊंदु वैकुंठ मविरंबु ॥ 228 ॥

व. मऱियुं बयोधरावळी विभासित नमंबुं बोलॆ वॆलुंगुचुन्न यद्दिव्य धामंबुनंदु ॥ 229 ॥

सी. सललितेंदीवर श्यामायमानोज्ज्वलांगुलु नव्य पीतांबरुलुनु
धवळारविंद सुंदर पत्रनेत्रुलु सुकुमार तनुलु भासुर विनूत्न
रत्न विभूषण ग्रैवेय कंकणहार केयूर मंजीर धरुलु
नित्य यौवनुलु विनिर्मल चरितुलु रोचिष्णुलुनु हरिरूप धरुलु

ते. नगु सुनंदुंडु नदुंडु नर्हणुंडु,
प्रवलुडुनु मॊदलगु निजपार्श्व चरुलु
मऱियु वैडूर्य विद्रुमामल,
मृणाळ तुल्य गात्रुलु दनु भक्तितो भजिप ॥ 230 ॥

अतिरिक्त अन्य देव नहीं है), ऐसा औचित्य से कहनेवाले राज शुकावली, 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' (सारा जगत विष्णुमय है) ऐसा महिमा से पढ़नेवाले सारिकागण, 'जितं ते पुंडरीकाक्ष' (हे पुण्डरीकाक्ष ! तुम्हारी जय हो), ऐसा अतिशय रूप से गानेवाले पिकगण, 'मंगलं मधुसूदन' (मधुसूदन ! मंगल हो), ऐसा प्रेम से अनारत (सदा) कूजनेवाले केकी (मोर) समूह, [ते.] वेदानुसार श्रौषट्, वषट्, स्वधा (यज्ञ-मंत्रों) आदि का उच्चारण सुमधुर रूप से करनेवाले भ्रमरगण आदि से युक्त हो, सकल दिव्य मंगल की महिमाओं से विलसित हो, वह वैकुण्ठ मन्दिर विराजित है। २२८ [व.] और पयोधरावली (मेघों) से विभासित (सुशोभित) होनेवाले नभ की भाँति प्रकाशित होनेवाले उस दिव्य धाम में, २२९ [सी.] सुन्दर नीलकमलों के समान श्यामल वर्ण में उज्ज्वल अंग वाले नये पीताम्बरों को धारण करनेवाले, धवल अरविंदों (सफ़ेद कमलों) के पत्रों के समान सुन्दर नेत्रों वाले, सुकुमार (कोमल) शरीरवाले, नये रत्नों से बने विभूषण, ग्रैवेय (एक प्रकार का कण्ठाभरण); कंकण, हार, केयूर, मंजीर (नूपुर) को धारण करनेवाले, नित्य यौवन वाले, विनिर्मल चरित वाले, रोचिष्णु (प्रकाशित होनेवाले); हरिरूपधारी, [ते.] सुनन्द, नन्द, अर्हण, प्रवल, आदि पार्श्वचर तथा वैडूर्य-विद्रुम [सम] अमल [तथा] मृणाल (कमल-नाल) के समान [कोमल] शरीर वालों के भक्ति के साथ सेवाएँ करने

सी. क्षाळिताखिल कल्मषव्रजामरनदीजनक कोमल पदाब्जमुलवानि
नखिल संपत्कारणापांग लक्ष्मी विलसित वक्षस्स्थलंबु वानि
बद्म मित्रामित्र भासित करुणा तरंगित चारु नेत्रमुलवानि
भुवन निर्माण नैपुण भव्यनिज जन्मकारण नाभि पंकजमुवानि

ते. नहि हिताहित शयन वाहनुल वानि, सेवितामर तापस श्रेणिवानि
नखिल लोकंबुलकु गुरुंडैनवानि गाँचँ बरमेष्ठि कन्नुल करवु दीर ॥231॥

कं. कमनीय रूप रेखा, रमणीयत जाल नॉप्पु रमणीमणि य-
क्कमलालय दन मृधुकर, कमलंबुल विभुनिपादकमलमु लॉत्तन् ॥232॥

व. वॅंडियु ॥ 233 ॥

शा. श्री कांता-तिलकंबु रत्न रुचि-राजि प्रेंखित स्वर्ण डो
लाकेळिन् विलसिल्लि तत्कच भरालंकार स्रग्गंध लो-
भाकीर्ण प्रचर न्मधुव्रत मनोज्ञालोक नावंबुल
स्तोकानुस्वर लील नॉप्पग निजेशुन् वेड्कतो बाडगन् ॥ 234 ॥

व. अट्टि नित्यविभूतियंदु ॥ 235 ॥

म. सतत ज्ञान रमा यशो बल महैश्वर्यादि युक्तुं जग-
त्पति यज्ञेशु ननंतु नच्युतु दळ-त्पंकेरुहाक्षुं श्रियः

पर, २३० [सी.] सकल पापसमूह को धो डालनेवाली अमरनदी (गंगा) का जन्मस्थान बने कोमल चरण-कमल वाले, सकल सम्पदाओं का कारण-स्वरूप लक्ष्मी के अपांगों (कटाक्षों) से विलसित वक्षःस्थल वाले, पद्ममित्र (सूर्य)-अमित्र (चंद्र) के समान विभासित करुणा के तरंगों से युक्त चारु नयन वाले, भुवन-निर्माण की निपुणता के वैभवशाली के जन्म के कारण स्वरूप नाभिकमल वाले, अहिहित (शेष) शयन वाले, [ते.] अहिअहित (गरुड़) वाहन वाले, अमरों एवं मुनिगण से सेवित होनेवाले सकल लोकों के गुरु होनेवाले परमेश्वर को, आँखों की दरिद्रता मिटे ऐसा परमेष्ठि (ब्रह्मा) ने दर्शन किये। २३१ [कं.] कमनीय (मनोहर) रूप रेखाओं से अत्यधिक रमणीयता से सुशोभित रमणीमणि उस कमलालया (लक्ष्मी) को अपने मृदुल करकमलों से विभु के चरण-कमल दबाते हुए (देखा)। २३२ [व.] और फिर, २३३ [शा.] श्रीकान्तातिलक (लक्ष्मी) की रुचिर रत्न-राशि की कान्तियों से शोभित होनेवाले सुवर्ण-डोलिका (झूले) में क्रीड़ारत हो, विलसित हो, उस कान्ता के केशजाल तथा वेणी के अलंकार से निकलती हुई सुगन्ध के लोभ में आकर मधुर आलाप (स्वर) में कूजन करनेवाले मधुप गण के साथ लीला में सुशोभित होते हुए पति की स्तुति करनेवाली (रमा) को देखा। २३४ [व.] ऐसी नित्यविभूति में, २३५ [म.] सततज्ञान, रमा (संपत्ति) तथा यश, बल, महान ऐश्वर्य आदि युक्तियों से युक्त

पतिनाद्यंत विकार दूरु गरुणा पाथोनिधिन् सात्वतां
पति वर्धिष्णु सहिष्णु विष्णु गुण विभ्राजिष्णु रोचिष्णुनिन् ॥ 236 ॥

म. दरहासामृत-पूरितास्यु निजभक्त त्राण पारायणु
न्नरुणांभोरुह पत्रलोचनुनि वीतावासु त्रैलोक्य सुं-
दरु मंजीर किरीट कुंडल मुखोद्य द्भूषु योगीश्वरे
श्वरु लक्ष्मीयुत-वक्षु जिन्मयु दयासांद्रुन् चतुर्बाहुनिन् ॥ 237 ॥

व. मरियु ननर्घ रत्नमय सिंहासनासीनुंडु, सुनंद नंद कुमुदादि सेवितुंडु, प्रकृति पुरुष मह दहंकारंबुलनु चतुश्शक्तुलनु, कर्मेंद्रिय ज्ञानेंद्रिय मनो महाभूतंबुलनु, षोडशशक्तुलुनु, पंचतन्मात्रलुनु, परिवेष्टिप गोट्यर्क प्रभा विभासितुंडुनु, स्वेत रालभ्य स्वाभाविक समास्तैश्वर्यातिशयुंडुनु, स्व स्वरूपंबुनं ग्रीडिंचु सर्वेश्वरुंडु नैन परमपुरुषुं बुंडरीकाक्षु नारायणुं जूचि सांद्रानंद कंदळित हृदयारविंदुंडु रोमांच कंचुकित शरीरुंडु, नानंद बाष्प-धारासिक्त कपोलुंडु नगुचु ॥ 238 ॥

कं. वर परमहंस गम्य, स्फुरणं दनरारु परम पुरुषुनि पदपं-
करुहमुलकु नजुडु चतु, श्शिरमुलु सोकंग नतुकु सेसिन हरियुन् ॥239॥

जगत्पति, यज्ञेश्वर, अनन्त, अच्युत, कमल-नयन वाले, श्रियःपति (लक्ष्मी-पति), आदि-अन्त के विकारों से परे, करुणा के पाथोनिधि (सागर), सात्वतों के पति, वर्द्धिष्णु (वृद्धि को पानेवाले), सहिष्णु (सहन करनेवाले) विष्णु, गुणों से विभ्राजिष्णु (प्रकाशित होनेवाले), रोचिष्णु (प्रकाशित होनेवाले) को (देखा)। २३६ [म.] दरहास (स्मिति) के अमृत से पूर्ण मुखवाले, अपने भक्तों की रक्षा करने मे तत्पर रहनेवाले, अरुण कमल-पत्र के समान लोचन वाले, पीतवस्त्रधारी, तीन लोकों में सुन्दर, मंजीर (नूपुर), किरीट, कुण्डलादि से विभूषित योगीश्वरेश्वर, (योगीश्वरों के ईश्वर), लक्ष्मी से युक्त वक्षःस्थल वाले, चिन्मयाकारवाले, दयासान्द्र, चार बाहुओं वाले (के दर्शन किये)। २३७ [व.] और अनर्घ (कलंक रहित) रत्नमय सिंहासन पर उपविष्ट होकर, सुनन्द, नन्द, कुमुद आदि की सेवाएँ लेनेवाले प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार नामक चार शक्तियों, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, महाभूत (नामक) सोलह शक्तियों, पंचतन्मात्राओं के परिवेष्टित होने पर करोड़ों सूर्य-कान्तियों से जाज्वल्यमान, स्व-इतर अलभ्य स्वाभाविक समस्त ऐश्वर्य के अतिशय से युक्त, [स्व-स्वरूप में क्रीड़ारत होने वाले सर्वेश्वर] परमपुरुष, पुंडरीकाक्ष, नारायण को देख, सान्द्र (अत्यन्त) आनन्द से कंदलित हृदय-अरविंद वाले हो, रोमांच रूपी कंचुक से युक्त शरीरी हो, आनन्द की बाष्प (अश्रु) धाराओ से सिक्त कपोल वाले हो, २३८ [क.] वर परम-हंसों के लिए गम्य और अवगत बने हुए,

चं. प्रियुडगु बॊड्डुतम्मि तॊलि बिड्डनि, वेलुपु पॆद्द, भूत सं-
चयमुल बुट्ट जेयु निज शासनपात्रु, नुपस्थितुन्, मदिन्
दय दळुकॊत्त बल्कॆ ब्रमद स्मित चारु मुखारविंदुडै
नयमुन बाणि पंकजमुनन् हरि यातनि देह मंटुचुन् ॥ 240 ॥

आ. कपटमुनुल कॆंत कालंबुनकु नॆन,
संतसिप नेनु जलजगर्भ !
चिर तपस्समाधि जॆंदि विसर्गेच्छ
मॆलगु निन्नु बरिणमितु गानि ॥ 241 ॥

ते. भद्रमगुगाक नीकु नो पद्मगर्भ !
वरमु विपुडित्तु नॆड्रिगिपु वांछितंबु
देवदेवुडनगु नस्मदीय पाद
दर्शनं बवधि विपत्तिदशल कनघ ! ॥ 242 ॥

चं. सरसिजगर्भ ! नीयॆड ब्रसन्नत नॊंदि मदीय लोक मे
निरवग जूपुटॆल्लनु सहेतुक भूरि दयाकटाक्ष वि-
स्फुरणकुनु गानि नीदगु तपो विभवंबुन गादु नी तप-
श्चरणमु नादु वाक्यमुल संगति गादॆ ! पयोरुहासना ! ॥ 243 ॥

विलसित परमपुरुष के पद-पंकरुहों (चरण-कमलों) की अज (ब्रह्मा) ने [अपने] चारों शिरों से स्पर्श करते हुए, वन्दना की। तब हरि ने, २३९ [चं.] अपनी नाभिकमल से उत्पन्न होनेवाले पहले प्रिय पुत्र, देवताओं में बड़े, और अपने शासन में प्राणिकोटि को जन्म देनेवाले [अपने सम्मुख] उपस्थित [ब्रह्मा को] देख मन में करुणा के उत्पन्न होने पर, आनन्द के साथ सुन्दर बने मुख कमल से, प्यार से, कर-कमलों से हरि ने उसकी देह का स्पर्श करते हुए (कहा)। २४० [आ.] हे जलजगर्भ (ब्रह्मा)! कपटी मुनियों से कितना भी समय क्यों न बीत जाय, मैं प्रसन्न नहीं होता। चिर-तप-समाधि प्राप्त कर, निसर्ग (सृष्टि) की इच्छा से युक्त तुमसे प्रेम करता हूँ। २४१ [ते.] अनघ! पद्म-गर्भ (ब्रह्मा)! शुभ हो तुम्हें। अब वर प्रदान करूँगा। [अपनी] इच्छा प्रकट करो! देवदेव बने हुए अस्मदीय (मेरे) चरणों के दर्शन विपत्तियों की अवधि (अन्त) है। २४२ [चं.] सरसिजगर्भ (कमलगर्भ वाले)! तुम्हारे प्रति प्रसन्न होकर मदीय (अपने) लोक को दिखाया, इसका कारण सहेतुक और अत्यन्त दया के प्रकाशित होना ही है, किन्तु तुम्हारे तप के वैभव के कारण नहीं। कमलासन वाले! तुम्हारी तपश्चर्या भी मेरे ही वाक्यों की संगति (ज्ञान) से है न, २४३ [कं.] वत्स! तप मेरा हृदय है, तप नामक वृक्ष का फल-वितान मैं हूँ। और मैं उस तप के कारण ही सृष्टि, स्थिति (और)

कं. तपमनग नाडु हृदयमु, दपमनु तरुवुनकु फल वितानमु ने ना
तपमुनने जननस्थि, त्युपसंहरणमु लॉनर्चु चुंड्डु दनया ! ॥ 244 ॥

कं. कावुन मद्भक्तिकि दप, मे विधमुन मूलधनमु यिदि नीमदि रा-
जीभव! यॅरिंगि तप मिट्टु, कांविचुट विगत मोहकर्मुड विकन् ॥ 245 ॥

कं. अनि यानतिच्चि कमलज, यॅनयग भवदीय मानसेप्सित मे मै
ननु नित्तु येडु मनिननु, वनरुह संभवुडु विकच वदनुं डगुचुन् ॥ 246 ॥

चं. हरि वचनंबु लात्मकु प्रियं बॉनरिप पयोजगर्भु डो
परमपदेश ! योगिजन भावन ! यी निखिलोर्वियंदु नी
वरयनियट्टि यर्थ मोकटेननु गलुगुनॅ ? यैन नामदिन्
वॅरसिन कोर्कॆ देव ! विनुपितु दयामति चित्तगिपवे ॥ 247 ॥

व. देवा ! सर्व भूतांतर्यामिवै भगवंतुंडवैन नीकु नमस्करिंचि मदीय वांछितंबु विन्नविचॅद नवधरिपुमु। अव्यक्त रूपंबुलै वॅलुंगु भवदीय स्थूलसूक्ष्म रूपंबुलुनु, नाना शक्त्युपवृंहितंबुलैन ब्रह्मादि रूपंबुलुनु, नीयंत नीवे धरियिंचि जगदुत्पत्ति स्थिति लयंबुलं वंतु कीटकंबुनं बोलॆ गाविपुचु नमोघ संकल्पुंडवै लीलाविभूति क्रीडिचु महिमंबु दॅलियुनट्टि परिज्ञानंबु गृपसेयुमु। भवदीयशासनंबुनु जगन्निर्माणंबु गाविचु नपुडु ब्रह्माभिमानं-

---

उपसंहार करता रहता हूँ। २४४ [कं.] राजीवभव ! इसलिए मेरी भक्ति के लिए तप किस प्रकार मूलधन है, इस [तत्त्व] को जानकर, विगत-मोह-कर्म वाले (कर्मों के प्रति मोह छोड़ कर) हो तप करो ! २४५ [कं.] ऐसी आज्ञा देकर, हे कमलज ! भवदीय (अपने) मन की इच्छा जो भी हो, प्राप्त कर लो ! मैं देता हूँ। माँग लो। कहने पर, विकच (विकसित) वदन वाले हो, वनरुह सभव वाले (ब्रह्मा) [ने कहा]। २४६ [चं.] हरि के वचन आत्मा को प्रिय लगने पर पयोजगर्भ (ब्रह्मा) ने [कहा कि] परमपद के ईश ! योगीजनों के ध्यान-स्वरूप ! इस निखिल उर्वी पर ऐसा कोई अर्थ (तात्पर्य) है क्या जिसे तुम न जानते हो ? फिर भी मेरे मन में उत्पन्न हुई इच्छा को सुनाता हूँ। देव ! दयामती हो चित्त में लाओ। २४७ [व.] देव ! सर्वप्राणियों में अन्तर्यामी के रूप में स्थित और भगवान हो, तुम्हें नमस्कार कर, अपनी इच्छा का निवेदन करता हूँ, सुनो ! अव्यक्त रूपों में प्रकाशित (प्रकट) होनेवाले तुम्हारे स्थूल, सूक्ष्म रूप, तथा नाना शक्तियों से उपवृंहित (विस्तृत बने) हुए ब्रह्मादि रूप, अपने-आप [इन रूपों को] धारण कर उत्पत्ति, स्थिति, लय करते हुए, तंतु-कीटक (मकड़ी) की भाँति करते हुए, अमोघ (व्यर्थ न होनेवाले) संकल्प वाले होकर, लीला की विभूति से क्रीड़ा करनेवाले तुम्हारी महिमा को विदित करनेवाला परिज्ञान कृपा कर प्रदान करो। आपके शासन के

ब्रुन जेसि यवश्यंबुनु महदहंकारंबुलु ना मदि बोडमु गावुनं द त्परि-
हारार्थंबु वेडेद। नन्नु गृपादृष्टि विलोकिंचि दयसेयु मनि विन्नविंचिन
नालिंचि पुंडरीकाक्षुं डतनि किट्लनियें ॥ 248 ॥

कं. वारिजभव! शास्त्रार्थ वि, चारज्ञानमुनु, भक्ति-समधिक साक्षा-
त्कारमु लनु नी मूडु नु, दारत नी मनमुनंदु धरियिंप नगुन् ॥ 249 ॥

सी. परिकिंप मत्स्यरूप स्वभावमुलुनु महितावतार कर्ममुलु वेलियु
तत्त्व विज्ञानंबु दलकोनि मत्प्रसादमुन गल्गेडि नीकु गमलगर्भ!
सृष्टि पूर्वमुन जर्चिप ने नोकरुंड गलिगि युंडुदु वीतकर्मि नगुचु
समधिक स्थूल सूक्ष्म स्वरूपमुलु तत्कारण प्रकृतियु दग मदंश

आ. मंदु लीनमैन नद्वितीयुंडनै, युंडु नाकु नन्य मोकटि लेदु
सृष्टिकालमंदु सृष्टिनाशंबुन, जगमु मत्स्यरूप मगुनु वत्स! ॥ 250 ॥

कं. अरयग गल्प प्रळयां, तरमु ननाद्यंत विरहित क्रियतोडन्
बरिपूर्ण नित्य महिमं, बरमात्मुडनै सरोजभव! ये नुंदुन् ॥ 251 ॥

व. अदियुनुं गाक नीवु नन्नडिगिन यी जगन्निर्माण माया प्रकारं बेरिंगितु।
लेनि यर्थंबु शुक्ति रजत भ्रांतियुं बोलें नेमिटि महिमं दोचि क्रम्मरं दोचक

अनुसार जगत का निर्माण करते समय ब्रह्मा के अभिमान के कारण उत्पन्न होकर निश्चिल रूप से मेरे मन में महदहंकार पैदा हो जायेंगे। इसलिए उसके निवारण [के उपायों को विदित करने] की प्रार्थना करता हूँ। मुझे कृपादृष्टि से विलोकित (देख) कर विदित करो। ऐसा निवेदन करने पर, सुनकर, पुण्डरीकाक्ष ने इस प्रकार कहा। २४८ [कं.] हे वारिजभव (ब्रह्मा)! शास्त्रार्थ के विचार का ज्ञान, भक्ति, अत्यधिक साक्षात्कार —इन तीनों को उदार (उदात्त) हो अपने मन में धारण करो! २४९ [सी.] हे कमलगर्भ (ब्रह्मा)! परखकर देखने पर मेरे स्वरूप, स्वभाव तथा महान्-अवतार-कर्मों को विदित करनेवाला तत्त्वज्ञान मेरे प्रसाद से तुम्हें [प्राप्त] होगा। सृष्टि के पूर्व में, विचार करने पर, मैं वीतकर्म (कर्म-रहित) होकर अकेला था। अत्यधिक स्थूल (भौतिक) तथा सूक्ष्म (मानसिक) स्वरूप तथा उनके कारणस्वरूप प्रकृति के औचित्य से मुझमें लीन हो रहने पर, [आ.] अद्वितीय बने मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। सृष्टि के समय और सृष्टि के नाश को पाते समय [सारा] जगत मेरा स्वरूप ही है। २५० [कं.] हे सरोजभव! विचार करने पर कल्प के प्रलय के पश्चात्, आदि-अन्त-रहित क्रियाओं से परिपूर्ण नित्य (शाश्वत)-महिमा से परमात्मा बनकर मैं रहता हूँ। २५१ [व.] इसके अतिरिक्त तुमने जो पूछा था सो इस जगत के निर्माण की माया के विधान को विदित करूँगा। सीपी में चाँदी की भ्रान्ति होने की रीति जो अर्थ नहीं है, उसका प्रकट

मानुमिदियॆ ना मायाविशेषंबनि यॆरुंगुमु। इदियुनुं गाक लेनि यर्थंबु दृश्यंबगुटकुं, गलयर्थंबु दर्शन गोचरंबु गाकुंडुटकुनु, द्विचंद्रादिकंबुनु, तमःप्रभासंबुनु दृष्टांतंबुलुगा दॆलियुमु। ए प्रकारंबुन महाभूतंबुलु भौतिकंबुलॆन घटपटादुलंदुं ब्रवेशिंचि युंडु ना प्रकारंबुन नेनु नी भूत भौतिकंबु लॆन सर्वकार्यंबुलंदु, सत्त्वादि रूपंबुलं ब्रवेशिंचि युंडुदु। भौतिकंबुलु भूपंबुलयंदु गारणावस्थं बॊंदु चंदंबुन भूत भौतिकंबुलु गारणावस्थं बॊंदिन नायंदु नभिव्यक्तंबुलै युंडवु। सर्व देशंबुलयंदु सर्वकालंबुलयंदु नेदि बोधितंबै युंडु, नट्टिदे परब्रह्मस्वरूपंबु। तत्त्वंबॆरुंग निच्छयिंचिन मिमु बोटि वारली चॆप्पिनदि मदीय तत्त्वात्मकंबॆन यर्थंबनि यॆरुंगुदुरु। ई यर्थंबुत्कृष्टंबॆन यदि। एकाग्रचित्तुंडॆ यार्कणिंचि भवदीय चित्तंबुन धरियिंचिन नीकु सर्गादि कर्मंबुलंदु मोहंबु चॆंदकुंडॆडि। अनि भगवंतुंडॆन परमेश्वरुंडु चतुर्मुखुन काज्ञापिंचि निजलोकंबुतो नंतर्धानंबुनॊंदॆ। अनि चॆप्पि शुकुंडु वॆंडियु निट्लनियॆ॥ 252॥

सी. अवनीश ब्रह्म यिट्लंतर्हितुंडॆन बुंडरीकाक्षुनि बुद्धि निलिपि
यानंदमुनु बॊंदि यंजलि गाविंचि तत्परिग्रहमुन दनदु बुद्धि
गॆकॊनि पूर्वप्रकारंबुननु समस्तप्रपंचंबॆल्ल दग सृजिंचि
मरियॊकनाडु धर्म प्रवर्तकुडौचु नखिल प्रजापति यॆन कमल

होना और फिर न सूझना मेरी माया की विशेषता है, यह जान लो ! इसके अतिरिक्त जो अर्थ नहीं है, उसका दृष्टिगोचर होना, जो अर्थ है, उसका दृग्गोचर न होना, दो चाँदों का होना, तमःप्रभा (अंधकार-प्रकाश) को इसके उदाहरण जान लो ! जिस प्रकार महाभूत, भौतिक तत्त्व कहलानेवाले घट-पटादि में प्रवेश कर स्थित होते हैं, उसी प्रकार मैं भी भूत-भौतिक आदि सर्वकार्यों में सत्त्वादि रूपों में प्रवेश कर रहता हूँ। भौतिक [तत्त्व] आदि भूतों में कारणस्वरूप को जिस प्रकार प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार भूतभौतिक पदार्थ मेरे कारण-अवस्था को प्राप्त मुझमें अभिव्यक्त नहीं होते। सर्व देशों में सर्वकालों में जो बोधित (जाना जाता) होता है, वही परब्रह्म-स्वरूप है। तत्त्व को जानने की इच्छा करनेवाले तुम जैसे लोग इस मेरे कथन को मदीय (मेरा) तत्त्वात्मक अर्थ है, ऐसा जान लेते हैं। यह अर्थ (भाव) उत्कृष्ट हैं। एकाग्र-चित्त वाले हो सुनकर, अपने चित्त में धारण करने पर तुम्हें इस सृष्टि आदि कर्म के प्रति मोह न होगा (मोहित न होकर, निर्लिप्त रहोगे)। इस प्रकार भगवान परमेश्वर चतुर्मुख वाले को आज्ञा देकर, अपने लोक के साथ अदृश्य हुआ। ऐसा कहकर, शुक ने फिर से इस प्रकार कहा। २५२ [सी.] अवनीश ! ब्रह्मा ने अदृश्य हुए पुण्डरीकाक्ष को मन में स्थिर कर, आनन्द को प्राप्त कर, अंजलि (हाथ) जोड़कर, उसके दान को अपनी बुद्धि से स्वीकार कर यथाप्रकार

ते. गर्भुडात्महितार्थमै काक सकल,
भुवनहित बुद्धिनुन्नत स्फुरण मॅडसि
मानितंबैन यम नियममुल रॅंटि,
नाचरिंचॅनु सम्मोदितात्मुडगुचु ॥ 253 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 254 ॥

कं. आ नळिनासननंदनु, लैन सनंदादि मुनुल कग्रेसरुडुन्
मानुग ब्रियतमुडुनु नगु, ना नारदु डेगुदेंचॅ नब्जजु कडकुन् ॥ 255 ॥

कं. चनुदेंचि तंड्रिकि ब्रिय, मौनरग शुश्रूषणंबु लौनरिंचि यतडुन्
दनवॅस ब्रसन्नु डगुट्यु, गनि भगवन्माय दॅलियगा नुत्सुकुडै ॥ 256 ॥

सी. अवनीश नीवु नन्नडिगिन पगिदि नतडु दंड्रि नडुग बितामहुंडु
भगवंतुडाश्रित पारिजातमु हरि गृपतोडदन कॅरिंगिंचिनट्टि
लोकमंगळ चतुःश्लोक रूपंबुनु दश लक्षणंबुल दनरु भाग-
वतमु नारदुन कुन्नति जॅप्पॅ नातडु चारु सरस्वती तीरमुननु

ते. हरिपद ध्यान पारीणु डात्मवेदि,
प्रकट तेजस्वि यगु बादरायणुनकु
गोरि यॅरिंगिचॅं नम्महोदारु डॅलमि,
नाकु नॅरिंगिचॅं नॅरिंगितु नीकु नेनु ॥ 257 ॥

समस्त जगतों की उचित रूप से सृष्टि की। एक और दिन धर्मप्रवर्तन करनेवाला हो, अखिल-प्रजापति [ते.] कमलगर्भ (ब्रह्मा) ने अपने हित के लिए न होकर, सकल भुवनों के हित के ज्ञान के औन्नत्य से प्रकाशित हो, मान्य हो यम और नियम दोनों का आनन्द के साथ आचरण किया। २५३ [व.] उस अवसर पर, २५४ [कं.] उस नलिनासन (ब्रह्मा) के पुत्र सनंदनादि मुनियों में अग्रेसर (बड़ा), मान्य होनेवाला प्रियतम वह नारद अब्जज (ब्रह्मा) के यहाँ आ पहुँचा। २५५ [कं.] आकर, अपने पिता को प्रिय लगे ऐसा [सेवा] शुश्रूषा कर, उनके अपने प्रति प्रसन्न होते देख कर, भगवान की माया को जानने के लिए उत्सुक हो, २५६ [सी.] अवनीश! तुमने मुझे जिस रीति से पुछा, उसी रीति, उसके अपने पिता से पूछने पर, पितामह (ब्रह्म) ने भगवान्, आश्रित-पारिजात (आश्रय में आनेवालों के लिए कल्पवृक्ष) [रूपी] हरि की कृपा के साथ अपने को विदित किया हुआ लोक मंगलकारी चतुःश्लोक रूप से, दस लक्षणों के साथ विलसित होनेवाले भागवत को नारद को उन्नत रीति से सुनाया। उसने चारु (सुन्दर) सरस्वती नदी के तट पर, [ते.] हरि-चरण के ध्यान में निमग्न होनेवाले, आत्मवेदी, तेज की मूर्ति, बादरायण व्यास को बड़े चाव से विदित किया। उस उदार पुरुष ने प्रेम से मुझे विदित किया और मैं

व. अदियुं गाक यिपुडु विराट्पुरुषुनि वलन नी जगंबु ले विधंबुन जनियिंचॅ, ननियॅडि मॉदलैन कॉन्नि प्रश्नलु नन्नडिगितिवि। एनु नन्निटिकि नुत्तरं बगुनट्लुगा नम्महाभागवतंबुपन्यसिंचॅद। आकर्णिपुमु ॥ 258 ॥

अध्यायमु—१०

व. अम्महापुराणंबु चतुःश्लोक रूपंबुनु दश लक्षणंबुल संकुचित मार्गंबुल नॉप्पु। अंदु दश लक्षणंबु लॅय्यवि ? यनिन सस्वर्गंबुनु, विसर्गंबुनु, स्थानंबुनु, पोषणंबुनु, ऊतुलुनु, मन्वंतरंबुलुनु, ईशानु चरितंबुनु, निरोधंबुनु, मुक्तियु, नाश्रयंबु ननं‌बदि तॅरंगुलर्यं। दशम विशुद्ध्यर्थंबु तक्किन तॉम्मिदि लक्षणंबुलु सॅप्पंबडॅ अवि यॅट्टिट वनिन ॥ 259 ॥

ते. मह दहंकार पंचतन्मात्र गगन,
पवन शिखि तोय भू भूत पंच कॅंद्रि-
य प्रपंचंबु भगवंतुनंडु नगुट,
सर्गमंबुरु दीनिनि जनवरेण्य ॥ 260 ॥

कं. सरसिजगर्भुंडु विरा, ट्पुरुषुनि वलनं जनिंचि भूरितर चरा-
चर भूतसृष्टि जेयुट, परुवडिनि विसर्ग मंड्रू भरतकुलेशा ! ॥ 261 ॥

तुम्हें विदित करूँगा। २५७ [इसके] अतिरिक्त अब विराट्पुरुष से इन जगतों का जन्म कैसे हुआ ? ऐसे कुछ प्रश्न तुमने पूछे। मैं उन सबके उत्तर-स्वरूप उस महाभागवत का भाषण करूँगा। ध्यान से सुनो। २५८

अध्याय—१०

[व.] वह महापुराण चतुःश्लोक रूप में, दस लक्षणों में संक्षिप्त मार्गों में विलसित हुआ। वे दस लक्षण कौन से हैं ? पूछने पर सस्वर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, रक्षण, मन्वन्तर, ईशानुचरित, निरोध, मुक्ति, आश्रय, कहलानेवाले दस प्रकार हैं। दसवे की विशुद्धता के आधार पर शेष नौ के लक्षण कहे गये। वे कौन से हैं, ? [ऐसा] पूछने पर, २५९ [ते.] जनवरेण्य (राजा) ! महत्, अहंकार पंचतन्मात्राएँ, गगन, पवन, शिखि (अग्नि), तोय (जल), भू, नामक पंचभूत [संबंधी] इंद्रियों के प्रपंच (संसार) का भगवान में होने को सर्ग (सृष्टि) कहते हैं। २६० [कं.] हे भरतकुलेश्वर ! (राजा !) सरसिज गर्भ के विराट्पुरुष के द्वारा जन्म लेकर भूरितर (विस्तृत) चराचर-भूत सृष्टि को शीघ्रगति से करने को विसर्ग कहते हैं। २६१ [कं.] हे अवनीनाथ ! लोकद्रोही नरेंद्रानीक (राजवर्ग) का नाश कर, जगत को फिर से पूर्णरूप से स्थापित

कं. लोकद्रोहि नरेंद्रा, नोकमु बरिमार्चि जगमु नेंरि निलिपन या
वैकुंठनाथु विजयुं, बाकल्पस्थान मय्ये नवनीनाथा ! ॥ 262 ॥

कं. हरिसर्वेशुंडनंतुडु, निरुपम शुभमूर्ति चेयु निजभक्त जनो
द्धरणमु पोषण मवनी-वर ! यूतुलनंग गर्मवासन लरयन् ॥ 263 ॥

ते. जलजनाभ ! दयाकटाक्ष प्रसाद,
लब्धि निखिलैक लोक पालन विभूति
महिम बोंदिन वारि धर्ममुलु विस्त-
रमुन बलुकुट मन्वंतरमुलु भूप ! ॥ 264 ॥

कं. वनजोदरु नवतार क, थनमु ददीयानुवर्ति तति चारित्रं
बुनु विस्तरिंचि पलुकं, जनु नवि यीशानु कथलु सौजन्यनिधी ! ॥265॥

सी. वसुमतीनाथ ! सर्वस्वामियैन गो, विंदुंडु चिदचिदानंदमूर्ति
सलिलत स्वोपाधि शक्तिसमेतुडै तनरारु नात्मीय धाममंदु
फणिराज मृदुल तल्पंबुपै सुखलील योगनिद्रारति नुन्न वेळ
नखिल जीवुलु निज व्यापार शून्युलै युन्नत तेजंबु नुरलुकोनग

ते. जरगु नव्यवस्थाविशेषंबु लॅल्ल,
विदित मगुनट्लु वलुकुट यदि निरोध
मन निदि यवांतर प्रळयंबनंग,
बरगु निक मुक्ति गति विनु पार्थिवेंद्र ! ॥ 266 ॥

करनेवाले वकुण्ठनाथ को विजय कल्प तक (कल्पान्त तक) स्थान कहाया। २६२ [कं.] अवनीश्वर (राजा) ! हरि, सर्वेश्वर, अनन्त है, अनुपम रूप से शुभमूर्ति वाला है। कर्मवासनाओं (संस्कार) के अनुसार अपने भक्तजनों के उद्धार को पोषण तथा ऊति (रक्षण) कहते हैं। २६३ [ते.] हे भूप (राजा) ! जलजनाभ (विष्णु) के कृपाकटाक्ष के प्रसाद से निखिल लोकों के पालन की विभूति महिमा को लब्ध (प्राप्त) करने वालों के धर्मों को विस्तार से कहना मन्वन्तर कहलाता है। २६४ [कं.] सौजन्य (सज्जनता) की निधि ! वनजोदर (विष्णु) के अवतारों की कथाएँ, उसके अनुसरण करनेवाले भक्तों के चरितों का विस्तार से कहने पर वे ईशानु कथाएँ कहलाती हैं। २६५ [सी.] हे वसुमतीनाथ ! सर्वस्वामी बने हुए गोविन्द, जो चिदचिदानन्द मूर्ति है, सललित स्व-उपाधि (-शरीर) में शक्ति के सहित हो निजधाम में विलसित हो, फणिराज (आदिशेष) के मृदुल तल्प पर, सुखलीला में योग निद्रारत रहते समय सकल जीव अपने-अपने व्यापारों (कार्यों) से शून्य हो उन्नत तेज के आवृत करने पर [नारायण में लीन हो रहते है।] [ते.] तब होनेवाले सारे स्थिति-विशेष विदित हों ऐसा कहना निरोध कहाता है। यह अवान्तर प्रलय के-

सी. जीवुंडु भगवत्कृपा वशंबुन जेसि देहधर्मंबुलै धृति ननेक
जन्मानुचरित दृश्यमु-लन यज्जरा मरणंबु लात्मधर्मंबुलैन
धन पुण्यपाप निकाय निर्मोचन स्थिति नॊप्पि पूर्वसंचितमुलैन
यपहृत पाप्मवत्त्वा द्यष्ट तद्गुणवंतुडै तग भगवच्छरीर

ते. भूतुडै पारतंत्र्यात्म बुद्धि नॊप्पि,
दिव्यमा ल्यानुलेपन भव्यगंध
कलित मंगळ दिव्य विग्रहविशिष्टु,
डगुचु हरि रूप मॊंदुटे यनघ ! मुक्ति ॥ 267 ॥

व. मरियु नुत्पत्ति स्थिति लयंबु लॆंदु नगुचु प्रकाशिप वडु नदि याश्रयंबनबडु। अदिय परमात्म। ब्रह्मशब्द वाच्यंबु नदिय। प्रत्यक्षानुभवंबुन विदितंबु सेयु कॊरकु नात्म याध्यात्मकादि विभागंबु सॆप्पंबडियॆ। अदि यॆट्लनिन नात्म याध्यात्मिकाधि दैविकाधि भौतिकंबुल द्रिविधंबय्यॆ। अंदु नाध्यात्मिकंबु चक्षुरादि गोळकांतर्वर्तियै यॆरुंगबडु। चक्षुरादि करणाभि मानियै द्रष्टयैन जीवुंडे याधिदैविकुंडनं दगु। चक्षुराद्यधिष्ठानाभिमान देवतयु, सूर्यादि तेजो विग्रहुंडु नगुचु नॆव्वनि यंदु नी युभय विभागंबुनं गलुगु नतंडे याधि भौतिकुंडु, विराड्विग्रहुंडु नगुं गावुन, द्रष्टयु दृक्कु दृश्यंबु ननंदगु मूटि यंदु नॊकटि लेकुन्न नॊकटि गानरादु। ई त्रितयंबु

नाम से प्रसिद्ध है। पार्थिवेन्द्र (राजा) ! अब मुक्ति की स्थिति के बारे में सुनो ! २६६ [सी.] अनघ ! जीव भगवान् की कृपा के वश में हो, देह धर्म कहलानेवाले दृढ़तर अनेक जन्मानुचरित (जन्मों में आचरण किए गए) के दृश्यों में जरा-मरण रूपी आत्मधर्म सम्बन्धी महान् पुण्य तथा पाप-निकाय (समूह) के निर्मोचन की स्थिति को प्राप्त करता है, पूर्व में संचित पापकर्म का परिहार कर, उसमें (परमपुरुष में) अदृष्ट (न देखे गए) तत् गुण वाला हो, भगवान के शरीरभूत हो [ते.] परतंत्र बुद्धि से [जीव के] दिव्य मालाएँ, अनुलेपन, भव्यगन्ध [आदि] से कलित (सुन्दर) मंगल दिव्य विग्रह से विशिष्ट बनकर हरिरूप को प्राप्त करना मुक्ति है। २६७ [व.] और जहाँ उत्पत्ति, स्थिति, लय कार्य सम्पन्न होते हुए प्रकाशित होता है, वह आश्रय कहलाता है। वही परमात्मा है। ब्रह्म शब्द का वाच्य भी वही है। प्रत्यक्ष-अनुभव को विदित करने के लिए आत्मा अध्यात्म आदि का विभाजन कहा [किया] गया है। वह किस प्रकार का है (पूछने पर) आत्मा के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक तीन प्रकार हुए। उसमें आध्यात्मिक [तत्त्व] चक्षु आदि गोलकों के अन्तर्वर्ती हो, जाना जाता है। चक्षुः आदि कारण (साधन) का अभिमानी हो, द्रष्टा होनेवाला जीव आधिदैव कहलाता है। चक्षुः आदि के अधिष्ठान

नॆव्व डॆरुंगु नतंडु सर्वलोकाश्रयुंडै युंडु। अतंडॆ परमात्मयु। अम्महात्मुंडु लीलार्थंबै जगत्सर्जनंबु सेयु तलंपुन ब्रह्मांडंबु निर्भेदिंचि तनकु सुखस्थानंबु नपेक्षिंचि मॊदल शुद्धंबुलगु जलंबुल सृजियिंचॆ। स्वतः परिशुद्धुंडु गावुन स्वसृष्ट बगु नेकार्णवाकारंबैन जलराशि यंदु शयनंबु सेयुटं जेसि,

श्लोकमु आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदप्यायनं पूर्वं तेन नारायण स्मृतः॥

अनु प्रमाणमु चॊप्पुन नारायण शब्द वाच्युंडु गावुन नतनि प्रभावंबु वर्णिप दुर्लभंबु। उपादान भूतंबैन द्रव्यंबुनु, द्विविधंबैन कर्मबुनु, गळा काष्ठा द्युपाधि भिन्नंबैन कालंबुनु, ज्ञानाधिकंबु जीवस्वभावंबुनु, भोक्तयगु जीवुंडुनु, नॆव्वनि यनुग्रहंबुनं जेसि वर्तिपुचुंडु, नॆव्वनि युपेक्षं जेसि वर्तिपकुंडु, नट्टिप्रभावंबुगल सर्वेश्वरुंडु दानेकमय्यु ननेकंबुगा दलंचि योगतल्पंबुनं ब्रबुद्धुंडै युंडु। अट मीद स्वसंकल्पंबुनं जेसि तन हिरणमयंबैन विग्रहंबु नधिदेवंबु नध्यात्मकंबु नधिभूतंबु ननु संज्ञायुतंबैन त्रिविधंबुगा सृजियिंचॆ॥ 268॥

का देव, सूर्य आदि तेज की मूर्ति, जिसमें ये दो विभाग बसते हैं, वह आधिभौतिक कहलाता है। विराट् विग्रह (मूर्ति) वाला होने के कारण द्रष्टा, दृक् तथा दृश्य कहलानेवाले इन तीनों में एक के अभाव में दूसरा दिखाई नहीं देता। इस त्रितय को जो जानता है, वह सर्वलोकों के लिए आश्रय होता है। वही परमात्मा है। वह महात्मा लीला के लिए जगत की सृष्टि करने की इच्छा कर, ब्रह्माण्ड को भेदकर, अपने लिए सुखस्थान की अपेक्षा कर पहले शुद्ध जलों का सृजन किया। स्वतः (सहज) रूप में परिशुद्ध होने के कारण, अपने से सृजन किये गए एकार्णव (एक सागर) के आकार में स्थित जलराशि में शयन करने के कारण, [श्लोक] "आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। ता यदप्यायनं पूर्वम् तेन नारायण स्मृतः॥" इस प्रमाण के अनुसार नारायण शब्द से वाच्य होने (कहे जाने) के कारण उसके प्रभाव का वर्णन करना दुष्कर है। उपादानस्वरूप द्रव्य, त्रिविध कर्म, गला, काष्ठ आदि उपाधियों से भिन्न दिखाई पड़नेवाला काल, ज्ञान के आधिक्य से युक्त जीव का स्वभाव, भोक्ता के रूप में जीव —[ये सब] जिसके अनुग्रह से प्रवर्तित होते है और जिसकी अपेक्षा से प्रवर्तित नही होते हैं, ऐसा प्रभावशाली सर्वेश्वर, स्वयं एक होकर भी अनेक रूपों में कल्पना करते हुए योगतल्प पर प्रबुद्ध हुए रहता है। उसके पश्चात् स्वसंकल्प से अपने हिरण्मय मूर्ति का, अधिदैव, अध्यात्म, अधिभूत कहे जानेवाले तीनों प्रकार से सृजन किया। २६८

सी. अट्टि विराड्विग्रहांत राकाशंबु वलन नोज स्सहोबलमु लय्यॆ
ब्राणंबु सूक्ष्मरूप क्रिया शक्ति चे जनियिंचि मुख्यासु वनग बरगॆ
वॆलुवडि चनु जीवि वॆनुकॊनि प्राणमुल् चनुचुंडु निजनाथु ननुसरिंचु
भटुल चंदंबुन वाटिल्लु क्षुत्तुनु भूरि तृष्णयु मरि मुखमु वलन

ते. दालु जिह्वादिकंबु लुद्भवमु नॊंदॆ,
नंदु नुदयिंचॆ जिह्वयु नंदु रसमु
लॆल्ल नुदयिंचि जिह्वचे नॆरुगि बडुनु,
मौनसि पलुकन कपेक्षिंचु मुखमुवलन ॥ 269 ॥

व. मरियु वागिंद्रियंबु पुट्टॆ। दानिकि देवत यग्नि। आ रॆंटि वलन भाषणंबु वॊडमॆ। आ यग्निकि महाजल व्याप्तंबगु जगंबुन निरोधंबु गलुगुटं जेसि या जलंबॆ प्रतिबंधकं बय्यॆ। दोदूयमानंबैन महावायुववलन घ्राणंबु पुट्टॆ गावुन वायुदेवताकं बैन घ्राणेंद्रियंबु गंधग्रहण समर्थंबय्यॆ। निरालोकंबगु नात्म नात्मयंदु जूडं गोरि तेजंबुवलन नादित्य देवताकंबै रूप ग्राहकंबैन यक्षि युगळंबु पुट्टॆ। ऋषि गणंबुचेत बोधितुंडगुचु भगवंतुंडु दिग्देवताकंबुनं शब्द ग्राहकंबुनं नैन श्रोत्रेंद्रियंबु पुट्टिंचॆ। सर्जनंबु सेयु पुरुषुनि वलनमृदुत्व काठिन्यंबुलु, लघुत्व गुरुत्वंबुलु नुष्णत्व शीतलत्वंबुलुनुं जॆसॆंडु त्वगिंद्रि याधिष्ठानंबगु चर्मंबुपुट्टॆ। दानि वलन रोमंबु लुदयिंचॆ। वानिकि महीरुहंबु लधिदेवत लय्यॆ। अंदु नधिगत स्पर्श गुणंडुनु अंत

[सी.] ऐसे विराट्मूर्ति के अन्तर्गत आकाश से ओज, सहस, बल, पैदा हुए (और) सूक्ष्म क्रियाशक्ति से प्राण पैदा होकर 'मुख्यासु' नाम से विलसित हुए। बाहर निकलकर चलनेवाले जीव के पीछे लगकर अपने राजा के पीछे-पीछे चलनेवाले सिपाहियों की भाँति प्राण चलते हैं। फिर क्षुत् (भूख), भूरि (अत्यधिक) तृष्णा (प्यास) [के कारण] [ते.] तालू, जिह्वा आदि उत्पन्न हुईं। और उनमें जिह्वा (जीभ) से सारे रस उत्पन्न होकर जीभ से जाने जाते है और मुख से बोलने की अपेक्षा करते हैं। २६९ [व.] और वागिन्द्रिय पैदा हुआ। उसका देवता अग्नि है। उन दोनों से भाषण उत्पन्न हुआ। उस अग्नि के लिए महाजल से व्याप्त जग में निरोध (पैदा) होने के कारण वह जल ही प्रतिवन्धक हुआ तीव्रता से चलनेवाली महावायु से घ्राण उत्पन्न हुआ। इसलिए वायुदेवता संबंधी घ्राणेन्द्रिय गन्ध ग्रहण में समर्थ हुआ। आलोक-रहित आत्मा में देखने को जी चाहकर तेज से आदित्य देवता रूपक हो, रूप ग्रहण में समर्थ अक्षियुगल पैदा हुआ। ऋषिगण द्वारा प्रबोधित होते हुए, भगवान् ने दिक्देवतारूपक शब्द ग्राहक श्रोत्रेन्द्रिय को पैदा किया। सृजन करनेवाले पुरुष से मृदुता, कठिनता, लघुता, गुरुता, उष्णता, शीतलता की पहचान करानेवाले त्वक्-इन्द्रिय से अधिष्ठित हो चर्म पैदा हुआ।

बहिः प्रदेशंबुल नावृतुंडुनु नगु वायुवु वलन बलवंतंबुलु निंद्रदेवताकंबुलु नादान समर्थंबुलु नाना कर्म करण दक्षंबुलु नगु हस्तंबु लुदयिंचें। स्वेच्छा विषयगति समर्थुंडगु नीश्वरुनि वलन विष्णु देवताकंबु लगु पादंबु लुदयिंचें। प्रजानंदामृतर्थि यगु भगवंतुनि वलन प्रजापति देवताकंबै स्त्री संभोगादि काम्य सुखंबुलु कार्यंबुलुगा गल शिश्नोपस्थंबु लुदयिंचें। मित्रुंडधिदेवतंबुगा गलिगि भुक्तान्नाद्यसारांश त्यागोपयोगंबगु पायुवानंडि गुदं बुद्भविंचें। दानि कृत्यं बुभय मल मोचनंबु। देहंबुननुंडि देहांतरंबु जेरंगोरि पूर्वकायंबु विडुचुटकु साधनंबगु नाभिद्वारंबु संभविंचें। अट्टि नाभिये प्राणापान बंधस्थानं बनंबडु। तद्बंध विश्लेषंबे मृत्युवगु। अदिय यूर्ध्वाधो देह भेदकं बनियुं जेंप्पंबडु। अन्नपानादि धारणार्थंबुग नांत्रकुक्षि नाडीनिचयंबुलु गलिपप बडियें। वानिकि नदुलु समुद्रंबुलु नधिदेवतलय्यें। वानि वलन दुष्टि पुष्टुलनु नुदरभरण रस परिणामंबुलुनु गलिगियुंडु। आत्मीय माया चिंतनं बोनर्चु नपुडु काम संकल्पादि स्थानं बगु हृदयंबु गलिगें। दानिवलन मनंबुनु चंद्रंडुनु, कामुंडुनु, संकल्पंबुनु नुदयिंचें। अंतमीद जगत्सर्जनंबु

उससे रोम उत्पन्न हुए। उनके लिए महीरुह (वृक्ष) अधिदेवता बन गये। उनमें स्पर्श गुण के अधिष्ठाता हो अन्तर् और बाह्य प्रदेशों में प्रवृत्त होनेवाले वायु से [बलशाली इन्द्र देवतात्मक (और) आदान (लेने में) समर्थ तथा नाना कार्य करने के कारण (साधन) हाथ उत्पन्न हुए] स्वेच्छा से विषयगति में समर्थ होनेवाले ईश्वर से विष्णुदेवता से अधिष्ठित हो चरण उत्पन्न हुए। प्रजा (संतति) आनन्द और अमृत पाने के अर्थी (चाहनेवाले) भगवान से प्रजापति के देवता के रूप में अधिष्ठित, स्त्री-सम्भोग आदि काम्य सुखदायक कार्यों के लिए शिश्न तथा उपस्थ पैदा हुए। मित्र के अधिदेवता के रूप में भुक्तान्न आदि के असारांश [पदार्थों] के त्याग (विसर्जन) करने के निमित्त पायु कहा जाने वाला गुदा उत्पन्न हुआ। उसका कार्य उभय (सूक्ष्म एवं स्थूल) मल-मोचन है। देह से दूसरे देह में जाने की इच्छा से पूर्व शरीर को छोड़ देने के साधन के रूप में नाभि-द्वार का संभव (जन्म) हुआ। वह नाभि ही प्राण, अपान का बन्धस्थान कहा जाता है। उस बन्ध का विश्लेषण (त्याग) ही मृत्यु कही जाती है। वही ऊर्ध्व, अधो देह का भेदक करने वाला कहा जाता है। अन्न, पान आदि को धारण करने के लिए आंत्र (आँतड़ियाँ), कुक्षि (पेट), नाड़ीसमूह की सृष्टि हुई। उसके लिए नदी और समुद्र अधिदेवता हुए। [उनसे] तुष्टि, पुष्टि तथा उदर-भरण के लिए रसपरिणाम (परिवर्तन) सम्पन्न होते हैं। अपनी माया के चिन्तन करते समय कामना और संकल्प आदि के लिए हृदय का स्थान बन

सेयु विराड्विग्रहंबु वलनु सप्त धातुवुलुनु, पृथिव्यप्तेजोमयंबुलैन सप्तप्राणंबुलुनु,व्योमांबु वायुवुलचे नुत्पन्नंबुलयि गुणात्मकंबुलैन यिंद्रियंबुलुनु, नहंकार प्रभवंबुलैन गुणंबुलुनु, सर्वविकार स्वरूपंबगु मनस्सुनु, विज्ञान-रूपिणियगु बुद्धियु बुट्टु। विविधंबगु निदि यंतयु सर्वेश्वरुनि स्थूल विग्रहंबु। मरियुनु ॥ 270 ॥

कं. वरुस बृथिव्या द्यष्टा, वरणावृतमै समग्र वैभवमुल वं-
करुहभ वांडातीत, स्फुरणं जॆलुवॊंदु नतिविभूति दलिर्पन् ॥ 271 ॥

कं. पॊलुपगु सकल विलक्षण, मुलु गलि गाद्यंत शून्यमुनु नित्यमुनै
ललि सूक्ष्ममै मनो वा, क्कुलकुं दलपोयगा नगोचर नगुचुन् ॥ 272 ॥

सी. अलघु तेजोमयंबैन रूपं बिदि क्षितिनाथ नाचेत जॆप्प वडियॆ
मानित स्थूल सूक्ष्म स्वरूपंबुल वलन नॊप्पॆडु भगवत्स्वरूप
म म्महात्मकुनि माया बलंबुन जॆसि दिव्यमुनींद्रुलु दॆलियलेरु
वसुधेश वाच्यमै वाचकंबै नाम रूपमुल् ग्रियलुनु रूढि दाल्चि

आ. यॆंडुनट्टि यीश्वरुंडु नारायणुं, डखिलधृति जग न्नियंतयैन
चिन्मयात्मकुंडु सृजियिंचु नी प्रजा,पतुल ऋषुलनु बितृ ततुल नपुडु ॥273॥

व. मरियुनु ॥ 274 ॥

गया। उससे मन और चन्द्र और कामदेव तथा संकल्प उदित। उसके पश्चात् जगत की सृष्टि करनेवाले विराट् मूर्ति से सप्तधातु, पृथ्वी, अप् (जल)-तेजोमय सप्तप्राण, (तथा) व्योम (गगन)-अंबु (जल)-वायु से उत्पन्न होनेवाले गुणात्मक इन्द्रिय (तथा) अहंकार को प्रकट करनेवाले गुण, सकल विकारों के स्वरूप मन, विज्ञान और बुद्धि उत्पन्न होते हैं। विविध प्रकार से स्थित यह सब सर्वेश्वर का स्थूल रूप है। और, २७० [कं.] वह क्रमशः पृथ्वी आदि आठों आवरणों में समग्र वैभव के साथ ब्रह्माण्ड से परे हो अत्यधिक विभूतियों से सम्पन्न हो, ज्योतित होता है। २७१ [कं.] सुन्दर, सकल विलक्षणों [तत्त्वों] के साथ आदि-अन्त-शून्य हो, नित्य हो, सूक्ष्म तथा मन तथा वाक् के लिए चिन्तन के लिए अगोचर होते हुए स्थित है। २७२ [सी.] क्षितिनाथ (राजा)! वह अलघु तथा तेजोमय रूप वाला है। [उसके सम्बन्ध में] मेरे द्वारा कहा गया। स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में मान्य होनेवाले उस भगवत्-स्वरूप को, उस महात्मा के माया-बल के कारण दिव्य मुनीन्द्र जान नहीं पाते। हे वसुधेश! वाच्य तथा वाचक हो, नाम-रूप-क्रियाओं को निश्चित रूप से धारण कर, [आ.] सुशोभित होनेवाले ईश्वर, नारायण (और) अखिल जगत को धृति के साथ नियंत्रण करनेवाला चिन्मयात्मा इन प्रजापतियों (और) ऋषियों तथा पितृगणों का सृजन करता है। २७३ [व.] और; २७४

सी. सुर सिद्ध साध्य किन्नर वर चारण गरुड गंधर्व राक्षस पिशाच
भूतबेताळ किंपुरुष कूश्मांड गुह्यक डाकिनी यक्ष यातुधान
विद्याधराप्सरो विषधर ग्रह मातृगण वृक हरि घृष्टि खग मृगाळि
भल्लूक रोहित पशु वृक्ष योनुल विविध कर्मंबुलु वॅलय बुट्टि

ते. जल नभो भूतलंबुल संचरिंचु,
जंतु चयमुल सत्त्व रजस्तमो गु-
णमुल दिर्यक्सुरासुर नर धरादि,
भावमुल भिन्नु लगुदुरु पौरवेंद्र ! ॥ 275 ॥

म. इरवॊंदन् द्रुहिणात्मकुं डयि रमाधीशुंडु विश्वंबु सु-
स्थिरतं जेसि हरि स्वरूपुडयि रक्षिचुन् समस्त प्रजो-
त्कर संहारमु सेयु नप्पुडु हरांतर्यामियै यितयुन्
हरियिंचुन् बवनुंडु मेघमुल मायं जेयु चंदंबुनन् ॥ 276 ॥

कं. ई पगिदिनि विश्वमु सं, स्थापिंचुनु मनुचु नणचु धर्मात्मकुडै
दीपित तिर्यङ्नर सुर, रूपंबुलु दाने तालिच रूढि दलिर्पन् ॥ 277 ॥

सी. हरियंदु नाकाश माकाशमुन वायुवनिलंबु वलन हुताश नुंडु
हव्यवाहनुनंदु नंबुवु लुदकंबु वलन वसंधर गलिगॆ धात्रि

[सी.] पौरवेन्द्र (राजा परीक्षित) ! सुर, सिद्ध, साध्य, किन्नर-वर, चारण, गरुड़, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, भूत, बेताल, किंपुरुष, कूष्माण्ड, (पिशाच-विशेष), गुह्यक, डाकिनी, यक्ष, यातुधान, विद्याधर, अप्सरा, विषधर, ग्रह, मातृगण, वृक, हरि, घृष्टि (भैंसा), खग, मृग, भल्लूक, रोहित (केसरी-मृग) पशु, वृक्षयोनियों में, विविध कर्मों को प्रकट करते हुए उत्पन्न हो, [ते.] जल, नभ, भूतल में संचरण करनेवाले जंतुगण में सत्त्व-रजस्-तमो गुणों से तिर्यक्, सुर, असुर, नर-रूप आदि भावों में भिन्न होते हैं (अलग दिखाई देते है)। २७५ [म.] उचित स्थान पर द्रुहिणात्मा होकर (ब्रह्मा की देह धारण कर) रमाधीश विश्व को सुस्थिर कर (सृजन कर, स्थापित कर), हरि के रूप में उसकी रक्षा करता है। समस्त प्रजा-समूह का संहार करते समय हर के अन्तर्यामी हो पवन के मेघों को समाप्त करने की रीति सबका हरण (समापन) करता है। २७६ [कं.] इस प्रकार धर्मात्मा के रूप में दीप्त हो विश्व की स्थापना (सृजन) करता है, रक्षा करता है, संहार करता है। तिर्यक् नर, सुर रूपों को निश्चित रूप से स्वयं धारण कर सुविलसित होता है। २७७ [सी.] जनवरेण्य (राजा) ! हरि से आकाश, आकाश से वायु, वायु से हुताशन (अग्नि), हव्यवाहन (अग्नि) से जल, जल से वसुंधरा (पृथ्वी) उत्पन्न हुए। धात्री से बहु प्रजासमूह उत्पन्न हुआ। सबके मूल में स्थित नारायण चिदानन्दस्वरूप, अव्यय, अजर,

वलन बहु प्रजावळि युद्भवं वय्यॆ नितकु मूलमै यॆसगुनट्टि
नारायणंडु चिदानंद स्वरूपकुं डव्ययु डजरु डनंतु डाढ्यु

ते. आदि मध्यांत शून्यु डनादिनिधनु,
डतनिवलननु संभूत मैन यट्टि
सृष्टि हेतु प्रकार मॊॆक्षिंचि, तॆलिय,
जाल रॆंतटि मुनुलैन जनवरेण्य ! ॥ 278 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 279 ॥

म. धरणीशोत्तम ! भूतसृष्टि निट्टु संस्थापिंचि रक्षिंचु ना
हरि कर्तृत्वमु नॊल्ल डात्मगत माया रोपितं जेसि ता
निरवद्युंडु निरंजनुंडु परुडुन् निष्किंचनुं डाढ्युडुन्
निरपेक्षुंडुनु निष्कळंकु डगुचुन् नित्यत्वमुन् बॊॆदॆडिन् ॥ 280 ॥

व. ब्रह्म संबंधियगु नी कल्प प्रकारं बवांतर कल्पंबुतोडि संकुचित प्रकारंबुन नॆॆरिंगिंचिति। इट्टि ब्रह्म कल्पंबुन नॊप्पु प्राकृत वैकृत कल्प प्रकारंबुलुनु, तत्परिमाणंबुलुनु कालकल्प लक्षणंबुलुनु, नवांतर कल्प मात्वंतरादि भेद विभाग स्वरूपंबुनु जनति विस्तारंबुग मुंदु नॆॆरिंगितु विनुमु अदियुनुं बद्मकल्पं बनंदगु। अनि भगवंतुंडयिन शुकुंडु परीक्षित्तुनकु जॆप्पॆ। अनि सूतुंडु महर्षुलकु नॆॆरिंगिंचिन ॥ 281 ॥

कं. विनि शौनकुंडु सूतुं, गनुगॊनि यिट्लनियॆ सूत ! करुणोपेता !
जननुत गुण संघाता ! घन पुण्य समेत ! विगत कलुष-व्राता ॥ 282 ॥

अनन्त, आढ्य (सबसे उन्नत), [ते.] आदि-मध्य-अन्त शून्य, अनादि-निधन (प्रारंभ और मृत्यु से रहित) है। उससे संभूत (उत्पन्न) हुई, सो इस सृष्टि के कारण के विधान को परखकर, कितने ही बड़े मुनि लोग क्यों न हों, जान नहीं पाते। २७८ [व.] इसके अतिरिक्त, २७९ [म.] धरणीशोत्तम (राजश्रेष्ठ)! भूत सृष्टि को इस प्रकार स्थापना कर, रक्षा करनेवाला वह हरि कर्तृत्व को नहीं चाहता। उसे आत्मगत माया में आरोपित वह निरवद्य (निर्दोषी), निरंजन, पर (उत्तम), निष्किंचन (अभावरहित); आढ्य (सबसे उन्नत, सम्पन्न); निरपेक्ष (किसी को न चाहनेवाला); निष्कलंक हो शाश्वत तत्त्व होकर रहता है। २८० [व.] ब्रह्म से सम्बन्धित होनेवाले इस कल्प के प्रकार को अवान्तर कल्प (प्रलय) के साथ संक्षेप रूप में विदित किया। ऐसे ब्रह्मकल्प में प्राकृत, वैकृत कल्प का विधान, उसके परिणाम, काल तथा कल्प के लक्षण, अवान्तर कल्प, मन्वन्तर आदि के भेद से विभाजन का स्वरूप अति विस्तृत रूप से आगे विदित करूंगा। सुनो! वह पद्म कल्प कहलाता है। इस प्रकार भगवान शुक ने परीक्षित को सुनाया। ऐसा सूत ने महर्षियों को विदित

व. परम भागवतोत्तमुंडैन विदुरुंडु बंधु मित्र जालंबुल विडिचि, सकल भुवन पावनंबुलुनु कीर्तनीयंबुलुनु नैन तीर्थंबुलु नगण्यंबुलन पुण्यक्षेत्रंबुलुनु दर्शिचि, क्रम्मर वच्चि, कौषारवियगु मैत्रेय गनि, यतनि वलन नध्यात्म-बोधंबु वडसें ननि विनंबडु। अदि यंतयु नेॅऱिगिपु मनिन नतं डिट्लनियें ॥ 283 ॥

कं. विनु मिपुडु मीरु नन्नडि, गिनतेॅऱ गुन शुकु मुनींद्र गेयु बरीक्षि-ज्जनपति यडिगिन नता डा, तनि केॅऱिगिंचिन विधंबु दग नेॅऱिगितुन् ॥284॥

व. सावधानुलै विनुंडु ॥ 285 ॥

उ. राम ! गुणाभिराम ! दिनराज कुलांबुधि सोम ! तोयद
श्याम ! दशानन प्रबल सैन्य विराम ! सुरारि गोत्र सु-
त्राम ! सुबाहु बाहुबल दर्प तमः पटुतीव्र धाम ! नि-
ष्काम ! कुभूल्ललाम ! गरकंठ सतीनुत नाम ! राघवा ! ॥ 286 ॥

कं. अमरेंद्रसुत विदारण ! कमलाप्त तनूज राज्यकारण ! भव सं-
तमस दिनेश्वर ! राजो, त्तम ! दैवत सार्वभौम ! दशरथ रामा! ॥287॥

किया। तब। २८१ [कं.] सुनकर शौनक ने सूत से ऐसा कहा कि 'सूत ! करुणापूरित ! जनता से स्तुत्य गुण-संघाता (समूह वाले) ! घन पुण्यसमेता ! दूर किए गए कल्मषव्राता (समूह वाले) ! २८२ [व.] परम भागवतों में उत्तम विदुर ने अपने बन्धु मित्रगण को छोड़कर, सकल भुवनों को पवित्र करनेवाले, स्तुति करने योग्य, तीर्थों के अगणित पुण्यक्षेत्रों के दर्शन कर, फिर वापस आकर, कौषारवि (कुषारव नामक वैदिक ऋषि का पुत्र) मैत्रेय को देखकर [यहाँ पहुँचकर] उससे अध्यात्म-बोध को प्राप्त किया। ऐसा सुना जाता है। उस समस्त वृत्तान्तर को विदित करो, ऐसा कहने पर उसने इस प्रकार कहा। २८३ [कं.] सुनो ! अब तुम लोगों ने जिसके बारे में पूछा, उसी को, मुनीन्द्रों के द्वारा प्रशंसित शुक से राजा परीक्षित ने पूछा। उनके विदित किये हुए विधान को मैं आपको सुना दूंगा। २८४ [व.] सावधान हो सुन लो। २८५ [उ.] हे राम ! गुणों से अभिराम ! रघुकुलसागर के लिए सोम (चन्द्र) ! तोयद (घन) श्याम ! दशानन (रावण) की प्रबल सेना को विराम पहुँचाने (समाप्त करने) वाले हो ! सुरारि (राक्षस) रूपी गोत्रों (पर्वतों) के लिए सुत्राम (इन्द्र) ! सुबाहु के बाहुबल के गर्व रूपी अन्धकार मिटानेवाले तीव्रधाम (सूर्य) ! निष्काम ! कुभूल्ललाम (राजश्रेष्ठ) ! कर-कण्ठ (शिव) की सती से स्तुत्य नाम वाले ! हे राघव ! २८६ [कं.] हे अमरेन्द्रसुत (इन्द्रसुत—वालि) का वध करनेवाले ! कमलाप्ततनूज (सूर्यसुत सुग्रीव) को राज्य दिलानेवाले ! संसार के अन्धकार को मिटानेवाले सूर्य ! राज-

मा. निरुपरु गुणजाला ! निर्मलानंद लोला !
दुरित घन समीरा ! दुष्टदैत्य प्रहारा !
शरधि मद विशोषा ! चारु सद्भक्त पोषा !
सरसिज दळनेत्रा ! सज्जन स्तोत्र पात्रा ! ॥ 288 ॥

ग. इदि परमेश्वर करुणा कलित कविता विचित्र, केसनमंत्रि पुत्र, सहज पांडित्य, पोतनामत्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवतंबनु पुराणंबुनं बरीक्षित्तुतोड शुकयोगि भाषिचुटयु, भागवत पुराण वैभवंबुनु, खट्वांगु मोक्षप्रकारंबुनु, धारणा योग विषयंबैन महाविष्णुनि श्रीपादाद्यवयवंबुल सर्वलोकंबु लुन्न तॆरंगुनु, सत्पुरुष वृत्तियु, मोक्ष व्यतिरिक्त सर्वकाम्य फलप्रद देवता भजन प्रकारंबुनु, मोक्ष प्रदंडु श्रीहरि यनुटयु, हरि भजन विरहितु लैन जनुलकुनु हेय तापादनंबुनु, राज प्रश्नंबुनु, शुकयोगि श्रीहरि स्तोत्रंबु सेयुटयु, वासुदेव प्रसादंबुनं जतुर्मुखुंडु ब्रह्माधिपत्यंबु वडयुटयु, श्रीहरि वलन ब्रह्म रुद्रादि लोक प्रपंचंबु पुट्टुटयु, श्रीमन्नारायण दिव्य लीलावतार परंपरा वैभव वृत्तांत सूचनंबुनु, भागवत वैभवंबुनु, परीक्षित्तु शुकयोगि नडिगिन प्रपंचादि प्रश्नलुनु, अंदु श्रीहरि

श्रेष्ठ ! दैवत्व के (देवताओं के) चक्रवर्ती ! हे दशरथ-राम ! २८७
[मा.] हे निरुपम गुणगण वाले ! निर्मल आनन्द में स्थित ! दुरित (पाप) रूपी मेघों के लिए पवन ! दुष्ट राक्षसों के लिए प्रहार ! शरधि (सागर) के मद को शोषित करनेवाले ! सद्भक्तों को सुचारु रूप से पोषण करने वाले ! कमलदलनेत्र वाले ! हे सज्जनों के द्वारा स्तुति पाने योग्य ! २८८
[ग.] यह परमेश्वर की करुणा से कलित, विचित्र कविता से विलसित, केसन मंत्री का पुत्र, सहजपंडित पोतनामात्य से प्रणीत श्रीमहाभागवत नामक पुराण में परीक्षित से शुकयोगी का भाषण करना, भागवत पुराण का वैभव, खट्वांग के मोक्ष को प्राप्त करने की रीति, धारणायोग सम्बन्धी श्रीमहाविष्णु के श्रीचरण आदि अंगों में सर्वलोकों के स्थित होने की रीति, सत्पुरुषों की वृत्ति, मोह के विरोधी सब कामनाओं को फल प्रदान करनेवाले देवताओं के भजनों का प्रकार, मोक्षप्रदाता श्रीहरि ही है, ऐसा निश्चित रूप से कहना, हरिभजन-विरहित लोगों की हेयता को आपादित करना, राजा का प्रश्न करना; शुकयोगी के श्रीहरि का स्तोत्र करना, वासुदेव के वर प्रसाद से चतुर्मुखवाले का ब्रह्माधिपत्य को पाना, श्रीहरि से ब्रह्मरुद्रादि लोकों का उत्पन्न होना, श्रीमन्नारायण के दिव्य लीलावतारों की परम्परा तथा वैभव वृत्तान्तों की सूचना, भागवत का वैभव (महत्त्व), शुकयोगी से परीक्षित के पूछे गये संसार-सम्बन्धी प्रश्न, उनमें श्रीहरि को प्रधान कर्ता के रूप में उन तत्त्व-वृत्तान्तों का कहना, भगवद्भक्ति का वैभव, ब्रह्मा की

प्रधानकर्त यनि तद्वृत्तांतंबु सॅप्पुटयु, भगवद्भक्ति वैभवंबुनु, ब्रह्म तपश्चरणंबुनुकुं ब्रसन्नंडै हरि वैकुंठ नगरंबुतोड ब्रसन्नंडैन, स्तोत्रंबु सेसि तत्प्रसादंबुनं दन्महिम विनुटयु, वासुदेवंडानति यिच्चिन प्रकारंबुन ब्रह्म नारदुनिकि भागवत पुराण प्रधान दश लक्षणंबु लुपन्यसिचुटयु, नारायण वैभवंबुनु, जीवादि तत्त्व सृष्टियु, श्रीहरि नित्य विभूत्यादि वर्णनंबुनु, गल्प प्रकारादि सूचनंबुनु, शौनकुंडु विदुर मैत्रेय संवादंबुनु सॅप्पुमनि सूतु नडुगुटयु, ननु कथलुं गल द्वितीय स्कंधमु संपूर्णमु ॥ 289 ॥

तपश्चर्या से प्रसन्न हो हरि के वैकुण्ठ नगर के साथ प्रसन्न होना (दर्शन देना); (ब्रह्मा का) स्तोत्र कर उसके प्रसाद से महिमा को पाना, वासुदेव की आज्ञा के अनुसार नारद को भागवत पुराण के प्रधान रूप से दस लक्षणों का व्याख्यान करना, नारायण का वैभव; जीव आदि तत्त्व-सृष्टि, श्रीहरि की नित्यविभूति आदि का वर्णन, कल्पों के प्रकार आदि की सूचना, विदुर तथा मैत्रेय के सम्भाषण को कहने के लिए शौनक के सूत से प्रार्थना करना आदि-आदि कथाओं से पूर्ण (यह) द्वितीय स्कन्ध परिपूर्ण है। २८९

ॐ

(तृतीय स्कन्धमु)

कं. श्री महित! विनुत दिविजस्तोम! यशस्सीम! राजसोम ! सुमेरु स्थेम, विनिर्जित भार्गवराम ! दशानन विराम ! रघुकुलरामा ! ॥ 1 ॥

अध्यायमु—१

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनि श्रेष्ठुलकु निखिल पुराण व्याख्यान वैखरी समेतुंडैन सूतुं डिट्लनियें। अट्लु प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुं डिट्लनियें ॥ 2 ॥

विदुरुंडु तीर्थयात्र सेयुट

उ. पांडुनृपाल नंदनुलु बाहुबलंबुन धार्तराष्ट्रुलन् भंडन भूमिलो गॆलिचि पांडुर शारद चंद्र चंद्रिका

(तृतीय स्कन्ध)

[कं.] श्री की महिमा से युक्त ! देवगणों से स्तुत्य ! यश की चरम सीमा ! राजाओ में सोम (चन्द्र) ! सुमेरुपर्वत के समान स्थिरता वाले ! भार्गवराम (परशुराम) को विनिर्जित करने (हराने) वाले ! दशानन (रावण) को विराम (मृत्यु) पहुँचानेवाले हे रघुकुल राम ! (तुम्हें नमन है !) १

अध्याय—१

[व.] महनीय गुणों से गरिष्ठ (महान) बने हुए उन मुनिश्रेष्ठों को निखिल (सकल) पुराणों के व्याख्यान (व्याख्या) की वैखरी (रीति) से युक्त सूत ने इस प्रकार कहा। उस प्रकार प्रायोपविष्ट परीक्षिन्नरेंद्र (राजा परीक्षित) से शुक योगीन्द्र ने ऐसा कहा। २

विदुर का तीर्थयात्रा करना

[उ.] पाण्डु-नृपाल (-राजा) के नंदन (पुत्र) [अपने] बाहुबल से धार्तराष्ट्रों (धृतराष्ट्र के पुत्रों) को भंडन (युद्ध)-भूमि में जीतकर पांडुर (श्वेत) शरच्चन्द्र की चन्द्रिकाओं के समान अखण्ड यश रूपी

खंडयशः प्रसून कलिकावळि गौरव राज्यलक्ष्मि नों
ड्रोंड यलंकरिपुचु जयोन्नति राज्यमु सेयुचुंडगन् ॥ 3 ॥

कं. मनुजेंद्र ! विदुरु डंतकु, मुनु वनमुन केगि यच्चट मुनिजन गेयुन्
विनुत तपो धौरेयुन्, घनु ननुपम गुणविधेयु गनें मैत्रेयुन् ॥ 4 ॥

कं. कनुगोंनि तत्पावंबुलु, दन फालमु सोक ब्रोंविक तग निट्लनियेंन्
मुनिवर्य ! सकल जगत्पा, वनचरितुडु गृष्णु डखिल वंद्युं डेलमिन् ॥ 5 ॥

कं. मंडित तेजोनिधि यै, पांडवहितमतिनि दूतभावंबुन वे
दंडपुरि केगि कुरुकुल, मंडनु डगु धार्तराष्ट्र मंदिरमुनकुन् ॥ 6 ॥

ते. चनग नोल्लक मद्गृहंबुनकु भक्त,
वत्सलुंडगु कृष्णुंडु वच्चु टेमि
कतमु ? नाकदि येंरिंगिपु करुणतोड,
ननुचु विदुरुंडु मैत्रेयु नडिगें ननिन ॥ 7 ॥

कं. विनि वेंरगंदि परीक्षि,
न्मनुजवरेण्युंडु विमलमति निरतंद्रुन्
मुनिकुल - जलनिधि - चंद्रुन्,
सुनिशित - हरिभक्ति - सांद्रु - शुकयोगींद्रुन् ॥ 8 ॥

कं. कनि यिट्लनें मैत्रेयुनि, ननघुं डगु विदुरुडे रहस्यमु लडिगेंन्
मुनि येमि चेप्पें ने पगि, दिनि दीर्घमु लाडें नेंचट विरुगुचु नुंडेन् ॥ 9 ॥

पुष्प तथा कलिकावली से कौरव-राज्य-लक्ष्मी को निरन्तर अलंकृत करते हुए, जय की उन्नति से [पाते हुए] राज्य करते रहे। तब ३ [कं.] मनुजेन्द्र ! विदुर ने उससे पूर्व ही वन को जाकर, वहाँ मुनिजन से गेय (स्तुत्य), विनुत (स्तुत्य) तपस्या में धौरेय (अग्रगण्य), घन (महान), अनुपम गुणों से नम्र बने हुए मैत्रेय (ऋषि) के दर्शन किये। ४ [कं.] [उनको] देखकर, उनके चरणों में अपना माथा स्पर्श करे, ऐसा टेककर, प्रणाम कर, समुचित रीति से ऐसा कहा कि मुनिवर ! सकल जगत् के लिए पावन चरित वाला, कृष्ण, अखिल (समस्त) के लिए वन्दनीय, प्रेम से' ५ [कं.] मंडित तेजोनिधि वाला, पाण्डवों के प्रति हित-मति से दूत-भाव से वेदंड-पुर (हस्तिनापुर) गया, कुरुकुल के मंडन (अलंकार) धार्तराष्ट्र (दुर्योधन) के मन्दिर (गृह) को, ६ [ते.] जाने की इच्छा न कर, भक्तवत्सल कृष्ण के मेरे घर आने का कारण क्या है ? कृपा कर इसे मुझे विदित करो। ऐसा विदुर ने मैत्रेय से पूछा, ऐसा कहने पर, ७ [कं.] सुनकर, आश्चर्यचकित हो, राजा परीक्षित ने विमल मति वाले, निरलस, मुनिकुल-जलनिधि (-सागर) के चन्द्र, सुनिशित (तीव्र) हरि-भक्ति से सान्द्र [बने मन वाले] शुक योगीन्द्र को, ८ [कं.] देखकर ऐसा

ते. इन्नि देलियंग नानति यिच्चि नन्नु,
नर्थि रक्षिपवे विमलांतरंग !
घन - दयापांग ! हरि - पादकमल - भृंग !
महितगुण - संग ! पापतमःपतंग ! ॥ 10 ॥

चं. अनवुडु बादरायणि धराधिपुतो ननु बूरु वंशव-
र्धन ! विनु कन्टुडैन धृतराष्ट्र नृपालुडु पेंपुतो सुयो
धन मुख पुत्रुलं गडु मुदंबुन वेंपुचु बांडुराजु द
प्पिन पिवपन् ददात्मजुलु पंत्कुरि तन्ननि चेर वच्चिनन् ॥ 11 ॥

व. इट्लु वच्चिन पांडवुल येड नसूया निमग्नुलै सुयोधनादुलु ॥ 12 ॥

कं. पॅट्टिटरि विषान्न मंटं
गट्टिटरि, धनपाशमुलनु गंगा नदिलो
नॅट्टिटरि, राज्यमु वॅडलं,
गॉट्टिटरि, धर्मंबु विडिचि कुटिलात्मकुलै ॥ 13 ॥

कं. क्रूरात्मु लगुचु लाक्षा - गारंबुन,
वारु निद्र गैकॉनि युंडन्
दारुण शिखि दरि कॉलिपिरि,
मारण कर्ममुल कप्रमत्तुलु नगुचुन् ॥ 14 ॥

कहा (पूछा) कि अनघ (पाप-रहित) विदुर ने मैत्रेय से कौन से रहस्य पूछे? (और) मुनि ने क्या कहा ? [विदुर] किस प्रकार तीर्थजल में स्नान किया? और कहाँ-कहाँ भ्रमण करता रहा ? ९ [ते.] इन सबको विदित करते हुए, आज्ञा देकर, मुझ अर्थि (चाहनेवाले) की रक्षा करो न ! हे विमल अन्तरंग वाले ! हे अत्यन्त कृपापूर्ण अपांग (चितवन) वाले ! हे हरिचरण-कमलों के भृंग (भ्रमर) ! महित (श्रेष्ठ) गुणों की संगति करनेवाले ! पाप रूपी तमः (अन्धकार के लिए) पतंग (सूर्य) ! १० [चं.] ऐसा कहने पर वादरायणी (शुकयोगी) ने धराधिप (राजा) से कहा कि हे पूरु वंश के विकास करनेवाले ! सुनो ! पापी राजा धृतराष्ट्र प्यार से सुयोधन आदि पुत्रों को अधिक आनन्द के साथ पोषण करता रहा । पाण्डु राजा के चल बसने के पश्चात्, उसके पुत्र विह्वल हो, उसी को (धृतराष्ट्र को) रक्षा मानकर उसके यहाँ पहुँचे, तब । ११ [व.] ऐसे आये पाण्डवों के प्रति असूया (ईर्ष्या) से निमग्न हो सुयोधन आदि ने, १२ [कं.] विषान्न (खाने को) दिया, आग में झोंका, घन-पाशों (रस्सियों) से बांध रखा, गंगा नदी में ढकेल दिया, धर्म को छोड़कर कुटिल-बुद्धि से (उन्हें) राज्य के बाहर कर दिया । १३ [कं.] क्रूरात्मा हो, लाक्षागृह में उनके सोते समय दारुण शिखि (आग) लगा दी । अप्रमत्त हो मार डालने के लिए

ते. सूरिजन गेय मगु राजसूय यज्ञ,
विलस दवबृध स्नान पवित्र मैन
द्रौपदी चारु वेणी भरंबु वट्टि,
कौलुवु लोपुल नीड्चिरि कुत्सितमुन ॥ 15 ॥

कं. काबुन वारल कपकृति, गाविपनि दीक दिनंबु गलुगदु तम ज-
न्मावधि निजनंदनुलनु, वारिरि नय्यंध नृपति वलदनडय्येन् ॥ 16 ॥

ते. मायजूदंबु वन्नि दुर्मार्गवृत्ति,
बुडमि गौनि यडवुलकु बो नडुव नचट
दिरिगि वारलु समयंबु दीर्चि येगु,
देंचि तम यंश मडिगिन बंचि यिडक ॥ 17 ॥

व. उन्न येंडु ॥ 18 ॥

च. सकल नियंतयैन हरि सर्वशरण्युडु माधवुंडु से
वकनवकल्पकंबु भगवंतु डनंतु डनंतशक्ति नं
दकधरु डब्जलोचनुडु धर्मतनूभवुचे नियुक्तुडै
यकुटिल भक्ति योग महितात्मकुडै धृतराष्ट्रु पालिकिन् ॥ 19 ॥

कं. चनि यचट भीष्म गुरु त, त्तनय कृपाचार्य निखिल धात्रीपतुलुन्
विनि यनुमोदिपग नि, ट्लनियेन् धृतराष्ट्रु तोड मवनीनाथा ! ॥20॥

मारण-कर्म किये। १४ [ते.] सूरिजन (पण्डितों) द्वारा गेय (स्तुत्य) राजसूय यज्ञ में विलसित अवभृथ-स्नान से पवित्र बनी द्रौपदी की सुन्दर वेणी को पकड़कर कुत्सित भाव से, सभा के मध्य में खींच लाये। १५ [कं.] इस प्रकार उन्होंने अपकार किये बिना जन्मावधि (जन्म से लेकर) एक दिन भी न बिताया। ऐसे अपने पुत्रों को उस अन्धे राजा ने कभी नहीं रोका (मना नहीं किया)। १६ [ते.] माया-द्यूत रचकर, दुष्ट-वृत्ति से, धरती (राज्य) का हरण कर, जंगलों में भेजने पर, वे लोग वहाँ समय (प्रतिज्ञा) की पूर्ति कर, वापस लौटकर अपना अंश (हिस्सा) माँगने पर, बाँटकर न देकर, १७ [व.] रहते समय, १८ [चं.] समस्त के नियंता, हरि, सबके लिए शरण्य, माधव, सेवकों (भक्तों) के लिए नवकल्पक, भगवान, अनन्त, अनन्त शक्तिशाली, नन्दका (खड्ग) को धारण करनेवाला, कमल-लोचनवाला (कृष्ण) धर्मराज से नियुक्त हो, अकुटिल (निर्मल) भक्ति-योग से महित आत्मावाला हो धृतराष्ट्र के यहाँ, १९ [कं.] हे अवनीनाथ! जाकर, वहाँ भीष्म, गुरु (द्रोण), उनका पुत्र (अश्वत्थामा), कृपाचार्य [और] सकल धात्रीपतियों (राजाओं) के सुनकर अनुमोदन (स्वीकार) करने पर, धृतराष्ट्र से [कृष्ण ने] यों कहा। २० [कं.] हे अवनीवर!

कं. कौरवपांडवु लिरुवुरु, नारय नी कौक्क समम यवनीवर ! नी
वेरीति नेन वांडुकु, माडल पा लौसगि तेनि मनु नुभयंबुन् ॥ 21 ॥

कं. अनि धर्मबोधमुन यलिकिन,
माटलु चॆवुल निडमि गृष्णुडु विदुरन्
घन नीतिमंतु बिलुवं,
बनिचिन जनुदेंचॆ गुरुसभास्थलमुनकुन् ॥ 22 ॥

व. चनुदेंचि यचटि जनंबुल चेत नुपस्थितंबैन कार्यंबु वॆलुप बडिन वाडै धृतराष्ट्रु नुद्देशिंचि यिट्लनियॆ ॥ 23 ॥

म. धरणीनायक ! पांडु भूविभुडु नी तम्मुंडु, दत्पुत्रुलन्
बरिरक्षिंचिन धर्ममु दगवुनु वाटिल्लु, वंशंबु सु
स्थिर सौख्योन्नति जॆंदु, शत्रु जयमुन् जेकूरु, गोपाल शे
खरु चित्तंबुनु वच्चु, नट्लगुट यो गौरव्यवंशाग्रणी ! ॥ 24 ॥

आ. वारि तंड्रि पालु वारिकि नौसगि नी,
पालु सुतुल कॆल्ल बंचियिच्चि
चलमु विडिचि धर्म मलवड नी बुद्धि,
जौनुपवय्य कुलमु मनुपवय्य ! ॥ 25 ॥

चं. विनुमु नृपाल ! ना पलुकु वेयुनु नेल समीर-सूति नी
तनयुल पेरु विन्न बदताडित दुष्ट भुजंगमंबु चा

विचार करने पर, कौरव तथा पाण्डव दोनों तुम्हारे लिए एक समान हैं। किसी भी प्रकार से तुम पाण्डुपुत्रों को (राज्य) भाग दे दोगे तो दोनों जीयेंगे। २१ [कं.] इस प्रकार धर्म का प्रबोध करते हुए, कहे गये वचनों को अनसुना करने पर कृष्ण के घन-नीतिमान विदुर को बुलवाने भेजने पर, [विदुर] श्रेष्ठ सभास्थल को आ गया। २२ [व.] आकर, वहाँ के जनों से उपस्थित कार्य को जानकर धृतराष्ट्र के प्रति इस प्रकार कहा। २३ [म.] हे धरणीनायक (राजा) ! पाण्डु राजा तुम्हारा अनुज है (और) उसके पुत्रों की रक्षा करने पर धर्म और न्याय का निर्वाह होगा। हे कौरववंश के अग्रणी ! [ऐसा करने पर] कुरुवंश सुस्थिर सुखों के विकास को पायेगा, शत्रुओं पर विजय प्राप्त होगी, गोपाल-शेखर (कृष्ण) के मन की अनुकूलता (कृपा) प्राप्त होगी। ऐसा होना समुचित है। २४ [आ.] उनके पिता का (राज्य) भाग उनको देकर (और) अपना भाग अपने पुत्रों में बाँट देकर, हठ छोड़कर, धर्म का निर्वाह हो, अपनी बुद्धि से (भलीभाँति) विचार करो, कुल को कुशल बनाये रखो। २५ [चं.] नृपाल (राजा) ! सुनो ! मेरी हजार बातें क्यों ? तुम्हारे पुत्रों के नाम सुनते ही समीरसुत (भीमसेन) चरणों से मार खाए

इपुन गनलोंकु नितयुनु मुन्नुनु जप्पिति गावें वानि चे
तन भवदीयपुत्रुलकु दप्पदु मृत्यु वदेंत्रि भंगुलन् ॥ 26 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 27 ॥

कं. नी पुत्रुल शौर्यंबुनु, चापाचार्यापगात्मजात कृपभुजा
टोपंबुनु गर्णुवुरा, लापंबुनु निजमुगा दलंतें मनमुनन् ॥ 28 ॥

व. अट्लेनि विनुमु ॥ 29 ॥

उ. ए परमेशुचे जगमु ली सचराचर कोटितो समु
द्दीपितमय्ये ने विभुनि दिव्यकळांशजु लब्जगर्भ गौ-
रीपति मुख्य देवमुनि वृंदमु लॅव्व डनंतु डच्युतुं
डा पुरुषोत्तमुंडु गरुणांबुधि गृष्णुडु वो नरेश्वरा ! ॥ 30 ॥

उ. अट्टि जगन्निवासुडु मुरासुर-भेदि परापरुंडु चे
पट्टि सखुंडु वियमुनु बांधवुडुन् गुरुडुन् विभुंडु नै
यिट्टलमैन प्रेमसुन नॅप्पुडु दोड्पडुचुंडु वारलन्
जुट्टन ग्रेल नॅव्वरिकि जूपग वच्चुनु वार्थिवोत्तमा ! ॥ 31 ॥

उ. कावुन बांडुनंदनुल गारिय पॅट्टक राज्यभागमुन्
बाविरि निच्चि राज्यमुनु वंशमु बुत्रुल बंधुवर्गमुन्
गावुमु काक लोभियगु कष्ट सुयोधनु माट विटिवे
भूवर ! नी युपेक्ष नगु बो कुलनाशमु बंधुनाशमुन् ॥ 32 ॥

दुष्ट भुजंग की तरह क्रोधी होता है। इससे पहले भी मैंने इस सम्बन्ध में कहा था, उसके हाथ किसी भी प्रकार तुम्हारे पुत्रों के लिए मृत्यु अनिवार्य है। २६ [व.] इसके अतिरिक्त, २७ [कं.] अपने पुत्रों का शौर्य, चापाचार्य (द्रोण), अपगात्मजात (नदीपुत्र-भीष्म), कृपाचार्य का भुजबलगर्व, कर्ण के दुरालाप (प्रलाप) मन में सत्य मानते हो ? २८ [व.] ऐसा है, तो सुनो ! २९ [उ.] नरेश्वर ! जिस परमेश्वर से जगत इस (समस्त) सचराचर कोटि से समुद्दीप्त हुए, जिस विभु की दिव्य कला के अंश के रूप में ब्रह्मा, गौरीपति (शिव) प्रमुख (आदि) देव-मुनिगण (सुशोभित) हैं, और जो अनन्त, अच्युत, पुरुषोत्तम, करुणा-सागर है, वह [साक्षात्] कृष्ण ही है। ३० [उ.] राजा ! ऐसा जगन्निवास, मुर नामक असुर का संहार करनेवाला, परापर (दिव्यप्रकृति, साधारण प्रकृति से युक्त) कृष्ण उनके साथ हो सखा, समधी, बन्धु, गुरु, विभु हो, अत्यधिक प्रेम से सदा उनकी सहायता करते रहता है, हे पार्थिवोत्तम ! ऐसा (पाण्डवों के प्रति) (कोई) तर्जनी (उँगली) तक दिखा कैसे सकता है। ३१ [उ.] इसलिए पाण्डुपुत्रों को न सताकर, राज्य-भाग फिर से देकर, राज्य, वंश, पुत्र, बन्धुवर्ग की रक्षा करो ! ऐसा न कर, लोभी तथा नीच सुयोधन की

ते.　ऒकनिकै यिट्लु कुल मॆल्ल नुक्कणंप,
　　नॆत्तुकॊन जूचॆ दिदि नीतिये नृपाल
　　विनुमु ना माट नी सुयोधनुनि विडिचि,
　　कुलमु राज्यंबु देजंबु निलुपवय्य ॥ 33 ॥

कं.　अनि यिट्लु दरिमि चॆप्पिन, विनि दुर्योधनुडु रोषविवशुंडयि ता
　　निनतनय शकुनि दुश्शा, सनुल निरीक्षिचि तामसंबुन बलिकॆन् ॥34॥

कं.　दासी पुत्त्रुनि मीरलु, दासीनुं जेय क्रिटकु दगुनॆ पिलुवगा
　　नासीनुंडै प्रेलॆडु, गासिलि चॆडिपोव वॆडलगा नडुव डिकन् ! ॥ 35 ॥

व. अनि यिट्लु दुर्योधनुंडाडिन दुरालापंबुलु दनकु मनस्तापंबु सेयं गार्यंबु विचारिंचि धैर्यंबवलंबिंचि यॊंडु पलुकनॊल्लक शरशरासनंबुलु विडिचि क्रोधंबु नडचि वनंबुनकुं जनि यंदु ॥ 36 ॥

सी.　विष्णु स्वयंव्यक्त विमल भूमुलनु पवित्रंबुलगु हरिक्षेत्रमुलनु
　　नॆलकॊनि देवतानिर्मित हरि दिव्य भूमुल गंगादि पुण्यनदुल
　　सिद्ध पुराण प्रसिद्ध पुण्याश्रम स्थलमुल नुपवन स्थलमु लंदु
　　गंधमादन मुख क्षमाभृत्तटंबुल मंजुल गिरि कुंज पुंजमुलनु

ते.　विकचकैरव पद्महल्लक मरंद, पानपरवश मधुकर गानबुद्ध
　　राजहंस विलोल विराजमान, मगुचु जॆलुवॊंदु पंकेरुहाकरमुल ॥ 37 ॥

बातें सुनोगे तो हे भूवर ! तुम्हारी उपेक्षा से कुलनाश (तथा) बन्धुनाश निश्चित रूप से होगा [जान लो]। ३२ [ते.] नृपाल (राजा) ! एक व्यक्ति के (स्वार्थ के) लिए सारे कुल का नाश करने को सोचते हो, यह कहाँ की नीति है ? मेरी बात सुनो ! सुयोधन को छोड़ दो (और) कुल, राज्य तथा तेज स्थिर बनाए रखो। ३३ [कं.] इस प्रकार बार-बार कहने पर, सुनकर, दुर्योधन ने क्रोध के वश मे हो, इनतनय (सूर्यसुत, कर्ण), शकुनि, दुश्शासन की ओर देखकर तामस [भाव] के साथ कहा। ३४ [कं.] दासीपुत्र की उपेक्षा किए बिना यहाँ बुलाना ठीक है क्या ? [सभा में] आसीन होकर, कार्य बिगड़ जाए ऐसा प्रलाप करनेवाले को बाहर भेज दीजिए। ३५ [व.] इस प्रकार के दुर्योधन के दुर्भाषणों से मन में दुःखी हो, (आगे के) कार्य का विचार कर, धैर्य बाँधकर, और कुछ बोलना न चाहकर, शर और शरासन (धनुष) छोड़कर, क्रोध को दबाकर, वन को जाकर वहाँ, ३६ [सी.] विष्णु जहाँ-जहाँ स्वयं प्रकट हुए उन भूमियों में, पवित्र हरिक्षेत्रों में, स्थिरता से देवताओं से निर्मित हुए हरि की दिव्य भूमियों में, गगादि पुण्य नदियों में, सिद्ध-पुराण-प्रसिद्ध पुण्याश्रम स्थलों में, उपवन-प्रान्तों में, गन्धमादन आदि क्षमाभृत (पर्वतों) की तराइयों में, मंजुल (सुन्दर) गिरि-कुंज-पुंजों में, [ते.] विकसित कैरव

कं. नरवर ऋष्याश्रमयन, सरिदुपवन नद पुळिंद जनपद गिरि ग-
ह्वर गोष्ठ यज्ञशाला, पुरदेवायतन पुण्यभूमुल यंदुन् ॥ 38 ॥

कं. कूरलु गायलु नी ळ्ला, हारमुगा गोनुचु नियम मलवडग नसं
स्कार शरीरुंडगुचु नु, दारत नवधूत वेषधरुंडै वरुसन् ॥ 39 ॥

कं. हर्षंबु गवुरुग भारत, वर्षमुनं गलुगु पुण्य वर तीर्थमुलु
त्कर्षं जूचुचु विगता, मर्षुंडै संचरिंचे मनुजवरेण्या ! ॥ 40 ॥

व. इट्लु संचरिंचुचुं बभासतीर्थमुनकु वच्चु नपुडु ॥ 41 ॥

च. अरुगुचु दैत्यभेदन दया परिलब्ध समस्त मेदिनी
भरण धुरंधरुं डगुचु वांडु सुताग्रजु डोप्पुचुंड न
त्तरि विदुरुंडु तत्सरि दुदंचित साल रसाल माधवी
कुरुवक मालती वकुळ कुंज लसत्तट मंदु नुन्नेडन् ॥ 42 ॥

च. नरवर वेणु जानलविनष्ट महाटवि माड्कि वांडु भू
वर धृतराष्ट्र सूनु लनिवार्य निरूढ विरोध मत्ति यों

(कुमुदिनियों), पद्म (कमलों), हल्लक (लाल कमलों) के मकरन्द के पान से परवश बन गान में मत्त होनेवाले भ्रमरों से, राजहंसों के विहार से विराजित हो सुन्दर रूप से सुविलसित होनेवाले सरोवरों में, ३७ [कं.] और भी ऋष्याश्रमों मे, नदियों, उपवनों, नदी, पुलिन्द (नामक वनवासी) के जनपदों (गाँवों) में, गिरियों की गुफाओं, गोशाला, यज्ञशालाओं, पुरों, देवालयों से भरे पुण्य भूमियों में, ३८ [कं.] साग-सब्जी (तरकारी), पानी को आहार के रूप में ग्रहण करते हुए, नियमित रूप से, असंस्कृत शरीरवाला हो, उदात्त रूप से, क्रमशः अवधूत वेषधारी हो, ३९ [कं.] हे मनुजवरेण्य (राजा) ! हर्षोल्लसित होते हुए, भारतवर्ष में स्थित श्रेष्ठ पुण्य तीर्थों का आनन्द के साथ दर्शन करते हुए, अमर्ष (रोष-) रहित हो संचरण किया। ४० [व.] इस प्रकार संचार करते हुए, प्रभास तीर्थ में आते समय, ४१ [च.] राक्षसों को दण्डित करनेवाले (कृष्ण) की दया से परिलब्ध (प्राप्त) समस्त मेदिनी (धरणी-मण्डल)-भरण (पालन) करने में धुरंधर (निपुण) होते हुए, पांडुसुताग्रज (धर्मराज) सुविलसित रहने पर, [उस काल मे] विदुर के सुन्दर रसाल, साल, माधवी, कुरुवक, मालती, वकुल के कुंजों से भरे हुए नदी तटों पर स्थित रहते समय। ४२ [चं.] राजा ! वेणुजाल (बाँसों) में उत्पन्न होनेवाली अग्नि से जलकर विनष्ट होनेवाले महावन की भाँति, पाण्डु राजा तथा धृतराष्ट्र के सूनु (पुत्र) अनिवार्य रूप से दृढ़ विरोधभाव से एक-दूसरे को जीतने की चाह के कारण कदन-उर्वी (युद्धभूमि) में समस्त कुरु-क्षितिपालों (-राजा) के मृत होने का [समाचार] सुनकर, अत्यधिक

डॊरल जयिप गोरि कदनोर्वि गुरुक्षिति पाल मुख्यु लं
दरु मृतुलौटयुन् विनि घनंबुग शोक निमग्न चित्तुडै ॥ 43 ॥

उ. आ यॆड गालु दन्नक रयंबुन नेगि सरस्वतीनदी
तोयमुलंदु ग्रुंकि मुनि तुल्युडु वे चनियॆं दनूनपा
त्तोयरु हाप्त भार्गव पृथुत्रित सोम सुदास गोग्नि भू
वायु यमभिधानयुत वाहिनुलं दनुरक्ति ग्रुंकुचुन् ॥ 44 ॥

उ. वॆंडियु बुण्यभूमुल बवित्र सारत्तुल जूचुचुन् रमा
मंडनुडुंडु दिव्यरुचिमन्मणि चारुकवाट गेहळी
मंडित सौध गोपुर विमानमु लुन्नत भक्ति जूचुचुन्
निंडिन वेड्क गृष्ण पद नीरज चिंतनुडै क्रमंबुनन् ॥ 45 ॥

यिवुरुं डुद्धवुं गनि कृष्णादुल वृत्तांतं बडुगुट

च. चनि चनि तौंटि मत्स्य कुरु जांगल भूमु लतिक्रमिंचि च
य्यन यमुनानदिं गदिसि यच्चट भागवतुन् सरोजलो
चन दृढभक्तु सद्गुण विशारदु शांतुनि देवमंत्रि शि
ष्युनि महित प्रसिद्धु बरिशोषित दोषु प्रबुद्धु नुद्धवुन् ॥ 46 ॥

शोक निमग्न चित्त वाला हो, ४३ [उ.] उस स्थान पर न रुककर, शीघ्र जाकर, सरस्वती नदी के तोयों (जल) में अवगाहन कर, मुनितुल्य [विदुर] शीघ्र चलता गया, तनूनपात (अग्नि), तोयरुहाप्त (सूर्य), भार्गव (परशुराम), पृथु, त्रित, सोम, सुदास, शक्तिभृत (कुमारस्वामी), वायु, यम अभिधान (नाम) से युक्त वाहिनियों (तीर्थों) में अनुरक्ति से डुबकियाँ लगाते हुए [चलता गया] । ४४ [उ.] फिर से पुण्य भूमियों को, पवित्र नदियों को देखते हुए, रमामण्डन (विष्णु, कृष्ण) के निवास-स्थान दिव्य तथा सुन्दर मणियों से सुसज्जित कपाट (द्वार) तथा गेहली (देहली) से मण्डित सौध, गोपुरों से युक्त उन्नत विमानों को भक्ति के साथ देखते हुए, आनन्द के साथ कृष्ण के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए, क्रम से (चलता रहा) । ४५

विदुर का उद्धव को देखकर कृष्णादि का वृत्तान्त पूछना

[चं.] चल-चलकर, पहले मत्स्य, कुरु, जांगल भूमियों को पार कर, शीघ्र यमुना नदी के निकट जाकर, वहाँ पर भागवत (भक्त), सरोज लोचनवाले के प्रति दृढ़ भक्ति वाले, सद्गुण-विशारद, शान्त, देवमंत्री (बृहस्पति) के शिष्य, महितों में प्रसिद्ध, जिसने दोषों को सुखा दिया (समाप्त किया) और प्रबुद्ध, महात्मा उद्धव को, ४६ [कं.] देखकर,

कं. कनि यनुराग विकासमु, दन मनमुन दॉंगिलिप दग गाडालि-
गन मार्यरिचि नेय्यं, बुन गुशलप्रश्न सेसि मुदमुन बलिकॅन् ॥ 47 ॥

कं. हरिभक्तुलु पुण्यात्मुलु, दुरित विदूरुलु विरोधि दुर्दम बलुलुन्
गुरुकुल तिलकुलु गुंती, वरसूनुलु गुशलुले यवारित भक्तिन् ॥ 48 ॥

च. हरि दन नाभि पंकरुहमंदु जनिंचिन यट्टि भारती
श्वरु डतिभक्ति वेड यदुवंशमुनन् बलकृष्णमूर्तुलै
परग जनिंचें भूभरमु वापिन शूरुलु रेवतींदिरा
वरुलट शूरसेनुनि निवासमुनन् सुखमुन्न वारले ? ॥ 49 ॥

चं. कुरुकुलु लादरिंपग सखुंडुनु नाप्तुडु नै तनर्चि सो
दर तरुणीजनंबुलनु दत्पतुलं गडु गारवंबुनन्
गरुण वलिर्प नात्मजुलकं2 ब्रियोन्नति ब्रोचुवाडु सु
स्थिरमति नुन्नवाडॆ वसुदेवुडु वृष्णिकुल प्रदीपका ! ॥ 50 ॥

शा. कंदर्पांशमुनं दनजु बडयं गामिंचि भूदेवता
बृंदंबुन् भजियिंचि तत्करुण दीपिंपन् प्रभावंबु पें
पोंदन् रुक्मिणि गन्न नंदनुडु प्रद्युम्नुंडु भास्वच्चमू
संदोहंबुलु दन्नु गोल्व महितोत्साहंबुनन् मिंचुने ॥ 51 ॥

अनुराग के विकास का अपने मन को लूट लेने पर, समुचित रीति से गाढ़ आलिंगन कर, स्नेह के साथ कुशल प्रश्न कर, आनन्द के साथ (विदुर ने) कहा। ४७ [कं.] हरि के भक्त, पुण्यात्मा, दुरितों (पापों) को दूर भगानेवाले, विरोधियों के लिए दुर्दम बल वाले कुरुकुल में तिलक (श्रेष्ठ); कुन्ती के वर-सून (-पुत्र) अत्यन्त भक्ति के साथ कुशल से तो हैं न ? ४८ [चं.] हरि के अपने नाभिकमल से पैदा हुए भारतीश्वर (ब्रह्मा) के अत्यन्त भक्ति के साथ प्रार्थना करने पर, यदुवंश में बलराम (तथा) कृष्ण के रूप में जन्म लेकर, प्रवर्द्धित हो, भूभार का निवारण करनेवाले भव्य (महात्मा) रेवती तथा इन्दिरा के पति वहाँ शूरसेन के घर पर सुखी हैं न ? ४९ [चं.] हे वृष्णि-कुल-प्रदीपक ! कुरुकुल वालों के आदर करने पर, सखा, आप्त हो, सहोदरी-मणियों को और उनके पतियों को प्यार के साथ करुणा को प्रकट करते हुए, आत्मजों (पुत्रों) से बढ़कर अत्यधिक प्रीति से रक्षा करनेवाला, वसुदेव सुस्थिर मति से है न ? ५० [शा.] कंदर्प (मन्मथ) के अंश से पुत्र पैदा होने की कामना कर, ब्राह्मण गणों की सेवा कर, उनकी करुणा के प्रदीप्त होने पर, प्रभाव को विकसित करते हुए, रुक्मिणी ने जिस पुत्र को जन्म दिया, वह प्रद्युम्न सेनागण से सुन्दर रीति से सेवाएँ लेते हुए महान् उत्साह के साथ बढ़ रहा है न ? ५१

कं. सरसिजलोचन करुणा, परिलब्ध समस्त धरणिपालन महिमं
बरमप्रीति सुखिचुनॆ, चिर विभवोदारु डुग्रसेनुडु जगतिन् ॥ 52 ॥

चं. ललित पतिव्रतामणि विलासवती - तिलकंबु पार्वती
ललन गुमारु गन्नट्टु सुलक्षण जांबवती ललाम नि
र्मल गति गन्न पट्टि सुकुमार तनुंडु विरोधिभंजनो
त्कलिक सुखिचुने गुणकदंबुडु सांबुडु वृष्णिपुंगवा ! ॥ 53 ॥

क. हरिपद सेवकु डरि भी-
करु डर्जुनु वलन मिगुल गार्मुक विद्यल्
दिरमुग गऱचिन सात्यकि,
वरसुख विभवमुल नुन्न वाडॆ धरित्रिन् ॥ 54 ॥

म. जलजातांकुश चक्र चाप कुलिश च्छत्रादि रेखांकितो
ज्ज्वल गोविंद पदाब्ज लक्षित विराजन्मार्ग धूळिच्छटा
कलितांगुंडु विधूत कल्मषुडु निष्कामैक धन्युंडु स-
त्कुल जातुं डन नॊप्पु नट्टि घनु डक्रूरुंडु भद्रात्मुडॆ ॥ 55 ॥

कं. श्रुतुलुनु ग्रतु जातमुलुन्,
मति दाल्चिन यट्टि वेदमात गतिन् श्री

[कं.] कमल लोचनवाले की करुणा से प्राप्त हुई समस्त धरती के पालन की महिमा से इस जगत में शाश्वत रूप से उदार वैभववाला उग्रसेन परम प्रीति के साथ सुखी है न ? ५२ [चं.] हे वृष्णि-पुंगव ! (वृष्णियों में श्रेष्ठ !) ललिता, पतिव्रतामणी, विलासवतियों में श्रेष्ठ, पार्वती-ललना के पुत्र को जन्म देने की रीति सुलक्षणवाली, कान्ता जाम्बवती ने निर्मल गति से जन्म दिया सो पुत्र सुकुमार शरीरवाला, विरोधियों के भंजन (संहार) की उत्कंठावाला, गुणों का कदंब (पुंज), साम्ब सुखी है न ? ५३ [कं.] हरि-पद-सेवक, अरि-भीकर (शत्रुओं के लिए भयंकर) अर्जुन से धनुर्विद्या को स्थिरता से सीखे हुए सात्यकी, इस धरती पर श्रेष्ठ सुख [तथा] वैभवों के साथ विलसित है न ? ५४ [म.] जलजात (कमल), अंकुश, चक्र, चाप (धनुप), कुलिश, छत्र आदि से रेखांकित होनेवाले गोविन्द के चरण-कमलों से मुद्रित होनेवाले राजपथ की धूलि की छटाओं से अपने शरीर को रँगकर, दोषों से मुक्त, निष्कामता को एकमात्र धर्म माननेवाला और सत्कुल में पैदा होनेवाला वह घनात्मा (महान्) अक्रूर कुशल से ही तो है ? ५५ [कं.] श्रुतियों और क्रतुजात (यज्ञ-समूहों) को सम्मति से धारण करनेवाली वेदमाता की रीति श्रीपति को अपने गर्भ में धारण कर रक्षा करनेवाली पतिव्रता देवकी सुखी तो है

पति दन गर्भंबुन र-
क्षिंचु जेसिन गरित देवकीसति सुखमे ॥ 56 ॥

व. मरियुन्, महात्मा ! महितोपासकुलगु वारल कोर्कुलु निंडिपं जालिन भगवंतुंडुनु, शब्द शास्त्रंबुनकुं गारणं बनि तन्नु नखिल देवताजनंबु लग्गिपं गल मेटि यगुटं जेसि मनोमयुंडुनु सकल जीव चतुर्विधांतःकरणंबुलैन ये चित्तहंकारबुद्धि मनंबुलकु ग्रमंबुन वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्धु लधिदेवतंबु लगुडु रट्टि चतुर्विध तत्त्वंबुललोन दुर्यंबयिन तत्त्वंबुनु, नैन यनिरुद्ध कुमारुंडु संतोषचित्तुंडगुने यनि ॥ 57 ॥

म. इतराराधन बुद्धि मानि कमलाधीशुं बयोजास - ना-
र्चितु गृष्णुन् निजनाथुगा सततमुन् सेविंचु पुण्युल् जग-
न्नुतु लध्यात्मविदुल् महाभुजुलु मान्युल् धर्म मार्गुल् समु-
न्नति सत्यात्मज चारुधेष्ण गदु लानंदात्मुले युद्धवा ! ॥ 58 ॥

ते. क्रोधमात्सर्यधनुडु सुयोधनुंडु,
वीलुचु नेव्वनि सभ जूचि कलुष मौदवि
मनमुलोन नसूया मिमग्नुडय्ये,
नट्टि धर्मजु डुन्नाडे यनघचरित ! ॥ 59 ॥

ते. घन गदाभ्यास चित्रसंगतुल मेरसि,
कुरुकुमारुल भूरि संगरमुलोन

न ? ५६ [व.] और फिर महात्मा ! अत्यधिक रूप से उपासना करनेवालों की इच्छाओं की पूर्ति करने में समर्थ भगवान्, (तथा) शब्द-शास्त्र के लिए आधारभूत हो —ऐसा अखिल देवतागण से प्रशंसित श्रेष्ठ होने के कारण मनोमय वाला, सकल जीवों में चार अन्तःकरणों के रूप में स्थित होनेवाले चित्त, अहंकार, बुद्धि, मन का क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, रूपों में अधिदेव होनेवाले, ऐसे चार प्रकार के तत्त्वों में तुरीय तत्त्व बने हुए अनिरुद्धकुमार संतुष्टचित्त है न ? ५७ [म.] हे उद्धव ! इतर (अन्य देवों) की आराधना को चित्त से हटाकर, कमलाधीश को, पयोजासन (ब्रह्मा) से अर्चित कृष्ण को अपना नाथ (स्वामी) मानकर सतत (सदा) सेवा करनेवाले, पुण्यात्मा, जगत [के लोगों से] नुत (संस्तुत) होनेवाले, अध्यात्म [तत्त्व] ज्ञानी, महाभुज शक्तिशाली, मान्य, धर्ममार्गी, सत्या के पुत्र, चारुधेष्ण (और) गद समुन्नति से आनन्द के साथ है न ? ५८ [ते.] अनघ चरितवाले ! क्रोध (तथा) मात्सर्य का धनी सुयोधन जिसकी विलसित सभा को देखकर मन में पाप के उत्पन्न होने पर मन में ईर्ष्या से भर गया था, वह धर्मराजा सुखी

हतुल गार्विचि वॅलसिनयट्टि जॅट्टि,
वायुतनयुंडु गुशलियै वइलुनय्य ! ॥ 60 ॥

चं. हरि करुणा तरंगित कटाक्ष निरीक्षण लब्ध शौर्य वि-
स्फुरण दर्नाचि तन्नु ननि बोय गति गिरिशुं डॅदिर्चिनन्
बरवस मौप्पगा गॅलिचि पाशुपतास्त्रमु गौन्न शत्रु भी-
करुडु धनंजयुंडु सुभगस्थिति मोदमु नौंदुचुंडुने ॥ 61 ॥

म. तॅरगौप्पन् जननी वियोगमुन गुंती स्तन्यपानंबु सो-
दर संरक्षयु गलिग देवविभु वक्त्रस्थामृतंबु खगे-
श्वरु डर्थि गयिकौन्न माड्कि गुरुवंश श्रेणि निर्जिचि त
द्धरणी राज्यमु गौन्न माद्रिकौडुकुल् धन्यात्मुले ? युद्धवा ! ॥ 62 ॥

ते. पांडु भूमीश्वरुंडु संप्राप्तमरणु,
डैन शिशुवुल् ब्रोचुटकै निजेशु
गूडि चनकुन्न यट्टि या कुंतिभोज,
तनय जीविचुने नेडु ? मनुचरित्र ! ॥ 63 ॥

व. अनि वॅडियु ॥ 64 ॥

तो है ? ५९ [ते.] महान् गदा के अभ्यास की चित्र-विचित्र रीतियों से प्रकाशित होकर, (ख्यात हो) कुरु-कुमारों (दुर्योधन, दुश्शासन) का भूरि (महा) संग्राम में वध कर, सुप्रसिद्ध हुआ सो योद्धा वायुपुत्र (भीमसेन) कुशल से तो है ? ६० [चं.] हरि की, करुणा से तरंगित होनेवाली दृष्टियों के निरीक्षण से प्राप्त पराक्रम के प्रकाश से विलसित होकर, किरात के रूप में गिरीश के सामना करने पर, परवशता के औचित्य से [उसे] जीतकर, पाशुपतास्त्र को प्राप्त करनेवाला, शत्रुओं के लिए भीकर धनंजय (अर्जुन) सुभगस्थिति से आनन्द को प्राप्त कर रहा है न ? ६१ [म.] हे उद्धव ! माता के वियोग के कारण समुचित विधि से कुन्ती का स्तन्यपान कर, सहोदरों के द्वारा रक्षित हो, देवविभु (इन्द्र) के वक्त्र (मुख) में स्थित अमृत को खगेश्वर (गरुड़) ने जिस प्रकार चाहकर प्राप्त किया था, उसी प्रकार कुरुवंश-श्रेणी (समूह) को निर्जित कर, उस धरणी-राज्य को प्राप्त करनेवाले माद्रि के पुत्र, (नकुल, सहदेव) धन्यात्मा (कुशल) हैं न ? ६२ [ते.] मान्य चरितवाले ! पाण्डु राजा की मृत्यु के बाद, पुत्रों का पालन-पोषण करने के लिए, पति के साथ न जाने (सहगमन न करने) वाली वह कुन्तिभोज की तनया (पुत्री, कुन्ती) आज जीवित है न ? ६३ [व.] ऐसा कहकर (पूछकर) और, ६४ [म.] हे उद्धव ! अनुसंभूत (अनुज) पाण्डु भूविभु (राजा) की मृत्यु के

म. अनुसंभूतुडु पांडु भूविभुडु निर्याणंबुनं बोंद ना
तनि पुत्रुल् दनु जेरवच्चिननु मध्यस्थंबुवो दट्टि यें
ग्गोनरिंचेन् धृतराष्ट्र भूमिविभुडट्लूहिपंगा नेंग्गु से
सिन वाडे यगु गाक मेलु गलदे चिंतिपगा नुद्धवा ॥ 65 ॥

कं. अनुजु डनियनक तग निज, तनयुल ननु वेंडल नडुव दा नूरक युं-
डिन धृतराष्ट्रुडु नरकं, बुन बडु नादेन दुःखमुन ननघात्मा ! ॥ 66 ॥

व. अदियुनुं गाक परमशांतुंडवैन नी मनंबुन दुःखंबु गर्तव्यंबु गादंटेनि ॥ 67 ॥

कं. नरलोक विडंबनमुन, हरि परमपरुंडु मानवाकृतितो नि
द्धर बुट्टि यात्ममाया, स्फुरणन् मोहिप जेयु भूजनकोटिन् ॥ 68 ॥

उ. कावुन नम्महात्मुनि विकार विदूरुनि सर्वमोह मा
याविल मानसुंड नगु नप्पुडु संस्मृति दुःखि नौदु न
द्देवुनि सत्कृपा महिम देलिन वेळ सुखितु नेन का
दा विधि शंकर प्रभृतुल द्विभु माय दरिप नेर्तुरे ॥ 69 ॥

व. अयिन नम्महात्मुनि करुणा तरंगितापांग परिलब्ध विज्ञान दीपांकुर निरस्त समस्त दोषांधकारुंड नगुटचे मदीयचित्तंबु हरि पदायत्तंबै तन्मार्गंबु सततंबु निरीक्षिपुचुनुंडु । मरियुनु ॥ 70 ॥

पश्चात् उसके पुत्रों के अपने आश्रय में आने पर, तटस्थ भाव धारण कर [उनके प्रति] अहित किया, ऐसा विचार करने पर राजा धृतराष्ट्र अहित करनेवाला ही सिद्ध होगा। उसके बारे में विचार करने पर कुछ भला होगा क्या ? ६५ [कं.] अनघात्मा ! अनुज है, ऐसा विचार न करते हुए, पुत्रों के मुझे बाहर निकाल देते देख, स्वयं चुप रहा था, ऐसा धृतराष्ट्र मेरे दुःख के कारण नरक को प्राप्त होगा। ६६ [व.] इसके अतिरिक्त, परम शान्त स्वभाव वाले तुम्हारे [अपने] मन को दुःखी करना कर्तव्य नही है, ऐसा कहोगे तो, ६७ [कं.] नरलोक को धोखे में रखते हुए, परात्पर हरि ने मानव की आकृति में, इस धरती पर जन्म लेकर, आत्म-माया की कुशलता से, भूजन (प्राणि) कोटि को मोहित किया। ६८ [उ.] इसलिए उस महात्मा के विकार विदूर के, सकल मोह-माया से कलुषित मानस वाला होता हूँ, तब संस्मृति के कारण दुःखी होता हूँ (और) उस भगवान् की सत्कृपा की महिमा में ऊभ-चूभ होता हूँ, ऐसी शुभ वेलाओं में सुख पाता हूँ। मैं ही नहीं, क्या विधि (ब्रह्मा), शंकर आदि भी उस विभु की माया को पार कर सकते हैं ? [नहीं]। ६९ [व.] ऐसे उस महात्मा की करुणा की तरंगों से युक्त अपांगों (चितवनों) से परिलब्ध (प्राप्त) विज्ञान के दीप के अंकुर से दोष रूपी अन्धकार को निरस्त (नष्ट) करने से मदीय (मेरा) चित्त हरि के चरणों में स्थिर होकर उसी के मार्ग में सदा प्रतीक्षा करता रहता है, और, ७० [सी.] ऐसे

सी. अट्टि सरोजाक्षुडात्मीय पद भक्तुलडवुल निडुमलु गुडुचुचुंट
चूत्यंबु सेय गोंदरु विरोधुलु पट्टि बद्धुनि जेय सन्नद्धुलैन
वलहीनु माड्कि प्रतिकारमुनकु बोनि सुस्थिरुडै तलचेंदवेनि यच्चुतुंडु
परुल जयिंप नोपक कादु विद्याभिजन धनमत्तुलै जगति येक्कु

ते. बाधल गलंचु दुष्ट भूपतुल नॆल्ल,
सैन्य युक्तुलुगा ननि संहरिंचु
कोरकु सभलोन नप्पुडा कुरुकुमारु
लाडु दुर्भाषणमुलकु नलुगडय्यॆ ॥ 71 ॥

म. जननं बंदुट लेनि यीश्वरुडु दा जन्मिंचु टॆल्लन् विरो-
धि निरासार्थमु वीतकर्मुडगु नद्देवुंडु गर्म प्रव-
र्तनु डौ टॆल्ल जराचर प्रकट भूत श्रेणुलन् गर्म व-
र्तनुलं जेय दलंचि काक फलवे दैत्यारिकि गर्ममुल् ॥ 72 ॥

कं. हरि नरुल कॆल्ल बूज्युडु, हरिलीला मनुजुडुनु गुणातीतुडु नै
परगिन भव कर्मंबुल, वीरयं डट हरिकि गर्ममुलु लील लगुन् ॥ 73 ॥

कं. मदि दन शासन मिडि निज, पदमुलु सेविंचु लोकपालादुल पें
पोंदविप यदुकुलंबुन, नुदयिंचॆनु भुविनि बलसहोदरुडगुचुन् ॥ 74 ॥

सरोजाक्ष के अपने चरणों के भक्तों के वनों में यातनाएँ सहते देखकर, दूतकार्य करने पर, कुछ विरोधी [उसे] पकड़ बाँधने के लिए उद्यत हुए। तब वलहीन की तरह, बिना किसी प्रतीकार के किए रहने पर, यदि [उसे] असमर्थ समझते हो तो, (समझो) अच्युत ने शत्रुओं को जीत न सक ऐसा नहीं किया, किन्तु विद्या, अभिजन (बन्धुवर्ग) [तथा] धन के कारण मदमत्त हो, जगत को, [ते.] अनेक प्रकार से दुःख पहुँचानेवाले राजाओं को, [उनकी] सेनाओं के साथ, युद्ध में [एक साथ] संहार करने के निमित्त ही, तब सभा में कुरुपुत्रों (कौरवों) के दुर्भाषणों के प्रति क्रुद्ध नहीं हुआ। ७१ [म.] जन्म-रहित ईश्वर के जन्म लेना विरोधियों का निरास करने के लिए है, वीतकर्मा उस देव का कर्म का आचरण करना चराचर रूप में व्यक्त प्राणिकोटि को कर्म के अनुसार चलाने के उद्देश्य से ही है, इसके अतिरिक्त दैत्यारि (विष्णु) के लिए कर्म [बंधन] हैं क्या? [नहीं हैं]। ७२ [कं.] समस्त मानवों के लिए हरि पूजनीय है। लीला-मानुषवेषधारी, गुणातीत हो प्रख्यात बने हरि को संसार के कर्म स्पर्श नहीं कर सकते (और) हरि के लिए कर्म लीला मात्र हैं। ७३ [कं.] मन में अपने शासन (आदेश) को धारण कर, अपने चरणों की सेवा करनेवाले लोकपालकों के विकास के लिए भुवि (धरती) पर, यदुकुल में बल [राम] के सहोदर (भाई) के रूप में उदित हुआ। ७४

ते. चलन मंदक भूरि संसरण तरण,
मैन सत्कीर्ति दिक्कुल नतिशयिल्लि
मरल समसतियै युन्नवाडॆ कृष्णु,
डनुचु नुद्धवुनि विदुरुडडुगुटयुनु ।। 75 ।।

अध्यायमु—२

व. अय्युद्धवुंडु ।। 76 ।।

कं. यदुकुलनिधि यगु कृष्णुनि,
पद - जलज - वियोग - ताप - भरमुन माटल्
प्रिदुलक हृदयं बॅरियग,
बॅदवुलु दडुपुचुनु वगल बॅंपडि युंडॆन् ।। 77 ।।

कं. अनि चॆप्पि बादरायणि,
मनुजेंद्रुनि वलनु चूचि मरि यिट्लनियॆन्
विनु मीकनाडी युद्धवु,
डनयमु नैदेंड्ल बालुडै युन्न तरिन् ।। 78 ।।

व. मुन्नु कृष्णुनिं गूडि याडु बालकुललो नॊक्क बालुनि गृष्णुनिगा भाविंचि परिचर्य सेयुचुंड गुणवतीमतल्लि यगु तल्लि चनुदॆंचि याकॊटि विदि येल रावन्न यनि पिलिचिन जननी वाक्यंबुलु गैकॊनक यखंड तेजोनिधि

[ते.] निश्चल हो, भूरि-संसरण (-संसार) के तारने की क्रिया में [पटु] सत्कीर्ति के दिशाओं में अतिशय रूप से व्याप्त होने पर, फिर से कृष्ण समबुद्धि से विराजमान है क्या ? ऐसा उद्धव से विदुर के पूछने पर, ७५

अध्याय—२

[व.] वह उद्धव, ७६ [कं.] यदुकुल की निधि बने हुए कृष्ण के पद-जलज (चरण-कमलों) के वियोग के उत्पन्न ताप के भार से [मुख से] शब्दों के न निकलने पर, हृदय के परितप्त होने पर, ओंठ चाटते हुए, अत्यन्त दुःख से विवर्ण बना रहा । ७७ [कं.] ऐसा कहकर बादरायणी (शुकयोगी) ने मनुजेन्द्र (परीक्षित) की ओर देखकर, फिर इस प्रकार कहा कि सुनो, एक दिन (जब) यह उद्धव बिलकुल पाँच वर्ष का बालक था । तब, ७८ [व.] पूर्व में कृष्ण के साथ खेलनेवाले बालकों में एक बालक को कृष्ण मानकर, [उसकी] परिचर्या (सेवा) करते रहने पर गुणवती [उसकी] माँ ने आकर 'भूख लगी होगी, [भोजन करने] क्यों नही आते हो' ऐसा बुलाने पर, जननी के वचनों को अनसुना कर अखण्ड

यैन पुंडरीकाक्षु पादारविंद सेवानुरक्ति जेसि युन्न युद्धवुंडु नेडु कृष्ण वियोग-तापंबुन हरि वार्त विदुरुन कु जॅप्प जालक युंडुट येमि विचित्रं बनि वॅंडियु निट्लनियॅ। अंत नुद्धवुंडु सरोजाक्ष-पादारविंद-मकरंद सुधाजल-निधि-निमग्नमानसुंडै समुत्कंठं जिंतिचि यॉक्क मुहूर्त मात्रंबुनकु बाष्पजल-पूरितलोचनुंडै गद्गदकंठुंडगुचु ॥ 79 ॥

कं. घनमुग नॅम्मनमुन मि-
चिन कृष्ण-वियोग-जनितशिखि दरिकॉनगा
गनुगव वॅड चे नॊत्तुचु,
वॅनुपॉदिन दुरित - शिखरि - भिदुरुन् विदुरुन् ॥ 80 ॥

व. कनुंगॉनि यिट्लनियॅ ॥ 81 ॥

कं. यमुडनु घन काल भुजं, गम पुंगवु डौडिसि पट्टगा यदुवंशो
त्तमु चारित्रमु दत्कुश, लमु केमनि चॅप्पुदुनु गलंगॅडि मनमुन् ॥ 82 ॥

सी. मुनिजन मुखपद्ममुलु मुकुळिंपग खलजन लोचनोत्पलमु ललर
जार चोरुल कोर्कि सफलत नॊंदंग दानव-दर्पांध-तमस मडर
वर योगिजन - चक्रवाकंबु लडलंग गलुष जनानुरागंबु पर्व
भूरि दोषानल स्फूर्ति बाटिल्लंग नुदित धर्मक्रिय लुडिगि यणग

तेजोनिधि पुंडरीकाक्ष के चरणकमलों की सेवा की अनुरक्ति में तल्लीन बने हुए उद्धव आज कृष्ण के वियोग के ताप के कारण, हरि के समाचार को विदुर से कह न सके, चुप रहा तो यह कैसी विचित्रता है, ऐसा विचार करते हुए फिर से कहा (पूछा)। तब उद्धव ने सरोजाक्ष के पादारविन्दों के मकरन्द-सुधा जल-निधि में निमग्न मानसवाला हो, अत्यन्त उत्कंठा से चिन्ता कर, एक मुहूर्त मात्र के लिए बाष्पजल (आँसू) से भरे लोचन वाला हो, गद्गद कण्ठ वाला हो, ७९ [कं.] घनतर रीति से, मन में कृष्ण के वियोग से जनित (उत्पन्न) शिखि (अग्नि) के बल उठने पर, नेत्रद्वय को हाथ के पिछले भाग से दबाते हुए, अधिक बने हुए दुरित-शिखरी (पाप-पर्वत) के लिए भिदुर (वज्रायुध रूपी) विदुर को; ८० [व.] देखकर, इस प्रकार कहा, ८१ [क.] यमरूपी घन-काल भुजंग के झट दबोच लेने पर, यदुवंश में उत्तम चरित वाले की कुशलता का समाचार, व्याकुल बने मन से कैसे कहूँ। ८२ [सी.] मुनिजनों के मुख-पद्मों के मुकुलित होने पर [और] खलजनों के लोचन-उत्पलों के विकसित होने पर, जार [तथा] चोरों की इच्छाओं के सफल होने पर [और] दानवों के दर्प रूपी अंधतमस के बढ़ने पर, वर (श्रेष्ठ) योगीजन रूपी चकवों के विकल होने पर [और] कलुष-जनों (पापियों) के अनुराग के बढ़ने पर भूरि-दोपानल (पापाग्नि) के अत्यधिक बढ़ने पर, उदित धार्मिक क्रियाओं के दबकर समाप्त होने पर,

ते. मानुषाकार रुचिकोटि मंदपरिचि,
यनघ ये मन नेर्तु गृष्णाभिदान
लोक बांधवु डुत्तम श्लोक र्ति,
मिचु तेजंबुतो नस्तमिंचें नय्य ॥ 83 ॥

व. मरियुनु ॥ 84 ॥

कं. हलकुलिश जलजरेखा, ललित श्रीकृष्ण पादलक्षित यै नि
र्मलगति नोप्पेंडु धरणी, ललनामणि ने डभाग्य लक्षण यय्येंन् ॥ 85 ॥

कं. यादवुल वलन राज्य, श्री दोलगेंनु धर्मगति नशिचेंनु भुवि म-
र्यादलु दप्पे नधर्मो, त्पादनमुन दैत्यभेदि दप्पिन पिदपन् ॥ 86 ॥

व. मरियु ललित निकषण विराजमान मणिगण किरण सुषमा विशेष विडंबित विमल सलिलंबुलंदु प्रतिफलित संपूर्ण चंद्रमंडल रुचि निरीक्षिंचि जलचर बुद्धि जेसि तज्जल विलोलमीनंबु लनून स्नेहंबुनं दलंचु चंदंबुन गृष्णानुचरुलैन यदुवृष्णि कुमारु लम्महनीय मूर्ति दमकु नग्रेसरं डनि कानि लीलामानुष विग्रहुंडैन परमात्मुंडनि येऱुंगक हरि मायाजनितं बगु नसद्भावंबुनं जेसि भोजन शयनासनानुगमनंबुलं जेरि सहोदरादि भावंबुलं गूडि वरियिंतुरु। अद्देवुनि मायापयोनिधि निमग्नुलु गाकुंड

[ते.] मानवाकार के अत्यन्त सौंदर्य को मंद (अन्तर्हित) कर, हे अनघ ! क्या कहूँ ? कृष्ण नामधारी लोकबन्धु, उत्तमश्लोक की (पुण्य) मूर्ति वाला, [कृष्ण] (अपने) अत्यन्त तेज के साथ अस्त हुआ। ८३ [व.] और फिर, ८४ [कं.] हल, कुलिश, जलज (कमल) की रेखाओं से अलंकृत श्रीकृष्ण के ललित चरणों का स्पर्श पाते हुए निर्मल मति से विलसित होने वाली नारी धरती आज अभाग्य-लक्षण वाली हुई। ८५ [कं.] दैत्यभेदी (कृष्ण) के चले जाने के बाद अधर्म से उत्पन्न होने से यादवों की राज्यश्री हट गई। धर्म की गति नष्ट हुई। भुवि (धरती) पर मर्यादाएँ मिटीं। ८६ [व.] और ललित (सुंदर), निकषण (तराशे गए, चमकाए गए) विराजमान मणिगण की किरणों की सुषमा से विशेष रूप से विडम्बित हो (भ्रम पैदा करते हुए), विमल सलिल में प्रतिफलित (प्रतिबिंबित) सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल की रुचि (सौन्दर्य) को देखते हुए, [उसे] जलचर मानकर उस जल में विहार करनेवाले मीनों के अत्यन्त स्नेह से व्यवहार करने के समान कृष्ण के अनुचर बने यदु तथा वृष्णि [वंशों के] कुमार उस महनीय मूर्ति (कृष्ण) को अपना अग्रेसर (मार्गदर्शक) अथवा लीला के कारण मानव-रूप में स्थित परमात्मा न जानकर, हरि की माया से उत्पन्न असद्र (असत्य) भावना के कारण भोजन, शयन, आसन, अनुगमन आदि क्रियाओं एवं भ्रातृभावना से युक्त हो व्यवहार करते हैं। उस भगवान

नव्जभवादुल कैनं दीरदु। सर्वगुण गरिष्ठुलु सत्पुरुष-श्रेष्ठुलु नगु परम भागवतुलकुं दक्कं दक्कन वारलकुं जॆप्पनेल। अदियुनुं गाक यभिजन विद्या धन वल गर्व मदांधीभूत चेतस्कुलैन शिशुपालादि भूपालकु लम्महात्मुनि बरतत्त्वं बनि यॆरुंगक निंदिचु दुर्भाषलु दलंचि मनस्तापंबु नॊंदु चुंड्डुदुनु। अनि वॆंडियु॥ 87 ॥

म. अवितृप्तेक्षण धी समाहित तपोभ्यासंबुलै नट्टि भा-
गवत श्रेष्ठुल कात्ममूर्ति निखिलैक ज्योतिमै जूपि शो-
क विशोकंबुलु निर्दहिंचि कमलाकांतुंडु शांतुंडु मा-
नव रूपंबगु देहमुन् वदलि यंतर्धानुडय्यॆं जुमी॥ 88 ॥

सी. मर्त्यदिकासैक मानमै तनकुनु विस्मय जनकमै वॆलयु नट्टि
यात्मीय योग मायाशक्ति जॆपट्टि चूपुचु नत्यंत सुभगु डगुचु
भूषणंबुलकुनु भूषणंबै विवेकमुल कॆल्लनु वराकाष्ठ यगुचु
सकल कल्याण संस्थानमै सत्यमै तेजरिल्लॆडु नट्टि दिव्यमूर्ति

ते. तान तनमूर्ति निजशक्ति दग धरिंप,
यमतनूभवु राजसूयाध्वरंबु
नंदु नॆव्वनि शुभमूर्ति नखिल जनुलु,
निंडु वेड्डुक जूचि वर्णिंचि रॆलमि॥ 89 ॥

के मायासागर में निमग्न होने से अब्जभव (ब्रह्मा) आदि भी बच नहीं पाते। सर्वगुणों की गरिमा से श्रेष्ठ, सत्पुरुष श्रेष्ठ परम भागवतों के अतिरिक्त अन्य लोगों की बात कहने की आवश्यकता नही। इसके अतिरिक्त अभिजन (वंश), विद्या, धन, बल, गर्व, मद के कारण, अंधीभूत चेतना वाले बने शिशुपाल आदि भूपालक (राजा) उस महात्मा को परमतत्त्व न जानकर, निंदायुक्त दुर्भाषणों को सोचकर मन में ताप का अनुभव करता रहता हूँ। ऐसा कहकर, और, ८७ [म.] तृप्त न होने-वाली दृष्टियों से, धी (बुद्धि) समाहित (युक्त) तपस्या-कार्य में निमग्न रहनेवाले भागवत (भक्त) श्रेष्ठों को [वह अपनी] आत्ममूर्ति, निखिल जगत की ज्योति को दिखाकर, शोक और विशोक को जला देता है, [वह] कमलाकान्त, शान्त (स्वभाव वाला) मानव रूपी देह को छोड़कर अंतर्ध्यान (अदृश्य) हो गया न! ८८ [सी.] मर्त्यलोक में एकमात्र विकास पानेवाले, अपने-आप को आश्चर्यजनक हो विलसित अपनी योगमाया की शक्ति के कारण अत्यन्त सुभग होते हुए, भूषणों के लिए भूषण बन, बुद्धि की चरमसीमा हो, सकल कल्याणों का संस्थान हो, सत्य हो तेजोमान होने वाले दिव्य मूर्ति में, [ते.] अपनी मूर्ति तथा अपनी शक्ति को धारण कर यमतनूभव (धर्मराज) के राजसूय नामक अध्वर (यज्ञ) में जिसकी शुभमूर्ति के दर्शन कर, सकल जन ने आनन्द के साथ (उसका) वर्णन

कं. प्रकटमुग गमल भव सृ, ष्टिकि गारण मिम्महात्मुडे यनुचुनु नु
त्सुकुलै तन्मूर्तिनि द, प्पक चूचिर कादे तत्सभा-जनुलेल्लन् ॥ 90 ॥

व. मरियु शांतोग्ररूपधरुंडैन् सर्वेश्वरुंडु शांतरूपुंडु गावुन परकृतापराध निपीड्यमान मानसुंडय्यु ननुकंपायत्त चित्तुंडै वर्तिचु। परापरुंडुनु प्रकृति कार्यं बयिन महत्तत्त्व रूपुंडुनु, जनन विरहितुं डय्युनु दारुवुल वलन ननलंबु दोचु चंदंबुन जननंबु नोंदुचुंडु। अट्टि सरोज नाभुनि हास रास लीलानुराग विलोकन प्रतिलब्ध माननैन गोपकामिनुलु दन्मूर्ति दर्शनानुशक्त मनीषलं गलिगि वर्तिचिरि। अदियुनं गाक ॥ 91 ॥

चं. दिविजुल कोर्कि दीर्प वसुदेवुनि यिंट जनिचि कंस दा
नवुडु वधिचु नन् भयमुनं जनि नंदुनि यिंट नुंटकुन्
यवन जरा सुताद्युलकु नाजि नेदुर्पंड लेक सज्जन
स्तव मधुरा पुरिन् विडिचि दागुटकुन् मदि जित नोंदुदुन् ॥ 92 ॥

व. अदियुनं गाक ॥ 93 ॥

सी. कडगि पेक्किडुमल गुडुचुचु जित्तमुल् गलगग बंधनागारमुलनु
वनरिन देवकी वसुदेवुलनु डाय जनुदेंचि भक्तिवंदन मोनर्चि

(स्तुति) किया था। ८९ [क.] उस सभा में उपस्थित सब लोगों ने कमलभव (ब्रह्मा) की सृष्टि का कारण निश्चित रूप से यही महात्मा हैं, कहते हुए उत्सुकता के साथ उस मूर्ति के दर्शन किये थे न। ९० [व.] और शान्ति [तथा] उग्र रूपों को धारण करनेवाला सर्वेश्वर शान्त रूप वाला है। इसलिए अन्य लोगों से किए गए अपराधों के कारण पीड़ित मन वाला होकर भी, अनुकंपा से आयत्त (पूर्ण) चित्त वाला होकर व्यवहार करता है। वह परात्पर, प्रकृति कार्य-स्वरूप महत्तत्त्व रूपी है। जन्म-रहित होकर भी दारु (लकड़ी) के कारण अग्नि के उत्पन्न होने की रीति जन्म लेते रहता है। ऐसे सरोज नाभिवाले की हास [लीला] तथा रासलीला के अनुराग से विलोकन के प्रतिफल को प्राप्त कर गोप-कामिनियों ने उस मूर्ति के दर्शन करने की आसक्ति से युक्त मनीषा (बुद्धि) से व्यवहार (संचरण) किया। इसके अतिरिक्त, ९१ [चं.] दिविजों (देवताओं) की इच्छा की पूर्ति के लिए वसुदेव के घर में जन्म लेकर, कंस-दानव मार डालेगा इस भय से जाकर नन्द के घर रहा, यवन, जरासन्ध आदि का आजि (युद्ध) में सामना न कर सक, सज्जनों से स्तुत्य मथुरापुरी को छोड़कर छिपा रहा, इससे मैं मन में चिंतित होता हूँ। ९२ [व.] इसके अतिरिक्त, ९३ [सी.] पृथुल (घने) पातक रूपी भूमिभृत (पर्वतों) के लिए भिदुर (वज्र-आयुध-सम) हे विदुर! [सुनो] अनेक प्रकार से दुःख झेलते हुए व्याकुल चित्तवाले होकर, बंधनागार (कारावास) में दुःखी देवकी-वसुदेवों के समीप

तलिदंड्रुलार ! ये गलुगंग मीरलु गंसुचे नलजडि ग्रागुचुंड
गणगि शत्रुनि जंपगा लेक चूचुचुनुन्न ना तप्पु न्नसन्नु लगुचुं

ते. गावुडनि यानतिच्चिन देवदेवु,
नद्भुतावह मधुर वाक्यमुलु दलचि
तलचि ना चित्तमुन जाल गलगुचुंदु,
वृथुल पातक भूमि भृद्भिदुरविदुर ! ॥ 94 ॥

कं. विमलमति दलप नॆव्वनि,
बॊममुडि मात्रमुन निखिल भूदेवी भा
रमु वायुनट्टि हरि पद,
कमल मरंदंबु ग्रोलु घनुडॆव्वाडो ? ॥ 95 ॥

कं. मंद प्रज्ञुडनै गो, विंदुनि मुर दैत्यहरुनि विष्णुनि वरमा
नंदुनि नंद तनूजुनि मंदर धरु जित्तमंदु मऱतुनॆ यॆंदुन् ? ॥ 96 ॥

च. अदियुनु गाक मीरु नृपु लंदरु चूडग धर्मसूति पॆं
पॊंदविन राजसूय सवनोत्सवमंदुनु जन्म मादिगा
वदपडि यॆग्गॊनर्चि शिशुपालुड्डु योगि जनंबु लिट्टि द-
ट्टि दनि यॆरुंग नोपनि कडिदि पदंबुनु बॊंदॆने कदा ॥ 97 ॥

च. कुरुनृप पांडु - नंदनु लकुंठित कॆळि जमू समेतुलै
यरिदि रणोर्वि नॆव्वनि मुखांबुरुहामृत मात्मलोचनो

आकर, भक्ति के साथ वन्दना कर [कहा], हे माता-पिताओ ! मेरे रहते आप लोगों के कंस के द्वारा यातनाएँ सहते रहने पर मेरा प्रयत्न कर शत्रु को मार न सक देखते रहने के अपराध को, प्रसन्न चित्तवाले हो, क्षमा करें। [ते.] ऐसी प्रार्थना करनेवाले देवदेव के अद्भुत-प्रद तथा मधुर वाक्यों का स्मरण कर-कर मैं अपने चित्त में विह्वल होता रहता हूँ। ९४ [कं.] विमल मति से विचार करने पर जिसके भौंह की सिकुड़न मात्र से भूदेवी का समस्त भार हट सकता है, ऐसे हरि के चरण-कमलों के मरंद का पान करनेवाला घनात्मा कौन होगा (बिरला ही होगा)। ९५ [कं.] मन्द बुद्धि वाला हो, गोविन्द, मुरारि, विष्णु, परमानन्द के प्रदाता, नन्दतनूज, मन्दर पर्वत को धारण करनेवाले को मन से (मैं) विस्मरण कहीं कर सकता हूँ क्या ? ९६ [चं.] इसके अतिरिक्त आप [और] राजाओं के देखते रहने पर (समक्ष) धर्मराज के द्वारा सम्पन्न होनेवाले राजसूय सवन (यज्ञ) के उत्सव में [अपने] जन्म से लेकर पीछे पड़कर बुराई करनेवाले शिशुपाल को योगीजन भी यह ऐसा है, ऐसा जिसे जान न पाते, उस दुर्लभ [परम] पद को प्राप्त कराया था न ! ९७ [चं.] कुरु नृप (तथा) पाण्डु के पुत्र अकुण्ठित केलिलीला में चमू (सेना) के सहित हो, रण-उर्वी (युद्धभूमि)

त्करमुल ग्रोलि पार्थु विशिख प्रकरक्षत पूतगात्रुलै
गुरुतर मोक्ष धाममुनकुं जनि सौख्यमु नोंदिरो कदा ! ॥ 98 ॥

सी. अट्टि सरोजाक्षु डाद्यंत शून्युंडु सुभगुंडु त्रैलोक्य सुंदरुंडु
कमनीय सागर कन्यका कुच कुंकुमांकित विपुल वाहांतरुंडु
सकल दिक्पाल भास्वत्करीट न्यस्त पद्मरागारुण पादपीठु
डजु डनंतुडु समानाधिक विरहितु डिद्ध मूर्ति त्रयाधीश्वरुंडु

ते. मैन हरि, युग्रसेनुनि यखिल राज्य,
रुचिर सिंहासनमुन गूर्चुंड बॅट्टि
भृत्यभावंबु नोंदि संप्रीति नतनि,
पनुपु सेयुट कॅपुडु ना मनमु गुंदु ॥ 99 ॥

व. अनि वॅंडियु निट्लनियॅ। अनघा ! परात्परुंडु योगीश्वरेश्वरुंडु नगु कृष्णुंडु भगवद्भक्तुंडु परम भागवतोत्तमुडु नैन युग्रसेनुनि सेविंचुट याश्चर्यंबु गादु। तन्नु हरियिंपं दलंचि कुचंबुल विषंबु धरिंचि स्तन्यपानंबु सेयिंचिन दुष्टचेतनयैन पूतनकुं, जन्निच्चि पॅंचिन यशोदादेविकिनैन नंदरानि निजपदंबु गारुण्य चित्तुंडै योसंगॅ ननिन निजपदध्यान परायणुलगु वारल ननुसरिंचि सेविंचुट चॅप्पनेल ? अनिन नुद्धवुनिकि बिदुरुं

में जिसके मुखकमल के अमृत को आत्मा के नयनों के समूह द्वारा प्राप्त कर (और) पार्थ (अर्जुन) के विशिख प्रकरों (तीक्ष्ण बाणों) से क्षत (घायल) हो, पूतगात्र (पवित्र शरीर) वाले हो, गुरुतर मोक्षधाम को जाकर सुखी हुए थे न ! ९८ [सी.] ऐसा सरोजाक्ष, आदि-अन्त-रहित, सुभग, तीन लोकों में सुन्दर, सागरकन्यका (समुद्रपुत्री) के कुच के कुंकुम से अंकित कमनीय और विपुल वक्षःस्थल वाला, सकल दिक्पालकों के भास्वत् (प्रकाशमान) किरीटों के नतमस्तक होने पर, उनके पद्मराग मणियों के प्रकाश से अरुण बने पादपीठ वाला, अज, अनन्त, समानता-अधिकता से विरहित, त्रय का अधीश्वर, पवित्र मूर्ति है। [ते.] ऐसे हरि ने उग्रसेन को अखिल राज्य के रुचिर सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर सेवक की भावना से प्रेम निभाते हुए, उसकी आज्ञा का पालन करते रहने पर सदा मेरा मन चिंतित होता रहता है। ९९ [व.] और फिर ऐसा कहा कि अनघ ! परात्पर जगदीश्वर कृष्ण का भगवद्भक्त तथा परम भागवतोत्तम उग्रसेन की सेवा करने में आश्चर्य नहीं है। अपना नाश करने के लिए कुचों में विष धारण कर स्तन्य पान जिसने कराया, उस दुष्ट चेतना वाली पूतना को अपने स्तन से दूध पिलाने वाली यशोदा देवी को भी अप्राप्य निजपद करुणापूरित चित्त से प्रदान किया। ऐसा कहें तो अपने चरण-ध्यानपरायण लोगों का अनुसरण करते हुए, सेवा करता है, ऐसा कहने की [क्या आवश्यकता] है? ऐसा कहने पर,

डिट्लनियॆ। भक्त वत्सलुंडुनु गारुण्य जलनिधियुनै भागवत जनुल ननुग्रहिंचु पुंडरीकाक्षुंडु निजदास लोकंबुन कोसंगु परमपदंबु लुग्र कर्मुलैन राक्षसुल कॆट्लोसंगॆ नत्तॆरं गॆरिंगिपु मनिन विदुरुनकु नुद्धवुं डिट्लनियॆ ॥ 100 ॥

म. दनुजानीक मनेक वारमुलु दोर्दर्पंबु संधिल्लगा
विनतासूनु भुजावरोहुडगु न व्विष्णुन् सुनाभास्त्र दा
रनिलो मार्कॊनि पोकु पोकु हरि दैत्याराति यंचुंदि दा
ननमुं जूचुचु गूलि मोक्षपदमुन् ब्रापिंतु रत्युन्नतिन् ॥ 101 ॥

कं. धीरजनोत्तम ! नवसित, सारस नेत्रुडगु कृष्णु जननंबुनु द
च्चारित्रमु नॆरिंगितु नु, दारत नी विपुडु विनुमु तद्विध मॆल्लन् ॥ 102 ॥

चं. धरणी भरंबु वापुटकु दामरसासनु प्रार्थनन् रमा
वरु डल कंसबंधन निवासमुनन् वसुदेव देवकी
धरुलकु नुद्भविप बलवंतुडु गंसुडु हिंस सेयु न
न्वॆरपुन नर्धरात्रि सुतुनि गॊनि यव्वसुदेवु डिम्मुलन् ॥ 103 ॥

कं. नंदुनि मंदकु जनि त, त्सुंदरि तल्पमुन बरुलु सूडक युंडन्

उद्धव से विदुर ने कहा (पूछा), भक्तवत्सल और करुणासागर होकर भागवतजनों को प्रदान करनेवाले परम पद को कमलनयन वाले ने उग्रकर्मा राक्षसों को क्यों प्रदान किया ? उस रीति को विदित करने की प्रार्थना करने पर उद्धव ने विदुर से इस प्रकार कहा (सुनाया) । १०० [म.] दनुजानीक (राक्षसवर्ग) अनेकों बार भुज-दर्प से युक्त (विलसित) हो विनतासुत (गरुड़) की भुजा पर अधिरोहण करनेवाले उस विष्णु, सुनाभ (विष्णुचक्र) अस्त्रधारी से युद्धभूमि में सामना कर, 'हरि ! दैत्याराति ! मत जा', 'मत जा' कहते हुए उस (विष्णु के) मुख को देखते हुए, गिर (मर) कर अति उन्नत रीति से मोक्षपद को प्राप्त होते हैं। १०१ [कं.] हे धीरजनोत्तम ! नवसित (श्वेत) सारस (कमल) नयन वाले कृष्ण का जन्म तथा उसके चरित्र को विदित करूँगा । उदात्त बुद्धि से अब उस सारी रीति को तुम सुनो ! १०२ [चं.] धरणी के भार को हटाने के निमित्त तामरस आसन वाले (ब्रह्मा) के प्रार्थना करने पर, रमावल्लभ के कंस के बन्धन-निवास (कारागार) में वसुदेव-देवकी के गर्भ में उत्पन्न होने पर, बलशाली कंस के द्वारा मारे डाले जाने के भय से, आधी रात के समय में बेटे को लेकर वह वसुदेव प्रेम से, १०३ [कं.] नन्द के गाँव पहुँच कर, उसकी सुन्दरी (पत्नी) की शय्या पर, किसी अन्य के न देखते समय, बेटे को रखकर, आनक-दुंदुभि (वसुदेव) लौटकर पूर्व की पुरी (कंस की नगरी) चला गया । १०४ [क.] हरि एकादश (ग्यारह) वर्ष तक नन्द

नंदनुनि नुनिचि यानक, दुंदुभि मड्लंग नेगॅ दॉल्लिटि पुरिकिन् ॥104॥

कं. हरि येकादश संव, त्सरमुलु नंद व्रजमुन दनु हरि यनि यॅ
व्वरु नॅरुग कुंड ना हल, धरुतो गूडाडुचुंडॅ ददयु ब्रीतिन् ॥ 105 ॥

कं. गोपाल वरुल कॅननु, ना पोवग दन समंचिताकार मॉगिन्
जूपनि श्रीपति वेड्क, गोपालुर गूडि कार्चॅ गोवत्समुलन् ॥ 106 ॥

व. अय्यवसरंबुनं गृष्णुंडु लीला विनोदंबुलु तोडि गोपाल बालुरकुं जूपं दलंचि ॥ 107 ॥

चं. वर यमुना नदी सलिल वर्धित सौरभ युक्त पुष्पमे
दुर मकरंद पान परितोषित भृंग सुरंग माधवी
कुरवक कुंद चंदन निकुंजमु लंदु मयूर शारिका
परभृत राजकीर मृदु भाषल भंगि जॅलंगि पल्कुचुन् ॥ 108 ॥

उ. श्री रमणी मनो विभुडु सिंह किशोरमु बोलि लील गौ
मार दशन् रमा विमल मंदिरमुं बुरुडिंचु गो ततिन्
वारक मेपुचुं दरळ वंश रव स्फुट माधुरी सुधा
सारमु चेत गोपजन संघमुलन् मुदमंद जेयुचुन् ॥ 109 ॥

व. मरियु ॥ 110 ॥

म. चिर केळीरति बालकुल् दृणमुलन् सिंहादि रूपंबुलन्
गर मॉप्पन् विरचिंचि वानि मरलन् खंडिंचु चंदंबुनन्

के व्रज में निवास कर, 'यह हरि है' ऐसा किसी को विदित न होने देते हुए, हलधर (बलराम) के साथ बड़े प्रेम से खेलता रहा। १०५ [कं.] गोपाल-वरों (इन्द्रियों को वश में कर लेनेवाले) को भी, तृप्ति हो ऐसा अपने समंचित शोभायमान आकार के दर्शन न देनेवाला श्रीपति ने गोपालों (ग्वालों) के साथ उत्साह के साथ मिलकर गोवत्सों की रखवाली की। १०६ [व.] तब उस अवसर पर कृष्ण ने गोपाल बालकों को लीला-विनोद दिखाने के विचार से, १०७ [चं.] वर-यमुना नदी के सलिल (जल) से प्रवर्द्धित [और] सौरभ-युक्त पुष्पों के घने मकरन्द के पान से तृप्त होनेवाले भ्रमरगण (तथा) माधवी, कुरवक, कुन्द, चन्दन, निकुंजों मे मयूर, सारिका, परभृत (पिक), राजकीरों (शुक) के मृदुल भाषण के समान विजृंभित हो कूजता रहा। १०८ [उ.] श्रीरमणी का मनोविभु सिंह-किशोर की भाँति लीला के-से, कुमार-दशा में, रमा के विमल मन्दिर-सम गोसमूह को निरन्तर चराते हुए, तरल (सुन्दर) वंश (बाँसुरी) के स्फुट माधुरी रव रूपी सुधासागर से गोपजनगणों को आनन्द प्रदान करता रहा। १०९ [व.] और, ११० [म.] बालकों के चिर केलिरत हो घास से सिंह आदि मूर्तियों का अधिक शोभा से निर्माण कर, फिर उनका खण्डन करने की रीति, करुणातीत

गहणातीतुलु कामरूपु लगु नव्कंस प्रयुक्त क्षपा
चरुलं गृष्णुड्डु संगर स्थलमुलन् जवकाडॅ लीलागतिन् ॥ 111 ॥

चं. वर यमुना नदी जल निवास महोरग विस्तृतास्य वि-
स्फुरित विषानल प्रभल सोकुन ग्रागिन गोप गो घनो-
त्करमुल नॅल्ल गाचि भुजगप्रवरु न्वॅडलंग दोलि त-
त्सरिदमलांबु पानमुन संतस मंदग जेसॅ गो ततिन् ॥ 112 ॥

म. दिविजाधीशु गुरिंचि वान कॊरकै दीपिंप नंदादि व
ल्लवु लेटेट ननून संपदल नुल्लासंबुनं जेयु नु
त्सुवमुं गृष्णुड्डु मान्पि गोप गणमुल् संप्रीति नॊंवन् शची
धवु गर्वं वणपन् धनव्ययमुगा दा जेसॅ गो यागमुन् ॥ 113 ॥

चं. हरिहयुडंत रोष विवशाविल मानसुडै सरोरुहो
दरु महिमं वॅरुंगक मदं वडरंग वलाहकादि भी
कर घनपंक्ति वंपिन नखंड शिलामय भूरि वर्षमुल्
गुरिसॅ ननून गर्जनल गोकुल माकुल मंदि कुंदगन् ॥ 114 ॥

उ. आ तरि मंद गॊंदलमु नंदग वल्लवु लॅल्ल गृष्ण यी
चेतनु लॅल्ल निट्टि जडि जिंदरु वंदरुलै मनंबुलन्

(करुणा को न जाननेवाले) [तथा] कामरूपधारी, उस कंस से प्रयुक्त (नियोजित) क्षपाचरों (राक्षसों) का संग्राम में, कृष्ण ने खेल ही खेल में बध कर दिया। १११ [चं.] वर (श्रेष्ठ) यमुना नदी के जल में निवास करनेवाले महा-उरग (सर्प) के विस्तृत (विशाल) आस्य (मुख) से विस्फुरित (निकलनेवाले) विष की अग्नि की प्रभाओं के लगने पर पीड़ित गोप तथा गोधन-समूहों की रक्षा कर, भुजगप्रवर को बाहर भगाकर, उस सरित् के विमल अम्बु (जल) के पान से गोतति (गायों के समूह) को आनंदित बनाया। ११२ [म.] दिविजाधीश (इन्द्र) के प्रति वर्षा के लिए नन्दादि वल्लव (गोपालक) प्रतिवर्ष अनून (अत्यधिक) सम्पदाओं के साथ उल्लास के साथ उत्सव करते थे। [ऐसे उत्सव को] बन्द करवाकर, गोपगण प्रसन्न हों और शचीधव (इन्द्र) का गर्व मिट जाए, ऐसा अव्यय रूप से स्वयं कृष्ण ने गोयज्ञ सम्पन्न किया। ११३ [चं.] हरिहय (इन्द्र) के तव रोष-विवश, आविल (मलिन) मन वाले हो, सरोरुह-उदर (विष्णु) की महिमा को न जानकर, मद के विजृंभित होने पर, वलाहक (नील मेघ) आदि भीकर मेघपंक्ति को भेजने पर, अखंड शिलामय भूरि वर्षाएँ अनून गर्जनाओं के साथ, गोकुल आकुल हो दुःखी हो, [ऐसा[बरसीं। ११४ [उ.] उस अवसर पर, समस्त गोसमूह के व्याकुल होने पर गोपालकों ने हे कृष्ण! ये जीव इस झड़ी के कारण तितर-बितर हो, मन में कातर हुए। हे महात्मा! अनाथनाथ! निर्धूत (क्षालित) कलंक (पाप) वाले! भक्तों का परितोषण (तृप्ति)

गातरलैरि नीवु गृप गावु महात्म ! यनाथनाथ नि-
र्धूत कळंक ! भक्त परितोषण भूषण ! पाप शोषणा ! ॥ 115 ॥

म. अनि यिट्भंगि विपन्नुलै पलुक गुय्यालिंचि कृष्णुंडु स-
ज्जन वर्धिष्णुडु गोप गो निवह रक्षावक्षुडै देवता
जनु लग्गिप गरांबु - जातमुन सच्छत्रंबुगा दाल्चॆ बो-
रन गोवर्धन शैलमुन् दट चर द्रम्यामरी जालमुन् ॥ 116 ॥

व. वॆंडियु ॥ 117 ॥

सी. शरदागमारंभ संपूर्ण पूर्णिमा सांद्र चंद्रातपोज्ज्वलित मगुचु
वॆलयु बृंदाटवी वीथि यंदॊकनाडु रासकेळी महोल्लासु डगुचु
रुचिर सौभाग्य तारुण्य मनोरम स्फूर्ति जॆन्नॊंदिन मूर्ति दनर
सललित मुख चंद्र चंद्रिकातति गोप नयनोत्पलमुल कानंद मॊसग

ते. भव्य चातुर्य भंगि द्रिभंगि यगुचु,
नब्जनाभुंडु सम्मोद मतिशयिल्ल
लील बूरिंचु वर मुरळी निनाद,
मर्थि वीतेर विनि मोहितात्मुलगुचु ॥ 118 ॥

चं. पतुलु मरंदुलुन् सुतुलु बावलु नत्तलु मामलुन् समु-
न्नति वलदन्न मानक मनंबुल गृष्ण पदाब्ज सेवना

ही [तुम्हारे लिए] भूषण (अलंकार) है ! पापों का शोषण करनेवाले तुम (इनपर) कृपा करो ! ११५ [म.] ऐसा विपन्न बनकर [गोपालकों के] कहने पर उनकी गुहार सुनकर, सज्जनों का प्रवर्द्धक कृष्ण गोप, गो-निवह (-समूह) की रक्षा में दक्ष होकर देवताजनों के स्तुति करने पर, [अपने] कर-अंबुजात (-कमल) पर छत्र के रूप में, तट-चरत-रम्य-अमरीजाल-सहित गोवर्द्धन शैल को सरलता से धारण किया। ११६ [व.] और, ११७ [सी.] शरद् [ऋतु] के आगमन के आरंभ से सम्पूर्ण पूर्णिमा के सान्द्र चन्द्रातप (चाँदनी) से उज्जवल बनकर विलसित होनेवाले वृन्दावन-वीथी में एक दिन रास-क्रीड़ा के लिए महा उल्लसित होते हुए, रुचिर (अतिसुन्दर), सौभाग्य, तारुण्य की मनोरमता की स्फूर्ति के साथ सुशोभित होने पर सललित चन्द्रमुख की चन्द्रिका-तति (समूह) के गोपों के नयन-उत्पलों को आनन्द प्रदान करने पर, [ते.] भव्य-चातुरी की भंगिम के साथ त्रिभंगी होते हुए, अब्ज-नाभ वाले सम्मोद की अतिशयता के साथ, लीला से वर-मुरली निनाद को मुखरित करने पर, [उसके] इच्छा से समीप सुन आने पर, मोहितात्मा हो, ११८ [चं.] पति, देवर, सुत, जीजा (जेठ), सास, ससुर [आदि] के समुचित रीति से मना करने पर भी, मन में कृष्ण के चरण-कमलों की सेवा (भाव में) युक्त रति से गोप-कामिनियों के शीघ्र

न्वितरति गोप कामिनुलु वे चनुदेर दया पयोधि शो-
भितगति रासकेळि सलिपें दरुणी नव पुष्प चापुडै ॥ 119 ॥

अध्यायमु—३

उ. रामुडु दानु गूडि मधुरा पुरिकि जनि यंदु वैभवो-
द्दाम नृपासनंबुन मुदंबुन नुन्न दुरात्मु गंसु बु-
ष्टामर शत्रु द्रुंचि मुदमारग दल्लिनि दंड्रि नंचित
श्री महितात्मुडै तनर जेसें सरोरुह नाभु डुन्नतिन् ॥ 120 ॥

म. नलुवोप्पंग षडंगयुक्त महिताम्नायंबु चौषष्टि वि-
द्यलु सांदीपनिचे नेरिंगें जलुवोंद न्विन्न मात्रंबु लो-
पलने लोकगुरुंडु दान तनकुन् भाविप नन्युल् गुरु
लगलरे लोक विडंबनार्थ मगु लीलल् गावे यम्मेटिकिन् ॥ 121 ॥

उ. मिंचि प्रभास तीर्थमुन मृत्यु वशंबुनु बोंदि पोयि या
पंचजनोदरस्थुडगु बालुनि देशिक नंदनुं ब्रभो
दंचित लील देच्चि गुरु दक्षिणगा नतिभक्ति युक्ति न-
पिंचें गुरुंडु चित्तमुन बेंपेसलार नुरारि वेंडियुन् ॥ 122

आ जाने पर, दया-पयोधि (सागर) ने शोभित गति से तरुणियों के लिए नव-पुष्पचाप (-कामदेव) बनकर रासकेलि (रासलीला) रचायी। ११९

अध्याय—३

[उ.] बलराम के साथ सरोरुहनाभ (कृष्ण) ने मथुरापुरी को जाकर, वहाँ वैभव के साथ उद्दाम (प्रकाशित) नृपासन (सिंहासन) पर, मोद के साथ स्थित दुरात्मा, दुष्ट, देवताओं के शत्रु कंस का वध कर, मोद के भर जाने पर, माता-पिता को, उन्नत रीति से, श्री-महित-आत्मा वाले ने तृप्त किया। १२० [म.] शोभा के चमक उठने पर, षडंगों से युक्त महित-आम्नाय (वेदों) को, चौंसठ विद्याओं को लोकगुरु ने शोभा से श्रवण मात्र से सान्दीपनि से प्राप्त किया। भावना करने पर उसके लिए कोई अन्य गुरु हो सकता है क्या? ये तो उस महान् के लिए लोक-विडंबनार्थ किए जानेवाली लीलाएँ हैं न! १२१ [उ.] श्रेष्ठ प्रभास तीर्थ में मृत्यु के वश में हो जाकर, पंचजन (एक राक्षस का नाम) उदरस्थ हो बालक, गुरुपुत्र को प्रभा की उदंचित लीला से लाकर, गुरुदक्षिणा के रूप में, अति भक्ति तथा युक्ति के साथ गुरु के चित्त के आनन्द से प्रकाशित होने पर, मुरारि (कृष्ण) ने समर्पित किया। और, १२२ [सी.] घन (महान्)

सी. धनुडु विदर्भेशु डन नॉप्पु भीष्मकु वर सुतामणि नव वारिजाक्षि
बद्मा समान रूप श्री विभासित गमनीय भूषण गंबुकंठि
जतुर स्वयंवरोत्सव समागत चैद्य साल्व मागध मुख जनवरेण्य
निकर समावृत ब्रकट सच्चारित्र रुक्मिणि नसमान रुक्मकांति

ते. नमर गुप्तामृतमु विहगाधि विभुडु,
गौनिन कैवडि मनुजेंद्र - कोटि दोलि
कमलनाभुंडु निजभुजा गर्वमलर दॆच्चि,
वरियिचॆ नतनि नुतिप वशमॆ ? ॥ 123 ॥

च. परुवडि पट्टि सप्त वृषभंबुल मुक्कुलु गुट्ट ददबल
स्फुरण सहिप जालक नृपुल् दलपड्ड जयिचि नग्न जि-
द्धरणिपु नंदनन् विकच तामरसाक्षि ब्रमोदियै स्वयं
वरमुन वॆंड्लियाडॆ गुणवंतु डनंतु डनंत शक्तितोन् ॥ 124 ॥

म. प्रतिवीर क्षयकारि ना नॆगडि सत्राजित्तनूजा हृदी-
प्सितमुं दीर्प दलंचि नाकमुनकुन् वॆंपारगा नेमि व-
र्णित शौर्योन्नति बारिजात मिलकुन् लीलागति दॆच्चॆ नु-
द्धति देवेंद्रु जयिचि कृष्णु डन नेतन्मात्रुडे चूडगन् ॥ 125 ॥

विदर्भराज भीष्मक की वर सुतामणि नव-वारिजाक्षि (नवकमल-नयन वाली) को पद्म के समान रूपश्री से विभासिता, कमनीय भूषणों वाली, कंबु (शंख) कण्ठवाली, चतुरा, स्वयंवर के उत्सव में आये हुए चैद्य, साल्व, मागध मुख (आदि) जनवरेण्यों राजाओं के निकर (समूह) से समावृता, प्रकट (व्यक्त) सच्चरित्र वाली, रुक्मिणी, असमान रुक्म (स्वर्ण) कान्ति वाली को, (ते.) अमरों (देवताओं) के द्वारा छिपाये गये अमृत को विहगाधिविभु (गरुड़) के ले जाने की रीति, मनुजेन्द्र-कोटि को भगाकर, कमलनाभ वाले ने अपने भुज-गर्व के शोभित होने पर लाकर, वरण (विवाह) किया था। उसकी स्तुति करना किसके वस की बात है ? १२३ [चं.] क्रम से दौड़नेवाले सात वृषभों (बैलों) की नाकों में रस्सियाँ बाँधने पर, उसके वल-स्फुरण (-प्राकट्य) को सहन न कर सक, राजाओं के भिड़ जाने पर, [उनको] जीतकर, धरणिप (राजा) नग्नजित की नंदना (पुत्री) विकसित तामरसाक्षी (कमलनयन वाली) को, आनन्द के साथ, स्वयंवर में गुणवान अनन्त ने अनन्त शक्ति से विवाह कर लिया। १२४ [म.] प्रतिवीरों (शत्रुवीरों) के क्षयकारी के रूप मे विलसित हो, सत्राजित की तनूजा (पुत्री) के हृदय के ईप्सित (इच्छा) को पूर्ण करने का सोचकर नाक (स्वर्ग) को शोभा से जाकर संस्तुत शौर्य के औन्नत्य के साथ, देवेन्द्र को औद्धत्य से जीतकर, इस इला (धरा) पर पारिजात को लीला की गति से लानेवाला कृष्ण [परखकर] देखने पर कोई साधारण पुरुष है क्या ? (नहीं है।) १२५ [सी.] मानित

सी. मानिताखिल जगन्मय देहमुन वॉल्चु धरणी देविकि त्रियतनयुडैन
नरक दानवुनि सुनाभाख्य जॅन्नॉडु घन चक्र धारा विखंडितोत्त-
मांगुनि जेय न व्यवनी ललामंवु वेडिन दत्पौत्रु विपुल राज्य
पदमुन निलिप लोपलि मंदिरंवुल जिरमुग नरकुंडु चॅरलबॅट्टि

ते. नट्टि कन्यलु नूट ववाङ वेलु,
नार्त वांधुवुडैन पद्माक्षु जूचि
हर्ष वाष्पांवु धारा प्रवर्ष मॉदव,
वंचशर वाण निर्भिन्न भावलगुचु ॥ 126 ॥

चं. ललित तदीय सुंदर विलास विमोहित लैन वारि नि
पॉलसिन कोर्कॅ दीर्चुटकु नॉक्क मुहूर्तमुनन् वरिंचि क-
न्यल ललितावरोध भवनंवुल नंदङ कन्नि रूपुलै
कलसि सुख स्थिति वनिपॅ गांतल भक्ति नितांत चित्तलन् ॥ 127 ॥

कं. चतुरततोनंवॉक्कॉक यतिवकु,
बहुरेसि सुतुल नात्मसमुल नु-
न्नत भुजशक्तुल गांचॅनु,
विततंवै कीर्ति दिशल विनुतिकि नॅक्कन् ॥ 128 ॥

सी. मधुरापुरमु चतुर्विध वलौघमुलतो नावरिंचिन काल यवन साल्व
मगध भूपालादि मनुजेंद्र लोकंबु सैन्य युक्तमु गाग संहरिंचि

(मान्य) अखिल जगन्मय देह से प्रकाशित होनेवाली भूदेवी का प्रियपुत्र नरक-दानव को सुनाभ नामक विख्यात घनचक्र की धारा से विखण्डित करने पर, उस अवनी-ललामा (धरणी-रमणी) के प्रार्थना करने पर, उसके पौत्र को विशाल राज्य के पद पर विठाकर, अन्तःपुर में नरक के द्वारा चिरकाल से कारा में वन्द रखी हुई, [ते.] सोलह हजार कन्याओं के आर्त्त-वंधु पद्माक्ष (कमलनयन वाले) को देखकर, आनन्द के आँसुओं की धाराएँ बहाते हुए पंचशर-बाण निर्भिन्न भाव वाली (काम-मोहित) होकर, १२६ [चं.] तदीय (उसके कृष्ण के) ललित-सुन्दर विलास से विमोहित होने वालियां के मनोहर वनी इच्छा को पूर्ण करने के लिए, एक [ही] मुहूर्त में [उनका] वरण कर, [उन] कन्याओं के ललित (सुंदर) अवरोध-भवनों (अंतःपुरों) में सबके लिए, सभी रूपों को धारण कर, नितान्त भक्ति से भरे चित्तवाली कान्ताओं के साथ मिलकर सुखस्थिति से [उन्हें] तृप्त किया। १२७ [कं.] चतुराई के साथ, एक-एक अंगना के आत्मसम (अपने समान) अत्यधिक भुजशक्ति वाले दस-दस पुत्रों को प्राप्त किया जिससे दिशाओं में स्तुत्य वनकर कीर्ति वितत (व्याप्त) हो जाए। १२८ [सी.] मथुरापुर को अपनी चतुर्विध-बल (-सेनाओं) के ओघ (समूह) के साथ घेर लेनेवाले कालयवन, साल्व, मगध-भूपाल (आदि) मनुजेंद्र

तन बाहु शक्ति जित्तमुल नर्थिंचिन भीम पार्थुलकु नुद्दाम विजय
मीसगि तद्वैरुल नुक्कणंगग द्रुंचि बाण शंबर, मुर, पल्वलादि

ते. दनुज नायक सेना वितानमुलनु,
हलधरादि समेतुडै हतुल जेसें
दंत वक्त्रादि दैत्युलु दन्नु नेदुर,
भंडनमुलोन द्रुंचे दोर्बलमु मेरसि ॥ 129 ॥

व. वेंडियु गृष्णुंडु गौरव पांडव भंडनमुनकुं दोड्पडि राजन्यु लन्योन्य मात्सर्योत्साहसमेतुलै सैनिक पाद घट्टनंबुल धराचक्रंबु गंपिप ननन्य समान्यंबुलैन शंख भेरी प्रमुख तूर्य घोषंबुलु निगि न्त्रिग दुरंगम रिखा समुद्धूत धूळि पटल परिच्छन्न भानु मंडलंबुगा जनुदेंचि कुरुक्षेत्रंबुन मोहरिंचिन नुभय पक्षबलंबुलं दुनुमाडि, निखिल राज्य वैभव मदोन्मत्तुंडैन सुयोधनुंडु कर्ण शकुनि दुश्शासनादुल दुर्मंत्रंबुन निरंतरंबु गुंतीनंदनुल कॅग्गु चेसिन दोषंबुनं जेसि संगरंबुन भीमु गदाघातंबुनं दोडलु विरिगि पुडमि बडि गतायुश्श्री विभवुंडै युंड जूचि यपरितुष्ट चित्तुंडै, यपरिमित बाहुबलोत्साहुलैन भीष्म, द्रोण भीमार्जुनुलचेत निखिल धरापतुल नष्टादशाक्षौहिणी बलंबुल तोड दुनिमिंचि, मरियु स्वसमान

(राजा-) लोक को सेनाओं के साथ संहार कर, अपनी बाहुबल शक्ति को चित्त में (हार्दिक रूप से) चाहनेवाले भीम [तथा] पार्थ अर्जुन को अतिशय विजय प्रदान कर, उनके शत्रुओं का दर्प-दलन हो, ऐसा वध कर, बाण, शंबर, मुर, पल्वल आदि, [ते.] दनुज नायकों के सेनागण को हलधर आदि के साथ निहत किया। दन्तवक्त्र आदि राक्षसों के सामना करने पर, युद्ध में (भुजबल) से प्रकाशित हो, [उनका] वध किया। १२९

[व.] और कृष्ण ने कौरव-पाण्डव-युद्ध के लिए सहयोग दिया, राजाओं के परस्पर मात्सर्य के उत्साह-सहित हो, सैनिकों के चरणताड़नों से धराचक्र के कम्पित होने पर, अनन्य-सामान्य शंख, भेरी-प्रमुख (-आदि) तूर्य घोषणों के आकाश को आक्रान्त करने (गूँजने) पर, तुरंगमों (अश्वों) के रिखा (खुरों) से समुद्धूत (उत्पन्न) धूलि से सूर्यमण्डल के परिच्छन्न (आच्छादित) होने पर, कुरुक्षेत्र में आकर सेनाओं के खड़ा करने पर, दोनों पक्ष के बलों का वध किया, निखिल राज्य के वैभव से मदोन्मत्त बने सुयोधन के कर्ण, शकुनि, दुश्शासन आदि के दुष्ट-मंत्रांग से कुतीनदनों (पांडवों) का सदा अहित करने के कारण, संग्राम में भीम के गदाघात से जाँघों के टूटकर, आयु तथा श्रीविभव के विगत हो जाने पर, धरा पर गिरकर, [उसे] देखकर तो परितुष्ट चित्त वाला बनूँगा [यह सोचकर] अपरिमित बाहुबल से उत्साही बने भीष्म, द्रोण [तथा] भीम, अर्जुन के द्वारा सकल धरापतियों (राजाओं)

वलुलयिन यदु वीरुल जयिप नैंत वारल कैनं दीरदु कान मधुपान मद विघूर्णित ताम्र विलोचनुलै वर्तिचु यादवुल कन्योन्य वैरंबु गल्पिंचि पोरिंचि यितरेतर कराघातंबुल हतुलै वारु दनु गलसिनं गानि भू भारं बुडुग दनि चित्तंबुनं दलंचि, यंत धर्मनंदनुचे निस्सपत्यंबगु राज्यंबु पूज्यंबुगा जेयिपु चुंडि, मर्त्युलकुं गर्तव्यंबुलैन धर्म पथंबुलु सूपुचु, बंधु मित्रुल नेल्लं बरितोषंबु नोंदिपुचुं, दत्परोक्षंबुन वारि वंशं बुद्धरिपं दलंचि यभिमन्युवलन नुत्तरयंदु गर्भंबु निलिपि, गुरुतनय प्रयुक्त महित ब्रह्मास्त्र पातंबुन दद्गर्भ दळनंबु गाकुंड नर्भकुनि रक्षिचि, निज पदारविंद सेवारतुंडैन धर्मजुचे गीर्ति प्रतापंबुलु निव्वटिल्लं दुरंग-मेधंबुलु मूडु सेयिचि, वेंडियु ॥ 130 ॥

सी. वलनोप्प लौकिक वैदिक मार्गमुल् नडुपुचु द्वारकानगर मंदु
नविदितात्मीय माया प्रभावमुन निस्संगुडै युंडि संसारि पगिदि
जेंदि कामंबुल चेत विमोहितुंडै सुखिपुचु मुदितात्मुडगुचु
नंचित स्निग्ध स्मितावलोकमुल सुधा परिपूर्ण सल्लापमुलनु

ते. श्रीनिकेतन मैन शरीरमुननु,
पांडु नंदन यदुकुल प्रकरमुलनु

का अष्टादश-अक्षौहिणी सेनाओं के साथ वध कराकर, और अपने समान बलशाली यदुवीरों को जीतना किसी के वश की बात नहीं, (इसलिए) मधुपान के मद से विघूर्णित ताम्रलोचन वाले हो संचरण करनेवाले यादवों में परस्पर वैर को पैदा कर, लड़वाकर, एक-दूसरे के कराघातों से हत हो [उनके] अपने मे न मिलने पर भू-भार कम नहीं होगा, ऐसा मन में विचार कर, तब और निस्सपत्य (किसी अन्य राजा के न होने पर) रूप में पूज्य रूप से राज्य का शासन करवाते हुए, मर्त्यलोगों के लिए कर्तव्यस्वरूप धर्मपथ को दर्शाते हुए, सकल बन्धु-मित्रों को संतोष प्रदान करते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से उनके वंश का उद्धार करने के विचार से, अभिमन्यु के द्वारा उत्तरा का गर्भ धारण करवाकर, गुरु-तनय से प्रयुक्त महित ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से वह गर्भ नष्ट न हो, ऐसा अर्भक (परीक्षित) की रक्षा कर, अपने चरण-कमलों की सेवा में रत, धर्मराज से कीर्ति तथा प्रताप अतिशय हो जाएँ, ऐसा तीन अश्वमेध [यज्ञ] करवाकर, और फिर, १३० [सी.] क्रम के औचित्य से लौकिक तथा वैदिक मार्गों का, समुचित रीति से निर्वाह करते हुए, द्वारका नगर मे अविदित-आत्मीय (-अपनी) माया के प्रभाव के कारण निस्संग-भाव से गृहस्थ की भाँति कामादि से विमोहित होते हुए, सुखी तथा आनन्दात्मा होते हुए, अंचित (शोभायमान), स्निग्ध (स्नेहपूर्ण), स्मितिपूर्ण चितवनों से, सुधा-परिपूर्ण संभाषणों से, [ते.] श्री के निकेतनस्वरूप शरीर में पाण्डु-नंदन तथा यदुकुल-प्रकर (समूह) को

लील गारुण्य मोलय वालिपु चुंडु,
नार्त रक्षण परुडु नारायणुंडु ॥ 131 ॥

सी. संपूर्ण पूर्णिमा चंद्र चंद्रिक नोप्पु रमणीय शारद रात्रु लंदु
सललित कांचन स्तंभ सौधोपरि चंद्र कांतोपल स्थलमु लंदु
महित करेणुका मध्य दिग्गजमुल गतिनि सौदामिनी लतल नडिमि
नील मेघंबुल लील मुक्ता मध्य लालित शक्र नीलमुल भाति

ते. सतत यौवन सुंदरीयुत विहारु
डगुचु सतु लेंद रंदरु कन्नि रूप
मुलनु ग्रीडिंचें बेक्कब्दमुलु संलंगि,
नंद नंदनु डभिनवानंदलील ॥ 132 ॥

व. अंत नोक्क नाडु ॥ 133 ॥

चं. मुनिवरु लेगुदेर यदु भोज वरेण्युलु गूडि मुट्ट ब
ल्किन गनलोंदि वारु दम्किचि शपिंचिन गोन्नि मासमुल्
चनु नेंड दैव योगमुग जातर बो समकट्टि वेडुकल्
मनमुल दोंगलिप गरिमन् निज यानमु लेक्कि यादवुल् ॥ 134 ॥

उ. कोरि प्रभास तीर्थमुनकुं जनि तन्नदि ग्रुंकि निर्मलो
दारत नंदु देव मुनि तर्पणमुल् पितृ तर्पणंबुलुन्

लीला से, करुणा के उमड़ने पर, आर्तरक्षापरायण नारायण शासन करता रहा। १३१ [सी.] संपूर्ण पूर्णिमा के चन्द्र की चन्द्रिकाओं से सुशोभित होनेवाले रमणीय शरत्काल की रात्रियों में, सललित (मनोहर) स्वर्ण-स्तम्भों से [निर्मित] सौधों (प्रासादों) के ऊपर चन्द्रकान्त शिला के स्थलों में (वेदिकाओं पर), महान करेणुकाओं (हथिनियों) के मध्य स्थित दिग्गजों की भाँति, विद्युल्लताओं के मध्य स्थित नील मेघ की लीला से, मोतियों के बीच ललित (सुंदर बने) शक्र (इन्द्र) नील की भाँति, [ते.] सदा युवती तथा सुंदरियों के साथ विहार करते हुए, जितनी सतियाँ थी, उतने रूपों में क्रीड़ा करते हुए नन्दनन्दन ने अभिनव आनन्द की लीला में अनेकों वर्ष बिताये। १३२ [व.] तब एक दिन, १३३ [चं.] मुनिवरों के आने पर, यदु एवं भोज-वरेण्यों (श्रेष्ठजनों) के [उन्हें] घेरकर, मन दुखित हो जाए, ऐसी बातें कहने पर, उन लोगों ने कुपित हो शाप दिया। [उसके पश्चात्] कुछ महीने बीत जाने पर, दैवयोग से तीर्थयात्रा के लिए जाने की तैयारी कर, मन में उत्साह के उमड़ने पर, गरिमा के साथ अपने-अपने वाहनों में आरूढ़ हो, यादवों ने, १३४ [उ.] चाह कर प्रभास तीर्थ को जाकर उस नदी में स्नात हो, उदारता के साथ अवारित भक्ति के साथ वहाँ देव-मुनि-तर्पण, पितृ तर्पण कर, नये बछड़ों के साथ सुशोभित गायों

वारनि भक्ति जेसि नव वत्सलतो बॊलुपार गोवुलन्
भूरि सदक्षिणाकमुग भूसुर कोटिकि निच्चि बॆंडियुन् ॥ 135 ॥

कं. अजिन पट रत्न कंबळ, रजत महारजत तिल धरा वर कन्या
गज तुरग रथ मुलुनु स, द्द्विज कोटिकि निच्चॆ वॆंपु दीपिपंगन् ॥136॥

व. इट्लु सफलंबुलैन भूदानंबु मॊदलुगा गल दानंबु लनूनंबुगा भगवदर्पण बुद्धि जेसि यनंतरंबु ॥ 137 ॥

अध्यायमु—४

ते. ऎंसगु मोदंबु संधिल्ल निष्टमैन,
रसिक मृदुलान्न मर्थि वारणलु सेसि
मंजुलासव रसपान मत्तुलगुचु,
गणगि यन्योन्य हास्य वाक्यमुल गलगि ॥ 138 ॥

व. तमलोन मदिरापान मद विघूर्णित ताम्र लोचनुलै मत्सरंबुल नॊंडॊरुलं बॊडिचि समस्त यादवुलु वेणुजातानलंबुन वद्वंश परंपरलु वहनंबु नॊंदु चंदंबुनं बॊलिसिरि । अंतयुनं गनुंगॊनि कृष्णुं डप्पुडु ॥ 139 ॥

कं. चतुरततो निजमाया
गति जूचि लसद्विलोल कल्लोल समं

को भूरि दक्षिणा के साथ भूसुर-कोटि (ब्राह्मणों) को प्रदान किया। और, १३५ [कं.] अजिन, पट (वस्त्र), रत्न, कम्बल, चाँदी, महारजत (सोना), तिल, धरा (भूमि), वर-कन्या, गज (हाथी), तुरग (घोड़े), रथ आदि सद्-द्विज-कोटि को, उदारता से दान किया। १३६ [व.] इस प्रकार सफलतापूर्वक भूदान आदि दान को अतिशय रूप से भगवान के प्रति समर्पण-बुद्धि से करने के पश्चात्, १३७

अध्याय—४

[ते.] अत्यन्त आनन्द के साथ इष्ट, रसीले मृदुल अन्नों का प्रेम से भक्षण कर, मंजुल आसव (मद्य) पान से मत्त हो, [उसके प्रभाव से] परस्पर हास-परिहासपूर्ण वाक्यों में लीन होकर, १३८ [व.] अपने-आप में (परस्पर) मदिरापान के मद से विघूर्णित ताम्र-लोचन वाले बनकर, मात्सर्य के साथ, एक-दूसरे को (आयुधों से) चुभोकर, समस्त यादव लोग, वेणु (बाँस)-जात (उत्पन्न) अनल (अग्नि) से उन वंसवनों के जल जाने के समान मर गए। सब देखकर तब कृष्ण ने, १३९ [कं.] चतुराई से अपनी माया की स्थिति देखकर, लसत्-विलोल-कल्लोल (लहरों से)

चित विमल कमल सार,
स्वत जलमुल विहित विधुलु सलिपिन वाडै ॥ 140 ॥

कं. ऑक वृक्ष मूल तलमुन,
नकलंक गुणाभिरामुडासीनुंडै
यकुटिलमति बदरी वन
मुकु ननु बॉम्मनुचु मोंड्रगि पोयिन मेनुन् ॥ 141 ॥

कं. क्रममुन निजकुल संहा, रमु सेय गणंगु टॅड्रिगि रमणीय श्री
रमणु चरणाब्ज युग विर, हमुनकु मदि नोर्व लेक यनुगमनुडनै ॥ 142 ॥

कं. हरि नरयुचु जनि चनि यॊक, तरुमूल तलंबु नंदु दन देहरुचुल्
गिड्रिकॊन नुन्न महात्मुनि, बरुनि ब्रपन्नार्ति हरुनि भक्तविधेयुन् ॥ 143 ॥

व. मरियुनु ॥ 144 ॥

सी. अस्मत्प्रियस्वामि नच्युतु बरु सत्त्व गुण गरिष्ठुनि रजोगुण विहीनु
सुरुचिर द्वारकापुर समाश्रयु ननाश्रयु नील नीरव श्याम वर्णु
दळ दरविंद सुंदर पत्रनेत्रु लक्ष्मीयुतु बीत कौशेय वासु
विलसित वामांक विन्यस्त दक्षिण चरणारविंदु शश्वत्प्रकाशु

ते. घन चतुर्भाहु सुंदराकारु धीरु,
जॅन्नु गल लेत रावि पै वॅन्नु मोपि

संमचित (युक्त) [तथा] विमल कमलों से भरे सरस्वती [नदी] के जल में, विहित विधियों को सम्पन्न कर, १४० [कं.] एक वृक्ष के मूल में अकलंक (निर्मल) गुणों से अभिराम होनेवाला, आसीन हो, निष्कपट भाव से मुझे बदरीवन को जाने की आज्ञा देने पर [मैं गया था] ऐसा धोखा दे जाने पर, १४१ [कं.] क्रमशः अपने कुल का संहार करने सन्नद्ध होते देखकर, रमणीय श्रीरमण के चरण-कमल-युगल के विरह को मन से सह न सक, [कृष्ण का] अनुगमन करते हुए, १४२ [कं.] हरि को ढूंढ़ते हुए जा-जाकर, एक तरुमूल-तल में (वृक्ष के नीचे), अपनी देह की कान्तियों को प्रकट करते हुए स्थित महात्मा, परात्पर, प्रपन्न की आर्ति को हरण करनेवाले, भक्त-विधेय को, १४३ [व.] और, १४४ [सी.] मेरे प्रिय स्वामी, अच्युत, परात्पर, सत्त्वगुण से गरिष्ठ, तथा रजोगुण से रहित, सुरुचिर (सुन्दर), द्वारकापुर के समाश्रयी, अनाश्रयी, नील नीरद के समान श्याम वर्ण वाले, दलत् (विकासमान) अरविन्द के समान सुन्दर नेत्र वाले, लक्ष्मी-युत, पीत कौशेयधारी, वामांक पर रखे हुए दक्षिण चरण वाले को, सदा प्रकाशित होनेवाले को, [ते.] महान् चार भुजाओं वाले को, सुन्दर आकार वाले को, धीर पुरुष को, सुन्दर वटवृक्ष से पीठ टिकाये वीरासन में स्थित मेरे तात, आनन्द से परिपूर्ण दनुजहर को, १४५ [म.] भवसागर

युन्न वीरास नासीनु गन्न,
तंड्रि नानंद परिपूर्णु दनुज हरुनि ॥ 145 ॥

म. कंटि गंटि भवाब्धि दाटग गंटि नाश्रित रक्षकुन्
गंटि योगी जनंबु डेंदमु गंटि जुट्टमु गंटि मु
क्कंटिकिं गनरानि यौक्कटि गंटि दामरकंटि जे
कौंटि मुक्ति निधानमुं दलकौंटि सौख्यमु लंदगन् ॥ 146 ॥

व. अय्यवसरंबुनं बरम भागवतोत्तमुंडु, मुनिजन सत्तमुंडु, द्वैपायन सखुंडु, परम तपोधनुंडु, नघ शून्युंडु, नखिल जन मान्युंडु, बुधजन विधेयुंडु नगु मैत्रेयुंडु दीर्थाचरणंबु सेयुचुं जनि चनि ॥ 147 ॥

म. कनियें दापस पुंगवुं डखिल लोकख्यात वर्धिष्णु शो-
भन भास्वत्परिपूर्ण यौवन कळा भ्राजिष्णु योगींद्र हृ-
द्वन जातैक चरिष्णु गौस्तुभ मुखोद्यद्भूपणालंकरि-
ष्णु निर्लिपाहित जिष्णु विष्णु प्रभविष्णुं गृष्णु रोचिष्णुनिन् ॥ 148 ॥

कं. तदनंतरंब हरि दन, हृदयाब्जमु नंदु मुकुळितेक्षणमुन स-
म्मदमुन जूचुचु नानत, वदनुंडै युंडे मुदमु वरलग ननघा ! ॥ 149 ॥

व. अंत डग्गर नेतेंचि युन्न मैत्रेयुंडु विनुचुंड दरहास-चंद्रिका-सुंदर-वदनार-विंदुंडुनु, नानंद सुधानिष्यंद कंदळित हृदयुंडुनु, भक्तानुरक्त

को पार करते हुए देखा, आश्रित रक्षक को देखा, योगीजन के हृदय को देखा, वन्धु को देखा, शिव को भी दिखाई न पड़नेवाले को, एकमात्र (अद्वितीय) को देखा, कमल-नयन वाले को देखा, मुक्ति-धाम को [परम] सौख्य के साथ मैंने प्राप्त किया। १४६ [व.] उस अवसर पर, परम भागवतों में उत्तम, मुनिजन में सत्तम (श्रेष्ठ), द्वैपायन का मित्र, परम तपोधनों, अघशून्य (पाप-रहित), अखिल जन से मान्य, बुधजनों का विधेय (विनम्र) होनेवाला मैत्रेय तीर्थाचरण करते हुए [दूर-दूर] जा-जाकर, १४७ [म.] तापसपुंगव (मैत्रेय) ने अखिल लोकों में विख्यात रूप से वर्द्धिष्णु (प्रवर्द्धित होनेवाले) को, शोभन (शुभ)-भास्वत (प्रकाशमान) परिपूर्ण यौवन-कला से भ्राजिष्णु (सुशोभित होनेवाले) को योगीन्द्रों के हृदय रूपी वन में एक होकर चरिष्णु (विचरण करनेवाले) को, कौस्तुभ आदि उद्यत्-भूषणों से अलंकरिष्णु (अलंकृत होनेवाले) को, निर्लिप (देवताओं) के अहित (शत्रुओं) के जिष्णु (जीतनेवाले) को, विष्णु, प्रभविष्णु (सृष्टिकर्ता); कृष्ण, रोचिष्णु (प्रकाशित होनेवाले) को देखा। १४८ [कं.] अनघ ! उसके पश्चात् हरि अपने हृदय-कमल में मुकुलित-ईक्षणों (निमीलित दृष्टियों) से देखते हुए, आनत वदन वाला हो, आनन्द से रहा। १४९ [व.] तब समीप पहुँचे हुए मैत्रेय के सुनते रहने

दयासक्त विलोकनुंडुनु नगु पुंडरीकाक्षुंडु नन्नु निरीक्षिंचि यिट्लनि यानतिच्चें। पूर्व भवंबुन वसुब्रह्मलु सेयु सत्रयागंबुन वसुवै भवदीय हृदयंबुन नितर पदार्थंबुल गोरक मदीय पादारविंद सेव गाविंचितिवि। कावुन दन्निमित्तंबुल नेनु नी हृदयंबुन वसियिंचि समस्तंबुनुं गनुंगोंदु। आत्मारामुंड नैन नन्नु नेव्वरेनि सदसद्विवेकुलै येरुंगं जालरु वारलकु नेनु नगोचरुडनै युंदु। मत्परिग्रहंबु गल नीकु नी जन्मंबे कानि पुनर्भवंबु लेंदकुंडुटकु भवदीय पूर्वजन्म सुकृत विशेषंबु कतन नी याश्रमंबुन मत्पदार विंद संदर्शनंबु गलिगें। अदियुनुं गाक पद्मकल्पंबुनंदु मन्नाभिपद्म मध्य निषण्णुंडैन पद्मसंभवुनकु जन्म मरणादि संसृति निवर्तकंबु नविर तानश्वर सौख्य प्रवर्तकंबुनगु मन्महत्त्वंबु देलियं जेसि नट्टि दिव्य ज्ञानंबु नीकु नेरिंगितु ननि यम्महनीय तेजोनिधि यानतिच्चिन सुधासमान सरसालापंबुलु गर्ण कलापंबुलै मनस्तापंबुनं बापिन रोमांच कंचुकित शरीरुंडनु, नानंद बाष्प धारा सिक्त कपोलुंडनु, परितोष सागरांत र्निमग्न मानसुंडनु नै यंजलि पुटंबु निटल तटंबुन घटियिंचि यिट्लंटि॥ 150॥

पर, दरहास चन्द्रिकाओं से, सुन्दर-वदन-अरविन्द वाले और आनन्द-सुधा के उमड़ने पर पल्लवित हृदय वाले और भक्तों के प्रति अनुरक्त [तथा] दयासक्त विलोकनों वाले, पुंडरीकाक्ष ने मुझे देखकर, इस प्रकार आज्ञा दी। पूर्वभव में वसु-ब्रह्माओं के सत्रयज्ञ करते समय वसु के रूप में [तुमने] अपने हृदय में किसी पदार्थ की चाह न करते हुए मदीय (मेरे) चरण-कमलों की सेवा की थी। इसलिए उस कारण से मै तुम्हारे हृदय में वास कर सब कुछ देखता रहूँगा। आत्माराम बने हुए मुझे कोई भी सद्-असद्-विवेकी हो जान नहीं पाता। मैं उनके लिए अगोचर ही रह जाता हूँ। मेरे परिग्रहण से युक्त तुम्हें इस जन्म के अतिरिक्त पुनर्जन्म नहीं होगा, [यह इसलिए कि] भवदीय पूर्व जन्म का सुकृत (पुण्य)-विशेष के कारण इस आश्रम (संन्यास) में मेरे पदारविंदों क संदर्शन [तुम्हें प्राप्त] हुए। इसके अतिरिक्त पद्मकल्प में मेरे नाभि पद्म के मध्य मे निषण्ण (स्थित) पद्मसम्भव (ब्रह्मा) को मेरे महत्त्व को (मैंने) विदित किया था। ऐसा दिव्य ज्ञान तुम्हें विदित करूँगा। ऐसा कहते हुए महनीय तेजोनिधि के आज्ञा देने पर सुधा-समान सरस-आलापो (-भाषण) के कर्ण-कलाप (कानों के लिए भूषण) होने पर मन के ताप मिटा देने पर, मैं रोमांच रूपी कंचुक से युक्त शरीर वाला, आनन्दाश्रु की धाराओं से भीगे कपोल वाला, आनन्द-सागर में निमग्न मानस वाला हो, अंजलिपुट (हाथ जोड़कर) को निटलतट (माथे) पर लगाकर, प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहा। १५० [कं.] हे पुरुषोत्तम! तुम्हारे

कं. पुरुषोत्तम ! नी पद सर, सिरुह ध्यानामृताभिषेक स्फुरणन्
गर मॊप्पिन ना चित्त मि, तर वस्तुवु लंदु वांछ दगुलुनॆ यॆटुन् ।। 151 ।।

चं. जननमु लेनि नीवु भव संगति नॊंदुट केमि कारणं
बनियुनु गाल संहरुडवै जगमुल् विलयिंचु नीवु पा
यनि रिपु भीतिकं सरिदुदंचित दुर्गमु नाश्रयिंचु टॆ-
ट्लनियुनु देव ! नामनमु नंदु दलंतु सरोजलोचना ! ।। 152 ।।

व. अदियुनुं गाक ।। 153 ।।

कं. श्री रमणीश्वर ! नी वा, त्मारामुंड वय्यु लील दरुणी कोटि
गोरि रमिंचिति वनियुनु, बारक ये दलतु भक्तवत्सल ! कृष्णा ! ।।154।।

कं. परतत्त्वज्ञुलु गरुणा, कर ! नी लोकावनैक घनत दलपगा
सरसि ननु गाचुटॆ तदि, करमरुदे दलचि चूड गमलाधीशा ! ।। 155 ।।

व. देवा ! नी वखंडित विज्ञान रूपांतः करुणुंड वय्युनु मुग्ध भावंबुनं बमत्तुनि चंदंबुन विमोहि कैवडि ब्रवर्तिपुचु नॆंदेनियु नॊदिगि युंडुटं दलंचि ना डॆंबबु गुंदुचुंडु । अरविंद लोचन ! सुरवंदित ! मुकुंद ! इंदिरासुंदरी रमण ! सरस्वती रमणुनकुं गरुणिंचिन विज्ञानंबु धरियिंचु शक्ति नाकुं गल देनि गृपसेयुमु । भवदीय शासनंबु धरियिंचि भूरि संसार

चरण-सरसीरुह के ध्यानामृत से अभिषिक्त हो, अधिक सुविलसित होनेवाले मेरे चित्त में अन्य वस्तुओं के प्रति इच्छा कहीं क्योंकर होगी ! १५१ [चं.] हे देव ! हे सरोजलोचन ! जन्म-रहित (अजन्मा) हो तुम्हारे भव (संसार)-संगति करने का कारण क्या हो सकता है ? काल के रूप में संहार कर, जगतों का विलय करनेवाले, तुमने निरंतर के शत्रुभय से सरित्-उदंचित दुर्ग का आश्रय क्यों लिया ? ऐसा अपने मन में मैं सोचता हूँ। १५२ [व.] इसके अतिरिक्त, १५३ [कं.] भक्तवत्सल ! कृष्ण ! श्रीरमणीश्वर ! तुम आत्माराम होकर भी, लीला के कारण, तरुणी कोटि से इच्छा कर रमण किया था। ऐसा मैं सदा सोचता हूं। १५४ [कं.] हे कमलाधीश ! हे करुणाकर ! परतत्त्व के ज्ञानी तुम्हारे लोकों की रक्षा की महत्ता के बारे में विचार करते हैं [तब] मेरी रक्षा करना (तुम्हारे लिए) कोई बड़ी बात नही है। १५५ [व.] देव ! तुम अखण्डित विज्ञान स्वरूपी अन्तःकरण वाले होकर भी, मुग्ध भाव से, प्रमत्त की रीति, विमोही की भाँति, प्रवर्तित होते हुए (आचरण करते हुए) कहीं सिकुड़कर स्थित होते देखकर मैं चिन्तित होता हूँ। हे अरविन्द लोचन वाले ! सुरवन्दित ! मुकुन्द ! इन्दिरा सुन्दरी (लक्ष्मी) के रमण (पति) ! सरस्वती रमण (ब्रह्मा) को करुणा से प्रदान किये हुए विज्ञान को धारण करने की शक्ति यदि मुझमें है, तो कृपा कीजिए। भवदीय शासन (आज्ञा) को धारण कर

पारावारोत्तरणंबु सेयुदु ननि विश्नविंचि बहुभंगुलं ब्रस्तुतिंचिन भगवंतुडुनु,
प्रसन्न पारिजातंबुनु नैन कृष्णुंडु परत्तत्त्व निर्णयंबु नेर्पिगिंचिन ॥ 156 ॥

कं. सरसिजलोचन करुणा, परिलब्ध ज्ञान कलित भावुड नगुटन्
बरतत्त्ववेदिनै त, च्चरण सरोजमुल कॅड्रगि सम्मतितोडन् ॥ 157 ॥

कं. हरिपद जलरुह विरहा
तुर घन दुर्दांत दुःख तोयधि गडवन्
वेर वेदि तिरुग वलसॅनु,
सरसिज भव कल्प विलय समयमु दाकन् ॥ 158 ॥

व. इट्लु दिरुगुचु ॥ 159 ॥

म. नर नारायण तापसाश्रम पदोन्नत्यंबुनं बॉल्चु भा-
सुर मंदार रसाल साल वकुळाशोकाम्ल पुन्नाग के-
सर जंबीर कदंब निंब कुटजाश्वत्थ स्फुर न्मल्लिका
करवीर क्षितिजा भिराम बदरी-कांतार सेवारतिन् ॥ 160 ॥

कं. चनुचुन्न वाडननि प
ल्किन पलुकुल कुलिकि कळवळिपुचु विदुरुं
डनुपम शोकार्णवमुन,
मुनिगियु निजयोग सत्त्वमुन दरियिंचॅन् ॥ 161 ॥

भूरि (अति विशाल) संसार-पारावार (सागर) को पार करूँगा। ऐसा अनेक प्रकार से स्तुति करने पर भगवान, प्रपन्न-पारिजात कृष्ण ने परतत्त्व के निर्णय का ज्ञान करवाया। १५६ [कं.] सरसिज-लोचन वाले की करुणा से परिलब्ध (प्राप्त) ज्ञान से सुसम्पन्न होने से, परतत्त्व वेदी हो, उसके चरण-कमलों में नत होकर, सद्बुद्धि के साथ, १५७ [कं.] हरि के चरण-जलरुहों के विरह से आतुर हो, घन-दुर्दान्त (दुस्तर) दुःख-तोयधि (सागर) को पार करने के लिए उपाय न जानकर सरसिजभव (ब्रह्मा) के कल्प के विलय समय तक, घूमते रहना पड़ा। १५८ [व.] ऐसा भ्रमण करते हुए, १५९ [म.] नरनारायण [नामक] तपस्वियों के आश्रम को उन्नत स्थिति से भासित होनेवाले भासुर मन्दार, रसाल, साल, वकुल, अशोक, आम्ल, पुन्नाग, केसर, जम्बीर, कदम्ब, निम्ब, कुटज, अश्वत्थ, स्फुरत् मल्लिका, करवीर [आदि] वृक्षों से अभिराम बने बदरी कान्तार (वन) की सेवा (दर्शन) करने की रति (प्रेम) से जा रहा हूँ। १६० [कं.] ऐसा कहने पर विदुर विचलित हो, व्याकुल हो, अनुपम (अत्यन्त) शोक-आर्णव (सागर) में डूबकर अपने योग के बल से [दुःखसागर को] तर गया। (धन्य हुआ)। १६१ [व.] इस प्रकार शोकाग्नि को अपने विवेक रूपी

व. इट्लु विदुरुंडु शोक पावकुनि वन विवेक जलंबुल नार्पि युद्धवुन किट्लनियॆ ॥ 162 ॥

म. अनघा ! युद्धव ! नीकु गृष्णु डसुरेंद्राराति मन्निंचि चॆ
प्पिन यध्यात्म रहस्य तत्त्व विमलाभिज्ञान सारंबु वो
रन नन्नुं गरुणिंचि चॆप्पिन गृतार्थत्वंबुनुं बॊंदॆदन्
विनु पुण्यात्मुलु शिष्य संघमुल नुर्वि न्नोवरे वॆंडियुन् ॥ 163 ॥

क. भगवद्भक्तुलु सुजनुलु, दगवॆरिंगि परोपकार तात्पर्य विवे-
क गरिष्ठुलॆ चरितुरु, जगति वॆपॊंदि वृष्णिसत्तम ! यॆंदुन् ॥ 164 ॥

कं. अनवुडु नुद्धवु डिव्विदु, रुन किट्लनु ननघ! मुनिवरुडु साक्षा द्वि-
ष्णु निभुंडगु मैत्रेयुडु, दन मनमुन मनुजगति वदल दलचि तगन् ॥155॥

कं. हरि मुरभेदि वरापरु, गरुणाकरु दलचु नट्टि घनु डम्मुनि कुं-
जरु कड केगिन नातडु, गर मर्थि दॆलुपु सात्त्विक ज्ञानंबुन् ॥ 166 ॥

व. अनि युद्धवुंडु विदुरं गूडि चनि चनि ॥ 167 ॥

उ. मुंदट गांचॆ नंत वुधमुख्युडु हल्लक फुल्ल पद्म नि-
ष्यंद मरंद पान विलस न्मद भृंग, जलत्तरंग, मा-

जल से बुझाकर विदुर ने उद्धव से इस प्रकार कहा । १६२ [म.] हे अनघ ! उद्धव ! असुरेन्द्र-आराति (राक्षस-शत्रु) कृष्ण ने आदर भाव से तुम्हें जो अध्यात्म के रहस्य-तत्त्व तथा विमल विज्ञान के सार को बताया था, उसे कृपा कर मुझे तुरन्त कह दो तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ । सुनो ! पुण्यात्मा लोग उर्वी पर अपने शिष्यसंघ की रक्षा करते ही हैं न ! और १६३ [कं.] वृष्णिसत्तम ! भगवद्भक्त [लोग], और सुजन [लोग] धर्म को जानकर, परोपकार-तात्पर्य (बुद्धि) से विवेक की गरिमा से संचार करते हुए सदा जगत में प्रवृद्ध होते हैं । १६४ [कं.] (ऐसा) कहने पर, तब उद्धव ने विदुर से इस प्रकार कहा कि अनघ, मुनिवर, साक्षात् विष्णु के समान मैत्रेय ने अपने मन में मनुष्य की दशा को समुचित रूप से छोड़ना चाहते हुए [स्थित है], १६५ [कं.] हरि, मुरभेदी, परात्पर, करुणाकर का ध्यान करनेवाले घन (महान्) उस मुनिकुंजर के यहाँ पहुँचोगे तो [वह] अधिक इच्छा से सात्त्विक ज्ञान को विदित करेगा । १६६ [व.] ऐसा [विचार कर] उद्धव विदुर को साथ लेकर चल-चलकर, १६७ [उ.] अपने सम्मुख तब वुध-प्रमुख (उद्धव) ने हल्लक (कुमुदिनी), फुल्ल (विकसित) पद्मों से उमड़नेवाले मरन्द का पान कर विलसित मद से उन्मत्त भृंग वाली, जल-तरंगों वाली, माकंद, लवंग, लुंग के लतिका-समूह की संगति से युक्त, आश्रित सुरांगनाओं को आनन्द प्रदान करने में समर्थ पुण्य संगति-वाली, भव को भंग

कंद लवंग लुंग लतिकाचय संग, सुरांगना-श्रिता
नंदित पुण्य संग, यमुनन्, भव भंग, शुभांग नमिलिन् ॥ 168 ॥

कं. कनि डायनेगि मोदं, बुन दत्सरि-दमल-पुलिन-भूमुल दग ना
विन शेषमु निवसिचेंनु, वनजोदर-पाद-पद्मवश-मानसुडै ॥ 169 ॥

कं. मरुनाडु रेपकड भा, सुर पुण्युडु घनुडु मधु-निषूदन-चरण
स्मरण-क्रीडा-कलितुडु, दरियिचेंन् गलुष-गहन-दमनन् यमुनन् ॥ 170 ॥

व. इट्लुद्धवुंडु यमुनानदि नुत्तरिंचि बदरिकाश्रमंबुनकुं जनियें। अनिन विनि राजेंद्रुंडु योगींद्रुन किट्लनियें ॥ 171 ॥

कं. शौरियु नतिरथ - वरुलु म
हारथ समरथुलु यदु बलाधिपुलेल्लन्
पोरि मृति बोंद नुद्धवु,
डे रीतिन् ब्रतिकें नाकु नेंरिगिंपु तगन् ॥ 172 ॥

सी. नावुडु राजेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुडिट्लनु मुनु परमेष्ठि चेत
संप्रार्थितुंडैन जलरुहनाभुंडु वसुमति पै यदुवंश मंदु
नुदयिंचि तनु दान मदिलोन जिंतिचि तेलिवोंदि यात्मीय कुल विनाश
मोनरिंचि तानु बंचोपनिषण्मयमगु दिव्य देहंबु नंदु जेंद

ते. दलचि विज्ञान तत्त्वंबु धरणी मीद,
दाल्चि जनकोटि केंरिगिंप दगिन धीरु

करनेवाली, शुभांगा यमुना को प्रेम के साथ देखा। १६८ [कं.] आनन्द के साथ, देखकर, निकट जाकर, उस नदी की पुलिन भूमियों में समुचित रूप से वनजोदर (विष्णु) के चरण-कमलों को मन मे धारण कर उस शेष दिन को बिताया। १६९ [कं.] दूसरे दिन प्रातःकाल ही पुण्य के प्रकट मूर्ति वाले, घनात्मा, मधु [राक्षस] का निषूदन (वध) करनेवाले के चरणों के स्मरण रूपी क्रीड़ा मे रमे रहनेवाले ने कलुष-दहन का दमन करनेवाली, यमुना को पार किया। १७० [व.] इस प्रकार उद्धव यमुना नदी को पार कर, बदरिकाश्रम को गये। ऐसा सुनकर राजेन्द्र ने योगीन्द्र से इस प्रकार कहा (पूछा)। १७१ [कं.] शौरी (कृष्ण), अतिरथ, महारथ, समरथ समस्त यदु बलाधिपों के लड़कर मृत हो जाने पर उद्धव किस प्रकार जीवित रहा। समुचित रीति से विदित करो। १७२ [सी.] ऐसा कहने पर राजेन्द्र से शुक योगीन्द्र ने इस प्रकार कहा कि पूर्व में परमेष्ठि से प्रार्थित होकर, जलरुह-नाभ (विष्णु) ने वसुमती (धरती) पर यदुवंश में उदित होकर, फिर स्वयं अपने मन में विचार कर, जाग्रत् हो, अपने कुल का विनाश कर, स्वयं भी पंचोपनिषन्मय (पाँच उपनिषदों के आधार पर बनी) दिव्य-देह को प्राप्त होने का विचार कर, [ते.] विज्ञान तत्त्व को धारण कर,

इद्धबुड् दक्क नितरु ले नोप रितड्
निर्जितेंद्रियु डात्मसन्निभु डटंचु ॥ 173 ॥

कं. क्षितिपै निलिपिन कतमुन,
नतनिकि मृति दौरकदय्यें नवनीश! रमा
पति यभिमानमु गलिगन,
यति पुण्युड् चनियें वदरिकाश्रममुनकुन् ॥ 174 ॥

व. अंत ॥ 175 ॥

कं. उद्धवु डरिगिन बिदप स, मिद्ध परिज्ञानु सुजनहितु मैत्रेयुन्
वृद्धजन-सेव्यु दापस, वृद्धश्रवु जूडगोरि विदुरुड् गणकन् ॥ 176 ॥

व. यमुना नदि दाटि कतिपय प्रयाणंबुल बुण्यनवुलु हरि क्षेत्रंबुलु दर्शिपुचु नति त्वरित गमनंबुन ॥ 177 ॥

कं. चनि चनि मुंदट गनुगोनें, घन पाप तमः पतंग गरुणापांगन्
गनदुत्तुंग तरंगन्, जनवरनुत वहुळपुण्य संगन् गंगन् ॥ 178 ॥

कं. अंदु नरविंद सौरभ, नंदित पवमान धूत नट-दूर्मि परि-
स्पंदित कंदळ शीकर, संदोह लसत्प्रवाह जल मज्जनुडै ॥ 179 ॥

सी. घनसार रुचि वालुका समुदंचित सैकत वेदिका स्थलमु नंदु
यम नियमादि योगांग क्रिया निष्ठ वूनि पद्मासनासीनुडगुचु

धरती पर जनकोटि को विदित करने योग्य धीर पुरुष उद्धव के अतिरिक्त अन्य कोई नही है। यह जितेन्द्रिय तथा आत्मसन्निभ (मेरे समान) है ऐसा समझकर, [उसे] १७३ [क.] क्षिति (धरा) पर स्थित (जीवित) रखने के कारण, वह मृत न हुआ। हे अवनीश! रमापति के प्रेम को प्राप्त किया हुआ वह राजा जो अति पुण्यपुरुष था, वदरिकाश्रम को गया। १७४ [व.] तब, १७५ [कं.] उद्धव के जाने वाद समिद्ध (उद्‌बुद्ध) ज्ञान वाला, सुजनों का हित करनेवाले, वृद्ध जनों से सेव्य, तापस जनों में वृद्धश्रव (इन्द्र) मैत्रेय को देखने की इच्छा से विदुर सप्रयत्न। १७६ [व.] यमुना नदी को पार कर, कतिपय [दिन] यात्राएँ कर, पुण्यनदियों एवं हरिक्षेत्रों के दर्शन करते हुए, अतित्वरित गति से, १७७ [कं.] चल-चलकर, अत्यधिक पाप रूपी अन्धकार के लिए पतंग (सूरज), करुणा [पूरित] अपांग (चितवन) वाली, चंचल उत्तुंग तरंगों वाली, जनवर (श्रेष्ठजनों) से संस्तुत, वहुल पुण्यसंगतिवाली गंगा को अपने सम्मुख देखा। १७८ [कं.] उसमें अरविन्दों (कमलों) के सौरभ से आनन्दित हो, पवमान से ऊपर से ऊपर उड़ाई गई नटत (नृत्य करती) ऊर्मियों से परिस्पन्दित कंदल-शीकर-समूह से लसत (सुन्दर) जल-प्रवाह में मज्जन (स्नान) कर, १७९ [सी.] घमसार (कर्पूर) सम वालुका (रेत) के समुदंचित वेदिका-स्थल पर,

हरिपाद सरसीरुह न्यस्त चित्तुडै बाह्येंद्रिय व्यापित बारु दोलि
सकल विद्वज्जन स्तवनीय समुचिताचार व्रतोपवासमुल ग्रुस्सि

ते. युन्न पुण्यात्मु, विगत वयो विकारु,
विनुत संचारु, भुवन पावन विहारु
योगिजन - गेयु, सत्तति - भागधेयु,
नाश्रित विधेयु मैत्रेयु नपुडु गांचें ॥ 180 ॥

अध्यायमु—५

विदुर मैत्रेय संवादमु

व. इट्लु गनुंगोनि यम्मुनींद्रुनि पादंबुलकुं ब्रणमिल्लि मुकुळित हस्तुंडै यिट्लनियें। मुनींद्रा ! लोकंबुन सकल जनंबुलु मनंबुल घनंबुलगु सौख्यंबु लंदं दलंचि तत्फल-प्राप्ति हेतुवुलैन कर्मंबु लाचरिंचि दैवोपहतुलै तत्कर्मंबुल चेत निष्फलारंभुलगुदुरु। कर्मंबुलु बंध करंबुलु, दुःख हेतुवुलुं गानि सौख्यदायकंबुलै पापनिष्कृति जेय नोपवु। अदि यट्लुंडे। भूरि दुःखानुसारंबैन संसार चक्रंबुनं बरिभ्रमिपुचुं गाम विमोहितुलै

पद्मासन में उपविष्ट हो, यम-नियम आदि योगांग-क्रिया को निष्ठा से धारण कर, हरि के चरण-कमलों में चित्त को न्यस्त (रख) कर, बाह्य इन्द्रियों के प्रसार को दूर कर, सकल विद्वज्जनों से स्तवनीय समुचित आचार, व्रत तथा उपवासों से कृशीभूत होकर, [ते.] स्थित पुण्यात्मा, वयोविकारों से विगत (दूर) बने, शुद्धाचरणवाले हो, भुवन को पावन करते हुए संचार करनेवाले, योगिजनों द्वारा गेय (स्तुत्य), (तथा) सज्जनों के भागधेय बने हुए, आश्रितों के लिए विधेय (विनम्र सेवक) के रूप में स्थित मैत्रेय को तब देखा। १८०

अध्याय—५

विदुर तथा मैत्रेय का सम्भाषण

[व.] इस प्रकार दर्शन कर, उस मुनीन्द्र के चरण में प्रणाम कर, मुकुलितहस्त (हाथ जोड़कर) बनकर, इस प्रकार कहा। हे मुनीन्द्र ! लोक में सकलजन [अपने मन में घनतर सुखों को प्राप्त करने की इच्छा कर, उस फल-प्राप्ति के लिए हेतु रूपी कर्म कर, दैवोपहत हो, उन्हीं कर्मों के द्वारा निष्फल बने आरम्भ (प्रयत्न) वाले होते हैं। कर्म बन्धन-कारक तथा दुःख-हेतु हैं, किन्तु सौख्यों (सुखों) के प्रदायक होकर, पाप की निष्कृति नहीं कर सकते। अस्तु, अत्यधिक दुःख के अनुसरण करनेवाले संसार-चक्र

पूर्व कर्मानुगतबुलैन शरीरंबुलु दाल्चुचु जच्चचु मरलं बुट्टुचु नैंतकालं-
बुनकुं बापनिष्कृति गानक मातृ-यौवन-वन-कुठारुलै जनियिंचि वर्तिचु
मूढात्मुलं वशुप्रायुल रक्षिचुकोरकु गावे नारायण परायणुलैन मी वंटि
पुण्यात्मुलु लोकंबुनं जरियिंचुट। अदियुनुं गाक ॥ 181 ॥

म. अविवेकानुगत स्वकार्य जलपूराकीर्णमै मित्र बं-
धु वधू पुत्र जल ग्रहोग्रयुतमै दुर्दांतमै नट्टि दु-
र्भव पाथोधि दरिंचु वारे हरि-संबंध-क्रिया-लोल-भा-
गवतानुग्रह नाव लेनि यधमुल् कल्याण-संधायका! ॥ 182 ॥

कं. मुनिनाथ - चंद्र! ननु गै
कोनि काचु तलंपु बुद्धि गूडिन येनिन्
विनुमु मदीप्सित मदि ना,
चनवुन गाविपु मय्य सज्जन-तिलका! ॥ 183 ॥

व. अनि वेंडियु विदुरुंडु मैत्रेयुं जूचि मुनींद्रा! त्रिगुणात्मक माया नियंत यगु
भगवंतुंडु स्वतंत्रुं डगुचु नवतरिंचि येय्ये यवतारंबु लंदु नेय्ये कर्मंबु
लाचरिंचें? निष्क्रियुंडगु नीशुंडु मोदल प्रपंचंबु ने विधंबुनं गल्पिचें?
एपगिदि दीनि बालिचें? मरियु नी विश्वंबु नात्मीय हृदयाकाश गतमुं

में परिभ्रमण करते हुए, काममोहित होकर, पूर्व कर्मों के अनुरूप शरीर धारण करते हुए, मरते हुए और फिर जन्म लेते हुए, अन्तकाल तक पाप से निष्कृति को प्राप्त न कर, मातृ-यौवनवन के लिए कुठार के रूप में जन्म लेकर संचार करनेवाले मूढ़ात्माओं एवं पशुप्राय [लोगों] की रक्षा करने के लिए ही तो आप-जैसे नारायण-परायण पुण्यात्मा दुनिया में संचार करते हैं। उसके अतिरिक्त, १८१ [म.] हे कल्याण-संधायक! अविवेक के अनुगत (प्रवाह) अपने कार्य रूपी जल से भरे रहकर, मित्र, बन्धु, वधू (पत्नी), पुत्र रूपी जलग्रहों से युक्त हो, दुर्दान्त (दुस्तर) दुर्भव रूपी सागर को, हरि-सम्बन्धी क्रियाओं में निमग्न [रहनेवाले] अधम भागवत (भक्तों) के अनुग्रह रूपी नाव से रहित कहीं तर (पार जा) सकते हैं। १८२ [कं.] मुनिनाथचन्द्र! मुझे अपनाकर, रक्षा करने का विचार यदि आपके मन में है तो सुनो, हे सज्जनतिलक! मेरे प्रति प्रेम के कारण मेरे मन की इच्छा की पूर्ति करो। १८३ [व.] और फिर विदुर ने मैत्रेय को देखकर कहा है कि मुनीन्द्र! त्रिगुणात्मक माया का नियन्ता भगवान ने स्वतंत्र हो अवतरित होकर किन-किन अवतारों में कौन-कौन से कार्य किये? [निष्क्रिय रहनेवाले ईश्वर ने] पहले संसार को किस प्रकार कल्पित किया (बनाया)? किस रीति से इसका पालन किया? [और इस विश्व को] अपने हृदयाकाश में समाकर, निवृत्त वृत्ति वाला हो योगमाया में कैसा

जेसि निवृत्त वृत्ति यगुचु योगमाय यंदु नॅट्लु वसियिंचॅं? ब्रह्मांडंबु नंदु ने लील वर्तिचॅं? अंदु ब्रह्मादि रूपंबुलं बॊंदि बहु प्रकारंबुल नॅट्लु ग्रीडिंचॅं? भूसुर गो सुरादुल बरिरक्षिचुटकै मत्स्याद्यवतारंबुलु धरियिंचि यॅय्ये प्रयोजनंबुलं दीर्चॅं? पयोरुह गर्भांड कटाहांतर्गतंबुलै लोकपाल सहितंबुलैन लोकंबुल लोकालोक पर्यंतंबुल बहिर्भागंबुल नॅय्ये तत्त्व भेदंबुल ने तॅरंगुनं बुट्टिचॅं? अंदु बतीतं बगु जीवकोटि यॅव्वनि गॊलिचि ब्रतुकु? जनुलकुं गर्म नाम रूप भेदंबु लॅट्लु निर्देशिचॅं? इंतयु सविस्तरंबुगा विवरिंपुमु। उत्तम श्लोक मौळि मंडनुंडु योगीश्वरेश्वरुंडु नैन पुंडरीकाक्षुनि चरित्र श्रवणंबुनं गानि जन्म मरणादि सकल दुःखाकरंबुलु, दुष्कर्म प्राप्तंबुलु नगु भव-बंधंबुलु दॆगवनि वॅंडियु निट्लनियॆ ॥ 184 ॥

त. सततमुन् सरसीरुहोदर सत्कथामृत पूरमुन्
श्रुति पुटांजलि चेत निम्मुल जुर्रियुं दनिवोदु भा-
रत कथामिष मूनि विष्णु बराशर प्रिय सूति स-
न्मति नुतिचिन चोट सन्मुनि-नाथ! ना मदि नुब्बुन् ॥ 185 ॥

कं. इतर कथाकर्णनमुल, नति हेयत नॊंदॆ जित्त मनघात्म! रमा-
पति चरितामृत रति सं, सृति वेदन लॅल्ल बाय जेयु मुनींद्रा! ॥ 186 ॥

रहा? ब्रह्माण्ड में किस प्रकार की लीला की? उसमें ब्रह्मादि रूपों को प्राप्त कर, क्रीड़ा कैसे की? भूसुर [तथा] गोसुरादि की रक्षा करने के लिए मत्स्य आदि अवतारों को धारण कर, किन-किन प्रयोजनों को सिद्ध किया? पयोरुहगर्भ (ब्रह्मा) अण्ड रूपी कटाह के अन्तर्गत हो [लोकपालो के सहित] लोकों में लोक तथा अलोक तक के बहिर्भागों को किन तत्त्व-भेदों से किस प्रकार उत्पन्न किया? उसमें प्रतीयमान होनेवाली जीवकोटि किसकी सेवा कर जीती है? लोगों को कर्म, नाम, रूप-भेद का निर्देश कैसे किया? यह समस्त (सब) सविस्तार विवरण करो। उत्तमश्लोक पुण्यात्माओं का मौलि-मंडन (श्रेष्ठ), योगीश्वरों का ईश्वर पुंडरीकाक्ष (कमल-नयनवाले) के चरित्र के श्रवण के बिना, जन्म-मरण आदि सकल दुःख के आकर (तथा) दुष्कर्म से प्राप्त होनेवाले भवबन्धन कट नहीं जाते। और फिर इस प्रकार कहा। १८४ [त.] हे सन्मुनिनाथ! सतत (सदा) सरसीरुहोदर (विष्णु) की सत्कथा रूपी अमृत के पूर (प्रवाह) को कान रूपी अंजलियों में प्रेम से पी-पीकर अघाता नहीं। भारतकथा के मिस पराशर के प्रिय पुत्र ने सद्बुद्धि से जहाँ विष्णु की स्तुति की वहाँ मैं अपने मन में उत्साहित हो जाता हूँ। १८५ [क.] हे अनघात्मा! मुनीन्द्र! इतर कथाओं के आकर्णन से चित्त अति हेयभाव को प्राप्त हुआ। रमापति के चरित रूपी अमृत से रति (प्रेम) पैदा कर,

ते. भूरि विज्ञान विदुलगु नारदादि,
निर्मलात्मुल कैन वर्णिपरानि
हरिकथामृत पानंबुनंदु विसिवि,
यॊल्ल ननु वाडॆ पो वॆर्रि गॊल्ल डनघ ! ॥ 187 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 188 ॥

सी. अरविंदनाभुनि यपरावतारमै जनन मोंदिन पराशर सुतुंडु
महि नॊप्पु वर्णाश्रमाचार धर्मंबुल् ठवर्णिप लोक विडंबनमुलु
नगु ग्राम्य कथलु पॆक्कर्थि गल्पिचुचु हरिकथा वर्णन मंदुलोन
निचुकिचुक गानि येपंड जॆप्पमि नंचित विज्ञानमात्म निलुव

ते. कुन्न जिंतिचि मरि नारदोपदिष्णु,
डगुचु हरिवर्णनामृत मात्म ग्रोलि
विमल सुज्ञान निधि यन विनुतिकॆक्कि,
धन्युडय्यॆनु लोकैक मान्युडगुचु ॥ 189 ॥

व. कावुन ॥ 190 ॥

कं. सरसिरुहोदरु मंगळ-
चरितामृत मात्म ग्रोलु जनु डितर कथा
गरळमु ग्रोलुनॆ ? हरि सं-
स्मरणमु जीवुलकु नखिल सौख्यद मनघा ॥ 191 ॥

संसृति (संसार) के सारे दुःखों को दूर कर दो। १८६ [ते.] अनघ ! अत्यधिक विज्ञान के ज्ञाता नारद आदि निर्मल आत्मा वाले भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते, ऐसे हरिकथा रूपी अमृत का पान करने में ऊब जाने वाला ही पागल ग्वाला होगा न। १८७ [व.] इसके अतिरिक्त, १८८ [सी.] अरविंद नाम वाले (विष्णु के अपर अवतार के) रूप में जन्म लेकर पराशर-सुत के धरती पर समुचित रीति में वर्णाश्रम-आचार, आचार-धर्मों को प्रवर्तित करने पर, लोगों को धोखे में डालनेवाली अनेक ग्राम्य-कथाओं को चाहकर कल्पित करते हुए, उनमें कुछ-कुछ हरिकथाओं का वर्णन करने पर भी उन्हें स्पष्ट रूप से न कहने पर, अंचित विज्ञान का स्थिर रूप से आत्मा में न टिकते देख, [ते.] चिन्ता कर, फिर नारद से उपदिष्ट होकर, हरिकथामृत को चित्त में पान कर विमल सुज्ञान निधि के रूप में विख्यात हो, धन्य तथा लोकों में एकैक रूप से मान्य हुए। १८९ [व.] इसलिए, १९० [कं.] अनघ सरसिरुहोदर (विष्णु) के मंगल (शुभ) चरित रूपी अमृत को आत्मा से पान करनेवाला जन इतर कथा रूपी गरल को पियेगा क्या ? (नहीं)। जीवों के लिए हरि का स्मरण अखिल सुखदायक है। १९१

कं. श्री ना वनिताधिपनामक,था विमुखुल किहमु परमु दव्वै पिदपं
बोवुदुरु नरकमुनकुन्, वाविरि ने वारि जूचि वगतु मुनींद्रा ! ॥ 192 ॥

कं. ए नरुडे नीक निमिषं, बैन वृथावाद गतिनि हरिपद कमल
ध्यानानंदुडु गाडे, ना नरुनकु नायु वल्पमगु मुनिनाथा ॥ 193 ॥

चं. मृदुगति पुव्वु देनिय रमिपुचु बानमु सेय बारु ष-
ट्पदमुनु बोलि यार्तजन बांधवु विश्वभव स्थिति व्यया-
स्पद महितावतारुडगु पंकरुहोदरु नित्यमंगळ
प्रद गुण कीर्तनामृतमु बायक ग्रोलेद जेप्पवे दयन् ॥ 194 ॥

क. अनि विदुरुडु मैत्रेयुं,
डनु मुनि नायकुनि नडिगॅननि वेदव्या-
सुनि तनयुं डभिमन्युनि,
तनयुनिकि जॅप्पि मरियु दग निट्लनियॅन् ॥ 195 ॥

व. इट्लु विदुरुंडु मैत्रेयु नडिगिन नतं डतनि गनि यति मृदु मधुर वचन रचनंडे यिट्लनियॅं। अनघा ! कृष्ण कथा श्रवण तत्परुंडवै नीवु नन्नडिगितिवि गावुन भद्रं बय्यॅं। नीवु भगवद्भक्तुंडवु गावुन हरिकथा सक्तुंड वगुट चित्रंबु गादु। अदियुनुं गाक मांडव्युनि शापंबुन सात्य

[कं.] मुनीन्द्र ! श्रीवनिता (रमा) के अधिप (विष्णु) के नाम (एवं) कथाओं से विमुख हुए लोगों को इह (यह लोक) तथा पर [लोक] दूर हो जाता है और पश्चात् वे नरक को जाते हैं। ऐसे लोगों को देखकर क्रम से मैं चिन्तित हो जाता हूँ। १९२ [कं.] मुनिनाथ ! एक पल को भी बेकार की चर्चा में न जाने देकर जो [व्यक्ति] हरि-पद-कमलों का ध्यान कर आनन्दित न होता, उस नर के लिए आयु स्वल्प होती जाती है। १९३ [चं.] मृदुलगति से फूल, के मकरन्द में रमण करते हुए, पान करने के लिए दौड़नेवाले षट्पद (मधुकर) की भाँति आर्त्तजनबन्धु, विश्व के भव (उत्पत्ति) स्थिति तथा व्यय (लय) के आस्पद (आधार) महित अवतार वाले पंकरुहोदर (विष्णु) के नित्यमंगल-प्रद गुण-कीर्तन रूपी अमृत को निरन्तर पान करूँगा, कृपा कर सुनाओ न। १९४ [कं.] इस प्रकार विदुर ने मैत्रेय नामक मुनिनायक से पूछा। ऐसा वेदव्यास के तनय (पुत्र) ने अभिमन्यु के तनय (पुत्र) से कहा। इस प्रकार कहकर और उचित रूप से ऐसा कहा। १९५ [व.] इस प्रकार विदुर के मैत्रेय से पूछने पर, उसने उसे देखकर अत्यन्त मृदु तथा मधुर वचन-रचना से ऐसा कहा। हे अनघ ! कृष्ण-कथा सुनने के लिए तत्पर होकर तुमने मुझसे पूछ लिया, इसलिए शुभ ही हुआ। तुम भगवान के भक्त हो, इसलिए हरिकथा में आसक्त रहने में कोई विचित्रता नहीं है। इसके अतिरिक्त

वतेयु वलन भ्रातृक्षेत्रंबुन शूद्रयोनि बुट्टिनट्टि प्रजा संयमनुंडवगु यमुंडवु, परम ज्ञान संपन्नुंडवु। नारायणुनकुं ब्रियतमुंडवु। कावुन गृष्णुडु निर्याण कालंबुनं दन सन्निधिकि जनिन नन्नु डायं जेरि विज्ञानं बॆल्ल नुपदेशिंचि नीकु नॆऱिंगिंपु मनि यानतिच्चुटं जेसि यवश्यंबु नीकु नॆऱिंगितु। दत्तावधानुंडवै विनुमु ॥ 196 ॥

कं. वनजाक्ष योग माया, जनितंबगु विश्व जनन संस्थान विना
शनमुल तॆऱगॊऱिंगिंपुचु, ननघा! विष्णुनि महत्त्व मभिवर्णितुन् ॥ 197 ॥

सी. सकल जीवुल कॆल्ल व्यक्त देहमु नात्म नाथुंडु परुडु नानाविधैक
मृत्युपलक्षण महितुंडु नगु भगवंतुंडु सृष्टि पूर्वंबु नंदु
नात्मीय माया लयंबु नॊंदिन विश्वगर्भुंडै तान यॊक्कटि वॆलुंगु
परमात्मु डभवुं डुपद्रष्ट यय्यु वस्त्वंतर परिशून्यु डगुट जेसि

तॆ. द्रष्ट गाकुंडु माया प्रधान शक्ति,
नतुल चिच्छक्ति गलवाडु नगुचु दन्नु
लेनि वानिग जितंबु लोन दलचि,
द्रष्ट यगु दन भुवन निर्माण वांछ ॥ 198 ॥

तॆ. बुद्धि दोचिन नम्महापुरुष - वरुडु,
गार्य कारण रूपमै घनत कॆक्कि

माण्डव्य के शाप से सात्यवतेय (व्यास) के द्वारा [भ्रातृक्षेत्र में] शूद्रयोनि में पैदा होनेवाले प्रजा को संयमित करनेवाले यम[राज] हो। परमज्ञान से सम्पन्न हो। नारायण के प्रियतम हो। इसलिए कृष्ण के निर्याण के अवसर पर, अपनी सन्निधि में आए मुझे बुलाकर, सकल विज्ञान का उपदेश कर, तुम्हें विदित करने का आदेश दिया था, इसलिए अवश्य तुम्हें विदित करूँगा। ध्यान देकर सुनो। १९६ [कं.] अनघ! वनजाक्ष वाले (विष्णु) की योगमाया से उत्पन्न होनेवाले विश्व के जनन (सृष्टि), संस्थान (स्थिति), विनाश की रीति को विदित करते हुए, विष्णु के महत्त्व का भी वर्णन करूँगा। १९७ [सी.] सकल प्राणियों में व्यक्त शरीर वाले आत्मानाथ, परमात्मा, नाना प्रकार के अति उपलक्षणों से महिमान्वित होनेवाले भगवान, सृष्टि के पूर्व में अपनी आत्ममाया में लय होकर विश्वगर्भ के रूप में सीधे ज्योतित होनेवाला, परमात्मा, अभव, उपद्रष्टा (कार्यों का विचार करनेवाला) होकर भी अन्य वस्तु से परिशून्य होने से, [तॆ.] माया की प्रधान शक्ति के कारण द्रष्टा न होकर तथा अतुल चित् शक्तियुक्त होते हुए, वह मन में अपने अभाव का विचार करते हुए, भुवनों के निर्माण की इच्छा किये हुए द्रष्टा के रूप में, १९८ [तॆ.] बुद्धि में विचार करनेवाले महापुरुषवर कार्य-कारण के रूप में विख्यात हो

भूरि मायाभिधान विस्फुरित शक्ति,
विनुति कॅक्किन यट्टि यविद्य यंदु ॥ 199 ॥

कं. पुरुषाकृति नात्मांश,
स्फुरणमु गल शक्ति निलिपि पुरुषोत्तमु डी-
श्वरु डभवुं डजुडुन निजो-
दर संस्थित विश्व मपुड् दग बुट्टिचॅन् ॥ 200 ॥

सी. धृतिबूनि कालचोदितमु नव्यक्तंबु प्रकृतियु ननु पेळ्ळ बरगु माय
वलन महत्तत्त्व मॅलमि बुट्टिचॅ मायांश कालादि गुणात्मकंबु
नॅन महत्तत्त्व मच्युत दृग्गोचर मगुचु विश्व निर्माण वांछ
नंदुट जेसि रूपांतरंबुन बॊंदि नट्टि महत्तत्त्वमंदु नोलि

ते. गार्य कारण कर्त्रात्मकत्वमैन, महित भूतेंद्रियक मनोमय मनंग
दगु नहंकारतत्त्व मुत्पन्नमय्यॅ, गोरि सत्त्वरजस्तमो गुणकमगुचु ॥ 201 ॥

व. वॅंडियु रूपांतरंबुलं बॊंदुचुन्न सात्त्विकाहंकारंबु वलन मनंबुनु वैकारिक कार्य भूतंबुलैन देवतागणंबुलुनु संभविंचॅ। इंद्रियाधिष्ठातलैन वानि वलन शब्दंबु पूर्वंबुन प्रकाशं बगुटं जेसि, ज्ञानेंद्रियंबु लैन त्वक्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राणंबुलुनु, कर्मेंद्रियंबुलैन वाक्पाणि पाद पायूपस्थमुलुनु, तैजसाहंकारंबुन नुत्पन्नंबय्यॅ। तामसाहंकारंबु वलन शब्द स्पर्श रूप रस गंधंबु लुदयिंचॅ।

अत्यधिक माया नामक विस्फुरित शक्ति के नाम से प्रसिद्ध अविद्या में, १९९ [कं.] पुरुष की आकृति में आत्मा के अंश को प्रकाशित करनेवाली शक्ति को स्थिर कर पुरुषोत्तम, ईश्वर, अभव, अज, अपने उदर में स्थित विश्व को समुचित रीति से पैदा किया। २०० [सी.] धृति (धारण करने) के साथ, काल से चोदित हो अव्यक्त तथा प्रकृति के नामों से विलसित होनेवाली माया से महत्तत्त्व को आनन्द के साथ उत्पन्न किया। उस माया के अंशस्वरूप कालादि गुणात्मक महत्तत्त्व से, अच्युत को दृष्टिगोचर होते हुए, विश्व के निर्माण की इच्छा से रूपान्तरित हुई महत्तत्त्व में क्रम से, [ते.] कार्य-कारणात्मक-कर्त्रात्मक महित भूत-इन्दिय-मनोमय कहलानेवाला अहंकार-तत्त्व उत्पन्न हुआ और [वह अपनी] इच्छा के कारण सत्त्व, रजस्, तमोगुणात्मक हुआ। २०१ [व.] और रूपान्तरों को प्राप्त होनेवाले सात्त्विक अहंकार से मन तथा विकारों के कार्यभूत देवतागण उत्पन्न हुए। इन्द्रियों के उन अधिष्ठाताओं द्वारा शब्द के पहले प्रकाशित होने के कारण ज्ञानेन्द्रिय हो त्वक्, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण तथा कर्मेन्द्रिय हो, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ और तेजस्-अहकार उत्पन्न हुए। तामसात्मक अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्पन्न हुए। उनमें शब्द ने निजगुण बने हुए शब्द के द्वारा आकाश को उत्पन्न किया। गगन ने काल माया के

अंदु शव्दंबु निजगुणंबैन शब्दंबु वलन नाकाशंबु बुट्टिंचॅ। गगनंबु काल मायांश योगंबुनं बुंडरीकाक्षु निरीक्षणबुन स्पर्श तन्मात्रंबु वलन वायुवुं गलिगिंचॅ। पवनुंडु नभो बलंबुन रूपतन्मात्रंबु वलन लोक लोचनंबैन तेजंबु नुत्पादिंचॅ। तेजंबु काल मायांश योगंबुनं बरमेश्वरानुग्रहंबु गलिगि तेजोयुक्तंबै गंध गुणंबु वलन बृथिवि गलिगिंचॅ। अंदु गगनंबुनकु शव्दंबुनु, वायुवुनकु शव्द स्पर्शंबुलुनु, तेजंबुनकु शव्द स्पर्श रूपंबुलुनु, सलिलवुनकु शव्द स्पर्श रूप रसंबुलुनु, पृथिविकि शव्द स्पर्श रूप रस गंधंबुलुनु, गुणंबुलै युंडु। काल मायांश लिंगंबुलं गलिगि महदाद्यभिमानंबुल नॉदिन देवतलु विष्णु कळाकलितु लगुदुरु। अट्टि महदादि तत्त्वंबु लेक्यंबु चालमि प्रपंचंबुलु गल्पिप समर्थंबुलु गाक कृतांजलुलै योगीश्वरेश्वरुंडैन नारायणु निट्लनि स्तुतियिंचॅ ॥ 202 ॥

दं. श्रीनाथ नाथा! जगन्नाथ! नम्रैकरक्षा! विपक्ष क्ष्मा भृत्सहस्राक्ष! नीरेज पत्रेक्षणा! देवदेवा! भवद्दास वर्गानुतापंबुलं बापगा नोपु दिव्यात-पत्रंबु ना बोल्चु युष्मत्पदांभोज मूलंबु पुण्यालवालंबुगा बॉंदि योगींद्रु लुद्दाम संसार तापंबुलं बायगा सोंटि वर्तिंतु रो तंड्रि यीशा! समस्ताघ निर्णाश! यी विश्वमं दॅल्ल जीवल् भवोदग्र दुर्वार तापत्रया

अंश के योग के द्वारा, पुंडरीकाक्ष के निरीक्षण द्वारा, स्पर्श-तन्मात्रा के कारण वायु को पैदा किया। पवन ने नभ के वल से, रूपतन्मात्रा के कारण लोक-लोचन तेज का उत्पादन किया। तेज ने काल-माया के अंश के योग से उत्तम-श्लोकवाले (स्तवनीय, भगवान) के विलोकन से पवमान-युक्त हो, रसतन्मात्रा के कारण जल को, पैदा किया। सलिल ने काल तथा माया के अंश के योग से परमेश्वर के अनुग्रह को पाकर, तेजयुक्त हो, गन्ध गुण के कारण, पृथ्वी को उत्पन्न किया। उसमें गगन का शव्द, वायु के शव्द तथा स्पर्श, तेज के शव्द तथा स्पर्श तथा रूप, सलिल के शव्द-स्पर्श-रूप तथा रस, पृथ्वी के शव्द-स्पर्श-रूप-रस तथा गन्ध गुण वने रहते हैं। काल तथा माया के अंश तथा लिंगों से युक्त, महत् आदि अभिमान को प्राप्त कर, देवता लोग विष्णु की कला से सम्पन्न होते हैं। ऐसे महत् आदि तत्त्वों ने, एक होकर भी, संसार की सृष्टि करने में समर्थ न होकर, अंजलि घटित कर (हाथ जोड़कर) योगीश्वरेश्वर नारायण की स्तुति इस प्रकार की। २०२ [दं.] श्रीनाथ नाथ! जगन्नाथ! नम्रैक-रक्षा (रक्षक)! विपक्ष-क्षमाभृत (-पर्वत) [के लिए] सहस्राक्ष (इन्द्र)! नीरेजपत्रेक्षणा! देवदेवा! अपने दासवर्ग के अनुताप को दूर करने में समर्थ आपके दिव्य-आतपत्र (-छाता-) सम चरण-कमलों के मूल को पुण्यों के आलवाल के रूप मे प्राप्त कर योगीन्द्र [लोग] उद्दाम (अति भयंकर) संसार-ताप से वचकर उन्नत रूप से जीते हैं। हे पिता! ईशा

भील दावाग्नि चे ग्रागि दुःखाब्धिलो दोगि ये कर्ममुन् धर्ममु बोंदगालेक संसार चक्रंबु नंदुन् बरिभ्राम्यमाणात्मुलै युंडु रम्मूढ चेतस्कुलं जेप्पगा नेल ? ओ देव ! विज्ञान दीपांकुरंबैन नी पाद-पंकेरुह-च्छाय ब्रापितु मब्जाक्ष सन्मौनि संघंबु लैकांतिक स्वांततं बेचि दुर्दांत पापौघ निर्णाश कांबुप्रवाहाभ्रगंगा निवासंबु ना नोप्पु नी पाद युग्मंबु, युष्मन्मुखांभोज नीडोद्गतं बैन वेदांडज श्रेणिचेतं गवेषिंचि संप्राप्तुलै युंदु रो नाथ ! वैराग्य शक्ति स्फुट ज्ञान बोधात्मुलै नट्टि धीरोत्तमुल् नित्य नैर्मल्य भाव्यां-तरंगंबुलंदे परंज्योति पादाब्ज पीठंबु गीलिंचि कैवल्य संप्राप्तुलै रट्टि निर्वाण मूर्ति न्नशंसितु मिंद्रादि वंद्या ! मुकुंदा ! समस्तंबु गल्पिप बालिप दूलिपगा बेक्कु दिव्यावतारंबुल बोंदु नी पाद पंकेरुह ध्यान पारीण सुस्वांतुलै योप्पु भक्ताळिकिम् मोक्षदंबैन नी पाद कंजातमुल् गोल्तु नीशा ! रमाधीश ! पुत्रांगना मित्र संबंध बंधंबुलं जेंदि नित्यंबु दुष्ट क्रिया लोलुरै देह गेहंबुलं दोलि वर्तिचु दुर्मानव श्रेणुलं दंतरात्मुंडवै युंडियुं दूरमै तोचु नी पाद पद्मंबु लर्चितु नो देव ! बाह्येंद्रिय व्याप्ति नुद्वृत्तुलै नट्टि मूढात्मु

(ईश्वर) ! समस्ताघनिर्णाणा (समस्त पापों को नाश करनेवाले !) इस विश्व के समस्त जीव (प्राणी) भवोदग्र (संसार के उदग्र), दुर्वार, तापत्रय रूपी आभील (भयंकर) दावाग्नि में तप्त होकर, दुःख-सागर में डूबकर, किसी कर्म से किसी धर्म को प्राप्त न कर सक, संसार-चक्र में परिभ्राम्यमाण (भटकते) रहते हैं। उन मूढ़ चेतनावालों के बारे में क्या कहें ? हे देव ! विज्ञान के दीपांकुर रूपी आपके चरण-कमलों की छाया को प्राप्त कर हे अब्जाक्ष ! श्रेष्ठ मुनिगण अनन्य रूप से अन्तरंग में धारण कर, दुर्दान्त (दुस्तर) पाप-औघ (-समूह) को नाश करनेवाले अंबु-प्रवाह से युक्त हो, अभ्र (आकाश) के निवास रूप में विलसित है आपका चरण युगल। आपके मुख-कमल रूपी नीड़ से निकले हुए वेद रूपी अण्डज-श्रेणी को ढूँढ़कर प्राप्त कर रहते हैं। हे नाथ ! वैराग्य-शक्ति को प्रकट करनेवाले ज्ञानचेता हो, ऐसे धीर-श्रेष्ठ सदा निर्मल-भव्य-अन्तरंगों को जिस परम ज्योति के चरण-कमलों के लिए पीठ (आसन) बनाकर, कैवल्य को प्राप्त कर लेते है, उस निर्वाण-मूर्ति की [हम] प्रशंसा करते हैं। इन्द्रादि-वन्द्या ! मुकुन्दा ! समस्त (सृष्टि) की कल्पना करने, पोषण करने, नाश करने के लिए अनेक दिव्य अवतारों को प्राप्त करनेवाले तुम्हारे चरण कमलों के ध्यान-पारीण बने सु-स्वान्त (अन्तरंग) वाले हो विलसित होनेवाले भक्त-गण को मोक्षप्रदायक तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा [हम] करते हैं। ईशा ! रमाधीशा ! पुत्र-अंगना-(स्त्री)-मित्र [आदि] के सम्बन्ध-बन्धनों में फँसकर, सदा दुष्ट क्रियाओं में मग्न हो, देह तथा गेह में क्रम से लगकर संचार करनेवाले दुष्ट मानव श्रेणियों में अन्तरात्मा के रूप

लध्यात्म तत्त्व प्रभावाढ्युलै मी पदाब्जात विन्यास लक्ष्मी कळावासमुं
गन्न पथ्युत्तम श्लोकुलं गानगा जालर प्पुण्यु लावुष्टुलं जूडगा नोल्ल
रंभोधिराट् कन्यका-कांत ! वेदांत शुद्धांत सिद्धांतमै यॊप्पु मी सत्कथापार
चंचत्सुधासार पूरंबुलं ग्रोलि सौख्योन्नतिन् सोलि धीयुक्तुलै व्रालि तापंबुलं
दोलि मोदंबुलं देलि संपन्नुलै मन्न नित्य प्रपन्नुल् महोत्कंठतं बेंचि वैकुंठ
धामंबु नल्पक्रिया लोलुरै कांतु रद्दिव्य वासैक संप्राप्तिकि गोरुचुन्नार
मो देव ! वैराग्य विज्ञान बोधात्म योगक्रियारूढि नंतर्बहिर्व्याप्ति
जालिंचि शुद्धांतरंगंबु गाविंचि हृत्पद्म वासुंडवै चिन्मयाकारमै युन्न नी
युन्नतानंत तेजो विलासोल्ल सन्मूर्ति जित्तंबुलं जेर्चि यानंद लोलात्मतं
बॊल्चु योगीश्वरर्श्रेणिकि दाब्कीनानुकंपानुलब्धस्फुट ज्ञानमुं गलुटं
जेसि यासासमुं जेंददो देवताचक्रवर्ती ! सदानंद मूर्ति । जगद्गीत
कीर्ती ! लसद्भूतवर्ती ! भवद्दासुलै नट्टि मम्मुं जगत्कल्पनासक्त
चित्तुंडवै नीवु त्रैगुण्यविस्फूर्ति बुट्टिंचिनं बुट्टटे काक नी भव्य
लीलानमेयंबुगा सृष्टि निर्माणमुं जेय ने मॆंत वारौदु मी शक्ति युक्तिन्

में स्थिर होकर भी, दूर रहनेवाले तुम्हारे चरण-कमलों की अर्चना [हम] करते हैं। हे देवा ! वाह्य इन्द्रियों की व्याप्ति से उद्वृत्त (घमंडी) बने मूढ़ात्मा [लोग] अध्यात्म-तत्त्व के प्रभाव से सम्पन्न होकर तुम्हारे चरण कमलों से विन्यस्त लक्ष्मीकला के निवास को प्राप्त होनेवाले उत्तम-श्लोकों (स्तुत्य जनों) को जान नहीं पाते और वे पुण्यपुरुष उन दुष्टों को देखना नही चाहते। अंबोधिराट्-कन्यका-कान्त (सागर-पुत्री के पति) ! वेदान्त के शुद्धान्त (अंतःपुर) के सिद्धान्त हो विलसित तुम्हारी सत्कथा रूपी अपार चंचत् (रुचिकर) सुधासार-पूर (-प्रवाह) का पान कर, सुख की उन्नति से मस्त होकर, धीयुक्त हो (वुद्धिमान हो), आश्रित होकर, [अपने] तापों (दुःखों) को दूर कर, आनन्द में ऊभचूभ होकर, सम्पन्न हो जीनेवाले प्रपन्न सदा अत्यधिक उत्कंठा से अल्प-क्रिया (-प्रयास) में निमग्न हो, वैकुण्ठ धाम को प्राप्त करते हैं। उस दिव्य निवास की प्राप्ति की इच्छा [हम] करते हैं। हे देव ! वैराग्य-विज्ञान से बोधात्मा हो योग-क्रियाओं से निश्चित रूप से अंतरब्राह्य-व्याप्ति को समाप्त कर, शुद्ध अन्तरंग में हृदय कमल के निवासी हो, चिन्मय रूप में स्थित तुम्हारे उन्नत तथा अनन्त तेज से विलसित होनेवाले सन्मूर्ति को चित्त में धारण कर, आनन्द की तरंगों में डोलनेवाले योगीश्वर-श्रेणी तुम्हारी अनुकंपा (कृपा) से प्रस्फुट ज्ञान की प्राप्ति होने से किसी ताप को प्राप्त नही करती है। हे देवता-चक्रवर्ती ! सदानन्द मूर्ति ! जगत [के लोगों] से कीर्तित मूर्ति (रूप) वाले ! भूत कोटि में लसत्-मूर्ती ! तुम्हारे दास वने हमको [तुमने] जगत की सृष्टि करने की आसक्ति से युक्त चित्तवाले हो त्रिगुणों की विस्फूर्ति से (हमें) पैदा करने

भवत्पूज गाविंतु मट्लुंडे नी सत्कळाजातुले नट्टि मम्मेन्नगा नेल नध्यात्म तत्त्वंबु वन्नं बरंज्योति वन्नं ब्रपंचंबु वन्न नधिष्ठात वन्नन् सदासाक्षि वन्नन् गुणातीत ! नीवे कदा पद्मपत्राक्ष ! सत्त्वादि त्रैगुण्य मूलंबु ना नॊप्पु माया गुणंबंदु नुद्यन्महत्तत्त्वमै नट्टि नी वीर्यमुं वॆट्टुटं जेसि नी वितकुं गारणं बौदु वायायि कालंबुलन् नीकु सौख्यंबु ले सॆट्लु गाविंतु मे रीति नन्नंबु भक्षितु मॆऽभंगि वर्तितु मे निल्कड न्नुंदु मी जीव लोकंबे याधारमै युंडि भोगंबुलं बौंदुचु नुन्न यिक्कार्य संधानुलै नट्टि माकुं जगत्कल्प नासक्तिकिं देव ! नी शक्ति दोड्पाटु गाविंचि विज्ञानमुं जूपि गारुण्य संधायिवै मम्मु रक्षिपु लक्ष्मी मनः पल्वलक्रोड ! योगींद्र चेतस्सरो हंस ! देवादिदेवा ! नमस्ते ! नमस्ते नमस्ते ! नमः ॥ 203 ॥

अध्यायमु—६

सी. अनिन ब्रसन्नुडै हरि महदादुल कन्योन्य मित्रत्व मंद कुन्न
कतमुन निखिल जगत्कल्पना शक्ति वॊडमकुंडुट ·दन बुद्धि नॆरिंगि

पर हम पैदा हुए। किन्तु तुम्हारी भव्य लीलाओं के अनुसार सृष्टि के निर्माण करने में हम कहाँ समर्थ है ? तुम्हारी शक्ति-युक्ति की हम पूजा करते हैं और तुम्हारी सत्कलाओं से उत्पन्न होनेवाले हमारी गिनती क्या है ? अध्यात्म-तत्त्व कहें, परमज्योति कहें, संसार कहें, [उसके] अधिष्ठाता कहें, सदा साक्षी कहें, हे गुणातीता ! सब कुछ तुम ही हो। हे पद्मपक्षाक्ष (कमल नयनवाले) ! सत्त्वादि त्रिगुणों के मूल रूप में विलसित होनेवाले मायागुण में, महान महत्तत्त्व के रूप में तुम्हारे वीर्य को स्थापित करने के कारण, इस समस्त [सृष्टि] के तुम कारण हो। उन-उन कालों (परिस्थितियों) में हम तुम्हें सुख (प्रसन्न) कैसे दे सकते हैं। कैसे अन्न भक्षण कर (खाते-पीते हुए) व्यवहार कर स्थिर हो सकते है ? इस जीवलोक को ही आधार मानकर भोगमग्न होनेवालों को इस कार्य में जुटकर अपने जगतों के सृजन करने की आसक्ति को पूर्ण करने के लिए हे देव ! तुम्हारी शक्ति का सहारा देकर, विज्ञान को दरसाकर, करुणा का सन्धान कर, हमारी रक्षा करो। लक्ष्मी के मन रूपी पल्वल के क्रोड ! योगीन्द्र जनों की चेतना रूपी सरोवर के हंस ! देवाधिदेवा ! नमस्ते ! नमस्ते ! नमस्ते ! नमः। २०३

अध्याय—६

[सी.] [ऐसा] कहने पर प्रसन्न हो, हरि ने महदादियों (तत्त्वों) में परस्पर मित्रता के न रहने के कारण, निखिल जगत् की सृष्टि [करने की]

कॆकॊनि कालवेगमुन नुद्रेकंबु नॊंदिन प्रकृतितो बॊंदि निज व-
लमु निलिप ता नुरु क्रमु डन सप्त विंशति तत्त्वमुल यंदु समत नॊक्क

ते. परि प्रवेशिंचि या तत्त्व भव्यगुणमु,
नंदु ज्येष्ठानुरूपंबु ललर जॆंदि
यॊकटि नॊक्कटि गलयक युंडि विश्व,
रचन मॆरुगनि या तत्त्वनिचयमुनकु ॥ 204 ॥

व. इट्लु विश्व निर्माण निपुणत्वंबु नॆरुंग जूपुचु नन्निटिकि नन्योन्यतं गलिपिचि, तन यनुग्रहंबुनं ब्रेरितंबै कानंबडि क्रिया सामर्थ्यंबुन जॆन्नॊंदिन तत्त्व वितानंबु दैव प्रेरितंबै स्वकीयंबुलगु नंशंबुल चेतं बुट्टिंचिन विराड्विग्रहंबै तत्त्व विततिं दम यंदु जॆंदिन पुंडरीकाक्षुनि कळांशंबुन नॊकटि कॊकटिकि नैक्यंबु वाटिल्लि परिणतंबै रूपांतरंबुनु जॆंदॆ । ए तत्त्वंबुन नॆनियु जरा चरलोक पुंजंबुलु निंडियुंडु ना हिरण्मयंबैन विराड्विग्रहंबु नॊंदिन पुरुषुंडु सर्वजीव समेतुंडै युंडॆ नंत ॥ 205 ॥

कं. जलमुललोपल निम्मुल, जलरुह-जातांड मंदु साहस्राब्दं
बुलु निलिचॆं गार्यरूपा, कलितंबगु नव्विराट् सुगर्भमु वरुसन् ॥ 206 ॥

ते. दैवकर्मात्मशक्ति वितानमुलनु
दगिलि तनचेत दनु दान दैवशक्ति
यगुचु वॆलुगॊंदुचुं ब्रकारांतरमुन,
दनुवु विततंबु गानि चैतन्य मॊंदि ॥ 207 ॥

शक्ति के उत्पन्न न होते, अपनी बुद्धि से जान लिया, [और] कालवेग से आवेग को प्राप्त हो, प्रकृति से मिलकर, अपने बल की स्थापना कर, उस क्रम से सत्ताईस तत्त्वों में, समरूप से, [ते.] एक साथ प्रवेश कर, भव्यगुण में उस तत्त्व की ज्येष्ठता के अनुरूप विकसित हो, एक-दूसरे से अलग रहकर विश्व की रचना को न जान पानेवाले उस तत्त्वसमूह को, २०४ [व.] इस प्रकार विश्व-निर्माण की निपुणता को विदित करते हुए, सबको परस्पर मिलाकर, अपने अनुग्रह से प्रेरित हो दिखाई देते हुए, क्रिया की सामर्थ्य से प्रवृद्ध होनेवाले तत्त्व-वितान के रूप में दैवप्रेरित हो, अपने अंशों के कारण पैदा किया, विराट्रूप हो (तत्त्व-वितति को) अपने में विकसित कर, पुंडरीकाक्ष की कला के अंश से एक-दूसरे में एकता संघटित होकर, वे रूपान्तर को प्राप्त हुए। जिस तत्त्व से भी हो, चराचर लोकगणों से भरा रहता है, उस हिरण्मयस्वरूप विराट् विग्रह को प्राप्त पुरुष सर्व जीव समेत हो स्थित रहता है, तब। २०५ [कं.] जलों में प्रेम से जलरुहजातअण्ड ब्रह्माण्ड में हजारों वर्षों तक क्रमशः उस विराट् का सुगर्भ कार्यरूप से संयुक्त हो स्थित रहा। २०६ [ते.] दैवकर्मात्मा की शक्ति के वितान में लगकर,

ते. रूपसंसक्ति जेसि निरूढ कर्म,
शक्ति युनु वृत्तिभेद संसक्ति दश वि-
धमुलु गलिगिन प्राण रूपमुनु नात्म
शक्ति भोक्तृत्व मगुचुन्न शक्ति गलिगि ॥ 208 ॥

कं. त्रिविधंबगुचुनु नाध्या, त्म्य विभेदंबुलुनु बापि मरि यधि भूता-
त्म विराड्रूपं बगु निदि, विविध प्राणुलकु नात्म विधमै मरियुन् ॥209॥

कं. जीवंबै परमात्मकु, दावलमै यादिमावतारं बगु न-
द्देवुनि गर्भंबुन भू, तावलि तोडं ब्रपंच मथि दोचेन् ॥ 210 ॥

व. इट्लु दोचिन विराट्पुरुषुं डाध्यात्मिक काधिदैविकाधिभौतिकंबुलनु भेदंबुलचे बूर्वोक्त क्रमंबुन वॅलुगोंदु ननुचु विदुरुनकु मैत्रेयुं डॅरिंगिचॅ। अनि चॅप्पि वॅंडियु निट्लनियॅ ॥ 211 ॥

चं. हरि परमात्मु डीशु डजु डाढ्यु डनंतु डनंतमूर्ति सा-
गरतनया हृदीशुडु विकार विदूरुडु नित्यमंगळा
करुडु गृपापयोनिधि यकल्मष चित्तुडु सर्वशक्ति दा-
मरस विलोचनुंडु बुधमान्य चरित्र पवित्रु डिम्मुलन् ॥ 212 ॥

व. इत्तॅरंगुन नीशुंडगु नधोक्षजुंडु महदादि तत्त्वंबुल मनंबुल घनंबुलगु तलंपुलु दार्नॅरिगि, यट्टि तत्त्वंबुल विविधवृत्ति लाभमुनकै स्वकीय चिच्छक्तिचे

अपने-आप दैव शक्ति के रूप में ज्योतित हो, प्रकारान्तर (अन्य विधान) से शरीर रहित चैतन्य के रूप में प्रवर्तित होकर। २०७ [ते.] रूप की संगति से निरूढ़ कर्म की शक्ति और वृत्ति भेद की संसक्ति के अनुसार दस प्रकार के प्राण रूपों में आत्मशक्ति, भोक्तृत्व-शक्ति से युक्त होकर, २०८ [कं.] तीन प्रकार बनकर, अध्यात्म-विभेद को मिटाकर, और अधिभूतात्मक विराट्रूप को धारण कर यह विविध प्राणियों में आत्मरूप में विलसित होता है, और, २०९ [कं.] जीव होकर, परमात्मा का निलय हो, आदिम अवतार ही उस देव (परमपुरुष) के गर्भ में प्राणिकोटि के साथ संसार भासित हुआ। २१० [व.] इस प्रकार भासित हुए विराट्-पुरुष आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक भेदों से पूर्वोक्त क्रम से ज्योतित होता है। ऐसा विदुर को मैत्रेय ने विदित किया, ऐसा कहकर और इस प्रकार (आगे) कहा। २११ [चं.] हरि ने जो परमात्मा, ईश्वर, अज, श्रेष्ठ अनन्त मूर्ति, सागर-तनया (लक्ष्मी) का हृदयेश, विकारों से विदूर, सदा मंगल-आकर, कृपा-पयोनिधि, अकल्मष चित्तवाला, सर्वशक्तिमान, तामरस (कमल) नयन वाला, बुधजनों से मान्य पवित्र, चरित वाला, प्रेम से। २१२ [व.] इस प्रकार ईश (अधिपति) हो, अधोक्षज ने महदादि तत्त्वों के मन में स्थित महत्तर विचारों को जानकर, उन तत्त्वों से विविध

निट्टु लॊनर्तुननि चिंतिंचि निजकळाकलितंबगु विराड्विग्रहंबु नंदुनग्नि प्रमुखं बगु देवतावळि कॆल्ल निवासं बगुचु गानं बडिन वैराज पुरुषुनि यस्याद्यवयवंबुल विनिर्मिंपितु । दत्तावधानुंडवै विनुमु ॥ 213 ॥

सी. नरनुत ! या दिव्य पुरुषोत्तमुनि पृथग्भावंबु नॊंदि मुखंबु वलन
भुवन पालकुडैन पवमान सखु डंतरात्मु डीश्वरु नंशमैन वाणि
कनयंबु ननुकूल मगुचु निजस्थानमुन बवेशिंचिन मुखमु नंदु
वरगु जीवुंडु शब्दमु नुच्चरिंचु बृथग्भावमु लगु नेत्रमुल निनुडु

ते. चक्षुरिंद्रिय युक्तुडै सरवि जॆंद,
रूप विज्ञान महिम निरूढि नॊंदु
मरियु जर्ममुलनु पवमानु डीश्व,
रांशमै तत्त्वगिंद्रिय मंदु गूडि ॥ 214 ॥

व. निज निवासंबु नाश्रयिंचिन जीवुंडु स्पर्शेंद्रिय गतुंडगु । पृथग्भावंबैन श्रोत्रंबुल दिक्कु लच्युत कळांशंबु लगु ! श्रवणेंद्रिय युक्तंबुलै निजस्थानंबुल बॊंदिन जीवुंडु शब्द ज्ञान गतुंडगु । मरियु दालुवु निर्भिन्नंबैन लोकपालुं डगु वरुणुं डंदु बवेशिंचि रसनेंद्रियंबुचे बकाशिंचिनं बाणि रसंबुलं ग्रहिंचॆ । परमेश्वरुनि नासिकेंद्रियंबु पृथग्भावंबु नॊंदि याश्विनेयाधिष्ठानंबै

वृत्तियों के लाभ के लिए, स्वकीय (अपनी) चित्-शक्ति से ऐसा करने का विचार कर, अपनी कला से कलित विराट्-विग्रह में अग्नि आदि समस्त देवतावली के लिए निवासस्वरूप उस वैराज (विराट्)-पुरुष के आस्य (मुख) आदि अवयवों के बारे में सुनाता हूँ । ध्यान देकर सुनो ! २१३
[सी.] हे नरनुत (मानवों से स्तुत्य होनेवाले) ! उस दिव्य पुरुषोत्तम से अलग होकर, मुख से भवतों का पालन करनेवाले, वायु-सखा, अन्तरात्मा, तथा ईश्वर के अंशस्वरूप वाणी के लिए सदा अनुकूल होते हुए अपने स्थान में प्रविष्ट हो, मुख मे विलसित होने पर, जीव शब्द का उच्चारण करता है। अलगाव की भावना से नेत्रों में, [ते.] सूर्य चक्षुरिन्द्रिय से युक्त हो, क्रमशः विकास पाकर, रूप विज्ञान की महिमा से दृढ़ होता है । और चर्मो में पवमान (पवन) ईश्वर के अशरूप में उस त्वक्-इन्द्रिय से मिलकर, २१४
[व.] अपने निवास का आश्रित होकर, जीव स्पर्शेन्द्रियगत होता है। पृथक् भाव से श्रोत्र दिशाओं में अच्युत की कला के अंश होते हैं। श्रवणेन्द्रिय से युक्त हो निजस्थान को प्राप्त होकर, जीव शब्दज्ञानगत होता है। और तालु के विभिन्न (अलग) हो लोकपाल वरुण उसमें प्रविष्ट हो रसनेन्द्रिय से प्रकाशित होने पर, जीव ने रसों को ग्रहण किया । परमेश्वर का नासिकेन्द्रिय पृथक् भाव को पाकर, आश्विनेय से अधिष्ठित हो, घ्राण-अंश को पाने पर, जन्तुगण, गन्धग्रहण में समर्थ हुए, फिर भिन्न (अलग) होने

घ्राणांशंबु नॊंदिन जंतुवु गंध ग्रहण समर्थंबय्यॆ। वॆंडियु भिन्नंबैन चर्मंबुन नोषधुलु परम पुरुषांशंबुलैन केशंबुलं गूडि निज निवासंबु नॊंदिन जीवुंडु कंडूयमानुंडगु। भिन्नभूतंबैन मेंढ्रबुनं ब्रजापति रेतंबुन निजस्थानंबु नॊंदिन जीवुं डानंदंबुनुं बॊंदु। भिन्नभावंबैन गुदंबुन मित्रु डच्युतांशंबुनु बॊंदि पायुवुं गूडि निजाधिष्ठानंबु नॊंदिन जीवुंडु विसर्गंबु जेंदु। वेरु वेरैन बाहुवुलं द्रिदशाधीश्वरुंडैन पुरंदरुंडु क्रय विक्रयादि शक्ति युक्तु डगुचु निजस्थानंबु नॊंदिन जीवुंडु वानिचेत जीविकं बॊंदु। मरियु बादंबुलु निर्भिन्नंबुलैन विष्णुंडु स्वावासंबु गैकॊनि गति शक्ति बॊंदिन जीवुंडु गमनागमनाहुंडय्यॆ। वॆंडियु भिन्न भावंबैन हृदयंबु मनंबु तोडं गलसि निजाधिष्ठानंबुनं जंद्रुंडु प्रवेशिंचिन जीवुंडुनु शरीर संकल्पादि रूपंबगु विकारंबुनुं बॊंदु। भिन्नभावंबैन यहंकारंबुन नहंकृति युक्तुंडै रुद्रुंडु निजस्थानबुगा वसियिंचु। आ यहंकृति चे शरीर कर्तव्यंबुलु नडपु। बुद्धि वागीश्वरावासंबै हृदयंबु तोडं गलिसि निजाधिष्ठानंबुन बोधांशंबुचे वॆलिगिन शरीरि बोद्धव्यतं बॊंदु। भिन्नंबैन चित्तंबु ब्रह्मावासंबै चेतनांशंबु नॊंदिन प्राणि विज्ञानंबुनुं बॊंदु। आ विराट्पुरुषुनि शीर्षंबुन स्वर्गंबुनु, चरणंबुल वसुमतियुनु, नाभियंदु गगनंबुनुं गलिगॆ। सत्त्वादि

पर चर्मों में ओषधि (तथा) परमपुरुष के अंशरूप होनेवाले केशों के साथ युक्त हो, अपने निवास को प्राप्त जीव कंडूयमान (खुजली से युक्त) होता है। भिन्नभूत (अलग हुए) मेढ्र से प्रजापति के रेतस् के कारण अपने स्थान को प्राप्त जीव आनन्द का अनुभव करता है। भिन्न हुए गुदा में मित्र अच्युत के अंश को पाकर, पायु के साथ अपने अधिष्ठान को प्राप्त जीव विसर्जन को प्राप्त करता है। अलग-अलग बने हाथों से त्रिदशाधीश्वर पुरंदर खरीदने-बेचने की शक्ति से युक्त हो, अपने स्थान को प्राप्त जीव उनके द्वारा जीविका को प्राप्त करता है। और चरणों से विभिन्न (पृथक्) होने से विष्णु अपने निवास स्थान को प्राप्त कर, गति शक्ति के प्राप्त करने से जीव गमनागमन में समर्थ हुआ और भिन्न भाव से (अलग हुए) हृदय तथा मन से मिलकर, अपने स्थान पर चंद्र के प्रवेश करने पर, जीव शरीर संकल्प आदि रूपी विकारों को प्राप्त करता है। भिन्न (पृथक्) भाव से अहंकार से अहंकृति से युक्त हो रुद्र अपने स्थान पर रहता है। उस अहंकार से शरीरी (देही) कर्तव्यों का निर्वाह करता है। बुद्धि वागीश्वर के निवास-स्थान से युक्त हो, हृदय के साथ मिलकर, अपने अधिष्ठान पर बोध के अंश से ज्योतित होकर शरीरी बोद्धव्यता को प्राप्त करता है। भिन्न (पृथक्) होकर चित्त ब्रह्मा का आवास होकर, चेतना के अंश को प्राप्त कर, प्राणिगण विज्ञान को प्राप्त करता है। उस विराट् पुरुष के सिर से स्वर्ग, चरणों में धरती, नाभि में गगन [उत्पन्न] हुए। सत्त्वादि गुण

गुण परिणामंबुल नमरुलैरि। ऊर्जित सत्त्वगुणंबुन नव्देवतलु द्रिदिवंबुनुं बॊंदिरि। रजोगुणंबुन मनुजुलुनु गवादुलुनु-धरणिं बॊंदिरि। तामसंबुन भूतादुलैन रुद्रपार्षदुलु द्यावा पृथिव्यंतरं बगु वियत्तलंबुनुं बॊंदिरि। मुखंबु वलन नाम्नायंबु लुत्पन्नंबुलय्यं। वॆंडियु ॥ 215 ॥

कं. धरणी दिविजुलु श्रुतुलुनु, नरवर! यम्मेटि मुखमुनं बॊडमुट भू-
सुरु डखिल वर्णमुलकुन्, गुरुडुन्मुख्यंडु नय्यॆ गुणरत्ननिधी! ॥ 216 ॥

कं. धर ब्राह्मणादिकमु द, स्कर वाधं बॊंदकुंड गैकॊनि कावन्
बुरुषोत्तमु बाहुवुलन्, नरनाथ-कुलंबु पुट्टॆ नयतत्त्व-निधी! ॥ 217 ॥

कं. गणुतिपग गृष्टि गो र, क्षण वाणिज्यादि कर्म कलितंबुगना
गुणनिधि यूरुवु लंदुं, ब्रणुतिपग वैश्यजाति प्रभवं बय्यॆन् ॥ 218 ॥

ते. तिविरि सेवक धर्मुलै देव देवु,
पदमुलनु शूद्र संततु लुदय मैरि
वीर लंदरु दम तम विहितकर्म
मलर जेयुचु जनकुंडु नात्म गुरुडु ॥ 219 ॥

कं. अगु सर्वेशु परापरु,
जगदेक प्रभुनि पाद जलजातंबुल्
दगिलि भजितुरु सततमु,
निगमोक्तिन् भक्तियोग निपुणात्मकुलै ॥ 220 ॥

परिणाम (परिवर्तन) से अमर (देवता) हुए। ऊर्जित सत्त्वगुण से वे देवता त्रिदिव (स्वर्ग) को प्राप्त हुए। रजोगुण से मनुष्य और गाय आदि धरती को प्राप्त हुए। तामस [गुण] से भूतादि रुद्र के पार्षद, द्यावा (आकाश) [तथा] पृथ्वी के बीच में वियत्तल को प्राप्त हुए। मुख से आम्नाय (वेद) उत्पन्न हुए। और, २१५ [कं.] हे गुणरत्ननिधी! धरणी-देवताओं (ब्राह्मणों) तथा श्रुतियों के, हे नरवर! उस महात्मा के मुख से उत्पन्न होने के कारण भूसुर (ब्राह्मण) सब वर्णों का गुरु तथा मुख्य (प्रधान) हुआ। २१६ [कं.] नय (नीति) तत्त्व के निधी! धरती पर ब्राह्मणादि लोगों को तस्करों (चोरों) की पीड़ा न हो, ऐसा रक्षा करने के लिए पुरुषोत्तम की बाहुओं से नरनाथकुल (क्षत्रियकुल) पैदा हुआ। २१७ [कं.] विचार करने पर, कृषि, गोरक्षण, वाणिज्य आदि कर्मों से युक्त हो उस गुणनिधि की जाँघों से स्तुत्य रूप से वैश्यजाति उत्पन्न हुई। २१८ [ते.] फिर सेवकधर्म वाले होकर देवदेव के चरणों में शूद्र सन्तति उत्पन्न हुई। इन सबके अपने-अपने विहित कर्मों के शोभा से करते रहने पर पिता, आत्मगुरु, २१९ [कं.] होनेवाले सर्वेश्वर, परात्पर, जगदेक-प्रभु के चरण-कमलों में मन लगाकर, निगमों द्वारा कही गयी रीति से भक्तियोग से

ते. महिम दीपिंप गाल कर्म स्वभाव,
शक्ति संयुतु डगु परमेश्वरुनि भूरि
योगमाया विजृंभणोद्योग मॅव्व
डॅंडिगि नुतिंयिप गानोपु निद्ध चरित ॥ 221 ॥

उ. अन्य कथानुलापमु लहर्निशमुन् बठियिंचि चाल मा-
लिन्यमु नात्मशोभन विलीनत नोंदु मदीय जिह्व सौ-
जन्यमु नोंदें नेडु हरि सद्गुण दिव्य कथामृतंबु स-
न्मान्य चरित्रमै नॅगडु मद्गुरु वाक्यपथंबु जॅंदगन् ॥ 222 ॥

म. हरि नामांकित सत्कथामृत रसव्यालोलुडैनट्टि स-
त्पुरुष श्रेष्ठु डसत्कथा लवणवाःपूरंबु दा ग्रोलुने ?
वर मंदार मरंद पान कुतुकस्वांत द्विरेफंबु स-
त्वरमै पोवुनॅ चेदु वेमुलकु दद्गंधानु-मोदात्ममै ॥ 223 ॥

कं. हरि महिममु दन्नाभी,
सरसिज संजातुडैन चतुराननुडुन्
बरिकिंचि यॅरुग डनिन नि
तर मनुजुल जॅप्प नेल तत्त्वज्ञनिधी ! ॥ 224 ॥

ते. श्रुतुलु दमलोन विवरिंचि चूचि पुंड-
रीक लोचनु नुत्तम श्लोक चरितु

निपुणात्मा लोग सदा भजन करते है। २२० [ते.] हे इद्ध (पुण्य) चरित वाले ! महिमा के दीप्त होने पर, काल, कर्म, स्वभाव की शक्ति से युक्त परमेश्वर की भूरि (अत्यधिक) योगमाया के विजृम्भण के प्रयत्न को जानकर कौन स्तुति कर सकता है (कोई नहीं कर सकता)। २२१ [उ.] अन्य कथाओं के बारे में अहर्निश (रात-दिन) भाषण तथा पठन अत्यधिक रूप से कर, अत्यधिक मलिन [मन] से आत्म [ज्ञान] की शोभा को समाप्त कर लेनेवाली मेरी जिह्वा आज हरि के सद्गुणों की दिव्य कथाओं के अमृत से सम्मान्य चरित्र (धन्य) वाली बनी। मेरे गुरु के बताए वाक्यों के मार्ग में विलसित हुई। २२२ [म.] हरि के नामों से अंकित सत्कथा रूपी अमृतरस में अधिक आकृष्ट होनेवाला सत्पुरुष-श्रेष्ठ कहीं असत् कथा रूपी लवण-वाःपुर (-समुद्र) को पीना चाहेगा? श्रेष्ठ मन्दार [फूलों के] मकरन्द-पान के कौतुक से युक्त स्वान्त (मन) वाला भँवरा कहीं कड़वे नीम की गन्ध के आनन्द का अनुसरण करते हुए शीघ्र जायेगा ? (नहीं)। २२३ [कं.] हे तत्त्वज्ञ-निधी ! हरि की महिमा को उसके नाभि-सरसिज से संजात (पैदा होनेवाले) चतुरानन (ब्रह्मा) भी परखकर नहीं जानता, तब अन्य मनुष्यों की बात क्या कहें ? २२४ [ते.] पुण्डरीक-लोचन

नमर गुणवंद्यमान पादाब्ज युगळु,
वॆदकि कनुगॊनलेवंड्रु विमल मतुलु ॥ 225 ॥

कं. हरियुन् दन मायागति, वरिकिंचियु गानडय्यॆ वरिमिति लेमिन्
मरि मायाविनि मोहिनि, चरितमु गनुगॊंदु रॆट्टु चतुरास्यादुल् ॥226॥

कं. आ दिविजाधीशुडु महद्, दादुलु दिक्पतुलु पंकजासनुडु गौ-
री दयितुडु गन जालनि, श्री देवुनि पदयुगंबु चिंतितु मदिन् ॥ 227 ॥

अध्यायमु—७

क. अनि मैत्रेयुं डिव्विधु, रुन कॆरिंगिंचिन तॆरंगु रुचिरमुगा न-
र्जुन पौत्रुनकु बराशर, मुनि-मनुमं डॆरुग जॆप्पॆ मुदमु दलिर्पन् ॥ 228 ॥

व. वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 229 ॥

कं. भूमीश्वर! मैत्रेयु म, हा मुनि विदुरुनकु नट्लु हरि शुभगुण ली-
ला माहात्म्यमु जॆप्पिन, ना मैत्रेयुनकु विदुरुडनियॆन् मरियुन् ॥230॥

कं. अगुणुंडगु नीश्वरुनकु, जगवदनोद्भव विनाश सत्कर्ममुलं
दगु लील लॆट्टु लातडु, सगुणुंडै युंट यॆट्लु सौजन्यनिधी ! ॥ 231 ॥

वाले, उत्तम-श्लोक (स्तुत्य) चरित वाले, अमरगण से वन्दित होनेवाले, चरण-युगल वाले को श्रुतियाँ अपने में विचारकर ढूँढ़ नहीं पातीं। ऐसा विमल मति वाले कहते है। २२५ [कं.] हरि भी अपनी माया की गति को, [उस माया के] अपरिमित होने के कारण परखकर नही जान पाया। फिर मायाविनी और मोहनी [उस माया] का चरित्र चतुरास्य आदि (ब्रह्मादि) भी कैसे जान पाएँगे ? २२६ [कं.] दिविजाधीश, महत् आदि [तत्त्व], दिक्पालक, पंकजासन (ब्रह्मा), गौरीपति जिसको जान नही पाते, उस श्रीदेव के पदयुग की मन में चिन्ता (चिन्तन) करता हूँ। २२७

अध्याय—७

[कं.] इस प्रकार मैत्रेय के द्वारा विदुर को विदित किये गये विधान को रुचिर गति (विधान) को अर्जुन-पौत्र को पराशर-पौत्र ने आनन्द के साथ विदित करते हुए सुनाया। २२८ [व.] और [आगे] ऐसा कहा। २२९ [कं.] हे भूमीश्वर ! मैत्रेय महामुनि के विदुर को उस प्रकार हरि के शुभगुण तथा लीला माहात्म्य को विदित करने पर, उस मैत्रेय से विदुर ने फिर कहा (पूछा)। २३० [कं.] हे सौजन्य-निधी ! निर्गुण ईश्वर के लिए जगत् के उद्भव, रक्षा, विनाश [आदि] सत्कर्म

सी. अन, "नर्भकुनि गति" ननवुड, मैत्रेयमुनि जूचि विदुरु डिट्लनियें मरल
बालुडु ग्रीडाविलोल मानसमुन दीपिचु लीलानुरूपु डगुचु
गानिचो गामानुगतुडै रमिचुनु नर्भकु डथि वस्त्वंतरमुन
नर्भकांतरमुन नंननु बालकेळी संगुडगुचु नोलिनि जरिंचु

ते. हरियु नेंपुड निवृत्तु डत्यंत तृप्तु,
डगुट वर्तिचुटेट्लु ग्रीडादुलंदु
मरियु द्रिगुणात्मकंबैन मायगूडि,
यखिल जगमुलु गल्पिचॅननुट यॅट्लु ॥ 232 ॥

सी. अम्मायचेत नी यखिलंबु सृजियिंचि पालिंचि पौलियिंचि परमपुरुषु
डनघात्म ! देश कालावस्थलंदुनु नितरुल यंदु नहीनमैन
ज्ञान स्वभावंबु बूनि या प्रकृतितो नेंब्भंगि गलसं ? दानेकमय्यु
गोरि समस्त शरीरंबुलंदुनु जीवरूपमुन वसिंचि युन्न

ते. जीवुनकु दुभग क्लेश सिद्धि येंट्टि,
कर्ममुन संभविंचेंनु ? गडगि नादु
चित्त मज्ञान दुर्गम स्थिति गलंगि,
यधिक खेदंबु नोंदेंडु ननघ-चरित ! ॥ 233 ॥

व. अदि गावुन सूरिजनोत्तमुंडवैन नीवु मदीय मानसिक संशयंबुलु दोलंगिप

लीलाएँ कैसे हुईं ? वह सगुण बनकर कैसे रहा ? २३१ [सी.] पूछने पर 'अर्भक (बालक) की गति' कहने पर (उत्तर देने पर), मैत्रेय को देखकर बिदुर ने फिर पूछा कि बालक क्रीड़ारत हो मानस में दीप्त लीला के अनुरूप होते हुए, अथवा कामना के अनुगत होते हुए रमण करता है। बालक अन्य वस्तु में अन्य अर्भक के साथ चाहकर, बालकेली में रत हो क्रमशः विचरण करता है। [ते.] 'हरि सदा निवृत्त हो अत्यन्त तृप्त होकर रहनेवाला क्रीड़ादि में कैसा व्यवहार करता है ? और त्रिगुणात्मक माया से युक्त होकर, अखिल जगतों की कल्पना की।' ऐसा कैसे कह सकते हैं ? २३२ [सी.] अनघात्मा ! उस माया से इस अखिल [सृष्टि] का सृजन कर, पालन कर, नाश कर, परमपुरुष, देश-काल-अवस्थाओं (स्थितियों) में, अन्य प्राणियों में अहीन (अत्यधिक) ज्ञान (तथा) स्वभाव को धारण करते हुए, उस प्रकृति के साथ कैसे संयुक्त हुआ ? वह स्वयं एक होकर भी, चाहकर समस्त शरीरों में जीवरूप में बसनेवाले [ते.] जीव को दुर्भर-दुःख किस कर्म के कारण सम्प्राप्त हुआ ? हे अनघ चरित (वाले) ! मेरा चित्त दुर्गम अज्ञान स्थिति के कारण व्याकुल हो, अत्यन्त दुःखी हो रहा है। २३३ [व.] यह ऐसा है, इसलिए सूरि (बुध) जनों में उत्तम तुम मेरे मन के सन्देहों को दूर करने में समर्थ हो, ऐसा

नहुँडवनि विदुरुंडु मैत्रेय महामुनींद्रु नडिगॆ। अनि वादरायण-तनूभवुं डभिमन्यु-नंदनुन किट्लनियॆ ॥ 234 ॥

कं. सरसिरुहोदर मंगळ, चरितामृत पानकुतुक संगंबुन नि-
र्भरुडगु विदुरुनकु मुनी, श्वरु डगु मैत्रेयु डनियॆ सज्जनतिलका!॥ 235॥

चं. विनुमु वितर्कवादमुलु विष्णुनि फुल्ल सरोज पत्र ने-
त्रुनि घनमाय नॆप्पुडु विरोधमु सेयु वरेशु नित्य शो-
भनयुतु बंधनादिक विपद्दशलुन् गृपणत्व मॆप्पुडे
ननयमु बॊंद लेवु विभुडाद्यु डनंतुडु नित्यु डौटचेन् ॥ 236॥

व. मरियु ॥ 237

चं. पुरुषुडु निद्रबो गन्नल बॊंदु समस्त सुखंबु लात्म सं-
हरण शिरो विखंडनमु लादिग जीवुनिकिं ब्रबोधमं
दरयग दोचुचुन्न गति नादि वरेशुडु बंधनादुलन्
बॊरयक तक्कुटॆट्लनुचु बुद्धिनि संशय मंदॆदेनियुन् ॥ 238॥

व. अव्विध मर्तनिकि गलुगनेर ददि यॆट्लंटेनि ॥ 239 ॥

चं. ललित विलोल निर्मल जल प्रतिबिंबित पूर्ण चंद्र मंड
डलमु ददंबु चालन विडंबन हेतुवु नॊंदियुन् विय
त्तलमुन गंप मॊंदनि विधंबुन सर्व शरीर धर्ममुल्
गलिगि रमिंचु नीशुनकु गलगग नेरवु कर्म बंधमुल् ॥ 240 ॥

विदुर ने मैत्रेय महामुनीन्द्र से पूछा। इस प्रकार वादरायण-तनूभव (-पुत्र) ने अभिमन्यु-नन्दन से ऐसा कहा [पूछा]। २३४ [कं.] हे सज्जन-तिलक ! सरसिरुह-उदर वाले (विष्णु) के मंगल चरितामृत के पान की इच्छा की युक्तता से निर्भर (पूर्ण) विदुर से मुनीश्वर मैत्रेय ने कहा। २३५ [चं.] सुनो ! वितर्क-वाद विष्णु, प्रफुल्ल-कमल-पत्र नेत्रवाले की घन-माया का सदा विरोध करते हैं, (किन्तु) परेश्वर, नित्यशोभनयुत को बन्धन आदि विपत्ति की स्थितियाँ, (तथा) कृपणता (दीनता) कभी निश्चित रूप से प्राप्त न होते, क्योंकि विभु (विष्णु) आदि, अनन्त, नित्य है। २३६ [व.] और, २३७ [चं.] नीद में सपने में पुरुष (जीव) समस्त सुख, आत्मसंहार, शिरोखण्डन आदि को प्राप्त करता है। जागने के बाद जीव के सबको असत्य जान लेने की रीति, परमेश्वर बन्धनादि में न लगकर बच कैसे जाता है ? ऐसा बुद्धि (मन) से संशय करोगे तो, २३८ [व.] वह विधान उसके लिए लागू नहीं होता। वह कैसा है, यदि पूछोगे तो, २३९ [चं.] ललित (सुंदर)-विलोल (चंचल)-निर्मल जल में प्रतिबिम्बित पूर्णचन्द्रमण्डल के तत्-अंबु (उस जल) के चालन के कारण को प्राप्त कर भी, वियत्तल (आकाश)

व. कावुन जीवुनकु न विद्या महिमं जेसि कर्म बंधनादिकंबु संप्राप्तं बगु गानि सर्व भूतांतर्यामियैन योश्वरुनकु ब्राप्तंबुगा नेरदनि वेंडियु ॥ 241 ॥

चं. नरुनकु नात्म देहज गुणंबुल बापग नोपु बंकजो-
दर चरणारविंद महित स्फुट भक्तिय, यिंद्रियंबु ली
श्वर विषयंबुलैन मदि संचित निश्चल तत्त्वमैनचो
सरसिजनेत्रु कीर्तनमें चालु विपद्दशलं जयिपगन् ॥ 242 ॥

चं. हरि चरणारविंद युगळार्चन सन्नुति भक्ति योगमुल्
निरतमु गल्गुवारॅ भव नीरजगर्भुल कंदरानि भा
सुर पद मंदु जेरुदुरु सूरि जनस्तवनीय ! यट्टि स-
त्पुरुषुल पूर्व जन्म फलमुन् गणुतिंप दरंबे येरिकिन् ? ॥ 243 ॥

व. अनि चॅप्पिन विदुरुंडु मैत्रेयुं गनुंगॉनि मुकुळित हस्तुंडुनु विनमित मस्तकुंडु नगुचुं दन मनंबुन श्री हरिं दलंपुचु विनय युक्त वचन रचनुंडै यिट्लनियें। मुनींद्रा ! भवदीय वाक्यंबुल चेत ना मनंबुन नारायणुंडु लोकैक नाथुंडॅट्लय्यॅ ननियु, शरीर धारियैन जीवुनिकि गर्मबंधंबु लेरीति संभविंचॅ ननियुनुं बॉडमिन संशयंबु नेडु निवृत्तंबय्यॅ। एट्लनिन लोकंबुन

में कम्पित न होने की रीति सर्व-शरीर-धर्मों से युक्त हो रमण करनेवाले ईश को कर्मबन्धन लगते नहीं। २४० [व.] इस प्रकार जीव को अविद्या की महिमा के कारण कर्मबन्धन आदि सम्प्राप्त होते है, किन्तु सकल प्राणियों के अन्तर्यामी ईश्वर को प्राप्त नहीं हो सकते। और २४१ [चं.] पंकजोदर के चरण-कमलों की महित-स्फुट (व्यक्त)-भक्ति ही नर को अपनी देह के सहज गुणों को हटा सकती है। इन्द्रिय यदि ईश्वर सम्बन्धी हो जाएँ, मन अंचित-निश्चल-तत्व में लग जाए तो विपत्ति की स्थितियों को जीतने के लिए सरसिज-नेत्र (विष्णु) का कीर्तन ही पर्याप्त है। २४२ [चं.] बुधजन-स्तवनीय ! निरन्तर (सदा) हरि के चरणारविन्द-युगल की अर्चना, सन्नुति (स्तुति) तथा भक्ति-योग से युक्त होने वाले ही भव (शिव), नीरजगर्भ (ब्रह्मा) को भी अप्राप्य भासुर (परम)-पद को प्राप्त करते हैं। ऐसे सत्पुरुषों के पूर्वजन्म के सुकृत की गिनती करना किसी के वश की बात है ? (नहीं)। २४३ [व.] ऐसा कहने पर विदुर ने मैत्रेय को देखकर मुकुलितहस्त (कर बाँधकर) और विनमितमस्तक वाला (सिर झुकाकर) होते हुए, आपके मन में श्रीहरि का स्मरण करते हुए, विनयपूर्ण वचन-रचना से ऐसा कहा। मुनीन्द्र ! आपके वाक्यों के द्वारा मेरे मन में नारायण ही लोक का एकैक नायक कैसे बन गया है, और शरीरधारी जीव को कर्मबंधन किस प्रकार प्राप्त हुए ? ऐसा उत्पन्न संशय आज निवृत्त (निवारित) हुआ।

कीश्वरुंडु हरि यनियु जीवुंडु परतंत्रुं डनियुनु दलंपुदु। नारायण भक्ति प्रभावंबु प्राणिगोचरंबैन यविद्यकु नाशनकारणंबनं दनरुचुंडु। नारायणुंडु दनकु नाधारंबु लेक समस्तमुनकुं दान याधार भूतुंडै विश्वंबु वॊविवि यंदु दानुंडु तॆरंगॆट्लु? शरीराभिमानंबुनु वॊंदि यॆव्वडु मूढतमुंडै संसार प्रवर्तकुंडगु। नॆव्वंडु भक्ति मार्गंबुन वरमात्मुंडैन पुंडरीकाक्षुनि जॆंदु, वीर लिद्दरुनु संशय क्लेशंबुलु लेमि जेसि सुखानंद परिपूर्णुलै यभिवृद्धि नॊंदु वारगुदुरु एव्वंडु सुख दुःखानुसंधानंबुचे लोकानुगतुंडगुचुं बमोद वेदनंबुल नॊंदु नतंडु दुःखाश्रयुंडगु। नारायण भजनंबु समस्त दुःख निवारणंबगु ननि भवदीय चरण सेवानिमित्तंबुनं गंटि। प्रपंचंबु प्रतीति मात्रंबु गलिगि युन्नदि। अयिन नंदुकु गारणंबु लेकुंडुटं जेसि बॆलियनि वाडनै वर्तितु। अनि वॆंडियु ॥ 244 ॥

कं. ललि ना मदि दलपुदु सुम, तुलु गॊनियाडंग दगिन तोयजनाभुं
डलवड नल्प तपो निर, तुल तलपोतलकु मिगुल दुर्लभु डंचुन् ॥245॥

सी. इंद्रियंबुल तोड नॆलमि नॊप्पॆडि महदादुल नितरेतरानुषंग
मुग जेसि वानियं दॊगि विराड्देहंबु पुट्टिंचि यंदु जेपट्टि तानु

वह कैसा हुआ? कहोगे तो लोक का ईश्वर हरि है और जीव परतन्त्र है, ऐसा समझता हूँ। नारायण की भक्ति का प्रभाव, प्राणियों में दृष्टिगत होनेवाली अविद्या के नाश का कारण हो विलसित होता है। नारायण के अपने लिए आधार के विना ही समस्त के लिए आधारभूत हो, विश्व का सृजनकर, उसमें स्वयं स्थित होने की रीति क्या है? शरीर के अभिमान को प्राप्त कर कौन मूढ़तम होकर संसार में प्रवर्तित होता है? कौन भक्ति-मार्ग से परमात्मा पुण्डरीकाक्ष को प्राप्त करता है? ये दोनों [संशय, दुःख आदि के अभाव में] सुख तथा आनन्द से परिपूर्ण हो, वृद्धि को प्राप्त करते हैं। [जो सुख तथा दुःख का अनुसन्धान कर (जमा कर रखने से) लोकानुगत होते हुए, प्रमोद (आनन्द) तथा वेदना को प्राप्त करता है, वह दुःख का आश्रय होता है।] नारायण का भजन समस्त दुःखों का निवारक होता है, ऐसा भवदीय चरणों की सेवा करने के कारण जान गया। संसार आभासमात्र है। तब उसके कारण के अभाव में कुछ न जानकर अज्ञानी के रूप में व्यवहार करता हूँ। और फिर, २४४ [कं.] मैं अपने मन में विचार करता हूँ कि सुमतियों से स्तुति करने योग्य तोयज (कमल)-नाभवाला अल्प तपस्यावालों की समझ के लिए दुर्लभ है। २४५ [सी.] इन्द्रियों के साथ कुतूहल से विलसित महदादियों में अन्यान्य (परस्पर) की संगति कर, उनमें मिलकर विराट् देह को उत्पन्न कर, उसमें लगकर स्वयं निवास

वसियिंचु नातडु वरल सहस्र संख्यातंबु लगु मस्तकांघ्रिबाहु
कलित सत्पुरुषुनिगा ब्रह्मवादुलु पलुकुदु रा विराट्प्रभुवुनंदु

ते. भुवनजालंबु ललजडि,
वीरयकुंडु प्राणदशकंबु निंद्रियार्थमुलु निंद्रि
याधि दैवतमुलु गूड ननघ !
त्रिविध मगुच विप्रादिवर्णमु लय्येनंदु ॥ 246 ॥

कं. इल बुत्रपौत्र संपद
गलिगिन वंशमुलतोड गडु जोद्यमुगा
ललि ब्रजले गति गलिगिरि ?
कलिगिन या प्रजलचे जगमु लॅट्लुंडेन् ? ॥ 247 ॥

कं. चतुरत दीपिंचु प्रजा-
पतुलकु बति यनग वेलयु पद्मापति ये
गति बुट्टिंचेनु स्रष्टृ-
प्रततुलचे नवविध प्रपंचमु सरियुन् ॥ 248 ॥

ते. वानि भेदंबुलुनु मनु वंशमुलुनु,
मनुकुलाधीश्वरुलुनु दन्मनुकुलानु
चरितमुलु ने विभूति ने जूड दीनि,
नितयुनु बुट्ट जेसें ना केरुग बलुकु ॥ 249 ॥

कं. धरणिकि ग्रिंदट मीदट, तरमिडि गल लोकमुलनु दततु स्थितुलन्
वरुसलु बरिमाणंबुलु, जिरकृप नॅरिगिंपु नाकु निद्धचरित्रा ! ॥250॥

करते हुए, उसके विलसित होने पर, उसे हज़ारों संख्याओं के सिर, पैर, हाथों से युक्त सत्पुरुष के रूप में ब्रह्मवादी लोग वर्णन करते हैं। ऐसे विराट् प्रभु में [ते.] भुवन-समूह व्याकुल हुए बिना रहता है। [उस विराट्-विग्रह में] दस प्राण, इन्द्रियों को गोचर विषय, इन्द्रियों के अधि-देवताओं के साथ तीन गुणों से विप्र आदि वर्ण कैसे हुए ? (उस विराट्-स्वरूप) में, २४६ [क.] धरती पर पुत्र-पौत्र रूपी सम्पदा से युक्त वंशों के साथ अतिविचित्र रीति में प्रजा कैसे हुई ? [और] ऐसे उत्पन्न उन प्रजाओं से जगत कैसे विलसित हुए ? २४७ [कं.] चतुराई के साथ दीप्त होनेवाले प्रजापतियो के पति के रूप में विलसित होनेवाले पद्मापति (विष्णु) ने स्रष्टृ-प्रततियों (ब्रह्माओं के समूहों) से नौ प्रकार के संसार को कैसे उत्पन्न करवाया ? और, २४८ [ते.] उनके भेद (प्रकार), मनु के वंश, मनुकुलाधीश्वर तथा मनुकुलानुचरित (मनुकुल के अनुसार के वृत्तान्त) [आदि] का किस विभूति से, किस प्रकार से इस सब (समस्त) का सृजन करवाया, मुझे विदित करो। २४९ [कं.] इद्धचरित्रवाले !

कं. सुर तिर्यङ्नर राक्षस, गरुडोरग सिद्ध साध्य गंधर्व नभ
श्चर मुख भवमुलु मुनि कुं, जर ! गर्भ स्वेदजांडजमुल तॆरंगुन् ! ॥251॥

व. त्रिगुण प्रधानकंबुलु, नगु नवतारमुलु पूर्णमै वॆलसिन या जगदुत्पत्ति स्थिति लय, निगममुल विधंबु वानि निलकडलु दगन् ॥ 252 ॥

कं. चक्रायुध सौंदर्य प, राक्रम मुख गुणमुलुनु धरामर मुख व
र्ण क्रममुलु नाश्रम ध, र्म क्रियलु शीलवृत्त मत भावमुलन् ॥ 253 ॥

ते. योग विस्तार महिमलु,
यागमुलुनु ज्ञानमार्गंबुलुनु, परिज्ञान साध
नमुलनै यॊप्पु सांख्य योगमुलु
विकच जलजनयननस्मृतंबुलौ शास्त्रमुलुनु ॥ 254 ॥

सी. पाषंड मार्गंबु प्रतिलोमकुल विभागमुलु जीवुल गुण कर्ममुलुनु
पलुकुल गतुलुनु गलिगॆडि धर्म मोक्षमुलु यंदलि परस्पर विरोध
मुलु लेनि साधनमुलु भूमिपालक नीतिवार्तलु दंडनीति जाड
युनु वृथग्भावंबुलुनु विधानमुलुनु वितृ मेधमुलुनु यत्पितृ विसर्ग

ते. मतुलु दारा ग्रहंबुलु गालचक्र, मुन वॆसिचिन निलुकडलुनु दपंबु
दानमुलु दत्फलंबुलु दनरु प्रबल, धर्ममुलु प्रजलॊनरिंचु कर्ममुलुनु ॥255॥

धरती के नीचे और ऊपर क्रमशः स्थित लोक तथा तत्-तत् (उन-उनकी) स्थितियों को, उनके क्रम तथा परिणाम को चिर-कृपा से मुझे विदित करो। २५० [क.] मुनिकुंजर ! सुर, तिर्यक्, नर, राक्षस, गरुड़, उरग, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, नभचर मुख (आदि), गर्भज, स्वेदज, अण्डजों की रीति को [विदित करो], २५१ [व.] त्रिगुण प्रधान अवतारों के पूर्ण रूप से विलसित उस जगत की उत्पत्ति, स्थिति, लय, निगमों का विधान और उनकी स्थिति गति को उचित रूप से [विदित करो], २५२ [कं.] चक्रायुध (विष्णु) का सौन्दर्य, पराक्रम आदि गुण और भूसुर आदि [चार] वर्ण क्रम, आश्रम-धर्म की क्रियाएँ, शील, वृत्ति (आचरण), मत, भाव (स्वभाव), २५३ [ते.] योग [विद्या] का विस्तार [तथा] महिमाएँ, यज्ञ, ज्ञान-मार्ग, परिज्ञान (लोकज्ञान) के साधनों के रूप में विलसित सांख्य, योग, विकच (विकसित) जलजनयन वाले (विष्णु) के कृत शास्त्र, २५४ [सी.] पाखण्डमार्ग, प्रतिलोमकुल के विभाग, जीवों के गुण-कर्म और वचनों (संभाषणों) की रीतियों से परस्पर विरोध-रहित धर्म तथा मोक्ष आदि के साधन, राजाओं के नीति-सम्बन्धी समाचार, दण्ड-नीति का विधान, अलग करने के भाव और विधान, पितृ-मेध और उन पितरों के विसर्जन (पिंडप्रदान, तर्पण) [ते.] की गतियाँ (पद्धतियाँ), तारे, ग्रह,

चं. वदलक भूजनावळिकि वच्चु विपद्दश धर्ममुल् सरो
जदळ निभाक्षु डे गतिनि संतसमंदेडु नॆट्टि वारि बॆं
पॊंदवग गानवच्चु, गुरुलुल् प्रियशिष्युलु गॊल्व वारु स
म्मदमुन गोरु धर्ममुलु मानुग नॆट्लॆरिंगितु रिम्मुलन् ॥256॥

कं. विलयादि भेदमुल न, य्यलघुनि बरमेशु नॆव्वरंचित भक्तिन्
गॊलुतुरदॆव्वनितो नु, त्कलिकन् सुखियिंचु जीवतत्त्वमु मरियुन् ॥257॥

कं. गोविंदुनि रूपंबुन, जीवब्रह्मलकु नैक्य सिद्धियु नॆट्लौ
भावन नुपनिषदर्थंबै वॆलसॆडि ज्ञान मॆट्टि दार्यस्तुत्या ! ॥ 258 ॥

ते. उचितमगु नट्टि शिष्य प्रयोजनमुलु,
सज्जनुल चेत विज्ञान साधनमुलु
नेमिपलुकंगबडु वानि नॆल्ल मरियु,
बॊलुचु वैराग्यमुन दगु परम भक्ति ॥ 259 ॥

ते. इम्मियु दॆलिय नानति यिच्चि नन्नु,
नर्थि रक्षिंपु यज्ञ दानादि पुण्य
फलमु वेदंबु चदिविन फलमु नार्त-
जनुल गाचिन फलमुतो समम गावु ॥ 260 ॥

कालचक्र में स्थित स्थितिगतियाँ, तप, दान, और उनके फल, विलसित होनेवाले प्रबल धर्म, प्रजाओं से सम्पन्न होनेवाले कर्म, २५५ [चं.] भू (पर) की जनावली को अनिवार्य रूप से आनेवाली विपत्ति की दशाएँ, धर्म और सरोजदल-निभाक्ष (-समान नेत्र) वाले के सन्तुष्ट होने की रीति, किस प्रकार के लोगों को प्रवृद्ध होते देख सकते हैं, गुरुगण अपने प्रिय शिष्यों की सेवाएँ लेते हुए, आनन्द के साथ प्रार्थित हो उनके इष्टधर्म आदि को निश्चित रूप से कैसे विदित करते हैं। २५६ [कं.] विलय आदि के भेदों में स्थित उस अलघु (महान्) परमेश्वर की सेवा कौन अंचित (अनन्य) भक्ति से करते है, किसके साथ उत्कलिका (अधिक उत्साह) के साथ जीव-तत्त्व सुख पाता है। और, २५७ [कं.] आर्यस्तुत्य ! गोविन्द के रूप में जीव तथा ब्रह्मा में एकता की सिद्धि कैसे सम्भव होती है ? उपनिषदों के तात्पर्य से विलसित ज्ञान किस प्रकार का है ? २५८ [ते.] शिष्यों के लिए उचित प्रयोजन, सज्जनों के द्वारा विज्ञान के साधन ये सब किस प्रकार अभिव्यक्त होते है ? विलसित होनेवाले वैराग्य तथा परमपुरुष के प्रति भक्ति, २५९ [ते.] आदि सबका ज्ञान देकर, मुझ अर्थी (चाहनेवाली) की रक्षा करो। यज्ञ, दानादि का पुण्य फल, वेदों के अध्ययन का फल,[ये दोनों] आर्त्तजनों की रक्षा के फल के समान (बराबर)

कं. अनि विदुरुडु मैत्रेयुनि,
विनयंबुन दॆलिय नडुगु विधमॆल्लनु व्या-
सुनि सुतु डभिमन्युनि नं,
दनुनकु नॆरिंगिचि मरियु दग निट्लनियॆन् ॥ 161 ॥

अध्यायमु—८

चं. इल गल मानवावळिकि नॆल्ल नुतिंप भजिंप योग्यमै
वॆलसिन पूरुवंशमु पवित्रमु सेयग बुट्टि सद्गुणा
कलित यशः प्रसून लतिका ततिकिं ब्रति वासरंबु पॆं
पलरग ब्रोदि वॆट्टुदु गदय्य मुकुंद कथामृतंबुनन् ॥ 262 ॥

ते. अल्पतरमैन सुखमुल नंदुचुन्न,
जनुल दुःखंबु मान्पंग जालु नट्टि
पुंडरीकाक्षु गुण कथा प्रोतमैन,
वितत निगमार्थमगु भागवतमु नीकु ॥ 263 ॥

व. ऎिंगिंतु विनुमनि यिट्लनियॆं ॥ 264 ॥

सी. अम्महा भागवताम्नाय मॊकनाडु गैकॊनि पाताळ लोक मंदु
नप्रतिहत बुद्धियं वासुदेवाख्य वॊलुचु संकर्षण मूर्ति दिव्य

नहीं होते। [अतः मेरा उद्धार करो।] २६० [कं.] इस प्रकार विदुर के विनय के साथ मैत्रेय से पूछने की सारी रीति को व्यास-सुत ने अभिमन्यु-सुत को विदित किया। और समुचित रीति से इस प्रकार कहा। २६१

अध्याय—८

[चं.] धरती पर स्थित समस्त मानवावली के स्तुति करने [तथा] भजन करने योग्य बन विलसित पूरुवंश को पवित्र करने के लिए जन्म लेकर सद्गुणों से कलित यश रूपी कुसुम-लताओं के समूह को प्रतिदिन मुकुन्द की कथा के अमृत से, प्रवर्द्धित (तथा) पोषण करते हो न! २६२ [ते.] अल्पतर (अतिस्वल्प) सुखों को पानेवाले लोगों के दुःख दूर करने में समर्थ पुण्डरीकाक्ष की गुण-कथाओं से पूर्ण निगमों के वितत-अर्थ (सार-स्वरूप) भागवत को तुम्हें, २६३ [व.] विदित करूँगा! सुनो, कहते हुए, ऐसा कहा। २६४ [सी.] उस महाभागवत-आम्नाय (-वेद) को लेकर एक दिन पाताललोक में अप्रतिहत (अबाध-) बुद्धि से वासुदेव नाम से विख्यात संकर्षण-मूर्तिवाले [उस] दिव्य पुरुष के अपने-आप को बुद्धि से देखते हुए ललित ध्यान में मुकुलित निमीलित नेत्रोंवाला हो, सनन्द के अभ्युदय के लिए आँखें खोलकर देखने पर, [ते.] अमरगंगा में सुस्नाता

पुरु षुड्डु दनुदान बुद्धिलो जूचुचु सललित ध्यान मुकुळित नेत्र
डं सनंदाभ्युदयार्थंबु गनुविच्चि चूचिन वारु संस्तुतु लीनर्प

ते. नमर गंगावगाहनुलै यहीन्द्र-
कन्य लार्द्र जटाबंध कलित लगुचु
भर्तृ वांछानुबुद्धि नप्परमपुरुषु,
गदियनेतेंचि तत्पादकमल युगमु ॥ 265 ॥

कं. सेविंचि भक्तितो नाना, विध पूजोपहार नति नुतुलनु ना
देवुनि हृदयमु वडसिरि, या वेळ सनंदनादुल स्महितात्मुन् ॥ 266 ॥

म. घन साहस्र किरीटरत्न विलसत्कांत प्रसिद्ध प्रभा
जनितोदग्र रुचि प्रकाशित फणा-साहस्रुडौ देवता
वन दीक्षाचणु रूप कृत्यमु लौगिन् वांछन् प्रशंसिचि वा
रनुराग स्खलितोक्तु लोप्पु नडुगन् हर्षिचि या देवुडुन् ॥ 267 ॥

ते. भूरि निगमार्थ सार विचार मगुचु,
दनरु नी भागवतमु सादरत बलिकॆ
नलिन भवसूतियैन सनत्कुमार-
कुनकु नॆरिगिचॆ सांख्यायनुनकु नतडु ॥ 268 ॥

कं. परग नतंडंत बरा, शरुनकु नुपदेशमिच्चॆ सन्मति नतडुन्
सुर गुरुन कौसगॆ नातडु, गरमरुदुग नाकु जॆप्पॆ गैकोनि येनुन् ॥ 269 ॥

हो अहीन्द्र-कन्याओं के भीगे हुए जटा-बंधों से कलित (सुशोभित) होती हुई पति-भावना से बुद्धि (इच्छा) कर, उस परमपुरुष के समीप पहुँचकर उसके चरण कमल युगल की, २६५ [कं.] सेवा कर भक्ति के साथ नाना प्रकार की पूजा, उपहार, नति (नमस्कार), स्तुतियों से, उस भगवान के हृदय को प्राप्त (जीत) किया। उस वेला में, सनन्दनादियों ने उस महितात्मा की, २६६ [म.] हज़ार घन (महान्) किरीटों में विलसित रत्नों के कान्त (मनोहर) [तथा] प्रसिद्ध प्रभाओं से जनित-उदग्र रुचियों से प्रकाशित सहस्र फणवाले पर स्थित, देवाता-आवन (-रक्षा) की दीक्षाशीलवाले के रूप-कृत्यों की तुरन्त इच्छा से प्रशंसा कर, उनके अनुराग से स्खलित (लड़खड़ाते) वचनों के द्वारा पूछने पर, उस भगवान ने हर्षित होकर, २६७ [ते.] भूरि (अतिशय) रूप से निगम के अर्थ-सार (तात्पर्य) के विचार से युक्त हो विलसित होनेवाले इस भागवत को सादर [भाव] से नलिनभवसूति (ब्रह्मा के पुत्र) सनत्कुमार को विदित किया। (और) उसने सांख्यायन को बताया। २६८ [कं.] समुचित रूप से उसने तब पराशर को उपदेश किया। सन्मति से उसने सुरगुरु को प्रदान किया। अधिक विरल ढंग से उसने मुझे विदित किया। उनसे लेकर मैं, २६९

कं. नीकिप्पुडु विवरिंचॅद, नाकर्णिपुमु सरोरुहाक्षुंडगु सु-
श्लोकुनि चरितामृत परि, षेकुडनै मुदमु गदुर जॅलगुमु विदुरा!॥ 270 ॥

व. इट्लु भगवत्प्रोक्तंबुनु, ऋषि संप्रदायागतंबुनु, पुरुषोत्तम स्तोत्रंबुनु, परम पवित्रंबुनु, भव लता लवित्रंबुनु नैन भागवत कथा प्रपंचंबु श्रद्धाळुंडवु भक्तुंडवु नगु नीकु नुपन्यसिचॅद। विनुमु ॥ 271 ॥

सी. अनघ! येकोदकमै युन्न वेळ नंत निरुद्धानल दारु वितति
भाति जिच्छक्ति समेतुडै कपट निद्रालोलुडगुचु निमीलिताक्षु
डैन नारायणु डंबु मध्यमुन भासुर सुधा फेन पांडुर शरीर
रुचुलु सहस्र शिरो रत्न रुचुलतो जॅलिमि सेयग नॊप्पु शेष भोग

ते. तल्पमुम वव्वळिंचि यनल्प तत्त्व,
दीप्ति जॅन्नॊंदगा नद्वितीयुडगुचु
नभिरतुं डय्यु गोकुलयंदु वासि,
प्रविमलाकृति नानंदभरितुडगुचु ॥ 272 ॥

ते. योगमाया विदूरुडै युगसहस्र-
कालपर्यंत मखिललोकमुलु मिग्रि
पेंचि मरि काल शक्त्युपबृंहितमुन,
समत सृष्टि क्रियाकलापमुल दगिलि ॥ 273 ॥

[कं.] अब तुम्हें विदित करूँगा। हे विदुर! सुनो! सरोरुहाक्ष वाले, पुण्यश्लोक वाले के चरितामृत से सुस्नात होकर, आनन्द के साथ विकास पाओ। २७० [व.] इस प्रकार भगवान के द्वारा कथित ऋषियों के सम्प्रदाय (परंपरा) का अनुगमन करनेवाले, पुरुषोत्तम के स्तोत्र-स्वरूप, परम पवित्र हो, भवलता के लिए लवित्र (हँसिया) रूपी भागवत-कथा-जगत के श्रद्धालु भक्त होने के नाते तुम्हें सुनाऊँगा। सुनो। २७१ [सी.] अनघ! [जब समस्त विश्व] मात्र उदक [पूर्ण] था, उस वेला में, अन्तर में निरुद्ध अनल से [युक्त] दारु-वितति (काष्ठ-समूह) की भाँति, चित् शक्ति से सहित हो, कपट निद्रा में लीन होते हुए, निमीलित नेत्रोंवाले नारायण के अंबु (जल)-मध्य में, भासुर-सुधा के फेन-सम पाण्डु शरीर की रुचियों के, हजारों शिरोरत्नों से युक्त होने पर विलसित होनेवाले शेष-भोग (-सर्प) के [ते.] तल्प पर लेटकर अनल्प (महान)-तत्त्व की दीप्ति के शोभित होने पर, अद्वितीय होकर भी, अभिरत (इच्छा-सहित) होते हुए भी, इच्छाओं से रहित होकर, प्रविमल आकार से, आनन्द से पूर्ण होते हुए, २७२ [ते.] योगमाया से परे होकर, हजारों युगों के काल-पर्यन्त (-तक) अखिल लोकों को निगलकर (उदरस्थ कर) सजाकर, और फिर काल और शक्ति से प्रवृद्ध होकर, समता [दृष्टि] से क्रिया-कलापों में

कं. तन जठरमु लोपल दा, चिन लोक निकयामुल सृजिचुटकुनु सा
धनमगु सूक्ष्मार्थमु मन, सुन गनि कालानुगत रजोगुण मंतन् ॥ 274 ॥

सी. पुट्टिंचॆ ददगुणंबुन बरमेश्वरु नाभिदेशमु नंदु नळिननाळ
मुदयिंचॆ मरियप्पयोरुह मुकुळंबु गर्मबोधितमैन कालमंदु
दन तेजमुन ब्रवृद्धंबैन जलमुचे जलजाप्तु गति ब्रकाशंबु नोंद
जेसि लोकाश्रय स्थिति सर्व गुण विभासित गतिनोप्पु राजीवमंदु

ते. निजकळा कलितांशंबु निलिपॆ दानि,
वलन नाम्नाय मयुडुनु वर गुणुंडु
नात्मयोनियु नैन तोयजभवुंडु,
सरवि जतुराननुंडु ना जनन मोंदॆ ॥ 275 ॥

ते. अतडु तत्पद्म कर्णिक यंदु निलिचि,
विकचलोचनुंडै लोक वितति दिशलु
नंबरंबुनु निज चतुराननमुल,
गलय बरिकिंचि चूचुचु गमलभवुडु ॥ 276 ॥

चं. अलघु युगांत काल पवनाहत संचल दूर्मिजाल सं
कलित जल प्रभूत मगु कंजमु, दद्वन जात कर्णिका
तलमुन नुन्न तन्नु, विशद क्रिय गल्गिन लोक तत्त्वमुन्
नलि दॆलियंग नोपक मनंबुन जाल विचार मोंदुचुन् ॥ 277 ॥

मग्न होकर, २७३ [कं.] अपने जठर (पेट) में छिपाये लोक-समूह के सृजन करने के लिए साधन-स्वरूप सूक्ष्म-अर्थ (-साधन) को मन में जानकर, तब काल के अनुसार रजोगुण को उत्पन्न किया। २७४ [सी.] उस गुण से परमेश्वर के नाभिस्थान में नलिन (कमल) नाल उदित हुआ, और वह पयोरुह (कमल)-मुकुल ने, कर्म से प्रबोधित हो, काल मे अपने तेज के साथ प्रवृद्ध होनेवाले जल से जलजाप्त (सूर्य) की गति प्रकाशित कर, लोकाश्रय की स्थिति से, सर्वगुणों से विभासित होने की रीति राजीव (कमल) में, [ते.] अपनी कला से कलित अंश को प्रतिष्ठित किया। उसके द्वारा अम्नायमय, वरगुणशाली, आत्मयोनी हो तोयजभव (ब्रह्मा), चतुरानन के रूप में क्रमशः उत्पन्न हुआ। २७५ [ते.] वह कमलभव उस पद्म की कर्णिका में स्थित होकर, आँखे खोलकर, लोकसमूह, दिशाओं को, अम्बर को, अपने चार मुखों से परखकर ध्यान से देखता रहा। २७६ [चं.] महान प्रलयकाल के पवन से आहत होनेवाले, चंचल लहरों के समूह से संकलित जल में उत्पन्न कमल (और) उस वनजात (कमल)-कर्णिका-तल में स्थित अपने-आप को (एवं) विशद क्रिया से युक्त लोकतत्त्व को स्पष्ट रूप से जान न सक, मन में अत्यन्त चिन्ता करते हुए। २७७

व. इट्लु वितर्किंचें ॥ 278 ॥

उ. ई जलमंदु नी कमल मेगति नुद्भव मय्यें, नींटि ने
नी जलजात पीठमुन ने गति नुंटि मदाख्य येद्धि, ना
की जननंबु नींदुटकु नेय्यदि हेतुवु, बुद्धि जूड ने
योज नेरुंग ले ननि पयोरुह-गर्भुडु विस्मितात्मुडै ॥ 279 ॥

कं. आ वनज नाळ मूलं, बा वनमुलतोन र्थि नरयुट कोरकें
या वनजात प्रभवुं, डा वनरुह नाळ विवर मंदभिमुखुडै ॥ 280 ॥

म. अति गंभीर विशाल वारिनिधि तोयांत निमग्नांगुडै
चतुरास्युंडुरु दिव्य वत्सर सहस्रं बब्ज मूलंबु स-
न्मति नीक्षिचियु गानलेक भगवन्माया महत्त्वंबु वि
स्मृति गाविप विभीतुडै मरल जेरें दत्सरोजातमुन् ॥ 281 ॥

ते. अट्लु ग्रम्मर जेरि यय्यब्ज पीठ
मंदु नष्टांग योग क्रियानुरक्ति
बवनु बंधिंचि महित तपस्समाधि
नुंडि शत वर्षमुलु चनुचुंड नंत ॥ 282 ॥

आ. अट्टि योग जनितमैन विज्ञानंबु, गलिगियुंडि दान गमल नयनु
गानलेक हृदय कमल कर्णिक यंदु, नुन्न वानि दन्नु गन्न वानि ॥283॥

[व.] इस प्रकार वितर्क किया (ब्रह्मा ने सोचा कि), २७८ [उ.] इस जल में यह कमल कैसे उद्भूत (उत्पन्न) हुआ ? (और) इस जलजात (कमल) के पीठ मध्य मे अकेला मैं कैसे रहा ? मेरा नाम क्या है ? मेरे इस जन्म लेने का कारण क्या है ? बुद्धि से मैं इस विधान को जान नहीं पाता, ऐसा पयोरुह-गर्भ (ब्रह्मा) ने विस्मित होकर, २७९ [कं.] उस वनज (जलज) के नाल के मूल को उस वन (जल) में, चाहकर, जानने के लिए वह वनजातप्रभव (कमलज) ने उस वनरुह (कमल) के नाल के अभिमुख हो, २८० [म.] अति गम्भीर (तथा) विशाल वारिनिधि (जलनिधि) के अन्तर में निमग्न हो (डूब) कर, चतुरास्य (ब्रह्मा) ने श्रेष्ठ हज़ारों दिव्य वर्ष तक अब्ज (कमल) के मूल को सद्बुद्धि से देख (खोज) कर, न जान सक, भगवान की माया के महत्त्व से विस्मृत हो, भयभीत हो, उस सरोजात (कमल) में फिर आया । २८१ [ते.] इस प्रकार क्रमशः पहुँचकर, उस अब्ज-पीठ (कमल की कर्णिका) में अष्टांगयोग क्रिया की अनुरक्ति से, पवन (साँस) को रोककर, महान तप की सन्निधि में सैकड़ों वर्षों के वीत जाने पर, तब, २८२ [आ.] इस प्रकार के योग से उत्पन्न विज्ञान को लेकर भी कमलनयन वाले को न देख सक, [तत्पश्चात्] हृदय-कमल की कर्णिका में स्थित, अपने को जन्म देने

म. कनियें निश्चल भक्ति योग महिमन् गंजात-गर्भुंडु शो-
भन चारित्रु, जगत्पवित्रु, विलसत्पद्मा, कळत्रुन्-सुधा
शन - मुख्य - स्तुति - पात्रु - दानव चमू जेत्रुन्, दळत्पद्मने
त्रु, नवीनोज्ज्वल नील मेघ निभ गात्रुन्, बक्षिराट्पत्रुनिन् ॥284॥

व. मरियु ॥ 285 ॥

चं. अलघु फणातपत्र निचयाग्र समंचित नूत्न रत्न नि-
र्मल रुचिचे युगांत तिमिरंबु नडंचि यकल्मषोल्ल स
ज्जलमुल जेसि यंदु नव सारस नाळ सितंक भोगमुं
गलिगिन शेषतल्पमुनु गैकोनि युन्न महात्मु नीक्षकनिन् ॥286॥

सी. वर पीत कौशेय परिधान कांति संध्यांबुद रुचि निचयंबु गाग
गमनीय हेम संकलित किरीटंबु रमण कांचन शिखरंबु गाग
मानित मौक्तिक मालिका रुचि सानु पतित निर्झर परंपरलु गाग
जॅलुवोंदु नव तुलसी दामकमुलु लालित तट जौबधीलतलु गाग

ते. वर भुजंबुलु निकटस्थ वंशमुलुग,
बदमु लंगण पादप प्रचयमुलुग
ललित गति नॉप्पु मरकताचल विडंबि-
तात्मदेहंबु गलुगु महात्मु हरिनि ॥ 287 ॥

वाले को, २८३ [म.] निश्चल भक्ति-योग की महिमा के कारण कंजात-गर्भ (ब्रह्मा) ने शोभन (शुभप्रद) चरित्रवाले को, जगत में पवित्र को, पद्मा को कलत्र (पत्नी) के रूप में (पाकर) विलसित होनेवाले को, सुधापान, करनेवाले (देवताओं) के स्तुति-पात्र को, दानव-चमू (-सेना) को जीतने वाले को, पद्मदल-सम नेत्रों वाले को, नवीन-उज्ज्वल-नील मेघ की प्रभा-सम गात्र (शरीर) वाले को, पक्षिराट् (गरुड़) के पत्रों (पंखों) को वाहन के रूप में ग्रहण करनेवाले को देखा। २८४ [व.] और, २८५ [चं.] अलघु (महान) फणों के आतपत्र (छत्र)-समूह के अग्र में समंचित (शोभित) नूतन (नवीन) रत्नों की निर्मलकान्ति से युगान्त (प्रलयकाल) के तिमिर (अन्धकार) को मिटाकर, अकल्मष हो उल्लसित होनेवाले जल की कल्पना (सृष्टि) कर, नव सारसनाल के समान श्वेत भोग (फण) वाले शेष तल्प को लिये हुए (शेषशायी) एक महात्मा को, २८६ [सी.] श्रेष्ठ पीत कौशेय वस्त्र की कान्ति के सन्ध्याकाल के अंबुद (मेघ) के रुचि निचय (कान्ति-समूह) होने पर, कमनीय हेम (स्वर्ण) संकलित किरीट के रम्यस्वर्ण शिखर के समान होने पर, श्रेष्ठ मोतियों की मालाओं की कान्तियों के सानुओं से झरनेवाले निर्भर परम्पराएँ होने पर, सुन्दर नवतुलसीमालाओं के तट पर उत्पन्न ललित ओषधी लताएँ होने पर, [ते.] श्रेष्ठ भुजाओं के समीपस्थ वंशवृक्ष होने पर, चरण (युगल) आँगन के वृक्षसमूह होने पर, ललितगति

व. मरियु नपरिच्छिन्नंबुनु, निरुपमानंबुनु, निखिल लोक संग्रहंबुनु, नतिविस्तार वर्तुलायामंबुनु नै, विविध विचित्र दिव्य मणि विभूषणंबुल नात्मीय निर्मल द्युति चेतं ब्रकाशंबु नोंदं जेयु दिव्य देहंबु दनर विविधंबुलगु कामंबु लभिलर्षिचि विशुद्धंबैन वेदोक्त मार्गंबुन भजियिंचु पुरुष-श्रेष्ठुलकु गामधेनुवनं दगिन पाद-पद्म-युगंबुनु, नळिक फलक ललित रुचि निचयंबुलकु नोट्टपडि कृपापात्रुंडै चंद्रुंडु बहु रूपंबुल पदसरोजंबुल नाश्रयिंचें नन नोप्पु पद-नखंबुलुनु, गमला भू कांतलकु नुपधान रूपंबु लनं दगि नील कदळिका स्तंभंबुल डंबु विडंबिंचु नूरु युगळंबुनु, गनक मणिमय मेखला कलापाभिरामंबु गदंब किंजल्क शोभित पीतांबरा-लंकृतंबुनै विलसिल्लु कटि मंडलंबुनु, श्रृंगार वाहिनी जलावर्तंबु ना बोलुचोंदु नाभी विवरंबुनु, जठरस्थ निखिल ब्रह्मांड महुर्मुहुरुद्भव कृशीभूतं बनं दगु मध्य भागंबुनु, महित मुक्ताफल मालिका विरचित रंगवल्ली विराजितंबु, नव तुलसी दाम किसलय तल्पंबु, गुसुम मालिका-लंकृतंबु घनसार कस्तूरिका चंदन विलिप्तंबु, गौस्तुभ रत्न प्रदीप्तंबु,

---

से सुशोभित होनेवाले मरकत पर्वत की अवहेलना करनेवाली आत्मदेह (निजशरीर) वाले महात्मा हरि को [देखा]। २८७ [व.] और अपरिच्छिन्न, निरुपमान, सकल लोकों में समाए हुए (स्वरूप), अति विस्तृत-वर्तुलाकृति की व्याप्ति से युक्त विविध [प्रकार के] विचित्र-दिव्य मणियों के विभूषणों को अपनी निर्मल द्युति (कान्ति) से प्रकाशित करानेवाली दिव्य देह के शोभित होने पर, जो नाना प्रकार की कामनाओं की अभिलाषा कर विशुद्ध वेदोक्त-मार्ग से भजन करनेवाले पुरुषश्रेष्ठों के लिए कामधेनु कहाने योग्य पाद-पद्म युगल हैं और अलिक (ललाट)-फलक की ललित-कान्ति-समूह से हारकर, [उसके] कृपापात्र बन चन्द्र ने अनेक रूपों से मानो चरण-सरोजों का आश्रय पा लिया हो, ऐसे सुशोभित हैं [उस परमपुरुष के] पदनख। कमला तथा भूकान्ताओं के लिए उपधान (तकिये) के समान नील कदलिका के स्तम्भों के सौंदर्य की अवहेला करनेवाले हैं ऊरु युगल और कनक तथा मणिमय मेखला से अभिराम तथा कदम्ब के केसर के समान शोभित पीतांबर से अलंकृत हो विलसित है कटिमण्डल। श्रृंगार वाहिनी (नदी) में आवर्त (भँवर) की भाँति सुंदर नाभि-रन्ध्र है। जठरस्थ (उदर में स्थित) सकल ब्रह्माण्डों के बार-बार उद्भव के कारण कृशीभूत हुआ हो, ऐसा है मध्यभाग (कटिभाग)। अति सुन्दर मोतियों की मालाओं से विरचित रंगवल्लियों से विराजित नवतुलसी-दाम (-मालाओं) एवं पल्लवों की शय्या, कुसुम-मालाओं से अलंकृत, घनसार, कस्तूरिका (तथा) चन्दन से विलिप्त कौस्तुभरत्न से प्रदीप्त श्रीवत्स के लक्षण (चिह्न) से लक्षित होकर,

श्रीवत्स लक्षण लक्षितंबुनै यिदिरकु गेळीमंदिरंबनं बॉल्चु वक्षस्स्थलंबुनु, सुख केळी समारंभ परिरंभणांभोधि राट्कन्यका करांभोज कीलित कनक मणि कंकण निकषंबुलं बॉलुपारु रेखात्रय विराजमान कंबुकं-धरंबुनु, सुमहितानर्घ दिव्यमणि प्रभा विभासित केयूर कंकणमुद्रि कालंकृतंबुलैन बाहुवुलुनु, सकल लोकार्ति निवारक दरहास चंद्रिका धवळितंबुलै कर्ण कुंडल मंडन मणि मरीचुलु नर्तनंबुलु सलुपं दनरि निद्दंबुलगु चॅक्कुटद्दंबुलुनु, परिपक्व बिंबफल प्रवाळ पल्लवाधर शोणायितंबुनु, नखिल भुवन परिपालनंबुनकु नेन चालुदु ननि विवादिंचु नयन युगळंबुनकु सीमा स्तंभंबुनु, चंपक प्रसून रुचि विभासंबुनु नगु नासादंडंबुनु, गमल कुमुदंबुलकुं बेंपु संपादिंपुचु गरुणामृत तरंगि तांगंबुलै कर्णांत विश्रांतंबुलै चॅलुवोंदु नेत्रंबुलुनु, सललित श्री कारंबुनकु नक्षरत्वंबु सार्थकं बय्यॅ ननं दगु कर्णंबुलुनु, निक्षु चापु चापद्वय रूपंबुलं जूपट्टु भ्रू युगळंबुनु, नपर पक्षाष्टमी शशांक शंकास्पद फाल फलकंबुनु, नील गिरींद्र शृंग संगत बाल मार्तांड मंडल विडंबित पद्मराग मणि खचित कांचन किरीटंबु चे बॉलुपारि सूर्येंदु पवनानल प्रकाशंबुलकु

इन्दिरा का केली-मन्दिर बन सुशोभित है वक्षःस्थल और सुखकेली के संरम्भ के परिरंभण (आलिंगन) में सागर-कन्या के करांभोजों (हाथों) के मणि-कंकणों के निकष (घिस जाने से बने) रेखात्रय से सुशोभित है कम्बु-कंधर (शंख-समान कण्ठ), सुमहित-अनर्घ दिव्य मणियों की प्रभा से विभासित केयूर, कंकण, मुद्रिका से अलकृत बाहुएँ और सकल लोकों के दुःख-निवारण करनेवाले दरहासचन्द्रिका से धवल बनकर, कर्णकुण्डलों में मंडित मणियों की मरीचियों (कांतियों) के नर्तन करने पर, चिकने बने सुन्दर गाल है। परिपक्व (पके हुए) बिंबफल, प्रवाल [तथा] पल्लव के समान अरुण अधर है। सकल भुवनों के परिपालन करने के लिए मैं अकेला समर्थ हूँ, ऐसा विवाद करनेवाले नयन-युगल के लिए सीमा-स्तम्भ, चंपक-प्रसून की रुचि (शोभा) के समान नासादंड (नासिका) है। कमल तथा कुमुदिनियों के सौंदर्य को विकसित करनेवाले, करुणामृत के तरंग-अंग बन कानों के अंत तक सुविलसित होनेवाले नेत्र है। सललित 'श्रीकार' को अक्षरत्व सार्थक करनेवाले [श्री नामक अक्षर को रूप देनेवाले और श्री को अक्षर (नाशरहित) बनानेवाले] कर्ण है। इक्षुचाप वाले (काम-देव) के चापद्वय (दो धनुषों) के रूप में दिखाई पड़नेवाले युगल हैं। अपर पक्ष (कृष्णपक्ष) के अष्टमी के चन्द्र का सन्देह उत्पन्न करनेवाला फल-फलक (-ललाट) है। नील गिरींद्र (पर्वत) के शृंग (शिखर) के ऊपर उठनेवाले बाल-मार्तण्ड (सूर्य) को विडंबित करनेवाला तथा पद्मराग-मणि-खचित कांचन-किरीट से सुशोभित हो सूर्य, चन्द्र तथा पवन, अनल के

नवकाशंबु चूपक त्रिलोक व्यापक समर्थंबुलगु तेजो विशेषंबुलुनु, संगर रंगंबुल दानवानीकंबुल हरिपं जालु सुदर्शनादि दिव्यसाधनंबुलचे दुरासदंबगु दिव्य रूपंबुनुं गलिगि मरियु ॥ 288 ॥

उ. हारकलाप पुष्प निचयंबुल जंचदनर्घ रत्न के-
यूर करांगुळीयक महोज्ज्वल बाहु सहस्र शाख लॊ-
प्पारग जूड नॊप्पि भुवनात्मक लील नदृष्ट मूल वि-
स्फारित भोगि वेष्टित विभासित चंदन भूरुहाकृतिन् ॥ 289 ॥

म. विलसत्कुंडलि राज सख्यमुन नुर्वीभृत्समाख्यन् समु
ज्ज्वलितोदार शिरो विभूषण सहस्र स्वर्ण कूटंबुलन्
सलिलावासत जारु कौस्तुभ विराजद्रत्न गर्भंबुनन्
नलिनाक्षुंडु गनुं गॊनंग वर्गॆ मैनाकावनी भृद्गतिन् ॥ 290 ॥

कं. विततार्थ ज्ञान जप-
स्तुति मकरंद प्रहृष्ट श्रुति जात मधु
व्रत गण परिवृत शोभा-
गत कीर्ति प्रसव मालिकलु गलवानिन् ॥ 291 ॥

व. कनुंगॊनि चतुराननुंडु ॥ 292 ॥

प्रकाशों को मौक़ा न देकर तीन लोकों में व्याप्त होने में समर्थ विशिष्ट तेज के साथ और संगर-रंग (संग्राम-क्षेत्र) में दानवसमूह को समाप्त करने में समर्थ सुदर्शन आदि दिव्य साधनों से दुरासद बने हुए (निकट न आने देनेवाले) दिव्य रूप से युक्त हो, और, २८८ [उ.] हार-कलापों (आभूषणों) से, पुष्प-गुच्छों से, प्रकाशित अनर्घ रत्न-केयूरों से, अँगूठियों से [सुशोभित होनेवाले] महोज्ज्वल हज़ार बाहु रूपी शाखाओं के सुशोभित होने पर, भुवनात्मक लीला से, अदृष्ट-मूल हो, विस्फारित (फन फैलाए हुए) भोगि (सर्प) से परिवेष्टित हो विभासित (प्रकाशित) होनेवाले चंदन-भूरुह (वृक्ष) की आकृति में था। २८९ [म.] विलसित कुण्डलिराज (सर्पराज) की संगति से, उर्वीभृत (पर्वत, विष्णु) की आख्या (नाम) से समुज्ज्वल तथा श्रेष्ठ शिरोभूषणों से विलसित होनेवाले हज़ार सोने के शिखरों से युक्त हो, सलिल मे आवास के कारण, चारु (सुन्दर) कौस्तुभ [रत्न] से विराजित रत्नगर्भ से युक्त हो, मैनाक-अवनीभृत (-पर्वत) के समान नलिनाक्ष (वाले) दर्शनीय हुआ। २९० [कं.] वितत (विस्तृत) अर्थ से युक्त ज्ञान, जप, स्तुति रूपी मकरंद से प्रहृष्ट बनी श्रुतियों (वेदों) के समूह रूपी मधुव्रतगण (भ्रमरगण) से परिवेष्टित शोभा से युक्त कीर्ति रूपी पुष्पमालाओं [से सुशोभित होनेवाले] को, २९१ [व.] देखकर चतुरानन (ब्रह्मा) ने, २९२ [सी.] अनघ, सर्वेश्वर आदि (तथा)

सी. अनघु सर्वेश्वरु नाद्यंत शून्युनि धन्युनि जगदेक मान्य चरितु
दन्नाभि सरसिजोद्भव सरोजंबुनु नप्पुल ननिलुनि नंबरमुनु
मानित भुवन निर्माण दृष्टिनि बौडगनें गानि यितरमु गानलेक
यात्मीय कर्म बीजांकुरंबुनु रजो गुणयुक्तुडगुचु नकुंठित प्र

ते. जाभिसर्गाभिमुखत नव्यक्त मार्गु-
डैनहरि यंदु दन हृदयंबु जेर्चि
यम्महात्मुनि बरमु ननंतु नभवु,
नजु नमेयुनि निद्लनि यभिनुतिंचें ॥ 293 ॥

अध्यायमु—९

सी. नलिनाक्ष ! मायागुण व्यतिकरमुन जेसि कार्यंबैन सृष्टि रूप
मुन ब्रकाशिचु नी घन रूप विभवंबु रूपिंप देह धारुलकु दुर्वि-
भाव्यंबु दलपोय भगवंतुडवु नैन पद्माक्ष ! नी स्वरूपंबु कंटे
नन्य मौकटि सत्यमै बोधकंबैन यदि लेदु कान नी यतुल दिव्य

अन्त के शून्य (वाले), धन्य, जगत में एक मात्र मान्य चरित्र वाले, को (और) उसके नाभि-कमल से उत्पन्न सरोज को और अप् (जल), अनिल (पवन), अम्बर (आकाश), में मान्य भुवन-निर्माण करने की दृष्टि (भावना) को देखा (पाया)। किन्तु अन्य कुछ न जान सक, अपनी आत्मा के बीजांकुर को रजोगुण से युक्त हो, अबाध गति से, [ते.] प्रजा की सृष्टि करने के लिए उद्यत, अव्यक्त मार्ग वाले हरि में अपना हृदय लगाकर उस महात्मा के परम, अनंत, अभव, अजन्मा, अमेय (माप-रहित, सीमातीत) की स्तुति इस प्रकार की। २९३

अध्याय—९

[सी.] नलिनाक्ष ! (कमल-नयन वाले !) मायागुण के व्यतिकर (भिन्न-भिन्न भागों के मिश्रण) के कारण सम्पन्न इस सृष्टि के रूप में प्रकाशित होनेवाले तुम्हारे घन (महान्) रूप के वैभव को रूपायित करना (रूप की कल्पना करना) देहधारियों के लिए दुर्विभाव्य (अलग-अलग कर देखने में कष्टसाध्य) है। सोचने पर, भगवान बने हुए हे पद्माक्ष (कमल-नयन वाले!) तुम्हारे स्वरूप से बढ़कर कोई अन्य [वस्तु] सत्य और बोधक नहीं है, इसलिए तुम्हारा अतुल (तथा) दिव्य [ते.] रूप मुझे प्रत्यक्ष हुआ ! इसके अतिरिक्त विवेक के उदित होने के कारण हे वरद ! शाश्वत प्रदीप्ति वाले ! तुम्हारा रूप अज्ञान रूपी अधिक तम का निवारक हुआ। २९४

ते. मयिन रूपंबु नाकु ब्रत्यक्ष मय्यॆ,
नदियुगाक विवेकोदयमुन जेसि
वरद! नी रूप मज्ञान गुरु तमो तमो नि,
वारकं बय्यॆ नाकु शश्वत्प्रदीप! ॥ 294 ॥

कं. घन सत्पुरुषानुग्रह, मुनक यमितावतारमूलं बगुचुं
दनरॆंडि नी रूपमु शो, भनमगु भवदीय नाभि पद्ममु वलनन् ॥ 295 ॥

कं. जननं बंदिन नाचे, ननंयमु मॊदलनॆ गृहीत मय्यॆं जगत्पा-
वन! नीवु स्वरूपमु, घन रुचिरंबै स्वयं प्रकाशक मगुटन् ॥ 296 ॥

व. मरियु ज्ञानानंद परिपूर्ण मात्रंबुनु, ननावृत प्रकाशंबुनु, भेद रहितंबुनु, प्रपंच जनकंबुनु, भूतेंद्रियात्मकंबुनु, नेकंबुनु नैन रूपंबु नॊंदियु नॆंबुनुं बॊडगान नट्टि निन्नु नाश्रयिंचॆद। अदियुनुं गाक जगन्मंगळ स्वरूप धरुंड वै नी युपासकुलमैन मा मंगळंबुल कॊरकु निरंतर ध्यानंबु चेत नी दिव्यरूपंबुनं गानं बडितिवि। इट्टि नीवु निरयभावकुलै निरीश्वर वादंबुनं जेसि कुतर्कंबुलु प्रसंगिंचु भाग्यरहितुल चेत नादृतुंडवु गावु। मरियुनुं गॊंदरु गृतार्थुलैन महात्मुलु भवदीय श्री चरणारविंद कोश गंधंबु वेद मारुतानीतं बगुटं जेसि तम तम कर्ण कुहरंबुल चेतं ग्रहिंचुदुरु। वारल हृदय कमलंबुलंदु भक्ति पारतंत्र्यंबुन गृहीत पादारविंदंबुलु गलिगि

[कं.] घन सत्पुरुष के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए अनेक अवतारों के मूल-स्वरूप हो, सुविलसित तुम्हारा रूप भवदीय नाभि-कमल के द्वारा शुभप्रद हो विराजित हो रहा है। २९५ [कं.] जन्म लिये हुए [मुझे] अतिशय रूप में घनरुचिकर (नीलमेघ के समान सुंदर) हो, स्वयं प्रकाशक होने के कारण हे जगत्पावन! तुम्हारा स्वरूप प्रथमतः ही मुझसे गृहीत हुआ। २९६ [व.] और ज्ञानानन्द से परिपूर्ण अनावृत प्रकाश वाला, भेदरहित, जगत की सृष्टि का कारणभूत, भूतेन्द्रियात्मक तथा एक मात्र रूप होकर भी, कहीं भी न दिखाई पड़नेवाले तुम्हारा आश्रय (शरण) प्राप्त कर लूँगा। इसके अतिरिक्त जगत के मंगल-स्वरूप धारी होकर तुम्हारे उपासक हमारे मंगल के लिए निरंतर ध्यान के कारण अपने दिव्य स्वरूप से दर्शन दिए। ऐसे तुम, नरक के वशीभूत हो, निरीश्वरवाद से कुतर्क भाषण करनेवाले भाग्यहीन लोगों से आदृत नहीं होते हो! और कतिपय कृतार्थ महात्मा लोग भवदीय (तुम्हारे) श्रीचरणारविन्द के कोपगंध के वेदपवनों से लाए जाने से, अपने-अपने कर्ण-कुहरों से ग्रहण करते हैं। उनके हृदय-कमलों में, भक्ति से परतंत्र (परवश) हो, गृहीत चरण-कमल वाले हो प्रकाशित होते हो! इसके अतिरिक्त प्राणियों के लिए द्रव्य, आगार (मकान), सुहृत् (मित्र) के बारे में भय तथा नाशन के कारण शोक, द्रव्यादि के बारे में इच्छा

प्रकाशितुवु। अदियुनुं गाक प्राणुलकु द्रव्यागार सुहृन्निमित्तंबैन भयंबुनु, दन्नाश निमित्तंबैन शोकंबुनु, द्रव्यादि स्पृहयुनु, दन्निमित्तंबैन परिभवंबुनु मरियु नंदु दृष्णयुनु नदि प्रयासंबुन लब्धंबैन नार्तियु, ददीयंबैन वृथाग्रहंबुनु, नी श्रीपादारविंदंबुलंदु बैमुख्यंबैन कालंबु गलुगु नंत कालंबुनु ब्राप्तंबुलगुं गानि मानवात्म नायकुंडवगु निन्नु नाश्रयिंचिन भयनिवृत्ति हेतुवगु मोक्षंबु गलुगु। मरियुं गोंदरु सकल पाप निवर्तकंबैन त्वदीय नामस्मरण कीर्तनंबुलंदु विमुखुलै काम्यकर्म प्रावीण्यंबुनं जेसि नष्टमतुलै यिंद्रिय परतंत्रुलै यमंगळंबुलैन कार्यंबुलु सेयुचुंदुरु। दानं जेसि वातादि त्रिधातु मूलंबैन क्षुत्तृड्डादुल चेतनु, शीतोष्ण वर्ष वातादि दुःखंबुल चेतनु, नति दीर्घंबैन कामाग्नि चेतनु, नविच्छन्नंबगु क्रोधंबु चेतनु दप्यमानु लगुदुरु। वारलं गनिन ना चित्तंबु गलंकं बोंदु। जीवुंडु भवदीय माया परिभ्राम्यमाणुंडै यात्म वेऱनि यॆप्पुडु दॆलियु नंत कालंबु निरर्थकंबै दुस्तरंबैन संसार सागरंबु दरियिपं जालकुंडु। सन्मुनींद्रुलैननु भवदीय नाम स्मरणंबु मऱचि यितर विषयासक्तुलैरेनि वारलु दिवंबु लंदु वृथाप्रयत्नुलै संचरिंपुचु, रात्रि निद्रासक्तुलै स्वप्न गोचरंबैन बहुविध संपदलकु नानंदिपुचु, शरीर परिणामादि पीडलकु दुःखिपुचु, प्रतिहतंबुलैन

[और] उसके कारण पराभव (अपमान) और उसमें तृष्णा तथा उसके प्रयास-स्वरूप प्राप्त आर्ती उनके प्रति वृथा-आग्रह तथा तुम्हारे श्रीचरण-कमलों में विमुखता जितने काल तक [भाग्य से] प्राप्त होंगे, उतने काल तक प्राप्त होते रहेंगे, किन्तु मानवात्मा के नायक तुम्हारा आश्रय पाने पर, भय-निवृत्ति के कारण-स्वरूप मोक्ष प्राप्त होगा और कुछ लोग सकल पाप के निवारक तुम्हारे नाम-स्मरण के कीर्तन से विमुख हो, काम्य कर्म में चतुर हो, नष्टमतिवाले (तथा) इन्द्रिय-परतंत्र (परवश) बनकर, अमंगलकर कार्य करते रहते हैं। उसके कारण त्रिधातुमूलक क्षुत्तृड़ादि (क्षुधा, तृष्णा आदि) दोषों के कारण से और शीत, उष्ण, वर्षा (तथा) वातादि दुःखों से और अत्यधिक कामाग्नि से, और अविच्छिन्न क्रोध से तप्त होते हैं। उनको देखकर मेरा चित्त व्याकुल होता है। जीव तुम्हारी माया से भटकते हुए, आत्मा अलग है, ऐसा जब तक नहीं जानता, उस काल तक (तब तक) निरर्थक तथा दुस्तर संसार-सागर को पार नहीं कर सकता। सन्मुनीन्द्र भी तुम्हारे नाम-स्मरण को भूलकर, इतर विषयों में आसक्त हो जाएँगे, तो वे दिव (दिन) में वृथा प्रयत्न करते हुए, रातों में निद्रासक्त हो, स्वप्न में दिखाई पड़नेवाले अनेक प्रकार की सम्पदाओं से आनन्दित होते हुए, शरीर के परिवर्तन आदि पीड़ाओं से दुःखी होकर, प्रतिहत (भग्न) उद्योगों से भूलोक में संसारी

युद्योगंबुल भूलोकंबुन संसारुलै वर्तितुरु। निष्काम धर्मुलै मिम्मु भजियिंचु सत्पुरुषुल कर्णमार्गंबुलं ब्रवेशिंचि भवदीय भक्ति योग शोभितंबैन हृत्सरोज कर्णिका पीठंबु वसियिंपुदुवु। अदियुनुं गाक ॥ 297 ॥

म. वर योगींद्रुलु योग मार्गमुल भावंबंदु ने नी मनो-
हर रूपंबु दलंचि ये गुणगण ध्यानंबु गाविंतु र-
प्पुरुष श्रेष्ठ परिग्रहंबुनकुनै पोल्पार दृध्यान गो-
चर मूर्तिन् धरियिंतु गादे परमोत्साहुंडवै माधवा! ॥ 298 ॥

ते. अरय निष्काम धर्मुलैनट्टि भक्तु, लंदु नीवु प्रसन्नुंडवैन रीति
हृदयमुल बद्धकामुलै येनयु देव, गणमुलंदु प्रसन्नत गलुग वीवु ॥ 299 ॥

चं. अरय समस्त भूत हृदयंबुल यंदु वसिंचि येकमै
परगिन यंतरात्म सखिभाव सुधर्मुडवुन् बरा-परे-
श्वरुडवुनै तलर्चुचुनु सज्जन दुर्लभमैन यट्टि सु-
स्थिरमगु सर्वभूत दयचे बोडगानग वत्तु मच्युता! ॥ 300 ॥

म. क्रतु दानोग्र तप-स्समाधि जप सत्कर्माग्नि होत्राखिल
व्रत चर्यादुल नादरिंप नखिल व्यापार पारायण
स्थिति नाप्पारेडि नो पदाब्जयुगळी सेवाभिपूजा सम-
र्पित धर्मुडगु वानि भंगि नसुरारी! देव चूडामणी ॥ 301 ॥

(लम्पट) हो व्यवहार करते है। निष्काम धर्मवाले हो, आपकी सेवा करनेवाले सत्पुरुषों के कर्णमार्गों के द्वारा प्रवेश कर, भवदीय भक्ति-योग से सुशोभित बने [उनके] हृदय-कमल की कर्णिका के पीठ पर निवास करते हो! इसके अतिरिक्त। २९७ [म.] श्रेष्ठ-योगीन्द्र योगमार्ग के भावों में ही तुम्हारे जिस मनोहर रूप का विचार करते हैं, जिन गुणगणों का ध्यान करते है, उन पुरुषश्रेष्ठों के द्वारा गृहीत, उनके ध्यान में गोचर होनेवाली मूर्ति को, परम उत्साही हो, हे माधव! तुम धारण करते हो न? २९८ [ते.] परखकर देखने पर, निष्काम-धर्मा होनेवाले भक्तों के प्रति जिस रीति से तुम प्रसन्न होते हो, उस रीति से कामनाओं में बद्ध हो व्यवहार करनेवाले देवगणों के प्रति भी तुम प्रसन्न नही होते हो। २९९ [चं.] अच्युत! विचार करने पर समस्त भूतों के हृदयों में निवास करते हुए, एक हो विलसित अन्तरात्मा में सखीभाव से सुधर्मा हो, पर-अपर ईश्वर हो विलसित होते हुए, असज्जन के लिए दुर्लभ होनेवाले तुम सर्व भूतों के प्रति सुस्थिर दया के कारण दर्शन देते हो! ३०० [म.] हे असुरारि! हे देवचूड़ामणि! क्रतु (यज्ञ), दान, उग्रतप, समाधि, जप, सत्कर्म, अग्निहोत्र, अखिल (अनेक प्रकार के) व्रत आदि के आचरणों का [तुम] आदर नही करते। अखिल व्यापार के पारायण (पार पाने) की स्थिति में विलसित तुम्हारे पदाब्ज-युगल (चरण-कमल युगल) की

ते. तविलि शश्वत्स्वरूप चैतन्य भूरि,
महिम चेत नापास्त समस्त भेद
मोहुड वखिल विज्ञानमुलकु नाश्र,
युंड वगु नीकु म्रोक्कॆदनो रमेश ! ॥ 302 ॥

क जनन स्थिति निलयंबुल,
कनयंबुनु हेतु भूतमगु माया ली-
लनु जॆंदि नटन सलिपॆडु,
ननघात्मक ! नी कॊनर्तु नभिवंदनमुल ॥ 303 ॥

सी. अनघात्म ! मरि भगवदवतार गुण कर्म घन बिडंबन हेतुकंबुलॆन
रमणीय मगु दाशरथि वसुदेव कुमारादि दिव्य नामंबु लोलि
वॆलयंग मनुजुलु विवशात्मुलै यवसान कालंबुन संस्मरिंचि
जन्म जन्मांतर संचित दुरितंबु बापि कैवल्य संप्राप्तु लगुदु

ते. रट्टि दिव्यावतारंबु लवधरिंचु,
नजुडवगु नीकु म्रोक्कॆद ननघ-चरित !
चिरशुभाकार नित्यलक्ष्मी विहार !
भक्त मंदार ! दुर्भव भय विदूर ! ॥ 304 ॥

त. जनन वृद्धि विनाश हेतुक संगति गल येनु नी-
वुनु हरुंडु द्रिशाखलै मनुवुल् मरीचि मुखामरुल्

सेवा तथा अभिपूजा के द्वारा समर्पित धर्मवाले की रीति [तुम अन्यों का आदर नही करते]। ३०१ [ते.] हे रमेश ! शाश्वत स्वरूप वाले चैतन्य की भूरि (अत्यधिक) महिमा से दूर किए गए समस्त भेदों-मोहों वाले हो। समस्त विज्ञानों के लिए आश्रयस्वरूप हो। तुम्हारी वन्दना करता हूँ। ३०२ [कं.] जनन (सृष्टि), स्थिति, लय के अतिशय रूप से कारण-भूत होनेवाले माया की लीला को प्राप्त कर अभिनय करनेवाले हे अनघात्मक ! मैं तुम्हें अभिवंदन करता हूँ। ३०३ [सी.] हे अनघात्मा ! तुम्हारे अवतारों के गुणकर्म अत्यधिक विडम्बना के हेतु स्वरूप हैं, स्मरणीय होनेवाले दाशरथी (राम), वसुदेव-कुमार (कृष्ण) आदि दिव्य नामों से क्रम से विलसित होने से, मनुज विवशात्मा हो, अपने अवसान (अन्त) काल में स्मरण कर जन्म-जन्मान्तर के संचित पापों को दूर कर, कैवल्य को संप्राप्त करते हैं ! [ते.] ऐसे दिव्य अवतारों को धारण करनेवाले तुम अजन्मा हो। अनघ चरित वाले ! तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे चिर शुभाकार वाले ! लक्ष्मी के [मन में] नित्य विहार करनेवाले ! भक्तों के लिए मंदार (कल्पवृक्ष) ! दुर्भव के भय को दूर करनेवाले ! ३०४ [त.] जनन (जन्म), वृद्धि, विनाश के कारण की

ऒनर नंदुपशाखलै चॆलुवॊंद नितकु मूलमै
यनयमुन् भुवन द्रुमाकृतिवैन नीकिदॆ म्रॊक्कॆदन् ॥305॥

म. पुरुषाधीश ! भगवत्पदाब्ज युगळी पूजादि कर्म क्रिया
परतं जॆंदनि मूढ चित्तुनि बशुप्रायुन् मनुष्याधमुन्
जरयु-न्नंतमु नॊंद जेयु नति दक्षंबैन कालंबु द-
द्गुरु कालात्मुडवैन नीकु मदि संतोषंबुनन् म्रॊक्कॆदन् ॥ 306 ॥

सी. सर्वेश ! कल्पांत संस्थितमगु जलजातमंदेनु संजनन मंदि
भवदीय सुस्वरूपमु जूड नर्थिंचि बहु वत्सरमुलु दपंबु सेसि
ऋतुकर्ममुलु पॆक्कु गाविंचियुनु निनु गॊंडगानगा लेक बुद्धि भीति
बॊंदिन नाकु निप्पुडुनु निर्हेतुक करुणचे नखिल-लोकैक-वंद्य

ते. मानस तत प्रसन्न कोमल मुखाब्ज,
कलित भवदीय दिव्यमंगळ विलास
मूर्ति दर्शिप गलिगॆ भक्तार्ति-हरण-
करण ! तुभ्यं नमो विश्वभरण ! देव ! ॥ 307 ॥

सी. अमर तिर्यङ्मनुष्यादि चेतन योनुलंदु न।त्मेच्छचे जॆंदिनट्टि
कमनीय शुभमूर्ति गलवाडवै धर्म सेतु वनंग बख्याति नॊंदि

संगति से युक्त मैं, तुम और हम (शिव) तीन शाखाएँ हैं। मनु, मरीचि आदि अमर उपशाखाओं के स्वरूप में विलसित है। इन सबके मूल होकर अतिशय रूप से भुवन रूपी वृक्ष की आकृति में स्थित तुम्हारी वन्दना करता हूँ। ३०५ [म.] पुरुषाधीश ! तुम्हारे चरण-कमल युगल की पूजा आदि कर्म-क्रियाओं में रत न होनेवाले मूढ़ चित्तवाले, पशु-समान, मनुष्याधमों को जरा (बुढ़ापा) और अंत (मृत्यु) प्राप्त कराने में अति समर्थ है काल। [तुम] उस महान काल के आत्मस्वरूप हो, मन से आनन्द के साथ तुम्हें प्रणाम करता हूँ। ३०६ [सी.] सर्वेश्वर ! कल्पान्त में संस्थित जलजात (कमल) में जन्म लेकर मैं तुम्हारे स्वरूप को जानने की इच्छा कर, अनेक वर्षों तक तपस्या कर, अनेक यज्ञकर्म करके भी तुम्हें देख न सक, बुद्धि से [भय] भीत हुआ। मुझे अब निर्हेतुक (अकारण) करुणा से सकल लोकों के वन्द्यमान, [ते.] सदा प्रसन्न तथा कोमल मुखाब्ज (मुखकमल) से कलित तुम्हारे दिव्य मंगल विलास से विलसित मूर्ति के दर्शन हुए। हे भक्तों की आर्ति का हरण करनेवाले ! विश्व का भरण करने वाले ! देव ! तुभ्यं नमो। ३०७ [सी.] अमर, तिर्यक्, मनुष्यादि चेतन योनियों में, अपनी इच्छा के कारण व्याप्त होनेवाले हो, कमनीय शुभ मूर्ति वाले हो, धर्म की सेतु के नाम से विख्यात हो, विशेष सुखों को तजकर सदा निज-आनन्द (आत्मानन्द) के अनुभव की उन्नति में सुशोभित होने के

विषय सुखंबुल विडिचि संतत निजानंदानुभव समुन्नति दनर्तु
वदि गान पुरुषोत्तमाख्य जॆन्नॊंदुदु वट्टि निन्नॆप्पुडु नभिनुतितु

ते. नर्थि भवदीय पादंबु लाश्रयितु,
महित भक्तिनि नीकु नमस्करितु
भक्तजनपोष-परितोष ! परमपुरुष !
प्रविमलाकार ! संसार भयविदूर ! ॥ 308 ॥

सी. तलकॊनि पंच भूत प्रवर्तकमैन भूरि मायागुण स्फुरण जिक्कु
वडक लोकंबुलु भवदीय जठरंबु लो निलिप घन समालोल चटुल
सर्वंकषोर्मि भीषण वार्थि नडुमनु फणिराज-भोग-तल्पंबु नंदु
योगनिद्रारति नुंडग नोक कॊंत कालंबु चनग मेल्कनिन वेळ

ते. नलघु भवदीय नाभि-तोयजमु वलन
गणगि मुल्लोकमुलु नुपकरणमुलुग
बुट्ट जेसिति वतुल विभूति मॆरसि,
पुंडरीकाक्ष ! संतत भुवनरक्ष ! 309 ॥

कं. निगमस्तुत लक्ष्मीपति, जगदंतर्यामि वगुचु सर्गमु नॆल्लन्
दगु भवदैश्वर्यंबुन, नगणित सौख्यानुभवमु नंदितु गदे ! ॥ 310 ॥

सी. जलजाक्ष ! यॆट्टि विज्ञान बलंबुन गल्पितु वखिल लोकंबु लोलि
नतजन प्रियुडवु ना कट्टि विज्ञान मर्थिमै गृपसेयु मय्य वरद !

कारण पुरुषोत्तम के नाम से प्रसिद्ध होनेवाले हो, ऐसे तुम्हें सदा स्तुति करता हूँ; [ते.] और चाहकर तुम्हारे चरणों का आश्रय पाता हूँ। अत्यधिक भक्ति से तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे भक्तजनों का पोषण तथा परितोष करनेवाले ! हे परमपुरुष ! निर्मल आकार वाले ! संसार के भय को दूर भगानेवाले ! ३०८ [सी.] पुंडरीकाक्ष वाले ! सदा भुवनों की रक्षा करनेवाले ! लगकर, पंचभूतों से प्रवर्त्तित अत्यधिक मायागुण के स्फुरण (प्रकाशन) में न फँसकर, समुचित रीति से लोकों को अपने जठर में धारण कर, घन तरंगों से संचलित होनेवाले चटुल (भयंकर) सर्वंकष ऊर्मियों (तरंगों) वाले भीषण सागर के बीच में, फणिराज (आदिशेष) के भोगतल्प पर योगनिद्रा में स्थित रहते हुए, कुछ काल बिताकर, जागने पर, उस वेला में [ते.] तुम्हारे अलघु (महान्) नाभि-तोयज (-कमल) से [मुझे] उत्पन्न कर, तीनों लोकों को साधनों के रूप में पैदा कर, अतुल विभूति के साथ विलसित हुए हो। ३०९ [कं.] निगमों से स्तुत्य ! लक्ष्मीपति ! जगतों के अन्तर्यामी होते हुए, सारी सृष्टि को अपने ऐश्वर्य से भरकर, अगणित सौख्यों का अनुभव कराते हो न ? ३१० [सी.] जलजाक्ष (कमल-नयन) वाले ! नतजन के प्रिय हो। जिस

सृष्टि निर्माणेच्छ जेंदि ना चित्तंबु दत्कर्म कौशलत्वमुनु गलिगि-
युनु गर्म वैषम्यमुनु वोंदुकतमुन दुरितंबु वोरयक तोलगु नट्टि
ते. वेरवु ना केंट्लु गलुगु नव्विधमु दलचि,
कर्मवर्तनु ननु भवत्करुण मेरसि
तग गृतार्थुनि जेयवे निगमविनुत !
सत्कृपामूर्ति ! यो देवचक्रवर्ति ! ॥ 311 ॥

चं. भवदुदर प्रभूतमगु पद्ममुनंदु वसिंचियुन्न ने
नविरळ तावकीन कलितांशमुनं दनराारु विश्वमुन्
दविलि रचिंपुचुन् बहु विधंबुल वल्केडि वेद जालमुल्
शिवतरमै फलिंप गृप सेयुमु भक्त - फल - प्रदायका ! ॥ 312 ॥

चं. अनि यनुकंप दोप विनयंबुन जागिलि म्रोक्किक चारु लो-
चन सरसीरुहुंडगुचु सर्व-जग-त्परि-कल्पना-रति
दनरिन नन्नु ब्रोचुटकु दा निटु सन्निधि येन यीश्वरुं
डनयमु नादु दुःखमु दयामति वापेडु नंचु नम्रुडै ॥313॥

कं. वनरुह संजातुडु नें, म्मनमुन हर्षिंचि ननुचु मैत्रेय महा
मुनि घनुडगु विदुरुनकुन्, विनयंबुन नेंरुग जेप्पि वेंडियु वलिकेन् ॥314॥

विज्ञान के वल से, क्रम से सकल लोकों का सृजन करते हो, मुझ पर कृपा कर हे वरद ! कुतूहल से वह विज्ञान प्रदान करो ! सृष्टि के निर्माण की इच्छा को प्राप्त कर, मेरा चित्त उस कर्म की कुशलता से युक्त होने पर भी कर्म के वैषम्य को प्राप्त करने के कारण [मुझे] दोष न लगे, ऐसा उपाय मुझे कैसे प्राप्त हो, [ते.] उस रीति को सोचकर, कर्म के अनुसार चलनेवाले मुझ पर अपनी करुणा प्रसारित कर मुझे समुचित रीति से कृतार्थ करो। हे वेदों से स्तुत्य ! हे सत्कृपामूर्ती ! हे देवताओं के चक्रवर्ती ! ३११ [चं.] हे भक्तफलप्रदाता ! आपके उदर से प्रभूत (उत्पन्न) हुए पद्म में निवास करते हुए मैं आपके अविरल-कलित-अंश से विलसित विश्व की सप्रयत्न रचना करते हुए नाना प्रकार से जिन वेद-समूहों का प्रवचन करता हूँ, वे शिवतर वनकर, सफल हो जायें, ऐसी कृपा करो। ३१२ [च.] दया उत्पन्न हो जाए ऐसा विनय के साथ साष्टांग नमस्कार करता हूँ। सुन्दर कमल-नयन वाले होकर, सर्वजगत की परिकल्पना में रत वने, मेरी रक्षा करने के लिए यहाँ सन्निधि (समक्ष) उपस्थित ईश्वर दया-मति से मेरे दुःख को सदा दूर करता रहे। ऐसा कहते हुए विनम्र होते हुए, ३१३ [कं.] वनरुह-संजात (ब्रह्मा) इस प्रकार मन में हर्षित हुए। ऐसा मैत्रेय महामुनि ने घनात्म (महान्) विदुर को विनय के साथ विदित कर और फिर कहा। ३१४ [म.] वन-

म. वनजात प्रभवुंडु केवल तपो व्यासंगुडै पद्मलो
चनु गोविंदु ननंतु नाढ्यु दन वाक्छक्तिन्नुतिपन् सुधा
शन-वंद्युंडु प्रसन्नुडै निखिल विश्वस्थापनालोकनं-
बुन जूचेन् विलय प्रभूत बहु वाःपूरंबुलन् ब्रेलिमडिन् ॥ 315 ॥

ते. अट्लु पोंडगनि यार्तुडै नट्टि पद्म-
भवुनि वांछित मात्म दीपिग दलचि
यतनि मोह निवारकमैन यट्टि,
यमृत रस तुल्य मधुर वाक्यमुल ननियें ॥ 316 ॥

चं. तलकोंनि नी योनर्चु पनि दप्पि मदि दलपोयु दुःखमुं
दलगुमु नादु लीलकु ब्रधान गुणंबगु सृष्टि कल्पनं
बलवड जेयु बुद्धि हृदयंबुन जोंन्पि तपस्समाधि नि-
ष्ठल नुति भक्तुलन् ननु ब्रसन्नुनि जेयुमु चेंदु कोरिकल् ॥317॥

कं. नी वोंनरिंचु तपो वि, द्या विभव विलोकनीयमगु नी सृष्टिन्
गाविपुमु लोकंबुल, लो वेलिगेंडि नन्नु गंदु लोकस्तुत्या ! ॥ 318 ॥

कं. ना लोनि जीवकोट्लु, वालायमु नीकु गानवच्चु निपुडु नी
वालोकिंपुमु दारु वि, लोल हुताशनुनि करणि लोकस्तुत्या ! ॥ 319 ॥

जात-प्रभव (ब्रह्मा) के, कैवल्य के लिए तप-कार्य में निमग्न हो, पद्म-लोचन वाले, गोविन्द, अनन्त, आढ्य (सम्पन्न या श्रेष्ठ) की अपनी वाक्शक्ति के साथ स्तुति करने पर, सुधाशन (देवताओं) से वन्द्य होने वाले ने प्रसन्न होकर, निखिल विश्व की स्थापना की दृष्टियों से, प्रलय से उत्पन्न बहु-वाःपूरों (जलराशियों) को पल भर देखा। ३१५ [ते.] इस प्रकार देखकर आर्त्त बने, पद्मभव (ब्रह्मा) की इच्छा को आत्मा से (हृदयपूर्वक रूप से) पूर्ण करने के विचार से उसके (ब्रह्मा के) मोह-निवारक [तथा] अमृत-रस-तुल्य (तथा) मधुर वाक्यों से [विष्णु ने] इस प्रकार कहा। ३१६ [चं.] [मेरे आदेश को] सिर-आँखों पर रखकर किए जानेवाले कार्य को छोड़कर, दुःख छोड़ दो। मेरी लीला का प्रधान गुण बनी सृष्टि की कल्पना को सम्पन्न करनेवाली बुद्धि को हृदय में भरकर तपस्या, समाधि, निष्ठा, भक्ति (तथा) स्तुतियों से मुझे प्रसन्न करो [तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण होंगी]। ३१७ [कं.] हे लोकस्तुत्य ! तुमसे सम्पन्न होनेवाले तप और विद्या के वैभव से युक्त बनकर, विलोकनीय सृष्टि की रचना करो ! (इससे) लोकों के अन्तर में ज्योतित हो रहे मुझे देख सकोगे। ३१८ [कं.] लोकस्तुत्य ! मेरे भीतर स्थित जीव-कोटि अवश्य तुम्हें दिखाई पड़ेगी, अब तुम दारु (काठ) में विलोल (हिलते हुए) हुताशन (अग्नि) की भाँति मुझे देखो। ३१९ [सी.] नलिन-

सी. नलुवॊप्प नखिल जीवुल यंदु गल नन्नु दॆलिसि सेविंपुमु नलिनगर्भ !
भवदीय दोषमुल् पायुनु भूतेंद्रियाशय विरहितमै विशुद्ध-
मैन जीवुनि विमलांतरात्मुड नैन ननु नेकमुग जूचु नरुडु मोक्ष
पद मार्गवर्तियै भासिल्लु ब्रह्मांड मंदुन विविध कर्मानुरूप

ते. पद्धतुल जेसि पॆक्कु रूपमुल नॊंदु
जीव तति रचियिंचु नी चित्त मिपुडु
मत्पदांबुजयुगळंबु मरगियुन्न
कतन राजसगुणमुन गलुग दघमु ॥ 320 ॥

कं. विनु मदियु गाक प्राणुल, कनयमु नॆऱुंगगरानि यनघुड देजो
धनुड बरेशुड नी चे, तनु गानं बडिति निर्दे पितामह कंटे ? ॥ 321 ॥

व. मरियु भूतेंद्रिय गुणात्मुंडनि, जगन्मयुंडनियु, नन्नु नी चित्तंबु नंदु दलंपुमु । तामरसनाळ विवर पथंबु वॆंट जनि जलंबु लोनं जूडंगोरु नट्टि मदीय स्वरूपंबु ॥ 322 ॥

कं. नी किप्पुडु गानंबडॆ, नाकुलकुनु नुरगपति पिनाकुलकैनन्
वाक्रुव्वं दलपोयनु, राकुंडु मदीय रूप रम्यत्वंबुल् ॥ 323 ॥

कं. कावुन मच्चारित्र क, था विलसितमैन सुमहित स्तवमु जग
त्पावननु विगत संशय, भावुडवै बुद्धि निलुपु पंकज-जन्मा ! ॥ 324 ॥

गर्भ (ब्रह्मा) ! अखिल जीवों में शोभा से स्थित मुझे जानकर सेवा करो ! तुम्हारे दोष दूर हो जायेंगे। भूत [तथा] इन्द्रियों से विरहित हो, विशुद्ध बने, जीव के विमल-अन्तरात्मा में मुझे एक रूप में (जीवात्मा और परमात्मा को एक रूप में) देखनेवाला नर मोक्षपद-मार्गवर्ती हो भासित होगा। ब्रह्माण्ड में विविध कर्मों के अनुरूप [ते.] रीतियों के कराण, अनेक रूपों को प्राप्त होनेवाले जीव-तति (-समूह) की सृष्टि रचनेवाला तुम्हारा चित्त अब मेरे पदाम्बुज (चरण-कमल)-युगल में लगे रहने के कारण राजस गुण के पाप से अछूता रहेगा। ३२० [कं.] पितामह ! सुनो, इसके अतिरिक्त, अन्य प्राणियों के लिए अतिशय रूप से न जाने जाना वाला, अनघ, तेजोधन, परमेश्वर मैं यही तुमसे देखा गया हूँ न ? ३२१ [व.] और प्राणियों के इन्द्रिय गुणात्मक तथा जगन्मय मानकर मुझे अपने चित्त में विचार (स्थिर) करो ! तामरस-नाल (कमलनाल) के विवर (रन्ध्र) के पथ के द्वारा जाकर जल के भीतर [जिस रूप को] देखने की इच्छा की थी, वैसा मेरा यह स्वरूप, ३२२ [क.] तुम्हें अब दिखाई पड़ा। स्वर्ग-वासियों के लिए, उरगपति के लिए और पिनाक (शिव) के लिए भी मेरे रूप और रम्यता का वर्णन करना अथवा विचार करना सम्भव नहीं है। ३२३ [कं.] पंकजजन्मा (ब्रह्मा) ! इसलिए

कं. सगुणुडनै लीलार्थमु, जगमुल गल्पिप दलचु जतुरुनि नन्नुन्
सगुणुनिगा नुतियिंचित, तग संतसमय्ये नाकु दामरसभवा ! ॥ 325 ॥

कं. ई मंजु स्तवराजमु, नी मनमुन जित दक्कि निलुपुमु भक्तिन्
धीमहित ! नी मनंबुन, गामिंचिन कोर्कु लॅल्ल गलुगुं जुम्मी ॥ 326 ॥

कं. अनुदिनमुनु त्रिजग त्पा
वनमगु नी मंगळ स्तवमु बठियिंपन्
विनिननु जनुलकु ने बौड
गनबड्डु नवाप्त सकल कामुड नगुचुन् ॥ 327 ॥

ते. वन तटाकोपनयन विवाह देव-
भवन निर्माण भूम्यादि विविध दान
जप तपो व्रत योग यज्ञमुल फलमु,
मामक-स्तव-फलमु समंबु गादु ॥ 328 ॥

कं. जीवावळि गल्पिपुचु,
जीवावळि लोन दग वसिंपुचु ब्रिय व
स्त्वावळि लोपल ब्रिय व,
स्त्वावळिनै युंडु नन्नु ननिशमु ब्रीतिन् ॥ 329 ॥

कं. तलपुमु मत्प्रीतिकिनै, कलिगिंचिति निन्नु भुवन कारण नालो
पल नणगि येकमै नि, श्चलगति वसियिंचि युन्न जगमुल नॅल्लन् ॥330॥

मेरे चरित्र की कथा से विलसित सुमहित स्तवन जगत को पावन करने वाला है। संशय-भाव को छोड़कर, [मेरे ध्यान में] बुद्धि को स्थिर रखो ! ३२४ [क.] तामरस-भव (ब्रह्मा) ! सगुण हो लीला के लिए जगतों की सृष्टि करने की इच्छा करनेवाले मुझ चतुर को अगुण (निर्गुण) के रूप में स्तुति की। उचित रूप से मैं प्रसन्न हुआ। ३२५ [कं.] धीमहित (अत्यधिक बुद्धि वाले) ! इस मंजुल स्तवराज को अपने मन में, बिना किसी चिन्ता के, भक्ति के साथ धारण करो ! तुम्हारे मन में उत्पन्न होनेवाली सभी कामनाएँ निश्चित ही पूर्ण होंगी। ३२६ [कं.] प्रतिदिन तीनों जगतों को पवित्र करनेवाले इस मंगल-स्तव के पठन करने या श्रवण करनेवाले लोगों का, अवाप्त-काम (सब कामनाओं को प्राप्त किए हुए) रूप में मैं दर्शन देता हूँ। ३२७ [ते.] वन, तडाक, उपनयन, विवाह, देवभवन (मंदिर) के निर्माण, भूमि आदि विविध प्रकार के दान, जप, तप, व्रत, योग, यज्ञों का फल मेरे स्तव के फल के बराबर नहीं होता। ३२८ [कं.] जीवावली का सृजन करते हुए, जीवावली के भीतर समुचित रूप में निवास करते हुए, प्रिय वस्तु-समूहों में प्रिय वस्तु बनकर रहनेवाले मुझे सदा प्रीति के साथ, ३२९ [कं.] ध्यान करो।

ते. तग नहंकार मूलतत्त्वंबु नौंवि,
नीवु पुट्टिपु मनुचु राजीव भवुडु
विनग नानति यिच्चि यव्विष्णु,
डभवु डंत नंतर्हितुंडय्यें ननघ-चरित ! ॥ 331 ॥

अध्यायमु—१०

कं. अनि चॅप्पिन मैत्रेयुनि,
गनुगॉनि विदुरुंडु वलिकें गडु मुद मॉप्पन्
जननुत ! नलिन दळाक्षुडु,
सनिनं बद्मजुडु देह संबंधमुनन् ॥ 332 ॥

कं. मानस संबंधंबुनु, वूनि यी सर्ग मॅट्लु पुट्टिंटचॅ दयां
बोनिधिवै ना किंतयु, मानुग नॅरिंगिंपुमय्य महित-विचारा ! ॥ 333 ॥

व. अनवुडु नम्मुनि-वरेण्युंडु विदुरुन किट्लनियॅं। पुंडरीकाक्ष वरदान प्रभावंबुनं बंकजासनुंडु शत दिव्य वत्सरंबुलु भगवत्परंबुगा दपंबु गाविंचि तत्काल वायुवुचे गंपितंबगु निज निवासंबॅन पद्मंबुनु वलंबुनु गनुंगॉनि यात्मीय तपश्शक्ति चेत नभिवृद्धि बौंदिन विद्या-वलंबुन वायुवु बंधिंचि

मेरी प्रीति के लिए, हे भुवनकारण ! तुम्हें बनाया। मुझमें समा कर, एक हो, निश्चल गति में स्थित रहनेवाले सारे जगतों को, ३३० [ते.] हे अनघ-चरित्र [वाले]! समुचित रीति से अंहकार के मूलतत्त्व को प्राप्त कर तुम सृजन करो। ऐसा कहते हुए, राजीव-भव (ब्रह्मा) के सुनने पर, आज्ञा देकर, वह विष्णु, अभव तब अंतर्हित (अदृश्य) हुए। ३३१

अध्याय—१०

[कं.] इस प्रकार कहनेवाले मैत्रेय को देखकर विदुर ने बड़े आनन्द के साथ कहा कि हे जननुत ! नलिनदलाक्ष (विष्णु) के जाने के पश्चात् पद्मज (ब्रह्मा) ने देह से सम्बन्ध रखनेवाले, ३३२ [कं.] (तथा) मानस (मन) से सम्बन्ध रखनेवाले इस सृष्टि को कैसे उत्पन्न किया ? हे महित विचार वाले ! दयाम्भोनिधि (दयासागर) होकर, मुझे पूर्ण रूप से यह सब विदित करो ! ३३३ [व.] ऐसा कहने पर, उस मुनिवरेण्य ने विदुर से इस प्रकार कहा। पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) के वरदान के प्रभाव से पंकजासन (ब्रह्मा) ने सौ दिव्य वर्ष भगवान के प्रति तप कर, उस समय की वायु से कम्पित होनेवाले, अपने निवास-स्थान पद्म को, जल को जानकर (पृथक्-पृथक् जानकर), अपनी तपस्या की शक्ति से अभिवृद्धि

तोयंबुल तोड नॊक्क तोयंबु समस्तंबुनुं ग्रोलि यंत गगन व्याप्ति यगु जलंबुनु गनुंगॊनि ॥ 334 ॥

उ. वारिज संभवुंडु बुध वंद्युंडु चित्तमुनं दलंचॆ दै-
त्यारि बयो विहारि, समुदंचित हारि, नताखिलामृता
हारि, रमासती हृदयहारि, नुदारि, विदूर भूरि सं-
सारि, भवप्रहारि, विलसन्नुत सूरि, नघारि, नय्यॆडन् ॥ 335 ॥

ते. अट्लु दलचि सरोजजुडंबुजमुनु,
गगन तलमुन जूचि या कमल कोश
लीनमै युन्न लोक वितानमुलुनु,
नॊय्य बॊडगनि हरि चे नियुक्तुडैन ॥ 336 ॥

ते. वानिगा दनु दलचि यव्वनरुहंबु
लोपलिकि बोयि मुन्नंदुलोन नुन्न
मुज्जगंबुल जूचि यिम्मुल सृजिचॆं,
मर्रि चतुर्दश भुवनमुल् महिम जेसि ॥ 337 ॥

कं. मर्रियु सुधाशन तिर्य, ङ्नर विविध स्थावरादि नाना सृष्टि
स्फुरण नजुंडॊनरिचॆं, बरुवडि निष्काम धर्म फल रूपमुनन् ॥ 338 ॥

व. इट्लु भुवनंबुल बद्मजुंडु गल्पिचॆं ननि मैत्रेयुंडु विदुरुन कॆरिंगिचिन ॥339॥

को प्राप्त, विद्या-बल से वायु को बाँधकर, तोय (जल) के समस्त को एक रीति से पान कर, [फिर भी] तब गगन में व्याप्त जल को देखकर, ३३४ [उ.] वारिजसम्भव (ब्रह्मा) बुधवन्द्य ने [अपने] चित्त में दैत्यारि, पयोविहारि, समुदंचित-हारि (-हार वाले), नत हुए अखिल-अमृत आहारी (-देवता), रमासती के हृदय को हरनेवाले, उदार, दूर किए गए भूरि संसार [के बंधन] वाले, भव (संसार) पर प्रहार करनेवाले, श्रेष्ठजनों से स्तुत्य, अघारि (पापों के शत्रु) का तब ध्यान किया। ३३५ [ते.] इस प्रकार ध्यान कर, सरोजज (ब्रह्मा) ने अम्बुज को और गगनतल को देखा (और) उस कमल-कोश में लीन हो स्थित लोक-वितानों (-समूहों) को झट देखकर, हरि से नियुक्त हुआ हूँ, ३३६ [ते.] [ऐसा] अपने बारे में विचार कर, वनरुह (कमल) के भीतर जाकर, पहले से उसमें स्थित तीन जगों को देखकर, सुन्दर रूप से सृजन किया। फिर महिमा के साथ चौदह भुवनों का, ३३७ [कं.] और सुधाशन (देवता), तिर्यक्, नर, विविध प्रकार के स्थावर आदि नाना प्रकार की सृष्टि के स्फुरण (ज्ञान) से, निष्काम धर्म के फल के रूप में अज ने निर्माण किया। ३३८ [व.] इस प्रकार पद्मज (ब्रह्मा) ने भुवनों की कल्पना (सृष्टि) की, ऐसा मैत्रेय के विदुर को विदित करने पर, ३३९ [कं.] दुरित (पाप)

कं. विदुरुडु दुरितावनि भृ-
द्भिदुरुडु मुनिवरुनि जूचि प्रियमु मनमुनन्
गदुरग निट्लनि पलिकॆ न,
ति दुरंतंबैन विष्णु देवुनि महिमन् ॥ 340 ॥

ते. अमरॆ भुवनंबु लतनि कालाख्यतयुनु,
गणुति सेयु तदीय लक्षणमु लर्थि
नाकु नॆऱिंगिपु मय्य विवेक-चरित !
यनिन मैत्रेयु डव्विदुरुनकु नॆनॆ ॥ 341 ॥

सी. आद्यंत शून्यंबु नव्ययंबुनु नगु तत्त्व मितकु नुपादान मगुट
गुण विषयमुलु गैकॊनि कालमुनु महदादि भूतमुलु दन्नाश्रयिंप
गालानुरूपंबु गैकॊनि यीशुंडु दन लीलकै दनु दा सृजिंचॆ
गर मॊप्प नखिल लोकमुलंबु दा नुंडु दन लोन नखिलंबु दनरु चुंडु

ते. गान विश्वम्मुनकु गार्य कारणमुलु,
दान यम्महापुरुषुनि तनुवु वलन
वासि विश्वंबु वॆलियै प्रभास मॊंदॆ,
माननीताचार ! यी वर्तमानसृष्टि ॥ 342 ॥

कं. तॆऱगॊप्प नखिल विश्वमु,
बुरुषोत्तमु मायवलन बुट्टुं बॆरुगुन्
विरतिं बॊंदुचु नुंडुं,
गर मर्थिन् भूत भावि कालमु लंदुन् ॥ 343 ॥

रूपी अवनीभृत के लिए भिदुर (भेदनेवाले, इन्द्र) विदुर ने मुनिवर को देख, मन में प्रेम [भाव] के भर जाने पर, ऐसा कहा कि अति दुरंत (आपदाओं से पार लगानेवाली) विष्णु भगवान की महिमा से, ३४० [ते.] भुवन और काल [उसके] नामवाले भी वन गये। उसके लक्षणों की गिनती करने का उपाय, हे विवेक चरितवाले ! मुझे विदित करो ! ऐसा कहने पर (विनती करने पर) मैत्रेय ने विदुर से कहा। ३४१ [सी.] मान्य आचरणवाले ! आदि-अन्त-शून्य, (और) अव्यय तत्त्व के उपादान (आधार या कारण) होने से, गुण विषयों को लेकर काल (तथा) महत् आदि भूत [गणों] के अपने में आश्रित होने पर, कालानुरूप रूप को स्वीकार कर, ईश्वर ने अपनी लीला के लिए अपने-आप का सृजन किया। अतिशय रूप से [वह] अखिल लोकों में स्थित रहता है। [ते.] [और] अपने में (उसमें) सब कुछ विलसित होता है। अतः विश्व का कार्य (तथा) कारण वही है, उस महापुरुष के शरीर से अलग हो विश्व प्रभासित हुआ, यह वर्तमान सृष्टि-ढंग से विलसित हो, ३४२ [कं.] अखिल विश्व पुरुषोत्तम की माया से भूत-भविष्यकाल में जन्म लेता

व. अट्टि सर्गंबु नव विधंबु, अंदु प्रकृत वैकृतंबुलु गाल द्रव्य गुणंबुलनु त्रिविधंबु लगु भेदंबुलचे ब्रति संक्रमंबु लगुचु नुंडु। अंदु महत्तत्त्वंबु प्रथम सर्गंबु। अदि नारायण संकाशंबुन गुण वैषम्यंबु नोंदु। द्रव्यज्ञान क्रियात्मकंबैन यहंकार तत्त्वंबु द्वितीय सर्गंबु। शब्द स्पर्श रूप रस गंधंबुलनु पंच तन्मात्र द्रव्य शक्ति युक्तंबैन पृथिव्यादि भूत सर्गंबु मूडवदियै युंडु। ज्ञानेंद्रियंबुलैन त्वक्चक्षुःश्रोत्र जिह्वा घ्राणंबुलु, गर्मेंद्रियंबुलैन वाक्पाणि पाद पायूपस्थलु ननु दश विधेंद्रिय जननंबु चतुर्थ सर्गंबु। सात्त्विकाहंकार जनितंबैन सुमनोगण सर्गं लैदव सर्गंबै योप्पु। अदि मनोमयंबै युंडु। जीवलोकंबुनकु नबुद्धि कृतंबुलैन यावरण विक्षेपंबुलं जेयु तामस सर्गं बारवदै युंडु। इय्यारु नीश्वरुनकु लीलार्थंबुलैन प्राकृत सर्गंबु लय्यें। इक वैकृत सर्गंबु नेडवदि मोदलुगा गलुगु नवि विनिपिंतु विनुमु। पुष्पोत्पत्ति रहितंबुलै फलिचेंडु नश्वत्थोदुंबर पनस न्यग्रोधादु लयिन वनस्पतुलुनु, पुष्पितंबुलै फलपाकांतंबुलैन व्रीहि यव मुद्गाद्योषधुलनु, नारोहण नपेक्षंबुलैन मालती मल्लिकादि लतलुनु, द्वक्सारंबुलैन वेण्वादुलनु, कठिनीभूत मूलंबुलुन्, शिखा विस्तृतंबुलुनगु लता विशेष रूपंबुलैन वीरुधंबुलुनु, पुष्पवंतंबुलै फल

है, प्रवृद्ध होता है और विरति (विलय) को प्राप्त करता है। ३४३

[व.] ऐसी सृष्टि नौ प्रकार की है। उसमें प्राकृत, वैकृत (सृष्टि) काल-द्रव्य गुणात्मक नामक तीन प्रकार के भेद क्रमशः संक्रमित होते रहते हैं। उसमें महत्तत्त्व प्रथम सृष्टि है। वह नारायण के संकाश (प्रकाश) से गुण-वैषम्य (-भेद) को प्राप्त करता है। द्रव्यज्ञान क्रियात्मक बना अहंकार तत्त्व द्वितीय सर्ग (सृष्टि) है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि पंचतन्मात्राओं की द्रव्यशक्ति से युक्त पृथ्वी आदि भूतसर्ग तीसरा है। ज्ञानेन्द्रिय, त्वक्, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, घ्राण तथा कर्मेन्द्रिय वाक्, पाणि (हाथ), पाद (चरण), पायु, उपस्थ नामक दस विध इन्द्रियों का जनन चतुर्थ सर्ग है। सात्त्विक अहंकार-जनित सुमनोगण (देवगण) का सर्ग पाँचवा सर्ग हो विलसित होता है। वह मनोमय होता है। जीवलोक के लिए अबुद्धिकृत होनेवाले आवरण-विक्षेप (निर्माण) को पैदा करनेवाला तामस सर्ग छठा होता है। ये छः ईश्वर की लीला के निमित्त प्राकृत सर्ग हुए। अब वैकृत सर्ग सातवें से शुरू होते हैं। उनके बारे में सुनाता हूँ। सुनो! पुष्पों की उत्पत्ति से रहित, फल देनेवाले अश्वत्थ, उदुम्बर (गूलर), पनस (कटहल), न्यग्रोध आदि वनस्पति और पुष्पित हो फल पाक-अंत होनेवाले (फल देकर मर जानेवाले), व्रीहि (धान, चावल), यव (जौ), मुद्ग (मूँग) आदि ओषधि और आरोहण की अनपेक्षा वाले (जिन पर चढ़ नहीं सकते), मालती-मल्लिका आदि लताएँ, त्वक्सार वाले

प्राप्तंबुलगु चूतादि द्रुमंबुलुनु, नव्यक्त चैतन्यंबुलु नूर्ध्व स्रोतंबुलु नंतस्पर्शंबुलु तमः प्रायंबुलुनै स्थावरंबुलगु नी यारु नेडव सर्ग बय्यॆ, एनिमिदव सर्गंबु तिर्यक् सर्गंबु। इदि यिरुवदि यॆनिमिदि भेदंबुलु गलिगि श्वस्तनादि ज्ञान शून्यंबुलै, याहारादि ज्ञान मात्र निष्ठंबुलै, प्राणंबु वलन नॆरुंगं दगिन वानि नॆरुंगुचु, हृदयंबुन दीर्घानुसंधान रहितंबुलै वर्तिचु द्विशफंबुलु गल वृषभ महिषाज कृष्ण सूकरोष्ट्र गवय रुरु मेष मुखर नवकंबुनु, नेक शफंबु गल खरश्वाश्वतर गौर शरभ चमुर्यादि षट्कंबुनु, पंचमुखंबुलु गल शुनक सृगाल वृक व्याघ्र मार्जार शश शल्यक सिंह कपि गज कूर्म गोधामुख भू चर द्वादशकंबुनु, मकरादि जल चरंबुलुनु, गंक गृध्र वक श्येन भास भल्लूक वर्हि हंस सारस चक्रवाक काकोलूकादि खेचरंबुलु नय्यॆं। अर्वाक्स्रोतसंबै येक विधंबगु मानुष सर्गंबु रजो गुण प्रेरितंबै कर्म करण दक्षंबै दुःखंबंबुनु सुखंबु गोरु। इदि तॊम्मिदव सर्गंबनं दगु। ई त्रिविध सर्गंबुलु वैकृतंबु लनं बडु। इंक देवसर्गंबु विनुमु। अदियु नॆनिमिदि तॆरंगुलं गलिगि युंडु। अंदु विबुध पितृ सुरादुलु मूडुनु,

---

[जिनका चर्म (छिलका) कड़ा है] वेणु (बाँस) आदि और कठिनीभूत (दृढ़) मूल वाले, विस्तृत शिखाओं वाले आदि लता रूपी वीरुध, पुष्पित हो, फल प्राप्त करनेवाले चूतादि द्रुम (वृक्ष), [ये] अव्यक्त चैतन्यवाले, ऊर्ध्व स्रोत वाले, अन्त स्पर्श वाले, तमःप्राय (तमोगुण से युक्त) स्थावर (अचर) ये छः सातवाँ सर्ग हुए। आठवाँ सर्ग तिर्यक् सर्ग है। यह अट्ठाईस भेदों से युक्त हो, श्वस्तन (कल, भविष्य) आदि के ज्ञान से शून्य हो, आहार आदि के ज्ञानमात्र से निष्ठ (युक्त) हो, घ्राणों से जानने योग्य को जानते हुए, हृदय में दीर्घ काल तक अनुसन्धान (धारण) से रहित हो, संचार करनेवाले, द्विशफ (दो खुर) वाले वृषभ, महिष (भैंसा), अज (बकरा), कृष्णसार (हिरन), उष्ट्र (ऊँट), गवय (नीलगाय), रुरु (एक प्रकार का हिरन), मेष (भेड़), सूकर [आदि] नौ (पशु) (तथा) एक शफ (खुर) वाले, खर (गधा), अश्व (घोड़ा), अश्वतर (खच्चर), गौर, शरभ, चमरी (चँवरी) आदि छः, पाँच नखवाले शुनक, शृगाल, वृक, व्याघ्र, मार्जार, शश (खरगोश), शल्यक (साही नामक जन्तु जिसके शरीर पर लम्बे काँटे होते हैं), सिंह, कपि, गज, कूर्म, गोधा आदि बारह भूचर, मकर आदि जलचर, कंक (सफ़ेद चील), गृध्र (गीध), वक (बगुला), श्येन (चील), भास, भल्लूक (रीछ), वर्हि (मोर), हंस, सारस, चक्रवाक, काक (कौआ), उलूक (उल्लू) आदि खेचर उत्पन्न हुए। अर्वाक्-स्रोत हो (तदन्तर के प्राणिसमूह) एक प्रकार के मानव सर्ग, रजोगुण से प्रेरित हो, कर्मकरण में दक्ष हो, दुःख में भी सुख चाहता है। इसे नवाँ सर्ग कहते हैं। ये तीन प्रकार के सर्ग वैकृत माने जाते है। आगे देवसर्ग [के बारे में]

गंधर्वाप्सरस लौकटियु, यक्ष रक्षस्सु लेकंबुनु, भूत प्रेत पिशाचंबु लौकटियु, सिद्ध चारण विद्याधरु लेकंबुनु, गिन्नर किंपुरुषु लौकटि युनुंगा देव सर्ग बय्यॅ। इट्टि ब्रह्म निर्मितंबु लैनदश विध सर्गंबुलु नॅऱिंगिंचिति। इंक मनुवुलं वंतरंबुल नॅऱिंगिचॅद। कल्पादुल यंदु नी प्रकारंबुन स्वयंभूतुंडुनु, नमोघ संकल्पुंडुनु नगु पुंडरीकाक्षुंडु रजोगुण;युक्तुंडै स्रष्ट यगुचु स्वस्वरूपंबैन विश्वंबु नात्मीय सामर्थ्यंबुनं गल्पिचॅ। अय्यीश्वरुनि माया व्यापारंबुलचे नी सृष्टि यंदु नद्यावर्तंबुलं बडि भ्रमिंचु चुन्न महीरुहंबुलुं बोलॅ बूर्वापरभावंबु लॅऱुंगं बडकुंडु। ई कल्पंबुनंदुंडु देवासुरावुलु प्रति मन्वंतरंबु नंदुनु निट्ल नाम रूपंबुलचे निर्देशिपंबडुदुरु। मऱियु निदीक विशेषंबु नॅऱिंगिचॅद। एमन्ननु कौमार सर्गं बनुनदि देव सर्गांतर्भूतं बय्युनु बाकृत वैकृतोभयात्मकंबै देवत्व मनुष्यत्व पूज्यंबैन सनत्कुमारादि सर्गं बनंबडॅ। अमोघ संकल्पुंडैन पुंडरीकाक्षुंडु दनु दान यिट्लु विश्व भेदंबु गल्पिचॅ। अनि मैत्रेयुंडु विदुरुनकु जॅप्पि। काल लक्षणं बॅऱिंगिचु वाडै यिट्लनियॅ॥ 344॥

सुनो ! वह भी आठ प्रकार का होता है। उसमें विबुध, पितृ, सुरादि के तीन प्रकार, (और) गन्धर्व, अप्सरा का एक प्रकार, यक्ष-राक्षस का एक प्रकार, भूत-प्रेत-पिशाच का एक प्रकार, सिद्ध-चारण-विद्याधर का एक प्रकार, किन्नर-किंपुरुष का एक प्रकार, [सब मिलकर] देवसर्ग बना। इस प्रकार ब्रह्मा-निर्मित दस प्रकार के सर्गों को विदित किया। अब मन्वन्तरों (मनुओं के अंतर— भेद) को विदित करूँगा। कल्प आदि में इस प्रकार स्वयंभूत (तथा) अमोघ संकल्पवाले, पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) ने रजोगुण से युक्त हो, स्रष्टा हो, स्वस्वरूप हो, विश्व की अपनी निज सामर्थ्य से कल्पना (सृष्टि) की। उस ईश्वर के माया-व्यापारों से इस सृष्टि में नदी के आवर्त (भँवर) में पड़ भ्रमित होनेवाले महीरुहों (वृक्षों) के समान, पूर्व-अपर भाव जाने नही जा सकते। इस कल्प में स्थित देव, असुर आदि प्रति मन्वन्तर में ऐसे नामरूपों में निर्देशित होते है। और इसमें एक विशेषता को प्रकट करूँगा। वह यह है कि कौमारसर्ग नामक देवसर्ग के अन्तर्भूत हो प्राकृत तथा वैकृत उभय-आत्मक हो देवत्व, मनुष्यत्व से पूज्य सनत्कुमार आदि सर्ग कहलाया। अमोघ संकल्पवाले पुण्डरीकाक्ष ने अपने-आप इस प्रकार विश्व-भेद (अनेक प्रकार के विश्व) का सृजन किया। इस प्रकार मैत्रेय ने विदुर से कहा। (और) काल के लक्षण के बारे में विदित करते हुए, इस प्रकार कहा। ३४४

अध्यायमु—११

सी. भुवि दन कार्या शमुनकु नंतमु नन्य वस्तु योगंबु ने वलन लेक
घट पटादिक जगत्कार्यंबुनकु निज समवाय कारणत्वमुन बरगि
जाल सूर्य मरीचि संगत गगनस्थमगु त्रसरेणु षडंश मरय
बरमाणु वय्यं दत्परमाणुवं दर्क गति यॆंत तडवु दत्काल मगुनु

ते. सूक्ष्म कालंबु विनु मदि सूर्य मंड-
लंबु द्वादश राश्यात्मकं बनंग
गलुगु जगमुन नॊकयेडु गडचि
चनिन गाल मॆंतगु नदि महत्काल मनघ ! ॥ 345 ॥

व. अंदु बरमाणुद्वयं बॊक्क यणु वगु। अणु त्रितयं बॊक्क त्रसरेणुवगु। अवि मूडु कूड नॊक्क त्रुटि यगु। आ त्रुटिशतं बॊक्क वेध यनं बरगु। अट्टि वेधलु मूडु गूड नॊक्क लवंबनं दगु। अवि मूडैन नॊक्क निमेषं बनं जनु। निमेष त्रयं बॊक्क क्षणं बगु। तत्क्षण पंचकं बॊक्क काष्ठ यनं बगु। अवि पदियैन नॊक्क लघु वन नॊप्पु। अट्टि लघु पंचदशकं बॊक्कनाडियनं बरगु। अट्टि नाडिकाद्वयं बॊक्क मुहूर्तंबय्यॆ। अट्टि नाडिकलारैन नेडैन मनुष्युलकु नॊक्कु प्रहरं बगु। अदिय यामं बनं

अध्याय—११

[सी.] भुवि (धरती) पर अपने (ईश के) कार्य का अन्त किसी अन्य वस्तु के योग से नहीं होता, घट-पटादि के जगत्कार्य के लिए अपने से युक्तता के कारण विलसित होता है। जाल से आनेवाली सूर्य की मरीचि (किरण) की संगति से गगन में स्थित त्रसरेणु (सूक्ष्मकण) का छठा अंश, विचार करने पर परमाणु हुआ। उस परमाणु पर अर्क की गति (उस परमाणु से सूर्य के प्रकाश के गुज़रने) के समय की अवधि जितनी होती है, वह काल सूक्ष्मकाल है। [ते.] सूर्यमण्डल के द्वादश राशियों से गुज़रने पर, जग में जो काल (समय) होता है (एक वर्ष), हे अनघ ! वह महत्काल होता है। ३४५ [व.] उसमें दो परमाणु मिलकर एक अणु होता है। तीन अणु मिलकर एक त्रसरेणु होता है। वे तीन मिलकर एक त्रुटि होती है। ऐसी सौ त्रुटियाँ मिलकर एक वेधा कहलाती हैं। ऐसी तीन वेधाएँ मिलकर एक लव बनता है। ऐसे तीन हों तो एक निमिष कहलाता है, तीन निमिष मिलकर एक क्षण बनता है। उन पाँच क्षणों को एक काष्ठ कह सकते हैं। वे दस हो जाएँ तो एक लघु नाम से विलसित होता है। ऐसे पचास लघु एक नाड़ी कहलाते हैं। ऐसी दो नाड़ियाँ मिलकर मुहूर्त बनता है। ऐसी नाड़ियाँ छः या सात हों तो

जनु। दिवस परिमाण विज्ञेयंबगु नाडिकोन्मान लक्षणं बॅरिंगितु। षट्पल ताम्रंबुनं बात्रंबु रचियिंचि, चतुर्माष सुवर्णंबुनं जतुरंगुळायाम शलाकंबु गल्पिंचि, दानं दत्पात्र मूलंबुन छिद्रंबु गल्पिंचि, तच्छिद्रंबुनं प्रस्थमात्र तोयंबु परिपूर्णमु नौंडु नंत कालं बौक्क नाडिक यगु। यामंबुलु नालुगु नन नौक्क पगलगु। रात्रियु निप्पगिदिनि जरुगु। अट्टि यहर्निशंबुलु गूड मर्त्युल कौक्क दिनंबगु। अवि पदियेनैन नौक्क पक्षं बगु। शुक्ल कृष्ण नामंबुलं बरगिन पक्षंबुलु रॆंडु गूड नौक्क मासंबगु। अदि पितृ देवतलकु नौक्क दिवसं बगु। अट्टि मासंबुलु रॆंडैन नौक्क ऋतुवगु। षण्मासंबु लरिगिन नौक्क ययनंबगु। दक्षिणोत्तर नामंबुलं बरगिन यट्टि ययनंबुलु रॆंडु गूडि द्वादश मासंबु लयिन यौक्क संवत्सरंबगु। अट्टि संवत्सर शतंबु नरुलकुं बरमायुवै युंडु। कालात्मुंडुनु नीश्वरुंडुनु नैन सूर्युंडु ग्रह नक्षत्र तारा चक्रस्थुंडै परमाण्वादि संवत्सरांतंबैन कालंबुनं जेसि द्वादश राश्यात्मकंबैन जगंबुन सौर बार्हस्पत्य सावन चांद्र नाक्षत्र मान भेदंबुलं गानंबडुचुन्नवाडै संवत्सर परीवत्सरेडावत्सरानुवत्सर वत्सर नामंबुल सृज्यमैन बीजांकुरमुल शक्ति गाल रूपंबैन स्वशक्ति चेत

मनुष्यों के लिए एक प्रहर बनता है। उसी को याम कहते हैं। दिवस के परिमाण को जाना जानेवाले नाड़िका के उन्मान (नापने) के लक्षण को विदित करूँगा। षट्पल (अट्ठारह तोले) ताम्र से पात्र बनाकर, चतुर्माष सुवर्ण से चार अंगुल बराबर का शलाका बनाकर, उससे उस पात्र के मूल में छिद्र बनाकर, उस छिद्र में प्रस्थ-मात्र (अंजलि भर) का जल परिपूर्ण हो, वह समय (भरने तक का समय) नाड़िका कहलाता है। चार याम मिलकर एक दिन होता है, रात भी इसी प्रकार बनती है। ऐसे अहस् (और) निशा मिलकर मर्त्यों के लिए एक दिवस बनता है। ऐसे पन्द्रह मिलकर एक पक्ष होता है। शुक्ल (तथा) कृष्ण नाम से विलसित होनेवाले दो पक्षों से एक मास बनता है। वह पितृ-देवताओं के लिए एक दिवस होता है। ऐसे दो मास मिलकर एक ऋतु होता है। छः महीने बीतने पर एक अयन होता है। दक्षिण (तथा) उत्तर नामों से विलसित होनेवाले, ऐसे दो अयन मिलकर, बारह महीने बीतने पर, एक वर्ष होता है। एक सौ संवत्सर नरों के लिए परमायु होती है। कालात्मा तथा ईश्वर सूर्य के ग्रह, नक्षत्र, तारों के चक्र में स्थित होकर परमाणु आदि से लेकर वर्ष तक के काल को, बारह राशियों से पूर्ण काल को जगत में सौर, बार्हस्पत्य, सावन, चान्द्र, नक्षत्रमान भेद से दृष्टिगत होते हुए संवत्सर, परीवत्सर, एड़ावत्सर, अनुवत्सर, वत्सर नामों से सृजित हो, बीजांकुरो की शक्ति से, काल रूपी अपनी शक्ति से अभिमुख करते हुए, पुरुषों के लिए (जीवधारियों के लिए) आयु आदि व्यय (खर्च) होनेवाले बनाकर,

नभिमुखंबुगा जेयुचुं, बुरुषुलकु नायुरादि व्ययंबुलं जेसि विषयासक्ति निर्वर्तिपं जेयुचुं, गोरिकलु गलवारिकि यज्ञ मुखंबुलं जेसि गुणमयंबुलैन स्वर्गादि फलंबुल विस्तरिपं जेयुचु, गगनंबुनं वरुवुवॆट्टु। वत्सर पंचकप्रवर्तकुंडगु मार्तांडुनकु बूज गाविपुमु। अनि मैत्रेयुंडु पलिकिन विदुरुं डिट्लनियॆ ॥ 346 ॥

कं. नर पितृ सुर परमायुः-
परिमाणमु लॆरुग नाकु बलिकितिवि मुनी-
श्वर ! यॆट्रिगिपु त्रिलोको-
परिलोक विलोकनैक परुलगु वारिन् ॥ 347 ॥

उ. पूनिन योग सिद्धि दग बॊंदिन नेत्र युगंबुनन् बहि
र्ज्ञानबु गलिगयुंडि भुवनंबुल जूचुचु नुंडु वारिकिन्
मानुग गलुगु कालगति मा कॆरिगिपु मुनींद्र ! नावुडु
न्ना नयशालि यव्विदुरु सादरुडै तग जूचि यिट्लनुन् ॥ 348 ॥

सी. जननुत कृतयुग संख्य नालुगुवेलु दिव्य वर्षमुलु तदीय संध्य
लॆनुबदि नूर्रॆड्लुनु नगु त्रेतयु नब्द त्रिसहस्रमुलुनु ददीय संध्य
लारु नूर्रॆडुलु नगु द्वापरमु रॆंडु वेलु वत्सरमुलु वॆलयु संध्य
लोलि नन्नूर्रॆड्लु नॊगि कलियुगमु सहस्रवर्षमुलु संध्यांश मरय

विषयासक्ति से निवर्तित करते हुए, कामनाओं से युक्त लोगों के लिए यज्ञों के द्वारा गुणमय होनेवाले स्वर्ग आदि फलों का विस्तार करते हुए, गगन में दौड़ लगाते रहता है। पाँच प्रकार के वर्षों का प्रवर्तित करनेवाले मार्त्तण्ड की पूजा करो। इस प्रकार मैत्रेय के कहने पर विदुर ने ऐसा कहा। ३४६ [कं.] मुनीश्वर ! नर, पितृ, सुर की परम आयु के परिमाण को मुझे समझाकर, कह दिया। त्रिलोकों के ऊपर के लोकों में विलोकनैक-पर (देखना ही जिनका काम है) [ऐसे लोगों के लिए], ३४७ [उ.] मुनीन्द्र ! योगसिद्धि को धारण कर समुचित रीति से प्राप्त नेत्रयुगल से वाह्यज्ञान को रखते हुए, भुवनों को देखते हुए रहनेवालों के लिए, मान्य रूप से होनेवाली काल-गति (-गमन) को विदित करो ! ऐसा कहने पर, उस नयशाली विदुर को सादर भाव से देखकर ऐसा कहा। ३४८ [सी.] जनस्तुत्य ! कृतयुग की संख्या में चार हज़ार दिव्य वर्ष (तथा) उसकी सन्ध्य (संधि) अस्सी सौ वर्ष होती है, त्रेतायुग तीन हज़ार वर्ष, (और) उसकी सन्ध्या छः सौ वर्ष होती है। द्वापर दो हज़ार वर्ष (और) क्रम से [उसका] संधिकाल चार सौ वर्ष होता है। परखने पर, कलियुग (एक) हज़ार वर्ष [और उसका] सन्ध्यांश दो सौ [ते.] वर्ष

ते. रॆंडु नूऱेंडुलुनु निलिचियुंडु जुव्वॆ,
यनघ ! संध्यांश मध्यंबुनंदु धर्म
मतिशयिंचुनु संध्यांशमंदु धर्म
मल्पमै कानवच्चुंडु ननघ-चरित ! ॥ 349 ॥

व. मऱियु धर्मदेवत कृत युगंबुन नालुगु पादंबुलुनु, त्रेतयंदु मूडुपादंबुलुनु, द्वापरंबुनं बाद द्वयंबुनु, गलियुगंबुन नेकपादंबुनु गलिगि संचरिंचु। अट्लगुटं जेसि ॥ 350 ॥

कं. पाद विभेदंबुन म-
र्यादलुनु दऱुगु नधर्म माकोलदिनॆ यु-
त्पादिलिल वृद्धि बॊंदु ध-
रा दिविजुलु पापबुद्धिरतु लगुदु रिलन् ॥ 351 ॥

सी. भूर्भुव स्स्वर्लोकमुन कंटॆ बॊडवुन गडु नॊप्पु सत्यलोकंबु नंदु
नुंडु ब्रह्मकु जतुर्युग सहस्रमु लेग दिवमॊक्कटियगु रात्रियिनु निट्ल
चन धात निद्रवो जगमु लणंगु मेल्कनि चूड मऱल लोकमुलु पुट्टु
दद्दिनंबुन जतुर्दशमनुलगुदु रंदॊक्कॊक्क मनुवुन कॊनर दिव्य

ते. युगमु लॊलिनि डॆब्बदि यॊक्क माऱु,
सनिन मनुकाल मय्यॆ नम्मनुकुलंबु
सुरलु मुनुलुनु सप्तर्षु लरय भगव-
दंशमुन बुट्टि पालितु रखिलजगमु ॥ 352 ॥

तक स्थित होता है। अनघ [चरित वाले] ! पापरहित सन्ध्यांश के मध्य में धर्म का अतिशय होता है, (और) सन्ध्यांश में धर्म अल्प रूप में दृष्टिगत होता है। ३४९ [व.] और धर्मदेवता कृतयुग में चार पाद (चरण) का, त्रेता में तीन चरण का, द्वापर का दो चरण में, कलियुग में एक चरण का हो संचार करता है। ऐसा होने के कारण, ३५० [कं.] पाद [चरण]-भेद के कारण मर्यादाएँ कम हो जाती है और उसी क्रम से अधर्म उत्पादित हो, वृद्धि को पाता है, धरा-दिविज (ब्राह्मण) धरा पर पापबुद्धि में रत रहते हैं। ३५१ [सी.] भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक की अपेक्षा अतिशय रूप से विलसित सत्यलोक में स्थित ब्रह्मा के लिए चार हज़ार युगों के बीतने पर एक दिन होता है। ऐसे ही एक रात के बीतने पर धाता के निद्रित होने पर, जगत लुप्त हो जाते हैं, [और] जगकर देखने पर, फिर लोक पैदा होते हैं। उस दिन चौदह मनु पैदा होते हैं। उनमें प्रत्येक मनु के लिए दिव्य [ते.] युगों के क्रमशः इकहत्तर बार बीत चलने पर वह [उस] मनु का काल होता है। विचार करने पर उस मनुकुल (मन्वन्तर) में सुर, मुनि, सप्तर्षि, भगवान के अंश से उत्पन्न होकर अखिल जगत का पालन करते

कं. हरि पितृ सुपर्व तिर्यङ्, नर रूपमुलन् जनिंचि नयमुन मन्वं
तरमुल निजसत्त्वंबुन, बरिपालिचुनु जगंबु पौरुप मॊप्पन् ॥ 353 ॥

कं. क्रममुन द्वैवर्गिक स, र्गंबु सॆप्पंबडॆ सरोज गर्भुंडु दिवसां
तमुन दमः पिहित परा, क्रमुडै शयनिंचु निद्र गैकॊनि यंतन् ॥ 354 ॥

सी. आ रात्रि भुवन त्रयमु दमः पिहितमै भानु चंद्रुलतो विलीनमैन
सर्वात्मुडगु हरि शक्ति रूपंबयि कणगि वॆलुंगु संकर्षणाग्नि
भुवनत्रयंबुनु दविलि दहिंप नय्यनल कीलल वॊडमिन महोष्म
ललमिन गमलि महर्लोक वासुलु जन लोकमुनकुनु जनुदु रपुडु

ते. विलय समय समुत्कट विपुल चंड
वात धूतोर्मिजाल दुर्वार वार्धि
भुवनमुलु मुंचु नम्मूडु भवनमुलनु,
दत्पयोराशिमीद वद्मा-विभुंडु ॥ 355 ॥

उ. चारु पटीर हीर घनसार तुषार मराळ चंद्रिका
पूर मृणाळहार परिपूर्ण सुधाकर काश मल्लिका-
सार निभांग शोभित भुजंगम-तल्पमु नंदु योग नि-
द्रारति जॆंदि युंडु जठर स्थित भूर्भुवरादि लोकुडै ॥ 356 ॥

हैं। ३५२ [कं.] हरि, पितृ, देवता, तिर्यक् (पशु-पक्षी) नर रूपों में जन्म लेकर, ढग से, अपने सत्त्व (वल) से मन्वन्तरों में जगतों का, पौरुप के साथ पालन करता है। ३५३ [कं.] क्रम से तीन प्रकार के सर्ग (सृष्टि) [के वारे में] कहा गया। सरोज-गर्भ (हरि) दिवस के अन्त में तम से पिहित (ढके) पराक्रम वाला हो, निद्रा में शयन करता रहता है। तव। ३५४ [सी.] उस रात तीन भुवन तम से ढके रहते हैं। सूर्य-चन्द्र के विलीन होने पर सर्वात्मा हरि की शक्ति के संकर्पणाग्नि (प्रलयकाल की अग्नि) वनकर, ज्योतित होकर तीनों भुवनों को लगकर जला देने पर, उस अग्नि की कीलाओं (लपटों) से उत्पन्न होनेवाली महाऊष्मा (अत्यधिक उष्णता) के व्याप्त होने पर, तप्त होकर, महर्लोकवासी जनलोक को जाते हैं, [ते.] तव विलय समय की उत्कट विपुल-प्रचण्ड वायु से उद्धूत (ऊपर उड़ाए जाकर), ऊर्मिजाल की (लहरों के समूह) से युक्त दुर्वार वारिधि तीनों भुवनों को डुवो देता है। उन तीनों भुवनों को उस पयोराशि (सागर) पर पद्मविभु (विष्णु), ३५५ [उ.] सुन्दर पटीर (चन्दन), हीर (हीरा), घनसार, तुपार, मराल (हंस), चन्द्रिकाओं के पूर (प्रवाह), मृणाल (कमल) हार, परिपूर्ण सुधाकर (चन्द्र), काश (कांस), मल्लिका के सार के निभ (समान) अंग से शोभित भुजंग के तल्प (शय्या) पर, अपने जठर (पेट) में भूः, भुवः आदि लोकों को धारण कर,

कं. जनलोक निवासकुल,
थिनि विनुतिपंग नतुल दिव्य प्रभ चे
दनरुचु मीलित निजलो-
चनुडै वसियिंचु नतड समुचित लीलन् ॥ 357 ॥

व. इव्विधंबुन ॥ 358 ॥

सी. कैकोनि बहुविध काल गत्युपलक्षि, तमुलै यहो रात्र ततुलु जरग
शत वत्सरंबुलु जनुलकु बरमायुवैन रीतिनि बंकजासनुनकु
बरमायुवगु शताब्दंबुलंदुल सग मरिगिन नदियु बरार्थ मंडु,
गान बूर्वार्धंबु गडचुट जेसि द्वितीय परार्धंबु दीनि पेरु

ते. गडगि पूर्व परार्थादि कालमंदु,
ब्रह्म कल्पाख्य नैंतयु बरगु नंदु
ब्रह्म युदयिंचुटं जेसि,
ब्रह्मकल्प मनियु शब्दात्मक ब्रह्ममनियु नेगडु ॥ 359 ॥

कं. विनु मॅन्नडु पंकज ना-
भुनि नाभी-सरसि यंदु भुवनाश्रयमै
तनरिन पद्ममु वोडमुनु,
ननघा ! यदि पद्मकल्पमन विलसिल्लुन् ॥ 360 ॥

व. पूर्व परार्थादिनि गलिगिन ब्रह्मकल्पंबु चॅप्पिति। इंक द्वितीय परार्थंबु

योगनिद्रारत हो रहता है। ३५६ [कं.] जनलोक निवासियों के अर्थी हो, विनती करने पर, अतुल दिव्य प्रभा से विलसित हो, अपनी आँखें बन्द किए हुए, समुचित लीला में वह निवास करता है। ३५७ [व.] इस प्रकार, ३५८ [सी.] नाना प्रकार से कालगति से उपलक्षित होकर, अहोरात्र-समूह के बीतने पर, जनों (मानवों) को सौ वर्ष के परमायु होने की रीति से पंकजासन (कमलासन, ब्रह्मा) के लिए परमायु रूपी शताब्दियों में आधे के बीत जाने पर, उसे परार्द्ध कहते हैं। उस पूर्वार्द्ध के बीत जाने पर, इसको द्वितीय परार्द्ध कहते हैं। [ते.] पूर्व परार्द्ध का आदिकाल ब्रह्मकल्प के नाम से अतिशय रूप से विलसित होता है। इसमें ब्रह्मा के उत्पन्न होने के कारण, इसे ब्रह्मकल्प और यह शब्दात्मक ब्रह्म के नाम से विलसित होता है। ३५९ [कं.] अनघ ! सुनो ! जब पंकजनाभ (विष्णु) के नाभि-सरसि (-सरोवर) में भुवनों के आश्रय रूपी होकर विलसित होनेवाला पद्म उत्पन्न होता है, तब वह पद्मकल्प के नाम से विलसित होता है। ३६० [व.] पूर्व परार्द्ध के आदि में होनेवाले ब्रह्मकल्प के सम्बन्ध में (मैंने) कहा। अब द्वितीय परार्द्ध के प्रारम्भ में हरि जिस दिन सूकराकार को धारण करता है, वह वराहकल्प कहलाता है,

मॉदल नॅन्नडेनि हरि सूकराकारंबु दाल्चु नदि वराहकल्पंबनं दगु।
अट्टि वराहकल्पं बिपुडु वर्तमानं बगुचुन्नदि। वॅंडियु ॥ 361 ॥

सी. दीपिंप गालस्वरूपुडै नट्टि पद्माक्षु डनंतु डनादि पुरुषु
डखिल विश्वात्मकुडगु नीशुनकु बरमाण्वादि युग परार्धांत मगुचु
जरुगु नी कालंबु चर्चिप नॉक्क निमेषकालंबयि मॅलगुचुंडु
गाननीश्वरुनकु गर्तगा जाल दिक्कालंबु विनु मदि गाक देह

ते. मंदिरार्थादि कर्माभिमान शीलु
रैनवारिकि नाश्रयं बगुटजेसि
यरय हरि दद्गुण व्यतिकरुडु गान,
काल मम्मेटि कॅन्नडु गर्त काडु ॥ 362 ॥

व. मरियु षोडश विकार युक्तंबै पृथिव्यादि पंचभूत परिवृतंबै दशावरणंबुलु
गलिगि पंचाशत्कोटि विस्तीर्णंबै ब्रह्मांड कोशंबु दनरुचुंडु ॥ 363 ॥

चं. हरि परमाणु रूपमुन नंदु वसिंचि विराजमानुडै
सरि वॅलुगॉंदु निम्मुल नसंख्यमुलैन महांड कोशमुल्
नॅरि दन यंदु डिद नवनीरज-नेत्रु डनंतु डाद्यु ड
क्षरुडु परापरं डखिल कारण कारणु डप्रमेयुडै ॥ 364 ॥

कं. निरतिश - योज्ज्वल तेजः
स्फुरणन् दनरारु परम पुरुषुनि विष्णुं

ऐसा वराहकल्प अब चल रहा है। और, ३६१ [सी.] कालस्वरूप हो दीप्त होनेवाले पद्माक्ष (कमलनयन), अनन्त, अनादि पुरुष, अखिल विश्वात्मा, ईश्वर के लिए परमाणु से आदियुग परार्द्ध के अन्त तक चलनेवाला यह काल, चर्चा करने पर (विचार करने पर) एक निमिष काल होता है, इसलिए यह काल ईश्वर का कर्ता नहीं हो सकता और इसके अतिरिक्त यह काल (अपने) देह, [ते.] मन्दिर, अर्थ आदि कर्म के प्रति अभिमान (आग्रह) शील वाले लोगों का आश्रय होने के कारण, विचार करने पर, हरि के उन गुणों से भिन्न होने के कारण, उस महान (ईश) के लिए काल कभी कर्ता नहीं हो सकता। ३६२ [व.] और सोलह विकारों से युक्त हो, पृथ्वी आदि पंचभूतों से परिवृत हो, दस आवरणों से युक्त हो, पाँच सौ करोड़ [योजनों] में विस्तृत हो, ब्रह्माण्ड-कोश विलसित हो रहता है। ३६३ [चं.] परमाणु के रूप में निवास करते हुए, हरि विराजमान होकर, ढंग से ज्योतित होता है। सुंदरता से असंख्य महा-अण्ड कोषों के पूरी तरह से अपने में समाए रहने पर, नव-नीरज नेत्र (नये कमल-नयन) वाला, अनन्त, आद्य (आदिपुरुष), अक्षर [पुरुष], पर-अपर, अखिल के कारण का, कारण [स्वरूप] अप्रमेय बनकर, ३६४ [कं.] निरतिशय [और]

बुरुषोत्तमु वर्णिपनु
सरसिजभव भवुलकैन शक्यमॆ चॆंपुमा ! ॥ 365 ॥

अध्यायमु—१२

कं. अनि मैत्रेयुडु विदुरुं
गनुगॊनि वॆंडियुनु बलिकॆ गालाह्वयुडै
तनरिन हरि महिमल ने
विनिर्पिचिति सृष्टि महिम विनु मॆर्द्रिगितुन् ॥ 366 ॥

व. परमेष्ठि यी सृष्ट्यादि नहम्मनु देहाभिमानबुद्धि गल मोहंबुनु, अंगना संगम स्रक्चंदनादि ग्राम्य भोगेच्छलु गल महा मोहंबुनु, दत्प्रतिघात जातंबैन क्रोधंबु नंदु गलुगु तामिस्रंबुनु, दन्नाशंबु नंदु अहमेव मृतोऽस्मि यनु नंध तामिस्रंबुनु, चित्त विभ्रमंबु, ननु नविद्या पंचक मिश्रंबुगा सर्व भूतावळि बुट्टिंचि, यात्मीय चित्तंबुनं बापसृष्टि गल्पिचुटकु बश्चात्तापंबु नॊंदि भगवद्ध्यानामृत पूतमानसुंडै यूर्ध्वरेतस्कुलु परम पवित्रुलु नैन सनक-सनंदन सनत्कुमार सनत्सुजातुलनु मुनुल नति सत्त्वगुण गरिष्ठुल धीर जनोत्तमुल नार्युल हरि प्रसन्नुलनुं गा दिव्य दृष्टि गल्पिचि वारलं जूचि

उज्ज्वल तेज के स्फुरण से विलसित होनेवाले परमपुरुष, विष्णु, पुरुषोत्तम का वर्णन करना सरसिज-भव (ब्रह्मा) [तथा] भव (शिव) के लिए भी, बताओ न कि कहीं बस की बात है ? (नहीं है।) ३६५

अध्याय—१२

[कं.] इस प्रकार मैत्रेय ने विदुर को देखकर आगे कहा कि कालरूप में विलसित होनेवाले हरि की महिमाओं को मैंने सुनाया। [अव] सृष्टि की महिमा के बारे में विदित करूँगा, सुनो। ३६६ [व.] परमेष्टि (ब्रह्मा) ने इस सृष्टि के आदि में अहम् रूपी देहाभिमान की बुद्धि वाले मोह, अंगना (स्त्री)-संगम (-संभोग), स्रक (पुष्पमाला), चन्दन आदि ग्राम्य भोगों की इच्छाओं से युक्त महामोह, उसके प्रतिघात से उत्पन्न होने वाला तमिस्र (तमोबुद्धि), उसके विनाश में 'अहमेव मृतोऽस्मि' (मैं मर गया) नामक अन्धतामिस्र, चित्तविभ्रम नामक अविद्यापंचक के मिश्रण रूपी सर्वप्राणियों का सृजन कर, अपने चित्त में पापसृष्टि की कल्पना करने के कारण पश्चात्ताप करते हुए, भगवान के ध्यान रूपी अमृत से पवित्र मनवाला हो, अर्ध्व रेतस् वाले, परम पवित्र सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनत्सुजात नामक मुनियों को, अति सत्त्वगुण से गरिष्ठ धीरजनों में उत्तम, आर्यों को, जिनसे हरि प्रसन्न हो जाए [ऐसे लोगों को], दिव्य दृष्टि से

मी मी यंशंबुल ब्रजलं बुट्टिंचि प्रपंचमु वृद्धि बॉदिंपु डनिन वारलु दद्वचनंबु लपहसिंपुचु वब्जर्जुनि गनि मोक्षधर्मुलु नारायणपरायणुलुनै प्रपंच निर्माणंबुनकु व्रतिकूल वाक्यबुलु पलिकिन, नुदयिंचिन क्रोधंबु बुद्धिचे निग्रहिंपंबडिननु नरविंद-संभवुनि भ्रू मध्यंबु वलनं ग्रोध स्वरूपंबुन नीललोहितुंडु निखिल सुराग्रजुंडै युदयिंचुचु नाक्रंदनं बॉनरिंचे नंत··· ॥ 367 ॥

म. जननं बंदिन नीललोहितुडु गंजातासनुं जूचि यि
ट्लनु नो देव ! मदाख्य लॅट्टिवि मदीयावासमुल् वीक ना
कनयं बी वॅरिंगिंपुमा यनुडु न ब्यंभोज गर्भुंडु ला
लनमुं दोप गुमार ! नी जनन वेळन् रोदनं बिच्चुटन् ॥ 368 ॥

ते. रुद्रनामंबु नीकु निरूढ मय्यॆ,
जंद्र सूर्यानलानिल सलिल गगन
पृथिवि प्राण तपो हृदिंद्रियमुलनग,
गलुगु नेकादशस्थानमुलु वॅलसॆ ! ॥ 369 ॥

व. अनि वॅंडियु मन्यु, मनु, महाकाल, महत्, शिव, ऋतध्वज, उरुरेतस्, भव, काल, वासुदेव, धृतव्रतुलनु नेकादश नामंबुलु गलिगि धी, वृत्ति, अशना,

---

कल्पना (सृष्टि) कर, उनको देखकर कहा कि अपने-अपने अंश से प्रजाओं का सृजन कर प्रपंच (संसार) की वृद्धि करो। [कहने पर] वे उन वचनों का उपहास करते हुए, पद्मज (ब्रह्मा) को देखकर, मोक्ष धर्मवाले [तथा] नारायणपरायण, [उन लोगों के] संसार के निर्माण के लिए प्रतिकूल (विपरीत) वाक्य कहने पर, उदित हुए क्रोध-बुद्धि से संयमित होने पर भी, अरविन्द-सम्भव (ब्रह्मा) के भ्रूमध्य से क्रोधस्वरूप में नीललोहित [वर्णवाला व्यक्ति और] निखिल-सुराग्रज हो उत्पन्न होते ही [आक्रन्दन किया, तब], ३६७ [म.] जन्म लेकर नीललोहित ने कंजातासन (ब्रह्मा) को देख इस प्रकार कहा कि देव ! मेरे नाम क्या हैं, मेरे आवासस्थान क्या हैं, उत्साह से तुम अवश्य विदित करो। कहने (पूछने) पर उस अम्भोज-गर्भ (ब्रह्मा) ने लालित करते हुए (प्यार दिखाते हुए) कहा कि हे कुमार ! अपने जन्म की वेला में (पैदा होते समय) रोने के कारण, ३६८ [ते.] तुम्हारा 'रुद्र' नाम स्थायी होगा। और चन्द्र, सूर्य, अनल (अग्नि), अनिल, सलिल (जल), गगन, पृथ्वी, प्राण, तप, हृदिन्द्रिय कहलानेवाले ग्यारह स्थान तुम्हारे निवास स्थान होंगे। ३६९ [व.] कहकर और मन्यु, मनु, महाकाल, महत्, शिव, ऋतध्वज, उरुरेतस्, भव, काल, वामदेव, धृतव्रत नामक ग्यारह नामों से युक्त हो, धी, वृत्ति, अशना, उमा, नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इलावती, सुधा, दीक्षा, नामक पत्नियों से

उमा, नियुत्, सर्पिः, इला, अंबिका, इलावती, सुधा, दीक्षा, नाम पत्नी समेतुंडवै, पूर्वं नियुक्तंबुलैन नामंबुल दत्तनिवासंबुल वसियिंचि प्रजलं गल्पिपु मनि निर्देशिंचिन भगवंतुंडगु नीललोहितुंडु विश्वगुरुंडैन पितामहुनिचेत नियुक्तुंडै सत्त्वाकृति स्वभावंबुल नात्मसमुलैन प्रजलं गल्पिचें ॥ 370 ॥

उ. रुद्रुनि चेत नी गति निरूढमतिन् सृजियिंपबड्ड या
रुद्रगणंबु लोलि नवरुद्धत विश्वमु म्रिंगं नम्महो
पद्रव शांतिकै यजुंडु भर्गुल जूचि कुमारुलार ! मी
रौद्र विलोक नानल भरंबुन ग्रागें समस्त लोकमुल् ॥ 371 ॥

कं. मी सृष्टि चालु निंकनु,
धी सत्तमुलार ! विनुडु धृतिमीर दपो
व्यासंग चित्तुलै चनु डीडा
सन्मंगळमु लगु वृढंबुग मीकुन् ॥ 372 ॥

म. भगवंतुन् बुरुषोत्तमुन् हरि गृपा पाथोधि लक्ष्मीश्वरुन्
सुगुण भ्राजितु नच्युतुं बरु बरंज्योतिन् बमुन् सर्वभू-
त गुहावासु नधोक्षजुन् क्षितजन त्राणैक पारीणु ना
जगदात्मुन् गनुचुंदु रार्युलु दपश्शक्तिन् स्फुट ज्ञानुलै ॥ 373 ॥

समेत (युक्त) हो, पहले नियुक्त नामों से उन-उन निवास-स्थानों में निवास करते हुए, प्रजा की कल्पना (सृष्टि) करो ! ऐसा निर्देश करने पर भगवान नीललोहित ने विश्वगुरु पितामह के द्वारा नियुक्त हो, सत्त्व-आकृति-स्वभावों में अपने समान प्रजाओं का सृजन किया। ३७० [उ.] रुद्र के द्वारा इस प्रकार निश्चित मति से सृजित किए गए रुद्रगण ने विश्व को क्रमशः निर्विरोध रूप से निगल लिया। उस महा-उपद्रव की शान्ति (शमन) के लिए भर्गों को देखकर [कहा] पुत्रवर ! आपके रौद्र-विलोकनों (दृष्टियों) के अनल (अग्नि) के भार से समस्त लोक तप्त हो उठे। ३७१ [कं.] धीसत्तम (बुद्धिशाली) ! अब आपकी सृष्टि बस है। सुनो ! धृति से आप लोग तप में निमग्न मनवाले हो, चले जाइए ! आपको निश्चित रूप से मंगल होंगे। ३७२ [म.] भगवान को, पुरुषोत्तम को, हरि को, कृपा-पाथोधि (-सागर) को, लक्ष्मीश्वर को, सगुणों से भ्राजित (प्रकाशित) को, अच्युत को, पर को, परमज्योति को, प्रभु को, सर्वभूतों की गुहा (हृदय) में निवास करनेवाले अधोक्षज (विष्णु) को, आश्रित के त्राण (रक्षा) में ही लगे हुए [जन] को, उस जगदात्मा को, तपोशक्ति से [परि] स्फुट ज्ञान वाले हो आर्य लोग (श्रेष्ठजन) दर्शन करते हैं। ३७३

व. अनिन विनि ॥ 374 ॥

उ. कैकोनि यिट्लु पंकरुह-गर्भ नियंत्रितुलैन रुद्र लु-
द्रेकमु दक्कि कानलकु धी युतुलै तप माचरिप न
स्तोक चरित्रुलैगिरि चतुर्मुखुडंत प्रपंच कल्पना
लोकनुडै सृजिचॅ जनलोक शरण्युल धीवरेण्युलन् ॥ 375 ॥

ते. विनुमु भगवद्बलान्वित विनुत गुणुलु,
भुवन संतान हेतु विस्फुरण करुलु,
पद्म संभव तुल्य प्रभाव युतुलु,
पदुगुरु सुतुलु पुट्टिरि भव्य यशुलु ॥ 376 ॥

सी. अरविंद संभवु नंगुष्ठमुन दक्षु डूरुवु वलननु नारदुंडु
नाभि बुलहुडु गर्णमुल बुलस्त्युंडु द्वक्कुन भृगुवु हस्तमुन ग्रतुवु
नास्यंबु वलन नय्यंगिरसुडु प्राणमुन वसिष्ठुडु मनमुन मरीचि
कन्नुल नत्रियुगा बुत्र दशकंबु गलिगिरि वेंडियु नळिनगर्भु

ते. दक्षिण स्तनमु वलन धर्म मोंदवॅ,
वेंन्नु वलन नुदय मय्यॅ विश्वभयद-
मैन मृत्यु वधर्मंबुनंद कलिगॅ,
नात्मगामुंडु जननमु नंदॅ मरियु ॥ 377 ॥

सी. भ्रू युगकंबुन ग्रोधंबु, नधरमु नंदु लोभंबु, नास्यमुन वाणि
युनु मेढ्रमंबु वयोधु लपानंबुनंदु नघाश्रयुडैन निऋति

[व.] [ऐसा] कहने पर सुनकर, ३७४ [उ.] [इस वाक्य को] ग्रहण कर इस प्रकार पकरुहगर्भ (ब्रह्मा) से नियंत्रित हो, रुद्र (अपने) उद्रेक (आवेग) को छोड़कर वनों में धीयुत हो, तपस्या करने के निमित्त [वे] अस्तोक (कलंक-रहित) चरितवाले हो गए। तब चतुर्मुखवाले ने संसार के सृजन करने की दृष्टि से जनलोक के शरण्य, धीवरेण्य (वुद्धिशाली) जनों का सृजन किया। ३७५ [ते.] सुनो! भगवान के बल से युक्त विनुत गुणवाले, भुवन की सन्तान के (विस्तार) हेतु (कारण) को सुस्पष्ट करनेवाले, पद्मसम्भव (ब्रह्मा) के समान प्रभाव से युक्त, भव्य यशवाले दस पुत्र उत्पन्न हुए। ३७६ [सी.] अरविन्द-सम्भव (ब्रह्मा) के अंगुष्ठ से दक्ष, ऊरु से नारद, नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य, त्वक् से भृगु, हाथ से क्रतु, नाक से अंगिरस, प्राण से वशिष्ठ, मन से मरीचि, आँखों से अत्रि (नामक) दस पुत्र उत्पन्न हुए और नलिन-गर्भ (ब्रह्मा) के [ते.] दायें स्तन से धर्म पैदा हुआ, पीठ से विश्व को भय देनेवाला मृत्युदेवता अधर्म के साथ पैदा हुआ। आत्मा से काम ने जन्म लिया, और, ३७७ [सी.] भ्रूयुगल से क्रोध, अधर से लोभ, आस्य (मुख) से वाणी, मेढ्र से

लालित च्छाय वलन देवहूति विभुंडु गर्दमुडुनु बुट्टि रंत
नब्जजुं डात्मदेहमुन जनिंचिन भारति जूचि विभ्रांति बीरसि

ते. पंचशर बाण निर्भिन्न भावु डगुचु,
कूतुरनि पापमुनकु संकोचपडक
कवय गोरिन जनकुनि गनि मरीचि,
मीदलुगा गल यम्मुनि मुख्युललिगि ॥ 378 ॥

व. इट्लनिरि ॥ 379 ॥

उ. चालु बुरे! सरोजभव! सत्पथवृत्ति दीरुंगि कूतु नि
ट्लालरिवै रमिंप हृदयंबुन गोरुट धर्म रीतिये?
बेलरि वतिवि नी तगवु पेंद्दतनंबुनु मंटि पालुगा
शीलमु वीव दट्टि यिट्टु सेसिना वारलु मुन्नु गल्गिरे? ॥ 380 ॥

उ. नीवु महानुभावुड वनिंद्य चरित्रुडु विट्टि चोट रा-
जीवभवुंडु दा विधि निषेधमु लात्म नेंरुंग डय्ये नी
भाव भव प्रसून शर बाधितुडै तन कूतु बींदेबो
वावि दलंपलेकनुचु वारक लोकुलु प्रुव्व दिट्टरे? ॥ 381 ॥

कं. पापमु दलपक निमिषमु
लोपल जेंडु सौख्यमुलकु लोनैतिवें यि

पयोधि (सागर), अपान से पापों का आश्रयस्वरूप निऋति, ललित छाया से देवहूति का पति कर्दम उत्पन्न हुए। तब अब्जज (ब्रह्मा) अपनी देह से उत्पन्न भारती को देखकर विभ्रान्त हो, [ते.] पंचशर (कामदेव) के बाणों से बेधित भाव वाला हो, बेटी है, ऐसा संकोच न करते हुए, संभोग की कामना करनेवाले पिता को देखकर मरीचि आदि मुनि-मुख्य लोगों ने रुष्ट होकर, ३७८ [व.] ऐसा कहा। ३७९ [उ.] हाय, बस करो। हे सरोजभव! सत्पथ की वृत्ति (स्वभाव) से हटकर, दुश्शीलवाले होकर, बेटी पर मोहित हो हृदय से रमण करने की इच्छा करना धर्म की रीति है क्या? अपने न्याय, बड़प्पन को मिट्टी में मिलाकर वंचक (धोखेबाज़) निकले हो! अपने शील (चरित्र) को त्यागकर ऐसा (कुकर्म) करनेवाले कोई पहले हुए हैं क्या? ३८० [उ.] तुम महानुभाव हो। अनिन्द्यचरित वाले हो। ऐसे सन्दर्भ में अपने विधि-निषेध को जान न सके, इस भाव-भव (मन्मथ) के प्रसून (पुष्प-) शर से बेधित हो, अपनी पुत्री को, रिश्ते का विचार न कर, प्राप्त किया (संभोग किया) है, ऐसा कह लोग (दुनियावाले) अत्यधिक रूप से गालियाँ नहीं देंगे? ३८१ [कं.] पाप का विचार न कर, एक क्षण में नष्ट हो जानेवाले दुष्ट सुख की चाह की। यही तो है, धरती पर 'कामान्धोऽपि न पश्यति' (काम से अन्धा हुआ

ते पो धारुणि "गामां-
धोपि न पश्यति" यनंग वॊल्लियु विनमे ॥ 382 ॥

म. अनि यिट्भंगि मुनींद्रु लाडिन कठोरालापमुल् वीनुलन्
विनि लज्जावनताननं डगुचु ना नीरेज-गर्भुंडु स-
द्यन देहंबु विसर्जनीयमुग जेयन् दिक्कु लेतॆंचि त-
त्तनुवुन् गॆकॊनि बुट्टॆ दिक्कलितमै तामिस्र नीहारमुन् ॥ 383 ॥

व. अंत ॥ 384 ॥

चं. उडुगक पंकजातभवु डॊंडोक देहमु दाल्चि धैर्यमुन्
विडुवक सृष्टि बूर्व समेतमुगन् सृघियिंचु नेर्पु दा
वॊडममि कात्मलोन दलपोयुचु नुंड जतुर्मुखंबुलन्
बॆडलॆ ननून रूपमुल वेदमु लंचित धर्मयुक्ततन् ॥ 385 ॥

ते. मरियु मखमुलु महित कर्ममुलु वंत्र
मुलुनु नडवळ्ळु नाश्रममुलु दवीय
मुख चतुष्कमु नंदुन वॊडमॆ ननिन,
विनि मुनींद्रुनि जूचि यव्विदुरु डनियॆ ॥ 386 ॥

कं. तोयज - संभवु डप्पुडु,
ने ये मुखमंडलमुन ने ये सृष्टिन्
धीयुतुडै सृजियिंचॆनु,
वायक यिट्टॆरगु दॆलिय वलुकुमु नाकुन् ॥ 387 ॥

आगे-पीछे नही देखता, भले-बुरे का विचार नहीं करता), ऐसा कहना तो पहले से भी सुनते ही हैं न ! ३८२ [म.] इस प्रकार मुनीन्द्रों से कहे गये कठोर वचन कानों से सुनकर, लज्जा से सिर झुकाते हुए, उस नीरज-गर्भ (ब्रह्मा) ने झट देह को त्याग दिया। दिशाओं के आकर उस शरीर को लेने पर, अन्धकारमय नीहार-दिशाओं को भरते हुए पैदा हुआ। ३८३ [व.] तब, ३८४ [चं.] निरुत्साहित न हो पंकजातभव (ब्रह्मा) एक और शरीर धारण कर, धैर्य को न छोड़ते हुए, सृष्टि को पूर्व के अनुसार, समवेत रीति से सृजन करने की निपुणता के न सूझने पर, आत्मा में (मन में) चिन्तित हो रहा। तब, चार मुखों से अनून (पूर्ण) रूपवाले वेद समुचित रीति में धर्म के साथ प्रकट हुए। ३८५ [ते.] और मख (यज्ञ), महित (समुन्नत) कर्मतंत्र, आचरण की रीतियाँ (आचार-संहिताएँ), [और] आश्रम तदीय (उसके) चार मुखों से प्रकट हुए। ऐसा सुनकर मुनीन्द्र को देखकर विदुर ने कहा (प्रार्थना की)। ३८६ [कं.] तोयज-सम्भव (ब्रह्मा) ने तब धीयुक्त हो, किन-किन मुखमण्डलों से किस-किस सृष्टि का सृजन किया ? किसी (विषय) को न छोड़ते हुए (पूर्ण रूप से) मुझे विदित कर

व. अनि यिट्लु विदुरं डडिगिन मैत्रेयुं डतनितो निट्लनियें। ऋग्यजु स्सामाथर्वंबु लनु वेदंबुलनु, होतृ कर्मंबुलैन यप्रगीत मंत्र स्तोत्रंबुलगु शस्त्रंबुलुनु, अध्वर्यु कर्मंबैन युज्ययु, संप्रगीत स्तोत्रंबगु स्तुतियु, गातृ प्रयोज्यंबैन ऋक्समुदाय रूपंबगु स्तोमंबुनु, प्रायश्चित्तं बगु ब्रह्म कर्मंबुनु, आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्व वेदंबुलनु नुपवेदंबुलनु, विश्वकर्म शास्त्रंबगु स्थापत्यंबुनु, प्रागादि मुखंबुल नुत्पन्नंबुलय्यें। पंचम वेदं बगु नितिहास पुराणंबुलु सर्व मुखंबुलं गलिगें। मरियुं गर्म तंत्रंबुलैन षोडश्युक्थ्यमुलुनु, जयनग्निष्टोमंबुलुनु, आप्तोर्यामति रात्रंबुलुनु, वाजपेय गो सवंबुलुनु, धर्म पादंबुलैन विद्या दान तप स्सत्यंबुलनु, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यत्याश्रमंबुलुनु गलिगें। वीनिकि नोक्कोक्कटिकि जतुर्विधंबुलैन वृत्तुलु गलिगियुंडु। अंदु सावित्रंबनु ब्रह्मचर्यंबुनु, उपनयमंबादिगा दिवसत्रयंबु गायत्रि जपिंचुट यनु प्राजापत्यंबुनु, वेदव्रत चतुष्टयंबु व्रतुलु संवत्सर पर्यंतंबुगा नाचरिंचुट यनु ब्राह्मंबुनु, वेद ग्रहणांतंबु नाचरिंपदगु नैष्टिकंबुनु अनु ब्रह्मचारि वृत्ति चतुष्टयंबुनु, अनिषिद्ध कृष्यादि वृत्तियगु वार्तयु, यजनादि कर्मोपयुक्तं बैन याज्ञादि रूपंबगु संचयंबुनु, परुल याचिपकुंडु नयाचितं बनु शालीनंबुनु, क्षत्र पतित कणिश कण संग्रहण रूपंबगु

दो। ३८७ [व.] इस प्रकार विदुर के पूछने पर मैत्रेय ने उससे ऐसा कहा। ऋक्, यजु, साम, अथर्व नामक वेद, होतृकर्म कहलानेवाले अप्रगीत (संगीत से संबंध न रखनेवाले), मंत्र-युक्त स्तोत्र होनेवाले शस्त्र (प्रशंसायुक्त वेदमंत्र), अध्वर्यु कर्मात्मक इज्या, संप्रगीत स्तोत्रात्मक स्तुति, गातृ प्रयोजनवाले ऋक्समुदाय रूपात्मक स्तोम, प्रायश्चित्त-स्वरूप ब्रह्मकर्म, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद कहलानेवाले उपवेद, विश्वकर्म का शास्त्र, स्थापत्य (शास्त्र) प्रागादि मुखों से उत्पन्न हुए। पंचमवेद कहलानेवाले इतिहास, पुराण सर्व मुखों से उत्पन्न हुए। और कर्मतंत्र वाले षोडश उक्थ्य (तिथियों के अनुरूप आहार-स्वीकार के नियम), यजनाग्निष्टोम, आप्तोर्यामाति अति-रात्र (रतजगा), वाजपेय-गोसव, धर्म के चरण कहलानेवाले विद्या, दान, तप, सत्य (तथा) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यति (नामक) आश्रम उत्पन्न हुए। इनमें एक-एक के चार प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। इनमें सावित्र (सविता की उपासना) नामक ब्रह्मचर्य, उपनयन से शुरू कर दिवसत्रय तक गायत्री के जप का प्राजापत्य (तथा) वेदव्रत चतुष्टय, व्रतियों द्वारा वर्ष-पर्यन्त (साल भर तक) किये जानेवाला ब्राह्म, वेदग्रहण के अन्त में आचरण योग्य नैष्ठिक नामक ब्रह्मचारिवृत्ति-चतुष्टय, अनिषिद्ध कृषि आदि वृत्ति (व्यवसाय) होनेवाली वार्त्ता (खेती ही जीविका हो), यज्ञादि कर्मों के लिए उपयुक्त होनेवाले याचनादि रूपवाला संचय, अन्यों की याचना न करनेवाले अयाचित नामक शालीन (धान चुन लेना), क्षेत्र पतित-कणिश-

शिलोंछंबुनु अनु गृहस्थ वृत्तुलु नालुगुनु, अकृष्टपच्याहरुलगु वैखानसुलुनु नूतन फलंबु लभ्यंबयिन बूर्व संचित पदार्थ त्यागंबुगल वालखिल्युलुनु, प्रात: कालंबुन ने दिक्कु विलोकिंतु रद्दिक्कुनकुं जनि यच्चट लभिचु पदार्थंबुलन् भुजिंचि जीविंचु नौदुंबरुलकु, तमंत फलिंचि तरुपतितंबुलगु फलंबुलं दिनुचुंडु फेनफुलुनु, अनु चतुर्विध वृत्तुलं गल वानप्रस्थुलुनु, स्वाश्रम विहित कर्मंबुलं प्रधानुंडगु कुटीचकुंडुनु, गर्मंबुपसर्जनंबु चेसि ज्ञान प्रधानुंडगु बहूदुंडुनु, गेवल ज्ञानाभ्यास निष्ठुंडगु हंसुंडुनु, प्राप्तंबैन परब्रह्म तत्वंबु गल निष्क्रियुंडुनु अनु सन्न्यासि चतुर्विधवृत्तुलुनु, मोक्षफल प्रदंबयि यात्मानात्म विवेक विद्यारूपंबगु नान्वीक्षकियु। स्वर्गादिफल प्रदंबयि कर्म विद्या रूपमगु त्रयियु, जीवनफल प्रधानं बयि कृष्यादि रूपं बगु वार्तयु, नर्थ संपादनैक प्रयोजनं बगु दंडनीतियु ननु मोक्ष धर्म कामार्थंबुलैन· न्याय विद्या चतुष्टयंबुनु, भूर्भुव-स्सुव यनु व्याहृतुलुनु, पूर्वादि मुखमुल नुदयिंचें। मरियु नतनि हृदयाकाशंबु वलनं ब्रणवंबुनु, रोमंबुल वलन नुष्णिक्छंदंबुनु, त्वगिंद्रियंबु वलन गायत्री-च्छंदंबुनु, मांसंबु वलनं त्रिष्टुप्छंदंबुनु, स्नायुवुल वलन ननुष्टुप्छंदंबुनु, अस्थिवलन जगतीच्छंदंबुनु, मज्ज वलन पंक्तिच्छंदंबुनु,

---

कणों के संग्रहण रूपी शिलोंछन (शिला से धान गिरा लेना) नामक चार गृहस्थ वृत्तियाँ, अकृष्ट, अपच्य आहार [ग्रहण करने] वाले वैखानस, नये फल की प्राप्ति होने पर पूर्वसंचित पदार्थों को त्यागनेवाले वालखिल्य, प्रातःकाल जिस दिशा में देखते हैं, उसी दिशा में चलकर वहाँ से प्राप्त पदार्थों का भोजन कर जीवन वितानेवाले औदुंबर, अपने-आप फलित होकर वृक्षों से नीचे गिर जानेवाले फल खाकर जीनेवाले फेनप, नामक चार वृत्तियों (स्वभाव) वाले वानप्रस्थ, अपने आश्रम के अनुसार विहित कर्म करनेवालो में प्रमुख कुटीचक (कुटी वनाकर रहनेवाला), कर्मों का विसर्जन कर ज्ञान में प्रधान हुए वहूद, केवल ज्ञान के अभ्यास में निष्ठा रखनेवाले [परम] हंस, परब्रह्म-तत्व को प्राप्त करनेवाले निष्क्रिय आदि संन्यासी की चतुर्विध वृत्तियाँ, मोक्षफल-प्रदायक हो आत्मा, अनात्मा के विवेक विद्या रूपी आन्वीक्षिकी, स्वर्गादि के फलप्रद होनेवाली कर्मविद्या रूपी त्रयी, जीवन फल के प्रधानस्वरूप कृषि-आदि वार्त्ता, धन सम्पादन के एक मात्र प्रयोजनवाली दण्डनीति नामक मोक्ष-धर्म-काम-अर्थ रूपी न्याय-विद्या-चतुष्टय, भूर्भुवस्सुव नामक व्याहृतियाँ, पूर्वादि मुखों से उदित हुए। और उसके हृदयाकाश से प्रणव, रोमों से उष्णिक् छन्द, त्वक् इन्द्रिय से गायत्री छन्द, मांस से त्रिष्टुप् छन्द, स्नायुवों से अनुष्टुप् छन्द, अस्थि से जगती छन्द, मज्जा से पंक्ति छन्द, प्राण से वृहती छन्द, ककार आदि पंचवर्गात्मक

प्राणंबु वलन बृहतीच्छंदंबुनु, ककारादि पंचवर्गात्मकंबैन स्पर्शल वलन जीवुंडुनु, अकारादि स्वरात्मकंबैन देहंबुनु, नूष्मंबुलनु शष सहादि वर्ण चतुष्टय रूपंबु लगु निंद्रियंबुलुनु, नंतस्थलगु य र ल व लनु वर्णंबुलुनु, षड्जादि सप्तस्वरूपंबु नात्मबलंबुनैन शब्द ब्रह्मंबुनु चतुर्मुखुनि लीलाविशेषंबुन नुत्पन्नं बय्यें। व्यक्ताव्यक्तंबु वैखरी प्रणवात्मकंबु नैन शब्द ब्रह्मंबु वलनं बरमात्म यव्यक्तात्मकुं डगुटं जेसि परिपूर्णुंडु, व्यक्तात्मकुं डगुटं जेसि यिंद्रादि शक्त्युपबृंहितुंडुनयि कानंबडु। पदंपडि यजुंडु भूरि वीर्यवंतुलैन ऋषि गणंबुल संतति यविस्तृतं बनि दलंचि, पूर्वतनु परिग्रहंबु चालिंचि, यनिषिद्ध कामासक्तंबैन देहांतर परिग्रहंबु चेसि, नित्यंबु प्रजासृष्टि यंदु व्यासक्तुंडैननु प्रज लभिवृद्धि नोंदक युंडुट केमि कारणं बगु नलि यच्चेरुवु नोंदि तद्वृद्धि यगु विधंबु नालोचिपुचु दैवं बिच्चट विघातुकंबु गान तदानुकूल्यं बावश्यकं बनि दानि नेंदुरु चूचुचु यथोचित कृत्यकरण दक्षुं डगुचु नुंड चतुर्मुखुनि देहंबु द्विविधं बयिन नट्टि रूप द्वय विभागंबु स्वराट्टगु स्वायंभुव मनुवु दन्महिषि यगु शतरूप यनु कन्यकयुगा मिथुनंबै जनियिंचें। अम्मिथुनंबु वलनं ब्रियव्रतोत्तानपादुलनु पुत्रद्वयंबु, नाकूति, देवहूति, प्रसूतु लनु कन्यका त्रयंबुनुं गलिगिरि।

[स्पर्शों] से जीव, (तथा) अकारादि स्वरात्मक देह, ऊष्मों से श ष स ह आदि वर्ण चतुष्टयात्मक (रूपी) इन्द्रिय, अन्तस्थ कहलानेवाले य र ल व वर्ण, षट्जादि सप्तस्वरूप तथा आत्मबलात्मक शब्द ब्रह्म [ये सब] चतुर्मुख के लीला-विशेष से उत्पन्न हुए। व्यक्त-अव्यक्त, वैखरी-प्रणवात्मक शब्द ब्रह्म से, परमात्मा के अव्यक्तात्मक होने के कारण परिपूर्ण है, व्यक्तात्मक होने के कारण इन्द्रादि शक्तियों से बृंहित (पूर्ण) होकर दिखाई पड़ता है। क्रमशः अज (ब्रह्मा) भूरि (अत्यधिक) वीर्यशाली ऋषि-गण की सन्तति को अविस्तृत (अपर्याप्त) है, ऐसा सोचकर पूर्व-शरीर के परिग्रह को छोड़कर, अनिषिद्ध-कामासक्त देहान्तर (अन्य देह) का परिग्रहण कर, नित्य (सदा) प्रजा की सृष्टि में निमग्न होने पर भी प्रजाओं की वृद्धि न होने का कारण क्या हो सकता है, ऐसा आश्चर्य कर, उसकी वृद्धि के लिए समुचित विधान (रीति) के बारे में विचार करते हुए, दैव यहाँ विघातक (बाधा पैदा करनेवाला) है, इसलिए उसकी अनुकूलता आवश्यक है, ऐसा जानकर, उसकी प्रतीक्षा करते हुए यथोचित कर्म करने में दक्ष होते रहने पर चतुर्मुख (ब्रह्मा) की देह के दो रूप (विभागों में) बँटकर, [उस रूपद्वय विभाग से] स्वराट् कहलानेवाले स्वायम्भुव मनु और उसकी महिषी (रानी) शतरूपा नामक कन्या के रूप में मिथुन (जोड़ी) के रूप में उदित हुए। उस मिथुन से प्रियव्रत, उत्तानपाद नामक दो पुत्र, आकूति, देवहूति, प्रसूति नामक तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। उनमें आकूति का रुचिर से, देवहूति का कर्दम

अंडु नाकूतिनि रुचिरुनकु देवहूति गर्दमुनकु, प्रसूतिन् दक्षुनकु निच्चें।
वीरलवलन गलुगु प्रजा संततुलचेत जगंबुलु परिपूर्णंबु लय्यें ॥ 388 ॥

अध्यायमु—१३

स्वायंभुव मनुवु प्रजावृद्धि चेयुट

कं. अनि मैत्रेयुडु सेप्पिन, विनि मनमुन हर्षं मोंदव विदुरुडु मुनिना-
थुनि जूचि पलिकें ग्रम्मर वनजोदर पादभक्ति वशमानसुडै ॥389॥

कं. घनुडु स्वयंभुवुनकु प्रिय, तनयुडु स्वायंभुवुंडु दैतेय-विभे-
दन-सेवा-चतुरुंडुनु, जनविनुतुं डादिराज-सत्तमु डौटन् ॥ 390 ॥

कं. अतनि चरित्रमु वव्या, हत सुखदमु निखिल मंगळावहमु समं
चितमुनु गावुन बुध से, वित ! ना केंरुगंग बलुकु विश्वस्तुत्या ! ॥391॥

कं. अवियुनु गाक मुकुंदुनि
पद कमल मरंद पान परवशुलै पें-
पोंदविन वारि चरित्रमु,
सदमलमति विनिन भवमु सफलमु गादे ? ॥ 392 ॥

चं. अनि विदुरुंडु वलिकन दयान्वितुडै मुनिनाथ-चंद्रु डि
ट्लनु श्रुति शास्त्र पाठ कलितात्मकुडैन नरुंडु पद्मलो-

से, प्रसूति का दक्ष से विवाह किया। इनके द्वारा [उत्पन्न] होनेवाले प्रजा-समूहों से जगत परिपूर्ण हुए। ३८८

अध्याय—१३

स्वायम्भुव मनु का प्रजा की वृद्धि करना

[कं.] ऐसा मैत्रेय के कहने पर, सुनकर, मन में हर्षित हो, विदुर ने मुनिनाथ को देखकर वनजोदर (विष्णु) के चरणों की भक्ति के वशीभूत-मन से पुनः कहा (पूछा)। ३८९ [कं.] घन (महान), स्वयम्भू (ब्रह्मा) के प्रिय पुत्र स्वायम्भू, जो दैतेय-विभेदन (विष्णु) की सेवा में चतुर है, जो जन-विनुत है, उसके आदिराजश्रेष्ठ होने के कारण, ३९० [कं.] वुधसेवित ! विश्वस्तुत्य ! उसका चरित्र अव्याहत रूप से (बिना बाधा के) सुखद है, सकल मंगलकारी है (तथा) समंचित (पूज्य) है, इसलिए मुझे समझाकर कहो, ३९१ [कं.] इसके अतिरिक्त मुकुन्द के चरण-कमलों के मकरन्द (मधु) के पान से परवश हो विकास पानेवाले के चरित्र (कथा) को निर्मलमति से सुनने से भव सफल होता है न ? ३९२ [चं.] इस प्रकार विदुर के बोलने पर, दयान्वित हो मुनिनाथ चन्द्र ने ऐसा

चन चरणारविंद युग संगमु गलिगन सज्जनुंडु नों
दिन फलमोंदु भागवत दिव्यकथा श्रवणुंडु ग्रेलिमडिन् ॥ 393 ॥

कं. अनि चॅप्पि मुनिकुलाग्रणि, दनुजारि कथा सुधाप्लुत स्वांतुंडै
तनुवुन बुलकांकुरमु, सोनयग नानंद बाष्पमुलु जडिगुरियन् ॥ 394 ॥

सी. विनिपिंप दॉणगॅ ना घनुडु स्वायंभवु डंगना युक्तुडै यब्जगर्भु
नकु म्रोक्कि विनयविनमितोत्तमांगुडै हस्तमुल् मोगिचि यिट्लनियॅ म्रीति
जीव संहतिकि राजीवसंभव ! नीव जनन रक्षण विनाशमुल करय
हेतु भूतुडवु मा कॅद्दि याचरणीयमैन कर्ममु दानि नानतिम्मु

ते. एट्टि कर्मंबु सेसिन नॅसगु नीकु,
नवहितंबैन संतोष मात्मजुंडु
बनकुनकु भक्ति बरिचर्य संलिपि कीर्ति,
नंदि नुति कॅक्कि वर्तिचु नंदु निंदु
गान नॅरिंगिपु मट्टि सत्कर्म मनघ ! ॥ 395 ॥

कं. अनि पलिकिन स्वायंभुव
मनु मृदु भाषलकु नलरि मनमुन गमला-
सनु डनुरागमु मुप्पिरि,
गोन ब्रियतमुडैन सुतुनकुनु निट्लनियॅन् ॥ 396 ॥

कहा कि श्रुति (तथा) शास्त्रों के पाठ से सुन्दर बने मन वाला नर जो पद्मलोचन वाले (विष्णु) के चरणारविन्द की संगति करनेवाला सज्जन है, उसको प्राप्त होनेवाला फल भागवत (भक्त) की दिव्य कथा के श्रवण करनेवाले को पल भर में प्राप्त होता है। ३९३ [कं.] इस प्रकार कहकर मुनिकुलाग्रणी [स्वयं] दनुजारि (विष्णु) की कथा रूपी अमृत से प्लुत (उमड़ भरे) हृदयवाला होने पर, शरीर के रोमांचित होने पर, आनन्द के आँसू की झड़ी लगने पर, ३९४ [सी.] सुनाने लगा कि वह घनात्मा स्वायम्भू [अपनी] अंगना (स्त्री) से युक्त हो, अब्जगर्भ (ब्रह्मा) को प्रणाम कर, विनय [भाव] से विनमित उत्तम अंग (सिर) वाले हो, कर बाँधकर प्रेम से इस प्रकार कहा। राजीवसम्भव ! जीवकोटि के लिए विचार करने पर तुम जन्म, रक्षण, विनाश के कारणस्वरूप हो। हमें आचरण योग्य कर्म की आज्ञा दो। [ते.] कैसे कर्म करने से तुम्हें आनन्द होगा, ऐसे (कर्म करते हुए) आत्मज (पुत्र) जनक की भक्ति के साथ परिचर्या (सेवा) कर कीर्ति पाकर, यहाँ विलसित होना चाहता है। इसलिए अनघ ! ऐसे सत्कर्म को विदित करो। ३९५ [कं.] इस प्रकार कहनेवाले स्वायम्भू मनु के मृदु भाषणों से आनन्दित हो, कमलासन ने अत्यधिक अनुराग के त्रिगुणित होने पर [अपने] प्रियतम पुत्र से ऐसा

चं. मुनुकॊनि तंड्रियाज्ञ दलमोचि निजोचित कृत्य मेमि पं-
चिन दन शक्ति चेत नॆडसेयक चेयुट पुंडरीक-लो-
चन-पदसेव सेयुट प्रजापरिपालन शालि यौटयुन्
जनकुनकुन् सुतुंडु परिचर्य लॊनर्चुट सुव्वॆ पुत्रका ! ॥ 397 ॥

व. कावुन ॥ 398 ॥

म. विवरिंपन् हरि यज्ञमूर्ति बरमुन् विष्णुन् हृषीकेशु गे
शवु बद्माक्षु गुरिंचि जन्नमुलु शश्वद्भक्ति गाविपु मा
धवु डात्मन् बरितोषमौंदु नत डुद्यत्प्रीति गैकॊन्न लो-
क वितानंबुलु तुष्टि नौंदु ननघा ! काविंपुमा यज्ञमुल् ॥ 399 ॥

चं. अकुटिल भक्ति गेशव समर्पण बुद्धि ग्रतुक्रियल् वॊन
र्पक विपरीतुलै युमुक रासुलु दंचि फलंबु नंद गा-
नक चॆडु रीति नूरक धनव्यय मौटय कानि मोक्ष दा-
यक मगुचुन्न तत्फलमु नंदरु विष्णु पराङ्मुख क्रियुल् ॥ 400 ॥

उ. कावुन यज्ञमुल् हरि विकार विदूरु गुरिंचि सेयु नी
भावमु सूनृत वृत शुभस्थिति जॆंदेडु नी कुमारुलुन्
नीवुनु नी धराभरमु नॆम्मि वहिंपुमु सज्जनावळिन्
ब्रोवुमु धर्म मार्गमुन बुत्रक ! दोषलता लवित्रका ! ॥ 401 ॥

कहा। ३९६ [चं.] पुत्र ! प्रथमतः पिता की आज्ञा को सिर [आँखों] रखकर, अपने लिए उचित जो भी हो, अपनी शक्ति की वंचना न करते हुए (यथाशक्ति) करना, पुण्डरीक-लोचन वाले (विष्णु) की चरण-सेवा करना, प्रजा के परिपालन मे योग्य होना (आदि) पिता की परिचर्या (सेवा) करना ही तो है। ३९७ [व.] इसलिए। ३९८ [म.] अनघ ! विवरण करने पर हरि, यज्ञमूर्ति, परम, विष्णु, हृषीकेश, केशव, पद्माक्ष के प्रति शाश्वत भक्ति के साथ यज्ञ करो [उससे] माधव आत्मा से (हृदय-पूर्वक रूप से) आनन्दित होगा। उसके अत्यन्त प्रीति को अपनाने (सतुष्ट होने) पर, लोक-वितान (-समूह) तृप्त होगे, [अतः] यज्ञ रचो न। ३९९ [चं.] अकुटिल (निर्मल) भक्ति के साथ केशव में समर्पित बुद्धि से यज्ञ-क्रियाएँ न रचकर, विपरीत भाव से, भूसे की राशियों को कूटकर फल (अनाज) की प्राप्ति न कर, नष्ट होने की तरह धनव्यय करने पर भी मोक्षदायक होने पर भी विष्णु से पराङ्मुख होनेवाले लोगों की क्रियाएँ (यज्ञ आदि कर्म) उस फल को नहीं देते। ४०० [उ.] पुत्र ! दोषलता के लिए लवित्र (दोष रूपी लताओं को काटने में हँसिया-सम) ! इसलिए विकारों से विदूर हरि के प्रति यज्ञ करो। सूनृत व्रत भाव से शुभ स्थिति को प्राप्त करते हुए तुम अपने पुत्रों के साथ धरा के भार का

कं. अनवुडु नतनिकि नतडि, ट्लनियें भवदीय यानति यट्ल
ट्लोनरिचेंद नाकुनु ना, तनयुलकु वसिंचि युंड दगु,नेलवेंदुन् ॥ 402 ॥

ते. अरय लेदु विधात ! यी यखिल जंतु
जातमुल कॅल्ल नाधारभूतमैन
धरणि यिप्पुडु घन जलांतनिमग्न-
मैन कतमुन जोटु लेदंटि दंड्रि ॥ 403 ॥

कं. कावुन भूम्युद्धरणमु, गाविंचु नुपाय मिपुडु गैकोनि नाकुन्
देवा ! नी वॅरिंगिपुमु, नावुडु पद्मजुडु दन मनंबुन दलचेन् ॥ 404 ॥

श्री यज्ञवराहावतार वर्णनमु

म. जल मध्यंबुन लीनमैन धरणी चक्रंबु ने नेर्पुनन्
निलुपन् वच्चुनु पूर्वमंदु जगमुल् निर्मिच् ना डादि न-
प्पुल बुट्टिंचिन मीद न व्वसुमतिन् बुट्टिंचिति म्रट्टि य-
प्पुललो ग्रुंकि रसातलांतरमुनुं बोंदेन् गदा पृथ्वियुन् ॥ 405 ॥

सी. अखिल जगत्कल्प नाटोपमुनकु बालपडिन ना चेत नॅंभंगि निपुडु
दगिलि विश्वंभरोद्धरणंबु गाविपनगु ननि सर्व भूतांतरात्मु

वहन करो। धर्ममार्ग में सज्जनावली की रक्षा करो ! ४०१ [कं.] ऐसा कहने पर, उससे उसने इस प्रकार कहा कि भवदीय (आपकी) आज्ञा के अनुसार ही करूंगा, [अस्तु] मुझे और मेरे पुत्रों के लिए निवास योग्य स्थान बताइए। ४०२ [ते.] हे विधाता ! विचार करने पर इन सकल जन्तुजाल (प्राणिकोटि) के लिए आधारभूत धरणी अत्र नहीं है। वह घन जल के अन्तर्गत डूबे रहने के कारण हे तात ! कहता हूँ कि कहीं कोई जगह नहीं है। ४०३ [कं.] देव ! इसलिए अब भूमि के उद्धार करने का कोई उपाय हो तो जानकर (सोचकर) मुझे विदित करो ! तब पद्मज (ब्रह्मा) ने अपने मन में विचार किया। ४०४

श्रीयज्ञवराहावतार का वर्णन

[म.] जल के मध्य में लीन हुए (डूबे हुए) धरणीचक्र को किस चतुराई से टिका सकते हैं; पूर्व में जगतों का निर्माण करते समय पहले अप् (जल)की सृष्टि कर, उसके बाद उस वसुमति (धरती) को पैदा किया। ऐसे जाल में डूबकर पृथ्वी रसातल को प्राप्त हुई न। ४०५ [सी.] अखिल जगतों की सृष्टि के संरम्भ मे मग्न हुए मेरे हाथों द्वारा अब किस प्रकार विश्वम्भरा (धरती) का उद्धार हो सकता है, ऐसा [विचार करते हुए] सर्वभूतों के अन्तरात्मा पुरुषोत्तम नवपुण्डरीकाक्ष (नवकमलनयन वाले)

बुरुषोत्तमुनि नव पुंडरीकाक्षु लक्ष्मीपति दन मनस्स्थतुनि जेसि
तलपोयुचुन्न वब्जजु नासिका विवरम्मुल यज्ञ वराहमूर्ति

ते. यथि नंगुष्ठ मात्र देहंबु तोड,
जननमंदि वियत्तल स्थायि यगुचु
क्षणमु लोपल भूरि गजप्रमाण
मय्यें नच्चटि जनमुल कद्भुतमुग ॥ 406 ॥

सी. अंत ब्रजासर्गमंदु नियुक्तुलैनट्टि मरीच्यादुलैन मुनुलु
मनु कुमारकुलु नम्मनु सहितंबुग यज्ञ वराहंबु नथि जूचि
यिट्टि याश्चर्य मॅट्लॅंदेनि गलदे नासा रंध्र निर्गत स्तब्ध रोम
तोकंबु मनमु विलोकिप नंगुष्ठ मात्रमै यी क्षण मात्रलोन

ते. महिम दीपिप दंति प्रमाणमुन म-
होन्नतंबैन गंड शिलोपमंबु,
नय्यें ननुचु वितर्किचि रब्जभवुडु,
हर्ष मिगुरॊत्त निट्लनि यपुडु दलचॆं ॥ 407 ॥

कं. ना मनमुन गल दुःख वि, राममु गाविचु कॊरकु राजीवाक्षुं
डी मेर यज्ञ-पोत्रि श्रीमूर्ति वहिचॆं निदि विचित्रमु दलपन् ॥ 408 ॥

व. अनि वितर्किचु समयंबुन सूकराकारुंडैन भगवंतुंडु ॥ 409 ॥

लक्ष्मीपति को अपने मन में प्रतिष्ठित कर विचार करता रहा, (तब) पद्मज (ब्रह्मा) के नासिकारन्ध्रों से यज्ञवराहमूर्ति (अपनी) इच्छा से, [ते.] अंगुष्ठमात्र देह के साथ जन्म लेकर वियत्तल (आकाश) तक बढ़कर क्षण में वहाँ के लोगों के लिए आश्चर्यजनक होते हुए, अत्यधिक रूप से गज-प्रमाणवाला (हाथी के समान) हुआ। ४०६ [सी.] तब प्रजा की सृष्टि-कार्य में नियुक्त मरीचि आदि मुनिजन, मनुपुत्र, मनु के साथ यज्ञवराह को इच्छा (कौतूहल) के साथ देखते रहे। नासिकारन्ध्र से निकल कर स्तब्धरोम (वराह) [के आकार] की कहीं सृष्टि में ऐसा आश्चर्य कहीं है ? हमारे देखते-देखते अंगुष्ठमात्र हो, क्षण भर में [ते.] महिमा को दीप्त करते हुए, गज के प्रमाण में, महोन्नत गण्डशिला के समान हुआ। ऐसा वितर्क किया। आनन्द के साथ अब्जज (ब्रह्मा) ने तब ऐसा विचार किया। ४०७ [कं.] मेरे मन के दुःख को विश्राम प्रदान करने के लिए (दुःखशमन करने के लिए) राजीवाक्ष (कमलनयन वाले) ने इस प्रकार यज्ञपोत्री (यज्ञवराह) की श्रीमूर्ति को विचित्र रीति से धारण किया। सोचने पर यह आश्चर्यप्रद है। ४०८ [व.] ऐसा वितर्क करते समय, सूकराकार वाले भगवान के, ४०९ [ते.] अनघचरित ! प्रलय जीमूत (मेघ) के संघात के समान भयानक हो, अत्यधिक गर्जन की प्रगल्भता से

ते. प्रळय जीमूत संघात भयद भूरि
गर्ज - नाटोप भिन्न दिग्घन गभीर
राव मडरिप नपुडु राजीव - भवुडु
मुनुलु नानंदमुनु बॊंदि रनघ-चरित ! ॥ 410 ॥

व. अंत माया मय वराह घर्घुरारावंबु ब्रह्मांड कोटर परिस्फोटनंबु गाविप विनि जनस्तप स्सत्यलोक निवासुलैन मुनुलु, ऋग्यजु स्साम मंत्रंबुल विनुतिंचिरि। यज्ञ वराह रूप धरुंडैन सर्वेश्वरुंडु सत्पुरुष पालन दयापरुंडु गावुन दिग्गजेंद्र लीला विलोलुंडै ॥ 411 ॥

सी. कठिन सटा च्छटोत्कट जातवात निर्धूत जीमूत संघातमुगनु
क्षुर निभ सुनिशित खुर पुटाहत चल त्फणि राज दिग्गज प्रचयमुगनु
चंड दंष्ट्रोत्थ वैश्वानरार्चिः स्त्रव द्रजत हेमाद्रि विस्रंभमुगनु
घोर गंभीर घुर्घुर भूरि निस्वन पंकिलाखल वार्धि संकुलमुग

ते. बॊरलु गॆरलु नटिंचु नंबरमु दॆरल,
रॊप्पु नुप्पर मॆगयुनु गॊप्परिंचु
मुट्टॆ बिगियिंचु मुस मुस मूरकॊनुचु,
नडरु संरक्षित - क्षोणि यज्ञ - घोणि ॥ 412 ॥

व. मरियु नय्यज्ञ-वराहंबु ॥ 413 ॥

दिशाओं के भिन्न करनेवाली घन-गम्भीर ध्वनि करने पर तब राजीव-भव (ब्रह्मा) मुनिगण आनन्दित हुए। ४१० [व.] तव मायामय वराह की घुर-घुर आरव (ध्वनि) के ब्रह्माण्ड-कोटर को ध्वनित करने पर, सुनकर, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक के निवासी मुनिजनों ने ऋक्, यजु, साम मंत्रों के द्वारा स्तुति की। यज्ञवराहरूपधारी सर्वेश्वर, सत्पुरुषों का पालन करनेवाला दयापर होने के कारण दिग्गजेन्द्रों की लीला में विलोल होते हुए, ४११ [सी.] कठिन अयाल की छटा से उत्कट रूप से जात (उत्पन्न) हुई वात (वायु) से ऊपर उड़ाए जानेवाले जीमूतों (मेघों) के संघात [उत्पन्न करने] के रूप में, छुरी के समान सुनिशित (तेज) खुर-पुट के आघात से फणिराज (शेष) और दिग्गजों को विचलित करने की रीति से चंड (भयंकर) दंष्ट्राओं से उत्थ (ऊपर उठे हुए) वैश्वानर (अग्नि) की अर्चियों (ज्वालाओं) से रजताचल तथा हेमाद्रि (मेरुपर्वत) को पिघलाने का प्रयत्न करते हुए, घोर, गम्भीर घुर-घुर की भूरि ध्वनियों से विलोडित कर, वारिधियों को कीचड़ से भरकर, [ते.] लोटते हुए, छलाँग भरते हुए (तथा) आकाश की परतों को उथल-पुथल करते हुए अत्यधिक रूप से साँस लेते हुए, थूथन कसकर, मुसमुस ध्वनि करते हुए, आघ्राण करते हुए, धरती की रक्षा करनेवाला यज्ञ-घोणि (-वराह) विलसित हुआ। ४१२ [व.] और

सी. तिविरि चतुर्दश भुवनंबुलनु दॉंतु लॉरग गॉम्मुल जिम्मु नॉवक माटु
पुत्तडि कॉंड मूपुरमनु नॉरगंट नॉरकुरा रापाडु नॉवक माटु
खुरमुल सप्त सागरमुल रॉंपिगा नुंकिचि मट्टाडु नॉवक माटु
नाभील वाल वाताहृति चे मिन्नु नॉर्वविचु वयलुगा नॉवक माटु

ते. कन्नुगॉनलनु विस्फुलिंगमुलु चॅंदर,
नुरु भयंकर गति दोचु नॉवकमाटु
परम योगींद्र जनसेव्य भव्य विभव
योग्यमै कानगा नगु नॉवकमाटु ॥ 414 ॥

व. इट्लु विहरिंपुचु प्रातर्मध्यंदिन तृतीय सवन रूपुंडैन यज्ञ वराहमूर्ति यगु सर्वेश्वरुंडु महाप्रळयंबु नंदु योगनिद्रा वशुंडै युंडु नवसरंबुन नुदकस्थंबैन भूमि रसातल गतंबैन दानि नुद्धरिंचुटकु समुद्रोदरंबु दरियं जॉच्चु वेगंबु सैरिपं जालक समुद्रं डूर्मुलनु भुजंबुलॅत्ति विशीर्ण हृदयुंडै यार्तुनि पगिदि यज्ञ वराह ! नन्नु रक्षिपु रक्षिपु मनि याक्रोशिप निशित कराळ क्षुर तीक्ष्णंबुलैन खुराग्रंबुल जलंबुलु विच्छिन्नंबुलु गाविंचि यपारंबैन रसातलंबु प्रवेशिंचि भूमि वॉडगनु नवसरंबुन ॥ 415 ॥

कं. शरनिधि लोन महोग्रा, मर कंटकुडॅदुर गांचॅ मखमय गात्रिन्
खुर विदळित कुल गोत्रिन्, धरणि कळत्रिन् गवेष धात्रिन् पोत्रिन् ॥416॥

वह यज्ञ-वराह, ४१३ [सी.] चौदह भुवनों की परम्परा (क्रम) उलट जाए, ऐसा एक बार सींगों से मारता है। कभी मेरु पर्वत को वह अपने कूबड़ (ककुद) से टकराता है। खुरों से सप्त सागरों को विलोडित कर कभी कीचड़ बना डालता है। आभील (भयंकर) पूँछ से उत्पन्न झंझा से कभी आकाश को शून्य बना डालता है। [ते.] आँख की कोरों से विस्फुलिंगों (चिनगारियों) को विखेरते हुए कभी वह भयंकर रूप से दिखाई देता है। कभी परमयोगीन्द्र जन से सेव्य हो, भव्य वैभव से योग्य रूप से वह दर्शन देता है। ४१४ [व.] इस प्रकार विहार करते हुए प्रातः, मध्याह्न, तृतीय प्रहर में सवन (सूर्य) रूप वाले, यज्ञवराहमूर्ति वाले सर्वेश्वर महाप्रलय में योगनिद्रा के वश में रहते समय, जलमग्न हो भूमि के रसातलगता होने पर उसका उद्धार करने के लिए समुद्र के उदर में प्रवेश करते समय उस वेग को सह न सक, समुद्र के [अपनी] ऊर्मि (लहर) रूपी भुजाएँ उठाकर विशीर्ण हृदय वाला हो, आर्त्त की रीति यज्ञ-वराह ! रक्षा करो ! मेरी रक्षा करो ! कहते हुए आक्रोश (विलाप) करने पर, निशित-कराल (तथा) क्षुरिका (छुरी) के समान तीक्ष्ण खुराग्रों से जलों को विच्छिन्न कर, अपार-रसातल में प्रवेश कर, भूमि को देखने के अवसर पर, ४१५ [कं.] शरनिधि (सागर) के भीतर महोग्र (अति उग्र) अमर-

व. इट्लु पॊडगनि दैत्युंडु रोष भीषणाकारुंडै ॥ 417 ॥

म. गद सारिंचि यसह्य विक्रम समग्र स्फूर्तितो व्रेयगा
नदि दप्पिंचि वराहमूर्ति निजदंष्ट्राग्राहतिन् व्रुंचॆ बॆं-
पॊदवन् ग्रोध मदातिरेक बल शौर्योदार विस्तार सं-
पद बंचास्यमु सामजेंद्रु जल मॊप्पं द्रुंचु चंदंबुनन् ॥ 418 ॥

म. दितिजाधीशुनि नी गति दुनिमि युद्वृत्तिन् ददीयांग शो-
णित पंकांकित गंड तुंडयुगुचुन् विष्णुंडु दा नॊप्पॆ वि-
स्तृत संध्यांबुद धातु चित्रित समुद्दीप्त क्षमा-भृद्गतिन्
क्षिति दंष्टाग्रमुनन् धरिंचि जलराशि बासि येतेरगन् ॥ 419 ॥

ते. बाल शीतांशु रेखा विभासमान
धवळ दंष्टाग्रमुन नुन्न धरणि यॊप्पॆ
हरिकि नित्यानपायिनियैन लक्ष्मि
नॆरय बूसिन कस्तूरि निकरमनग ॥ 420 ॥

कण्टक (राक्षस) ने अपने सम्मुख मखमय (यज्ञरूपी) शरीर वाले को, कुल-पर्वतों को (अपने) खुरों से विदलित करनेवाले को, धरणी कलत्री (धरती जिसकी पत्नी है, धरणीपति), धात्री को ढूंढ़नेवाले, पोत्री (यज्ञ-वराह) को देखा। ४१६ [व.] इस प्रकार देखकर दैत्य रोष भरे भीषण (भयंकर) आकार वाला होकर। ४१७ [म.] गदा को उठाकर, असहनीय (उग्र) विक्रम तथा समग्र शक्ति से फेंकने पर, उसे बचाकर वराहमूर्ति ने अपनी दंष्ट्राओं की उग्र आहति (आघात) से, क्रोध के मदातिरेक से, अत्यधिक बलशौर्य एवं उदारता की विस्तार सम्पदा को प्रकट करते हुए पंचास्य (सिंह) के सामजेन्द्र (गजेन्द्र) का वध करने की रीति, [राक्षस का] वध किया। ४१८ [म.] दितजाधीश (राक्षसों के राजा) का इस प्रकार संहार कर, उद्वृत्ति से, उसके अंगों के रक्त रूपी कीचड़ लगे हुए, गंड-तुंड वाले हो, विष्णु क्षिति (धरती) को दंष्ट्राग्र पर धारण कर जलराशि से बाहर निकल आते समय ऐसा सुशोभित हुआ जैसे कि सन्ध्या काल के विशाल अंबुद (मेघ) से चित्रित (प्रकाशित) धातु-युक्त क्षमाभृत (पर्वत) हो। ४१९ [ते.] बाल शीतांशु (चन्द्र) की रेखा का आभास देनेवाले धवल दंष्ट्राग्र पर स्थित धरणी ऐसी लग रही थी मानो नित्यानपायिनी (निरापद, निश्चल मोक्षदात्री) लक्ष्मी ने हरि को कस्तूरी-समूह से अलंकृत किया हो। ४२०

यज्ञ वराह मूर्तिनि ब्रह्मादुलु स्तुतिर्यिचुट

व. अनि यज्ञ पोत्रिमूर्ति जूचि कमलासन प्रमुखु लिट्लनि स्तुतिर्यिचिरि ॥421॥

सी. देव ! जितं जितं ते परमेश्वर ! जित यज्ञ भावन श्रुति शरीर
यनुचु गारण सूकराकारुडगु नीकु नतिभक्ति म्रॉक्कॅद मय्य वरद
भवदीय रोम कूपमु लंदु लीनंबु लय्युंडु नंबुधु लट्टि यध्व-
रात्मक मै तनरारु नी रूपंबु गानंग रादु दुष्कर्मपरुल

ते. कट्टि नीकु बणामंबु लाचरितु,
मखिल जगदेक कीर्ति ! दयानुवर्ति !
भव्यचारित्र ! पंकज पत्र नेत्र !
चिर शुभाकार ! यिंदिरा चित्तचोर ! ॥ 422 ॥

व. अनि वॅंडियु निट्लु स्तुतिर्यिचिरि ॥ 423 ॥

सी. त्वक्कुन नखिल वेदंबुलु रोमंबु लंदुनु बर्हिस्सु लक्षुलंदु
नाज्यंबु पादंबु लंदु जातुर्होत्र कलितंबुलगु यज्ञ कर्ममुलुनु
स्रुक्कु तुंडंबुन स्रुवमु नासिकनु निडापात्र मुदर कोटरमु नंदु
श्रवणास्य बिलमुल जमस प्राशित्रमुल् गळमुन निष्टि त्रिकंबु जिह्व

ब्रह्मादियों का यज्ञवराह-मूर्ति की स्तुति करना

[व.] ऐसे यज्ञपोत्री की मूर्ति को देख कमलासन (ब्रह्मा) प्रमुखों (आदि) ने इस प्रकार स्तुति की। ४२१ [सी.] देव ! परमेश्वर ! जितं जितं ते (विजयी हो) ! यज्ञ-भावना से विजित हो ! हे श्रुति शरीरवाले ! कहते हुए कारणस्वरूप सूकराकार को धारण करनेवाले ! तुम्हें अति भक्ति के साथ प्रणाम करते है। हे वरद ! भवदीय (आपके) रोमकूप में अंबुधि (सागर) लीन हो रहते है, ऐसा अध्वरात्मक (यज्ञस्वरूप) हो विलसित रहनेवाले तुम्हारे रूप के दर्शन दुष्कर्म करनेवालों को नहीं होते। [ते.] ऐसे तुम्हें प्रणाम करते हैं। हे अखिल जगतो के अकेले कीर्तिमान ! दयानुवर्ती ! भव्यचरित (वाले) ! पंकजपत्रनेत्रा (कमलपत्र-नयन वाले) ! चिर (शाश्वत रूप से) शुभाकारवाले ! हे इन्दिरा (रमा) के चित्तचोर ! ४२२ [व.] और (आगे) इस प्रकार स्तुति की। ४२३ [सी.] किटीश (वराहाधिपति) कहते यज्ञ-विभु की उस अवसर पर स्तुति की कि [तुम्हारे] त्वक् (चर्म) से अखिल वेद, रोमों से बर्हिस् (अग्नि या दूब) आँखों से आज्य, चरणों से चतुर्होत्र (चार होता) से कलित यज्ञकर्म, तुण्ड से स्रुक्, नासिका से स्रुव, उदर कोटर से इडापात्र, कान तथा मुख [रूपी] विवरों से चमस तथा प्राशित्र, गले से इष्टि त्रिक (तीन वेलाओं में किए जानेवाले छोटे यज्ञ), [ते.] जिह्वा से समुचित रूप से प्रवर्ग्य (एक यज्ञ), तुम्हारे चर्वण से

ते. वगु अवर्ग्यमु नग्नि होत्रमुल नीढु,
चर्वणंबुनु सश्याप सश्युलुत्त
मांग मसुवुलु चयनमुलगु गिटीश,
यनुचु नुतियिंचि रत्तरि यज्ञ - विभुनि ॥ 424 ॥

व. वेंडियु मुहुर्मुहुर्भगवदाविर्भावंबु दीक्षणी येष्टियगु नीदु दंष्ट्रलु प्रायणीयं बनु दीक्षानंतरेष्टियुनु, उदयनीयं बनु समाप्तेष्टियु, युष्मद्रेतंबु सोमंबुनु, त्वदीयावस्थानंबु प्रातस्सवनादुलुनु, नीदु त्वङ्मांसादि सप्त धातुवुलु अग्निष्टोमोक्थ्य षोडशी वाजपेयातिरात्राप्तोर्यामिबुलनु संस्था भेदंबुलुनु, द्वादशाहादि रूपंबुलै बहु योग संघात रूपंबुलगु सर्वसत्रंबुलु भवदीय शरीर संधुलु नगु। स सोमासोमंबुलगु यज्ञ क्रतुवुलु नीव। मरियु यजन बंधनंबुलचे नोप्पुचुंदुवु। अदियुनु गाक ॥ 425 ॥

कं. हव रूपिवि हव नेतवु,
हव भोक्तवु निखिल हव फलाधारुडवुन्
हव रक्षकुंड वगु नी,
कवितथमगु नुतु लोनर्तुमय्य मुकुंदा ! ॥ 426 ॥

ते. सत्त्वगुणमुन सद्भक्ति संभविंचु,
भक्ति युतमुग जित्तंबु भव्यमगुनु
हृदय पद्मंबुनं दोलि नेरुग बडिन,
यट्टि नीकु नमस्कारमय्य वरद ! ॥ 427 ॥

अग्निहोत्र, तुम्हारा उत्तमांग सथ्या-अपस्थ्या (होम से युक्त और होम से रहित यज्ञ), असु (प्राण) चयन (एक प्रकार का यज्ञ) होंगे। ४२४ [व.] और फिर बार-बार भवत् (आपका) आविर्भाव दीक्षणी नामक इष्टी होगी। तुम्हारी दंष्ट्राएँ प्रायणीय नामक दीक्षानन्तरेष्टी, उदयनीय नामक समाप्तेष्टी, युष्मत् (तुम्हारा) रेतस् सोम, त्वदीय (तुम्हारा) अवस्थान (स्थिति), प्रातः ससवनादि, तूम्हारे त्वक्-मांसादि सप्त धातुएँ, अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम नामक संस्था (यज्ञ के विधान के) भेद, द्वादश आहारादि रूपों में अनेक प्रकार के यज्ञ समूह रूप, सर्व सत्र (यज्ञ) तुम्हारे शरीर की सन्धियाँ हैं। ससोम, असोम यज्ञकर्म तुम ही हो ! और यज्ञबन्धनों से विलसित होते हो। इसके अतिरिक्त, ४२५ [कं.] हे मुकुन्द ! तुम हवन रूपी हो, हवन (यज्ञ) के नेता हो ! यज्ञभोक्ता हो ! निखिल यज्ञों के फल के आधार हो ! हवन के रक्षक हो ! तुम्हें अवितथ (सच्ची) स्तुतियाँ करते हैं। ४२६ [ते.] हे वरद ! सत्त्वगुण से सद्भक्ति उत्पन्न होती है, भक्तियुत हो चित्त भव्य होता है। [ऐसे] हृदयकमल में क्रमशः ज्ञात होनेवाले तुम्हें

म. अरविंदोदर ! तावकीन सित दंष्ट्रा ग्रावलग्न क्षमा-
धर नद्यब्धि नदाटवीयुत समस्त क्ष्मातलं बॊप्पॆ भा-
सुर कासार जलावतीर्ण मदवच्छुंडाल राड्वंत शे-
खर संसक्त विनील पंकजमु रेखं बॊल्पु दीपिंपगन् ॥ 428 ॥

व. मरियु ॥ 429 ॥

म. चतुराम्नाय - वपु - विशेषधर ! चंचत्सूकराकार ! नी
सित दंष्ट्राग्र विलग्न मैन धर राजिल्लन् गुलाद्रींद्र रा-
जत शृंगोपरि लग्न मेघमु गति जालं दगॆन् सज्जनां-
चित हृत्पल्वल कोल ! भू-रमण ! लक्ष्मीनाथ ! देवोत्तमा ! ॥ 430 ॥

सी. समधिक स्थावर जंगमात्मकमैन वसुमती चक्र मवक्र लील
नुद्धरिंपुमु करुणोपेत चित्तुंड वगुचु न स्मन्मात यय्यॆ धरणि
मात यॆॅटॅट्लनि मदि दलंचॆदवेनि जर्चिप माकु विश्वमुन कीवु
जनकुडवगुट युष्मत्पत्नि भू देवि यगुट माकुनु दल्लियय्यॆ निपुडु

ते. धरकु नीतोड गूड वंदन मॊनर्तु
मरणियंदुनु याज्ञिकुडग्नि निलुपु

नमस्कार। ४२७ [म.] हे अरविन्दोदर [वाले] (विष्णु) ! तावकीन (तुम्हारी) दंष्ट्राओं के अग्रभाग पर लगी क्षमाधर (पर्वत), नदी, अब्धि (सागर), अटवी (जंगल) से युक्त समस्त क्ष्मातल (भूतल) ऐसा सुशोभित है, [मानो] भासुर (अतिसुन्दर) कासार (सरोवर) के जल में अवतीर्ण मदवत्-शुंडाल-राज (मस्त गजराज) के दाँतों के छोर पर संसक्त (फँसा) विनील पकज हो (समान सुंदरता से दीप्त हो रहा है)। ४२८ [व.] और, ४२९ [म.] हे सज्जनों के हृदय रूपी पल्वल (छोटे तालाब) में विराजित कोल (सूकर) ! हे भूरमण ! हे लक्ष्मीनाथ ! हे देवोत्तम ! चार वेदों को विशेष वपु (शरीर) के रूप में धारण करनेवाले ! प्रकाशमान सूकर आकार वाले ! तुम्हारी श्वेत दंष्ट्राओं के अग्र पर लगकर विराजित धरा, कुल-पर्वत श्रेष्ठ के सुंदर शिखर के ऊपर लगे हुए मेघ की रीति वहुत सुशोभित है। ४३० [सी.] समधिक रूप से स्थावर-जंगम से युक्त वसुमतीचक्र को करुणामय चित्तवाले हो, अवक्र लीला से उद्धार करो। धरणी मेरी माता हुई ? [वह] किस प्रकार माता हुई है, यदि ऐसा तुम सोचते हो। [तो सुनो] चर्चा करने पर (विचार करने पर) हमारे लिए और विश्व के लिए तुम जनक हो, और तुम्हारी पत्नी होने के कारण भूदेवी हमारी माता हुई है। [ते.] अब धरा को तुम्हारे साथ वन्दना करते हैं। याज्ञिक जिस प्रकार अरणि में अग्नि को स्थापित करता है, उसी प्रकार धरा-रमणी में अपने तेज की स्थापना करने से [वह] धरणी

करणि मी तेज मी धराकांत यंदु,
निलुप धरणि पवित्रयै नॅगडु गान ॥ 431 ॥

चं. तलप रसातलांतर-गत क्षिति ग्रम्मर निल्पिनट्टि नी-
कलितन मॊप्प विस्मयमु गाडु समस्तजगत्तु लोलिमै
गलुगग जेयुट-द्भुतमु गाक महोन्नति नी वॊनर्चु पॆं-
पलरिन कार्यमुल् नडुप नन्युलकुं दरमे रमेश्वरा ! ॥ 432 ॥

चं. सकल जगन्नियामक विचक्षण लील दनर्चु नट्टि नं-
दक धर ! तावक स्फुर दुदारत मंत्र समर्थुडन या-
ज्ञिकु डरणिन् हुताशनुनि निल्पिन कैवडि मन्निवास मॊ-
टकु दलपोसि यी क्षिति दृढंबुग निल्पितिवय्य यीश्वरा ! ॥ 433 ॥

चं. सललित वेद शास्त्र मय सौकरमूर्ति दनर्चुचुन् रसा-
तलमुन नुंडि वॆल्वडु नुदारत मेनु विदुर्प दत्सटो-
च्चलित शिवांबु बिंदुवुल साधु तपोजन सत्यलोक वा-
सुल मगु मेमु दोगि परिशुद्धि वहिंचिति मय्य माधवा ! ॥ 434 ॥

उ. विश्वभव स्थिति प्रळय वेळल यंदु विकार सत्त्वमुन्
विश्वमु नीव यी निखिल विश्वमु लोलि सृजितु विदिरा-

पवित्र हो विलसित होगी। ४३१ [चं.] रमेश्वर ! विचार करने पर रसातल के अन्तर्गत क्षिति (धरा) को फिर से [लाकर] स्थापित करने वाली तुम्हारी चतुराई बड़ी विस्मयकारक है ही, समस्त जगतों को क्रमशः उत्पन्न करना और भी अद्भुत है। महोन्नति से तुमसे होनेवाले कार्यों को [उस प्रकार] चलाना क्या अन्यों के वश की बात है ? (नहीं)। ४३२ [चं.] हे नन्दक-धर (विष्णु के खड्ग का नाम नन्दक है) ! ईश्वर ! सकल जगत के नियामन के विचक्षण की लीला में विलसित होने में प्रकट तुम्हारी उदारता, मंत्र में समर्थ याज्ञिक के अरणि में हुताशन (अग्नि) की स्थापना करने की रीति हम लोगों के निवास [स्थान] होना जानकर, इस धरती को दृढ़तर रीति से टिकाये रखो। ४३३ [चं.] माधव ! सललित वेदशास्त्रमय सूकरमूर्ति के रूप मे सुशोभित होते हुए रसातल से निकल कर, उदारता से, अपने शरीर को विदलित करने पर (हिलाने पर), उन रोमों से बिखरे हुए शिवांबु-बिंदुओं (शुभ जलकणों) में ऊभचूभ होकर, साधुजन, तपोजन, और सत्यलोकवासी हमलोग परिशुद्ध हुए। ४३४ [उ.] हे इन्दिराधीश्वर ! ईश ! केशव ! त्रयीमय ! दिव्य शरीर वाले ! देव ! विश्व की भव (उत्पत्ति), स्थिति, प्रलय की वेलाओं में विकार (परिवर्तनशील) सत्त्व, और विश्व तुम हो। इस निखिल विश्व का क्रम से सृजन करते हो। तुम्हारी शाश्वत लीलाएँ ऐसी है, कहते हुए स्तुति

धीश्वर ! यीश ! केशव ! त्रयीमय ! दिव्य शरीर ! देव ! ना-
शाश्वत लील लिट्टि वनि सन्नुति सेयग माकु शक्यमे ? ॥ 435 ॥

सी. पंकजोदर ! नी वपार कर्मुडवु भवदीय कर्माब्धि पारमॆय्द
नॆंत्रिगॊंद ननि मदि निच्छयिंचिन वाडु परिकिंपगा मतिभ्रष्टु गाक
विज्ञानिये चूड विश्वंबु नी योग माया पयोनिधि मग्नमौट
दॆलिसियु दम बुद्धि दॆलियनि मूढुल नेमन नखिल लोकेश्वरेश !

ते. दास जनकोटि कतिसौख्य दायकमुलु,
वितत करुणा सुधा तरंगितमुलैन
नी कटाक्षेक्षणमुलचे नॆंड्रय मम्मु,
जूचि सुखुलनु जेयवे सुभग चरित ! ॥ 436 ॥

कं. अनि ब्रह्मवादु लगु स,
न्मुनि वर्युलु भक्ति योगमुन विनमितुलै
मनमुन मोदमु मुप्पिरि,
गॊन बॊगडिरि खुरविदळित गोत्रिन् वोत्रिन् ॥ 437 ॥

उ. अंतट लीलवोल जगदात्मुडु यज्ञ वराहमूर्ति य-
त्यंत गभीर भीषण महार्णवतोय समूहमुन् खुरा-
क्रांतमु जेसि क्रम्मर धरातल मंबुल मीद निलिप वि-
श्रांति वहिंप जेसि गुणशालि तिरोहितुडय्यॆ नय्यॆडन् ॥ 438 ॥

उ. मंगळमैन यी कथ समंचित भक्ति वठिंप विन्न वा-
रिं गरुणार्द्र दृष्टि गनि श्रीहरि चाल प्रसन्नुडौनु स-

करना हमारे वश की बात कहाँ है ? ४३५ [सी.] हे पंकजोदर (विष्णु) ! तुम अपार कर्म वाले हो, तुम्हारे कर्मसागर का पार जानने को मन में इच्छा रखनेवाला, परखने पर, मतिभ्रष्ट ही होगा, विज्ञानी नहीं होगा। विश्व तुम्हारी योगमाया के सागर में मग्न है, यह जानकर भी अपनी बुद्धि से न जाननेवाले मूढ़ों के बारे में क्या कहूँ ? हे अखिल लोकेश्वर ! सुभग चरित वाले ! [ते.] दासजन-कोटि के लिए अति सुखदायक, वितत-करुणामृत तरंगों से प्रसारित होनेवाले अपने कटाक्ष-ईक्षणों से पूर्णरूप से हमें देखकर, सुखी बनाओ न। ४३६ [कं.] गोत्रों (कुलपर्वतों) को अपने खुरों से विदलित करनेवाले पोत्री (सूकर) की, ब्रह्मवादी सन्मुनिवर ने भक्तियोग के साथ विनमित हो, मन में अधिक आनन्दित होते हुए, स्तुति की। ४३७ [उ.] तब लीला से जगदात्मा यज्ञ-वराह-मूर्ति ने अत्यन्त गम्भीर तथा भीषण महार्णवतोय (महासमुद्र-जल) समूह को खुर के नीचे रखकर, फिर से धरातल को जलपर स्थापित कर, आराम से टिकाकर, [वह] गुणशाली [विष्णु] उस अवसर पर तिरोहित हुआ। ४३८

त्संगतुडैन विष्णुडु प्रसन्नुडु दा नगु नेमि वारिकिन्
मंगळमुल् लभिंचु ननुमानमु ले ददि गाक वेंडियुन् ॥ 439 ॥

चं. हरि निज दासकोटिकि गुहाशयुडै रमियिंचु नट्टि स-
त्पुरुषुल किष्टवस्तु परिपूर्ण मनोरथ सिद्धि गल्गु, सु-
स्थिरमगु चुन्न मोक्ष मरचेतिदियै चॅलुवारु नन्न न-
स्थिरतर तुच्छ सौख्यमुलु सेकुरुटल् मरि चॅप्प नेटिकिन् ॥ 440 ॥

उ. कान सरोजलोचनु जगत् स्तवनीय कथा सुधा रसं
बानिन यट्टि जिह्व यसदन्य कथा लवणोदकंबुलन्
बानमु सेय जूचुनॆ सुपर्व महीज मरंद पान ला-
भानुभवंबु नॊंदु मधुपंबुनु बोवुनॆ वेप चॅट्लकुन् ॥ 441 ॥

कं. अनि मैत्रेय मुनींद्रुं
डनघुडु विदुरुनकु जॅप्पि नट्टि तॆरंग-
र्जुन पौत्रुनकुन् व्यासुनि
तनयुडु विनिपिंचि मरियु दग निट्लनियॆन् ॥ 442 ॥

[उ.] मंगलकर इस कथा को अत्यन्त भक्ति से पढ़ने पर, सुननेवालों पर श्रीहरि अपनी करुणार्द्र दृष्टि बरतकर प्रसन्न होगा। सत्संगति करने वाले पर विष्णु प्रसन्न होता है। विष्णु प्रसन्न होगा तो निस्सन्देह रूप से उन्हें शुभ होगा। इसके अतिरिक्त, और, ४३९ [चं.] हरि अपनी दासकोटि में उनके आशयों के अनुरूप रमण करेगा। ऐसे सत्पुरुषों के लिए इष्ट वस्तुओं की (तथा) परिपूर्ण मनोरथों की सिद्धि होगी। सुस्थिर रूप से मोक्ष हथेली में विराजमान रहेगा। ऐसा कहें तो अस्थिर-तर (चंचलतर) तुच्छ सौख्यों के बारे में कहने की आवश्यकता ही क्या है? ४४० [उ.] इसलिए सरोजलोचन (विष्णु) के जगत-स्तवनीय कथा-सुधा का पान कर चुकी हुई जिह्वा असत् अन्य कथा [रूपी] लवणोदक को पीना क्यों चाहेगी? सुपर्व-महीज (कल्पवृक्ष) के मकरन्दपान के लाभ के अनुभव को प्राप्त करनेवाला मधुप नीम के वृक्षों के पास [कड़वा रस पीने] क्यों जायेगा? ४४१ [कं.] इस प्रकार मैत्रेय मुनीन्द्र के अनघ विदुर से कही गयी रीति को अर्जुन के पौत्र को व्यास के पुत्र ने सुनाया। और समुचित रीति से इसप्रकार कहा। ४४२

अध्यायमु —१४

कं. अनि चॅप्पिन विनि मैत्रे-
युनि गनि विदुरुंडु वल्कु नुत्तममगु ना
दनुज कुलांतकु चरितमु,
विनि तनियदु ना मनंबु विमल - चरित्रा ! ॥ 443 ॥

चं. सवन वराहमूर्ति कथ सर्वमु नी दय विटि वॅंडियुन्
विवरमुगा विनं वलुकवे गुणसांद्र ! मुनींद्र - चंद्र ! मा-
धव गुण कीर्तनामृत वितानमु कर्णपुटांजलिन् वॅसन्
जविगॊन केल मानु जन संततिकिन् भवताप वेदनल् ॥ 444 ॥

व. कावुन ॥ 445 ॥

सी. श्री हरि यज्ञ वराह रूपमु दाल्चि सिचि हिरण्याक्षु द्रुंचॅ ननुचु
नप्पुडु मुनिनाथ ! चॅप्पिति ना तोड नव्वराहंबु दंष्ट्राग्रमुननु
धरणि नॅव्भंगिनि धरियिंचॅ हरिकि हिरण्याक्षु तोड वैरमुन केमि
कारण मसुर ने गति संहरिंचॅ दा नितयु नॅरिंगिपु मिद्ध-चरित !

ते. अनिन मैत्रेय मुनि विदुरुनकु ननियॆ,
हरिकथाकर्णनमुन वॅंपारु नीकु

अध्याय—१४

[कं.] ऐसा कहने पर सुनकर मैत्रेय को देखकर विदुर ने कहा कि हे विमल-चरितवाले ! उस दनुज-कुलान्तक (राक्षसान्तक, विष्णु) के चरित को सुनकर मेरा मन अघाता नहीं। ४४३ [चं.] सवन (यज्ञ) वराहमूर्ति की समस्त कथा को तुम्हारी दया से सुन लिया, और विवरण के साथ सुनाओ न। (क्योंकि) हे गुणसान्द्र ! मुनीन्द्रचन्द्र ! माधव के गुण कीर्तन रूपी अमृत-समूह को कर्णपुट रूपी अंजलि से झट पिये बिना जन सन्तति के भवताप की वेदनाएँ कैसे मिटेंगी ! ४४४ [व.] इसलिए। ४४५ [सी.] हे मुनिनाथ ! तब मुझसे कहा था कि श्रीहरि के यज्ञ-वराह के रूप के धारण कर अतिशय रूप से हिरण्याक्ष का वध किया। हे इद्ध चरित वाले ! उस वराह ने [अपने] दंष्ट्राग्र पर धरणी को किस प्रकार धारण किया, हरि को हिरण्याक्ष के साथ शत्रुता रखने का क्या कारण है, [तथा] असुर का संहार कैसे किया [आदि] समस्त (कथा) को विदित करो ! [ते.] [ऐसा] कहने पर मैत्रेय मुनि ने विदुर से कहा कि हरि-कथा के आकर्णन से विकास को पानेवाले तुम्हें [अपने] जन्म के फल की सिद्धि (प्राप्ति) होने में संदेह नहीं है। हरि की माया जानना कहीं विधि

जन्म फल सिद्धि यगुटकु संदियंबु
वलदु हरिमाय विधि कैन वशमॆंतॆं लिय ॥ 446 ॥

कं. अनघात्म ! नन्नु नी वडि
गिन कथ ध्रुवुडु विष्णु कीर्तन परतन्
बनरिन नारदु नडुग न
तनि कत ॆंडिंगिप हरि कथा श्रवणमुनन् ॥ 447 ॥

ते. दंडधरु बॆंल्च डाकाल दन्नि ध्रुवुडु,
निंदु नंदुनु वासिकि नॆंक्कॆं नट्टि
विष्णु संकीर्तनं बरविंद भवुडु,
दिविजुलकु जॆंप्पॆं नदि नीकु देट पडुतु ॥ 448 ॥

व. आकर्णिपुमु ॥ 449 ॥

मैत्रेयुडु विदुरुनकु हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुल जननमुनकु गारणंबैन वृत्तांतं बॆंडिंगिचुट

सी. बलिसि दक्षप्रजापति-तनूभव दिति संतान वांछ चित्तमुन बॊडम
नॊकनाडु पुष्पसायक शर निर्भिन्न भावयै विरहतापमुन वच्चि
पति समागम वांछ प्रभविप निजनाथु सन्निधि निलिचि यस्खलित नियति
नग्नि जिह्वुंडुनु यजुरधीशुंडुनु नगु विष्णु, दन चित्तमंदु निलिपि

(ब्रह्मा) के बस की बात है ? ४४६ [कं.] अनघात्म ! तुमने मुझसे इस कथा के बारे में पूछा। इसे ध्रुव ने विष्णु-कीर्तन में निमग्न हो विलसित नारद से पूछा, उसने (नारद ने) उसे (ध्रुव को) विदित किया था। हरि-कथा के श्रवण के कारण ही, ४४७ [ते.] दण्डधर (यमराज) को सरलता से, बाएँ पैर से लात मारकर, ध्रुव यहाँ-वहाँ (इह-परलोक में) प्रसिद्ध हुआ। ऐसे [महिमामयी] विष्णु के संकीर्तन के बारे में अरविन्दभव (ब्रह्मा) ने दिविजों (देवताओं) को बताया। उसे तुम्हें स्पष्ट करूँगा। ४४८ [व.] ध्यान से सुनो ! ४४९

मैत्रेय का विदुर से हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु के जन्म के कारणभूत वृत्तान्त को विदित करना

[सी.] दक्षप्रजापति की तनूभवा (पुत्री) दिति बलिष्ठ हो (मदवती हो) सन्तान की इच्छा मन में उत्पन्न होने पर, एक दिन पुष्पसायक (पुष्पबाण वाला मन्मथ) के शर से बेधित भाववाली हो, विरहताप में आकर, पति के समागम (संभोग) की वाञ्छा (इच्छा) के उत्पन्न होने पर, अपने पति की सन्निधि में आ खड़ी हुई। अस्खलित नियति से अग्नि-जिह्वा वाले (एवं) यज्ञ के अधीश्वर विष्णु को अपने चित्त

ते. तग वयस्सुन नग्निहोत्रंबु चेसि,
कमल हितु डस्तशैल संगतुडु गाग
होम शालांगणमुन गूर्चुन्न विभुनि
गश्यपुनि गांचि विनय वाक्यमुल ननियॆ ॥ 450 ॥

चं. गजविभु डुद्धतिन्ननटिकंबमुल न्विदळिंचु लील जि-
त्तजुडु प्रसूनसायक वितानमुचेत मदीय चित्तमुन्
गजिबिजि चेसि पॆन् वगल गाङ्रिय वॆंट्टग नाथ ! नी पदां
बुजमुल गान वच्चिति प्रभुत्व मॆलर्पग नन्नु गाववे ! ॥ 451 ॥

व. अदियुनुं गाक ना तोडि सवतुलॆल्लनु भवत्कृपा विशेषंबुन गर्भाधानंबुलु वडसि निर्भरानंदंबुन नुंडं जूचि शोक व्याकुलित चित्तनै युन्न नन्नु रक्षिचुट परम धर्मंबु। नीवु विद्वांसुंडवु। नी यॆरुंगनि यर्थंबु गलदॆ? नी वंटि सत्पुरुषु लार्तुलैन वारि कोर्कुलु व्यर्थंबुलु गाकुंड दीर्चुट धर्मंबनि वॆंडियु निट्लनियॆ ! ॥ 452 ॥

कं. पतिसन्मानमु वडसिन, सतुलकु नभिमत फलार्थ संसिद्धियु न
ञ्जितयशमु गलिगि लोक, स्तुतमै चॆलुवारुचुंडु जुव्वॆ महात्मा ! ॥ 453 ॥

कं. तन धर्मपत्निवलननु, मुनुकॊनि ता बुत्र रूपमुन नुदयिंचुन्
विनु दीपमुचे दीपि, चिन दीपमु रॆंडु गादॆ ? शिखि यॊकटय्युन् ॥ 454 ॥

में प्रतिष्ठित कर, [ते.] समुचित रूप से पयस् (दूध) में अग्निहोत्र कर, कमल-हित (सूर्य) के अस्तशैल की संगति करने पर (सूर्यास्त होने पर) होमशाला के आँगन में बैठे हुए विभु (पति) कश्यप को देख विनयपूर्ण वाक्यों से [इस प्रकार] कहा। ४५० [चं.] गजेन्द्र के कदली-स्तम्भों को विदलित करने की रीति चित्तज (मन्मथ) के (अपने) पुष्पशरजाल से मेरे चित्त को व्याकुल कर अधिक वेदना से तड़पा देने पर नाथ ! तुम्हारे पदाम्बुज देखने (शरण में) आ गई (अपनी) प्रभुता (शक्ति) को प्रकट करते हुए मेरी रक्षा करो न। ४५१ [व.] इसके अतिरिक्त मेरे साथ की सवतियों (सौतियों) के आपकी कृपा की विशिष्टता से गर्भधारण कर, अत्यंत आनन्द के साथ रहते देख, शोक से व्याकुलचित्त होकर रहनेवाली मेरी रक्षा करना [आपके लिए] परमधर्म है। तुम विद्वान् हो। तुम्हारे लिए अविदित कोई अर्थ (भाव) है क्या ? तुम्हारे समान सत्पुरुषों के लिए आर्तों की कामनाओं को व्यर्थ ना होने देकर पूर्ण करना धर्म है, ऐसा कहा, और (आगे) इस प्रकार कहा। ४५२ [कं.] हे महात्मा ! पति का सम्मान (आदर) पानेवाली सतियाँ अभिमत (इष्ट)-फल की संसिद्धि (तथा) यश सम्पादित कर, लोकस्तुत्य हो सुशोभित होती हैं न ? ४५३ [कं.] अपनी धर्मपत्नी से उद्यत हो वह (स्वयं) पुत्ररूप

कं. कावुन नी यर्थम या, त्मावै पुत्र यनि वेद ततुलं दोलिन्
वाविरि वलुकम विनवे! धीवर ! ननु गावु मधिकदीनं गरुणन् ॥ 455 ॥

चं. वर करुणामतिन् दुहितृ वत्सलतं दनरारु नट्टिट म-
द्गुरु डॊकनाडु मम्मु दन कूतुल नंदऱ बिल्चि मी मनो
हरु नॆऱिगिंपु डित्तु गमलाननलार ! यटन्न नंदुलो
वरुषवरेण्य !, येमु पदुमुव्वुर मर्मिलि निन् वरिंपमे ॥ 456 ॥

कं. दिति यी गति गाम विमो
हितमति बहु वचनमुल हृदीशुनि बलुकन्
धृति गृपण बतिव्रत निज
सति गनि कश्यपुडु पलिकॆ सल्लापमुनन् ॥ 457 ॥

व. नीवु सॆप्पिन यट्ल पुरुषुलकु नंगनल वलन धर्मार्थ कामंबुलु सिद्धिंचु।
कर्णधारुंडु नावचेतं बयोधि गडुचु चंदंबुन गृहमेधि सर्वाश्रम वासुल नरसि
रक्षिपुचु निजाश्रमंबुन व्यसनार्णवंबु दरियिंचु। भार्य पुरुषुनंदु नर्धंबु।
भार्ययंदु सकल गृहकार्य भारंबुनु जेचि पुरुषुंडु निश्चितुंडै सुखियिंपुचुंडु।
मऱियु नितराश्रम दुर्जयंबुलैन यिंद्रिय शत्रुवर्गंबुल भार्या समेतुंडैन
गृहस्थुंडु दुर्गाधिपतियैन राजु शत्रु संघंबुल जयिंचु चंदंबुन लीला मात्रंबुनं

में उदित होता है। सुनो! शिखा (लौ) के एक होने पर भी, [एक] दीप से दीप्त होनेवाला दीप दो नहीं बन जाते क्या (एक होते हुए भी दो हैं।)? ४५४ [कं.] धीवर! (बुद्धिशाली) 'आत्मा वै पुत्रः' इस तात्पर्य को वेदतति के बार-बार घोषित करते हैं, सुना है न! (अस्तु) मुझ अधिक दीना की करुणा से रक्षा करो। ४५५ [चं.] हे पुरुषवरेण्य! अत्यधिक करुणामती से, पुत्रियों के प्रति वत्सलता (वात्सल्य) से विलसित होनेवाले मेरे गुरु (पिता) ने एक दिन हमको [अर्थात्] अपनी सब बेटियों को बुलाकर, हे कमलमुखवालियो! अपने मनोहर को विदित करो, उसे दूँगा (उससे तुम्हारा विवाह कर दूँगा)। ऐसा पूछने पर उनमें हम तेरह लोगों ने इच्छा के साथ तुम्हारा वरण किया था। ४५६ [कं.] दिति के इस गति (प्रकार) काम-विमोहित मति वाली हो, हृदयेश से अनेक वचन कहने पर धृतिवाली, कृपणा (दीना) पतिव्रता, अपनी पत्नी को देख कश्यप ने [सरस] सल्लाप करते हुए कहा। ४५७ [व.] तुम्हारे कथन के अनुसार पुरुषों को अंगनाओं से धर्मार्थ काम की सिद्धि होती है। कर्णधार (नाविक) के नाव के द्वारा पयोधि (सागर) को पार करने की रीति, गृहमेधी (गृहस्थ) सब आश्रमवासियों का [कुशल] विचार करते हुए, रक्षा करते हुए, अपने आश्रम में व्यसन (वासना)-सागर को पार करता है। पत्नी पुरुष में अर्द्ध [भाग] है। पत्नी को सकल गृहकार्य का भार

जयिंचु। इट्टि कळत्रंबुनकुं ब्रत्युपकारंबु सेय सकल गुणाभिरामुलगु सत्पुरुषुलु नूरेंड्लकुनु जन्मांतरंबुलकु नेन समर्थुलुगा रनिन ममु बोटि वारलु सेय नोपुदुरे? अयिन नी मनंबुनं गल दुःखंबु वक्कु मनि यिटलनियें ॥ 458 ॥

ते. तरळलोचन! नीवु संतान-
वांछ जेसि वच्चिति वौ गुणशील वर्त
नमुलु गल भार्य मनमुन नमरु कोर्कि,
दविलि तीर्चुट पतिकि गर्तव्यमरय ॥ 459 ॥

म. तरुणी! यॊक्क मुहूर्त मुंडु मिदि संध्याकाल मिक्कालमं-
दरयन् भूतगणावृतुंडगुचु गामाराति लीलन् वृषे-
श्वरयानंबुन संचरिंचुट नभाव्यं बय्यॆ नी युग्रवे-
ळ रमिपंग निषिद्ध कर्ममगु नेला? धर्ममुन् वीडगन् ॥ 460 ॥

म. अरविंदानन! वीडॆ नी मरदि लीलाटोप रुद्रक्षमा
चर झंझानिल धूत पांसु पटलच्छन्नुंडु धूम्रैक दु-
र्भर विद्योतित कीर्ण भीषण जटा वद्धुंडु भस्मावलि-
प्त रुचिस्फार सुवर्ण वर्णु डगुचुन् भासिल्लु नत्युग्रुडै ॥ 461 ॥

सौंपकर पुरुष निश्चिन्त हो सुखी होता है। और अन्य आश्रमवासियों के लिए दुर्जेय बने हुए इन्द्रिय रूपी शत्रुवर्ग को भार्यासहित हो, गृहस्थ दुर्गाधिपति राजा के अपने शत्रुसंघ को जीतने की रीति, लीलामात्र (सरलता) से जीत लेता है। ऐसी कलत्र (पत्नी) का प्रत्युपकार करने में सकल गुणों से अभिराम (सम्पन्न) होकर सत्पुरुष सौ वर्षों में (या) जन्मान्तरों में भी समर्थ नही होते, तब हम-जैसे लोग कहाँ कर पाते हैं? इसलिए तुम अपने मन में दुःख मत करो! कहते हुए (आगे) इस प्रकार कहा। ४५८ [ते.] हे तरल लोचने (चंचल नयनवाली)! तुम सन्तान की इच्छा से तो आई हो! विचार करने पर गुणशीलावर्तन वाली, पत्नी के मन में उत्पन्न कामना को लगन के साथ पूर्ण करना पति का कर्तव्य है। ४५९ [म.] तरुणी! एक मुहूर्त के लिए रुक जाओ! यह सन्ध्याकाल है। विचार करने पर इस काल में भूतगणों से परिवेष्टित हो, कामाराति (शिव) लीला के लिए वृषेश्वर (वृषभ)-वाहन पर संचार करता है। ऐसी उग्रवेला में रमण करना अभाव्य (अनुचित) तथा निषिद्ध कर्म होगा, अस्तु, धर्म को क्यों छोड़े? ४६० [म.] हे अरविन्दानने! यह तेरा देवर है। लीला के आडम्बर में रुद्रक्षमा (श्मशान) में विचरनेवाला है, झंझानिल से उछाले गए धूल-समूह से आच्छादित है, केवल धुएँ के रंग की दुर्भर, विद्योत (विकृत रूप से प्रकाशित), कीर्ण (बिखरे), भीषण जटा-जूट वाला है, भस्म से

कं. अनल सुधाकर रवि लो, चनमुलु विकसिंप जेसि समधिक रोषं
बुन जूचुचुन्न वाडवे, वनिता ! बंधुत्व मरय वलवदे सुम्मी ! ॥ 462 ॥

कं. अतनिकि दलपोय हिता, हितुलुलु सन्मान्युलुनु विहीनुलु नतिग-
र्हितुलुनु ले रीशुडु सम, मतियुनु निखिलैक भूतमयुडै युंडन् ॥ 463 ॥

कं. कावुन मद्भ्रात भव, द्देवरु डनि तरणि ! नी मदि जडकु मा
देवादिदेवु द्रिजग, त्पावनु निखिलैक नेत भगवंतु हरुन् ॥ 464 ॥

व. एमुनु सत्पुरुषुलैन विज्ञानवंतुलुनु भुक्तभोगंबै दूरतोन्यस्तमैन पुष्पमालि-
कयुनं बोलें नम्महात्मुनि चरणारविंद जनितयैन यविद्य ननुसरिंचि
वर्तितुंमु। अवियुनं गाक ॥ 465 ॥

सी. एव्वनि करुण ब्रह्मेंद्रादि दिक्पालवरु लात्मपद वैभवमुल दनरि
रेव्वनि याज्ञ वहिंचि वर्तिचुनु विश्वनेत्र यगु नविद्य येपुडु
नेव्वनि महिमंबु लिट्टि वट्टिवि यनि तर्किपलेवु वेदंबु लेन
नेव्वनि सेवितु रेल्लवारुनु समानाधिक रहितुडै यलरु नेव्व

ते. डट्टि देवुनि द्रिपुर संहार करुनि, नस्थिमालाधरुंडु भिक्षाशनुंडु
भूतिलिप्तांगुडुग्र परत भूमि, वासुडनि यपहसिचेडि वारु मरियु ॥ 466 ॥

अवलिप्त होकर [भी], रुचि-स्फार (कान्ति को फैलानेवाले) सुवर्ण-वर्ण वाला है। [ऐसा होकर] अति उग्ररूप में विभासित हो रहा है। ४६१ [कं.] वनिते ! अनल, सुधाकर, रवि [रूपी तीनों] आँखों को विकसित (फैला) कर, समधिक रोष से देख रहा है, [वह] बन्धुत्व का विचार (खयाल) नहीं करता है ! ४६२ [कं.] विचार करने पर, उसके लिए हितैषी-अहितैषी, सम्मान्य और विहीन, अतिगर्हित (कोई) भी नही है। वह ईश, सममती वाला, निखिल भूतों में एक मात्र हो विलसित होता है। ४६३ [कं.] इसलिए तरुणी ! वह देवाधिदेव तीन जगतों को पावन करनेवाला, निखिल का एक मात्र नेता, भगवान हर मेरा भाई (और) अपना देवर (मात्र) है, ऐसा मत सोचो। ४६४ [व.] हम (और) विज्ञानमान सत्पुरुष लोग अनुभुक्त हो, दूर रखी हुई पुष्पमालिका की भाँति उस महात्मा के चरण-कमलों से उत्पन्न अविद्या का अनुसरण करके व्यवहार करते (चलते) हैं। इसके अतिरिक्त, ४६५ [सी.] जिसकी करुणा से ब्रह्मेन्द्रादि दिक्पालवर आत्मपद (अपने पद) के वैभव को प्राप्त हुए, जिसकी आज्ञा से बद्ध हो, विश्वनेत्री अविद्या सदा चलती है, जिसकी महिमाएँ ऐसी है, वैसी हैं (आदि) कहते हुए तर्क करने में वेद असमर्थ होते है, सब लोक जिसकी सेवा करते है, जो समान-अधिक [भाव से रहित हो] विलसित होता है, [ते.] ऐसे देव का, त्रिपुर-संहार करनेवाले का अस्थिमालाधारी, भिक्षा का भोजन करनेवाला, विभूति से लिप्त

कं. धर शुनक भोग्यमुनु निह, पर दूरमु नैन तनु वुपादेयमुगा
नॆंड्रि नम्मि वस्त्र माल्या, भरणंबु ललंकरिंचु पामर जनुलुन् ॥ 467 ॥

कं. घन निर्भाग्युलुगा मदि
गनु मनि यी रीति प्रियकु गश्यपु डॆंड्रिंगि
चिन दिति ग्रम्मड्रन् वलिकॆनु
मनसिजसायक विभिन्न मानस यगुचुन् ॥ 468 ॥

कं. मुनुकॊनि लज्जावनत व
दनयै प्राणेशु कॊंगु दालिमि दूलं
बॆनगॊनियै वारकामिनि
यनुवुन विनिषिद्धि कर्ममं दभिमुखियै ॥ 469 ॥

व. इट्लु चेसिन भार्या निर्बंधंबुनकुं दॊलंगनेरक यीश्वरुनकु नमस्कारंबु गाविंचि, येकांतंबुन निजकांता संगमंबु दॊंचि, संगमानंतरंबुन वार्चि, स्नातुंडै प्राणायामंबु चेसि, विरजंबु सनातनंबुनैन ब्रह्म गायत्रि जपियिंचॆ नंत ॥ 470 ॥

कं. दितियुनु निषिद्ध कर्म-
स्थितिकै मदिलोन सिग्गु बिट्टाडग ना
नतवदन यगुचु ना पशु-
पतिवलनि भयंबु गलिग परमप्रीतिन् ॥ 471 ॥

अंगवाला, उग्र परेत-भूमि (श्मशान) का वासी (आदि) कहते हुए उपहास करनेवालों को और, ४६६ [कं.] धरती पर कुत्तों के खाने योग्य तथा इहलोक, परलोक से दूर होनेवाले शरीर को उपादेय (आधार) है, ऐसा विश्वास कर (बुद्धिहीन, मूर्खजन) वस्त्रों, मालाओं, आभरणों से अलंकृत करनेवाले पामर जनों को, ४६७ [कं.] घन-निर्भाग्य (महा-दौर्भाग्यशाली) हैं, ऐसा मन में विचार करो। इस प्रकार प्रिया को कश्यप के विदित करने पर, दिति ने मनसिज (मन्मथ) के सायक (बाण) से भिन्न (वेधित, व्याकुल) मन से फिर से कहा। ४६८ [कं.] [इस प्रकार] उद्यत हो, लज्जा से अवनत वदन वाली हो, प्राणेश्वर के आँचल को पकड़, विह्वल हो वारकान्ता (वेश्या) की भाँति विनिषिद्ध कर्म के लिए अभिमुखी हो [कश्यप से] लिपट गयी। ४६९ [व.] इस प्रकार करने पर, पत्नी के निर्वन्धित (वलात्कार) करने पर, हट न सक (तिरस्कार न कर सक) ईश्वर को नमस्कार कर, एकान्त में अपनी कान्ता से संभोग कर, संभोग के पश्चात् प्रक्षालन कर, स्नात हो, प्राणायाम कर, विरज (रज से रहित) [तथा] सनातन ब्रह्मगायत्री [मंत्र] का जप किया। तब, ४७० [कं.] दिति ने भी निषिद्धकर्म की स्थिति के लिए मन में अधिक शर्माते

व. ❀............ ... ।

कं. अर्भकुलु लेनि दगुटनु, गर्भमु निजनाथु वलन गमलानन का-
विर्भूतमैन गरगु वि, निर्भर परितोष मात्म नॅलकॊन नुंडॅन् ॥ 472 ॥

व. अंत गश्यपुंडु दत्काल समुचित संध्यावंदनंबुलु दीर्चि ॥ 473 ॥

कं. आ चॅलिकि गर्भचिह्नमु,
दोचिन बरितोष मात्म दोंडरग नामा
रीचुंडु निज तलोदरि,
जूचि यकर्ममुन कात्म स्रुक्कुचु बलिकॅन् ॥ 474 ॥

म. सति ! नी वेगति निंद कोडक मनोजातेक्षु कोदंड नि-
र्गत नाराच परंपरा ·हत विशीर्ण स्वांतवै पापसं-
गति लज्जा भय धर्ममुल् विडिचि दुष्कालंबु नंदे रमिं-
चिति बलिमन् वॅलयालि कैवडिनि दुश्शील क्रिया लोलतन् ॥ 475 ॥

कं. सति ! विनु भूतगण प्रे-
रितुलै रुद्रानुचरुलु पृथु शक्ति सम-

हुए, सिर झुकाकर, उस पशुपति से डरकर, परम प्रीति से, ४७१ [कं.] अर्भक (शिशु) के न रहने के कारण वह कमलानना (कमलमुखी) अपने पति से गर्भधारण होने के कारण अत्यधिक सन्तोष के आत्मा में विलसित होने पर सुखी रही। ४७२ [व.] तब कश्यप ने तत्काल (तुरन्त) समुचित रूप से सन्ध्यावन्दन का निर्वाह किया। ४७३ [कं.] उस सखी के गर्भ-चिह्न दिखाई देने पर, आत्मा में अत्यन्त आनन्दित होते देख, उस मारीच (कश्यप) ने अपनी पत्नी के अकर्म के लिए मन में दुःखी हो कहा। ४७४ [म.] सती ! तुमने निन्दा से न डरते हुए, मनोजात (मन्मथ) के इक्षु (ईख)-कोदण्ड (धनुष) से निर्गत (निकले हुए) नाराच (वाण) परम्परा से हत, विशीर्ण मन वाली बनकर, पाप-भाव से, लज्जा, भय, धर्म छोड़कर, दुष्काल में ही बलपूर्वक वेश्या की रीति दुश्शीलता की क्रियाओं में डूबकर, रमण किया न। ४७५ [कं.] सती ! सुनो ! भूत-गण से प्रेरित हो रुद्र के अनुचर, अत्यधिक शक्तिशाली उग्र कर्म वाले, अति

---

* [तॅलुगु मूल का यह पाठ पुस्तक में नहीं है। टिप्पणी-रूप में केवल अनुवाद है, वही यहाँ प्रस्तुत है।] व. ...कश्यप को देखकर कहा। समस्त भूतपति होनेवाले ईश्वर मेरे किये अपराध को क्षमा कर मेरे गर्भ का परिपालन करे। रुद्र, महात्मा, स्वयं प्रकाश वाले, अलंघ्य, सकामीजनों को फल प्राप्त करानेवाले, निष्कामजनों को मोक्ष-प्रदायक, दण्ड को तजनेवाले, धृतदण्ड वाले दुष्टशिक्षक, परमात्मा, जगत के अन्तर्यामी, निर्गुण, निष्कामी, भक्तों के लिए सुलभ होनेवाले भगवान, उस परमेश्वर को नमस्कार करती हूँ। और षट्गुण के ऐश्वर्य से सम्पन्न होनेवाले, जगत का भरण करनेवाले, महान् अनुग्रहशील वाले, निर्दय परिपालकों के हाथों से वधू (भूदेवी) के रक्षक, सतीदेवी का पति, वह सर्वेश्वर मेरे रक्षा करे। इस प्रकार स्तुति कर, ४७१ (अ)

न्वितु लुग्रकर्मु लति शौ-
र्यतमुलु भद्रानु भद्रुलन नाममुलन् ॥ 476 ॥

कं. परगिन दर्पोद्धतु लि, द्दरु कॊडुकुलु नीकु बुट्टि धरणिकि व्रेगै
निरतमु बुधजन पीडा, परुलै वर्तितु रात्मबल गर्वमुनन् ॥ 477 ॥

ते. अट्टि दुष्कर्मुलकुनु महात्मु ललिगि,
विश्वविदुडैन हरिकिनि विन्नविंप
नतडु गोपिंचि हरि कुलिशायुधमुन,
गिरुल गूल्चिन गति वारि धरणि गूल्चु ॥ 478 ॥

कं. अनि कश्यपु डेर्पिंगिंचिन,
विनि विति भय मंदि चाल विह्वलमति यै
तन हृदयेशु मुखाब्जमु गनुगॊनि
यिट्लनियॆ विगत कौतुक यगुचुन् ॥ 479 ॥

चं. धर सुजनापराधुलगु तामस चित्तुल कॆंदु नायुवुन्
सिरियु नशिंचि पोवु मृति सेकुरु शत्रुलचेत नित यौ
नरयग निक्कुवंबु भव दात्मजु लार्युल कॆग्गु सेय भू
सुरुल कृधाग्नि पालपडक शोभनमौ हरि चेति पंचतन् ॥ 480 ॥

चं. अनवुडु गश्यपुंडु गमलासन किट्लनु निति ! नीवु चे
सिन विपरीत कर्ममुन जेकुरॆ निट्टि यवस्थ दीनिकिन्

शौर्य सम्पन्न, भद्र (एवं) अनुभद्र नामों से, ४७६ [कं.] विलसित (विजृम्भित) दर्प से उद्धत, दो पुत्र तुम्हें उत्पन्न होंगे, (और) धरती के लिए भार [स्वरूप] हो, निरंतर बुधजनों के पीड़क हो, आत्मबल-गर्व के साथ, व्यवहार करेंगे। ४७७ [ते.] ऐसे दुष्कर्म वालों के प्रति महात्मा लोग कुपित हो, विश्वविद् हरि से विनती करेंगे, तब वह क्रोधित हो हरि (इन्द्र) के [अपने] कुलिशायुध से गिरियों को गिराने की रीति, उनको धरा पर गिरा देगा (वध करेगा)। ४७८ [कं.] ऐसा कश्यप के विदित करने पर, सुनकर, दिति ने भीत हो, अत्यन्त विह्वल मति वाली हो, अपने हृदयेश्वर (पति) के मुखाब्ज (मुखकमल) को देख विगत कौतुक (विगत आनन्द) से इस प्रकार कहा। ४७९ [चं.] धरती पर सुजनों के प्रति अपराध करनेवाले, तामस चित्त वालों की आयु, सम्पदा का सदा नाश हो जाता है, शत्रुओं के हाथों में मृत्यु प्राप्त होती है। विचार करने पर [यह सब] होकर रहेगा, सत्य है। भवत्-आत्मज, आर्यों (श्रेष्ठजनों) के प्रति अत्यधिक बुराई (धृष्टता) करने पर, भूसुरों के क्रोध की अग्नि में न पड़कर, हरि के हाथों पंचत्व को प्राप्त होना (हत होना) शुभ ही तो है न। ४८० [चं.] (ऐसा) कहने पर कश्यप ने कमलानना (कमलमुखी)

मनमुन दाप मोदकुमु माधवु पाद सरोज युग्म चि-
तनमुनु जेसियुन् ननु मुदंबुन गोल्चुट जेसियुं दगन् ॥ 481 ॥

ते. रमणि ! नी सुतुलंदु हिरण्यकशिपु
वलन नुदयिंचुवारि लोपल मुकुंद
पद सरोजात विन्यस्त भावुडैन
तनयु डुदयिंपगल डति धार्मिकुंडु ॥ 482 ॥

व. मरियुनु ॥ 483 ॥

कं. घन पुण्युडु नन्वय पा, वनुडगु न प्पुण्यतमुनि वर कीर्तिलतल्
वनज भवांडोदर मॅं, ल्लनु निंडग बर्वु बुधललामुं डगुटन् ॥ 484 ॥

ते. वामलोचन ! विनुमु दुर्वर्ण हेम
मग्नि पुटमुन बरिशुद्धमै वॅलुंगु
नट्लु दुष्टात्म संभवु डय्यु वंश
पावनुं डगु हरिपाद भक्तुडौट ॥ 485 ॥

ते. अंचिताष्टांग योग क्रियाकलापु
लैन योगीश्वरुलु न म्महानुभावु
चतुर शील स्वभाव विज्ञान सरणि
दामु जरियिंप नात्मल दलतु रॅपुडु ॥ 486 ॥

से ऐसा कहा। इंती (नारी)! तुम्हारे किए विपरीत कर्म से ऐसी दुःस्थिति उपस्थित हुई। इसके लिए मन में दुःखी मत हो। माधव के पादसरोजयुग्म का चिन्तन कर समुचित रीति से आनन्द को प्राप्त करना चाहिए। ४८१ [ते.] रमणी! तुम्हारे पुत्रों में हिरण्यकशिपु से उदित (उत्पन्न) होनेवालों में, मुकुन्द के चरण-कमलों में चित्त रखनेवाला अति धार्मिक पुत्र (एक) उदित होगा। ४८२ [व.] और भी, ४८३ [कं.] घन-पुण्यात्मा, अन्वय (वंश) को पावन बनानेवाले उस पुण्यतम (श्रेष्ठ) की कीर्तिलताएँ समस्त वनजभव के अण्डोदर (ब्रह्मांड-उदर) में [उसके] बुध-ललाम (-श्रेष्ठ) होने के कारण व्याप्त होंगी। ४८४ [ते.] हे वामलोचने (सुन्दर आँखों वाली)! सुनो! दुर्वर्ण (कलुषित रंग वाले) हेम (सुवर्ण) के अग्नि की पुट में परिशुद्ध हो प्रकाशित होने की रीति दुष्टात्मा से उत्पन्न होने पर भी, [वह] हरिचरणों का भक्त होने से, वंश को पवित्र करनेवाला होगा। ४८५ [ते.] अंचित (समुचित) अष्टांग योग की क्रियाओं में मग्न होनेवाले योगीश्वर [लोग], उस महानुभाव के चतुर शील-स्वभाव के विज्ञान की रीति से स्वयं संचार करने के लिए अपने मन में सदा विचार करते है। ४८६ [उ.] उस महितात्मा वाले, सुगुणों का सागर भागवतजनों में श्रेष्ठ, लक्ष्मी-महिला (नारी) के

उ. आ महितात्मकुंडु सुगुणांबुधि भागवतोत्तमुंडु ल-
क्ष्मी महिळाधिनाथु दुलसीदळ दामु वरेशु नात्म हृ-
त्तामरसंबुनंदु ब्रमदंबुन निल्पि तदन्य वस्तुवुं
दा मदिलो हसिंचु हरि दास्य विहार विनिश्चितात्मुडै ॥ 487 ॥

व. अट्टि नी पौत्रुंडु ॥ 487 ॥ (अ)

सी. महित देहाद्यभिमानंबु दिगनाडि चिरुततनमुन सुशीलुडगुचु
वर समृद्धिकि नात्म वरितोपमंदुचु बरदुःखमुनकु दापमुनु बोंदु
नी विश्वमंतयु ने विभुमयमनि येंव्वनि करुणचे नेंरुगनय्ये
नट्टि यीश्वरुनि दानात्मसाक्षिगमोद मडरंग जूचु ननन्यदृष्टि

ते. नतिनिदाघोग्र समयंबुनंदु निखिल
जंतु संताप मणगिचु चंद्रुमाड्कि
नखिल जगमुल दुःखंबु लपनयिचु
रुठि मरि नजात विरोधि यगुचु ॥ 488 ॥

व. मरियु हरि ध्यान निष्ठा गरिष्ठुंडगु नम्महाभागवताग्रगण्युंडु ॥ 489 ॥

कं. विमलांतरंग वहिरं, गमुलनु स्वेच्छानुरूप कलितुंडगु ना
कमलाधीश्वरु कुंडल, रमणीय मुखंबु जूचु ब्रमदं बेसगन् ॥ 490 ॥

ते. मरियु नी विश्व मा हरिमयमु गाग,
मनमुलोपल दलचु नम्मनु निभुंडु

अधिनाथ, तुलसीदल माला वाले, परेश को अपने हृदय-तामरस (कमल) में प्रमोद (आनन्द) के साथ प्रतिष्ठित कर, हरि की सेवा में विहार करने से विनिश्चित आत्मावाला हो उसके अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का उपहास करता है। ४८७ [व.] ऐसा तुम्हारा पौत्र (पोता) ४८७ (अ) [सी.] देह के अत्यन्त अभिमान (आसक्ति) को छोड़कर, बचपन से सुशील होते हुए दूसरों की समृद्धि के कारण मन में सन्तोष करते हुए, परदुःख के कारण दुःखी होते हुए, यह समस्त विश्व जिस विभु से पूर्ण है, जिसकी करुणा से जाना जाता है, ऐसे ईश्वर को आत्मसाक्षी के रूप में, आनन्द के साथ अनन्य दृष्टि से देखता है। [ते.] अति निदाघ (धूप) की उग्रवेला में निखिल जन्तुओं के सन्ताप को मिटानेवाले चन्द्र की भाँति, अजात विरोधी (अजात शत्रु) होते हुए अखिल जगतों के दुःख को निवारण करता है, ४८८ [व.] और हरिध्यान की निष्ठा में गरिष्ठ बना, महाभागवतों में अग्रणी वह, ४८९ [क.] अन्तरंग (तथा) वहिरंग में विमल हो, स्वेच्छानुरूप से सुविलसित होनेवाले उस कमलाधीश्वर के, कुण्डलों से रमणीय बने हुए, मुखमण्डल के दर्शन आनन्द के साथ करेगा। ४९० [ते.] और मन में विश्व को हरिमय जाननेवाला वह मनुविभु (राजा)

मनु महात्मुललोन नी मनुमडधिकु,
इनग नुतिकॅक्कु ननुचु गश्यपुडु वलुक ॥ 491 ॥

कं. विनि तन तनयुलु मधु सू-
वनुचे हतु लगुदु रनुचु दन मनुमडु स-
ज्जननुत भागवतुं डगु,
ननुचु मदिं जाल दुःख हर्षमु लॊंदवन् ॥ 492 ॥

व. अंडुनंत ना दितियु गश्यपु वीर्य संभृतंबैन गर्भंबु दुर्भर तेजोभिरामंबुनु, नन्यतेजो विरामंबुनु, दिन दिन प्रवर्धमानंबनै निव्वटिल्ल निजोदर स्थितुलैन कुमारु लमर दमनुले वर्तिपंगल रनि चिंतिपुचु गर्भंबु शत वर्षंबुलु धरियिंचियुन्न यनंतरंबु ॥ 493 ॥

अध्यायमु—१५

उ. आ दिति गर्भमंदु रुचिराकृतितो नॊकतेज मन्य ते-
जो दम लील वॅल्वडि वसुंधरयुन् गगनंबु निंडि सं-
छादित पद्मबांधव निशाकर दीप्तुलु गलिग सूचिका
भेद महोग्र संतमस भीषणमैन भयाकुलात्मुलै ॥ 494 ॥

चं. अमर गणंबु लॆल्ल गमलासनु पालिकि नेगि तत्पदा-
ब्जमुलकु म्रॊक्कि यंजलुलु फालमुलं गदियंग जेर्चि चि-

महात्माओं में श्रेष्ठ बन, स्तुत्य हो प्रसिद्ध होगा, ऐसा कश्यप के कहने पर, ४९१ [कं.] सुनकर कि अपने सुत मधुसूदन से हत होंगे (और) अपना पोता सज्जनों से स्तुत्य भागवतपुरुष होगा, ऐसा जानने पर [दिति के] मन में दुःख (तथा) हर्ष-भाव उत्पन्न हुए। ४९२ [व.] (ऐसा) रहते समय उस दिति कश्यप के वीर्य से भरे गर्भ को, दुर्भर तेज से अभिराम, अन्य तेजों को समाप्त करनेवाला, दिन-प्रतिदिन प्रवर्द्धित हो विलसित होने पर, अपने उदर में स्थित कुमार, जो अमरों का दमन करते हुए जिएँगे, ऐसा चिन्तित होते हुए, सौ वर्ष तक गर्भ धरे रही। उसके पश्चात्, ४९३

अध्याय—१५

[उ.] उस दिति के गर्भ में, रुचिर आकृति में एक तेज अन्य तेजों का दमन करने की रीति लीला में प्रकट हो वसुन्धरा (धरा) (तथा) गगन में व्याप्त हो, पद्मबांधव (सूर्य) [तथा] निशाकर की दीप्तियों को संछादित करनेवाली दीप्तियों से युक्त हो, सूचिका (सुई) से भी अभेद्य, महान्, उग्र तमस् (अंधकार) के रूप में भीषण हुआ। उससे भय तथा आकुल आत्मावाले हो, ४९४ [चं.] समस्त अमरगण (देवतासमूह) कमलासन

ततमुल भयंबु संभ्रममु दार्कोन निट्लनि विन्नविंचि रो-
यमर कुलाग्रगण्य! दुरितार्णव तारण! सृष्टिकारणा! ॥ 495 ॥

उ. नीवु चराचर प्रचय नेतवु धातवु सर्वलोक-पा
लावळि मौळिभूषणुड वंचितमूर्तिवि देवदेव! वा-
णीवर! यी यजांडमुन नीवु नेरुंगनि यर्थ मुन्नदे?
भावमुनं दलंपुमु विपन्नुल मम्मु भवत्प्रपन्नुलन् ॥ 496 ॥

व. देवा! कार्यरूपंबगु चेतनाचेतनात्मक प्रपंचंबुनकु गारणंबवैन नी चेत समस्त भुवनंबुलुनु सृजियिपंबडें। नीवु सर्वभूतात्म भाव विदुंडवु। लोकनाथ शिखामणि भूतुंडवु। विज्ञान वीर्युंडवु। अविद्यं जेसि यिट्टि स्रष्टृरूपंबु नीदिति। गृहीत रजो गुणुंडवु। नी यंदु प्रपंचंबु लीनंबै युंडु। सुपक्व योगंबु नोंदि निष्कामुलै ध्यानंबुन निन्नरयुचु निर्जित श्वासेंद्रियात्मुलै भवत्प्रसादंबु बडसिन वारलकुं पराभवंबु लेक्कडिदि? ऎव्वनि वाग्जालंबुचे बाशबद्धंबु लैन पशुवुल चंदंबुन निखिल जीवुलु वर्तितुरट्टि नीकु नमस्करिंचेदमु। अहोरात्रि विभागाभावंबुन लुप्तकर्मंबुलगु लोकंबुलकु सेमंबु गाविंपुमु। शरणागतुल मयिन मम्मु

(ब्रह्मा) के समीप पहुँचकर, अंजलि से माथा टेककर, चरणों की वन्दना कर, चित्तों में भय तथा सम्भ्रम के व्याप्त होने पर, इस प्रकार विनती की कि हे अमर कुलाग्रगण्य! दुरित-अर्णव (-सागर) से तारनेवाले! सृष्टि के कारणस्वरूप! ४९५ [उ.] तुम चराचर-समूह के नेता हो! धाता हो! सकल लोकपालावली के लिए शिरोधार्य हो! पूज्यमूर्ति हो! हे देवदेव! हे वाणीवर! इस अजाण्ड (ब्रह्माण्ड) में तुमसे अविदित कोई अर्थ (भाव) है क्या? हम विपन्नों और तुम्हारे प्रपन्नो (शरणागतों) के बारे में मन में विचार करो! ४९६ [व.] देव! कार्यरूपी चेतनात्मक (और) अचेतनात्मक संसार के कारणभूत हो तुम्हारे हाथों समस्त भुवन सृजित हुए। तुम सर्वभूतात्मभावविद् हो! लोकनाथों के शिखामणि हो। विज्ञान रूपी वीर्यवाले हो! अविद्या के कारण ऐसे स्रष्टा के रूप को प्राप्त हुए हो! रजोगुण को लिये हुए हो। तुममें संसार लीन हो रहता है। सुपक्व योग को प्राप्त कर निष्कामी हो, ध्यान से तुम्हारी गवेषणा करते हुए, श्वास तथा इन्द्रियों को जीतकर, तुम्हारे प्रसाद (अनुग्रह) को प्राप्त करने वालों को पराभव कहाँ है, जिसके वाग्जाल से पाशबद्ध होनेवाले पशुओं की भाँति निखिल जीव संचार करते हैं, ऐसे तुम्हें (हम) नमस्कार करते हैं। दिन-रात के विभाजन के अभाव में लुप्तकर्म होनेवाले लोकों को कुशल बना दो। शरणागत बने हमें अतिशय करुणरस से परिपूर्ण दृष्टियों से देखकर, रक्षा करो! कश्यप का वीर्य दिति के गर्भ में रहकर सकल दिग्वलय

नतिशय करुणारस परिपूर्णंबुलगु कटाक्षंबुल नीक्षिंचि रक्षिंपुमु। कश्यपवीर्यंबु दिति गर्भंबुन नुंडि सकल दिग्वलयंबु नाक्रमिंचि दारुवंदु वह्नि चंदंबुन लीनंबै प्रवृद्धं बगुचुन्नदनि विन्नविंचिन बृंदारक संदोहंबुलकु नानंबंबु गंदळिप नरविंद-नंदनुं डिट्लनियें ॥ 497 ॥

सनक सनंदादुलु वैकुंठमुन कडगुट

कं. गीर्वाणुलार ! युष्मत्पूर्वजु लात्मीय सुतुलु पुण्युलु विचर-
न्निर्वाणुलु सनकादुलु, सर्वंकष शेमुषी विचक्षणु लेंदुन् ॥ 498 ॥

कं. वारलु निस्पृहु लगुचु न, वारण भुवनंबु लॅल्ल वडि ग्रुम्मरुचुन्
धीरु लॉकनाडु भक्तिन्, श्री रमणीश्वर पदाब्ज सेवानिरतिन् ॥ 499 ॥

चं. चनिचनि कांचिरंत बुध सत्तमु लंचित नित्य दिव्य शो-
भन विभवाभिराममु, ब्रसन्नजनस्तवनीय नाममुन्
जननविराम, मार्यजन सन्नुत भूममु, भक्तलोक पा
लन गुणधाममुं, बुरललाममु, जारु विकुंठ धाममुन् ॥ 500 ॥

उ. आ महनीय पट्टणमुनंदु वसिंचॅडु वार लात्म नि-
ष्कामफलंबॅ सत्फलमुगा दलपोसि मुमुक्षु धर्मुलै

(दिशावलय) में व्याप्त हो, दारु (काष्ठ) में स्थित वह्नि (अग्नि) के समान लीन हो प्रवृद्ध हो रहा है, ऐसा निवेदन करने पर, वृन्दारक (देवता) समूहों के [मन में] आनन्द अंकुरित हो, ऐसा अरविन्दनन्दन (ब्रह्मा) ने इस प्रकार कहा। ४९७

सनक-सनन्दनादि का वैकुंठ-गमन

[कं.] गीर्वाणो (देवताओ)! आपके पूर्वज (अग्रज), मेरे पुत्र, पुण्यी, चलते-फिरते निर्वाण की मूर्ति वाले, [सनकादि ऋषि] सर्वत्र ही सर्वंकष शेमुषी विचक्षण [वाले] हैं। ४९८ [कं.] वे [लोग] निस्पृह भाववाले होकर, अवारित रूप से समस्त भुवनों में झट भ्रमण करते हुए, धीर हो, एक दिन श्रीरमणीश्वर (विष्णु) के पदाब्ज (चरण-कमल) की सेवा-निरति से, ४९९ [चं.] चल-चलकर, तब बुध-श्रेष्ठों ने नित्य दिव्य शोभा के वैभव से अभिराम, प्रपन्नजन से स्तुत्य नाम वाले, जन्म [चक्र] से बिराम पहुँचानेवाले, आर्यजन के स्तुत्य भूम (आधार) वाले, भक्तलोकों का पालन करनेवाले, गुणधाम वाले, पुर-ललाम (-श्रेष्ठ) चारु (सुन्दर) वैकुण्ठ-धाम को देखा। ५०० [उ.] उस महनीय पट्टण (नगरी) में निवास करनेवाले अपनी आत्मा में (मन में) निष्काम फल को ही सत्फल के रूप में विचार कर, मुमुक्षु-धर्मवाले हो, श्रीमहिलाधिपति (विष्णु) के चरण-कमलों की पूजाएँ करते हुए, उसके उत्तम रूप को धारण कर,

श्री महिळाधिपांघ्रि सरसीरुह पूज लॊनर्चुचुन् महो-
द्दाम तदीय रूपमुलु दाल्चि सुखिंपुचु नुंदु रॆप्पुडुन् ॥ 501 ॥

चं. विगत रजस्तमो गुणुडु विश्रुत चारु यशुंडु शुद्ध स-
त्त्वगुणु डजुं डनादि भगवंतुडनंतु डनंत शक्तियुन्
निगमचयांत वेद्युडु विनिश्चल निर्मल धर्म मूर्ति यै
तगु हरि सेव वॆंपॊसगु दन्नगरोपवनम्मु निम्मुलन् ॥ 502 ॥

व. मरियुं गैवल्यंबु मूर्तीभविंचिन तॆरंगुनं बॊलुपारुचु, नैश्श्रेय सनामंबुन नभिरामंबै, सततंबुनु सकलर्तु धर्मंबुलु गलिगि, यर्थि मनंबुल जनंबुल घनंबुलुग नीरिक लॆत्तिन कोरिकलु सारिकंलु गोन नोसंगुचु, गाम दोहन हितंबुलं,बुष्पफल भरितंबुलुनै तनर्चु संतानवन संतानंबुलुनु, समंचित वसंत समय सौभाग्यसंपदभिशोभित वासंतिका कुसुम विसर परिमळ मिळित गळित मकरंद ललितामोद मुदित हृदयुलै यखंड तेजोनिधि यगु पुंडरीकाक्षु चरित्रंबु लुग्गडिंप लेक खंडितज्ञानुलैननु, निरतिशय विषयसुखानुभव कारणं बगुट निंदिरा सुंदरी रमणु चरणसेवा विरमणकारि यगु ननि तलंचि, तद्गंध प्रापक गंधवहुनि दिरस्करिंचि, नारायण भजन परायणुलै चरियिंचु सुंदरी युक्तुलैन वैमानिकुलुनु, वैमानिक मानसोत्सेकंबुग

(सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर) सदा सुखी हो रहते हैं। ५०१ [चं.] रजोगुण, तमोगुण से विगत, विश्रुत तथा सुन्दर यशवाले, शुद्ध सत्त्व गुण वाले, अज, अनादि, भगवान, अनन्त शक्तिशाली, निगमसमूह के अन्त में विदित होनेवाले, विनिश्चल रूप से धर्ममूर्ति वाले, हरि की सेवा में उस नगर का उपवन सुशोभित हो, सुविलसित होता है। ५०२ [व.] और कैवल्य मूर्तिभूत हुआ हो, ऐसा विकसित होते हुए, निःश्रेयस् (मुक्ति) नाम से अभिराम हो, सदा सकल-ऋतु-धर्मों से सुशोभित हो, अर्थिजनों के मन में प्रबल रूप से अंकुरित होनेवाली कामनाओं को पूर्ण करते हुए, काम-दोहन-सहित होते हुए, पुष्प (तथा) फल-भरे विलसित कल्पवृक्ष की संतान (समूह) से युक्त, [और] समुचित रूप में वसन्तकाल की सौभाग्य-सम्पदाओं से सुशोभित हो वासन्तीपुष्प-समूह के, परिमल से मिलित और गलित मकरंद के ललित आमोद से मुदित हृदय वाले होकर, अखण्ड तेज की निधि पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) के चरित्र को बखान करने में खण्डित ज्ञानी हो, निरतिशय रूप से विषय-सुख के अनुभवकारी होने के कारण, इन्दिरा-सुन्दरीरमण (विष्णु) की चरण-सेवा से विरमण (हटाने) वाला होता है, ऐसा विचार कर, उस गंध को प्राप्त करानेवाले गन्धवह (वायु) का तिरस्कार कर, नारायण के भजनपरायण हो संचार करनेवाले सुन्दरियों से युक्त वैमानिक [और] वैमानिकों के मानस के उत्सेक (उल्लास) को

बारावत हंस सारस शुक पिक चातक तित्तिरि मयूर रथांग मुख्य विहंग कोलाहल विरामंबुगा नरविंदनयन कथागानंबु लनूनंबुगा मीरयु मद-वदिंदिदिर संदोहकलित पुष्पवल्लीमतल्लिकलुनु, नकुंठित चरित्रुंडैन विकुंठ निलयुनि कंठंबुनं देजरिल्लि विलसित तुलसी दामंबु गनुंगोनि यी तुलसी माल्यंबु हरिगळ विलग्नंबै युंडु सौभाग्यंबु वडयुट केमि तपंबु गाविंचेनो ! यनि बहूकरिंचु चंदंबुन नोप्पु चंदन मंदार कुंदारविंद पुन्नाग नाग वकुळाशोक कुरवकोत्पल पारिजातादि प्रसून मंजरुलुनु, मंजरी पुंज रंजित निकुंजंबुलयंदु नुत्तुंग पीन कुचभाराकंपित मध्यंबुलु, कटि तट कनक, मेखला कलाप निनदोपलालित नील दुकूल शोभित पृथु नितंबभराल सयान हसितकल हंस मयूर गमनंबुलु, नसमशर कुसुमशर विलसितंबु नपहसिंचु नयन कमलंबुलुनु गलिगिन सुंदरी संदोहंबुलं दगिलि, कंदर्प केळी विहारंबुल नानंदंबु नोंदक मुकुंद चरणारविंद सेवापरिलब्ध मरकत वैडूर्य हेममय विमानारूढुलै हरिदासुलु विहरिंचु पुण्यप्रदेशंबुलुनु, निंदिरा सुंदरि त्रैलोक्य सौंदर्य खनि यैन मनोहरमूर्ति धरियिंचि रमणीय रणित मणि नूपुर चरणारविंदयै, निज हृदयेश्वरुंडैन सर्वेश्वरुनि मंदिरंबु लोनं

उद्दीप्त करनेवाले पारावत (कबूतर), हंस, सारस, शुक, पिक, चातक, तित्तिरि, मयूर, रथांग (चक्रवाक) आदि पक्षियों के कोलाहल को विराम प्रदान करनेवाले रूप में अरविन्दनयन (वाले) की कथा के गायन को निरन्तर प्रकट करनेवाले, मदवत् इन्दिन्दिर (-भ्रमर)-सन्दोह (-समूह) से कलित पुष्प-वल्लियाँ [और] अकुण्ठित चरित्र वाले, वैकुण्ठ निलय वाले के कण्ठ में प्रदीप्त, विलसित होनेवाली तुलसी-दाम (-माला) को देखकर, इस तुलसीमाला ने हरि के गले में लगे रहने के सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए कितना [बड़ा] तप किया होगा, इस प्रकार पुरस्कृत (सम्मानित) करने की रीति में चन्दन, मन्दार, कुन्द, अरविन्द, पुन्नाग, नाग, वकुल, अशोक, कुरवक, उत्पल, पारिजात आदि पुष्पमंजरियाँ [और] मंजरी-पुंजों से रंजित निकुंजों के भीतर, उत्तुंग पीनकुच-भार से आकम्पित मध्यभाग वाली सुन्दरियों [और] कटितट की कनक मेखलाओं की ध्वनियों से मुखरित, नीले वस्त्रों से सुशोभित, पृथु-नितम्ब भार से, कलहंस के गमन को अपहसित करनेवाले मयूर-गमन वालियों, [और] असमशर (मन्मथ) के कुसुम-शरों से विलसित, कमलों का परिहास करने वाले नयनों से सुशोभित होनेवाली सुन्दरीगणों के साथ कंदर्प (मन्मथ) की लीलाओं में आनन्द को प्राप्त न कर, मुकुन्द के चरणारविन्द की सेवाओं से प्राप्त हुए, मरकत, वैदूर्य, हेममय, विमानों पर आरूढ़ हो हरि-दासों के विहार के पुण्यप्रदेश, इन्दिरा-सुन्दरी के त्रैलोक्य-सौन्दर्य की खनि (निधि) बनी मनोहर मूर्ति को धारण कर, रमणीय रूप से मणि-नूपुरों से रणित

जांचल्य दोष राहित्यंबुन वर्तिपं गर कमल भ्रमणीकृत लीलांबुजातयै तन नीड कांचन स्फटिकमय कुड्य प्रवेशंबुलं॰ब्रतिफलिप श्री निकेतनुनि निकेतन सम्मार्जन कैकर्यंबु परमधर्म वनि तॆलुपु चंदंबुनं जूपट्टुचु, निज वनंबुनं दनरु सौरभाभिरामंबुलगु तुलसीदळ दामंबुल नात्म नायकुनि चरणारविंदंबुल नर्चिपुचु, नौसटि मृगमदपु टसलुन मसलुकॊनि तंपॆसलाडु कुरुलुनु, ललिततिल प्रमान रुचिराभ नासनु, दनरु मोमु दामर विमल सलिलंबुलं ब्रतिबिंबिप निज मनोनायकु चेतं जुंबितंबगुटंगा दलंचि, लज्जावनित वदनयै युंडं जेयुप्रवाळ लतिकाकुलंबुलैन कूलंबुलु गल नडबावुलुनु गलिगि, पुण्यंबुनकु शरण्यंबु, धर्मंबुलकु निर्मल स्थानंबु, सुकृत मूलंबुनकु नालवालंबुनै पॊलुपॊंदुचुंडु ॥ 503 ॥

चं. हरि विमुखात्मु लन्यविष यादृत चित्तुलु वापवर्तुलुन्
निरय निपात हेतुवुनु निंद्य चरित्रमुनैन दुष्कथा
निरति जरिंचु वारलुनु नेरु पॊंदग निंदिरा मनोहर
चरणारविंद भजनात्मकु लुंडॆडु गौदि नारयन् ॥ 504 ॥

व. वॆंडियु ॥ 505 ॥

(ध्वनित) होनेवाले चरणारविन्द वाली हो, अपने हृदयेश्वर-सर्वेश्वर के मन्दिर में चंचलता रूपी दोष से रहित हो (स्थिर हो), कर-कमल में अम्बुजात (कमल) को घुमाती हुई, अपनी छाया को कांचन-स्फटिकमय कुड्य-प्रदेशों में प्रतिविम्वित करती हुई, श्रीनिकेतन वाले (विष्णु) के निकेतन में सम्मर्जन (झाड़ू-बुहार)-कैंकर्य (-सेवा) परमधर्म है, ऐसा विदित करने की रीति में दिखाई पड़ती हुई, अपने वन में विलसित, सौरभ से अभिराम वनी, तुलसीदल-दामों से अपने पति के चरण-कमलों की अर्चना करती हुई, माथे पर मृगमद रूपी कीचड़ में फैलकर, लगकर, झूमनेवाले लटों से, ललित रूप से तिल-प्रसून की रुचिर आभावाली नासिका से विलसित होने वाले अपने मुखकमल के विमल सलिल में प्रतिविम्वित हो, अपने मनोनायक से चुम्वित होने की भावना कर, (लक्ष्मी को) लज्जावनत वदन वाली करते हुए प्रवाल की लतिकाकुल वाले कूलों से विलसित वावलियों से युक्त हो, पुण्यों का शरण्य, धर्मों का निर्मल स्थान, सुकृतमूल का आलवाल वन, विलसित होते [वह उपवन] रहता है। ५०३ [चं.] हरि-विमुखात्मा लोग, अन्य विपयों मे आदृत चित्त वाले, पापाचारी, निरय (नरक) में गिरने के हेतु-स्वरूप और निन्द्य चरित वाली दुष्कथाओं में मन लगाकर सदा संचार करनेवाले लोग, परखने पर, इन्दिरा के मनोहर के चरण-कमलों का भजन करनेवाले लोगों के आवास (वैकुंठ) को प्राप्त नहीं कर सकते। ५०४ [व.] और, ५०५ [चं.] हरि, परमेश्वर, केशव, अनन्त

चं. हरि बरमेशु गेशवु ननंतु भजिपग धर्मतत्त्वधी
परिणति साधनंबगु स्वभावमु दालिचन यट्टि मर्त्युला
सरसिजनेत्रु मायनु भृशंबुग मोहितुलै तदंघ्रि पं-
करुहमु लर्थिमै गॉलुव गानमि बॉंदरु तत्पदंबुनन् ॥ 506 ॥

चं. मरियु सरोरुहोदरुनि मंगळ दिव्य कथानुलाप नि-
र्भर परितोष बाष्पकण बंधुर चारु कपोल गद्गद
स्वर पुलकीकृतांगुलगुवारुनु निस्पृह चित्तुलु ष्रहं-
करण विदूरुलंदुरु सुकर्मुल युंडेडु पुण्यभूमुलन् ॥ 507 ॥

व. अंदु ॥ 508 ॥

म. वर वैकुंठमु सारसाकरमु, दिव्य स्वर्ण शालांक गो-
पुर हर्म्यावृतमैन तद्भवन मंभोजंबु, तन्मंदिरां-
तर विभ्राजित भोगि कर्णिक, ददुद्यद्भोग पर्यंकमं-
दिरवॉंदन् वसियिचु माधवुडु दा नेपारु भृंगाकृतिन् ॥ 509 ॥

व. अंत ॥ 510 ॥

म. हरिचे बालितमैन कांचन विमानारूढ मैनट्टि स-
त्पुरुषानीकमुचे दनर्चि विभवापूर्ण प्रभावोन्नतिन्
गर मॉप्पारु तदीय धाममु जगत्कळ्याण मूर्तुल् मुनी-
श्वरु लर्थिन् निज योग शक्ति बरितोष स्वांतुलै चॅच्चॅरन् ॥ 511 ॥

के भजन करने के लिए धर्मतत्त्व की बुद्धि की परिणति के साधनस्वरूप स्वभाव को धारण करनेवाले मर्त्य लोग उस सरसिज-नेत्र (कमलनयन) वाले की माया से अत्यधिक रूप से मोहित हो उसके चरण-कमलों का, अर्थी (इच्छुक) हो, सेवा न करने पर उस पद को प्राप्त नहीं कर सकते। ५०६ [चं.] और सरोरुहोदर (कमलोदर, विष्णु) की मंगल [कर] दिव्य कथा के अनुलाप से अत्यधिक आनन्द से अश्रुधाराओं से भरे सुन्दर कपोलों से, गद्गद स्वर से, पुलकित अंग वाले, और निस्पृह चित्त वाले, अहंकार-रहित सुकर्म करनेवाले पुरुष (पुण्यी) ही उन पुण्य-भूमियों में रहते हैं। ५०७ [व.] उसमें, ५०८ [म.] श्रेष्ठ वैकुण्ठ सारस (सरोवरों) का आकर (निलय) है। दिव्य सुवर्णशालाओं, गोपुरों, हर्म्यों से आवृत हो वह भवन कमल है। उस मंदिर के अन्तर्भाग में सुशोभित भोगी (सर्प) कर्णिका है। उस भोगी (सर्प) के पर्यंक (शय्या) में विलसित होकर निवास करनेवाला माधव भ्रमर है। ५०९ [व.] तब, ५१० [म.] हरि से पालित हो, कांचन-विमानों पर आरूढ़, सत्पुरुष-आनीक (-संघ) से विलसित हो, वैभवों से भरे, प्रभाव की उन्नति से अत्यधिक रूप से सुशोभित होनेवाले उस (परम) धाम को जगत-कल्याण के मूर्तिस्वरूप मुनीश्वर अर्थी हो, अपनी योगशक्ति से परितुष्ट

व. डायं जनि ॥ 512 ॥

चं. मरकत रत्नतोरण समंचित कुड्य कवाट गेहळी
विरचित कक्ष्यषट्क मरविंद दळाक्ष विलोकनोत्स वा
दरमति नन्यमुं गनक दाटि यनंतर कक्ष्ययंदु नि-
व्दरनु ददीय पालुर नुवार समान वयो विशेषुलन् ॥ 513 ॥

सी. कांचन नवरत्न कटकांगुळीयक हार केयूर मंजीर धरुल
गमनीय सौरभागत मत्त मधुकर कलित सद्वनमालिका विराजि-
तोरस्स्थलुल, गदाधरुल, घन चतुर्बाहुल, नुन्नतोत्साह मतुल
नारूढ रोषानलारुणिताक्षुल, भ्रूलता कौटिल्य फाल तलुल

ते. वेत्रदंडाभिरामुल वॅलयु नम्मु-
कुंद शुद्धांत मंदिराळिंद भूमि
नुन्न यिद्दर सनकादि योगि वरुलु,
चूचुचुनु वृद्धुलय्यु ना सुभग मतुलु ॥ 514 ॥

कं. धीरत वंचाब्दमुल कु, मारकुलै कान वड्डुचु मनमुन शंकन्
गूरक चतुरात्मकुलनि, वारित गमनमुल डाय वच्चिन नॅदुरन् ॥ 515 ॥

कं. श्रीललनेश्वर दर्शन, लालसुलै येगु बुध ललामुल नतिदु
श्शीलत दद्वचन प्रति, कूल मतिन् बोवकुंड गुटिलात्मकुलै ॥ 516 ॥

अन्तःकरण वाले हो, शीघ्र, ५११ [व.] समीप पहुँचकर, ५१२ [चं.] मरकत तथा रत्नों के तोरणों से सुशोभित (तथा) समंचित, दीवारों, खिड़कियों, दरवाज़ों, गेहलियों से सुशोभित होनेवाले छः कक्षों को, अरविन्द-दलाक्ष (कमलपत्र-नयन) वाले के दर्शनोत्सव के प्रति आदर-बुद्धि से अन्य को न देखकर, पार कर अनन्तर कक्ष्या में उसके समान उदार तथा समान आयु-विशेष वाले दो द्वारपालों को देखा। ५१३ [सी.] कांचन-नवरत्न से युक्त कटक (कंकण), अंगुलीयक (अँगूठी), हार, केयूर, मंजीर [आदि आभूषणों] को धारण करनेवाले, कमनीय सौरभ के कारण आए हुए मतवाले मधुकरों से कलित सद्वन-मालिकाओं से विराजित वक्षःस्थल वाले, गदाधारी, घन (महान्) चार बाहुओं वाले, उन्नत-उत्साह मतिवाले, रोषाग्नि से आरूढ़ हो अरुण लोचन वाले, भ्रू-लता की कुटिलता (वक्रता) से मण्डित फालभाग वाले, [ते.] वेत्रदण्ड से अभिराम बन, विलसित होनेवाले उस मुकुन्द के शुद्धान्तःपुर की भूमि के निकट (-प्रदेश) में स्थित, [उन] दोनों को सनकादि योगिवर वृद्ध होकर भी सुभग मति वाले हो देखते हुए, ५१४ [कं.] धीरता के साथ पाँच वर्ष के कुमारों (बालकों) के रूप में दिखाई पड़ते हुए, मन में सन्देह न करते हुए चतुरात्मा हो, विना रुके चलते हुए : पहुँच कर, सामने, ५१५ [कं.] श्रीललना के ईश्वर (प्रभु) के

कं. वारिंचिन वारलु बृंदारकु लीक्षिचुचुंड दारुण पटु रो-
षारुणितांबकुलै रोद, वारिचुचु वारु नचटि वारुनु विनगन् ॥ 517 ॥

व. इट्लनिरि ॥ 518 ॥

चं. परमु ननंतु भक्त परिपालु सुहृत्तमु निष्टु नीश्वरे-
श्वरु भजियिप गोरि यनिवारण निदरुदेर निच्चलुन्
भरित मुदात्मुलै कौलुव बायक तद्भजनांतराय त-
त्पर मति माकु निप्पु डरिपड्डु दुरात्मुल नेडु गंटिरे ? ॥ 519 ॥

व. अनि मरियु सनक सनंदनादुलु जय विजयुलं जूचि यिट्लनिरि। मी मनंबुल स्वामि हितार्थंबै निष्कपट वर्तनुलमैन मा बोटुल गुहक वृत्ति गल यितर जनंबुलु भवत्सदनंबु प्रवेशिंतुरोयनु शंकं जेसि कोंदरं ब्रवेशिपं जेयुटयु, गोंदर वारिचुटयुनु दौवारिक स्वभावंबनि वारिप दलंचितिरेनि प्रशांत दिव्यमंगळ विग्रहुंडुनु, गत विग्रहुंडुनु, भगवंतुंडुनु, विश्व गर्भुंडुनु नैन यीश्वरुंडु प्राप्यंबुनु, प्रापकंबुनु, प्राप्तियु ननु भेद शून्युंडु गावुन, महाकाशंबु नंदु घट पटाद्याकाशंबुल वेरुलेक येकंबै तोचु चंदंबुन विद्वांसुलगु वार

दर्शन की लालसा लिये हुए, चलनेवाले बुध-ललामों को अति दुश्शीलता के के साथ, उनके वचनों के प्रतिकूल मतिवाले हो, कुटिलात्मा हो, भीतर जाने से, ५१६ [कं.] रोकने पर, वे वृन्दारकों (देवताओं) के देखते रहने पर, दारुण (तथा) पटु (अत्यधिक) रोष से अरुण लोचन वाले बनकर, कल-कल ध्वनि का वारण करते हुए, वहाँ के लोग सुनें, ५१७ [व.] ऐसा कहा, ५१८ [चं.] परम, अनन्त, भक्तपरिपालक, सुहृत्तम, इष्ट, ईश्वरेश्वर को भजना चाहकर अनिवारित रूप से यहाँ आने पर, नित्य-(निरन्तर) भरित मुदित आत्मा वाले बन, सेवा करने पर, उस भजन में अंतराय (बाधा) [पहुँचाने की] तत्पर बुद्धि वाले [ये] दुरात्मा, आज रोकने आए; [यह] आज देखा है न ? ५१९ [व.] ऐसा कहकर, और सनक-सनन्दन आदि ने जय और विजय को देखकर ऐसा कहा। आपके मन में स्वामी के हितार्थ निष्कपट वर्तन वाले हम जैसे लोगों को, कही कुहक वृत्ति वाले (कपट बुद्धिवाले) अन्य जन (कोई) भगवान के सदन में प्रवेश न करें, ऐसी शंका के कारण, कुछ लोगों का प्रवेश कराना (और) कुछ लोगों का निवारण कराना दौवारिक (द्वारपाल) का स्वभाव है, ऐसा समझकर, रोकना चाहते हों तो प्रशान्त दिव्य मंगल रूप वाला, गत-विग्रह (-विरोध) वाला, भगवान, विश्वगर्भ (वाला) ईश्वर प्राप्य, प्रापक (आश्रय) प्राप्त नामक, भेदशून्य है। इसलिए महाकाश में घटाकाश (तथा) पटाकाश के अलग न हो, एक होकर दिखाई पड़ने की रीति से, विद्वान् लोग उस महात्मा को सकलात्मा (तथा) भेदरहित मानते हैं। उसके अतिरिक्त

म्महात्मुनि सकलात्म भेदरहितुनिगा बॉडगंबुरु। अविधुनं गाक लोकमंदु राजुलु सापराधुलैन किंकरजनंबुल नाज्ञापिंचु चंदंबुन नीश्वरुंडु दंडिचुनो यनु भयबुनं जेसि वारिंचिति मनि तलंचिनरेनि भूसुर वेषधारुल मैन माकुनु, वैकुंठ नायकुंडैन सर्वेश्वरुनकु भेदंबु लेकुंडुटं जेसि शंक सेयं बनि लेदु। इट्लगुट यॅरिंगि मंदबुद्धुलर मम्मु वारिंचिन यनुचितकर्मुलगु मीरलु मदीय शापार्हु लगुदुरु गान भूलोकंबुनं गाम क्रोध लोभंबुलनु शत्रुवुलु वाधिपं बुट्टुंडनि पलिकिन ॥ 520 ॥

कं. वारलु विनि तम मनमुल, भूरि स्फुट चंड कांड पूगंबुलचे
वारिप रानि, दारुण वाक्यमुल कुलिकि तल्लड पडुचुन् ॥ 521 ॥

कं. परितापंबुनु बॉदुचु, सरसिजलोचनुनि भटुलु सनकादि मुनी-
श्वरुल पदांबुजमुलकुन्, गर मथिन् म्रोविक निटल घटितांजलुलै ॥522॥

व. इट्लनिरि ॥ 523 ॥

म. वरयोगीश्वरुलार ! मम्मु मदि नॉव्वन् मीर लिट्लन्न नि-
ष्ठुरवाक्यंबुलकिक मी मनमुलन् शोकिंपगा रादु स-
त्पुरुष श्रेणि वराभविंचिन वृथा भूतात्मुलन् मम्मु मा
दुरितं बितकु दॅच्चॅ मीद शुभमुन् दूकॉडु मे मारयन् ॥ 524 ॥

लोक में राजा लोगों के अपराधी किंकरजन (सेवक) को आज्ञा देने की रीति ईश्वर दण्डित करेगा, इस भय से रोक लिया है, तो जान लो कि भूसुर वेषधारी हम में (तथा) वैकुण्ठनायक सर्वेश्वर में भेद नहीं होने के कारण शंका करने की कोई आवश्यकता नही है। ऐसा जानकर (भी) मन्द बुद्धिवाले, हमें रोकनेवाले, अनुचित कर्म वाले तुम लोग हमारे शाप के योग्य हो। इसलिए भूलोक में काम, क्रोध, लोभ नामक शत्रुओं से पीड़ित होते हुए जन्म ले लो ! ऐसा कहने पर, ५२० [कं.] उन लोगों ने सुनकर, अपने मन में अत्यधिक प्रबल प्रचण्ड वाणों के समूह से भी अवारित भूसुरों के दारुण वाक्यों से भयभीत हो व्याकुल होते हुए। ५२१ [कं.] परिताप को प्राप्त होते हुए, सरसिजलोचन (कमलनयन) वाले के भटों ने सनकादि मुनीश्वरों के चरणकमलों में चाहकर, माथे का स्पर्श करते हुए, निटल-घटित अंजलि वाले हो (ललाट पर हाथ अंजलि के रूप में रख), ५२२ [व.] ऐसा कहा। ५२३ [म.] हे योगीश्वर-वर ! हमारे मन को पीड़ा देते हुए आपके कहे हुए निष्ठुर वाक्यों के लिए अब [आपको] अपने मन में शोक नहीं करना चाहिए। सत्पुरुष श्रेणी का पराभव (अपमान) करनेवाले, वृथा-भूतात्मा (-जीव) बने हुए हमें अपने दुरित कार्य (पाप) ने ही यहाँ (दुःस्थिति में) ला रखा। विचार करने पर आगे हम शुभ को प्राप्त करेंगे। ५२४ [व.] वह कैसा ? [यदि]

व. अवि यॅट्लंटिरेनि ॥ 525 ॥

उ. मो करुणावलोकन समेतुलुगा ममु जेय जित्तमुल्
दूकोनॅनेनि मा चनवु द्रोयक यी दगु लोभ मोहमुल्
गॅकोनि पुट्टुचोट नवकंजदळाक्षुनि नाम विस्मृतिन्
बॅकोनकुंड जेयुट शुभं बगु मीवि मदीय जन्ममुल् ॥ 526 ॥

व. अनु समयंबुन ॥ 527 ॥

म. हरि सर्वेशुडनंतु डा कलकलं बालिचि, पद्मालया
सरसालाप विनोद सौख्य रचनल् सालिचि, शुद्धांत मं-
दिर माणिक्यपु गेहळुल् गडचि, येतेंचॅ व्रपन्नार्ति सं-
हरुडै नित्य विभूति शोभनकरुंडै मानिताकारुडै ॥ 528 ॥

व. मरियुनु ॥ 529 ॥

चं. शरनिधि कन्यकामणियु संभ्रम मॊप्पगद दोड रा मनो-
हर निज लीलमै परमहंस मुनींद्र गवेष पादपं-
करुहमुलन् विनूत्न मणि कांचन नूपुर मंजु घोषमुल्
वरुस जॅलंग नार्य जनवंद्युंडु योगि जनैक सेव्युडै ॥ 530 ॥

चं. कर मणि हेम कंकण निकाय झणंकृतु लुल्लसिल्ल न
च्चर लिडु हंसपक्ष सित चामर गंध वहोच्चलत्सुधा

पूछें तो, ५२५ [उ.] हमें अपनी करुणापूरित दृष्टियों से युक्त करने की इच्छा हो, हमारी इस समीपता (प्यार) को न ठुकराकर हम जहाँ जन्म ले रहे हों, वहाँ पर लोभ-मोह-रहित हो नवकंजदलाक्ष (नवकमलपत्र-नयन वाले) के नाम का विस्मरण न हो ऐसा आपका (उपकार) करना हमारे जन्मों के लिए शुभ होगा (हुआ), ५२६ [व.] ऐसे समय में, ५२७ [मं.] हरि, सर्वेश्वर, अनन्त ने उस कलरव को सुनकर, पद्मालया (कमला, लक्ष्मी) के सरस-आलाप के विनोद की सौख्य-रचना को रोककर, शुद्धान्त (अंतःपुर) मन्दिर के माणिक्य [खचित] गेहलियों को पार कर, प्रपन्न की आर्ति का संहार करनेवाला, नित्यविभूति से शुभ करनेवाला, मान्य आकार वाला [यहाँ] आया। ५२८ [व.] और, ५२९ [चं.] शरनिधि (सागर) की कन्यकामणी (लक्ष्मी) के भी आश्चर्य के साथ-साथ चले आने पर, अपनी मनोहर लीला में परमहंस मुनीन्द्र के द्वारा खोजे जानेवाले चरण-कमलों के बिनूत्न मणि, कांचन-नूपुरों के मंजुघोष के क्रमशः व्याप्त होने पर, आर्यजनवन्द्य, योगिजनों के लिए एकमात्र सेव्य, ५३० [चं.] करों के मणि-हेम (स्वर्ण) मय कंकण के समूह की झंकृतियों के उल्लसित होने पर, अप्सराओं के हंस-पंखों के श्वेत चामर से, गन्धवह (वायु) के उच्छलित हो, सुधाकर (-चन्द्र) रुचिर आतपत्र (छाता) बना हो, सुन्दर

कर रुचिरातपत्र सुभग प्रविलंबित हार वल्लरी
सरसगळ तुषारकण, जाल विराजित मंगळांगुडै ॥ 531 ॥

व. मरियुनु ॥ 532 ॥

सी. निखिल मुनींद्र वर्णित सस्मित प्रसन्नाननांबुजमुचे नलरु वाडु
विस्तृत स्नेहार्द्र वीक्षण निजभक्तजन गुहाशयु डन दनरु वाडु
मानित श्यामायमान वक्षमुन नंचित वैजयंति राजिल्लु वाडु
नत जनावन कृपामृत तरंगितमुलै भासिल्लु लोचनाब्जमुल वाडु

ते. नखिल योगींद्र जन सेव्युडैन वाडु,
साधु जनमुल रक्षिप जालु वाडु
भुवनचूडा विभूषण भूरि महिम,
मिचि वैकुंठपुरमु भूषिचु वाडु ॥ 533 ॥

सी. कटि विराजित पीत कौशेय शाटितो वितत कांचीगुण द्युति नटिंप
नालंबि कंठ हारावळि प्रभलतो गौस्तुभ रोचुलु ग्रुंबुकोनग
निजकांति जित तटिद्व्रज कर्णकुंडल रुचुलु गंडद्युतुल्
प्रोदि सेय महनीय नव रत्न मय किरीट प्रभा निचयंबु दिक्कुल निंड बर्व

ते. वैनतेयांस विन्यस्त वामहस्त,
कलित केयूर वलयकंकणमु लॊप्पु

रूप से प्रविलम्वित होनेवाले हार-वल्लरी (लता) -समूह के सरस गले में तुषार कणजाल से विराजित मंगल अंगवाला हो, ५३१ [व.] और, ५३२ [सी.] निखिल मुनीन्द्रो से वर्णित सस्मित (तथा) प्रसन्न-आनन-अंबुज (मुखकमल) से सुशोभित होनेवाला, विस्तृत-स्नेह से आर्द्र वीक्षणों (दृष्टियों) से अपने भक्तजनों के गुहाशय वाला (हृदय रूपी गुफा में निवास करनेवाला) —ऐसा विलसित होनेवाला, मान्य श्यामल वक्षःस्थल पर अंचित वैजयन्ती से विराजित होनेवाला, नतजन-आवन (-रक्षा) के लिए कृपा-अमृत तरंगों से भासित नयन कमलवाला, [ते.] अखिल योगीन्द्र जनों से सेव्य, साधुजनों की रक्षा करने में समर्थ, भूदेवी की चूड़ा के विभूषणों में अत्यधिक महिमा से विलसित वैकुण्ठपुर को अलंकृत करनेवाला, ५३३ [सी.] कटि पर विराजित होनेवाले पीत कौशेय शाटि (दुशाला) के साथ अतिशय कांची-गुण (मेखला) की द्युति के नर्तित होने पर, कण्ठ पर लटकनेवाले हारावली की प्रभाओं से कौस्तुभ की कान्तियों के अतिशय रूप से फैलने पर, अपनी कांति से विद्युल्लता को जीतनेवाले कर्ण-कुण्डलों की रुचियों (कांतियों) के गण्ड भाग (कपोल) के सुशोभित करने पर, महनीय नवरत्न-मय किरीट की प्रभाओं के समूह के दिशाओं को भर फैलने पर, [ते.] वैनतेय (गरुड़) के अंस (कंधे) पर विन्यस्त (रखे हुए) वामहस्त में

नन्य करतल भ्रमणी कृतानुमोद,
सुंदराकार लीलारविंद ममर ॥ 534 ॥

व. मरियु चरणारविंद मंजु किंजल्क पुंज प्रभा रंजित तुलसी मरंद बंधुर गंधानुबंध सुगंधि गंधवहास्वादकलित सेवातत्पुरुलै चनुदेंचु योगींद्रुलकु मानसानंद कारियुनु, बहि:करणांतकरण परितोष प्रकीर्ण रोमांच रुचिदायकंबुनु, प्रभापूर्ति युक्तंबुनगु मूर्ति तोड निजसौंदर्य वरकळा विनिर्जित श्रीरमणी सौंदर्य भासमानुंडगुचु वादचारियै, यखिल विश्वगुरुंडैन सर्वेश्वरुंडु वेंचेसें नप्पुडु ॥ 535 ॥

चं. स्थिर शुभ लील नट्लरुगुवेंचिन यव्विभु विद्रुमारुणा-
धर नव पल्लव स्फुरवुदंचित कुंदरुचि स्मितैक सुंद-
दर वदनारविंदमु मुदंबुन दप्पक चूचियुन् मुनी-
श्वरुलु निजात्मलं दनिवि सालक वेंडियु जूचि रिम्मुलन् ॥ 536 ॥

चं. सुनिशित भक्ति दन्मुखमु जूचिन चूड्कुलु द्रिप्पलेकयुं
गनुगोनि रेंट्रुकेलकु नकल्मष भक्त विधूत खेदमुल्
मुनिजन चित्त मोदमुलु मुक्तिनिवास कवाट भेदमुल्
विनुत विनूत्न नूपुरिति वेदमु लम्महनीय पादमुल् ॥ 537 ॥

कलित केयूर, कंकणवलयों के विलसित होने पर, अन्य करतल में घुमाए जाने वाले अनुमोदित सुन्दर रूप वाले लीला रूपी कमल के सुशोभित होने पर, ५३४ [व.] और चरण-कमलों के मंजुल परागपुंज की प्रभा से रंजित, तुलसी के मकरन्द-बन्धुर गन्ध के अनुबंध से सुगन्धित हो गन्धवह (वायु) के आस्वाद लेते हुए सेवा-तत्पर हो आनेवाले योगीन्द्रों को मानस में आनन्दकारी और बहि:करण (तथा) अन्त:करण में आनन्द के रोमांचि के रुचिदायक और पूर्ण प्रभा से युक्त मूर्ति के साथ निज सौन्दर्य की श्रेष्ठ कला से श्रीरमणी के सौन्दर्य को विनिर्जित करते भासित होते हुए, पादचारी हो, अखिल विश्वगुरु सर्वेश्वर तब पधारा। ५३५ [चं.] स्थिर (शाश्वत) शुभलीला से आये हुए उस विभु के विद्रुम (मूंगा)-अरुणाधर जो नवपल्लव के समान हैं, स्फुरत सुन्दर कुन्द-पुष्प-सम स्मिति से सुशोभित सुन्दर मुखकमल को आनन्द के साथ देखकर भी मुनीश्वर अपने मन में तृप्त न हो बार-बार (एकटक) देखते रहे। ५३६ [चं.] सुनिशित (तीक्ष्ण, तीव्र) भक्ति के साथ उस मुख को देखनेवाली दृष्टियों को फेर न सके, अन्त में अकल्मष (निर्मल) भक्तों के खेदों को दूर करनेवाले, मुनिजन के चित्त को आनन्द प्रदान करनेवाले, मुक्तिनिवास के कवाट (द्वार) खोलनेवाले, विनुत वेदों में विनूतन रूप से मुखरित, उस महनीय के चरणों को देखा। ५३७ [चं.] देखकर, नाखून रूपी पद्मराग मणियों की कान्तियों से विभासित

चं. कनि नख पद्मरागमणि कांति विभासित पाद पद्ममुल्
मनमुलयंदु गील्कॉलिपि लब्ध मनोरथ युक्तुलै पुनः
पुन रभिवंदनंबुलु विभूति दलिर्प नॉनर्चि योगमा-
र्ग निरत चित्तुलुन् वॅदकि कानग लेनि महानुभावुनिन् ॥ 538 ॥

कं. मानसमुन निलिपिरि त, द्ध्यानास्पदुडैन वानि दत्त्वज्ञुलकुन्
गाननगु वानि भक्त ज, नानंद करेक मूर्ति नलरिन वानिन् ॥539॥

व. मरियु जक्षु रिंद्रिय ग्राह्यंबगु दिव्य मंगळ विग्रहंबु धरियिंचि युन्न पुरुषोत्तमु नुदात्त तेजोनिधि जूचि सनकादु लिट्लनि स्तुतियिंचिरि ॥540॥

सनकादुलु नारायणुनि स्तुतियिंचुट

चं. वनजदळाक्ष ! भक्तजन वत्सल ! देव ! भवत्सुतुंडु म-
ज्जनकुडु नैन पंकरुहजातुडु माकु रहस्य मॉप्प जॅ-
प्पिन भवदीय मंगळ गभीर परिग्रह विग्रहंबु मे
मनयमु जूड गंटिमि गृतार्थुलमै तग मंटि मीश्वरा ! ॥ 541 ॥

सी. देव ! दुर्जनुलकु भाविंच हृदय संगतुडवै युंडियु गानबडवु
कडगि मी दिव्य मंगळ विग्रहंवुन जेसि समंचि ताश्रितुल नॅल्ल

होनेवाले चरण-कमलों को मन में धारण कर, मनोरथ (कामना) की प्राप्ति कर, पुनःपुनः उसकी विभूति (ऐश्वर्य) प्रकट कर रहे हों, ऐसा अभिवादन कर, योगमार्ग में स्थिरचित्त वालों के ढूंढ़ने पर भी अप्राप्य होनेवाले महानुभाव को, ५३८ [क.] मानस में धारण कर, ध्यान के आस्पद बने हुए, तत्त्वज्ञों को दर्शन देनेवाले, भक्तजनों को आनन्द प्रदान करनेवाली मूर्ति के रूप में सुशोभित होनेवाले को, ५३९ [व.] और, चक्षु-इन्द्रिय से ग्राह्य होनेवाले दिव्य (तथा) मंगल-विग्रह (मूर्ति) को धारण किये हुए पुरुषोत्तम, उदात्त तेजोनिधि को देख सनकादि ने इस प्रकार स्तुति की। ५४०

सनकादि का नारायण की स्तुति करना

[चं.] हे वनजदलाक्ष (कमलपत्र-नेत्र वाले) ! हे भक्तजनवत्सल ! हे देव ! तुम्हारे पुत्र, (तथा) हमारे पिता पंकरुहजात (ब्रह्मा) के समुचित रूप से रहस्य को विदित करके बताए; तुम्हारे मंगल (एवं) गम्भीरता को परिग्रहण किये हुए तुम्हारे विग्रह के अवश्य दर्शन कर हम हे ईश्वर ! धन्य हुए। ५४१ [सी.] देव ! विचार करने पर हृदय-संगत होते हुए भी, दुर्जनों के लिए दृष्टिगत नहीं होते हो ! तुम्हारे दिव्यमंगल मूर्ति के समुचित रूप से आश्रित लोगों को स्वीकार कर, उनको सम्प्रीति के चित्तवाले बना

जेकॊनि संप्रीत चित्तुलगा जेयु दतिशय कारुण्यमति दनचि
कमलाक्ष ! सर्व लोकैक नायक ! भवत्संदर्शनाभिलाषानुताप

ते. विदित दृढभक्ति योग प्रवीणुलगुचु
नर्थिमै वीतरागु लैनट्टि योगि
जन मनः पंकजात निषण्णमूर्ति
वनि यॆरुंगुदु रय्य निन्नात्मविदुलु ॥ 542 ॥

कं. युक्ति दलप भव द्व्यति, रिक्तुमुलैनट्टि यितर दृढ कर्मंबुल्
मुक्तिदमु लैन मी पद, भक्तुलु दत्कर्मलनु वाटिप रिलन् ॥ 543 ॥

उ. कावुन गीर्तनीय गतकल्मष मंगळतीर्थकीर्ति सु-
श्रीविभव प्रशस्त सुचरित्रुडवैन भवत्पदाब्ज से-
वा विमलांतरंग बुधवर्ग मनर्गळ भंगि नन्यमुन्
भावमुनं दलंचुनॆ ? कृपागुण भूषण ! पाप शोषणा ! ॥ 544 ॥

च. परम तपो विधूत भवपापुलमै चरियिंचु माकु ने
डरय भव त्पदाश्रितुल नलिग शपिंचिन भूरि दुष्कृत
स्फुरण नसत्पथैक परिभूतुलमै निज धर्म हानिगा
निरयमु नॊंदगा वलसॆ नेरमु नेट्टक मम्मु गाववे ? ॥ 545 ॥

चं. कर मनुरक्ति षट्पदमु कम्र सुगंध मरंद वांछ चे-
वरमिडि शातकंटकवृत स्फुट नव्यतर प्रसून सं-

देनेवाले, अतिशय रूप से कारुण्य मति वाले हो ! हे कमलाक्ष ! हे सर्वलोकों में एकमात्र नायक ! तुम्हारे संदर्शक की अभिलाषा तथा अनुताप को [ते.] विदित करनेवाली दृढ़ भक्ति में प्रवीण होते हुए अर्थी (चाहकर) वीतरागी-योगीजनों के मन रूपी, कमल में प्रतिष्ठित होनेवाली मूर्ति वाले हो ! ऐसा आत्मविद्लोग तुम्हें जानते है। ५४२ [कं.] युक्ति से विचार करने पर, मोक्षदायक तुम्हारे चरणों के भक्त तुम्हारे विरोधी-दृढ़-कर्म इस धरा पर [ऐसे कर्म] नहीं करते। ५४३ [उ.] कृपागुण से विभूषित होनेवाले ! पाप का शोषण करनेवाले ! इसलिए कीर्तनीय, कल्मषों को मिटानेवाले, मंगलतीर्थ कीर्ति के सुश्री वैभव से प्रशस्त सुचरित्र वाले तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा को विमल अन्तरंग में लिये हुए बुध-वर्ग (-लोग) अनर्गल रीति से (अबाधगति से) अन्य की भावना क्योंकर करता है ? ५४४ [चं.] परम तप के कारण भव (सांसारिक)-पापों का प्रक्षालन कर विचरण करनेवाले हमें आज विचार करने पर, आपके चरणों के आश्रितों को कुपित हो शाप देने का अत्यन्त दुष्कृत (पाप) कर, एकमात्र असत्-मार्ग में चलकर निरय (नरक) को प्राप्त करना पड़ा। [हमें] दोषी न ठहरा कर, रक्षा करो न ! ५४५ [चं.] हे केशव ! अत्यधिक अनुराग के

जरुलनु डायु पोलिकनि भृशंबगु विघ्नमुलं जयिंचि मी
चरण सरोजमुल् गोलुव सम्मति वच्चितिमय्य ! केशवा ! ॥ 546 ॥

चं. अलरु भवत्पदांबुज युगार्पितमै पोलुपोंदु नट्टि यी
तुलसि पवित्रमैन गति दोयजनाभ ! भवत्कथा सुधा
कलितमुलैन वाक्कुल सकल्मष युक्तिनि विन्न गर्णमुल्
विलसितलीलमै भुवि बवित्रमुलै विलसिल्लु माधवा ! ॥ 547 ॥

चं. महित यशो विलासगुण मंडन ! सर्व शरण्य ! यिंद्रिय
स्पृहुलकु गानराक यतसीकुसुमद्युति नोप्पुचुन्न मी
सहज शरीर मिप्पुडु भृशंबुग जूचि मदीय दृक्कुलि
दहह ! कृतार्थतं बोरसे नच्युत ! म्रोक्केद मादरिपवे ! ॥ 548 ॥

अध्यायमु—१६

कं. अनि सनकादुलु तत्पद,
वनजमुलकु म्रोक्कि भक्तिवश मानसुलै
विनुतिंचिन गोविंदुडु
मुनिवरुलं जूचि पलिकॆ मुदितात्मुडै ॥ 549 ॥

कारण षट्पद (भ्रमर) मनोहर सुगन्ध (एवं) मकरन्द की कामना से, शीघ्रता से, शात (तीक्ष्ण) काँटों से आवृत, स्फुट-नव-विकसित पुष्पमंजरियों के निकट जाने की रीति अनेकानेक (अत्यधिक) विघ्नों को जीतकर, तुम्हारे चरणों की सेवा करने के निमित्त सम्मति से आये हैं। ५४६ [चं.] हे माधव ! हे तोयजनाभ (कमलनाभ वाले) ! शोभायमान तुम्हारे चरण-कमल युगल में समर्पित हो, विलसित होकर पवित्र होनेवाली इस तुलसी की रीति, भवत्कथा-सुधा से कलित वाक्यों को अकल्मष-युक्ति से सुननेवाले कर्ण, धरती पर, पवित्र हो, लीलारूप से सुविलसित (तथा) सुशोभित (अवश्य) होते हैं। ५४७ [चं.] हे महित यश के विलास वाले गुणों से मण्डित ! हे सर्वशरण्य ! इन्द्रिय में मग्न जनों को न दिखते हुए, अतसी-कुसुमों की [कान्तिद्युति] की भाँति भासित होनेवाले तुम्हारे सहज शरीर को आज अतिशय रूप से दर्शन कर हमारी दृष्टियाँ, अहहा ! धन्य हुईं। कृतार्थता को प्राप्त हुईं। हे अच्युत ! प्रणाम करते हैं। स्वीकार करो न।-५४८

अध्याय—१६

[कं.] इस प्रकार कहते हुए उन चरण-कमलों को प्रणाम कर भक्ति के वशीभूत मन वाले हो, सनकादि के स्तुति करने पर, मुनिवरों को देख मुदितात्मा हो गोविन्द ने कहा। ५४९ [व.] ये दोनों जय तथा विजय

व. ई यिरवुरु जय विजयाभिधानंबुलु गल मदीय द्वारपालकुलु। वीरु मिम्मुं गैकोनक मदीयाज्ञातिक्रमणुलै चेसिन यपराधंबुनकु दगिन दंडंबु गाविंचितिरि। अदियु नाकु नभिमतंबय्यॆ। आवयुनं गाक, भृत्य वर्गंबु चेयु नपराधंबु स्वामिविय। कान यी तप्पुनकु माननीयुंडनैन नन्नु मन्निंचि प्रसन्नु लगुवुरु गाक यनि वॆंडियु। निट्लनियॆ ॥ 550 ॥

चं. तनुवुन बुट्टि नट्टि बॆडिदंबगु कुष्ठ महा गदंबुचे
वनरि तदीय चर्ममु विवर्णित नॊंदिन रीति भृत्यु लॊ
प्पनिपनि सेसिनन् विभुलु बंधुर चारु यशंबु पेरु पॆं
पुनु जॆडिपोयि दुर्यशमु पॊंदुचु नुंदुरु विष्टपंबुलन् ॥ 551 ॥

चं. अलवड नाकु मी वलन नब्बिन तीर्थ सुकीर्तनीय स-
ल्ललित विनिर्मलामृत विलास यशो विभवाभिराममै
वॆलयु विकुंठ नाम मपवित्रमुन श्वपचाधमादि लो-
कुल चॆविसोक दत्क्षणमु पुनीतुल जेयु वारलन् ? ॥ 552 ॥

ते. अट्टि नेनु वलंप मी यट्टि साधु
जनुल कपकार मॊंथि जेसिन मदीय
बाहु समुनैन द्रुंतु नुत्साहलील
नन्न नितरुल मी म्रोलनॆन्न नेल ? ॥ 553 ॥

नामक मेरे द्वारपाल हैं। आपकी परवाह न कर, मेरी आज्ञा का अतिक्रमण कर किये अपराध के योग्य (अनुरूप) दण्ड आपने दिया। वह मुझे स्वीकृत हुआ। इसके अतिरिक्त भृत्यवर्ग (सेवकगण) के द्वारा किया गया अपराध स्वामी का है। इसलिए इस दोष के लिए माननीय होनेवाले मुझे क्षमा कर, प्रसन्न होइए, ऐसा कहकर और फिर कहा। ५५० [चं.] शरीर में उत्पन्न होनेवाले अति भयंकर कुष्ठ (कोढ़)-महारोग से पीड़ित होकर उस चर्म के विवर्ण होने की रीति, सेवकों के अनुचित कर्म करने पर विभु (राजा लोग) सुन्दर यश, नाम तथा औन्नत्य को खोकर, लोकों में दुर्यश को प्राप्त हो रहते हैं। ५५१ [चं.] समुचित रूप से मुझे आप लोगों से सम्प्राप्त हुए तीर्थ (पवित्र) [एवं] सुकीर्तनीय सल्ललित, विनिर्मल-अमृत से विलसित यश के वैभव से अभिराम हो, सुशोभित होनेवाले, वैकुण्ठ वाले का नाम अपवित्र मन वाले श्वपच (शूद्र) [तथा] अधम आदि लोगों के कानों में पड़ते ही उसी क्षण चाहकर उनको पुनीत कर देता है। ५५२ [ते.] ऐसा मैं, विचार करने पर, आप जैसे साधुजनों के प्रति चाहकर (जान-बूझकर) अपकार करने पर, मेरी बाहु के समान व्यक्ति को भी उत्साह-लीला से वध कर दूंगा, तब आपके सम्मुख अन्यों की गिनती क्यों ? [ऐसे दुष्टों का अवश्य वध कर दूंगा।] ५५३ [कं.] उत्तम

कं. धरणि सुरोत्तम सेवा, परिलब्धंबैन यट्टि पातक नाशं
कर निखिल भुवन पूत, स्फुरितांघ्रि सरोज तोयमुल गल नन्नून् ॥554॥

कं. अलघुमति विरक्तुनिगा
दलपक निज शुभ कटाक्ष दामक कलिता
खिल संपद्विभव श्री
ललना रत्नं बुरस्स्थलंबुनु जेंदेन् ॥ 555 ॥

चं. ऋतुवुलु सेयुचो शिखिमुखंबुन वेलुचु नट्टि वद्धृत
प्लुत चरु भक्षणन् मुदमु वोंदवु निस्पृह धर्ममार्ग सं-
गतुडगु भूसुरोत्तमु मुखंबुन वेड्क भुजिंचु नव्यवि-
स्तृत कबळंबुननन् मनमु तृप्ति वहिंचिन रीति निच्चलुन् ॥ 556 ॥

सी. सततंबु नप्रतिहत योगमाया विभूतिचे व्रख्याति वोंदु नेनु
ने महीसुरुल समिद्ध निर्मल पादनळिन रजो वितानमुलु भक्ति
हाटक नवरत्न कोटीरमुन दाल्तु नट्टि ना चरणांबुजांबुवुलनु
दविलि धरिंचि सद्यः पुनीतात्मुले र्थि जंद्रावतंसादिदेव

ते. चयमु लॅव्वाड ब्राह्मण जनुलु वमकु
नपकृतुल् सेसि रेनि माड्रलुग डतडु

धरणीसुरों की सेवा से परिलब्ध (सम्प्राप्त) पापनाशी, निखिल भुवनों को पूत (पुनीत) करनेवाले स्फुरित तोय (जल) से युक्त चरण-कमल वाले मुझे, ५५४ [कं.] अलघु मति वाले को, विरक्त न जानकर अपनी शुभ तथा कटाक्ष (वीक्षण) की पुष्पमालाओं से सुशोभित करनेवाली, अखिल सम्पदाओ, वैभवों की [अधिष्ठात्री] श्रीललना-रत्न (लक्ष्मी) ने मेरे उर-स्थल को प्राप्त किया। ५५५ [चं.] निस्पृह धर्म-मार्ग की संगति करने वाले, भूसुरश्रेष्ठ के द्वारा प्राप्त होनेवाले अविस्तृत (अपर्याप्त) कवल को भक्षण कर, नित्य ही मन जितना तृप्त होता है, उतना यज्ञ रचते समय शिखि (अग्नि) मुख में डाले जानेवाले उस घृत से भरे चरु (हव्य) के भक्षण करने से आनन्द नहीं पाता। ५५६ [सी.] सदा अप्रतिहत योग-माया की विभूति से प्रख्यात होनेवाला मैं जिन महीसुरों (ब्राह्मणों) की समिद्ध (समुचित रूप से सँजोए गए) निर्मल पाद-नलिन (चरण-कमल) के रजोसमूह (धूल) को भक्ति के साथ स्वर्ण (तथा) नवरत्न [खचित] कोटीर (मुकुट) पर धारण करता हूँ। ऐसे मेरे चरणाम्बुज (चरण-कमल) के अंबु (जल) को चाहकर धारण कर, सद्यः पुनीतात्मा हो, चाहकर चंद्रावतंस (शिव) आदि देवता, [ते.] श्रेष्ठगण कोई भी ब्राह्मण जन के द्वारा अपकृत होने पर, कुपित नही होता और विप्रों को मुझ जैसा ही भावना करता है,

विप्रुलनु नन्नु गाग भाविंचुनतडु,
धर्म पद्धति ना प्रियतमुडु वाडु ॥ 557 ॥

उ. गो विततिन् धरादिविज कोटिनि नन्नुनु दीन वर्गमुन्
वाविरि भेदबुद्धि गनुवार लधोगति बोंद नंदु ना-
शीविष रोष विस्फुरण जेंदि कृतांतभटुल् महोग्र गृ-
ध्रावळि बोलि चंचुवुल नंगमु लुद्धति नोंतु रेप्पुडुन् ॥ 558 ॥

चं. धरणि सुरोत्तमुल् बहुविधंबुल दम्मु बराभविंचिनन्
दरहसितास्युलै यतिमुदंबुन निच्चलु पूज सेयुचुन्
सरस वचो विलासमुल सन्नुति सेयुचु दंड्रि नात्मजुल्
गर मनुरक्ति बिल्चुगति गोनि पिलिचनवारु ना समुल् ॥ 559 ॥

कं. विनु डय्यनघ चरित्रुल,
कनयमु ब्रियतमुड नगुचु नम्मुडु वोदुन्
मुनु नन्नु भृगुवु दन्निन,
गनलक परितोषयुक्ति गंकोटि गदे ! ॥ 560 ॥

सी. यीलुचु ना चित्तमंदुल यभिप्रायंबु देलियंग लेक युद्धतुलगुचु
गणगि मी यानति गडचिन दद्दोषफलमु वीरलकु संप्राप्तमय्ये
मुनुलार ! ना चित्तमुन नुन्न रीतियु निट्टिद भूमिपै बुट्टि वीर
लचिरकालमुन न यंतिकंबुनकुनु नरुदेंचुनट्लुगा ननुमतिप

धर्मपद्धति के अनुसार वह मेरे लिए प्रियतम है। ५५७ [उ.] गोवितति (गोसमूह), ब्राह्मण कोटि, मुझे (और) दीनवर्ग को भेद-बुद्धि से (अलग) देखनेवाला अधोगति को प्राप्त होता है, वहाँ (नरक में) आशीविष (सर्प) के समान रोष-मति वाले हो कृतांत (यम)-भट महा-उग्र गृद्ध-समूह की चोंचों की भाँति, उद्धत अंगों को सदा चीर डालते रहते हैं। ५५८ [चं.] धरणीसुरोत्तम के नाना प्रकार अपना अपमान करने पर भी दरहसित-आस्य (हँसमुख) वाले हो, अति मोद से नित्य पूजा करते हुए, सरस वचन-विलास के द्वारा स्तुति करते हुए, [उस ब्राह्मण को] पिता को पुत्रों के अत्यधिक अनुराग से बुलाने की रीति, बुलानेवाले मेरे समान हैं। ५५९ [कं.] सुनो ! उन अनघचरित वालों को, सदा प्रियतम होते हुए, [उनके हाथ] बिक जाता (बस में हो जाता) हूँ। पूर्व में भृगु के लात मारने पर, कुपित न होकर परितोष की युक्ति (भावना) से स्वीकार किया था न ! ५६० [सी.] ऐसे मेरे मन के अभिप्राय को न जान सक, उद्वृत्त होते हुए, सप्रयत्न आपकी आज्ञा का उल्लघन करने के उस दोष का फल इनको सम्प्राप्त हुआ। हे मुनियो ! मेरे चित्त में स्थित रीति (विधान) यही है। धरा पर पैदा होकर ये अचिर काल में मेरे

ते. वलयुननि यम्मुकुंदुडु वलुकुटयुनु,
विनि मनंबुन सनकादि मुनिवरेण्यु
लम्महात्मुनि मृदुल भाषामृतंबु,
दविलि क्रोलियु रोष संदष्टु लगुचु ॥ 561 ॥

सी. मुनिवरुल् दम चित्तमुल दृप्ति वोंदक पंकजाताक्षुडु पलिकि नट्टि
परिमित गंभीर बहुळार्थ दुरवगाहमुलुनु विस्फुर दमृततुल्य
माधुर्य सुगुण समन्वितम्मुल विनिर्गत शब्द दोष निकायमुलुनु
नैन वाक्यमुलकु नात्मल बरितोष मंदि यिट्लनिरि नॆय्यमुन मनल

ते. नॊडय डिप्पुडु नंदिंचिमो ! तलंप,
नथि निंदिंचियो ! मत्कृतैक दंड
मुनकु संकोच मंदियो ! यनुचु संश,
यात्मु लगुचु विवेकिंचि यंत लोन ॥ 562 ॥

कं. नळिनाक्षुडु तम दॆस गृप
गलिगिन भावंबु दॆलिसि कौतुक मॊलयन्
बुलकीकृतांगुलै यु
त्कलिकन् हर्षिचि निटल घटितांजलुलै ॥ 563 ॥

कं. भरित निज योगमाया,
स्फुरणं दनरारु नतिविभूतियु वलमुन्
वरमोत्कर्षमु गल यी
श्वरुनकु निट्लनिरि मुनुलु सद्विनयमुनन् ॥ 564 ॥

समीप पहुँच जायें, ऐसी अनुमति देनी चाहिए। [ते.] ऐसा मुकुन्द के कहने पर, सुनकर, मन में सनकादि मुनिवरेण्य उस महात्मा के मृदुल भाषा-मृत (वचनों) को ग्रहण कर भी रोष-संदष्ट (रुष्ट) हो। ५६१ [सी.] मुनिवर अपने चित्त में तृप्त न हो, पंकजाताक्ष (कमल-नयन वाले) के परिमित-गम्भीर-बहुलार्थक (तथा) दुरवगाह (समझ में न आनेवाले), अतिशय रूप से अमृत-तुल्य माधुर्य सुगुण से समन्वित, शब्द-दोष-निकाय-रहित वाक्यों से आत्माओं में परितुष्ट हो, स्नेह के साथ [मन में] ऐसा सोचा— [ते.] अब प्रभु आनंदित है, अथवा चाहकर दोष दिखा रहा है या हमारे दण्ड देने के प्रति संकोच कर रहा है। [आदि को समझ न सक] संशयात्मा हो, [फिर] विवेक से विचार कर, उतने में, ५६२ [कं.] नलिनाक्ष (कमलनयन) के अपने प्रति कृपायुक्त होने के भाव को जानकर, कौतुक के बढ़ने पर, पुलकित अंगवाले हो, उत्कण्ठित हो, हर्षित हो, अंजलि को माथे पर लगाकर, ५६३ [कं.] अपनी प्रकट योगमाया (तथा) अतिविभूति और बल से, परम उत्कर्ष वाले ईश्वर से मुनियों ने

ते. पॉलुपु दीपिंप नित्य विभूति नाय
कुडवु भगवंतुडवु ननघुडवु नीवु
मत्कृतं बिण्डु नी कभिमत मटंटि
वीश ! भवदीय चारित्र मॅऱुग वरमॆ ? ॥ 565 ॥

उ. देव गणाळि कॅल्ल बरदेवतलै तनराहनट्टि वि-
प्रावळि कात्मनायकुडवै पॅनुपॊंदिन नीकु नी धरा
देवत लॅल्ल नॅन्न नधिदेवत लेरट यॅट्टि चोद्यमो !
देव ! समस्त पावन ! सुधीजनतावन ! विश्वभावना ! ॥ 566 ॥

चं. कमलदळाक्ष ! नी वलन गलिगन धर्ममु तावकावता-
रमुल सुरक्षितंबुग विरंबगु, नीश्वर निर्विकार त-
त्त्वमुन दनर्चु निन्नरय दत्फल रूपमु तत्प्रधान गो
प्यमु ननि पल्कुचुंदुरु कृपामय लोचन ! पापमोचना ॥ 567 ॥

चं. महि दलपोय नॆव्वनि समग्र परिग्रहमुन् लभिप नि-
स्पृह मतुलै मुनीश्वरुलु मृत्यु भयंबुन बातु रट्टि स-
न्महित विवेक शालि ! गुण मंडन ! नी किल नन्य सत्परि-
ग्रह मदि यॅट्टि चोद्यमु ? जगत्परिपालन ! नित्यखेलना ! ॥ 568 ॥

सी. सततंबु नर्थार्थि जन शिरोलंकार पदरेणुवुलु गल पद्म नेडु
जलज किंजल्क निष्यंद मरंद लोभागत भ्रमर नायकुनि पगिदि

सविनय के साथ कहा। ५६४ [ते.] सुंदरता के दीप्त होने पर नित्य-विभूति के नायक हो, भगवान हो, अनघ हो, [ऐसे] तुम हमारे कार्य को अपना अभिमत (इष्ट) कहते हो ! हे ईश्वर ! भवदीय चरित्र को जानना (किसके) वश की बात है ? ५६५ [उ.] सकल देवगणालि के लिए परदेवताओं के रूप में विलसित होनेवाले, विप्रावलि के आत्मनायक हो सुशोभित होनेवाले, तुम्हारे लिए धरा के देवता (ब्राह्मण) अधिदेवता बन गये है ? यह कैसा विचित्र है ! हे देव ! हे समस्त को पावन करनेवाले ! सुधीजनता (ज्ञानियों) के रक्षक ! हे विश्वस्वरूप ! ५६६ [चं.] हे कमल-दलाक्ष ! हे कृपामय लोचनवाले ! हे पाप-विमोचन करनेवाले ! तुम्हारे द्वारा स्थापित धर्म तुम्हारे अवतारों में सुरक्षित रूप से स्थिर होगा ! हे ईश्वर ! निर्विकार तत्त्व से सुविलसित होनेवाले तुम्हारे बारे में विचार करने पर, उसका फल प्रधानरूप से गोप्य (रहस्य) है, ऐसा कहते रहते हैं। ५६७ [चं.] विचार करने पर, इस धरा पर, समग्र रूप से परिग्रहण का लाभ होने पर, निस्पृह मति वाले हो, मुनीश्वर मृत्यु-भय से रहित हो जाते है, ऐसे अत्यन्त विवेकशाली ! गुणमंडन (गुणो से मडित) ! ऐसे तुम्हें इस धरा पर अन्य सत्-परिग्रह ! यह कैसी विचित्र बात है ? हे जगत का परिपालन करनेवाले ! हे नित्य केलिलीला वाले ! ५६८ [सी.] हे

धन्यजनार्पितोदंचित तुलसिका दामंबुनकु निजधाम मगुचु
भासिल्लु भवदीय पादारविंदमुल् विलसित भक्ति सेविंपुचुंड

ते. गमलनयन कृपावलोकनमु लॊलय,
नथि जूडवु भागवतानुरक्ति
जेसि भवदीय महिमंबु चित्र मरय,
चिर शुभाकार! यिंदिरा चित्तचोर! ॥ 569 ॥

म. चिर भाग्योदय! देव देव! ललित श्रीवत्स लक्ष्मांग! यी
वर विप्रानुपदंक पुण्यरजमे वर्णिप नी मेनि का
भरणं बंटिवि सर्वलोकुलकु विप्रश्रेणि माहात्म्य मी
वॆरुगं जॆप्पुटकै धरिंचिति गदा! यॆन्नन् बुनीताकृतिन् ॥ 570 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 571 ॥

सी. धर्ममूर्तिवि जगत्कर्तवु नगु नीवु प्रोवंग दगु वारि ब्रोववेनि
नविरळ वेदोक्तमगु धर्ममार्ग मसन्मार्गमगु गान सत्त्वगुण वि-
शिष्टुड वगुचु नी जीवरासुल सेम मरसि रक्षिचु नीदैन शक्ति
चेतनु धर्म विधातुल दंडिचु नीकु नंचितमैन निगम धर्म

चिर-शुभ-आकार वाले! इन्दिरा (लक्ष्मी) के चित्तचोर! सतत (निरंतर) अर्थार्थी (कामनाओं के याचक) जनों के सिर के अलंकार बने पदरेणुओं से युक्त [चरण] पद्मों की, आज जलज (कमल) के किंजल्कों से निष्यंद (चूनेवाले) मरंद के प्रति लोभ से आगत भ्रमरनायक के समान, धन्य जन (पुण्यात्माओं) के अर्पित उदंचित तुलसिका-दाम के लिए निजधाम (स्वस्थान) बनकर, [वि-] भासित होनेवाले भवदीय पादारविंदों की, विलसित भक्ति से सेवा करते रहने पर, [ते.] कमल रूपी नयनों के कृपावलोकनों के उमड़ने पर, चाहकर, भागवतों (भक्तों) के प्रति अनुरक्ति से नहीं देखते। सोचने पर भवदीय महिमा [वि-] चित्र है। ५६९ [म.] चिर भाग्य (चिर सौभाग्य) को उदित करनेवाले! हे देवदेव! ललित श्रीवत्स से लक्षित अंग हो! ऐसे तुम कहते हो कि श्रेष्ठ विप्र के चरणों का पुण्य रज ही, वर्णन करने पर, मेरे शरीर का आभरण है। सकल लोकों को विप्रश्रेणी के माहात्म्य को विदित करने के लिए ही, विचार करने पर लगता है कि इस पुनीत आकृति को धारण किये हो न! ५७० [व.] इसके अतिरिक्त, ५७१ [सी.] धर्ममूर्ति, जगत्कर्ता होनेवाले तुम यदि रक्षा करने योग्य लोगो को रक्षा नहीं करोगे, तो अविरल वेदोक्त धर्ममार्ग असन्मार्ग होगा। इसलिए सत्त्वगुण से विशिष्ट (सम्पन्न) होते हुए इन जीवराशियों की कुशलता को जानते हुए, रक्षा करनेवाली शक्ति से धर्म-विघातकों को दंडित करनेवाले तुम्हें अंचित निगमधर्म के [ते.] मार्ग

ते. मार्ग नाशकरंबुलु मदिकि निपु
गावु विप्रुलयंडु सत्करुण मॅंड्रसि
धनत बलिकिन विनयवाक्यमुलु नीकु
युक्तमगुचुंडु सततंबु भक्त वरद ! ॥ 572 ॥

व. अट्लैनं वरुल यॅड विनयंबुलु वलिकिनं प्राभवहानियगु ननि तलंचिति वेनि ॥ 573 ॥

ते. विश्वमुन कॅल्ल गर्तवु विश्वनिधिवि
विश्वसंरक्षकुंडवै वॅलयु नीकु
गडगि प्राभवहानि यॅक्कडिदि ? दलप
विनयमुलु नीकु लीललै वॅलयु गान ॥ 574 ॥

ते. मुनुलमगु मम्मु नतिमोदमुननु नोवु
सत्करिंचुट लॅल्ल सज्जन परिग्र-
हार्थमै युंडु गादे ! महात्म ! यॉक्कटि
विन्नविंचॅद मी जयविजयुलकु ॥ 575 ॥

ते. अलिगि मेमु शपिंचिन यंतकंटॆ,
बॅडिदमगु नाज्ञसेय नभीष्ट मेनि
जेयु मदिगाक समधिक श्री दनर्प
जेसि रक्षिंचॅदेनि रक्षिंपु मीश ! ॥ 576 ॥

व. अट्लैन माकुनु प्रियं बगुं गावुन ननपराधुलु नतिनिर्मलांतःकरणुलुनैन

के नाशकारी [विषय] मन को पसंद नहीं आते। हे भक्तवरद ! विप्रों के प्रति सत्करुणा से प्रकाशित होकर कहे गये विनय-वाक्य तुम्हारे लिए सदा योग्य ही होते हैं। ५७२ [व.] इस स्थिति में अन्यों के प्रति विनयपूर्वक [वचन] कहने पर प्राभव (महत्ता) की हानि का विचार करते हो तो, ५७३ [ते.] समस्त विश्व के तुम कर्ता हो। विश्व-निधि (-निवास) हो ! विश्व के संरक्षक के रूप में सुशोभित होनेवाले तुम्हारे लिए विचार करने पर, प्राभव (महत्त्व) की हानि कहाँ है ? विनय [वचन] से तो तुम्हारी लीला ही सुशोभित होती है। इसलिए, ५७४ [ते.] हे महात्मा ! हम मुनियों का अति आनन्द के साथ तुम्हारा सत्कार करना तो सज्जनों पर अनुग्रहार्थ ही है न ? इन जय-विजयो के लिए एक [बात की] विनती करेंगे। ५७५ [ते.] कुपित हो हमने शाप दिया, उससे बढ़कर भयानक आज्ञा देने की इच्छा हो तो वही करो। वह नहीं तो अत्यधिक श्री (शोभा) से हे ईश ! यदि रक्षा करना चाहते हो तो करो। ५७६ [व.] यदि वैसा हुआ तो हमें प्रिय ही होगा। इसलिए अनपराधी, अति-निर्मल अन्तः करणवाले इनके प्रति यदि हमने अनृत कहा, तो दिल खोलकर

वीरलकु ननृतंबुलु वलिकितिमेनि मम्मैनं जित्तंबु कौलवि नाज्ञापिपु मनि करकमलंबुलु मोंगिचि कृतांजुलुलै युन्न मुनुलं गरुणार्द्र दृष्टि गनुंगोनि ॥ 577 ॥

कं. अनघुडु भगवंतुं डि
ट्लनियेंन् मुनुलार ! वीर लनयमु भुविकिन्
जनि यचट नसुर योनिन्
जनियिचि महोग्र लोभ संगतु लगुचुन् ॥ 578 ॥

कं. देव जनावळि कुपहृति, गाविपुचु निखिल भुवन कंटकवृत्ति
जीविपुचु नायॆड सं, भावित वैरानुबंध भावुलु नगुचुन् ॥ 579 ॥

कं. आहव मुखमुन ननु नति,
साहसमुन नॆदिरि पोरि चक्र निशित धा-
राहति वॆगि वच्चॆद रु
त्साह मॆलपंग नादु सन्निधि कंतन् ॥ 580 ॥

व. अदियुनु गाक ॥ 581 ॥

कं. ननु वैरंबुननैननु, मनमुन दलचुटनु ना समक्षमुन मदा-
नन मोक्षिपुचु नीलुट, ननघात्मकुलै वसितु रस्मज्जगतिन् ॥ 582 ॥

कं. विनु डिटमीद निकॆन्नटि, किनि बुट्टुवु लेबु वीरिकिनि मीरलु प-
लिकन यट्ल नादु चित्तमु, ननु दलंतु गान मी मनंबुल निकन् ॥583॥

आज्ञा दो ! ऐसा कहते हुए, कर-कमल जोड़कर, अंजलि घटित कर स्थित मुनियों को करुणार्द्र दृष्टियों से देखकर, ५७७ [कं.] अनघ भगवान ने इस प्रकार कहा कि मुनियो ! ये क्रमश: भुवि पर जाकर वहाँ असुर योनि में जन्म लेकर, महा उग्रलोभ की संगति से (युक्त होकर), ५७८ [कं.] देवजनावली को उपहृति (उपद्रव-पीड़ा) देते हुए, सकल भुवनों के लिए कंटकवृत्ति में जीवन बिताते हुए, मेरे प्रति संभावित वैरानुबन्ध की भावना वाले होकर, ५७९ [कं.] युद्ध-भूमि में अति साहस के साथ मेरा सामना कर, संग्राम कर, चक्र की निशित धाराओं की आहति से कटकर (मरकर), तब उत्साहित हो (वापस) मेरी सन्निधि में आ जाएँगे। ५८० [व.] इसके अतिरिक्त, ५८१ [कं.] शत्रुता से ही सही मन में मेरा चिन्तन करने पर, मेरे समक्ष मेरे आनन (मुख) को देखते हुए मरने पर, अनघात्मा हो, मेरे जगत में वसते हैं। ५८२ [कं.] (और) सुनो ! अब आगे कभी इनके लिए कोई जन्म नहीं है। आपके कथन के अनुसार मेरा चित्त मेरा ही स्मरण करता रहता है, इसलिए अब आप अपने मन से, ५८३ [उ.] हे सुधीजन-पुंगवो (बुद्धिमानों में श्रेष्ठ) ! इसकी चिन्ता

उ. दीनिकि जितदक्कुडु सुधीजन पुंगवुलार! नावुडु-
न्ना नळिनासनात्मजु लनंतुनि भावमु दा मॅरिंगि पॅ-
पूनिन वेड्क देलि तॅलिवॉदन चित्तमुल न्नुतिचि रं-
भोनिधि-शायि, नार्तजन-पोषण-भूषणु, बाप-शोषणुन् ॥ 584 ॥

व. मरियुनु ॥ 585 ॥

उ. आ सनकादु लंत बुलकांकुरमुल् ननलॉत्त बाष्प धा-
रा सुभगाश्रुलै मुनिशरण्य वरेण्यु नगण्यु देवता
ग्रेसरु दिव्यमंगळ शरीरमु जारु तदीय धाममुन्
भासुर लील जूचि नव पद्म दळाक्षुनकुन् विनम्रुलै ॥ 586 ॥

कं. तम पलिकिन भाषणमुलु,
गमलोदरु वाक्य सरणिगा दलपुचु नॅ
य्यमुनन् वैष्णवलक्ष्मिन्,
ब्रमदंबुन ब्रस्तुतिचि परमेश्वरु चेन् ॥ 587 ॥

कं. आमंत्रितुलै तग निज,
धाममुलकु जनिरि वारु दड्यक लक्ष्मी
धामुडु जय विजयुल नभि
रामंबुग जूचि पलिकॅ रय मॉप्पारन् ॥ 588 ॥

कं. मी रसुर योनियं दनि, वारितुलै जननमंद वलसॅनु ने दु-
र्वार बलाढ्युड नरयुनु, वारिपग नोप विप्रवचनमु लॅंदुन् ॥ 589 ॥

छोड़ दो ! तब उस नलिनासनात्मज (ब्रह्मपुत्र, सनक-सनन्दनादि) ने अनन्त के भाव को स्वयं जानकर, अत्यधिक उत्साह के साथ जाग्रत् चित्तों से अम्भोनिधिशायी (विष्णु) की, जो आर्तजनों के पोषण को भूषण माननेवाला (तथा) पाप का शोषण करनेवाला है, स्तुति की। ५८४ [व.] और भी, ५८५ [उ.] वे सनकादि [मुनिगण] तब पुलकांकुरों के अंकुरित होने पर, वाष्पधाराओं से सुभग-अक्ष (आँखों वाले) होकर मुनियों को शरण देने में वरेण्य श्रेष्ठ, अगण्य, देवताग्रेसर के दिव्यमंगल शरीर को [तथा] उसके सुन्दर धाम को भासुर लीला से देखकर, नव-पद्म-दलाक्ष विष्णु के प्रति विनम्र हो, ५८६ [कं.] अपने कहे वचनों को कमलोदर (विष्णु) के वाक्यों की रीति मानते हुए, स्नेह से वैष्णव-लक्ष्मी की आनन्द के साथ प्रस्तुति कर, परमेश्वर के द्वारा, ५८७ [कं.] आमंत्रित (चेते जाकर) समुचित रूप से अपने-अपने घर (वापस) चले गये ! उसके पश्चात् तुरंत लक्ष्मीधाम वाले (विष्णु) ने जय-विजय की ओर आनन्द के साथ देखकर, कृपा विलसित होने पर, कहा। ५८८ [कं.] आप लोगों को अवारित रूप से असुरयोनि में जन्म लेना पड़ा। मैं दुर्वार (अबाधित)

कं. अदिगान दनुजयोनिं, बदपडि जनियिंचि मद्विपक्षुलरै मी
मदि नॆपुडु नन्नॆ तलपुचु, बदलक नाचेत जच्चि वच्चॆद रिटकुन् ॥ 590 ॥

उ. पॊंडनि यानतिच्चि हरि फुल्ल सरोरुह पत्रनेत्रु डा-
खंडल मुख्य दिग्वर निकाय किरीट लस न्मणि प्रभा
मंडित पादपीठुडु रमा रमणीमणि तोड नेगु दे
निंडिन वेड्क नेगॆ निज निर्मल मंदिर पुण्यभूमिकिन् ॥ 591 ॥

व. अंत ॥ 592 ॥

कं. निज तेजो हानिग जय
विजयुलु धर गूलि रपुडु विह्वलु रगुचुन्
द्रिजगमुल सुर विमान
व्रजमुल हाहारवंबु ग्रंदुग जॆलगन् ॥ 593 ॥

कं. वारलु वो दिति गर्भागारंबुन नुन्न वारु गडगि तदीयो
दार घन तेज मिपु डनि, वारण मी तेजमॆल्ल वम्मुग जेसॆन् ॥ 594 ॥

उ. इंतकु मूल मा हरि रमेश्वरु डर्थि नीनर्चु कार्यमुल्
वितलॆ ? सर्वभूत भव वृद्धि विनाशन हेतु भूतु डा-
द्यंत विकार शून्युडु दयानिधि मी यॆड मेलु सेयु नी-
चिंत दॊरंगि वे चनुडु चेकुरु मीकु मनोरथार्थमुल् ॥ 595 ॥

बलशाली होकर भी विप्र-वचनों को कभी रोक नहीं सकता। ५८९ [कं.] इसलिए दनुज योनि में बार-बार जन्म लेकर मेरे विपक्षी हो, अपने मन में मेरा स्मरण सदा करते हुए, निश्चित ही मेरे हाथों में मरकर यहाँ (वापस) आओगे। ५९० [उ.] जाओ, ऐसी आज्ञा देकर, हरि फुल्ल (विकसित) कमलपत्र-नेत्रों वाला, आखंडल (इन्द्र) आदि दिग्वर-निकाय (-समूह) के किरीटों में विलसित मणियों की प्रभाओं से मण्डित पादपीठ वाला, रमणीमणि रमा के साथ चलने पर, आनन्द के साथ अपने निर्मल मन्दिर की, पुण्य-भूमि (-प्रदेश) में चला गया। ५९१ [व.] तब, ५९२ [कं.] अपने तेज की हानि होने पर, जय-विजय विह्वल होते हुए धरा पर गिरे। तीन जगतों के सुरों के विमान-समूहों से हाहाकर मचकर (दिशाओं में) व्याप्त हुए। ५९३ [कं.] वे ही तो दिति के गर्भ के आगार में स्थित हैं। उस उदार घन तेज ने अनिवारण रूप से आपके समस्त तेज को विफल कर दिया, ५९४ [उ.] इन सबके मूल में स्थित हो उस हरि, रमेश्वर के अतिशय रूप से सम्पन्न करानेवाले कार्य विचित्र क्यों न होते ? सकल प्राणियों का सृजन, विकास, विनाश के कारणस्वरूप उस आदि, अन्त, विकार-शून्य वाला दयानिधि आपको शुभ करेगा। यह चिन्ता छोड़कर शीघ्र जाओ। आपके मनोरथ-अर्थ (इच्छाएँ) पूर्ण होंगी। ५९५

अध्यायमु—१७

कं. अनि वनजासनु डाडिन
विनि तद्वृत्तांत मॆरिगि विबुधुलु नाकं
बुन केगिरि दिति निज ना
थुनि माटलु दलचि यपरितोषमु तोडन् ॥ 596 ॥

जय विजयुलु दिति गर्भंबुन हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुलुगा बुट्टुट

ते. इंति तन सुतुलु सुरल गारिंतुरनुचु,
दलपुचुंडग नंत वत्सर शतंबु
सनग नटमीद गनियॆ गश्यपुनिदेवि,
यखिल लोकैक कंटकुलैन सुतुल ॥ 597 ॥

व. अव्यवसरंबुन ॥ 598 ॥

ते. धरणि गंपिचॆ गुलपर्वतमुलु वणकॆ,
जलधुलु गलंगॆ दारकावळुलु डुल्लॆ
गगन मगलॆनु ग्रोगॆ दिक्करुलु दिशल,
मिडुगुरु लॆगसॆ बिडुगुलु पुडमि बडियॆ ॥ 599 ॥

सी. होमानलंबुल धूमंबु लडरॆनु प्रतिकूल वायुवुल् बलसि वीचॆ
दरुवु लॆल्लॆड विटतांटबुलॆ कूलॆ ग्रह तारकावळि कांति मासॆ

अध्याय—१७

[कं.] इस प्रकार वनजासन (ब्रह्मा) के बोलने पर, सुनकर, उस वृत्तान्त को जानकर विबुध लोग (देवतागण) दिति के निजनाथ (पति) के वचनों का स्मरण कर, असीम आनन्द के साथ स्वर्ग को गए। ५९६

जय-विजय का दिति के गर्भ में हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु के रूप में पैदा होना

[ते.] (उस) कान्ता के ऐसा विचार करते-करते कि अपने पुत्र देवताओं को पीड़ित करेंगे, सौ साल बीत गये। उसके पश्चात् कश्यप की देवी ने अखिल लोकों के लिए कण्टक रूपी पुत्रों को जन्म दिया। ५९७ [व.] उस अवसर पर, ५९८ [ते.] धरणी कम्पित हुई। कुलपर्वत विचलित हुए। जलधियाँ विलोड़ित हुईं। तारकावली डुल गई। गगन विदीर्ण हो गया। दिग्गज झुक गए। दिशाओं में चिनगारियाँ फैल गयीं [और] पृथ्वी पर गाज गिरे। ५९९ [सी.] होमाग्नि में धुआँ अधिक हुआ। वायुएँ विजृम्भित होकर उठीं। सर्वत्र तरु उलट-पुलट हो

बॆरसि मॊगुळ्ळु नॆत्तुरुवान गुरिसॆनु मॆरुगुलु दॆसल मिमिट्लु गॊलिपॆ
स्वर्भानु डॊगि नपर्वमुन भानुनि बट्टॆ गॆकॊनि चिम्म चीकट्लु पर्वॆ

ते. मॊनसि कुक्कलु मॊर्रिगॆनु मोरलॆत्ति,
पगलु नक्कलु वापोयॆ खगमु लार्त-
रवमु लिच्चॆनु देवता प्रतिम लॊरगॆ,
गन्नुलनु नश्रु कणमुलु ग्रंदुकॊनग ॥ 600 ॥

कं. मॊदवुलु नॆत्तुरु जीमुनु,
विदिकॆनु गार्दभरवंबु भीषण मय्यॆन्
मदमुडिगॆ गरुल कटमुल,
बॊदिवॆ दुरंगमुल वालमुल निप्पु लॊगिन् ॥601॥

कं. गुहलु रॊदलिच्चॆ वाप, ग्रह मित्रत जॆंदि वक्रगतुलनु सौम्य
ग्रहमुलु वर्तिचॆनु दु, स्सह तेजो दिति तनूज संभव वेळन् ॥ 602 ॥

म. भयद प्रक्रिय नट्लु दोचिन महोत्पातंबु वीक्षिचि सं-
क्षय कालं बनि कानि साधु हननोग्र क्रूर देवाहि तो-
दय संक्षोभमुगा नॆरुंगक समस्त प्राणि जातंबु लु-
द्वय मंदॆन् सनकादि योगि जनमुल् दक्कन् बुधेंद्रोत्तमा ! ॥ 603 ॥

व. अट्लाविर्भविंचिन यनंतरंबु ॥ 604 ॥

टूट गिरे। ग्रहतारकावली कान्तिहीन हुई। मेघों ने अतिशयता से रक्त की वर्षा की। दिशाओं में विजलियाँ चौंध गयीं। स्वर्भानु ने (राहु) अपर्व (असमय) में सूर्य का ग्रहण किया, जिससे गाढ़ान्धकार व्याप्त हुआ। [ते.] लगकर कुत्तों ने सिर उठाकर भूँका। दिन में सियार ने रोदन किया। खगों (पक्षियों) ने आर्तरव किया। देवता-मूर्तियाँ आँखों में आँसुओं के भर जाने पर झुक गयीं। ६०० [कं.] धेनुओं ने खून और पीव का दोहन किया। गधों का रव भीषण हुआ। करियों (गजों) के गण्डस्थल पर मद [जल] सूख गया। क्रम से घोड़ों की पूँछों में आग लगी। ६०१ [कं.] दुस्सह तेज से युक्त दिति-पुत्रों के संभव (जन्म) की वेला में गुफाएँ गूँज उठीं। पापग्रहों की मित्रता से सौम्यग्रहों ने वक्र-गतियों से संचार किया। ६०२ [मं.] बुधेन्द्र-उत्तम ! भय देनेवाली प्रक्रिया मे उस प्रकार दिखाई पड़े महान उत्पातों को देखकर, संक्षय (प्रलय) काल है या साधुजन के हनन (मार डालने) वाले उग्र [तथा] क्रूर देव-अहितों (राक्षसों) के उदय [के कारण उत्पन्न] संक्षोभ है, इसे न जानकर, सनकादि योगिजनों को छोड़ समस्त प्राणि-जात (-समूह) भय (भ्रान्त) हुआ। ६०३ [व.] ऐसा [राक्षसों के] आविर्भूत होने के अनन्तर

म. कुल शैलाभ शरीरमुल् दनर रक्षोनाथु लत्युग्र दो-
र्बल मोप्पन् बद घट्टनन् धर चलिपन् रत्न केयूर कुं-
डल कांची कटकांगुळीयक किरीट स्वर्णमंजीर नि-
र्मल कांतुल् वुलकिप नात्मरुचिचे मंदी कृतार्कांशुलै ॥ 605 ॥

व. उन्न समयंबुनं गश्यपुंडु निज तनूभवुल जूडदलंचि दिति मंदिरंबुनकुं जनुदेंचि सुतुलं गनुंगोनि वारलकु नामकरणंबुलु सेयं दलंचि ॥ 606 ॥

चं. दिति जठरंबुनंदु दन तेजमु मुन्निडिनट्टि पुत्रु म-
द्भुत चरितुन् हिरण्यकशिपुंडनु पेर ब्रसूतिवेळ ना
दिति मुनु गन्न पट्टि रवितेजुनि गांचनलोचनुंडु ना
हितमति बेरु वेट्टि चनियें निज निर्मल पुण्य भूमिकिन् ॥ 607 ॥

व. अय्यवसरंबुन नतुल तेजो विराजितुंडैन हिरण्यकशिपुंडु हिरण्यगर्भ वरदान गर्वबुनं दुर्वार परिपंथि गर्व निर्वापणाखर्व भुजा विजृंभणंबुन नखिल लोकपालादुल जयिंचि स्ववशं बोनर्चि संतुष्टांतरंगुंडै येंदुनुं दनकु मृत्युभयंबु लेक निर्भयुंडै सुखंबुन नुंडे। तत्सोदरुंडैन हिरण्याक्षुंडु प्रतिदिवसंबुनु जंड वेदंड शुंडादंड मंडित भुजादंडंबुन गदा दंडंबु धरियिंचि तनु नेंदिरि कदनंबु सेयं जालिन यरि वीरुनि भूलोकंबुनं

(पश्चात्), ६०४ [म.] कुलपर्वत के समान शरीर के विलसित होने पर, रक्षोनाथ (राक्षसनाथ) अति उग्र-बाहु-बल के प्रकट होने पर, पदाघात से धरा के विचलित होने पर, रत्न-केयूर-कुण्डल कांची-कटक (-कंकण) अंगुलीयक (अँगूठियाँ), किरीट [तथा] स्वर्ण-मंजीरों की निर्मल कान्तियों के प्रकाशित होने पर, अपनी रुचि (कांति) से अर्क (सूर्य) के अंश (तेज) को मन्द (फीका) करते हुए, ६०५ [व.] रहते समय, कश्यप अपने तनूभवों (पुत्रों) को देखना चाहकर, दिति के मन्दिर (भवन) में आकर, सुतों को देखकर, उनके नामकरण करने का विचार कर, ६०६ [चं.] दिति के जठर में अपने तेज को प्रथमतः प्रस्थापित किया था, अपने उस पुत्र का, अद्भुत चरित्रवाले का नाम हिरण्यकशिपु रखकर [तथा] प्रसूति की वेला में दिति ने जिसे पहले जन्म दिया था, उस रवि तेजवाले का नाम कांचनलोचन वाला (हिरण्याक्ष) रखकर, उस हितमतिवाले (कश्यप) ने अपने निर्मल पुण्यभूमि को प्रस्थान किया। ६०७ [व.] उस अवसर पर, अतुल तेज से विराजित हिरण्यकश्यप हिरण्यगर्भ [ब्रह्मा] के वरदान के गर्व से भयंकर परिपंथियों (शत्रुओं) के गर्व-निवारण में खर्व (प्रचंड) भुजाओं के विजृम्भण से, अखिल लोकपालादि को जीतकर [अपने वश में कर] सन्तुष्ट अन्तरंग वाला हो [कहीं भी मृत्युभय के न होने से निर्भय हो] सुखी रहा। उसके भाई हिरण्याक्ष ने प्रतिदिन चण्ड-वेदंड

गानक, दिवंबुनकुं दाडिवॆट्टि यंदु समर विमुखुलैन र्वाहर्मुखुलं गनुंगॊनि वनजासन वर प्रदानंबु जिंतिंचि हितुलु चॆलंगं नहितुलु गलंग महित वैजयंतिका दामं बभिरामंबै वॆलुंगं जरणंबुल मणि नूपुरंबुलु मॊरय निज देहद्युति दिक्कुलं बिक्कटिलं जनुदॆंचु वानि गनि भीत चित्तुलै देवतागणंबुलु गरुडुनि गनि पऱचु नुरगंबुलं बोलॆ निजनिवासंबु लर्क कांचन निवासंबुलुग नॊनर्चि यॆक्कडि केनियुं जनिन ॥ 608 ॥

उ. शौर्यमु वोव दट्टि निज साधनमुल् दिगनाडि विक्रमौ-
दार्य पराक्रम क्रममु दव्वुग भीतिलि पाऱि रक्कटा!
क्रौर्यमु दक्कि नाकुलनि गॆकॊनि यार्चि सुमेरु पर्वत
स्थैर्युडु वार्धि जॊच्चॆ नति दर्पित भूरि भुजा विजृंभियै ॥ 609 ॥

व. इट्लु चॊच्चिन ॥ 610 ॥

कं. वरुणुनि बलमुलु दनु जे, श्वरु तेजमु देऱि चूडजालक शौर्य
स्फुरणमु चॆडि यॆंदेनियु, वऱचॆं दज्जलधि मध्यभागमुनंदुन् ॥ 611 ॥

कं. अमरारि विपुल निश्वा-
समुलं ब्रभविंचिनट्टि जलनिधि कल्लो-

(-गज) के शुंडादंड (सूँड़ के समान)-मंडित (विलसित) भुजादण्ड पर गदादण्ड को धारण कर, अपना सामना कर कदन (संग्राम) करने में समर्थ किसी शत्रुवीर को भूलोक में न पाकर, दिव (स्वर्ग) पर अभियान किया। वहाँ युद्ध के विमुख वर्हिमुखों (देवताओं) को देखकर, वनजासन (ब्रह्मा) के वर-प्रदान का विचार कर, हितुओं के विजृम्भित होने पर, अहितुओं के व्याकुल होने पर, महित वैजयन्तीमाला के अभिराम हो, प्रकाशित होने पर, चरणों के मणि [मय] नूपुरों के मुखरित होने पर, अपनी देहकान्तियों के दिशाओं में व्याप्त होने पर, आनेवाले उसे देखकर, भयभीत चित्त वाले हो, देवतागण, गरुड़ को देख भागनेवाले उरगों (साँपों) की रीति, अपने निवास स्थानों को अर्क (आक) कांचन (धतूरे) के निवास बनाकर (निर्जन बनाकर) कहीं चले गये। ६०८ [उ.] [इस प्रकार देवता] शौर्य को छोड़कर, अपने साधन त्यागकर, विक्रम, औदार्य, पराक्रम के क्रम को क्रमशः छोड़कर, भयभीत हो हाय भाग खड़े हुए। [स्वर्गवासियों की यह स्थिति जानकर उस राक्षस ने] क्रूरता से चीख मारकर, सुमेरुपर्वत के समान धैर्यशाली हो, अति गर्व के साथ अतिबलशाली भुजाओं के विजृम्भण करते हुए सागर में प्रवेश किया। ६०९ [व.] इस प्रकार प्रवेश करने पर, ६१० [कं.] वरुण की सेनाएँ दनुजेश्वर के तेज को आँख उठाकर देख न सक, अतिशय शौर्य को छोड़कर, जलधि के मध्य भाग में कहीं भाग गयीं। ६११ [क.] अमरारि (राक्षस) के विपुल निःश्वासों से (के

लमुलनु विपुल गदाखं-
डमुनं बो नडचे नति दृढंबगु शक्तिन् ॥ 612 ॥

चं. मरियुनु न म्महाजलधि मध्यमुनन् सुरवैरि पॅक्कु व-
त्सरमुलु ग्रीड सलिप रिपु सैन्य विदारण शौर्य खेलना
परत जरिंचि यव्वरुण पालितमैन लसद्विभावरी
पुरमुन केगि यंदु बरिपूर्णत नुन्न पयोधिनाथुनिन् ॥ 613 ॥

सी. यादोगणाधीशुडगुचु बाताळ भुवन परिपालुडै तनरुचुन्न
वरुणुनि गनुगॉनि परिहसितोक्तुल निट्लनु विश्वमं दॆन्न गलुगु
सकल लोकैक पालकुललो नति बलाधिकु डनि जगमु नुतिप दगिन
शूरुंड विपुडु नी पौरुष मॉप्पंग गदनरंगमुन नन्नॆदिरि चूडु

ते. नी भुजाविक्रमंबुनु प्राभवंबु
नणतु ननि पल्कुटय विनि यब्धिविभुडु
पगर जयमुनु, वृद्धियु,
बलमु, नात्म-बलमु दलपोसि दनुजुतो बवरमुनकु ॥ 614 ॥

कं. समयमु गादनि तन चि
त्तमुनं गल रोषवह्नि दालिमियनु तो
यमुचे दग नार्चुचु नुप
शमितोक्तुल बलिकॆ दनुज सत्तमु तोडन् ॥ 615 ॥

कारण) उत्पन्न हुए सागर के कल्लोल को विपुल गदादण्ड से दृढ़-शक्ति के साथ हटा दिया। ६१२ [चं.] और उस महाजलधि के मध्य में सुरवैरि (राक्षस) ने अनेकों वर्ष तक क्रीड़ा कर रिपु (शत्रु)-सेना को विदारित करनेवाले शौर्य की क्रीड़ा मे रत उस वरुण से पालित (शासित) लसत (सुंदर) विभावरीपुर को जाकर, वहाँ परिपूर्णता से स्थित पयोधिनाथ (सागर) को, ६१३ [सी.] यादोगण (जलचरगण) के अधीश हो पाताल-भुवन का पालन करते हुए विलसित वरुण को देखकर परिहासपूर्ण उक्तियों (वचनों) से ऐसा कहा कि विश्व में गणनीय लोकपालकों में अतिबलशाली के रूप में गणमान्य शूर हो। आज अपने पौरुष को प्रकट करते हुए, संग्राम-क्षेत्र में मेरा सामना कर देखो ! [ते.] तुम्हारी भुजाओं के विक्रम को तथा प्राभव (महत्त्व) को समाप्त कर दूंगा। ऐसा कहने पर सुनकर, अब्धिविभु (वरुण) शत्रु की विजय, वृद्धि, बल [और] अपने बल का विचार कर, राक्षस के साथ युद्ध करने का, ६१४ [कं.] यह समय (मौक़ा) नहीं है, ऐसा चित्त के रोष की अग्नि को धैर्य रूपी तोय (जल) के द्वारा क्रम से बुझाते हुए, दनुजसत्तम (राक्षसश्रेष्ठ) से उपशमित करने वाले उक्तियों (शान्त वचन) में बोला। ६१५ [चं.] मन में शान्ति को

चं. मनमुन शांति वूनि नियमंबुन संगर मुज्जगिंचि पै
ननयमु नुन्न वाड निपु डाहवकेळि जरिपराडु नी
घन भुज विक्रमस्फुरित गाढ विजृंभणमुन् जयिंप जा
लिन प्रतिवीरु लॆव्वरुनु लेरु मुकुंदुडु दक्क नॆक्कडन् ॥ 616 ॥

चं. गॊनकॊनि यम्महात्मुडु विकुंठ पुरंबुन नुन्न वाडु वा-
ननि मॊन वॆवकुमारु लभियातुल नोलि जयिंचि शक्ति पॆं-
पुन सडिसन्न वीरुडनि भूजनकोटि नुतिंचु नंदु वे-
चनु मतडिच्चु नीकु ननि सर्वमु दीरुडु नंत मोददन् ॥ 617 ॥

उ. निंदकु नोर्चि याजि मॊन निल्वग नोपक वीगि पारु नी
पंदल वॆंट वड्ड मग पंतमॆ ? सर्व शरण्युडैन गो-
विंदुडु दीर्चु नी पनि विवेकहीन ! चनंग नोपु दे-
नंदुल केगु मात डमरारुल वोर जयिंचु निच्चलुन् ॥ 618 ॥

व. अदियुनं गाक ॥ 619 ॥

कं. पुरुषाकृति प्रतियुगमुन, बुरुषोत्तमु डवतरिंचि भूरि भुजा वि-
स्फुरणन् दुष्टनिशाटुल, हरियिंचुचुनुंड मुनिगणार्चित पदुडै ॥ 620 ॥

उ. कावुन ना विभुं डॊडरि कय्यमु दय्य मॆरुंगजेसि र-
क्षोवर ! नी भुजा बलमु सॊंपरि मेदिनि गूलि सारमे

धारण कर नियम से संग्राम को छोड़कर मैं रहता हूँ। अब [मुझे] आह्वकेली (संग्राम-केली) करना नहीं चाहिए। (और) तुम्हारे घन (महान्) भुजा के विक्रम को प्रकट करनेवाले प्रगाढ़ विजृम्भण को जीतने में समर्थ प्रतिवीर, मुकुन्द के अतिरिक्त और कोई नहीं है। ६१६ [चं.] वह महात्मा प्रयत्न से वैकुण्ठपुर में, युद्धक्षेत्र में अनेक वार अभियात (शत्रुओं) को क्रम से जीतकर, शक्ति की अतिशयता से निपुण वीर के रूप में भूजन-कोटि के (भूलोकवासियों के समूह के) स्तुति करने पर स्थित है। तुम शीघ्र वहाँ चले जाओ। वह तुम्हें सब कुछ देगा, (और) तब (तुम्हारी) सब कुछ पूर्ण होगा। ६१७ [उ.] निन्दा सहते हुए, युद्धभूमि में टिक न सक, हारकर, भागनेवाले इन डरपोक लोगों के पीछे पड़ना कहीं मर्दानापन है ? [नहीं] हे विवेकविहीन (मूर्ख) ! सबके लिए शरण्य बने हुए गोविन्द तुम्हारा काम तमाम कर देगा। वह अमरारियों से युद्ध करने का नित्य इच्छुक है। वहाँ जा सकते हो तो जाओ। ६१८ [व.] इसके अतिरिक्त, ६१९ [कं.] प्रतियुग में पुरुषाकार लेकर, पुरुषोत्तम अवतरित हो, अत्यधिक भुजशक्ति से दुष्ट-निशाटों (-राक्षसों) का संहार करते हुए, मुनिगण से अर्चित (पूजित) चरण वाला होता है। ६२० [उ.] हे रक्षोवर (राक्षसश्रेष्ठ) ! इसलिए उस विभु के निकट जाकर,

यावळि काश्रयं बगुदु वच्चटि किप्पुड येगुदेनि नी
चेवयु लावु नेपंडुनु जॅप्पग नेटिकि मीवि कार्यमुल् ॥ 621 ॥

अध्यायमु—१८

चं. अनि वरुणुंडु वलिकन दुराग्रह मॅत्ति हिरण्यलोचनुं
डनयमु मानसंबुन भयं बॊक यितयु लेक संगरा
वनि नॅदिरितु ने डमर-वर्धनु दुष्ट-विमर्दनुं जना-
र्दनु ननुचुन् विकुंठ नगर स्फुट संचित मार्गवर्तियै ॥ 622 ॥

कं. चनु नवसरमुन नारद, मुनिवरु डॆदु रेगुदॆंचि मुदमु दलिर्पन्
दनुजेंद्र ! यॆंदु बोयॆद, वनि यडिगिन नारदुनकु नत डिट्लनियॆन् ॥623॥

चं. सरसिरुहाक्षुनि दॊडरि संगर मे नॊनर्चि यिंदिरा-
वरुनि ननंतु द्रुंचि सुरवैरि कुलंबुन कॆल्ल मोद वि-
स्फुरण घटिंप जेयुटकु बूनि विकुंठ पथानुवर्ति नै
यरिगॆद नन्न नम्मुनि-कुलाग्रणि रक्कसि ड्रेनि किट्लनुन् ॥ 624 ॥

चं. गुरुभुजु डम्महात्मुडु विकुंठ पुरंबुन नेडु लेडु भू
भरमु वहिंप नादि-किटि भावमु दाल्चि रसातलंबुनं

संग्राम और दैव को प्रकट कर, अपने भुजबल के सौन्दर्य को समाप्त कर, धरा पर गिरकर सारमेय (कुत्तों) के समूह का आश्रय बन जाओगे। अभी तुम वहाँ चलोगे, तो तुम्हारे बलगर्व तथा सामर्थ्य का पता लगेगा। आगे के कार्य का कहना क्या ? ६२१

अध्याय—१८

[चं.] इस प्रकार वरुण के कहने पर, दुराग्रह (बुरे क्रोध) के भड़कने पर हिरण्यलोचन (हिरण्याक्ष) मन मे किंचित् भी भय न रखते हुए, 'अमरों के वर्द्धक, दुष्टों के विमर्द्धक, जनार्दन का संग्राम में सामना करूँगा' कहते हुए वैकुण्ठ नगर को प्रस्फुटित करनेवाले मार्ग पर [चल पड़ा]। ६२२ [कं.] चलते समय नारद मुनिवर ने आकर, आनन्द प्रकट करते हुए पूछने पर कि 'दनुजेन्द्र ! कहाँ जाते हो ?' [नारद से] उसने इस प्रकार कहा। ६२३ [चं.] सरसीरुहाक्ष (विष्णु) के साथ सप्रयत्न संग्राम कर इन्दिरावर (रमाधीश), अनन्त का वध कर समस्त सुरवैरि (राक्षस)-कुल को आनन्द प्रदान करने का निश्चय कर, वैकुण्ठ के मार्गानुवर्ती हो जा रहा हूँ, ऐसा कहने पर मुनिकुलाग्रणि ने राक्षस-राजा से इस प्रकार कहा। ६२४ [चं.] गुरु भुजवाला वह महात्मा, वैकुण्ठपुर में आज नहीं है। भूभार का

दिरवुग नुन्न वा डचटि केगग नोपुदुवेनि नेगु मं-
दरयग गलुगु नीकु नसुरांतकु तोडि रणं बवश्यमुन् ॥ 625 ॥

चं. अनवुडु दानवेंद्रुडु हुताशनु कैवडि मंडि पद्मलो-
चनु नॅदिरिंचु वेडुकलु संदडि गौल्प ननल्प तेजुडै
घन गद गेल नूनि त्रिजगद्भयाकृति दालिच ग्रेलिमडिन्
जनियॆ रसातलंबुनकु जंड-भुजा-बलदर्प मेर्पडन् ॥ 626 ॥

व. चनि जलमध्यंबुन ॥ 627 ॥

कं. दिविजारि यॆदुर गांचॆनु, नविरळ दंष्ट्राभिरामु नमरललामुन्
गुवलय-भरणोद्दामुन्, सवनमय स्तब्दरोमु जलदश्यामुन् ॥ 628 ॥

व. अ य्यवसरंबुन सूकराकारुंडैन हरियु ॥ 629 ॥

कं. वनज रुचि सन्निभमु लगु,
तन लोचन युगळ दीप्ति दनर द दालो
कनमुल दनुजाधीशुनि,
तनुकांति हरिप जेसॆ दत् क्षणमात्रन् ॥ 630 ॥

व. मरियु नय्यादिवराहं बवार्य शौर्यंबुन माऱलेनि विहारंबुन जरियिंचु नट्टि यॆड ॥ 631 ॥

वहन करने के लिए आदि किटि (आदिवराह) रूप धारण कर रसातल में स्थिर रूप से है। यदि तुम वहाँ पहुँच सकोगे तो चलो। सोचने पर, वहाँ असुरान्तक (विष्णु) के साथ तुम्हारा अवश्य रण (युद्ध) होगा। ६२५ [चं.] कहने पर दानवेन्द्र (हिरण्याक्ष) ने हुताशन (अग्नि) की भाँति वल कर पद्मलोचन (विष्णु) का सामना करने के उत्साह के संरम्भ में अनल्प (अत्यधिक) तेज:शाली हो, हाथों में घन-गदा को लेकर तीन जगों के लिए भयद आकृति को धारण कर, पल भर में, प्रचण्ड भुजबल गर्व को प्रकट करते हुए, रसातल को प्रस्थान किया। ६२६ [व.] चलकर जल के बीच में, ६२७ [कं.] दिविजारि (राक्षस) ने [अपने] सम्मुख अविरल दंष्ट्राओं से अभिराम, अमरों के ललाम, कुवलय (धरती) के भरण (धारण) में उद्दाम, सवनमय (यज्ञमय) स्तब्ध-रोम (जंगली वराह), जलद-श्याम को देखा। ६२८ [व.] उस अवसर पर सूकराकार वाले हरि ने भी, ६२९ [कं.] तत्क्षण (उसी क्षण) वनज (कमल) की रुचि (कान्ति) के समान अपनी दोनों आँखों की जोड़ी की कान्ति को व्याप्त करते हुए, अपनी दृष्टियों से दनुजाधीश की शरीर-कान्ति को हर लिया। ६३० [व.] और उस आदिवराह के अवारित शौर्य के साथ अबाध गति से विहार करते समय, ६३१

हिरण्याक्षुंडु यज्ञवराहं बगु हरि नॆदिरिंचि युद्धमु चेयुट

सी. तुद मॊदळ्ळकु जिक्कि तुनिसि पाऱग मोर गुलशैलमुल जिम्मु गॊंत तडवु
ब्रह्मांड भांडंबु पगिलि चिल्लुलु वोव गॊम्मुल दाटिंचु गॊंत तडवु
जलधु लेडुनु बंकसंकुलंबै यिंक खुरमुल मट्टाडु गॊंत तडवु
नुडुराजु सूर्युंडु नॊक्कमूलकु बोग गुरुच वालमु द्रिप्पु गॊंत तडवु
ते. गुनिय गुप्पिंचु लंघिंचु गॊप्परिंचु,
नॆगयु धर द्रव्वु बॊड्रियगा नेपु मिगिलि
दानवेंद्रुनि गुंडॆलु दल्लडिल्ल
बंदि मॆल्लन रण परिस्पंदि यगुचु ॥ 632 ॥

व. मरियुनु ॥ 633 ॥

कं. कनुगवनिप्पुलु रालग, सुनिशित दंष्ट्राग्रयुत-वसुंधरु डगुचुन्
दन कॆदुरेतेरग गनि, वनचर मे रीति निपुडु वनचर मय्यॆन् ? ॥ 634 ॥

कं. अनि याश्चर्यं भयंबुलु,
दन मनमुन दॊंगलिप दनुजाधिपु डि-
ट्लनियॆन् भीकर सूकर,
तनु दॊंदि चरिंचु दनुजदर्पापहु तोन् ॥ 635 ॥

हिरण्याक्ष का यज्ञवराह-रूप वाले हरि का सामना कर युद्ध करना

[सी.] [वह आदिवराह] अपने मुख से कुल-पर्वतों को थोड़ी देर हिला-हिलाकर उखाड़कर फेंकता, कभी ब्रह्माण्ड-भाण्ड के छिद्र पड़कर टूट जाए ऐसा थोड़ी देर सींगो से मारता, कभी सात सागर कीचड़ से भरकर, सूख जाएँ, ऐसा खुरों से कुचल डालता, कभी चाँद और सूरज एक कोने में हो जाएँ, ऐसा थोड़ी देर अपनी छोटी पूँछ हिलाता, [ते.] कभी इठलाता, उछलता, लाँघता, उखाड़ता, ऊपर छलाँग मारता [और] विजृम्भित हो धरा को खोदकर बिल बनाता। दानवेन्द्र का दिल धड़क उठे [ऐसा वह], सुअर रण के लिए उद्यत हो, ६३२ [व.] और, ६३३ [कं.] नेत्र-युग्म से अंगारे बरसने पर, सुनिशित तीक्ष्ण दंष्ट्राओं के अग्रभाग पर वसुन्धरा (धरती) को धारण कर, [वराह के] अपने सम्मुख आने पर, वनचर (जंगल में घूमनेवाला) आज कैसा वनचर (जलचर) बन गया ? ६३४ [कं.] ऐसा आश्चर्य (तथा) भय के मन में एक साथ [उत्पन्न] होने पर, दनुजाधिप (हिरण्याक्ष) ने भीकर सूकर शरीर को धारण कर विचरण करनेवाले, दनुज (राक्षस) के दर्प को हरण करनेवाले से कहा। ६३५ [कं.] हे घनसूकर ! हे मूढात्मक ! वनरुह-

कं. घनसूकर ! मूढात्मक ! वनरुह-संभूत वत्त वर दानमुनन्
गनिन रसातल गत भुवि, यनयंबुनु ना यधीनमै वर्तिचुन् ॥ 636 ॥

कं. गॊनकॊनि नी वी धरणिन्,
गॊनि पोकुमु विडुवु काक कॊनिपोयॆदवेन्
गॊनियॆद नी प्राणमु गै
कॊनु ना वचनमुलु चलमु गॊन नेमिटिकिन् ॥ 637 ॥

कं. मायावि वगुचु निप्पुडु, पायक यी पुडमि चोरभावमुतो नी
वी यॆड गॊनिपो जूतुनॆ ? यायत भुजबलमुचेत नणपक यनुचुन् ॥638॥

सी. अविरळ योगमायावलंबुन जेसि यल्प पौरुषमुन् नलरु निन्नु
नर्थि संस्थापिंचि यस्म, त्सुहृद् भृत्य कुलुल कॆल्लनु मोद मॊलय जेय
जॆलुवेदि मद्गदा शीर्णुड वगु निन्नु गनुगॊनि देवतागणमु लॆल्ल
निर्मलुलै चाल नॆरि नशिचॆद रन्न विनि यज्ञ पोत्रियै वॆलयुचुन्न

ते. हरि सरोजज सुरमुनि-वरुल कॆल्ल
वच्चु दुरवस्थ कात्मलो वंत नॊंदि
निशित दंष्ट्राग्र लसितयै नॆगडु धरणि-
देवितो नॊप्पॆ ना देवदेव डंत ॥ 639 ॥

कं. सुररिपु वाक्यांकुशमुल
गुरु कुपित स्वांतु डय्यु गॊमरारं वसुं-

संभूत (ब्रह्मा) के द्वारा प्रदत्त वरदान के कारण रसातल गत भुवि निश्चय ही मेरे अधीन होकर रहेगी। ६३६ [कं.] सप्रयत्न इस धरती को तुम ले मत जाओ ! छोड़ दो ! यदि ले जाना चाहोगे तो तुम्हारे प्राण हर लूँगा। मेरी बात मान लो ! हठ क्यों करते हो ? ६३७ [कं.] मायावी हो अब इस धरती को, [हठ] न छोड़कर, चोर-भाव से इस अवसर पर ले जाना चाहते हो ? अत्यधिक भुजबल से दबाकर रखूँगा, कहते हुए। ६३८ [सी.] अविरल (अत्यधिक) योगमाया के बल से अल्प पौरुष से विलसित होनेवाले तुम्हें चाहकर स्थापित कर (गाड़कर) अपने सुहृद सेवकगण को मोद प्रदान करने के लिए, सौंदर्य खोकर मेरी गदा से शीर्ण बने तुम्हें देखकर, समस्त देवतागण निर्मूल (आधार-रहित) हो पूरी तरह से नष्ट हो जाएँगे। ऐसा कहने पर सुनकर, यज्ञ-पोत्री (-वराह) के रूप में विलसित, [ते.] हरि, सरोजज (ब्रह्मा), समस्त सुर, मुनिवरों को प्राप्त होनेवाली दुरवस्था के लिए आत्मा में दुःखी हो [तथा] निशित दंष्ट्राओं के अग्र [भाग] पर लसित हो शोभित धरणी देवी के साथ वह देवदेव सुशोभित हुआ। ६३९ [कं.] सुररिपु (हिरण्याक्ष) के वाक्यांकुशों से अत्यधिक कुपित-स्वांत (-मन) वाले होकर भी, वसुन्धरा के साथ, भयभीत होनेवाली

धर तोड भीति नीदिन
करिणि गल करिकुलेंद्रु करणि वेलुचन् ॥ 640 ॥

ते. निशित सित दंतरोचुलु निगि
बर्व गंधि वेडलि भयंकराकार लील
नरुगु भीषण मुख यज्ञवराहावतार
मीनर दाल्चिन पद्मलोचनुनि वेनुक ॥ 641 ॥

कं. करि वेनुक दगुलु नक्रमु
करणि जनि दैत्यविभुडु गदिसि ट्लनियेन्
दुरित पयोनिधि तरिकिन्,
गिरिकिन् खुरदळित मेरुगिरिकिन् हरिकिन् ॥ 642 ॥

कं. निंदकु रोयक लज्जं, जेंदक वंचनतु रणमु सेसि जयंबुन्
बोंदेद ननि मदि दलचुचु, बंदगतिन् बारु बंटु पंतमे ? नीकुन् ॥ 643 ॥

व. अनि याक्षेपिंचिन पुंडरीकाक्षुंडु कोपोद्दीपित मानसुंडै यंत ॥ 644 ॥

कं. तोयमुल मीद भूमि न, नायासत निल्पि दानि काधार मुगा
दोयज-नाभुडु दन बल, मायत मति बेट्टे सुरलु हर्षमु नोंदन् ॥ 645 ॥

ते. कुसुममुल वृष्टि बोरन गुरिसे नंत
विभव मोप्पार देव दुंदुभुलु मोरसे
गडक वीतेंचे गंधर्व गानरवमु,
नंदितमु लय्ये नप्सरो नर्तनमुलु ॥ 646 ॥

करिणी के साथ स्थित करिकुलेंद्र के समान अधिक शोभित हुआ। ६४० [ते.] तीक्ष्ण श्वेत दाँतों की कांतियों के आकाश में फैलने पर, गंधि (समुद्र) से निकलकर भयंकर आकार की लीला से चलनेवाले भीषण यज्ञवराहावतार को धारण किए हुए पद्मलोचन (विष्णु) के पीछे, ६४१ [कं.] करि (हाथी) के पीछे पड़नेवाले नक्र (मगर) की रीति जाकर, नियराकर, दैत्यविभु (हिरण्याक्ष) ने दुरित पयोनिधि (सागर) के लिए तरी (नौका), किरि (किटि-वराह) खुर-दलित मेरु गिरिवाले, हरि से इस प्रकार कहा। ६४२ [कं.] निन्दा की परवाह न कर, लज्जित न हो, धोखे से युद्ध कर जय की प्राप्ति करने का विचार करते हुए, डरपोक की रीति भाग जाना तुम्हारे लिए वीर का लक्षण है क्या ? ६४३ [व.] इस प्रकार आक्षेप करने पर पुंडरीकाक्ष कोपोद्दीप्त मानसवाला हो, तब, ६४४ [कं.] जल पर धरती को अनायास रखकर, उसके आधार के रूप में तोयज-नाभ (कमल-नाभ) ने, सुरों के हर्षित होने पर अपने बल को अतिशय वुद्धि से स्थापित किया। ६४५ [ते.] तब अत्यधिक रूप से पुष्पवृष्टि हुई, वैभव को प्रकट करते हुए देव-दुंदुभियाँ बजीं। गन्धर्वों का गानरव अटूट सुनाई पड़ा।

व. अय्यवसरंबु नय्यज्ञवराहमूर्तिधरुंडैन कमललोचनुंडु गनककुंडल केयूर ग्रैवेय कटकांगुळीयक भूषणरोचुलु निगि वर्व समर सन्नद्धुंडै ॥ 647 ॥

चं. धनगद गेल बूनि मणिकांचन नव्य विचित्र वर्म मि
पोनरग दालिच दानवनियुक्त दुरुक्त निशातबाणमुल्
दन घन मर्ममुल् गलप दानवहंत नितांत शौर्युडै
कनलुचु वच्चु न द्दनुजु गन्गोनि रोष विभीषणाकृतिन् ॥ 648 ॥

व. ऒप्पियु नगुचु निट्लनियें ॥ 649 ॥

म. विनरा! योरि! यमंगळाचरण! युद्वृत्तिन् ननु न्नी मदि
न्ननयंबुन् वन गोचरं बगु मृगं वंचुन् दलंतोर! ने
नॆनय न्वन्य मृगंब नौदु बलिनि न्नेतिचु नी वोटि यी
शुनक श्रेणि वधितु ने डनि मोनन् सोकोर्चि वर्तिचिनन् ॥ 650 ॥

कं. बलिमि गलदेनि नालो, गलननु नॆदिरिंचि पोर गडगुमु नी को
र्कुलु नेडु दीर्तु नूरक, तलपोय विकत्थनमुलु दगदु दुरात्मा! ॥ 651 ॥

चं. विनु मदि गाक संगर विवेक विशारदुलैन यट्टि स-
ज्जनमुलु मृत्युपाशमुल जाल निवद्धुलु नय्यु नी बलॆन्

अप्सराओं ने आनंद से नर्तन किया। ६४६ [व.] उस अवसर पर यज्ञ-वराह की मूर्ति को धारण करनेवाले, कमललोचन (विष्णु) कनक-कुण्डल, केयूर, ग्रैवेय (हार), कटक, अँगूठियाँ (आदि) भूषणों की कान्तियों के आकाश में फैलने पर, समर के लिए सन्नद्ध (तैयार) हो, ६४७ [चं.] घन गदा को हाथ में ले, मणिकांचन से विचित्र रूप में नवनिर्मित वर्म (कवच) को शोभा से धारण कर, दानव से प्रेषित होनेवाले दुर्भर तीक्ष्ण बाणों के अपने मर्मस्थानों पर लगकर, पीड़ा देने पर दानव-हन्ता (विष्णु) ने नितान्त शौर्य के साथ, क्रुद्ध हो, आगे बढ़ आनेवाले उस राक्षस को देखकर, रोष से विभीषण (भयंकर) आकार से, ६४८ [व.] सुशोभित हो, हँसते हुए, इस प्रकार कहा। ६४९ [म.] सुन रे! अरे! अमंगल चरणवाले! गर्व से तूने मुझे अपने मन में अवश्य ही वनगोचर होनेवाला मृग समझ रखा है। रे! मैं तो सोचने पर वन्य-मृग ही बन जाऊँगा। बल के साथ आनेवाले तेरे जैसे शुनक-श्रेणी (कुत्तों के झुण्ड) को, यदि मेरे आक्रमण का सामना कर टिक सकोगे, आज निश्चित रूप से वध करूँगा। ६५० [कं.] बल हो तो संग्राम में मेरा सामना कर लड़ने का प्रयत्न करो। तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा। हे दुरात्मा! सोचने पर विकत्थन (अपनी प्रशंसा) करना अनुचित है। ६५१ [चं.] इसके अतिरिक्त और सुनो! संग्राम में विवेक-विशारद (युद्ध में कुशल) सज्जन लोग मृत्युपाश में अत्यन्त निबद्ध होकर भी तुम्हारे जैसे जान-बूझकर आत्म-

गीनकौनि यात्म संस्तुतुलकु न्मुवमंदरिदेल ? यीविक
त्थनमुलु बंटु पंतमुलं ? दैत्यकुलाधम ! यॅन्नि चूडगन् ॥ 652 ॥

म. धृति बाताळमुनंदु नी वनॅडि संदीप्तोग्र निक्षेप मे
नति दर्पंबुन गौंदु जूडु मिदॅ देवाराति ! नन्नॅन्नॅदो
गतलज्जुंडन दागि युंडि रणमुं गाविंतु युष्मद्गदा-
वितत द्राविंतु डन्न नन्नॅदुरुमा ! वे तीर्तु नी कोरिकल् ॥ 653 ॥

उ. एन्न बदाति यूधमुल कॅल्ल विभुंडवु पोटु बंटवै
नन्नु रणोर्वि ने डॅदिरिनन् भवदीय बलंबु नायुवुन्
मिन्नक कौंदु जूडु मिदॅ मेरग मेदिनि वीत दैत्य मै
वन्नॅकु नॅक्क जॅसॅद नवार्य पराक्रम विक्रमंबुनन् ॥ 654 ॥

चं. ननु नॅदुरंग जालिन घनंबगु शौर्यमु धैर्यमुन् बलं
बुनु गलदेनि निल्वु रणभूमिनि नी हितुलैन वारिकिन्
गनुगव बाष्प पूरमुलु ग्रम्मग मान्पग नोपुदेनि च
य्यन जनुदॅम्मु दानवकुलाधम ! यूरक रज्जु लेटिकिन् ॥ 655 ॥

कं. ननु निट संस्थापिचॅद,
ननि पलिकिति बंतवाड वैदुवु नीकुन्
नॅनरैन चुट्टमुल बौड-
गनि रा यिदॅ यमुनि पुरिकि गापुर मरुगन् ॥ 656 ॥

स्तुति करने में उन्मद (मस्त) नही होते न ? हे दैत्यकुलाधम ! परखने पर ऐसे विकत्थन (आत्मस्तुति) वीर के लक्षण है क्या ? (नही) ६५२ [म.] देवाराति ! (देवता-वैरि) धृति (धैर्य) से पाताल में स्थित, और तुमने जिसका उल्लेख किया, सन्दीप्त उग्रता से उस निक्षेप को मैं अति दर्प के साथ ले लेता हूँ, यही देख लो। मुझे चुन लेते हो या लज्जा छोड़कर छिपकर युद्ध करोगे। यदि अपनी गदा को प्रेषित करने में पराक्रमशाली हो तो मेरा सामना करो ! तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करूँगा। ६५३ [उ.] विचार करने पर, समस्त पदाति-समूह के लिए विभु, अति शूर हूँ [ऐसे] मेरा रणोर्वि (युद्धभूमि) में आज सामना करोगे तो भवदीय बल [तथा] आयु को न छोड़कर (अवश्य) ले लूंगा। देखो ! इसी समय अवारित पराक्रम के विक्रम से मेदिनी (धरती) को दैत्यों से रहित कर प्रसिद्ध करूँगा। ६५४ [चं.] मेरा सामना करने में समर्थ घन-शौर्य, धैर्य [तथा] बल यदि है तो रणभूमि में टिके रहो ! तुम्हारे हित चाहने वालों की आँखों में आँसू भर लाना न चाहते हो तो शीघ्र भाग चलो। हे दानव-कुल-अधम ! बेकार बकवास क्यों करते हो ? ६५५ [कं.] 'तुम्हें यहाँ संस्थापित कर गाड़ दूँगा' ऐसा कहा था न ! तुम यदि

म. अनि यिट्लंगि सरोरुहाक्षुडु हिरण्याक्षुन् विडंबिंचि प-
लिकिन हासोक्तुल कुलिक रोप मद संगीभूत चेतस्कुडै
कनु ग्रेवन् मिणुगुर्लु चाल वॊडमंगा गिन्कमै दोक ग्रो
विकिन कृष्णोरगराजु माड्कि मदिलो गीड्पाटु वाटिल्लगन् ॥ 657 ॥

कं. चलितेंद्रियुडै निट्टू-
र्पुलु निगिडिपुचुनु बोमलु मुडिवड रोषा-
कुल मानसुडै गद गौनि,
जलजोदरु कॆदुरु नडचॆ साहसमॊप्पन् ॥ 658 ॥

म. गद सारिंचि मदासुरेंद्रुडु समग्र क्रोधुडै माधवुं
गुदियन् व्रेसिन व्रेटु गैकॊनम रक्षोहंत शौर्योन्नतिन्
गद गेलन् धरियिंचि दानि वुनुकलगाविंचिनं दैत्युडु-
न्मदुडै यॊंडु गदन् रमाविभुनि भीमप्रक्रियन् व्रेसिनन् ॥ 659 ॥

चं. अदि दनु दाककुंडु नसुरारि गदा रण कोविद क्रिया-
स्पद करलाघव क्रममु गैकॊनि चूपि विरोधि पेरुरं-
बदयत व्रेय वाडु विवशाकुल भावमु नौंदि यंतलो
मदि दॆलिवॊंदि व्रेसॆ रिपुमान विमर्दनु ना जनार्दनुन् ॥ 660 ॥

इतने समर्थ हो तो अपने बन्धुगण (रिश्तेदारों) के दर्शन कर, यमपुरी के निवास के लिए [तैयार होकर] आओ! ६५६ [म.] ऐसा कहते हुए, सरोरुहाक्ष (कमलनयन) के हिरण्याक्ष की अवहेला करते हुए कहे गये परिहास की उक्तियों से झट क्रोध, रोप (तथा) मद से युक्त चेतना वाले हो, आँखों के कोरों से अनेक अंगारों के उत्पन्न होने पर, कुपित हो, [किसी के पैरों तले] कुचले गये दुम वाले कृष्ण-उरगराज (-सर्पराज) की भाँति मन में बुरी तरह व्याकुल हो, ६५७ [कं.] चलित इन्द्रियवाला हो, निःश्वास भरते हुए, भौंह चढ़ाकर, रोपाकुल-मानस वाला हो, गदा लेकर जलजोदर (विष्णु) के सम्मुख साहस के साथ चल पड़ा। ६५८ [म.] मदमत्त हो असुरेन्द्र के अत्यन्त क्रोध के साथ गदा घुमाकर, माधव गिर जाए ऐसा मारने पर, राक्षसों के हन्तक (विष्णु) ने अत्यधिक शौर्य के साथ गदा को हाथों में लेकर, उसे (राक्षस की गदा को) टुकड़े कर देने पर, दैत्य के उन्मद हो, दूसरी गदा को रमाविभु पर भयंकर प्रक्रिया से मारने पर, ६५९ [चं.] वह अपने को न लगे ऐसा (वचकर) असुरारि (विष्णु) ने गदा-रण में कोविद-क्रिया के साथ, कर-लाघव (चातुर्य) दिखाकर विरोधी की वड़ी छाती पर अतिवल से मारने पर, उसने बिवश, आकुल भाववाला वनकर, तत्काल मन में जाग्रत् हो रिपु के मान का विमर्दन करनेवाले जनार्दन को [उसने] मारा। ६६० [व.] इस प्रकार टकरा

व. इट्लु दलपडि यन्योन्य जयकांक्षल नितरेतर तुंग तरंग ताडितंबुलगु दक्षिणोत्तर समुद्रंबुल रौद्रंबुन, बरस्पर शुंडादंड घट्टित मदांध गंधसिंधुर युगंबु चंदंबुन, रोष भीषणाटोपंबुलं वलपडु बॆब्बुलुल गब्बुन, नतिदर्पाति रेकंबुन नॆर्विच्चि ढ्रक्कॊलु वेचु मदवृषभंबुल रभसंबुन, नसह्य सिंहपराक्रमंबुन, विक्रमिंचि पोरुनॆड हिरण्याक्षुंडु सव्य मंडल भ्रमणंबुनं बरिवेष्टिचिनं बुंडरीकाक्षुंडु दक्षिणमंडल भ्रमणंबुनं दिरिगि, विपक्ष वक्षं बशनिसंकाशं-बगु गदादंडंबुनं बगिलिचिन, वाडु दंप्पिरि तॆलिवॊंदि दनुज-परिपंथि फालंबु नॊंचिन, नम्मेटि वीरुलु शोणित सिक्तांगुलै पुष्पिताशोकंबुलं बुर्णिपुचुं वायुचु डायुचु वेयुचु ड्रोयुचु नॊंडॊरुल रुधिरंबु लाघ्राणिपुचु दिरस्कार परिहासोक्तु लिच्चुचु घोरु समयंबुन नम्महा बलुल समरंबु जूचु वेड्क बद्म-संभवुंडु निखिल मुनींद्र सिद्ध साध्य देव गणंबुलतोड जनुदेंचि धरित्री निमित्तं बसुर तोड बोरु यज्ञ वराहुन किट्लनियॆ ।। 661 ।।

उ. अंचित दिव्यमूर्ति ! परमात्मक ! यी कलुषात्मुडॆन न-
क्तंचरु डस्मदीय वर गर्वमुनन् भुवनंबुलॆल्ल गा-

कर, परस्पर जय की आकांक्षाओं से, परस्पर तुंग (ऊँची) तरंगों से ताड़ित होनेवाले दक्षिण तथा उत्तर के सागरों के रौद्र की रीति, परस्पर शुण्डादण्ड (सूँड़ों) से मार लेनेवाले, मद से अन्धे, गन्ध-सिन्धुरों (हाथियों) की रीति, रोष तथा भीषण आटोप के साथ परस्पर टकरानेवाले सिंहों की रीति, अति दर्पातिरेक से टकराकर रँभानेवाले मतवाले वृषभों के संरम्भ की रीति, अत्यधिक सिंह-पराक्रम के साथ विक्रमित हो संग्राम करते समय हिरण्याक्ष के सव्य मण्डल भ्रमणकर परिवेष्टित होने पर, पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) के दक्षिण मण्डल के भ्रमण में विपक्षी के वक्षःस्थल पर अशनि (वज्र) के समान गदादण्ड से मारने पर, वह मूर्च्छित हो, फिर से जाग्रत् हो दनुज-परिपंथि (दनुजारि) के फाल-भाग (माथे) पर मारने पर, उन दोनों महावीरों के शोणित (रक्त) से सिक्त अंगवाले हो, अशोक पुष्पों की समता करने पर, वे अलग होते हुए, नियराते हुए, मारते हुए, [एक-दूसरे को] खोजते हुए, एक-दूसरे के रुधिर (खून) को सूंघते हुए, तिरस्कार [तथा] परिहासपूर्ण उक्तियों से संग्राम करते रहे। उस समय में उन महावलशालियों के समर को देखने के उत्साह से पद्मसम्भव (ब्रह्मा) ने सकल मुनीन्द्र, सिद्ध, साध्य, देवगणों के साथ आकर, धरित्री के निमित्त असुरों के साथ लड़नेवाले यज्ञवराह से इस प्रकार कहा। ६६१ [उ.] हे अंचित पूज्य दिव्य मूर्ति (वाले)! परमात्मा! इस कलुषात्मा नक्तंचर (राक्षस) के मेरे वर से गर्वीले बनकर, सकल भुवनों को त्रास देते हुए, मतवाले बने ऐसे विपरीत-चरित वाले का वध किये विना इस प्रकार उपेक्षा करना ठीक नहीं है। इसके

रिचु मदिचु निट्टि विपरीत चरित्रुनि द्रुंप किट्लुपे-
क्षिचुट गादु वीनि बलिसेयु वसुंधरकुन् शुभंबगुन् ॥ 662 ॥

कं. बालुडु गरमुन नुग्र, व्याळमु धरियिंचि याडु वडुवुन रक्षः
पालुनि द्रुंपक यूरक, पालार्चुट नीतिये ? शुभप्रद ! यिकन् ॥ 663 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 664 ॥

म. अनघा ! यी यभिजि न्मुहूर्तमुन देवाराति मर्दिपवे !
ननयंबुन् मरि दैत्यवेळ यगु संध्याकाल मेतेंचिनन्
घन माया बलशालियैन दनुजुन् खंडिपगा राबु का-
वुन नी वेळन त्रुंपु सज्जन हित प्रोद्योग रक्तुंडवै ॥ 665 ॥

अध्यायमु—१९

कं. अनि सरसिज-गर्भुंडु व-
ल्किन वचनमु लर्थि विनि निर्लिपुलु गुंपुल्
गौनि चूड सस्मिताननं-
वनजमु चेलुवौद नसुरवरु कभिमुखुडै ॥ 666 ॥

ते. पुंडरीकाक्षु डय्युनु भूरिरोष-
निरति दीपिंप नरुणाब्ज नेत्रु डगुचु

बलि देने से वसुन्धरा का शुभ होगा। ६६२ [कं.] हे शुभप्रद ! बालक के अपने हाथ में उग्र सर्प को लेकर खेलने की रीति राक्षसपालक का वध न कर, और उपेक्षा करते रहना नीति (संगत) है क्या ? ६६३ [व.] इसके अतिरिक्त, ६६४ [म.] अनघ ! इस अभिजित् मुहूर्त में (ठीक मध्याह्न) देवताओं के शत्रु को मार डालो न ! क्रमशः फिर दैत्य-वेला (राक्षसों के लिए बलदायक होनेवाले) सन्ध्याकाल के आने पर घन माया के साथ बलशाली होनेवाले राक्षस को खण्डित नहीं कर सकते। इसलिए सज्जनों के हितों की रक्षा के संकल्प में अनुरक्त होकर, अभी इसे काट डालो। ६६५

अध्याय—१९

[कं.] इस प्रकार सरसिजगर्भ (ब्रह्मा) के कहे गये वचन ध्यान से सुनकर, देवताओं के झुण्ड बाँधकर देखने पर विकसित कमल-मुख के शोभित होने पर, असुर वर के अभिमुख हो, ६६६ [ते.] पुण्डरीकाक्ष होकर भी अत्यधिक रोषनिरति को प्रकट करते हुए अरुण कमलों के समान नेत्र वाला हो, घन गदादण्ड को उठाकर राक्षस के हनुओं (जबड़ों) को

घन गदादंड मॅत्ति राक्षसुनि हनुव-
सुग्रगति मीत्तॅ वाडुनु नोसरिचॅ ॥ 667 ॥

कं. परुवडि दितिसुतु डति भी, कर गद जेबूनि चित्रगतुलं बद्मो-
दरु डासि चेतिगद सा, गरमुन बड नडिचॅ बाहु गर्व मॅलर्पन् ॥ 668 ॥

व. अंत ॥ 669 ॥

ते. हरि निरायुधुडैन सुरारि समर-
धर्ममात्मनु दलचि युद्धंबु दक्कि
निलिचि चूचुचुंडॅनु निंगि यमर-
वरुल हाहा! रवंबुल भरित मय्यॅ ॥ 670 ॥

कं. सरसजनेत्रुडु दनुजे, श्वरु संगर धर्ममुनकु समधिक शौर्य
स्फुरणकु दन चित्तंबुन, गर माश्चर्यंबु नौदि कडक दलिर्पन् ॥ 671 ॥

म. कुतलोद्धर्त मनंबुनं दलचॅ रक्षोराड्वधार्थंबुगा
दिति संतान कुलाटवी महित संदीप्त प्रभाशुक्रमुन्
सततोद्यज्जयशब्द सन्मुखर भास्वच्चक्रमुन् संतता-
श्रित निर्वक्रमु बालित प्रकट धात्री चक्रमुन् जक्रमुन् ॥ 672 ॥

व. अदियुनुं ब्रचंड मार्तांड मंडल प्रभापटल चटुल विद्योत मानंबुनु, पटु नट

उग्रगति से मारने पर वह हट गया। ६६७ [कं.] क्रम से दितिसुत (राक्षस) ने अति भयंकर गदा को लेकर चित्रगतियों से पद्मोदर (विष्णु) के समीप पहुँचकर, अपने वाहुबल गर्व को प्रकट करते हुए [हरि के हाथ की] गदा को सागर में फेंक दिया, ६६८ [व.] तव, ६६९ [ते.] हरि के निरायुध होने पर समर-धर्म का विचार कर, सुरारि के युद्ध को छोड़, देखते खड़े रहने पर आकाश अमरवरों के हाहाकारों से भर (गूंज) गया। ६७० [कं.] दनुजेश्वर (राक्षसेश्वर) के संग्राम धर्म [तथा] अत्यधिक शौर्यबल (पराक्रम) के प्रति सरसिज-नेत्र (विष्णु) आश्चर्यान्वित होकर हठ के अंकुरित होने पर, ६७१ [म.] कुतल (पृथ्वी) का उद्धार करनेवाले (विष्णु) ने राक्षस राजा का वध करने के लिए, दिति सन्तान रूपी कुल-अटवि (-जंगल) को घनरूप से सन्दीप्त करनेवाली प्रभा से युक्त शुक्र (-अग्नि) का, सदा उद्यत हो जय शब्द को मुखरित करनेवाले भास्वत् चक्र का, सदा आश्रित जनों को निर्वक्र पराक्रम के साथ पालन करनेवाले का, प्रकट रूप से धात्रीचक्र की रक्षा करनेवाले चक्र का (विष्णु ने मन में) विचार (स्मरण) किया। ६७२ [व.] वह भी प्रचण्ड मार्तण्ड (सूर्य)-मण्डल के प्रभापटल से युक्त चटुल-विद्योतमान (प्रकाशमान) और पटु-नटत् ज्वालाओं से समस्त कुपित आराति (शत्रु)-वल के अखर्व तथा दुर्वार

दिरवुग नुन्न वा डचटि केगग नोपुदुवेनि नेगु मं-
दरयग गल्गु नीकु नसुरांतकु तोडि रणं बवश्यमुन् ॥ 625 ॥

चं. अनवुडु दानवेंद्रुडु हुताशनु फँवडि मंडि पद्मलो-
चनु नॆदिरिंचु वेडुकलु संदडि गॊल्प ननल्प तेजुडै
घन गद गेल नूनि त्रिजगद्भयाकृति दालिच ग्रेलिमडिन्
जनियॆ रसातलंबुनकु जंड-भुजा-बलदर्प मेर्पडन् ॥ 626 ॥

व. चनि जलमध्यंबुन ॥ 627 ॥

कं. दिविजारि यॆदुर गांचॆनु, नविरळ दंष्ट्राभिरामु नमरललामुन्
गुवलय-भरणोद्दामुन्, सवनमय स्तब्दरोमु जलदश्यामुन् ॥ 628 ॥

व. अ य्यवसरंबुन सूकराकारुंडैन हरियु ॥ 629 ॥

कं. वनज रुचि सन्निभमु लगु,
तन लोचन युगळ दीप्ति दनर द दालो
कनमुल दनुजाधीशुनि,
तनुकांति हॅरिप जेसॆ दत् क्षणमात्रन् ॥ 630 ॥

व. मरियु नय्यादिवराहं बवार्य शौर्यंबुन माऱुलेनि विहारंबुन जरियिंचु
नट्टि यॆड ॥ 631 ॥

वहन करने के लिए आदि किटि (आदिवराह) रूप धारण कर रसातल में स्थिर रूप से है। यदि तुम वहाँ पहुँच सकोगे तो चलो। सोचने पर, वहाँ असुरान्तक (विष्णु) के साथ तुम्हारा अवश्य रण (युद्ध) होगा। ६२५ [चं.] कहने पर दानवेन्द्र (हिरण्याक्ष) ने हुताशन (अग्नि) की भाँति वल कर पद्मलोचन (विष्णु) का सामना करने के उत्साह के संरम्भ में अनल्प (अत्यधिक) तेजःशाली हो, हाथों में घन-गदा को लेकर तीन जगों के लिए भयद आकृति को धारण कर, पल भर में, प्रचण्ड भुजबल गर्व को प्रकट करते हुए, रसातल को प्रस्थान किया। ६२६ [व.] चलकर जल के बीच में, ६२७ [कं.] दिविजारि (राक्षस) ने [अपने] सम्मुख अविरल दंष्ट्राओं से अभिराम, अमरों के ललाम, कुवलय (धरती) के भरण (धारण) में उद्दाम, सवनमय (यज्ञमय) स्तब्ध-रोम (जंगली वराह), जलद-श्याम को देखा। ६२८ [व.] उस अवसर पर सूकराकार वाले हरि ने भी, ६२९ [कं.] तत्क्षण (उसी क्षण) वनज (कमल) की रुचि (कान्ति) के समान अपनी दोनों आँखों की जोड़ी की कान्ति को व्याप्त करते हुए, अपनी दृष्टियों से दनुजाधीश की शरीर-कान्ति को हर लिया। ६३० [व.] और उस आदिवराह के अवारित शौर्य के साथ अवाध गति से विहार करते समय, ६३१

यनवुडु वाडु नुब्बि गद नंबुज-नाभुनि व्रेसॅ व्रेसिनं
दनुज विरोधि वट्टि कॉनॅ दार्क्ष्युं डहींद्रुनि बट्टु कैवडिन् ॥ 677 ॥

कं. दितिजुडु तन बल मप्रति, हत तेजुंडगु सरोरुहाक्षुनि शौर्यो
न्नति मीद बॅट्टकुंडुट, मति नॅरिगियु बॅनगॅ दुरभिमानमु पेमिन् ॥ 678 ॥

व. अंत ॥ 679 ॥

सी. कालानल ज्वल ज्ज्वाला विलोल कराकमै पॅनुपोंदु शूलमंवि
सुरवैरि यज्ञसूकर रूपधरुडैन वनज नाभुनि मीद वैव नदियु
सद्द्विजोत्तमु मीद जपलत गाविचु नभिचार कर्मंबु नट्लु बॅंडु
पडि परते गनि पद्मोदरुडु दानि जक्रधाराहति जंडविक्र

ते. ममुन नडुमन खंडिचॅ नमर भर्त
महित दंभोळिचे गरुत्मंतु पक्ष
मसिरयंबुनु द्रुंचिन गति जॅलंगि
सुरलु मोदिंप नसुरुलु सॉंपुडिप ॥ 680 ॥

व. अय्यवसरंबुन नय्युसर दन शूलंबु चक्रंबुचेत निहतं बगुटं गनि ॥ 681 ॥

कं. दितिजुडु रोषोद्धतुडै
यति निष्ठुर मुष्टि बॉडिचॅ हरि ना लोको-
न्नतु डॉप्पॅ गुसुम माला
हति दिग्गजराजु बोलि यति दर्पितुडै ॥ 682 ॥

ने तार्क्ष्य (गरुड़) के अहीन्द्र (सर्पराज) को पकड़ने की रीति पकड़ लिया। ६७७ [कं.] दितिज (राक्षस) ने अपने बल के अप्रतिहत तेज वाले सरोरुहाक्ष के शौर्य की उन्नति के समक्ष हीन बनते जानकर भी दुरभिमान (गर्व) के आधिक्य के कारण सामना किया। ६७८ [व.] तब, ६७९ [सी.] कालानल की ज्वलत्-ज्वालाओं से विलसित हो प्रभासित शूल को लेकर सुरवैरि, यज्ञसूकर (यज्ञवराह) रूपधारी, वनज-नाभ (कमलनाभ) वाले पर फेंकने पर, वह सद्द्विजोत्तम (श्रेष्ठ सद् ब्राह्मण) पर चपलता से किये गए अभिचार कर्म (हिंसार्थ किये गये होम कर्म) की भाँति व्यर्थ जाकर आने पर उसे देखकर पद्मोदर (विष्णु) ने प्रचण्ड विक्रम के साथ चक्र धारा से हत कर, [ते.] अमरभर्ता (इन्द्र) के महित-दंभोलि (-वज्र) के साथ गरुत्मान के पक्षों को शीघ्र काट डालने की रीति, देवताओं के आनन्दित होने पर, असुरों के फीके पड़ जाने पर, [उस गदा को] बीच में ही काट डाला। ६८० [व.] उस अवसर पर उस असुर के अपने शूल के चक्र के द्वारा निहत होते देखकर, ६८१ [कं.] दितिज (हिरण्याक्ष) ने रोषोद्धत हो अति निष्ठुर (कठोर) मुष्टि से घात किया।

म. हरि मीदन् दिति-संभवुंडु घन मायाकोट्लल पुट्टिंचिनन्
धरणीचक्रमु भूरि पांसुपटल ध्वांतंबुनं गप्पॆं भी-
कर पाषाण पुरीष मूत्र घनदुर्गंधास्थि रक्तावळुल्
गुरिसॆंन् मेघमु लभ्रवीथिनि महा क्षोभक्रिया लोलमै ॥ 683 ॥

व. मरियुनु ॥ 684 ॥

चं. तविलि विमुक्त केश परिधानमु लुग्र कराळ दंतता-
लुवुलुनु रक्त लोचनमुलुं गल भूत पिशाच ढाकिनी
निवहमु लंतरिक्षमुन निल्चि निजायुध पाणुलै महा-
रवमुग यक्ष दैत्य चतुरंग बलंबुल गूडि तोचिनन् ॥ 685 ॥

व. अंत ॥ 686 ॥

कं. त्रिसवन पावंडगु ना, बिसरुहनेत्रुंडु लोक भीकरमुग ना
यसुराधिपु माया विनि, रसनकरंबैन शस्त्रराजमु बनिचॆंन् ॥ 687 ॥

कं. आ चक्र भानु दीप्ति ध, रा चक्रमुनंदु निंडि रयमुन नम्मा
या चक्रमु नणगिंचॆनु, नीचक्रमुडैन यामिनीचरु नॆदुरन् ॥ 688 ॥

व. अंत निक्कड ॥ 689 ॥

कं. दिति तनविभु वाक्यंबुल, गति तप्पद यनुचु दलपगा जन्नुल शो-
णित धार लॊलिकॆं रक्षः, पति यगु कनकाक्षु पतन भावमु दोपन् ॥690॥

वह लोकोन्नत पुरुप हरि कुसुममालाओं की मार सहनेवाले दिग्गजराज की भाँति अतिदर्पित हो रहा। ६८२ [मं.] दिति-सम्भव (हिरण्याक्ष) ने हरि पर कोटिमायाओं को उत्पन्न किया। धरणीचक्र पर अत्यन्त धूलि-पटल (तथा) अन्धकार छा गया। भयंकर पापाण (पत्थर), पुरीष (मल), मूत्र, घन दुर्गन्ध, अस्थि (हड्डियाँ) [तथा] रक्तावली को अभ्रवीथी में (गगन-मण्डल में) महाक्षोभ की क्रिया में लोल हो, मेघों ने बरसाया। ६८३ [व.] और भी, ६८४ [चं.] खुले केश तथा वस्त्रों में उग्र (तथा) कराल (भयंकर) दन्ततालुओं और रक्तलोचन वाले, भूत, पिशाच, डाकिनी-समूह, अन्तरिक्ष में खड़े होकर, अपने-अपने आयुधों को हाथों में ले महारव करते हुए, यक्ष, दैत्य अपनी चतुरंग सेनाओं के साथ उपस्थित होते जान पड़ा। ६८५ [व.] तब, ६८६ [कं.] त्रिसवन (यज्ञ के तीन स्तोत्र) के मूल बने हुए उस बिसरुहनेत्र (विष्णु) ने लोक-भीकर रूप से उस असुराधिप की माया को मिटा देनेवाले शस्त्रराज को भेज दिया। ६८७ [कं.] वह चक्र-भानु की दीप्ति धरा चक्र में भर गया [और उसने] तुरन्त उस मायाचक्र को, नीचक्रम वाले यामिनीचर (राक्षस) के सम्मुख ही समाप्त किया। ६८८ [व.] तब यहाँ, ६८९ [कं.] अपने पति के वाक्यों की गति टल नहीं सकती, ऐसा मन में चिन्तित

व. अय्यवसरंबुन नसुर विभुंडु तन चेसिन माया शतंबुलु गृतघ्नुनकु गाविंचिन यपकारंबुलुं बोलें हरि मीद बनिसेयक विफलंबु लैनं बॉलिबोनि बंटुतनंबुनं बुंडरीकाक्षु जेरं जनुंदेंचि बाहुयुगळंबु साचि पूचि पॉडिचि रक्षोवैरि वक्षंबु बीडिंचिन नव्यधोक्षजुंडु तप्पिंचुकॉनि तलंगिन जॅलंगि दैत्युंडु निष्ठुरंबगु मुष्टि बॉडिचिन नसुरांतकुंडु मिसिमितुडु गाक रोष भीषणाकारंबुन वासवुंडु वृत्रासरुं दॆगर्चिन चंदंबुन वज्रि वज्र सन्निभं बगु नरचेतं गद्रकु टसुर कटतटंबु चटुलगति वेसिन, ना हिरण्याक्षुंडु दिर्दिरं दिरिगि यवस्तलोचनुंडै सोलि यॆट्टकेलकु नॆदुर निलुवंबडॆ नंत ॥ 691 ॥

कं. विट चॆडि लोबडॆ दैत्युडु,
सटिकिन् दंष्ट्राविभिन्न शत्रुमहोर-
स्तटिकिन् खर खुर पुटिकिन्,
गटि तट हृत कमलजांड घटिकिन् गिटिकिन् ॥ 692 ॥

व. इट्लु लोबडिन ॥ 693 ॥

म. दिवि निद्रादुलु संतसिप हरि मीत्तॆं गर्णमूलंबुनन्
बवि संकाश कठोर हस्तमुन शुंभल्लीलमै दान वा-

हो (तथा) राक्षसपति कनकाक्ष (हिरण्याक्ष) के पतनभाव के मन में उत्पन्न होने पर दिति के स्तनों से शोणित की धाराएँ वहीं। ६९०
[व.] उस अवसर पर असुरविभु के किये सौ प्रकार की मायाओं के कृतघ्न के प्रति किये गये उपकारों की रीति हरि पर काम न कर विफल होने पर भी, अकुंठित वीरता के साथ पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) के समीप पहुँचकर, बाहुयुगल को फैलाकर, उद्यत हो, रक्षोवैरि के [विष्णु के] वक्ष को पीड़ित करने पर, उस अधोक्षज (विष्णु) के बचकर विलसित होने पर, दैत्य के विजृंभित होकर [फिर से] निष्ठुर मुष्टिघात करने पर, असुरान्तक श्रान्त न हो, रोष के कारण भीषण आकार में वासव (इन्द्र) के वृत्रासुर के वध करने की रीति वज्रि (इन्द्र) के वज्रायुध के समान हथेली से क्रूर असुर की कनपटी के पास चटुल गति से मारने पर वह हिरण्याक्ष दिर्-दिर् घूम कर, आँखें निकाले हुए, झूमकर अन्त में किसी तरह सामने खड़ा रहा। तब। ६९१ [कं.] धैर्य खोकर दैत्य सटि (अयाल वाले) के दंष्ट्राओं से शत्रुओं के उरःतटि को चीरनेवाले के, तीक्ष्ण खुरों वाले के, कटितट (पेट) में कमलजांड (ब्रह्मांड) को घटित करनेवाले किटि (वराह) के [अधीन हुआ]। ६९२ [व.] इस प्रकार अधीन होने पर, ६९३ [म.] दिवि (स्वर्ग) पर इन्द्रादि के आनन्दित होने पर हरि ने [राक्षस के] कर्णमूल पर वज्रायुध के समान कठोर हाथ से शुम्भ की लीला से मारने पर, उससे

नवलोकेशुडु रक्त नेत्रु डगुचुन् दैन्यंबु वाटिल्लगा
भुविमीदन् वडि गूलॆ मारुत हतोन्मूलावनीजाकृतिन् ॥ 694 ॥

कं. बुडबुड नॆत्तुरु ग्रक्कुचु
वॆड रूपमु दाल्चि ग्रुड्लु वॆलि कुरुक निलं
वडि पंड्लु गीटुकॊनुचुन्
विडिचॆं ब्राणमुलु दैत्यवीरुं डंतन् ॥ 695 ॥

ते. पडिन दनुजेश्वरुनि जूचि पद्म संभ-
वादि दिविजुलु वॆरगंदि रातमलंदु
नितडु वॊंदुट यॆट्लॊको ! यी यवस्थ
ननि तलंचुचु मरियु निट्लनिरि वॆसनु ॥ 696 ॥

म. वर योगींद्रुलु योग मार्गमुल नॆव्वनिन् मनोवीथि सु-
स्थिरतन् लिंग शरीर भंगमुनकै चिंतितु रा पंकजो-
दरु पाण्याहति दन्मुखांबुरुहमुन् दर्शिपुचुन् जच्चॆं दु-
र्भरितोत्तंसुनि दैत्य वल्लभुनि सौभाग्यंबु दा नॆट्टिदो ! ॥ 697 ॥

चं. सममति वीरु दैत्य कुल शासनु पारिषदुल् मुनींद्र शा-
पमुन निकृष्ट जन्ममुल वैकॊनि पुट्टियु नेडु विष्णुचे
समयुट जेसि मीद नगु जन्मुनन् जलजाक्षु नित्य वा-
समुन वसितु रॆन्नटिकि जावुनु बुट्टुवु लेदु वीरिकिन् ॥ 698 ॥

दानव लोकेश रक्तनेत्रवाला होता हुआ, दीनभाव को प्रकट करता हुआ, मारुत के आघात से उन्मूलित अवनीज (वृक्ष) की आकृति में शीघ्र नीचे गिर पड़ा। ६९४ [कं.] अत्यधिक खून उगलते हुए, विकृत रूप को पाकर, आँखों की पुतलियों के बाहर निकलने पर दाँत किटकिटाते हुए तब दैत्यवीर ने प्राण छोड़े। ६९५ [ते.] गिर पड़े हुए दनुजेश्वर को देख पद्मसम्भव (ब्रह्मा) आदि दिविजो (सुरगणों) ने आश्चर्यान्वित हो विचार किया। भला ! इसको इस प्रकार की अवस्था (स्थिति) कैसे प्राप्त हुई है ! और झट ऐसा कहा। ६९६ [म.] योगीन्द्रवर योगमार्ग में जिसका मनोवीथि में सुस्थिर रूप से लिंगशरीर को भंग करने के लिए चिन्तन करते हैं, उस पंकजोदर (कमलनाभवाले) के पाण्याहति (हाथ की मार) से, उसके मुख कमल के दर्शन करते हुए, मर गया है। इस दुर्भरित उत्तंस (जिन्हें सहन करना दुर्भर हो, ऐसे लोगों में श्रेष्ठ, अतिक्रूर) दैत्यवल्लभ का वह सौभाग्य [जो उसे ऐसी सद्गति प्राप्त हुई] किस प्रकार का हैं ? ६९७ [चं.] ये सममतिवाले दैत्यकुल-शासक (विष्णु) के पारिषद् (मुसाहिब) हैं, मुनीन्द्र के शाप के कारण निकृष्ट जन्म को प्राप्त कर पैदा होकर भी, आज विष्णु से हत होने के कारण अगले जन्म में जलजाक्ष (कमलनयन)

कं. अनि वरुगु नौंदि पावन
तनु वौंदिन यट्टि विकच तामरसाक्षुन्
मुनि योगजन त्रिदशा-
वन वक्षुन् वनुज करटिवर हर्यक्षुन् ॥ 699 ॥

व. कनुंगौनि ॥ 700 ॥

चं. वनजदळाक्ष ! यी जगति वारल मर्ममु नी वॅऱिंगि यी
सुन बग बट्टु नी दिविज-सूदनु जंपिति गान निक शो-
भन मगु नंचु हस्तमुलु फालमुलं गदियिंचि यंदरुन्
विनमितुलै नुर्तिचिरि विवेकशालुनि बुण्यशीलुनिन् ॥ 701 ॥

व. अंत ॥ 702 ॥

चं. सवनवराहमूर्ति सुर शात्रवु द्रुंचिन मोद भारती-
धव मुख दैवता मुनि कदंबमु दन्नु नुतिचुनट्टि सं-
स्तवमुन कात्मलोन ब्रमदंबुनु बौंदि समग्र मंगळो-
त्सवमु दलिर्प नंदरु ब्रसाद विलोकन मोप्प जूचुचुन् ॥ 703 ॥

चं. अरिगॆ विकुंठ धाममुन कम्नहितोत्सव सूचकंबुगा
मोरसॆ सुपर्वदुंदुभु लमोघमुलै धरणी-तलंबुनन्
गुरिसॆ ब्रसूनवृष्टि शिखि कुंडमु लॆल्लॆड देजरिल्लॆ भा-
स्कर शशि मंडलंबुलु निजद्युतितो वॆलुगौंदॆ नत्तरिन् ॥ 704 ॥

के नित्यवास स्थान में निवास करेंगे। इनके लिए कभी मृत्यु और जन्म नहीं हैं। ६९८ [कं.] इस प्रकार आश्चर्य करते हुए सावन (यज्ञमय) शरीर को धारण किये हुए विकसित कमल-नयनवाले को, मुनि-योगीजन-त्रिदश (देवता) की रक्षा में दक्ष को, दनुज रूपी करटि (हाथी)-वर के लिए सिंह को, ६९९ [व.] देखकर, ७०० [चं.] वनजाक्ष (कमल-नयनवाले) ! इस जगत के लोगों के मर्म को तुम जानकर क्रोध के कारण शत्रुभाव रखनेवाले दिविज-सूदन (देवतान्तक) का तुमने वध किया। अब आगे शोभन (कल्याण) होगा। ऐसा कहते हुए हाथों को माथे पर जोड़कर विनमित हो विवेक से विशाल [तथा] पुण्यशील वाले की स्तुति की। ७०१ [व.] तब, ७०२ [चं.] सवन-वराहमूर्ति ने सुरों के शत्रु के वध करने के बाद भारतीधव (ब्रह्मा) प्रमुख (आदि) देवता-मुनि-कदंब (-गण) के अपनी स्तुति करने पर उस संस्तवन के कारण मन में प्रसन्न हो, समग्र रूप से मंगल-उत्सव को प्रकट करते हुए, प्रसाद-विलोकनों (दृष्टियों) से सुशोभित हो [उन्हें] देखा। ७०३ [चं.] (और) वैकुण्ठ-धाम को प्रस्थान किया। उस महित उत्सव की सूचना में देवदुंदुभियाँ अमोघ रूप से बजीं। धरणीतल पर प्रसून (पुष्प) वृष्टि हुई।

कं. अनि यी पुण्यचरित्रमु, वनरुह संभवुड्डु त्रिदिय वासुलकुं जॅ-
प्पिन यदि मैत्रेयुडु विदु, रुन कॅरिगिंचिन विधंबु रूढमु गागन् ॥ 705 ॥

कं. शुकयोगि परीक्षित्तुन-
ककुटिलमति नॅरुग जॅप्पॅ ननि सूतुडु शौ-
नक मुख्युलैन मुनिवरु-
लकु दॅलियग जॅप्पॅ मिद्रियु लालनमॉप्पन् ॥ 706 ॥

व. इव्विधंबुन मैत्रेयुंडु सॅप्पिन विनि विदुरुंडु संतसिल्लॅ ननि ॥ 707 ॥

कं. अनघंबगु नी चरितमु,
विनिन वठिंचिन लभिंचु विश्रुत कीर्तुल्
वनजोदरु पद भक्तियु,
मुनुकॉनि यिह पर सौख्यमुलु जनमुलकुन् ॥ 708 ॥

अध्यायमु—२०

व. अनि चॅप्पि वॅडियु सूतुंडु महर्षुल किट्लनियॅ। परीक्षिन्नरेंद्रुडु शुकयोगींद्रुं गनुंगॉनि मुनींद्रा ! हिरण्याक्ष वधानंतरंबुन वसुंधर समस्थिति बॉदिन विधंबुनु, स्वायंभुव मनुवु तिर्यग्जाति जंतु सृष्टि निमित्तंबुलैन

शिखि (अग्नि)-कुण्ड तेजोसम्पन्न हुए। उस अवसर पर भास्कर (तथा) शशिमण्डल अपनी द्युति से प्रकाशित हुए। ७०४ [कं.] [ऐसा] कहकर इस पुण्यचरित्र को वनरुह-सम्भव (ब्रह्मा) ने त्रिदिव (स्वर्ग)-वासियों (अमरों) से कहा। उसे मैत्रेय ने विदुर को निश्चित रूप से विदित किया। ७०५ [कं.] शुकयोगी ने परीक्षित को अकुटिल मति से जताया, ऐसा सूत ने शौनक मुख्य (आदि) मुनिवरों को विदित किया और प्रेम प्रकट किया। ७०६ [व.] इस प्रकार मैत्रेय के कहने पर सुनकर विदुर आनन्दित हुआ। और, ७०७ [कं.] इस अनघ चरित को सुनने पर या पढ़ने पर अत्यधिक कीर्तियाँ प्राप्त होंगी। लोगों के लिए वनजोदर (विष्णु) के चरणों की भक्ति करने से इहलोक और परलोक के सुसौख्य प्राप्त होते हैं। ७०८

अध्याय—२०

[व.] ऐसा कहकर और (आगे) सूत ने महर्षियों से कहा। परीक्षित-नरेन्द्र ने शुकयोगीन्द्र को देखकर पूछा कि मुनीन्द्र ! हिरण्याक्ष के वध के अनन्तर (पश्चात्) वसुन्धरा के समस्थिति को प्राप्त होने की रीति [क्या है ?] स्वायम्भुव मनु ने तिर्यक् जाति, जन्तु-सृष्टि के

मार्गंबु लॅन्नि सृजियिचॅ ? महा भागवतोत्तमुंडैन विदुरुंडु कृष्णुनकु नपकारंबु दलंचिन पापवर्तनुलगु धृतराष्ट्र पुत्रुलं बासि जनकुंडगु कृष्णद्वैपायनुनकु समुंडगुचु दन मनो वाक्काय कर्मंबुलु गृष्णुनंद चेर्चि भागवत जनोपासकुंडै पुण्य तीर्थ सेवा समालब्ध यशो विगत कल्मषुं डगुचु मैत्रेय महामुनि नेमि प्रश्नल नडिगॅ ? नवि यॅल्लं दॅलिय नान तिम्मनिन राजेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुं डिट्लनियॅ ॥ 709 ॥

चतुर्मुखुं डॊनर्चु यक्षादि देवतागण सृष्टि दॅलुपुट

सी. विमलात्मुडैन यव्विदुरुंडु मैत्रेय मुनिवरु जूचि यिट्लनियॅ ब्रीति
जतुरात्म ! सकल प्रजापति यॅनट्टि जलजगर्भुंडु प्रजासर्गमंदु
मुनु प्रजापतुलनु बुट्टिंचि वॅंडियु जित्तमंदेमि सृजिप दलचॅ
मुनु सृजिंचिन यट्टि मुनु लम्मरीच्यादु लब्जजु नादेश मात्म निलिपि

ते. यॅथि नॅट्लु सृजिचिरि यखिल जगमु,
मॅंऱसि मरि वारु भार्यासमेतुलगुचु
नेमि सृजियिचि रदिगाक कामिनुलनु
बासि येमि सृजिंचि रा भद्रयशुलु ॥ 710 ॥

निमित्त (कारण) रूपी कितने (किन) मार्गों में सृजन किया ? महाभागवतों में उत्तम विदुर ने कृष्ण का अपकार का विचार करनेवाले पाप-वर्तन वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को खोकर, [अपने] जनक कृष्णद्वैपायन के समान होते हुए, अपने मनो-वाक्-काय-कर्मों को कृष्ण में एकत्रित कर, भागवत-जनों का उपासक बनकर, पुण्यतीर्थ सेवा से समालब्ध (प्राप्त) यश से विगत-कल्मष वाला होकर, मैत्रेय महामुनि से कौन से प्रश्न किये ? उन सबको विदित करते हुए आज्ञा दीजिए, ऐसा कहने पर राजेन्द्र से शुकयोगीन्द्र ने इस प्रकार कहा । ७०९

चतुर्मुख वाले के द्वारा सम्पन्न यक्षादि देवतागण की सृष्टि को विदित करना

[सी.] विमलात्मा हो उस विदुर ने मैत्रेय मुनिवर को देखकर प्रेम से इस प्रकार कहा (पूछा) कि हे चतुरात्मा ! सकल प्रजापति बने हुए जलजगर्भ (ब्रह्मा) ने प्रजासर्ग में पहले प्रजापतियों का सृजन कर फिर चित्त में किसकी सृष्टि करने का विचार किया । पहले सृजित हुए मरीचि आदि मुनिगण अब्जज (ब्रह्मा) के आदेश को मन में धारण कर, [ते.] अखिल जग का चाहकर कैसे सृजन किया । भार्यासहित हो उन लोगों ने किसका सृजन किया । इसके अतिरिक्त कामिनियों से अलग हो, उन भद्रयशवालों ने किसका सृजन किया । ७१० [कं.] अपने में

कं. अंदरु दमलो नैक्यमु, जॆंदिनचो नेमि दग सृजिंचिरि ? करुणा
कंदळित हृदय ! यिन्नियु, वॊंदुग नॆरिंगिपुमय्य बुधनुत ! नाकुन् ॥711॥

सी. अनिन मुनींद्रुं डिट्लनियॆं जीवादृष्टपरुंडु मायायुक्त पुरुषवरुंडु
गालात्मकुंडु ननु कारणंबुन निर्विकारुंडैनट्टि जगन्निवासु
डादि जात क्षोभुंडय्यॆं नम्मेटि वलननु गुणत्रयंबुनु जनिंचॆ
ना गुणत्रयमुनंदय्यॆं महत्तत्त्व मदि रजो गुण हेतुवैन दानि

ते. यंदहंकार मॊगि त्रिगुणात्मकमुन
वॊडमॆं मरि दानिवलन नभूतमय्यॆ
वंचतन्मात्र लंदु संभवमु नॊंदॆ
भूतपंचक मी सृष्टि हेतु वगुचु ॥ 712 ॥

व. अवियुनु दमलोन प्रत्येकंबुग भुवन निर्माण कर्मंबुनकु समर्थंबुलु गाक यन्निटि संघातंबुन बांचभौतिकंबैन हिरण्मयांडंबु सृजियिंचॆ। अदियुनु जलांतर्वर्तियै वृद्धि वॊंदुचुंडॆ नंदु ॥ 713 ॥

सी. नारायणाख्य नुन्नति नॊप्पु ब्रह्मंबु साहस्र दिव्यवर्षंबु लोलि
वसियिंचि युंडॆ ना वासुदेवुनि नाभियंदु सहस्र सूर्य प्रदीप्ति
दनरुचु सकल जीवनिकाययुतमगु पंकजातंबु संभवमु नॊंदॆ
वॊगडॊंद नंबुलो भगवदधिष्ठुतुडगु स्वराट्टगु चतुराननुंडु

ते. जनन मॊंदॆनु दत्पद्म संभवुंडु
नाम रूप गुणादि संज्ञा समेतु

सबके ऐक्य (लीन) होने पर किसका सृजन किया ? करुणाकन्दलित हृदय वाले ! बुधजनों से स्तुत्य होनेवाले ! मुझे यह सब विदित करो। ७११ [सी.] कहने पर (प्रार्थना करने पर) मुनीन्द्र ने इस प्रकार कहा कि जीवों के लिए अदृष्ट, पर (सबसे अतीत), (तथा) माया से युक्त पुरुषवर, कलात्मक होने के कारण निर्विकार बने जगन्निवासी (परमात्मा) प्रारम्भ में जात-क्षोभ (जिसके मन में क्षोभ पैदा हुआ हो) हुआ। ऐसा होने से उस श्रेष्ठ पुरुष से गुणत्रय उत्पन्न हुए। उस गुणत्रय (में) महत्तत्त्व हुआ और रजोगुण के कारण उससे (महत्तत्त्व से), [ते.] क्रम से अहंकार त्रिगुणात्मक हुआ। उससे पंचतन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं और उनसे सृष्टि के हेतुस्वरूप होते हुए पंचभूत उत्पन्न हुए। ७१२ [व.] वे भी अपने में विलग (प्रत्येक) रूप से भुवन-निर्माण-कार्य में समर्थ न होकर, सबके संघात (सम्मिलित) रूप से पाँच भौतिक हिरण्य-अण्ड का सृजन किया। वह भी जल के भीतर रहते हुए विकसित होता रहा, तब उसमें, ७१३ [सी.] नारायण नाम से समुन्नत रूप में विलसित ब्रह्मा सहस्र दिव्य वर्ष तक उस वासुदेव की नाभि में बसा रहा। (तब) हज़ार सूर्यों की

डगुचु निर्माण मोनरिंचें नखिल जगमु
वनजजुंडु निजच्छायवलन मर्रियु ॥ 714 ॥

सी. तामिस्रमुनु नंधतामिस्रमुनु दमंबुनु मोहमुनु महामोहनंबु
ननु पंचमोह रूपात्मकमैन यविद्य बुट्टिंचि या वेध तनकु
नदि तमोमय देहमनि मदि रोसि तत्तनुवु विसर्जिचें धातृ मुक्त
देहंबु सतत क्षुत्तृष्णल कावासमुनु रात्रिमयमु नय्येनु दलंप

ते. नंदुलो यक्ष रक्षस्सु लन जनिप,
वारि कप्पुडु क्षुत्तृषल् वडल गोंद-
रा चतुर्मुखु भक्षित मनिरि कोंद-
रतनि रक्षिपुडनि तग वाडि रंत ॥ 715 ॥

व. इट्लु पलुकुचु ननतनि भक्षिचु वारलै धात सन्निधिकि जनिन नतंडु भय विह्वलुंडै येनु यी जनकुंड। मीरलु मत्पुत्रुलरु। नन्नु हिंसिपकुं डनुचु "मा मा जक्षत रक्षत" यनु शब्दंबुलु वलुक दन्निमित्तंबुन वारलकुं ग्रमंबुन यक्ष रक्षो नामंबुलु प्रकटंबुलय्यें। वेंडियु ब्रभाविभासितंबैन योक्क कायंबु धरियिंचि सत्त्वगुण गरिष्ठुलु प्रभावंतुलुनगु देवतल मुख्यु लगुनट्लु सृजियिंचि तत्प्रभामय गात्र विसर्जनंबु चेसें। अदि यहोरुपंबै

दीप्तियों से सुशोभित, जीव-निकाय (-समूह) से युक्त हो पंकजात (कमल) उत्पन्न हुआ। उसमें भगवान से अधिष्ठित हो स्वराट् हो, [ते.] चतुरानन (ब्रह्मा) अतिशय रूप से उत्पन्न हुआ। उस पद्मसम्भव ने नाम, रूप, गुण आदि संज्ञाओं से युक्त होते हुए, अखिल जगत का वनजज (ब्रह्मा) ने अपनी छाया से निर्माण किया और, ७१४ [सी.] तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह, महामोह कहलानेवाले पंचमोह रूपात्मक अविद्या को उत्पन्न कर, उस वेधा (ब्रह्मा) ने अपने लिए उसे तमोमय देह जानकर, मन में घृणा के होने पर, उस शरीर को छोड़ दिया। धातृमुक्त शरीर सदा क्षुधा (तथा) तृष्णाओं का आवास और रात्रिमय (प्रज्ञाहीन) हुआ। [ते.] विचार करने पर उसमें यक्षराक्षस उत्पन्न हुए। तब उनमें क्षुधा (तथा) तृष्णाओं के प्रवर्तित होने पर कुछ लोगों ने कहा कि चतुर्मुख वाले का भक्षण करेंगे, और कुछ ने कहा कि रक्षण करना उचित है। तब, ७१५ [व.] इस प्रकार बोलते हुए, उसका भक्षण करने के लिए धाता की सन्निधि (निकट) में जाने पर उसने भयविह्वल हो कहा कि 'मैं तुम्हारा जनक हूँ, तुम लोग मेरे पुत्र हो, मुझे पीड़ा मत दो' कहते हुए "मा मा जक्षत रक्षत (हिंसा मत करो)।" शब्दों को उच्चरित करने के कारण, क्रमशः उनके यक्ष (तथा) राक्षस नाम प्रकट हुए। और फिर प्रभाविभासित एक शरीर धारण कर, सत्त्वगुण गरिष्ठ (तथा)

देवताळिकि नाश्रयंबय्यॆ। मरियु जघनंबुवलन नति लोलुपुलैन यसुरुलं बुट्टिंप, वारलति कामुकुलगुटं जेसि यय्यजुनि जेरि मिथुनकर्मं बपेक्षिंचिन, विरिंचि नगुचु निर्लज्जुलैन यसुरुलु दन वॆंट नंटि तगुलं बड़चि, प्रपन्नार्तिहरुंडु, भक्तजनानुरूप संदर्शनुंडुनैन नारायणु जेरि, तत्पादंबुलकुं, ब्रणमिल्लि यिट्लनियॆ ॥ 716 ॥

कं. रक्षिंपुमु, रक्षिंपु मु, पेक्षिंपक विनुत निखिल बृंदारक ! वि-
श्व क्षेमंकर ! विनु मिट्टु, दक्षत नी यान्न नेनु दलनिडि वरुसन् ॥ 717 ॥

ते. ई प्रजासृष्टि कल्पनं बेनॊनर्पं
नंदु बापात्मुलैन यी यसुरु लिपुडु
ननु रमिंपग डायवच्चिन गलंगि,
यिटकु वच्चितिं ननु गावु मिद्धचरित ! ॥ 718 ॥

व. अदियुनुं गाक लोकंबु वारलकुं ग्लेशंबु लॊनरिपं ग्लेशंबुनं बॊंदिन वारल क्लेशंबु लपनयिंपनु नीव काक यितरुलु गलरे अनि स्तुतियिंचिन वब्जजु कार्पण्यं बॆरुंग नवधरिंचि विविक्ताध्यात्म दर्शनुंडगुचु, कमलसंभव ! भवद्घोर तनुत्यागंबु सेयुमनि यानतिच्चिन नतंडु नट्ल चेसॆ। अदियुनु ॥ 719 ॥

प्रभावान देवताओं के मुख्य (मुखिया) हों, ऐसे लोगों का सृजन कर उस प्रभामय शरीर का विसर्जन किया। वह आश्चर्यप्रदरूप हो देवतावली का आश्रय वन गया। और जघन से अतिलोलुप असुरों को उत्पन्न करने पर, अतिकामुक होने से वे उस अज के यहाँ पहुँचकर मैथुन की इच्छा की। ब्रह्मा ने हँसते हुए [तथा] निर्लज्ज बने हुए असुरों के पीछे पड़ने पर, दौड़ लगाकर प्रपन्नों के आर्ति (दुःख) को हरनेवाले, भक्तजन को इच्छानुकूल दर्शन देनेवाले नारायण के यहाँ पहुँचकर, उनके चरणों में प्रणमित हो ऐसा कहा। ७१६ [कं.] सकल वृन्दारक (देवताओं) से स्तुत्य होनेवाले ! विश्व का मंगल करनेवाले ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! उपेक्षा मत करो ! इधर सुनो ! दक्षता से आपकी आज्ञा को सिर पर धारण कर, मैंने क्रमशः, ७१७ [ते.] इस प्रजा के सृजन की कल्पना की। उनमें पापात्मा इन असुरों के अब मुझसे रमण (संभोग) करने के लिए आने पर, व्याकुल हो यहीं आ पहुँचा। पुण्यचरित वाले रक्षा करो ! रक्षा करो ! ७१८ [व.] इसके अतिरिक्त, लोक वालों को क्लेश प्राप्त कराने, क्लेश को प्राप्त लोगों के क्लेश को मिटाने के लिए तुम्हीं हो, [अन्य कोई नही है न !] इस प्रकार स्तुति करने पर पद्मज की कृपणता (दीनता) को जानते हुए, अवधारण कर, विविक्त रूप से अध्यात्म दर्शन वाले होकर कहा। हे कमलसम्भव ! तुम अपने घोर तनु का त्याग कर दो। ऐसी आज्ञा देने पर उसने वैसा ही किया। और भी, ७१९

सी. नव्य कांचन रण न्मणिनूपुराराव विलसित पादारविंद युगळ
कांचीकलाप संकलित दुकूल वस्त्र स्फार पुलिन नितंबबिंब
राजितान्योन्य कर्कश पीन करिकुंभ पृथु कुचभार कंपित वलग्न
मदिरा रसास्वाद मद विघूर्णित चारु सित नव विकच राजीवनयन

. यपर पक्षाष्टमी शशांकाभ निटल,
मदव दळिकुल रुचिरोपमान चिकुर
ललित चंपक कुसुम विलास नास,
हास लीलावलोकन यब्जपाणि ॥ 720 ॥

कं. अनवगि संध्यारूपं-
बुन ललनारत्न मपुड् पुट्टिन दानिन्
गनुगोनि दानवु लुपगू-
हन मोंगि गाविंचि पलिकि रंदरु दमलोन् ॥ 721 ॥

कं. ई सौकुमार्य मी वय, सी सौंदर्य क्रमंबु नी धैर्यंबु-
न्नी सौभाग्य विशेषमु, ने सतुलकु गलदु ! चूड निदि चित्र मगुन् ॥722॥

चं. अनि वेऱगंदि य द्दनुजु लंदरु निट्लनि री तलोदरिं
गनि मन मंतनुंडियुनु गामुकवृत्ति जरिंपु चुंडगा

[सी.] नव कांचन के रणित (मुखरित) मणियों (तथा) नूपुरों की ध्वनियों से विलसित चरण-कमल युगल वाली, कांची (मेखला)-कलाप (सजावट) से संकलित दुकूल वस्त्र (रेशमी कपड़े) से युक्त हो प्रकट होनेवाले पुलिन-समान नितम्बबिम्ब वाली, विराजित अन्योन्य (परस्पर) कर्कश-पीन करिकुम्भसमान पृथु (बड़े) कुचभार से कंपित कमर वाली, मदिरा-रस (-रुचि) के आस्वाद के मद से विघूर्णित [तथा] चारु (सुन्दर) नवविकसित राजीवनयन (कमलनयन) वाली, [ते.] कृष्णपक्ष की अष्टमी के शशांक के समान प्रकाशित ललाट वाली, मदवत् (मस्त) अलिकुल के समान रुचिर चिकुर (केश) वाली, ललित चम्पक कुसुम के विलास-सम नासिका वाली, हासलीला में अवलोकनों (वीक्षणों) वाली अब्जपाणि (हाथ में कमल धारण किए हुए), ७२० [कं.] (ऐसा) वर्णन करने योग्य सन्ध्या के रूप में तब [एक] ललनारत्न के उत्पन्न होने पर उसे देखकर, दानवों ने क्रम से उपगूहन (आलिंगन) कर, आपस में [यों] कहा। ७२१ [कं.] यह सुकुमारता, यह आयु (जवानी), यह सौन्दर्यक्रम, यह धैर्य, यह सौभाग्य की विशेषता किन सतियों (स्त्रियों) में है! देखने (विचार करने) पर [स्पष्ट है कि] यह अत्यधिक विचित्र ही तो है। ७२२ [चं.] इस प्रकार आश्चर्यचकित हो, उन सब राक्षसों ने ऐसा कहा कि इस तलोदरी (सुन्दरी) को देखते ही हम सबके कामुक

मनयॅड दीनि चित्तमुन मक्कुव लेमिकि नेमि हेतुवो ?
यनि वहु भंगुलं वलिकि रा प्रमदाकृतियैन संध्यतोन् ॥ 723 ॥

कं. ओ कदळीस्तंभोरुव ! ये कुल ?
मे जाडदान ? वॅव्वरि सुत ? वि-
ट्ले कांतंबुन निच्चट
ने कारणमुन जरिचॅ ? दॅरिंगिपु तगन् ॥ 724 ॥

कं. भवदीय चारु रूप, द्रविण लसत्पण्य भूमि दगु मोहमुनन्
दविलिन दुर्भंगुलगु ममु, गवयवु पुष्पास्त्रु बाध घनमय्यॅ गदे ! ॥ 725 ॥

व. अनि यंत ॥ 726 ॥

सी. गुरु कुच भार संकुचितावलग्नंबु दनरारु नकाशतलमु गाग
ललित पल्लव पाणितलमुल जॅन्नॉंदु चॅंडु पतत्पतंगुंडु गाग
सललित नील पेशल पृथु धम्मिल्लबंधंबु घन तमः पटलि गाग
व्रविमलतर कांत भाव विलोकन जालंबु तारकासमति गाग

ते. गडगि मै पूत सांध्यरागंबु गाग,
नंगनाकृति नॉप्पु संध्यावधूटि
गदिसि मनमुल मोहंबु गडलुकॉनग,
नसुर लंदरु गूडि यिट्लनिरि मरियु ॥ 727 ॥

वृत्ति में विचरण करते समय हमारे प्रति इसके चित्त में अनुराग किस कारण नहीं है ? ऐसा अनेक प्रकार (परस्पर) बोलकर, प्रमदा (सुन्दरी) आकृति वाली सन्ध्या से [कहा], ७२३ [कं.] ऐ कदलीस्तम्भ-समान ऊरुवाली ! किस कुल की हो ? किस प्रदेश की हो ? किसकी सुता हो ? इस प्रकार एकान्त में किस कारण विचरण करती हो ? ठीक-ठीक बताओ। ७२४ [कं.] तुम्हारे सुन्दर रूप की द्रविण (संपदा) से लसत् (प्रकाशित)-पण्य भूमि के योग्य मोह से लगकर, दुर्भर रूप से पीड़ित होने वाले हमसे संभोग नहीं करती हो। पुष्पास्त्र (मन्मथ) की पीड़ा अत्यधिक होती जा रही है न री ! ७२५ [व.] कहते हुए तब, ७२६ [सी.] गुरु-कुच-भार से संकुचित अवलग्न (कमर) सुशोभित आकाशतल हो, ललित-पल्लव-समान पाणितल में विलसित गेंद गिरा हुआ पतंग (सूरज) हो, सललित नील [वर्ण का] पेशल (मृदु) पृथु (बड़ा) धम्मिल्ल-बंध (जूड़ा) घन-तम-पटल (अन्धकार) हो, प्रविमलतर कान्ताभाव का विलोकन-जाल (चितवनें) तारका-समिति हो, [ते.] शरीर पर का अनुलेपन सन्ध्याराग हो, (ऐसा) अंगना की आकृति में सुविलसित सन्ध्यावधूटि को देखकर, लगकर, मनों में मोह के उत्पन्न होने पर, सब असुरों ने मिलकर, इस प्रकार कहा। ७२७ [कं.] हे तरुणाब्जमुखी

कं. वॆलयग वद्मं बेक
स्थलमुनने यॊप्पु गानि त्वत्पद पद्मं
बिल बहु गतुल ननेक
स्थलमुल वनरारु गावॆ ! तरुणाब्जमुखी ! ॥ 728 ॥

कं. अनि दनुजुलु दम मनमुल, ननुरागमु लुप्पतिल्ल नंदरु ना सं-
ध्यनु बट्टिकॊनिरि वनजा, सनु डप्पुडु हृदयमंदु संतसमंदॆन् ॥ 729 ॥

कं. सरसिज भवु डय्यॆड दनु
गर माघ्राणिप नपुडु गंधर्वुलु न
प्सरसलु पुट्टिरि धातयु
बरुवडि नात्मीय तनुवु बासिन नदियुनु ॥ 730 ॥

व. चंद्रिकारूपंबैन दद्गात्रंबु विश्वावसु पुरोगमुलगु गंधर्वाप्सरोगणंबुलु गैकॊनिरि। वॆंडियुं गमलगर्भुंडु तंद्रोन्माद निद्रारूपंबुलयिन शरीरंबुल दाल्चि पिशाच गुह्यक सिद्ध भूत गणंबुलं बुट्टिंचिन, वारलु दिगंबरुलु मुक्तकेशुलु नैनं जूचि, धात लोचनंबुलु मुकुळिंचि तद्गात्रंबु विसर्जनंबु गाविंचिन नदि वारलु गैकॊनिरि। वॆंडियु नजुंडु दुन्नु नन्नवंतुनिगा जिंतिंचि यदृश्य देहुंडगुचु पितृ साध्य गणंबुलं बुट्टिंचिन, वारलु दम्मुं बुट्टिंचिन यदृश्य शरीरंबुनकुं गायंबगु देवभावंबु गैकॊनिनं, दत्कारणंबुनं बितृ साध्य गणंबुल नुद्देशिंचि श्राद्धंबुल हव्यकव्यंबु लाचरितुरु। मद्रियुनु ॥ 731 ॥

(नवविकसित कमल-मुख वाली) ! कमल एक स्थान पर अतिशय रूप से सुशोभित होते हैं, किन्तु तुम्हारे चरण-कमल इस धरती पर अनेक रीतियों में अनेक स्थानों में सुशोभित होते है न ? ७२८ [कं.] कहते हुए सब दनुजों ने अपने मनों में अनुराग के उमड़ने पर, उस सन्ध्या को पकड़ लिया। तब वनजासन (ब्रह्मा) हृदय में आनन्दित हुआ। ७२९ [कं.] तब सरसिज-भव (ब्रह्मा) के (अपने) कर को समुचित रूप से आघ्राणित करने पर (सूँघने पर) गन्धर्व (तथा) अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। धाता ने क्रम से अपने शरीर को छोड़ दिया। वह भी, ७३० [व.] चन्द्रिका रूपी उस शरीर को विश्वावस आदि गन्धर्व (तथा) अप्सरा-गणों ने ग्रहण किया। और कमलगर्भ-(ब्रह्मा) के तन्द्रा-उन्माद (तथा) निद्रा रूपी शरीर को धारण कर पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूतगणों को जन्म देने पर, उन लोगों के दिगम्बर (तथा) मुक्तकेशी होते देख, धाता के आँखें बन्द कर उस शरीर को छोड़ने पर उन लोगों ने उसे ग्रहण किया। फिर अज ने अपने-आप को अन्नवन्त के रूप में चिन्तन कर अदृश्य देहवाला हो पितृ-साध्य, गणों को जन्म देने पर, अपने को जन्म देनेवाले अदृश्य

सी. सज्जनस्तुत ! विनु चतुरत बंकजासनुड् दिरोधान शक्तिवलन
नलि सिद्ध विद्याधरुल नोलि बुट्टिंचि तविलि वारिकि दिरोधान नाम
धेय मैनट्टि या देहंबु निच्चेंनु वेंडियु भारती-विभुड् दनकु
प्रतिबिंबमगु शरीरमुन गिन्नरुल गिंपुरुषुल बुट्टिंप बूनि वार

ते. धातृ प्रतिबिंब देहमुल् दाल्चि वरुस,
निद्द रिद्दरु गवगूडि यिपुलोंदव
ब्रह्म पुरमैन गीतमुल् पाडुचुंडि-
रंत पंकज संभवु डात्मलोन ॥ 732 ॥

कं. तनसृष्टि वृद्धिलेमिकि, गनलुचु शयनिंचि चिंत गर चरणादुल्
गौनकोनि कदलिपग रा, लिन रोममु लुग्र कुंडलिवज्रमय्येन् ॥ 733 ॥

कं. वनजजुड् दन्नु मृतकृ, त्युनिगा भाविंचि यात्म दुष्टि वहिंपन्
मनमुन निखिल जग त्पा, वनुलगु मनुलं द्रिलोकवरुल सृजिंचेन् ॥734॥

सी. पुट्टिंचि वारिकि बुरुषरूपं, बैन तन देह मिच्चिन दगिलि वारि
गनुगोनि मुन्नु पुट्टिनवारु गूडि या वनजसंभवुन किट्लनिरि देव !
यखिल जगत्स्रष्टबैन नी चेत गाविंपंगबडिन यी वितत सुकृत
माश्चर्यकरमु यज्ञादि क्रियाकांड मी मनुसर्गमं बोडयमय्ये

देह के लिए कार्यस्वरूप देवभाव को लेने पर, उस कारण से पितृ, साध्य-गणों को उद्दिष्ट कर श्राद्ध तथा हव्य कर्म रचते हैं। और, ७३१ [सी.] सज्जनों से स्तुत्य [होनेवाले] ! सुनो ! चतुरता से पंकजासन (ब्रह्मा) ने तिरोधान की शक्ति के कारण क्रम से सिद्ध, विद्याधरों का सृजन कर, उनको प्रेम से तिरोधान नामक वह देह प्रदान की। और भारतीविभु (ब्रह्मा) ने अपने प्रतिबिम्ब रूपी शरीर वाले किन्नरों, किंपुरुषों के सृजन करने को चाहने पर, [ते.] वे धाता के प्रतिबिम्ब रूपी देहों को धारण कर, क्रमशः दो दो मिलकर जोड़ी बनाकर, अति सुन्दर रूप में ब्रह्मपरक गीत गाते रहे। तब पंकजसम्भव (ब्रह्मा) ने अपनी आत्मा (मन) में, ७३२ [कं.] अपनी सृष्टि में वृद्धि के अभाव के लिए व्याकुल हो, शयन कर, चिन्ता में हाथ-पैर हिलाने पर गिर पड़े। रोम उग्र-कुण्डली (-सर्प)-समूह हुए। ७३३ [कं.] वनजज (ब्रह्मा) ने अपने-आप को कृतकृत्य (सफल) समझकर, आत्मा में तुष्ट होने पर, मन से निखिल जगत को पावन करनेवाले तीनों लोकों में श्रेष्ठ मनुओं का सृजन किया। ७३४ [सी.] सृजन कर उनको पुरुष रूपात्मक अपनी देह को प्रदान करने पर, उनसे पहले जन्म लिये हुए लोगों से मिलकर, उन (सब) ने वनजसम्भव से इस प्रकार कहा कि हे देव ! (तुम) अखिल-जगत के सृष्टिकर्ता हो। तुम्हारे द्वारा सम्पन्न यह विस्तृत सुकृति आश्चर्यकर

ते. दद्धविर्भागमुलु माकु दविलि जिह्व-
लंदु नास्वादनमुलु सेयंग गलिगॆ
ननुचु मनमुल हर्षंबु लतिशयिल्ल,
विनुति सेसिरि भारती-विभुडु मरियु ॥ 735 ॥

व. वर तपो विद्या योग समाधियुक्तुंडगुचु ऋषिवेषधरुंडुनु हृषीकात्मुंडुनु नै ऋषिगणंबुलं बुट्टिंचि समाधि योगैश्वर्य तपो विद्या विरक्ति युक्तंबगु नात्मीय शरीरांशंबु वारिकि क्रमंबुन नॊक्कॊक्कनिकि निच्चॆ। अनि मैत्रेयुंडु सॆप्पिन विनि विदुरुंडु परमानंदंबुनु बॊंदि गोविंद चरणार विंदंबुलु मनंबुनं दलंचि वॆंडियु मैत्रेयुनि जूचि यिट्लनियॆ ॥ 736 ॥

अध्यायमु—२१

सी. वरगुण ! स्वायंभुव मनु वंशंबिल बरम सम्मतमु दप्पडु तलंप
गॊनकॊनि तद्वंशमुन मिथुनक्रिय जेसि प्रजावृद्धि जॆप्पितीवु
नदियुनु गाक स्वायंभुव मनुवुकु बूनि प्रियव्रतोत्तानपादु
लनु नंदनुलु गलरंटिवि वारु सप्तद्वीपवतियैन धात्रिनॆल्ल

है। यज्ञादि क्रिया (कर्म)-काण्ड इस मनुसर्ग में स्तुत्य हुआ। [ते.] उसके हविर्भाग को प्राप्त कर हमारी जिह्वाओं में आस्वाद (रुचि) उत्पन्न हुए। कहते हुए मन में अतिशय रूप से हर्ष के उत्पन्न होने पर, स्तुति की। और (तब) भारतीविभु (ब्रह्मा) ने, ७३५ [व.] वर (श्रेष्ठ)-तपोविद्या से योगसमाधि में मग्न होते हुए, ऋषि-वेषधारी तथा हृषीकात्मा (इन्द्रियात्मा) हो, ऋषिगणों का सृजन कर समाधि, योग, ऐश्वर्य, तपोविद्या, विरक्ति से युक्त होनेवाले अपने शरीर के अंश को (क्रमशः) प्रत्येक को प्रदान किया। इस प्रकार मैत्रेय के कहने पर सुनकर, विदुर ने परमानन्द को प्राप्त कर गोविन्द के चरणारविन्दों को मन में स्मरण कर, फिर मैत्रेय को देखकर इस प्रकार कहा। ७३६

अध्याय—२१

[सी.] श्रेष्ठ गुण वाले ! स्वायम्भुव मनुवंश इस धरती पर परम सम्मत है। निश्चित रूप से उसका स्मरण करना चाहिए। (पवित्र बनना चाहें तो उसका स्मरण करना चाहिए।) सयत्न उस वंश में मिथुन-क्रिया से प्रजावृद्धि के बारे में कहा था। इसके अतिरिक्त तुमने कहा था कि स्वायम्भुव मनु को प्रियव्रत, उत्तानपाद नामक नंदन (पुत्र) हुए। उन लोगों ने सप्त द्वीपवती समस्त धात्री को, [ते.] धर्ममार्ग

ते. धर्म मार्गंबु लेमियु दप्पकुंड
ननघुलै यॆट्लु पालिंचि रय्य ! वारि
चरित मॆल्लनु सत्कृपा निरत मतिनि
नॆऱुग विनुपिंपु नाकु मुनींद्र-चंद्र ! ॥ 737 ॥

व. अवियुनं गाक तन्मनुपुत्रियु योगलक्षण समेतयु नगु देवहूति यनु कन्यका रत्नंबुनु स्वायंभुवुंडु गर्दमुनकु ने विधंबुनं वॆंड्लि चेसॆं ? आ देवहूति यंदु महायोगियैन कर्दमुंडु प्रजल नेलागुनं बुट्टिंचॆं ? अदियुनुं गाक कर्दमुंडु रुचि यनु कन्यकनु दक्ष प्रजापतिकि निच्चॆं ननि चॆप्पितिवि । आ रुचियंदु नम्महात्मुं डी सृष्टि येलागुनं बुट्टिंचॆं ? अवि यन्नियुं दॆलिय नानतीय वलयु ननि यडिगिन विदुरुनकु मैत्रेयुं डिट्लनियॆं ॥ 738 ॥

कर्दमुडु भगवदनुज्ञ वडसि देवहूतिनि वॆंड्लि याडुट

कं. विनु मनघ ! कृतयुगंबुन, मुनिनाथुंडैन कर्दमुडु प्रजल सृजि-
पनु वनज-संभवुनिचे, त नियक्तुंडगुचु मदि मुदमु संधिल्लन् ॥ 739 ॥

ते. धीर गुणुडु सरस्वती तीर मंदु
दविलि पदिवेलु दिव्य वत्सरमु लोलि
दपमु सेयुचु नॊक्कनाडु जपसमाधि
नुंडि येकाग्रचित्तुडै निडु वेडुक ॥ 740 ॥

से न हटते हुए, अनघ हो, किस प्रकार पालन किया था। हे मुनीन्द्रचन्द्र ! उनके समस्त चरित्र को सत्कृपा-निरत मतिवाले हो मुझे विदित करो ! ७३७
[व.] इसके अतिरिक्त उस मनु की पुत्री, योगलक्षणयुक्त वाली, देवहूति नामक कन्यारत्न का विवाह स्वायम्भुव ने कर्दम के साथ किस प्रकार किया ? उस देवहूति में महायोगी कर्दम ने प्रजाओं का सृजन किस प्रकार किया ? इसके अतिरिक्त (तुमने) कहा था कि कर्दम ने रुचि नामक कन्या को दक्ष प्रजापति को दिया (विवाह किया)। उस रुचि में उस महात्मा ने सृष्टि को किस प्रकार उत्पन्न किया ? उन सबको विदित करते हुए आज्ञा देने को पूछने (प्रार्थना करने) पर विदुर से मैत्रेय ने इस प्रकार कहा। ७३८

कर्दम का भगवान की आज्ञा पाकर देवहूति से विवाह कर लेना

[कं.] हे अनघ ! सुनो ! कृतयुग में मुनिनाथ कर्दम ने प्रजा का सृजन करने के निमित्त वनजसम्भव (ब्रह्मा) से नियुक्त हो, मन में आनन्द के उत्पन्न होने पर, ७३९ [ते.] [वह] धीरगुण वाला सरस्वती तट पर लगकर दस हजार दिव्य वर्षों तक क्रम से तप करते हुए, एक दिन जप-

कं. वरदु प्रसन्नु मनोरथ, वरदान सुशीलु नमरवंद्यु रमेशुन्
दुरित विदूरु सुदर्शन, करु बूजिंचिन नतंडु गरुणाकरुडै ॥ 741 ॥

व. अंतरिक्षंबुनं ब्रत्यक्षंबैन ॥ 742 ॥

सी. तरणि सुधाकर किरण समंचित सरसीरुहोत्पल स्रग्विलासु
गंकण नूपुर ग्रैवेय मुद्रिका हार कुंडल किरीटाभिरामु
गमनीय सागर कन्यका कौस्तुभ मणिभूषणोद्भासमान वक्षु
सललित दरहास चंद्रिका धवळित चारुदर्पण विराजत्कपोलु

ते. शंख चक्र गदा पद्म चारु हस्तु,
नळिकुलालक रुचि भास्वदळिक फलकु,
बीत कौशेय वासु, गृपा तरंगि-
तस्मितेक्षणु, बंकजोदरुनि हरिनि ॥ 743 ॥

व. मरियु शब्द ब्रह्म शरीरवंतुंडु, सदात्मकुंडु, ज्ञानैक वेद्युंडु, वैनतेयांस विन्यस्त चरणारविंदुंडु नैन गोविंदु गनुंगोनि संजात हर्ष लहरी परवशुंडु, लब्ध मनोरथुंडु नगुचु साष्टांग दंड प्रणामंबु लाचरिंचि तदनंतरंबु ॥744॥

कं. मुकुळित करकमलुंडै, यकुटिल सद्भक्ति बरवशात्मकु डगुचुन्
विकचांभोरुह लोचनु, नकु निट्लनियें ददाननमु गनु गोनुचुन् ॥745॥

समाधि में एकाग्रचित्त वाला हो, भरपूर उत्साह के साथ, ७४० [कं.] वरद, प्रसन्न, मनोरथ के अनुकूल वरदान देनेवाले सुशील, अमरों से वंद्य, रमेश, दुरितों को दूर करनेवाले, सुदर्शन (चक्र)-कर वाले की पूजा करने पर, उसके (विष्णु के) करुणाकर हो, ७४१ [व.] अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष होने पर, ७४२ [सी.] तरणि (सूर्य) [तथा] सुधाकर (चन्द्र) की किरणों से समुचित रीति से सरसीरुह-उत्पल की स्रक् (माला) से विलसित, कंकण, नूपुर, ग्रैवेय (हार), मुद्रिका (अँगूठियाँ), हार, कुण्डल, किरीट [आदि] से अभिराम, कमनीय (सुन्दर)-सागर-कन्यका (लक्ष्मी) [तथा] कौस्तुभ मणि भूषणों से उद्भासित वक्ष वाला, सललित दरहास (मन्दहास) रूपी चन्द्रिका से धवलित बने सुन्दर दर्पण रूप में विराजित कपोल वाला, [ते.] शंख, चक्र, गदा, पद्म से विलसित सुन्दर हाथ वाला, अलिकुल के समान अलकावली से विलसित ललाट-फलक वाला, पीत कौशेय (रेशमी) वस्त्रधारी, कृपा तरंगों से युक्त स्मित-दृष्टियों वाले, पंकजोदर (कमलनाभ) वाले हरि को, ७४३ [व.] और शब्दब्रह्म शरीर वाले, सदात्मा, ज्ञान से ही जिसे जाना जा सकता हो ऐसा, वैनतेय (गरुड़) की भुजा पर धरे चरण-कमल वाले, गोविन्द को देखकर हर्ष लहरियों के उत्पन्न होने से परवश, इष्टकामना की सिद्धि की प्राप्ति करने वाला हो साष्टांग दण्डप्रणाम कर, उसके पश्चात्, ७४४ [कं.] करकमल

सी. अब्जाक्ष ! सकल भूतांतरात्मुड वन दनरु चुंडेडि नीदु दर्शनंबु
दलकॊनि सुकृत सत्फल भरितंबुलैनट्टि यनेक जन्मानुसरणि
ब्रकट योगक्रियाभ्यास निरूढुलै नट्टि योगीश्वरु लात्म गोरि
यॆंतुरु योगीश्वरेश्वर ! ये भगवत्पदारविंदमुल् परग निपुडु

ते. गंटि, भव वार्धि गडवंग गंटि, मंटि,
गडगि ना लोचनंबुल फलिमि नेडु
दविलि सफलत नॊंदॆ माधव ! मुकुंद !
चिर दयाकार ! नित्य लक्ष्मीविहार ! ॥ 746 ॥

व. अदियुनुं गाक देवा ! भवदीय माया विमोहितुलै हत मेधस्कुलै संसार पारावारोत्तारकंबुलैन भवदीय पादारविंदंबुलु तुच्छ वृत्ति कामुलै सेविंचि निरय गतुलैन वारिकि दत्काम योग्यंबुलगु मनोरथंबुल नित्तुवु। अट्टि सकामुलैन वारि निंदिचु नेनुनु, गृहमेध धेनुवु, नशेष मूलमुनु, त्रिवर्ग कारणमुनु, समान शीलयुनैन भार्यं बरिणयंबु सेय नपेक्षिंचि, कल्पतरुमूल सदृशंबुलैन भवदीय पादारविंदंबुलु सेविंचिति। ऐन नीवक विशेषंबु गलदु। विन्नविंचॆद नवधरिंपुमु। ब्रह्मात्मकुंडवैन

बाँधकर, निष्कपट सद्भक्ति से परवशात्मा हो, विकसित अम्भोरुह (कमल) लोचन वाले के मुख दर्शन करते हुए [उनके प्रति] कहा। ७४५
[सी.] हे अब्जाक्ष (कमलनयन) ! सकल भूतों के अन्तरात्मा के रूप में विलसित रहनेवाले तुम्हारे दर्शनों को, सुकृतों के सत्पुत्रों से भरे हुए अनेक जन्मों की सरणि (विधान) में प्रकट रूप से योग-क्रिया के अभ्यास से निरूढ़ योगीश्वर (अपनी) आत्मा में चाहकर, [महत्त्वपूर्ण] मानते है। हे योगीश्वरेश्वर ! मैं तुम्हारे उन चरण-कमलों को अब देख पाया, (और) भवसागर को पार कर पाया, जीवन पाया। [ते.] माधव ! मुकुन्द ! चिर दयाकार ! नित्य लक्ष्मी के विहार से युक्त ! मेरी आँखों की सम्पदा (सफलता) [दर्शन करने की सामर्थ्य] आज सफल हुई है। ७४६
[व.] इसके अतिरिक्त देव ! भवदीय माया से विमोहित हो मेधा (बुद्धि) के हत होने पर, संसार-पारावार को तार देनेवाले भवदीय चरण-कमलों की तुच्छ भाव से कामी होकर, नरक को प्राप्त करनेवालों को उनके काम (कामना) के योग्य मनोरथ प्रदान करते हो। ऐसे सकामी लोगों की निन्दा करनेवाला मैं भी गृह-मेध (-यज्ञ) की धेनु, अशेष (समस्त) का मूल, त्रिवर्ग का कारण, समान (मेरे अनुरूप) शीलवाली भार्या (पत्नी) के साथ परिणय करने की अपेक्षा (इच्छा) कर, कल्पतरु के मूल-सदृश तुम्हारे चरण-कमलों की सेवा की। इसमें एक विशेष बात और है, निवेदन करता हूँ, ध्यान दो। कहते हैं, ब्रह्मात्मा बने हुए तुम्हारे वचनों

नीदु वचस्तंतु निबद्धुलै लोकुलु कामहतुलरट। एनुनु वारल ननुसरिंचिन वाड नौट कालात्मकुंडवैन नीकु नभिमतंबगु नट्लुगा गर्ममयंबैन भवदाज्ञा चक्रंबु ननुसरिंचुटकु गानि, मदीय कामंबु कोरकु गादु। भवदीय मायाविनिर्मितंबुनु, गालात्मक भूरि वेग समायुक्तंबुनु, नक्षरंबुनुनैन ब्रह्मंबुनंदु भ्रमण शीलंबुन, नधिमास समेत त्रयोदश मासारंबुनु, षष्ट्युत्तर शतत्रयाहोत्रमय पर्वंबुनु, ऋतु षट्क समाकलित नेमियुं, जातुर्मास्य त्रय विराजित नाभियु, नपरिमित क्षणलवादि परिकल्पित पत्रशोभितंबुनु, गालात्मक भूरि वेग समायुक्तंबुनुनैन कालचक्रंबु सकल जीव निकायायुर्ग्रसन तत्परंबगुं गानि, कामाभिभूत जनानुगत पशु प्रायुलगु लोकुल विडिचि भव परिताप निवारण कारणंबैन भवदीय चरणातपत्रच्छाया समाश्रयुलै तावकीन गुणकथन सुधा स्वादन रुचिर लहरी निरसित सकल देह धर्मुलैन भवद्भक्त जनायुर्हरण समर्थंबु गाकुंडु ननि॥ 747॥

म. अनघा! यॊक्कड वय्यु नात्मकृत मायाजात सत्त्वादि श-
वित निकायस्थिति नी जगज्जनन वृद्धि क्षोभ हेतु प्रभा

की तन्तुओं में निबद्ध हो लोग कामहत हुए थे। मैं भी उनका अनुसरण करनेवाला होने से कालात्मा होनेवाले तुम्हें अभिमत (अभीप्सित) हो, ऐसा कर्ममय तुम्हारे आज्ञाचक्र का अनुसरण करने के अतिरिक्त मेरे काम (कामना) को पूर्ण करने के लिए नही है। भवदीय माया-विनिर्मित और कालात्मक-भूरि (अत्यन्त)-वेग से समायुक्त और अक्षर ब्रह्म में भ्रमण-शील और अधि [क] मास सहित त्रयोदश मास रूपी चक्र के पत्रों से युक्त और षष्ट्युत्तर-शतत्रय (३६०) अहोरात्रमय पर्व और, ऋतु-षट्क-युक्त नेमी और, चतुर्मासि के त्रय से विराजित नाभि और अपरिमित (असीम) क्षणलवादि रूपी परिकल्पित पत्रों से शोभित, कलात्मक भूरि-वेग से समायुक्त कालचक्र सकल जीवसमूहों की आयु को निगलने में तत्पर होता है, किन्तु काम से अभिभूत हुए जनों का अनुसरण करनेवाले पशुप्राय लोगों को छोड़कर, भव के परिताप (दुःख) के निवारण के कारणभूत तुम्हारे चरणों के आतपत्र (छत्र) की छाया के आश्रित हो, तुम्हारे गुण-कथन की सुधा के आस्वाद की रुचिर-लहरियों के कारण सकल देहधर्मों का निरास करनेवाले तुम्हारे भक्तजनों की आयु को हरण करने में समर्थ नहीं होता। ७४७ [म.] अनघ! विश्व-स्तुत्य! सर्वेश! एक होकर भी, अपने से निर्मित माया-समूह [उत्पन्न होनेवाले] सत्त्वादि शक्तिसमूह की स्थिति में इस जगत का जन्म, वृद्धि, क्षोभ (विलय) के कारण प्रभाव से निश्चित रूप से ऊर्णनाभि (मकड़ी) की रीति [स्थित] तुम्हारी घन-लीला की महिमा रूपी अर्णव (सागर) का पार पाना किसी के बस की

व निरूढ दगु दूर्ण नाभि गत विश्व स्तुत्य ! सर्वेश ! नी
घन लीला महिमार्णवंबु गडवंगा वच्चुने ? येरिकिन् ॥ 748 ॥

व. देवा ! शब्दादि विषय सुख करंबगु रूपंबु विस्तरिपं जेयुटल्ल नस्मदनु ग्रहार्थंबु गानि नी कॊऱकं गादु। आत्मीय माया परिवर्तित लोक तंत्रंबु गलिगि मनोरथ सुधा प्रवर्षिवैन नीकु नमस्करिचॆद ॥ 749 ॥

म. अनि यिट्लंगि नुतिचिनन् विनि सरोजाक्षुंडु मोदंबुनन्
विनतानंदन कंधरोपरि चरद्विभ्राजमानांगुडु-
न्ननुराग स्मित चंद्रिका कलित शोभालोकुडुन्नै मुनी-
द्रुनि गारुण्य मॆलर्प जूचि पलिकॆन् रोचिष्णुडै प्रेलिमडिन् ॥ 750 ॥

कं. मुनिवर ! ये कोरिक नी
मनमुन गाविचि ननु समंचित भक्तिन्
नॆनरुन बूजिचिति नी
कनयमु ना कोर्कॊ सफल मय्यॆडु जुम्मी ! ॥ 751 ॥

व. अनि यानतिच्चि, प्रजापति पुत्रुंडु सम्राट्टुनुनैन स्वायंभुव मनुवु ब्रह्मावर्त देशंबुनंदु सप्तार्णव मेखला मंडित महीमंडलंबु परिपालिपुचुन्नाडु। अम्महात्मुं डपर दिवसंबुन निटुलकु शतरूपयनु भार्यासमेतुंडै भर्तृकाम यगु कूतुं दोड्कॊनि भवदीय सन्निधिकि जनुदॆंचि, नीकु ननुरूप वयश्शील

बात है क्या ? ७४८ [व.] देव ! शब्दादि विषय से सुखकर तुम्हारे रूप का विस्तार करना (सृष्टिकार्य में रत होना), तुम्हारे अनुग्रह (कृपा) को प्राप्त करने के लिए है, तुम्हारे लिए नहीं। अपनी माया से संचालित लोकतन्त्र से युक्त हो मनोरथ की सुधा को बरसानेवाले तुम्हें नमस्कार करता हूँ। ७४९ [म.] कहते हुए इस प्रकार स्तुति करने पर, सुनकर, सरोजाक्ष (विष्णु) मोद के साथ विनतानन्दन (गरुड़) की भुजाओं पर संचार करनेवाले विभ्राजमान अंग वाला, अनुरागपूर्ण स्मिति रूपी चन्द्रिकाओं से सुशोभित वीक्षणों वाला हो मुनीन्द्र को, करुणा को प्रकट करते हुए देखकर, रोचिष्णु (प्रकाशवान) हो, झट प्रेम के साथ (कहा)। ७५० [कं.] हे मुनिवर ! जिस इच्छा को मन में लेकर समुचित भक्ति के साथ मेरी पूजा की, वह [तुम्हारी] इच्छा अवश्य पूर्ण (सफल) होगी। ७५१ [व.] इस प्रकार आज्ञा देकर [और कहा] प्रजापति का पुत्र [तथा] सम्राट् बने हुए स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्त देश में सप्तार्णव (सातों समुद्र) की मेखला से मण्डित महीमण्डल का पालन कर रहा है। वह महात्मा अपरा (दूसरे, अगले) दिन यहाँ शतरूपा नामक भार्या के साथ भर्तृकामा (पति की इच्छा रखनेवाली) बनी बेटी को साथ लेकर, तुम्हारी सन्निधि में आकर, तुम्हारे अनुरूप वय-शील-संकल्प-गुणाकर बनी अपनी पुत्री का

संकल्प गुणाकर यैन तन पुत्रि बरिणयंबु गाविचु। भवदीय मनोरथंबु सिद्धिंचु। ननु जित्तंबुन संस्मरिपुचुंडु नम्मनुकन्यक निनु वरिंचि भवद्वीर्यंबु वलन नति सौंदर्यवतुलैन कन्यलं दोम्मंड्र गनु। आ कन्यका नवकंबुनंदु मुनींद्रुलु पुत्रोत्पादनंबुलु सेयं गलरु। नीवु मदीय शासनंबुनु धरियिंचि, मदर्पिताशेष कर्मुंड वगुचु, नैकांतिक स्वांतंबुन भूताभयदान दयाचरित ज्ञानिवै नायंदु जगंबुलु गलवनियु, नी यंदु ने गलननियु नेंरिगि सेविपुमु। चरम कालंबुन ननुं बोंद गलवु। भवदीय वीर्यंबु वलन नेनु नी भार्या गर्भंबु प्रवेशिंचि मत्कळांशंबुन संभविंचि, नीकुं दत्त्व संहित नुपन्यसितु। अनि जनार्दनुंडु गर्दमुन केंरिगिंचि, यतंडु गनुंगोनुचुंड नंतर्हितुंडै ॥ 752 ॥

चं. अतुल सरस्वती सरिदुदंचित बालरसाल साल शो-
भित तट तुंग रंग मगु बिंदुसरंबु विनिर्गमिंचि यं-
चित गरुडावरोहणमु चेसि तदीय गुरु त्प्रभूत ऋ-
क्प्रतति विलक्षण क्रम विराजित साममु विंचु मोदियै ॥ 753 ॥

चं. अरिगें विकुंठ धाममुन कंत सकामनुडैन कर्दमुं
डरय विमोहियै मनमु नंबुनु मुंदट दच्चु कोरिकल्

परिणय करेगा। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। चित्त में मेरा स्मरण करते रहो। वह मनु-कन्या तुम्हारा वरण कर तुम्हारे वीर्य के द्वारा अति सुन्दर नौ कन्याओं को जन्म देगी। उन नौ कन्याओं में मुनीन्द्र लोग पुत्रोत्पादन करेंगे। तुम मेरे शासन (आज्ञा) को धारण कर मुझे अपने अशेष (समस्त) कर्म को समर्पित करनेवाले हो, एकान्तिक-स्वान्त (-अन्तःकरण) से भूतों को अभयदान देनेवाले दयाचरित वाले, ज्ञानी हो, मुझमें जगत स्थित हैं (और) तुममें मैं स्थित हूँ (ऐसा) जानकर सेवा करो। चरम (अन्तिम) काल में मुझे प्राप्त करोगे। भवदीय वीर्य के द्वारा मैं तुम्हारी भार्या के गर्भ में प्रवेश कर, मेरी कला के अंश से उत्पन्न हो, तुम्हें तत्त्व-संहिता का उपदेश करूँगा। इस प्रकार जनार्दन कर्दम को विदित कर, उसके देखते हुए, अन्तर्हित (अदृश्य) हुआ। ७५२ [चं.] अतुल सरस्वती सरित् के [तट पर] उदंचित (उठे हुए) बाल-रसाल [तथा] सालवृक्षों से शोभित हो, तटत्-तुंग-रंग बने बिन्दुसर से विनिर्गत हो (निकल कर), अंचित-गरुड़ का अवरोहण किया। उस गरुत्-(पंखों) से प्रभूत (उत्पन्न) ऋक्-प्रतति से विलक्षण रूप से क्रमशः विराजित सामगान सुनते हुए आनन्दित हो, ७५३ [चं.] वैकुण्ठ धाम को चला गया। तब सकामी कर्दम विचार करने पर, विमोही हो, मन में पहले से उत्पन्न होने वाली कामनाओं के विजृम्भित होने पर, उसी क्षण बिन्दुसर को जाकर, जनवन्द्य [तथा] सदा भक्ति से भरे चित्त वाला हो, इन्दिरावर का ध्यान

पिरि गॊनुचुंड दत् क्षणमु विंदु सरंबुन केगि यिदिरा
वरु वलपोयुचुंडॆ जनवंद्युडु भक्ति नितांत चित्तुडै ॥ 754 ॥

व. अंत स्वायंभुवुंडु गनक रक्षारूढुं डगुचु निजभार्या समेतुंडै भर्तृवांछपर येन पुत्रिकं दोड्कॊनुचु, निजतनूजकुं दगिन वरु नन्वेषिपुचु, भुवनंबुलु गलयं ग्रम्मरि,,यॆंदुनुं गानक, वच्चि वच्चि ॥ 755 ॥

उ. मुंदट गांचॆ नंत वुध मुख्युडु विष्णुडु कर्दमुन् दया
नंद मॆलर्प जूड नयनंबुल रालिन बाष्पमुल् धरन्
बिंदु वुलै वॆसं दॊरगि पॆर्चि सरस्वति जुट्टि पारुटन्
बिंदु सरोवरं बनॆडि पेर दनर्चिन पुण्य तीर्थमुन् ॥ 756 ॥

उ. अंदु दमाल साल वकुळार्जुन निंब कदंबु पाटली
चंदन नारिकेळ घनसार शिरीष लवंग लुंग मा
कंद कुचंदन क्रमुक कांचन बिल्व कपित्थ मल्लिका
कुंद मधूक मंज ळनिकुंजमुलं दनरारि वॆंडियुन् ॥ 757 ॥

कं. परिपक्व फलभ रानत
तरुशाखा निकर निवसित स्फुट विहगो-
त्करु बहु कोलाहल रव
भरित दिगंतमुलु गलिगि भव्यं बगुचुन् ॥ 758 ॥

कं. अति निशित चंचु दळन, क्षत निर्गत पक्वफल रसास्वादन मो-
दित राजशुक वचोर्थ, श्रुति घोषमु चॆलग श्रवण सुखदं बगुचुन् ॥ 759 ॥

करता रहा। ७५४ [व.] तब स्वायम्भू ने कनकरथ पर आरूढ़ हो, अपनी पत्नी को साथ ले, भर्तृवाञ्छारत पुत्री को साथ लेकर, अपनी पुत्री के लिए योग्य वर को ढूँढ़ते हुए, भुवनों का भ्रमण कर, कहीं भी किसी को न पाकर, आ आकर, ७५५ [उ.] [अपने] सामने बुधमुख्य, विष्णु, कर्दम को देखा। दया तथा आनन्द को प्रकट होते हुए देखने पर, टपके आँसू धरा पर बूँदों के क्रम में झट सरस्वती को परिवेष्टित कर बहने के कारण बिन्दु सरोवर नाम से पुण्यतीर्थ विलसित हुआ। ७५६ [उ.] वहाँ तमाल, साल, वकुल, अर्जुन, निम्ब, कदम्ब, पाटली, चन्दन, नारिकेल, घनसार, शिरीष, लवंग, लुंग, माकन्द, सुचन्दन, क्रमुक, कांचन, बिल्व, कपित्थ, मल्लिका, कुन्द, मधूक, मंजल के निकुंजों से विलसित होकर और, ७५७ [कं.] परिपक्व फलों के भार से, झुके हुए वृक्ष की शाखाओं में अत्यन्त कोलाहल करनेवाले पक्षियों की ध्वनियों से दिगन्तों के भर जाने से भव्य होते हुए। ७५८ [कं.] अत्यन्त निशित (धार वाले) चोंचों के द्वारा दलन से क्षत हुए, पके फलों से निर्गत रस की रुचि लेते हुए आनन्दित होनेवाले राजशुकों के वचन (तथा) अर्थ-श्रुतिघोष के समान प्रकट होने पर श्रवण

कं. ललित सहकार पल्लव, कलितास्वादन कषाय .कंठ विराज
 त्कलकंठ पंचमस्वर, कलनादमु लुल्लसिल्ल गड्डु रम्यमुलै ॥ 760 ॥

कं. अतुल तमाल महीज, प्रततिक्षण जात जलद परिशंकांगी
 कृत तांडव खेलन विल, सित पिंछ विभासमान शिखि सेव्यंबै ॥ 761 ॥

कं. कारंडव जलकुक्कुट, सारस बक चक्रवाक षट्पद हंसां-
 भोरुह कैरव नवक, ल्हार विराजित सरोरुहाकरयुतमै ॥ 762 ॥

कं. करि पुंडरीक वृक का, सर शश भल्लूक हरिण भ्रमरी हरि सू-
 कर खड्ग गवय वलिमुख, शरभ प्रमुखोग्र वन्य सत्वाश्रयमै ॥ 763 ॥

व. ऑप्पु नप्परम तापसोत्तमुनि याश्रमंबु गनुंगोनि मित परिजनंबुल तोडं
 जॉच्चि यंदु ॥ 764 ॥

सी. अंचित ब्रह्मचर्य व्रत योग्यमै विलसिल्लु घन तपोवृत्ति चेत
 देहंबु रुचिर संदीप्तमै चॅलुवॊंद गड्डु गृशीभूतात्म कायुडय्यु
 नलिनोदरालाप नव सुधापूरंबु श्रोत्रांजलुल द्रावि चॉक्कि युन्न
 कतन गृशीभूत कायुंडु गाक जटावल्कलाजिन श्री वॅलुंग

ते. गमल पत्र विशाल नेत्रमुलु दनर,
 नळिन संस्कार संचितानर्घ्य नूत्न

सुखद होने पर, ७५९ [कं.] ललित सहकार (आम्र) पल्लवों के कलित, आस्वादन कषाय कण्ठ वाली (कोयल) के पंचम स्वर के कलनाद के उल्लसित होने पर, अति रम्य होते हुए, ७६० [कं.] अतुल तमालवृक्ष-समूह की दृष्टियों से उत्पन्न हो, जलद से परिष्वंग (आलिंगन) को स्वीकार कर ताण्डव केली में विलसित हो श्वेत पिंछ के समान भासित होनेवाले मोर से सुसेव्य होते हुए, ७६१ [कं.] करण्डव, जलकुक्कुट, सारस, बक, चक्रबाक, षट्पद, हंस, अंभोरुह, कैरव, नव कल्हार से विराजित सरोरुह-आकर (सरोवर) से युक्त हो, ७६२ [कं.] करि (हाथी), पुण्डरीक (शेर), वृक, कासर (महिष), शश, भल्लूक, हरिण, चमरी, हरि (सिंह), सूकर, खड्गमृग; गवय, वलीमुख (वानर), शरभ प्रमुख (आदि) उग्र वन्य मृगों के आश्रय होकर, ७६३ [व.] सुशोभित होनेवाले उस परम तापस-श्रेष्ठ के आश्रम को देखकर, सीमित परिजनों के साथ प्रवेश कर, वहाँ, ७६४ [सी.] अंचित (पूज्य) ब्रह्मचर्यव्रत के योग्य हो विलसित, घन तपोवृत्ति से, देह के रुचिर संदीप्त हो विलसित होने पर, अत्यन्त कृशीभूत (सूखे हुए) निज शरीर वाले होकर भी नलिन (कमल) के पेट से उत्पन्न नवसुधा को श्रोत्र रूपी अंजलियों से पी-पीकर थके होने के कारण कृशीभूत शरीरवाला न होकर जटावल्कल अजिनावली की श्री को दिखाते हुए, [ते.] कमलपत्र रूपी विशाल नेत्रों के शोभा देने पर, संस्कार-रहित

रत्नमुनु बोलि युन्न कर्दमुनि जूचि,
भक्ति म्रॊक्कॆनु मनुव तत्पादमुलकु ॥ 765 ॥

व. इट्लु वंदनंबु गाविंचिन गर्दमुंडु दन गृहंबुनकु विंदै चनुदॆंचिन यम्मनुवु नादरिंचि, यर्घ्य पाद्यादि विधुलं बरितुष्टुं गाविंचि, पूर्वोक्तंबन भगवदादेशंबु स्मरिंयिचि स्वायंभुवुन किट्लनियॆ ॥ 766 ॥

सी. वर गुणाकर ! भगवद्भक्ति युक्तुंडवॆन त्वदीय पर्यटन मॆल्ल
शिष्टपरिग्रह दुष्टनिग्रहमुल कॊरकु गदा ! पुण्यपुरुष ! मरियु
वनज हिताहित वह्नि समीर वैवस्वत वार्धिप वासवात्म-
कुडवु हरिस्वरूपुडवॆन नीकुनु मानित भक्ति नमस्करिंतु

ते. ननघ ! नी वॆप्पुडेनियु नखिललोक-
जैत्र मगु हेम मणिमय स्यंदनंबु
नॆक्कि कोदंडपाणिवै यिद्ध-
सैन्य पद विघट्टनचे भूमिभाग मगल ॥ 767 ॥

म. तरणि बोलि चरिंपकुन्न घननिद्रंबोंदि यॆदेनि भू-
वर पद्मोदर कल्पितंबुलगु नी वर्णाश्रमोदार वि-
स्तर पाथोनिधि सेतुभूत महिताचार क्रियल् दप्पि सं-
करमै चोर भयंबुनन् निखिल लोकंबुल् नशिंचुं जुमी ! ॥ 768 ॥

हो, संचित-अनर्घ नवीन रत्न की भाँति स्थित थे। [ऐसे] कर्दम को देखकर, उनके चरणों में भक्ति के साथ प्रणाम किया। ७६५ [व.] इस प्रकार वन्दना करने पर, कर्दम ने अपने घर पर अतिथि के रूप में आये हुए उस मनु का आदर कर अर्घ्यपाद्यादि विधियों से परितुष्ट कर, पहले कहे गये भगवान के आदेश का स्मरण कर स्वायम्भू से इस प्रकार कहा। ७६६ [सी.] श्रेष्ठ गुणों के निलय ! पुण्यपुरुष ! भगवद्भक्ति से युक्त तुम्हारी समस्त यात्रा शिष्टपरिग्रहण तथा दुष्ट निग्रह के लिए ही तो है। और वनज के हित (सूर्य) [तथा] अहित (चन्द्र), वह्नि (अग्नि), समीर, वैवस्वत, वार्धिप (समुद्र), वासव के अंश वाले हो, हरिस्वरूप वाले हो। तुम्हें अत्यन्त भक्ति के साथ नमस्कार करता हूँ। [ते.] अनघ ! अखिल लोक की विजय-यात्रा के लिए स्वर्ण तथा मणिमय रथ पर आरूढ़ हो कोदण्ड धारण कर प्रसिद्ध सेना के पदाघातों से भूमि भाग को वेधते हुए, ७६७ [म.] तरणि (सूर्य) के समान तुम संचरण नहीं करोगे, घन निद्रा को प्राप्त कर रहोगे तो, हे भूवर ! पद्मोदर (ब्रह्मा) से कल्पित इस वर्णाश्रम रूपी उदार (तथा) विस्तार-पाथोनिधि (सागर) के हेतुभूत महित-आचार-क्रियाओं का उल्लंघन होकर, संकर हो, चोरों के भय से सकल लोक (अवश्य) नष्ट हो जाएँगे। ७६८

व. अनि पलिकि भव दागमनंबुनकु निमित्तं बॅय्यदि ? यनवुडु समाहित सकल नित्यकर्मानुष्ठानुंडैन मुनींद्रुंनकु स्वायंभुवुं डिट्लनियें ! ॥ 769 ॥

अध्यायमु—२२

कं. सरसिज-गर्भुडु तन चे, विरचितमैनट्टि वेदंविततुल नॅल्लन्
धर वॅलयिंचुटकै बुधवर ! मिम्मुं दन मुखंबु वलन सृजिंचॅन् ॥770॥

कं. दुरितस्वरूप पाट, च्चर पीडं बॊंदकुंड सकल क्षोणिन्
बरिपालिंचुटकै ममु, नरविंद-भवुंडु भुजमुलंदु सृजिंचॅन् ! ॥ 771 ॥

कं. मरि यट्टि जलजभवुनकु, गर मंतःकरण गात्रकमुलै वरुसन्
बरगिन ब्रह्मक्षत्रम, लरय रमाधीश्वरुनकु नवनीयंबुल् ॥ 772 ॥

व. कावुन हरिस्वरूपुंडवै दुर्जन दुर्दर्शुंडवैन निनुं गनुट मदीय भाग्यंबुन सिद्धिंचॅ। भवत्पादकंज किंजल्क पुंज रंजितंबै मदीय मस्तकंबुनु, दावक वचन सुधा पूरितंबुलै श्रवणंबुलुनु, मंगळाकरत्वंबुन साफल्यंबुनं बॊंदॅ। नेनु गृतार्थुंडनैति। दुहितृ स्नेहज दुःख परिक्लिन्नांतःकरणुंडनै सकल देश परिभ्रमण खिन्नुंडनैन ना विन्नपं बवधरिंपु मनि यिट्लनियॅ ॥773॥

[व.] ऐसा कहकर [फिर पूछा] आपके आगमन का निमित्त (कारण) क्या है ? ऐसा पूछने पर समाहित रूप से सकल नित्य कर्मों का अनुष्ठान करनेवाले मुनीन्द्र से स्वायम्भू ने इस प्रकार कहा। ७६९

अध्याय—२२

[कं.] बुधवर ! सरसिज-गर्भ (ब्रह्मा) ने अपने द्वारा विरचित समस्त वेदतति को धरा पर प्रकट करने के लिए, अपने मुख से आप लोगों का सृजन किया। ७७० [कं.] दुरितस्वरूपी पाटच्चरों (चोरों) द्वारा पीड़ित न होने के लिए सकल क्षोणी (धरती) का पालन करने के लिए अरविन्दभव (ब्रह्मा) ने अपनी भुजाओं से [हमारा] सृजन किया। ७७१ [कं.] फिर ऐसे जलजभव (ब्रह्मा) के अत्यन्त अन्तःकरण और शरीरवाले, परखने पर, क्रमशः ब्रह्मक्षात्र, रमाधीश्वर (विष्णु) के लिए रक्षा करने योग्य हैं। ७७२ [व.] इसलिए हरिस्वरूप हो दुष्टों के लिए दर्शन न देनेवाले तुम्हारे दर्शन मेरे सौभाग्य के कारण सिद्ध हुए। तुम्हारे पाद-कंज के किंजल्क (पराग) के पुंज से रंजित हो मेरा शिर, और तुम्हारे वचन-सुधा से पूरित हो [मेरे] श्रवण, मंगलों के निलय होने से सफलता को प्राप्त हुए। मैं कृतार्थ हुआ। बेटी के प्रति स्नेह के कारण उत्पन्न दुःख से परिक्लिन्न बने अन्तःकरण को लेकर, सकल देशों के परिभ्रमण से खिन्न (दुःखी) बने मेरी विनती का अवधारण कीजिए। ऐसा करते हुए

म. वरयोगीश्वर ! देवहूति यनु नी वामाक्षि मत्पुत्रि वा-
वरलावण्य गुणाढ्युलन् विनियु नॆव्वारिन् मदि गोर दा-
तुरयै नारदु पंपुनन् मिमु वरितुनंचु नेतॆंचॆ नी
तरुणीभिक्ष परिग्रहिंपुमु शुभोदात्त क्रिया लोलतन् ॥ 774 ॥

कं. अमलिन गृहमेधिक क, र्ममुलकु ननुरूप गुण विराजित शील
क्रममुन दनरिन तरुणिन, प्रमदमुन वरिंपुमय्य ! भव्यचरित्रा ! ॥ 775 ॥

कं. अनघ ! विरक्तुलकैनं, दन यंत लभिंचु सौख्यतति वर्जिपं
जनदट कामुकुलकु न, व्विधन मानुदुरे ? लभिंचु प्रिय सौख्यंबुल् ॥776॥

कं. विनुमु फलारंभुडु गृप, णुनि नडिगिन दन यशंबुनुं दन मानं
बुनु जॆडु गावुन दग नी, वॆनय विवाहेच्छ दगुट यॆरिगॆ निटकुन् ॥ 777 ॥

कं. चनुदॆंचिति नस्मत्प्रार्थन, कॊनि मत्तनूज दग वरियिंपु
मन मुनि स्वायंभुवुनि, गनुगॊनि मरलंग बलिकॆ गडु मोदमुनन् ॥778॥

सी. अनघ ! नी चेत ननन्यदत्तमुग ब्रतिष्ठितंबैन यी तीगबोडि
कमनीय रूपरेखा विलासंबुल मानित लक्ष्मीसमान यगुचु

[प्रार्थना करते हुए आगे] इस प्रकार कहा। ७७३ [म.] हे परम-योगीश्वर ! देवहूति नामक यह वामाक्षी मेरी पुत्री है। उत्तम सौन्दर्य (तथा) गुणों के बारे में सुनकर भी मन में किसी (अन्य) की आतुरा हो चाह नहीं करती। नारद के आदेश पर आपको वरण करने को [ठानकर] आ गई है। शुभ-उदात्त क्रियाओं में लीन होकर इस तरुणी-[रूपी] भिक्षा को स्वीकार करो। ७७४ [कं.] भव्य चरितवाले ! अमलिन रूप से उपस्थित गृहमेधी (गृहस्थ) के कर्मों के अनुरूप गुणों तथा शील से विराजित हो क्रमशः सुशोभित (इस) तरुणी का प्रमोद से वरण करो। ७७५ [कं.] अनघ ! कहते हैं कि विरक्तों को भी अपने-आप (अनायास) प्राप्त होनेवाले सौख्यतति को छोड़ना नहीं चाहिए। तब कामुक प्रिय-सुखों की प्राप्ति होने पर छोड़ते हैं क्या ? (बिलकुल नहीं) ७७६ [कं.] सुनो ! फलाकांक्षी [यदि जाकर] कृपण (दीन, कंजूस) से प्रार्थना करे, तो अपना मान (तथा) यश खो बैठता है। इसलिए तुम्हारे विवाह करने की इच्छा जानकर मैं यहाँ आ गया हूँ। ७७७ [कं.] मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर, समुचित रीति से मेरी पुत्री का वरण करो। ऐसा कहने पर, स्वायम्भू को देखकर अत्यधिक आनन्द के साथ और कहा। ७७८ [सी.] अनघ ! तुम्हारे द्वारा अनन्य दत्ता (बेजोड़ रूप से दी गई) के रूप में प्रतिष्ठित इस लतांगी के कमनीय रूप-रेखा-विलास से मानित-लक्ष्मी-समान हो, एक रात उडुराज (चन्द्र) की चन्द्रिका से धवलित अपने सौध (भवन) में मणिमंजीरों की मधुर ध्वनियों से युक्त

नीकनाटि रात्रियं दुडुराज चंद्रिका धवळित निज सौधतलमु नंदु
महित रण न्मणि मंजीर शोभित चरणयै निजसखी सहित यगुचु

ते. गंदुक क्रीड जरियिंप गगनमंदु,
वर विमानस्थु डगुचु विश्वावसुंडु
नाग वनरिन गंधर्व नायकुंडु,
दरुणि जूचि विमोहियै धरणि बडियॅ ॥ 779 ॥

ते. पुंडरीकाक्षु नॅरुगनि पुरुष पशुवु-
लो तलोदरि बॉडगान रेमिसॅप्प !
नट्टि कोमलि भाग्योदयमुन दान
वच्चि कामिंप नॉल्लनि वाडु गलडॅ ? ॥ 780 ॥

कं. ई कन्यारत्नमुनकु, नाकुनु गुण रूप वर्तनंबुल यॅड ना
लोकिंप समसु कावुन, गैकॉनि वरियिंतु विगत कल्मषवृत्तिन् ॥ 781 ॥

कं. विमलात्म ! दीनि कॉक सम-
यमु गल दॅरिगिंतु विनु गुणाकर यगु नी
रमणिकि नपत्यपर्यं-
तम वर्तिपुदु गृहस्थ धर्म क्रियलन् ॥ 782 ॥

आ. अंत मीद विष्णुनाज्ञ यौदल दाल्चि,
शमदमादि योग सरणि बॉंदि
सन्यसिंचुवाड जलजनेत्रुनि वाक्य-
कारणमुन जेसि धीर-चरित ! ॥ 783 ॥

चरणों वाली हो अपनी सखियों के साथ, [ते.] कन्दुक-क्रीड़ा करते समय गगन में वरविमान में बैठे विश्वावसु नाम से सुशोभित गन्धर्व नायक तरुणी को देखकर विमोही हो धरणी पर गिर पड़ा। ७७९ [ते.] क्या कहूँ, पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) को न जाननेवाला कोई भी पुरुष-पशु इस तलोदरी (सुन्दरांगी) को नहीं देख सकते हैं। ऐसी कोमली [किसी के] भाग्योदय से अपने-आप आकर कामना करने पर, न कहनेवाला कोई होगा ? (नहीं।) ७८० [कं.] इस कन्यारत्न और मुझमें रूप-गुण-वर्तन देखने पर, समान हैं, अस्तु विगत कलमषवृत्ति से इसे स्वीकार कर वरण करूँगा। ७८१ [कं.] विमलात्मा ! इसके लिए एक समय (प्रतिज्ञा) है, विदित करता हूँ। सुनो ! गुणों के आकर इस रमणि को अपत्य (संतान) होने तक गृहस्थ-धर्म-क्रियाओं के साथ व्यवहार करूँगा। ७८२ [आ.] धीर चरितवाले ! उसके पश्चात् विष्णु की आज्ञा को सिर पर धारण कर शम-दम आदि योग सरणी को प्राप्त कर, जलजनेत्र (विष्णु) के वाक्यों (वचनों) के कारण, संन्यास ले लूँगा। ७८३ [कं.] श्रीविभु

कं. श्रीविभुनि वलन नी लो-
काविळि युदयिंचु वॆरुगु नणगुनु विनु रा-
जीव भव भवुल कत डे,
भूवर ! निर्माण हेतु भूतुं डरयन् ॥ 784 ॥

व. अदि गावुन नम्महात्मुनि याज्ञोल्लंघनंबु सेयरादनि कर्दमुंडु वलिकिन विनि स्वायंभुवुंडु निज भार्ययैन शतरूप तलंपुनु, बुत्रियैन देवहूति चित्तंबुनु, नॆऱिंगिन वाडै मुनि समयंबुन क्रिय्यकॊनि, प्रहृष्ट हृदयुंडगुचु, समंचित गुण गणाढ्युंडैन कर्दमुनकु देवहूतिनि विध्युक्त प्रकारंबुन विवाहंबु सेयिंचॆ। तदनंतरंबु शतरूपयुनु, पारिवर्ह संज्ञिकंबुलैन विवाहोचित दिव्यांबराभरणंबुलु देवहूति कर्दमुल कॊसंगॆ। इव्विधंबुन निजकुलाचारसरणि वरिणयंबु गाविंचि, विगत चिंताभरुंडै, स्वायंभुवुंडु दुहितृ वियोगव्याकुलित स्वांतुडै, कूतुं गौगिलिंचुकॊनि, चुबुकंबु पुणुकुचु, जॆक्किलि मुद्दु गॊनि, शिरंबु मूकॊनि, प्रेमातिरेकंबुन बाष्प धारा सिक्त मस्तकं जेसि तल्ली ! पोयिवच्चॆद ननि चॆप्पि कर्दमुनिचेत नामंत्रितुंडै निजभार्या समेतुंडै रथंबॆक्कि सपरिवारुंडै ॥ 785 ॥

चं. तरळ तरंग वीचि समुदंचित बिंदु सर स्सरस्वती
सरि दरविंद तुंदिल लसत्तरु तीरनिवास सन्मुनी-

के कारण यह लोकावली उदित हो, वृद्धि को पा, समाप्त होता है। सुनो ! हे भूवर ! परखने पर, राजीवभव (ब्रह्मा), भव (शिव) के निर्माण के कारणस्वरूप वही है। ७८४ [व.] इसलिए उस महात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करना नहीं चाहिए, ऐसा कर्दम के कहते सुनकर स्वायम्भू ने अपनी पत्नी शतरूपा का विचार, पुत्री देवहूति का चित्त जानकर मुनि के समय (शपथ) को स्वीकार कर, प्रहृष्ट (अत्यन्त आनन्द) हृदयवाला हो, समुचित रूप से गुणगणों वाले कर्दम से देवहूति का विवाह विधियुक्त रीति में सम्पन्न करवाया। उसके पश्चात् शतरूपा ने भी पारिवर्ह (दहेज) संज्ञा वाले विवाहोचित दिव्य वस्त्रों, आभरणों को देवहूति-कर्दम को प्रदान किया। इस प्रकार अपने कुल-आचार (रीति-रिवाज) के अनुसार परिणय करवाकर, चिन्ता-भार से मुक्त हो, स्वायम्भू ने दुहिता (बेटी) के वियोग से उत्पन्न व्याकुलता से भरे स्वान्तवाला हो, बेटी का आलिंगन कर, चुबुक का स्पर्श कर, गाल चूमकर, शिर को सूँघकर, प्रेमातिरेक से आँसू की धाराओं से सिर भिगोकर हे माई ! (बेटी) ! (अब हम) जाकर आयेंगे। कहकर कर्दम से आमंत्रित हो, अपनी पत्नी के साथ रथ पर आरूढ़ हो, सपरिवार (अनुचर) वाला हो, ७८५ [चं.] तरल तरंगों, वीचियों से समुदंचित (मनोहर) बिन्दुसर [और] सरस्वती नदी के तट पर अरविन्दों से सुकुमार, लसत् तरु तीर-निवास

श्वरनिक राश्रमाकलित संपदलं गनुगोंचु वेड्क मु-
प्पिरिगोन नेगॆ नात्म पुट भेदन विस्फुट मार्गवर्तियै ॥ 786 ॥

व. इट्लु चनि चनि ब्रह्मावर्त देशंबु नंदु ॥ 787 ॥

सी. एंदेनि तॊल्लि लक्ष्मीशुंडु यज्ञ सूकरमूर्ति गैकॊनि सरभसमुन
नॊडलु जाडिंचिन बुडमिपै रालिन रोम जालंबुल रुचिर हरित
वर्णमै पॊलुपारु वर कुश काश मयंबुनु यज्ञक्रियाकलाप
योग्यंबुनै चाल नॊप्पारि बर्हिस्सु संभविंचिन दान सकल ऋषुलु

ते. ग्रतुवुलॊनरिंचि तद्विघ्न कारुलैन
यसुरुलनु द्रुंचि रट्ल स्वायंभुवुंडु
विष्णुपरमुग मखमु गाविंचि रुचिर
मेध वॆलुवंदिनट्टि यात्मीयपुरमु ॥ 788 ॥

कं. डायंजन बुरजनमुलु, पायनमुलु दॆच्चि यिच्चि बहु गतुल नुतुल्
सेयग मंगळ तूर्यमु, लायतगति म्रोय जॊच्चॆ नंतःपुरमुन् ॥ 789 ॥

व. इट्लु प्रवेशिंचि तापत्रयोपशमनंबगु भगवद्भक्ति वृद्धि बॊंदिपुचु बुत्र मित्र
कळत्र सुहृद्बांधव युतुंडै परमानंदंबुन ॥ 790 ॥

म. अतिभक्ति ब्रतिवासरंबुनु हरि व्यासंगुडै माधवां-
कित गंधर्व विपंचिका कलित संगीत प्रबंधानु मो-

करनेवाले सन्मुनीश्वरों के आश्रमों की सम्पदाओं को देखते हुए, अत्यन्त आनन्द का अनुभव करते हुए, अपने नगर के मार्ग में प्रस्थान किया। ७८६ [व.] इस प्रकार चल-चलकर, ब्रह्मावर्त देश में, ७८७ [सी.] जहाँ पर पूर्व में लक्ष्मीश के यज्ञसूकर मूर्ति को लेकर संरम्भ के साथ शरीर झटकने पर धरती पर गिर पड़े रोमजाल के रुचिर रूप से हरित वर्ण में सुशोभित, श्रेष्ठ कुशकाशमय हो और यज्ञ-क्रिया-कलाप के कारण योग्य हो अधिक विलसित होकर बर्हिस् (हुताशन, अग्नि) के सम्भव होने पर, सकल ऋषियों ने, [ते.] यज्ञ रचकर उस विघ्न के कारक असुरों का वध किया। इसी प्रकार स्वायम्भू ने जहाँ विष्णुपरक यज्ञ रचकर रुचिर मेधा से विलसित हुआ हो, ऐसे अपने नगर के ७८८ [कं.] समीप पहुँचने पर, पुरजनों के उपायन (उपहार,भेंट) ला देकर अनेक प्रकार से स्तुतियाँ करने पर, निरंतर मंगल तूर्यों के बजते समय, अन्तःपुर में प्रवेश किया। ७८९ [व.] इस प्रकार प्रवेश कर, तापत्रयों का उपशमन करनेवाली भगवद्-भक्ति की वृद्धि करते हुए, पुत्र, मित्र, कलत्र तथा सुहृद् बन्धुजनों के साथ परमानन्द के साथ, ७९० [म.] अतिभक्ति के साथ प्रतिदिन हरि की सेवा में आसक्त हो, माधव को अंकित हुए गन्धर्व वीणा के संगीत के प्रबन्ध में आनन्दित होते हुए, इष्ट विभूतियों में अनुरक्त न होकर, सदा अच्युत की

विदुडै यिष्ट विभूतुलंदु ननुरक्ति बोंदके प्रोद्वु न
च्युत सेवैक परायणुंडगुचु नस्तोक्त प्रभावोन्नतिन् ॥ 791 ॥

म. हरि पादांबुरुह द्वयार्पित तुलस्यामोदमुं गोंचु द-
च्चरितंबुल् दलपोयुचुं बोगडुचुन् जर्चिपुचुन् विचु द-
त्परिचर्या व्यतिरिक्त संसरण सद्धर्मार्थ कामंबुलन्
बरिभूतंबुलु सेसि मोक्षपद संप्राप्ति क्रियारंभुडै ॥ 792 ॥

कं. निगमार्थ गोचरुंडन
दगु हरि चरित प्रसंग तत्पर चित्तुं-
डगु नतनिकि स्वांतरंगमु
लगु याममु लोंगि नयात याममुलय्येन् ॥ 793 ॥

सी. वेंडियु नम्मेटि विष्णु मंगळ कथाकर्णन ध्यानानुगान नुतुलु
सलुपुचु दा स्वप्न जाग्रत्सुषुप्तुल वलगिंचि या पुण्यतमुडु दानु
जक्रिदासुडु गान शरीर मानस दिव्यमानुष भौतिक व्यथलनु
दगुलक सन्मुनींद्र श्रेणिकि दग दनरु वर्णाश्रम धर्मगतुलु

ते. दप्पकुंडंग नडपुचु वगिलि सर्व-
भूत हितवृत्ति नतुल विख्यात लील
नेक सप्तति युगमु लस्तोक चरितु-
डगुचु वर्तिचें सम्मोद मतिशयिल्ल ॥ 794 ॥

सेवा में लगे रहकर अस्तोक (अनल्प) प्रभाव की उन्नति में, ७९१ [म.] हरिचरण युगल में अर्पित तुलसी [दल] के आमोद (परिमल) ग्रहण करते हुए, उसके चरित्रों का ध्यान करते हुए, स्तुति करते हुए, चर्चा करते हुए सुनते हुए, उसकी सेवा के विरोधी (तत्व) संसरणात्मक सद्धर्म-अर्थ-काम को परिभूत [जीत] कर, मोक्षपद की प्राप्ति की क्रिया का आरम्भ (प्रयास) करनेवाला हो। ७९२ [कं.] निगम के अर्थगोचर होनेवाले हरिचरित के प्रसंग में तत्पर चित्त वाले उनको, स्वान्त रंग वाले याम (रात) उनके लिए अयात (न बीतनेवाले) याम (संयम) हुए। ७९३ [सी.] और भी वह श्रेष्ठ जन अपने स्वप्न, जागृति, सुषुप्तियों में विष्णु की मंगल कथाओं के श्रवण, ध्यान, अनुगान (तथा) स्तुतियाँ आदि करते हुए, वह पुण्यचरित वाला स्वयं विष्णु के दास होने के कारण शारीरिक, मानसिक, दिव्य, मानुष, भौतिक, व्यथाओं में न लगकर सन्मुनीन्द्र की श्रेणी के योग्य हो विलसित वर्णाश्रम की धर्मगतियों को [ते.] अचूक रीति से चलाते हुए, सर्व प्राणियों के हित की वृत्ति में लगकर अतुल विख्यात लीला में इकहत्तर युगों को अनल्प चरित वाला हो अतिशय आनन्द के साथ व्यवहार किया। (जीवन बिताया।) ७९४ [कं.] कहकर विदुर को

कं. अनि यम्मनु चरितमु विदु-
रुन कम्मैत्रेय मुनिवरुडु दय तोडन्
विनिर्पिचि कर्दमुनि कथ
दनरग नॅर्रिगितु ननि मुदंबुन बलिकॅन् ॥ 795 ॥

अध्यायमु—२३

कर्दम प्रजापति योगप्रभावंबुचे विमानंबु गल्पिचि भार्यतो गूडि विहरिंचुट

व. इट्लु स्वायंभुवुंडु देवहूतिनि गर्दमुनिकि विवाहंबु सेसि मरलि चनिन दनंतरंबु देवहूतियु बति भक्ति गलिगि भवुनिकि भवानि परिचर्य सेयु तॅरंगुन बतिय तनकु नेडुगडयुंगा नॅरिंगि यम्मुनींद्रुनि चित्तवृत्ति कौलदि दिनदिनंबुनकु भक्ति तात्पर्य स्नेहंबुलु रॅट्टिपं ब्रिय शुश्रूषणंबुलु गाविपुचु ननून तेजोविराजित यगुचु गाम क्रोध दंभ लोभादि गुण विरहितयै शरीर शुद्धि वहिंचि चतुर सौहार्द स्नेहंबुलु गलिगि पतियु देवंबुगा भाविंचि मृदु मधुर वचन रचनयै पतिभक्ति येमरक वर्तिप दैवयोगंबु नैननु

मैत्रेय मुनिवर ने कृपा कर उस मनुचरित को सुनाकर, [अब] कर्दम की कथा को समुचित रीति में आनन्द के साथ विदित करूंगा, ऐसा कहा। ७९५

अध्याय—२३

योगप्रभाव से विमान की कल्पना कर कर्दम प्रजापति का पत्नी के साथ विहार करना

[व.] इस प्रकार स्वायम्भू के देवहूति का विवाह कर्दम के साथ कर वापस चले जाने के पश्चात् देवहूति भी पति-भक्ति के साथ भवानी के भव की सेवा करने की रीति, पति को ही अपना सप्तरक्षक (गुरु, माता, पिता, पुरुष, विद्या, दैव, दाता) जानकर उस मुनीन्द्र की चित्तवृत्ति के अनुकूल दिन-प्रतिदिन भक्तितात्पर्य, स्नेह के द्विगुणीकृत होते हुए, प्रिय-शुश्रूषा करते हुए, अनून (अनल्प) तेज से विराजित होते हुए, काम, क्रोध, दम्भ, लोभ आदि गुणों से विरहिता हो, शरीर की शुद्धि धारण कर, चतुरता (तथा) सौहार्द्र, स्नेह के साथ पति को ही देवता मानकर, मृदु मधुर वचनों की रचनावली से युक्त हो, पतिभक्ति में अजागरूक न हो, व्यवहार करने पर, दैवयोग को भी हटाने में समर्थ कर्दम ने अपनी सेवा के कारण कृशीभूत देहवाली होने पर देवहूति को करुणा से तरंगित अपांग (चितवन)

दप्पिप समर्थुडैन कर्दमुंडु निजसेवायास कृशीभूत देहयैयुन्न देवहूति गरुणातरंगितापांगुंडै कनुंगोनि मंजु भाषणंबुल निट्लनियॆ ॥ 796 ॥

उ. मानित धर्ममार्ग महिम स्फुट भूरि तप स्समाधि वि-
द्या निभृतात्मयोग समुपार्जित विष्णु कटाक्ष लब्ध शो-
भानघ दिव्यभोग बहुभद्र वितानमु लस्मदीय से-
वा निरतिन् लभिंचु ननिवारण नित्तुनु दिव्य दृष्टियुन् ॥ 797 ॥

ते. नॆलत ! तद्दिव्य दृष्टि नन्नियुनु नीकु
गानवच्चु विलोकिंपु कमलपत्र
नयनु बॊममुडि मात्रन नाशमंदु
नितरमगु तुच्छभोगंबु लेमिचॆप्प ! ॥ 798 ॥

सी. अनुपम राज्य दर्पांध चेतस्कुलै पापवर्तनुलैन पार्थिवुलकु
धृति बॊंदरानि यी दिव्य भोगंबुलु नीति पातिव्रत्य निष्ठ जेसि
संप्राप्तमुलु नय्यॆ समत भोगिंपुमु कार्यंबु सिद्धिंचु गाक नीकु
ननुटयु नतिवयु ननुपम योगमाया विचक्षण शालियैन कर्द

ते. मुनि गनुंगोनि विगताधियुनु नपांग-
कलित लज्जानतास्य पंकजयु नगुचु
विनय प्रणयमुलं जेसि विह्वलंबु-
लैन पलुकुल बतिकि निट्लनियॆ प्रीति ॥ 799 ॥

वाले हो, देखकर मंजुल भाषणों से इस प्रकार कहा। ७९६ [उ.] मान्य धर्ममार्ग की महिमा से प्रकट होनेवाले अत्यधिक तपस्समाधि [तथा] विद्या से आत्मयोग के द्वारा सम्पादित विष्णु के कटाक्ष से प्राप्त होनेवाली शोभा [और] अनघ (निष्पाप) दिव्यभोग [तथा] अत्यधिक भद्रसमूह (शुभप्रद विधानसमूह) मेरी सेवा से प्राप्त होते हैं, अबाधित दिव्य दृष्टि भी प्रदान करता हूँ। ७९७ [ते.] सुन्दरी ! उस दिव्य दृष्टि से सब कुछ तुम्हें दिखाई देगा। देख लो। कमल-पत्र-नयन वाले (विष्णु) की भृकुटि में बल पड़ने मात्र से (सब कुछ का) नाश होगा, (तब) तुच्छ भोगों का तो कहना ही क्या ? ७९८ [सी.] अनुपम राज्य के दर्प से अन्ध चेतना वाले हो, पापाचरण करनेवाले पार्थिवों (राजाओं) को निश्चित रूप से अप्राप्य दिव्य भोग नीति (तथा) पातिव्रत्य की निष्ठा के कारण [तुम्हें] सम्प्राप्त हुए। [इन सुखों] का समभाव से भोग करो। तुम्हें कार्य की सिद्धि होगी। ऐसा कहने पर उस कान्ता ने अनुपम योग-माया के विवेकशाली कर्दम को देखकर, [ते.] विगत-आधि (मनोव्यथा) वाली हो, लज्जा से आस्य-पंकज (मुख-कमल) झुकाये हुए विनय तथा प्रणय के कारण विह्वल वचनों में पति से इस प्रकार कहा। ७९९

व. अनघ ! अमोघ योगमाया विभुंडवु, समर्थुंडवु नैन नीयंदु नी यनुपम दिव्यभोगंबुलु गलुगुट निक्कंबनि येरुंगुदु। भवत्संगति निन्नियुनु नाकुं गलुगु। ऐननु देवा! नी वानतिच्चिन संतान पर्यंतंबैन शरीर संगम समयंबु चित्तंबुनं दलंचि भवदंग संगमंबु कृपचेसि मन्निपुमु। भवदीय संयोग वांछा परतं गृशीभूतंबैन यी देहंबे विधंबुन मज्जन भोजन पान सुखंबुल बरितुष्टि बोंदु नट्टि मन्मनोरथंबु दीर्प रति तंत्रंबगु कामशास्त्र प्रकारं बुपशिक्षिंचि, यंदुलकु नुचितंबुलैन विविधांबराभरण माल्यानुलेपन मंदिराराम प्रमुख निखिल वस्तु विस्तारंबु गाविंचि नन्नुं गरुणिंपु मनिन नम्महात्मुंड निज योगमाया बलंबुन दत्क्षणंबु ॥ 800 ॥

सी. दिव्य मणि स्तंभ दीप्ति जेंन्नोंदुचु मरकत स्थलमुल महिम वनर
बरवज्र कुड्य कवाट शोभितमुलै विद्रुम देहळी वीथु लमर
गोमरोप्पु नवशात कुंभ कुंभमुलये हरिनील शकल बिस्फुरण मेंडय
वग बद्मरागंपु मोगडल जेन्नोंदु वैदूर्य वलभुल वन्ने चूप

ते. दरळतर धूतकेतु पताक लोलय,
मंजु शिंजत्समंचित मधुप कलित

[व.] अनघ ! अमोघ योगमाया के विभु (स्वामी) हो, समर्थ हो, ऐसे तुममें ऐसे अनुपम दिव्य भोगों का उत्पन्न होना सत्य है, [यह] मैं जानती हूँ। आपकी संगति से ये सब मुझमें भी संप्राप्त होंगे। फिर भी देव! तुम्हारी आज्ञा के अनुरूप सन्तान पर्यन्त शरीर की संगति के समय (प्रतिज्ञा) को चित्त में जानकर, आपके अंगों का संगम कर समादर करो। आपके संयोग की कामना के कारण कृशीभूत यह शरीर, जिस प्रकार मज्जन (स्नान), भोजन, पान [आदि] सुखों से परितुष्ट होनेवाले मेरे मनोरथ (इच्छा) को पूर्ण करने के लिए रति-तंत्रात्मक कामशास्त्र के अनुसार उपशिक्षित कर, उसके योग्य समुचित रीति वाले विविध प्रकार के अंबर (वस्त्र), आभरण, मालाएँ, अनुलेपन, मन्दिर, आराम प्रमुख (आदि) समस्त वस्तुओं को विस्तार रूप से निर्माण कर, मुझ पर कृपा करो। ऐसा कहने पर, उस महात्मा ने अपनी योगमाया के बल से उसी क्षण, ८०० [सी.] दिव्यमणियों वाले स्तम्भों से दीप्तमान हुए, मरकत स्थलों की महिमा के साथ सुशोभित होने पर, श्रेष्ठ वज्रों के कुड्य-कवाटों से सुशोभित विद्रुम (रत्न-विशेष) देहली वीथियों के विराजमान होने पर, मनोज्ञ (एवं) नये शातकुम्भ (स्वर्ण) के कलशों पर हरिनील (मणि-विशेष, सिंह) के शिखरों के अतिशय रूप में चमकने पर, पद्मराग के द्वारों से युक्त चन्द्रशालाओं के अपने सौन्दर्य को प्रकट करने पर, [ते.] तरलतर [और] फरफरानेवाली पताकाओं के सुशोभित होने पर, मंजुल ध्वनियों में गुंजन करनेवाले मधुपों से कलित सुरुचिर आलम्बमान (झूलनेवाले)

सुरुचिरालंबमान प्रसून राजि-
मालिकल नॊप्पु विविध गृहाळि दनरि ॥ 801 ॥

कं. मरियुनु दुकूल चीनां, वर कौशेयादि विविधपट परिवृत मं-
दिर सुभगाकारंबै, कर मॊप्पु विचित्र पट्टिकालंकृतमै ॥ 802 ॥

म. ललितोद्यान वनांत संचरण लीलालोल हंसाळि को-
किल पारावत चक्रवाक शुक केकींदिंदिरानीक मु-
त्कलिकं गृत्रिम पक्षुलन् निज विहंग श्रेणि यंचुन् गुता-
हलियै पल्कुचु नाडुचुंडु ब्रतिशाखारोहण व्याप्तुलन् ॥ 803 ॥

व. वॆंडियु ॥ 804 ॥

कं. घन सौधांतर शय्या, सन केळी गेह कृतक-जगतीधर शो-
भन चंद्रकांत चारु भ-, वन फलभरितावनीजवंतमु लगुचुन् ॥ 805 ॥

कं. सकलर्तु शोभितंबुनु, सकल शुभावहमु सकल संपत्करमुन्
सकलोप भोगयोग्यमु, सकलेप्सित कामदंबु सदलंकृतमुन् ॥ 806 ॥

व. अगुचु नॊप्पु दिव्य विमानंबु गल्पिंचि तदीय सुषमा विशेष विचित्रंबुलु निर्मिंचिन तान तॆलियं जालनि यद्भुत कर्मंबैन विमानंबु देवहूतिकि

पुष्प गुच्छों की मालाओं से सुशोभित होनेवाले विविध गृह सुविलसित हुए। ८०१ [कं.] और दुकूल, चीनाम्बर, कौशेय आदि विविध वस्त्रों से परिवृत हुए मन्दिरों के सुभग रूप में, अत्यन्त सुंदर विचित्र पट्टिकाओं (घट्टियों) से अलंकृत हो, ८०२ [म.] ललित उद्यान (उपवन) के भीतर संचरण करते हुए, लीला-लोल हंसावली, कोयल, पारावत (कबूतर), चक्रवाक, शुक, केकी, इन्दिन्दिर (भ्रमर) के आनीक (समूह), बड़ी उत्कण्ठा के साथ कृत्रिम पक्षियों को अपने पक्षियों का समूह मानकर, कौतूहल से बोलते (कूजते) हुए हर शाखा पर आरोहण करते हुए पक्षियाँ चहकती खेलती रहती हैं। ८०३ [व.] और, ८०४ [कं.] घन सौधों के भीतर शय्यासन तथा केलीगृह, कृतक जगतीधर (पहाड़), सुन्दर चन्द्रकान्त शिलाओं से बने हुए सुन्दर भवन, फलों से भरे हुए अवनीज (वृक्षों) से युक्त हो। ८०५ [कं.] सकल ऋतुओं में शोभित, सकल मंगलों का निलय, समस्त सम्पदाओं को प्रदान करनेवाले हो, सकल उपभोगों के योग्य, सकल इष्ट कामनाओं को प्रदान करनेवाले समुचित रूप से अलंकृत, ८०६ [व.] होते हुए सुविलसित दिव्य विमान का सृजन किया, जो ऐसे सौन्दर्य की विशेषताओं (एवं) विचित्रताओं से युक्त था कि स्वयं निर्माण करने वाला ही उसे जान न पाए। ऐसे अद्भुत कर्म वाले विमान को देवहूति को दिखाया। [दिखाने पर] देखकर, उस प्यारी के आनन्दित न होते जानकर, सर्वभूतों के अन्तरंग के आशय को जाननेवाले, (और)

जूपिनं जूचि, यम्मुद्दिय संतसिपकुंडुट यॆंट्रगि, सर्वभूतांतराश याभिज्ञुंडुनु, संतुष्टांतरंगुंडुनु नैन कर्दमुं डिट्लनियॆ ॥ 807 ॥

ते. अतिव ! भगवत्कृतंबुनु नखिलमंग-
ळाकरंबुनु नगु नी जलाशयमुन
दविलि ग्रुंकिन जंतु वितानमुलकु
गास्य फल सिद्धि से गान नीवु ॥ 808 ॥

कं. इज्जलमुल नतिभक्तिनि
मज्जन मॊनरिंचि यी विमानमु वेड्कन्
लज्जावति ! यॆक्कवॆ ! यनि
बुज्जव मॊनरंग गर्दमुडु पल्कुटयुन् ॥ 809 ॥

व. अनि या कुवलयाक्षि पतिसेवायास मलिनांबरयु, वेणीभूत शिरोजयु, धूळि धूसरिताति कृशीभूतांगियु शबल स्तनयुनै भर्तृ नियोगंबुन सरस्वती सलिल संभूत जलचराश्रयवगु बिंदु सरोवरंबु प्रवेशिंचि तज्जलंबुल ग्रुंकुलिडु समयंबुन दद्वाःपूर मध्यंबुन रुचिर मंदिरावासिनुलुनु, गिशोर वयःपरिपाक शोभितलुनु, नुत्पलगंधुलुनु नगु कन्या सहस्रंबुलु दैवहूति गनुंगॊनि यिट्लनिरि ॥ 810 ॥

कं. तरुणी ! नीवु नियोगा, चरणल मिदि मेमु नीकु सदमल भक्ति
बरिचर्य सेयनेर्तुमु, करुणा कलितेक्षणमुल गनुगॊनु मम्मुन् ॥ 811 ॥

अन्तरंग में सन्तुष्ट होनेवाले कर्दम ने इस प्रकार कहा। ८०७ [ते.] सुन्दरी ! भगवान् से निर्मित (तथा) अखिल मंगलों के निलय-स्वरूप इस ज़लाशय में चाहकर नहाने पर, जन्तुसमूह (प्राणि-कोटि) को इष्ट फलसिद्धि होगी, इसलिए तुम, ८०८ [कं.] लज्जावती ! इन जलों में अत्यन्त भक्ति के साथ मज्जन (स्नान) कर, आनन्द के साथ इस विमान पर चढ़ो ! ऐसा उपलालन करते हुए, कर्दम के कहने पर, ८०९ [व.] सुनकर वह कुवलयाक्षि, जो पतिसेवा के आयास से मलिन वस्त्र-वाली और केशों के वेणी (जटाएँ) बनी हुई और धूलि-धूसरित अतिकृशी-भूत अंगवाली थी, पति से नियोजित हो, सरस्वती-सलिल-संभूत-जलचरों का आश्रय बने बिन्दु सरोवर में प्रविष्ट हो, उस जल में स्नान करते समय, द्वाःपूर (जल) के मध्य में रुचिर मन्दिरों के निवासी और किशोर-वयः-परिपाक से सुशोभित होनेवाली, उत्पल (कुमुदिनी) गन्धवाली, हजारों कन्याओं ने देवहूति को देखकर इस प्रकार कहा। ८१० [कं.) तरुणी ! तुम्हारी सेवा के लिए नियोजित हम लोग यही निर्मल भक्ति के साथ परिचर्या कर सकेंगी। करुणापूर्ण दृष्टियों से हमें देखो (स्वीकार करो)। ८११ [सी.] इस प्रकार कहकर, समीप पहुँचकर, उस सुंदरी

सी. अनि पलिक डासि यय्यतिवकु नभ्यंजनोद्वर्तनमुलु पॅपॉनर जेसि
मलयज कर्पूर महित वासित हेम कलशोदकंबुल जलकमार्चि
धवळ वस्त्रंबुल दडियोत्ति सर्वांग धूपंबु लोसगि कस्तूरि नलदि
मंजु शिजन्मणि मंजीर किंकिणी कलराव कलित मेखललु पून्चि

ते. कनक ताटंक मुद्रिका कंकणादि
समुचितानर्घ्य रत्नभूषणमु लोसगि
भव्य माल्यानुलेपनांवरमु लिच्चि,
षड्रसोपेत विविधान्न समिति दनिपि ॥ 812 ॥

व. मरियुं गनकपात्र रचितंबुलैन कर्पूर नीराजनंबुल निवाळिचि, रुचिरासनंबुन गूर्चुंड वॅट्टि दर्पणंबु चेति किच्चिनं दत्प्रतिफलित निजदेहंबु गनुंगोनि, कर्दमुनि मनंबुनं दलचिन, नतंडुनुं गन्यकासहस्रंबुनु दत्क्षणंबुन दन सन्निधि नुंडुटं जूचि, निज भर्तृ योगमाया प्रभावंबुन कद्भुतंबु नोंदे। अंत कर्दमुंडु कृतस्नानयैन देवहूति गनुंगोनि, विवाहंबुनकु मुंदर नेचंदंबुनं दनरु चंदे ना चंदंबुनं जेन्नोंदु चुंडुटकु नानंद भरितुंडै, भार्या सहितंबुग दत्कन्यका सहस्रंबु गोलुव निज विमानारूढुंडै तारागण परिवृत्त रोहिणी युक्तुंडगु सुधाकरुं बोलि योप्पुचु ददनंतरंब ॥ 813 ॥

चं. चिर शुभमूर्ति यम्मुनि यशेष दिगीश विहार योग्यमुन्
सुरुचिर मंद गंधवह शोभितमुन् निकट प्रधातु नि-

को अभ्यंजन-उद्वर्तन (उबटन) शोभा से कर, चन्दन, कर्पूर आदि से सुवासित, स्वर्ण-कलशों के जल से स्नान करवाकर, धवल वस्त्रों से पोंछकर, सब अंगों में धूप देकर, कस्तूरि का लेपन कर, मंजुल रीति से शिंज, मणिमय मजीर (तथा) किंकिणी के कलरव से पूर्ण मेखलाओं को धारण करवाकर, [ते.] सोने के ताटंक, मुद्रिकाएँ (अँगूठियाँ), कंकण, समुचित अनर्घ रत्न भूषण देकर (अलंकृत कर), भव्य मालाएँ, अनुलेपन, वस्त्र देकर, षट्रसपूर्ण विविध भोजन से तृप्त कर, ८१२ [व.] और सोने के बने पात्रों के द्वारा आरती उतारकर, रुचिर आसन पर बिठाकर हाथ में दर्पण देने पर, उसमें प्रतिफलित अपनी देह को देखकर, कर्दम का मन में स्मरण करने पर, वह भी हजारों कन्याओं के साथ उसी क्षण अपने समक्ष रहते देख, अपने पति की योगमाया के प्रभाव के लिए आश्चर्यान्वित हुई। तब कर्दम ने स्नान किये हुए देवहूति को देखकर, विवाह के पूर्व की स्थिति में सुशोभित होने की रीति को देख आनन्द से भरकर, भार्या के साथ, उन हजार कन्याओं की सेवाएँ लेते हुए, विमान पर आरूढ़ हो तारागण से परिवृत रोहिणीयुक्त सुधाकर की रीति सुशोभित हुआ। उसके पश्चात्, ८१३ [चं.] अत्यन्त सुन्दर मूर्ति वाले उस मुनि ने अशेष

धंर सरिदंबु शीतल तुषारमुनै तनरारु मेरुकं-
दरमुन केगि देववनिता युतुडैन कुबेरु चाड्पुनन् ॥ 814 ॥

म. अमरोद्यानवन प्रदेशमुलु नव्याराम भूमुल् दळ-
त्कुमुदांभोज विभासि मानस सरः कूलंबुलुन् मंजु कुं-
जमुलुन् जैत्ररथंबु विस्फुरित विस्रंभंबुनं जूचें नें-
य्यमुनन् गर्दमयोगि कामग विमानारुढुडै चेच्चरॅन् ॥ 815 ॥

व. इव्विधंबुन समस्त भूभागंबुनु वायु वेगंबुनं गलयं ग्रुम्मरि निखिल वैमानिक लोकंबु नतिशयिंचि लोकंबुलं जरिंचें। मोक्षदायकुंडु दीर्थपादुंडु नगु पुंडरीकाक्षुनि सन्नुतिंचि सेविंचु पुण्यात्मलकुं बॉंदरानि पदार्थंबुलु गलवॅ ? इट्लु गर्दमुंडु देवहूतिकि निखिल धराचक्रंबंतयुं जूपि, मरल निज निवासंबुनकुं जनुदेंचि, कामकेळी विनोदात्मयै युन्न भार्य नुपलक्षिंचि, रतिप्रसंग व्यासंगबुं गैकॉनि, बहुविधंबुलैन यिष्टोपभोगंबुल बहु वत्सरंबु लॉक्क मुहूर्तंबुगा जरुपुचु, नन्योन्य सरसावलोकनंबुल समुचितालिंगन संभाषणंबुलं गाल निरूपणंबु सेय नेरक, शतवत्सरंबुलु गडपि तदनंतरंब ॥ 816 ॥

कं. मुनिवरु डॉकनाडिम्मुल, दन निजदेहंबु नव विधंबुलु गाविं-
चि नयंबुन दद्वीर्यमु, दन सतिगर्भमुन नवविधंबुल निलिपॅन् ॥ 817 ॥

(समस्त) दिगीश के विहार योग्य सुरुचिर तथा मन्दवायु से शोभित, निकट के पर्वत के सुन्दर निर्झरों से युक्त तथा शीतल तुषार से सुशोभित होनेवाले मेरु पर्वत पर चलकर, देव-वनिताओं से युक्त कुबेर की रीति, ८१४ [म.] अमरों के उद्यान वन के प्रदेश, नई आराम भूमियाँ, प्रकाशमान कुमुद, कमलदलों से विभासित मानस सरोवर के तट और मंजुल कुंज, विजय रथ को सम्भ्रम के साथ कर्दम योगी ने देवहूति के साथ कामचारी विमान पर आरूढ़ हो, शीघ्र देखा। ८१५ [व.] इस प्रकार समस्त भू-भाग का वायुवेग से भ्रमण कर, सकल वैमानिक लोकों में अतिशय रूप में संचरण किया। मोक्षदायक, तीर्थपाद वाले पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) की स्तुति कर, सेवा करनेवाले पुण्यात्माओं को अप्राप्त कोई पदार्थ है क्या? इस प्रकार कर्दम ने देवहूति को निखिल समस्त धराचक्र को दिखाकर, और फिर अपने निवासस्थान को चलकर, कामकेली-विनोद में रत आत्मा वाली पत्नी को देखकर, रति-प्रसंग के व्यापार को स्वीकार कर, अनेक प्रकार के इष्ट उपभोगों में अनेक वर्षों को एक मुहूर्त के समान बिताते हुए, परस्पर सरस अवलोकनों (वीक्षणों) से समुचित आलिंगनों (तथा) सम्भाषणों में समय बिताना चाहकर सौ साल बिताकर उसके पश्चात्, ८१६ [कं.] मुनिवर ने एक दिन अपने शरीर को नौ प्रकार से बनाकर, सुन्दर रीति में अपने वीर्य को

कं. अदि कारणंबुगा बॆं, पॊदविन मुनिवलन देवहूतिकि गूतुं
डृ्र्दयिचिरि तॊम्मंड्र, म्मुदितयु मदि संतसिचॆ मुनिवरु डंतन् ॥ 818 ॥

तॆ. सन्न्यसिपंग गोरिन सति यॆरिंगि
यात्म बॊडमिन संताप मग्गलिप
जित वाटिल्ल जॆविकट जॆंथ्यि जेर्चि
पदमुलनु नेल व्रायुचु वलिकॆ बतिकि ॥ 819 ॥

सी. अनघ ! संतानपर्यंतंबु ननु गूडि वर्तितु ननुचु बूर्वमुन वलिकि
कूतुल निच्चिति कॊमरार निप्पुडी तरुणुलु पतुलनु दमकु दार
यरसि वर्तितुरो ? यनि भीति नॊंदॆद गावुन नी पुत्रिकलकु दगिन
वरुल संपादिचि परिणयंबुलु सॆसि तत्त्व संहित नाकु दविलि तॆलुपु

तॆ. सुतुनि गृपसेसि ननु गावु सुजन विनुत !
यथि संसार दुःखंबु नपनयिप
नर्हुडवु नीव काम मोहमुन नित-
काल मूरकपोयॆ ने गतियु लेक ॥ 820 ॥

चं. अपरति पुट्टॆ नी यिहसुखानुभवंबुलयंबु मुन्नु ने-
जपलत गामभोग रतिसंगमु गोरि महात्म ! निन्नु न-
च्चपु दलपॊप्पगा दॆलिय जालकुन् वरियिचुटयुन् भव-
त्कृप फलियिचॆ, मुक्ति निनु गेवल भक्ति भजिप गल्गदे ? ॥ 821 ॥

अपनी सती के गर्भ में नौ प्रकार से धारण करवाया। ८१७ [कं.] उस कारण से, अतिशय रूप से, देवहूति को मुनि से नौ पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। वह स्त्री भी मुदित हुई। तब मुनिवर के, ८१८ [ते.] संन्यास लेने की इच्छा करने पर सती ने अपने मन में सन्ताप के बढ़ने के कारण, चिन्तित हो गाल पर हाथ रखकर, चरणों से जमीन कुरेदते हुए, पति से कहा। ८१९ [सी.] अनघ ! सन्तान होने तक मेरे साथ मिलकर रहने की बात पूर्व में कहकर, प्रेम से पुत्रियों को दिया, अब ये तरुणियाँ अपने पतियों को अपने-आप विचरकर ढूँढ़ लेंगी —ऐसा सोच डरती हूँ। इसलिए योग्य वरों को प्राप्त कर, इन पुत्रियों का परिणय कर मुझे तत्त्व-संहिता को विदित करो। [ते.] सुजनों से स्तुत्य होनेवाले ! कृपा कर पुत्र देकर मेरी रक्षा करो। समुचित रीति से संसार-दुःख को शान्त करने में तुम योग्य हो ! काम [तथा] मोह में इतना समय यों ही गति-रहित हो बीत गया। ८२० [चं.] महात्मा ! इहलोक के सुखानुभव में अपरति (विरक्ति) उत्पन्न हुई। पूर्व में कामभोग की रति-संगति की इच्छा कर, निर्मल ज्ञान के उदित होने पर, अनजाने में वरण करने से तुम्हारी कृपा के फल के रूप में सफल हुई। मुक्ति भी केवल भक्ति से तुम्हारा

व. अदियुनुं गाक ॥ 822 ॥

चं. सममति नॊप्पु सत्पुरुष सख्यमु संद्गति कारणंबु नी-
चमति विलोल दुष्पुरुष सख्यमु दुर्गति हेतुवंचु जि-
त्तमुन दलंचि योगिजनतानुत ! निम्मु भजितु ब्राणि सं-
गममुन बुण्यपापमुलु गैकॊनि पॊंदवॆ ? यॆट्टि वारलकुन् ॥ 823 ॥

अध्यायमु—२४

क. अनि यिट्लु वेदना भर-
मुन मुनुकुच्चु बलुक गर्दमुडु मनुपुत्रिन्
गनुगॊनि सरसिज नयनु व-
चनमुलु मदि संस्मरिंचि सति किट्लनियॆन् ॥ 824 ॥

कं. मनुसुत ! नी मदि दुःखं, बुनु बॊंदकु मचिर कालमुन भगवंतुं
डनघुं डक्षरुडु जना, र्दनुडु भवद्गर्भमंदु दग वसियिंचुन् ॥ 825 ॥

कं. वरनियम व्रतनिष्ठा, चरण नियुक्तांतरंग समधिकवै सं-
भरित तपोधन दान, स्फुरित श्रद्धानुभक्ति पूर्वमु गागन् ॥ 826 ॥

म. मरि नारायण पादपद्ममुलु सम्यग्भक्ति बूजिपु त-
त्पुरुष श्रेष्ठुडु मानसंबुन भवत्पूजानुसंप्रीतुडै

भजन कैसे कर सकेगी ? ८२१ [व.] इसके अतिरिक्त, ८२२ [चं.] योगिजनों से स्तुत्य होनेवाले ! सममति से शोभित सत्पुरुषों का सख्य सद्गति का कारण होता है। नीचमति में लोल रहनेवाले दुष्ट पुरुषों का सख्य दुर्गति का कारण होता है, ऐसा मन में विचार कर, आपकी सेवा करती हूँ। किसी भी प्रकार के लोग क्यों न हों, अन्य प्राणियों की संगति से पुण्य और पाप को प्राप्त होते हैं। ८२३

अध्याय—२४

[कं.] इस प्रकार वेदना के भार से ऊभचूभ हो बोलने पर कर्दम ने मनुपुत्री को देखकर सरसिज-नयन वाले के वचनों का मन में स्मरण कर सती से ऐसा कहा। ८२४ [कं.] मनुपुत्री ! अपने मन मे तुम दुःखी न हो ! अचिर काल में अनघ [तथा] अक्षरस्वरूप जनार्दन तुम्हारे गर्भ में समुचित रीति में निवास करेगा। ८२५ [कं.] समधिक रूप से श्रेष्ठ नियमों की व्रतनिष्ठा [तथा] आचरण से युक्त अन्तरंगवाली हो, तपोधन, दान के स्फुरण से श्रद्धा तथा भक्ति से युक्त हो, ८२६ [म.] और नारायण के चरण-कमलों की सम्यक् भक्ति से पूजा करो ! हे तरुणी-

कर मथि दरुणी शिरोमणि ! भवद्गर्भस्थुडै युंडि ता
गरुणं जेयु भवन्मनो जनित शंका ग्रंथि विच्छेदमुन् ॥ 827 ॥

देवहूति गर्भंबुन विष्णुंडु गपिलाचार्युंडुगा नुदयिंचुट

चं. अनवड्डु देवहूति हृदयंबुन संतसमंदि यम्मुनीं-
द्रुनि वचन क्रमंबुन वरुन् भगवंतु ननंतु ब्रह्मलो-
चनु हरि विष्णु नर्चनमु सल्पुचु नुंडग गौन्नि पब्दमुल्
चनु ;नेंड दानवांतकुडु सम्मति गार्दममैन तेजमुन् ॥ 828 ॥

कं. धरियिंचि यम्मुनींद्रुनि, तरुणी गर्भंबु वलन दनुजारि शमी-
तरु कोटरमुन वैश्वा, नरु डुदयिंचिन विधंबुनन् जनियिंचेन् ॥ 829 ॥

सी. अय्यवसरमुन नाकाशमुन देव तूर्य घोषंबुलु द्रुमुल मय्यॆ
नंदित देवता वृंदंबु लंदंद कुरिसिरि मंदार कुसुमवृष्टि
गंधर्व किन्नर गानंबु वीतेंचॆ नप्सरोगणमुल याट लॊप्पॆ
वाविरि दिक्कुल गाविरि विरिसॆनु दविलि वार्धुल कलंकुवलु मानॆ

ते. साधुजनमुल मनमुलु संतसिल्लॆ
होमवह्नुलु प्रभल जॆन्नॊंदि वॆलिगॆ
गुसुम फल भारमुल नॊप्पॆ गुजमु लॆल्ल,
सर्वस्थाळिचे नॊप्पॆ जगतियॆल्ल ॥ 830 ॥

शिरोमणी ! वह पुरुषश्रेष्ठ मन में तुम्हारी पूजा से सन्तुष्ट हो अतिशय रूप से तुम्हारे गर्भ में स्थित हो तुम पर कृपा से तुम्हारे मन में उत्पन्न होनेवाली शंका की ग्रंथियों का विच्छेदन करेगा। ८२७

देवहूति के गर्भ से विष्णु का कपिलाचार्य के रूप में उदित होना

[चं.] [ऐसा] कहने पर देवहूति ने सन्तुष्ट हो उस मुनीन्द्र के वचनों के अनुसार परातमा, भगवान्, अनन्त, पद्मलोचन, हरि, विष्णु की अर्चना करते हुए, कतिपय वर्ष बीतने पर दानवान्तक ने सम्मति से कर्दम के तेज, ८२८ [कं.] को धारण कर उस मुनीन्द्र की तरुणी के गर्भ के द्वारा शमीवृक्ष के कोटर में वैश्वानर (अग्नि) के उदित होने की रीति जन्म लिया। (प्रकट हुआ।) ८२९ [सी.] उस अवसर पर आकाश में देवतूर्य के घोष अधिक हुए। देवतागण ने आनन्दित हो यहाँ-वहाँ (सर्वत्र) मन्दार-पुष्पों की वर्षा की। गन्धर्व [तथा] किन्नरों का गान सुनाई पड़ा। अप्सरांगनाओं के नृत्य सुशोभित हुए। क्रमशः दिशाओं में कालिमा हट गई। सागरों की व्याकुलता मिटी। [ते.] साधुजनों के मन आनन्दित हुए। यज्ञों की अग्नि प्रभाओं के साथ द्योतित हुई।

व. इट्टि महोत्सवंबुन देवहूतिकि दत्त्वबोधंबु गाविंचु कोरकु ददीय गर्भंबुन नुदयिंचिन परब्रह्म स्वरूपुंडैन नारायणुनि दर्शिंचु कोरकु मरीचि प्रमुख मुनिगण समेतुंडै, चतुर्मुखुंडु चनुदेंचि, यम्महात्मुनि दर्शिंचि, कर्दम देवहूतुलं गनुंगोनि यिट्लनियें ॥ 831 ॥

कं. नुत चरितुलार ! मीरलु, कृतकृत्युलु विष्णु पूज गेवल भक्ति
मति निष्कपटुलरै चे, सितिरि तदर्चन फलंबु चेकुरे मीकुन् ॥ 832 ॥

कं. श्रितभय हरणुडु मुनिजन-
नुत चरितुडु परुडु मी मनोरथ सिद्धिन्
विततंबुग गाविंचुट
जतुरत मी जन्म मिक सफलत बोंदेन् ॥ 833 ॥

कं. विनुडु सकामनुलै हरि,
ननुपम भक्तिन् भजिंचु नदे मुक्तिकि जा
लुनु मी पुण्यं बेमनि
कोनियाडग वच्चु ? नीति कोविदुलारा ! ॥ 834 ॥

व. अनि वेंडियुं गर्दमुनि गनुंगोनि यिट्लनु ! भवदीय तनूभवलं ब्रकट शील व्रताचार संपन्नुलैन मुनिवरेण्युलकुं बेंड्लि सेयुमु। अट्लैन वारि वलनं ब्रजासृष्टि बहुविधंबुल वृद्धि बोंदु। अनि चेप्पि मरियु निट्लनियें ॥ 835 ॥

सस्त वृक्ष फूल [तथा] फल-भार से सुशोभित हुए। समस्त जगत सस्यों से विलसित (सम्पन्न) हुआ। ८३० [व.] ऐसे महोत्सव में देवहूति को तत्त्वबोध करने के निमित्त उस गर्भ में उदित हो परब्रह्मस्वरूपी नारायण के दर्शन करने के निमित्त मरीचि प्रमुख (आदि) मुनिगण को साथ लेकर चतुर्मुख ने आकर, उस महात्मा के दर्शन कर कर्दम [तथा] देवहूति को देखकर इस प्रकार कहा। ८३१ [कं.] स्तुत्यचरित वाले ! विष्णु की पूजा केवल भक्ति के साथ कर आप लोग कृतकृत्य हुए। निष्कपट मति से किये गये उस अर्चना का फल आपको प्राप्त हुआ। ८३२ [कं.] आश्रित जनों के भय का हरण करनेवाले, मुनिजनों के द्वारा स्तुत्य चरित वाले, परात्पर के आपके मनोरथ की सिद्धि विपुल रीति से करने से चतुरता से आपके जन्म सफल हुए। ८३३ [कं.] सुनो ! सकामी हो अनुपम भक्ति से हरि का भजन करना मोक्ष की प्राप्ति के लिए पर्याप्त है। (तब) नीतिकोविद ! आपके पुण्य की स्तुति कैसे कर सकेंगे ? ८३४ [व.] कहकर और कर्दम को देखकर इस प्रकार कहा। अपनी पुत्रियों को अत्यधिक शील वाले [तथा] व्रताचार सम्पन्न मुनि-वरेण्यों को देकर विवाह करो। ऐसा करने पर, उनके द्वारा प्रजासृष्टि अनेक प्रकार से वृद्धि को

चं. अनघ ! भवत्सुतुंडु समुदंचित तेजुडुनैन यिम्महा
त्मुनि बरमेशु नीशु नजितुन्नविकारु नमेयु नच्युतु
न्ननघुनि नक्षरुन् हरि ननंतुनि नीशुनिगा दलंतु नी
घनुडु समस्त चेतन निकाय हृदीप्सित दायि गावुनन् ॥ 836 ॥

सी. मानित ज्ञान विज्ञान योगंबुलु ननु नुपायंबुलु नॊनर जेसि
योलिमै कर्म जीवुल नुद्धरिंचुट कॊरकु नम्महितात्मकुडु समग्र
हाटकरुचि जटाजूटुंडु नुत्फुल्ल पंकज नेत्रुंडु पद्मवज्र
हल कुलिशांकुश ललित रेखांकित चरण तलुंडुनु सत्त्वगुणुडु

ते. नगुचु निप्पुडु सरसीरुहाक्षि ! नीदु
गर्भमं दुदयिचॆंनु घनुडु नीकु
दत्त्व बोधंबु गाविंचु दावकीन-
हृदय मंदुल संशयमॆल्ल बापु ॥ 837 ॥

व. मरियुनु ॥ 838 ॥

कं. नुति कॆक्कि सिद्ध गण से-
वितुडै घन सांख्य योग विलसित तत्त्व
स्थिति निरतुडगुचु गपिला-
ख्यत दनरि चरिंचु नी जगत्त्रय मॆल्लन् ॥ 839 ॥

कं. अनि पलिकि यम्मरीचि, गनि युद्वाहार्थ मुनिचि कमलजुडंतन्
दन नंदनु लगु नारद, सनकादुल गूडि यात्मसदनमु करिगॆन् ॥ 840 ॥

पायेगी। ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। ८३५ [चं.] अनघ! आपका पुत्र तेजोसम्पन्न है। इस महात्मा को परमेश, ईश, अजित, अविकारी, अमेय, अच्युत, अनघ, अक्षर, हरि, अनन्त ईश्वर के रूप में मानता हूँ। यह घनात्मा (महात्मा) समस्त चेतन-समूह के हृदय की ईप्सितों (इच्छाओं) को पूर्ण करनेवाला है। इसलिए, ८३६ [सी.] हे सरसीरुहाक्षी ! मान्य ज्ञान, विज्ञान, योग नामक उपायों के द्वारा, प्रेम के साथ, क्रम से, कर्म-जीवों का उद्धार करने के निमित्त वह महितात्मा, समग्र रूप से स्वर्णकान्तियों में विलसित जटाजूट वाले, विकसित कमलनयन वाले, पद्म, वज्र, हल, कुलिश, अंकुश [आदि] की ललित रेखाओं से अंकित चरण-तल वाले, सत्त्वगुण वाले होकर [ते.] अब तुम्हारे गर्भ से उदित हुआ। (वह) घनात्मा तुम्हें तत्त्व का बोध कराएगा। तुम्हारे हृदय के सकल संशयों को मिटायेगा। ८३७ [व.] और भी, ८३८ [कं.] प्रसिद्ध होकर, सिद्धगणों से सेवित हो, विख्यात हो, घन-सांख्ययोग से विलसित तत्त्वस्थिति में मग्न हो, इस सारे जगत्त्रय में कपिल नाम से प्रसिद्ध हो संचार करेगा। ८३९ [कं.] ऐसा कहकर उस मरीचि को

व. अंत ना कर्दमुंडु कमल संभव चोदितुंडगुचु यथोचितंबुगा नात्मीय दुहितल विवाहंबु सेयं दलंचि, मरीचिकि गळयनु कन्यकनु, अत्रिकि ननसूयनु, अंगिरसुनकु श्रद्धनु, पुलस्त्युनकु हविर्भवुनु, पुलहुनकुं गतिनि, क्रतुवुनकु ग्रियनु, भृगुवुनकु ख्यातिनि, वसिष्ठुनकु नरुंधतिनि, अथर्वुनकु शांतिनि-गा निजकुलाचार सरणि बरिणयंबु गाविंचिन, वारुनु गृत दार परि ग्रहुलुनु, गर्दमकृत संभावना संभावितुलुनु नगुचु नतनि चेत ननुज्ञातुलै जायासहितुलगुचु निजाश्रमभूमुलकुं जनिरि। अनंतरंबु कर्दमुंडु देवोत्तमुं-डगु विष्णुंडु दनमदिरंबुन नवतरिंचि युंट दनचित्तमु नेंरिगि विविक्त स्थलंबुनकुं जनि यंच्चट गपिलुनिकि वंदनं बाचरिंचि यिट्लनियें ॥841॥

सी. चतुरात्म ! विनु मात्मकृतमुलैनट्टि यमंगळ भूत कर्मंबुलनेडि
दावाग्नि शिखलचे दंदह्य मानुलैनट्टि जीवुलु दुदमुट्टलेक
पायक संसार बद्धुलै युंडुरु बहुळकाल म्मिट्लु परगुचुंड
सकलदेवतलु प्रसन्नत नोंदग बहुजन्म परिचय प्राप्त योग

ते. चिर समाधि तपोनिष्ठचे विविक्त
देशमुल योगि जनमुलु धृतुलु ने म-

देखकर उद्वाह (विवाह) के लिए रहने की आज्ञा देकर, कमलज (ब्रह्मा) ने अपने नंदन (पुत्र) नारद, सनकादि को लेकर आत्म-सदन (अपने निलय) को प्रस्थान किया। ८४० [व.] तब वह कर्दम ने कमल-सम्भव (ब्रह्मा) से चोदित (प्रेरित) होकर, यथोचित रीति में अपनी पुत्रियों का विवाह करने की इच्छा कर मरीचि को कला नामक कन्या, अत्रि को अनसूया, अंगिरस को श्रद्धा, पुलस्त्य को हविर्भू, पुलह को गति, क्रतु को क्रिया, भृगु को ख्याति, वसिष्ठ को अरुंधति, अथर्व को शान्ति नामक कन्या को देकर, अपने कुल के आचार की सरणी में परिणय (विवाह) करने पर, उन लोगों ने भी दाराओं का परिग्रहण (स्वीकार) कर, कर्दम से दिये गये सम्भावनाओं (उपहारों) से सम्भावित होकर (गौरवान्वित होकर) उससे अनुज्ञात होकर, पत्नियों को साथ लेकर, अपने-अपने आश्रम-प्रान्तों को प्रस्थान किया। उसके पश्चात् कर्दम ने देवोत्तम विष्णु के अपने मन्दिर में अवतरित होने की अपने मन में जानकर, विविक्त (एकान्त) स्थान को जाकर वहाँ कपिल को वंदन (प्रणाम) कर ऐसा कहा। ८४१ [सी.] चतुरात्मा ! सुनो ! अपने से किए गए अमंगल-भूत कर्म नामक दावाग्नि की शिखाओं से दंदह्यमान हो (जल) जाते हुए जीव पार न पा सक, निरंतर संसारबद्ध होकर रहते है। इस प्रकार बहुत काल के बीतते रहने पर, सकल देवताओं के प्रसन्न होते हुए, बहु जन्मों के परिचय की प्राप्ति कर योग रूपी [ते.] चिर-समाधि में तपोनिष्ठा से विभिन्न प्रदेशों में योगीजन धृतमती हो जिस महानुभाव के दर्शन कर लेते हैं, ऐसे

हानु भावु विलोकितु रट्टि दिव्य-
वुरुपरत्नंव ! ना यिट वुट्टि तोश ! ॥ 842 ॥

व. मरियु संसार चक्र परिभ्राम्यमाणुलमगुचु ग्राम्युलमैन मावर्तनंबुलु गणिपक, मदीय गृहंबुनं वूर्वंबुनं प्रतिश्रुतंबुलैन भवदीय वाक्यंबुलु दप्पकुंड ननुग्रहिंप नुदयिंचितनि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 843 ॥

कं. तलपोयग नप्राकृत, बलयुक्त चतुर्भुजादि भवदवतारं
बुलु नी कनुरूपमुलै, पॊलुपॊंदु गादॆ ? परमपुरुष ! महात्मा ! ॥844॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 844 (अ) ॥

कं. अनयमु भवदीयाश्रित, जन संरक्षणमु कॊरकु सम्मतितो दा-
ल्चिन मानवरूपंबुलु, ननुरूपमु लगुनु गादॆ ? हरि ! नी कॆंपुडुन् ॥845॥

कं. सुमहित तत्त्वज्ञाना-
र्थमु विद्वज्जनगणंबु दविलि नमस्का-
रमु लोलि जेयु पद पी-
ठमु गल निनु बॊगड वशमॆ ? ठवणिपंगन् ॥ 846 ॥

सी. समधिक षड्गुणैश्वर्य कारणुडवु परमेश्वरुंडवु प्रकृतिपुरुष !
महदहंकार ! तन्मात्र तत् क्षोभक हेतु कालात्म विख्यात धृतिवि
जगतात्मकुडवु चिच्छक्तिवि नात्मीय जठरनिक्षिप्त विश्व प्रपंच
मुनु गल सर्वज्ञमूर्तिवि स्वच्छंद शक्ति युक्तुंडवु सर्वसाक्षि

हे दिव्य पुरुषरत्न ! हे ईश ! मेरे घर पर [तुमने] जन्म लिया है। ८४२ [व.] और संसार-चक्र में परिभ्रमण करते हुए, हम ग्राम्य (मूर्ख) जनों के वर्तन (आचरण) की गिनती न कर, पूर्व में, मेरे घर में प्रतिश्रुत अपने वचनों को अवश्य सत्य करने के लिए अनुगृहीत करने के लिए उदित हुए हो। और आगे इस प्रकार कहा। ८४३ [कं.] परमपुरुष ! महात्मा ! विचार करने पर अप्राकृत रूप से वलयुक्त चतुर्भुज आदि भवत्-अवतार, तुम्हारे [विचारों के] अनुरूप हो, विलसित होते हैं न ? ८४४ [व.] इसके अतिरिक्त, ८४४ (अ) [कं.] हरि ! अपने आश्रित जनों की रक्षा सदा करने के लिए सम्मति से धारण किये हुए मनाव-रूप तुम्हारे अनुरूप ही तो होंगे न ? ८४५ [कं.] सुमहित तत्त्वज्ञान के लिए विद्वज्जन गण के प्रेम से, लगकर, नमस्कार करनेवाले पादपीठ वाले हो। ऐसे तुम्हारी स्तुति करना [मेरे] वश की वात है क्या ? ८४६ [सी.] अनघ ! समधिक रूप से षट्गुण रूपी ऐश्वर्य के कारणस्वरूप हो, परमेश्वर हो। हे प्रकृति-पुरुष ! महत् अहंकार तन्मात्राओं के क्षोभ के हेतुभूत कालात्मा हो, विख्यात धृति से जगदात्मा हो ! चित्शक्ति हो !

ते. वगुचु गपिलाख्यं दनरारु नट्टि नीकु
ननघ! म्रोक्केद बुत्रुंड वगुचु नीवु
नाकु बुट्टिन कतन ऋणत्रयंबु
वलन बासिति निक भक्तवरद! नेनु ॥ 847 ॥

ते. मानित व्रतयोग समाधि नियति
जेंदि भवदीय पादारविंदयुगमु
डेंदमुन जेर्चि शोकंबुलंदु दोलगि
संचरिंचेद नंचित स्थलमु लंदु ॥ 848 ॥

कं. अनि यिट्लु विन्नविंचिन, मुनिपुंगवुडैन कर्दमुनि वचनंबुल्
विनि भगवंतुंडगु न, य्यनघुडु कपिलुंडु वलिकॅ नर्मिलि दोपन् ॥ 849 ॥

सी. ना चेत बूर्वंबुनं ब्रतिश्रुतमैन वचनमुल् दप्पक वरमुनींद्र!
नी यिंट बुट्टिटति निर्हेतुकस्थिति भूरिदयागुणंबुन नवाप्त
सकल कामुड नेनु सन्मुनि वेषंबु धरियिंचुटॅल्ल ना कोरकु गादु
विनु महात्मकुलैन मुनुलकु बरमात्म गुरु सद्विवेकंबु नरसिचूपु
ते: तत्त्व बोधंबु कोरकुनु दालपबडिन, यंचित व्यक्तमार्गमैनट्टि देह
मनि तलंपुमु मत्पद ध्यान शक्ति, धीपरायणमहिमंबु तेजरिल्ल ॥850॥

कं. समधिक निष्ठं गृत यो, गमुनन् सन्न्यस्त सकलकर्मुडवै मो-
हमु बासि भवित चे मो, क्षमुकै भजियिंपु ननु विकाररहितुडै ॥ 851 ॥

अपने जठर में स्थित समस्त विश्व, प्रपंच वाले सर्वज्ञमूर्ति हो! स्वच्छन्द शक्ति तथा युक्ति वाले हो! [ते.] सर्वसाक्षी के रूप में कपिल नाम से सुशोभित होनेवाले तुम्हें प्रणाम करता हूँ। हे भक्तवरद! पुत्र के रूप में मेरे यहाँ जन्म लेने के कारण अब मैं ऋणत्रय से मुक्त हुआ हूँ! ८४७ [ते.] श्रेष्ठ व्रतयोग की समाधि को नियमानुसार प्राप्त कर, तुम्हारे चरण-कमल-युगल को हृदय में धारण कर, शोक मिटाकर अंचित-स्थलों (पुण्यतीर्थों) में संचार करूँगा। ८४८ [कं.] इस प्रकार विनती करनेवाले मुनिपुंगव कर्दम के वचन सुनकर, भगवान अनघ कपिल ने आदर प्रकट करते हुए कहा। ८४९ [सी.] वर मुनीन्द्र! मेरे द्वारा पूर्व में प्रतिश्रुत वचनों से न हटकर तुम्हारे घर में पैदा हुआ। निर्हेतुक स्थिति में भूरि दयागुण से, अवाप्त सकल कामों वाला हूँ। मेरा सन्मुनि के वेष को धारण करना मेरे लिए नहीं है। सुनो! देह को महात्मा मुनियों को परमात्मा गुरु (महान्) सद्-विवेक को प्रत्यक्ष रूप से दिखाने के लिए (और) [ते.] तत्त्वबोध के लिए धारण किए गए व्यक्त मार्ग समझ लो। (मेरे चरणों के प्रति ध्यान तथा भक्ति, धीपरायणता की महिमा को प्रकट करते हुए) ८५० [कं.] समधिक निष्ठा [तथा] कृत

कं. ननु बरमेशु बरंज्यो, तिनि ननघु ननंतु देवदेवु सकल भू-
तनिकाय गुहाशयु ना, द्युनि नजु नाद्यंत शून्यु दुरित विदूरुन् ॥ 852 ॥

कं. तिरमुग भवदीयांतः, करण सरोजात कर्णिकातलमुन सु-
स्थिरु जेसि यिद्रियंबुल,निरसिंचि मनोंबकमुन नॆड्रि गनु मनघा! ॥853॥

व. अट्लेनि ॥ 854 ॥

कं. तनरिन मोक्षमु नॊंदॆद-
वनि पलिकिन गर्दमुंडु नम्मुनिकुल चं-
द्रुनि वलगॊनि वंदनमुलु
घनमुग नति भक्ति जेसि कौतुक मलरन् ॥ 855 ॥

कं. मुनिगण सेवित मगु वन, मुनकुं जनि यंदु मौनमुन निस्संगुं
डुनु वह्नि रहितु डनि के, तनुडुनु नात्मैक शरण तत्परुडगुचुन् ॥ 856 ॥

व. परब्रह्मंबु जित्तंबुन निलिपि, यहंकारंबु विडिचि, ममत्वंबु निरसिंचि, दयागुणंबुनं जेसि, सकल भूतंबुलंदु समत्वंबु भजियिंचि, शांत शेमुषी गरिष्ठुं डगुचु, निस्तरंगंबगु वार्धिचंदंबुन धीरुंडै निखिल प्रपंचंबुनु वासुदेवमयंबुगा दलंपुचु भक्ति योगंबुन भागवतगति नॊंदॆ ॥ 857 ॥

योग से सकल कर्मों का संन्यास कर मोह को छोड़कर, विकार-रहित हो, मोक्ष के लिए मेरा भजन करो। ८५१ [कं.] मुझ परमेश, परमज्योति, अनघ, अनन्त, देवदेव, सकल प्राणिसमूह के अन्तरात्मा में स्थित, आद्य, अज, आद्यन्त शून्य (आदि-अंत से रहित), दुरितों को दूर करनेवाले का, ८५२ [कं.] हे अनघ! स्थिर रूप से अपने अन्तःकरण रूपी सरोजात (कमल) के कर्णिकातल में सुस्थिर रूप से प्रतिष्ठित कर, इन्द्रियों का निरसन कर, मनोकमल में [मुझे] देखो। ८५३ [व.] ऐसा होगा तो, ८५४ [कं.] अतिशय रूप से मोक्ष को प्राप्त करोगे। ऐसा कहने पर कर्दम ने उस मुनिकुल-चन्द्र की श्रद्धा से वन्दना की और घन रीति से अतिभक्ति से युक्त हो, कौतूहल के साथ ८५५ [कं.] मुनिगण से सेवित होनेवाले वन को चलकर वहाँ निस्संग, वह्नि-रहित अनिकेतन, आत्मा को एकमात्र शरण में तत्पर हो, मौन धारण कर, ८५६ [व.] परब्रह्म को चित्त में स्थिर कर, अहंकार छोड़कर, ममत्व का निरसन कर, दयागुण से सकल भूतों में समत्व की साधना कर, शान्त बुद्धि से गरिष्ठ हो, निस्तरंग (तरंग-रहित) वार्धि (सागर) की रीति धीर बन, समस्त संसार को वासुदेवमय समझते हुए भक्तियोग में भागवत-गति को प्राप्त हुआ। ८५७

अध्यायमु—२५

व. अनि चॆप्पि वॆंडियु मैत्रेयुंडु विदुरुं गनुंगॊनि कर्दमुंडु वनंबुनकुं जनिन यनंतरंब मातृवत्सलुंडैन कपिलुंडु बिंदु सरंबुन वसियिंचियुंड देवहूति तत्त्व मार्गाग्रदर्शनुंडैन सुतुनिं गनुंगॊनि ब्रह्म वचनंबुलु दलंपुचु निट्लनियॆ ॥ 858 ॥

देवहूति पुत्रुंडैन कपिलाचार्युनिवलनं दत्त्वज्ञानंबु वडयुट

कं. असदिंद्रिय घर्षणमुन, वसमरि निर्विण्ण नगुचु वनरॆडि ना की-
यसदृश मोहतमो विनि, रसनं बनघात्म ! पे वॆरवुन घटिंचुन् ॥859॥

कं. पटु घन नीरंध्र तमः-
पटल परीवृत जगत्प्रपंचमुनकु नॆ-
क्कटि लोचनमै महितो
त्कटरुचि वॆलुगुदुवु भानु कै वडि ननघा ! ॥ 860 ॥

उ. भूरि मदीय मोह तममुं बॆडबाप समर्थु लन्यु लॆ-
व्वारलु ? नीव काक निरवद्य ! निरंजन ! निर्विकार ! सं-
सारलता लवित्र ! बुधसत्तम ! सर्वशरण्य ! धर्मवि-
स्तारक ! सर्वलोक शुभदायक ! नित्यविभूति नायका ! ॥ 861 ॥

अध्याय—२५

[व.] ऐसा कहकर और मैत्रेय ने विदुर को देखकर (कहा कि) कर्दम के वन को चले जाने के पश्चात्, मातृवत्सल कपिल के बिन्दुसर में निवास करते समय, देवहूति ने तत्त्व-मार्ग के अग्रदर्शन वाले सुत को देखकर ब्रह्मा के वचनों का स्मरण करते हुए इस प्रकार कहा। ८५८

देवहूति का अपने पुत्र कपिलाचार्य से तत्त्वज्ञान को ाप्त करना

[कं.] अनघात्मा ! असद्-इन्द्रियों के संघर्ष से विवश हो (सामर्थ्य को खोकर) निर्विण्ण वन दीनालाप करनेवाली मेरे लिए, यह असदृश मोहान्धकार किस प्रकार मिट सकेगा ? ८५९ [कं.] पटु-घन [तथा] नीरन्ध्र तमःपटल से परीवृत जगत (प्रपंच) में, एक मात्र नयन के रूप में, महिमा को प्रकट करते हुए भानु की भाँति ज्योतित होते हो। ८६० [उ.] मेरे (इस) अत्यधिक मोहान्धकार को हटाने में, तुम्हारे सिवा अन्य कौन समर्थ है ? हे निरवद्य ! निरंजन ! निर्विकार ! संसार रूपी लता के लिए लवित्र (हँसिया) ! बुधश्रेष्ठ ! सर्वशरण्य ! धर्मविस्तारक !

चं. निनु शरणंबु सॊच्चॆद ननिंद्य तपोनिधि ! नन्नु गाववे !
यनि तनु देवहूति विनयंबुन सन्नुति चेसि वेडिन-
न्ननुपम सत्कृपाकलितुडै कपिलुं डनुराग मॊप्प स-
ज्जन निचयापवर्गफल साधनमै तगु तल्लि वाक्यमुल् ॥ 862 ॥

कं. विनि मंदस्मित ललिता-
ननकमलुं डगुचु नॆम्मनमुन न्नमोदं
बनयंबु गडलुकॊन निज
जननिकि निट्लनियॆं बरम ज्ञातुं डगुचुन् ॥ 863 ॥

कं. विनु जीवुनि चित्तमु दा, घन भवबंधापवर्ग कारण मदि ये-
चिन द्रिगुणासक्तंब, ननु संसृतिबंध कारणंबगु मट्टियुन् ॥ 864 ॥

ते. अदियु नारायणासक्त मय्यॆ नेनि
मोक्ष कारणमगु ननि मुनिकुलाब्धि
चंद्रुडन नॊप्पु कपिलुड् जननितोड
नथि विनजॆप्पि मट्टियु निट्लनियॆं ब्रीति ॥ 865 ॥

व. मट्टियुनु चित्तं बहंकार ममकार रूपाभिमान जातंबुलगु काम लोभादि कलुष व्रातंबुलचेत नॆप्पुडु विमुक्तंबै परिशुद्धंबगु नपुडु सुखदुःख विवर्जितंबु नेकरूपंबुनै प्रकृति कंटॆ बरंडुनु, बरम पुरुषुंडुनु, निर्भेद्युंडुनु,

---

सर्वलोकों के लिए शुभदायक ! नित्य विभूतियों के नायक ! ८६१
[चं.] हे अनिन्द्य तपोनिधी ! तुम्हारी शरण में आ गई हूँ ! मेरी रक्षा करो न ! कहते हुए विनम्र हो देवहूति के स्तुति कर विनती करने पर, अनुपम सत्कृपा से पूर्ण हो कपिल ने अनुराग को प्रकट करते हुए, सज्जन-गण को अपवर्ग फल (मोक्षफल) की साधना के योग्य माता के वचन, ८६२
[कं.] सुनकर मंदस्मित से युक्त ललित मुखकमल वाला होते हुए, अतिशय प्रेम (तथा) आनन्द को प्रकट करते हुए, परम शान्त हो, माता से इस प्रकार कहा । ८६३ [कं.] सुनो ! जीव का चित्त घन भवबन्धन का (तथा) अपवर्ग (मोक्ष) का कारण है । उसके विजृंभित होने पर त्रिगुणों में आसक्त हो संसृति-बंध का कारण हो जाता है । और, ८६४
[ते.] वह यदि नारायण में आसक्त हो जाए तो मोक्ष का कारण होगा । ऐसा मुनिकुल रूपी सागर के चन्द्र के रूप में सुशोभित होनेवाले कपिल ने माता से नम्र हो, सुनाकर और प्रेम से इस प्रकार कहा । ८६५
[व.] और चित्त, अहंकार, ममकार तथा रूप के अभिमान से उत्पन्न होनेवाले काम (तथा) लोभ आदि कलुष-समूह से जब विमुक्त हो, परिशुद्ध होता है, तब सुख और दुःख से विवर्जित, एक रूप हो प्रकृति से परे (अन्य), और परमपुरुष और निर्भेद्य और स्वयंज्योति और सूक्ष्मस्वरूप

स्वयं ज्योतियु, सूक्ष्मस्वरूपुंडुनु, नितरवस्त्वंतरापरिच्छिन्नुंडुनु, उदासीनुंडुनु नैन परामात्मुनि, ददीय महोहतौजस्कंबैन प्रपंचंबुनु, ज्ञान वैराग्य भक्ति युक्तंबगु मनबुचे बॊडगांचि, योगिजनुलु परतत्त्व सिद्धि कॊरकु निखिलात्मकुंडैन नारायणुनंदु संयुज्यमानंबैन भक्ति भावंबु वलन नुदयिंचिन मार्गंबुनकु नितर मार्गंबुलु सरिगावंड्रु। विद्वांसुलु संगं बिंद्रियार्थासद्विषयंबुग नॊनरिपंबडिन जीवुनकु नशिथिलंबगु बंधंबुनकु गारणंबगु ननियु, नदियॆ सद्विषयंबैन नंतःकरण संयमन हेतुभूतंबगुचु साधुजनुलकु ननर्गल मोक्षद्वारंबगु ननियु दॆलियुदुरु। सहनशीलुरुनु समस्त शरीर धारुलकु सुहृत्तुलुनु, बरम शांतुलुनु, गरुणिकुलु नै मदर्थंबुग बरित्यक्त कर्मुलु, विसृष्ट स्वजन बंधुजनुलुनै, मत्पदाश्रयुलुनु, मद्गुण ध्यान पारीणुलुनु, मत्कथा प्रसंग सफलित श्रवणुलुनु नगुचु नुंडु परम भागवोत्तमुल दापत्रयंबु तपिंपजेयं जालदु। अट्टि सर्वसंग विवर्जितुलगु परम भागवत जनुल संगं बपेक्षणीयंबु। अदि सकलदोष निवारकंबगु। अट्टि सत्संगंबुन सर्व प्राणि हृत्कर्ण रसायनंबुलगु मदीय कथा प्रसंगंबुलु गलुगु। मद्गुणाकर्णनंबुनं जेसि शीघ्रंबुग ग्रमंबुनं गैवल्यमार्गदंबुलगु श्रद्धाभक्तुलुदयिंचु। अदियुनुं गाक यॆ पुरुषुंडैन नेमि? मद्विरचित जगत्कल्पनादि

और अन्य वस्तु से परिच्छिन्न होनेवाले और उदासीन रहनेवाले परमात्मा को और उसके (उस परमात्मा के) महान् तेज से सम्पन्न जगत को, ज्ञान, वैराग्य [तथा] भक्तियुक्त हो, मन से देखकर, योगिजन परतत्त्व की सिद्धि के लिए निखिलात्मा नारायण में संयुज्यमान हो भक्ति-भाव से उदित मार्ग के लिए कहते हैं, अन्य मार्ग समान नही होगे। विद्वान् लोगों की इन्द्रियो के लिए असद् विषयों की संगति, जीव को अशिथिल बन्धन के लिए कारण होगी, वही सद्विषय [की संगति] हो तो अन्तःकरण के, संयम के हेतुभूत साधुजनों के लिए अनर्गल (अबाध) रूप से मोक्षद्वार होगी, ऐसा जान लेते हैं। समस्त शरीरधारियों के प्रति सुहृद् लोग और परम शान्त (स्वभाव) वाले और करुणापूरित लोग, मेरे लिए परित्यक्त-कर्म वाले और स्वजन बन्धुजनों को छोड़ देनेवाले और मेरे चरणों का आश्रय लेनेवाले और मेरे गुणों के ध्यानपरायण और मेरी कथा-प्रसंगों को सुनकर सफल बने श्रवण वाले परम भागवतों को तापत्रय तपाने में समर्थ नही होता है। ऐसे सर्वसगों को विसर्जित कर देनेवाले, परम भागवत जनों के लिए [विषय-] संगति अपेक्षणीय है। वह सकल दोष का निवारक होगा। ऐसी सत्संगति से सर्वप्राणियों के हृदय रूपी कर्ण के लिए रसायन बने मेरे कथा-प्रसंग प्राप्त होगे। मेरे गुणों को सुनने के कारण शीघ्र [तथा] क्रमशः कैवल्य मार्ग को प्राप्त करानेवाले श्रद्धा [तथा] भक्ति उदित होंगे। इसके अतिरिक्त कोई भी पुरुष क्यों

विहार चिंत चे नुदयिंचिन भक्ति जेसि यिंद्रिय सुखंबुल वलननु, दृष्टश्रुतंबु लेन यैहिकामुष्मिकंबुल वलननु, विमुक्तुंडगुचु जित्त ग्रहणार्थंबु ऋजुवुलैन योगमार्गंबुलचे संयुक्तुंडगु नट्टि योगि प्रकृतिगुण सेवनंबु चेतनु, वैराग्य गुण बिजृंभितंबैन ज्ञानंबुचेतनु, मदर्पित भक्ति योगंबु चेतनु, प्रत्यगात्मकुंडनैन नन्नु नंतःकरण नियुक्तुनि गाविंचु। अनि चॅप्पिन विनि देवहूति कपिलुनि किट्लनियॅ ॥ 866 ॥

कं. ए भक्ति भवद्गुण पर-
मै भवपाप प्रणाशमै युक्ति श्री-
लाभमु रयमुन जेयुनॊ-
या भक्ति विधंबु दॅलिय नानति यीवे ! ॥ 867 ॥

व. अदियुनं गाक भवदुदितंबैन योगंबुनु, ददंगंबुलुनु, दद्गत तत्त्वावबोधंबुनु साकल्यंबुग मंदबुद्धिनैन नाकु स्फुटं बगुनट्लु दॅलिय नानतिम्मनिन गपिलुं डिट्लनियॅ ॥ 868 ॥

सी. जनयित्रि ! विनुमरि सकल पदार्थ परिज्ञानतत्त्व पारीणमगुचु
नाम्नायविहित कर्माचारमुलु कल्गि तिवुटमै वर्तिंचु देवगणमु
पूनि नैसर्गिकंबैन निर्हेतुकमगु भगवत्सेव महितमुक्ति
कंटॆ गरिष्ठंबु गावुन नदियु भुक्तान्नंबु जीर्णंबु नंद जेयु

न हो, मेरे द्वारा विरचित जगत की कल्पना आदि विहार की चिन्ता से उदित भक्ति के कारण इन्द्रियसुखों से, दृष्टश्रुत बने हुए ऐहिक [तथा] आमुष्मिकों से विमुक्त होते हुए, चित्त के ग्रहण के लिए ऋजु-योग मार्गों से संयुक्त होनेवाले योगी के प्रकृति गुण की सेवा के कारण और वैराग्य गुण के विजृम्भण के ज्ञान के कारण, मुझे अर्पित भक्तियोग के कारण, प्रत्यगात्मा हो मुझे अन्तःकरण से नियुक्त करेगा ! ऐसा कहने पर, सुनकर, देवहूति ने कपिल से इस प्रकार कहा। ८६६ [कं.] जो भक्ति तुम्हारे गुणों के अनुकूल हो, संसार के पाप का नाशकर हो, मुक्ति के श्रीलाभ को शीघ्र प्राप्त करानेवाली है, उस भक्ति के विधान को विदित कर आज्ञा दो (समझाओ)। ८६७ [व.] इसके अतिरिक्त तुम्हारे द्वारा उत्पन्न होनेवाले योग (तथा) उसके अंग तथा उसके तत्त्वबोध को बिपुलता के साथ मन्दबुद्धि वाली मुझे स्पष्ट हो जाए ऐसा विदित करते हुए आज्ञा देने के लिए प्रार्थना करने पर कपिल ने इस प्रकार कहा। ८६८ [सी.] जननी ! सद्गुणगणशाली ! योग लक्षणों से युक्त होनेवाली ! सुनो ! फिर सकल पदार्थों के परिज्ञान-तत्त्व में पारीण होते हुए, आम्नाय से विहित-कर्मों का आचरण करते हुए, त्रिपुट हो देवगण व्यवहार करते हैं। प्रयत्न कर सहज रूपवाली निर्हेतुक भगवत्सेवा महिमामयी मुक्ति

ते. दीप्त जठराग्नि गति लिंगदेह नाश-
कंबु गाविंचु नदियुनुगाक विष्णु
भक्ति वैभवमुलु देट परुतु विनुमु,
सद्गुणव्रात ! योग लक्षण समेत ! ॥ 869 ॥

चं. अमलिन भक्ति गोंदरु महात्मुलु मच्चरणारविंदयु-
ग्ममु हृदयंबुन निलिपि कौतुकुलै यितरेत रानुला
पमुल मदीय दिव्यतनु पौरुषमुल् गोनियाडुचुंडि मो-
क्षमु मदि गोरनोल्ल रनिशंबु मदर्पित सर्वकर्मुलै॥ 870 ॥

सी. परिकिंप गोंदरु भागवतोत्तमुल् घनत कैक्किन पुरातनमुलैन
चारु प्रसन्न वक्त्रारुण लोचनमुलु गलिग वरदान कलितमुलुग
दनरु मद्दिव्यावतार वैभवमुलु मदि नोप्प दम योग महिम जेसि
यनुभविंपुचु ददीयालापमुल सन्नुतिंपुचु दिवुट दद्दिव्य विलस

ते. दवयवोदार सुंदर नवविलास, मंदहास मनोहर मधुर वचन
रचनचे नपहृत मनःप्राणुलगुचु, नेलमि नुंदुरु निश्श्रेयसेच्छलेक ॥871॥

म. कणकन् वारलु वेंडि मोक्ष निरपेक्ष स्वांतुलै युंडियु
न्नणिमा द्यष्ट विभूति सेवितमु नित्यानंद संधायियुन्

की अपेक्षा गरिष्ठ है। इसलिए वह भुक्तान्न को जीर्ण करनेवाली, [ते.] दीप्त जठराग्नि की रीति लिंगदेह का नाश कर देगी। इसके अतिरिक्त विष्णु की भक्ति के वैभव को स्पष्ट करता हूँ। सुनो ! ८६९ [चं.] कतिपय महात्मा लोग अमलिन भक्ति से मेरे चरण-युगल को हृदय में स्थापित कर, कौतुक के साथ, अन्यान्य प्रकार के अनुलापों (बातचीत) से मेरी दिव्यता तथा पौरुष की स्तुति करते हुए, सदा सर्वकर्मों को मुझे अर्पित करते हुए, मन में मोक्ष को [भी] चाहते नहीं। ८७० [सी.] परखने पर कतिपय उत्तम भागवत (भक्त) विख्यात हों, पुराने (तथा) सुन्दर प्रसन्न वक्त्र (मुख) [और] अरुण लोचन वाले, वरदान से पूर्ण हो, सुशोभित होनेवाले मेरे दिव्य अवतारों के वैभव को मन में सुस्थापित कर, अपनी योगमाया से अनुभव करते हुए, उन आलापों से [मेरी] स्तुति करते हुए, इच्छा कर मेरे दिव्य विलास से पूर्ण, [ते.] अवयवों से उदार, सुन्दर, नवविलास, मन्दहास से मनोहर रूप से मधुर वचन-रचना में अपहृत मनप्राण वाले हो, निश्श्रेयस (मोक्ष) की कामना से रहित हो, प्रेम से रहते है। ८७१ [म.] वे लोग यत्न से, अन्तरंग में मोक्ष के प्रति निरपेक्ष भाववाले हो रहते हुए भी, अणिमादि अष्ट विभूतियों से सेवित, नित्य (सदा) आनन्द का सन्धायक, गणनातीत, अप्रमेय, समग्र सम्पदाओं का प्रदायक, सर्वलक्षणों से संयुक्त वैकुण्ठलोक

गणनातीतमु नप्रमेयमु समग्र श्रीकमुन् सर्व ल-
क्षण संयुक्त विकुंठलोक पदविन् गैकॊंदु रत्युन्नतिन् ॥ 872 ॥

व. इट्लु बॊंदि ॥ 873 ॥

कं. तनरुदु रप्पुण्यात्मुलु, जनयित्रि ! मदीय कालचक्र ग्रसनं
बुनु बॊंदक नित्यंबगु, ननुपम सुखवृत्ति नॊंदु रदि यॆट्लनिन् ॥ 874 ॥

म. समतन् स्नेहमुचे सुतत्त्वमुनु, विश्वांबुचेतन् सखि
त्वमु, चालन् हितवृत्ति चेतनु सुहृत्त्वंबुन्, सुमंत्रोप दे-
शमु चेतन् निजदेशिकुं डनग निच्चल् पूज्युडौ निष्ट दॆ
वमुनै वारिकि गालचक्र भयमुल् वारिपुदुं गावुनन् ॥ 875 ॥

म. विनुमदिगाक यी भुवि दिर्वि वलुमाऱु जरिंचु नात्म दा
धन पशु पुत्र मित्र वनिताततिपै दगुलंबु मानि न-
न्ननधुनि विश्वतोमुखु ननन्यगतिन् भजियिंचॆ नेनि वा-
निनि घन मृत्युरूप भवनीरधि नॆ दरियिंप जेयुदुन् ॥ 876 ॥

सी. रूढि प्रधान पूरुष नायकुंडनु भगवंतुडनु जगत्प्रभुडनैन
नाकंटॆ नन्युल गैकॊनि तगिलिन यात्मलु भवभयंबु नॊंपुदु
गावुन नायाज्ञ गडवंग नोड्ट जेसि वायुवु वीचु शिखि वॆलुंगु
निनुडु दर्पिंचु दा निंद्रुंडु वर्षिंचु भयमंदि मृत्युवु परुवु वॆट्टु

के पद को अति उन्नत रीति से प्राप्त करते है। ८७२ [व.] इस प्रकार प्राप्त कर, ८७३ [कं.] जनयित्री ! ऐसे पुण्यात्मा लोग मेरे कालचक्र के ग्रास (कवल) न वनकर, शाश्वत [तथा] अनुपम सुखवृत्ति को प्राप्त करते हैं। वह कैसा सम्भव होता है, पूछने पर कि, ८७४ [म.] समता [और] स्नेह से सुतत्व को, विश्व-अंबु-चेतस से सखित्व को, अत्यधिक हितवृत्ति से सुहृत्तत्व को, [तथा] सुमंत्रोपदेश से अपना गुरु वनकर, नित्य पूज्य हो, इष्टदेव हो, उनको कालचक्र के भय का निवारण करता हूँ। इसलिए, ८७५ [म.] इसके अतिरिक्त और सुनो ! इस भुवि (धरती) पर वार-वार संचार करनेवाली आत्मा यदि धन, पशु, पुत्र, मित्र, वनितागण पर आसक्ति छोड़कर, मुझ अनघ, विश्वतोमुखी का अनन्यगति से भजन करें, तो उसे घनमृत्यु रूपी भव-नीरधि (सागर) से मैं तार देता हूँ। ८७६ [सी.] निश्चित रूप से प्रधान पुरुषों के नायक, भगवान्, जगत्प्रभु वने हुए मुझे छोड़कर अन्यों से लगे रहनेवाली आत्माएँ सदा भव-भय को प्राप्त हो जाती हैं। अस्तु मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने से डरकर वायु बहती है, शिखि (अग्नि) जलती है, सूर्य तपाता है, इन्द्र वर्षा करता है, भय खाकर मृत्यु दौड़ लगाती है। [ते.] इसलिए विज्ञान

ते. गान विज्ञान वैराग्यकलित मैन
भक्ति योगंबुनं जेसि परमपदमु
कोरकु नय्योगिवरुलु मच्चरण भजनु-
लगुचु जरियिंपुदुरु निर्भयात्मुलगुचु ॥ 877 ॥

कं. गुरु भक्ति जित्तमु मत्परमै विलसिल्लु नंत पर्यंतमु स-
त्पुरुषुल किहलोकंबुन, जिरतर मोक्षोदयंबु सेकुरुचुंडुन् ॥ 878 ॥

कं. अनि यिट्लु सन्मुनींद्रुडु, जननिकि हरिभक्ति योग संगति नॅल्लन्
विनिपिंचुचु वॅंडियु नि, ट्लनियॅन् सम्मोदचित्तुडगुचु गणंकम् ॥879॥

अध्यायमु—२६

व. अव्वा ! यिव्विधंबुन भक्तियोगप्रकारंबु सॅप्पिति । इक तत्त्व लक्षणंबु वेरु वेरु यॅरिंगितु । ए तत्त्व गुणंबुल नॅरिंगि नरुलु प्रकृति गुणंबुल वलन विमुक्तुलगुदुरु । हृदय ग्रंथि विच्छेदकंबु नात्मदर्शनरूपंबु नगु, ना ज्ञानं बात्म निश्श्रेयस कारणंबु गावुन दानि नॅरिंगितु । अंदु नात्मस्वरूपं बॅट्टि दनिन ननादियु, बुरुषुंडुनु, सत्त्वादि गुण शून्युंडनु, प्रकृति गुण विलक्षणुंडुनु, प्रत्यक् स्वरूपुंडुनु, स्वयं प्रकाशुंडुनु नॅव्वडु, ऑव्वनितोड नी विश्वंबु समन्वितंबगु, नतंडु गुणत्रयात्मकंबु, नव्यक्तंबु, भगवत्संबंधियु

[तथा] वैराग्य से पूर्ण भक्तियोग से परमपद के लिए योगीवर मेरे चरणों का भजन करते हुए, निर्भयात्मा हो, विचरण करते है । ८७७ [कं.] बड़ी भक्ति के साथ चित्त मुझे समर्पित करते हुए जब तक रहेंगे, तब तक सत्पुरुषों को इहलोक में शाश्वत रूप से मोक्षोदय की प्राप्ति होती रहेगी। ८७८ [कं.] कहते हुए इस प्रकार मुनीन्द्र ने माता को हरि-भक्ति की समस्त योगसंगति को सुनाते हुए, आनन्द भरे हृदयवाले हो और [आगे] इस प्रकार कहा । ८७९

अध्याय—२६

[व.] माँ ! इस प्रकार भक्ति का विधान [मैंने] सुनाया। [आगे] तत्त्व लक्षणों को अलग-अलग विदित करूँगा। जिन तत्त्व-गुणों को जानकर नर अपने प्राकृतिक गुणों से विमुक्त हो जाते हैं, तथा जो हृदयग्रंथि का विच्छेदक और आत्मदर्शनरूपात्मक है, जो ज्ञान आत्मनिश्रेयस् का कारण होता है, उसे विदित करूँगा। उसमें आत्मस्वरूप किस प्रकार का होता है, पूछ लें तो, वह अनादि और पुरुष और सत्त्वादिगुणशून्य और प्रकृति-गुणों से विलक्षण और प्रत्यक्

नगु प्रकृति यंदु यदृच्छ चे लीलावशवुनं ब्रवेशिंचिन, ना प्रकृति गुणत्रयमयंबै, सरूपंबैन प्रजासर्गंबु जेयं गनुंगोनि, यप्पुडु मोहितुंडै, विज्ञानतिरोधानंबुनं -जेसि गुणत्रयात्मकंबैन प्रकृत्यध्यानंबुन नन्योन्यमेळनं बगुटयु, नंतं ब्रकृति गुणंबु दनयंदु नारोपिंचुकोनि, क्रियमाणंबुलगु कार्यंबुल वलनं गर्तृत्वंबु गलिगि, संसार बद्धुंडै, पारतंत्र्यंबु गलिगि युंडु, कर्तृत्व शून्युंडगु नीश्वरुंडु साक्षियगुटं जेसि यात्मकुं गार्यकारण कर्तृत्वंबुलु प्रकृत्य धीनंबु लनियु, सुखदुःख भोक्तृत्वंबुलु प्रकृति विलक्षणुंडैन पुरुषुनि वनियु नॆरुंगुदुरु। अनि चॆप्पिन विनि देवहूति कपिलुन किट्लनियॆं। पुरुषोत्तमा ! प्रकृति पुरुषुलु सदसदात्मक प्रपंचंबुनकु गारण भूतुलु गावुन वानि लक्षणंबु सदसद्विवेकपूर्वकंबुगा नानतिम्मनिन भगवंतुंडैन कपिलुं डिट्लनियॆं ॥ 880 ॥

कं. क्रममुन द्रिगुणमु नव्य-
क्तमु नित्यमु सदसदात्मकमु मरियु ब्रधा
नमु ननगा ब्रकृति विशे-
षमु लदियु विशिष्ट मनिरि सद्विदु लॆलमिन् ॥ 881 ॥

व. अंदु ब्रकृति चतुर्विंशति तत्त्वात्मकंबै युंडु। अदि यॆट्लनिनं बंच

स्वरूप और स्वयंप्रकाशक है। जिससे यह विश्व समन्वित होता है, वह गुणत्रयात्मक, अव्यक्त, भगवान से सम्बन्धित हो (उस) प्रकृति में [यदृच्छा से] लीलावश प्रविष्ट हो, उस प्राकृतिक गुणमय हो, सरूप हो, प्रजा की सृष्टि करने को जानकर, तब मोहित हो, विज्ञान के तिरोधान के कारण गुण-त्रयात्मक बनी प्रकृति के अध्यास (घेर लेने) से परस्पर सम्मिलित होकर, अन्त में प्रकृति-गुणों को अपने में आरोपित कर क्रियमाण हो, कार्यो के कारण कर्तृता को धारण कर, संसार में बद्ध हो, परतंत्र हो रहता है। कर्तृत्व से शून्य बने ईश्वर के साक्षी होने के कारण, आत्मा के कार्यकारण-कर्तृता आदि प्रकृति के अधीन होते है [और] सुख-दुःख-भोक्तृता प्रकृति से विलक्षण (न्यारे) पुरुष के आधीन होते हैं, ऐसा जान लेते हैं। इस प्रकार कहने पर सुनकर देवहूति ने कपिल से कहा कि हे पुरुषोत्तम ! प्रकृति [और] पुरुष सद्-असदात्मक संसार के कारणभूत होते हैं। इस कारण उनके लक्षणों का सद्-असद् के विवेकपूर्वक आज्ञा देने (समझाने) को पूछने (कहने) पर भगवान् कपिल ने इस प्रकार कहा। ८८० [कं.] सद्विद् लोगों ने प्रेम से कहा कि त्रिगुण क्रमशः अव्यक्त, नित्य, सदसदात्मक और प्रधान रूप से अर्थात् प्रकृति के विशेष (लक्षण) होते है। ८८१ [व.] उसमें प्रकृति [अपने] चौबीस तत्त्वों में रहती है। वह कैसा होता है, [यदि पूछ लें तो] पंचमहाभूत, पंचतन्मात्राएँ, ज्ञान,

महाभूतंबुलुनु, बंचतन्मात्रलनु, ज्ञानकर्मात्मकंबुलैन त्वक्चक्षुश्श्रोत्र जिह्वा घ्राणंबुलुनु, वाक्पाणि पाद पायूपस्थलु ननु दशेंद्रियंबुलुनु, मनो बुद्धि चित्ताहंकारंबुलनु नंतःकरण चतुष्टयंबुननु चतुर्विंशति तत्त्वात्मकंबुनु नैन सगुण ब्रह्म संस्थानंबु सॅप्पिति। इटमीद कालंबनु पंचविंशक तत्त्वंबु सॅप्पॅद। अदि गॊंदरु पुरुष शब्द वाच्युंडैन यीश्वरुनि पौरुषंबु कालशब्दंबुन जॅप्पंबडु नंदुरु। अंदु नहंकार मोहितुंडै प्रकृति नॊंदु जीवुंडु भयंबु जेंदु। प्रकृतिगुण साम्यंबुनं जेसि वर्तिंचि निर्विशेषुंडगु भगवंतुनि चेष्टा विशेषंबु देनि वलन नुत्पन्नंबगु नदियॆ कालं बनि चॅप्पंबडु। अदियु जीवराश्यंतर्गतं बगुटं जेसि पुरुषुं डनियु, वानि बहिर्भाग व्याप्ति जेसि कालं बनियु जॅप्पंबडु। आत्म मायं जेसि तत्त्वांतर्गतुंडैन जीवुनि वलन क्षुभितंबै जगत्कारणं बगु प्रकृतियंदु बरम पुरुषुंडु दन वीर्यंबु वॆट्टिन ना प्रकृति हिरण्मयंबैन महत्तत्त्वंबु पुट्टिंचॆ। अंत सकल प्रपंच बीज भूतुंडु लय विक्षेप शून्युंडु नगु नीश्वरुंडु सूक्ष्मरूपंबुन नात्मगतंबैन महदादि प्रपंचंबुल जूपुचु स्वतेजो विपत्ति जेसि यात्म प्रस्वापनंबु सेयुनट्टि तमंबुनु ग्रसिंचॆ। अनि चॅप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ॥ 882॥

तथा कर्मात्मक बने हुए त्वक्, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा, आघ्राण और वाक्, पाणि, पाद (चरण), पायु, उपस्था कहलानेवाले दस इन्द्रिय (तथा) मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार नामक अन्तःकरण चतुष्टय कहलानेवाले, चौबीस तत्त्वात्मक होनेवाले सगुण ब्रह्म के संस्थान के बारे में बताया। इसके बाद काल नामक पंचविंशक तत्त्व को बताऊँगा। उसे कुछ लोग पुरुष शब्द से पुकारे जानेवाले ईश्वर के पौरुष को काल शब्द से अभिहित किया जाता है, ऐसा कहते हैं। उसमें अहंकार से विमोहित हो प्रकृति को प्राप्त होनेवाला जीव भय खाता है। प्रकृति के गुणसाम्य के कारण व्यवहार कर [निर्विशेष होनेवाले] भगवान के प्रयत्न विशेष से [जिससे उत्पन्न होता है, वही] काल नाम से कहा जाता है। वह भी जीव-राशि के अन्तर्गत होने के कारण पुरुष है, (और) उसके बहिर्भाग में व्याप्त होने के कारण काल नाम से [कहा जाता है।] अपनी माया के कारण तत्त्व के अन्तर्गत हो जीव से क्षुभित हो जगत्कारण होनेवाली प्रकृति में परमपुरुष के अपने वीर्य को स्थापित करने पर, उसने प्रकृति हिरण्मय बने हुए महत्तत्त्व को जन्माया। तब समस्त संसार के बीजभूत लयविशेष शून्य हो ईश्वर सूक्ष्मरूप में [आत्मगत हो] महदादि संसार को दिखाते हुए अपने तेज की विपत्ति [के कारण] आत्मा को प्रस्वापन (निद्रित) करनेवाले तम को ग्रस लिया। ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। ८८२ [कं.] हे भव्य गुणवाली! दिव्य बने हुए

कं. दिव्यमगु वासुदेवा, दि व्यूह चतुष्टयंबु त्रिजगमुलंवुन्
सेव्यंबनि चॆप्पंबडु, नव्यगुणा ! दानि नॆरुग वलिकॆद नीकुन् ॥ 883 ॥

सी. सत्त्वप्रधानमै स्वच्छमै शांतमै यूर्मिषट्कंबुल नोसरिंचि
सुरुचिर षाड्गुण्य परिपूर्णमै नित्यमै भक्तजन सेव्यमै तनंचि
वलनॊप्पुचुंडु नव्वासुदेवव्यूह मंत महत्तत्त्वमंबु नोलि
रूढि ग्रिया शक्ति रूपंबु गल्गु नहंकार मुत्पन्न मय्यॆ नदियु

ते. सरवि वैकारिकंबु दैजसमु ताम-
संबु नामूडु तॆरगुल वरगु नंबु
दनरु वैकारिकमु मनस्सुनकु निंद्रि-
यमुलकु गगनमुख भूतमुल करय ॥ 884 ॥

व. उत्पत्तिस्थानंबै युंडु। अदियु देवतारूपंबुन नुंडु। तैजसाहंकारंबु बुद्धि प्राणंबुलं गलिगियुंडु। तामसाहंकारंबु त्रिगुण मेळनंबुन नर्थमात्रंबै युंडु। मरियु ॥ 885 ॥

सी. अट्टि यहंकारमंदुदयिंचि साहस्र फणामंडलाभिरामु
डै तनरारु ननंतुंडु संकर्षणु डन दगु पुरुषुंडु घनुडु
महित भूतेंद्रिय मानसमयुडुनै कर्तृत्व कार्यत्व कारणत्व
प्रकट शांतत्व घोरत्व मूढत्वादि लक्षणलक्षितोल्लासि यगुचु

वासुदेव आदि चार व्यूह तीन जगतों में सेव्य कहे जाते हैं, उनके बारे में विदित करते हुए तुमसे कहता हूँ। ८८३ [सी.] सत्त्वप्रधान हो, स्वच्छ हो, शान्त हो, छः ऊर्मियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) को हटाकर, सुरुचिर षट् (छः) गुणों से परिपूर्ण हो, नित्य हो, भक्तजनों से सेव्य हो, सुशोभित हो, उस वासुदेव के व्यूह के महत्तत्त्व में क्रमशः दृढ़ रूप से क्रियाशक्ति के रूप के साथ अहंकार उत्पन्न हुआ। [ते.] वह क्रमशः विकारी, तैजस, तामस, तीन प्रकार से होता है। उसमें मन का और इन्द्रियों का तथा गगनमुखी भूतों का, विचार करने पर विदित होता है कि वैकारी, ८८४ [व.] उत्पत्तिस्थान होता है। वह भी देवता-रूप में होता है। तैजसाहंकार बुद्धि (तथा) प्राणों से युक्त होता है। तामसाहंकार त्रिगुण के साथ मिलकर अर्थमात्र हो रहता है, और, ८८५ [सी.] ऐसे अहंकार में उदित हो, सहस्रफणों के मण्डल से अभिराम हो, सुविलसित होनेवाला अनन्त संकर्षण नामक पुरुष घनात्मा (महात्मा) है (और) महान् भूतेन्द्रियों का मानसमय हो, कर्तृत्व, कार्यत्व, कारणत्व, प्रकट रूप से शान्तत्व, घोरत्व, मूढत्व आदि लक्षण-लक्षित होते हुए, [ते.] रहनेवाले उस महान् का दूसरा व्यूह कहलानेवाला होता

ते. नुंडु नम्मेटि रेंडवव्यूह मनग,
घन विकारंबु बोंदु वैकारिकंबु
वलन विनुमु मनस्तत्त्व मॅलमि बुट्टॅ,
मरियु वैकारिकंबुनु मात! विनुमु ॥ 886 ॥

व. सामान्य चिंतयु विशेष चिंतयु ननंदगु संकल्प विकल्पंबुलं जेसि काम संभव मनंबडु। एदि यनिरुद्धाख्यंबैन व्यूहं बदिय हृषीकंबुलकु नधीश्वरंबै सकल योगींद्र सेव्यंबगुचु शरदिंदीवर श्यामंबै युंडु। बॅडियुं दैजसंबुवलन बुद्धि तत्त्वंबु पुट्टॅ। दानि लक्षणंबुलु द्रव्य प्रकाशंबैन ज्ञानंबुनु, निंद्रियानुग्रहंबुनु, संशयंबुनु, मिथ्या ज्ञानंबुनु, निद्रयु, निश्चयंबुनु, स्मृतियु ननं दगियुंडु। तैजसाहंकारंबु वलन ज्ञानेंद्रिय कर्मेंद्रियंबुलुनु, ग्रियाज्ञान साधनंबुलुनु गलिगियुंडु। प्राणंबुनकुं ग्रिया शक्तियु, बुद्धिकि ज्ञानशक्तियु नगुटं जेसि यिंद्रियंबुलकु दैजसत्त्वंबु गलिगियुंडु। भगवद्-भक्ति प्रेरितंबैन तामसाहंकारंबुवलन शब्दतन्मात्रंबु पुट्टॅ। दानिवलन नाकाशंबुनु, नाकाशंबुवलन श्रोत्रेंद्रियंबुनु बुट्टॅ। श्रोत्रंबु शब्द ग्राहि यय्यॅ। शब्दं बर्थंबुनकु नाश्रयंबै श्रोतकु ज्ञानजनकं बय्यॅ। मरियु नभस्तन्मात्रंबु सूक्ष्माकाशंबु। आ याकाशंबु भूतंबुलकु बाह्याभ्यंतरंबुल नवकाशं बिच्चुटयु, नात्म प्राणेंद्रियादुलकु नाश्रयं बगुटयु ननु लक्षणंबुलु गलिगि युंडु। कालगति चे विकारंबु नोंदु शब्दतन्मात्र लक्षणंबगु नभंबु

है। माता ! सुनो, घन विकार को प्राप्त विकार से मनस्तत्त्व क्रमशः उत्पन्न हुआ ! और विकार से, ८८६ [व.] सामान्य चिन्तन (और) विशेष चिन्तन कहे जानेवाले संकल्प, विकल्प के कारण काम सम्भव होता है। जो अनिरुद्ध नामक व्यूह है, वह हृषीकों के अधीश्वर हो, सकल योगीन्द्र से सेव्य होते हुए, शरत्काल के इन्दीवर (कुमुदिनी) के समान श्यामल हो रहता है। और तैजस से बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ। उसके लक्षण द्रव्यप्रकाशक ज्ञान, इन्द्रियों का अनुग्रह, संशय, मिथ्या ज्ञान, निद्रा, निश्चय और स्मृति कहलानेवाले होते हैं। तैजस से उत्पन्न अहंकार से ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, क्रियाज्ञान साधन होते हैं। प्राणों के लिए क्रियाशक्ति, बुद्धि के लिए ज्ञानशक्ति रहने के कारण इन्द्रियों को तैजसत्व होता है। भगवद्-भक्ति से प्रेरित होनेवाले तामसाहंकार से शब्दतन्मात्रा उत्पन्न हुई। उसके द्वारा आकाश, आकाश से श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुआ। श्रोत्र शब्द का ग्रहण करनेवाला हुआ। शब्द अर्थ के लिए आश्रय हो श्रोता को ज्ञानजनक हुआ। और नभतन्मात्रा सूक्ष्माकाश होता है। वह आकाशभूतों को बाह्य और आभ्यन्तर में अवकाश देनेवाले, आत्मा तथा प्राणेन्द्रियों के आश्रय होनेवाले लक्षणों से सम्पन्न होता है। कालगति में विकार पानेवाले शब्द तन्मात्रावाले

वलन स्पर्शंबुनु, स्पर्शंबु वलन वायुवुनु, वायुवुचे स्पर्शग्राहियै त्वगिंद्रियंबुनु बुट्टॆ। मृदुत्वंबु गठिनत्वंबु शैत्यंबु नुष्णत्वं बनु नवि स्पर्शंबुनकु स्पर्शत्वंबनि चॆप्पंबडु। मरियु वायुवुनकु जालनंबुनु, मेळनंबुनु, द्रव्यशब्द नेतृत्वंबुनु, सर्वेंद्रियात्मंबु ननुनवि लक्षणंबुलै युंडु। दैवप्रेरितंबैन स्पर्शतन्मात्र गुणकंबगु वायुवुवलन रूपंबुनु, दानिवलन तेजंबुनु बुट्टॆ। रूपंबु नेत्रेंद्रिय ग्राहकं बय्यॆ। द्रव्याकार समत्वंबुनु, द्रव्यंबुनकु नुपसर्जनं बगुटयु द्रव्यपरिमाण प्रतीतियु, निवि रूपवृत्तु लनंबडु। तैजसंबुनकु साधारणंबुलगु धर्मंबुलु द्योतनंबुन प्रकाशंबु, पचनंबन दंडुलादुल पाकंबु, पिपासा निमित्तंबैन पानंबु, क्षुन्निमित्तकंबैन यदनंबु, हिम मर्दनंबगु शोषणंबु ननु निवि वृत्तुलै युंडु। रूपतन्मात्रंबु वलन दैव चोदितंबै विकारंबु नॊंदु तेजस्सु वलन रस तन्मात्रंबु पुट्टॆ। रसतन्मात्रंबु वलन जलंबु पुट्टॆ। जिह्वयनु रसनेंद्रियंबु रस ग्राहकं बय्यॆ। आ रसं बेकंबै युंडियु भूत विकारंबुनं जेसि कषायतिक्त कट्वाम्ल मधुरादि भेदंबुल ननेकविधंबय्यॆ। वॆंडियु सांसर्गिक द्रव्य विकारंबुनं जेसि यार्द्रंबटगुयु, मुद्द गट्टुटयु, तृप्ति दातृत्वंबुनु, जीवनंबुन, दद्वैक्लव्य निवर्तनंबुनु, मृदूकरणंबुनुं, तापनिवारणं बनु, कूपगतंबैन जलंबु दिविय मरियु नुद्गमिचुटयु ननुनिवि जलवृत्तु लनंबडु। रसतन्मात्रंबु वलन दैवचोदितंबै विकारंबुनुं बॊंदिन जलंबुवलन

लक्षणों से [युक्त] आकाश से स्पर्श, स्पर्श से वायु, [वायु से स्पर्शग्राही हो] त्वगिंद्रिय उत्पन्न हुआ। मृदुता [कठिनता], शीतलता, उष्णता कहानेवाले [स्पर्श को स्पर्शत्व, ऐसा] कहा जाता है। और वायु के चलन, मेलन, द्रव्य शब्द का नेतृत्व, स्पर्शेन्द्रियात्मकता, कहानेवाले लक्षण होते हैं। दैवप्रेरित हो स्पर्शतन्मात्रा गुणवाले वायु से रूप (और) उससे तैजस उत्पन्न हुआ। रूप नेत्रेन्द्रिय के लिए ग्राह्य हुआ। द्रव्याकार की समता [तथा] द्रव्य के उपसर्जन (गुण) से द्रव्य परिमाण की प्रतीति ये रूपवृत्तियाँ कहलाती है [और] ये तैजस के लिए साधारण धर्म के द्योतक होने से प्रकट होते हैं। पचन से तण्डुलादि का पाक होता है, पिपासा निमित्त हो पानीय होते हैं, क्षुधा के निमित्त अदन (भोजन), हिम का मर्दन करनेवाले शोषण नामक ये वृत्तियाँ होती हैं। रूपतन्मात्रा से दैवचोदित हो विकार को पाकर तेज से रसतन्मात्रा उत्पन्न हुई। रसतन्मात्रा से जल उत्पन्न हुआ। जिह्वा नामक रसनेन्द्रिय रसग्राहक हुआ। वह रस एक होकर भी भूत-विचार के कारण कषाय, तिक्त, कटु, अम्ल, मधुर आदि भेदों से अनेक प्रकार का हुआ। और संसर्गिक द्रव्य के विचार के कारण आर्द्र होना, लड्डा बनाना, तृप्ति, दातृता, जीना, उसके वैक्लव्य का संचारण, मृदुकरण, ताप-निवारण, कूपगत जल को निकालना; और उद्गमित होना आदि जलवृत्तियाँ कहलाती हैं।

गंधतन्मात्रंबु पुट्टॅ। दानि बलनं बृथ्वियु गलिगॅ घ्राणंबु गंधग्राहकंबय्यॅ। अंदु नेकंबगु गंधंबु व्यंजनादिगतंबयि हिंग्वादि निमित्तंबॅन मिश्रगंधंबनु करंभंबुनु गृंजनादिगतंबॅन पूति गंधंबुनु, घनसारादि निमित्तंबॅन सुगंधंबुनु शतपत्रादि गतंबगु शांत गंधंबुनु, लशुनादि गतंबॅन युग्र गंधंबुनु, पर्युषित चित्रान्नादि गतंबॅन याम्ल गंधंबुनु, द्रव्यावयव वैषम्यंबुनं जेसि यनेक विधंबै युंडु। अदियुनुं गाक प्रतिमादि रूपंबुलं जेसि साकारतापादनंबगु भावनंबुनु, जलादि विलक्षण त्रयांतर निरपेक्षंबॅन स्थितियु, जलाद्या धारत यनु धारणंबुनु, नाकाशाद्यवच्छेदकत्वंबुनु, सकल प्राणि पुंस्त्वाभि-व्यक्तीकरणंबुननु निवि पृथ्वीवृत्तुलनंबडु। अनि चॅप्पि वॅंडियु निट्लनियॅ। नभोगुण विशेषंबु श्रोत्रंबुनु, वायुगुण विशेषंबु स्पर्शंबुनु, तेजोगुण विशेषंबु चक्षुरिंद्रियंबुनु, अंभोगुण विशेषंबु रसनेंद्रियंबुनु, भूमिगुण विशेषंबु घ्राणेंद्रियंबुनु नगु आकाशादि गुणंबु लगु शब्दादुलु कार्यंबुलगु वाय्वादुलंबु गारणान्वयंबुन जूपट्ट नन्निटिकि बृथ्वी संबंधंबु गलुगुटं जेसि भूमि यंदु शब्द स्पर्श रूप रस गंधंबुलु गलुगु महदादि पृथिव्यंतंबु लगु नी येडु तत्त्वंबुलु परस्परामिळितंबुलै भोगायतनंबगु पुरुषुनि गल्पिप नसमर्थंबु

रसतन्मात्रा के द्वारा दैवचोदित हो विकार को पाये हुए जल से गन्धतन्मात्रा उत्पन्न हुई। उससे पृथ्वी उत्पन्न हुई। घ्राण से गन्धतन्मात्रा उत्पन्न हुई। उसमें एक होनेवाला गन्ध व्यंजनादिगत हो हींग आदि निमित्त होनेवाले मिश्रगन्ध नामक करम्भ (दही से मिलाते हुए कीलों का आटा), गृञ्जन (विष खाये हुए पशु का मांस) आदिगत, पूतिगन्ध (दुर्गन्ध), घनसारादि के निमित्त बने हुए सुगन्ध शतपत्र (कमल) आदिगत हो, शान्तगन्ध, लशुनादिगत हो उग्रगन्ध, पर्युषित चित्रान्न आदिगत हो आम्लगन्ध, द्रव्यादि अवयव के वैषम्य के कारण साकारता के अपादान वाले भाव, जलादि विलक्षणत्रय के अन्तर से निरपेक्षित स्थिति [और] जलादि आधारता नामक धारण, आकाश आदि अवच्छेदकता, सकल प्राणियों के पुंसत्व का अभिव्यक्तीकरण नाम से ये पृथ्वी-वृत्तियाँ कहलाती हैं। ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। नभोगुण की विशिष्टता से श्रोत्र, वायुगुण की विशिष्टता से स्पर्श, तेजोगुण की विशिष्टता से चक्षुरिन्द्रिय, अम्भोगुण की विशिष्टता से रसनेन्द्रिय, भूमिगुण की विशिष्टता से घ्राणेन्द्रिय होते है, [और] आकाश आदि गुणवाले शब्दों के कार्य वायु आदि में कारण के अन्वय में देखने पर सबसे पृथ्वी का सम्बन्ध होने के कारण भूमि में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, हो जाते हैं। महदादि से पृथ्वी तक के ये सात तत्त्व परस्पर अमिलित हो, भोगायतन होनेवाले पुरुष की कल्पना करने में असमर्थ होते देखकर काल के अदृष्ट सत्त्वादियों के साथ मिलकर जगत्कारण वाले, त्रैगुण्य

लै युन्नं जूचि कालादृष्ट सत्त्वादुलं गूडि जगत्कारणुंडुनु, त्रैगुण्य विशिष्टुंडुनु, नशेष नियामकुंडुनु, निरंजनाकरुंडुनु, नगु सर्वेश्वरुंडंबु प्रवेशिप नंत नन्योन्य क्षुभितंबुलै मिळितंबुलै महदादुल वलन नधिष्ठातृ चेतनरहितं बगु नॊक्क यंडंबु वुट्टॆ । अंदु ॥ 887 ॥

सी. गुरु शक्तितो विराट्पुरुषुंडु प्रभविंचॆ नट्टि विशेषांड मर्थि बॊदिवि
यंबु मुखावरणंबु लॊक्कॊकटिकि दश गुणितंबुलै तगिलि याव
रणमुलै युंडुनु ग्रममुन लोकंबुलकु मेलुकट्ल पोलिक दनर्चि
पंकजोदरुनि रूपमु विलसिचुनु लोलत जलमुलो देलुचुन्न

ते. हेममय मैन यंडंबुलो महानु-
भावु डभवुंडु हरि देव देवु डखिल
जेत नारायणुडु प्रवेशिंचि यपुडु,
विष्णुपद भेदनंबु गाविंचि यंदु ॥ 888 ॥

सी. कर मॊप्पगा विराट्पुरुषुंडु वॆलुगॊंदु ना विराट्पुरुषुनि याननंबु
वलननु वाणियु, वाणितो वह्नियु, नासंबु वलन ब्राणमुल गूडि
घ्राणेंद्रियंबय्यॆ घ्राणंबु वलननु वायुवुलुनु, प्राण वायुवुलुनु,
नंदु नक्षुलु, चक्षुवंदु सूर्युंडुनु, नंदभिध्यानंबु नर्थि जेय

ते. गर्णमुलु जात मय्यॆ, दत्कर्णसमिति
वलन श्रोत्रेंद्रियंबु दिक्कुलुनु गलिगॆ,
द्वक्कु चे श्मश्रु रोम वितानकमुलु,
नोषधी व्रातमुनु भव मॊंदॆ मरियु ॥ 889 ॥

विशिष्ट (रूप) वाले, अशेष नियामक, निरंजन आकारवाले सर्वेश्वर के उसमें प्रवेश करने पर, तव अन्योन्य (परस्पर) क्षुभित हो मिलकर, महदादियों के कारण अधिष्ठाता हो चेतनरहित एक अण्डा उत्पन्न हुआ। उसमें, ८८७ [सी.] [उस विशेष अण्डे से] क्रमशः महान शक्ति के साथ विराट्पुरुष उत्पन्न हुआ। अम्बुमुख (कमलमुख) वाले के आवरण से एक-एक कर दस गुना बढ़कर आवरण वन गये। क्रमशः लोकों के लिए सीढ़ियाँ बनीं। इस प्रकार पंकजोदर (विष्णु) का रूप जल में लोलित होते हुए दिखाई पड़ा। [ते.] हेममय उस अण्डे में महानुभाव हरि, देवदेव अखिल के जेता नारायण ने प्रवेश कर विष्णुपद को भेदित करने पर, उसमें, ८८८ [सी.] सुन्दर रीति से ज्योतित होनेवाले विराट्पुरुष के मुख से वाणी, वाणी से वह्नि (अग्नि); नासा से प्राणों के साथ घ्राणेन्द्रिय बन गया, घ्राण से वायुएँ, प्राणवायुएँ, उसमें आँखें, आँखों में सूर्य, उसमें चाहकर अभिध्यान करने पर, [ते.] कर्णजात बन गये, उस कर्ण-समिति से श्रोत्रेन्द्रिय दिशाएँ बनी। त्वक् से मूँछें, रोम-वितानक (-समूह),

ते. दानि वलननु मेढ्रंबु गानबडियें, वरग रेतंबुवलन नापंबु पुट्टॆ
गुदमुवलन नपानंबु नुदयमय्यॆ, दानि वलननु मृत्युवु दग जनिचॆ ॥890॥

कं. करमुल वलननु बलमुनु, निरवुग ना रॆंटिवलन निंद्रुडु, पाशं-
बुरुहंबु वलन गतियु, नरुदुग ना रॆंटिवलन हरियुनु गलिगॆन् ॥ 891 ॥

कं. घन नाडी पुंजमु वल, ननु रक्तमु दानि वलन नदुलुनु जठरं
बुन नाकलियुनु दप्पियु ननयमु ना रॆंटिवलन नब्धुलु बुट्टॆन् ॥ 892 ॥

कं. विनु हृदयमु वलननु मन-
मुनु मनमुन दुहिनकरुडु बुद्धियु जित्तं
बुन ब्रह्मयु क्षेत्रज्ञुं-
डुनु गलिगिरि यव्विराजुडुन् बूरुषतन् ॥ 893 ॥

*ते. मऱियु जॆप्पॆद निदु मीद मात ! विनुमु,
दविलि चित्तमुनंदु क्षेत्रज्ञु डनॆडि
चारु नामंबुनं दवतार मय्यॆ,
सरवि तोडुत नव्विराट्पुरुषु वलन ! ॥ 893 (अ) ॥

व. मऱियु विराट्पुरुषुनं दुदयिंचिन व्यष्टिरूपंबुलगु नाकाशादि भूतंबुलुनु, शब्दंबु मोदलगु भूत तन्मात्रंबुलुनु, वागादींद्रिय जातंबुनु तदधिदैवतलुनु दमंतन समष्टिरूपंडगु क्षेत्रज्ञुं ब्रवृत्ति प्रवर्तकुं जेय नसमर्थंबु लय्यॆ।

ओषधि-व्रात (-गण) उत्पन्न हुए। ८८९ [ते.] उससे मेढ्र दिखाई पड़ा। क्रमशः रेतस से अप् (जल) उत्पन्न हुआ, गुदा से अपान उदित हुआ। उससे मृत्यु पैदा हुई। ८९० [कं.] करों से बल, (तथा) उन दोनों से इन्द्र स्थिर हुआ। चरण-कमलों से गति, उन दोनों से हरि उत्पन्न हुए। ८९१ [कं.] घन नाड़ीपुंज से रक्त, उससे नदियाँ [और] जठर से भूख, प्यास क्रमशः उन दोनों से सागर उत्पन्न हुए। ८९२ [कं.] सुनो ! हृदय से मन, मन से तुहिनकर (हिमकर, चद्र), बुद्धि [और] चित्त से ब्रह्मा और क्षेत्रज्ञ और विराट् पौरुष के साथ उत्पन्न हुए। ८९३ * [ते.] माता ! और भी सुनाता हूँ ! सुनो ! चित्त लगाकर क्षेत्रज्ञ कहलानेवाला सुन्दर नाम से उस विराट्पुरुष से क्रमशः अवतरित हुआ। ८९३ (अ) [व.] और विराट्पुरुष में उदित हो व्यष्टिरूप वाले आकाशादि भूत, शब्दादि भूत तन्मात्राएँ, वागादि इन्द्रियजाल, उसके अधिदेवता, अपने-आप समष्टिरूप वाले, क्षेत्रज्ञ को प्रवृत्तिपरक करने में असमर्थ हुए। वह किस प्रकार हुआ ? [यदि पूछ लें] तो देवादि से अधिष्ठित हो इन्द्रिय स्वयं अलग-अलग उस ईश्वर को

---

* यह पद्य एक प्रति में अधिक लिखा प्राप्त होता है।

एट्लनिन देवाधिष्ठतंबुलगु निद्रियंबुलु तामु वेव्वेरु यय्यीश्वरुं प्रवृत्त्युन्मुखुं जेय नोपक क्रमंबुनं दत्तदधिष्ठनादुल नोंदॆ। अंदु नग्नि वागिंद्रियंबुतोड मुखंबु नोंदि प्रवर्तिचिन विराट्कार्यंबगु व्यष्टि शरीरजातं बनुत्पन्नं बय्यॆ। अंत नासयु घ्राणेंद्रियंबु तोड वायुवुं गूडिन नट्ल व यय्यॆ। आदित्युंडु चक्षुरिंद्रियमुतोड नेत्रंबुल नोंदिन वृथाभूतं बय्यॆ। दिग्देवताकंबगु कर्णंबुलु श्रोत्रेंद्रियंबुतो गूडिन विराट्कार्य प्रेरणा योग्यं बय्यॆ। ओषधुलु रोमंबुलं द्वगिंद्रियंबु जॆंद विफलंबय्यॆ। अब्दैवंबगु मेढ्रंबु रेतंबु नोंदिन दत्कार्य करणादक्षं बय्यॆ। पवंपडि गुदंबु मृत्युवु तोड नपानेंद्रियंबु जेरिन नदि हैन्यंबु नोंदॆ। विष्णु देवताकंबुलगु चरणंबुलु गतितो गूडिन ननीश्वरंबु लय्यॆ। पाणींद्रियंबु लिंद्रदैवंबु लगुचु बलंबु नोंदिन शक्ति हीनंबु लय्यॆ। मरियु नाडुलु ननदीकंबुलं लोहितंबु नोंदिन निरर्थकंबु लय्यॆ। उदरंबु सिंधुवुल तोडं जेसि क्षुत्पिपासलं बोंदिन व्यर्थं बय्यॆ। हृदयंबु मनंबुतोडं जंद्रु नोंदिन नूरक युंडॆ। बुद्धि ब्रह्माधिदैवं बयि हृदयंबु नोंदिन निष्फलं बय्यॆ। चित्तं बभिमानंबुतो रुद्रुनि जॆंदिन विराट्कार्यजातं बनुद्भूतं बय्यॆ। अंतं जेत्त्युडगु क्षेत्रज्ञुंडु हृदयाधिष्ठानंबु नोंदि चित्तंबुतोडं ब्रवेशिचिन विराट्पुरुषुंडु सलिल कार्यभूत

प्रवृत्ति की ओर उन्मुख करने में असमर्थ हो क्रमशः उन-उन अधिष्ठानादि को प्राप्त हुए। उसमें अग्नि वागिन्द्रिय के साथ मिलकर, प्रवर्तित होने पर विराट्कार्य होनेवाले व्यष्टिशरीरगण अनुत्पन्न हुए। तव नासा तथा घ्राणेन्द्रिय के साथ वायु के मिलने पर वैसा ही हुआ। आदित्य चक्षुरिन्द्रिय से नेत्रों को प्राप्त हो वृथाभूत हुआ। दिग्देवतागण वाले कर्ण श्रोत्रेन्द्रिय से मिलकर विराट्कार्य की प्रेरणा देने में अयोग्य हुए। ओषधियाँ रोमों में त्वगिन्द्रिय को प्राप्त हो विफल हुईं। अप् (जल) के देवता मेढ्र रेतस को प्राप्त हो उस कार्य के करने में अदक्ष हुआ। और गुदा मृत्यु के साथ अपानेन्द्रिय को प्राप्त होने पर वह हीन हुआ। विष्णुदेवता वाले चरणगति से मिलकर अनीश्वर हुए। पाणीन्द्रिय इन्द्रदेवता वाले हो वल को प्राप्त हो शक्तिहीन हुए। और नाड़ियाँ नदी वाले हो लोहित (रक्त) को प्राप्त हो निरर्थक हुईं। उदर (पेट) सिन्धुओं के साथ मिलकर भूख, प्यास को प्राप्त हो व्यर्थ हुआ। हृदय मन के साथ चन्द्र को प्राप्त हो चुप हुआ। बुद्धि ब्रह्मादि देवतावाली हो हृदय को प्राप्त होने पर निष्फल हुआ। अभिमान के साथ चित्त रुद्र को प्राप्त हो विराट्कार्यजात अनुद्भूत हुआ। तव चेतनावाले हो क्षेत्रज्ञ हृदयाधिष्ठान को प्राप्त हो चित्त के साथ प्रविष्ट होनेवाले विराट्पुरुष ने सलिलकार्यभूत ब्रह्माण्ड को प्राप्त हो प्रवृत्ति में उन्मुख होने में क्षमता पा ली। सुप्त हुए पुरुष के प्राणादि अपने वल से भगवान से अप्रेरित होते हुए उत्थापन

ब्रह्मांडंबु नीदि प्रवृत्युन्मुखक्षमुंडय्यें। सुप्तुंडगु बुरुषुनि ब्राणादुलु वम बलंबुचे भगवदप्रेरितंबु लगुचु नुत्थापना समर्थंबुलगु चंबंबुन नग्न्यादुलु स्वाधिष्ठानभूतंबु लगु निद्रियंबुललोड देवादि शरीरंबुल नोंदियु नशक्तंबु लय्यें अनि मरियु नव्विराट्पुरुषुनि ननवरत भक्तिं जेसि विरक्तुलै यात्मलयंदु विवेकंबु गल महात्मुलु चिंतिपुदु रनियु ब्रकृति पुरुष विवेकंबुन मोक्षंबुनु, प्रकृति संबंधंबुन संसारंबुन गलुगु ननियु जेप्पि मरियु निट्लनियें ॥ 894 ॥

अध्यायमु—२७

सी. जननुत ! सत्त्व रज स्तमोगुण मयमैन प्रकृति कार्य मगु शरीर
गतुडय्यु बुरुषुंडु गणगि प्राकृतमुलु नगुसुखदुःख मोहमुल वलन
गर मनुरक्तुंडु गाडु त्रिकारविहीनुडु द्रिगुण रहितुडु नगुचु
बलसि निर्मल जल प्रतिबिंबितुंडैन दिनकरु भंगि वर्तिचु नट्टि

ते. यात्म प्रकृति गुणंबुलयंदु दगुलु-
वडि यहंकार मूढुलै तोंडरि येनु
गणगि निखिलंबुनकु नेल्ल कर्तननि प्र-
संगवशतनु ब्रकृति दोषमुल बोंदि ॥ 895 ॥

में असमर्थ होनेवाले की रीति अग्नि-स्वाधिष्ठानभूत होनेवाले इन्द्रियों के साथ देवादि शरीरों को प्राप्त होकर भी अशक्त हुए, ऐसा और उस विराट्पुरुष की अनवरत (निरन्तर) भक्ति के कारण विरक्त हो आत्मा में विवेक रखनेवाले महात्मा लोग चिन्तन करते रहते हैं [और] प्रकृति-पुरुष के विवेक से मोक्ष [तथा] प्रकृति के सम्बन्ध के कारण संसार सम्भव होता है, ऐसा कहकर और [आगे] इस प्रकार कहा। ८९४

अध्याय—२७

[सी.] लोगों से स्तुत्य ! सत्त्व, रजस, तमोगुणमय प्रकृति के कार्य-रूप शरीरगत होते हुए भी, पुरुष प्रयत्न से प्राकृत सुख-दुःख-मोह में अधिक अनुरक्त न होकर, विकारविहीन, त्रिगुण-रहित होते हुए बलशाली हो, निर्मल जल में प्रतिबिम्बित होनेवाले दिनकर की भाँति प्रवर्तित होते हुए, [ते.] आत्मा प्राकृतिक गुणों मे लगकर अहंकार से विमूढ़ हो निखिल जगतों के लिए कर्ता समझकर, प्रसंगवश प्राकृतिक दोषों को प्राप्त हो, ८९५ [कं.] वह सुर, तिर्यक्, मनुष्य, स्थावर रूपवाले हो कर्मवासना के अनुरूप मिश्रयोनियों में क्रमगति से जन्म लेते

कं. सुर तिर्यङ्मनुज स्था, वररूपमु लगुचु गर्भवासन चेतन्
वरपैन मिश्रयोनुल, दिरमुग जनियिंचि संसृति गैकोनि तान् ॥ 896 ॥

कं. पूनि चरिंपुचु विषय, ध्यानंबुन जेसि स्वाप्निकार्थागम सं-
धानमु रीति नसत्पथ, मानसु डगुचुन् भ्रमिंचु मतिलोलुंडै ॥ 897 ॥

व. अट्लु गावुन ॥ 898 ॥

ते. पूनि मोक्षार्थि यगु वाडु दीनि तीव्र-
भक्ति योगवु चेत विरक्ति वोंदि
मनमु वशमुग जेसि यमनियमादि-
योगमार्ग क्रियाभ्यास युक्ति जेसि ॥ 899 ॥

सी. श्रद्धा गरिष्ठुडै सत्यमैनट्टि मद्भावंबु मत्पादसेवनंबु
वर्णित मत्कथाकर्णनंबुनु सर्वभूत समत्व मजात वैर
मुनु ब्रह्मचर्यंबु धनमौन मादिगा गल निज धर्म संगतुल जेसि
संतुष्टुडुनु मिताशनुडु नेकांतियु मननशीलुडु वीत मत्सरुंडु

ते. नगुचु मित्रत्वमुन गृप दगिलि यात्म
कलित विज्ञानियै बंधकंबुलैन
घन शरीर परिग्रहोत्कंठयंदु-
नाग्रहमु चेसि वर्तिपनगुनु मरियु ॥ 900 ॥

व. जीवेश्वर तत्त्व ज्ञानंबुनं जेसि निवृत्तं बैन बुद्धि तदवस्थानंबुनुं गलिगि,

---

हुए संसृति कार्य को लेकर, ८९६ [कं.] निश्चित रूप से संचार करते हुए, विषय का ध्यान करते हुए स्वाप्निक, अर्थागम के संधान करने की रीति असत्पथ मानसवाले हो चंचल मति से भ्रमित होता है। ८९७ [व.] इसलिए ही तो, ८९८ [ते.] मोक्षार्थी होनेवाले निश्चित रूप से तीव्र भक्तियोग के कारण विरक्त हो मन को वश में कर यम, नियम आदि योगमार्ग की क्रियाओं में अभ्यास की युक्ति के कारण, ८९९ [सी.] श्रद्धागरिष्ठ हो सत्यस्वरूप मेरी भावना (ध्यान) कर मेरे चरणों की सेवा कर, मेरी कथा का वर्णन [तथा] आकर्णन (श्रवण) कर, सर्वभूतों को समन्वित करनेवाले अजातवैर-भाव (निर्वैर बुद्धि), तथा ब्रह्मचर्य को घनमौन-भाव आदि के साथ धर्मसंगति कर सन्तुष्ट हो मित भोजन करते हुए, एकान्तवासी, मननशील, मत्सर से दूर होते हुए, [ते.] मित्रता के कारण कृपाभाव को धारण कर आत्मा में उत्पन्न ज्ञान को लेकर बन्धनस्वरूप घन शरीर के परिग्रहण करने के लिए उत्कण्ठित हो उसके लिए आग्रह करते हुए व्यवहार करता रहेगा, और, ९०० [व.] जीव-ईश्वर के तत्त्वज्ञान के कारण निवृत्त बुद्धि के उस स्थिति को प्राप्त हो, इतर दर्शनों को दूरीभूत करनेवाला हो, जीवात्मा ज्ञान के कारण

दूरीभूतेतर दर्शनुंडै जीवात्म ज्ञानंबुनं जेसि चक्षुरिंद्रियंबुन सूर्युनि दर्शिचु चंदंबुन नात्म नायकुंडैन श्रीमन्नारायणुनि दर्शिचि, निरुपाधिकंबै मिथ्याभूतंबगु नहंकारंबुन सद्रूपंबुचे प्रकाशमानं बगुचु, प्रधान कारणंबुनकु नधिष्ठानंबुनु, गार्यंबुनकु जक्षुवुनुं बोलि, प्रकाशकंबुनु, समस्त कार्यकरणानुस्यूतंबुनकु बरिपूर्णंबुनु, सर्वव्यापंबुनुनगु ब्रह्मंबु बोंदुनिनि चॅप्पि वॅंडियु निट्लनियॆ ।। 901

सी. विनुमात्मवेत्तकु विष्णुस्वरूपंबु नॆरुगंगबड्डु नदि यॆट्लटन्न
गगनस्थुडगु दिनकरु किरणच्छाय जलमुल गृहकुड्य जालकमुल
वलन दोचिन प्रतिफलितंबु चेत नूहिपंग बडिन यय्यिनुपगिदि
नथि मनो बुद्ध्यहंकार त्रितय नाडी प्रकाशमु चेत लील नॆरुग

ते. वच्चु नात्मस्वरूपंबु वलति गाग,
जित्तमुन दोचु नंचितश्री दनर्चि
यम्महामूर्ति सर्वभूतांतरात्मु-
डगुट नात्मज्ञुलकु गाननगुनु मरियु ।। 902 ।।

व. जीवुंडु सुषुप्त्याद्यवस्थलयंदु बरमात्मानुषक्तुंडैन भूतादि तत्त्वबुलु लीनंबुलै प्रकृतियंदु वासनामात्रंबु गलिगि यकार्य कारणंबुलु गाकुन्न सुषुप्ति समयंबुनं दा निस्तंद्रुंडगुचु नितरंबु चेत गप्पंबडनि वाडै परमात्मानुभवंबु सेयुचुंडु। अनि चॅप्पिन विनि देवहूति यिट्लनियॆं ।। 903 ।।

चक्षुरिन्द्रिय से सूर्य के दर्शन करने की रीति, आत्मनायक श्रीमन्नारायण के दर्शन कर, निरुपाधिक हो, मिथ्याभूत बने अहंकार से, सद्रूप से प्रकाशमान होते हुए, प्रधान कारण के लिए अधिष्ठान और कार्य के लिए चक्षु की रीति, प्रकाशमान हो, समस्त कार्यकारण के अनुस्यूत होने के लिए परिपूर्ण, सर्वव्यापक ब्रह्म को प्राप्त होगा, इस प्रकार कहा । ९०१ [सी.] सुनो ! आत्मविद् को विष्णुस्वरूप विदित होता है, वह कैसा है; यदि पूछो तो गगनस्थ दिनकर की किरणों के छायाजल में, गृहकुड्यजाल में, प्रतीत हो, प्रतिफलित होकर कल्पित होने की रीति, उस इन (सूर्य) की भाँति मन, बुद्धि, अहंकार त्रितय-नाड़ी के प्रकाश से लीला में जान सकते हैं। [ते.] आत्मस्वरूप के अतिरिक्त चित्त में सूझनेवाले अंचित (पूज्य) श्री से विलसित हो, उस महामूर्ति के सर्वभूतान्तरात्मा होने के कारण आत्मज्ञों को दर्शन देता है। और, ९०२ [व.] जीव सुषुप्ति आदि स्थितियों में परमात्मा में अनुषक्त हो, भूतादि तत्त्वों में लीन हो, प्रकृति में वासना मात्र को रखते हुए अकार्य कारण न होते हुए, सुषुप्ति समय में वह निस्तन्द्र हो, अन्य से आच्छादित न होकर, परमात्मा का

सी. विमलात्म ! यी पृथिविकिनि गंधमुनकु सलिलंबुनकुनु रसंबुनकुनु
नन्योन्यमगु नविनाभाव संबंधमैन संगति बक्कृत्यात्मलकुनु
सततंबु नन्योन्य संबंधमै युंडु ब्रकृति दानय्यात्म बायु टॅट्लु ?
तलपोय नीक माटु तत्त्वबोधमुचेत भवभयंबुल नॅल्ल बायु टॅट्लु ?

ते. चच्चि क्रम्मर बुट्टनि जाड येदि ?
यिन्नियु दॅलिय नानति यिच्चि नन्नु
गरुण रक्षिपवे ! देवगण सुसेव्य !
भक्तलोकानु गंतव्य ! परमपुरुष ! ॥ 904 ॥

व. अनिन भगवंतुं डिट्लनियॆ। अनिमित्तंबैन स्वधर्मंबुननु, निर्मलांतःकरणंबुननु, सुनिशितंबैन मद्भक्ति योगंबुननु, सत्कथाश्रवण संपादितंबैन वैराग्यंबुननु दृष्ट प्रकृति पुरुष याथात्म्यंबगु ज्ञानंबुन बलिष्ठं बयि कामानभिष्वंगंबगु विरक्ति वलन दपोयुक्तंबैन योगंबुननु सुतीव्रंबैन चित्तैकाग्रतनुं जेसि पुरुषुनि दगु प्रकृति दंदह्यमानंबै तिरोधानंबुनु बॊंदु। अदि यॆट्लनिन नरणि गतंबैन वह्निचे नरणि दहिपंबडु चंबंबुन, ज्ञानंबुनं दत्त्वदर्शनंबुनं जेसि निरंतरंबु दृष्ट दोषयगु प्रकृति जीवुनि चेत भुक्तभोगयै विडुवंबडु ननि चॆप्पि ॥ 905 ॥

कं. विनु प्रकृति नैज महिमं, बुन दनलो नुन्नयट्टि पुरुषुनकु महे
शुनकु नशुभ विस्फुरणं, बनयमु गाविप जाल ददि यॆट्लनिन् ॥ 906 ॥

अनुभव करते रहता है। ऐसा कहने पर, सुनकर, देवहूति ने इस प्रकार कहा। ९०३ [सी.] विमलात्मा ! इस पृथ्वी और गन्ध में सलिल और रस में, परस्पर अविनाभाव-सम्बन्ध की संगति है, वैसी ही प्रकृति और आत्माओं में सदा अन्योन्य सम्बन्ध होता है। [तब] प्रकृति उस आत्मा से अलग कैसे होती है ? इस चिंतन से तत्त्वबोधित होने से भवभय से कैसे छूट सकते हैं ? [ते.] मरकर फिर से जन्म न लेने का ज्ञान क्या है ? इन सबको विदित करते हुए आज्ञा देकर मेरी रक्षा करो। हे देवगण से सुसेव्य ! भक्तलोक के अनुगन्तव्य ! हे परमपुरुष ! ९०४ [व.] कहने पर भगवान ने इस प्रकार कहा। अनिमित्त हो स्वधर्म से, निर्मल अन्तःकरण से, सुनिशित भक्तियोग से, सत्कथाश्रवण से संपादित वैराग्य दृष्टिगत होनेवाले प्रकृति और पुरुष के ज्ञान से बलिष्ठ हो काम से अलिप्त विरक्ति से तपोयुक्त योग से, सुतीव्र चित्त की एकाग्रता से पुरुष के योग्य प्रकृति दन्दह्यमान हो तिरोधान को प्राप्त होता है। वह कैसा होता है ? यदि पूछो तो अरणिगत अग्नि से अरणि के जल जाने की रीति, ज्ञान से तत्त्वदर्शन के कारण निरन्तर दृष्टि-दोष वाली हो प्रकृति जीव से भुक्तभोगी हो, तजी जाती है, ऐसा कहकर, ९०५

चं. पुरुषुडु निद्रवो गलल बोंदु ननर्थकमुल् प्रबोधमं
दरयग मिथ्यलै पुरुषुनंदु घटिंपनि कैवडिन् बरे
श्वरुनकु नात्मनाथुनकु सर्व शरीरिक गर्मसाक्षिकिन्
बरुवडि बोंद वेन्नटिकि ब्राकृत दोषमु लंगनामणी ! ।। 907 ।।

व. अनि वेंडियु निट्लनियें ।। 908 ।।

सी. अध्यात्मतत्परुं डगुवाडु पेक्कु जन्मंबुल बेक्कु कालंबुलंदु
ब्रह्मपद प्राप्ति पर्यंतमुनु बुट्टु सर्वार्थ वैराग्य शालि यगुचु
बूनि ना भक्तुलचे नुपदेशिंप बडिन विज्ञान संपत्ति चेत
बरग ब्रबुद्धुडै बहु वारमुलु भूरि मत्प्रसाद प्राप्ति मति दनर्चु

ते. निज परिज्ञान विच्छिन्न निखिल संश-
युंडु निर्मुक्त लिंगदेहुंडु नगुचु
ननघ ! योगींद्र हृद्गेय मगु मदीय-
दिव्य धामंबु नोंदु संदीप्तु डगुचु ।। 909 ।।

व. मरियु नणिमा द्यष्टैश्वर्यंबुलु मोक्षंबुन कंतरायंबुलु गावुन वानियंदु विगतसंगुंडुनु, मदीय चरणसरोज स्थित ललितांतरंगुंडुनु नगुवाडु मृत्यु देवत नपहसिंचि मोक्षंबु नोंदु। अनि चेप्पि वेंडियु योग लक्षण

[कं.] [आगे कहा] सुनो ! प्रकृति की सहज महिमा से अपने में स्थित पुरुष को, महेश को, अशुभ का विस्फुरण अवश्य नहीं कर सकती ! वह कैसा होता है, पूछने पर, ९०६ [चं.] अंगनामणी ! पुरुष (जीव) के सो जाने पर सपने में प्राप्त अनर्थ प्रबुद्ध होने पर सोचने पर, मिथ्या हो, पुरुष में घटित न होने की रीति परमेश्वर को, आत्मानाथ को, सर्व शरीरी को, कर्मसाक्षी को क्रमशः कभी प्राकृत दोष प्राप्त नही होते। ९०७ [व.] ऐसा कहकर और [आगे] इस प्रकार कहा। ९०८ [सी.] अनघ ! अध्यात्म तत्पर होनेवाला अनेक जन्मों में, अनेक कालों में, ब्रह्मपद की प्राप्ति तक जन्म लेता रहता है [और] सर्वार्थ से वैराग्यशाली होते हुए, प्रतिज्ञा कर, भक्तों से उपदिष्ट हो, विज्ञान की सम्पदा से क्रमशः प्रबृद्ध हो, अनेक दिन मेरे प्रसाद से अत्यधिक बुद्धि को प्राप्त हो विलसित होता है। [ते.] वह अपने परिज्ञान से विच्छिन्न हो, सम्पूर्ण संशयों से मुक्त होकर, लिंगदेह को धारण कर, योगीन्द्र जन से गेय होनेवाले मेरे दिव्यधाम को प्राप्त होता है, [और] सन्दीप्त हो, ९०९ [व.] और अणिमादि अष्ट ऐश्वर्य मोक्षप्राप्ति में बाधक होते है इसलिए उनमें विगतसंग होकर, मेरे चरण-कमल को ललित अन्तरंग में स्थापित कर लेनेवाले मृत्युदेवता को अपहसित कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ऐसा कहकर

प्रकारंबु विनिर्पितु विनु मनि भगवंतुंडैन कपिलुंडु नृपात्मज किट्लनियॅ ॥ 910 ॥

अध्यायमु—२८

कं. धीनिधु ले योग वि, धानंबुन जेसि मनमु तग विमलंबै
मानित मगु मत्पदमुं, बूनुदुरा योगधर्ममुल नॅरिंगितुन् ॥ 911 ॥

व. अदि यॅट्लनिन शक्तिकॉलदि स्वधर्माचरणंबुनु, शास्त्राचारंबुल विनिषिद्धि कर्मंबुलु मानुटयुनु, दैविकंबै वच्चिन यर्थंमुवलन संतोषिंचुटयुनु, महाभागवत पादारविंदार्चनंबुनु, ग्राम्यधर्म निवृत्तियुनु, मोक्षधर्मंबुलयंदु रतियुनु, मितंबै शुद्धंबैन याहार सेवयुनु, विजनंबै निर्बाधकंबैन स्थानंबुन नुंडुटयु, हिंसा राहित्यंबुनु, सत्यंबु, नस्तेयंबु. दन कॅंत यर्थंबुपयोगिंचु नंत यर्थंब स्वीकरिंचुटयु, ब्रह्मचर्यंबुनु, दपश्शौचंबुलुन, स्वाध्याय पठनंबुनु, बरम पुरुषुंडैन सर्वेश्वरुनि यर्चनंबुनु, मौनंबुनु, आसन जयंबुनं जेसि स्थैर्यंबुनु, प्राणवायु स्ववशीकरणंबुनु, निंद्रिय निग्रहरूपंबैन प्रत्याहारंबुनु, मनंबुचे निंद्रियंबुल विषयंबुलवलन मरलिंचि हृदयमंदु निलुपुट्युनु देहगतंबैन मूलाधारादि स्थानंबुलले नॉक्कस्थानंबनंदु हृदय

और योगलक्षणों के प्रकार को सुना देता हूँ, सुनो ! ऐसा कहकर भगवान् कपिल ने नृपात्मजा से इस प्रकार कहा । ९१०

अध्याय—२८

[कं.] धीनिधि [वाले व्यक्ति] जिस योगविधान से [अपने] मन को समुचित रूप से विमल बनाकर, मेरे मान्य पद को प्राप्त करते हैं, उन योगधर्मों को विदित करता हूँ । ९११ [व.] वह कैसा है ? [यदि पूछो तो] यथाशक्ति स्वधर्माचरण और शास्त्राचार से विनिषिद्ध कर्म न करना और दैवयोग से प्राप्त अर्थ से सन्तुष्ट होना और महा भागवतों (भक्तों) के चरण-कमलों की अर्चना और ग्राम्य धर्म से निवृत्त होना और मोक्षधर्मों में रति (आसक्ति) और मित एवं शुद्ध आहार लेना और विजन एवं निर्बाधक (जहाँ कोई बाधा न हो), स्थान में निवास करना और हिंसा का राहित्य और सत्य, अस्तेय को धारण कर, अपने लिए जितने धन की आवश्यकता हो, उतना ही स्वीकार करना और ब्रह्मचर्य, तपस्या, शौच, स्वाध्याय पठन और परमपुरुष सर्वेश्वर की अर्चना करना और मौन धारण कर आसन-जय के कारण स्थैर्य को धारण करना और प्राणवायु को अपने वश में करना और इन्द्रिय-निग्रह रूपी प्रत्याहार [और मन से इन्द्रियों को विषयों से हटाकर, हृदय में स्थापित करना] और देहगत

गतंबैन मनस्सु तोडं गूड प्राण धारणंबुनु, वैकुंठुंडैन सर्वेश्वरुंडु प्रवर्तिचिन दिव्यलीलाचरित्र ध्यानंबुनु, मानसैकाग्रीकरणंबुनु, परमात्म यगु पद्मनाभुनि समानाकारतयनु समाधानंबुनु, निवियुनं गाक तक्किन व्रतदानादुलं जेसि मनोदुष्टंबैन यसन्मार्गंबुनु बरिहरिंचि, जितप्राणुंडै मॅल्लन योजिंचि, शुचियैन देशंबुनं ब्रतिष्ठिंचि, विजितासनुंडै यभ्यस्त कुशाजिन चेलोत्तरासनंबैन यासनंबु सेसि, ऋजुकायुंडै प्राणमार्गंबुनु गुंभक रेचक पूरकंबुलं गोश शोधनंबु चेसि, कुंभकपूरकंबुल चेतं ब्रतिकूलंबु गाविंचि, चंचलंबैन चित्तंबु सुस्थिरंबु गाविंचि, तीव्रंबैन यमंबुनं ब्रतप्तंबै विगत समस्तदोषंबगु चामीकरंबु करणि विरजंबु चेसि, जित मारुतुंडगु योगिकि ग्रम्मरं ब्राणायामंबुलनु पावकुनि चेत वात पैत्य श्लेष्मंबुलनु दोषंबुल भस्मीकरणंबु चेसि, धारणंबुल चेत गिल्बिषंबुलुनु, व्रत्याहारबु चेत संसर्गंबुलनु दहनंबु चेसि, ध्यानंबु चेत रागंबुल सत्त्वादि गुणंबुलनु निवारिंचि, स्वनासाग्रावलोकनंबु चेयुचु ॥ 912 ॥

सी. दरदरविंद सुंदर पत्र रुचिराक्षु सललित श्री वत्सकलित वक्षु
नील नीरद नील नीलोत्पल श्यामु नळिकुलाकुल मालिकाभिरामु

होनेवाले मूलाधारादि स्थानों में एक स्थान में हृदयगत मन के साथ प्राण धारण और वैकुण्ठवासी सर्वेश्वर के द्वारा आचरण किए दिव्य लीला के चरित्र का ध्यान करना, और मानस को एकाग्र करना और परमात्मा पद्मनाभ के समान आकार धारण, समाधान और इनके अतिरिक्त अन्य व्रतदानादि के कारण मनोदुष्ट होनेवाले असत् मार्गों को हटाकर, प्राणों को जीतकर, धीरे से योजना (विचार) कर, शुचिप्रदेश में प्रतिष्ठित होकर, विजित-आसन वाले हो, अभ्यास से कुशाजिन-वस्त्रों से युक्त आसन में स्थित होकर, ऋजु शरीर वाले हो, प्राणमार्ग से कुम्भक, रेचक, पूरक से कोश का शोधन (शुद्ध) कर, कुम्भक, पूरक से प्रतिकूल कर, चंचल चित्त को सुस्थिर कर, तीव्र यम से प्रतप्त बन, समस्त दोषों से विगत (रहित) बने चामीकर (स्वर्ण) की रीति, विरज बनाकर (शुद्ध बनाकर), जित-मारुत होनेवाले (पवन को जीतनेवाले) योगी को फिर से प्राणायाम नामक पावक से वात, पैत्य, श्लेष्म नामक दोषों को भस्मीभूत कर, धारणाओं से किल्विषों (पापों) को और प्रत्याहार से संसर्ग को जलाकर ध्यान से रागों का और सत्त्वादि गुणों का निवारण कर, अपनी नाक के अग्रभाग का अवलोकन करते हुए। ९१२ [सी.] दलत् अरविन्द (कमल) के सुन्दर पत्रों के समान रुचिर आँखों वाले, सललित रूप से श्रीवत्स से कलित (सुशोभित) वक्षःस्थल वाले, नील-नीरद (नीलमेघ) के समान नील-नीलोत्पल के समान श्यामल [रंग वाले], अलिकुल से परिवेष्टित मालाओं से अभिराम

गौस्तुभ कलित मुक्ताहारयुत कंठु योगिमानस पंकजोप कंठु
सतत प्रसन्न सस्मित वदनांभोजु दिनकर कोटि संदीप्त तेजु

ते. सलिलतानर्घ्य रत्न कुंडल किरीट
हार कंकण कटक केयूर मुद्रि-
का तूलाकोटि भूषु, भक्त प्रपोषु,
गिंकिणीयुत मेखलाकीर्ण जघनु ॥ 913 ॥

व. मरियु ॥ 914 ॥

सी. कंजात किंजल्क पुंज रंजित पीत कौशेय वासु जगन्निवासु
शत्रुभीकर चक्र शंख गदा पद्म विहित चतुर्बाहु विगतमोहु
नुत भक्तलोक मनोनेत्र वर्धिष्णु लालित सद्गुणालंकरिष्णु
वरकुमारक वयःपरिपाकु सश्लोकु सुंदराकारु यशोविहारु

ते. सकललोक नमस्कृत चरणकमलु,
भक्तलोक परिग्रह प्रकटशीलु,
दर्शनीय मनोरथदायि गीर्त-
नीय तीर्थ यशो महनीय मूर्ति ॥ 915 ॥

व. वेंडियु ॥ 916 ॥

कं. अनुपम गुण संपूर्णुनि,
ननघुनि सुस्थितुनि गतुनि नासीनु शया

होनेवाले, कौस्तुभ से सुशोभित मुक्ताहारों से युक्त कण्ठ वाले, योगि-मानस रूपी कमलों के उपकण्ठ (समीप) रहनेवाले, सदा प्रसन्न सस्मित वदन कमल वाले, कोटि दिनकरो के संदीप्त तेज वाले, [ते.] सललित अनर्घ रत्नकुण्डल, किरीट, हार, कंकण, कटक, केयूर, मुद्रिकाओं [आदि] अतुल कोटि भूषणों वाले, भक्तों का प्रपोषण करनेवाले, किंकिणियों से युक्त मेखला से आकीर्ण जघन वाले, ९१३ [व.] और, ९१४ [सी.] कंजात (कमल) के किंजल्क (पराग)-पुंज से रंजित पीत-कौशेय-वस्त्रधारी, जगत के निवासी, शत्रुओ के लिए भयकर चक्र, शंख, गदा, पद्म से विहित (युक्त) चतुर्भुज वाले, विगत-मोह वाले, (अपनी) स्तुति करनेवाले भक्तलोक के मनोनेत्रों का विकास करनेवाले ललित सद्गुणों से अलंकृत होनेवाले, श्रेष्ठ-कुमारकों (सनक, सनन्दनादि) की आयु का परिपाक करनेवाले, सुश्लोक वाले (पुण्यात्मा), सुन्दर आकार वाले, यश के साथ विहार करनेवाले, [ते.] सकल लोक के द्वारा नमस्कृत चरण-कमल वाले, भक्तलोकों के परिग्रहण करने में प्रकट शील (गुण) वाले, दर्शनीय, मनोरथ प्रदान करनेवाले, कीर्तनीय (तथा) यश के तीर्थ (पवित्रता) की महनीय मूर्ति वाले, ९१५ [व.] और, ९१६ [कं.] अनुपम गुणों से सम्पूर्ण, अनघ,

नुनि भक्त हृद्गुहाशय-
नुनि सर्वेश्वरु ननंतु नुत्तम चरितुन् ॥ 917 ॥

म. विमलंबै परिशुद्धमै तगु मनो विज्ञान तत्त्व प्रबो-
धमति न्निलिप तदीय मूर्ति भव ध्यानंबु गाविंचि चि-
त्तमु सर्वांग विमर्शन क्रियलकुन् दार्कोलिप प्रत्यंगमुन्
सुमहाध्यानमु सेय गावलयु बो शुद्धांतरंगंबुनन् ॥ 918 ॥

व. अदि यॆट्टि दनिन ॥ 919 ॥

सी. हल कुलिशांकुज जलज ध्वजच्छत्र लालितलक्षण लक्षितमुलु
सललित नख चंद्र चंद्रिकानिर्धूत भक्तमानस तमःपटलमुलुनु
सुरुचिरांगुष्ठ निष्ठ्यूत गंगातीर्थ मंडित हर जटा मंडलमुलु
नंचितध्यानपारायणजन भूरिकलुषपर्वत दीप्तकुलिशमुलुनु

ते. दासलोक मनोरथ दायकमुलु,
चारुयोगि मनः पद्मषट्पदंबु
लनग दनरिन हरि चरणाब्जमुलनु
निरुपमध्यानमुन मदि निलुप वलयु ॥ 920 ॥

चं. कमलजु मातयै सुरनिकाय समंचित सेव्यमानयै
कमल दळाभ नेत्रमुलु गलिग हृदीश्वर भक्ति नॊप्पु न-

सुस्थिति (तथा) गति वाले, आसीन होनेवाले और शयन करनेवाले, भक्तों के हृदय रूपी गुफा में स्थित होनेवाले, सर्वेश्वर, अनन्त, उत्तम चरित वाले को, ९१७ [म.] विमल तथा परिशुद्ध होकर, योग्य मनोविज्ञान वाले को, तत्त्वबोध की मति में स्थिर कर, तदीय मूर्ति के वैभव का ध्यान कर, चित्त को सर्वांग की आलोचना की क्रियाओं मे लगाकर, प्रत्येक अंग का शुद्ध अन्तरंग में सुमहाध्यान करना चाहिए। ९१८ [व.] वह किस प्रकार होता है ? (यदि पूछो तो) ९१९ [सी.] हल, कुलिश, अंकुश, जलज, ध्वज, छत्र [आदि] ललित लक्षणो से युक्त, सललित नखचन्द्र की चन्द्रिका से भक्तों के मानस के तमोपटल को निर्धूत करने (हटाने) वाले, सुरुचिर अंगुष्ठ से निकाले हुए गंगातीर्थ से मण्डित होनेवाले हर की जटाओं के मंडल (समूह) के अंचित ध्यान-परायण-जनों के भूरि कलुष रूपी पर्वतों के लिए, दीप्त कुलिश [ते.] दासलोक के मनोरथ को पूर्ण करनेवाले, श्रेष्ठ योगियों के मन रूपी पद्मों के भ्रमर [इस प्रकार] विलसित होनेवाले हरि के चरण-कमलों को निरुपम ध्यान से मन में स्थिर कर रखना चाहिए। ९२० [चं.] कमलज (ब्रह्मा) की माता हो, सुर-निकाय (देवतागण) से समंचित रूप से सेव्यमाना हो, कमलदल रूपी नेत्र वाली होकर, हृदय में ईश्वर की भक्ति से विलसित होनेवाली उस कमला के अपने

वक्कमल निजांकपीठमुन गैकॊनि यॊत्तु परेशु जानुयु-
ग्ममु हृदयारविंदमुन मक्कुव जेर्चि भजिंपगा दगुन् ॥ 921 ॥

उ. चारु विहंग वल्लभु भुजंबुल मीद विराजमान सु-
श्रीरुचि नुल्लसिल्लि यतसी कुसुमद्युति जाल नॊप्पु पं-
केरुहनाभु नूरुवु लकिल्बिष भक्ति भजिंचि मानसां-
भोरुहमंदु निल्पदगुवो मुनिकोटिक नंगनामणी ! ॥ 922 ॥

कं. परिलंबित मृदुपीतां, बर कांचीगुण निनाद भरितंबगु न
प्पुरुषोत्तमुनि नितंबमु, दरुणी ! भजियिंपवलयु दद्दयु बीतिन् ॥ 923 ॥

कं. विनु भुवनाधारत्वं, बुन दगि विधिजनन हेतुभूतंबगु न-
व्वनजातमुचे गड्ड मिं, चिन हरि नाभी सरस्सु जिंतिप दगुन् ॥ 924 ॥

ते. दिव्य मरकत रत्न संदीप्त ललित
कुचमुलनु मौक्तिकावळि रुचुल दनरि
यिंदिरादेवि सदनमै यॆसक मॆसगु
वक्षमात्मल दलपोय वलयु जुम्मु ॥ 925 ॥

म. निरतंबुन् भजियिंचु सज्जन मनोनेत्राभिरामैक सु-
स्थिर दिव्यप्रभ गल्गु कौस्तुभरुचि श्लिष्टंबुनै यॊप्पु ना

अंक-पीठ में लेकर दावे जानेवाले उस परेश के जानुयुगल को प्रेम से हृदय में स्थापित कर भजन करना चाहिए। ९२१ [उ.] हे अंगनामणी ! सुन्दर विहंगवल्लभ (गरुड़) की भुजाओं पर विराजमान होनेवाले सुश्री रुचि से उल्लसित होकर, अतसी कुसुम की द्युति से अधिक शोभायमान, पंकेरुहनाभ (कमलनाभ) वाले की ऊरुओं के प्रति निर्दोषपूर्ण भक्ति कर, मानसकमल में उन्हें स्थिर रखना मुनिकोटि के लिए उचित है। ९२२ [कं.] तरुणी ! मृदुल पीताम्बर पर परिलम्बित होते हुए कांचीगुण (मेखला) के सुखद निनाद से सुशोभित नितम्ब (कटिप्रदेश) का अत्यधिक प्रीति से भजन करना चाहिए। ९२३ [कं.] सुनो ! भुवन के आधार के रूप में विलसित हो, विधि (ब्रह्मा) के जन्म के हेतुभूत होनेवाले उस वनजात (कमल) से अत्यधिक सुशोभित होनेवाले हरि के नाभि-सरोवर का चिन्तन करना चाहिए। ९२४ [ते.] दिव्य मरकत (तथा) रत्नों से सदीप्त होनेवाले ललित कुचों और मौक्तिकावली की कांतियों में इन्दिरा (रमा) के निलय हो सुशोभित होनेवाले वक्ष का आत्मा में अवश्य स्मरण करना चाहिए। ९२५ [म.] सदा भजन करनेवाले, सज्जनों के मनोनेत्र के लिए एकैक रूप से अभिराम सुस्थिर दिव्य प्रभा से युक्त कौस्तुभ की रुचि (कान्ति) से सुशोभित होनेवाले, वर-योगीश्वरों से वन्द्यमान होनेवाले, सर्व-स्वामी, लक्ष्मीश्वर के कंधर (कंधे) को आत्मा

वर योगीश्वरवंद्यमानुडगु सर्वस्वामि लक्ष्मीशु क-
धर मात्मन् गदिर्यिचि तद्गुणगण ध्यानंबु सेयं दगुन् ॥ 926 ॥

कं. घन मंदर गिरि परिव
र्तन निकषोज्ज्वलित कनकरत्नांगदमुल्
दनरार लोकपालकु
लनु गलिगन बाहु शाखलनु दलप दगुन् ॥ 927 ॥

व. मरियु विमत जनासह्यंबुलैन सहस्रारंबुलं गलुगु सुदर्शनंबुनु, सरसोजोदर करसरोरुहंबंदु राजहंस रुचिरंबैन शंखंबुनु, अरातिभट शोणितकर्दम लिप्तांगंबै भगवत्प्रीतिकारिणियगु कौमोदकियुनु, बंधुर सुगंध गंधानुबंध मंद गंधवहाहूयमान पुष्पंधय झंकारनिनद विराजित वैजयंती वनमालिकयुनु, जीवतत्त्वंबैन कौस्तुभमणियुनु, प्रत्येकंब ध्यानंबु सेयंवगु। वेंडियु भक्त संरक्षणार्थंबंगीकरिंचु दिव्यमंगळ विग्रहंबुन कनुरूपं बैन नासंबुनु, मकर कुंडल रुचिनिचय मंडित मुकुरोपमान निर्मल गंडमंडलंबुनु, सतत श्रीनिवासंबुलैन लोचन पंकजंमुबुलुनु गलिगि लालित भ्रू लता जुष्टंबुनु, मधुकरोपमान चिकुर विराजितंबुनैन मुख कमलंबुनु ध्यानंबु गाविंप वलयु ॥ 928 ॥

में धारण कर, उसके गुणगणों का ध्यान करना चाहिए। ९२६ [कं.] घन मन्दर पर्वत को परिवर्तित करनेवाले समर्थ निकष से उज्ज्वल बने कनक-बाहु जो शोभायमान लोकपालकों से युक्त है, ऐसे बाहु-शाखाओं का स्मरण (ध्यान) करना चाहिए। ९२७ [व.] और विमत (शत्रु) जनों के लिए असह्य बनकर, हजारों आरों वाले सुदर्शन [चक्र] और सरसिजोदर (विष्णु) के कर-कमल में और राजहंस के शंख समान सुन्दर, अराति भट (शत्रु-सेना) के शोणित रूपी कर्दम (कीचड़) से लिप्त अंगवाली [तथा] भगवान के लिए प्रीतिकारिणी कौमोदकी (गदा) और बंधुर (घने) सुगन्ध के गंध-अनुबन्ध में मन्द पवन से आहूत हो आनेवाले पुष्पंधय (भ्रमर)-गण के झंकार-निनाद से विराजित वैजयन्ती वनमाला और जीवतत्त्व बना हुआ कौस्तुभमणि का विशेष रूप से ध्यान करना चाहिए। और भक्तों के संरक्षणार्थ स्वीकार करनेवाले दिव्यमंगल विग्रह (मूर्ति) के अनुरूप नासिका और मकर-कुण्डलगण से मण्डित [तथा] मुकुर (दर्पण) के समान निर्मल गण्डमण्डल (गाल) और सतत श्री के निवास बने लोचनपंकज (कमलनयन) [से युक्त] हो ललित भ्रूलता से सेवित, मधुकर के समान विराजमान चिकुरों से युक्त मुखकमल का ध्यान करना चाहिए। ९२८ [कं.] गुरु घोर रूप में सम्भव होनेवाले

कं. गुरु घोर रूपकंबै, जरिगॆडु तापत्रयोपशमनार्थंमु श्री
हरिचेत निसृष्टमुलगु, करुणालोकमुल दलपगा दगु बुद्धिन् ॥ 929 ॥

कं. घनरुचि गल मंदस्मित-
मुन कनुगुणमगु प्रसादमुनु जित्तमुलो
नुनिचियु ध्यानमु सेयं-
जनु योगि जनाळि कॆपुडु सौजन्यनिधी ! ॥ 930 ॥

ते. पूनि नतशिरुलैनट्टि भूजनमुल
शोक बाष्पांबुजलधि संशोषकंबु
नत्युदारतममु हरिहास मॆपुडु
दलपग वलयु नात्मलो दविलि विनुमु ॥ 931 ॥

सी. मुनुलकु मकर केतनुनकु मोहनंबैन स्वकीय मायाविलास-
मुन रचितंबैन भ्रूमंडलंबुनु मुनि मनःकुहर सम्मोदमानु
डगु नीश्वरुनि मंदहासंबु नवपल्लवाधरकांतिचे नरुणमैन
मॊल्ल मॊग्गल कांति नुल्लसंबाडॆडु दंत पंक्तियु मदि दलप वलयु

ते. वॆलयु नी रीति नन्नियु वेरुवेर
संचित ध्यान निर्मल स्थानमुलुग

तापत्रय के उपशमन के लिए, श्रीहरि से निसृष्ट (छिपाए गए) करुणा-अवलोकनों का [सद्] बुद्धि से ध्यान करना चाहिए। ९२९ [कं.] सौजन्य की निधी ! योगिजनगण को सदा घनरुचि से युक्त मन्द-स्मिति के अनुगुण प्रसाद का चित्त में स्थापित कर ध्यान करते जाना चाहिए। ९३० [ते.] सुनो ! निश्चित रूप से नतशिर होनेवाले भूजनों के शोक [रूपी] अश्रु-सागर को शोषित करनेवाले अति-उदारतम बने हुए हरि के हास का सदा आत्मा में स्थापित कर स्मरण करना चाहिए। ९३१ [सी.] मुनियों को, मकरनिकेतन वाले (मन्मथ) को भी मोहित करनेवाले, अपनी माया के विलास से रचित भ्रूमण्डल को मुनियों के मन रूपी कुहरों को आनन्दित करनेवाले ईश्वर का मन्दहास (तथा) नवपल्लवों की कान्ति वाले, अरुण अधरों से (तथा) मल्लिका पुष्पों की कान्ति को उल्लसित करने (अवहेला) वाली दन्तपंक्ति का मन में ध्यान करना चाहिए। [ते.] इस प्रकार नाना प्रकार से विलसित हो सुशोभित होनेवाले [अंगों] का, निर्मल ध्यान के स्थानों के रूप में मन में धारण करने के लिए कपिल ने देवहूति से स्पष्ट रीति से कहा। ९३२ [सी.] इस प्रकार सर्वेश्वर मे भाव-सम्पन्नता को प्राप्त करते हुए, शाश्वत सद्भक्ति से प्रवृद्ध अतिमोद से पुलकित शरीर वाले होते हुए, महान् उत्कण्ठा से आनन्द के आँसू की झड़ी लगने पर, परितोष के जलधि में डूबकर, भगवत्स्वरूप हो भवगुणों का

मनमुलो गनुमनि चॅप्पि सरिग्यु बलिकॅ
देवहूतिकि गपिलुंडु देटपडग ॥ 932 ॥

सी. ई प्रकारमुन सर्वेश्वरु नंदुनु व्रतिलब्ध भावसंपन्नु डगुचु
जिरतर सद्भक्तिचे प्रवृद्धंबैन यति मोदमुन बुलकित शरीरु-
डगुचु महोत्कंठ नानंद बाष्पमुल् जडिगान बरितोष जलधि ग्रुंकि
भगवत्स्वरूपमै भवगुण ग्राहकसगुचु सत्संबंधमनुकरिंचि

ते. सुमहित ध्यानमुन बरंज्योति यंदु
मनमु जाल नियोजिंचि महिम दनरु
मोक्षपदमात्मलोन नपेक्षसेयु
ननघ वर्तनुडैन महात्मुडेपुडु ॥ 933 ॥

व. अदि गावुन भक्ति नपेक्षिंचि महात्मुंडगु वानि चित्तंबु विमुक्तंबैन भगवद्-
व्यतिरिक्ताश्रयंबु गलिगि विषयांतर शून्यंबै विरक्ति बॊंदुट जेसि पुरुषुंडु
शरीर भावंबुल ननन्यभावं बगु निर्वाणपदंबु सूक्ष्मंबगु तेजंबु तनकंटॆ
नधिकंबगु तेजंबु तोडि समानाकारं बगु चंदंबुन निच्छयिंचु।
वॅंडियु ॥ 934 ॥

सी. पुरुषुडु चरम मै भुवि नन्य विषय निवृत्त मै तग निर्वतिंचु चित्त
वृत्त्याहुलुनु गलिग वॅलयंग नात्मीय मगु महिम सुनिष्ठुडै लभिंचु
सुखदुःखमुल मनस्सुन दलंपक यहंकार धर्मंबुलुगा दलंचि
यनयंबु साक्षात्कृतात्मतत्त्वमु गलगु नतडु जीवन्मुक्तुडंड्रु धीरु

ते. लतडु ने चंदमुन नुंडुननिन विनुमु,
तन शरीरंबु निलुचुटयुनु जरिंचु

ग्रहण करते हुए, मेरे सम्बन्ध का अनुकरण करते हुए, [ते.] सुमहित ध्यान से परमज्योति में मन को अधिक नियोजित कर, महिमा से विलसित होनेवाले अनघ (निष्पाप) वर्तन वाला महात्मा सदा मोक्षपद को मन में चाहता है। ९३३ [व.] इसलिए मुक्ति की अपेक्षा करनेवाले महात्मा का चित्त भगवान के विपरीत आश्रय से विमुक्त हो, विषयान्तर शून्य हो, विरक्ति को प्राप्त करने के कारण, पुरुष शरीर भाव से अनन्य भाव वाले निर्वाण पद को, सूक्ष्म तेज का अपने से अधिक तेज के साथ मिलकर समानाकार को प्राप्त होने की रीति इच्छा करता है। और, ९३४ [सी.] माँ! सुनो! धरती पर अत्यधिक रूप में अन्य विषयों से निवृत्त हो समुचित रूप से चलनेवाले चित्तवृत्तियों के साथ विलसित हो, अपनी महिमा से सुनिष्ठावान हो, प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखों को मन में न लाकर, अहंकार-धर्म के रूप में मानकर, सदा साक्षात्कृत आत्मतत्त्ववाले को धीर लोग जीवन्मुक्त कहते हैं। [ते.] वह किस प्रकार का होता है? पूछो

टयुनु गूचुंडुटयु निकेमियु नॆरुंग-
कथि वर्तिचु विनु तलिल ! यतडु मरियु ॥ 935 ॥

व. मदिरापानंबुनं जेसि मत्तुंडगुवाडु दनकुं बरिधानंबगु नंबरंबु मरचि वर्तिचु चंदंबुन दन्य शरीरंबु दैवाधीनंबुन नश्वरंबनि तलंचि यात्मतत्त्व-निष्ठुंडै युपेक्षिचु । अदियुनुं गाक समाधि योगंबुनं जेसि साक्षात्कृतात्म-तत्त्वंबु गलवाडै स्वाप्निकशरीरंबु चंदंबुन यावत्कर्मफलानुभव पर्यंतंबु पुत्र दार समेतंबगु प्रपंचंबु ननुभविचि, यट मीद पुत्र-दारादि संबंधंबु वलनं बासि वर्तिचु ॥ 936 ॥

सी. सुत दार मित्रानुजुलुकंटॆ मर्त्युंडु भिन्नुडै वर्तिचुचुन्न रीति
विस्फुलिगोल्मुक विपुल धूममुलचे हव्य वाहनुडु वेरैन रीति
वलनॊप्प देहंबुवलन नी जीवात्म परिकिंप भिन्न रूपमुन नुंडु
दविलि भूतेंद्रियांतःकरणंबुल भासिल्लुचुन्न या प्रकृति रूप

ते. ब्रह्ममुन नात्म दा पृथग्भाव मगुचु
द्रष्टयगु ब्रह्मसंज्ञ चे दनरुचुंडु
नखिल भूतप्रपंचंबुलंबु दन्न
दविलि तनयंदु नखिल भूतमुल गनुचु ॥ 937 ॥

व. वॆंडियु ॥ 938 ॥

तो, सुनो । वह अपने शरीर के खड़े होने (स्थित होने), चलने, बैठने (आदि) कुछ को भी न जानते हुए, व्यवहार करता है, और भी, ९३५ [व.] मदिरा पान कर मत्त होनेवाले [व्यक्ति] के अपने परिधान बने वस्त्रों को भूलकर व्यवहार करने की रीति, अपने शरीर को दैवाधीन होने के कारण नश्वर जानकर, आत्मतत्त्वनिष्ठ हो, [उसकी] उपेक्षा करता है। इसके अतिरिक्त समाधियोग के कारण साक्षात् आत्मतत्त्व में निष्ठावान हो, स्वप्न के शरीर की रीति समस्त कर्मफल के अनुभवस्वरूप पुत्र-दारा से युक्त संसार का अनुभव (भोग) करके, उसके पश्चात् पुत्र-दारादि के सम्बन्धों से मुक्त हो व्यवहार करता है। ९३६ [सी.] मर्त्य-पुरुष के (अपने) सुत-दारा (और) मित्रादि से भिन्न हो व्यवहार करने की रीति, विस्फुलिग, मुराड़ा, विपुल धूम्र से हव्यवाहन (अग्नि) के अलग होने की रीति, विचार करने पर यह जीवात्मा सुशोभित होनेवाले इन शरीरों से भिन्न होता है। भूतेन्द्रिय के अन्तःकरणों में लगकर भासित होनेवाली प्रकृति रूपी [ते.] ब्रह्म में आत्मा अपने-आप में पृथक् भावना में होते हुए भी, द्रष्टा होनेवाले अखिल भूत जगतों में अपने-आपको लगाकर (और) अपने में अखिल भूतों को देखते हुए ब्रह्म नाम से विलसित होता है। ९३७ [व.] और भी, ९३८ [सी.] क्रमशः अनन्य

सी. वरुस ननन्य भावंबुल जेसि भूतावळियंदु ददात्मकत्व-
मुन जूचु नात्मीय घनतरोपादानमुलयंदु दविलि यिम्मुल वेलुंगु
निद्ध दिव्यज्योति येकमय्युनु बहु भावंबुलनु दोचु प्रकृतिगतुडु
नगुचुन्न यात्मयु बॉगडोंदु देव तिर्यङ्मनुष्य स्थावरादि विविध

ते. योनुलनु भिन्न भावंबु नौंदुटयुनु
जाल गल्गु निजगुण वैषम्यमुननु
भिन्नुडै वॅलुगु गावुन वेंचि यदिय
देहसंबंधि यगुचु वर्तिचुचुंडु ॥ 939 ॥

कं. भाविंप सदसदात्मक, मै वॅलयुचु दुर्विभाव्यमगुचु स्वकीयं
बै वर्तिपुचु प्रकृतिनि, भावमुन दिरस्करिंचु भव्यस्फूर्तिन् ॥ 940 ॥

अध्यायमु—२९

व. ई यात्म निजस्वरूपंबुनं जेसि वर्तिचु ननि कपिलुं डॅरिंगिचिन विनि देवहूति वॅंडियु निट्लनियं। महात्मा! महदादि भूतंबुलकुं प्रकृति पुरुषुलकुं गलिगन परस्पर लक्षणंबुलुनु, ददीय स्वरूपंबु नॅरिंगिचितिवि। इंक नी प्रकारंबुन सांख्यंबुनंदु निरूपिपं बडुनट्टि प्रकारंबुनु, भक्तियोग माहात्म्यंबुनु, बुरुषुंडु भक्ति योगंबुनं जेसि सर्वलोक विरक्तुं डगुनट्टि

भावनाओं के कारण भूतावली में अपनत्व को देखते हुए, अपने घनतर उपादानों में लगकर इस प्रकार ज्योतित होनेवाली इद्ध (पुण्य) दिव्य ज्योति एक होकर भी बहुभावनाओं में कल्पित होते हुए, प्रकृतिगत होने वाली आत्मा के रूप में विलसित हो देव, तिर्यक्, मनुष्य, स्थावर आदि विविध [ते.] योनियों में विविध सम्भावनाओं को पाते हुए अत्यधिक गुण-वैषम्य से भिन्न हो द्योतित होते हुए देह सम्बन्धी हो व्यवहार करता है। ९३९ [कं.] भावना (विचार) करने पर सत् (तथा) असत् रूप में प्रकट होते हुए, दुर्विभाव्य होते हुए, स्वकीय हो व्यवहार करते हुए, भावना में भव्य स्फूर्ति (ज्ञान) से प्रकृति का तिरस्कार करता है। ९४०

अध्याय—२९

[व.] आत्मा निजस्वरूप से इस प्रकार व्यवहार करता है, ऐसा कपिल के कहने पर, सुनकर, देवहूति ने और (आगे) इस प्रकार कहा। महात्मा! महदादि भूतों और प्रकृतिपुरुषों में होनेवाले परस्पर लक्षणों को, अपने स्वरूप को (आपने) विदित किया। आगे इसी प्रकार सांख्य में, निरूपित होनेवाला विधान, भक्तियोग का माहात्म्य, पुरुष के भक्ति-योग के कारण, सर्वलोक से विरक्त होनेवाला योग और प्राणिलोक के

योगंबुनु, प्राणिलोकंबुनकु संसारंबनेक विधंबै युंडु गावुनं बरापरुंडवै कालस्वरूपिवैन नी स्वरूपंबुनु, ने नीवलनि भयंबुनं जेसि जनुलु पुण्य कर्मंबुलु सेयुदुरव्विधंबुनु, मिथ्याभूतंबैन देहंबुनंदु नात्माभिमानंबु सेयुचु मूढुंडै कर्मंबुलंदु नासक्तंबैन बुद्धि जेसि विभ्रांतुंडगुचु संसारस्वरूपंबगु महांधकारंबुनंदु जिरकाल प्रसुप्तुंडन जनुनि बवोधिचु कौरकु योग भास्करुंडवं याविर्भविंचिन पुण्यात्मुडवु गावुन नाकु निन्नियुं दॅलिय सविस्तरंबुगा नानतिम्मनिन देवहूतिकि गपिलुंडिट्लनियॆं ॥ 941 ॥

कपिलुंडु देवहूतिकि भक्तियोगमु तलिय जेयुट

कं. नलिनायताक्षि ! विनु जन-
मुल फल संकल्प भेदमुन जेसि मदि
गल भक्ति योग महिमं
बलपडग ननेक विधमु लनदगु नवियुन् ॥ 942 ॥

व. विवरिंचॆद । तामस राजस सात्त्विक भेदंबुलं द्रिविधंबै युंडु । अंदु दामस भक्ति प्रकरंबॆट्टिदनिन ॥ 943 ॥

ते. सतत हिंसातिदंभ मात्सर्य रूप
तममुलनु जेयुचुनु भेददर्शि यगुचु

लिए संसार अनेक प्रकार का हो रहता है, इसलिए परात्पर और काल-स्वरूपी, [तुम अपने] स्वरूप स्व-पर भय से लोग पुण्यकर्म [कैसे] करते हैं [उस विधान को] मिथ्याभूत [इस] देह में आत्माभिमान करते हुए, मूढ़ बन, कर्मों में आसक्त बनी बुद्धि के कारण विभ्रान्त होते हुए, संसार-स्वरूपी महान्धकार में चिरकाल से प्रसुप्त जन को प्रबोधित करने के लिए योगभास्कर के रूप में आविर्भूत हुए पुण्यात्मा हो, इसलिए मुझे इन सबका ज्ञान हो जाए, ऐसा सविस्तार से आज्ञा दो (विदित करो)। [ऐसा] प्रार्थना करने पर देवहूति से कपिल ने इस प्रकार कहा। ९४१

कपिल का देवहूति को भक्तियोग को विदित करना

[कं.] नलिन के समान विशाल आँखोंवाली ! सुनो ! लोगों के फलसंकल्प के भेद के अनुरूप मन में भक्तियोग अपनी महिमा से सम्पन्न होता है, जो अनेक प्रकार से कहा जाता है, उनका, ९४२ [व.] विवरण करता हूँ। तामस, राजस, सात्त्विक भेदों में तीन प्रकार का होता है। उनमें तामस भक्ति किस प्रकार की है, यदि पूछो तो, ९४३ [ते.] सदा हिंसा, अतिदम्भ, मात्सर्य-रूप तम (आदि अज्ञान) को प्रकट करते हुए, भेद-दर्शी हो विलसित होते हुए मेरे प्रति भक्ति करनेवाला (व्यक्ति) तामसी

बरग ना यंदु गाविंचु भक्ति दलप
दामसं बनदगु वाडु तामसुंडु ॥ 944 ॥

कं. घन विषय प्रावीण्यमु, लनु समहैश्वर्यं यशमुलकु बूजाद्य-
र्हुनि ननु नर्थि भजिंचुट, चनु राजसयोग मनग सौजन्यनिधी ! ॥ 945 ॥

चं. अनुपम पापकर्म परिहारमुकै भजनीयुडै शो-
भन चरितुं डितंडनुचु भावमुनं दलचोसि भक्ति चे-
ननितर योग्यतन् भगवदर्पणबुद्धि नौनर्चि कर्ममुल्
जनहित कारियै नेगड सात्त्विक योग मनंग जौप्पडुन् ॥ 946 ॥

चं. मनुसुत ! मद्गुण श्रवणमात्र लभिंचिनयट्टि भक्ति चे
ननघुड सर्वशोभन गुणाश्रयुडन् बरमेश्वरुंडनै
तनरिन नन्नु जेंदिन युदात्त मनोगतु लव्ययंबुलै
वननिधिगामियैन सुरवाहिनि बोलि फलिंचु निम्मुलन् ॥ 947 ॥

कं. हेयगुण रहितुडन गल
ना यंदलि भक्ति लक्षणमु दॆलिपिति ननु
बायक निर्हेतुकमुग
जेयु मदीय व्रतंक चिरतर भक्तिन् ॥ 948 ॥

व. निष्कामुलैन मदीय भक्तुलकु नट्टि भक्तियोगंबु सालोक्य, सामीप्य,
सारूप्य, सायुज्यंबुलकु, साधनंबु गावुन महात्मुलगुवारु तम मनोरथ

कहलाता है। ९४४ [कं.] सौजन्यनिधी ! घन-रूप से विषयों में प्रवीण हो सुमहैश्वर्य तथा यश की प्राप्ति करने के लिए पूजादि के योग्य मेरी सेवा करना राजस योग कहलाता है। ९४५ [चं.] अनुपम पाप कर्म के परिहार के लिए भजनीय (तथा) शोभन चरित वाला यह है, ऐसा विचार कर, भक्ति से अनन्य योग्यता के साथ भगवान में बुद्धि को अर्पित कर, जनहितकारी (लोकमंगल) कार्य करना सात्त्विक योग कहलाता है। ९४६ [चं.] मनुपुत्री ! मेरे गुणों के श्रवण करने मात्र से प्राप्त होनेवाली भक्ति से अनघ, सर्वशोभन गुणों के आश्रयस्वरूप परमेश्वर के रूप में सुशोभित होनेवाले, मुझे प्राप्त होकर उदात्त मनोगत वाले, अव्यय हो, वननिधि (सागर) की ओर बढ़ चलनेवाली सुरवाहिनी (गंगा) के समान फल के लिए अग्रसर होते हैं। ९४७ [कं.] हेय गुणों से रहित होनेवाले मुझमें स्थित भक्ति के लक्षणों को विदित किया। (अब) निर्हेतुक रूप से मुझसे अलग न होते हुए मेरे व्रत के लिए चिरतर भक्ति (की साधना) करो। ९४८ [व.] निष्कामी बने हुए मेरे भक्तों के लिए इस प्रकार का भक्तियोग सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य का साधन है। इसलिए महात्मा लोग अपने मनोरथ के फलदायक होने पर भी मेरी सेवा से

फलदायकंबुलैननु मदीय सेवा विरहितंबुलैन यितर कर्मंबुल नाचरिंप नॊल्लरु। दीनि नात्यंतिक भक्तियोगंबनि चॆप्पुदुरु। सत्त्वरजस्तमोगुण हीनुंडैन जनुंडु मत्समानाकारतं बॊंदु। अनि चॆप्पि मरियु निट्लनियॆ ॥ 949 ॥

सी. नित्य नैमित्तिक निजधर्ममुन गुरु श्रद्धागरिष्ठत जतुर पांच-
रात्रोक्त हरि समाराधन क्रियलनु निष्कामनंबुन नॆर्रि मदीय
विग्रह दर्शन विनुति पूजावंदन ध्यान संश्रवणमुल गर्म
संगि गाकुंडुट सज्जन प्रकराभिमानंबु नॊंदुट हीनु लंदु

ते. जाल ननुकंप सेयुट समुलयंदु
मैत्रि नॆऱपुट यनु नियमक्रियादि-
यॆन योगंबु चेत नाध्यात्मि-
काधिभौतिकादुल दॆलियुट पलुकुटयुनु ॥ 950 ॥

व. मरियुनु ॥ 951 ॥

कं. हरिमंगळ गुण कीर्तन, परुडै तग नार्जनमुन भगवत्परुलन्
गर मनुरक्ति भजिचुट, निरहंकारमुननुंट निश्चलुडगुटन् ॥ 952 ॥

कं. इवि मॊदलुगाग गलुगु भ-
गवदुद्देशाभिधर्म फलितुंडै वी-
नि वलन वरिशुद्ध गति,
दविलिन मदि गलुगु बुण्यतमुडॆय्यॆडलन् ॥ 953 ॥

विरहित होनेवाले अन्य कर्म नही करते। इसे आत्यन्तिक भक्तियोग कहते है। सत्त्व, रजस, तमोगुणों से हीन होनेवाला व्यक्ति मेरे समान आकार को प्राप्त होगा। ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। ९४९ [सी.] नित्य नैमित्तिक निजधर्म में, गुरु श्रद्धा की गरिष्ठता में, चतुर पांचरात्र के कथन (शास्त्र) के अनुसार हरि के समाराधन की क्रियाओं का निष्काम बुद्धि से मेरे विग्रह के दर्शन के निमित्त विनति, पूजा, वन्दना, ध्यान करते हुए समुचित श्रवण से कर्मसंगी न हो सज्जनगण के अभिमान (आदर) को प्राप्त होना, [ते.] हीनजनों के प्रति अनुकम्पा, (अपने) समान लोगों के साथ मैत्री करना, नियम क्रियादि रूपयोग से आध्यात्मिक, आधिभौतिक आदि को जान लेना और मनन करना, ९५० [व.] और, ९५१ [कं.] हरि के मंगल गुणों के कीर्तन-पर (-रत) हो समुचित रूप से सम्पादन की बुद्धि से भगवद्भक्तों की अत्यधिक भक्ति से सेवा करना, निरहंकारी हो, निश्चल हो रहना, ९५२ [कं.] आदि-आदि ऐसे भगवान् से उद्दिष्ट अधिधर्म से कलित (युक्त) हो इनसे परिशुद्ध गति को मन से पुण्यात्मा सदा प्राप्त करता है। ९५३ [ते.] गुरुतर रूप से

ते. गुरुतरानेक कल्याणगुण विशिष्टु-
डनग नॊप्पिन ननु बॊंदु नंड गॊनक
पवन वशमुन बुव्वुल बरिमळंबु
घ्राणमुन नावरिंचिन करणि मॆरसि ॥ 954 ॥

चं. अनिशमु सर्वभूत हृदयांबुजवर्ति यनं दनर्चु नी-
शु ननु नवज्ञ सेसि मनुजुं डॊगि मत्प्रतिमार्चना विडं-
बनमुन मूढुडै युचित भक्तिनि नन्नु भजिंपडेनि य-
म्मनुजुडु भस्मकुंडमुन मानक वेल्चिनयट्टिवाडगुन् ॥ 955 ॥

सी. अब्जाक्षि ! निखिल भूतांतरात्मुडनैन नायंदु भूतगणंबुनंदु
नति भेद दृष्टि मायावुलै सततंबु पायक वैरानुबंधनिरतु-
लगुवारि मनमुल दगुलदु शांति यॆन्नटिकैन नेनु ना कुटिल जनुल
मानक यॆपुडु सामान्याधिक द्रव्य समिति चे मत्पदार्चन मॊनर्प

ते. नथि ना चित्तमुन मुदंबंदकुंडु
ननुचु नॆड्रिंगिंचि मङ्रियु निट्लनियॆ गरुण
गलित सद्गुण जटिलुडक्कपिलु डॆलमि
दल्लितोड गुणवतीमतल्लि तोड ॥ 956 ॥

सी. तरळाक्षि ! विनु मचेतन देहमुलकंटॆ जेतन देहमुल् श्रेष्ठमंडु
प्राणवंतंबुलै स्पर्शन ज्ञानंबु गलुगु चैतन्य वृक्षमुलकंटॆ

अनेक कल्याण गुणों से विशिष्ट हो सुशोभित होनेवाले मुझे प्राप्त करता है, जैसे पवन के वश में हो, फूलों की सुगन्ध घ्राण (नासिका) में व्याप्त होती है। ९५४ [चं.] सदा सर्वभूतों के हृदय-कमलों में विचरण करते हुए विलसित ईश्वर की अर्थात् मेरी अवज्ञा कर जो मनुष्य मेरी प्रतिमा की अर्चना की विडम्बना में मूढ़ हो, समुचित भक्ति से मेरी सेवा नही करता, वह व्यक्ति निश्चित रूप से भस्मकुण्ड में होम करनेवाले के समान [व्यर्थ] हो जाएगा। ९५५ [सी.] अब्जाक्षी ! निखिल भूतों की अन्तरात्मा में बसे हुए मुझमें (और) भूतगण में अति भेददृष्टि रखते हुए मायावी हो सदा वैर-भाव के अनुबन्ध में निरत रहनेवालों को मन में शान्ति कभी प्राप्त नहीं होती। मैं भी उन कुटिल जनों के प्रति, सदा सामान्य या अधिक द्रव्य समिति से मेरे चरणों की अर्चना करने पर भी, [ते.] चित्त में आनन्दित नहीं होता। ऐसा विदित कर और करुणाकलित तथा सद्गुणों से जटिल बने हुए उस कपिल ने गुणवती माता से प्रेम के साथ इस प्रकार कहा। ९५६ [सी.] तरलाक्षी ! सुनो ! अचेतन देहों की अपेक्षा चेतना से युक्त देह श्रेष्ठ होती हैं। उनमें प्राणवान हो, स्पर्शज्ञानवाले, चेतनाशील वृक्षों की अपेक्षा घन-रसज्ञान से संकलित (युक्त) चेतनावाले उत्तम

घनरस ज्ञान संकलित चेतनुलुत्तमुलु रसज्ञानंबु गलुगु वानि
कंटॆ गंधज्ञान कलित भृंगंबुलु गड श्रेष्ठमुलु वानिकंटॆ शब्द

ते. वेट्टु लगुदुरु श्रेष्ठुलु वॆलयु शब्द-
विदुल कंटॆनु मरि रूपवेदुलैन
वायसादुलु श्रेष्ठमुल् वानिकंटॆ,
वरुस बहुपादुलुत्तमुल् वारि कंटॆ ॥ 957 ॥

कं. तलप जतुष्पदु लधिकुलु, वलकौनि मरि वारि कंटॆ वादद्वयमुं
गल मनुजु ललघुतमु लि, म्मुल वारलयंदु वर्णमुलु नालगरयन् ॥ 958 ॥

व. अंदु ॥ 959 ॥

सी. तलप ब्राह्मणुलुत्तमुलु वारि कंटॆनु वेदवेत्तलु, वेदविदुल कंटॆ
विलसित वेदार्थ विदुलु, वारलकंटॆ समधिक शास्त्रसंशयमु मान्पु
मीमांसकुलु, मरि मीमांसकुल कंटॆ निजधर्म विज्ञान निपुणु, लरय
वारिकंटॆनु संग वर्जित चित्तुलु, दग वारि कंटॆ सद्धर्म परुलु

ते. धार्मिकुल कंटॆ नुत्तमोत्तमुडु विनुमु,
मत्समर्पित सकल कर्मस्वभाव
महिममुलु गलिग यितर कर्ममुलु विडिचि
समत वर्तिंचु नापुण्यतमुडु घनुडु ॥ 960 ॥

व. अट्टि वानि ॥ 961 ॥

हैं। रसज्ञान वालों की अपेक्षा गन्धज्ञान से कलित (युक्त) भृंग अधिक श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा [ते.] शब्दविद् श्रेष्ठ होते है। सुशोभित शब्दविदों की अपेक्षा रूपवेदी वायस आदि श्रेष्ठ होते हैं। उनकी अपेक्षा क्रम से बहुचरणवाले उत्तम होते हैं, उनकी अपेक्षा, ९५७ [कं.] विचार करने पर, चतुष्पाद (चार पाँववाले) अधिक होते है। क्रम से उनसे भी पाद-द्वय (दो पाँववाले) मनुष्य अलघुतम होते हैं (और) उनमें परखने पर चार वर्ण होते है। ९५८ [व.] उनमें, ९५९ [सी.] विचार करने पर, विदित होता है कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनसे भी वेदविद् (और) वेद-विदों से वेदार्थ-विद् (और) उनसे भी समधिक रूप से शास्त्रों के सन्देह दूर करनेवाले मीमांसक और मीमांसकों से निजधर्म-विज्ञान के निपुण, (और) विचार करने पर उनसे बढ़कर संगवर्जित चित्तवाले, उनसे भी समुचित रूप से सन्धर्मपरायण लोग (और), [ते.] धार्मिकों में भी उत्तमोत्तम वह है, सुनो, जो सकल कर्म स्वभाव की महिमाओं के साथ मुझमें समर्पित कर, अन्य कर्म छोड़कर, समता से वर्तन (व्यवहार) करनेवाला है। वह पुण्य तम जीव घन (महान्) होता है। ९६० [व.] ऐसे व्यक्ति को, ९६१

कं. कनि सकल भूत गणमुलु,
मनमुन नानंद जलधि मग्नमु लगुचुन्
घन बहुमान पुरस्सर
मनयमु वाटिल्ल विनुतु लर्थि जेयुन् ॥ 962 ॥

व. अंत नीश्वरुंडु जीवस्वरूपानुप्रविष्टुंडै युंडु। अट्टि भगवंतुं जूचि भक्ति योगंबुननैन, योगंबुननैनं बुरुषुंडु परमात्मंबोंदु। प्रकृति पुरुषात्मकंबुनु तद्व्यतिरिक्तंबुनुनैन देवंबुनै कर्म विचेष्टितंबगुचु नुंडु। अदिय भगवद्रूपंबु। इट्टि भगवद्रूपंबु रूपभेदास्पदंबगुचु नद्भुत प्रभावंबु गल कालंबनियु जेप्पंबडु। अट्टि कालंबु महदादि तत्त्वंबुलकुनु, दत्तत्त्वाभिमानुलगु जीवुलकुनु भयावहंबगुटं जेसि सकल भूतंबुलकु नाश्रयंबगुचु, नंतर्गतंबै भूतंबुल चेत भूतंबुल ग्रसिंपुचु, यज्ञ-फलप्रदात गावुन वशीकृतभूतुंडै प्रभुत्वंबु भजियिंचि विष्णुंडु प्रकाशिंपु चुंडु। अतनिकि मित्त्रुंडनु, शत्रुंडुनु, बंधुंडुनु लेडु। अट्टि विष्णुंडु सकल जनंबुलयंदावेशिंचि यप्रमत्तुंडै प्रमत्तुलैन जनंबुलकु संहारकुंडै युंडु। अतनिवलनि भयंबुनं जेसि वायुवु वीचु। सूर्युंडु तपियिंचु। इंद्रुंडु वर्षिंचु। नक्षत्रगणंबु वेलुंगु। चंद्रुंडु प्रकाशिंचु। तत्तत्कालंबुल वृक्षलतादु लोषधुलतोडं गूडि पुष्पफल भरितंबुलगु। सरित्तलु प्रवहिंचु। समुद्रंबुलु मेरलु दप्पक युंडु। अग्नि प्रज्वलिंचु। भूमि गिरुलतो

[कं.] देखकर, सकल भूतगण मन में आनन्द-सागर में मग्न हो, घन-बहुमान-पुरस्सर हो (अधिक आदर के साथ) सदा चाहकर विनति करते है। ९६२ [व.] तब ईश्वर जीव-स्वरूप में अनुप्रविष्ट हो रहता है। ऐसे भगवान को देखकर पुरुष भक्तियोग से परमात्मा को प्राप्त करता है। प्रकृतिपुरुषात्मक और उसके विपरीत दैव बनकर, कर्म से विचेष्टित हो रहता है। वही भगवान का रूप है। ऐसा भगवद्रूप रूपभेद का आस्पद होते हुए अद्भुत प्रभाववाला काल है, ऐसा कहा जाता है। ऐसा काल महदादि तत्त्वों के लिए, और उस तत्त्व के अभिमानी जीवों को भयावह होने के कारण सकल भूतों का आश्रय होते हुए अन्तर्गत हो भूतों के द्वारा भूतों को ग्रसते हुए, यज्ञफलप्रदाता होने के कारण वशीकृत भूत हो, प्रभुता को धारण कर, विष्णु प्रकाशित होता रहता है। उसका (कोई) मित्र, शत्रु, बन्धु नही है। ऐसा विष्णु सकल जन में आविष्ट हो अप्रमत्त हो, प्रमत्त जनो का संहारक होता है। उसके भय से वायु वहती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, नक्षत्रगण ज्योतित होता है, चन्द्र प्रकाशित होता है। उन-उन कालों में वृक्षलतादि ओषधियों के साथ मिलकर पुष्प-फल भरित होते हैं। सरिताएँ बहती हैं। सागर सीमा

गूड वरवुन ग्रुंग वॆऱचु। आकाशबु सकलजनंबुलकु नवकाशं बिच्चु। महत्तत्त्वंबु जगत्तुनकु नंकुर स्वरूपंबु गावुन सप्तावरणावृतंबगु लोकं-बनु स्वदेहंबु विस्तरिपंजेयु। गुणाभिमानुलगु ब्रह्मादुलु सर्वेश्वरुनि चेत जगत्सर्गंबु नंदु नियोगिपंबडि प्रतिदिनंबु नय्ययि सर्गंबुचेय नप्रमत्तुलै युंड्डुरु। पित्रादुलु पुत्रोत्पत्ति जेयुदुरु। कालुंडु मृत्युसहायुंडै मारकुंडै युंडु। चरात्मकंबगु सकल प्रपंचंबु भगवदधीनंबयि युंडु। अनि चॆप्पि कपिलुंडु वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 963 ॥

अध्यायमु—३०

कं. नॆऱि निट्टि निखिल लोके-
श्वरुनि पराक्रममु दॆलिय सामर्थ्यंबॆ-
व्वरिकिनि गलुगदु मेघमु
गरुवलि विक्रममु दॆलियगालेनि गतिन् ॥ 964 ॥

क. मगुवा! विनु सुख हेतुक-
मगु नर्थमु दॊरकमिकि महादुःखमुनं
बगुलुदुरिदि यंतयु ना
भगवंतुनि याज्ञ जेसि प्राणुलु मऱियुन् ॥ 965 ॥

पार न करते हुए (हद में) रहते हैं। अग्नि प्रज्वलित होती है। भूमि गिरियों के साथ भारवती हो दब जाने में डरती है। आकाश सकल जन के लिए अवकाश (जगह) देता है। महत्तत्त्व जगत का अंकुरस्वरूप है, इसलिए सप्तावरण से आवृत हो लोक नामक स्वदेह का विस्तार करता है। गुणाभिमानी होकर ब्रह्मादि लोग सर्वेश्वर के जगत के सृजन-कार्य में नियोजित हो, प्रतिदिन उन-उन सर्गों के करने में अप्रमत्त हो रहते हैं। पित्रादि लोग पुत्रोत्पत्ति करते हैं। काल मृत्यु का सहायक बन, मारक हो रहता है। चरात्मक हो सकल संसार भगवान के अधीन बना रहता है। ऐसा कहकर कपिल ने और इस प्रकार कहा। ९६३

अध्याय—३०

[कं.] जिस प्रकार पवन के विक्रम को मेघ नहीं जान सकता उस प्रकार निखिल लोकेश्वर के पराक्रम को विदित करने की सामर्थ्य किसी में कभी नही होती, ९६४ [कं.] वनिता! सुनो! सुख के कारण अर्थ की प्राप्ति न होने पर भगवान् की माया के कारण प्राणिगण महादुःख को प्राप्त होते हैं। ९६५ [सी.] निश्चित रूप से अनित्य गृह, क्षेत्र, पशु, धन, सुत,

सी. पूनि यनित्यंबुलैन गृह क्षेत्र पशु धन सुत वधू बांधवादि
विविध वस्तुवुलनु ध्रुवमुगा मदि नम्मि वरलु दुर्मति यगु वाडु जंतु
संघातमगु देहसंबंधमुन निलिच यॆथि नॆथ्ये योनुलंदु जॊरग
ननुगमिंचुनु वानियंदु विरक्तुंडु गाक युंडुनु नरकस्थुडैन

ते. देहि यात्मीय देहंबु दिविरि वदल-
लेक तन कदि परम सौख्याकरंबु
गागर्वतिंचु नदियुनु गाक यतडु,
देवमाया विमोहित भावुडगुचु ॥ 966 ॥

कं. घनमुग बुत्र वधू पशु, धन गृह रक्षणमुनंदु दत्तत्क्रियलन्
मनमुन दलपोयुचु दिन, दिनमुन् दंदह्यमान देहं बुगुचुन् ॥ 967 ॥

कं. अति मूढ हृदयुमडगुचु दु-
रितकर्मारंभमुन जरिपुचु दरुणी-
कृत गोप्य भाषणमुलनु,
सुत कल संभाषणमुल जॊक्कुचु मरियुन् ॥ 968 ॥

कं. विनु मिंद्रिय परवशुडै, मुनुकॊनि तत्कूटधर्ममुलुगल दुःखं
बनयमु सुखरूपंबुग, मनमुन दलपोसि तदभिमानुंडगुचुन् ॥ 969 ॥

कं. सततमु वमतम संपा-
दितमगु नर्थमुल चेत धृति वरलकु गु-
त्सितमति हिंसलु सेयुचु,
नतिमूढ मनस्कुलगुचु नात्मजनमुलन् ॥ 970 ॥

वधू, बांधव (रिश्तेदार) आदि विविध वस्तुओं को मन में ध्रुव (शाश्वत) विश्वास कर, दुर्मति होनेवाला [व्यक्ति] जन्तुओं के संघात रूपी देह सम्बन्ध से स्थित हो, किन-किन योनियो में प्रवेश करने का अनुगमन करता है, उनमें विरक्ति न होते हुए नरकस्थ हो, [ते.] देही अपनी देह को चाहकर, [उसे] छोड़ न सक, अपने लिए उसी को परम सुख कारक मानकर, व्यवहार करते हुए (और) इसके अतिरिक्त वह देह-माया से विमोहित भाववाला हो, ९६६ [कं.] घन रीति से पुत्र, वधू, पशु, धन, गृह के संरक्षण में, उन-उन क्रियाओं को मन में, विचार करते हुए दिन-प्रतिदिन जलनेवाले शरीर को लेकर, ९६७ [कं.] अति मूढ़ हृदय वाला होते हुए, दुरित कर्मों के आरम्भ (करने) में विचरण करते हुए, तरुणी के साथ होनेवाले रहस्यपूर्ण भाषणों (तथा) पुत्रों के प्रेमपूर्ण सम्भाषणों में परवश (मोहित) होते हुए, और, ९६८ [कं.] सुनो ! इन्द्रिय [सुख] में परवश हो उन कूट धर्मों में लगकर दुःख को सदा सुखरूप में भावना कर उसी में अभिमानी (घमण्डी) होते हुए, ९६९ [कं.] सदा अपने-अपने सम्पादित

ते. पूनि रक्षिपुचुनु वारि भुक्तशेष, मनुभविपुचु नंतजीवनमु पोक
गडकतो नपुडु परार्थ कामुडगुचु, सत्त्वमॆडलि कुटुंबपोषणमुनंदु ॥971॥

सी. वलिमि चालक मंदभाग्युडै कुमतियै पूनि यप्पुडु क्रियाहीनुडगुचु
दविलि वृथा प्रयत्नंबुलु सेयुचु मूढुडै कार्पण्यमुन जरिचु
नट्टि यकिंचनुडगुवानि जूचि तद्दार सुतादुलात्मलनु वीडु
गडु नशक्तुडु प्रोवगा जालडितडनि सॆग्गिचु रथि गृषीवलुंडु

ते. बड्डुगु मुसलॆद्दु रोसिनपगिदि,
नंत नतडु नॆ वॆटलनु सुखं बंदलेक
तानु पोषिचु जनुलु दन् दनर न्नोव
ब्रतुकु मुदिमियु मिक्किलि वाध परुप ॥ 972 ॥

कं. वॆडरुपु दाल्चि बांधवु, लडलग निर्याणमुनकु नभिमुखुडै यिल्
वॆडलग जालक शुनकमु, वडुवुन गुडुचुचुनु सेनु वडवड वणकन् ॥ 973 ॥

सी. अतिरोग पीडितुंडै मंदमगु जठराग्निचे मिगुल नल्पाशि यगुचु
मॆड्रसि वायुवुचेत मीदिकि नॆगसिन कन्नुलु, कफमुन गप्पवडिन
नाळंबुलुनु, गंठनाळंबुननु घुरघुरमनु शब्दंबु वॊरय बंधु
जनुन मध्यंबुन शयनिचु, वहु विधमुल दन्नु विलुवंग वलुक लेक

धन से निश्चित रूप से परों के प्रति कुत्सित मति से हिंसा करते हुए, अति मूढ़ मतिवाले हो अपने जन की, ९७० [ते.] सप्रयत्न रक्षा करते हुए, उनके जूठन खाते हुए, जीवन (प्राण) न छूटने पर अन्त में तव परार्थ का कामी होते हुए, सत्त्व (वल) से हीन हो, कुटुम्ब के पोषण में, ९७१ [सी.] अशक्त हो, मन्दभागी हो, कुमति हो, चाहकर तव क्रियाहीन होते हुए, लगकर वृथा प्रयत्न करते हुए, मूढ़ वन, कार्पण्य (दीनता) के साथ संचार करनेवाले, अकिंचन को देख, उसकी पत्नी-पुत्रादि मन में, यह अशक्त है, [हमारा] पोषण नहीं कर सकता है, ऐसा सोच, [ते.] किसान के बूढ़े बैलों के प्रति घृणा प्रकट करने की रीति, हेयभाव प्रकट करते हैं। तव वह किसी प्रकार से सुख प्राप्त न कर सक, अपने द्वारा पोषित जन के अपना पालन (पोषण) करने पर, जीवन तया बुढ़ापे के अति पीड़ित करने पर, ९७२ [कं.] विकृत रूप धारण कर, वन्धुजनों के रोते समय, निर्याण का अभिमुखी हो, घर छोड़ न जा सक, कुत्ते की रीति खाते हुए, शरीर के थरथर कम्पित होने पर, ९७३ [सी.] रोग से अति-पीड़ित हो, मन्दजठराग्नि के कारण अल्पाशि (कम खाते) हुए, वायु (वात) के कारण ऊपर उठी हुई आँखों, कफ से आच्छादित [कंठ] नाल (तथा) कण्ठनाल में घुर-घुर की ध्वनि निकलते समय बन्धुजन के बीच में सोते हुए, अनेक प्रकार से पुकारने पर भी न बोल पाते (प्रत्युत्तर न दे सकते)

ते. चटुलतर कालपाश वशंगतात्मु-
डगुचु बिड्डल बेंड्लामु नरसि प्रोचु
चित विकलमुलैन हृषीकमुलुनु,
गलिगि विज्ञानमुन बासि कण्टुडगुचु ॥ 974 ॥

व. अंत मरणावस्थं बोंदु समयंबुन नतिभयंकराकारुलुनु, सरभसेक्षणुलुनु नगु यमदूतलिद्दरु दन मुंदर निलिचिनं जूचि, त्रस्तहृदयुंडै शकृन्मूत्रंबुलु विडुचुचु, यमपाशंबुलचे गळंबुन बद्धुडै शरीरंबुवलन निर्गमिंचि, यातनाशरीरंबु नवलंबिंचि, बलात्कारंबुन दीर्घंबै दुर्गमंबगु मार्गंबुन बोंदि, राजभटुलचे नीयमानुंडगुचु दंडंबुनकभिमुखुंडै चनु नपराधिचंदंबुन जनुचुंडि ॥ 975 ॥

चं. अनयमु मूर्छनोंदु शुनकावळि चेतनु भक्ष्यमाणुडै
यनुपम कालकिंकर भयंकर तर्जन गर्जनंबुलन्
मनमु गलंग देहमु समस्तमु कंपमु नोंदगा बुरा-
तनभव पापकर्म समुदायमु जित्तमुलो दलंपुचुन् ॥ 976 ॥

सी. अनुपम क्षुत्तृष्णलंतर्व्यथल जेय झंझानिल ज्वलज्वलन चंड
भानु प्रदीप्ति तप्तंबैन वालुका मार्गानुगत तप्यमान गात्रु-
डै वीपु कशलचे नडुवंग विकलांगुडगुचु मार्गमुनंदु नचट नचट
जाल मूर्छिलि याश्रयशून्यमगु नीळ्ळ मुनुगुचु लेचुचु मोनसि पाप-

हुए, [ते.] अति भयंकर कालपाश के वश में हो, सन्तान (तथा) पत्नी के पोषण करने की चिन्ता में विकल होनेवाले इन्द्रियों से युक्त हो, विज्ञान को छोड़कर, पापी होते हुए, ९७४ [व.] अन्त में मरणावस्था को प्राप्त होते समय, अतिभयंकर आकारवाले, अट्टहास करनेवाले दो यमदूतों के अपने सम्मुख [आ] खड़े होते देखकर, त्रस्त हृदयवाले हो, शकृत् (मल) [तथा] मूत्र को छोड़ते हुए, गले में यमपाश से बद्ध होकर शरीर से निकलकर, यातना-शरीर को ग्रहण कर, बलात्कार से दीर्घ (तथा) दुर्गम मार्ग में राजभटों के द्वारा लिवा ले जानेवाले, दण्ड के अभिमुखी हो चलनेवाले अपराधी के समान चलते हुए। ९७५ [चं.] सदा मूर्च्छित होता रहता है। शुनकावली से भक्ष्यमाण हो, काल (यम)- किंकरों के भयंकर तर्जन-गर्जन से मन के व्याकुल होने पर, समस्त [देह] के कम्पित होने पर, पूर्वदेह के सांसारिक कर्म समुदाय को चित्त मे लाते हुए, ९७६ [सी.] अनुपम क्षुधा (भूख), तृष्णा के अन्तर्व्यथाओं के [उत्पन्न] करने पर, झंझानिल [तथा] प्रज्वलित होनेवाले प्रचण्ड सूर्य की प्रदीप्ति से तप्त हो, रेतीले मार्ग में चलते हुए, तप्त शरीर वाला बनकर, चाबुक से पीठ धुनाते हुए, विकलांग वाला बन, मार्ग में यहाँ-वहाँ (सर्वत्र) अत्यधिक रूप

ते. रूपमैन तमसुचे निरूढुडगुचु, वॆलय दॊंबदि तॊम्मिदिवेल योज-
नमुल दूरंबु गल यमनगरमूनकु, बूनि यमभटुल् गॊंपोव बोवु नंत ॥977॥

व. इट्लु महा पापात्मुंडैन वाड् मुहूर्तत्रय कालंबुननु, सामान्य दोषि यगुवाड् द्विमुहूर्तंबुलनु नेगि यातनं बॊंदु। अंदु ॥ 978 ॥

कं. पट्टुदुरु कॊट्रवुलनु वडि, वॆट्टुदु रसिपत्रिकलनु बॆनुमंटलयं-
दॊट्टुदुरु नॊडलु नलियग, मट्टुदु रप्पापचित्तु मत्तुं बॆलुचन् ॥ 979 ॥

उ. मुंतुरु तप्ततोयमुल मॊत्तुदुरुग्र गदासि धारलन्
द्रॆंतुरु पॊट्ट प्रेवुलु वधिंतुरु मीद निभेंद्र पंक्ति द्रॊ-
प्पिंतुरु घोर भंगि गरपिंतुरु पामुलचेत बिट्टु द्रॊ-
ब्बितुरु मीद गुंड्लु तिनिपिंतुरु देहमु गोसि कंडलन् ॥ 980 ॥

व. मरियु, गुटुंबपोषणंबुन गुक्षिभरुंडगुचु नधर्मपरुंडै भूतद्रोहंबुन नतिपापुंडै निरयंबुनं बॊंदि, निजधनंबु गोलुपडि मीर वॆट्टु नापन्नुनि बंदंबुन बरस्पर संबंधंबुन गल्पिपं बडिन तमिस्रांध तामिस्र रौरवादु लगु नरकंबुलं बडि, तीव्रंबुलैन बहुयातनल ननुभविंचि, क्षीणपापुंडै पुनर्नरत्वंबुनुं बॊंदु। अनि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 981 ॥

से मूर्च्छित हो, आश्रयशून्य जल में डूबते और उठते हुए, [ते.] पाप रूपी तम से निरूढ होते हुए, निन्यान्नवे योजनों की दूरी में स्थित यमनगर ले जाए जाने पर, तब, ९७७ [व.] इस प्रकार महा पापात्मा हो तो तीन मुहूर्तों के समय में, सामान्य दोषी हो तो, दो मुहूर्तो के समय में चलकर यातनाओं को प्राप्त होगा। वहाँ। ९७८ [कं.] मुराड़ों से मारेंगे, असि-पत्रिकाओं (आरों) से काटेंगे, प्रचण्ड ज्वालाओं में शरीर व्याकुल हो जाए (झुलस जाए) ऐसा धकेलेंगे, (और) उन पाप चित्तवाले (मद) मत्तों को मार डालेंगे। ९७९ [उ.] तप्तजलों में डुबोयेंगे, उग्रगदा (तथा) असि-धाराओं से मारेंगे, पेट की आँतड़ियों को काट फेंकेंगे, वध करेंगे, इभेंद्र (हाथियों) के समूह से ऊपर (रौंदवाएँगे) घोर रीति से साँपों से डसवायेंगे, पहाड़ों से नीचे गिरायेंगे, पत्थर खिलायेंगे, देह का मांस काटेंगे, ९८० [व.] और कुटुम्ब के पोषण में पेट भरते हुए, अधर्म-पर (-रत) हो, भूत-द्रोह से अतिपापी हो, दुर्गति को प्राप्त कर, अपने धन को खोने वाले आपन्न की रीति परस्पर सम्बन्धों से कल्पित होनेवाले तमिस्र, अन्ध-तमिस्र, रौरव आदि नरकों में पतित हो, तीव्र यातनाओं का अनुभव कर, पाप के क्षीण होने पर पुनः नरत्व को प्राप्त होगा। ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। ९८१

अध्यायमु—३१

कपिलुंडु देवहूतिकि बिंडोत्पत्ति क्रममु दॆलुपुट

सी. कर्कीनि मरि पूर्वकर्मानुगुणमुन शश्वत्प्रकाशकुं डीश्वरुंडु
घटकुंडु गावुन ग्रम्मर जीवुंडु देहसंबंधंबु दिविरि ताल्प
दॊरकॊनि पुरुष रेतो बिंदुसंबधियै वधूगर्भंबुनंदु जॊच्चि
कॆकॊनि यॊकरात्रि गलिलंबु पंचरात्रमुल बुद्बुदमुनु दशम दिवस

ते. मंबु गर्कंधुवै युंडु नंत मीद,
बेशि यगु नंतमीदट बॆचियंड
कल्पमगु नॊक्क नॆल मस्तकमुलु मास
यमळमैनन् गरचरणमुलु बॊडमु ॥ 982 ॥

व. मरियु मासत्रयंबुन नखरोमास्थि चर्मंबुलु लिंगच्छिद्रंबुलुनु गलिगि, नालवमासंबुन सप्तधातुवुलु, पंचमासंबुन क्षुत्तृष्णलु गलिगि, षष्ठमासंबुन माविचेत बॊदुवंबडि, तल्लि कुक्षिनि दक्षिण भागंबुनं-दिरुगुचु, मातृभुक्तान्न पानंबुलवलन दृप्ति बॊंदुचु, समस्त धातुवुलुनु गलिगि जंतुसंकीर्णंबगु विण्मूत्रगर्तंबंदु दिरुगुचु, ग्रिमि भक्षित शरीरुंडै मूर्छलं बॊंदुचु, दल्लि भक्षिंचिन कटु तिक्तोष्ण लवण क्षाराम्लाद्युल्बणंबुलैन रसंबुल चेत

अध्याय—३१

कपिल का देवहूति को पिण्डोत्पत्ति-क्रम विदित करना

[सी.] पूर्व कर्मों के अनुसार [धारण कर] लेनेवाले शाश्वत प्रकाशक, ईश्वर, घटक है, इसलिए फिर से देह सम्बन्धों को धारण करने को उद्यत हो, पुरुष के रेतस की बिन्दु से सम्बन्धित हो, वधू (स्त्री)-गर्भ में प्रवेश कर, एक रात में कलिल (मिलित) हो, पंचरात्रों में बुद्बुद के समान हो, [ते.] दसवें दिन में कर्कन्धु (बेर) के रूप में होगा; तब बेसी (मांसपिण्ड) हो, और आगे सजे हुए अण्ड के समान हो, एक महीने में सिर तथा यमल, (दो) महीनों में [उसके] कर और चरण उत्पन्न होंगे। ९८२ [व.] और तीसरे महीने में नख, रोम, अस्थि, चर्म, लिंग, छिद्र उत्पन्न हो, चौथे महीने में सप्त धातु, पाँचवें महीने में माया (जरायु) से परिवेष्टित हो, माता की कोख में दक्षिण भाग में फिरते हुए, माता द्वारा खाये गये अन्न-पानादि से तृप्त होते हुए, समस्त धातुओं के साथ युक्त हो, जन्तु-संकीर्ण विण (मल) तथा मूत्र के गर्त में फिरते हुए, कटु, तिक्त, उष्ण, लवण, क्षार, अम्ल, आदि उल्बण (उफान वाले) रसों से परितप्त अंगवाला बन, जरायु से

वरितप्तांगुंडगुचु, जरायुवुन गप्पंबडि, बहिःप्रदेशंबुनंदु नांत्रंबुलचेत बद्धुंडै, कुक्षियंदु शिरंबु मोपिकॊनि, भुग्नंबैन पृष्ठ ग्रीवोदरुंडै, स्वांगचलनंबुनंदु नसमर्थुंडगुचु, बंजरंबुनंबु बद्धशकुंतंबु चंदंमुन नुंडि, दैवकृतंबैन ज्ञानंबुनं बूर्वजन्म दुष्कर्म शतंबुलं दलंपुचु, दीर्घोच्छ्वासंबु सेयुचु, ने सुखंबुनुं बॊंदक वर्तिंचु। अंत नेडव मासंबुन लब्ध ज्ञानुंडै चेष्टलु गलिगि, विट्क्रिमि सोदरुंडै यॊकदिक्कुन नुंडक संचरिंपुचु, प्रसूति मारुतंबुलचेत नतिवेपितुंडगुचु, याचमानुंडुनु देहात्मदर्शियु बुनर्गर्भवासंबुनकु भीतुडुनगुचु बंधनभूतंबुलगु सप्तधातुवुलचे बद्धुंडै, कृतांजलि पुटुंडुनु दीनवदनुंडुनै, जीवुंडु दानॆव्वनिचे नुदरंबुन वसियिंप नियमिंपंबडॆ नट्टि सर्वेश्वरु निट्लनि स्तुतियिंचु ॥ 983 ॥

गर्भस्थुंडगु जीवुंडु भगवंतुनि स्तुतिंचुट

कं. अनयमुनु भुवन रक्षण, मुनकै स्वेच्छानुरूपमुन बुट्टॆडि वि-
ष्णुनि भयविरहितमगु पद, वनजयुगं बॊथि गॊल्तु वारनि भक्तिन् ॥984॥

व. अदियुनुं गाक पंचभूत विरहितुंडय्युं बंचभूत विरचितंबैन शरीरंबुनंदु गप्पंबडि यिंद्रिय गुणार्थ चिदाभास ज्ञानुंडनैन नेनु ॥ 985 ॥

आच्छादित हो, बाह्य भाग में आँतड़ियों से बद्ध हो, पेट में सिर रखकर, टेढ़े बने पीठ-ग्रीवा-उदर लेकर, अपने अंगों के संचालन में असमर्थ हो, पिंजरे में बद्ध शकुन्त [पक्षी] की रीति स्थित हो, दैवकृत ज्ञान से पूर्व जन्म में कृत सैकड़ों दुष्कर्मों का स्मरण करते हुए, दीर्घ उच्छ्वास निकालते हुए (उसाँस भरते हुए) किसी भी सुख को प्राप्त न करते हुए संचरण करता है। तब सातवें महीने में लब्ध ज्ञानी हो, चेष्टाओं (हिलने-डुलने) से युक्त हो, विट (मल) में स्थित कीड़े का भाई हो, एक स्थान पर न रहकर भ्रमण करते हुए प्रसूतिपवन से अतिपीड़ित होते हुए, याचमान (याचना करनेवाला) तथा देहात्मदर्शी हो, पुनः गर्भवास के लिए भयभीत होते हुए, बन्धन के कारणस्वरूप सप्त धातुओं से बद्ध हो, अंजलि जोड़कर, दीन वदन वाला होकर, जीव, पेट में निवास करने के लिए जिससे नियोजित हुआ हो, उस सर्वेश्वर की स्तुति करता है। ९८३

गर्भस्थ जीव का भगवान की स्तुति करना

[कं.] सदा भुवनों की रक्षा के लिए स्वेच्छा रूप से उत्पन्न होनेवाले विष्णु की [तथा] [अपने] भय को दूर करनेवाले [उसके] चरण-कमलों की सेवा अवारित भक्ति से करता हूँ। ९८४ [व.] इसके अतिरिक्त पंचभूतों से रहित होकर भी, पंचभूतों से विरचित हुए शरीर

सी. ॲंठवडु निखिल भूतेंद्रियमयमगु मायावलंबन महित कर्म
बद्धुंडै वर्तिंचु पगिदि दंदह्यमानंबगु जीवचित्तंबुनंदु
नविकारमै शुद्धमै यखंड ज्ञानमुननुंडु वानिकि मुख्य चरितु-
नकु नकुंठित शौर्युनकु वरंज्योतिकि सर्वज्ञुनकु गृपाशांतमतिकि

ते. गडगियु प्रकृति पुरुषुलकंटॆ बरमु-
डैनवानिकि स्रोक्कॆद नस्मदीय
दुर्भरोदग्र भीकर गर्भ नरक-
वेदनलु मान्चि शांति गाविंचु कोरकु ॥ 986 ॥

सी. नावुडु सुतुनकु देवहूतिद्लनु महितात्म ! यॆव्वनि मायचेत
घन मोहुलै गुणकर्म निमित्तसांसारिकमार्ग संचारमुलनु
धृतिचॆडि यॆलसि यॆदिक्कु नॆरुंगक हारपद ध्यानंबु नात्ममरुचि
युंडु वारलकु नॆ युक्तियु नम्महापुरुषु ननुग्रहबुद्धिलेक

ते. तद्गुणध्यान तन्मूर्ति दर्शनमुलु
गोचरिंचुट यॆट्लु ! नाकुनु प्रबोध
मलितमुग नानतिम्मन्न गपिलु डनियॆ,
नंबतोडनु सुगुणकदंब तोड ॥ 987 ॥

व. अट्टि यीश्वरुंडु कालत्रयंबुनंदुनु जंगम स्थावरांतर्यामि यगुटं जेसि

से आच्छादित हो इन्द्रियों के गुणार्थ चिदाभास ज्ञानी हो, मैं, ९८५
[सी.] निखिल भूतेन्द्रियमय हो, माया के आधार महित कर्मों में
बद्ध हो, व्यवहार करने की रीति, दन्दह्यमान हो जीव के चित्त में
अविकारी हो, शुद्ध हो, अखण्ड ज्ञान में स्थित है, जो उस मुख्य चरितवाले
को, अकुण्ठित शौर्यशाली, परमज्योति, सर्वज्ञ, कृपाशीली, शान्त मतिवाले,
[ते.] प्रकृति, पुरुष से परे की, (अपने) उदग्र, भीकर, गर्भनरक की
पीड़ा को हटाकर शान्ति प्राप्त कराने के लिए वन्दना करता हूँ। ९८६
[सी.] तब सुत से देवहूति ने इस प्रकार कहा कि महात्मा ! जिसकी माया
से घनमोही हो, गुणकर्मनिमित्त से सांसारिक मार्गों में संचार करते हुए,
धृति को छोड़कर, किसी भी दिशा को न जानकर, हरिपदों का ध्यान न
करते हुए, अपने-आप में भूले रहनेवालों को, किसी भी प्रकार की युक्ति
से उस महापुरुष की अनुग्रह-बुद्धि के प्राप्त न कर सकनेवालों को,
[ते.] उसके गुणध्यान, मूर्ति (आकार) के दर्शन कैसे सम्भव हो सकते हैं ?
मुझे प्रबोध करते हुए, आज्ञा दो, कहने पर अम्बा से, जो सुगुणों का कदम्ब
है, कपिल ने कहा। ९८७ [व.] ऐसे ईश्वर के कालत्रय में, जंगम, स्थावर
में अन्तर्यामी होकर रहने के कारण जीव कर्म के मार्गों में संचार करनेवाले
तापत्रय के निवारण के निमित्त भजन करते हैं, ऐसा कहकर और आगे

जीवकर्म मार्गंबुलं प्रवर्तिचुवारु तापत्रय निवारणंबु कोऱकु भजियितु-
रनि चॅप्पि मऱियु निट्लनियॅ ॥ 988 ॥

कं. जनयित्रि ! गर्भमंदुनु, घन क्रिमि विण्मूत्र रक्त गर्तमुलोनन्
मुनुगुचु जठराग्निनि दिन, दिनमुनु संतप्यमान देहुंडगुचुन् ॥ 989 ॥

आ. दीनवदनुडगुचु देहि यी, देहंबु वलन निर्गमिप दलचि चनिन
नॅलल नॅन्निकॊनुचु नॅलकॊनि गर्भंबु, वलन वॅडल द्रोयुवारु गलरॅ ?॥990॥

व. अनि तलंपुचु दीनरक्षकुंडॅन पुंडरीकाक्षुंडु दन्नु गर्भ नरकंबु वलन
विमुक्तुनि जेय नम्महात्मुनिकि प्रत्युपकारवु सेय लेमिकि नंजलि मात्रंबु
सेयंदगुनट्टि जीवुंडनैन नेनु शमदमादि युक्तंबॅन शरीरंबुनंदु विज्ञान
दीपांकुरंबुनं बुराणपुरुषु निरीक्षितु । अनि मऱियु निट्लनियॅ ॥ 991 ॥

सी. नॅलकॊनि बहु दुःखमुलकु नालयमैन यी गर्भनरकमु नेनु वॅडल
जाल बहिःप्रदेशमुनकु वच्चिन ननुपम देवमाया विमोहि-
तात्मुंडनै घोरमगुनट्टि संसार चक्रमंबुनु बरिभ्रमण शीलि-
नै युंडवलयु दा नदिगाक गर्भंबु नंदुंडु शोकवु नपनयिंचि

ते. यात्म कनयंबु सारथि यॅनयट्टि
रुचिर विज्ञानमुन दमोरूपमैन
भूरि संसार सागरोत्तारणंबु
चेसि या यात्म नरसि रक्षिचुकॊंदु ॥ 992 ॥

इस प्रकार कहा । ९८८ [कं.] जननी ! गर्भ में घन (अधिक) क्रिमि, बिण, मूत्र और रक्त के गर्त में डूबते [-उतराते] हुए जठराग्नि से दिन-ब-दिन सन्तप्त देहवाला होते हुए, ९८९ [आ.] दीन वदनवाला हो, देही इस शरीर से बाहर निकलना चाहकर, वीते महीने गिनते रहता है, [सोचता है] ऐसे [उस] गर्भ से बाहर ढकेलनेवाला कोई है ? ९९० [व.] ऐसा विचार करते हुए अपने को गर्भ-नरक से विमुक्त करने पर, दीनरक्षक, पुण्डरीकाक्ष उस महात्मा के प्रति प्रत्युपकार न कर सक, अंजलि मात्र घटित कर (नमस्कार मात्र कर) सकनेवाला, (ऐसा) जीव मैं शम, दम आदि से युक्त हो शरीर में विज्ञानदीप के अंकुर से उस पुराण पुरुष के दर्शन करता हूं । [ऐसा] कहकर और आगे इस प्रकार कहा । ९९१ [सी.] अनेक दुःखों का निलय बने हुए, इस गर्भ-नरक से मैं बाहर निकल नहीं सकता (और) बाह्य प्रदेश मे आने पर अनुपम देव-माया से विमोहित हो, घोर संसारचक्र में परिभ्रमणशील (दुःखी) बनकर रहना पड़ेगा, इसके अतिरिक्त गर्भ में घटित होनेवाले शोक का शमन कर, [ते.] आत्मा के लिए सारथी होनेवाले रुचिर विज्ञान से तमोरूपी भूरि संसार-सागर को तारने के लिए इस आत्मा की रक्षा प्रेम से कर लेता

व. मरियुनु ॥ 993 ॥

चं. भरमगुचुन्न दुर्व्यसन भाजनमै घन दुःखमूलमै
यरयग वेंक्कु तूट्लु गलदै क्रिमि संभवमैनयट्टि दु-
स्तर बहु गर्भ वासमुल संगति मान्पुटकै भजिंचेदन्
सरसिजनाभ भूरि भवसागरतारक पादपद्ममुल् ॥ 994 ॥

कं. अनि कृतनिश्चयुडै ये, चिन विमलज्ञानि यगुचु जीवुडु गर्भं
बुन वेंडल नील्लकुंडन्, जनियेंडु नवमासमुलुनु जननी! यंतन् ॥ 995 ॥

व. दशममासंबुन वानि नधोमुखुं गाविंचिन नुच्छ्वास निश्वासंबुलु लेक घन दुःख भाजनुंडुनु, विगतज्ञानुंडुनु, रक्तदिग्धांगुंडुनै विष्ठास्थ क्रिमि बोलि नेलंबडि येड्चुचु ज्ञानहीनुंडै जडुं बोलं नुंडि, यंत निजभावानभिज्ञुलगु नितरुलवलन वृद्धि बोंदुचु नभिमतार्थंबुलं जॅप्पनेरक यनेक कीटसंकुलंबैन पर्यंकबुनंदु शयानुंडै यवयवंबुलु कंडूयमानंबुलैन गोकनेरक यासनोत्थान गमनंबुल नशक्तुंडै तन शरीर चर्मंबु मशक मत्कुण मक्षिकादुलु वीडुव ग्रिमुलचे व्यथंबडु क्रिमिकुं बोलि, दोदूयमानुंडै रोदनंबु सेयुचु, विगतज्ञानुंडै युंडुचु, शैशवंबुनं दत्तत्क्रियानुभवंबु गाविंचि,

---

हूँ। ९९२ [व.] और भी, ९९३ [चं.] भार बने हुए, दुर्व्यसन-रूप के भाजन बने हुए, घन दुःख के मूल हो, विचार करने पर अनेक छिद्रवाले हो, क्रिमिसम्भव बने हुए दुस्तर बहुगर्भवास की संगतियों से मुक्त होने के लिए भूरि-भवसागर के तारक सरसिजनाभ (विष्णु) के चरण-कमलों का भजन करता हूँ। ९९४ [क.] जननी! ऐसा कृतनिश्चय वाला बन, विमलज्ञानी के रूप में बढ़नेवाले जीव के गर्भ से बाहर न निकलने को चाहते समय नव मास बीत जाते हैं। तब, ९९५ [व.] दसवें महीने में उसके अधोमुख होने पर, उच्छ्वास, निःश्वास से रहित हो, घन दुःख से पीड़ित हो, विगत-ज्ञान वाले हो, रक्त से सने हो, विष्टस्थ-क्रिमि की भाँति ज़मीन पर गिरकर रोते हुए, ज्ञानहीन हो, जड़ की रीति स्थित होने पर, अपने भाव से अनभिज्ञ होनेवाले अन्यों से वृद्धि को पाते हुए, अपनी इच्छाओं को प्रकट करने में असमर्थ हो, अनेक कीड़ों से भरे कीचड़ में लेटकर, अवयवों में खुजली होने पर खुजा न सक, आसन, उत्थान तथा गमन (बैठने, उठने और चलने) में अशक्त हो, अपने शरीर के चर्म को मशकों (मच्छरों), मत्कुणों (खटमलों), मक्षिकाओं (मक्खियो) आदि के नोचने पर क्रिमियो से व्यथा पानेवाले क्रिमिक (क्रिमि में स्थित जीव) की रीति दोदूयमान होते हुए, रोदन करते हुए, विगत-ज्ञान वाले हो, शैशव में उन-उन क्रियाओं का अनुभव करते हुए, पौगण्डावस्था (बाल्यावस्था) में उसके अनुरूप अध्ययन आदि दुःखों का अनुभव कर,

पौगंड वयस्सुन ददनुरूपंबुलगु नध्ययनादि दुःखंबु लनुभविंचि, तदनंतरंब यौवनंबु प्राप्तंबैन नभिमतार्थ फलप्राप्तिकि साहस पूर्वबुलगु वृथा-ग्रहंबुलु सेयुचु पंचमहाभूतारब्धंबगु देहंबंदु वॅवकु मारु लहंकार-ममकारंबुलु सेयुचु ददर्थंबुलैन कर्मंबु लाचरिंपु संसार बद्धुंडगुचु, दुष्पुरुष संगमंबुन शिश्नोदर परायणुंडै वर्तिपुचु, नज्ञानंबुनं जेसि वर्धिष्यमाण रोषुंडगुचु, तत्फलंबुलगु दुःखंबु लनुभविपुचु, गामुकुंडै निज नाशनंबुनकु हेतुवुलगु कर्मंबुलं प्रवर्तिपुचुंडु मरियुनु ॥ 996 ॥

सी. जनयित्रि ! सत्यंबु शौचंबु दययुनु धृतियु मौनंबु बुद्धियुनु सिग्गु
क्षमयुनु यशमुनु शमदम भगमुलु मोदलुगा गल गुणंबुलु
नशिंचु जनुल कसत्संगमुन ननि यॅरिगिंचि वॅंडियु निट्लनु विनुमु मूढ
हृदयुलु शांति विहीनुलु देहात्म बुद्धुलु नंगना मोहपाश

ते. बद्ध केळीमृगंबुल पगिदि दगिलि,
परवश स्वांतमुल शोच्यभावुलैन
वारि संगति विडुवंगवलयु नंदु
नंगना संगममु दोषमंड्रु गान ॥ 997 ॥

व. दीनि कॉक्क यितिहासंबु गलदु, तॉल्लि यॉक्कनाडु प्रजापति तन कूतुरैन भारति मृगीरूप धारिणियै युंड जूचि तदीय रूपरेखा विलासंबुलकु

उसके पश्चात् यौवन के प्राप्त होने पर इच्छानुकूल फल की प्राप्ति के लिए साहसपूर्ण [कार्य] तथा वृथा क्रोध करते हुए, पंचमहाभूतात्मक देह में (स्थित हो) अनेक बार अहंकार तथा ममकार [व्यक्त] करते हुए, उसके लिए [सदा] कार्य करते हुए, संसार में बद्ध हो, दुष्पुरुषों की संगति से शिश्न (तथा) उदरपरायण हो, व्यवहार करते हुए (अज्ञान के कारण वर्द्धिष्यमाण रोषवाले हो (अत्यन्त क्रोधी हो), तत्फलात्मक दुःखों का अनुभव करते हुए, कामुक हो अपने नाश के कारणस्वरूप कर्मों में प्रवर्तित होते हुए और ९९६ [सी.] जनयित्री ! जनों (लोगों) में सत्य, शौच, दया, धृति, मौन, बुद्धि, लज्जा, क्षमा, यश, शम-दम, भग (वैराग्य) आदि गुणों का असत्संगति के कारण नाश होता है। ऐसा बिदित कर और ऐसा कहा। सुनो ! मूढ़ हृदय वाले, शान्ति-विहीन तथा देहात्मबद्ध लोग अंगना के मोहपाश मे बद्ध होनेवाले, [ते.] केली मृगों की रीति, केली में लीन हो, परवश हो, अन्तरंग में दुःखी होनेवालों की संगति छोड़ देनी चाहिए। उसमें अंगना का संगम करना दोष माना जाता है, इसलिए, ९९७ [व.] इसका एक [अपना] इतिहास है। पूर्व में एक दिन प्रजापति ने अपनी पुत्री भारती के मृगीरूप-धारिणी बनकर रहते देखकर, उन रूप-रेखाओं के विलास (सौन्दर्य) के सम्मुख हारकर

नोट्टवडि विवशीकृतांतरंगुंडुनु, विगत त्रपुंडुनुनै मृगरूपंबु नोंदि तदनुधावनंबु हेयंबनि तलंपक प्रवर्तिंबें गावुन नंगनासंगमंबु वलदु। अस्मदीय नाभीकमल संजात चतुर्मुख निर्मित मरीच्याद्युद्भूत कश्यपादि कल्पित देव मनुष्यादुलंदु माया बलंबुनं गामिनीजन मध्यंबुन विखंडित मनस्कुंडु गाकुंडुटकु बुंडरीकाक्षुंडैन नारायण ऋषिकि दक्क नन्युलकु नेंव्वरिकिनि दीरदनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 998 ॥

ते. रूढि ना माय कामिनीरूपमुननु
बुरुषुलकु नेंल्ल मोहंबु बोंद जेयु
गान बुरुषुलु सतुल संगंबु मानि
योगवृत्ति जरिंपुचु नुंडवलयु ॥ 999 ॥

कं. धीरततो मत्पद सर, सीरुह सेवानुरक्ति जेंदिन वारल्
नारी संगमु निरय, द्वारमुगा मनमुलंदु दलपुदु रेंदुन् ॥ 1000 ॥

कं. हरिमाया विरचितमै, तरुणीरूपंबु दाल्चि धर बर्विन बं-
धुर तृणपरिवृत कूपमु, करणि नदियु मृत्युरूपकंबगु मड्रियुन् ॥ 1001 ॥

चं. धन पशु पुत्र मित्र वनिता गृह कारणभूतमैन यी
तनुवुन नुन्न जीवुडु पदंबडि येंट्टि शरीर मेंत्तिन

(आकृष्ट हो), अन्तरंग में विवश हो, त्रप (लज्जा) छोड़कर, मृग-रूप को प्राप्त कर, उसके पीछे पड़कर दौड़ने को हेय न मानकर, व्यवहार किया, इसलिए अंगना का संगम नहीं करना चाहिए। मेरे नाभिकमल से उत्पन्न चतुर्मुख वाले (ब्रह्मा) से निर्मित मरीचि आदि से उद्भूत होनेवाले कश्यप आदि से कल्पित (सर्जित) देव, मनुष्य आदि में माया के बल के कारण कामिनीजन के बीच में विखण्डित मनवाले न होने में समर्थ पुण्डरीकाक्ष (कमल-नयन) नारायण ऋषि के अतिरिक्त अन्य किसी के वश की बात नहीं है, ऐसा कहा और [आगे] इस प्रकार कहा। ९९८ [ते.] निश्चित रूप से वह माया कामिनी-रूप में सब पुरुषों को मोहित करती है, इसलिए पुरुष लोगों को सतियों की संगति छोड़कर योगवृत्ति से संचरण करना चाहिए। ९९९ [कं.] धीरता के साथ मेरे चरण कमलों की सेवा के अनुराग को प्राप्त करनेवाले [लोग] नारी की संगति को निरय-द्वार (नरक-द्वार) के रूप मे अपने मन में (सदा) विचार करते हैं। १००० [क.] हरि की माया से विरचित हो, तरुणी-रूप को धारण कर, धरा पर घास से भरे हुए कुएँ (बावली) की भाँति वह (नारी) मृत्युरूपक हो विलसती है, और, १००१ [चं.] धन, पशु, पुत्र, मित्र, वनिता, गृह के कारणभूत हुए इस शरीर में स्थित जीव यदि और किसी भी शरीर को धारण करने पर भी, कर्मफल को प्राप्त किये बिना नहीं

ननुगतमैन कर्मफल मंदक पोवगरादु मिन्नु ना-
किन भुवि दूरिनन् दिशल केगिन नॆच्चटनैन दागिनन् ॥ 1002 ॥

व. अट्टि पुरुषरूपंबु नॊंदिन जीवुंडु निरंतर स्त्रीसंगंबुचे वित्तापत्य गृहादि प्रवंबगु स्त्रीत्वंबु नॊंदु। ई क्रमंबुन नंगनारूपुंडगु जीवुंडु मन्मायचे पुरुषरूपंबु नॊंदि, धनादि प्रवुंडगु भर्तनु नात्मबंध कारणंबगु मृत्युवनुग नॆरुंग वलयु। मरियु जीवोपाधि भूतंबगु लिंग देहंबुचे स्वावास भूतलोकंबुन नुंडि, लोकांतरंबु नॊंदुचुं, प्रारब्ध कर्मफलंबु ननुभविंपुचु, मरल गर्मादुलंदासक्तुंडगुचु, मृगयुंडु गानंबुन ननुकूल सुखप्रदुंडैननु मृगंबुनकु मृत्युवगु चंदंबुन जीवुंडु भूतेंद्रिय मनोमयंबैन देहंबु गलिगि युंडु। अट्टि देहनिरोधंबॆ मरणंबु। आविर्भावंबॆ जन्मंबु। कान सकल वस्तु विषय ज्ञानंबु गलुगुटकु जीवुनकु साधनंबु चक्षुरिंद्रियंबु। द्रष्ट दर्शनीय योग्यता प्रकारंबुन जीवुनकु जन्ममरणंबुलु लेवु। कावुन भयकार्पण्यंबुलु विडिचि, संभ्रमंबु मानि, जीव प्रकारंबु ज्ञानंबुनं दॆलिसि, धीरुंडै मुक्तसंगुंडगुचु योग वैराग्ययुक्तंबैन सम्यग् ज्ञानंबुन माया विरचितंबैन लोकंबुन देहादुलं दासक्ति मानि, वर्तिपवलयु। अनि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 1003 ॥

रह सकता, (भले ही) वह आकाश पर चढ़ क्यों न जाय, या भूमि के भीतर क्यों न घुस जाए या दिशाओं में (कहीं) क्यों न छिपा रहे। १००२

[व.] ऐसे पुरुष-रूप को प्राप्त जीव निरन्तर स्त्री-संगति करने के कारण वित्त, अपत्य (पुत्र, पुत्री), गृहादि से युक्त स्त्रीत्व को प्राप्त करता है। इस क्रम से स्त्री-रूप में जीव मेरी माया से पुरुष-रूप को प्राप्त कर, धन आदि देनेवाले पति को आत्मा के बन्धन के कारणस्वरूप मृत्यु-रूप जानना चाहिए। और जीव उपाधिस्वरूप लिंगदेह से अपने निवास-स्थान-भूतलोक से लोकान्तर को प्राप्त करते हुए, प्रारब्ध कर्मफल का अनुभव करते हुए, फिर कर्मादि में आसक्त होते हुए, जंगल में शिकारी अपने अनुकूल सुख को प्राप्त करने पर भी, मृग के लिए मृत्यु बन जाने की रीति जीव भूतेन्द्रिय (तथा) मनोमय हो, देह धारण करता है। ऐसे देह का निरोध करना ही मृत्यु है। आविर्भाव ही जन्म माना जाता है। इसलिए सकल वस्तुओं (तथा) विषयों के ज्ञान को पाने के लिए जीव का साधन चक्षुरिन्द्रिय है। द्रष्टा, दर्शनीय ऐसी योग्यता के अनुसार जीव को जन्म और मृत्यु नहीं होते। अतः भय और कार्पण्य को छोड़कर, सम्भ्रम छोड़कर, जीव का विधान ज्ञान से विदित कर, धीर हो, मुक्तसंगी हो, योग (तथा) वैराग्य से युक्त सम्यक् ज्ञान से माया से विरचित लोक में देहादि में आसक्ति को छोड़कर, संचरण करना चाहिए। ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। १००३

अध्यायमु—३२

गृहमंदु वर्तिंचु गृहमेधुलगुवारु महित धर्मार्थ कामसुल कोरकु
संप्रीतुलगुचु दत्साधनानुष्ठान निरतुलै वेदनिर्णीत भूरि-
भगवत्सुधर्म तद्भक्ति पराङ्मुखुलै देवगणमुल ननुदिनंबु
भजियिंपुचुनु भक्ति वैतृक कर्ममुल् सेयुचु नेप्पुडु शिष्ट चरितु

लगुचु दग देवपितृ सुव्रताढ्युलैन,
काम्य चित्तुलु धूमादि गतुल जंद्र
लोकमुल जेंदि पुण्यंबु लोपमैन,
मरलि वत्तुरु भुविकि जन्मंबु नोंद ॥ 1004 ॥

अदियुनं गाक ॥ 1005 ॥

प्रविमलानंत भोगि तल्पंबु नंदु,
योगनिद्रालुडै हरि युन्नवेळ
नखिल लोकंबुलुनु विलयंबु नोंदु
नट्टि सर्वेश्वरुनि गूर्चि यनघ मतुलु ॥ 1006 ॥

परिकिंपन् निज वर्ण धर्म गरिमन् वाटिल्लु पंकेरुहो-
दर विन्यस्त समस्त धर्मपुल शांतस्वांतुलै संगमुं
बरिवर्जिंचि विशुद्धचित्तुलगुचुन् बंकेज पत्रेक्षणे-
तर धर्मंक निवृत्तुलै सततमुं दैत्यारि र्जितिपुचुन् ॥ 1007 ॥

अध्याय—३२

[सी.] गृह में विचरण करनेवाले गृहमेधी (गृहस्थ) महित धर्म-अर्थ-काम के लिए सम्प्रीति रखते हुए, उसकी साधना (तथा) अनुष्ठान में निरत होते हुए, वेदनिर्णय के अनुसार भगवान के भूरि सुधर्म भक्ति से पराङ्मुख हो, देवगणों का भजन प्रतिदिन करते हुए, पैतृक कर्म करते हुए, सदा शिष्ट चरित वाले हो, [ते.] समुचित रीति मे देव-पितृ के सुव्रती हो, काम्यचित्त वाले, धूम्र आदि की गतियों मे चन्द्र (आदि) लोकों को प्राप्त कर, पुण्य के लोप होने पर वापस धरती पर जन्म लेने आ जाते हैं। १००४ [व.] इसके अतिरिक्त, १००५ [ते.] प्रविमल (तथा) अनन्त भोगतल्प में योगनिद्रा में मग्न होकर हरि के रहने पर अखिल लोक विलय को पाते हैं। ऐसे सर्वेश्वर के लिए अनघ मति वाले के, १००६ [म.] परखने पर अपने धर्म से समस्त धर्मों को, शान्ति को अन्तरंग में धारण कर, संगति को छोड़कर, विशुद्ध चित्तवाले हो पंकज-पत्रेक्षण (विष्णु) से अन्य धर्म में निवृत्ति वाले हो, सदा दैत्यारि का

सी. मरियु नहंकार ममकार शून्युलै यथि वर्तिपुचु नर्चिरादि
मार्ग गतुंडुनु महनीय चरितुंडु विश्वतोमुखुडुनु विमल यशुडु
जगदुद्भव स्थान संहार कारणुंडव्ययुडजुडु परापरुंडु
पुरुषोत्तमुडु नवपुंडरीकाक्षुंडुनैन सर्वेश्वरुनंदु वोंदि

ते. मानितापुनरावृत्ति मार्गमैन,
प्रविमलानंद तेजो विराजमान
दिव्यपदमुन सुखियिंचु धीर मतुलु
मरलिरारॆन्नटिकिनि जन्ममुल नींद ॥ 1008 ॥

व. मरियु परमेश्वर दृष्टिचे हिरण्यगर्भु नुपासिंचु वारु सत्यलोकंबुन द्विपरार्धावसानंबगु प्रळयंबु दनुक परुंडगु चतुराननुं परमात्म रूपंबुन ध्यानंबु सेयुचु नुंडि पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाश मानसेंद्रिय शब्दादि भूतादुलतोडं गूड लोकंबुनु प्रकृति यंदु लीनंबुसेय सर्वेश्वरुंडु सकल संहर्त यगु समयंबुन गताभिमानंबुलु गलिगि, ब्रह्मलोक वासुलगु नात्मलु ब्रह्मतोडं गूडि परमानंद रूपुंडु सर्वोत्कृष्टुंडु नगु पुराणपुरुषु बोंदुदुरु। कावुन नीवु सर्वभूत हृदयपद्म निवासुंडुनु श्रुतानुभावुंडुनु, निष्कलंकुंडुनु, निरंजनुंडुनु, निर्द्वंद्वुंडुनु नगु पुरुषुनि भावंबुचे शरणंबु नोंदु मनि चॆप्पि मरियु निट्लनियॆ ॥ 1009 ॥

चिन्तन करते हुए, १००७ [सी.] और अहंकार (तथा) ममकार से शून्य (चित्तवाले) हो, क्रमशः व्यवहार करते हुए अर्चि (ज्योति) आदि मार्गगत हो, महनीय चरितवाले विश्वतोमुख (सर्वान्तर्यामी), विमल यश वाले, जगत के उद्भव, स्थिति, संहार के कारक, अव्यय, अज, परापर, पुरुषोत्तम, नवकमल-नयन वाले, सर्वेश्वर को प्राप्त कर, [ते.] मान्य पुनरावृत्ति के मार्ग में, प्रविमल अनन्त तेज में, विराजमान हो दिव्यपद में सुख पानेवाले धीरमति वाले फिर जन्मों को लेने नहीं आते। १००८ [व.] और परमेश्वर की दृष्टि से हिरण्यगर्भ की उपासना करनेवाले सत्यलोक में द्विपर अर्धावसानस्वरूप प्रलय (काल) तक परात्मा चतुरानन का परमात्मा के रूप में ध्यान करते हुए पृथ्वी, अप् (जल), तेज, वायु, आकाश मानसेन्द्रिय [शब्दादि] भूतादि के साथ मिलकर [लोक को] प्रकृति में लीन कर सर्वेश्वर के सकल संहर्ता होते समय में अभिमान को छोड़कर, ब्रह्मलोकवासी होनेवाली आत्माएँ ब्रह्म के साथ मिलकर परमानन्द रूपी [सर्वोत्कृष्ट] पुराण-पुरुष को प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम सर्व भूतों के हृदयपद्म के निवासी, श्रुतानुभवी (वेदात्मा) निष्कलंकी, निरंजन, निर्द्वन्द्व होनेवाले पुरुष भाव से शरण को प्राप्त करने को कहकर और (आगे) इस प्रकार कहा। १००९ [म.] चर्चा (विचार) करने पर [विदित होता है कि]

म. सकल स्थावर जंगम प्रततिकिन् जर्चिप दानाद्युडे
यकलंक श्रुति गर्भुडुं बरमुडुन्नैनट्टि यीशुंडु से-
वक योगींद्र कुमार सिद्धमुनि देवश्रेणि योग प्रव-
र्तकमै तन्नु भजिंप जूपु सगुण ब्रह्ममंबु लीलागतिन् ॥ 1010 ॥

सी. अट्टि सर्वेश्वरुं डायायि कालंबु लंदुनु दद्गुण व्यतिकरमुन
जनियिंपुचुंडु नी चाड्पुन ऋषिदेव गणमुलु दमतम कर्म निर्मि
तैश्वर्य पारमेष्ठ्यमुलवु पुरुषत्वमुनु वोंदि यधिकारमुलु वहिंचि
वर्तिंचि क्रम्मर वत्तुरु मरि कोंदराख्ढ कर्मानुसारमैन

ते. मनमुलनु जाल गलिगि धर्ममुल यदु,
श्रद्धतो गूडियप्रतिषिद्धमैन
नित्य नैमित्तिकाचार नियतु लगुचु
दगि रजोगुण कलित चित्तमुलु गलिगि ॥ 1011 ॥

व. सकामुलै यिंद्रियजयंबु लेक पितृगणंबुल नॅल्लपुडु बूजिंपुचु गृहंबुलयंदु
वर्तिंचि हरिपराङ्मुखुलगु वारु त्रैवर्गिक पुरुषुलनि चॅप्पंबडुदुरु ॥1012॥

चं. विनुत गुणोत्तरुंडु नुरु विक्रमुडैन हरिं भजिंचि त-
न्मनन लसत्कथामृतमु मानुग ग्रोलुट मानि दुष्कथल्
विनि मुद मंदुचुंदुरु विवेक हीनत नूर बंदि या-
त्मनु मधुराज्य भक्ष्यमुलु मानि पुरीषमु केगु चाड्पुनन् । 1013 ॥

सकल चर, अचर गण के लिए वह आद्य हो, अकलक (तथा) श्रुतिगर्भ वाले, परमात्मा, ईश्वर (अपने) सेवक, योगीन्द्रकुमार सिद्ध, मुनिगण, देवगण के योग से प्रवर्तित हो सगुण ब्रह्म की लीला में अपने भजन करवाने को देखता है। १०१० [सी.] ऐसा सर्वेश्वर उन-उन कालों में उन गुणों के व्यतिकर रूप में जन्म लेते हुए, इस प्रकार ऋषि (तथा) देवगण अपने-अपने कर्मो से निर्मित ऐश्वर्य (तथा) ब्रह्मतत्त्व में पुरुषत्व को प्राप्त कर अधिकार धारण कर संचार कर फिर वापस आते है। और कुछ लोग कर्मानुसारी हो, [ते.] मन से युक्त हो, धर्म में श्रद्धा के साथ अप्रतिषिद्ध, नित्य, नैमित्तिक आचार नियमों में लगकर रजोगुणपूरित चित्तों के साथ, १०११ [व.] सकामी हो, इन्द्रियों को न जीतकर, पितृगणों की पूजा करते हुए, गृहों में संचार [हरि पराङ्मुख हो] करनेवाले त्रैवर्गिक पुरुष कहलाते है। १०१२ [चं.] जिस प्रकार विवेक की हीनता से गाँव का सुअर मधुराज्य-भक्ष्य छोड़कर मल (भक्षण) के लिए चल पड़ता है, उस प्रकार स्तुत्य गुणों वाले, श्रेष्ठ विक्रमशाली हरि का भजन करना, उसका मनन करना तथा उसके सुन्दर कथामृत का सेवन करना छोड़कर दुष्कथाओं को सुनकर आनन्दित होते हैं। १०१३ [चं.] भामिनी! धूम-

चं. अलवड धूम मार्गगतुलै पितृलोकमु वॊंदि पुण्यमुं
वॊलसिन वारु दॊंटि तम पुत्रुलकुं दग दामु बुट्टि वि-
ह्वलमति गर्भ गोळ पतनादि परेतःधरा क्रियांतमै
वॆलसिन कर्म मिन्ननुभविंतुरु गावुन नोवु भामिनी ! ॥ 1014 ॥

कं. विनु सर्व भावमुल वर
मुनि ननघु ननंतु नीशु बुरुषोत्तमुनि
न्ननयमु भजियिंपुमु मुद-
मुन बुनरावृत्ति लेनि मुक्ति लभिंचुन् ॥ 1015 ॥

व. अनि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆं। भगवंतुंडगु वासुदेवुनि यंदुं बयुक्तं-
बगु भक्तियोगंबु ब्रह्मसाक्षात्कार साधनंबुलगु वैराग्यज्ञानंबुलं जेयु।
अट्टि भगवद्भक्ति युक्तंबैन चित्तं बिंद्रिय वृत्तुलचे समंबुलगु नर्थंबुलंदु
वैषम्यंबुनु, प्रियाप्रियंबुलुनु लेक निस्संगंबु समदर्शनंबु हेयोपादेय
विरहितंबुनै यारूढंबैन यात्म पदंबु नात्मचे जूचुचुंडु। ज्ञानरूपुंडुनु,
परब्रह्मंबुनु, परमात्मुंडुनु, नीश्वरुंडुनुनगु परमपुरुषुंडेक रूपंबु गलिगि
युंडियु दृश्य दृष्ट करणंबुलचेत बृथग्भावंबुनु वॊंदुचुंडु। इंद्रिय योगिकि
समग्रंबगु योगंबुनं जेसि प्राप्यंबगु फलंबु। कावुन विषय विमुखंबु
लगु निंद्रियंबुल चेत ज्ञानरूपंबु हेय गुण रहितंबुनगु ब्रह्मंबु मनो विभ्रांति
जेसि शब्दादि धर्मंबगु नर्थरूपंबुनं दोचु। अदि यॆट्टु लर्थाकारंबुन

मार्ग में गमन करते हुए पितृलोक को प्राप्त कर पुण्य को प्राप्त करनेवाले पहले अपने पुत्रों को समुचित रूप में उत्पन्न होकर विह्वल मति से गर्भगोल में गिरते हुए, परेत-धरा पर्यन्त (श्मशान-भूमि तक) सब क्रियाओं में कर्म का अनुभव करते है। इसलिए, १०१४ [कं.] सुनो ! सर्वभावों से परात्मा, अनघ, अनन्त, ईश्वर, पुरुषोत्तम का आनन्द के साथ सदा भजन करो। पुनरावृत्ति-रहित मुक्ति प्राप्त होगी। १०१५ [व.] ऐसा कहकर और इस प्रकार कहा। भगवान् वासुदेव में प्रयुक्त होनेवाले भक्तियोग ब्रह्मसाक्षात्कार के साधनस्वरूप वैराग्य से पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करता है। ऐसे भगवद्भक्ति से युक्त हो चित्त को इन्द्रियवृत्तियों में सम होनेवाले अर्थ में वैषम्य, प्रिय (तथा) अप्रिय से रहित हो निस्संग हो समदर्शन वाले हो, हेय उपादेय (हेय शरीर) से विरहित हो, आरूढ़ हो, आत्मपद को आत्मा में देखते रहता है। ज्ञानरूप वाला परब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर होनेवाला, परमपुरुष एक रूप को प्राप्त कर दृश्य, द्रष्टा करणों के कारण पृथक्भाव को प्राप्त करते रहता है। यही योगी के लिए [समग्र हो] योग के कारण प्राप्य होनेवाला फल है। इसलिए विषयों से विमुख हुए इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान-रूप वाले (तथा) हेयगुण-रहित होने

दोचुननि यडिगितिवेनि यहंकारंबु गुणरूपंबुनं जेसि त्रिविधंबुनु, भूतरूपंबुनं बंचविधंबुनु, निंद्रियरूपंबुन नेकादशविधंबुनै युंडु। जीवरूपुंडगु विराट्पुरुषुंडु जीव विग्रहंबैन यंडंबगु जगंबुनं दोचुचुंडु। दीनि श्रद्धायुक्तंबैन भक्ति चेत योगाभ्यासंबुनं जेसि समाहित मनस्कुंडै निस्संगंबुन विरक्तुंडैन वाडु पोडगनुचुंडु। अदि यंतयु बुध जन पूजनीय चरित्रवु गावुन नीकुं जॅप्पिति। सर्वयोग संप्राप्युंडुनु निर्गुणुंडुनु भगवंतुडनि चॅप्पिन ज्ञान योगंबुनु मदीय भक्ति योगंबुननु रेंडु नीक्कटिय। इंद्रियंबुलु भिन्नरूपंबुलु गावुन नेक रूपंबैन यर्थं बनेक विधंबु लगुनट्लेकं बगु ब्रह्मं बनेकंबुग दोचु, मरियु ॥ 1016 ॥

सी. अंब! नारायणुं डखिलशास्त्रमुलनु समधिकानुष्ठित सवन तीर्थ
दर्शन जपतपोऽध्ययन योगक्रिया दानकर्मंबुल गानबडडु
येचिन मनमु बाह्येंद्रियंबुल गॅलिचि सकलकर्म त्यागसरणि नोप्पि
तलकोनि यात्मतत्त्वज्ञानमुन मिंचि युडुगक वैराग्य युक्ति दनरि

ते. महितफल संगरहित धर्ममुन दनरु-
नट्टि पुरुषुंडु दलपोय नखिलहेय

वाले ब्रह्ममनोविभ्रान्ति के कारण शब्दादि धर्म होनेवाले अर्थ-रूप को प्राप्त होता है। वह किस प्रकार अर्थाकार में भासित होता है? ऐसा पूछने पर अहंकार गुण-रूप के कारण तीन प्रकार (और) भूत-रूप में पाँच प्रकार, इन्द्रिय-रूप में एकादश प्रकार होता है। जीव-रूप वाले विराट्-पुरुष जीव-विग्रह (-रूप) वाले अण्डस्वरूप जगत में भासित होता है। इस कारण [वह] श्रद्धायुक्त हो भक्ति से योगाभ्यास के कारण समाहित मन वाला बनकर, निस्संगति से विरक्त को दिखाई पड़ता है। यह सब बुधजनों से पूजनीय चरित वाली होने के कारण तुम्हें कह सुनाया। और सर्वयोगों से सम्प्राप्य, निर्गुण है भगवान, ऐसा कहनेवाला ज्ञानयोग (और) मेरा भक्तियोग दोनों एक ही हैं। इन्द्रिय, भिन्न रूपों के होने के कारण, एक रूप होने पर भी अनेक प्रकार के अर्थ जिस प्रकार होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म अनेक प्रकार से भासित होता है। और; १०१६ [सी.] माता! नारायण के अखिल शास्त्रों में अधिष्ठित हो सवन, तीर्थ के दर्शन, जप-तप, अध्ययन, योग, क्रिया, दान कर्मों से दिखाई नहीं पड़ता। हम लोगों के विचार करने पर विदित होता है कि अतिशय रूप से बाह्येन्द्रियों को जीतकर सकल कर्म में त्याग-सरणी से विलसित हो, ठान कर आत्मतत्त्वज्ञान को प्राप्त कर, वैराग्य की युक्ति से विलसित हो, [ते.] महित फल को प्राप्त कर, संगरहित धर्म में सुशोभित होनेवाला पुरुष सकल हेय गुणों को छोड़कर, अनघ होते हुए, कल्याण गुणों से विशिष्ट परमात्मा को प्राप्त

गुणमुलनु वासि कल्याण गुण विशिष्टु-
डैन हरि नीॅडु वरमात्मु ननघुडगुचु ॥ 1017 ॥

व. अदि गावुन नीकुं जतुर्विध भक्ति योगप्रकारंबु देटपड नॆरिंगिचिति। अदियुनुं गाक कालरूपयगु मदीयगति जंतुवुलयंदु नुत्पत्ति विनाशरूपंबुल नुंडु। अविद्याकर्म निर्मितंबुलैन जीवुनि गतुलनेक प्रकारंबुलै युंडु। अदियु जीवात्म वानियंदु ब्रवर्तिंचि यात्मगति यिट्टिदनि यॆऱुंगक युंडु। अनि चॆप्पि मऱियु निट्लनियॆ। इट्टि यति रहस्यंबगु सांख्ययोग प्रकारंबु खलुनकु नविनीतुनकु जडुनकु दुराचारुनकु डांबिकुनकु निंद्रियलोलुनकु पुत्र दारागाराद्यत्यंतासक्त चित्तुनकु भगवद्भक्ति हीनुनकु विष्णु दासुलयंदु द्वेषपडु वानिकि नुपदेशिंपि वलवदु। श्रद्धा संपन्नुंडु भक्तुंडु विनीतुंडु नसूयारहितुंडु सर्वभूत मित्रुंडु शुश्रूषाभिरतुंडु बाह्यार्थ जातविरक्तुंडु शांत चित्तुंडु निर्मत्सरुंडु शुद्धात्मुंडु मद्भक्तुलयंदु प्रेमगल वाडु नन्यकांता विमुखुंडु निष्कामुंडु नगु नधिकारिकि नुपदेशिंप नर्हंबगु। ई युपाख्यानं-बे पुरुषुंडेनि पतिव्रतयगु नुत्तमांगनयेनि श्रद्धाभक्तुलु गलिगि मदर्पित चित्तंबुन न्विनु व्रठियिंचु नट्टि पुण्यात्मुलु मदीय दिव्यस्वरूपंबु नार्पितुरु। अनि चॆप्पॆननि मैत्रेयुंडु विदुरुनकु जॆंडियु निट्लनियॆ। ई प्रकारंबुनं गर्दमदयितयैन देवहूति कपिलुनि वचनंबुलु विनि निर्मुक्त मोह पटल

करेगा। १०१७ [व.] इसलिए तुम्हें चार प्रकार के भक्तियोग प्रकार को (मैंने) विदित किया। इसके अतिरिक्त [काल-रूप होनेवाले] मेरी गति जन्तुओं (प्राणियों) में उत्पत्ति, विनाश के रूपों में स्थित होती है। अविद्या के कर्मों से निर्मित हो जीव की गतियाँ (स्थितियाँ) अनेक प्रकार की होती हैं। इसके अतिरिक्त जीवात्मा उनमें प्रवर्तित होते हुए आत्मा की गति इस प्रकार की है, ऐसा जानते नहीं। ऐसा कहकर और (आगे) इस प्रकार कहा। [ऐसा यतिरहस्यात्मक होनेवाले]सांख्ययोग का विधान खल, अविनीत, जड़, दुराचारी, दम्भी, इन्द्रियलोलात्मा को, पुत्र-दारा-आगारादि में अत्यन्त आसक्त चित्त वालों को, भगवद्भक्ति से विहीनों को, विष्णुदासों में द्वेष रखनेवालों को, उपदेश नहीं करना चाहिए। श्रद्धासम्पन्न, भक्त, विनीत, असूया-रहित, सर्वभूतों के साथ मिल-जुलकर रहनेवाला, शुश्रूषा में अभिरत होनेवाला, निर्मत्सर, निष्कामी, अधिकारी (पात्र) उपदेश के लिए योग्य होता है। इस उपाख्यान को कोई पुरुष, कोई पतिव्रता, श्रेष्ठ स्त्री, श्रद्धा (तथा) भक्ति के साथ (अपने) चित्त को मुझे समर्पित कर सुनाते या पठन करते रहनेवाले पुण्यात्मा मेरे दिव्यस्वरूप को प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा है। इस प्रकार मैत्रेय ने विदुर से कहा और आगे भी कहा। इस प्रकार कर्दम की प्रेयसी देवहूति ने कपिल के वचन सुनकर,

यगुचु साष्टांग दंडप्रणामंबु लाचरिंचि तत्त्वविषयांकित सांख्यज्ञान प्रवर्तकंबगु स्तोत्रंबु सेय नुपक्रमिंचि कपिलुन किट्लनियें ॥ 1018 ॥

अध्यायमु—३३

सी. अनयंबु विनु मिंद्रियार्थ मनोमयंबुनु भूतचयमयंबुनु समस्त
भूरि जगद्बीज भूतंबुनु गुण प्रवाह कारणमुनु वलनु मेरयु
नारायणाभिख्य ना गल भवदीय दिव्यमंगळमूर्ति देजरिल्लु
चारु भवद्गर्भ संजातुडगुनट्टि कमलगर्भुंडु साक्षात्करिंप

ते. लेकमनमुन गनियें ननेक शक्ति-
वर्गमुलु गलिग सुगुण प्रवाह रूप
मंदि विश्वंबु दाल्चि सहस्रशक्ति-
कलितुडै सर्वकार्यमुल् गलुग जेयु ॥ 1019 ॥

व. अंत ॥ 1020 ॥

ते. अतुल भूरि युगांतंबुनंदु गपट-
शिशुववै यौटि गुक्षि निक्षिप्त निखिल
भुवन निवहुंडवै महांबोधि नडुम
जारु वटपत्रतल्प संस्थायि वगुचु ॥ 1021 ॥

मोहपटल के दूर होने पर साष्टांग दण्डप्रणाम कर, तत्त्वविषयों से अंकित हो, सांख्यज्ञान के प्रवर्त्तनात्मक स्तोत्र करने के लिए उद्यत हो, कपिल से कहा। १०१८

अध्याय—३३

[सी.] सुनो! सदा इन्द्रियार्थ मनोमय हो और भूतचयवाले हो, और समस्त भूरि जगत के बीजस्वरूप और गुणप्रवाह के कारणस्वरूप प्रकाशित होनेवाले नारायण नाम से विख्यात होनेवाली भवदीय मंगल-मूर्ति के ज्योतित होते हुए, सुन्दर रीति से तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होनेवाले कमलगर्भ वाला (ब्रह्मा) साक्षात्कार न कर सक, [ते.] मन में दुःखी हो, अनेक शक्तियों के वर्गों के साथ सुगुण प्रवाह-रूप को प्राप्त हो, विश्व को धारण कर सहस्र शक्तियुक्त हो सर्वकार्यों को सम्पन्न करता है। १०१९ [व.] तब, १०२० [ते.] अतुल (तथा) भूरि युगान्त में कपट-शिशु हो, पेट में निखिल भुवनों को छिपाकर रखते हुए, महासागर के मध्य में सुन्दर वट-पत्र पर स्थित होते हुए। १०२१ [ते.] लीला से अपने चरण की अँगुली से निकले हुए अमृत का पान करनेवाले महात्मा हो! पूर्व [पुण्य]

ते. लोल नात्मीय पादांगुळी विनिर्ग-
तामृतमु प्रोलिनट्टि महात्म ! नीवु
गणगि ना पूर्व भाग्यंबुकतन निपुडु
पूनि ना गर्भमुन नेडु पुट्टितय्य ! ॥ 1022 ॥

व. अट्टि परमात्मुंडवैन नीवु ॥ 1023 ॥

सी. वरुस विग्रह पानवश्यंबुननु जेसि रघुराम कृष्ण वराह नार-
सिहादि मूर्तु लंचित लील धरियिंचि दुष्टनिग्रहमुनु शिष्टपाल-
नमुनु गाविपुचु नयमुन सद्धर्म निरत चित्तुलक वर्णिपवगिन
चतुरात्मतत्त्व विज्ञान प्रदुंडवै वर्तितु वनव ! भवन्महत्त्व

ते. मजुनकैननु वाक्रुव्य नलवि गावु,
निगमजातंबुलैन वर्णिप लेव
यॆट्रिगि संस्तुति सेयं ने नॆंतवान ?
विनुत : गुणशील ! माटलु वेयुनेल ? ॥ 1024 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1025 ॥

कं. धी महित ! भवन्मंगळ-
नाम स्मरणानुकीर्तनमु गल वीनुल्
श्रीमंतु लगुदु रग्नि-
ष्टोमादि कृदाळिकंटॆ शुद्धुलु बलपन् ॥ 1026 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 1027 ॥

के भाग्य के कारण तुम प्रयत्न से ठानकर मेरे गर्भ में पैदा हुए हो। १०२२ [व.] ऐसे परमात्मा हो तुम ! १०२३ [सी.] क्रमशः विग्रह की परवशता के कारण रघुराम, कृष्ण, वराह, नृसिह आदि पूज्य मूर्तियों को लीला से धारण कर दुष्ट निग्रह [तथा] शिष्ट पालन करते हुए समुचित रीति में सद्धर्म निरत चित्तवालों को वर्णन करने योग्य चतुरात्मतत्त्व के विज्ञान को प्रदान करते हुए संचार करते हो ! अनघ ! आपके महत्त्व का वर्णन करना, [ते.] अज के लिए भी वश की बात नहीं है। निगमगण भी वर्णन नहीं कर सकते। ऐसा जानकर भी संस्तुति करने के लिए मैं कहाँ समर्थ हो सकती हूँ ? स्तुत्य गुणशील वाले हो ! हजार बातें क्योंकर कहूँ ? १०२४ [व.] इसके अतिरिक्त, १०२५ [कं.] श्रेष्ठ-बुद्धि वाले ! तुम्हारे मंगल नाम-स्मरण, अनुकीर्तन करनेवाला, हीन [भी क्यों न हो] श्रीमान हो जाता है। विचार करने पर [विदित होता है कि] वे अग्निष्टोमादि कृदालि (यज्ञसमूह) से बढ़कर शुद्ध (पवित्र) होते हैं। १०२६ [व.] इसके अतिरिक्त, १०२७ [कं.] श्वपच (चंडाल) भी तुम्हारे नाम

कं. नी नामस्तुति श्वपचुं, डैननु जिह्वाग्रमंदु ननुसंधिपन्
वानिकि सरि भूसुरुडुन्, गानेरडु चित्र मदि जगंबुलु नरयन् ॥ 1028 ॥

उ. ई विध मात्मलं दॅलिसि यॅप्पुडु सज्जनसंघमुल् जग-
त्पावनमैन नी गुणकथामृत मात्मल ग्रोलि सर्वती-
र्थावळि ग्रुंकिनट्टि फल मंदुदु रंच समस्तवेदमुल्
वाविरि बल्कु गावुनतु वारलु धन्युलु मान्युलुत्तमुल् ॥ 1029 ॥

व. अदि गावुन बरब्रह्मंबवु परम पुरुषुंडवु प्रत्यङ्मनो विभाव्युंडवु समस्त जन पापनिवारक स्वयंप्रकाशुंडवु वेदगर्भुंडवु श्रीमहाविष्णुंडवु नगु नीकु वंदनंबु लाचरिंचॅद । अनि स्तुतियिंचिन, बरमपुरुषुंडु मातृ-वत्सलुंडुनगु कपिलुंडु करुणा रससांद्र हृदयकमलुंडै जननि किट्लनियॅ ॥ 1030 ॥

ते. तविलि सुखरूपमुन मोक्षदायकंबु-
नैन यी योगमार्गमे नंब ! नीकु
नॅरुग विवरिंचि चॅप्पिति निदि दृढंबु
गाग भक्ति ननुष्ठिपु कमलनयन ! ॥ 1031 ॥

कं. जीवन्मुक्ति लभिंचुं
गावुन नेमरक तलपु गैकोनि दीनिन्

को अपनी जिह्वा के अग्रभाग पर अनुसन्धित करता है तो कोई भूसुर भी उसके समान नहीं होता । विचार करने पर जगतों में यह विचित्र [विषय] है । १०२८ [उ.] इस प्रकार आत्मा (मन) में जानकर, सज्जनसंघ सदा जगत को पावन बनानेवाला तुम्हारे गुणकथामृत को आत्मा के द्वारा पान कर सर्वतीर्थावली में स्नान करने का फल प्राप्त करते हैं, ऐसा कहते हुए, समस्त वेद बार-बार प्रकट करते हैं कि ऐसे लोग धन्य होते हैं, मान्य होते हैं और उत्तम होते है । १०२९ [व.] इसलिए परब्रह्म, परमपुरुष, विरोधी के विभाव्य, समस्त जन के पापनिवारक, स्वप्रकाशी, वेदगर्भ वाले, श्रीमहाविष्णु ! तुम्हारी वन्दना करती हूँ । इस प्रकार स्तुति करने पर परमपुरुष मातृवत्सल कपिल ने करुणा-रस से सान्द्र हृदय-कमल वाला हो जननी से इस प्रकार कहा । १०३० [ते.] माता ! निश्चित रूप से सुखरूपात्मक मोक्षदायक इस योगमार्ग को मैंने विवरण के साथ विदित किया । कमलनयन वाली ! इसे दृढ़-रूप से धारण कर भक्ति के साथ अनुष्ठान करो । १०३१ [कं.] जीवन्-मुक्ति प्राप्त होगी । इसलिए सदा इसका ध्यान करते रहो । क्रम से इसे न चाहनेवालों के लिए मृत्युभय का स्थिर निवास होगा और सुख दूर

वाविरि नॆल्लनि वारिकि
दावलमगु मृत्युभयमु दब्बगु सुखमुन् ॥ 1032 ॥

कं. अनि यिट्लु देवहूतिकि
मनमलरग गपिलु डात्म मार्गमु नॆल्लन्
विनिपिंचि चनियॆ ननि विदु-
रुनकुन् मैत्रेयमुनिवरु डॆर्रिगिंचॆन् ॥ 1033 ॥

व. अट्लु कपिलुंडेगिन पिदप देवहूतियुं बुत्रुंडु योगमार्गंबुन विज्ञानंबु गलिगि युंडियुं वॆनिर्मिटियैन कर्दमुनि दनयुंडॆन कपिलुनि वासि, नष्टवत्सयगु चंदंबुन दल्लडिल्लुचु, गपिल महामुनि दलंपुचुं, गर्दम तपस्सामर्थ्यं जनितंबैन यट्टि ॥ 1034 ॥

उ. मानित सौरभप्रसव मंजुल पक्वफल प्रवाळ भा-
रानत चूतपोत विटपाग्र निकेतन राजकीर स-
म्मान्यतरानुलाप परिमंडित कर्दम तापसाश्रमो-
द्यान वनप्रदेश कमलाकरतीर निकुंजपुंजमुल् ॥ 1035 ॥

व. वॆंडियु ॥ 1036 ॥

सी. अंचित स्फटिकमय स्तंभ दीप्ति चे गौमरारु मरकत कुड्यमुलनु
सज्जाति वज्राल सज्जालक रुचुल भासिल्लु नील सोपानमुलनु

होगा। १०३२ [कं.] इस प्रकार देवहूति के मन को आनन्द प्रदान करते हुए कपिल ने समस्त आत्म मार्गों को सुनाकर (विदित कर) प्रस्थान किया। ऐसा विदुर को मैत्रेयवर ने विदित किया। १०३३ [व.] उस प्रकार कपिल के चले जाने के पश्चात् देवहूति ने पुत्र के द्वारा कथित योगमार्ग विज्ञान से युक्त होकर, पति कर्दम तथा पुत्र कपिल को छोड़कर, नष्ट वत्स वाली गाय की रीति व्याकुल हो, कपिल महामुनि का स्मरण करते हुए, कर्दम की तपस्या की सामर्थ्य से जनित (उत्पन्न), ऐसे, १०३४ [उ.] श्रेष्ठ, सौरभपूर्ण फूलों से, मजुल (तथा) पके हुए फल रूपी प्रवाल-भार से आनत हो, (झुके हुए) चूत-पोत-विटप (-वृक्ष) के अग्र निकेतन पर स्थित राजकीर (तोते) के सम्मान्य अनुराग से मण्डित हो, तापसी कर्दम के आश्रम के उद्यान-वन-प्रदेश (तथा) कमलाकर (सरोवर) के तट के सुशोभित निकुंज-पुंज, १०३५ [व.] और भी, १०३६ [सी.] पूज्य स्फटिकों से युक्त स्तम्भ की कान्तियों से विलसित होनेवाले मरकत कुड्यों को, श्रेष्ठ जाति के वज्रों के झरोखों से रुचिर हो, सुशोभित होनेवाले नीले सोपानों (सीढ़ियों) को, दीप्त होनेवाले चन्द्रकान्तोपलों (चन्द्रकान्त मणियों) से विलसित वेदिकाओं, विद्रुमों से विलसित गेहलियों को, हाटक-रत्न कवाटों से सुशोभित होनेवाले सौधों की शालाओं-आंगनों को,

दीपिंचु चंद्रकांतोपल वेडुल विद्रुम गेहाळी विलसितमुल
हाटकरत्न कवाट शोभितमुल नलरिन सौधशालांगणमुल

ते. वर पयःफेन पटल पांडुर करींद्र-
दंत निर्मित खट्वाति धवल पट्ट
रचित शय्याकुलुनु जतुरंतयान-
कनकपीठादि वस्तु संघमुल नॅल्ल ॥ 1037 ॥

व. मरियु विकच कमल कुमुद सौगंधिक बंधुर सुगंधानुबंधि गंधवह शोभितंबु, नरविंद निष्यंद कंदळित मरंद रसपान मदविंदिंदिर संदोह झंकार संकुलंबुनै चॅलुवारु बावुलु गलिगि, पुरंदर सुंदरी नंदितंबैन कर्दमाश्रमंबु परित्यजिंचि कुटिलंबुलैन कुंतलंबुलु जटिलंबुलुगा धरियिंचि सरस्वती बिंदुसरोवरंबुलं द्रिषवण स्नानंबु गाविपुचु नुग्र तपोभारंबुनं गृशीभूत शरीरयै निजकुमारुंडुनु, प्रसन्न वदनुंडुनु, गपिल नामधेयुंडुनु नगु नारायणुनि समस्त नव्यस्त चिंतलचे ध्यानंबु सेयुचु प्रवाहरूपंबैन भक्ति-योगंबुन नधिक वैराग्यंबुन युक्तानुष्ठानजातंबु ब्रह्मत्वापादकंबु नगु ज्ञानंबुनु विशुद्ध मनंबुनं गलिगि ॥ 1038 ॥

सी. अनयंबु नात्मनायकुडुनु विश्वतोमुखु डनंतुडु परमुडु नजुंडु
चतुरुंडु निजपरिज्ञान दीपांकुर महिम निरस्त समस्त भूरि
मायांधकारु डमेयु डीश्वरुडगु ना परब्रह्मंबुनं दविरत
बद्ध तत्त्वज्ञान परतचे निर्मुक्त जीवभावमुन विशिष्ट योग

[ते.] श्रेष्ठ दुग्धफेन-पट-सदृश पाण्डुर हो, करीन्द्र-दन्त से निर्मित (तथा) खट्वाति (मंचों) के धवलपट से विरचित होनेवाली शय्यालो को, चतुर रतिक्रीडा योग्य कनक-पीठ आदि समस्त वस्तुतति को, १०३७. [व.] और विकसित कमल तथा कुमुदिनी की सुगन्ध से बधुर हो गन्धवह (वायु) से सुशोभित (तथा) अरविन्दों पर मँड़रानेवाले रसपान में मत्त इन्दिन्दिर (भ्रमरों) से युक्त हो, झंकारों से संकुल हो, चिलसित होने वाले कूपों से सुशोभित हो, पुरन्दर (इन्द्र) की सुन्दरियों से नन्दित होने वाले कर्दम के आश्रम को छोड़कर, कुटिल कुन्तलों को जटिल रूप से धारण कर, सरस्वती तथा बिन्दुसरोवरों मे त्रिषवनो (तीनों कालों) में स्नान करते हुए उग्र तपोभार से कृशीभूत शरीर वाली हो अपने पुत्र (तथा) प्रसन्न वदनवाले कपिल नामधारी नारायण का समस्त अव्यस्त चिन्तनों से ध्यान करते हुए, प्रवाह रूपी भक्तियोग में अधिक वैराग्य से युक्त अनुष्ठान जात ब्रह्मत्व से पूर्ण ज्ञान को विशुद्ध मन में लेकर, १०३८ [सी.] सदा आत्मा के नायक, सर्वान्तर्यामी, अनन्त, परम, अज, चतुर, अपने परिज्ञान रूपी दीपांकुर की महिमा से समस्त भूरि मायान्धकार को निरस्त करनेवाले,

ते. भव्य संप्राप्त निर्मल ब्रह्मभाव-
मुलनु गलिगि समाधिचे नॅलमि दनरु
नपुनरावृत्तमगु त्रिगुणप्रधान-
तत्त्वमुल नॊप्पि संततोचार नियति ॥ 1039 ॥

ते. कलल दोचिन वस्तु संघमुल मेलु
कनि कनुंगॊनगा लेनि मनुजु पोलिक
वॊलति दनयात्म मऱचि यिम्मुल सधूम
मैन पावकुगति नुंडॆ नंतलोन ॥ 1040 ॥

कं. गुरु योग शक्ति चे नं, बरतलमुन कॅगसि सत्कृपामयुडगु ना
पर वासुदेव चरणां, बुरुहयुग न्यस्त चित्तमु गलदि यगुचुन् ॥ 1041 ॥

व. इट्लु कपिलोक्त मार्गंबुन देवहूति श्री हरियंदु गलसॆ। अय्यंगनारत्नंबु मोक्षंबुनकुं जनिन क्षेत्रंबु सिद्धिप्रदंबनु पेरं बरगि प्रसिद्धि वहिंचॆ। अंत नक्कड गपिलुंडु दल्लि चेत ननुज्ञातुंड सिद्ध चारण गंधर्वाप्सरो मुनि निवह संस्तूयमानुंडगुचु समुद्रुनिचेत दत्तार्हण पूजानिकेतनंबुलु वडसि, सांख्याचार्याभिष्टुतंबगु योगंबु नवलंबिंचि लोकत्रय शांतिकॊऱकु समाहितुंड स्व पित्राश्रमंबु विडिचि यदग्भागंबुनकुं जनियॆं। अनि मैत्रेय महामुनि विदुरुन किट्लनियॆं। तंड्री! यी युपाख्यानंबु नाकु

अमेय (असीम), ईश्वर (प्रभु) होनेवाले उस परब्रह्म में सदा बद्ध हो, तत्त्व-ज्ञानपरायण हो, निर्मुक्त जीव-भाव से, विशिष्ट योग से, [ते.] भव्य तथा निर्मल ब्रह्मभाव को सम्प्राप्त कर, समाधि में विलसित हो (तथा) त्रिगुण-प्रधान तत्त्वों में सतत आचार-नियति में सुशोभित हो, १०३९ [ते.] सपनों में वस्तुसमूह को प्राप्त करने पर भी जागरण में न पानेवाले व्यक्ति की रीति अपनी आत्मा में भूलकर (आत्मस्थिति में लीन हो, कूटस्थ हो), अपने स्थान पर सधूम हुए अग्नि की भाँति रही, तब, १०४० [कं.] श्रेष्ठ योगशक्ति से अम्बर तल में उड़कर सत्कृपामय वाले उस परम-पुरुष वासुदेव के चरणकमल युगल में चित्त को स्थिर करनेवाली हो, १०४१ [व.] इस प्रकार कपिल के द्वारा कहे गये मार्ग के अनुसार [साधना कर], देवहूति श्रीहरि में मिल गई। उस अंगना-रत्न के मोक्ष को प्राप्त होने का क्षेत्र सिद्धिप्रद नाम से विलसित हो विख्यात हुआ। तब वहाँ कपिल ने माता से अनुज्ञात हो सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि निवह (गण) से स्तुत्य होते हुए, समुद्र के द्वारा योग्य पूजा निकेतनों को प्राप्त कर, संख्याचार्य अभीष्ट (अनुकूल) होनेवाले योग को स्वीकार कर [लोकत्रय] शान्ति के लिए समाहित हो [अपने पिता के आश्रम को छोड़कर] उदग्भाग को चल दिया। ऐसा मैत्रेय महामुनि ने विदुर से इस प्रकार

गोचरिंचिन रीति नीकुं जॅप्पिति। इदि कपिल देवहूति संवादं बत्यंत पावनंबु, कपिल प्रणीतंबुनैन योगंबु। दीनिं वरम भक्ति युक्तुंडै यॅव्वडु पठिंचु यॅव्वडु विनु नट्टि पुण्यात्मुंडु विगतपापुंडै गरुडध्वजुंडैन पुंडरीकाक्षुनि श्री चरणारविंदंबुलं बॊंदु ननि मैत्रेयुंडु विदुरुन कॆरिंगिंचॆ। अनि शुकयोगींद्रुंडु परीक्षिन्नरेंद्रुनकुं जॅप्पॆ। अनि सूतुंडु शौनकादि महामुनुलकु नी कथा वृत्तांतंबु चॅप्पिन विनि प्रहृष्टहृदयुलै, मुनि लोकोत्तमा! भवद्वाक्पूरंबगु भगवत्कथामृतंबु ग्रोलुचुंड मा मनंबुलु तनिवोववु। इंकनु दरुवाति वृत्तांतंबुलु माकु विशदंबुलुग विनिपिंप नीवयर्हुंडवनि यडुगुटयु ॥ 1042 ॥

चं. जनकसुता मनो विमल सारस कोमल चंचरीक! चं-
दन शरदिंदु कुंद हार तार मराळ पटीर चंद्रिका
विनुत यशोविशाल! रघुवीर! दरत्सित पद्म पत्रलो-
चन! निटलांबक प्रकट चाप विखंडन! वंशमंडना! ॥ 1043 ॥

त. परमपावन! विश्वभावन! बांधवप्रकरावना!
शरधि शोषण! सत्यभाषण! सत्कृपामय भूषणा!

कहा। तात! यह उपाख्यान जिस प्रकार मुझे गोचर हुआ उसी प्रकार (तुमको) सुनाया। यह कपिल-देवहूति का संवाद अत्यन्त पावन तथा कपिल से प्रणीत है। इसे परमभक्ति (तथा) युक्ति के साथ जो कोई पठन करेगा, सुनो! ऐसा पुण्यात्मा पाप से दूर हो, गरुड़ध्वज वाले पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) के चरण-कमलों को प्राप्त होगा। ऐसा मैत्रेय ने विदुर को विदित किया। इस प्रकार शुकयोगीन्द्र ने राजा परीक्षित से कहा। ऐसा सूत ने शौनक आदि महामुनियों को इस कथा के वृत्तान्त को कह सुनाने पर, सुनकर प्रहृष्ट (प्रसन्न) हृदय वाले हो कह कि मुनिकुलश्रेष्ठ! तुम्हारी वाणी से पूर्ण भगवत्कथामृत का पान करते समय हमारे मन अघाते नहीं। और आगे के वृत्तान्त भी हमें विशद रूप से सुनाने में तुम योग्य हो, और (आगे की कथा) सुनाने की प्रार्थना की। १०४२
[चं.] हे जनकसुता के मन रूपी विमल सरोज के कोमल भ्रमर! चन्दन, शरत् के इंदु, कुन्द, हार, तारे, मराल, पटीर (चन्दन) [तथा] चन्द्रिका के समान स्तुत्य विशाल यश वाले! रघुवीर! दरत् (प्रकाशित) श्वेत पद्म-पत्र के समान लोचनवाले! निटलोंबक के विख्यात चाप को खण्डित करनेवाले! [अपने] वंश को मण्डित (शोभित) करनेवाले। १०४३
[त.] हे परमपावन! विश्वभावना वाले! बन्धुश्रेणी के रक्षक! शरधि (सागर) के शोषक! सत्यभाषण वाले! सत्कृपामय-भूषण वाले! दुरितों से तारनेवाले! सृष्टि के कारणस्वरूप! दुष्ट लोक के विदारक!

दुरित तारण ! सृष्टिकारण ! दुष्टलोक विदारणा !
धरणिपालन धर्मशीलन ! दैत्यमर्दन खेलना ! ॥ 1044 ॥

मा. दिविजगण शरण्या ! दीपितानंत पुण्या !
प्रविमल गुणजाला ! भक्त लोकानुपाला !
भवतिमिर दिनेशा ! भानुकोटि प्रकाशा !
कुवलय हितकारी ! घोर दैत्य प्रहारी ! ॥ 1045 ॥

ग. इदि श्री परमेश्वर करुणाकलित कविताविचित्र केसन मंत्रि पुत्र सहज पांडित्य पोतनामात्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबुनंदु विदुरनीतियु, विदुरुनि तीर्थागमनंबुनु, नुद्धवसंदर्शनंबुनु, गौरव, यादव, कृष्णादि निर्याणंबुनु, गंगाद्वारंबुन विदुरुंडु मैत्रेयुनि गनुटयु, विदुर मैत्रेय संवादंबुनु, जगदुत्पत्ति लक्षणंबुनु, महदादुल संभव प्रकारंबुनु, महदादुलु नारायणु नभिनंदिचुटयु, विराड्विग्रह प्रकारंबुनु, श्री महाभागवत भक्ति कारणंबगु पद्मसंभवु जन्म प्रकारंबुनु, ब्रह्मतपंबुनु, बरमेष्ठिकि बुंडरीकाक्षुंडु प्रत्यक्षं बगुटयु, ब्रह्मकृतबन विष्णु स्तोत्रंबुनु, गमल संभवुनि मानस सर्गंबुनु, बरमाणुवुल पुट्टुबुनु भूर्भुवस्सुवरादि लोक विस्तारंबुनु, गाल दिवस मास वत्सरादि निर्णयंबुनु, नायुः परिमाणंबुनु, जतुर्युग परिमाणंबुनु, बद्मसंभवु सृष्टि भेदनंबुनु, सनकादुल जन्मंबुनु,

धरणीपालन के धर्मशीलवाले ! राक्षस-मर्दन [रूपी खेल] खेलनेवाले। १०४४ [मा.] हे दिविजगण (देवतागण) के लिए शरण्य ! दीप्त अनन्त पुण्य वाले ! प्रविमल गुणों के पुंज ! भक्तलोक के पालक ! संसार के अन्धकार के लिए दिनेश ! कोटि भानु के प्रकाश से विलसित ! धरती के हितकारी ! घोर दैत्यों पर प्रहार करनेवाले ! [ऐसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ।] १०४५ [ग.] यह श्री परमेश्वर की करुणा से कलित कविता में विचित्र [गतिवाले] केसन मंत्री के पुत्र, सहज पाण्डित्य [से मण्डित] वाले, पोतनामात्य से प्रणीत हुए श्रीमहाभागवत नामक महापुराण में विदुर की नीति, विदुर का तीर्थागमन, उद्धव का सन्दर्शन, कौरव, यादव, कृष्ण आदि का निर्याण (स्वर्गवास), गंगाद्वार पर विदुर का मैत्रेय के दर्शन करना, विदुर-मैत्रेय का सम्भाषण, जगत की उत्पत्ति के लक्षण, महदादि के उत्पन्न होने का विधान, महदादि के नारायण का अभिनन्दन करना, विराट्-विग्रह के प्रकार श्री महाभागवत-भक्ति के कारणस्वरूप पद्मसम्भव (ब्रह्मा) के जन्म का विधान, ब्रह्मा का तपस्या करना, परमेष्ठि को पुण्डरीकाक्षवाले का प्रत्यक्ष होना, ब्रह्मकृत विष्णु-स्तोत्र, कमलसम्भव का मानस-सर्ग (सृष्टि), परमाणुओं की उत्पत्ति, भूर्भुवस्सुवरादि का लोक-विस्तार, काल, दिवस, मास, वत्सर आदि का निर्णय, आयु का

स्वायंभुव मनुवु जन्मंबुनु, श्रीहरि वराहावतारंबुनु, भूभरणंबुनु, सूकराकारुंडैन हरिनि विधात स्तुतियिचुटयु, दिति कश्यप संवादंबुनु, गश्यपुंडु रुद्रुनि ब्रशंसिचुटयु, गश्यपुवलन दिति गर्भंबु धरियिंचुटयु, तत्प्रभावंबुनकु वेरचि देवतलु ब्रह्म सन्निधिकि जनि दिति गर्भंबु विन्नविंचुटयु, सनकादुलु वैकुंठंबुनकु नरुगुटयु, अंदु जयविजयुल कलिगि शपिंचुटयु, श्रीहरि दर्शनंबुनु, ब्राह्मण प्रशंसयु, सनकादुलु हरिनि नुतिंचुटयु, हिरण्यकशिपु हिरण्याक्षुल जन्म प्रकारंबुनु, हिरण्याक्षुनि दिग्विजयंबुनु, सवन वराह हिरण्याक्षुल युद्धंबुनु, ब्रह्म स्तवंबुनु, हिरण्याक्ष वधयु, नमर गणंबुलु श्रीहरि नभिनंदिंचुटयु, हरिनि वराहावतार विसर्जनंबु सेयुटयु, देवतिर्यङ्मनुष्यादुल संभवंबुनु, गर्दम महामुनि तपंबुनकु संतसिंचि श्रीहरि प्रत्यक्षंबगुटयु, गर्दमुंडु स्वायंभुव मनु पुत्रियैन देवहूति बरिणयंबगुटयु, देवहूति परिचर्यलकु संतसिंचि, कर्दमुंडु निजयोग कल्पितंबगु विमानंबुनंदु निलिचि, सहस्रदासी परवृतियैन देवहूति गूडि, भारतादि वर्षंबुलु गलय ग्रुम्मरुटयु, देवहूति कर्दमुनि वलन गन्यका नवकंबुनु गपिलुनि गनुटयु, तत्कन्यका विवाहंबुलुनु, गर्दम तपोयात्रयु, गपिल देवहूति संवादबुनु, शब्दादि पंचतन्मात्रल जन्म प्रकारंबुनु, ब्रह्मांडोत्पत्तियु,

---

परिमाण, चतुर्युगों का परिमाण, पद्मसम्भव की सृष्टि का भेद, सनकादि का जन्म, स्वायम्भू मनु का जन्म, श्रीहरि के वराह का अवतार धरना, भूभरण करना, ब्रह्मा के सूकराकार वाले हरि की स्तुति करना, दिति और कश्यप का सम्भाषण, कश्यप के रुद्र की प्रशंसा करना, कश्यप से दिति का गर्भ धारण करना, उसके प्रभाव से डरकर देवताओं के ब्रह्मा की सन्निधि में चलकर दिति के गर्भ के बारे में विनती करना, सनकादि के वैकुण्ठ को चलना, वहाँ जय-विजय पर कुपित हो शाप देना, श्रीहरि के दर्शन करना, ब्राह्मण-प्रशंसा, सनकादि के हरि की स्तुति करना, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष के जन्म का प्रकार, हिरण्याक्ष का दिग्विजय, सवनवराह (तथा) हिरण्याक्ष के बीच युद्ध, ब्रह्म-स्तव, हिरण्याक्ष का वध, समरगणों के श्रीहरि का अभिनन्दन करना, हरि से वराहावतार का विसर्जन करवाना, देवतिर्यक मनुष्यादि की उत्पत्ति, कर्दम महामुनि की तपस्या से सन्तुष्ट हो श्रीहरि का प्रत्यक्ष होना, कर्दम के स्वायम्भू मनु की पुत्री देवहूति से परिणय करना, देवहूति की परिचर्याओं से सन्तुष्ट होकर कर्दम के निजयोग से कल्पित विमान स्थित हो सहस्रदासियो से परिवृता देवहूति से मिलकर भारतादि वर्ष में भ्रमण करना, देवहूति के कर्दक से नौकन्याओं और कपिल का जन्म देना, उन कन्याओ का विवाह, कर्दम की तपोयात्रा, कपिल-देवहूति संवाद, शब्दादि पंचतन्मात्राओं का जन्म-प्रकार (विधान), ब्रह्मांड की उत्पत्ति,

विराट्पुरुष कर्मेंद्रिय परमात्म प्रकारंबुनु, प्रकृतिपुरुष विवेकंबुनु, नारायणुनि सर्वांग स्तोत्रंबुनु सांख्ययोगंबुनु, भक्तियोगंबुनु, जीवुनकन गर्भसंभव प्रकारंबुनु, चंद्रसूर्य मार्गंबुन, बितृमार्गंबुन, देवहूति निर्याणंबुनु, गपिलमहामुनि तपंबुनकुं जनुटयु नमु कथलु गल तृतीय स्कंधमु संपूर्णमु ॥ **1046** ॥

विराट्पुरुष के कर्मेन्द्रिय-परमात्मा का प्रकार, प्रकृतिपुरुष-विवेक, नारायण का सर्वांग स्तोत्र, सांख्य-योग, भक्तियोग, जीव का गर्भसंभव-प्रकार, सूर्य-चन्द्र-मार्ग से पितृमार्ग से देवहूति का निर्याण, कपिल महामुनि का तप के लिए जाना आदि कथाओं से युक्त तृतीय स्कंध संपूर्ण हुआ । १०४६

ॐ

(चतुर्थ स्कन्धमु)

कं. श्रीविलसित धरणीतन, यावदन सरोज वासराधिप ! सित रा-
जीवदळनयन! निखिल ध, रावरनुत ! सुगुणधाम ! राघवरामा ! ॥1॥

अध्यायमु—१

व. महनीय गुणगरिष्ठुलगु नम्मुनिश्रेष्ठुलकु निखिल पुराण व्याख्यान वैखरी समेतुंडयिन सूतुंडिट्लनियें। अट्लु प्रायोपविष्टुंडैन परीक्षिन्नरेंद्रुनकु शुकयोगींद्रुं डिट्लनियें ॥ 2 ॥

(चतुर्थ स्कन्ध)

[कं.] श्री [से] विलसित (प्रकाशमान) धरणीतनया (सीता) के वदन [रूपी] सरोज [के लिए] सूरज [होनेवाले] श्वेत राजीव-दल (कमल के दल) [के जैसे विशाल] नयन [वाले] निखिल (अखिल) धरावरों (राजाओं) से नुत (प्रशंसित) [और] सुगुणों के धाम (निलय) हे राघवराम ! [तुम्हें प्रणाम है।] १

अध्याय—१

[व.] महनीय गुणों से गरिष्ठ (श्रेष्ठ) होनेवाले उन मुनि-श्रेष्ठों से निखिल (समस्त) पुराणों के व्याख्यानों (टीका-टिप्पणियों) की वैखरी (विधान) [से] समेत सूत ने इस प्रकार कहा [कि] उस प्रकार प्रायोपविष्ट (मरने के लिए उद्यत) [होनेवाले] राजा परीक्षित से शुकयोगींद्र ने यों कहा। २

मैत्रेयुंडु विदुरुनकु स्वायंभुवमनु पुत्रिकल वंशविस्तारंबु दॅलुपुट

सी. जननाथ ! विनु विदुरुनकुनु मैत्रेय मुनिनाथ चंद्रु डिट्लनियॅ मरियु
स्वायंभुवुनकथ शतरूप वलननु गूतुलु मुव्वुराकूतिदेव-
हूति प्रसूतुलु नॉनर प्रियव्रतोत्तानपादुलु ननु तनय युगमु
जनियिंचि रंदग्रसंभवयॅन याकूतिनि सुमहित भ्रातृमतिनि

ते. दनकु संतान विस्तरार्थंबु गाग,
बुत्रिका धर्म मूनि या पुव्वु बोडि
प्रकट मूर्ति रुचि प्रजापतिकि निच्चॅ
मनुवु मुदमोंदि शतरूप यनुमतिप ॥ 3 ॥

व. अट्लु विवाहंबैन रुचि प्रजापति ब्रह्मवर्चस्वियु परिपूर्ण गुणुंडुनु गावुन चित्तैकाग्रतं जेसि याकूतियंदु श्रीविष्णुंडु यज्ञरूपधरुंडगु पुरुषुंडगनु, जगदीश्वरि यगु नादिलक्ष्मि यम्महात्मुनकु नित्यानपायिनि गावुन दवंशंबुन दक्षिणयनु कन्यका रत्नंबुगनु, मिथुनंबु संभविंचॅ। अंदु स्वायंभुवुंडु संतुष्टांतरंगुंडगुचु बुत्रिका पुत्रुंडुनु, विततजोधनुंडुनु, श्रीविष्णुमूर्ति रूपुंडुनु नगु यज्ञुनि दन गृहंबुनकु दॅच्चि युनिचॅ। रुचियु

मैत्रेय का विदुर को स्वायंभुव मनु की पुत्रिकाओं का वंश-विस्तार समझाना

[सी.] हे जगन्नाथ (राजा) ! सुनो; विदुर से मैत्रेय मुनिनाथ-चंद्र (मुनियों में श्रेष्ठ) ने इस प्रकार कहा। फिर से स्वायंभुव के [उसकी] इच्छा से शतरूपा के द्वारा तीन बेटियाँ [हुईं]। [वे थीं]— आकूति, देवहूति [तथा] प्रसूति [और] अच्छे प्रियव्रत [तथा] उत्तानपाद नामक तनयों (पुत्रों) का युग (जोड़ा) पैदा हुआ तो उनमें अग्रसंभवा (अग्रजा) आकूति को मनु ने मुद (संतोष) पाकर [और] शतरूपा के [अपनी] अनुमति देने पर [ते.] सुमहित (अच्छे) भ्रातृ-मति (-भाव) वाली को, पुत्रिका [के] धर्म समझाकर, उस युवती को प्रकट-मूर्ति [होनेवाले] रुचि [नामक] प्रजापति को दिया ताकि अपना संतान-विस्तार हो। ३ [व.] उस प्रकार विवाहित रुचि प्रजापति [के] ब्रह्मवर्चस्वी (कांतिवाला) [और] परिपूर्ण गुणी होने से [उसके] चित्त की एकाग्रता के कारण आकूति में श्रीविष्णु यज्ञरूपधर पुरुष के रूप में [और] जगदीश्वरी लक्ष्मी के उस महात्मा के लिए नित्य-अनपायिनी (अपाय न होनेवाली) होने से उस [लक्ष्मी के] अंश में दक्षिणा नामक कन्यकारत्न के रूप में [एक] मिथुन (जोड़े) का जन्म हुआ। उनमें (से) स्वायंभुव ने संतुष्टांतरंग (संतुष्ट मन वाला) होते हुए पुत्रिका के पुत्र (नाते), वितत (अधिक) तेजोधनी [होनेवाले और] श्री विष्णुमूर्ति का रूप होनेवाले यज्ञ [नामक दौहित्र] को लाकर

गाम गमनयैन दक्षिण यनु कन्यका ललामंबुनु दन योद्दन निलिपें। अंत सकल मंत्राधिदेवत यगु श्रीयज्ञुंडु दनु बतिग गोरेंडु दक्षिण यनु कन्यकं बरिणयंबय्यें। वारादि मिथुनंबु गावुन नदि निषिद्धंबु गाकुंडें। अनि चॅप्पि मैत्रेयुंडु वॅंडियु निट्लनियें ॥ 4 ॥

कं. धीमहित ! यंत वारल,
यामाख्यलु गलुगु देवतावळि गडकन्
वेमरु नभिनंदिचुचु
ना मिथुनमु वलन बुट्टॆ नतिबलयुतमै ॥ 5 ॥

व. वारु तोषुंडुनु, प्रतोषुंडुनु, संतोषुंडुनु, भद्रुंडुनु, शांतियु, निडस्पतियु, निध्मुंडुनु, गवियु, विभुंडुनु, वह्नियु, सुदेवुंडुनु, रोचनुंडुनु ननं बन्निद्दरु संभविंचिरि। वारलु स्वायंभुवांतरंबुनं दुषितुलनु देवगणंबुलै वॅलसिरि। मरियु मरीचि प्रमुखुलैन ऋषीश्वरुलुनु, यज्ञुंडुनु, देवेंद्रुंडुनु, महातेजो रूप संपन्नुलैन प्रियव्रतोत्तानपादुलुनु गलिगि, पुत्र पौत्र नप्तृ वंशंबुलचे व्याप्तंबै या मन्वंतरंबु पालितंबगुचु वर्तिल्लॆ। मनुवु द्वितीय पुत्रियैन देवहूति गर्दमुन किच्चि, तद्वंश विस्तारंबु गाविचॆ ननि मुन्न यॆरिंगिचिति। वॅंडियु नम्मनुवु मूडवचूलयिन प्रसूतियनु कन्यकनु ब्रह्मपुत्रुंडगु दक्ष प्रजापतिकि निच्चॆ। आ दक्षुनकुं बसूति वलन नुदयिंचन प्रजा परंपरल

अपने गृह में रखा। रुचि ने काम-गमन वाली दक्षिणा नामक कन्या-ललाम को अपने पास ही रख लिया। इसके बाद अखिल मंत्रों के अधि-देवता [होनेवाले] श्री यज्ञ ने उसे (यज्ञ को) पति के रूप में चाहनेवाली दक्षिणा नामक कन्यका से परिणय किया। वे आदि (प्रथम) मिथुन (दंपती) है; इसलिए वह [विवाह] निषिद्ध नहीं हुआ। इस प्रकार कहकर मैत्रेय फिर इस प्रकार बोले। ४ [कं.] हे धीमहित (बुद्धिमान) ! देवतावलि (देवताओं का समूह) का प्रयत्नपूर्वक बार-बार अभिनदन करते रहने पर, उस मिथुन से तब यामाख्य (याम नामक) अतिबलयुत होकर [पुत्र] पैदा हो गये। ५ [व.] वे तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, वह्नि, सुदेव [और] रोचन नामक बारह [पुत्र] पैदा हुए। वे स्वायंभुवांतर (स्वायंभुव के समय) में उषित नामक देवगण होकर प्रख्यात हुए। और मरीचि प्रमुख मुनीश्वर और यज्ञ और देवेन्द्र और महान तेजस्संपन्न प्रियव्रत [और] उत्तानपाद [पैदा] होकर पुत्र, पौत्र [तथा] नप्तृ (दौहित्र) वंशों से व्याप्त होकर, वह मन्वंतर पालित होते हुए चला। [मैंने] पहले ही कहा था कि मनु ने [अपनी] द्वितीय पुत्री देवहूति को कर्दम को देकर उस वंश का विस्तार किया। फिर उस मनु की तृतीय संतान प्रसूति नामक कन्या को ब्रह्म के पुत्र दक्ष-

चेत मुल्लोकंबुलु विस्तृतंबुलय्यॆ। मरियु गर्दम पुत्रिका समुदयंबु ब्रह्मर्षि भार्यलगुटं जेसि वारि वलनं गलिगिन संतान परंपरल विवरिंचॆद ॥ 6 ॥

कर्दम प्रजापति संतति

सी. घनुडौ मरीचिकि गर्दमात्मज यगु कळ यनु नंगन वलन गश्य-
पुंडनु कॊडुकुनु, बूर्णिम यनु नाडुबिड्डयु बुट्टिरि, पॆंचि वारि
वलन बुट्टिन प्रजावळि परंपरलचे भुवनंबुलॆल्ल नापूर्ण मगुचु
जरिगॆनु, बूर्णिम जन्मांतरंबुन हरिपद प्रक्षाळितांबुवुलनु

ते. गंगयनु पेर बुट्टिन कन्य देव, कुल्य यनु दानि नीक्कर्ते गूतु नखिल
विष्टप व्यापकुंडगु विरजु डनॆडि, तनयु नीक्कनि गांचॆ मोदंबु तोड॥ 7 ॥

कं. अनघुं डत्रि महामुनि, यनसूयादेवि वलन हर्यजपुरसू-
दनुल कळांशंबुल नं, दनुलनु मुव्वुरनु गांचॆ दद्दयु ब्रीतिन् ॥ 8 ॥

कं. अनघुडु विदुरुडु मैत्रे-
युनि गनुगॊनि पलिकॆ मुनि जनोत्तम ! जगतिन्

प्रजापति को दिया। उस दक्ष के प्रसूति के द्वारा उदित होनेवाली प्रजा परंपरा से तीनों लोक विस्तृत हुए। और चूँकि कर्दम की पुत्रिकाओं का समुदाय (समूह) ब्रह्मर्षियों की पत्नियाँ हैं, इसलिए उनसे जो संतान-परंपरा हुई उसका विवरण बतलाऊँगा। ६

कर्दम प्रजापति की संतति

[सी.] घन (महान) मरीचि की आत्मजा (बेटी) होनेवाली कला नामक अंगना (स्त्री) से कश्यप नामक लड़का [तथा] पूर्णिमा नाम की लड़की पैदा हुई। क्रम से उनसे उत्पन्न प्रजावली की परंपराओं से सभी भुवन पूर्ण हुए (भर गये)। पूर्णिमा ने जन्मांतर में (दूसरे जन्म में) हरि के चरणों का प्रक्षालन करनेवाली [ते.] अंबु (जल) से गंगा के नाम से [प्रख्यात] देव-कुल्या (-नदी) को [और] अखिल विष्टप (लोकों) में व्यापक [होनेवाले] विरज नामक एक तनय (पुत्र) को मोद (आनन्द) के साथ पाया। ७ [कं.] अनघ (पाप-रहित) अत्रि महामुनि ने अनसूया देवी से अज (ब्रह्मा), हरि (विष्णु) और पुरसूदन (शिव) की कला के अंशों से युक्त तीन नंदनों को बड़ी प्रीति के साथ पाया। ८ [कं.] ऐसा कहने पर विदुर ने मैत्रेय को देखकर कहा कि [हे] मुनिजनों में उत्तम! जग में जनन, स्थिति [तथा] लय के कारण [होनेवाले] पद्मगर्भ (ब्रह्मा), हरि और हर

जननस्थिति लयकारणु-
लन वॅलसिन पद्मगर्भ हरि हरु लॅलमिन् ॥ 9 ॥

कं. एमि निमित्तं बत्रि म, हामुनि मंदिरमु नंदु ननसूयकु नु-
द्दाम गुणु लुदयमैरन, ना मैत्रेयुंडु वलिकॅ नव्विदुरुनितोन् ॥ 10 ॥

सी. सुचरित्र ! विनु विधि चोदितुंडै यत्रि तपमाचरिंप गांतासमेतु-
डै ऋक्षनाम कुलाद्रि तटंबुन घुमघुमाराव संकुल विलोल
कल्लोल जाल संकलित निर्विंध्यानदी जल परिपुष्ट राजित प्र-
सून गुच्छ स्वच्छ मानिताशोक पलाश कांतारस्थलमुन कॅलमि

ते. नरिगि यच्चट निर्द्वंद्वुडगुचु प्राण
नियमनमुन नेकांघ्रिचे निलिचि गालि
दिवुट ग्रोलि कृशीभूत देहु डगुचु
दपमु गाविचॅ दिव्य वत्सर शतंबु ॥ 11 ॥

व. इट्लति घोरंबैन तपंबु सेयुचुं दन चित्तंबुन ॥ 12 ॥

कं. ए विभुड् जगदधीश्वरु, डा विभुशरणंबु जॊत्तु नत डात्म समं-
बै वॅलसिन संततिनि द, या वरमति निच्चुगाक यनि तलचु नॅडन् ॥13॥

चं. मुनु कॊनि यत्तपोधनुनि मूर्धजमैन तपःकृशानुचे
तनु द्रिजगंबुलुं गरगि तप्तमुलैननु जूचि पंकजा-

प्रसन्नता से, ९ [कं.] किस निमित्त (कारण) अत्रि महामुनि के मंदिर (घर) में, अनसूया से उन उद्दाम गुणियों का उदय हुआ ? ऐसा पूछने पर मैत्रेय ने उस विदुर से कहा। १० [सी.] हे सुचरित्त ! सुनो। विधि से चोदित (उत्साहित) होकर अत्रि ने कांता-समेत होकर तप का आचरण करने के लिए ऋक्ष नामक कुलाद्रि (कुलपर्वत) के तट पर 'घुम-घुम' के रव (ध्वनि) से संकुल, विलोल (चंचल), कल्लोल (तरंगों के) जाल (समूह) से संकलित निर्विंध्या [नामक] नदी जलों से परिपुष्ट, राजित (प्रकाशमान) प्रसूनों के गुच्छों से स्वच्छ, मानित (प्रशंसनीय) अशोक [और] पलाश के कांतार (वन) स्थल में प्रेम के साथ जाकर, [ते.] वहाँ निर्द्वंद्व (अकेले) होते हुए प्राण (वायु) [के] नियम से एक पाँव पर खड़े होकर [अपनी] इच्छा से साँस लेकर कृशीभूत देही बनते हुए दिव्य (देवताओं के) शत वर्ष तप किया। ११ [व.] इस प्रकार अति घोर (भयंकर) तप करते हुए अपने चित्त में, १२ [कं.] जब सोच रहा था कि जो विभु (परमेश्वर) जगत का अधीश्वर है उस विभु की शरण में जाऊँगा [ताकि] वह [अपनी] आत्मा के समान विख्यात संतति को दया-युक्त मति से दे। १३ [चं.] उस तपोधनी के मूर्ध (सिर) से निकली तप की अग्नि से तीनों जगों (लोकों) के पिघलकर तप्त होने पर [उन्हें]

सन मुरशासन त्रिपुर शासनुलच्चटि केगि रप्सरो
जन सुर सिद्ध साध्य मुनि सन्नुत भूरि यशोभिरामुलै ॥ 14 ॥

व. अट्लु मुनींद्रु नाश्रमंबु डायंजनु नवसरंबुन ॥ 15 ॥

चं. अनघ तपोभिरामुडगु नत्रि मुनींद्रुडु गांचॆ दप्त कां-
चन घन चंद्रिका रुचिर चारु शरीरुल, हंस नाग सू-
दन वृषभेंद्र वाहुल नुदार कमंडलु चक्र शूल सा-
धनुल विरिंचि विष्णु पुरदाहुल वाक्कमलांबिकेशुलन् ॥ 16 ॥

व. मट्टियुनु गृपावलोक मंदहास सुंदर वदनारविंदंबुलु गल महात्मुल दर्शिंचि, यमंदानंद कंदळित हृदयारविंदुंडै साष्टांग दंड प्रणामंबु लाचरिंचि, पुष्पांजलि गाविंचि निटलतट घटित करपुटुंडै दुर्निरीक्षंबैन तत्तेजो विशेषंबु देट्रिचूडं जालक मुकुळित नेत्रुंडै तत्पदायत्त चित्तुंडगुचु सर्वलोक प्रशस्यंबुलैन मृदु मधुर गंभीर भाषणंबुल निट्लनि स्तुतियिंचॆ ॥ 17 ॥

सी. प्रति कल्पमंदु सर्व प्रपंचोद्भव स्थिति विनाशंबुल जेयुनट्टि
महित मायागुणमय देहमुल बॊल्चु नज वासुदेव शिवाभिधान

देखकर पंकजासन (ब्रह्मा), मुरशासन (विष्णु) और त्रिपुरशासन (शिव) अप्सराओं, सुरों, सिद्धों, साध्यों [एवं] मुनियों से सन्नुत (प्रशंसित) भूरि (बड़े) यश से अभिराम (सुंदर) बनकर वहाँ पधारे। १४ [व.] उस प्रकार मुनि के आश्रम के समीप जाते समय। १५ [चं.] अनघ (पापरहित) तपोभिराम (तप से मनोज्ञ) अत्रि मुनींद्र ने तप्त कांचन [और] घन चंद्रिका [के जैसे] रुचिर (कान्तियुक्त) और चारु (सुन्दर-) शरीरी (शरीर धारण करनेवाले) हंस वाहन वाले, नागसूदन (गरुड़-) वाहन वाले और वृषभेंद्र वाहन वाले [क्रम से] उदार कमंडल, चक्र [और] शूल साधनों को ग्रहण करनेवाले विरिंचि, विष्णु और पुरदहन करनेवाले, वाक् (सरस्वती) के, कमला के और अंबिका के ईशों (पतियों) को देखा। १६ [व.] और [उसने] कृपा के अवलोकन (दृष्टि) से मंदहास, सुन्दर वदन [रूपी] अरविंद वाले महात्माओं के संदर्शन करके अमंद आनन्द [से] कंदलित (अंकुरित) हृदय [रूपी] अरविंद वाले बनकर, साष्टांग दंड प्रणाम करके निटल (भाल) तट (के ऊपर) घटित (रखे हुए) कर पुट (दोनों हाथ) वाला बनकर, दुर्निरीक्ष (देख न सकने के) तत् (उनके) तेजोविशेष (अधिक तेज) को सीधे न देख सक कर, मुकुलित (कुंचित) नेत्र वाला बनकर, तत् (उनके) पादों (पर) आयत्त (लगाया गया) चित्त [वाला] होते हुए, सर्वलोक [से] प्रशंसित मृदु, मधुर [एवं] गभीर भाषणों (बातों) से इस प्रकार स्तुति की। १७ [सी.] प्रति कल्प में

मुलु गल्गु मी पाद जलजातमुल केनु नति भक्ति वंदनं बाचरिंतु
नखिल चेतन मानसागम्य मन नॉप्पु मूर्तलु गल्गु मी मुव्वुरंदु

ते. बरग नाचेत बिलुवंग बडिन धीरु
डॅव्वडे नॉक्करुनि बिलव निपुडु मीरु
मुव्वुरेतेंचुटकु नादु बुद्धि विस्म-
यंबु गदिरॅडि जॅप्परे! यनघुलार! ॥ 18 ॥

व. अदियुनुं गाक संतानार्थंबु नानाविध पूजलु गाविंचि, ना चित्तंबुन धरियिंचिन महात्मुंडॉक्करुंड। अनिन नम्मुव्वुरु विबुध श्रेष्ठुलु नतनिं गनुंगॉनि सुधामाधुर्य समंबु लयिन वाक्यंबुल निट्लनिरि ॥ 19 ॥

कं. विनु मेमु मुगुर मय्युनु,
ननुपममति दलपनेकमै युंदुमु नी-
मनमंदु नेमि कोरिति?
वनयमु ना कॉंकि सफलमय्यॅडु जुम्मी! ॥ 20 ॥

कं. मा मुव्वुर यंशंबुल,
धीमतुलगु सुतुलु पुट्टि त्रिभुवनमुललो
नी मंगळ गुण कोर्तिन्,
श्रीमहितमु सेय गलरु सिद्धमु सुम्मी! ॥ 21 ॥

सर्व प्रपंच (संसार) के उद्भव, स्थिति [और] विनाश करनेवाले, महित [और] माया गुणमय देहों में प्रत्यक्ष होनेवाले [और] अज (ब्रह्मा), वासुदेव [तथा] शिव के अभिधान (नाम) [से युक्त] आपके पाद [रूपी] जलजातों (कमलों) को मैं अति भक्ति से वन्दना करता हूँ। अखिल चेतनाओं के लिए मन से अगम्य होनेवाली मूर्तियों को [धारण करनेवाले] [ते.] आप तीनों में से किसी एक धीर को, मेरे बुलाने पर, [मैंने बुलाया था], अब आप तीनों के [एक साथ] आने पर मेरी बुद्धि को विस्मय हो रहा है; [हे] अनघ! [इसका कारण क्या है] कहिए। १८ [व.] इसके अतिरिक्त संतानार्थ नाना विध पूजाएँ करके मेरे चित्त में धारण किया गया महात्मा एक ही है। इस प्रकार कहने से उन तीनों विबुध (देवता) श्रेष्ठों ने उसे देखकर सुधा [के समान] मधुर वाक्यों से इस प्रकार कहा। १९ [कं.] सुनो, हम, यद्यपि तीन हैं, अनुपममति (उपमान-रहित बुद्धि) से सोचने पर एक ही है। अपने मन में जो चाहते हो, वह अवश्य सफल हो जायगा। २० [कं.] यह सच है कि हम तीनों के अंशों से, धीमान (बुद्धिमान) सुत पैदा होकर, तीनों भुवनों में तुम्हारी मंगल [मय] कीर्ति को श्री (कांति) महित (युक्त) कर देंगे। २१ [कं.] मुनिचंद्र अपने मन में जो वर पाने चाहे, उन्हें

कं. अनि मुनिचंद्रुडु दन मन-
मुन गामिंचिन वरंबु बुधवरुलु मुदं-
बुन नोसगि यतनि सन्पू-
जनमुल बरितृप्तुलगुचु जनिरि यथेच्छन् ॥ 22 ॥

उ. आ सुचरित्र दंपतु लुदंचित लील गनुंगोनंग न-
ब्जासनु नंशमंदु नमृतांशुडु, विष्णुकळन् सुयोग वि-
द्यासुभगुंड दत्तुडु, पुरांतकु भूरि कळांशमंबु दु-
र्वासुडुनै जनिंचिरनवद्य पवित्र चरित्रु निम्मुलन् ॥ 23 ॥

कं. अंगिरसुडनेडु मुनिकि गु, लांगनयगु श्रद्ध यंदु नंचित सौंद-
र्यांगुलु गूतुलु नलुवुरु, मंगळवतु लुदयमैरि मान्यचरित्रा ! ॥ 24 ॥

कं. वारु सिनीवालियुनु गु, हू राकानु मतु लनग नोप्पिरि मरियुं
गोर सुतयुगमु गलिगेनु, स्वारोचिष मनुवुवेळ शस्तख्यातिन् ॥ 25 ॥

व. वारलु भगवंतुंडगु नुचथ्युंडुनु, ब्रह्मनिष्ठुंडगु बृहस्पतियु ननं प्रसिद्धि वहिंचिरि। पुलस्त्युंडु हविर्भुक्कनु निज भार्ययंदु नगस्त्युनि बुट्टिंचे। आ यगस्त्युंडु जन्मांतरंबुन जठराग्नि रूपंबै प्रवर्तिंचे। वेंडियु ना पुलस्त्युंडु विश्रवसुनि गलिगिंचे। आ विश्रवसुनकु निळबिल यनु भार्य वलनं गुबेरुंडुनु, गैकसियनु दानि वलन रावण कुंभकर्ण विभीषणुलुनु

[वे] आनन्द से देकर, उसकी पूजाओं से परितृप्त होकर, यथेच्छा (मनमाना) से चले गये। २२ [उ.] उन सुचरित्र वाले दंपति के उदंचित (विजृंभित) लीलाओं को देखने पर, अब्जासन (ब्रह्मा) के अंश में अमृतांश (चंद्रमा), विष्णु की कला (अंश) से सुयोग विद्या के सुभग (मनोहर) दत्त, पुरांतक (शिव) की भूरि (श्रेष्ठ) कला से दुर्वासा, अनवद्य (उत्तम) और पवित्र चरित्रवाले (तीन पुत्र) सुख से पैदा हो गये। २३ [क.] [हे] मान्य चरित्र [वाले] ! अंगिरस नामक मुनि के उसकी कुलांगना (स्त्री) होनेवाली श्रद्धा में अंचित (अधिक) मंगलवती और सौंदर्यवती चार पुत्रियों का उदय हुआ। २४ [कं.] वे सिनीवाली (चन्द्रकला-युक्त अमावस्या) तथा कुहू, राका, अनुमती नामों से विख्यात हुईं। और चाहने पर सुतयुग (पुत्रों का जोड़ा) हुआ जो स्वारोचिष मनु के समय में शस्त (शाश्वत) ख्याति वाले हुए। २५ [व.] [अगर तुम] पूछते हो कि वे कौन हैं [तो कहता हूँ, सुनो, वे] भगवान नुचथ्य तथा ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति नामों से प्रसिद्ध हुए। पुलस्त्य ने हविर्भुक नाम की अपनी पत्नी में अगस्त्य को पैदा किया। वह अगस्त्य जन्मांतर में जठराग्नि रूप बनकर प्रवर्तित (प्रसिद्ध) हुआ। फिर उस पुलस्त्य ने विश्रवसु को जन्म दिया। उस विश्रवसु के इलविला नाम की पत्नी से कुबेर [और] कैकसी

बुट्टिरि। पुलहुनकु गतियनु भार्ययंदु गर्मश्रेष्ठुंडु, वरीयांसुंडु, सहिष्णुंडु ननु मुव्वुरु कोडुकुलु जनियिंचिरि। मरियु क्रतुवुनकु क्रिययनु भार्य यंदु ब्रह्म तेजंबुन ज्वलिंपुचुन्न षष्टि सहस्रसंख्यलु गल वालखिल्युलनु महर्षुलु गलिगिरि। वसिष्ठुंडूर्जयनु भार्ययंदु चित्रकेतुंडुनु, सुरोचियुनु, विरजुंडुनु, मित्रुंडुनु, तुल्बणुंडुनु, वसुभृद्ध्यानुंडुनु, द्युमंतुंडुनु ननु सप्त ऋषुलनु, भार्यातरंबुन शक्ति प्रमुख पुत्रुलनुं बुट्टिंचॆ। अथर्वुंडनु वानिकि चित्तियनु भार्ययंदु धृत व्रतुंडुनु, अश्वशिरस्कुंडुनैन दध्यंचुंडु पुट्टॆ। महात्मुंडगु भृगुवु ख्याति यनु पत्नियंदु धातयु, विधातयु ननु पुत्रद्वयंबुनु, भगवत्परायणयगु श्री यनु कन्यकं बुट्टिंचॆ। आ धातृ विधातृलु मेरुवनु वानि कूतुलैन यायति, नियतुलनु भार्यल वलन मृकंड प्राणुलनु कोडुकुलं बुट्टिंचिरि। अंदु मृकंडुनकु मार्कंडेयुंडुनु, प्राणुनकु वेदशिरुंडनु मुनियुं बुट्टिरि। भार्गवुनकु नुशनयनु कन्ययंदु कवि यनु वाडु पुट्टॆ। इट्लु कर्दम दुहितलैन कन्यका नवकंबु वलनं गलिगिन संतान परंपरल चेत समस्त लोकंबुलु परिपूर्णबु लय्यॆ। इट्टि सद्यः पाप-हरंबुनु, श्रेष्ठतमंबुनैन कर्दम दौहित्र संतान प्रकारंबु श्रद्धागरिष्ठ

नाम की [पत्नी] से रावण, कुंभकर्ण [और] विभीषण पैदा हो गये। पुलहु के गति नाम की पत्नी से कर्मश्रेष्ठ, वरीयांस [और] सहिष्णु नाम के तीन पुत्रों का जन्म हुआ और क्रतु के क्रिया नाम की पत्नी से ब्रह्मतेजस् से ज्वलित होनेवाले षष्ठिसहस्र (छः हजार) संख्या में वालखिल्य नामक महर्षिगण का जन्म हुआ। वसिष्ठ के ऊर्जा नाम की पत्नी से चित्रकेतु, सुरोचि, विरज, मित्र, उल्बण, वसुभृद्ध्यान और द्युमंत नाम के सप्तर्षियों को तथा भार्यातर (अन्य पत्नी) से शक्ति-प्रमुख (-आदि) पुत्र पैदा हो गये। अथर्व नाम के व्यक्ति के जित्ति नाम की पत्नी से धृतव्रत और अश्वशिरस्क वाला दध्यच पैदा हुआ। भृगु ने ख्याति नाम की पत्नी में धाता और विधाता नाम के पुत्रद्वय (दो पुत्र) [और] भगवत्परायणा होनेवाली श्री नाम की कन्या को पैदा किया। उन धाता [और] विधाताओं ने मेरु की पुत्रियाँ यायति [और] नियति नाम की पत्नियों से मृकंडु [और] प्राण नामक पुत्रों को जन्म दिया। उनमें से मृकंडु के मार्कंडेय [तथा] प्राण के वेदशिर नामक मुनि पैदा हुए। भृगु के उशना नामक कन्या से कवि नामक [पुत्र] पैदा हुआ। इस प्रकार कर्दम की दुहिताएँ होनेवाली कन्यका-नवक (नौ कन्याओं) से जो संतान-परंपराएँ हुईं, उनसे समस्त लोक परिपूर्ण हुए। ऐसे सद्यःपापहर (पापों को तुरंत नष्ट करनेवाले) और श्रेष्ठतम होनेवाले कर्दम-दौहित्र-संतान के प्रकार को

चित्तुंडवगु नीकुं जॅप्पिति। इंक दक्ष प्रजापति वंशंबॅरिंगितु। विनुमु ॥ 26 ॥

दक्ष प्रजापति संतति

कं. वनजजुनिवलन भवमं, दिन या दक्ष प्रजापतिकि मनु निज नं-
दन यगु प्रसूति सतियं, दनघा ! पदियार्वुरुदयमंदिरि कन्यल् ॥ 27 ॥

व. इट्लाविर्भविंचिन कन्यकलंदु श्रद्धयु, मैत्रियु, दययु, शांतियु, तुष्टियु, पुष्टियु, क्रिययु, नुन्नतियु, बुद्धियु, मेधयु, तितिक्षयु, ह्रीयु, मूर्तियु ननु नामंबुलंगल पदुमुव्वुरनु धर्मराजुन किच्चॅ। ऒक्क कन्यक नग्नि देवुनकु, नॊक्कर्त पितृदेवतलकु, नॊक्कर्त जन्ममरणादि निवर्तकुंडगु नभवुनकुं बॅंडिलि सेसॅ। अंत ना धर्मुनि पत्नुलयंदु श्रद्धवलन श्रुतंबुनु, मैत्रिवलन प्रसादंबुनु, दय वलन नभयंबुनु, शांति वलन सुखंबुनु, तुष्टिवलन मुदंबुनु, पुष्टिवलन स्मयंबुनु, क्रियवलन योगंबुनु, उन्नति वलन दर्पंबुनु, बुद्धिवलन नर्थंबुनु, मेधवलन स्मृतियु, तितिक्ष वलन क्षेमंबुनु, ह्रीवलन प्रश्रयंबुनु, मूर्ति वलन सकल कल्याण गुणोत्पत्तिस्थान भूतुलगु नर नारायणुलनु ऋषुलिद्दरुनु संभविंचिरि। वारल जन्मकालंबुन ॥ 28 ॥

[मैंने] श्रद्धा से गरिष्ठ चित्त होनेवाले तुमको सुनाया। अब दक्ष प्रजापति के वंश को समझा दूँगा। सुनो। २६

दक्ष प्रजापति की संतति

[कं.] हे अनघ! वनजज (ब्रह्मा) से भव को प्राप्त हुए (पैदा हुए) उस दक्ष प्रजापति के मनु की निज (अपनी) नंदना (पुत्री) प्रसूति [नामक] सती में सोलह कन्याओं का उदय हुआ। २७ [व.] इस प्रकार जो कन्याएँ पैदा हुईं, उनमें से श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, प्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री [और] मूर्ति नामक तेरहों को धर्मराजा को दिया। एक कन्या को अग्निदेव को, एक को पितृदेवताओं को [और] एक को जनन [और] मरण आदि के निवर्तक (दूर करनेवाला) अभव को विवाह में दे दिया। तब उस धर्म [राजा] की पत्नियों में श्रद्धा से श्रुत, मैत्री से प्रसाद, दया से अभय, शांति से सुख, तुष्टि से मुद (आनन्द), पुष्टि से स्मय, क्रिया से योग, उन्नति से दर्प, बुद्धि से अर्थ, मेधा से स्मृति, तितिक्षा से क्षेम, ह्री से प्रश्रय (अनुनय), मूर्ति से सकल कल्याण [युक्त] गुणों की उत्पत्ति [के] स्थानभूत नर [और] नारायण नामक दो ऋषियों का संभव (जन्म) हुआ। उनके जन्म-काल में, २८ [सी.] गंधवाह (पवन)

सी. गंधवाहुडु मंदगति ननुकूलुडै वीचॆ नलिदक्कुलु विशवमय्यॆ
नखिल लोकंबुलु नानंदमुनु बॊंदॆ दुमुलमै देवदुंदुभुलु म्रोसॆ
गर मॊप्प जलधुल गलकुवलुडिगॆनु मिचिनगति ब्रवहिंचॆ नदुलु
गंधर्व किन्नर गानमुल् वीतेंचॆ नप्सरोजनुल लास्यमुलु चॆलगॆ

ते. सुरलु गुरियिंचि रंदंद विरुलवान
मुनिजनंबुलु संतोषमुल जॆलंगि
विनतु लॊनरिंचि रव्वेळ विश्वमॆल्ल
बरम मंगळमै यॊप्पॆ भव्यचरित ! ॥ 29 ॥

व. आ समयंबुन ब्रह्मादि देवतलम्महात्मुल कड्डकुं जनुदॆंचि यिट्लनि स्तुतियिंचिरि ॥ 30 ॥

सी. गगनस्थलि दोचु गंधर्व नगरादि रूप भेदमुलट्ल रूढि मॆरसि
ये यात्मयंदेनि नेपारु मायचे नी विश्व मिट्टु रचियिंप बडियॆ
नट्टि यात्म प्रकाशार्थमै मुनि रूपमुल धर्मु गृहमुन बुट्टि नट्टि
परमपुरुष ! नीकु ब्रणमिल्लेदमु नदि गाक सृष्टि दुष्कर्मवृत्ति

ते. जडग नीकुंडु कॊरकुनै सत्त्व गुणमु-
चे सृजिंचिन मम्मिट्लु श्रीनिवास-
मैन सरसीरुह प्रभ नपहसिंचु,
नीकृपालोकनंबुल नॆम्मि जूडु ॥ 31 ॥

मंदगति से अनुकूल होकर वहा, चारों दिशाएँ विशद [स्वच्छ] हुई। अखिल (समस्त) लोकों ने आनंद पाया। तुमुल होकर (ज़ोर से) देवों की दुंदुभियाँ (बाजे) बज उठीं। अधिक शोभा से जलधियों का हलचल दब गया। नदियाँ ज़ोर से प्रवहमान हो गईं। गंधर्वों [तथा] किन्नरों के गान सुनाई पड़े। अप्सराओं के लास्य (नाट्य) हुए। [ते.] इधर-उधर सुरों ने फूल बरसाये। मुनिजनों ने आनन्द से उस समय विनतियाँ (प्रार्थनाएँ) कीं। हे भव्य चरित [वाले] ! सारा विश्व परम मंगल [मय] होकर शोभित हुआ। २९ [व.] उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं ने उन महात्माओं के पास आकर इस प्रकार स्तुति की। ३० [सी.] गगनस्थल में दिखाई पड़नेवाले गंधर्व-नगर आदि रूप के भेदों के जैसे रूढ़ि से प्रकाशमान होकर जिस आत्मा में व्याप्त माया से यह विश्व इस प्रकार रचा गया है, उस आत्मा के प्रकाशनार्थ मुनि-रूपों से धर्म के गृह [में] उत्पन्न [हे] परमपुरुष ! तुम्हें प्रणाम करते हैं; [ते.] इसके अतिरिक्त ताकि दुष्कर्म-वृत्ति न हो, सत्त्वगुण के द्वारा सृजित हमें इस प्रकार श्री का निवास होनेवाले [और] सरसीरुह की प्रभा का उपहास करनेवाले अपनी कृपा के आलोकनों से, प्रेम से देखो। ३१ [कं.] इस

कं. अनि यिट्लु देवगणमुलु, विनुतिप गृपाकटाक्ष वीक्षणमुलचे
गनि वारु गंधमादन, मुन केगिरि तंड्रि मुदमु मुप्पिरि गोनगन् ॥ 32 ॥

कं. धरणी भरमुडुपुट का, नर नारायणुलु भुवि जनन मनयमु नों-
दिरि यर्जुन कृष्णाख्यल, गुरु यदु वंशमुल सत्त्वगुणयुतुलगुचुन् ॥ 33 ॥

व. मरियु नग्निदेवुनकु दक्ष पुत्रियैन स्वाहा देवियनु भार्ययंदु हुत भोजनु-
लगु पावकुंडुनु, पवमानुंडुनु, शुचियु ननु मुव्वुरु कोडुकुलु गलिगिरि।
वारि वलनं बंचचत्वारिंशत्संख्यलं गल यग्नुलुत्पन्नंबुलय्यें। इट्लु
पितृ पितामह युक्तंबुगा नेकोन पंचाशत्संख्यलंगल यग्नुल कोरकु ब्रह्म
वादुलचे यज्ञकर्मंबुलंदग्नि देवताकंबुलयिन यिष्टुलु दत्तन्नामंबुल चेत
जेयंबडुचुंडु। आ यग्नुलेव्वरनिन नग्निष्वात्तुलु, बर्हिषदुलु, सौम्युलु,
पितलु, आज्यपुलु, साग्नुलु, निरग्नुलु ननेडु तेरंगुलयि युंडुरु। दाक्षायणि
यगु स्वधयनु धर्मपत्नि यंदु वारल वलन वयुनयु, धारिणियु ननु निद्दरु
कन्यलुदयिंचि, ज्ञान विज्ञान पारगलगुचु ब्रह्म निष्ठलयि परगिरि।
वेंडियु ॥ 34 ॥

प्रकार कहकर देवगणों के विनुति (प्रशंसा) करने पर कृपा [पूर्ण] कटाक्ष (अनुग्रह) से [युक्त] वीक्षणों से देखकर वे गंधमादन को चले गये ताकि पिता का आनन्द तिगुना हो जाय। ३२ [कं.] धरणी के भार को दूर करने के लिए वे नर [और] नारायण भुवि (भूमि) पर अर्जुन [और] कृष्ण के नाम से कुरु [एवं] यदुवंश में सत्त्वगुणयुत होते हुए अवश्य पैदा हो गये। ३३ [व.] और अग्निदेव के दक्ष-पुत्री स्वाहादेवी नामक पत्नी में हुत-भोजन पावक, पवमान [और] शुचि नामक तीन पुत्र पैदा हुए। उनसे पैंतालीस संख्याओं की अग्नियाँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार पितृ [और] पितामहयुक्त उनचास संख्याओं की अग्नियों के लिए ब्रह्मवादियों से यज्ञकर्मों में अग्निदेवताओं से संबंधित यिष्टियाँ उन उन नामों पर की जाती हैं। वे अग्नियाँ हैं— अग्निष्वात्, बर्हिषद्, सौम्य, पिता, आज्य, साग्न, निरग्न नामक सात प्रकार की हैं। दाक्षायणी (दक्ष की पुत्री) स्वधा नामक धर्म-पत्नी में, उनसे वयुना [और] धारिणी नामक दो कन्याएँ पैदा होकर ज्ञान-विज्ञान-पारगा (पारंगता) होते हुए ब्रह्मनिष्ठ बनकर प्रकाशमान हुईं। और, ३४

ईश्वरुनकुनु दक्ष प्रजापतिकिनि विरोधमु संभविंचुट

सी. दक्ष प्रजापति तनयमु, भवुनि भार्यमु ननदगु सतियनु लतांगि
सततंबु पति भक्ति सल्पु चुंडियु दनूजात लाभमु नंदजाल दय्यें
भर्गुनि वेंस जाल प्रतिकूलुडैनट्टि तम तंड्रि मीदि रोषमुन जेसि
वलनेदि ता मुग्धवलें निजयोग मार्गंबुन नात्म देहंबु विडिचें

ते. ननि मुनींद्रुडु विनिर्पिप नम्महात्मु-
डैन विदुरुंडु मनमुन नद्भुतंबु
गदुर दत्कथ विन वेड्क गडलुकोनग
मुनि वरेण्युनि जूचि यिट्लनियें मरियु ॥ 35 ॥

अध्यायमु—२

सी. चतुरात्म ! दुहितृवत्सलुडैन दक्षुंडु दनकूतु नति ननादरमु सेसि
यनघंबु नखिल चराचर गुरुडु निर्वैरुंडु शांत विग्रहुडु घनुडु
जगमुल कॆल्लनु जर्चिप देवुंडु नंचितात्मारामुड लघुमूर्ति
शीलवंतुललोन श्रेष्ठुंडुनगु नट्टि भवुनंदु विद्विष पडुट कॆमि

ईश्वर और दक्ष प्रजापति में शत्रुता होना

[सी.] दक्ष प्रजापति की तनया तथा भव की पत्नी कहने योग्य सती नामक लतांगी सतत पति-भक्ति से रहने पर भी तनूजात (सन्तान) का लाभ न पा सकी। भर्ग (शिव) से अधिक प्रतिकूल होनेवाले अपने पिता पर होनेवाले रोष से, उपाय खोकर, उसने मुग्धा की तरह, निज योगमार्ग से आत्म (अपनी)-देह को छोड़ दिया। [ते.] इस प्रकार मुनींद्र के कह सुनाने पर महात्मा होनेवाले उस विदुर ने, मन में अद्भुत-सा लगने पर, उस कथा को सुनने की उत्कंठा अधिक होने पर, मुनिवरेण्य (श्रेष्ठ) को देखकर फिर इस प्रकार कहा। ३५

अध्याय—२

[सी.] हे चतुरात्मा ! हे सुधी-विधेय ! (पंडितों के विनीत) ! दुहिता से वात्सल्य रखनेवाले दक्ष के अपनी पुत्री का अनादर करके, सदा अखिल चर और अचर के गुरु, निर्वैरी (शत्रुहीन), शांत विग्रहवाले, घन (श्रेष्ठ), सारे जगों के लिए चर्चा करने पर देव, पूज्य आत्माराम (आत्मा में राम का ध्यान करनेवाला), अलघु-मूर्तिवाले [और] शील (चरित्र) वानों में श्रेष्ठ होनेवाले भव (शिव) के प्रति द्वेष रखने का क्या कारण

ते. कारणमु ? सति दानेमि कारणमुन
विडुवरानट्टि प्राणमुल् विडिचॅ ? मरियु
श्वशुर-जामातृ विद्वेषसरणि नाकु
दॅलिय नानति यिम्मु सुधी-विधेय ! ।। 36 ।।

कं. अनि यडिगिन नविदुरुनि
गनुगॉनि मैत्रेयुडनियं गौतुक मॉप्पन्
विनुमनघ ! तॉल्लि ब्रह्मलु
जननुतमुग जेयुनट्टि सत्रमु जूडन् ।। 37 ।।

चं. सरसिजगर्भ योगिजन सर्व सुपर्व मुनींद्र हव्य भु-
क्परम ऋषि प्रजापतुलु भक्ति मॅयि जनुदॅंचि युंड न-
त्तरणि समान तेजुडगु दक्षुडु बच्चिचन दत्सभासदुल्
दरमिडि लेचि रप्पुडु पितामह भर्गुलु दप्प नंदरुन् ।। 38 ।।

कं. चनुदॅंचिन या दक्षुडु, वनजजुनकु म्रॉक्कि भक्ति वशुलै सभ्युल्
वन किच्चिन पूजलु गै, कॉनि यर्हासनमुनंदु गूर्चुंडि तगन् ।। 39 ।।

ते. तन्नु वॉड गनि सभ्युलंदरुनु लेव
नासनमु डिगकुन्न पुरारि वलनु
गन्नु गॉनलनु विस्फुलिंगमुलु वॅंदर
जूचि यिट्लनु रोष विस्फुरण मॅरय ।। 40 ।।

है ? [ते.] सती ने स्वयं किस कारण से त्यागने योग्य न होनेवाले प्राणों को छोड़ दिया ? और श्वसुर (ससुर) व जामाता (दामाद) की विद्वेष-सरणी (पद्धति) को मुझे समझा दो। ३६ [कं.] ऐसा पूछने पर उस विदुर को देखकर मैत्रेय ने कौतुक को बढ़ाते हुए इस प्रकार कहा। [हे] अनघ! सुनो। पूर्वकाल मे ब्रह्माओं के, जनता द्वारा प्रशंसित रूप में किये जाने वाले सत्र (यज्ञ) को देखने के लिए, ३७ [चं.] सरसिजगर्भ (विष्णु), योगिजन, सर्व-सुपर्व (-देवता), मुनींद्र, हव्यभुक् (अग्नि), परम ऋषि और प्रजापति-गणों के भक्ति से आकर रहने पर, तरणि (सूरज) के समान तेजस्वी होनेवाले दक्ष के आने पर पितामह (ब्रह्मा) [और] भर्ग (शिव) को छोड़कर क्रम से अन्य सभी सभासद (सदस्य) भय से उठ खड़े हुए। ३८ [कं.] आया हुआ वह दक्ष वनजज (ब्रह्मा) को नमस्कार करके, भक्ति-वश होकर सदस्यों ने उसे जो पूजाएँ (गौरव) दीं, उन्हें स्वीकार करके [अपने लिए] अर्ह (योग्य) आसन पर ठीक बैठकर, ३९ [ते.] अपने को [दक्ष को] देखकर सभी सदस्यों के उठने पर भी [अपने] आसन से न उतरने वाले पुरारि (शिव) की ओर कनखियों से विस्फुलिंगों (अग्नि के कणों) के छूटने पर, देखकर, अधिक रोष-विस्फुरण (क्रोध की व्याप्ति) के प्रकट

ते. विनुडु मीरलु रॊद मानि विबुध मुनि हु-
ताशनादि सुरोत्तमुलार ! मोह
मत्सरोक्तुलु गावु नामाट लनुचु
वारि कंदरिकि पुरवैरि जूपि ॥ 41 ॥

सी. परिकिंप नितडु दिक्पाल यशोहानिकरुडी क्रिया शून्य परुनिचेत
गरमॊप्प सज्जनाचरित मार्गमु दूषितंबय्यॆ नॆन्न गतत्रपुंडु
महित सावित्री समाननु साध्वि नस्मत्तनूजनु मृगशावनेत्र
ननल भूसुर बंधुजन समक्षमुन मर्कट लोचनुडु कर ग्रहण मथि

ते. जेसि ता शिष्ट भावंबु जॆंदु टात्म
दलचि प्रत्युद्गमाभिवंदनमु लॆलमि
नडपकुंडिन माननी नन्नु गन्न
नोरि माटकु दनकेमि गोरुवोयॆ ? ॥ 42 ॥

सी. अनयंबु लुप्त क्रिया कलापुडु मानहीनुडु मर्याद लेनिवाडु
मत्त प्रचारुडुन्मत्त प्रियुडु दिगंबरुडु भूत प्रेत परिवृतुंडु
दामस प्रमथ भूतमुलकु नाथुंडु भूति लिप्तुंडस्थि भूषणुंडु
नष्ट शौचुंडु नुन्मदनाथुडुनु दुष्ट हृदयुंडु नुग्र परेत भू नि-

होने पर इस प्रकार कहा। ४० [ते.] अपने हलचल (आपस में संलाप की ध्वनि) को रोककर सुनिए [हे] विबुध (देवता), मुनि [और] हुताशन आदि सुरोत्तमो ! मेरी बातें मोह और मत्सर (द्वेष) से युक्त नहीं हैं। यों कहते हुए, उन सबको उस पुरवैरि (शिव) को दिखाकर [कहा], ४१ [सी.] देखने पर (ध्यान देने पर) यह दिक्पालों के यश की हानि करने वाला है; इस क्रिया-शून्य-पर (कोई क्रिया नहीं करनेवाले) से सज्जनों से आचरित (संपन्न) मार्ग दूषित हो गया है। देखने पर [यह] निर्लज्ज है। महित (श्रेष्ठ) सावित्री [के] समान होनेवाली [तथा] साध्वी [होनेवाली] अस्मत् (मेरी) तनूजा को [जिसके नेत्र] मृगशावक के नेत्र के जैसे हैं, [उसे] अनल (आग), भूसुर (ब्राह्मण) [और] बंधुजनों के समक्ष [यह] मर्कट-लोचन (बंदर की आँखों के जैसे आँखवाला) [अपनी] इच्छा से करग्रहण (विवाह) करके [ते.] और अपनी आत्मा में यह सोचा कि मैंने शिष्ट भाव को पाया। उसने (शिव ने) प्रत्युत्-उद्गमाभिवंदन (उठकर नमस्कार करना) प्रेम के साथ नहीं किया तो, ठीक है; मुझे देखने पर मुँह से बात करने में क्या कमी हो गई ? ४२ [सी.] सतत लुप्त-क्रिया का कलाप वाला (जिसमें कर्म का लोप है), मान (गौरव)-हीन, अशिष्ट, मत्त प्रचार (मस्ती से घूमने-फिरनेवाला), उन्मत्त प्रिय, दिगंबर भूतों और प्रेतों से परिवृत (घिरा हुआ), तामसी प्रमथ भूतों का न

ते. केतनुडु वितत स्रस्तकेशु डशुचि-
यॅन यितनिकि शिव नामु डनु प्रवाद
मॅट्लु गलिगॅ ? नशिवु डगु नितनि नॅरिंगि
यॅरिंगि वेदंबु शूद्रुन किच्चिनट्लु ॥ 43 ॥

व. इतनिकि नस्मत्तनयनु विधि प्रेरितुंडनै यिच्चिति ॥ 44 ॥

कं. अनि यिट्टुलु प्रतिकूल व-
चनमुलु दक्षुंडु वलिकि शर्वु शपितु
नॅनि जलमुलु गॉनि सुस्थल-
मुन निलिचिट्लनियॅ रोषमुन ननघात्मा ! ॥ 45 ॥

कं. इतडिद्रोपेंद्र परी, वृतुडै मखसमयमुन हविर्भागमु दे-
वतलं गूडग महित नि, यति बॉदक युंडु गाक यनि शपियिचॅन् ॥ 46 ॥

व. इट्लु दक्षुंडु वलिकिन गर्हित वाक्यंबुलु विनिदितंबुलुग नुंडिननु, अर्थांतरंबुन वास्तवंबुलगुचु भगवंतुंडगु रुद्रु नंदु ननिदितंबुलै स्तुति रूपंबुन नॉप्पॅ । तदनंतरंब रुद्रनकु शापंबिच्चि, दक्षुंडु सदस्य मुख्युलचे नकृत्यंबनि निषेधिपंबडि, प्रवृद्धंबयिन क्रोधंबु तोड निज निवासंबुनकुं

विभूति का लेपन करनेवाला, अस्थियों (हड्डियों) के आभूषण पहननेवाला, नष्ट-शौच वाला (जिसमें शुचिता नहीं है), उन्मदनाथ (पागलों का अधिपति), दुष्ट हृदयवाला, [ते.] उग्र प्रेतों की भूमि जिसका निकेतन है (भयंकर श्मशान मे रहनेवाला), वितत (अधिक)-स्रस्त (बिखरे हुए)-केश वाला (जिसके शिरोज खुले रहते हैं), अशुचि (जिसमें शुचिता नहीं है) है। ऐसे इसका 'शिव' नाम कैसे पड़ा ? अशिव (अमंगल) होनेवाले इसको अच्छी तरह जानकर भी, जैसे शूद्र को वेद देते हैं, ४३ [व.] इसे अस्मत् (मेरी) तनया को विधि से प्रेरित होकर [मैंने] दिया है। ४४ [कं.] [हे] अनघात्मा (पाप-रहित आत्मा वाला) ! इस प्रकार दक्ष ने प्रतिकूल वचन कहकर, 'मैं शर्व (शिव) को शाप दूंगा' यों कहकर, जल हाथ में लेकर, सुस्थल पर, खड़े होकर, रोष (क्रोध) से इस प्रकार कहा। ४५ [कं.] यह इंद्र [और] उपेन्द्र से परिवृत होकर मख (यज्ञ) के समय हविर्भाग को, देवताओं के साथ बड़ी नियति (नियम) के अनुसार, न पाकर रहेगा —इस प्रकार शाप दिया। ४६ [व.] इस प्रकार दक्ष के कहे हुए गर्हित (निंदित) वाक्य (वचन) विनिंदित होते हुए भी, अर्थांतर में (अन्य अर्थ में) वास्तव होते हुए भगवान रुद्र [के विषय] में अनिंदित होकर स्तुति के रूप में शोभित हुए। तदनंतर (इसके बाद) रुद्र को शाप देकर, सदस्य-मुख्यों के 'यह अकृत्य है' कहकर [शाप का] निषेध करने पर, प्रवृद्ध (बढ़े)-क्रोध से दक्ष निज निवास को गया। तब गिरीश (शिव) के

जनियॆं। अंत गिरिशानुचराग्रेसरुंडगु नंदिकेश्वरुंडु, दक्षुंडु निटलाक्षुनि शपियिंचिन शापंबुनु, अतनि वलिकिन यनर्हं वाक्यंबुलुनु विनि कोपारुणित लोचनुंडै यिट्लनु। ई दक्षुंडु मर्त्य शरीरंबु श्रेष्ठंबुगा दलंचि, यप्रतिद्रोहि-यैन भगवंतुनंदु भेददर्शियै यपराधंमु गाविंचॆं। इट्टिमूढात्मुंडु दत्त्व विमुखुंडगु। मरियुं गूटधर्मंबुलैन निवासंबुल ग्राम्य सुखाकांक्षलं जेसि सक्तुंडै यर्थवादंबुलयिन वेदंबुल चेत नष्टमनीषं गलिगि, कर्मतंत्रंबु विस्तृतंबु सेयुचु, देहादिकंबु लुपादेयंबुलुगा दलचुचु, बुद्धि चेत नात्म तत्त्वंबु मरचि वर्तिचि, पशु प्रायुंडु स्त्री कामुकुंडु नगु। इदियुनुंगाक दक्षुं डचिर कालंबुन मेषमुखुंडगु। अनि मरियु॥ 47॥

म. अनयंबुन् वन मानसंबुन नविद्यन् मुख्य तत्त्वंबुगा
गनि गौरीशु दिरस्करिंचिन यसत्कर्मात्मुनी दक्षुनि
ननुवर्तिंचिन वारु संसरण कर्मारंभुलै निच्चलुन्
जननंबंदुचु जच्चुचुन् मरल नोजं बुट्टुचुन्नुंडेडुन्॥ 48॥

व. अदियुनुं गाक यी हरद्वेषुलैन द्विजुलर्थवाद बहुळंबुलैन वेदवाक्यंबुल वलन

अनुचरों में अग्रेसर होनेवाले नंदिकेश्वर ने दक्ष से निटलाक्ष (शिव) को दिये गये शाप को [और] उसके कहे हुए अनर्हं (अयोग्य) वाक्यों को सुनकर, कोप से अरुणित (लाल) लोचन वाला बनकर, इस प्रकार कहा। इस दक्ष ने मर्त्य (मानव)-शरीर को श्रेष्ठ मानकर अप्रतिद्रोही (जिसका कोई द्रोही नहीं होता) होनेवाले भगवान [शिव] में भेददर्शी (भिन्न दृष्टि रखने वाला) बनकर अपराध किया। ऐसा मूढ़ात्मा (मूर्ख) तत्त्व (वास्तव) से विमुख हो जाता है। इसके अतिरिक्त कपट-धर्मी होनेवाले निवासों में ग्राम्य (असभ्य) सुखों की आकांक्षा (इच्छा) करके उनमें सक्त (लगा हुआ) होकर, अर्थवाद होनेवाले वेदों से नष्ट [की गई] मनीषा (बुद्धि) को पाकर कर्मतंत्र को विस्तृत बनाते हुए, देह आदि को उपादेय मानते हुए, बुद्धि से आत्मतत्त्व को भूलकर, प्रवर्तित हो करके (आचरण करके) पशुप्राय [तथा] स्त्री-कामुक हो जाता है। इसके आलावा, दक्ष अचिर काल में मेष (बकरे) का मुख वाला बन जायगा। यों कहकर, फिर, ४७ [म.] सतत अपने मन में अविद्या को मुख्य तत्त्व के रूप में देखकर, गौरीश (शिव) का तिरस्कार करके असत् कर्मात्मा (बुरे काम करनेवाला) होनेवाले इस दक्ष का अनुवर्तन (अनुसरण) करनेवाले संसरण (जन्म-मरण) के कर्म का आरम्भ करनेवाले बनकर निश्चित रूप से पैदा होते और मरते हुए, फिर क्रम से (बार-बार) पैदा होते रहेंगे। ४८ [व.] इसके अतिरिक्त हर (शिव) के द्वेषी होनेवाले ये द्विज (ब्राह्मण) अर्थवाद से बहुल (अधिक) होनेवाले वेदों के वाक्यों से, मधु की गंध से

मधु गंध समंबैन चित्त क्षोभंबु चेत विमोहित मनस्कुलै कर्मासक्तुलगुदुरु। मरियुनु भक्ष्याभक्ष्य विचार शून्युलै देहादि पोषणंबु कौरकु धरियिंपंबडु विद्या तपो व्रतंबुगलवारलै धन देहेंद्रियंबुलयंदु प्रीति बौंदि याचकुलै, वर्हरितुरनि नंदिकेश्वरुंडु ब्राह्मण जनंबुल शपियिंचिन वचनंबुलु विनि भृगु महामुनि मरल शपियिंपं बूनि यिट्लनियै ॥ 49 ॥

ते. वसुधनॆव्वारु धूर्जटि व्रतुलु वारु,
वारिकनुकूलुरगुदु रॆव्वारु वार
लट्टि सच्छास्त्र परिपंथुलैन वारु
नवनि पाषंडु लय्यॆदरनि शपिंचॆ ॥ 50 ॥

व. अदि यॆट्लंटेनि ॥ 51 ॥

सी. सकल वर्णाश्रमाचार हेतुवु लोकमुलकु मंगळ मार्गमुनु सनात-
नमु पूर्व ऋषि सम्मतमु जनार्दन मूलमुनु नित्यमुनु शुद्धमुनु परंबु
नार्य पथानुगंबगु वेदमुनु विप्र गणमु निंदिंचिन कारणमुन
ने शिवदीक्षयंदेनि मध्यम पूज्युड भूतपति दैवमगुचुनुंडु

ते. नंदु मीरलु भस्म जटास्थि धार-
णमुल दगि मूढ बुद्धुलु नष्ट शौचु

समान चित्त के क्षोभ (व्याकुलता) से विमोहित-मनस्क बनकर, कर्म से आसक्त हो जायेंगे। और भी भक्ष्य [और] अभक्ष्य के विचार से शून्य होकर देह आदि के पोषण के लिए धारण किये जानेवाले विद्या [और] तप का व्रतधारी बनकर, धन, देह [और] इंद्रियों में प्रीति पाकर [और] याचक बनकर, विहार करते रहेंगे (जीवित रहेंगे) —इस प्रकार नंदिकेश्वर के ब्राह्मण जनों को शाप देने के वचन सुनकर, महान् मुनि भृगु ने फिर से शाप देने की इच्छा से इस प्रकार कहा। ४९ [ते.] वसुधा (भूमि) पर जो धूर्जटी व्रत करनेवाले (शिव की आराधना करनेवाले हैं) वे, और वे जो उनके अनुकूल बनते हैं, वैसे जो सच्छास्त्रों के परिपंथी (सच्छास्त्रों के विरोधी) हैं, वे अवनि (भूमि) पर पाषंड बनेंगे —इस प्रकार शाप दिया। ५० [व.] अगर तुम पूछोगे कि वह कैसे [संभव] होगा, ५१ [सी.] [तो सुनो] सकल वर्णों के (जातियों के) और आश्रमों के आचारों का हेतु (मूल), लोकों के लिए मंगल [मय] मार्ग, सनातन, पूर्व ऋषियों को सम्मत, जनार्दन मूल, नित्य, शुद्ध, पर (श्रेष्ठ), आर्य पथ का अनुगमन करनेवाले वेद और विप्रगण की निंदा करने के कारण किसी भी शिवदीक्षा में मध्यम-पूज्य बने हुए, भूतपति (शिव) दैव बनकर रहेगा। [ते.] उसमें आप लोग भस्म, जटा [और] अस्थि धारण से बड़े मूढ़ बुद्धिवाले, नष्ट-शौच बनकर [और] पाषंड होकर, नष्ट हो जाएँगे। [इस प्रकार]

लै नशितुरु पावंडुलगुचु ननुचु
शाप मौनरिचें ना द्विजसत्तमुंडु ॥ 52 ॥

व. इट्लन्योन्य शापंबुलं बौंदियु, भगवदनुग्रहंबु गलवारलगुटं जेसि नाशंबु नौंदरैरि। अट्टियेंड विमनस्कुंडगुचु ननुचर समेतुंडै भवुंडु चनियें। अंत ॥ 53 ॥

सी. अनघात्म ! ये यज्ञमंदु सर्व श्रेष्ठुंडगु हरि संपूज्युडै वेलुंगु
नट्टि यज्ञंबु सम्यग्विधानमुन सहस्र वत्सरमुलु नजु डौनर्चें
गर मौप्प नमर गंगा यमुना नदी योगंबु गलुगु प्रयाग यंदु
नवभृथस्नानंबुलति भक्ति गाविंचि गत कल्मषात्मुलै घनत कॆक्कि

ते. तग निजाश्रम भूमुल दलचि वार
लंदरुनु वेड्कतो जनि रनुचु विदुरु
नकुनु मैत्रेयुडनु मुनि-नायकुंडु
नॆरुग विनिपिंचि वॆंडियु निट्टुलनियें ॥ 54 ॥

अध्यायमु—३

दक्ष प्रजापति यज्ञमु चेयुनपुडु दाक्षायणि यच्चटिकि बोवुट

व. अंत श्वशुरुंडगु दक्षुनकु जामातयैन भर्गुनकु नन्योन्य विरोधंबु पॆरुगुचुंड

कहते हुए उस द्विज-सत्तम ने शाप दिया। ५२ [व.] इस प्रकार परस्पर शाप पाकर भी भगवान के अनुग्रह से युक्त होने से उनका नाश नहीं हुआ। तब विमनस्क होता हुआ, अनुचरों के साथ भव (शिव) [वहाँ से] चला गया। तब, ५३ [सी.] हे अनघात्मा ! जिस यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ होने वाला हरि संपूज्य होकर प्रकाशमान हो रहता है, ऐसे यज्ञ को सम्यक् विधि से अज (ब्रह्मा) ने सहस्र वर्ष [तक] किया। अच्छी तरह अमरगंगा [तथा] यमुना नदी का जहाँ योग (संगम) होता है, ऐसे प्रयाग में अति भक्ति के साथ अवभृथ स्नान करके, गत-कलुषात्मा (पाप-रहित आत्मा वाला) होकर बड़ा नाम पाकर, [ते.] अपने-अपने आश्रमों की भूमियों की ओर वे सब बड़े उत्साह के साथ चले गये। इस तरह विदुर को मैत्रेय नामक मुनिश्रेष्ठ ने समझाकर सुनाया और फिर इस प्रकार कहा। ५४

अध्याय—३

दक्ष प्रजापति के यज्ञ करते समय दाक्षायणी का वहाँ जाना

[व.] इसके बाद श्वशुर (ससुर) दक्ष [और] जामाता (दामाद) भर्ग (शिव) में अन्योन्य (परस्पर) विरोध बढ़ते-बढ़ते अतिचिरकाल

नतिचिरंबगु कालंबरिगं। अंत दक्षुंडु रुद्रविहीनंबगु यागंबु लेनिदि येननु शर्वुतोडि पूर्व विरोधबुननु, परमेष्ठि कृतंबैन सकल प्रजापति विभुत्व गर्वंबुननुं जेसि ब्रह्मनिष्ठुलगु नीश्वरादुल धिक्करिंचि यरुद्रंबुगा वाजपेय सवनंबु गाविंचि, तदनंतरंब बृहस्पति सवन नामकंबैन मखंबु सेय नुपक्रमिंचिन नच्चटिकि ग्रमंबुन ॥ 55 ॥

चं. कर मनुरक्ति नम्मखमु गन्गोनु वेडुक दोंगलिपगा
 बरम मुनि प्रजापति सुपर्व महर्षि वरुल् सभार्युलै
 परुवडि वच्चि यंदरु शुभस्थिति दीवन लिच्चि दक्षुचे
 बोरि बोरि नच्चटम् विहित पूजल नोंदिरि सम्मदंबुनन् ॥ 56 ॥

ते. दक्षतनय सतीदेवि दविलि यात्म
 सदनमुन नुंडि जनकुनि सवन महिम
 गगनचरुलु नुतिंप ना कलकलंबु
 विनि कुतूहल मोप्प गगनमु जूडॆ ॥ 57 ॥

व. अय्यवसरंबुन तदुत्सवदर्शन कुतूहलुलै सर्वदिक्कुलवारुनु चनु समयंबुन ॥ 58 ॥

सी. तनरारु नवरत्न ताटंक रोचुलु चेक्कुटद्दमुलतो जॆलिमि सेय
 महनीय तपनीय मय पदक द्युतु लंस भागंबुल तावरिप

(बहुत काल) बीत गया। तब दक्ष रुद्र-विहीन याग के न होने पर भी, शर्व (शिव) के साथ पूर्व विरोध के कारण, परमेष्ठी (ब्रह्मा) से प्रदत्त सकल प्रजापतियों पर [अपनी] विभुता के गर्व से, ब्रह्मनिष्ठ होनेवाले ईश्वर आदि का धिक्कार करके अरुद्र (रुद्र-विहीन) वाजपेय-सवन (-यज्ञ) करके, इसके बाद बृहस्पति-सवन नामक मख (यज्ञ) करने के लिए उपक्रम (प्रारंभ) किया तो वहाँ क्रम से, ५५ [चं.] अधिक अनुरक्ति से उस मख को देखने के कुतूहल के उमड़ने पर, परम मुनि, प्रजापति, सुपर्व (देवता) [और] महर्षि-श्रेष्ठ सभा के आर्य बनकर दौड़कर आए, सबने शुभस्थिति (मंगलमय इच्छा) से आशीर्वाद देकर दक्ष के द्वारा बार-बार वहाँ बड़े आनन्द के साथ विहित (धर्मयुक्त) पूजाओं को पाया। ५६ [ते.] दक्ष-तनया सती देवी अपने सदन (घर) में रहकर अपने जनक (पिता) की सवन-महिमा की प्रशंसा गगन-चरों के करने पर, उस कोलाहल को सुनकर [और] कुतूहल के बढ़ जाने पर, गगन की ओर देखा। ५७ [व.] उस समय उस उत्सव को देखने के कुतूहल से सभी दिशाओं के लोगों के जाते समय, ५८ [सी.] शोभायमान नवरत्नों से जड़ित ताटंकों (कर्ण के आभूषणों) की रोचियों (कांतियों) के गाल रूपी मुकुरों से मित्रता करने पर, महनीय [और] तपनीयमय (सूर्यकान्त मणियों से युक्त) पदकों की

नंचित चीनि चीनांबर प्रभलतो मेखला कांतुलु मेलमाड
जंचल सारंग चारु विलोचन प्रभलु नल्दिक्कुल ब्रब्बिकोनग

ते॰ मिंचु वेड्‌क भर्तृसमेतमुगनु
मानितमुलैन दिव्य विमानयान
लगुचु नाकाश पथमुन नरुगुचुन्न
खचर गंधर्व किन्नरांगनल जूचि ॥ 59 ॥

कं. सति दनपति यगु ना पशु-
पति जूचि समुत्सुकतनु भाषिंचें ब्रजा-
पति मी माम मखमु सु-
व्रत मति नीनरिपुचुन्न वाडनि विंटिन् ॥ 60 ॥

कं. कावुन न यज्ञमुन, नी विबुध गणंबु लर्थि नेगॅदरदिगो !
देव! मन मिप्पुडचटिकि, बोवलें ननु वेड्‌क नाकु बुट्टॅडु नभवा! ॥ 61 ॥

कं. आयज्ञमु गनु गोनगा, ना यनुजलु भक्ति ब्राण नाथुल तोडन्
बायक वत्तुरु मनमुन्, बोयिन ने वारि नचट बॉडगन गल्गुन् ॥ 62 ॥

कं. जनकुनि मखमुन कर्थि
जन नीतो बारि बर्ह संज्ञिकमुलचे
दनरिन भूषणमुल गै-
कॉन वेड्‌क जनिचें नीश ! कुजन विनाशा ! ॥ 63 ॥

द्युतियों (कांतियों) के अंस भागों (भुजाओं) पर फैल जाने पर, सुंदर चीनि-चीनांबरों (रेशम के वस्त्रों) की प्रभाओं से मेखला (कमरबंद) की कांतियों के हँसी-मज़ाक करने पर, चंचल सारंग (हिरण) की चारु (सुंदर) विलोचनों की प्रभाओं (कांतियों) के चारों ओर व्याप्त होने पर, [ते.] अधिक उत्कंठा से पतियों के साथ मान्य (पूजनीय) दिव्य विमानों पर चढ़कर आकाश पथ पर जानेवाली खेचरों (गगन पर चलनेवाले), गंधर्वों और किन्नरों की अंगनाओं को देखकर, ५९ [कं.] सती ने अपने पति उस पशुपति (शिव) को देखकर उत्सुकता से कहा कि मैंने सुना है कि प्रजापति, जो आपके ससुर हैं, सुव्रतमति (अच्छा व्रत करने की बुद्धि) से मख (यज्ञ) कर रहे है। ६० [कं.] इसलिए उस यज्ञ में ये विबुध (देवता) गण इच्छा-पूर्वक जा रहे है, देखिए न। हे देव ! हे अभव ! मुझे अब वहाँ जाने की इच्छा हो रही है। ६१ [कं.] उस यज्ञ को देखने के लिए मेरी अनुजाएँ (छोटी बहिनें) अपने-अपने पतियों के साथ भक्तियुत हो जरूर आ जायेंगी। अगर हम भी जावें तो वहाँ मैं उनसे मिल सकती हूँ। ६२ [कं.] हे ईश ! हे कुजनों का नाश करनेवाले ! [मेरे] जनक के मख (यज्ञ) को इच्छापूर्वक तुम्हारे साथ मोर के पंखों से बनाये गये

कं. ना तोडनु स्नेहमु गल
मातनु दत्सोदरी समाजमु ऋषि सं-
घात कृत मख समंचित
केतुवु गन वेड्क गगन-केश ! जनिचॆन् ॥ 64 ॥

व. अवियुनुंगाक देवा ! महाश्चर्यकरंबै गुणत्रयात्मकंबगु प्रपंचंबु भवदीय माया विनिर्मितंबगुटं जेसि नीकु नाश्चर्य करंबु गावु। अयिननु भवदीय तत्त्वंबॆऱुंग जालक कामिनी स्वभावंबु गलिगि, कृपणुरालनै मदीय जन्मभूमि गनुंगॊन निच्छयिंचिति। अनि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥65॥

चं. मुदमुन दन्मखोत्सव विभूति गनुंगॊन दिव्य कामिनुल्
पदुवुलु गट्टि भूषण विभासितुलै निजनाथयुक्तलै
मदकलहंस पांडुर समंचित दिव्य विमान यानलै
यवॆ चनुचुन्नवारु गनु मभ्रपथंबुन नील-कंधरा ! ॥ 66 ॥

कं. अनघा ! विनु लोकंबुन
जनकुनि गेहमुन गलुगु सकल सुखंबुल्
दनयलु जनि संप्रीतिन्
गनुगॊन के रीति निल्चु ? गायमु लभवा ! ॥ 67 ॥

कं. अनयमु विलुवक युंडन्
जन ननुचिन मंटिवेनि जनक गुरु सुहृ-

आभूषणों को पहनने का (धारण करने का) शौक हुआ है। ६३ [कं.] हे गगनकेश (शिव) ! मुझसे स्नेह रखनेवाली माता को, उसकी सहोदरी समाज को, ऋषि-संघात (-समूह) से कृतमख के सुंदर केतु (झंडे) को देखने का कौतुक पैदा हुआ है। ६४ [व.] इसके अलावा [हे] देव ! महान् आश्चर्य-प्रद होकर, गुणत्रयात्मक होनेवाला [यह] संसार भवदीय माया से विनिर्मित होने के कारण तुमको तो आश्चर्यकर नहीं है। फिर भी भवदीय तत्त्व को न जान सक कर, कामिनी (स्त्री) स्वभाव से युक्त होकर, कृपणा बनकर, मदीय जन्मभूमि को देखने की इच्छा हुई। और फिर इस प्रकार [सती ने] कहा। ६५ [च.] हे नीलकंधर (शिव) ! मोद के साथ उस मख (यज्ञ) के उत्सव की विभूति को देखने के लिए दिव्य कामिनियाँ झुंड बाँधकर, भूषणों से विभासित होकर, निज (अपने) नाथों से युक्ता बनकर, मस्त कलहंस के समान पांडुर (सफ़ेद) समंचित (सुंदर) दिव्य-विमान-यान (-वाहन) से अभ्रपथ पर (आकाश-मार्ग से) जा रही हैं। वही देखो न। ६६ [कं.] हे अनघ ! हे अभव ! सुनो, लोक में पिता के गृह में बेटियों को सकल सुख मिलते हैं। जाकर प्रीति के साथ उन्हें देखे बिना यह कार्य कैसे रह सकता है ? ६७ [कं.] हे अभव

उजन नायक गेहमुलकु
जनु चुंडुरु पिलुवकुन्न सज्जनुलभवा ! ॥ 68 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियें। देवा ! नायंदु प्रसन्नुंडवै मदीय मनोरथंबु दीर्प नर्हुंडवु। समधिक ज्ञानंबु गल नोचेत नेनु भवदीय देहंबुनंदर्धंबुन धरियिंपं बडिति। अट्टि नन्नु ननुग्रहिंप वलयु। अनि प्रार्थिचिन मंदस्मित वदनारविंदुंडगुचु जगत्स्रष्टल समक्षंबुन दक्षुंडु दन्नाडिन मर्म भेदंबुलेन कूहक वाक्य सायकंबुलं दलंचुचु निट्लनियें ॥ 69 ॥

सी. कल्याणि ! नीमाट कड्ड नॉप्पु बंधुबुल् पिलुवकुंडिननु संप्रोति जनुदु
रंटिवि यदि लॅस्स येननु देहाभिमान मदमुन नमर्षमुननु
गडगि यारोपित घन कोप दृष्टुलु गारेनि पोदगु गानि विनुमु
विनुत विद्या तपो वित्त वयो रूप कुलमुलु सुजनुलकुनु गुणंबु

ते. लिविय कुजनुल यॅड दोष हेतुकंबु
लै विवेकंबु चॅरुचु महात्मुलेन
वारि माहात्म्य मात्म गर्वमुन जेसि
जडुलु वॉडगान जालरु जलजनेत्र ! ॥ 70 ॥

(शिव) ! अगर तुम कहते हो कि बिना बुलाये जाना अनुचित है, तो जनक (पिता), गुरु, सुहृत् (मित्र) [और] जननायक (नेता) के घर सज्जन बिना बुलाये भी जाते हैं। ६८ [व.] और फिर इस प्रकार कहा। [हे] देव ! मुझ पर प्रसन्न होकर मदीय मनोरथ को तृप्त करने अर्ह हो। समधिक ज्ञान रखनेवाले तुमसे मैं भवदीय देह के आधे भाग में धारण की गयी हूँ। ऐसी मुझे अनुगृहीत बनाना चाहिए। ऐसे प्रार्थना करने पर मंदस्मित वदनारविंद वाला होते हुए [शिव ने] जगत्स्रष्टाओं के समक्ष दक्ष ने अपने प्रति जो मर्मभेदी कुहक (कपट)-वाक्य [रूपी]-सायकों (बाणों) को कहा, उनका स्मरण करते हुए इस प्रकार कहा। ६९ [सी.] [हे] कल्याणी !- तुम्हारी बात बहुत समुचित है। तुमने कहा कि बंधुओं के न बुलाने पर भी बड़ी प्रीति से [सज्जन] जाते हैं। यद्यपि यह सच है, फिर भी देह के अभिमान के मद में अमर्ष (डाह) से प्रयत्न करके आरोपित घन (महा)-कोप की दृष्टि वाले न बनें, तो जा सकते है। लेकिन, सुनो, विनय, विद्या, तप, वित्त (धन), वय (उम्र), रूप [और] कुल [आदि] सुजनों के लिए गुण है। [ते.] ये ही [गुण] कुजनो के पक्ष में दोष के हेतु (कारण) बनकर विवेक को बिगाड़ देते है। हे जलजनेत्र वाली ! महात्माओ के माहात्म्य को आत्म-गर्व के कारण जड़ (मूर्ख) पहचान नहीं सकते। ७० [कं.] सुनो, उस प्रकार के कुटिल दुर्जनों के गृह [में]

कं. विनु मट्लु कुटिलुलगु दु-
जॆनुल गृहंबुलकु बंधु सरणिनि वोवन्
जनदु विनीतुल कदिकडु
ननुचितमै युंडु निंति ! यदि यॆट्लनिनन् ॥ 71 ॥

आ. कुटिल वुद्धुलैन कुजनुल यिड्लकु
नार्युलेग वारनादरमुन
बॊमलु मुडिवडंग भूरि रोषाक्षुलै
चूतुरदियुगाक सुदति ! विनुमु ॥ 72 ॥

चं. समद रिपु प्रयुक्त पटु सायक जर्जरितांगुडय्यु दुः-
खमुनु दॊरंगि निद्र गनु गानि कृशिपडु मानवुंडु नो-
युम ! विनु मिष्ट बांधव दुरुक्तुलु मर्ममुलंट नाट जि-
त्तमुन नहर्निशंबु परितापमु नॊंदि कृशिचु चाड्पुनन् ॥ 73 ॥

कं. विनु मुत्कृष्टुंडगु द-
क्षुनिकि दनूभवललोन गूरिमि सुतवै
ननु ना संबंधंबुन
जनकुनिचे बूज वडय जालवु तरुणी ! ॥ 74 ॥

व. अदि यॆट्लु ? अतनि चेत भवत्संबंधंबुनं जेसि पूज वडयमिकि नतनिकि नीकु विरोधंबुनकु हेतु वॆट्टिदि ? अनि यंटिवेनि ॥ 75 ॥

वन्धुओं (रिश्तेदारों) की तरह नहीं जाना चाहिए। जो विनीत होते हैं, उनके लिए [इस प्रकार जाना] बहुत अनुचित है। [हे] स्त्री ! वह ऐसा है कि, ७१ [आ.] कुटिल वुद्धिवाले कुजनों के घर आर्यों के जाने पर वे [कुटिल] अनादर से भृकुटियों को सिकोड़कर भूरि (अधिक) रोष (क्रोध) [पूर्ण] अक्षि (आँख) वाले वनकर देखेंगे। इसके अतिरिक्त [हे] सुदती ! सुनो, ७२ [चं.] मद-सहित रिपु (शत्रु) से प्रयुक्त पटु (तेज़-) सायक (-तीर) से जर्जरित अंग वाला वनकर भी मानव दुःख को खोकर सो जाता है, लेकिन कृश नहीं होता; [हे] उमा ! सुनो; इष्ट बांधवों की दुरुक्तियाँ ऐसे लगने पर कि वे मर्म [स्थल] को लगें, चित्त में अहर्निश परिताप [को] पाकर कृश होगा। ७३ [कं.] सुनो, हे तरुणी ! उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) दक्ष की तनूभवाओं (सुताओं) में लाडली सुता होने पर भी मेरे संवंध (सगाई) के कारण [अपने] जनक (पिता) से पूजित नहीं हो सकोगी। ७४ [व.] वह कैसे ? उससे भवत्संवंध के कारण पूजा न पाने के लिए तुममें और उसमें विरोध (शत्रुता) का हेतु (कारण) क्या है ? अगर तुम यह पूछती हो तो [सुनो।] ७५ [म.] निरहंकारी, निरस्त

म. निरहंकार निरस्तदोष सुजनानिद्योल्ल सत्कीर्ति कों-
दरु कामिंचि यशक्तुलै मनमुलन् दंदह्यमानेंद्रिया-
तुरुलै यूरक मच्चरिंतुरु महात्मुं डीश्वरुंडैन या
हरि तो बद्ध विरोधमुन् दॊडरु दैत्यश्रेणि चंदंबुनन् ॥ 76 ॥

व. अदियुनुंगाक नीवतनिकि नत्युत्थानाभिवदनंबुलु गाविपकुंडुटं जेसि यतंडु दिरस्कृतुंडय्यॆ, अंटिवेनि, लोकंबुल जनु लन्योन्यंबुनु नत्युत्थानाभिवंदनंबुलु गावितुरु। अदिय प्राज्ञुलयिन वारु सर्व भूतांतर्यामियैन परमपुरुषुंडु नित्य परिपूर्णुंडु गावुन गायिक व्यापारंबयुक्तं बनि, तदुद्देशंबुगा मनंबुनंदु नमस्कारादिकंबुलु गावितुरु। कानि देहाभिमानंबुलु गलुगु पुरुषुलंदु गाविपरु। कान नेनुनु वसुदेव शब्दवाच्युंडु शुद्ध सत्त्वमयुंडु नंतःकरणंबुनंदु नावरण विरहितुंडुनै प्रकाशिंचु वासुदेवुनकु ना हृदयंबुन नमस्करिंपुचुंडुदु। इट्लनपराधियैन नन्नु बूर्वंबुन ब्रह्मलु सेयु सत्रंबुनंदु दुरुक्तुलं जेसि पराभविंचि मद्द्वेषियैन दक्षुंडु भवज्जनकुंडैन नतडुनु ददनुवर्तनुलयिन वारलुनु जूडदगरु। कावुन मद्वचनातिक्रमंबु जेसि यरिगिति वेनि यच्चट नीकु बराभवंबु संप्राप्तंबगु। लोकंबुन बंधु जनंबुल वलन बूज पडयक

(तिरस्कृत) दोष वाले, सुजन अनिंद्य-उल्लसत्-कीर्ति की कामना करके, अशक्त हो, कुछ लोग मन में दंदह्यमान (जलानेवाले) इंद्रियों से आतुर व्याकुल) बनकर, योंही महात्मा ईश्वर होनेवाले उस हरि (विष्णु) का, बद्धविरोध से, सामना करनेवाली दैत्य श्रेणी की तरह मात्सर्य-भाव रखते है। ७६ [व.] इसके अतिरिक्त, अगर तुम कहती हो कि तुम्हारे उसके प्रत्युत्थान (आने पर स्वागत-हेतु उठना) [और] अभिवंदन न करने पर वह तिरस्कृत हुआ है, लोक में जनगण अन्योन्य प्रत्युत्थान [और] अभिवंदन करते है; वह भी सर्वभूतों मे अंतर्यामी होनेवाला परमपुरुष नित्य परिपूर्ण है, इसलिए प्राज्ञ (बुद्धिमान) कायिक (देह-संबंधी) व्यापार [को] अयुक्त मानकर, उसको उद्दिष्ट करके मन में ही नमस्कार आदि करते हैं; लेकिन देह का अभिमान रखनेवाले पुरुषों के प्रति नहीं करते। इसलिए मैं भी वासुदेव शब्द [से] वाच्य (कहलानेवाले), शुद्ध सत्त्वमय [और] अंत.करण में आवरण-विरहित (अनावृत) होकर प्रकाशमान होने वाले वासुदेव को अपने हृदय में सदा नमस्कार करता रहता हूँ; इस प्रकार अनपराधी होनेवाले मेरे प्रति, पूर्वकाल में ब्रह्माओं से किये जानेवाले सत्र (यज्ञ) में दुरुक्तियाँ (गालियाँ) कहकर पराभव करके मत् (मेरा) द्वेषी होनेवाला दक्ष, भवत् (तुम्हारा) जनक (पिता) [और] तदनुवर्ती (उसके अनुचर) [तुम्हारे] देखने योग्य नहीं है; इसलिए मत् (मेरे) वचनों का अतिक्रमण (अनसुनी) करके जाती हो तो वहाँ तुम्हें पराभव संप्राप्त होगा;

तिरस्कारंबु नॊंदुट चच्चुटय कादे ? यनि पलिकि मरियु भवुंडु पॊम्मनि यनुज्ञ यिच्चिन नच्चट नवमानंबुनं जेसि यशुभंबगु ननियु, निच्चट वॊम्मनक निवारिंचिन मनोवेदनयगु ननियु मनंबुनं दलपोयुचु नूरकुंडॆ नंत ॥ 77 ॥

अध्यायमु—४

सी. सति सुहृद्दर्शनेच्छा प्रतिकूल दुःखस्वांत यगुचु नंगमुलु वडक
नंदंद दॊरगॆडु नश्रुपूरंबुलु गंड भागंबुल गडलुकॊनग
नुन्नत स्तनमंडलोपरिहारमुल् वेडि निट्टूर्पुल वॆच्च गंद
नति शोक रोषाकुलात्यंत दोदूयमानमै हृदयंबु मलगु चुंड

ते. मरियु गुपितात्मयै स्वसमानरहितु
नात्मदेहंबु सगमिच्चिनट्टि धवुनि
विडिचि मूढात्म यगुचु नव्वॆलदि सनियॆ
जनकु जूचॆडि वेडुक संदडिप ॥ 78 ॥

व. इट्लति शीघ्र गमनंबुन ॥ 79 ॥

[क्या] लोक में वंधुजनों से पूजा न पाकर, तिरस्कार पाना मरना (मरने के समान) नहीं है ? यों कहकर फिर [सती के] जाने की अनुज्ञा देने पर वहाँ अपमान के कारण अशुभ होगा [और] जाने से निवारण करने पर यहाँ मनोवेदना होगी —यों मन मे सोचते हुए अभव (शिव) चुप रहा। तब, ७७

अध्याय—४

[सी.] सती सुहृदों के दर्शन करने की इच्छा के प्रतिकूल [वचनों को सुनकर] दुःख-स्वांता (-मन वाली) होती हुई, अंगों के कंपित होने पर, जहाँ-तहाँ उमड़नेवाले अश्रुओं के गड-भागों पर (गालों पर) प्रवाहित होने पर, उन्नत-स्तन-मंडल पर स्थित हारों (आभूषणों) के गरम सांसों के कारण गरम होने पर, अतिशोक [और] रोप [से] अत्यंत दोदूयमान (कंपित होनेवाले) हृदय के पीड़ित होने पर, [ते.] और कुपित आत्मावाली बनकर स्वसमान-रहित (अद्वितीय) आत्म-(अपनी)-देह में से अर्ध भाग को देनेवाले धव (पति) को छोड़कर मूढात्मा होती हुई वह स्त्री [अपने] जनक (पिता) को देखने के कौतुक के अधिक होने पर चल पड़ी। ७८ [व.] इस प्रकार अति शीघ्र गमन से, ७९ [सी.] मानिनी (स्त्री) के

सी. मानिनि चनुचुंड मणिमन्मदादि सहस्र संख्यात रुद्रानुचरुलु
यक्षुलु निर्भयुलं वृषभेंद्रुनि मुन्निडुकोनुचु नम्मुदित दाल्चु
कंदुकांबुज शारिका ताळवृंत दर्पण धवळातपत्र प्रसून
मालिका सौवर्ण मणि विभूषण घनसार कस्तूरिका चंदनादि

ते. वस्तुवुलु गोंचु नेगि शर्वाणि गदिसि
शंख दुंदुभि वेणु निस्वनमु लोप्प
मानितंबैन वृषभेंद्रयान जेसि
यज्ञभूमार्गुल यथि नरिगि यरिगि ॥ 80 ॥

व. मुंदट ॥ 81 ॥

चं. मनमुन मोदमंदुचु नुमा तरुणीमणि गांचे दारु मृ-
त्कनक कुशाजिनायस निकाय विनिर्मित पात्र सीममु
न्ननुपम वेदघोष सुमहत्पशु बंधन कर्म भूममुन्
मुनि विबुधाभिराममु समुज्ज्वल होममु यागधाममुन् ॥ 82 ॥

व. इट्लु गनुंगोनि यज्ञशालं ब्रवेशिंचिन ॥ 83 ॥

कं. चनु देंचिन यम्मगुवनु, जननियु सोदरुलु दक्क सभ गल जनु लें
ललनु दक्षुवलनि भयमुन, ननयमु नपुडादरिंपरैरि महात्मा ! ॥84॥

जाते समय मणि, मन्मद आदि सहस्र संखया में रुद्र (शिव) के अनुचर [और] यक्ष निर्भय होकर वृषभेंद्र को सामने कर, उस स्त्री को धारण करनेवाले कंदुक (फूलों का गुच्छा), अंबुज (कमल), शारिका, तालवृंत, दर्पण, धवल आतपत्र, प्रसून-मालिका, सौवर्ण (सुवर्ण) [तथा] मणि विभूषण, घनसार (कर्पूर), कस्तूरिका, चदन आदि [ते.] वस्तुओं को लेते हुए जाकर शर्वाणी (सती) से मिलकर शंख, दुंदुभि [और] वेणु के निस्वनों (ध्वनियों) के बढ़ जाने पर, मानित (गौरवनीय) वृषभेंद्रयाना बनाकर (वृषभ पर आरूढ़ कराकर) यज्ञभूमि की ओर, इच्छापूर्वक, जा-जाकर ८० [व.] सामने ८१ [च.] मन में मोद (संतोष) पाते हुए, तरुणीमणि उमा ने दारु (लकड़ी), मृत्, (मिट्टी), कनक (सोना), कुश (एक तरह की घास), अजिन (हिरण का चर्म) [तथा] आयस [लोहा] [के] निकाय (समूह) [से] निर्मित पात्र [युक्त] सीमा (प्रदेश) [के], अनुपम वेद-घोष (पठन) [से] सुमहत् (पवित्र) पशुबंधन-कर्म [युक्त] भूम (भूमि) [को], मुनि [और] विबुधों (पंडितों) [से] अभिराम [होनेवाली] समुज्ज्वल होम [के] यागधाम (यज्ञशाला) को देखा। ८२ [व.] इस प्रकार देखकर यज्ञशाला में प्रविष्ट हुई तो, ८३ [कं.] हे महात्मा, आई हुई उस स्त्री को जननी [और] भाइयों को छोड़कर, सभा में रहनेवाले सभी जनों ने दक्ष के भय से, अविनीति से, तब [सती का]

कं. मरि तल्लियु विनतल्लुलु
परिरंभण माचरिप वरितोपाश्रुल्
दोरगग ङग्गुत्तिकतो
सरसिजमुखि सेम मरय सति दानंतन् ॥ 85 ॥

कं. जनकुं डवमानिचुट, युनु सोदरु लर्थि दनकु नुचित क्रिय जे
सिन पूजल नंदक शो, भन मरसिन माऱुमाट वलुकक युंडेन् ॥ 86 ॥

व. इट्लु तंड्रिचेत नादरिंप बडनिदे विभुंडैन योश्वरुनंदु नाह्वान क्रिया शून्यत्व रूपंबैन तिरस्कारंबुनु, नरुद्र भागंबैन यज्ञंबुनुं, गनुंगोनि निज रोषानलंबुन लोकंबुलु भस्मंबु सेयं बूनिन तेरंगुन नुद्रेकिंचि रुद्रविद्वेषयु, गतु कर्माभ्यास गर्विष्ठुंडुनु नगु दक्षुनि वधियितुमनुचु लेचिन भूतगणंबुल निवरिंचि, रोषाव्यक्त भाषणंबुल निट्लनिये। लोकंबुन शरीरधारुलैन जीवुलकु प्रियात्मकुंडैन योश्वरुनकु प्रियाप्रियुलु, नधिकुलुनु लेरु। अट्टि सकल कारणुंडु निर्मत्सरुंडुनैन रुद्रुनंदु नोवुदक्क नेव्वंडु प्रतिकूलं बाचरिंचु? अदियुनुंगाक निमु वोटि वारलु परुल वलनि गुणंबुलंदु दुर्गुणंबुलन यापादिंतुरु। मरियुं गोंदरु मध्यस्थुलयिन वारलु परुल गुणंबुलयंदु दोषंबुल

आदर नहीं किया। ८४ [कं.] और माँ तथा मौसियों के परिरंभण (आलिंगन) करने पर परितोष (आनंद) के अश्रुओं के बहने पर गद्गद-स्वर से सरसिज-मुखी की कुशलता [के बारे में] पूछा गया तो सती स्वयं, तब, ८५ [कं.] जनक (पिता) के [किये हुए] अपमान को, भाइयों के, इच्छा से, अपने को की हुई पूजा (स्वागत) को न स्वीकार करके, [उसके] शुभ के [बारे में] पूछा गया तो, उत्तर न देकर, चुप रह गई। ८६ [व.] इस प्रकार पिता से आदर न पाकर, विभु (पति) ईश्वर (शिव) में आह्वान [निमंत्रण की] क्रिया [से] शून्यत्व-रूपी तिरस्कार का अनुभव कर, अरुद्र-भाग वाले यज्ञ को देखकर, निज रोष [रूपी] अनल में लोकों को, मानो, भस्म करना चाहती हो, ऐसे उद्रिक्त होकर रुद्र-विद्वेषी [और] क्रतु-कर्म के अभ्यास से गर्वीला बने दक्ष का वध करेंगे —यों कहते हुए उठ खड़े हुए भूत-गणों को रोककर रोष [को] व्यक्त [करनेवाले] भाषणों (बातों) से इस प्रकार कहा— लोक में शरीरधारी जीवों को प्रियात्मा होनेवाले ईश्वर के लिए प्रिय [और] अप्रिय, अधिक (छोटे-बड़े) नहीं हैं। वैसा सकल [का] कारण [होनेवाले], निर्मत्सर (द्वेष-रहित) [होनेवाले] रुद्र के प्रति तुमको छोड़कर कौन प्रतिकूल आचरण करेगा? इसके अतिरिक्त तुम्हारे जैसे लोग दूसरों के कारण गुणों में दुर्गुणों का आरोप करते हैं, और भी, कुछ मध्यस्थ लोग परों (दूसरों) के दुर्गुणों में दोषों का आरोपण करते हैं; कुछ साधु-चरित वाले परों (दूसरों) के दोषों को भी गुणों के रूप में

नापादिंतुरु। कोंदरु साधुवर्तनंबुगल वारलु परुल दोषंबुलनैन गुणंबुलुगा ननुग्रहिंतुरु। मरियुं गोंदरुत्तमोत्तमुलु परुलयंदु दोषंबुल नापादिंपक तुच्छ-गुणंबुलु गलिगिननु सद्गुणंबुलुगा गैकोंदुरु। अट्टि महात्मुलयंदु नीवु पापबुद्धि गल्पिंचितिवि। अनि वेंडियु निट्लनु। महात्मुलगु वारल पाद धूळिचे निरस्त प्रभावुलै जडस्वभावंबुगल देहंबु नात्म यनि पल्कु कुजनु-लगु वारु महात्मुल निंदिंचुटाश्चर्यंबुगादु। अदियु वारि कनुचितंबगु। अनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 87 ॥

सी. अनयंबु शिव यनु नक्षरद्वय मर्थि वाक्कुन बलुक भावमुन दलंप
सर्वजीवुल पाप संघमुल् चेंडु नट्टि महितात्मुनंदु नमंगळुंड-
वगु नीवु विद्वेषिवगुट काश्चर्यंबु नंदेद विनुमु नीवदियु गाक
चर्चिप नेव्वनि चरण पद्मंबुल मरसि ब्रह्मानंदमनु मरंद

ते. मतुल भक्तिनि दम हृदयंबु लनेडि
तुम्मेदल चेत ग्रोलि संतुष्टचित्तु
लगुदुरत्यंत विज्ञानु लट्टि देवु
नंदु द्रोहंबु सेसितेमंदु निन्नु ? ॥ 88 ॥

कं. मरियुनु नम्महितात्मुनि, चरण सरोजातयुगमु सकल जगंबुल्
नेरि गोलुव गोरु कोर्कुलु, दरमिडि वर्षिचु नतनि दगुने तेगडन् ? ॥89॥

अनुगृहीत करते हैं। और कुछ लोग, उत्तमोत्तम [लोग] परों (दूसरों) पर दोषों का आरोपण न करके तुच्छ गुणों के होने पर भी सद्गुणों के जैसे स्वीकृत करते हैं। ऐसे महात्माओं में तुमने पापबुद्धि की कल्पना की है। इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। महात्मा होनेवालों की पाद-धूलि से निरस्त (तिरस्कृत) प्रभाव वाले होकर जड़ स्वभाव रखनेवाली देह को आत्मा माननेवाले कुजनों का महात्माओं की निंदा करने में आश्चर्य नहीं है। वह भी उनके लिए अनुचित होगा[1]। यों कहकर फिर इस प्रकार बोली। ८७ [सी.] सतत 'शिव' नामक अक्षरद्वय का, इच्छा से, वाक् में (मुँह से) बोलने पर, भाव में स्मरण करने से, सर्व जीवों के पापों के संघ (समूह) नष्ट हो जाते हैं। ऐसे महितात्मा में अमंगल [भाव] वाले तुम्हारे विद्वेषी होने में आश्चर्य करती हूँ; सुनो, तुम इसके अतिरिक्त, विचार करने पर जिसके चरण [रूपी] पद्मों को जानकर, ब्रह्मानंद नामक मकरंद को, [ते.] अतुल भक्ति से अपने हृदय रूपी भँवरों से आस्वादन करके अत्यंत विज्ञानी संतुष्ट चित्तवाले बन जाते हैं; ऐसे देव के प्रति [तुमने] द्रोह किया। तुम्हें क्या कहूँ ? ८८ [कं.] और उस महितात्मा के चरण [रूपी] कमलों के युग (जोड़े) की, क्रम से, सेवा करने पर वांछित इच्छाओं

---

१ अतो सत्सु महन्निन्दनमेव उचितमित्यर्थः (मूल की व्याख्या)।

चं. परग जितास्थि भस्म नृकपाल जटाधरुडुन् बरेत भू
चरुडु पिशाचयुक्तु डनि शर्वु नमंगळुगा दलंप रॆ
व्वरु नीक डीवु दक्क मरि वाक्पति मुख्युलु नम्महात्मु स-
च्चरण सरोज रेणुवुलु सम्मति दाल्तुरु मस्तकंबुलन् ॥ 90 ॥

चं. नॆलकॊनि धर्मपालन विनिर्मलु भर्गु दिरस्करिंचु न-
क्कलुषुनि जिह्व गोय दगुगा कटु सेयग नोपडेनि दा
वॊलियुट यॊप्पु रॆंटिकि प्रभुत्वमु चालमि गर्णरंध्रमुल्
बलुवुग मूसिकॊंचु जन वाडि यटंदुरु धर्मवर्तनुल् ॥ 91 ॥

व. अदि गावुन ॥ 92 ॥

म. जनु डज्ञानमुनन् भुजिंचिन जुगुप्संबैन यन्नंबु स-
य्यन वॆळ्ळिंचि पवित्रुडैन गति दुष्टात्मुंडवै यीश्वरुन्
घनु निंदिंचिन नी तनूभव यनंगा नोर्व नी हेय भा-
जनमैनट्टि शरीरमुन् विडिचि भास्वच्छुद्धि प्रापिंचॆदन् ॥ 93 ॥

व. अदियुनुंगाक देवतल काकाश गमनंबुनु, मनुष्युलकु भूतल गमनंबुनु

की लगातार वर्षा होती है। क्या उसकी निंदा करना उचित है? ८९
[चं.] चिता (श्मशान) में उपलब्ध अस्थि, भस्म, नृकपाल और जटा का धारण करनेवाला, परेत-भू-चर (श्मशान में विचरण करनेवाला) [और] पिशाचयुक्त कहकर प्रसिद्ध होनेवाले शर्व (शिव) को अकेले तुमको छोड़कर कोई [अन्य] अमंगल [-कर] नहीं समझता। और तो और वाक्पति (ब्रह्मा) मुख्य (आदि) उस महात्मा के सच्चरण रूपी सरोजों की रेणुओं (धूलि) की सम्मति से [अपने] मस्तकों पर धारण करते हैं। ९०
[चं.] धर्मवर्तन (धर्म के मार्ग से चलनेवाले) कहते हैं कि स्थिरचित्त से धर्मपालन [करनेवाले तथा] विनिर्मल [होनेवाले] भर्ग (शिव) का तिरस्कार करनेवाले उस कलुष (दुष्ट) की जिह्वा काट डालने लायक है; ऐसा नहीं कर सके तो उस [व्यक्ति] का स्वयं मर जाना उचित होगा। इन दोनों के लिए अगर प्रभुता (अधिकार) अशक्त है तो कर्णरंध्रों को बलपूर्वक बन्द कर चला जाना उचित है। ९१ [व.] इसलिए। ९२
[व.] जन-अज्ञान से जुगुप्सा कर अन्न को खाने पर शीघ्र [उसका] वमन करा करपवित्र होने के जैसे दुष्टात्मा होकर श्रेष्ठ ईश्वर की निंदा करनेवाले तुम्हारी तनूभवा कहलाना मैं नहीं सह सकती; इस हेय भाजन होनेवाले शरीर को छोड़कर भास्वत् (प्रकाशमान) शुद्धि को प्राप्त करूँगी। ९३
[व.] इसके अतिरिक्त जैसे देवताओं के लिए आकाशगमन [और] मनुष्यों के लिए भूतल-गमन स्वाभाविक हैं, प्रवृत्ति [तथा] निवृत्ति लक्षण [युक्त]

स्वाभाविकंबुलैनट्लु प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण कर्मंबुलु राग वैराग्या-धिकारंबुलुगा वेदंबुलु विधिचुटजेसि रागयुक्तुलै कर्मतंत्रुलैन संसारुलकु वैराग्ययुक्तुलै यात्मारामुलैन योगिजनुलकु विधि निषेध रूपंबुलयिन वैदिक कर्मंबुलु गलुगुटयु, लेकुंडुटयु नैजंबुलगुट जेसि स्वधर्म निष्ठुंडगु वानि निंदिपं जनदु। ई युभय कर्मशून्युंडु, ब्रह्म भूतुंडुनैन सदाशिवुनि ग्रियाशून्युंडनि निंदिचुट पापंबगु। तंड्री! संकल्प मात्र प्रभवंबु लगुटंजेसि महायोगि जन सेव्यंबुलैन यस्मदीयं बुलगु नणिमाद्यष्टैश्वर्यंबुलु नीकु संभविपवु। भवदीयंबगु नैश्वर्यंबुलु धूममार्ग प्रवृत्तुलै यागान्न भोक्तलैन वारिचेत यज्ञशालयंदे चाल नुतियिपंबडियुंडु गान नीमनंबुन नेनधिक संपन्नुड ननियु जिताभस्मास्थिधारणुंडैन रुद्रुंडु दरिद्रुंडनि युनु गर्विपं जनदु, अनि वैडियु निट्लनियें॥ 94॥

उ. नील गळापराधियगु नीकु दनूभव नौट चालदा?
चालु गुमर्त्य! नीदु तनुजात ननन् मदि सिग्गु पुट्टेडि
मेल, धरन् महात्मुलकु नेग्गोनरिंचेडि वारि जन्ममुल्
गालुपने, तलंप जनका! कुटिलात्मक! यन्नि चूडगन्॥ 95॥

कर्मों को राग (अनुरक्ति) [और] वैराग्य को अधिकारों के जैसे वेदों की विधि (आज्ञा) होने के कारण, रागयुक्त होकर कर्मतंत्र (कर्म-निरत) होनेवाले सांसारिकों (लौकिक जनों) को वैराग्ययुक्त होकर आत्माराम होनेवाले योगिजनों के लिए विधि-निषेध रूपी वैदिक कर्मों का होना, न होना स्वाभाविक होने से स्वधर्मनिष्ठ होनेवाले की निंदा नहीं करनी चाहिए। हे पिता, उस उभयकर्म-शून्य होनेवाले [तथा] ब्रह्मभूत होने वाले सदाशिव की, क्रियाशून्य कहकर निंदा करना पाप होगा। संकल्प मात्र से प्रभव (पैदा) होनेवाले, महायोगीजनों से सेव्य होनेवाले अस्मदीय (मेरे) अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य तुम्हें प्राप्त न होंगे। भवदीय होनेवाले (तुम्हारे) ऐश्वर्य धूममार्ग [में] प्रवृत्त होकर याग के अन्त के भोक्ता होनेवालों से यज्ञशाला में ही बहुत स्तुत्य होकर रहेंगे; इसीलिए अपने मन में [तुम्हें] गर्व नही करना चाहिए कि मै अधिक संपन्न हूँ [और] चिता-भस्म [तथा] अस्थिधारी रुद्र दरिद्र है। यों कहकर फिर इस प्रकार बोली। ९४ [उ.] नीलगल (शिव) [के प्रति] अपराधी होनेवाले तुम्हारी तनूभवा (बेटी) होना पर्याप्त नही है? हे कुमर्त्य (दुष्ट नर)! बस, तुम्हारी तनूजाता (पुत्री) कहलाने में मुझे मन मे लज्जा पैदा होती है। धरा पर महात्माओं की बुराई करनेवालों के जन्म, हे जनक (पिता)! हे कुटिलात्मक! सोचकर देखने पर [ऐसा लगता है कि वे] जन्म जलाने के लिए हैं। [किसी काम के लिए उपयोगी नही हैं।] ९५

चं. वर वृषकेतनुंडु भगवंतुडुनैन हरुंडु नन्नु ना-
दर परिहास वाक्यमुल दक्षतनूभव! यंचु विल्व ने
वुर वुर वॊक्कुचुन् मुदमु वॊंदक नर्म वचः स्मितंवुलन्
दॊऽगुडु नी तनूज ननु दुःखमु कंटॆनु जच्चुटॊप्पगुन् ॥ 96 ॥

व. अनियिट्लु यज्ञसभामध्यंवुन विरोधियैन दक्षु नुद्दॆशिंचि पलिकि, काम क्रोधादि शत्रु विघातिनि यगु सतीदेवि युदङ्मुखियै, जलंबुल नाचमनंवु चेसि, शुचियै मौनंवु धरिंयिचि, जितासनयै भूमियंदासीन यगुचु योगमार्गंवुनं जेसि शरीर त्यागंवु सेयं दलंचि ॥ 97 ॥

सी. वरुस प्राणापान वायु निरोधंवु गाविंचि वानि नेकमुग नाभि
तलमुन गूर्चि यंतट नुदानमु दाक नॆगयिंचि बुद्धितो हृदयपद्म
मुन निलिप वानि मॆल्लन गंठमार्गमु ननु मरि भ्रूमध्यमुन वसिप
जेसि शिवांघ्रि राजीव चिंतनमुचे नाथुनि ददक नन्यंबु जूड

ते. कम्महात्मुनि यंक पीठंवुनंवु
नादरंवुन नुंडु देहंवु दक्षु
वलनि रोषंवुननु विडुवंग दलचि
तालॆचे दनुवुन ननिलाग्नि धारणमुलु ॥ 98 ॥

[चं.] वर (श्रेष्ठ) वृषकेतन वाले [और] भगवान हर (शिव) के मुझे आदर [तथा] परिहासपूर्ण वाक्यों से 'दक्ष-तनूभवा' कहकर बुलाने पर मैं सिसक-सिसककर रोते हुए, मुद (मोद) न पाकर, नर्म वचनों (परिहास-युक्त बातें) [और] स्मित (मुस्कुराहट) से दुःखित हो जाऊँगी। तुम्हारी तनूजा कहलाने के दुःख की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। ९६ [व.] इस प्रकार यज्ञसभा के मध्य विरोधी होनेवाले दक्ष को उद्दिष्ट करके [उपरोक्त] कहकर, काम, क्रोध आदि शत्रुओं की विघातिनी (नाश करनेवाली) सती देवी ने उदङ्मुखी (उत्तर की दिशा में मुख कर) बनकर, जलों से आचमन करके, शुचि होकर, मौन धारण करके, जितासना (आसन को जीतनेवाली) भूमि पर आसीना होते हुए योगमार्ग के द्वारा शरीर का त्याग करने की इच्छा करके, ९७ [सी.] क्रम से प्राण [और] अपान वायु का निरोध करके, उन दोनों को एक करके नाभि के नीचे पहुँचा कर, तब उदान [वायु] तक उठाकर बुद्धि से हृदय रूपी पद्म में स्थिर करके, उनको धीरे से कंठ-मार्ग और भ्रूमध्य में ठहरा कर, शिव के अंघ्रि (पाद) [रूपी]- राजीव (कमल) के चिंतन से [अपने] नाथ के सिवा अन्य को न देखकर, [ते.] उस महात्मा के अंक पीठ पर आदर-सहित रहनेवाली देह को दक्ष के दोष के कारण छोड़ देने की इच्छा से [अपनी] तनु (शरीर) में अनिल [और] अग्नि को धारण किया। ९८ [व.] इस प्रकार [अनिल और अग्नि को]

व. इट्लु धरियिंचि गत- कलमषंबैन देहंबु गल सतीदेवि निजयोग समाधि जनितंबैन वह्निचे दत्क्षणंब दग्धयय्यें नंत ॥ 99 ॥

कं. अदि गनुगोनि हाहारव
मींदवग निट्लनिरि मानवुलु त्रिदशुलु नी-
मदिराक्षि यकट ! देहमु
वदलें गदा ! दक्षु तोडि वैरमु कतनन् ॥ 100 ॥

व. मरियु निट्लनिरि ॥ 101 ॥

सी. सकल चराचर जनकुडैनट्टि यी दक्षुंडु दन कूर्मि तनय मान-
वति पूजनीय यी सति दनचे नवमानंबु नोंदि समक्षमंदु
गायंबु दोरंगंग गनुगोनुचुन्न वाडिट्टि दुरात्मुडेंदेनि गलडे ?
यनुचु जित्तंबुल नाश्चर्यमुल बोंदि रदियुनु गाक यिट्लनिरि यिट्टि

ते. दुष्ट चित्तुंडु ब्रह्म बंधुंडु नैन
यीत डनयंबु दा नपख्याति बोंदु
निंदपडि मीद दुर्गति जेंदुगाक
यनुचु जनमुलु पलुकु नय्यवसरमुन ॥ 102 ॥

कं. देहमु विडिचिन सति गनि
बाहाबल मोप्प रुद्र पार्षदुलुनु द-

धारण करके, गत-कल्मष वाली देह (विगत-कल्मष वाली देह = पवित्र देह से युक्त) सती देवी निजयोग-समाधि से जनित (पैदा हुई) वह्नि (आग) से तत् (उसी)-क्षण दग्ध हो गई। तब, ९९ [कं.] उसे देखकर हाहारव के उत्पन्न हो जाने पर मानव [और] देवता यों बोले ओह ! इस मदिराक्षी (स्त्री) ने दक्ष से वैर के कारण देह को तो छोड़ दिया न ! १०० [व.] फिर इस प्रकार बोले। १०१ [सी.] सकल चर (जंगम) [और] अचर (स्थावर) का जनक (पिता) होनेवाला यह दक्ष अपनी लाडली तनया, [अभि] मानवती [और] पूजनीया इस सती के उससे अपमानित होकर, समक्ष में काय (शरीर) को छोड़ देने को देखता रह गया, ऐसा दुरात्मा कहीं है ? [यों] कहते हुए [अपने] चित्तों में आश्चर्य को पाया। इसके अलावा यों बोले— [ते.] ऐसा दुष्ट चित्त [वाला] [और] ब्रह्म-बंधु (मूर्ख) होनेवाला यह [दक्ष] सदा स्वयं अपख्याति पायेगा; निंदित होकर उलटे दुर्गति को पायेगा। [यों] कहते हुए जनों के बोलने के अवसर पर १०२ [कं.] देह को छोड़ी हुई सती को देखकर बाहुबल [भुजबल] के शोभित होने पर, रुद्र के पार्षद (प्रमथगण) तत् (उस) द्रोही को मार डालने के लिए असि (खड्ग) [और] गदा को धारण करके उत्साह के

वृद्रोहि द्रुंबटकै . यु-
त्साहंबुन लेचि रसि गदाधरुलगुचुन् ॥ 103 ॥

कं. आ रव मपुडीक्षिचि म-
हा रोषमु तोड भृगु महामुनि ग्रतु सं-
हारक मारकमगु नभि-
चारक होमं बॊनर्च सरभस मॊप्पन् ॥ 104 ॥

व. इट्लु दक्षिणाग्नियंदु वेल्चिन नंदु दप बॊनर्चि, सोमलोकंबुन नुंडु सहस्र संख्यलु गल ऋभुनामधेयुलैन देवतलुदयिंचि, ब्रह्मतेजंबुनंजेसि दिव्य विमानुलै युल्मुकंबुलु साधनंबुलुगा धरियिंचि, रुद्रपार्षदुलैन प्रमथगुह्यक गणंबुल बारंदोलिन वारुनु पराजितुलैरि। तदनंतरंब नारदु वलन भवुंडु दंड्रिचे नसत्कृतुरालगुटंजेसि भवानि पंचत्वंबु नॊंदुटयुं प्रमथगणंबुलु ऋभुनामक देवतलचे बराजितुलगुटयु विनि ॥ 105 ॥

शिवुडु वीरभद्रुनिचे दक्षयज्ञंबु ध्वंसंबु चेयिंचुट

शा. आद्युंडुग्रुडु नीलकंठु डिभदैत्याराति दष्टोष्ठुडै
माद्यद्भूरि मृगेंद्र घोषमुन भीम प्रक्रियन् नव्वुचुन्

साथ खड़े हुए। १०३ [कं.] उस रव (शब्द) को तब देखकर, महा-रोष के साथ भृगु महामुनि ने क्रतु-संहारकों को मारनेवाला अभिचारक होम (मारण-होम) शीघ्र ही किया। १०४ [व.] इस प्रकार दक्षिणाग्नि में होम करने पर, उसमें [तप करके सोमलोक में रहनेवाले सहस्र संख्या वाले और] ऋभु नामधेय वाले देवताओं ने उदित होकर, ब्रह्मतेज के कारण दिव्य विमानों में उल्मकों (मशालों) को साधनों के रूप में धारण करके, रुद्र के पार्षद प्रमथ [तथा] गुह्यक गणों को भगा दिया तो वे पराजित हुए। इसके बाद नारद से भव (शिव) ?पिता से असत्कृता होने के कारण भवानी (सती) के पंचत्व को प्राप्त करने की बात [तथा] प्रमथ गणों के ऋभु नामक देवताओं के हाथ पराजित होने की बात सुनकर। १०५

शिव का वीरभद्र के द्वारा दक्षयज्ञ का ध्वंस कराना

[शा.] आद्य, उग्र, नीलकंठ और इभ-दैत्याराति (इभ नामक दैत्य का शत्रु = शिव) दष्ट (काटा हुआ)-ओष्ठ (ओंठ) [वाला] बनकर, माद्यत् (मस्त) भूरि (बड़े) मृगेन्द्र (सिंह) के घोष (गर्जन) से भीम-प्रक्रिया (भयंकर विधि) से, हँसते हुए, विद्युत् (बिजली) [तथा]

विद्युद्वह्नि शिखा समुच्चय रुचिन् वॅलगोंडु चंचज्जटन्
सद्यः क्रोधमु तोड बुच्चि वयिचॅन् क्ष्माचक्र मध्यंबुनन् ॥ 106 ॥

व. इट्लु पॅरिकि वेचिन रुद्रुनि जटयंदु ॥ 107 ॥

अध्यायमु—५

सी. अभ्रंलिहावभ्र विभ्र माभ्र भ्रम कृन्नील दीर्घ शरीर ममर
प्रज्वल ज्ज्वलन दीप्त ज्वालिका जाल जाज्वल्यमान केशमुलु मॅरय
जंड दिग्वेदंड शुंडाभ दोर्दंड साहस्रधृत हेतिसंघ मॉप्प
वीक्षण त्रय लोक वीक्षण द्युति लोक वीक्षण तति दुर्निरीक्षमगुचु

ते. क्रकच कठिन कराळ दंष्ट्रलु वॅलुंग
घन कलापास्थि वन मालिकलुनु दनर
नखिल लोक भयंकरुडगुचु वीर
भद्रु डुदयिंचॅ मारट रुद्रुडगुचु ॥ 108 ॥

वह्निशिखा (अग्निज्वाला) की समुच्चय-रुचि से (समूह की कांति से) प्रकाशमान होनेवाली [और] चंचत्-जटा को सद्यःक्रोध से क्ष्माचक्र (भूचक्र) के मध्य में फेंक दिया। १०६ [व.] इस प्रकार उखाड़कर फेंकी हुई रुद्र-जटा में, १०७

अध्याय—५

[सी.] अभ्रंलिह (आकाश को स्पर्श करनेवाले), अदभ्र (निष्कपट) विभ्रम (आश्चर्य कर) अभ्रभ्रमकृत् (बादलों का भ्रम पैदा करनेवाले) नील [तथा] दीर्घ शरीर के शोभित होने पर, प्रज्वलित होकर ज्वलित, दीप्त-ज्वालिकाओं के जाल (समूह) [की तरह] जाज्वल्यमान केशों के चमकने पर, चंड (भयंकर) दिग्वेदंड (दिग्गजों की) शुंडों (सूंड़ों) की आभा (कांति) वाले दोर्दंड (बाहुओं की माला में) साहस्र (हजारों की संख्या मे) धृत (धारण किये हुए) हेतिसंघ के (खड्गों के समूह के) प्रकाशमान होने पर, वीक्षण-त्रय (तीन नेत्रों) की लोक-वीक्षण द्युति (तीनों लोकों के देखने की शक्ति) के लोक-वीक्षण (लोगों की दृष्टि की) तति (समूह) के लिए दुर्निरीक्ष (जिसे देखा न जा सके) होने पर, [ते.] क्रकच (आरे) की तरह कठिन [और] कराल (भयंकर) दंष्ट्राओं के चमकने पर, घन (बड़ी) कपाल, अस्थि [और] वनमालिकाओं से शोभित होने पर, अखिल (सब) लोकों [के लिए] भयंकर लगते हुए, दूसरा रुद्र (शिव) होते हुए वीरभद्र का उदय हुआ। १०८ [ते.] वीरभद्र विहत (मारे गये), विद्वेषी

ते. वीरभद्रुंडु विहत विद्वेषि भद्रु
डगुचु दन वेयु चेतुलु मोगिचि विनय
मॅसग नेनेमिसेयुदु नॅरुग नाकु
नानतिम्मन्न नतनि कथ्यभवु डनियॆ ॥ 109 ॥

चं. गुरु भुज शौर्य ! भूरि रणकोविद ! मद्भट कोटि कॅल्ल नी
वरय वरूधिनीवरुडवै चनि यज्ञमु गूड दक्षुनिन्
बरुवडि द्रुंपुमीवचट ब्राह्मण तेज मजेय मंटि वे
नरिदि मदंश संभवुडवंतगु नोकुनसाध्य मॅय्येडन् ? ॥ 110 ॥

व. अनि कुपित चित्तुंडै याज्ञापिंचिन नट्ल काक यनि ॥ 111 ॥

चं. अनघुडु रुद्रु जेरि मुदमार प्रदक्षिण मार्चरिंचि वी-
ड्कॊनि यनिवार्य वेगमुन गुंभिनि ग्रक्क दलन् झळंझळ
ध्वनि मणि नूपुरंबुल पदंबुल स्रोयग भीषण प्रभल्
दनर गृतांतकांतक शितस्फुट शूलमु वूनि चॆच्चॆरन् ॥ 112 ॥

चं. सरभसवृत्ति नट्लरुगु सैन्य पदाहत धूत धूळि धू-
सरित कुबेरदिक्तटमु सभ्युलु दक्षुडु जूचि यॆट्टि भी-

(शत्रुवाला), [और] भद्र (मंगलप्रद वाला) होते हुए, अपने हज़ार हाथों को जोड़कर और विनययुक्त होकर बोला कि मैं क्या करूँ ? समझाकर मुझे आज्ञा दो; ऐसा कहने पर, अभव (शिव) ने उससे कहा। १०९ [चं.] हे गुरु (बड़े) भुजाओं के शौर्य वाले ! भूरि (बहुत) रणकोविद (युद्ध में पंडित) ! मत् (मेरी) सारी भटकोटि (सेना) के लिए तुम वरूधिनीवर (सेनाधिपति) बनकर, यज्ञ के स्थल पर जाकर, क्रम से दक्ष का वध करो; अगर तुम वहाँ के ब्राह्मणों के तेज को अजेय कहते (समझते) हो तो [उसका अजेय होना] विरल है; [क्योंकि] तुम मदंश (मेरे अंश) से संभव (पैदा) हुए; तुम्हारे लिए कहीं कुछ भी असाध्य नहीं है। ११० [व.] यों कुपित (क्रोधित) चित्त (वाला) होकर आज्ञा दी तो 'जो आज्ञा' कहकर, १११ [चं.] अनघ [वीरभद्र] रुद्र के पास जाकर मुद (मोद) से प्रदक्षिणा करके, विदा होकर, अनिवार्य वेग से कुंभिनी (भूमि) के ऊपर 'झलझल' की ध्वनि के साथ चरणों के मणियों व नूपुरों के बजने पर, भीषण प्रभा (कांति)-ओं के प्रकाशमान होने पर, कृतांतक (यम) का अंतक (अंत करनेवाला)-शित (श्वेत) और स्फुट (स्पष्ट दिखाई पड़नेवाले) शूल को लेकर, शीघ्रता से, ११२ [चं.] भीषण-वृत्ति से जानेवाली सेना के पदों से आहत-धूत-धूलि [से] धूसरित कुबेर-दिक् (उत्तर) [के] तट (प्रदेश) [को] सभ्य (सदस्य) [और] दक्ष देखकर [बोले] "कैसा भीकर तम

करतमसंचनं वमसु गादु रजःपटलंबटंचु नि-
व्वेंड्र पडि पल्किरात्मल विवेक विहीनत बोंदि वेंडियुन् ॥ 113 ॥

सी. ई धूळि पुट्टुटकेंय्येदि हेतुवो ? विलय समीरमा ? पोंलय दिपुडु
प्राचीन बर्हि धरापति महितोग्रशासनुंडिपुडु राज्यंबु सेय
जोर संघमुलको रारादु मरि गोगणाळि राककु समयंबु गादु
कावुन निप्पुडु गल्पावसानंबु गाबोलु गाकट्ट गाक युन्न

ते. निट्टि यौत्पातिकरज मेंदेनि गलवें ?
यनुचु मनमुन भयमंदिरचटि जनुलु
सुरलु दक्षुडु नंत प्रसूति मुख्य
लेन भूसुरकांत लिट्लनिरि मरियु ॥ 114 ॥

कं. तन कूतुलु सूडग निज, तनयनु सति ननपराध दगवेदिट्लें
ग्गोनरिंचिन यी दक्षुनि, घन पाप विपाक मिदियु गावगु ननुचुन् ॥115॥

व. वेंडियु निट्लनिरि। कुपितात्मुंडैन दक्षुंडु दन कूतुतो विरोधंबु चालक जगत्संहार कारणुंडैन रुद्रुनि ग्रोधिप जेसिन नम्महात्मुंडेतटि वाडंटेनि प्रळयकालंबुन ॥ 116 ॥

(अंधकार) है।" [यों] कहने पर "तम नही, [यह तो] रजःपटल (धूलि का समूह) है" कहते हुए आश्चर्यचकित होकर [अपनी] आत्माओं में (अपने में) विवेक की विहीनता से बोले। फिर, ११३ [सी.] न जाने इस धूलि के पैदा होने का हेतु क्या है ? क्या यह विलय (प्रलय) समीर (वायु) है ? वह अब प्रवेश (व्याप्त) नहीं कर सकता। प्राचीन बर्हि [नामक] धरापति जो महित (बड़ा) उग्र (भयंकर) है, शासन कर रहा है। ऐसे समय चोरों का संघ (समूह) तो नही आ सकता; फिर गोगणों की आलि (पंक्तियों) के आने का समय नहीं है। इसलिए कदाचित अब कल्प का अवसान हो सकता है; अगर ऐसा न होता [ते.] तो ऐसा औत्पातिक (उत्पात मचानेवाली)-रज (धूलि) कहीं हो सकती है ? [यों] कहते हुए मन में वहाँ के जन (लोग) भयग्रस्त हुए। सुर (देवता), दक्ष [तथा] प्रसूति मुख्याएँ (प्रसिद्ध संतान वाली) भूसुरकांताएँ (ब्राह्मण-स्त्रियाँ) फिर इस प्रकार बोलीं। ११४ [कं.] अपनी बेटियों के देखते रहने पर, अपनी तनया (बेटी) सती के प्रति, जो अनपराधिनी है, न्याय (औचित्य) को छोड़कर, इस प्रकार बुरा करनेवाले इस दक्ष का यह घन (बड़े) पाप का विपाक (परिणाम) हो सकता है। यों कहते हुए, ११५ [व.] फिर इस प्रकार बोलीं। कुपितात्मा दक्ष ने अपनी बेटी के प्रति [किये गये] विरोध से तृप्त न होकर, जगत के संहार का कारण रुद्र को क्रुद्ध बनाया। वह महात्मा कैसा (कितना महान्) है— [यह पूछें

सी. सुमहित निशित त्रिशूलाग्र संप्रोत निखिल दिक्करिराज निवहुडगुचु
जटुलोग्र निष्ठुर स्तनित गंभीराट्टहास निर्भिन्नाखिलाशुडगुचु
भूरिकराळ विस्फार दंष्टाहति पतित तारागण प्रचयुडगुचु
विविध हेतिव्रात विपुल प्रभापुंज मंडित चंड दोर्दंडुडगुच

ते. विकट रोष भयंकर भृकुटि दुर्नि-
रीक्ष्य दुस्सह तेजो महिम दनर्चि
घन विकीर्ण जटाबंध कलितुडगुचु
नखिल संहार कारणुडै नटिंचु ॥ 117 ॥

ते· अट्टि देवुनि द्रिपुर संहारकरुनि
जंद्रशेखरु सद्गुणसांद्रु नभवु
मनमु रोषिप जेसिन मंगळमुल
बोंदवच्चुने ? पद्म गर्भुनकु नैन ॥ 118 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन भय विह्वल लोचनुलै पलुकु चुन्न समयंबुन महात्मुंडैन दक्षुनकु भयावहंबुलै सहस्र संख्यातंबुलैन महोत्पातंबुलु भू नभोंतरंबुल गानंबडुचुंडे। आ समयंबुन रुद्रानुचरुलु नानाविधायुधंबुलु धरियिंचि, कपिल पीत वर्णंबुलु गलिगि वामनाकारुलु मकरोदराननुलुनै यज्ञशाला

तो] प्रलयकाल में, ११६ [सी.] सुमहित (बड़े) निशित (तेज) त्रिशूल के अग्र [भाग] में चुभो दिये गये निखिल दिक्करिराजाओं (दिग्गजों) के समूह से युक्त होते हुए, चटुल (चंचल), उग्र (भयंकर) [और] निष्ठुर [होनेवाले] स्तनित (बिजली) के गंभीर अट्टहास [के कारण] निर्भिन्न (टुकड़े-टुकड़े किये हुए) अखिल-आशाओं (-दिशाओं) वाला होते हुए, भूरि (बड़े)-कराल (भयंकर)-विस्फार (खुले हुए)-दंष्ट्राहति (दाँतों के आघात से) पतित (गिरे हुए) तारागण का प्रचय (समूह) वाला होते हुए, विविध हेतिव्रात (खड्गों के समूह) [से] विपुल प्रभापुंज [से]-मंडित (अलकृत)-चंड (भयंकर) दोर्दंड (भुजावाला) होते हुए, [ते.] विकट रोष [से] भयंकर भृकुटि से दुर्निरीक्ष्य [और] दुस्सह तेज [की] महिमा [से] प्रकाशमान होते हुए, घन (बड़े) विकीर्ण (खुले हुए) जटाबंध [से] कलित (सुन्दर) होते हुए, [और] अखिल संहार [का] कारण होकर नटन करता है। ११७ [ते.] ऐसे देव, त्रिपुरसंहारकर, चंद्रशेखर, सद्गुण-सांद्र और अभव को अगर हम रुष्ट बनाएँगे तो, पद्मगर्भ (विष्णु) भी मंगलों (शुभों) को पा सकता है? [नहीं।] ११८ [व.] यों कहकर इस प्रकार भय [से] विह्वल (व्याकुल)-लोचन वाली बनकर कहते समय, महात्मा दक्ष को भयावह बनकर सहस्र संख्यात होनेवाले महान् उत्पात भू-नभोंतरों में दिखाई पड़ रहे थे। उस समय रुद्र के अनुचर नानाविध

प्रदेशंबुनं बरवुलु वॆट्टुचु गदियं जनुदॆंचि दक्षाध्वर वाटंबुल विट्लाटंबु सेयुचुं गॊंदरु प्राग्वंशंबुनु, गॊंदरु पत्नीशालयु, गॊंदरु सदस्यशालयु, नंदु गॊंदराग्नीध्रशालयु, गॊंदरु यजमानशालयु, गॊंदरु महानसगृहंबुनु विध्वंसंबुलु गाविंचिर। मरियु गॊंदरु यज्ञपात्रंबुल नग्नुलं जरचिरि। वॆंडियु गॊंदरु होमाग्नुलार्चिरि। पदंपाड कॊंदरु होमकुंडंबुलयंदु मूत्रंबुलु विडिचिरि। कॊंदरुत्तरवेदिका मेखललु द्रॆंचिरि। कॊंदरु मुनुल बाधिंचिरि। कॊंदरु तत्पत्नुल वॆरपिंचिरि। मरि कॊंदरु देवता निरोधंबु गाविंचिरि। अंत मणिमंतुंडु भृगुवुनु, वीरभद्रुंडु दक्षुनि, जंडीशुंडु पूषुनि, भगुनि नंदीश्वरुंडुनु वट्टिटरि। इव्विधंबुन सदस्य देव ऋत्विङ्निकायंबुल शिलल रुव्वियु, जानुवुल बॊडिचियु, नरचेतुल नडिचियु गूर्परंबुल बॊडिच्चियु, विविधबाधलं बरचिन वारु कांदिशीकुलै यॆक्कडॆक्कडेनियुं जनिरि। मरियुनु ॥ 119 ॥

क. मुनु दक्षुडभवु बलुकग, गनु गीटिन भगुनि बट्टि कन्नुलु पॆकलि
चॆनु नंदीश्वरुडच्चटि, जनमुलु हाहारवमुल संदडि पॆट्टन् ॥ 120 ॥

आयुधो को धारण करके, कपिल [और] पीत वर्णों से युक्त होकर, वामन आकार, मकर के उदर [एवं] आनन (मुख) वाले बनकर, यज्ञशाला-प्रदेश में दौड़ लगाते हुए समीप आकर, दक्ष के अध्वर (यज्ञ) के प्रदेशों को तितर-बितर करते हुए, कुछ [लोगों] ने प्राग्वंश (हविर्गृह के सामने रहने वाला सभागृह) का, कुछ ने पत्नीशाला का, कुछ ने सदस्यशाला का, कुछ ने यज्ञशाला का, कुछ ने यजमानशाला का और कुछ ने महानसगृह (रसोई-घर) का विध्वंश कर दिया। और कुछ लोगों ने यज्ञ-पात्रों का अग्नियों में [डालकर] नष्ट कर दिया। और कुछ [लोगों] ने होमाग्नियों को बुझा दिया। इसके बाद कुछ ने होम-कुण्डो में मूत्र छोड़ दिया। कुछ ने उत्तर वेदिकाओं की मेखलाओ को तोड़ डाला। कुछ ने मुनियों को पीड़ित किया। कुछ ने उनकी पत्नियों को डराया। और कुछ [लोगो] ने देवताओं का निरोध किया। तब मणिमंत ने भृगु को, वीरभद्र ने दक्ष को, चंडीश ने पूष को, नंदीश्वर ने भग को पकड़ लिया। इस प्रकार सदस्य, देव [और] ऋत्विकों के समूहों को शिलाओं से मारकर, जानुओं से मारकर, हस्तों से दबाकर, गुल्फो (घुटनो) से चुभो कर विविध बाधाएँ (पीड़ाएँ) दीं तो वे कांदिशीक बनकर इधर-उधर भाग गये; और ११९ [कं.] पूर्व में दक्ष के अभव (शिव) के प्रति [दुर्भाषणों को] बोलने के पर, आँख से संकेत करनेवाले भृगु को पकड़कर नंदीश्वर ने, वहाँ के जनों के हाहाकार करके हलचल मचाने पर, आँखे काढ़ दिया। १२० [ते.] उस दिन जब दक्ष ने कुपित होकर भव (शिव) को शाप दिया तो जिस पूप ने परिहास

ते. कुपितुडै नाडु भवुनि दक्षुडु शपिंप
वरिहसिंचिन पूषुनि पंडलु डुल्ल
गोट्टॆ वलभद्रुडाकळिंगुनि रदंवु
लॆलमि डुलिचिन पगिदि जंडीश्वरुंडु ॥ 121 ॥

कं. तगवेदि दक्षुडासभ, नगचापु दिरस्करिंचुनाडट श्मश्रुल्
नगुचुं जूपुट ना भृगु, पगकं श्मश्रुवुलु वीरभद्रुडु वॆरिकॆन् ॥ 122 ॥

सी. अतुल दर्पोद्धतुंडै वीरभद्रुंडु गैकोनि दक्षु वक्षंवु द्रोक्कि
घन शित धारासि गोनि मेनु वॊडिचियु मंत्र समन्वित महित शस्त्र
जालाविनिर्भिन्न चर्मंबुगल दक्षु जंपगालेक विस्मयमु नोंदि
तद्वधोपायंबु दन चित्तमुन जूचि कंठ निष्पीडनगति दलंचि

ते. मस्तकमु द्रुंचि संचितामर्षणमुन
दक्षिणानलमुन वेल्चॆ ददनुचरुलु
हर्षमुनु वोंद नचटि ब्राह्मण जनंबु
लात्मलनु जाल दुःखंबुल लंदुचुंड ॥ 123 ॥

व. इट्लु वीरभद्रुंडु दक्षुनि यागंबु विध्वंसंबु गाविंचि, निज निवासंबैन कैलासंबुनकुं जनियॆ। अय्यवसरंबुन ॥ 124 ॥

किया, चंडीश्वर ने उसके दाँतों को उखाड़ दिया जैसे बलभद्र ने उस कलिंग के दाँतों को उत्साह से उखाड़ दिया था। १२१ [कं.] औचित्य को छोड़कर दक्ष जब उस सभा में शिव का तिरस्कार कर रहा था, तब जिस भृगु ने हँसते हुए अपने श्मश्रुओं (मूँछों) को दिखाया (मूँछों पर ताव दिया) उस [भृगु] से बदला लेने के लिए वीरभद्र ने उसके श्मश्रुओं को उखाड़ दिया। १२२ [सी.] अतुल दर्प से उद्धत बनकर, वीरभद्र ने दक्ष को पकड़कर उसके वक्ष को रौंदकर, घन (बड़े) शित-धारा (तेज) [वाले] असि (खड्ग) को लेकर, उसके शरीर में भोंककर, मंत्रसमन्वित [और] शस्त्रों के जाल (समूह) से विनिर्भिन्न (भिन्न न होनेवाले) चर्म से युक्त दक्ष को मार न सक, विस्मित होकर, तद् (उसके) वध [के] उपाय को अपने मन में सोचकर, कंठ-निष्पीडन (गला घोंटने की) गति (पद्धति) को सोचकर, [ते.] उसके मस्तक को काटकर अंचित (बड़े) अमर्षण (क्रोध) से दक्षिण के अनल (आग) में जलाया ताकि उसके (वीरभद्र के) अनुचर हर्षित हो जावें और वहाँ के ब्राह्मण जन [अपनी] आत्माओं में बड़ा दुःख पावें। १२३ [व.] इस प्रकार वीरभद्र दक्ष के याग (यज्ञ) का विध्वंस करके निज निवास कैलास को गया। उस अवसर पर, १२४

अध्यायमु—६

देवतलु वीरभद्रादुलचे पराजितुलयि ब्रह्मतो विन्नविंचुट

कं. हर भट कोटि चेत निशितासि गदा करवाल शूल मु-
द्गर मुसलादि साधन विदारित जर्जरिताखिलांगुलै
सुरलु भयाकुलात्मुलगुचुन् सरसीरुहजातु जेरि त-
च्चरण सरोरुहंबुलकु सम्मति जागिलि म्रॊक्कि नम्रुलै ॥ 125 ॥

कं. तमु धूर्जटि सेनिकुलगु, प्रमथुलु दयमालि पॆलुच बाधिचुट स-
र्वमु जॆप्पि रनुचु मैत्रे, यमुनींद्रुडु विदुरुतोड ननियॆन् मरियुन् ॥ 126 ॥

ते. इंतयुनु मुन्नु मनमुन नॆऱिगि युन्न
कतन विश्वात्मकुंडुनु गमल लोच
नुंडु नन नॊप्पु नारायणुंडु नजुडु
चूड राररि विनुमु दक्षुनि मखंबु ॥ 127 ॥

व. अनि चॆप्पि सुरलिट्लु विन्नविचिन चतुर्मुखुंडु वारल किट्लनियॆ ॥ 128 ॥

कं. घन तेजोनिधि पुरुषुं, डनयंबु गृतापराधुडैननु दाम
ट्लन प्रतिकारमु गावि, चिन जनुलकु लोकमंदु सेममु गलदे ? ॥ 129 ॥

अध्याय—६

वीरभद्र आदि से पराजित होकर देवताओं का ब्रह्मा से निवेदन करना

[चं.] हर के भटों की कोटि (समूह) से निशित (तेज़) असि (खड्ग), गदा, करवाल (तलवार), शूल, मुद्गर और मूसल आदि साधनों से विदारित [और] जर्जरित अखिल (समस्त) अंगवाले बनकर, सुरों (देवताओं) ने भय [से] आकुल आत्मा वाले होते हुए सरसीरुह-जात (ब्रह्मा) के पास पहुँचकर, तत् (उनके) चरण-सरोरुहों को सम्मति से साष्टांग दंडप्रणाम करके नम्र होकर, १२५ [कं.] अपने को धूर्जटि (शिव) के सेवक प्रमथों के, दयारहित होकर, अधिक पीड़ा देने की सारी बात कह सुनाई। यों कहते हुए मैत्रेय मुनीन्द्र ने विदुर से कहा, फिर, १२६ [ते.] सुनो, यह सब पहले ही [अपने] मन में जानकर, रहने के कारण विश्वात्मा [और] कमललोचन कहलाने योग्य नारायण तथा अज (ब्रह्मा) दक्ष के मख (यज्ञ) को देखने नहीं आये। १२७ [व.] इस प्रकार कहकर सुरों के निवेदन करने पर चतुर्मुख (ब्रह्मा) ने उनसे इस प्रकार कहा। १२८ [कं.] घन तेज [के] निधि पुरुष के सतत-कृतापराध होने (निरन्तर अपराध करते रहने) पर भी, उनके (शिव के) इस प्रकार प्रतीकार करने से लोक में, [कहीं] क्षेम (भलाई) हो सकता है ? १२९

व. अनि मरियु निट्लनियें ॥ 130 ॥

कं. क्रतु भागार्हुंडगु पशु, पति नीश्वरु नभवु शर्वु भर्गुनि दूरी-
कृत यज्ञभागु जेसिन, यति दोषुलु दुष्टमतुलु नगु मीरिकन् ॥ 131 ॥

सी॰ पूनि ये देवुनि बौमुमुडि मात्रन लोकपालकुलुनु लोकमुलुनु
नाशमौंदुदुरट्टि यीशुंडु घन दुरुक्तास्त्र निकाय विद्धांतरंगु
डनु प्रियाविरहितुंडुगनेन वाड महात्मुनि त्रिपुर संहारकरुनि
मख पुनस्संधनमति नपेक्षिचु मीरलु सेरि शुद्धांतरंगुलगुचु

ते. भक्ति निष्ठल तत्पादपद्म युगळ
घन परिग्रह पूर्वंबु गाग नतनि
शरणमौंदु डतंडु प्रसन्नुडेन
दिविरि मी कोर्कि सिद्धिंचु दिविजुलार ! ॥ 132 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियें। अद्देवुनि डायंजन वेरतुमनि तलंपकुंडु। अतनि जेर नुपायंबेट्टिदियु मंटिरेनि नेनु, निंद्रुंडु, मुनुलु, मीरलु, मरियु देहधारु-लेव्वरेनि नम्महात्मुनि रूपंबु, नतनि बल पराक्रमंबुल कौलदियु नेरुंग जालमु। अतंडु स्वतंत्रुंडु गावुन ददुपायंबेट्टिदिप नेव्वडु समर्थुंडगु ?

[व.] यों कहकर फिर इस प्रकार कहा, १३० [कं.] क्रतु (यज्ञ) के भाग के अर्ह होनेवाले पशुपति ईश्वर, अभव, शर्व, भर्ग को यज्ञ के भागों से दूर किया हुआ बनाने पर, अति दोषी [तथा] दुष्टमति वाले तुम लोग अब, १३१ [सी.] लगकर जिस देव के भौंहों के सिकुड़ने मात्र से लोकपालकों एवं लोकों का नाश होता है, वह ईश घन-दुरुक्ति (कठोर वचन रूपी) अस्त्रों [के] निकाय (समूह) [से] विद्ध (विधा हुआ) अंतरंग वाला [और] प्रिया से विरहित हो गया है। उस महात्मा को, त्रिपुरसंहारकर (करनेवाले) को मख [के द्वारा] पुनस्संधान की मति (बुद्धि) की अपेक्षा (इच्छा) रखनेवाले तुम [एक जगह पर] जमकर [एकत्रित होकर] शुद्धांतरंग वाले होते हुए, [ते.] भक्ति [और] निष्ठा से तत् (उसके) पादपद्म-युगल की घनपरिग्रहपूर्वक शरण में जाओ। हे दिविज, अगर वह प्रसन्न हो जाएगा [तो] शीघ्र ही तुम लोगों की इच्छाओं की सिद्धि होगी (सफलता होगी)। १३२ [व.] यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। यह न सोचना कि उस देव के पास जाने में डरते हैं। तुम लोग उसके पास पहुँचने का उपाय जानना चाहते हो तो— मैं, इन्द्र, मुनि, तुम लोग और कोई भी देहधारी, उस महात्मा के रूप को, [और] उसके बल और पराक्रमों को कुछ भी नहीं जान सकते। वह स्वतंत्र है। इसलिए उसका उपाय समझाने के लिए कौन समर्थ होगा ? फिर भी अब भक्त-पराधीन [तथा] शरणागत-रक्षक होनेवाले ईश के

ऐन निपुडु भक्तपराधीनुंडु शरणागत रक्षकुडगु नीशुनिं जेरंबोवुदमनि पलिकि पद्मसंभवुंडु देव पितृगण प्रजापतुलं गूडि कैलासाभिमुखुंडै चनि चनि ॥ 133 ॥

उ. भासुर लील गांचिरि सुपर्वुलु भक्त जनैक मानसो-
ल्लासमु गिन्नरीजन विलासमु नित्यविभूति मंगळा-
वासमु सिद्ध गुह्यक निवासमु राजत भूविकासि कै-
लासमु कांति निर्जित कुलक्षिति भृत्सुमहद्विभासमुन् ॥ 134 ॥

सी. धातु विचित्रितोदात्त रत्न प्रभासंगतोज्ज्वल तुंग शृंगमुलुनु
गिन्नर गंधर्व किंपुरुषाप्सरो जननिकराकीर्ण सानुवुलुनु
मानित निखिल वमानिक मिथुन सद्विहरणैक शुभ प्रदेशमुलुनु
गमनीय नव मल्लिका सुमनो वल्लिकामतल्ली लसत्कंदरमुलु

ते. नमर सिद्धांगना शोभिताश्रममुलु
विबुधजन योग्य संपन्निवेशमुलुनु
गलिगि वहुविध पुण्य भोगमुल नोप्पु
विनुत सुकृतमुलकु दंड वेंडिकोंड ॥ 135 ॥

व. अदि मद्दियुनु मंदार पारिजात सरल तमाल साल ताल तक्कोल कोविदार

निकट जायेंगे। यों कहकर पद्मसंभव (ब्रह्मा) देव, पितृगण [और] प्रजापतियों के साथ मिलकर कैलास के अभिमुखी (कैलास की ओर मुख करके) होकर [और] जा-जाकर, १३३ [उ.] सुपर्वों (देवताओं) ने भक्तजनों के मानस का एक [मात्र] उल्लास, किन्नरी जनों के लिए विलास [गृह], नित्य-विभूति (मोक्ष) का मंगल आवास (निवासस्थल), सिद्धों [और] गुह्यकों का निवास, राजत (प्रकाशमान)-भू विकासी (भूमि का विकासस्थल), कांति [से] निर्जित-कुलक्षितिभृत् (सभी कुलपर्वतों के)-सुमहद् विभास (अधिक विभा को जीतनेवाले) कैलास को भासुरलीला से देखा। १३४ [सी.] [गैरिक] धातुओं से विचित्रित, उदात्त रत्नप्रभा [से] संगत (युक्त), उज्ज्वल तुंग शृंग और किन्नर, गन्धर्व, किंपुरुष, अप्सराजनों [के] निकर (समूह) से आकीर्ण (व्याप्त) सानु और मानित (मान्य), निखिल वैमानिक मिथुन [के] सद्विहरण (विहार करने के) एक (केवल) शुभ प्रदेश और कमनीय, नवमल्लिका के सुमनों [की] वल्लिका (लता)-मतल्ली (प्रशस्त) [से] लसत् (प्रकाशमान) कंदराएँ (गुफाएँ) और अमर (देवता), [ते.] सिद्धांगनाओं से शोभित, आश्रम और विबुधजनों के लिए योग्य संपन्निवेश (सपदाओं से भरे हुए स्थल) [आदि से] युक्त होकर वहुविधि पुण्य-भोगों से शोभित, विनुत (प्रशसनीय) सुकृतों के लिए आश्रय है रजतगिरि। १३५ [व.] और वह मंदार, पारिजात, सरल, तमाल,

शिरीषार्जुन चूत कदंब नीप नाग पुन्नाग चंपक पाटलाशोक बकुळ कुंद कुरवक कनकाम्र शतपत्र किंशुकैला लवंग मालती मधूक मल्लिका पनस माधवा कुटजोदुंबराश्वत्थ प्लक्ष वट हिंगुळ भूर्ज पूग राजपूग जंबू खर्जूराम्लातक प्रियाळु नाळिकेरेंगुद वेणु कीचक तरुशोभितंबुनु, गलकंठ कालकंठ कलविंक राजकीर मत्त मधुकर नाना विहंग कोलाहल निनद वधिरीभूत रोदोंतराळंबुनु, सिंह तरक्षु शल्य गवय शरभ शाखामृग वराह व्याघ्र कुर्कुर रुरु महिष वृक सारंग प्रमुख वन्य सत्त्व समाश्रय विराजितंबुनु, गदळीषंड मंडित कमल कल्हार कैरव कलित पुलिनतल ललित कमलाकर विहरमाण कलहंस कारंडव सारस चक्रवाक बक जल-कुक्कुटादि जलविहंगकुल कूजित संकुलंबुनु, सलिलकेळी विहरमाण सती रमणो रमणीय कुचमंडल विलिप्त मृगमद मिळित हरिचंदन गंध सुगंधित जल पूरित गंगातरंगिणी समावृतंबुनुनैन कैलास पर्वतंबु वीक्षगनि, यरविंदसंभव पुरंदरादि देवगणंबु लत्यद्भुतानंदंबुलं बोंदि, मुंदट दार हीर हेममय विमान संकुलंबुनु पुण्यजन मानिनी शोभितंबुनु-

---

साल, ताल, तक्कोल, कोविदार, शिरीष, अर्जुन, चूत, कदंब, नीप, नागपुन्नाग, चंपक, पाटल, अशोक, वकुल, कुंद, कुरवक, कनक, आम्र, शतपत्र, किंशुक, एला, लवंग, मालती, मधूक, मल्लिका, पनस,माधवी, कुटज, उदुंवर, अश्वत्थ, प्लक्ष, वट, हिंगुल, भूर्ज, पूग, जंवू, खर्जूर, आम्रातक, प्रियालु, नारिकेल, इंगुदी, वेणु, कीचक,[आदि]तरुओं से शोभित, कलकंठ, कालकंठ, कलविंक(गौरैया), राजकीर, मत्त मधुकर [आदि] नानाविहंगों के कोलाहल के निनाद से बधिरीभूत रोदोंतराल वाले; सिंह, तरक्षु (तेंदुआ), शल्य (साही), गवय (नीलगाय), शरभ, शाखामृग (वंदर), वराह, व्याघ्र, कुर्कुर, रुरु (कस्तूरी मृग), महिष, वृक, सारंग प्रमुख (आदि) वन्य सत्त्वों के (प्रवल पशुओं के) समाश्रय से विराजित; कदलीषंडमंडित(कदली के समूह से अलंकृत), कमल, कल्हार, कैरव [से] कलित (सुन्दर) पुलिन तल (रेतीले मैदान) से ललित (कोमल), कमलाकरों में विहरमाण (विहार करनेवाले) कलहंस, कारंडव, सारस, चक्रवाक, बक, जलकुक्कुट आदि जलविहंगों के कुल (समूह) के कूजित (कूजन ध्वनि से) संकुल (व्याप्त); सलिल-केली (जल-क्रीडाओं में) बिहरमाण (विहार करते समय) सती रमणी [के] रमणीय कुचमंडल [मे] विलिप्त (लगाए) मृगमद (कस्तूरी) से मिलित हरिचंदन की गंध से सुगंधित जल से पूरित गंगा-तरंगिणी (नदी) से समावृत कैलास पर्वत को देखकर अरविन्द-संभव (ब्रह्मा) [और] पुरंदर आदि देवगण अति अद्भुत [और] आनंद को पाकर, सामने तारों, हीरों और हेम (सुवर्ण)मय विमानों से संकुल (व्याप्त), पुण्यजन [तथा] मानिनियों से शोभित होनेवाले अलकापुर को पार कर, तत् (उस) पुर [के] बाह्य

नेन यलकापुरंबु गडचि, तत्पुर बाह्म प्रदेशंबुनं दीर्थपादुंडेन पुंडरीकाक्ष पादारविंद रज:पावनंबुनु, रतिकेळी व्यासंग परिश्रम निवारक सलिल केळी विलोल देव कामिनी पीन वक्षोज विलिप्त कुंकुमपंक संगत पिशंगवर्ण वारि पूर विलसितंबुनु नगु नंदालक नंदाभिधानंबुलं गल नदी द्वितयंबु दाटि, तत्पुरोभागंबुन वनगज संघृष्ट मलयज परिमिळित पवनास्वादन मुहुर्मुहुरुन्मुदितमानसपुण्य जन कामिनी कदंबंबुनु, वैडूर्य सोपान समंचित कनकोत्पल वापी विभासितंबुनु, गिंपुरुष व्याप्तंबुनु नगु सौगंधिक वन समीपंबुनंदु ॥ 136 ॥

ब्रह्मादुलु दक्षिणामूर्तिरूपुंडगु नीश्वरुनि स्तुतिचुट

सी. उज्ज्वलंबै शतयोजनंबुल पोडवुनु पंच सप्तति योजनमुल
वरपुनु गलिग ये पट्टुन दिरुगनि नीड शोभिल्ल निर्णीत मगुचु
वर्ण शाखा समाकीर्णमै माणिक्यमुल बोलगल फलमुल दनर्चि
कमनीय सिद्ध योग क्रियामयि यनघमय मुमुक्षु जनाश्रयंबु

प्रदेश में तीर्थपाद होनेवाले पुंडरीकाक्ष के पादारविन्दों (पाद रूपी कमलों) की रज (धूलि) से पावन और रतिकेली-व्यासंग (-निमग्नता) से [होने वाले] परिश्रम का निवारण करनेवाले सलिल में केली-विलोल होनेवाली देवकामिनियों के पीन (मोटे) वक्षोजों पर विलिप्त (लगाये गये) कुंकुम के पंक से संगत (युक्त) पिशंग-वर्ण (कपिल वर्ण) [के] वारि (जल) पूर (प्रवाह) से विलसित होकर नंदालक [तथा] नंदा अभिधानों (नामों) के नदी-द्वितय (दो नदियों को) पार करके, तत्पुरोभाग में (उसके सामने) वनगजों से संघृष्ट (एक-दूसरे से रगड़ने) से [उत्पन्न] मलयज [से] परिमिलित, पवन का आस्वादन करनेवाली मुहुर्मुहुः (बारबार) उन्मुदित (आनंदित) मानस (मानसरोवर की) पुण्यजन-कामिनियों के कदंब (समूह) को, वैदूर्यो से बने सोपानों से समंचित, कनक (सोने के) उत्पलों से भरी वापियों (कुओं) से विभासित [तथा] किंपुरुषों के संचार से व्याप्त होनेवाले सौगंधिक वन के समीप, १३६

ब्रह्मा आदि का दक्षिणामूर्ति रूपी ईश्वर की स्तुति करना

[सी.] वह वट उज्ज्वल होकर शतयोजन लंबा [और] पचहत्तर योजन चौड़ा रहकर किसी भी स्थान पर भी कम न होनेवाली छाया के शोभायमान हो निर्णीत रहकर, पर्णो और शाखाओं से समाकीर्ण होकर, माणिक्यों के जैसे फलों से अतिशय होकर, कमनीय सिद्ध [और] योग-क्रियामय होकर, हे अनघ, मुमुक्षु जनों का आश्रय [एवं] [ते.] भूरि

ते. भूरि संसार ताप निवारकंबु
नगुचु दरुराज मनग वॆंपगग्गलिचि
भक्त जनुलकु निच्चलु प्रमद मॆसग
वलयु संपद लंदु नावटमु वटमु ॥ 137 ॥

व. आ वृक्ष मूल तलंबुन ॥ 138 ॥

सी. इद्ध सनंदादि सिद्ध संसेवितु, शांत विग्रहुनि वात्सल्य गुणुनि
गमनीय लोकमंगळ दायकुनि शिवु विश्ववंधुनि जगद्विनुत यशुनि
गुह्यक साध्य यक्षो रक्षनाथ कुबेर सेवितुनि दुर्वार बलुनि
नुचित विद्या तपो योग युक्तुनि वालचंद्र भूषणुनि मुनींद्र सुतुनि

ते. तापसाभीष्टकरु भस्मदंडलिंग
घन जटाजिनधरुनि भक्त प्रसन्नु
वितत संध्याभ्ररुचि विडंबित विनूत्न
रक्त वर्णु सनातनु ब्रह्ममयुनि ॥ 139 ॥

सी. अंचित वामपादांभोरुहमु दक्षिणोरुतलंबुन नॊय्य नुनिचि
सव्य जानुव मीद सव्य वाहुवु साचि वलपलि मुंजेत सललिताक्ष
मालिक धरियिंचि महनीय तर्कमुद्रायुक्तुडगुचु जित्तंबु लोन
नव्ययंबैन ब्रह्मानंद कलित समाधिनिष्ठुडु वीतमत्सरुडु

संसार (पारिवारिक)-ताप का निवारण करनेवाला होते हुए, तरुराज कहलाने का अतिशय (गौरव) पाकर, भक्तजनों को निश्चय ही प्रमद (आनंद) देने के लिए, आवश्यक संपदाओं को देनेवाला है। १३७ [व.] उस वृक्ष के मूल में, १३८ [सी.] प्रकाशमान, सनंद आदि सिद्धों से संसेवित शांत विग्रह वाले को, वात्सल्यगुणी को, कमनीय लोकमंगलदायक को, शिव को, विश्ववधु को, जग [में] विनुत यश [वाले] को, गुह्यक, साध्य, यक्ष, रक्षोनाथ [और] कुबेर से सेवित को, दुर्वार बली को, उचित (योग्य) विद्या, तप [तथा] योग [से] युक्त को, वालचंद्रभूषण को, मुनीन्द्रों [से] नुत (प्रशंसित) को, [ते.] तापसों के अभीष्टों को पूरा करनेवाले को, भस्म, दण्ड, लिंग, घन (बड़ी) जटा और अजिन को धारण करनेवाले को, भक्तों पर प्रसन्न [रहनेवाले] को, वितत संध्या [के] अभ्र (मेघ) [की] रुचि (कांति) [को] विडंबित (धोखा देनेवाले) विनूत्न रक्तवर्ण वाले को, सनातन को [और] ब्रह्ममय को, १३९ [सी.] पूजनीय वामपाद [रूपी] अंभोरुह को दक्षिण की ऊरु (जाँघ) पर ठीक रखकर, सव्य (दायें) जानु (घुटने) पर सव्य वाहु को फैलाकर, दायें हाथ की उँगलियों पर सललित अक्षमालिका [को] धारण करके, महनीय तर्क-मुद्रा [से] युक्त होते हुए चित्त में अव्यय होनेवाले, ब्रह्मानंद [से] कलित (आनंदित) समाधिनिष्ठ वाले, वीत (खोया हुआ)-मत्सर (द्वेष) वाले को, [ते.] योग

ते. योग पट्टाभिरामुडै युचितवृत्ति
रोष संगति बासि कूर्चुन्न जमुनि
यनुवुनन्नु दर्भ रचित बृस्यासनमुन-
नुन्न मुनिमुख्यु नंचित योगनिरतु ॥ 140 ॥

कं. अलघुनि नभवुनि योगीं, द्रुलु विनुचुंडंग नारदुनितो ब्रिय भा-
षलु जरुपुचुन्न रुद्रुनि, सललित पन्नग विभूषु सज्जन पोषुन् ॥ 141 ॥

कं. कनि लोकपालुरुनु मुनि, जनुलुनु सद्भक्ति नतनि चरणंबुलकुन्
बिनतुलयिरि यपुडब्जा, सनु गनि यय्यभवुडधिक संभ्रम मॉप्पन् ॥142॥

कं. अनघ ! महात्मुंडगु वा, मनुडा कश्यपुन कॉगि नमस्कारमुचे
सिन गति नजुनकु नभिवं, दन सॉगि गाविंचॅ हरुडु दद्दयु ब्रीतिन् ॥143॥

ते. अंत रुद्रानुवर्तुलैनट्टि सिद्ध-
गण महर्षि जनंबुलु गनि पयोज
गर्भुनकु म्रॉक्कि रंत ना कमलभवुडु
शर्वु गनि पल्कॅ मंदहासंबु तोड ॥ 144 ॥

ते. जगमुलकु नॅल्ल योनि बीजंबुलैन
शक्ति शिव कारणुंडवै जगति निर्वि-
कार ब्रह्मंबवगु निन्नु गडगि विश्व
नाथुगा नॅरिगॅद ना मनमुन नभव ! ॥ 145 ॥

का पट्टाभिराम बनकर, उचित (योग्य) वृत्ति (रीति) से [एवं] रोष की संगति छोड़कर बैठे हुए यम की तरह से, दर्भो से रचित ब्रुस्यासन (व्रतियों का एक आसन) पर बैठे हुए मुनिमुख्य को, पूजनीय योग [में] निरत (निमग्न) को, १४० [क.] अलघु को, अभव को, योगींद्रों के सुनते समय नारद से प्रिय बातें करनेवाले रुद्र को, सललित पन्नग-विभूषित को [तथा] सज्जनों के पोषक को, १४१ [कं.] देखकर लोकपाल [और] मुनिजन सद्भक्ति से उनके चरणों में विनीत हुए; तब अब्जानन (विष्णु) को देखकर उस अभव ने अधिक संभ्रम से, १४२ [कं.] हे अनघ, महात्मा वामन ने कश्यप को जैसे झुककर नमस्कार किया, वैसे ही अज (ब्रह्मा) को हर (शिव) ने झुककर बड़ी प्रीति से अभिवंदन किया। १४३ [ते.] तब रुद्र के अनुवर्ती (अनुचर) होनेवाले सिद्धगणों [और] महर्षि-जनों ने देखकर पयोजगर्भ (ब्रह्मा) को प्रणाम किया। तब कमलभव (ब्रह्मा) ने शर्व को देखकर मंदहास के साथ कहा। १४४ [ते.] हे अभव! सारे जगों के लिए योनि (उत्पत्तिस्थान) के वीज होनेवाले शक्ति और शिव का कारण बनकर, जग में निर्विकार ब्रह्म होनेवाले तुमको प्रयत्न-पूर्वक अपने मन में विश्वनाथ के रूप में जानता हूँ। १४५ [ते.] हे

ते. समत नदिगाक तावकाशंबुलैन
शक्ति शिव रूपमुल ग्रीड सलुपु दूर्ण
नाभि गति विश्वजनन विनाश वृद्धि
हेतु भूतुंड वगुचुंदुवीश ! रुद्र ! ॥ 146 ॥

सी. अनघ ! लोकंबुलयंदु वर्णाश्रम सेतुवुलनग ब्रख्याति नोंदि
बलसि महाजन परिगृहीतंबुलै यखिल धर्मार्थदायकमुलैन
वेदंबुलनु मरि वृद्धि नोंदिचुट, कोरकुनै नीव दक्षुनि निमित्त
मात्रुनि जेसि यम्मखमु गाविचितिवट्टु गान शुभमूर्तिवैन नीवु

ते. गडगि जनमुल मंगळ कर्मुलैन
वारि मुक्ति नमंगळाचारुलैन
वारि नरकंबु नोंदितु भूरि महिम
भक्तजन पोष ! राजित फणिविभूष ! ॥ 147 ॥

व. अट्लगुटं दत्कर्मंबु लोकान्योकनिकि विपर्यासंबु नोंदुटकु गारणंबेय्यदियो ? भवदीय रोषंबु हेतुवनि दलंचितिनेनि त्वदीय पादारविंद निहित चित्तुलै समस्त भूतलंबुलयंदु निनुं गनुंगोनुचु भूतंबुल नात्मयंदु वेऱगा जूडक वर्तिचु महात्मुलयंदु नज्ञुलैन वारियंदुवलें रोषंबु दरुचु पोरयदट। नीकु ग्रोधंबु गलदे ? यनि ॥ 148 ॥

ईश, रुद्र ! इसके अलावा समता से तावक (आपके) अंश होनेवाले शक्ति और शिव के रूपों से क्रीडा करते हो जैसे मकड़ी करती है। विश्व के जनन, विनाश और वृद्धि के हेतु-भूत (कारण) बन जाते हो। १४६ [सी.] हे अनघ ! अखिल लोकों में वर्णाश्रमों [का] सेतु कहलाकर, प्रख्यात होकर, बली बनकर [और] महाजनों (पंडितों) से परिगृहीत होकर अखिल धर्म [और] अर्थदायक होनेवाले वेदों की और भी वृद्धि कराने के लिए तुमने ही दक्ष को निमित्त मात्र बनाकर उस मख को संपन्न किया। इसलिए शुभमूर्ति होनेवाले तुम प्रयत्न करके मंगल कर्म करनेवाले जनों को मुक्ति [तथा] अमंगलाचार होनेवालों को नरक देते हो। हे भूरि महिमा वाले, भक्तजनों का पोषण करनेवाले ! राजित (प्रकाशमान) फणि-भूषण वाले ! १४७ [व.] इसलिए तत् (उन) कर्मों के एक-दूसरे का विपर्यास (व्यतिरेक) होने का जो कारण है वह भवदीय रोष है, अगर ऐसा समझता तो त्वदीय पादारविंदों पर निहित (रखे हुए) चित्तवाले बनकर, समस्त भूतों में तुम्हे देखते हुए, भूतों को आत्मा से अलग न देखकर [तपस्या करने] वाले महात्माओं में, अज्ञों के समान, अकसर रोष नहीं होता। क्या तुम्हें क्रोध है —यों कहकर, १४८ [सी.] फिर भेद-बुद्धि से कर्म के प्रवर्तनों (आचरणों) में मदयुत होकर, दुष्ट हृदय वाले

सी. मद्रि भेदबुद्धि गर्म प्रवर्तनमुल मदयुतुलै दुष्टहृदयुलगुचु
बर विभवासह्य भव मनोव्याधुल दगिलि मर्मात्म भेदकमुलैन
बहु दुरुक्तुल चेत बरुल बीडिंपुचुनुंडु मूढुलनु दैवोपहतुल
गा दलपोसि यक्कपट चित्तुलकु नीवंटि सत्पुरुषुडेवलन नैन

ते. हिंस गाविंपकुंड समिद्ध चरित !
नीललोहित ! महित गुणालवाल !
लोकपालन ! कलित गंगाकलाप !
हर ! जगन्नुतचारित्र ! यदियुगाक ॥ 149 ॥

सी. अमर समस्त देशमुलंदु नखिल कालमुलंदु दलप दुर्लंघ्य महिमु-
डगु पद्मनाभु माया मोहितात्मकुलै भेददर्शनुलैन वारि
वलननु द्रोहंबु गलिगिन नंतयु नदि दैवकृतमनि यन्य दुःख
मुल कोर्वलेक सत्पुरुषुंडु दय सेयु गानि हिंसिपडु गान नीवु

ते. नच्युतुनि माय मोहमु नंदकुंट, जेसि सर्वज्ञुडवु माय चेत मोहि-
तात्मुलै कर्मवर्तनुलैन वारि, वलन द्रोहंबु गलिगिन वलयु न्रोव ॥150॥

व. अदि गावुन यज्ञभागार्हुंडवैन नीकु सवन भागंबु समर्पिपनि कतन नीचेत
विध्वस्तंबै परिसमाप्ति नोंदनि दक्षाध्वरंबु मरल नुद्धरिंचि दक्षुनि
पुनर्जीवितुं जेयुमु। भगुनि नेत्रंबुलुनु, भृगुमुनि श्मश्रुवुलुनु, पूषुनि

होते हुए, परों (दूसरों) के विभव के प्रति असह्य (सहनशीलता का अभाव) [आदि] भव [सांसारिक] मनोव्याधियों में लगकर, मर्मात्मभेदक होनेवाली बहुदुरुक्तियों से परों (दूसरों) को पीडित करते हुए, रहनेवाले मूढ़ों को, दैवोपहत समझकर, उन कपट चित्तवालों को तुम्हारा जैसा सत्पुरुष किसी न किसी तरह हिंसित नही करेगा। [ते.] हे समिद्ध (प्रकाशमान) चरित्रवाले ! हे नीललोहित ! हे महित गुणों के आलवाल ! हे लोकपालक ! हे कलित गंगाकलापवाले! हे हर ! हे जगन्नुत चरित्रवाले ! इसके अलावा १४९ [सी.] देखने पर समस्त देशों में [और] अखिल कालों में सोचने पर, दुर्लंघ्य (कठिन) महिमावाले पद्मनाभ की माया [से] मोहित आत्मा वाले बनकर, भेद दर्शनवालों से द्रोह होने पर, सब कुछ को 'दैवकृत' समझकर, अन्य (दूसरों) दुःखों को न सह सककर, सत्पुरुष दया दिखाता है, लेकिन हिंसा नहीं करता। [ते.] इसलिए तुम अच्युत की माया-मोह की पकड़ में न आने से सर्वज्ञ हो, माया से मोहित आत्मावाले बनकर, कर्म-वर्तन (-आचरण) करनेवालों से द्रोह होने पर रक्षा करनी चाहिए। १५० [व.] इसलिए यज्ञभाग के लिए अर्ह होनेवाले तुमको सवन (यज्ञ) का भाग समर्पित न होने के कारण तुमसे विध्वस्त होकर परिसमाप्त न होनेवाले दक्ष के अध्वर (यज्ञ) का फिर से

दंतंबुलुनु गृपसेयुमु। भग्नांगुलैन देव ऋत्विज्निकायंबुलकु नारोग्यंबु गाविपुमु। ई मखावशिष्टंबु यज्ञ परिपूर्ति हेतुभूतंबन भवदीय भागंबु गाक ॥ 151 ॥

अध्यायमु—७

ईश्वरंडु ब्रह्मादुलचे ब्रार्थितुंडयि दक्षादुल ननुग्रहिंचुट

चं. अनि चतुराननुंडु विनयंबुन वेडिन निंदुमौळि स-
द्यन बरितुष्टि बॊंदि दरहासमुनन् गृप दॊंगलिप नि-
ट्लनु हरि माय चेत ननयंबुनु बामरु लैन वारु चे-
सिन यपराध दोषमुलु चित्तमुलो गणियिप नॆन्नडुन् ॥ 152 ॥

व. अट्लय्युनु ॥ 153 ॥

कं बलियुर दंडिचुट दु, बल जनरक्षणमु धर्मपद्धति यगुटन्
गलुषात्मुल नपराधमु, कॊलदिनि दंडिपुचुंडु गॊनकॊनि येनुन् ॥154॥

व. अनि दग्धशीर्षुंडैन दक्षुंडजमुखुंडगु। भगुंडुगु बर्हिस्संबंध भागंबुलु गलिगि मित्रनामधेय चक्षस्सुनं बॊडगांचु। पूषुंडु पिष्ट भुक्कगुचु

उद्धार करके, दक्ष को पुनर्जीवित बनाओ। भग के नेत्रों को और भृगु के श्मश्रुओं को और पूष के दाँतों की कृपा करो (प्रदान कर दो)। भग्न अंगवाले देवों और ऋत्विकों के निकायों (समूहों) को स्वस्थ बनाओ। इस मख का अवशिष्ट (शेषभाग) जो यज्ञ की परिपूर्ति का हेतुभूत होनेवाला है, भवदीय भाग हो जाय! १५१

अध्याय—७

ब्रह्मा आदि से प्रार्थित होकर ईश्वर का दक्ष आदि को अनुगृहीत करना

[चं.] इस प्रकार चतुरानन के विनय से प्रार्थना करने पर, इंदुमौलि (शिव) ने तुरन्त परितुष्टि पाकर, मुस्कुराहट के रूप में कृपा के मुख पर व्यक्त होने पर, इस प्रकार कहा, हरि की माया से सदा पामर होनेवाले जन जो अपराध और दोष करते हैं, उन्हें मैं कभी मन में नहीं गिनता। १५२ [व.] ऐसा होने पर भी, १५३ [कं.] बलवानों को दंड देना, दुर्बल जनों की रक्षा करना धर्म [की] पद्धति होने से कलुषात्माओं को [उनके] अपराध के अनुसार यत्न करके मैं दंड देता हूँ। १५४ [व.] इस प्रकार कहकर दग्धशीर्ष होनेवाला दक्ष अजमुखवाला होगा, भग बर्हिसंबंध भाग पाकर मित्रनामधेय से चक्षुस् में दिखाई पड़ेगा, पूष पिष्टभुक् होगा [यजमान के दाँतों से भक्षण करेगा] देवता [यज्ञावशिष्ट को मुझे देने से] सर्व

यजमान दंतंबुलन्ने भक्षिंचु। देवतलु यज्ञावशिष्टंबु नाकोंसंगुटं जेसि सर्वावय परिपूर्णुले वर्तितुरु। खंडितांगुलैन ऋत्विगादि जनंबु लश्विनी देवतल बाहुवुल चेतनु, बूषुनि हस्तंबुल चेतनु लब्ध बाहुहस्तुलै जीवितुरु। भृगुवु बस्त श्मश्रुवुलु गलिगि वर्तिचुननि शिवुंडानतिच्चिन समस्त भूतंबुलु संतुष्टांतरंगंबुलै, तंड्रि! लेस्सयॅ ननि साधुवादंबुल नभिनंदिचिरि। अंत ना शंभुनि यामंत्रणंबु वडसि शुनासीर प्रमुखुलगु देवतलु ऋषुलतोडंगूडि रा नजुंडुनु रुद्रुनिबुरस्करिंचुकोनि दक्षाध्वर वाटंबुनकुं जनॅ! अंत ॥155॥

कं. शर्वुनि योगक्रममुन, सर्वावयवमुलु गलिगि सन्मुनि ऋत्वि-
गीर्वाण मुख्यु लॉप्पिरि, पूर्वतनु श्रील नार्यभूषण! यंतन् ॥ 156 ॥

कं. विनु दक्षु सवन स्तवमु
खुनि जेसिन निद्र मेलुकोनि लेचिन पो-
लिकनि निलिचॅ दक्षुडभवुडु
गनुगॉनु चुंडंग नात्मगौतुक मॉप्पन् ॥ 157 ॥

व. इट्लु लेचि निलिचि मुंदरन नुन्न शिवुनि गनुंगॉनिन मात्रन शरत्कालंबुन नकल्मषंबैन सरस्सुनुं बोलि पूर्व रुद्रविद्वेष जनितंबुलयिन कल्मषंबुलं बासि निर्मलुंडै यभवुनि नुतियिपं दॉडंगि, मृति बॉंदिन सतीतनयं दलंचि,

---

अवयवों से पूर्ण होकर रहेंगे। खंडित अंगवाले ऋत्विक् आदि जन अश्विनी देवताओं के बाहुओं से, पूप के हस्तों से लब्ध-बाहु [तथा]-हस्त वाले बन जीवित रहेंगे। भृगु बस्त (बकरे के)-श्मश्रुवाला बनकर जीवित रहेगा; इस प्रकार शिव के आज्ञा देने पर, समस्त भूतों ने सतुष्ट अंतरंग वाले बनकर यों कहकर कि 'पिता, ठीक हुआ' ऐसा साधुवादों से अभिनंदन किया। तब उस शंभु से आमंत्रण [पुनरागमन के लिए] पाकर सुनासीर प्रमुख (आदि) देवताओं के, ऋषियों के साथ आने पर अज (ब्रह्मा) रुद्र को पुरस्करित (आगे) करके, दक्ष के अध्वर के प्रदेश की ओर गया। तब, १५५ [कं.] हे आर्य भूषण! शर्व (शिव) के नियोग के क्रम से (अनुसार) सत् मुनि, ऋत्विक् और गीर्वाण-मुख्य (देवता आदि) सर्व अवयवों को पाकर पूर्व (पहले की) तनुओं (शरीरों) की श्री (शोभा) से उस समय विलसित हुए। १५६ [कं.] सुनो, तब दक्ष को सवनमेष मुख वाला बनाने पर, अभव के देखते समय, दक्ष आत्मा में उत्सुकता बढ़ने पर ऐसा उठा, मानो निद्रा से जाग पड़ा हो। १५७ [व.] इस प्रकार उठकर, खड़े होकर समक्ष स्थित शिव को देखने मात्र से, शरत्काल में अकल्मष बने सरोवर के समान, पूर्व में रुद्र [के प्रति] विद्वेप [से] जनित कल्मषों को छोड़कर, निर्मल बनकर, अभव की स्तुति करने लगकर, मृत सती [नामक] तनया का स्मरण करके, अनुराग [और] उत्कंठा के वाष्पों

यनुरागोत्कंठ बाष्प पूरित लोचनुंडु, गद्गदकंठुंडुनै पलुक जालक यॆट्टकेलकु दुःखंबुल संस्तंभिचि्कॊनि प्रेमातिरेक विह्वलुंडगुचु सर्वेश्वरुंडगु हरुन किट्लनियॆ ॥ 158 ॥

कं. विनु नीकपराधुडनगु, ननु दंडिचुटदि दंडनमु गादु मदिन्
ननु रक्षिचुटगा मन, मुन दलतुनु देव ! यभव ! पुरहर ! रुद्रा ! ॥159॥

सी. अनघात्म ! नीवुनु नब्जनाभुंडुनु, परिकिंप ब्राह्मणाभासुलैन
वारल यॆडल नॆव्वलनु नुपेक्षिपरट दृढ व्रतचर्युलैन वारि
यॆड नीकुपेक्ष यॆक्कडिदि ? सर्गादिनि नाम्नाय संप्रदाय प्रवर्त
नमु नॆरिंगिचुट कमर विद्या तपोव्रत परायणुलैन ब्राह्मणुलनु

ते. वरुस बुट्टिचितिवि गान वारि नॆपुडु
गेल दंडंबु बूनि गोपालकुंडु
वलसि गोवुल रक्षिचु पगिदि नीवु
नरसि रक्षिपुचुंदु गदय्य ! रुद्र ! ॥ 160 ॥

सी. तलपोय नविदित तत्त्व विज्ञानुंडनैन नाचेत सभांतरमुन
नति दुरुक्तांबक क्षतुडय्यु नस्मत्कृतापराधमु हृदयंबु नंदु
दलपक त्र्यक्ष ! निंदा दोषमुन नधोगति बॊंदु चुन्न दुष्कर्मु नन्नु
गरुण गाचिन नीकु गडगि प्रत्युपकार मॆरिंगि काविप नेनॆंतवाड ?

[से] पूरित लोचनवाला [और] गद्गदकंठ वाला बनकर बोल न सक कर, अन्त में दुःख को संस्तंभित (रोक) करके, प्रेम के अतिरेक [अधिक] से विह्वल होते हुए, सर्वेश्वर हर से इस प्रकार कहा। १५८ [कं.] हे देव ! अभव ! पुरहर ! रुद्र ! सुनो, तुम्हारे प्रति अपराध करनेवाले मुझे दंड देना, दंड नहीं है; अपने मन में समझता हूँ कि वह मेरी रक्षा करना है। १५९ [सी.] हे अनघ-आत्मा वाले ! कहते हैं कि विचार करने पर तुम और अब्जनाभ ब्राह्मणों के आभासों के प्रति किसी भी तरह उपेक्षा नहीं करते; जो दृढव्रती हैं, उनके आचरण के प्रति तुमको उपेक्षा कहाँ है ? सर्ग (सृष्टि) के आदि में आम्नाय (वेद) संप्रदायों का प्रवर्तन (आचरण) समझाने के लिए अमर-विद्या [तथा] तपोव्रतपरायण ब्रह्मा को तुमने क्रम से पैदा किया; [ते.] इसलिए सदा हाथ में दण्ड (लट्ठ) लेकर गोपालक दृढ़ता से जिस प्रकार गायों की रक्षा करता है, वैसे ही हे रुद्र ! तुम ध्यान से उनकी रक्षा करते हो न ! १६०, [सी.] सोचने पर अविदित-तत्त्व-विज्ञानी होनेवाले मुझसे सभांतर (सभा में) अति दुरुक्ति (गालियाँ) [रूपी] अंबकों (बाणों) से क्षत (घायल) होकर भी मत्कृत (मुझसे किये गये) अपराध को हृदय में न सोचकर, हे त्र्यक्ष (त्रिनेत्र) ! निंदा [करने के] दोष से अधोगति को पानेवाले मुझ

ते. नुत चरित्र ! भवत्परानुग्रहानु
रूप कार्यंबु चेत निरूढमैन
तुष्टि नी चित्तमंदु नोंदुदुवु गाक
क्षुद्रसंहार ! करुणासमुद्र ! रुद्र ! ॥ 161 ॥

व. अनि यिट्लु रुद्रक्षमापणंबु गाविंचि, पद्मसंभवुनि चेत ननुज्ञातुंडै दक्षुंडुपाध्यायर्त्विग्गण समेतुंडगुचु क्रतु कर्मंबु निर्वर्तिचु समयंबुन ब्राह्मण जनंबुलु यज्ञंबुलु निर्विघ्नंबुले सागुटकु प्रमथादि वीर संसर्ग कृत दोष निवृत्त्यर्थंबुगा विष्णु देवताकंबुनु, त्रिकपाल पुरोडाश द्रव्यकंबुनैन कर्मंबु गाविप नुपात्त हविष्युंडगु भृगुवु तोडं गूडि निर्मलांतः करणुंडगुचु दक्षुंडु द्रव्य त्यागंबु गाविप प्रसन्नुंडै सर्वेश्वरुंडु ॥ 162 ॥

दक्षाध्वरंबुनकु वच्चिन नारायणुनि दक्षादुलु स्तुतिचुट

सी. मानित श्यामायमान शरीर दीधितुलु नल् दिक्कुल दीटकोनग
गांचन मेखला कांतुल तोड गौशेय चेल द्युतुल् चेलिमि सेय
लक्ष्मी समायुक्त ललित वक्षंबुन वैजयंती प्रभल् वन्ने जूप
हाटक रत्न किरीट कोटि प्रभल् बालार्क रुचुलतो मेलमाड

दुष्कर्म [करनेवाले] की करुणा से रक्षा करनेवाले तुम्हें प्रयत्न करके प्रत्युपकार करने के लिए मैं कितना हूँ (मेरी बिसात ही क्या है) ? [ते.] हे नुत (प्रशसित) चरित्रवाले ! क्षुद्रों का संहार करनेवाले ! करुणासमुद्र ! रुद्र ! भवत् (तुम्हारे) परानुग्रह के अनुरूप कार्य से निरूढ तुष्टि को अपने चित्त में प्राप्त करो। १६१ [व.] यों कहकर रुद्र से क्षमा माँगकर [और] पद्मसंभव से अनुज्ञात होकर, उपाध्याय [और] ऋत्विक् गण समेत होकर, दक्ष के क्रतु कर्म का निर्वहण करते समय ब्राह्मण जनों के यज्ञ को निर्विघ्न संपन्न करने के लिए प्रमथ आदि वीरों के संसर्गों [से] कृत दोष [की] निवृत्ति अर्थ (के लिए) विष्णु देवताक [तथा] त्रिकपाल-पुरोडाश द्रव्यक होनेवाला कर्म करने पर उपात्त (प्राप्त) हविष्य वाले भृगु के साथ निर्मल अन्तःकरण वाला होते हुए दक्ष के द्रव्य त्याग करने पर प्रसन्न होकर सर्वेश्वर, १६२

दक्ष के अध्वर में आये हुए नारायण की दक्ष आदि का स्तुति करना

[सी.] मानित (पूजित) श्यामायमान शरीर की दीधितियों (कान्तियों) के चारों ओर प्रकाशमान होने पर, कांचन मेखला की कांतियों से कौशेय चेल (वस्त्र) की द्युतियों के मित्रता करने पर, लक्ष्मी [से] समायुक्त ललित वक्ष पर वैजयंती की प्रभाओं के कांतिमान होने पर, हाटक

ते. ललित नीलाभ्र रुचि गुंतलमुलु दनर
प्रविमलात्मीय देहज प्रभ सरोज
भव भवामर मुख्युल प्रभलु माप
नखिल लोकैक गुरुडु नारायणुंडु ॥ 163 ॥

चं. सललित शंख चक्र जलजात गदा शर चाप खड्ग नि-
र्मल रुचुलन् सुवर्ण रुचिमन्मणि कंकण मुद्रिका प्रभा
वळुलनु देजरिल्लु भुजवर्ग मनर्गळ कांति युक्तमै
विलसित कर्णिकार पृथ्वी वीरुहमुन् बुरणिप विट्टुगन् ॥ 164 ॥

कं. सरसोदार समंचित, दरहास विलोकनमुल दग लोकमुलन्
बारितोषमु नॊंदिपुचु, बरमोत्सवमॊप्प विश्वबंधुंडगुचुन् ॥ 165 ॥

चं. मरियुनु राजहंसरुचिमद्भ्रमणीकृत तालवृंत चा-
मरमुलु वीवगा दिविज मानिनुलच्छ सुधामरीचि वि-
स्फुरित सितातपत्र रुचि पुंजमु दिक्कुल बिक्कटिल्लगा
गरिवरदुंडु वच्चॆ सुभग स्तुति पर्ण सुपर्णयानुडै ॥ 166 ॥

चं. घनरुचि नट्लु वच्चिन विकार विदूरु मुकुंदु जूचि बो
रन नरविंदनंदन पुरंदर चंद्रकळाधरामृता

(सुवर्ण) रत्न किरीट की कोटि (किनारों) की प्रभाओं के बालअर्क की रुचियों से स्नेह करने पर, [ते.] ललित नील अभ्रों (बादलों) [की] रुचि (कांति) से कुंतलों (केशों) के प्रकाशमान होने पर प्रविमल आत्मीय देहज प्रभा से सरोजभव (ब्रह्मा), भव (शिव) [और] अमर मुख्यों की प्रभाओं को क्षीण करते हुए अखिल लोकों का एकैक गुरु नारायण, १६३ [चं.] सललित शंख, चक्र, जलजात (कमल), गदा, शर, चाप (धनुष), खड्ग, निर्मल-रुचि (-कांति)यों से सुवर्ण रुचिमत् (कांतियुक्त) मणि, कंकण, मुद्रिका की प्रभावलियों (कांति-समूह) से प्रकाशमान होने पर भुज-वर्ग (चारों भुजाएं) अनर्गल (निरन्तर, अबाध) कांतियुक्त होकर विलसित कर्णिकार-पृथिवीरुह (-वृक्ष) की तरह अतिशय होकर। १६४ [कं.] सरस, उदार, समंचित (पूजनीय), दरहास विलोकनों से अच्छी तरह परितुष्ट कराते हुए, परम उत्सव होने पर विश्वबंधु होते हुए, १६५ [चं.] और राजहंस की तरह रुचिमत् (कांतिमान) और भ्रमणीकृत (झुलाए जानेवाले) तालवृंत [तथा] चामरों के दिविज-मानिनियों के डुलाने पर, ठीक सुधा-मरीचियों का (चन्द्रिका की किरणों का) विस्फुरण करानेवाले, सित (श्वेत) आतपत्रों की रुचि के पुंज के दिशाओं में अधिक व्याप्त होने पर, सुभग और स्तुति-पर्ण सुपर्ण (गरुत्मान)-यान (वाहन) पर करिवरद (विष्णु) आया। १६६ [चं.] घन (बड़ी) रुचि (कांति)

शंनमुखुलर्थि लेचि यतिसंभ्रम मॊप्प नमो नमो दया
वन निधये, यटंचु ननिवारण म्रॊक्किकरि भक्ति युक्तुलै ॥ 167 ॥

व. अट्लु कृत प्रणामुलैन यनंतरंबु ॥ 168 ॥

उ. आ नलिनायताक्षुनि यनंत पराक्रम दुर्निरीक्ष्य ते-
जो निहत स्वदीप्तुलगुचुन् नुतिसेय नशक्तुलै भय
ग्लानि वहिंचि बाष्पमुलु ग्रम्मग गद्गदकंठुलै तनुल्
स्रानु पडंग नव्विभुनि मन्नन गैकॊनि यॆट्टकेलकुन् ॥ 169 ॥

व. निटलतट घटित करपुटुलै यम्महात्मुनि यपारमहिमं बॆरिगि नुतियिंप शक्तुलु गाकयुंडियु गृतानुग्रह निग्रहुंडगुटं जेसि तमतम मतुलकु गोचरिंचिन कॊलंदि नुतियिंपं दॊडंगिरि । अंदु गृहीतंबुलगु पूजाद्युपचारंबुलु गलिगि ब्रह्मादुलकु जनकुंडुनु, सुनंद नंदादि परम भागवत जन सेवितुंडुनु, यज्ञेश्वरुंडुनु नगु भगवंतुनि शरण्युनिगा दलंचि दक्षुंडिट्लनियॆ । देवा ! नीवु स्वस्वरूपमंदुन्न यप्पुडुपतरंबुलु गानि रागाद्यखिल बुद्ध्यवस्थलचे विमुक्तुंडवुनु, नद्वितीयुंडवुनु, भयरहितुंडवुनुनै, मायं दिरस्करिंचि, मरियु ना माय ननुसरिंचुचु लीला मानुष रूपंबुल नंगी-

---

से उस प्रकार आये हुए [और] विकारों से विदूर मुकुंद को देखकर शीघ्र अरविन्दनन्दन (ब्रह्मा), पुरंदर, चंद्रकलाधर (शिव), अमृताशन (देवता-गण)-मुखों (-आदि) ने इच्छा के साथ उठकर अतिसंभ्रम से "नमो नमो दयावननिधये" कहते हुए अनिवारित भक्तियुक्त होकर नमस्कार किया । १६७ [व.] उस प्रकार प्रणाम करने के बाद, १६८ [उ.] उस नलिनायताक्ष (विष्णु) के अनंत पराक्रम [से] दुर्निरीक्ष्य तेजस् से निहत स्वतेजस् वाले होते हुए, नुति (स्तुति) करने में अशक्त होकर, भय [तथा] ग्लानि पाकर, बाष्पों (आँसुओं) के भरने पर, गद्गद कंठवाले बनकर, तनु (शरीर) के स्तंभित हो जाने पर, उस विभु (विष्णु) के समादर को पाकर अंत में १६९ [व.] निटलतट (माथे पर) घटित-करपुट [वाले] बनकर, उस महात्मा की अपार महिमा को जानकर, नुति (स्तुति) करने में अशक्य (असमर्थ) रहकर, जैसे-जैसे अपनी बुद्धि को दिखाई पड़ा, उस प्रकार कृत अनुग्रह-विग्रह वाले भगवान की प्रशंसा करने लगे । उनमें गृहीत होनेवाले पूजा आदि उपचार से युक्त होते हुए ब्रह्मा आदि का जनक, सुनंद, नंद आदि परम भागवत जन से सेवित, यज्ञेश्वर होनेवाले भगवान को शरण्य मानकर दक्ष ने इस प्रकार कहा, "हे देव ! जब तुम स्वस्वरूप (अपने सहज रूप में) रहते हो, निवृत्त न होनेवाले राग (अनुराग) आदि अखिल बुद्धि [मे] अवस्था (दशा) में रहनेवाले, चिद्रूपी (ज्ञानी) [और] भय-रहित होकर माया का तिरस्कार करके स्वतंत्र होने पर भी नटन के

करिंचि, स्वतंत्रुंडवय्युनु माया परतंत्रुंडवै रागादियुक्तुंबलें राम कृष्णाद्यवतारंबुल गानंबड्डु चुंदुवु कावुन नी लोकंबुलकु नीव यीश्वरुंड वनियु, नितरुलैन ब्रह्मरुद्रादुलु भवन्माया विभूतुलगुट जेसि लोकंबुलकु नीश्वरुलु गारनियु भेददृष्टि गल नन्नु रक्षिपुमु। ई विश्वकारणुलैन फाललोचनुंडुनु, ब्रह्मयु, दिक्पालुरुनु, सकल चराचर जंतुवुलुनु नीव। भवद्व्यतिरिक्तंबु जगंबुन लेदनि विन्नविचिन ददनंतरंब ऋत्विग्जनंबु लिट्लनिरि ॥ 170 ॥

सी. वामदेवुनि शापवशमुन जेसि कर्मानुवर्तनुल मेमैन कतन
बलसि वेद प्रतिपाद्य धर्मोपलक्ष्यंबैन यट्टि मखंबुनंदु
दीपिप निंद्रादि देवता कलित रूप व्याजमुनु बोंदि परगु निन्नु
यज्ञस्वरूपुंडवनि कानि केवल निष्किचनुंडवु .निर्मलुडवु

ते. नरय ननवद्य मूर्तिवि यैन नीवु
ललित तत्त्व स्वरूपंबु देलिय जाल-
मय्य ! माधव ! गोविंद ! हरि ! मुकुंद !
चिन्मयाकार ! नित्य लक्ष्मीविहार ! ॥ 171 ॥

व. सदस्युलिट्लनिरि ॥ 172 ॥

लिए उस माया के अनुसार लीला मानुप रूपों को अंगीकृत करके, माया-परतंत्र बनकर, राग (अनुराग) आदि से युक्त की तरह राम और कृष्ण आदि अवतारों में दिखाई पड़ते हो। इसलिए इन लोकों के लिए तुम ही ईश्वर हो, इतर (दूसरे) ब्रह्मा [और] रुद्र आदि भवन्माया (तुम्हारी माया) की विभूतियाँ (संपदा) होने के कारण लोकों के लिए ईश्वर नही है —ऐसा समझकर भेददृष्टि रखनेवाले मेरी रक्षा करो। इस विश्व के कारण होनेवाले फाल-लोचन (शिव), ब्रह्मा, दिक्पाल [और] सकल चराचर जन्तु-संतानें, तुम ही हो। ऐसा लेश (कुछ) भी नहीं है जो तुम नही हो। इस प्रकार स्तोत्र करने के उपरान्त ऋत्विक् जन यों बोले। १७० [सी.] [हे] माधव ! गोविन्द ! हरे ! मुकुंद ! चिन्मयाकार [और] लक्ष्मी-विहार ! वामदेव के शाप के वश (कारण) हमारे कर्म के अनुवर्ती होने के कारण, वेदों में प्रतिपादित धर्म [का] उपलक्ष्य होने वाले मख (यज्ञ) में प्रकाशमान हो, इन्द्र आदि देवताओं के कलित रूप [के] व्याज (बहाने) से प्रवर्तमान तुम्हें यज्ञस्वरूप मानते हैं, लेकिन, केवल निष्किचन, नित्य निर्मल —यों समझने पर, [ते.] अनिद्यमूर्ति होने वाले तुम्हारे ललित तत्त्वस्वरूप को समझ नहीं सकते। १७१ [व.] सदस्य यों बोले। १७२ [सी.] [हे] भक्त प्रसन्न ! देव ! शोक [रूपी] दावाग्नि [की] शिखा (ज्वाला) से आकुलित पृथु-क्लेश

सी. शोक दावाग्नि शिखाकुलितंबु पृथु क्लेश घनदुर्ग दुर्गमंबु
दंडधर क्रूरकुंडलि श्लिष्टंबु पापकर्म व्याघ्र परिवृतंबु
गुरु सुखदुःख काकोल पूरित गर्तमगुचु ननाश्रयमैन यट्टि
संसारमार्ग संचारुलै मृगतृष्णिकल बोलु विषयसंघमु नहम्म-

ते. मेति हेतुक देह निकेतनमुलु
ननु महाभारवहुलैन यट्टि मूढ
जनमु लेनाट मी पदाब्जमुलु गान
जालु वारलु ? भक्त प्रसन्न ! देव ! ॥ 173 ॥

व. रुद्रुंडिट्लनियें ॥ 174 ॥

चं. वरद ! निरीह योगिजन वर्ग सुपूजित ! नीपदाब्जमुल्
निरतमु नंतरंगमुन निलिप समग्र भवत् परिग्रह
स्फुरण दनर्चु नन्नु नति मूढुलु संततमु न्नमंगळा-
चरणुडटंचु बल्क नदि सम्मति ने गणियिप नच्युता ! ॥ 175 ॥

व. भृगुंडिट्लनियें ॥ 176 ॥

म. अरविंदोदर ! तावकीन घनमाया मोहित स्वांतुलै
परमंबैन भवन्महामहिममुन् बाटिंचि कानंग नो
परु ब्रह्मादि शरीरु लज्ञुलयि यो पद्माक्ष ! भक्तार्ति सं-
हरणालोकन ! नन्नु गावदगु नित्यानंदसंधायिवै ॥ 177 ॥

[का] घन (बड़ा) दुर्ग जगलों के कारण दुर्गम तथा दंडधर [के जैसे] क्रूर कुंडलि (सर्प) से श्लिप्ट तथा पापकर्म (रूपी) व्याघ्रों से परिवृत और गुरु (बड़े) सुख [और] दुःख [रूपी] काकोल (विष) पूरित गर्त (गढ़ा) वाला होने से अनाश्रय होनेवाले ससार [के] मार्ग के संचारी (यात्री) होकर, मृगतृष्णाओं के समान विषय [वासनाओं के] संघ (समूह) 'अहम्,' 'मम,' [ते.] इति (अहंकार के) हेतुक-देह (रूपी) निकेतन बनकर महाभार वहन करनेवाले मूढ़ जन किस दिन आपके पदाब्जों को देख सकते है ? १७३ [व.] रुद्र ने इस प्रकार कहा। १७४ [चं.] हे अच्युत ! वरद ! निरीह-योगिजन-वर्ग (समूह) से पूजित ! तुम्हारे पदाब्जो को निरत (सदा) अंतरंग में स्थापित कर, भवत् (तुम्हारे) समग्र (पूरे) परिग्रह के स्फुरण [से] अतिशय होनेवाले मुझे अतिमूढ जन संतत (सदा) अमंगलाचरणवाला कहकर पुकारने पर मैं सन्मति से उसे नहीं मानता। १७५ [व.] भृगु ने इस प्रकार कहा। १७६ [म.] हे अरविंदोदर ! तावकीन घन माया [से] मोहित स्वांत (मनवाले) होकर, परम होनेवाली भवत्महामहिमा को मान करके, ब्रह्मा आदि शरीरी अज्ञ बनकर, देख नहीं सकते। हे पद्माक्ष ! भक्तों की आर्ति के संहरण को

व. ब्रह्म यिट्लनियॆ ॥ 178 ॥

सी. समधिक ज्ञानार्थ सत्त्वादि गुणमुल काश्रयभूत मैनट्टि पुरुषु
डग्र पदार्थ भेद ग्राहकमुलैन चक्षुरिंद्रियमुल सरवि जूड
गलडॆ ? नीरूपंबु गडगि माया मयंबगु नसद्व्यतिरिक्तमगुचु मरियु
निरुपमाकारंबु नीकु विलक्षणमै युंडु ननुचु नेनात्म वलतु

ते. निर्विकार ! निरंजन ! निष्कळंक !
निरतिशय ! निष्क्रियारंभ ! निर्मलात्म !
विश्वसंवोध्य ! निरवद्य ! वेदवेद्य !
प्रविमलानंद ! संसारभय विदूर ! ॥ 179 ॥

व. इंद्रुंडिट्लनियॆ ॥ 180 ॥

म. दिति संतान विनाशसाधन समुद्दीप्ताष्टबाहा सम-
न्वितमै योगि मनोनुराग करमै वॆलगॊंदु नी देह मा
यतमैनट्टि प्रपंचमु वलॆनु मिथ्याभूतमु गामि शा-
श्वतमु गा मदिलो दलंतु हरि ! देवा ! दैव चूडामणी ! ॥ 181 ॥

व. ऋत्विक्पत्नु लिट्लनिरि ॥ 182 ॥

चं. कडगि भवत्पदार्चनकुगा निटु दक्षिनि चे रचिपगा-
बडि शितिकंठरोषमुनु भस्मनु नॊंदि परेतभूमियै

देखनेवाले ! नित्यानंदसंधायी (देनेवाला) बनकर मेरी रक्षा कर सकते हो। १७७ [व.] ब्रह्मा यों बोला। १७८ [सी.] समधिक ज्ञान, अर्थ [और] सत्त्व आदि गुणों का आश्रयभूत होनेवाला पुरुष अग्र पदार्थ के भेद के ग्राहक होनेवाले चक्षुरिंद्रियों के क्रम को देख सकता है ? (नहीं) तुम्हारा रूप, प्रयत्न करके, मायामय होते हुए असत् [के] व्यतिरिक्त होते हुए, निरुपम आकार तुम्हारे लिए विलक्षण होकर रहता है, ऐसा मैं अपने मन में सोचता हूँ। [ते.] हे निर्विकार ! हे निरंजन ! हे निष्कलंक ! हे निरतिशय ! हे निष्क्रियारंभ ! हे निर्मलात्म ! हे विश्वसंभोद्य ! हे निरवद्य ! हे वेदवेद्य ! हे प्रविमलानंद ! हे संसार का भय विदूर करनेवाले ! १७९ [व.] इंद्र ने यों कहा। १८० [म.] हे हरे ! हे देव! हे दैव चूड़ामणि ! दिति की संतान के विनाश के साधन [होनेवाले] समुद्दीप्त अष्ट बाहुओं से समन्वित तथा योगियों के मनों के लिए अनुराग-कर होते हुए प्रकाशमान होनेवाली तुम्हारी देह आयत (दीर्घ) होनेवाले प्रपंच (संसार) की तरह मिथ्याभूत न होकर, शाश्वत रूप वाली है, ऐसा मैं [अपने] मन में [उसका] स्मरण करता हूँ। १८१ [व.] ऋत्विकों की पत्नियाँ यों बोलीं। १८२ [चं.] प्रयत्न करके, भवत् पदों की अर्चना करने के लिए

चेंडि कड़ु शांत मेधमुन जॉन्नरि युम्न मखंबु जूड़ु मे
पंड जलजाभनेत्रमुल बावनमै विलसिल्लु नच्युता ! ॥ 183 ॥

व. ऋषु लिट्लनिरि ॥ 184 ॥

म. अनघा ! माधव ! नीवु मावलॅनॅ कर्मारंभि वै युंडियुन्
विनु तत्कर्न फलंबु बोंद वितरुल् विश्वंबुनन् भूति कै
यन यंबुन् भजियिंचु निंदिर गरंबर्थिन् निनुं जेर गै-
कॉन वेमंदुमु ? नी चरित्रमुनकुन् गोविंद ! पद्मोदरा ! ॥ 185 ॥

व. सिद्धु लिट्लनिरि ॥ 186 ॥

चं. हरि ! भवदुःख भीषण दवानल दग्ध तृषार्त मन्मनो
द्विरदमु शोभितंबुनु बवित्रमुनैन भवत्कथा सुधा
सरि दवगाहनंबुननु संसृति तापमु बासि क्रम्मरन्
दिरुगदु ब्रह्ममुं गनिन धीरुनिभंगि बयोरुहोदरा ! ॥ 187 ॥

व. यजमानि यगु प्रसूति यिट्लनियॅ ॥ 188 ॥

चं. कर चरणादिकांगमुलु गलिगयु मस्तमुलेनि मॉडॅमुन्
बरुवडि नॉप्पकुन्न गति बंकजलोचन ! नीवु लेनि य

इस प्रकार दक्ष से प्रारम्भ किया जाकर, शितिकंठ (शिव) के रोष से भस्म (नाश) होकर, प्रेतभूमि बनकर, दिखाई पड़नेवाले शांतमेध (यज्ञ) में सौंदर्य को खोए हुए मख (यज्ञ) को अच्छी तरह जलज (कमल) की आभा (कांति) से युक्त नेत्रों से देखो तो हे अच्युत ! यह पावन (पवित्र) होकर विलसित होगा। १८३ [व.] ऋषियों ने इस प्रकार कहा। १८४ [म.] हे अनघ ! माधव ! गोविंद ! पद्मोदर ! तुम भी हमारी ही तरह कर्मों का आरंभ करनेवाले होकर भी, सुनो, तत् (उन) कर्मों के फल को नहीं पाते हो। इतर (दूसरे लोग) विश्व में भूति (संपदा) के लिए सदा जिस इंदिरा (लक्ष्मी) को भजते हैं, वह (इंदिरा) बड़ी इच्छा से तुम्हें प्राप्त करने पर भी तुम उसे ग्रहण नहीं करते। तुम्हारे चरित्र के बारे में क्या कहें ? १८५ [व.] सिद्धों ने इस प्रकार कहा। १८६ [चं.] हे हरि ! हे पयोरुहोदर (विष्णु) ! भव (संसार) के दुःख [रूपी] भीषण दवानल [से] दग्ध तथा तृषा (प्यास) से आर्तमन [रूपी] द्विरद (हाथी) शोभायमान [और] पवित्र होनेवाले भवत्कथा [रूपी] सुधा की सरित् (नदी) [में] अवगाहन (स्नान) करने से संस्कृति [रूपी] ताप [से] मुक्त होकर, ब्रह्म को पानेवाले धीर की तरह [इस संसार में वापिस] नहीं आता। १८७ [व.] यजमान होनेवाले प्रसूति ने इस प्रकार कहा। १८८ [चं.] कर, चरण आदि अंग होते हुए भी मस्तक-हीन धड़ के ठीक न लगने की तरह, हे पंकजलोचन ! यह अध्वर (यज्ञ) तुम्हारे

ध्वरमु प्रयाजुलं गलिगि तद्दयु नॊप्पकयुन्न दीयॆडन्
हरि ! यिटु नीवु राक शुभ मय्यॆ रमाधिप ! मम्मु गाववे ! ॥ 189 ॥

व. लोकपालकु लिट्लनिरि ॥ 190 ॥

सी. देवादिदेव ! यी दृश्यरूपंबगु सुमहित विश्वंबु जूचु प्रत्य
गात्म भूतुंडवै नट्टि नीवु नसत्प्रकाश रूपंबुलै कलुगु माम
कॆंद्रियंबुल चेत नीश्वर ! नीमाय नॊंदिचि पंचभूतोपलक्षि-
तंबगु देहि विधंबुन गानंग बड्डुवु गानि येर्पडिन शुद्ध

ते. सत्त्वगुणयुक्तमैन भास्वत्स्वरूप
धरुडवै कानबडवुगा ? परमपुरुष !
यव्ययानंद ! गोविंद ! यट्लु गाक
यॆनय मा जीवनमुलिक नेमिकलवु ? ॥ 191 ॥

व. योगेश्वरुलिट्लनिरि ॥ 192 ॥

सी. विश्वात्म ! नीयंदु वेऱुगा जीवुल गन ङॊव्वडट्टु वानि कंटॆ प्रियुडु
नीकु लेडैनतु निखिल विश्वोद्भव स्थिति विलयंबुल कतन दैव-
संगति निर्भिन्न सत्त्वादि गुण विशिष्टात्मीय मायचे नज भवादि
बिविध भेदमु लॊंदुदुवु स्वस्वरूपंबु नंदुंडुदुवु विनिहत विमोहु-

न रहने पर अच्छे ऋत्विकों के रहने पर भी इस समय अधिक शोभायमान नहीं है ! ओह ! हरे ! इधर तुम्हारा आना शुभ हुआ । हे रमाधिप ! हमारी रक्षा करो । १८९ [व.] लोकपालको ने यों कहा । १९० [सी.] हे देवादिदेव ! इस दृश्यभूत होनेवाले सुमहित विश्व को देखने वाले प्रत्यक् आतमभूत होनेवाले तुम असत् प्रकाश रूप बनकर रहनेवाले मामक (हमारी) इन्द्रियों से, हे ईश्वर ! अपनी माया प्राप्त कराकर, पंच भूतों से उपलक्षित होनेवाले देही (मानव) की तरह दिखाई पड़ते हो; [ते.] लेकिन शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त भास्वत् (प्रकाशमान) स्वरूप को धारण कर दिखाई नही पड़ते हो । हे परमपुरुष ! अव्ययानंद वाले ! गोविन्द ! ऐसा न हो तो हमारे जीवनों का क्या अस्तित्व है ? १९१ [व.] योगीश्वर यों बोले । १९२ [सी.] हे विश्वात्मा ! कहा जाता है कि तुममें पृथक् रूप से अन्य जीवों को जो नहीं देखता, उससे [बढ़कर] प्रिय होनेवाला तुम्हारे लिए कोई नहीं है; फिर भी निखिल विश्व के उद्भव, स्थिति [और] विलय (नाश) के कारण दैव-संगति (-सांगत्य) निर्भिन्न सत्त्व आदि गुणविशिष्ट [होनेवाली] आत्मीय (अपनी) माया से अज, भव आदि विविध भेदों को पाते हो; स्वस्वरूप में रहते हो; विनिहित-विमोही बनकर रहते हो । [ते.[हे कृपामय ! हे रमेश ! हे पुंडरीकाक्ष ! सतत भुवन की

ते. डगुचु नुंडुनु तग निन्ननन्यभक्ति
भृत्य भावंबु दाल्चि संप्रीति गोल्चु
मम्मु रक्षिपुमो कृपामय ! रमेश !
पुंडरीकाक्ष ! संतत भुवनरक्ष ! ॥ 193 ॥

व. शब्दब्रह्म यिट्लनियें ॥ 194 ॥

चं. हरि ! भवदीय तत्त्वमु समंचित भक्ति नेरुंग नेनु ना
सरसिज संभवादुलुनु जालमु सत्त्व गुणाश्रयुंडवुन्
बरुडवु निर्गुणुंडवुनु ब्रह्ममुनै तगु नीकु निप्पु डि-
दरमु चतुर्विधार्थ फलदायक ! श्रीकुकुंद मादरिपुमा ! ॥ 195 ॥

व. अग्निदेवुंडिट्लनियें ॥ 196 ॥

म. हवरक्षा चरणुंडवै नेगडु चुन्न य्यग्निहोत्रादि पं-
च विधंबुन् मरि मंत्र पचक सुसृष्टंबै तगं बोल्चु ना-
हव रूपंबगु नीकु श्रीकुकुंदनु नी याज्ञन् भुविन् हव्यमुन्
सवन व्रातमुलन् वहिंतु हरि ! युष्मत्तेजमुन् बूनुचुन् ॥ 197 ॥

व. देवतलिट्लनिरि ॥ 198 ॥

म. मुनु गल्पांतमु नंदु गुक्षि नखिलंबुन् दाचि येकाकिवै
जन लोकोपरि लोक वासुलुनु युष्मत्तत्त्व मार्गंबु चि-

रक्षा [करनेवाले] ! तुम्हें अनन्यभक्ति से भृत्यभाव का धारण करके संप्रीति से भजनेवाले हमारी रक्षा करो। १९३ [व.] शब्दब्रह्म ने इस प्रकार कहा। १९४ [चं.] हे हरि ! भवदीय तत्त्व को समंचित भक्ति [से] जानने के लिए मैं [और] सरसिज-संभव आदि असमर्थ हैं। [तुम] सत्त्वगुणाश्रयी हो, पर (ब्रह्म) हो, निर्गुण हो और ब्रह्म होकर रहनेवाले तुम्हें अब इतने [हम लोग] सिर नवाते हैं। हे चतुर्विध-अर्थ के फलदायक ! [हमारी] रक्षा करो। १९५ [व.] अग्निदेव ने इस प्रकार कहा। १९६ [म.] हे हरि! हव [यज्ञ] रक्षा-चरण(-कुशल) बनकर, तुम प्रवर्ध-मान होते हुए उस अग्निहोत्र आदि पंच विधि को और मंत्रपंचक सुपूज्य [और] ढंग से विलसित [होनेवाले] आहव रूप होनेवाले तुमको नमस्कार कर रहा हूँ; तुम्हारी आज्ञा से युष्मत्तेज (आपके तेज) को धारण करके भुवि पर हव्य [और] सवन-व्रातों (यज्ञों के समूहों) का वहन करता हूँ। १९७ [व.] देवता यों बोले। १९८ [म.] हे लक्ष्मीनाथ ! हे देवोत्तम ! पहले कल्पांत में [अपनी] कुक्षि (पेट) में अखिल (सृष्टि को) छिपाकर, एकाकी बनकर, जनलोक [और] उपरिलोकवासी भी युष्मत्-तत्त्व-मार्गों का चिन्तन करें, इसलिए पयोधि (समुद्र) में अहिराट् (साँपों

तनमुं जेय वयोधियंडु नहिराट् तल्पंबुनं दव्वळि-
चिन नी रूपमु नेड चूपितिवि लक्ष्मीनाथ ! देवोत्तमा ! ॥ 199 ॥

व. गंधर्वुलिट्लनिरि ॥ 200 ॥

म. हर पंकेजभवामरावुलु मरीच्यादि प्रजानाथु लो
यरविंदाक्ष ! रमाहृदीश ! भवदीयांशांश संभूतुलै
परगं दावक लीलयै नॅगडु नी ब्रह्मांडमुस्रट्टि यी-
श्वर ! नीकै मति भक्ति म्रोक्कॅदमु देवा ! देवचूडामणी ! ॥ 201 ॥

व. विद्याधरुलिट्लनिरि ॥ 202 ॥

सी. नलिनाक्ष ! विनु भवन्मायावशंबुन देहंबु दाल्चि तद्देहमंदु
नात्म नहम्ममेत्यभिमानमुनु वॊंदि पुत्र जाया गृह क्षेत्र बंधु
धन पशुमुख वस्तु ततुल संयोग वियोग दुःखंबुल नॊंदुचुंडु
धृति विहीनुडु नसद्विष याति लालसुडति दुष्टमतियुनै नट्टि वाडु

ते. दविलि भवदीय गुण सत्कथा विलोलु-
डय्यॆ नेनियु नात्म मोहंबु वलन
बासि वर्तिचु विज्ञान परत दगिलि
चिर दयाकार ! यिंदिरा चित्तचोर ! ॥ 203 ॥

के राजा) के तल्प (शय्या) पर लेटे हुए अपने रूप को आज दिखाया। १९९ [व.] गंधर्व यों बोले। २०० [म.] हे अरविन्दाक्ष ! हे रमाहृदीश ! हे देव ! हे ईश्वर ! हे देव चूड़ामणे ! हर (शिवजी), पंकेजभव (ब्रह्मा), अमर आदि मरीचि आदि प्रजानाथ, भवदीय अंश के अंश से संभूत होकर (जन्म लेकर) प्रवर्तमान हो रहते हैं, तावक (तुम्हारी) लीला बनकर यह ब्रह्माण्ड प्रवर्धमान हो रहता है। हम तुम्हें अतिभक्ति से प्रणाम करेंगे। २०१ [व.] विद्याधर इस प्रकार बोले। २०२ [सी.] हे नलिनाक्ष ! हे चिरदयाकार (दया के आकार) ! हे इंदिरा [के] चित्त [के] चोर (विष्णु) ! सुनो। धृति (धैर्य) विहीन [हो] भवन्माया के वश होकर, देह का धारण करके, उस देह मे आत्मा, अहम्, मम इति (इस प्रकार कहकर) अभिमान पाकर, पुत्र, जाया, गृह, क्षेत्र (खेत), बंधु, धन, पशु, मुख (आदि) वस्तु-तति (-समूहों) के सयोग [और] वियोग [के] दुःखों को देही पाता है। असत् [होनेवाले] विषयों के प्रति अतिलालस (लंपट) [और] अति दुष्टमति [वाला] आदमी लगन से [ते.] अगर भवदीय गुणों [और] सत्कथा-विलोल वन जाता है तो आत्म-मोह से विमुक्त होकर [और] विज्ञान-पर (-रत) होकर प्रवर्तमान होता है। २०३ [व.] ब्राह्मण जन यों बोले। हे देव ! यह क्रतु, हव्य, अग्नि, मंत्र, समिधाएँ, दर्भ, पात्र,

व. ब्राह्मण जनंबुलिट्लनिरि। देवा! यी क्रतुवुनु, हव्यंबुनु, नग्नियु, मंत्रबुलुनु, समिद्दर्भ पात्रंबुलुनु, सदस्युलुनु, ऋत्विक्कुलुनु, दंपतुलुनु, देवतलुनु, नग्निहोत्रंबुनु, स्वधयु, सोमंबुनु, नाज्यंबुनु, पशुवुनु नीव। नीवु दोल्लि वेदमय सूकराकारंबु धारियिचि, दंष्ट्रादंडंबुन वारणेंद्रंबु नलिनंबु धरियिचु चंदंबुन रसातलगतयैन भूमि नेत्तितिवि। अट्टि योगिजन स्तुत्युंडवुनु, यज्ञ क्रतु रूपुंडवुनैन नीवु परिभ्रष्ट कर्मुलमै याकांक्षिचु माकु प्रसन्नुंडवगुमु। भवदीय नाम कीर्तनंबुल सकल यज्ञ विघ्नंबुलु नाशंबु नोंदु। अट्टि नीकु नमस्करिंतुमु ॥ 204 ॥

कं. अनि तनु सकल जनंबुलु
विनुतिंचिन हरि भवुंडु विघ्नमु गावि-
चिन या दक्षुनि यज्ञमु
घनमुग जेल्लिंचे गोरत गाकुंडगन् ॥ 205 ॥

कं. सकलात्मुडु दा नगुटनु, सकल हविर्भोक्तयय्यु जलजाक्षुंडुनु
प्रकट स्वभागमुन न, य्यकलंकुडु दृप्ति बोंदि यनें दक्षुनितोन् ॥ 206 ॥

व. अनघा! एनु, ब्रह्मयु शिवुंडु नी जगंबुलकु गारण भूतुलमु। अंदु ने नीश्वरुंडनु, नुपद्रष्टनु, स्वयं प्रकाशकुंडनुनै गुणमयंबैन यात्मीयमायं ब्रवेशिंचि, जनन वृद्धि विलयंबुलकु हेतुभूतंबुलगु तत्तत् क्रियोचितंबुलैन ब्रह्मरुद्रादि नामधेयंबुल नोंदुचुंडुदु। अट्टि यद्वितीय ब्रह्म रूपकुंडनैन नायंदु नज

सदस्य, ऋत्विक्, दंपती, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोम, आज्य [और] पशु तुम ही हो। तुमने पूर्वकाल में वेदमय-सूकर का आकार धारण करके, दंष्ट्रा (दाँत) के अग्र [भाग पर] जैसे वारणेंद्र (गजराज) नलिन (कमल) को धारण करता है, रसातलगता भूमि को उठाया था। वैसे योगिजन [से] स्तुत्य [और] मख का रूप होनेवाले तुम परिभ्रष्ट कर्मवाले बने, कांक्षा (इच्छा) करनेवाले हम पर प्रसन्न हो जाओ। भवदीय नाम के संकीर्तनों से सकल यज्ञों के विघ्न नष्ट होते हैं। ऐसे तुमको नमस्कार करते हैं। २०४ [क.] इस प्रकार सकल जनों के विनुति करने पर हरि ने भव (शिव) से विघ्न किये गये उस दक्ष के यज्ञ को बिना किसी त्रुटि के अच्छी तरह पूरा करवाया। २०५ [कं.] स्वयं सकलात्मा होने के कारण, सकल हविस् का भोक्ता होकर भी, अकलंक (निष्कलंक) [होनेवाले] उस जलजाक्ष (विष्णु) ने प्रकट रूप से स्वभाग से तृप्त होकर दक्ष से [इस प्रकार] कहा। २०६ [व.] हे अनघ! मैं, ब्रह्मा [और] शिव इन जगों के कारणभूत हैं। उनमें मैं ईश्वर, द्रष्टा [और] स्वयं प्रकाश होकर गुणमयी होनेवाली आत्मीय माया में प्रवेश करके, जनन, वृद्धि, विलय (नाश) के हेतु (कारण) भूत होनेवाले तत्-तत् क्रियाओं के लिए

भवादुलनु भूतगणंबुलनु मूढुडगु वाडु वेरुगा जूचु। मनुजुंडु शरीरंबुनकु गरचरणादुलु वेरुगा दलंपनि चंदंबुन मद्भक्तुंडु नायंदु भूतजालंबुल भिन्नंबुगा दलंपडु। कावुन मा मुव्वुर नॆव्वंडु वेरुसेयकुंडु वाडु गृतार्थुंडनि यानतिच्चिन दक्षुंडु ॥ 207 ॥

कं. विनि विष्णुदेवताकं, बनगा द्रिकपाल कलितमगु ना मागं
बुन दग नव्विष्णुनि पद, वनजंबुल बूज चेसि वारनि भक्तिन् ॥ 208 ॥

व. मर्रियुनु ॥ 209 ॥

सी. अंग प्रधानक यागंबुलनु जेसि यमरुल रुद्रुनि नर्थि बूज
सेसि विशिष्टेष्ट शिष्टभागमुन नुदवसान कर्मंबु दविलि तीर्चि
तानु ऋत्विक्कुलु तग सोमपुल गूडि यवभृथ स्नानंबु लाचरिंचि
कडक नवाप्त सकल फल कामुडै तनरु दक्षुनि जूचि धर्मबुद्धि

ते. गलिगि सुखवृत्ति जीवितु गाक यनुचु
वलिकि दिविजुलु मुनुलुनु ब्राह्मणुलुनु
जनिरि निज मंदिरमुलकु जलजनयन
भवुलु वेंचेसि रात्मीय भवनमुलकु ॥ 210 ॥

व. अंत दाक्षायणियैन सतीदेवि पूर्वकळेबरंबु विडिचि, हिमवंतुनकु मेनक

उषित ब्रह्मा, रुद्र आदि नामधेयों को पाता रहता हूँ। ऐसे अद्वितीय ब्रह्म का रूप होनेवाले मुझमें अज (ब्रह्मा), भव (शिव) आदि को, [तथा] भूतगणों को मूढ़ होनेवाला [व्यक्ति] पृथक् [भाव से] देखता है। मनुज के शरीर से कर-चरणों को अलग न समझने की तरह मद्भक्त होनेवाला मुझसे भूतजात (जीवों के समूह) को भिन्न नहीं सोचता। इसलिए जो हम तीनों में [किसी को] अलग करके नहीं देखता वह कृतार्थ है। इस प्रकार आज्ञा देने पर, दक्ष ने, २०७ [कं.] सुनकर, विष्णुदेवताक (विष्णु ही जिसका देवता हो) कहलानेवाले त्रिकपाल-कलित उस याग में अच्छी तरह उस विष्णु के पद-वनजों (पद-कमलों) की पूजा करके अवारित भक्ति से २०८ [व.] और २०९ [सी.] अंगप्रधानक यागों को करके, अमरों और रुद्र की इच्छा से पूजा करके, विशिष्ट इष्ट के शिष्ट भाग में अवसान (अन्तिम) कर्म पूरा कर, वह स्वयं ऋत्विकों [एवं] सोमपों के साथ अवभृथ-स्नान करके, अन्त में अवाप्त (प्राप्त) सकल फलकामी बनकर विलसित हुआ। [ते.] ऐसे दक्ष को देखकर यह कहते हुए कि धर्मबुद्धि से सुखवृत्ति में जीवित रहो, दिविज, मुनि और ब्राह्मणगण अपने-अपने मंदिरों (गृहों) में चले गये। जलज-नयन (विष्णु) [और] भव [शिव] [भी अपने] भवन चले गये। २१० [व.] तब दाक्षायणी होनेवाली सतीदेवी [अपने] पूर्व कलेवर (शरीर) को त्यागकर, हिमवान को मेनका

यंबु जनियिंचि, विलयकालंबुनं प्रसुप्तंबैन शक्ति सृष्टिकालंबुन नीश्वरुनि बोंदु चंदंबुनं बूर्वदयितुंडगु रुद्रुनि वरियिंचें। अनि दक्षाध्वर ध्वंसकुंडगु रुद्रुनि चरित्रंबु बृहस्पति शिष्युंडैन युद्धवुनकु नॆरिंगिचें। अतंडु नाकुं जॆप्पॆ। नेनु नीकुं जॆप्पिति। अनि मैत्रेयुंडु वॆंडियु विदुरुन किट्लनियॆ ॥ 211 ॥

कं. ई याख्यानमु जदिविन, धीयुतुलै विनिनयट्टि धृतिमंतुलकु
आयुः कीर्तुलु गलुगुनु, बायुनु दुरितमुलु दीलगु भवबंधंबुल् ॥ 212 ॥

व. अनि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 213 ॥

अध्यायमु—८

कं. विनु सनकादुलु नारदु-
डुनु हंसुडु नरुणियु ऋभुडु यतियु गमला-
सनजुलु नैष्ठिकुलनिके
तनु लगुटन् सागवय्यॆ वद्वंशंबुल् ॥ 214 ॥

व. मरियु नधर्मुनकु मृष यनु भार्य यंदु दंभुंडुनु, माय यनु नंगनयु बुट्टिरि। अधर्म संतानंबगु वारिरुवुरुनु मिथुनंबैरि। वारिनि संतान हीनुंडगु निरति गैकॊनियॆ। वारलकु लोभुंडुनु निकृति यनु सतियुनुं गलिगि

में जन्म लेकर, जिस प्रकार विलय (प्रलय) काल में प्रसुप्त शक्ति सृष्टिकाल में ईश्वर में लीन होती है, वैसे ही पूर्व-दयिता (-पति) रुद्र का वरण किया। —इस प्रकार दक्ष के अध्वर का ध्वंस करनेवाले रुद्र का चरित्र (कथा) बृहस्पति ने [अपने] शिष्य उद्धव को समझाया; उसने मुझे सुनाया; मैंने तुम्हें कह सुनाया —इस प्रकार कहकर मैत्रेय ने फिर विदुर से इस तरह कहा। २११ [कं.] धीयुत होकर, जो लोग इस आख्यान को पढ़ते हैं [और] धृतिमान होकर जो सुनते हैं [उनको] आयु [तथा] कीर्ति प्राप्त होती है। दुरित (पाप) [और] भवबंध हट जाते है। २१२ [व.] इस प्रकार कहकर फिर यों बोले। २१३

अध्याय—८

[कं.] सुनो, सनक आदि, नारद, हंस (एक योगी), अरुणि, ऋभ, यति और कमलासनज (ब्रह्म का पुत्र) [आदि के] नैष्ठिक तथा अनिकेतन होने से उनके वंश आगे न बढ़े। २१४ [व.] और अधर्म के मृषा नामक पत्नी में दंभ और माया नामक एक अंगना (पुत्री) पैदा हुई। अधर्म की संतान वे दोनों मिथुन बने [तो] उनको संतानहीन निर्ऋति ने

मिथुनंबैरि। आ मिथुनंबुनकु क्रोधंबु, हिंसयनु नंगनयुं बुट्टि मियुनं बैरि। आ मिथुनंबुनकु गलियु, दुरुक्तियनु नतिवयु जन्मिंचि दांपत्यंबु गैकोनिरि। आ दंपतुलकु भय मृत्युवुलनु मिथुनंबु गलिगें। वानि वलन, यातनयु, निरयंबुनुं बुट्टिटरि। वीरलु संसार हेतुवगु नधर्म तरुशाखलै नेगडिरि। वीनि श्रेयस्कामुंडगु जनुं डीषणमात्रंबु ननुवर्तिपं जनवु। इव्विधंबुनं बतिसर्गंबुनु संग्रहंबुन विनिपिंचिति। इप्पुण्यकथ नेव्वंडेनि मुम्माटु विनिन नतंडु निष्पापियगु ननि चेप्पि मरियु ॥ 215 ॥

ध्रुवोपाख्यानमु

कं. विनु मखिल भुवन परिपा, लनमुनकै चक्रधरकळा कलितुंडै
वनजजुनकु स्वायंभुव, मनु वपुडुदयिंचे गीर्तिमंतुंडगुचुन् ॥ 216 ॥

ते. रूढि नम्मनुवुकु शतरूप वलन, भूनुतुलगु प्रियव्रतोत्तानपादु
लनग निद्दरु पुत्रुलरंदु लोन, भव्य चारित्रु डुत्तानपादुनकुनु ॥ 217 ॥

कं. विनुमु सुनीतियु सुरुचियु
ननु भार्यलु गलरु वारियंदुनु ध्रुवुनिन्

ले लिया। उनके लोभ [और] निकृति (प्रवंचना) नामक संतान हुई, वे दोनों मिथुन बन गये। उस मिथुन के क्रोध और हिंसा नामक अंगना पैदा होकर मिथुन बन गये। उस मिथुन के कलि [और] दुरुक्ति नामक अंगना जन्म लेकर— दांपत्य लेकर— रहे। उस दंपति के भय और मृत्यु नामक मिथुन हुआ। उससे यातना [और] निरय (नरक) पैदा हुए। ये संसार के हेतु होनेवाले अधर्म-तरु की शाखाएँ बनकर वर्द्धमान हुए। श्रेयस् का कामी होनेवाले जन को ईषणमात्र (कुछ) भी इनका अनुवर्तन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार प्रति सर्ग को संग्रह (संक्षेप) में सुनाया। इस पुण्यकथा को, कोई भी हो, तीन बार सुनेगा तो वह अवश्य निष्पापी बनेगा। इस तरह कहकर फिर यों बोला। २१५

ध्रुव का उपाख्यान

[कं.] सुनो। अखिल भुवन के परिपालन के लिए चक्रधर (विष्णु) की कला से कलित बनकर वनजज (ब्रह्मा) के तब कीर्तिमान होते हुए स्वायंभुव मनु का उदय हुआ। २१६ [ते.] रूढ़ि से उस मनु के शतरूपा से भूनुत (भूमि पर प्रशंसित) होनेवाले प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र हुए। उनमें भव्य चरित्रवाले उत्तानपाद के २१७ [कं.] सुनो। सुरुचि और सुनीति नामक दो पत्नियाँ थीं। उनमें ध्रुव को जन्म देनेवाली

गनिन सुनीतियु नप्रिय
युनु सुरुचियु प्रिययु नगुचु नुन्नट्टि यँडन् ॥ 218 ॥

सी. ऑकनाडु सुखलील नुत्तानपादुंडु नँड्रि प्रियुरालैन सुरुचि गन्न-
कौडुकु नुत्तमु दन तौडलपै निडिकौनि युपलालनमु सेयु चुन्न वेळ
नर्थि ददारोहणापेक्षितुंडैन ध्रुवुनि गनुंगौनि तिवक याव-
रिपकुंडुटकु गर्विंचि या सुरुचियु सवति बिड्डंडैन ध्रुवुनि जूचि

ते. तंड्रि तौड नैक्कु वेड्क दगिलॆनेनि
पूनि ना गर्भमुन नाडु पुट्टकन्य-
गर्भमुन बुट्ट गोरि न गलदं नेडु
जनकु तौड यॆक्कु भाग्यंबु सवति कौडुक ! ॥ 219 ॥

कं. अदि गान नीवधोक्षजु, पदपद्ममु लाश्रयिंपु पायक हरि ना
युदरमुन बुट्टु निच्चुनु, वदलक यट्लैन मुदमु वडसॆद वनघा ! ॥220॥

कं. अनि यीलागु नसह्य व-
चनमुलु पिनतल्लि यपुड जनकुडु विनगा
दनु नाडिन दुर्भाषा-
घन शरमुलु मनसु नाटि गाडिय वॆट्टन् ॥ 221 ॥

कं. तनु नट्लुपेक्ष सेसिन
जनकुनि कड बासि दुःखजलनिधि लोनन्

सुनीति के अप्रिया और सुरुचि के प्रिया होकर रहते समय,२१८ [सी.] एक दिन जब सुखलीला से उत्तानपाद के [अपने को] बहुत प्रिय लगनेवाली सुरुचि से उत्पन्न पुत्र उत्तम को अपनी जाँघ पर बिठाकर, उपलालन करते समय, इच्छा से तत् (उस जाँघ पर) आरोहण (चढ़ने की) अपेक्षा (इच्छा) रखनेवाले ध्रुव को देखकर [भी] [उसे] निकट लेकर, आदर न करने से वह सुरुचि भी गर्व करके सौत के पुत्र उस ध्रुव को देखकर [बोली] [ते.] हे सौत के पुत्र ! अपने पिता की जाँघ पर चढ़ने का कुतूहल हो तो प्रयत्न के साथ उस दिन मेरे गर्भ से जन्म न लेकर अन्य के गर्भ से पैदा हुए, तो पिता की जाँघ पर चढ़ने का भाग्य आज कहाँ है ? (नहीं मिल सकता ।) २१९ [कं.] इसलिए तुम अधोक्षज (विष्णु) के पदपद्मों के आश्रय में जाओ । अवश्य हरि तुमको मेरे गर्भ से उत्पन्न होने देगा । हे अनघ ! तुम बिना छोड़े ऐसा करोगे तो तुमको मोद (संतोष) मिलेगा । २२० [कं.] इस प्रकार जनक (पिता) के सुनते समय, सौतेली माँ के असह्य वचन कहने पर, उन दुर्भाषा (-बुरे वचन) रूपी घन (तीव्र) शरों के मन में गड़कर पीड़ित करने पर, २२१ [कं.] अपने को इस प्रकार उपेक्षित करने पर, पिता को छोड़कर, दुःख

मुनुगुचुनु वंडताडित
घन भुजगमु बोलि रोष कलितुंडगुचुन् ॥ 222 ॥

कं. घन रोदनंबु सेयुचु, गनुगवलनु शोक बाष्प कणमुलु वॊरगन्
जननि कड कॆगुटयु निज, तनयुनि गनि या सुनीति दद्दयु प्रेमन् ॥223॥

व. तॊडलपै निडिकॊनि ॥ 224 ॥

कं. कर मनुरक्तिनि मोमु नि, विरि तद्वृत्तांतमॆल्ल वॆलवुलु नंतः
पुर वासलु जॆप्पिन विनि, पड्पुग निट्टूर्पुलॆसग बाष्पाकुलयै ॥ 225 ॥

ते. सवति याडिन माटल सारॆ दलचि-
कॊनुचु वेंचिन दुःखाब्धि गुंदुचुंडॆ
दाव पावक शिखलचे दगिलि कांति
वितति गंदिन माधवीलतिक बोलॆ ॥ 226 ॥

व. अंत ना सुनीति बालकुनि जूचि तंड्रि ! दुःखिपकु मनि यिट्लनियॆ ॥227॥

कं. अनघा ! यी दुःखमुनकु, बनि लेदन्युलकु पॊलय बलवंतंबै
तन पूर्वजन्म दुष्कृत, घन कर्ममु वॆंट नंटगा नॊव्वलनन् ॥ 228 ॥

व. काबुन ॥ 229 ॥

कं. पॆनिमिटि चेतनु बॆंड्ला-
मनि कादु निकृष्ट दासि यनियुनु बिलुवं

की जलधि में डूबते हुए, दंड (लाठी) से ताडित (मार खाए हुए) घन (बड़े) भुजंग (साँप) की तरह रोष से कलित (व्याकुल) होते हुए, २२२ [कं.] घन (अधिक) रोदन करते हुए, आँखों के कोनों से शोक के वाष्प-कणों (आँसुओं) के वहने पर [अपनी] जननी के पास गया, [तब] वह सुनीति अपने पुत्र को देखकर बड़े प्रेम से, २२३ [व.] [अपनी] जाँघों पर बिठाकर, २२४ [कं.] अधिक अनुरक्ति से [उसका] मुख सहलाकर, तत् (उस) समस्त वृत्तांत को अंतःपुर की स्त्रियों के कहने पर सुनकर, लम्बी साँस छोड़ते हुए वाष्पाकुला बनकर, २२५ [ते.] सौत की कही हुई बातों का बार-बार स्मरण करते हुए, दाव-पावक (दावाग्नि) की शिखाओं के लगने पर कांति की वितति के साथ झुलसनेवाली माधवी-लतिका की तरह अधिक दुःखाब्धि में [डूबकर] व्यथित होती रही। २२६ [व.] तब उस सुनीति ने उस बालक को देखकर कहा, हे पुत्र, दुःख मत करो। फिर इस प्रकार कहा। २२७ [कं.] हे अनघ ! इस दुःख की आवश्यकता नहीं है, अपने पूर्व जन्म का दुष्कृत घन(बड़ा)कर्म के बलवान होकर पीछा करते समय दूसरों से दुःखित होने की भी आवश्यकता नहीं है। २२८ [व.] इसलिए २२९ [कं.] पति से पत्नी न सही, निकृष्ट दासी कहकर

गनु जालनि दुर्भगुरा
लन गल नाकुक्षि नुदय मंदिन कतनन् ॥ 230 ॥

कं. निनु नाडिन या सुरुचि व, चनमुलु सत्यंबुलगुनु सर्वशरण्युं-
डन गल हरि चरणंबुलु गनु जनकुनि यंक मेक्कगा दलतेनिन्॥ 231 ॥

व. कावुन पिनतल्लियैन या सुरुचि यादेशंबुन नद्योक्षजु नाश्रयिपु मनि निट्लनियें ॥ 232 ॥

सी. परिकिंप नी विश्व परिपालमुनकै यथि गुणव्यक्तुडैन यट्टि
नारायणुनि पाद नळिनमुल् सेविंचि ब्रह्मयु ब्रह्मत्व पदमु नोंदे
घनुडु मीतात या मनुवु सर्वांतरयामित्वमगु नेकमैन दृष्टि
जेसि यागमुलु यजिंचि ता भौम सुखमुलनु दिव्य सुखमुल मोक्ष

ते. सुखमुलनु बोंदे नट्टि यच्युतुनि बरुनि
वितत योगींद्र निकर गवेष्यमाण
चरण सरसिज युगळु शश्वत्प्रकाशु
भक्तवत्सलु विश्वसंपाद्यु हरिनि ॥ 233 ॥

व. मरियुनु ॥ 234 ॥

कं. करतल गृहीत लीलां, बुरुह यगुचु बद्मगर्भ मुख गीर्वाणुल्
परिकिपंगल लक्ष्मी, तरुणीमणि चेत वेदक दगु परमेशुन् ॥ 235 ॥

भी बुलाई नहीं जानेवाली दुर्भगा होनेवाली मेरी कुक्षि (गर्भ) से पैदा होने के कारण [तुम्हें दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है ।] २३० [कं.] उस सुरुचि ने जो बातें तुमसे कहीं, वे सत्य होंगी; अगर तुम [अपने] जनक (पिता) के अंक (गोद) में बैठना चाहते हो तो सर्वशरण्य होनेवाले हरि के चरण प्राप्त करो। २३१ [व.] इसलिए [अपनी] काकी उस सुरुचि के आदेश के अनुसार अधोक्षज (विष्णु) का आश्रय पाओ। फिर [उसने] इस प्रकार कहा, २३२ [सी.] देखने पर इस विश्व का पालन करने के लिए इच्छा करके गुणों से व्यक्त होनेवाले नारायण के पाद-नलिन (कमल) की सेवा करके ब्रह्मा ने ब्रह्म-पद को प्राप्त किया। घन (श्रेष्ठ) होनेवाले तुम्हारे दादा उस मनु ने सर्वांतरयामित्व वाली एक (सम) दृष्टि से यागों का यजन करके स्वयं भौम (भौतिक), दिव्य सुखों एवं मोक्ष सुखों को पाया। [ते.] ऐसे अच्युत, पर (श्रेष्ठ), वितत योगींद्र-निकर (-समूह) से गवेष्यमाण (शोधनीय) चरण-सरसिज युगल वाले शश्वत् (शाश्वत) प्रकाशमान, भक्तवत्सल, विश्व से संपाद्य हरि को २३३ [व.] और भी २३४ [कं.] करतल [से] गृहीत लीलांबुरुह (कमल) वाली होती हुई, अरविंदगर्भ (ब्रह्मा) मुख (आदि) गीर्वाणों से देखे जानेवाली लक्ष्मी तरुणीमणि से अन्वेष्यमाण परमेश को २३५

ध्रुवुंडु नारदोपदेशंबु वडसि तपंबु चेयुट

व. निजधर्म परिशोभितंबैन येकाग्र चित्तंबुन निलिपि सेविंपुमु। अम्महात्मुनि कंटॆ नीदुःखंबपनयिंचु वाडन्युंडॊक्कडुंडु गलडॆ? यनि पलिकिन परमार्थ हेतुकंबुलैन तल्लि वाक्यंबुलु विनि, तन्नु दान नियमिंचिकॊनि, पुरंबु वॆडलु नवसरंबुन नारदुंडु तद्वृत्तांतंबॆरिंगि यच्चटिकि जनुदॆंचि, यतनि चिकीर्षितंबु दॆलिसि, पाप नाश करंबैन तन करतलंबुन ध्रुवुनि शिरं बंटि, मानभंगंबुनकु सहिंपनि क्षत्रियुल प्रभावंबद्भुतंबु गदा! वालकुंडै युंडियु विनतल्लि याडिन दुरुक्तुलु चित्तंबुनं बॆट्टिकॊनि चुन्न वाडनि मनंबुन नाश्चर्यंबु नॊंदि यो वालक! सकल संपत्समृद्धंबगु मंदिरंबु दॆगडि यॆटि नॆंदु नेगॆदवु? स्वजन कृतंबगु नवमानंबुचे निनु संतप्तुंगा दलंचॆद। अनिन ध्रुवुं डिट्लनियॆ। सपत्नी मातृ वागिषु क्षतंबगु व्रणंबु भगवद्ध्यान योग रसायनंबुन मापुकॊंदु। अनु ध्रुवुनिकि नारदुंडिट्लनियॆ ॥ 236 ॥

कं. विनु पुत्रक! बालुडवै, यनयंबुनु क्रीडलंबु नासक्त मनं-
बुन दिरिगॆडु निक्कालं, बुन नीकवमान मानमुलु लेवॆंबुन् ॥ 237 ॥

नारद का उपदेश पाकर ध्रुव का तप करना

[व.] निजधर्म से परिशोधित एकाग्रचित्त में स्थापित करके [उसकी] सेवा करो। उस महात्मा से बढ़कर तुम्हारे दुःख का अपनयन (दूर) करनेवाला अन्य कोई है? (नहीं है।) इस प्रकार कहने से, परमार्थ की प्राप्ति के हेतु (कारण) होनेवाले माता के वचनों को सुनकर, अपने आप को नियमित (आज्ञापित) करके, पुर को छोड़कर जाते समय, नारद तत् वृत्तान्त को जानकर, वहाँ आकर, उसकी (ध्रुव की) चिकीर्षा (तप करने की इच्छा) को जानकर, पाप का नाश करनेवाला अपना करतल (हस्त) उस ध्रुव के सिर पर रखकर, अपने मन में आश्चर्य करते हुए कि मानभंग न सहनेवाले क्षत्रियों का प्रभाव अद्भुत है; बालक होने पर भी काकी की कही हुई दुरुक्तियाँ (बुरी बातें) चित्त में रखकर चला जा रहा है, [इस प्रकार सोचकर नारद ने] कहा, हे बालक! सकल संपदाओं से समृद्ध होनेवाला मंदिर (घर) छोड़कर अकेले कहाँ जा रहे हो? मैं सोचता हूँ कि स्वजन से कृत अपमान से तुम संतप्त (दुःखित) हो। [यह सुनकर] ध्रुव ने इस प्रकार कहा, सपत्नीमाता (सौतेली माँ) के वाक् रूपी इषुओं (बाणों) से क्षत (मारा जाकर) [उससे होनेवाला] व्रण भगवान का ध्यान रूपी रसायन से भर दूंगा। ऐसा बोलने पर, सुनकर ध्रुव से नारद ने इस प्रकार कहा। २३६ [कं.] सुनो पुत्र, बालक होकर सदा क्रीडाओं में आसक्त मन से चलनेवाले इस काल में तुम्हारे लिए कहीं मान या

ते. काग मनमुन दद्विवेकंबु नीकु
गलिगॆनेनियु संतोष कलितुलैन
पुरुषु लात्मीय कर्म विस्फुरण जेसि
वितत सुखदुःखमुलनुभविंतुरॆपुडु ॥ 238 ॥

व. कावुन विवेकंबु गल पुरुषुंडु दनकुं ब्राप्तंबुलगु सुखदुःखंबुलु दैव वशंबुलुगा दलंचि तावन्मात्रंबुनं बरितुष्टुंडगु। नीवुनु दल्लि चॆप्पिन योगमार्ग प्रकारंबुन सर्वेश्वरानुग्रहंबु बॊंदॆदनंटिवेनि ॥ 239 ॥

सी. अनघात्म! योगींद्रुलनयंबु धर बॆक्कु जन्मंबुलंदु निस्संगमैन
मतिनि ब्रयोग समाधि निष्ठल जेसि यननु दॆलियलेरतनि मार्ग
मदि गान यतडु दुराराध्युडगु नीवु नुडुगुमु निष्फलोद्योग मिपुडु
गाक निश्श्रेयस कामुडवगुदेनि तंड्रि! वर्तिचु तत्कालमंदु

ते. बूनि सुखदुःखमुल रॆंटिलोन नेदि
दैव वशमुन जेकुरु दान जेसि
डॆंदमुन जाल संतुष्टि नॊंदुचुंड
विमल विज्ञानि यन भुवि वॆलयु दॆपुडु ॥ 240 ॥

व. मरियु गुणाढ्युंडगुवानि जूचि संतोषिपुचु, ना भासुंडगु वानि जूचि करुणिपुचु, समानुनि यॆड मैत्रि सलुपुचु वर्तिपुचुन्न वाडु तापत्रयादिकंबुलं

अपमान नहीं है। २३७ [ते.] फिर भी मन में तुम्हें अगर वह विवेक हुआ तो [अच्छा है, क्योंकि] संतोष से कलित (भरे हुए) होनेवाले पुरुष आत्मीय कर्म का विस्फुरण (प्रकाशमान) करके सदा वितत (विपुल) सुख-दुःखों का अनुभव करते हैं। २३८ [व.] इसलिए विवेकी पुरुष अपने को प्राप्त सुख-दुःख को दैववश (दैवदत्त) समझकर तावन्मात्र (उतने मात्र से) परितुष्ट होता है। अगर तुम कहते हो कि [अपनी] माँ के कहे हुए योगमार्ग के प्रकार (अनुसार) सर्वेश्वर का अनुग्रह प्राप्त करूँगा तो २३९ [सी.] हे अनघात्मन्! योगींद्र सदा धरा पर अनेक जन्मों में निस्संग-मति (बुद्धि) से प्रयोग-समाधि [तथा]-निष्ठा करने पर भी उसके (परमात्मा के) मार्ग को नहीं समझ सकते। इसलिए वह (परमात्मा) तुम्हारे लिए दुराराध्य (आराधना के लिए कठिन) बन जायगा। अब [यह] निष्फल उद्योग [प्रयत्न[छोड़ दो। ऐसा न हो तो, अगर निश्श्रेयस् (मोक्ष)-कामी हो तो, हे तात! वर्तमान तत्काल (इस काल) में लगकर, [ते.] सुख और दुःख इन दोनों में जो दैववश मिलता है, उसे स्वीकार करके उससे मन में बड़ी संतुष्टि पाते हुए, विमल विज्ञानी कहला कर, भुवि पर प्रसिद्ध हो जाओ। २४० [व.] और गुणाढ्य (गुणों से संपन्न) होनेवाले को देखकर संतोष करते हुए, आभास होनेवाले को देखकर

दौरंगु। अनि नारदुंडु पलिकिन विनि ध्रुवुंडिट्लनियें। अनघा! यी शमंबु सुखदुःख हतात्मुलगु पुरुषुलकु दुर्गमंबनि कृपायत्तुंडवैन नीचेत विनंबडॆ। अट्लैनं बर भयंकरंबगु क्षात्र धर्मंबु नॊंदिन यविनीतुंड नगु नेनु सुरुचि दुरुक्त वाण विनिर्भिन्न हृदयुंड नगुट मदीय चित्तंबुन शांति निलुवदु। कावुनं द्रिभुवनोत्कृष्टंबु, ननन्याधिष्ठितंबु नगु पदंबुनु बॊंद निश्चयिंचिन नाकु साधु मार्गंबु नॆरिंगिपुमु। नीवु भगवंतुंडगु नजुनि यूरुवु वलन जनियिंचि वीणावादन कुशलुंडवै जगद्धितार्थंबु सूर्युनि बोलि वर्तिंतुवनिन विनि ॥ 241 ॥

कं. नारदु डिट्लनु ननघ कु-
मारक! विनु निन्नु मोक्ष मार्गंबुनकुन्
ब्रेरेचिन वाडिप्पुडु
धीरजनोत्तमुडु वासुदेवुंडगुटन् ॥ 242 ॥

व. नीवु नम्महात्मुनि नजस्र ध्यान प्रवण चित्तुंडवै भजियिंपुमु ॥ 243 ॥

कं. पुरुषुडु दविलि चतुर्विध, पुरुषार्थ श्रेयमात्म बॊंदद ननिनन्
धर दत्प्राप्तिकि हेतुवु, हरिपदयुगळंबु दक्क नन्यमु गलदे? ॥ 244 ॥

व. कावुन ॥ 245 ॥

करुणा दिखाते हुए, समानों से (बराबरवालों से) मैत्री करते हुए रहनेवाला तापत्रयादिकों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक) से दूर रहेगा। इस प्रकार नारद के कहने पर ध्रुव ने इस प्रकार कहा। हे अनघ! कृपायत्त होनेवाले तुमसे सुना गया कि यह शम सुख-दुःखों से हत आत्मावाले पुरुषों के लिए दुर्गम है। ऐसा हो तो परों (शत्रुओं) के लिए भयंकर होनेवाले क्षात्रधर्म को प्राप्त अविनीत होनेवाले मेरे सुरुचि की दुरुक्ति रूपी वाणों से विनिर्भिन्न हृदयवाला बनने से मदीय चित्त में शांति नहीं रहेगी। इसलिए त्रिभुवनों में उत्कृष्ट, अनन्य अधिष्ठित पद प्राप्त करने का निश्चय करनेवाले मुझे साधुमार्ग समझाओ। तुम भगवान अज की ऊरु से जन्म लेकर, वीणा-वादन में कुशल होकर, जगत के हित के लिए सूर्य की तरह विचरण करते हो। ऐसा कहने पर सुनकर, २४१ [कं.] नारद ने इस प्रकार कहा, "हे अनघ! कुमार! सुनो। तुम्हें अब मोक्ष-मार्ग पर प्रेरेपित (प्रेरित) करनेवाला धीर जनों में उत्तम वासुदेव है। ऐसा होने से २४२ [व.] तुम उस महात्मा का अजस्र (लगातार)-ध्यान में प्रवण (समर्थ) चित्त [वाला] बनकर भजन करो। २४३ [कं.] जब पुरुष प्रयत्न में लगकर चतुर्विध पुरुषार्थों के श्रेय को आत्मा में प्राप्त करना चाहता है, [इस] धरा पर तत्प्राप्ति का हेतु हरि के पद-युगल को छोड़कर [क्या] अन्य कुछ है? (नहीं है।) २४४ [व.] इसलिए २४५ [कं.] हे सरल गुणवाले! वर (श्रेष्ठ) यमुना

कं. वर यमुना नदि तटमुन
हरि सान्निध्यंबु शुचियु नतिपुण्यमुने
परगिन मधुवनमुनकुनु
सरसगुणा ! चनुमु मेलु समकुरु नचटन् ॥ 246 ॥

कं. आ यमुना तटिनी शुभ, तोयमुलन् ग्रुंकि निष्ठतो नच्चट ना-
रायणुनकुनु नमस्कृतु, लायत मति जेसि चेयु यमनियममुलन् ॥ 247 ॥

व. मरियुं बालुंडवगुटं जेसि वेदाध्ययनाद्युचित कर्मा ! नर्हुंड वय्यु नुचितंबुलगु कुशाजिनंबुलं जेसि स्वस्तिक प्रमुखासनंबुलं गल्पिचि कोनि, त्रिवृत् प्राणायामंबुलचेतं ब्राणेन्द्रिय मनोमलंबनु चांचल्य दोषंबु प्रत्याहरिंचि स्थिरंबैन चित्तंबुन ॥ 248 ॥

सी. आश्रित सत्प्रसादाभिमुखुंडुनु स्निग्धप्रसन्नाननेक्षणुंडु
सुरुचिर नासुंडु सुभ्रूयुगुंडुनु सुकपोल तलुडुनु सुंदरुंडु
हरिनील संशोभितांगुंडु दरुणुंडु नरुणावलोकनोष्ठाधरुंडु
गरुणासमुद्रुंडु पुरुषार्थ निधियुनु प्रणताश्रयुंडु शोभनकरुंडु

ते. ललित श्रीवत्सलक्षण लक्षितुंडु, सर्वलोक शरण्युंडु सर्वसाक्षि
पुरुषलक्षण युक्तुंडु पुण्यशालि, यसित मेघनिभ श्यामु डव्ययुंडु ॥249॥

व. मरियुनु ॥ 250 ॥

नदी के तट पर हरि का सान्निध्य, शुचि [पूर्ण] एवम् अतिपुण्य से युक्त मधुवन में जाओ; वहाँ [तुम्हारी] भलाई होगी। २४६ [कं.] उस यमुना-तटिनी (-नदी) के शुभ तोयों (जलों) में स्नान करके, निष्ठा से वहाँ नारायण को आयत-मति (विशाल हृदय) से और यम-नियमों का पालन करो। २४७ [व.] और वालक होने के कारण वेदाध्ययन आदि उचित कर्मों के लिए अनर्ह होकर भी, उचित कुश [और] अजिन बनाकर, स्वस्तिक प्रमुख (आदि) आसन बनाकर, त्रिवृत प्राणायामों से प्राण, इंद्रिय, मनोमल, चांचल्य दोषों को प्रत्याहरण करके (दूर करके) स्थिर बने चित्त में २४८ [सी.] आश्रित सत्पुरुषों के प्रति प्रसाद [युक्त] अभिमुख वाला, स्निग्ध प्रसन्न आनन [और] ईक्षण (नेत्र) वाला, सुरुचिर नाक वाला, सुभ्रूयुग (युग्म = दो) वाला, सुकपोलतलवाला, सुंदर, हरिनील संशोभित अंगवाला, तरुण, अरुण (लाल) अवलोकन [और] अधरोष्ठ वाला, करुणा का समुद्र, पुरुषार्थ-निधि, प्रणतों को (नमस्कार करनेवालों को) आश्रय देनेवाला, शोभनकर, [ते.] ललित श्रीवत्सलक्षण (तिल) से लक्षित, सर्वलोकशरण्य, सर्वसाक्षी, पुरुष लक्षणों से युक्त, पुण्यशाली, असित (नील) मेघों की निभा (कांति) [के समान] श्याम, अव्यय, २४९ [व.] और भी २५० [सी.] हार

सी. हार किरीट केयूर कंकण घन भूषणु डाश्रित पोषणुंडु
लालित कांची कलाप शोभित कटि मंटलुं डंचित कुंडलुंडु
महनीय कौस्तुभमणि घृणि चारु ग्रैवेयकुंडानंददायकुंडु
सललित घन शंख चक्र गदा पद्म हस्तुडु भुवन प्रशस्तु डजुडु

ते. गन्नसौरभ वनमालिकाधरुंडु, हत विमोहुंडु नव्य पीतांबरुंडु
ललित कांचन नूपुरालंकृतुंडु, निरतिशय सद्गुणुडु दर्शनीयतमुडु ॥251॥

कं. सरस मनोलोचन मु, त्करुडुनु हृत्पद्म कर्णिका निवसित वि-
स्फुर दुरु नखमणि शोभित, चरणसरोजातु डतुल शांतुडु घनुडुन् ॥252॥

व. अयिन पुरुषोत्तमुं बूजिपुचु हृदय गतुंडुनु, सानुराग विलोकनुंडुनु, वरद श्रेष्ठुंडुनु नगु नारायणु नेकाग्र चित्तंबुन ध्यानंबु सेयुचुं बरम निवृत्ति मार्गंबुन ध्यानंबु सेयवलड पुरुषोत्तमुनि दिव्य मंगळ स्वरूपंबु चित्तंबुन दगिलिन मरल मगुड नेरदु। अदियुनुं गाक येमंत्रकंबेनि सप्तवासरंबुलु पठियिंचिन खेचरुलं गनुंगोनु सामर्थ्यंबु गलुगुनट्टि प्रणवयुक्तंबगु

(माला), किरीट, केयूर, कंकण घन भूषण वाला, आश्रितों का पोषण करनेवाला, लालित (कोमल) कांची-कलाप से शोभित कटिमंडल (कमर) वाला, अंचित कुंडल वाला, महनीय कौस्तुभमणियुक्त ग्रैवेयक (हार को धारण करनेवाला), आनंददायक, सललित घन शंख, चक्र, गदा, पद्म को हस्त में धारण करनेवाला, भुवन प्रशस्त, अज, [ते.] कन्न (कमनीय) सौरभ से युक्त वनमालिकाओं को धारण करनेवाला, हतविमोही (मोह को जीतनेवाला), नव्य पीतांबर धारण करनेवाला, ललित कांचन नूपुरों से अलंकृत, निरतिशय सद्गुणवाला, दर्शनीयतम (देखे जानेवालों में श्रेष्ठ) २५१ [कं.] सरस मनोलोचनों का उत्कर (समूह) वाला, [भक्तों के] हृदय रूपी पद्म के कर्णिकारों के निवास से विस्फुरत् (प्रकाशमान) उरु (बड़े) नखरूपी मणियों से शोभित चरण-सरोजात (कमल) वाला, अतुल शांत [मूर्तिवाला] तथा घन (श्रेष्ठ) २५२ [व.] होनेवाले पुरुषोत्तम की पूजा करते हुए, हृदयगत और सानुराग (अनुराग-सहित) विलोकन (नेत्र) वाला और वरदश्रेष्ठ होनेवाले नारायण का एकाग्रचित्त में परम निवृत्ति मार्ग से ध्यान करते हुए ध्यात (जिसका ध्यान किया जाता है) होनेवाले पुरुषोत्तम का दिव्य मंगलस्वरूप में अगर चित्त लग जाए तो फिर वापस नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त जिस मंत्र का सप्त वासर (सात दिन) पठन करने से खेचरों को (देवताओं को) पहचानने की सामर्थ्य होती है; ऐसे प्रणवयुक्त (ॐकार-सहित) द्वादश अक्षरों से कलित, देश और काल के विभाग का वेदी (जाननेवाले) [एवं] बुधों से अनुष्ठित होनेवाले

द्वादशाक्षर कलितंबुनु, देशकालविभागवेदि बुधानुष्ठितंबुनुनैन वासुदेव मंत्रंबुनं जेसि ।। 253 ।।

सी. दूर्वांकुरंबुल दूर्वांकुरश्यामु जलजंबुलनु जारु जलज नयनु
तुलसी दळंबुल तुलसिकादामुनि माल्यंबुलनु विनिर्मल चरित्रु
बत्रंबुलनु बक्षिपत्रुनि गड्डु वन्य मूलंबुलनु नादि मूलघनुनि
नंचित भूर्जत्वगादि निर्मित विविधांबरंबुलनु बीतांबरधरु

ते. दनरु भक्तिनि मृच्छिला दारु रचित
रूपमुलयंदु गानि निरूढमैन
सलिलमुल यंदुगानि सुस्थलमुलंदु
गानि पूजिपवलयु नवकमलनाभु ।। 254 ।।

कं. धृत चित्तुडु शांतुडु नि, यत परिभाषणुडु सुमहिताचारुडु व-
र्णित हरिमंगळ गुणडुनु, मितवन्याशनुडु नगुचु मेलगुचु मरियुन् ।।255।।

व. उत्तमश्लोकुंडगु पुंडरीकाक्षुंडु निजमाया स्वेच्छावतार चरितंबुल चेत नचिंत्यंबुगा नेद्दि सेयु, नद्दि हृदय गतंबुगा ध्यानंबु सेयं दगु। मरियुं गार्य बुद्धि जेसि चेयंबडु पूजा विशेषंबुल वासुदेव मंत्रंबुन सर्वेश्वरुनिकि समर्पिपवलयु। इट्लु मनोवाक्काय कर्मंबुल चेत मनोगतंबगुनट्लुगा

[ॐ नमो भगवते बासुदेवाय] वासुदेव के मंत्र के कारण २५३ [सी.] दूर्वांकुरों से (दूर्वा नामक घास के अंकुरों से) दूर्वांकुरों के समान श्यामवर्ण वाले की, जलजों (कमलों) से चारु जलजनयन की, तुलसीदलों से तुलसिकादाम वाले की, माल्यों से (पुष्पों से) सुनैर्मल्यचरितवाले की, पत्रों (पत्तों) से पक्षिपत्र (पक्षिवाहनवाले) की, वन्य मूलों से आदि मूल घन की, अंचित (सुन्दर) भूर्जत्वक् (भूर्जवृक्ष के ऊपर का छिलका) [आदि से] निर्मित विविध अम्बरों (वस्त्रों) से पीतांबरधर की, [ते.] मृत (मिट्टी), शिला, दारु (लकड़ी) से रचित रूपों में या निरूढ सलिलों मे या सुस्थलों में बड़ी भक्ति से उस कमलनाभ की पूजा करनी चाहिए। २५४ [कं.] धृतचित्त, शांत, नियत परिभाषण [वाला], सुमहित आचारवाला (आचरण करनेवाला), वर्णित (वर्णन किये गये) मंगलगुणवाला, हरि मित-बन्य अशन (आहार) वाला, होकर रहते हुए, और २५५ [व.] उत्तमश्लोक [वाला] पुंडरीकाक्ष निज (अपनी) माया [की] स्वेच्छा [से] अवतार और चरितों से अचिंत्य (अनूह्य) रूप में जो कुछ करता है, उसको हृदयगत करके ध्यान करना चाहिए। और कार्य [करने की] बुद्धि करके किये जानेवाले पूजा-विशेषों को वासुदेव-मन्त्र के साथ सर्वेश्वर को समर्पित करना चाहिए। इस प्रकार मन, वाक्

भक्तियुक्तंबुलैन पूजल चेतं बूजिपंबडि, सर्वेश्वरुंडु मायाभिभूतुलुगाक सेविंचु पुरुषुलकु धर्मादि पुरुषार्थंबुल लोन नभिमतार्थंबु निच्चु। विरक्तुंडगु वाडु निरंतर भावंबैन भक्तियोगंबुनं जेसि मोक्षंबु कॊरकु भजियिंचु। अनि चॆप्पिन विनि ध्रुवुंडु नारदुनकुं ब्रदक्षिणपूर्वकंबुगा नमस्करिंचि महर्षिजन सेव्यंबै सकलसिद्धुल नॊसंगुचु भगवत् पाद सरोजालंकृतंबैन मधुवनंबुनकुं जनियॆ। अंत ॥ 256 ॥

ते. पद्मभवसूनु डुत्तानपादुकडकु, नरिगि या राजुचे विविधार्चनमुल
नंदि संप्रीतुडै युन्नतासनमुन, नॆलमि गूर्चुंडि यातनिवलनु चूचि ॥ 257 ॥

व. इट्लनियॆ ॥ 258 ॥

कं. भूनायक ! नीविपुडा, म्लानास्युड वगुचु जाल मदिलो जिंतं
बूनुट केमि कतंबन, ना नारदु तोड नातडनियॆन् मरलन् ॥ 259 ॥

कं. मुनिवर ! विवेकशालियु, ननघुडु नैदेंड्लबालु डस्मत्प्रियनं
दनु डदयुड नगु नाचे, तनु वरिभव मॊंदि चनियॆ दल्लियु दानुन् ॥ 260 ॥

म. चनि युग्राटवि जॊच्चि यच्चट बथिश्रांतुंडु क्षुत्पीडितुं-
डनु संम्लान मुखांबुजुंडु ननघुंडुन् वालुडॆन्नैन म-

[और] काय (शरीर) के कर्मों से मनोगत हो, भक्तियुक्त पूजाओं से पूजित होकर, माया से अभिभूत न होकर सेवा करनेवाले पुरुषों को सर्वेश्वर धर्म आदि पुरुषार्थों में अभिमत अर्थ देगा। विरक्त होनेवाला निरन्तर भाव वाले भक्तियोग के द्वारा मोक्ष के लिए भजन करता है। इस प्रकार कहने से सुनकर ध्रुव नारद को प्रदक्षिणापूर्वक नमस्कार करके महर्षिजनों से सेव्य होकर सकल सिद्धियाँ देते हुए भगवान के पाद-सरोजों से अलंकृत मधुवन में गया। तब २५६ [ते.] पद्मभवसून (नारद) उत्तानपाद के पास जाकर, उस राजा से विविध अर्चनाओं को पाकर, संप्रीत होकर, उन्नत आसन पर प्रेम से आसीन होकर [और] उसकी ओर देखकर २५७ [व.] इस प्रकार कहा। २५८ [कं.] हे भूनायक ! तुम्हारे अत्र म्लान (मुरझाये हुए) आस्य (मुख) से अपने मन में चिंतित होने का कारण क्या है ? ऐसा पूछने पर उस नारद से फिर उस [राजा] ने इस प्रकार कहा। २५९ [कं.] हे मुनिवर ! विवेकशील, अनघ [होनेवाला] पाँच वर्ष का बालक, अस्मत् (मेरा) प्रियनंदन अदय (कठिन) होनेवाले मुझसे स्वयं परिभव (अपमान) पाकर, अपनी माँ के साथ चला गया। २६० [म.] जाकर उस अटवी (अरण्य) में प्रवेश करके, वहाँ थककर क्षुत् (भूख) से पीड़ित बने, म्लान मुखांबुज वाले, अनघ बालक मेरे तनय को पता नहीं, घोर वृक (भेड़िया), अहि (साँप), भल्ल (भालू) मुख (आदि) सब [जंतु] श्रेणि (समूह) ने निर्जित किया हो (मार डाला

त्तनयुन् घोर वृकाहिभल्ल मुखसत्त्व श्रेणि भक्षिचेनो
यनि दुःखिचेद नादु चित्तमुन नार्यस्तुत्य ! यिट्लौटकुन् ॥ 261 ॥

ते. अट्टि युत्तम बालु नायंकपीठ
मंदु गूचुंडनीक निराकरिंचि
यंगनासक्त चित्तुंडनैन यट्टि
नादु दौरात्म्यमिदि मुनिनाथचंद्र ! ॥ 262 ॥

उ. ना विनि नारदुंडु नरनाथुनिकिट्लनु नी कुमारु डा-
देव किरीट रत्न रुचि दीपित पाद सरोजुडैन रा-
जीवदळाक्ष रक्षितुडशेष जगज्जन कीर्तनीय की-
र्ती विभव प्रशस्तसुचरित्रुडु वानिकि दुःख मेटिकिन् ? ॥ 263 ॥

उ. कावुन नम्महात्मुडु सुकर्ममु चेत समस्त लोक पा-
लावळिकंदरानि .समुदंचित नित्य पदंबुनन् प्रभु-
श्री विलसिल्ल जेंदु दुलसीदळ दामु भजिंचि या जग-
त्पावनुडैन नी सुतु प्रभावमेरुंगवु नीवु भूवरा ! ॥ 264 ॥

व. अवियुनुं गाक ॥ 265 ॥

कं. नीकीर्तियु जगमुलयं, दाकल्पमु नोंद जेयु नंचित गुण र-
त्नाकरुडिट केतेंचुनु, शोकिपकु मतनि गूर्चि सुभगचरित्रा ! ॥ 266 ॥

हो) —इस प्रकार सोचकर दुःखी होता हूँ। हे आर्यों से स्तुत्य ! मेरे चित्त में दुःखित होने के लिए २६१ [ते.] हे मुनिनाथचंद्र ! ऐसे उत्तम बालक को अपने अंक-पीठ पर बिठाने के लिए मना करके, अंगना (पत्नी) [पर] आसक्त [होनेवाले] चित्त [होनेवाले] वाले मेरा दौरात्म्य (बुरी बुद्धि) [का परिणाम] यह है। २६२ [उ.] ऐसा कहने पर, सुनकर, नारद ने नरनाथ से इस प्रकार कहा— तुम्हारा पुत्र उन देवताओं [के] किरीट [के] रत्नों [की] रुचि [से] दीप्त [होनेवाले] पाद [रूपी] सरोज [वाले] राजीवदलाक्ष (विष्णु) [से] रक्षित है। अशेष जगों [के] जनों [से] कीर्तनीय, कीर्ति [के] विभव [से] प्रशस्त सुचरित्र [वाला] है। उसके लिए दुःख क्यों ? २६३ [उ.] हे भूवर (राजा) ! इसलिए वह महात्मा सुकर्म से समस्त लोकपालों की आवलि (समूह) की पहुँच से बाहर होनेवाले समुदंचित नित्य पद को प्रभु (विष्णु) [की] श्री (कांति) से विलसित (प्रकाशित) होकर प्राप्त करेगा। तुलसीदलधाम (नारायण) को भजकर, [उस पद को प्राप्त करनेवाले] जगत्पावन [होनेवाले] अपने सुत के प्रभाव को तुम नहीं जानते। २६४ [व.] इसके अलावा २६५ [कं.] हे सुभग (सुन्दर) चरित्रवाले ! तुम्हारी कीर्ति को जगों में आकल्प (कल्प के अंत तक) बना रखेगा।

कं. अनि नारदुंडु पलिकिन
विनि मनमुन विश्वसिंचि विभुडुनु प्रिय नं-
दनु जिंतिपुचु नादर
मुन जूडंडय्यॆ राज्यमुनु बूज्यमुगन् ॥ 267 ॥

व. अंत नक्कड ध्रुवुंडु ॥ 268 ॥

कं. चनि मुंदट गनुगॊनॆ मधु, वनमुनु मुनि देवयोगिवर्णित गुण पा-
वनमुनु दुर्भव जलद प, वनमुनु निखिलैक पुण्य वर भवनंबुन् ॥ 269 ॥

व. अट्लु गनि डायंजनि यमुनानदि गृतस्नानुंडै नियतुंडुनु, समाहित चित्तुंडुनुनै, सर्वेश्वरुनि ध्यानंबु सेयुचुं द्रिरात्रंबुलकॊक्क मारु कृत कपित्थ बदरीफल पारणुंडगुचु देहस्थिति ननुसरिंचि यीक्क मासंबु हरि बूजिंचि, यंतनुंडि, यारेसि दिनंबुलकॊक परि कृत जीर्ण तृण पर्णाहारुंडगुचु, रॆंडव मासंबुन विष्णु समाराधनंबु सेसि, यंतनुंडि नवरात्रंबुलकॊक मारुदक भक्षणंबु सेयुचु, मूडव मासंबुन माधवु नर्चिंचि, यंतनुंडि द्वादश दिनंबुलकॊकमारु वायु भक्षणुंडगुचु, जितश्वासुंडै नालवमासंबुनं बुंडरीकाक्षुनि भजियिंचि, यंतनुंडि मनंबुन नलयक निरुच्छ्वासुंडै येक

[वह] अंचित गुणों का रत्नाकर यहाँ आ जायगा। उसके बारे में शोक (दुःख) मत करो। २६६ [कं.] ऐसा नारद के कहने पर, सुनकर, मन में विश्वास करके, विभु (उत्तानपाद) प्रियनंदन के बारे में चिंतन करते हुए, अपने राज्य को पूरी तरह आदर से नहीं देखता। २६७ [व.] तब वहाँ उस ध्रुव ने २६८ [कं.] जाकर [अपने] समक्ष मुनियों, देवों तथा योगियों से वर्णित गुणों से पावन, दुर्भव-जलद-पवन- (और) निखिल में एक मात्र पुण्य वर (श्रेष्ठ) भवन [होनेवाले] मधुवन को देखा। २६९ [व.] वैसे [मधुवन को] देखकर [उसके] समीप जाकर, यमुना नदी में स्नान कर, नियत एवं समाहितचित्त [वाला] बनकर, सर्वेश्वर का ध्यान करते हुए, प्रति तृतीय रात्रि को एक बार कपित्थ-बदरी फल का पारण करते हुए (कैथा और बेर के फल खाते हुए), देह की स्थिति के अनुसार इस प्रकार एक मास हरि की पूजा करके, तब से छः दिन में एक बार जीर्ण तृण पर्णाहारी बनते हुए (जीर्ण तृण और पत्ते खाकर), दूसरे महीने में विष्णु का समाराधन करके, तब से नवरात्रियों में एक बार उदक का भक्षण करते हुए, तीसरे महीने में माधव की अर्चना करके, तब से द्वादश दिनों में एक बार वायु का भक्षण करते हुए, जितश्वास बनकर (साँस को जीतकर), चौथे महीने में पुंडरीकाक्ष का भजन करके तब से मन में न थक, उच्छ्वास को छोड़कर, एक पाद पर खड़े रहकर, परमात्मा

पवंबुन निलिचि परमात्मं जिंतिपुचु नचेतनंबैन स्थाणुवुं बलें नैदव मासंबुनुं जरपें। अंत ॥ 270 ॥

सी. सकल भूतेंद्रियाशयमगु हृदयंबुनंदु विषयमुल जेंदनीक
महदादि तत्त्व समाजमुलकुनु नाधारभूतमुनु बधान पूरु
षेश्वरुडैनट्टि शाश्वत ब्रह्मंबु दन सित हृदय पद्ममुन निलिपि
हरिरूपमुन कंटें नन्यंबु नेंरुगक चित्तमव्विभुनंदु जेर्चियुन्न

ते. कतन मुल्लोकमुलु चाल गंप मोंदें
वेंडियुनु वेचियय्यर्भकुंडु धरणि
नोक्क पादंबु मोपि निल्चुन्न वेळ
वेंचि यव्वालु नंगुष्ठ पीड जेसि ॥ 271 ॥

ते. वसुमतीतलमर्धमु वंग जोच्चें
भूरि मद दुर्निवारण वारणेंद्र
मॅडम गुडि नोरगग नड्डुगड्डुगुनकुनु
चलन मोंदुनुदस्थित कलमु बोलें ॥ 272 ॥

चं. अतडु ननन्यदृष्टिनि जराचर देहि शरीर धारण-
स्थिति गल योशु नंदु दन जीवितमुन् घटियिप जेसि ये
कत गन दन्निरोधमुन गैकोनि कंपमु नोंदें नीश्वरुं
डतडु चलिप निज्जगमुलन्नियु जंचलमय्यें भूवरा ! ॥ 273 ॥

का चिंतन करते हुए, अचेतन स्थाणु (ठूँठ, जड़) की तरह पाँचवा महीना बिताया। २७० [सी.] [सकल] भूतेंद्रियों का आश्रय होनेवाले हृदय में विषय [वासनाओं को] न आने देकर, महत् आदि तत्त्वों के समाजों के लिए आधारभूत [और] प्रधान पुरुषों में ईश्वर होनेवाले शाश्वत् ब्रह्मा को अपने सित पद्म रूपी हृदय में स्थापित करके, हरि [के] रूप के अतिरिक्त और किसी अन्य रूप को न जानकर [अपना] चित्त उस विभु (परमात्मा) में लगाकर रहने के कारण तीनों लोक बहुत कंपित हुए। [ते.] और क्रम से उस अर्भक (बालक) के धरणि पर एक पाँव रखकर खड़े रहने पर उस बालक के अंगुष्ठ की पीड़ा से २७१ [ते.] क़दम-क़दम पर जलनिधि में डाँवाडोल होनेवाले जहाज की तरह भूरि-मद-दुर्निवारण (रोका न जा सकनेवाले) वारणेंद्र (गज) के बायीं और दाहिनी ओर झुकने पर वसुमतीतल (भूमि) का अर्धभाग झुकने लगा। २७२ [चं.] हे भूवर ! वह अनन्य दृष्टि से चर और अचर देही के शरीर के धारण की स्थिति-वाले ईश में अपने जीवन को घटित करके (तादात्म्य स्थापित करके), ऐक्य प्राप्त करने पर उसके निरोध से वह ईश्वर भी कंपित हुआ। उसके कंपन से ये सारे जग चंचल बन गये। २७३ [कं.] आलोकन

कं. आ लोक भयंकरमगु, नालोक महा विपद्दशालोकनुलै
या लोकपालु रंदरु, नालोक शरण्यु गान नरिगिरि भीतिन् ॥ 274 ॥

व. अट्लरिगि नारायणु नुद्देशिंचि कृतप्रणामुलै करंबुलु मुकुळिंचि यिट्लनिरि ॥ 275 ॥

चं. हरि ! परमात्म ! केशव ! चराचर भूत शरीर धारिवै
परगुदु वीवु निट्टुलुग प्राण निरोध मॆरुंग मॆंदु मुन्
दिरमुग देवदेव ! जगदीश्वर ! सर्वशरण्य ! नी पदां-
बुरुहमु लोलिमै शरणु बॊंदॆद मार्ति हरिंचि काववे ! ॥ 276 ॥

व. अनि देवतलु विन्नविंचिन नीश्वरुंडु वारल किट्लनियॆ । उत्तानपादुंडनु वानि तनयुंडु विश्वरूपुंडैन नायंदु दन चित्तंबैक्यंबु जेसि तपंबु गाविंपु चुंड दानं जेसि भवदीय प्राण निरोधंबय्यॆ । अट्टि दुरत्ययंबैन तपंबु निवर्तिप जेसॆद । वॆड्रवक मी मी निवासंबुलकुं जनुंडनि यानतिच्चिन ना देवतलु निर्भयात्मुलै यीश्वरुनकुं प्रणामंबु लार्चरिंचि त्रिविष्टपंबुनकुं जनिरि । तदनंतरंब ॥ 277 ॥

करने में भयंकर होनेवाले, लोक की महती विपद्दशा का आलोकन करके वे सब लोकपाल भय से उस लोकशरण्य (विष्णु) को देखने गये । २७४ [व.] उस प्रकार जाकर नारायण को उद्दिष्ट करके कृतप्रणाम होकर (प्रणाम करके) कर (हाथ) जोड़कर इस प्रकार बोले । २७५ [चं.] हे हरि ! परमात्मन् ! केशव ! चर-अचर-भूत शरीरधारी बनकर तुम विद्यमान हो । इस प्रकार के प्राणों का निरोध कहीं नहीं जानते । स्थिर रूप से तुम्हारे पद रूपी अंबुरुहों की शरण में आये हैं । हे देवदेव ! जगदीश्वर ! सर्वशरण्य ! हमारी आर्ति (दुःख) को हरकर रक्षा करो । २७६ [व.] इस प्रकार देवताओं के निवेदन करने पर ईश्वर ने उनसे इस तरह कहा— उत्तानपाद नामक एक (राजा) के तनय के विश्वरूप होनेवाले मुझमें अपना चित्त ऐक्य करके तप करने के कारण, इससे भवदीय प्राणों का निरोध हुआ । ऐसे दुरत्यय (बुरा न करनेवाले) तप का निवर्तन (रोकना) करूँगा । विना किसी भय के अपने-अपने निवासों में जाओ । इस तरह आज्ञा देने से वे देवता निर्भयात्मा बनकर, ईश्वर को प्रणाम अर्पित करके, त्रिविष्टप (स्वर्ग) को चले गये । तदनंतर २७७

अध्यायमु—९

सी. हरि यीश्वरुंडु विहंग कुलेश्वर यानुडै निजभृत्युडैन ध्रुवुनि
गनुगोनु वेडुक जनियिंप ना मधुवनमुन कप्पुडु सनि ध्रुवुंडु
परवडि योग विपाक तीव्रंबैन बुद्धिचे निजमनोंबुरुह मुकुळ
मंदु दटित्प्रभायत मूर्ति यट विरोधानंबुनन्नु पोंदि तत्क्षणंब

ते. तन पुरोभागमु ननु निलिचिनन्नु बूर्व
समधिक ज्ञाननयन गोचर समग्र
मूर्ति गनुगोनि संभ्रममुनन्नु सम्म
दाश्रुवुलु राल बुलकीकृतांगुडगुचु ॥ 278 ॥

ध्रुवुडु भगवंतुनि स्तुतिचुट

ते. नयनमुल विभुमूर्ति वानंबु सेयु
पगिदि दन मुखमुनन्नु जुंबनमु सेयु
लील दग भुजमुलनु नालिंगनंबु
सेयुगति दंडवन्नमस्कृतुलोनर्चे ॥ 279 ॥

व. इट्लु दंडप्रणामंबु लाचरिंचि, कृतांजलियै स्तोत्रंबु सेय निश्चयिंचियु स्तुति

अध्याय—९

[सी.] हरि, ईश्वर, विहंगकुलेश्वर (गरुत्मान)-यान (-वाहन] पर आरूढ़ होकर, निज भृत्य होनेवाले ध्रुव को देखने का कौतुक होने पर, तब उस मधुवन में गया। ध्रुव ने क्रम से योग के विपाक (परिणाम) से प्राप्त तीव्र बुद्धि से निज मन [रूपी] अंबुरुह (कमल) के मुकुल में मानो तटित् (बिजली) [की] प्रभायत (कांति से विशाल) मूर्ति हो, तिरोधान को पाकर उसी क्षण अपने पुरोभाग में (सामने) खड़े होने पर, [ते.] पूर्व [जन्म के] समधिक ज्ञान-नयनों [को] गोचर होनेवाले समग्र मूर्ति को देखकर, संभ्रम से सम्मद-अश्रुओं के बहने पर, पुलकीकृत अंगवाला बनते हुए, २७८

ध्रुव का भगवान की स्तुति करना

[ते.] नयनों से विभुमूर्ति (प्रकाशमान मूर्ति) का पान करने की तरह, अपने मुँह से चुंबन करने के समान लीला से अच्छी तरह भुजाओं का आलिंगन करने की तरह, दंडवत् (साष्टांग) नमस्कृतियाँ कीं। २७९
[व.] इस प्रकार दंडप्रणाम करके, कृतांजलि होकर, स्तोत्र करने पर

क्रिया समर्थुँडु गाकयुन्न, ध्रुवुनकु समस्त भूतंबुलकु नंतर्यामियैन यीश्वरुंडु ध्रुवुनि तलंपॆरिगि, वेदमयंबैन तन शंखंबु चेत नव्वालुनि कपोल तलंबंटिन, जीवेश्वर निर्णयज्ञुंडुनु, भक्तिभाव निष्ठुंडुनु नगु ध्रुवुंडु निखिल लोक विख्यात कीर्ति गल यीश्वरुनि भगवत्प्रतिपादितंबुलगुचु वेदात्मकंबुलैन तन वाक्कुल निट्लनि स्तुतियिंचें। देवा! निखिल शक्ति धरुंडवु, नंतःप्रविष्टुंडवुनैन नीवु लीनंबुलैन मदीय वाक्यंबुलं घ्राणेंद्रियंबुलं गर चरण श्रवण त्वगादुलनु जिच्छक्ति चे गृपं जेसि जीविपंजेसिन भगवंतुंडवुनु, परमपुरुषुंडवुनु नैन नीकु नमस्करितु। नो वॊक्करुंडवय्युनु महदाद्यंबैन यी यशेष विश्वंबु मायाख्यंबैन यात्मीय शक्ति चेतं गल्पिंचि यंदु प्रवेशिंचि, यिंद्रियंबुलंदु वसिपुचु दत्तद्देवता रूपंबुलचे नाना प्रकारंबुल दारुवुलंदुन्न वह्निचंदंबुनं ब्रकाशितुवु। अदियुनुं गाक ॥ 280 ॥

चं. वरमति नार्त बांधव! भवद्घन बोध समेतुडै भव-
च्चरणमु वीदि नट्टि विधि सर्गमु सुप्तजनुंडु बोध मं-
दरयग जूचुरीति गनु नट्टि मुमुक्षु शरण्यमैन नी
चरणमुलं गृतज्ञुडगु सज्जनु डॆट्लु दलंपकुंडॆडुन्? ॥ 281 ॥

निश्चय करके, स्तुति की क्रिया में समर्थ न होने पर, स्थित ध्रुव को, समस्त भूतों के अन्तर्यामी होनेवाले ईश्वर ने उसकी (ध्रुव की) इच्छा जानकर, वेदमय होनेवाले अपने शंख से उस बालक के कपोलतल को स्पर्श किया तो जीव-ईश्वर के निर्णयज्ञ एवं भक्तिभाव में निष्ठ होनेवाले ध्रुव ने निखिल लोक में विख्यात कीर्तियुक्त ईश्वर की भगवत्-प्रतिपादित होते हुए वेदात्मक होनेवाले अपने वाक्यों से इस प्रकार स्तुति की— हे देव! तुम निखिल शक्तिधर हो। अन्तःप्रविष्ट हो। ऐसे तुम लीन होनेवाले मदीय वाक्यों को, प्राणेंद्रियों को, कर, चरण, त्वक् (शरीर) आदियों को चित् (ज्ञान) की शक्ति से कृपा करके जीवित करनेवाले भगवान [और] परमपुरुष हो, तुमको नमस्कार करता हूँ। यद्यपि तुम एक हो, परन्तु फिर भी महत् आदि से युक्त इस अशेष विश्व की मायाख्य (माया नामक) आत्मीय शक्ति से कल्पना करके उसमें प्रवेश करके, इंद्रियों में रहते हुए तत्-तत् (उन-उन) देवता-रूपों से नाना प्रकारो से दारुओं (लकड़ियों) में रहनेवाली वह्नि (आग) की तरह प्रकाशमान होते हो। इसके अतिरिक्त, २८० [चं.] हे आर्तबांधव! वर (श्रेष्ठ) मति से भवत् (तुम्हरे) घन (महान्) बोध (ज्ञान)-समेत होकर भवच्चरण प्राप्त करने वालीविधि सर्ग (सृष्टि) है। जैसे सुप्त जन बोध (-ज्ञान) में (जाग्रत् अवस्था में) देखकर जानता है, वैसे देखनेवाले मुमुक्षुओं के लिए शरण्य होने वाले तुम्हारे चरणों का स्मरण कृतज्ञ सज्जन कैसे नहीं करता? २८१

सी. महितात्म ! मद्रि जन्म मरण प्रणाशन हेतुभूतुंडवु निद्ध कल्प
तरुववु नगु निन्नु दग नॆव्वरे नेमि पूनि नी माया विमोहितात्मु
लगुचु धमार्थ कामादुल कौरकु दा मर्चिचुचुनु द्रिगुणाभमैन
देहोपभोग्यमै दीपिंचु सुखमुल नंनयंग मदिलोन नॆंतुरट्टि

ते. विषय संबंध जन्यमै वॆलयु सुखमु
वारिकि निरयमंदुनु वड्रलु देव !
भूरि संसारताप निवार गुण क-
थामृतापूर्ण ! यीश ! माधव ! मुकुंद ! ॥ 282 ॥

म. अरविंदोदर ! तावकीन चरण ध्यानानुरागोल्लस-
च्चरिताकर्णन जात भूरि सुखमुल् स्वानंदक ब्रह्म मं-
दरयन् लेवट दंड भृद्भट विमानाकीर्णुलं कूलु ना-
सुर लोकस्थुल जंप्पनेल ? सुजन स्तोमैक चिंतामणी ! ॥ 283 ॥

चं. हरि ! भजनीय मार्ग नियतात्मकुलं भवदीय मूर्ति पै
वरलिन भक्ति युक्तुलगुवारल संगति गल्गजेयु स-
त्पुरुष सुसंगतिन् व्यसन दुर्भवसागर मप्रयत्नतन्
सरस भवत्कथामृत रसंबुन मत्तुडनै तरिचॆदन् ॥ 284 ॥

[सी.] हे महितात्मन् ! हे देव ! भूरि (बड़े) संसार के ताप का निवारण करने के गुणों की कथा रूपी अमृत से पूर्ण हे ईश ! हे माधव ! हे मुकुंद ! [तुम तो] जनन-मरण [तथा] प्रणाशन (नाश) के हेतुभूत हो [और] इद्ध (शुद्ध) कल्पतरु होनेवाले तुमको अच्छी तरह जो कोई भी हो, प्रयत्न करके तुम्हारी माया से विमोहितात्मा होते हुए, धर्म, अर्थ और काम आदि के लिए स्वयं अर्चना करते हुए, त्रिगुणों की आभा से देह के लिए उपभोग्य होकर दीप्त होनेवाले सुखों को [अपने] मन में सोचते है, [ते.] वैसे विषयों के संबध से जन्य होकर मिलनेवाला सुख उनको नरकलोक में भी मिल जाता है। २८२ [म.] हे अरविंदोदर (विष्णु) ! सुजनों के स्तोम (समूह) के लिए एक चिंतामणि ! कहते हैं, तावकीन (तुम्हारे) चरणों के ध्यान से अनुराग करने से उल्लसत् (सतोष के साथ) चरितों के आकर्णन (सुनने) से जात (उत्पन्न) भूरि (बड़े) सुख स्वानंदक (निर्गुण) ब्रह्म में पाये नहीं जाते; दण्डभृत (यम) के भटों के विमानाकीर्ण (विमानों से घेरे जाकर) [नरक में] गिर जानेवाले उन सुरलोकस्थों के बारे में क्या कहना ? २८३ [चं.] हे हरि ! भजनीय मार्ग [में] नियतात्मा बनकर भवदीय मूर्ति पर बढ़नेवाली भक्ति से युक्त होनेवालों की संगति [मुझे] मिलने दो। सत्पुरुषों की सुसंगति से व्यसन रूपी दुर्भव (दुष्टभव) सागर को, बिना किसी प्रयत्न के, सरसता के साथ भवत्कथा [रूपी] अमृत-रस में मत्त बनकर तरूँगा (पार

चं. निरतमु दावकीन भजनीय पदाब्ज सुगंधलब्धि यें-
दवरि मदि नोंदगा गलुगु वारलु तत्प्रिय मर्त्य देहमु
न्नरय दधीय दार तनयादि सुहृद् गृह बंधुवर्गमुन्
मरतुरु विश्वतोमुख ! रमाहृदयेश ! मुकुंद ! माधवा ! ॥ 285॥

सी. परमात्म ! मर्त्य सुपर्व तिर्यङ्मृग दितिज सरीसृप द्विजगणादि
संव्याप्तमुनु सदसद्विशेषंबुनु गैकोनि महदादि कारणंबु-
नैन विराड् विग्रहंबु ने नेरुगुदु गानि तविकन सुमंगळमु नैन
संतत सुमहितैश्वर्य रूपंबुनु भूरि शब्दादिव्यापार शून्य-
ते. मैन ब्रह्म स्वरूपमेनात्म नेरुग, प्रविमलाकार संसार भय विदूर !
परम मुनिगेय! संतत भागधेय! नळिननेत्र ! रमाललनाकळत्र! ॥286॥

सी. सर्वेश ! कल्पांत समयंबुनंदु नी यखिल प्रपंचंबु नाहरिंचि
यनयंबु शेष सहायुंडवै शेष पर्यंक तलमुन बव्वळिंचि
योगनिद्रारति नुंडि नाभो-सिंधुजस्वर्ण लोक कंजातगर्भ-
मंदु जतुर्मुखु नमर बुट्टिंचुचु रुचिनोप्पु ब्रह्मस्वरूपिवैन
ते. नीकु म्रोक्कॆद नत्यंत नियम मोप्प,
भव्यचारित्र ! पंकजपत्रनेत्र !

करूँगा)। २८४ [चं.] हे विश्वतोमुखवाले ! रमाहृदयेश ! मुकुंद ! माधव ! निरत (निरन्तर) तावकीन (तुम्हारे) भजनीय पदाब्जों की सुगंध की लब्धि जिनके मन में होती है, विचार करने पर तत्प्रिय (उनके लिए प्रिय) होनेवाली मर्त्य देह के बारे में, तदीय (उनके) दारा (पत्नी), तनय (पुत्र) आदि, सुहृत् (मित्र), गृहबंधुवर्ग (समूह) को भूल जाते हैं। २८५ [सी.] मर्त्य, सुपर्व (देवता), तिर्यक् मृग, दितिज (राक्षस), सरीसृप, द्विजगण आदि के संव्याप्त और सत् [एवम्] असत् विशेष को लेकर महत् आदि के कारण होनेवाले विराट्विग्रह को मैं जानता हूँ। लेकिन शेष सुमंगल होनेवाले संतत (सदा) सुमहित ऐश्वर्य रूप को, भूरि (बड़े) शब्द आदि व्यापार से शून्य होनेवाले, [ते.] हे प्रविमलाकारवाले ! संसार-भय-विदूर (दूर करनेवाले) ! हे परममुनिगेय ! संतत भागधेय ! नलिन-नेत्रवाले ! रमा-ललना-कलत्र ! परमात्मन् ! ब्रह्मस्वरूप को मैं अपनी आत्मा में नहीं जानता। २८६ [सी.] हे सर्वेश ! कल्पांत समय, इस अखिल प्रपंच (संसार) का आहरण कर, (निगलकर) सतत [आदि] के शेष सहायक होने पर शेष के पर्यंक-तल पर लेटकर, योगनिद्रारत (मग्न) होकर, नाभी [रूपी] सिंधुज स्वर्णलोक के कंजात (कमल) के गर्भ में चतुर्मुख (ब्रह्मा) को अच्छी तरह पैदा करते हुए, [ते.] प्रकाशमान होनेवाले ब्रह्मस्वरूप वाले तुम्हें, हे भव्यचरित्र ! पंकजपत्रनेत्र ! चिर शुभाकार ! नित्य

बिरशुभाकार ! नित्यलक्ष्मीविहार !
यव्ययानंद ! गोविंद ! हरि ! मुकुंद ! ॥ 287 ॥

व. अट्लु योगनिद्रापरवशुंडवय्युनु जीवुल कंटे नत्यंत विलक्षणुंडवै युंडुदु । अदि येट्लनिन, बुद्ध्यवस्था भेदंबुन नखंडितंबैन स्वशक्ति जेसि चूचुलोक पालन निमित्तंबु यज्ञाधिष्ठातवु, गावुन नीवु नित्य मुक्तुंडवु, परिशुद्धुंडवु । सर्वज्ञुंडवु, नात्मवु, कूटस्थुंडवु, नादिपुरुषुंडवु, भगवंतुंडवु, गुणत्रयाधीश्वरुंडवुनै वर्तितुवु । भाग्यहीनुंडैन जीवुनि यंदु नी गुणंबुलु गलवु । ए सर्वेश्वरुनं देनेमि विरुद्धगतुलै विविधशक्ति युक्तंबुलैन यविद्याबुलानुपूर्व्यंबुनं जेसि प्रलीनंबुलगुचुंडु नट्टि विश्वकारणंबु नेकंबु ननंतंबु नाद्यंबु नानंदमात्रंबु नविकारंबु नगु ब्रह्मंबुनकु नमस्करिंचेद । मरियु देवा ! नीवु सर्वविध फलंबनि चिंतिचु निष्कामुलैन वारिकि राज्यादि कामितंबुललोन परमार्थंबैन फलंबु सर्वार्थरूपुंडवैन भवदीय पादपद्मंबुल सेवनंब । इट्लु निश्चितंब यैननु सकामुलैन दीनुलनु, गोवु वत्संबुनु स्तन्यपानंबु सेयिपुचु वृकादि भयंबुवलन रक्षिचु चंदंबुनं गामप्रदुंडवै संसारभयंबु वलनं बापुदुवु । अनि यिट्लु सत्यसंकल्पुंडुनु, सुज्ञानियुनैन ध्रुवुनि चेत विनुतिपंबडि भृत्यानुरक्तुंडैन भगवंतुंडु संतुष्टांतरंगुंडै यिट्लनियें ॥288॥

लक्ष्मी-विहार-वाले ! अव्ययानंद वाले ! गोविंद ! हरि ! मुकुंद ! अत्यंत नियमपूर्वक तुम्हें नमस्कार करता हूँ । २८७ [व.] उस प्रकार योगनिद्रापरवश होकर रहते हुए भी, जीवों से अत्यंत विलक्षण होकर रहते हो; वह कैसा है ? [ऐसा पूछोगे] तो बुद्धि के अवस्थाभेद से अखडितास्वशक्ति से देखनेवाले [तुम] लोकपालन के निमित्त यज्ञ के अधिष्ठाता हो, इसलिए तुम नित्यमुक्त हो, परिशुद्ध हो, सर्वज्ञ हो, आत्मा हो, कूटस्थ हो, आदिपुरुष हो, भगवान हो [और] गुणत्रयाधीश्वर होकर वर्तमान रहते हो । भाग्यहीन होनेवाले जीव में ये गुण नहीं होते । जिस सर्वेश्वर में विरुद्धगतिवाली विविध शक्तियुक्ता अविद्याएँ आनुपूर्व्य होने के कारण प्रलीना होती रहती हैं; वह [सर्वेश्वर] विश्वकारण, एक, अनंत, आद्य, मात्र आनंद, [और] अविकार है, ऐसे उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ । और भी, देव ! तुम्हीं को सर्वविध फल मानकर चिंता करनेवाले निष्कामियों को राज्य आदि कामितों में परमार्थ होनेवाला फल, सर्वार्थ-रूप होनेवाला फल भवदीय पाद-पद्मों का सेवन ही है । इस प्रकार निश्चित होने पर भी सकामी होनेवाले दीनों के लिए जैसे गाय वत्स को स्तन्य पान कराते हुए, वृक (भेड़िया) आदि के भय से [उस वत्स की] रक्षा करती है, वैसे कामप्रद होकर, संसार के भय को दूर करते हो । इस प्रकार सत्यसंकल्प वाले [तथा] सुज्ञानी होनेवाले ध्रुव से विनुति (स्तुति) की जाने पर भृत्यों के प्रति अनुरक्त होनेवाले भगवान ने संतुष्ट अंतरंगवाला बनकर इस प्रकार

कं. धीरव्रत ! राजन्य कु, मारक ! नी हृदयमंदु मसलिन कार्यं
बारूढिगा नॆरुंगुदु, नारय नदि वॊंदरानिदॆननु नित्तुन् ॥ 289 ॥

व. अवि यॆट्टिदनिन नॆंदॆनि मेधि यंदु वरिभ्राम्यमाण गोचक्रंबुनं बोलि ग्रह नक्षत्र तारागण ज्योतिश्चक्रंबु नक्षत्र रूपंबुलैन धर्माग्नि कश्यप शक्रुलुनु, सप्तर्षुलुनु, दारा समेतुलै प्रदक्षिणंबु दिरुगु चुंडुदुरट्टि दुरापंबुनु, ननन्याधिष्ठितंबुनु, लोकत्रय प्रळयकालंबु नंदु नश्वरंबु गाक प्रकाशमानंबुनुनैन ध्रुवक्षितियनु पदंबु मुंदट निरुवदियारु वेलॆड्लु सन ब्रापितुवु। तत्पद प्राप्ति पर्यंतंबु भवदीय जनकुंडु वनवासगतुंडैनं दद्राज्यंबुगा पूज्यंबुगा धर्ममार्गंबुन जितेंद्रियुंडवै चेयुदुवु। भवदनुजुंडगु नुत्तमुंडु मृगयार्थंबु वनंबुनकुं जनि मृतुंडगु। तदन्वेषणार्थंबु तदाहितचित्तयै तन्मातयु वनंबुनकुं जनि यंदु दावदहन निमग्नयगु। वॆंडियु ॥ 290 ॥

सी. अनघात्म ! मरि नीवु यज्ञरूपुंडनदगु नशु संपूर्ण दक्षिणंबु-
लगु मखंबुल चेत नर्चिचि सत्यंबुलगु निह सौख्यंबु लनुभविंचि
यंत्यकालमुन नन्नात्म दलंचुचु मरि सर्वलोक नमस्कृतमुनु
महि बुनरावृत्ति रहितंबु सप्तर्षि मंडलोन्नतमगु मामकीन

कहा। २८८ [कं.] हे धीरव्रत ! हे राजन्यकुमारक ! तुम्हारे हृदय में जो कार्य वर्तमान है, उसे मैं दृढ़ रूप से जानता हूँ। देखने पर वह अप्राप्य होने पर भी मैं दे दूँगा। २८९ [व.] अगर तुम पूछते हो कि वह कैसा है, किसी भी मेधी (पशुओं को बाँधने की लकड़ी) में परिभ्राम्यमान (परिभ्रमण करनेवाले) गोचक्र (गायों के समूह) की तरह ग्रह, नक्षत्र, तारागण, ज्योति का चक्र, [और] नक्षत्र-रूप होनेवाले धर्म, अग्नि, कश्यप, शक्र (इन्द्र) [और] सप्तर्षि दारा (पत्नी)-समेत होकर प्रदक्षिणा करते रहते हैं। ऐसे दुराप (दुष्प्राप्य) [और] अनन्य अधिष्ठित [को] लोकत्रय के लयकाल मे नश्वर न होकर प्रकाशमान होनेवाले ध्रुव-क्षिति नामक पद को आगे छब्बीस हज़ार वर्षों के बीत जाने पर पाओगे। तत्पद की प्राप्ति पर्यंत, भवदीय जनक के बनवासगत होने पर, उसके राज्य को पूज्य बनाकर, धर्ममार्ग पर जितेंद्रिय होकर, पालन करोगे। भवत् (तुम्हारा) अनुज उत्तम मृगयार्थ वन में जाकर मृत होगा। तत् (उसके) अन्वेषणार्थ तत् (उसके लिए) आहित (लग्न)-चित्ता बनकर तत् (उसकी) माता भी वन में जाकर उसमें दावदहन (दावाग्नि) [में] निमग्ना बनेगी। फिर २९० [सी.] हे अनघात्मा ! और तुम यज्ञरूप कहलाने योग्य होने वाले दक्षिणा-सहित संपूर्ण बने मेरे मखों से अर्चना करके सत्य होनेवाले इह (इस लोक के) सौख्यों का अनुभव करके, अंत्य काल में आत्मा में मेरा स्मरण करते हुए, फिर सर्व लोकों से नमस्कृत, मही पर पुनरावृत्ति

ते. पदमु दगु बौंदगलवनि परमपुरुषु
डतनि यभिलषितार्थंबु लर्थि निच्चि
यतडु गनुगोनुचुंडंग नात्म पुरिकि
गरुड गमनुडु वेंचेसें गौतुकमुन ॥ 291 ॥

ते. अंत ध्रुवुडुनु बंकेरुहाक्ष पाद-
कमल सेवोपसादित घनमनोर-
थमुल दनरियु दनदु चित्तंबुलोन
दृष्टि बौंदक चनियें विशिष्टचरित ! ॥ 292 ॥

व. अट्लु ॥ 293 ॥

कं. अनि मैत्रेयुडु ध्रुवु ड-
ट्लनयमु हरिचे गृतार्थुडैन विधं बॅ-
ल्लनु विनुपिंचिन विदुरुडु,
विनि मुनिवरु जूचि पलिकॅ विनयंबेसगन् ॥ 294 ॥

कं. मुनिनायक ! विनु कामुक, जन दुष्प्रापंबु विष्णु चरणांबुरुहा
र्चन हितजन संप्राप्यमु, नन गल पंकेरुहाक्षु नव्ययपदमुन् ॥ 295 ॥

व. पॅक्कु जन्मंबुलं गानि पौंदरानि पदंबु दा नौक्क जन्मंबुनने पौंदियुं दन मनंबुनंदप्राप्त मनोरथुंड ननि पुरुषार्थ वेदियेन ध्रुवुंडॅट्लु तलंचॅ ? अनिन मैत्रेयुं डिट्लनियें ॥ 296 ॥

(पुनर्जन्म)-रहित सप्तर्षि-मंडल से उन्नत होनेवाले, [ते.] मामकीन (मेरा) पद प्राप्त करोगे —इस प्रकार कहकर परमपुरुष उसकी (ध्रुव की) अभिलाषाओं के अनुसार से देकर, उसके देखते समय, वह गरुड़-गमन (विष्णु) कौतुक से आत्मपुरि (अपने नगर) को चला गया। २९१ [ते.] हे विशिष्ट चरित्रवाले ! तब ध्रुव पंकेरुहाक्ष (विष्णु) के पाद [रूपी] कमलों की सेवा [से] उपसादित (प्रदत्त) घन (बड़े) मनोरथों से तृप्त होकर भी अपने चित्त में तृप्ति न पाकर चला गया। २९२ [व.] इस प्रकार २९३ [कं.] यों मैत्रेय के कहने पर कि ध्रुव किस प्रकार सदा हरि से कृतार्थ हुआ, विदुर ने सुनकर मुनिवर को देखकर अत्यंत विनय से पूछा २९४ [कं.] हे मुनिनायक ! सुनो। कामुक जनों के लिए दुष्प्राप्य [तथा] विष्णु के चरणांबुरुहों की अर्चना करनेवाले हित जनों से संप्राप्य कहलानेवाले पंकेरुहाक्ष (विष्णु) के अव्यय पद को, २९५ [व.] जो अनेक जन्मों के अनन्तर भी अप्राप्य होता है, उसे स्वयं एक ही जन्म में पाकर भी, अपने मन में [अपने को] अप्राप्त-मनोरथ (जिसे अपना मनोरथ प्राप्त नहीं हुआ हो) कहकर, पुरुषार्थवेदी होनेवाले ध्रुव ने क्यों समझा ? ऐसा कहने पर मैत्रेय ने इस प्रकार कहा। २९६ [ते.] हे अनघ ! काकी

मरलि वच्चुचु नुन्न कुमारु वार्त
जारुचे विनि युत्तानचरणु डपुडु ॥ 302 ॥

व. मनमुन निट्लनि तलंचॆ ॥ 303 ॥

कं. चच्चिन वारलु ग्रम्मर, वच्चुटये काक यिट्टि वार्तलु गलवे ?
निच्चलु नमंगळुड नगु, दिच्चट मरि नाकु शुभमु लेल घटिंचुन् ? ॥304॥

कं. अनि विश्वसिंपकुंडियु, मनमंदुनु नारदुड गुमारुडु वेगं
बुन रागलडनुचुनु वलि, किन पलुकुलु दलचि नम्मि कृतकृत्युंडै ॥305॥

कं. तन सुतुनि राक जॆप्पिन
घनुनकु धनमुलुनु मौक्तिकपुहारमुलुन्
मन मलर निच्चि तनयुनि
गनुगॊनु संतोष मात्म गडलु कॊनंगन् ॥ 306 ॥

सी. वलनु मीरिन सैंधवंबुल बून्चिन कनकरथंबुनुत्कंठ नॆक्कि
ब्राह्मण कुलवृद्ध बंधु जनामात्य परिवृतुंडगुच विस्फुरण मॆरसि
ब्रह्म निर्घोषतूर्यस्वनशंख काहळ वेणुरवमुलॆबॆंद चॆलग
शिबिक लॆक्किकयु विभूषितलै सुनीति सुरुचुलुत्तमुंडु नाकडि नडव

ते. गरिम दीपिंप नति शीघ्र गमन मॊप्प
नात्म नगरंबु वॆलुवडि यरुगुचुडि

समाचार चरों के द्वारा सुनकर उत्तान-चरण (-पाद) ने तब, ३०२ [व.] मन में इस प्रकार सोचा । ३०३ [कं.] मृत लोगों का लौट आने के अतिरिक्त, ऐसा समाचार [कहीं] हो सकते हैं ? नित्य अमंगल होनेवाले मेरे यहाँ शुभ कैसे घटित हो सकते हैं ? ३०४ [कं.] इस प्रकार विश्वास न होने पर भी, मन में नारद की कही हुई बातों का स्मरण करते हुए कि [तुम्हारा] कुमार जल्दी ही लौट आयेगा [और] उन पर विश्वास करके कृत-कृत्य होकर, ३०५ [कं.] अपने सुत के आने की वार्ता (समाचार) जिसने सुनाई उस घन (श्रेष्ठ पुरुष) को धन और मौक्तिकों के हार आनन्द से देकर [अपने] तनय को देखने की इच्छा के मन में अधिक होने पर, ३०६ [सी.] वश से बाहर (अत्यधिक बलशाली) सैंधवों (घोड़ों) से जुते हुए कनक-रथ पर उत्कंठा के साथ आरूढ़ होकर, ब्राह्मण, कुलवृद्ध, बंधुजन [तथा] अमात्यों से परिवृत (घिरे हुए) होते हुए, विस्फुरण (प्रकाश) से चमककर, ब्रह्म के निर्घोष (वेदघोष) तूर्य के स्वन, शंख, काहल [और] वेणु के रव (ध्वनियों) के जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) व्याप्त होने पर, शिविकाओं पर चढ़कर विभूषिताएँ बनकर सुनीति, सुरुचि और उत्तम के अच्छी तरह चलने पर, [ते.] गरिमा (श्रेष्ठता) के दीप्त होने पर, अतिशीघ्र गमन के

बलसि नगरोपवन समीपंबुनंदु
वच्चु ध्रुवुगनि मेदिनीश्वरुडु नंत ॥ 307 ॥

चं. अरदमु डिग्ग प्रेम दोलकाड नसंभ्रमुडै रमा मनो-
हर चरणारविंदयुगळार्चन निर्दळिताखिलाघु नी-
श्वर करुणावलोकन सुजात समग्र मनोरथुन् सुतुन्
गर मनुरक्ति डासि पुलकल् ननलोत्त ब्रमोदितात्मुडै ॥ 308 ॥

ते. बिगिय गौगिट जेर्चि नेम्मोगमु निविरि
शिरमु मूर्कोनि चुबुकंबु चेत बुणिकि
यव्ययानंदबाष्प धाराभिषिक्तु
जेसि याशीर्वदिप ना चिरयशुंडु ॥ 309 ॥

कं. जनकुनि याशीर्वचनमु
लनयमु गैकोनि प्रमोदियै तत्पदमुल्
दन फालतलमु सोकग
विनतुलु गाविंचि भक्ति विह्वलुडगुचुन् ॥ 310 ॥

ते. अंतना सज्जनाग्रणियैन ध्रुवुडु
दल्लुलकु भक्ति विनतुलु दग नोनर्चि
सुरुचिकिनि म्रोक्क नर्भकु जूचि यैत्ति
नगु मोगंबुन नालिगनंबु जेसि ॥ 311 ॥

शोभित होने पर, आत्म (अपने) नगर से निकलकर [स्वजनों से] परिवेष्टित होकर जाते समय, नगर के उपवन के पास, आनेवाले ध्रुव को देखकर मेदिनीश्वर (राजा) के तब ३०७ [चं.] रथ [से] उतर कर, प्रेम के उमड़ने पर, आश्चर्य के साथ रमा (लक्ष्मी) के [अपने] मनोहर (पति) के चरण रूपी अरविंद के युगल (जोड़े) की अर्चना से निर्दलित (नाश किये गये) अखिल अघ (पाप) वाले, ईश्वर की करुणा [पूर्ण] अवलोकन (दृष्टि) से सुजात [और] समग्र मनोरथ वाले सुत को अधिक अनुरक्ति से समीप जाकर पुलकांकुरित हो जाने से प्रमुदित आत्मा वाले बनकर, ३०८ [ते.] कसकर आलिंगन में ले करके, उसके सुंदर मुँह को सहला कर, सिर सूँघकर, चिबुक हाथों से पकड़कर, अव्यय (सतत) आनद-बाष्पों की धारा से अभिषिक्त करके, आशीर्वाद देने पर, वह चिर यश [वाला] ३०९ [कं.] [अपने] जनक (पिता) के आशीर्वचन बार-बार स्वीकार करके, प्रमुदित होकर, तत् पद (उनके चरण) अपने फाल तल को लगे, ऐसा विनतियाँ करके भक्ति से विह्वल होते हुए, ३१० [ते.] तब सज्जनों में अग्रणी होनेवाले उस ध्रुव ने माताओं को भक्ति से विनतियाँ अच्छी तरह समर्पित कीं। सुरुचि ने तो नमस्कार करनेवाले उस अर्भक (बालक) को

सी. करमॊप्प नानंद गद्गद स्वरमुन जीविंपुमनुचु नाशीर्वदिंचॆ
भगवंतुडॆव्वनि पै मैत्रि वाटिंचु सत्कृपानिरति प्रसन्नुडगुचु
नतनिकि दमयंत ननुकूलमै युंडु सर्वभूतंबुलु समत वॊंदि
महि दलपोय निम्न प्रदेशमुलकु ननयंबु चेरुतोयमुल पगिदि

ते. गान घनु नम्महात्मुनि गारविंचॆ
सुरुचि पूर्वंबु दलपक सुजनचरित !
विष्णुभक्तुलु धरनु पवित्रु लगुट
वारि कलुगरु धरणि नॆव्वारु मरियु ॥ 312 ॥

व. कावुन नुत्तमुंडुनु ध्रुवुंडुनु प्रेमविह्वलु लगुचु नन्योन्यालिंगितुलै पुलकांकुरालंकृत शरीरुलै यानंद बाष्पंबुल नॊप्पिरंत सुनीतियु दन प्राणंबुलकंटॆ प्रियुंडैन सुतु नुपगूहनंबु चेसि तदवयवस्पर्शनंबु चेत नानंदंबु नॊंदि विगतशोक यय्यॆ नप्पुडु संतोष बाष्पधारासिक्तंबुलै चनुबालु गुरिसॆनंत ॥ 313 ॥

सी. उन्नत संतोष मुप्पतिल्लग बौर जनमु ला ध्रुवु तल्लि नॆनय जूचि
तॊडरिन भवदीय दुःखनाशकुडैन यिट्टि तनूजुडॆन्नेनि वॆंट्ट

देखकर [और] उठाकर हँसमुख (आनन्द) से आलिंगन करके, ३११ [सी.] अधिक आनंदयुक्त गद्गद स्वर से आशीर्वाद दिये कि जीते रहो। भगवान जिस पर सत्कृपा की निरति (आसक्ति) से प्रसन्न होते हुए मैत्री दिखाता है, उसे सर्वभूत (प्राणी) आप-से-आप वैसे समता के साथ अनुकूल रहते है जिस प्रकार सोचकर देखने से मही पर निम्न प्रदेशों की ओर तोय (जल) सदा बहता रहता है। [ते.] इसलिए, हे सुजन-चरित्र! सुरुचि ने पूर्व [घटना] का स्मरण न करके घन (श्रेष्ठ) होनेवाले उस महात्मा (ध्रुव) का गौरव किया। धरा पर विष्णु के भक्तों के पवित्र होने के कारण धरणी पर फिर कोई उनसे नाराज नहीं होता। ३१२ [व.] इसलिए उत्तम और ध्रुव प्रेम [से] विह्वल होते हुए अन्योन्य आलिंगन कर, पुलकांकुरों से अलंकृत-शरीरी बनकर, बाष्पों से विलसित हुए। तब सुनीति भी अपने प्राणों से भी बढ़कर प्रिय होने वाले सुत से उपगूहन (आलिंगन) करके तत् (उसके) अवयवों [के] स्पर्श से आनन्द पाकर विगत-शोका बनी। तब संतोष की बाष्प-धारा से सिक्त (भीगकर) होकर स्तन्य भी बरसा। तब ३१३ [सी.] उन्नत संतोष के अधिक हो जाने पर पौरजनों ने उस ध्रुव की माता को देखकर [कहा] दुःख का नाशक ऐसा तनूज (पुत्र) बहुत लम्बे समय के पहले जो नष्ट हुआ (घर छोड़कर चला गया), वह अब तुम्हारे, भाग्यवश प्रतिलब्ध (प्राप्त) हुआ। हे इद्ध (पवित्र) महिमावाली! वह सारे

कालंबु क्रिदट गडगि नण्टुंडेन वाडिण्डु नी भाग्यवशमु चेतं
ब्रति लब्धुडय्येनु. नितडु भूमंडल मेल्लनु रक्षिचु निद्धमहिम

ते. गमललोचनु जिंतिचु घनुलु लोक
दुर्जयंबैनयट्टि मृत्युवुनु गेल्लु-
रट्टि प्रणतार्ति हरुडैन यब्जनाभु
डर्थि नी चेत बूजितुं डगुट निजमु ॥ 314 ॥

व. अनि प्रशंसिचिरिट्लु पौरजनंबुल चेत नुपलाल्यमानुंडगु ध्रुवुनि नुत्तानपादुंडुत्तम समेतंबुगा ध्रुवुनि गजारूढुनि जेसि संस्तूयमानुंडुनु, प्रहृष्टांतरंगुंडुनु नगुचु बुराभिमुखुंडै चनुदेंचे ॥ 315 ॥

सी. स्वर्णपरिच्छद स्वच्छ कुड्यद्वार लालित गोपुराट्टालकंबु
फल पुष्पमंजरी कलित रंभास्तंभ पूग पोतादि विभूषितंबु
घनसार कस्तूरिका गंधजल बंधुरासिक्त बिपणि मार्गांचितंबु
मानित नवरत्नमय रंगवल्ली विराजित प्रतिगृह प्रांगणंबु

ते. शुभनदी जलकुंभ संशोभितंबु
तंडुलस्वर्ण लाजाक्षत प्रसून
फल बलिव्रात कलित विभ्राजितंबु
नगुचु सर्वतोलंकृतमैन पुरमु ॥ 316 ॥

भूमण्डल की रक्षा करेगा। [ते.] कमललोचन की चिन्ता (ध्यान) करनेवाले घन [जन] (श्रेष्ठ लोग) लोक में दुर्जया होनेवाली मृत्यु को जीत लेते हैं। वैसे प्रणत और आर्तिहर होनेवाले अब्जनाभ (विष्णु) के इच्छापूर्वक तुमसे पूजित होना सच है। ३१४ [व.] इस प्रकार प्रशंसा की। उस प्रकार पौरजनों से उपलाल्यमान (लाड़-प्यार किए जाने पर) ध्रुव को संस्तूयमान (प्रशंसित) होते हुए, उत्तानपाद उत्तम-समेत (श्रेष्ठता से) गजारूढ़ बनाकर, प्रहृष्ट (बहुत संतुष्ट) अंतरंग वाला होते हुए पुराभिमुखी होकर (पुर की ओर) चला। [आकर] ३१५ [सी.] स्वर्ण-परिच्छद (ओढ़ने का वस्त्र = परदे), स्वच्छ कुड्य (दीवारों) द्वारों [से] लालित (सुन्दर लगनेवाले) गोपुरों और अट्टालिकाओं से युक्त, फल और पुष्प की मंजरियों (गुच्छों) से कलित (भरे हुए) रंभास्तंभों (केले के तनों) से [और] पूगपोत (सुपारी के पेड़ों) आदि से विभूषित, घनसार (कर्पूर), कस्तूरिकागंध युक्त जल के छिड़के हुए विपणि-मार्ग (बाज़ार) से अंचित (अलंकृत) मानित (मान्य), नवरत्नमय रंगवल्लियों से विराजित प्रतिगृह के प्रांगणों से युक्त, [ते.] शुभ नदीजल [से पूर्ण] कुंभों से संशोभित, तंडुल (चावल), स्वर्ण-लाज, अक्षत, प्रसून, फल, बलि (पूजा-द्रव्य) के समूह से कलित [एवं] बिभ्राजित (प्रकाशित) होनेवाले सर्वतः (सब

व. प्रवेशिंचि राजमार्गंबुन जनुदेंचुनप्पुडु ॥ 317 ॥

म. हरिमध्यल् पुरकामिनी जनुलु सौधाग्रंबुलंदुंडि भा-
स्वर सिद्धार्थ फलाक्षत प्रसव दूर्वा व्रातदध्यंबुवुल्
करवल्लीमणि हेमकंकण झणत्कारंबु शोभिल्ल ज
ल्लिरि या भागवतोत्तमोत्तमुनिपै लीलाप्रमेयंबुगन् ॥ 318 ॥

व. इट्लु वात्सल्यंबुनं जल्लुचु सत्यवाक्यंबुल दीविंचुचु सुवर्ण पात्र रचित मणिदीपनीराजनंबुल निवाळिपं बौर जानपद मित्रामात्य बंधुजन परिवृतुंडै चनुदेंचि ॥ 319 ॥

सी. कांचनमय मरकत कुड्य मणिजाल संचय राजित सौधमुलनु
वर सुधाफेन पांडुर रुक्म परिकर दांत परिच्छद तल्पमुलनु
सुरतरुशोभित शुकपिक मिथुनाळि गान विभासितोद्यानमुलनु
सुमहित वैडूर्य सोपान विमल शोभित जलपूर्ण वापी चयमुल

ते. विकच कह्लार दर दरविंद कैर-
व प्रदीपित बक चक्रवाक राज-

तरह से) अलंकृत पुर [में] ३१६ [व.] प्रवेश करके राजमार्ग पर जाते समय, ३१७ [म.] हरिमध्या (पतली कमर वाली) पुर की कामिनियों (स्त्रियों) ने सौधों के अग्र भागों पर से उस भागवतोत्तम पर भास्वर (प्रकाशमान), सिद्धार्थ (सफ़ेद राई) फल, अक्षत, प्रसव (फूल), दूर्वा-व्रात (-समूह), दधि (दही)-अंबुओं (छाँछ) को, कर-वल्ली (हाथ रूपी लता) के मणि [और] हेम-ककणों के झणत्कार (झनझन की ध्वनि) के शोभायमान होने पर, लीला-अनुमेय से (विलास के साथ) छिड़क दिया। ३१८ [व.] इस प्रकार वात्सल्य से [मंगल द्रव्यों को] छिड़कते हुए, सत्यवाक्यों से आशीर्वाद देते हुए, सुवर्णपात्रों [में] रचित (सज्जित) मणि [के] दीपों से नीराजन की आरति देने पर, पौर [पुरजन एवम्] जानपद, मित्र, अमात्य, [तथा] बंधुजन [से] परिवृत होकर आकर, ३१९ [सी.] कांचनमय और मरकत [के] कुड्यों (दीवारों) पर जड़े हुए मणियों के जाल (समूह) के संचय से राजित सौधों को, वर (श्रेष्ठ) सुधा (अमृत) [और] फेन [के जैसे] पांडुर (सफ़ेद), रुक्म (सुवर्ण) के परिकरों से दांत (उदात्त) परिच्छद (ढके हुए) तल्पों को (बिस्तरों को), सुरतरुओं से शोभित [एवम्] शुक-पिक के मिथुनों की आवलि (समूह) के गान (से) विभासित उद्यानों को, सुमहित वैडूर्यों से [निर्मित] सोपानों से [निर्मित] विमल और शोभित जल [से] पूर्ण वापी-चयों (वावलियों के समूह) को, [ते.] विकच (विकसित) कह्लार, थोड़ा [विकसित] अरविंद [और] कैरवों से प्रदीप्त, बक, चक्रवाक, राज-

हंस सारस कारंडवादि जलवि-
हंग निनदाभिराम पद्माकरमुल ॥ 320 ॥

व. मदियुनु ॥ 321 ॥

ते. चारु बहुविध वस्तु विस्तरत नौप्पि
नंगनायुक्त मगुचु बेंपग्गलिचि
यधिक दनरारु जनकु गृहंबु सौच्चॆ
नॆलमि त्रिदिवंबु सौच्चु देवेंद्रु पगिदि ॥ 322 ॥

अध्यायमु—१०

व. इट्लु प्रवेशिंचिन राजर्षियैन युत्तानपादुंडु सुतुनि याश्चर्यकरंबैन प्रभावंबु विनियुं जूचियु मनंबुन विस्मयंबु नौंदि प्रजानुरक्तुंडुनु प्रजासम्मतुंडुनु, नवयौवन परिपूर्णुंडुनुनैन ध्रुवुनि राज्याभिषिक्तुं जेसि, वृद्ध वयस्कुंडैन तन्नु दान यॆरिंगि यात्मगतिबौंद निश्चयिंचि विरक्तुंडै वनंबुनकुं जनियॆ। नंत ना ध्रुवुंडु शिशुमार प्रजापति कूतुरैन भ्रमि यनुदानि विवाहंबै दानिवलन गल्प वत्सरुलनु निद्दरु गौडुकुलं बडसि वॆंडियु वायुपुत्रियैन यिल यनु भार्ययंदुनुत्कल नामकुंडयिन कौडुकु, नति मनोहरयैन कन्या रत्नंबुनुं गनियॆ। नंत दद्भ्रातयैन युत्तमुंडु विवाहंबु

हंस, सारस, कारंडव आदि जलविहंगों के निनद (ध्वनि) [से] अभिराम (सुन्दर) [लगनेवाले] पद्माकरों को ३२० [व.] और ३२१ [ते.] चारु (सुन्दर) बहुविध वस्तुओं के विस्तार से युक्त [और] अंगनाओं [से] युक्त होते हुए, अधिक शोभा पाकर, बहुत प्रकाशमान [अपने] जनक (पिता) के गृह में त्रिदिव (स्वर्ग) में प्रवेश करनेवाले देवेंद्र की तरह प्रवेश किया। ३२२

अध्याय—१०

[व.] इस प्रकार प्रवेश करने पर, राजर्षि उत्तानपाद [अपने] सुत का आश्चर्यकर प्रभाव [के बारे में] सुनकर [और] देखकर, मन में विस्मय पाकर, प्रजानुरक्त, प्रजासम्मत [तथा] नवयौवन [से] परिपूर्ण होने वाले ध्रुव को राज्याभिषिक्त बनाकर, स्वयं अपने वृद्धवयस्क होनेवाला को जानकर, आत्मागति (मोक्ष) पाने का निश्चय करके विरक्त बनकर, वन में गया। तब ध्रुव ने शिशुमार प्रजापति की पुत्री भ्रमि नामक [युवती] से विवाह करके, उससे कल्प [और] वत्सर [नामक] दो पुत्रों को पाकर, फिर वायु की पुत्री इला नामक पत्नी से उत्कल नामक

लेकुंडिय मृगयार्थंबु वनंबुन करिगि हिमवंतंबुन यक्षुनि चेत हतुंडय्यॆ।
ननि तल्लियु दद्दुःखंबुन वनंबुन केगि यंदु गहन दहनंबुन मृति बॊंदॆ।
ध्रुवुंडु भ्रातृ मरणंबु विनि कोपामर्ष व्याकुलित चित्तुंडै जैत्रंबगु रथंबॆक्कि
युत्तराभिमुखुंडै चनि हिमवद्द्रोणियंदु भूतगण सेवितंबुनु, गुह्यक संकुलंबुनु-
नैन यलकापुरंबु वॊडगनि यम्महाबाहुंडु ॥ 323 ॥

म. घन शौर्योन्नति तोड सर्वककुभाकाशंबुलंदु ब्रति-
ध्वनु लोलिन् निगुडंग शंखमु महोद्यल्लील बूरिप द-
न्निनदंबुन् विनि यक्षकांतलु भयान्वीतात्मलै रुग्र सा-
धनुलै यक्षभटुल् पुरिन् वॆडलि रुत्साहंबु संधिल्लगन् ॥ 324 ॥

व. इट्लु वॆडलि या ध्रुवुनि दाकिन ॥ 325 ॥

चं. करमु महारथुंडु भुजगर्व पराक्रमशालियुन् धनु-
र्धरुडुनु शूरुडौ ध्रुवुडु दन्नु नॆदिर्चिन यक्षकोटि जं-
च्चॆर बदुमूडु वेल नॊक चीरिकि गैकॊनकॊवक पॆट्ट भी-
करमुग मूडु मूडु शितकांडमु लंदग ग्रुच्च नेसिनन् ॥ 326 ॥

पुत्र को [और] अतिमनोहरा होनेवाली कन्यारत्न को पाया। तब तत् (उसका) भ्राता उत्तम विवाह न करके मृगयार्थ (शिकार खेलने के लिए) वन में जाकर, हिमवत् प्रदेश में यक्ष से मारा गया। उसकी माता भी तत् (उस) दुःख से वन में जाकर उसमें गहन (तीव्र) दहन (अग्नि) में मृति को पायी। ध्रुव भ्राता के मरण को (के बारे में) सुनकर कोप, अमर्ष (क्रोध) शोक [से] व्याकुलित चित्त वाला बनकर जैत्ररथ पर चढ़कर उत्तराभिमुखी हो [बनकर] जाकर, हिमवद्द्रोणि (हिमवत्-पर्वत) पर भूतगणों से सेवित, गुह्यकों से भरे हुए अलकापुर को देखकर, उस महाबाहु के ३२३ [म.] घन (बड़े) शौर्य की उन्नति से, सर्वककुभों (दिशाओं) में [और] आकाश में प्रतिध्वनियों के क्रम से व्याप्त हो जाने पर, शंख को महान् उद्यत लीला से बजाने पर, तत् (उस) निनाद (ध्वनि) को सुनकर, यक्ष-कांताएँ भय से अन्वीता (पूर्ण) आत्मा [वाली] बनीं। यक्षों के भट उग्रसाधन वाले बनकर [और] उत्साह से भरकर नगर से बाहर निकले। ३२४ [व.] इस प्रकार निकलकर, उस ध्रुव से टकराया तो ३२५ [चं.] महान् महीरथी, भुज-गर्व तथा पराक्रम-शाली, धनुर्धर और शूर [होनेवाले] ध्रुव ने अपना सामना करनेवाले तेरह हज़ार यक्ष-कोटि (-समूह) की परवाह न करके शीघ्र एकसाथ भीकर हो, तीन-तीन शित कांडों (तेज़ बाणों) को निकालकर छोड़ दिया तो, ३२६ [उ.] वे ललाटों के फटने पर [युद्ध] न छोड़कर, शोषित-

उ. वारु ललाटमुल् वगिलि वारक शोषिलि तेरि यम्महो-
दारु पराक्रम प्रकट धैर्यमु दत्कर लाघवंबु व-
ल्माऱु नुतिंचुचुं गुपित मानसुलै पदताडित प्रदु-
ष्टोरग कोटि वोलॅ जटुलोग्र भयंकर रोषमूर्तुलै ॥ 327 ॥

उ. आ रथिकोत्तमुं दोडरियंदरु नोक्कट जुट्टुमुट्टि या
ड्राऱु शिलीमुखंबुल ददंगमुलन् बगिलिंचि वेंडि वि-
स्फार गदा शर क्षुरिक पट्टिस तोमर शूल खड्गमुल्
सारथि युक्तुडैन रथिसत्तमुपै गुरियिंचि रेपुनन् ॥ 328 ॥

व. अट्लु गुरियिंचिन नतंडु ॥ 329 ॥

कं. पेंपड्रियुंडेनु धारा, संपात च्छन्नमैन शैलमु भंगिन्
गुंपुलु गोनि याकसमुन, गंपिंपुचु नपुडु सिद्ध गणमुलु वरुसन् ॥ 330 ॥

कं. हाहाकारमु लॅसगग, नोहो ! यी रीति ध्रुवपयोरुह हितुडु-
त्साहमु चॅडि यिटु दैत्य स, मूहार्णवमंदु नेडु मुनिगॅनॅ यकटा! ॥ 331 ॥

व. अनि चिंतिंचु समयंबुन ॥ 332 ॥

कं. ता मातनि गॅलिचिति मनि, या मनुजाशनुलु वलुक नट नीहार
स्तोममु समयिंचु महो, द्दामुंडगु सूर्यु बोलि दद्दयु वोचॅन् ॥ 333 ॥

होकर भी [फिर] होश पाकर, उस महान उदार का पराक्रम, प्रकटित धैर्य और तत् (उसके) कर (हस्त)-लाघव की अनेक बार नुति (प्रशंसा) करते हुए कुपित मानस वाले होकर, पद (चरण) से ताडित (कुचले हुए) प्रदुष्ट (अधिक दुष्ट) उरग (साँपों)-कोटि (समूह) की तरह बड़े उग्र, भयंकर और रोष (क्रोध) के मूर्ति बनकर, ३२७ [उ.] उस रथिकोत्तम को संभ्रम के साथ सबने एक साथ घेरकर, अधिक शीघ्रता के साथ वाण-षट्कों से (छः छः वाणों से) [उसके] अंगों को वेधकर, विस्फार (बड़ी) गदा, शर, क्षुरिका, पट्टिस, तोमर, शूल [और] खड्ग को सारथियुक्त रथि-सत्तम (ध्रुव) पर ज़ोर से बरसाया। ३२८ [व.] ऐसे बरसाने पर उसका (ध्रुव का) ३२९ [कं.] जब सिद्धगणों ने लगातार भीड़ों में (झुण्ड बाँधकर) आकाश को कंपित करते हुए आक्रमण किया तो धारासंपात से आच्छन्न बने शैल की तरह [ध्रुव का] विजृंभण घट गया। ३३० [कं.] ओहो ! इस प्रकार ध्रुव [रूपी] पयोरुहहित (सूरज) उत्साह खोकर ऐसे दैत्यसमूह [रूपी]-अर्णव (समुद्र) में अरे ! आज डूब गया है। ऐसे हाहाकार अधिक हुए। ३३१ [व.] इस प्रकार चिंतित होते समय ३३२ [कं.] उन मनुजाशनों (राक्षसों) के कहने पर कि उन्होने उसे जीत लिया, उधर नीहारस्तोम (ओस के समूह) का नाश करनेवाले महान् उद्दाम (तेजस्वी) सूरज की तरह अधिक (प्रकाशमान)

व. अट्लु दोचिन ॥ 334 ॥

म. अरिदुःखावहमैन कार्मुकमु गार्य स्फूर्तितो दाल्चि
कर वाणावळि बिज पिज गऱवंगा नेसि झंझानिलुं
डुरु मेघावळि बाऱदोलु गति नत्युग्राहव क्रूर बं-
धुर शस्त्रावळि रूपुमापॆ विलसद्दोर्लील संधिल्लगन् ॥ 335 ॥

चं. मरियुनु नम्महात्मुडसमान बलुंडु महोग्र बाणमुल्
गऱिगऱि दाक नेसि भुजगर्व मॆलर्प विरोधि मर्ममुल्
पऱियलु सेसि यंगमुलु भंगमु नॊंदग जेसॆ व्रेल्मिडिन्
गुऱिक्रॊनि पर्वतंबुल वगुल्चु महाशनि कोटि रूपुनन् ॥ 336 ॥

व. अय्यवसरंबुन ॥ 337 ॥

चं. अलघुचरित्रु डम्मनु कुलाग्रणि चे विकलांगुलैन वा-
रल सकिरीट कुंडल विराजित मस्तक कोटिचे समु-
ज्ज्वल मणिकंकणांगद लसद्भुजवर्गमु चेत संगर
स्थल मति रम्यमै तनरॆ संचित वीर मनोहराकृतिन् ॥ 338 ॥

व. अंत हतशेषुलु ॥ 339 ॥

दिखाई पड़ा। ३३३ [व.] उस प्रकार दिखाई पड़ने पर, ३३४ [म.] अरि (शत्रुओं) को दुःखावह (दुःख देनेवाले) कार्मुक (धनुष) को शौर्य की स्फूर्ति से धारण करके, भीकर बाणों की आवलि डालकर, मानो झंझानिल (आँधी) के उरु (बड़े) मेघों की आवलि (पंक्ति) को दूर हटाने के समान, अति उग्र, अहित (शत्रु) के लिए क्रूर, बंधुर (तेज) शस्त्रावलि से विलसत् (प्रकाशमान) दोर्लीला (भुजाओं के पराक्रम) के जमने पर, (शत्रुओं का) नाश किया। ३३५ [चं.] और वह महात्मा, असमान बली, महान उग्र बाणों को कठिन शब्द करते हुए [और] भुजाओं के गर्व (बल) के विजृंभित होने से (ऐसे छोड़ा कि उन बाणों ने) विरोधियों के मर्मस्थलों को वेधकर, अंगों का भंग करके, चुटकी भर समय में, पर्वतों को तोड़नेवाले महान् अशनि [वज्र) की कोटि के समान [शत्रुओं को समाप्त कर दिया।] निशाने पर लगकर, ३३६ [व.] उस अवसर पर, ३३७ [चं.] अलघु (श्रेष्ठ) चरित्रवाले उस मनुकुल के अग्रणी (ध्रुव) से विकलांग होनेवालों के किरीट [और] कुण्डल-सहित विराजमान होनेवाले मस्तकों की कोटि से समुज्ज्वल होनेवाले मणि [यों से जडित]-कंकणों के अंगदों (बाजूबन्द) [से] लसत् [शोभित] होनेवाले भुज-वर्ग (-समूह) से संगर (युद्ध) [का] स्थल अति रम्य (सुन्दर) अंचित वीर-मनोहर-आकृति से शोभित हुआ। ३३८ [व.] तब हतशेष (मरने से बचे हुए) ३३९ [कं.] श्रेष्ठ बली, मनु

कं. वर बलुडगु मनु मनुमनि, शरसंछिन्नांगुलगुचु समरविमुखुलै
हरि राजमु गनि पऱचेंडु, करिबृंदमु वोलें जनिरि कळवळपडुचुन् ।।340।।

कं. अप्पुडु राक्षस मायलु, गप्पिन ध्रुवु डसुरवरुल कार्यं बॆऱुगन्
जॊप्पडक वारि बॊडगन, वॆप्पर मगुटयुनु सारथि गनि यंतन् ।। 341 ।।

कं. तलपोयग भुवि माया, वुल कृत्यं बॆऱुग नॆवरु वोलुदु रनुचुन्
बलुकुचु दत्पुरि जॊरगा, दलपग नदि गानराक तद्यु मानॆन् ।। 342 ।।

व. अट्लु पुरंबुन कऱुगुट मानि चित्ररथुंडैन या ध्रुवुंडु सप्रयत्नुंडय्युनु बर प्रतियोग शंकितुंडैयुंडे। अय्यंड महा जलधि घोषंबु ननुकरिंचु शब्दंबु विनंबडॆ। अंत सकल दिक्तटंबुल वायुजनितंबयिन रजःपटलंबु दोचॆ तत्क्षणंब नाकाशंबुन विस्फुरत्तटित् प्रभाकलित गर्जारवयुक्त मेघंबुलुनु-नमोघंबुलुगुचु भयंकराकारंबुलं तोचॆ। अंत ।। 343 ।।

म. अनयंबुन् ध्रुवु मीद दैत्यकृत मायाजाल मट्लेचि बो-
रन मस्तिष्क पुरीष मूत्र मल दुर्गंधास्थि मेदश्शरा-
सन निस्त्रिंश शरासितोमर गदाचक्र त्रिशूलादि सा-
धन भूभृद्भुजगावळि गुरिसॆ नुद्दंड क्रिया लोलतन् ।। 344 ।।

के पोते के शरों से संछिन्न (कटे हुए) अंगवाले होते हुए, समर [से] विमुख होकर, हरिराज (सिंह) को देखकर भाग जानेवाले करि (हाथियों के) वृंद (समूह) की तरह घबराते हुए भाग गये। ३४० [कं.] तब राक्षसों की माया के आच्छादित करने पर ध्रुव ने असुरवरों के कार्य को जानने में असमर्थ होकर, उनका पता लगाना कठिन होने से, सारथि को देखकर तब ३४१ [कं.] सोचने पर भुवि पर मायावियों (धोखेबाजों) का कृत्य जानने के लिए कौन समर्थ हो सकता है —ऐसा बोलते हुए उस पुरि में प्रवेश करने की इच्छा करके, उसके न दिखाई पड़ने से, उसे (उस प्रयत्न को) छोड़ दिया। ३४२ [व.] उस प्रकार पुर में जाना बन्द कर, चित्ररथ वाला वह ध्रुव सप्रयत्न होकर भी, परों (शत्रुओं) के प्रतियोग की शंका करते हुए रह गया। उस समय महाजलधि के घोष का अनुकरण करनेवाला शब्द सुनाई पड़ा। तब सकल दिशाओं के तटों में, वायु से जनित (उत्पन्न) रजःपटल (धूल का समूह) तत्क्षण आकाश में विस्फुरत् (प्रकाशमान)-तटित् (बिजली की)-प्रभा (कांति) से कलित (मिश्रित) गरज के रव (शब्द) युक्त मेघ अमोघ होकर, भयंकर आकार में दिखाई पड़े। तब ३४३ [म.] सदा ध्रुव पर दैत्यों के कृत मायाजाल को उस प्रकार सताकर, शीघ्र मस्तिष्क, पुरीष, मूत्र, मल की दुर्गन्ध से [पूर्ण] अस्थि, मेदस (चर्वी), शरासन, निस्त्रिंश शर, असि (खड्ग), तोमर, गदा, चक्र, त्रिशूल आदि साधन,

व. मरियु मत्तगज सिंह व्याघ्र समूहंबुलुनु, नूर्मि भयंकरंबै सर्वतः प्लवनंबगिन समुद्रंबुनु गानंबडियें। वेंडियु गल्पांतंबुनंबु वोलें भीषणंबैन महाह्लादंबुनुं दोचें। इव्विधंबुन नानाविधंबुल ननेकंबुल नविरळ भयंकरंबुलु नगिन यसुर मायलु घूर प्रवर्तनुलगु यक्षुल चेत सृज्यमानंबुलै यरें। आ समयंबुन ॥ 345 ॥

कं. अनयंबुनु नय्यक्षुल, घनमाय नेंरिगि मुनिनिकायमु वरसन्
मनुमनुमनि मनु मनुमनि, मनमुन वलपुचुनु दत्समक्षंबुनकुन् ॥ 346 ॥

व. चनुदेंचि यिट्लनिरि ॥ 347 ॥

सी. अनघात्म! लोकुलंव्वनि दिव्यनामंबु, समत नाकर्णिंचि संस्मरिंचि
दुस्तरंबैन मृत्युवु नैन सुखवृत्ति, जडि पितु रट्टि योश्वरुंडु परुडु
भगवंतुडुनु शार्ङ्गपाणियु भक्तिजन, नार्ति हरुंडगु नट्टि विभुडु
भवदीय विमतुल बरिमार्चुगाकनि, पलिकिन मुनुल संभाषणमुलु

ते. विनि कृताचमनुडयि मा विभुनि पाद
कमलमु दलंचि रिपु भयंकर महोग्र
कलित नारायणास्त्रंबु गार्मुकमुन
वून दडव वदीप संधानमुननु ॥ 348 ॥

भूभृत (पहाड़ी) भुजगावलि उद्दंड क्रिया से लोल होकर बरसे। ३४४ [व.] और मत्तराज, सिंह, व्याघ्रसमूह और ऊर्मियों (लहरों) से भयंकर होकर, सर्वतः प्लवन (बहनेवाला)-समुद्र दिखाई पड़ा। फिर कल्पांत में [होने की तरह] भीषण महाह्लद (सरोवर) दिखाई पड़ा। इस प्रकार नाना प्रकार की अनेक, अविरल (अधिक) भयंकर [होनेवाली] असुरों की मायाएँ क्रूर-प्रवर्तन (आचरण) वाले यक्षों से सृज्यमान होकर, विजृंभित हुईं। उस समय ३४५ [कं.] सतत [होनेवाली] उन यक्षों की घन (बड़ी) माया को जानकर, मुनियों का निकाय (समूह) क्रम से मनु के पौत्र के प्रति 'जीते रहो, जीते रहो' इस प्रकार मन में कहते हुए तत्समक्ष (उसके सामने) ३४६ [व.] आकर यों बोले। ३४७ [सी.] हे अनघात्म! लोग जिसके दिव्य नाम का समत्व से आकर्णन करके [और] संस्मरण करके दुस्तर होनेवाली मृत्यु को भी सुखवृत्ति (सरलता) से डराते हैं, ऐसा ईश्वर, पर, भगवान, शार्ङ्गपाणि [और] भक्तजनों की आर्ति (दुःख) को हरनेवाला, ऐसा विभु भवदीय विमतियों (शत्रुओं) का नाश करे! ऐसा बोलने से, मुनियों का संभाषण सुनकर, [ते.] कृत-आचमन हो (जल का आचमन करके), रमा (लक्ष्मी) के विभु (विष्णु) के पाद-कमलों का स्मरण करके, रिपुओं के लिए भयंकर, महा-उग्र, कलित (सुन्दर) नारायणास्त्र को कार्मुक (धनुष) पर संधान किया तो, उस संधान से ३४८

अध्यायमु—११

ते. कडग गुह्यक मायांधकार मपुडु
वॆरवु चॆंदि दव्वु दव्वुल विरिसि पोयॆ
विमलमैन विवेकोदयमुन जेसि
समयु रागादिकंबुल सरणि नंत ॥ 349 ॥

म. वर नारायण देवतास्त्र भव दुर्वार प्रभाहेम पुं-
खरुचिस्फारमराळ राजसितपक्ष क्रूर धारा पत-
च्छर साहस्रमुलोलि भीषण विपक्ष श्रेणिपै व्रालॆ भी-
कर रावंबुन गान जॊच्चु शिखि संघातंबु चंदंबुनन् ॥ 350 ॥

व. अट्लेसिन ॥ 351 ॥

चं. खर निशितोग्र सायक निकाय निरंतर वृष्टि चे बॊरि
बॊरि विकलांगुलै यडरि पुण्य जनुल् पृथु हेतिपाणुलै
गरुडुनि जूचि भूरि भुजग प्रकरंबु लॆदिर्चि पेर्चि चॆ-
च्चॆर नडतॆंचु चंदमुन जित्ररथुल् बलुपूनि ताकिनन् ॥ 352 ॥

अध्याय—११

[ते.] तब प्रयत्न करके, गुह्यकों का मायारूपी अंधकार, धैर्य खोकर, दूर-दूर ऐसे भागा जैसे विमल विवेक का उदय होने से राग आदि का अन्त हो जाता है। तब ३४९ [म.] वर (श्रेष्ठ) नारायण-देवता-अस्त्र से भव (उत्पन्न) दुर्वार (रोकने में कठिन)-प्रभा से युक्त [होकर] हेमपुंख (सोने की मूठ) की रुचि (कांति) से स्फार (प्रकाशमान) हो, मरालराज (राजहंस) की तरह श्वेत पक्षों (पंखों) से क्रूर (तेज़) धारा [के साथ] पतत् (गिरते हुए) शर-साहस्र (हज़ारों बाण) क्रम से भीषण-विपक्ष (-शत्रु) की श्रेणी पर आ गिरा जैसे भीकर रव (ध्वनि) से कानन में प्रवेश करनेवाली शिखियों (अग्निज्वालाओं) का संघात (समूह) आ बैठ जाता है। ३५० [व.] ऐसे डालने पर ३५१ [चं.] खर (तीव्र)-निशित (तेज़)-उग्र (भयंकर)-सायक (बाणों) के निकाय (समूह) की निरन्तर वृष्टि से बार-बार विकल अंगवाले बनकर, विजृंभित हो पुण्य-जन (यक्ष) पृथु (बड़े)-हेति (खड्ग) [युक्त] पाणी (हाथ वाले) होकर, गरुड़ को देखकर भूरि (बड़े) भुजंग-प्रकर (साँपों के समूह) के [उसका] सामना करके, जमकर जल्दी आने के समान, चित्ररथी (ध्रुव) का बल पाकर सामना करने पर, ३५२ [उ.] उनको [ध्रुव ने] चंड

उ. वारल जंड तीव्र शर वर्गमु चेत निकृत्त पाद जं-
घोरु शिरोधरांबक शिखोदर कर्णुल जेसि योगि पं-
केरुह मित्रमंडल सकृद्भिद नॅट्टि पदंबु जॅंबु ना-
भूरि पदंबुनं बॅलुच बॉदग वर्पं भुजा विजृंभियं ॥ 353 ॥

व. इव्विधंबुन ना चित्ररथुंडगु ध्रुवुनि चेत निहन्यमानुलुनु निरपराधुलुनु नयिन गुह्यकुलं जूचि यतनि पितामहुंडेन स्वायंभुवुंडु ऋषिगण परिवृतुंडै चनुदेंचि ध्रुवुनि जूचि यिट्लनियें। वत्सा ! निरपराधुलैन यी पुण्यजनुल नॅट्टि रोषंबुन वधियिंचिति वट्टि निरय हेतुवैन रोषंबु चालु। भ्रातृ-वत्सल ! भ्रातृवधाभितप्तुंडवै काविचु ना यत्नंबुडुगु मनि ॥ 354 ॥

कं. अनघा ! मनुकुलमुन किदि
यनुचितकर्मंब यॉकनिकै पॅवकंड्रि-
ट्लनि मॉन द्रुंगिरि यिदि नी-
कनयंबुनु बलवदुडुगुमय्य ! कुमारा ! ॥ 355 ॥

व. अदियुनुं गाक देहाभिमानंबुनं बशुप्रायुलै भूतहिंस गाविचुट हृषिकेशानु-वर्तुलयिन साधुवुलकुं दगदु। नीवु सर्वभूतंबुल नात्मभावंबुन दलचि सर्व भूतावासुंडुनु, दुराराध्युंडुनुनैन विष्णुनि पदंबुल बूजिचि तत्परमपदंबुनु

(भयकर) तीव्र शरों के वर्ग से, चीरे गये पाद (चरण), जांघ, ऊरु, शिरोधर, कंठ, अंबक (नेत्र), शिखा, उदर [और] कर्ण वाले बनाकर, योगि-पंकेरुह (-पद्म), मित्रमडल (सूर्यमंडल) को भी वेध करके, जिस पद को प्राप्त करता है, उस भूरि (उच्च) पद को अतिशयता से प्राप्त करने के लिए, भुजाओं से विजृंभण करके, भेजा। ध्रुव ने सबको उत्तम पद दिलाया। ३५३ [व.] इस प्रकार चित्ररथी उस ध्रुव से निहन्यमान (मारे गये) [और] निरपराधी गुह्यकों को देखकर, उसके पितामह स्वायंभुव ने ऋषिगण से परिवृत होकर, आकर, ध्रुव को देखकर, इस प्रकार कहा, हे वत्स ! निरपराधी इन पुण्य जनों का वध किस रोष (क्रोध) से किया है ? विना हेतु ऐसा रोष बस है (रोक दो)। भ्रातृवत्सल (बनकर) भ्रातृवध [से] अभितप्त (क्रोधी) बनकर किया जानेवाला यह प्रयत्न छोड़ दो। यों कहकर ३५४ [कं.] [हे] अनघ ! मनु के कुल में यह अनुचित कर्म है; एक के लिए अनेक इस प्रकार युद्ध में मर गये; यह [कर्म] तुमको कभी शोभा नहीं देता। हे कुमार ! [यह काम] छोड़ दो। ३५५ [व.] इसके अलावा देह के अभिमान से पशुप्राय होकर, हिंसा करना हृषीकेश के अनुवर्ती होनेवाले साधुओं के लिए अच्छा नहीं है। तुमने सर्वभूतों (जीवों) के आत्म-भाव को जानकर, सर्वभूतावासी [एवम्] दुराराध्य होनेवाले विष्णु के पदो की पूजा करके, तत्परमपद (उसका श्रेष्ठपद) प्राप्त किया। ऐसे भगवान को [तुम] हृदय में ध्यान करने

बौदिति। अट्टि भगवंतुनि हृदयंबुन ननुध्यातुंडवु, भागवतुल चित्तंबुलकुनु सम्मतुंडवु, मरियु साधुवर्तनुंडवननोप्पु नीवो पापकर्मं बॅट्लु सेय समकट्टिति ? वे पुरुषुंडॅन नेमि ? महात्मुल यंदु दितिक्षयु, समुलयंदु मैत्रियु, हीनुलयंदु गृपयु, नितरंबुलगु समस्त जंतुवुल यंदु समत्वंबुनु गलिगि वर्तिचु वानियंदु सर्वात्मकुंडैन भगवंतुंडु प्रसन्नुंडगु नतंडु प्रसन्नुंडयिन वाडु प्रकृति गुणंबुलं बासि लिंगशरीर भंगंबु गाविचि ब्रह्मानंदंबुनुं बौदु। नदियुनुंगाक कार्यकारण संघात रूपंबयिन विश्वंबीश्वरुनंदु नयस्कांत सन्निधानंबु गलिगिन लोहंबु चंदंबुन वर्तिचु। नंदु सर्वेश्वरुंडु निमित्त मात्रंबुगा बरिभ्रमिचु नट्टि योश्वरुनि मायागुण व्यतिकरंबुन नारब्धंबुलैन पंचभूतंब्रुल चेत योषित्पुरुष व्यवायंबु वलन योषित्पुरुषादि रूपसंभूति यगु। इव्विधंबुन दत्सर्गंबु, दत्संस्थानंबु, दल्लयंबुनगुचु नुंडु निट्लु दुर्विभाव्यंबैन कालशक्ति जेसि गुणक्षोभंबुन विभज्यमान वोर्युंडु, ननंतुंडु, ननादियुनै जनंबुल चेत जनंबुलं बुट्टिचुचुंडुटं जेसि यादिकरुंडुनु मृत्यु हेतुवुलगु जनंबुल लयंबु नौंदिचुटं जेसि यंतकरुंडुनु ननोदि यगुटं जेसि

वाले हो। भागवतों के चित्तों के लिए भी सम्मत हो। और भी, साधु-वर्तन कहलानेवाले तुम इस पापकर्म को करने के लिए कैसे तत्पर हुए हो ? चाहे कोई भी पुरुष क्यों न हो, महात्माओं के प्रति तितिक्षा और समों (समानों) के प्रति मैत्री, हीनो के प्रति कृपा [और] दूसरे समस्त जतुओं (प्राणियों) के प्रति समता दिखाकर [जीवित] रहने पर सर्वात्मा भगवान [उस पर] प्रसन्न रहता है। जिस पर वह (परमात्मा) प्रसन्न होता है, वह प्रकृति (सहज)-गुणों को छोड़कर, लिंगशरीर का भंग करके, ब्रह्मानन्द को पाता है। इसके अलावा कार्य [और] कारण [के] संघात [का] रूप होनेवाला यह विश्व ईश्वर में उसी प्रकार रहता है, जिस प्रकार अयस्कांत का सन्निधान (नैकट्य) रखनेवाला लोहा रहता है। उसमें सर्वेश्वर निमित्तमात्र होकर परिभ्रमण करता है। ऐसे ईश्वर की माया और गुण के व्यतिकर (परस्पर सम्मेलन) मे आरम्भ होनेवाले पंचभूतों से योषित्पुरुष (स्त्री और पुरुष) के व्यवसाय (सभोग) से योषित्पुरुष आदि की रूप-सभूति (-संभव) होती है। इस प्रकार तत्सर्ग (वह सृष्टि) [और] तत्संस्थान (उसकी स्थिति), तल्लय (उसका लय) होते रहते है। इस प्रकार दुर्विभाव्य (अनुमान करने में कठिन) होनेवाली कालशक्ति के कारण गुणों के क्षोभ में विभज्यमान वीर्य, अनन्त [और] आदि होकर जनों से जनों को पैदा करते रहने से आदिकर और मृत्यु हेतु होनेवाले जनों को लय कराने से अंतकर, और अनादि होने से अव्यय होनेवाला भगवान जगत् [का] कारण बनता है। इसलिए इस सृष्टि,

यव्ययुंडुनु नैन भगवंतुंडु जगत्कारणुंडगु। गावुन नी सृष्टि पालन विलयं-
बुलकुं गर्तगानिवानि वड्वुन दानि जेयुचुंडु निट्लु मृत्युरूपुंडुनु, बरुंडुनु,
समवर्तियुनैन योश्वरुनिकि स्वपक्ष परपक्षंबुलु लेवु। कर्माधीनंबुलयिन
भूत संघंबुलु रजंबुलु महावायुवु ननुसरिंचु चाड्पुन नस्वतंत्रंबुलगुचु
नतनि ननुवर्तिंचु। ईश्वरुंडुनु जंतु चयायुरुपचयापचय करणंबुलं
दस्पृष्टुंडुनु नगु जीवुंडु कर्मबद्धुंडगुटं जेसि कर्मंब वानिकि नायु रुपचया
पचयंबुलं जेयुचुंडु। मरियु सर्वजगत्कर्मसाक्षियगु सर्वेश्वरुनि ॥ 356 ॥

कं. कोंदरु स्वभावमंदुरु, कोंदरु कर्मंबटंड्रु, कोंदरु कालं
वंदुरु कोंदरु दैवं, बंदुरु कोंदरोगि गाम मंड्रु महात्मा ! ॥ 357 ॥

व. इट्टु लव्यक्त रूपुंडुनु, नप्रमेयुंडुनु नाना शक्त्युदय हेतुभूतुंडुनैन भगवंतुंडु
सेयु कार्यंबुलु ब्रह्मरुद्रादु लॅरुंगरट यतनि तत्त्वंबु नॅव्वरॅरुंग नोपुदु रबि
गावुन वुत्रा ! यिट्लुत्पत्ति स्थिति लयंबुलकु दैवंबु कारणंबै युंड नी
धनदानुचरुलु भवदीय भ्रातृहंतलगुदुरे ? भूतात्मकुंडु भूतेशुंडु भूत भावनुंडु
सर्वेश्वरुंडु परावरुंडु नगु नीशुंड मायायुक्तुंडै स्वशक्तिचे सृष्टि
स्थिति लयंबुलं जेयु। नयिन नहंकारंबुनं जेसि गुण कर्मंबुलचे नस्पृश्युंडगुचु

पालन, [तथा] विलय का कर्ता न होने के समान उसे करता रहता है।
इस प्रकार मृत्यु [का] रूप, पर [एवम्] समवर्ती होनेवाले ईश्वर के लिए
स्वपक्ष [और] परपक्ष नहीं होते। कर्म के अधीन होनेवाले भूतों (जीवों)
के संघ (समूह) जैसे रज (छोटे-छोटे कण) महावायु का अनुसरण करते
हैं, वैसे अस्वतन्त्र होते हुए उसका अनुवर्तन करते है। ईश्वर, जन्तुचय
(समूह) की आयु का उपचय (वृद्धि) [तथा] अपचय (हानि) करणों
(साधनों) में अस्पृष्ट होते हुए जीव के कर्मबद्ध होने के कारण उनके लिए
आयु का उपचय और अपचय करता रहता है। इसके अलावा सर्व जगत्
[का] कर्मसाक्षी होनेवाले सर्वेश्वर को ३५६ [कं.] कुछ लोग स्वभाव
कहते है; कुछ [लोग] कर्म कहते हैं; कुछ [लोग] काल कहते हैं; कुछ
लोग देव कहते हैं; हे महात्मन् ! कुछ लोग क्रम से काम (इच्छा)
कहते हैं। ३५७ [व.] इस प्रकार अव्यक्त रूप वाले, अप्रमेय नाना
शक्तियों के उदय का हेतु-भूत होनेवाले भगवान के किए जानेवाले कार्य
ब्रह्म और रुद्र आदि नहीं जानते —ऐसा कहते हैं। उसका तत्त्व और
कौन जान सकता है ? इसलिए, हे पुत्र ! जब इस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति
[और] नाश का दैव ही कारण बनकर रहता है, अतः धनद के ये अनुचर
भवदीय भ्रातृहंता हो सकते हैं ? भूतात्मा, भूतेश, भूतभावन वाला
सर्वेश्वर [तथा] परापर होनेवाला ईश ही मायायुक्त होकर, स्वशक्ति
से सृष्टि, स्थिति और लय करता है। फिर भी अहंकार के कारण गुणों

वर्तिचु नदियुनुंगाक यी प्रजापतुलु विश्वसृण्णामंबुल नियंत्रितुलै मुकुद्राळ्ळ वॅट्टिन पशुवुलु बोलें नॅव्वनि याज्ञाधीन कृत्युलै वर्तितुरट्टि दुष्टजन मृत्युवुनु, सुजनामृत स्वरूपुंडुनु, सर्वात्मकुंडुनु जगत्परायणुंडुनुनैन यीश्वरुनि सर्व प्रकारंबुल शरणंबु बॊंदु मदियुनुंगाक ॥ 358 ॥

सी. अनघात्म ! नीवु पंचाब्दवयस्कुंडवै पिनतल्लि निन्नाडिनट्टि
माटल निर्भिन्न ममु्ंड वगुचुनु जनियित्रि दिगनाडि वनमु केगि
तपमाचरिंचि यच्छपु भक्ति नीश्वरु बूजिंचि महित विभूति मॆरसि
प्रकट त्रिलोकोत्तरंबैन पदमुनु बॊंदिति वदिगान पूनि भेद

ते. रूपमैन प्रपंचंबु रूढि ने म, हात्मु नंदु प्रतीतमै यलरुनट्टि
यगुणु डद्वितीयुंडुनु नक्षरुंडु, नैन यीश्वरु बरमात्म ननुदिनंबु ॥ 359 ॥

सी. कैकॊनि शुद्धंबु गत मत्सरादिकं बमलंबु नगु हृदयंबुनंदु
सोलक कन्वेषिपुचुनु प्रत्यगात्मुंडु भगवंतुडुनु बरब्रह्म मयुडु
नानंद मात्रुंडु नव्ययु डुपपन्न सकल शक्ति, युतुंडु सगुणु डजुडु
नयिन सर्वेश्वरुनंदुत्तमंबैन सद्भक्ति जेयुचु समत नॊप्पि

ते. रूढिनि 'नहम्मम' यनि प्ररूढ मगुचु
घनत कॆक्कु नविद्यन् ग्रंथि नीवु

[एवम्] कर्मों से अस्पृश्य होते हुए रहता है। इसके अलावा ये प्रजापति विश्वसृट् [के] नामों से नियन्त्रित होकर, नथनी (नकेल) से बँधे हुए पशुओं की तरह, उसकी आज्ञा के अधीन कार्य करनेवाले होकर रहते हैं। दुष्टजनों की मृत्यु [और] सुजनों का अमृतस्वरूप, सर्वात्मक [तथा] जगत्परायण होनेवाले ईश्वर में सर्व प्रकार से शरण पाओ। इसके अलावा ३५८ [सी.] हे अनघात्मा ! तुमने पंच-अब्द (वर्ष) वयस्क होकर, [तुम्हारी] काकी ने जो बातें कहीं, उन बातों से निर्भिन्न (बेधा गया) मर्म [स्थल] वाला बनकर, जनयित्री (माँ) को छोड़कर, वन मे जाकर, तप करके स्वच्छ भक्ति से ईश्वर की पूजा करके, महित-विभूति (संपदा) से प्रकाशमान होकर, प्रकटित त्रिलोकों से उत्तर (उत्तम) होनेवाले पद को प्राप्त किया; [ते.] इसलिए प्रयत्न करके भेद-रूप वाला प्रपंच (संसार) निश्चय ही जिस महात्मा में प्रतीत (प्रसिद्ध) होकर विराजमान होता है, ऐसे अगुण (निर्गुण), अद्वितीय और अक्षर होनेवाले ईश्वर और परमात्मा को अनुदिन (प्रतिदिन) ३५९ [सी.] सप्रयत्न शुद्ध, गत-मत्सर आदि और अमल होनेवाले हृदय में अथक होकर अन्वेषण करते हुए, प्रत्यगात्मा भगवान, पर ब्रह्ममय, आनन्द मात्र, अव्यय, उपपन्न सकल शक्ति [से] युक्त, सगुण [और] अज होनेवाले सर्वेश्वर में उत्तम [होनेवाली] सद्भक्ति करते हुए, समता से विराजमान होकर, [ते.] रूढ़ि (स्थिरता)

द्रॆंचिवॆचिति कावुन धीवरेण्य !
सर्वशुभहानियॆन रोषंबु वलदु ॥ 360 ॥

कं. विनु रोषहृदयु चेतनु, ननयमु लोकमु नशिंचु नौषधमुलचे
घनरोगमुलु नशिंचिन, यनुवुन नदिगान रोष मडपु महात्मा ! ॥ 361 ॥

ते. अनघ ! नीदु सहोदर हंत लनुचु
वॆनचि यी पुण्यजनुल जंपिति कडंगि
परग निदियॆ सदाशिव भ्रात यॆन
यर्थ विभुनकु नपराधमय्यॆ गान ! ॥ 362 ॥

कं. नतिनुतुलचे नीविपु, डतनि ब्रसन्नुनिग जेयुमनि मनुवु दया
मति जप्पि ध्रुवुनिचे स, त्कृतुडै रयमॊप्प जनियॆ ऋषियुक्तुंडै ॥ 363 ॥

व. अंत ॥ 364 ॥

अध्यायमु—१२

ते. यक्ष चारण सिद्ध विद्याधरादि
जनगणस्तूयमानुडै धनदु डंत

से 'अहम्, अहम्' कहकर प्ररूढ़ (मजबूत) होते हुए बढ़नेवाली अविद्या रूपी ग्रन्थि को तुमने काट डाला। इसलिए हे धीवरेण्य (बुद्धिमानों में श्रेष्ठ) ! सर्व शुभों की हानि करनेवाला रोष नहीं होना चाहिए। ३६० [कं.] सुनो, रोष [युक्त] हृदय से (के कारण) सदा लोकों का वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे औषधों से घन (बड़े-बड़े) रोगों का नाश हो जाता है; इसलिए हे महात्मा ! रोष को दबाओ। ३६१ [ते.] हे अनघ ! अपने सहोदर (छोटे भाई) के हंतक कहकर इन पुण्य जनों को पकड़कर तुमने [उनकी] हत्या की। सोचकर [देखने से] यही सदाशिव का भ्राता होनेवाले [उस] अर्थ-विभु (धनपति = कुवेर) को यह [हत्या] अपराध [जैसा] लगी। इसलिए ३६२ [कं.] अति (विशेष) नुतियों (प्रशंसाओं) से तुम अब उसे प्रसन्न करो। इस प्रकार मनु दयामति [होकर] कहकर ध्रुव से सत्कृत होकर, ऋषियों के साथ शीघ्र चला गया। ३६३ [व.] तब ३६४

अध्याय—१२

[ते.] यक्ष, चारण, सिद्ध [और] विद्याधर आदि जनगण से स्तूयमान (प्रशंसित) होकर, तब धनद (कुवेर) पुण्यजनों के वैशस (हिंसा) से निवृत्त होनेवाले भूरि (बड़े) रोष [से] रहित [होनेवाले]

बुण्यजन वैशसनिवृत्तु भूरि रोष
रहितु डैनट्टि ध्रुवुनि जेरंग वच्चें ॥ 365 ॥

सी. चनुदेंचि वॅस गृतांजलियैन ध्रुवु जूचि, तिवुट निट्लनियें क्षत्रियकुमार !
तग भवदीय पितामहादेशंबु, ननु दुस्त्यजंबैन घन विरोध
मुडिगितिवट्लु गावुन दान जेसि नी यंदु बसन्नुंड नैति भूत-
जनन लयंबुल कनयंबु गालंबे, कर्तयै वर्तिच गान युष्म-

ते. दनुजु जंपिन वारली यक्षवरुलु
गारु तलपोय नी यक्षगणमु निट्लु
नॅरि वधिचिन वाडवु नीवु गावु
विनुत गुणशील ! माटलु वेयुनेल ? ॥ 366 ॥

व. अदियुनुं गाक ये बुद्धिजेसि कर्मसंबंधि दुःखादिकंबुलु देहात्मा-
नुसंधानंबुनं जेसि संभविचु नट्टि यहंत्वम्मनु नपार्थज्ञानंबु स्वप्नमंदुं
बोलॅनु पुरुषुनकुं दोचुनदि गावुन सर्वभूतात्म विग्रहुंडुनु, नधोक्षजुंडुनु,
भवच्छेदकुंडुनु, भजनीय पादारविंदुंडुनु, ननंतामेय शक्तियुक्तुंडुनु गुणमयि
-यगु नात्म मायचे विरहितुंडनुनैन यीश्वरुनि सेविंपुमु नीकु भद्रंबय्येंडु ।
भवदीय मनोगतंबैन वरंबु गोरुमु । नी वंबुजनाभ पादारविंद सेवनंबु
दिरंबुग जेयुदुवनि यॅरुंगुदु । अनि राजराजु चेत नट्लु महामतियु

ध्रुव के पास आया । ३६५ [सी.] आकर, शीघ्र ही कृतांजलि होनेवाले ध्रुव को देखकर, इच्छा से इस प्रकार कहा, "हे क्षत्रियकुमार ! [तुमने] अच्छी तरह भवदीय पिता के महान् आदेश से दुस्त्यज (छोड़े जा न सकने वाले) घन (तीव्र) विरोध को छोड़ दिया । इसलिए तत्कारण अब तुमसे [मैं] प्रसन्न हुआ । 'भूतों के जनन [और] लय के लिए सदा काल ही कर्ता होकर रह जाता है । [ते.] इसलिए युष्मत् (तुम्हारे) अनुज को मारनेवाले ये यक्षवर (श्रेष्ठ) नहीं है । सोचने पर इन यक्षगणों का इस प्रकार पराक्रम से वध करनेवाले तुम नहीं हो । हे विनुत गुण-शील [वाले] ! अनेक बातों से क्या प्रयोजन ? ३६६ [व.] इसके अलावा जिस बुद्धि के कारण कर्म संबंधी दुःख आदि देह [और] आत्मा के अनुसंधान से संभव होते हैं, वह 'अहम् [और] त्वम्' नामक अपार्थ-ज्ञान स्वप्न में [होने] की तरह पुरुष को लगता है । इसलिए सर्व भूतात्मा [का] विग्रह, अधोक्षज, भवच्छेदक, भजनीय पादारविंद वाले, अनन्त [और] अमेय शक्तियुक्त, गुणमयी होनेवाली आत्मा की माया से विरहित होनेवाले ईश्वर की सेवा करो । तुम्हारी भलाई होगी । भवदीय (अपने) मनोगत वर माँगो । मैं जानता हूँ कि तुम अंबुजनाभ के पादारविंद की सेवा स्थिर होकर करोगे ।" राजराजा (कुवेर) से इस

भागवतोत्तमुंडुनैन ध्रुवुंडु प्रेरेपिपंबडि ये हरिस्मरणंबु चेत नप्रयत्नंबुन दुरत्ययंबैन यज्ञानंबु दरियितुरट्टि हरिस्मरणं बचलितंबगुनट्लों- संगुमनि यडिगिन नट्लकाक्क यनि यंगीकरिंचि यंतं गुबेरुंडु संप्रीत चित्तुंडयि ध्रुवुनिकि श्रीहरि स्मरणं बट्ल यनुग्रहिंचि यंतर्धानंबु नोंदॆ। अंत ध्रुवुंडु यक्ष किन्नर किंपुरुषगण संस्तूयमान वैभवुंडगुचु नात्मीय पुरंबुनकु मरलि चनुदेंचि ॥ 367 ॥

सी. गणुतिप भूरि दक्षिणलचे गडु नॊप्प यज्ञमुल् सेय नय्यज्ञविभुडु
द्रव्यक्रियादेवता फलरूप सत्कर्मफल प्रदात ययि योप्पु
पुरुषोत्तमुनि नर्थि बूजिंचि मग्रियु सर्वोपाधि वर्जितु डुत्तमुंडु
सर्वात्मकुंडगु जलजाक्षु नंदु तीव्रंबुप्रवाह रूपंबु नैन

ते. भक्ति सलुपुचु भूत प्रपंचमंदु
नलर दनयंदु नुन्न महात्मु हरिनि
जिद चिदानंदमयु लक्ष्मीशु बरमु
नीश्वरेश्वरु बॊडगने निद्धचरित ! ॥ 368 ॥

व. इट्लु सुशील संपन्नुंडुनु ब्रह्मण्युंडुनु, धर्मसेतु रक्षकुंडुनु, दीन वत्सलुंडुनयि यवनि पालिंचु ध्रुवुंडु दन्नु ब्रजलु दंड्रि यनि तलंप निरुवदि यारु वेलेंड्लु

प्रकार महामति [मान] [तथा] भागवतोत्तम होनेवाले ध्रुव ने प्रेरित होकर यह वर माँगा कि हरि के जिस स्मरण से अप्रयत्न ही दुरत्यय (जिसे पार न किया जा सके) होनेवाले अज्ञान से तरते हैं। हरि का वह स्मरण अचल हो, ऐसा [वर] दे दो। 'ऐसा ही हो' यों अंगीकार करके, तब कुबेर संप्रीतचित्त होकर, ध्रुव को श्रीहरि के स्मरण का इस प्रकार अनुग्रह करके अंतर्धान हुआ। तब ध्रुव यक्ष, किन्नर, किंपुरुषगण [से] स्तूयमान वैभव [वाला] होते हुए, आत्मीयपुर में आकर ३६७ [सी.] प्रसिद्ध होने पर भूरि (बड़ी) दक्षिणाओं से बहुत बड़े यज्ञ करने पर, वह यज्ञ-विभु द्रव्य, क्रिया, देवता, फल, रूप [और] सत्कर्मों का फल-प्रदाता होकर प्रकाशमान होनेवाले पुरुषोत्तम की बड़ी इच्छा से पूजा की और सर्व उपाधियों को वर्जित [करनेवाला] उत्तम और सर्वात्मक होने वाले जलजाक्ष (विष्णु) में तीव्र [और] प्रवाह रूप होनेवाली भक्ति करते हुए, [ते.] भूतों के प्रपंच (संसार) में वर्तमान अपने में रहने वाले महात्मा हरि को चित्, अचित् [और] आनन्दमय [होनेवाले] लक्ष्मीश को, पर को, ईश्वरेश्वर को, [ध्रुव ने] हे इद्ध (पवित्र) चरित्र [वाले] ! देखा। ३६८ [व.] इस प्रकार सुशीलता से संपन्न, ब्रह्मण्य, धर्म [रूपी] सेतु का रक्षक और दीनवत्सल बनकर, अवनि का पालन करनेवाले, ध्रुव को प्रजा के पिता मानने पर, [ध्रुव ने] छब्बीस हज़ार

भोगंबुल चेतं बुण्यक्षयंबुनु, नभोगंबुलैन यागादुल चेत नशुभक्षयंबुनु जेयुचु बहुकालंबु दनुक द्रिवर्ग साधनंबुगा राज्यंबु सेसि कॊडुकुनकु बट्टंबु गट्टि यचलितेंद्रियुंडै यविद्या रचित स्वप्न गंधर्व नगरोपमंबयिन देहादिकंबगु विश्वंबु भगवन्माया रचितंबनि यात्मं दलंपुचु वॆंडियु ।। 369 ।।

चं. मनुनिभुडंत भृत्यजन मंत्रि पुरोहित बंधु मित्र नं-
दन पशु वित्त रत्न वनिता गृह रम्य विहार शैल वा-
रिनिधि परीत भूतल हरि द्विप मुख्य पदार्थजालमुल्
घनमति चे ननित्यमुलुगा दलपोसि विरक्तचित्तुडै ।। 370 ।।

सी. पुरमु वॆल्वडि चनि पुण्य भू बदरिका घन विशाला नदी कलित मंग-
ळांबु पूरंबुल ननुरक्तिमै ग्रुंकि कमनीय परिशुद्ध करणुडगुचु
वद्धासनस्थुडै पवनुनि बंधिचि नॆलकॊनि मुकुळित नेत्रुडगुचु
हरि रूप वैभव ध्यानंबु सेयुचु भगवंतु नच्युतु बद्मनेत्रु

ते. नंदु सततंबु निश्चलमैन यट्टि
भक्ति प्रवहिंप जेयुचु बरममोद
बाष्पधाराभिषिक्तुंडु भव्ययशुडु
बुलकितांगुंडु नगुचु निम्मुल दनर्चि ।। 371 ।।

वर्ष भोगों से पुण्य का क्षय, अभोग होनेवाले याग आदि से अशुभ का क्षय करते हुए बहुकाल तक त्रिवर्गसाधन के रूप में राज्य [का पालन] करके, [अपने] पुत्र का राजतिलक करके, अविचलित इन्द्रियवाला बनकर, अविद्या से रचित स्वप्न-गन्धर्व-नगर का उपमेय होनेवाले देह आदि से युक्त विश्व को भगवान की माया से रचित मानकर, आत्मा में समझा । [समझते हुए] फिर ३६९ [चं.] मनुनिभ ने (मनु के समान होनेवाले ने) तब भृत्यजन, मंत्रि, पुरोहित, बंधु, मित्र, नन्दन, पशु, वित्त, रत्न, वनिता, गृह, रम्य विहार-शैल, वारिनिधि (समुद्र) [से] परीत (घिरे हुए) भूतल, हरि (सिंह) [और] द्विप (हाथी) मुख्य (आदि) पदार्थ-जालों (समूहों) को [अपनी] घन (श्रेष्ठ) मति से अनित्य मानकर [तथा] विरक्त-चित्त बनकर ३७० [सी.] पुर से निकलकर, जाकर, पुण्यभूमि [होनेवाली] बदरिका [में] घन विशाल नदियों से कलित (भरित) मंगल-अंबुपूरों (नदियों) में अनुरक्ति से स्नान करके, कमनीय (सुन्दर) परिशुद्ध-करण वाला बनते हुए, बद्धासनस्थ होकर, पवन को रोककर, स्थिर रहकर, मुकुलित नेत्रवाला बनते हुए, हरि के रूप-वैभव [का] ध्यान करते हुए, [ते.] भगवान, अच्युत [एवम्] पद्मनेत्र में सतत निश्चल होनेवाली भक्ति [को] प्रवाहित करते हुए, परममोदयुक्त बाष्पधारा से अभिषिक्त, भव्य यशस्वी [और] सुखो के अतिशय में पुलकित अंगवाला होते

व. मरियु विगत क्लेशुंडनु, मुक्त लिंगुंडुनुनै ध्रुवुंडु तन्नु दा मरचियुंडु समयंबुन दश दिक्कुल नुद्यद्राका निशानायकुंडुनुं बोलें वेलिंगिपुचु नाकाशंबुन नुंडि योक्क विमानंबु सनुदेर नंदु देव श्रेष्ठुलुनु, चतुर्भुजुलुनु, रक्तांबुजेक्षणुलुनु, श्यामवर्णुलुनु, गदाधरुलुनु, सुवासुलुनु, गिरीटहारांगद कुंडल धरुलुनु, गौमार वयस्कुलुनु, नुत्तमश्लोक किंकरुलु नयिन वारल निद्दरं गनि संभ्रमंबुन लेचि मधुसूदनु नामंबुलु संस्मरिंचुचु वारल भगवत्किंकरुलंगा दलंचि दंडप्रणामंबु लाचरिंचिनं गृष्ण पादारविंद विन्यस्त चित्तुंडु गृतांजलियु विनमित कंधरुंडुनैन ध्रुवुनि गनुंगोनि पुष्करनाभ भक्तुलैन सुनंद नंदुलु प्रीतियुक्तुलै मंदस्मितुलगुचु निट्लनिरि ॥ 372 ॥

उ. ओ नृप ! नीकु भद्रमगु नोप्पगु चुन्न मदीय वाक्यमुल्
वीनुल यंदु जोन्पुमु विवेकमुतो नयिदेंड्ल नाडु मे-
धानिधिवै . योनर्चिन युदात्ततपोव्रत निष्ठ चेत दे-
जो नय शालियैन मधुसूदन दृप्ति दर्हिप जेयवे ? ॥ 373 ॥

ते. अट्टि शाङ्र्गपाणि यखिल जगद्भर्त
देव देवुडतुल दिव्यमूर्ति
पार्षदुलमु मेमु भगवत्पदंबुन
कर्थि निन्नु गोनुचु नरुगुटकुनु ॥ 374 ॥

हुए, ३७१ [व.] और विगत-क्लेश [और] मुक्तलिंग होकर, जब ध्रुव अपने-आपको भूलकर रहा, उस समय दसों दिशाओं को उद्यत् (प्रकाशमान)-राका (पूर्णिमा के)-निशानायक (चद्रमा) की तरह प्रकाशमान करते हुए, आकाश से एक विमान के आने पर, उसमें देवश्रेष्ठ, चतुर्भुज, रक्तांबुजेक्षण (लाल कमल के समान आँख वाले), श्याम वर्ण वाले, गदाधर, सुवासी (अच्छे वस्त्र पहने हुए), किरीट, हार, अंगद, कुंडलधारी, कौमार वयस्क वाले, उत्तमश्लोक (पुण्यी) वाले, किंकरों से युक्त दो [पुरुषों] को देखकर, संभ्रम से उठकर, मधुसूदन के नामों का स्मरण करते हुए, उनको भगवान के किंकर मानकर दंडप्रणाम करने पर, कृष्ण के पाद रूपी अरविंदों पर विन्यस्त (लगाये गये) चित्त [वाले], कृतांजलि [और] विनमित (झुका हुआ) कंधरवाला होनेवाले ध्रुव को देखकर पुष्करनाभ (विष्णु) के भक्त सुनन्द [और] नन्द प्रीतियुक्त होकर मंदस्मित होते हुए इस प्रकार बोले। ३७२ [उ.] हे नृप ! तुम्हारा मंगल हो ! अच्छे होनेवाले मदीय वाक्यों को कर्णों में प्रवेश करने दो। पांच वर्ष की वय (उम्र) में विवेक से मेधानिधि होकर की गई [अपनी] उदात्त तपोव्रत-निष्ठा से तेजोनयशाली होनेवाले मधुसूदन को तृप्त किया था न ! ३७३ [ते.] ऐसे शार्ङ्गपाणि के, जो अखिल जगत् का कर्ता देवदेव

व. वच्चितिमि। ये पदंबुनेनि सूरिजनंबुलु सर्वोत्तमं बनि पोंदुदुरु, देनि जंद्र दिवाकर ग्रह नक्षत्र तारागणंबुलु प्रदक्षिणंबुगा दिरुगुचुंडु, मरियु नीदु पितरुलचेतनु नन्युलचेतनु ननधिष्ठितंबुनु, जगद्वंद्यंबुनु, भक्तजनाति दुर्जयंबुनु नयिन विष्णुपदंबुं बोंदुदुवु। रम्मिदे विमान श्रेष्ठंबुत्तम श्लोक जन मौळिमणियैन श्रीहरि पुत्तेंचें। दीनि नेक्क नर्हुंडवनिन नुरु क्रम प्रियुंडयिन ध्रुवुंडु तन्मधुर वाक्यंबुलु विनि कृताभिषेकुंडयि यच्चटि मुनुलकु ब्रणमिल्लि तदाशीर्वादंबुलु गैकोनि विमानंबुनकुं ब्रदक्षिणार्चनंबुलु गाविंचि हरि पार्षदुलैन सुनंद नंदुलकु वंदनं बाचरिंचि भगवद्रूप विन्यस्त चक्षुरंतःकरणादिकुंडगुचु विमानाधिरोहणंबु गाविंचुटकु हिरण्मय रूपंबु धरियिंचें नप्पुडु ॥ 375 ॥

कं. सुरदुंदुभि पणवानक
मुरजादुलु मोरसें विरुलमुसुरु गुरिसें गि-
न्नर गंधर्वुल पाटलु
भरितमुलै चेलगेनपुडु भव्यचरित्रा ! ॥ 376 ॥

व. अट्टि समयंबुन ध्रुवुंडु दुर्गमंबगु त्रिविष्टपंबुनकु नेगु वाडगुचु दीनयगु

और अतुल दिव्यमूर्तिवाला है, हम पारिषद् (सदस्य) हैं। इच्छापूर्वक भगवत्-पद (-स्थान) को तुम्हें लिवा ले जाने ३७४ [व.] आये हैं। जिस पद को सूरि (पंडित) जन सर्वोत्तम कहकर प्राप्त करते है, जिसके [चारों ओर] चन्द्र, दिवाकर, ग्रह, नक्षत्र [तथा] तारागण प्रदक्षिणा-रूप में घूमते रहते हैं और तुम्हारे पितरों व अन्यों से अनधिष्ठित, जगत् [से] वंद्य, [एवम्] भक्तजनों के लिए अति दुर्जय होनेवाले विष्णु-पद को प्राप्त करोगे। आओ। लो, वह विमान-श्रेष्ठ है। उत्तमश्लोक (पुण्यी) जनमौलि के मणि होनेवाले श्रीहरि ने भेजा है। इस पर चढ़ने योग्य हो। इस प्रकार कहने पर उरुक्रम से प्रिय होनेवाले ध्रुव ने तत् (उनके) मधुर वाक्य सुनकर, कृत-अभिषेक (अभिषिक्त) होकर, वहाँ के मुनियों को प्रणाम करके, तत् (उनके)-आशीर्वाद लेकर, विमान को प्रदक्षिणा [और] अर्चनाएँ करके, हरि के पारिषद् होनेवाले सुनन्द [व] नन्द की वन्दना करके, भगवान के रूप पर रखे हुए चक्षु और अंतःकरण आदि वाला होते हुए विमान [पर] अधिरोहण करने के लिए हिरण्मय रूप का धारण किया। तब ३७५ [कं.] सुरदुंदुभि, पणव, आनक [और] मुरज आदि मुखरित हुए। पुष्पवृष्टि हुई। हे भव्यचरित्र वाले ! किन्नरों [और] गंधर्वों के [आनन्द से] भरित गीत गाये गये। ३७६ [व.] ऐसे समय पर ध्रुव दुर्गम त्रिविष्टप (स्वर्ग) को जानेवाला बनते हुए, दीना होनेवाली जननी को छोड़कर कैसे जाऊँगा — ऐसा सोचनेवाले को पारिषदों

जननि दिगनाडि यॆट्लु वोवुदु ननि चिंतिंचु वानि बाष्पंबु लवलोकिंचि यग्र भागंबुन विमानारूढयै येगुचुन्न जननि जूपिन संतुष्टांतरंगुंडगुचु ॥377॥

कं. जननि सुनीतिनि मुनु गनु-
गॊनि यवल विमान मॆक्कि गॊनकॊनि विबुधुल्
दनमीद बुष्प वर्षमु
लनयमु गुरियिंप ध्रुवुडु हर्षमु तोडन् ॥ 378 ॥

कं. चनि चनि वॆस ग्रहमंडल, मुनु त्रैलोक्यंबु सप्तमुनि मंडलमुन्
घनुडुत्तरिंचि यव्वल, दनरेडु हरिपदमु नॊंदॆ दद्दयु बीतिन् ॥ 379 ॥

व. अदि मरियुनु निजकांति चेतं द्रिलोकंबुलं ब्रकाशिपं जेयुचु निर्दयागम्यंबुनु, शांतुलु, समदर्शनुलु, शुद्धुलु, सर्वभूतानुरंजनुलु, नच्युत भक्तबांधवुलु नयिन भद्राचारुलकु सुगम्यंबुनु नयि गंभीर वेगंबुन निमिषंबुनगु ज्योतिश्चक्रंबु समाहितंबै गोगणंबु मेधियंदु वोलॆ नॆंदु बरिभ्रमिंचुचुंडु नट्टि यच्युत पदंबुनुं बॊंदि विष्णुपरायणुंडैन ध्रुवुंडु त्रिलोक चूडामणियै यॊप्पुचुंडॆ। नप्पुडु भगवंतुंडैन नारदुंडु ध्रुवुनि महिमं गनुंगॊनि प्रचेतस्सत्रंबु नंदु वीण वायिंपुचु ॥ 380 ॥

सी. पतियॆ दैवंबुगा भावंबु लोपल दलचु सुनीतिनंदनु तपः प्र-
भावमु बलॆ धर्म भव्य निष्ठल बॊंद जालरु ब्रह्मर्षि जनमु लनिन

ने अवलोकन करके अग्रभाग में (सामने) विमान [पर] आरूढ़ होकर जानेवाली जननी को दिखाया तो संतुष्ट अंतरंगवाला होते हुए, ३७७ [कं.] जननी सुनीति को सामने देखकर, तदनन्तर विमान पर चढ़कर प्रयत्नपूर्वक विबुधों के उस पर लगातार पुष्पों की वर्षा बरषाने पर ध्रुव हर्ष के साथ ३७८ [कं.] जा-जाकर शीघ्र ग्रहमंडल को, त्रैलोक्य को [तथा] सप्तमुनिमंडल को उस घन (श्रेष्ठ) ने उत्तरित (पार) करके, उस पार बड़ी प्रीति के साथ प्रकाशमान होनेवाले हरिपद को प्राप्त किया। ३७९ [व.] वह और भी निज कांति से त्रिलोकों को प्रकाशमान करते हुए, निर्दयों को अगम्य, शान्त, समदर्शी, शुद्ध, सर्व भूतों से अनुरंजित [और] अच्युत के भक्त एवं बांधव होनेवाले भद्र (मंगलप्रद) आचार वालों को सुगम्य होकर गम्भीर वेग में निमिष में होनेवाले ज्योति के चक्र के समाहित होकर (अच्छी तरह सजाया रहकर) जैसे गो-गण मेधि (पशुओं को बांधनेवाली लकड़ी) के [चारों ओर] परिभ्रमण करते हैं, वैसे ही परिभ्रमण करनेवाले अच्युत पद को प्राप्त करके, विष्णुपरायण होनेवाला ध्रुव त्रिलोकों का चूड़ामणि बनकर विराजमान हुआ। तब भगवान नारद ध्रुव की महिमा को देखकर प्रचेतस के सत्र (याग) में वीणा बजाते हुए, ३८० [सी.] पति को ही देव की तरह भाव (मन) में समझने

क्षत्रियकुलु नॆन्नगा नेल? यॆव्वड्डु पंच संवत्सर प्रायमुनन्नु
सुरुचि दुरुक्त्युग्रशपर भिन्न हृदयुडै मद्वाक्यहित बोध मति दर्नाच

ते. वनमुनकु नेगि हरि भक्ति वशत नॊंदि
यजितुडगु हरि दन वशुडै चरिप
जेसि वॆस दत्पदंबुनु जॆंदे नट्टि
हरि पदंबुनु बॊंद नॆव्वरिकि दरमु? ॥ 381 ॥

कं. अनि पाडॆ ननुचु विदुरुन, कनघुड्डु मैत्रेयु डनियॆ नंचित भक्तिन्
विनुतोद्दाम यशस्कुं, डनगल या ध्रुवुनि चरित मार्य स्तुत्या! ॥ 382 ॥

सी. महित सत्पुरुष सम्मतमुनु धन्यंबु स्वर्ग प्रदंबु यशस्करंबु
नायुष्करंबु बुण्य प्रदायकमुनु, मंगळकर मघमर्षणंबु
सौमनस्यमु प्रशंसायोग्यमुनु बाप हरमुन ध्रुव पद प्रापकबु-
नै यॊप्पु नीयुपाख्यानंबु दग नीकु नॆर्रिगिंचितिनि दीनि नॆव्वडेनि

ते. तिवुट श्रद्धागरिष्ठुडै तीर्थ पाद
चरण सरसीरुह द्वयाश्रयुडुनैन
भव्यचरित! दिनांत प्रभातवेळ
लनु सिनीवालि पूर्णिमलंबु मरियु ॥ 383 ॥

ते. द्वादशिनि बद्मबांधव वासरमुन
श्रवण नक्षत्रमुन दिनक्षयमुनंदु

वाली सुनीति के नन्दन (ध्रुव) का तपःप्रभाव, क्रिया, धर्म और भव्य निष्ठा को ब्रह्मर्षिजन [भी] नही पा सकते; क्षत्रियकुल के बारे में देखें तो क्या होगा? जो पाँच संवत्सर (वर्ष) के प्राय (उम्र) में सुरुचि की दुरुक्ति रूपी उग्र शरों से भिन्न किये गये हृदय से, मद्वाक्य का हित-बोध मति में सोचकर, [ते.] वन में जाकर हरि-भक्ति के वश होकर, अजित होनेवाले हरि के अपने वश होकर चलने से शीघ्र तत्पद (उस स्थान) को पाया; ऐसे हरिपद को पाना किसके वश की बात है? ३८१ [कं.] इस प्रकार गाया है —ऐसे विदुर से अधिक भक्ति से अनघ मैत्रेय ने कहा। हे आर्यों से स्तुत्य! विनुत उद्दाम यशस्क कहलानेवाले उस ध्रुव का चरित्र (कथा), ३८२ [सी.] महित सत्पुरुषों के लिए सम्मत, धन्य, स्वर्गप्रद, यशस्कर, आयुष्कर, पुण्यप्रदायक, मंगलकर, अघमर्षण (पापहर), सौमनस्य, सामंजस्य,प्रशंसायोग्य, पापहर, और ध्रुवपद को प्राप्त करानेवाला होकर सुन्दर लगनेवाला यह उपाख्यान अच्छी तरह तुम्हें समझा दिया; [ते.] इसे कोई भी श्रद्धागरिष्ठ बनकर, तीर्थपाद रूपी चरण-सरसीरुहद्वय का आश्रित होकर, हे भव्य चरित्रवाले! दिनांत में, प्रभात समय, सिनीवाली (अमावस्या) [या] पूर्णिमाओं में और ३८३ [ते.] द्वादशी, पद्मबांधव-

वरग संक्रमण व्यतीपातलंदु
सभल भक्तिनि विनु नट्टि सज्जनुलकु ॥ 384 ॥

व. क्लेशनाशंबुनु महाप्रकाशंबुनुनैन भगवद्भक्तियु शीलादि गुणंबुलुनु गलुगु। मरियु देजःकामुनकु देजंबुनु, निष्कामुनकु तत्त्व विज्ञानंबुनु गलुगु। दीनि विनुपिंचु वारिकि दैवतानुग्रहंबु गलुगु निट्टि युपाख्यानंबु नी कॆरिगिंचितिननि मैत्रेयुंडु विदुरुनकु जॆप्पिन क्रमंबुन शुकयोगि परीक्षितुन कॆरिगिंचिन तॆरंगु सूतुंडु शौनकादुलकु विनिपिंचि वॆंडियु निट्लनियॆ। नट्लु चॆप्पिन मैत्रेयुनि गनि विदुरुं डिट्लनियॆ ॥ 385 ॥

अध्यायमु—१३

सी. अनघात्म ! नारद मुनिपति ध्रुव चरित्रमु प्रचेतसुल सत्रंबुनंदु
नर्थिमै गीतिचॆनंटि प्रचेतसुलन नॆव्व ? रॆव्वरि तनयु ? लॆट्टि
वंशजुल् ? सत्र मॆव्वलननु जेसि ? रध्वरमंदु निजकुल धर्मशीलु
रगु प्रचेतसुलचे यजियिपवडुनट्टि यज्ञपूरुषुडगु नच्युतांघ्रि

वासर (रविवार) को, श्रवणा नक्षत्र [पर], दिनक्षय में, शोभा से संक्रमण-व्यतीपात (एक ग्रह में) या सभाओं में भक्ति के साथ सुननेवाले सज्जन को, ३८४ [व.] क्लेश का नाश और महाप्रकाश वाली भगवद्भक्ति [तथा] शील आदि गुण मिलते हैं। और तेजस्-कामी को तेजस्, निष्कामी को तत्त्व का विज्ञान प्राप्त होते हैं। इसे सुनानेवालों को देवता [ओं] का अनुग्रह मिलता है। ऐसे उपाख्यान को तुम्हें समझाया। इस प्रकार जैसे मैत्रेय ने विदुर से कहा, वैसे क्रम में शुकयोगी ने परीक्षित को समझाया। यह वृत्तांत सूत ने शौनक आदि को सुनाकर फिर इस प्रकार कहा। उस प्रकार कहे हुए मैत्रेय को देखकर, विदुर ने इस प्रकार कहा। ३८५

अध्याय—१३

[सी.] हे अनघात्म ! [तुमने] कहा कि (मुनियों में श्रेष्ठ) नारद ने ध्रुव का चरित्र (कथा) प्रचेतसों के सत्र (यज्ञ) में इच्छापूर्वक गाया। प्रचेतस कौन हैं ? किसके तनय (पुत्र) हैं ? कौन वंशज हैं ? सत्र क्यों किया ? अध्वर (यज्ञ) में निज-कुल-धर्म-शील वाले प्रचेतसों से यजन किये गये (जिसको उद्दिष्ट करके यज्ञ किया गया), उस यज्ञपुरुष श्रीनाथ की कथाओं को, कहते हैं, अच्युत के अंघ्रि [यों के प्रति] भक्तियुक्त,

ते. भक्तियुक्तुडु विदित सद्भागवतुडु
दिविरि हरिपाद सेवा विधि प्रयुक्त
देव दर्शनुडगु नट्टि दिव्य योगि
नारदुडु पॊगडॆनट ! श्रीनाथु कथलु ॥ 386 ॥

कं. नाकिपुडॆरिंगिंपुमु सु, श्लोकुनि चरितामृतंबु श्रोत्रांजलुलं
बॆकॊनि जुर्रियु दनिविं, गैकॊनकुन्नदि मनंबु गरुणोपेता ! ॥ 387 ॥

कं. अनि यडिगिन विदुरुनि गनु-
गॊनि मैत्रेयुंडु पलिकॆ गॊनकॊनि ध्रुवुडुन्
वनमुनकु जनिन नातनि
तनयुंडगु नुत्कलुंडु दळितघुंडै ॥ 388 ॥

सी. चतुरुडाजन्म प्रशांतुंडु निस्संगुडुनु समदर्शनुंडुनु घनुंडु-
नै यात्मयंदु लोकावळि लोकंबुलंदु नात्मनु जूचु ननघमैन
यनुपम योगक्रिया पावकादग्ध, कर्ममलाशय कलन बॆंधि
जडुनि कैवडि जोकु चंदंबुननु मूकु, पगिदि नुन्मत्तुनि भंगि जॆंबिटि

ते. वडुवुननु गानबडुचु सर्वज्ञुडै प्र-
शांत कील हुताशनु सरणि वॆलिचि
सतत शांतंबु नंचित ज्ञानमयमु-
नन ब्रह्मस्वरूपंबु नात्म दलचि ॥ 389 ॥

[ते.] विदित सद्भागवत, इच्छा करके हरि [के] पाद [की] सेवा-बिधि [में] प्रयुक्त देवदर्शन होनेवाले दिव्य योगी नारद ने प्रशंसा की। ३८६ [कं.] हे करुणोपेत (करुणा से भरे हुए) ! अब मुझे समझाओ, सुश्लोक (पुण्यपुरुष) के चरित्र रूपी अमृत को श्रोत्र (कान) रूपी अंजलियों से भर-भर पीने पर भी मन तृप्त नही हो रहा है। ३८७ [कं.] ऐसा पूछने वाले विदुर को देखकर मैत्रेय ने कहा, "यत्न करके ध्रुव के वन जाने पर उसका तनय उत्कल, दलित-अघ (-पाप) वाला बनकर, ३८८ [सी.] चतुर, आजन्म (जन्म से लेकर) प्रशांत, निस्संग, समदर्शी [और] घन (श्रेष्ठ) बनकर, आत्मा में लोकावलि [को] [और] लोकों में आत्मा को देखते हुए, अनघ होनेवाली अनुपम-योग-क्रिया-रूपी पावक (अग्नि) दग्ध कर्म रूपी मलाशय को जानकर, जड़ की तरह, अंधे की तरह, मूक की तरह, उन्मत्त की तरह [और] [ते.] बहरे की तरह, दिखाई पड़ते हुए, सर्वज्ञ बनकर, प्रशांत-कील (-ज्वाला) से [युक्त] से हुताशन (अग्नि) की तरह सतत शांत [एवम्] अंचित (पूजित) ज्ञानमय होनेवाले ब्रह्मस्वरूप का आत्मा में स्मरण करके, ३८९ [कं.] अपने से बढ़कर और कुछ भी न

सार्वभौमक श्री बोंदन्

कं. तनकंटॆ नितर मीक टॆंङ्, गनि कतमुन सार्वभौमक श्री बोंदन्
मनमुन गोरक युंड्ुट, गनि कुलवृद्धुलुनु मंत्रिगणमुलु नंतन् ॥ 390 ॥

व. अतनि नुन्मत्तुनिगा दॆलिसि तदनुजुंडैन वत्सरुनिकि वट्टंबु गट्टिरि। आवत्सरुनिकि सर्वार्धि यनु भार्ययंदु बुष्पार्णुंडुनु, जंद्रकेतुंडुनु, निषुंडुनु, नूर्जुंडुनु, वसुवुनु जयुंडुनु, नन नार्वुरु तनयुलु गलिगिरंदु बुष्पार्णुंडुनुवानिकि बभयु, दोषयु नन निद्दरु भार्यलै रंदु बभयनु दानिकि बातर्मध्यंदिन सायंबुलनु सुतत्रयंबुनु दोष यनु दानिकि बदोष निशीथ व्युष्टुलनुवारु मुग्गुरुनु बुट्टिरंदु व्युष्टुडनु वानिकि बुष्करिणि यनु पत्नियंदु सर्वतेजुंडनु सुतुंडु बुट्टॆ। वानिकि नाकूति यनु महिषि वलन जक्षुस्संज्ञुंडयिन मनुवु जनियिंचॆ। वानिकि नड्वल यनु भार्ययंदु बुरुवुनु गुत्सुंडुनु द्रितुंडुनु द्युम्नुंडुनु सत्यवंतुंडुनु ऋतुंडुनु व्रतुंडुनु नग्निष्टोमुंडुनु नतिरात्रुंडनु सुद्युम्नुंडुनु शिबियुनु नुल्मुकुंडुनु ननु पन्निद्दरु तनयुलु गलिगि रंदु नुल्मुकुनिकि बुष्करिणि यनु दानिवलन नंगुंडुनु सुमनसुंडुनु, ख्यातियु, ग्रतुवुनु, नंगिरसुंडुनु, गयुंडुनु ननु नार्वुरु गॊडुकुलु बुट्टिरंदु नंगुनिकि सुनीथ यनु धर्मपत्नि वलन वेनुंडनु पुत्त्रुंडुदयिंचिन ॥ 391 ॥

म. क्षितिनाथोत्तमुडात्म नंदनुनि दुश्शीलंबु वीक्षिंचि दुः-
खितुडै यॊंटिग दत्पुरिन् वॆडलि येगॆन् वेग मॆंदॆनि त-

जानने के कारण, सार्वभौम श्री (संपदा) को पाने की इच्छा मन में न रखते देखकर, कुलवृद्धों और मंत्रिगणों ने तब ३९० [व.] उसे उन्मत्त जानकर, तदनुज (उसके छोटे भाई) वत्सर का राजतिलक किया। वत्सर के सर्वर्थी नामक पत्नी में पुष्पार्ण, चंद्रकेतु, निष, मार्ज, वसु [तथा] जय नाम के छः तनय हुए। उनमें पुष्पार्ण नामक के प्रभा [और] दोषा नामक दो पत्नियाँ हुईं। उनमें प्रभा के प्रातः, मध्यंदिन [और] सायं नामक सुतत्रय, दोषा के प्रदोष, निशीथ [और] व्युष्ट नामक तीन [पुत्र] हुए। उनमें व्युष्ट के पुष्करिणी नामक पत्नी में सर्वतेज नामक सुत पैदा हुआ। उसके आकूती नामक महिषी (रानी) में चक्षुस्संज्ञ होनेवाले मनु का जन्म हुआ। उसके अड्वला नामक पत्नी में पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान, ऋत्, व्रत, अग्निष्टोम, अति-रात्र, सुद्युम्न, शिवि [और] उल्मुक नामक बारह तनय हुए। उनमें उल्मुक के पुष्करिणी से अंग, सुमनस, ख्याति, ऋतु, अंगिरस [और] गय नामक छः पुत्र हुए। उनमें अंग के सुनीथा नामक धर्मपत्नी से वेनु नामक पुत्र का उदय होने पर, ३९१ [म.] क्षितिनाथों में (राजाओं में) उत्तम [होनेवाला राजा अंग] आत्मनंदन का दुश्शील (दुराचरण) वीक्षण करके (देखकर) [और] दुःखित होकर, अकेले तत् (उस) पुरी से निकलकर, शीघ्र कहीं चला गया। तत् (उस) [वेन

द्गति वीक्षिचि मुनीश्वरुल् गुपितुलै दंभोळि संकाश वा-
क्य ततिन् जाव शपिप वाडपुडु वीकं गूलॆ नम्मेदिनिन् ॥ 392 ॥

सी. कैकॊनि यपुडु लोकं बराजकमैन ब्रजलु दस्कर पीड बल्लटिल्ल
गनुगॊनि दुःखिचि मुनुलु गतासुडै पडिनवेनुनि वलपलि भुजंबु
नथि मथिप नारायणांशंबुनु नादिराजन नॊप्पु नट्टि पृथुडु
जनिर्यिच ननवुडु विनि विदुरुडु मुनि गनुगॊनि पलिकॆ नो यनघचरित !

ते. साधुवु सुशील निधियुनु सज्जनुंडु
नलघु ब्रह्मण्युडुनु नैन यट्टि यंग
धरणि विभुनकु दुष्टसंतान मॆट्लु
गलिगॆं ? नय्यंगपति येमि कारणमुन ॥ 393 ॥

व. विमनस्कुंडगुचु बुरंबु विडिचॆं ? धर्मकोविदुलैन मुनुलु दंडव्रत-धरुंडुनु
राजु नगु वेनुनियंदु ने पापंबु निरूपिचि ब्रह्मदंडंबोनर्चिरदियुनं गाक
लोकंबुन राजुलु लोकपाल तेजोधरुलु ब्रजापालनासक्तुलु गावुन
गल्मषंबु गलिगिनं ब्रजल चेत ननवध्येयुलै युंदुरु गावुन ना वेनुनि चरित्रंबु

की] गति का वीक्षण करके (देखकर), मुनीश्वरों ने कुपित होकर दंभोलि-संकाश (वज्रायुध के समान) वाक्यतति (वाक्यों का समूह) से शाप दिया कि वह मर जाय। वह तब दैन्य के साथ उस मेदिनी (भूमि) पर [धड़ाम से] गिर पड़ा। ३९२ [सी.] लगकर, तब लोक के अराजक होने पर [और] तस्कर (चोरों की) पीड़ा से प्रजा के परेशान होने पर, देखकर [और] दुःखित होकर, गत-असु (-प्राण) वाला बनकर गिरे हुए वेन की दक्षिण भुजा को इच्छापूर्वक मुनियों के मथने से, नारायण के अंश में आदि राजा कहने योग्य पृथु का जन्म हुआ। ऐसा कहने पर सुनकर विदुर ने मुनि को देखकर कहा, हे अनघचरित्रवाले! [ते.] साधु, सुशीलों (सद्गुणो) की निधि, सज्जन [और] अलघु (श्रेष्ठ), ब्रह्मण्य होनेवाले अंग-धरणिविभु (अंग-राजा) की दुष्ट संतान क्योंकर हुई ? उस अंग-पति (-राजा) ने किस कारण ३९३ [व.] विमनस्क होते हुए पुर छोड़ दिया ? धर्म [में] कोविद होनेवाले मुनियों ने दंडव्रतधर [तथा] राजा होनेवाले वेन में कौन सा पाप निरूपित करके ब्रह्मदण्ड दिया। इसके अतिरिक्त लोक (संसार) में राजा लोग लोकपालों (देवताओं) का तेजस धारण करनेवाले [तथा] प्रजा के पालन में आसक्त [रहते है], इसलिए कल्मष रखनेवाली प्रजा से अनवध्येय (वध किये जाने के लिए अयोग्य) रहते है। इसलिए उस वेन का चरित्र (कथा) श्रद्धागरिष्ठ [और] भक्त होनेवाले मुझे, पर और अपर-विदों में (जाननेवालों में) अग्रेसर (श्रेष्ठ) होनेवाले तुम समझाने

श्रद्धा गरिञ्चुंडु भक्तुंडु नेन नाकुं बरापरविदग्रेसरुंडवयिन नीवॆंडिगिप नर्हुंडवनिन मैत्रेयुंडतनि किट्लनियॆ ॥ 394 ॥

अंगपुत्रुंडगु वेनुनि चरित्रमु

सी. अनघात्म ! राजर्षि यैनट्टि यय्यंग मेदिनीविभु डश्वमेधमखमु
गाविंप ऋत्विङ्निकायंबु चेत नाहूतमय्युनु सुरव्रातमंदु
नात्म हविर्भागमंदराकुंडिन नप्पुडु ऋत्विक्कुलदद्भुतंबु
नंदुचु यजमानुडैन यय्यंग महीवरु जूचि राजेंद्र ! यिट्लु

ते. त्रिदशुलिदॆ पिलव बडियुनु दिविरि यात्म
भागमुल वॊंदरारेरि भव्यचरित !
येमि हेतुवॊ ? यिदि माकु नॆरुग बडदु
कडगि होमंबु दुष्टंबु गादु मरियु ॥ 395 ॥

व. श्रद्धायुक्तुलैन यी ब्रह्मवादुल चेत योजितंबुलैन यी छंदस्सुलु वीर्यवंतंबु-लयि युन्नयवि। यिवु देवतापराधं बणुमात्रंबयिन नॆरुंग मिट्टि चोटं गर्मसाक्षुलयिन देवतलु स्वकीय भागंबुलंगीकरिंपकुंडुटकु गतं बॆय्यदियो ? यनिन नय्यंगुंडु दुःखितस्वांतुंडै तन्निमित्तंबु सदस्युल नडुगं दलंचि वारल यनुमति वडसि मौनंबु मानि यिट्लनियॆ ॥ 396 ॥

के लिए अर्ह (लायक) हो। ऐसा कहने पर मैत्रेय ने उससे इस प्रकार कहा। ३९४

अंग का पुत्र होनेवाले वेन का चरित्र (कथा)

[सी.] हे अनघात्म ! राजर्षि होनेवाले उस अंग-मेदिनी-विभु (-राजा) के अश्वमेध मख करने पर, ऋत्विकों [के] निकाय (समूह) से आहूत होकर (बुलाए जाकर) भी सुरों के व्रात (समूह) के, उसमें आत्म (अपना)-हविर्भाग [लेने] न पहुँचने पर, ऋत्विक् अद्भुत (आश्चर्य) करते हुए, यजमान होनेवाले उस अंग-महीवर (-राजा) को देखकर, हे राजेन्द्र ! [ते.] इस प्रकार त्रिदश (देवतागण) देखो, बुलाए जाकर भी [और] प्रयत्न करके भी आत्म-भागों को पाने नहीं आये। हे भव्य चरित्रवाले ! क्या हेतु (कारण) है ? यह हम नहीं जानते। देखने पर होम (हवन) भी फिर दुष्ट नहीं [हुआ] है। ३९५ [व.] श्रद्धायुक्त होनेवाले इन ब्रह्मवादियों से योजित ये छंद वीर्यवान हुए हैं। इसमें देवताओं के प्रति अपराध अणुमात्र भी नहीं जानते। विदित नहीं होता कि ऐसे प्रदेश में कर्मसाक्षी होनेवाले देवता [गणों] का स्वकीय भाग अंगीकृत नहीं करने का कारण क्या है। ऐसा कहने पर उस अंग ने दुःखित-स्वांत (मन) वाला बनकर, तन्निमित्त (उसका कारण) सदस्यों से पूछना चाहकर, उनकी

आ. अनघ् चरितुलार! याहूतुलय्यु सु, पर्व गणमु लात्म भागमुलनु
स्त्रीकरिप रेनु जेसिन यपराध,मॅट्टि दनिन बार लिट्टु लनिरि ॥ 397 ॥

कं. नरनाथ ! यिदि यिप्पुडु, वॉरसिन दुष्कृतमु गादु पूर्वभवमुन्
बरगिन दुरितंबिदि या, दरमुन नॅरिगिंतु मित धन्यचरित्रा ! ॥ 398 ॥

कं. नीवितवाडय्युनु, भूवर ! संतान लाभमुनु बॉंदमि ना
देवतलु यागभागमु, ली वेळ भुजिपररि यिदुकु नीवुन् ॥ 399 ॥

ते. पुत्रकामेष्टि गाविचि पुत्रु वडयु
मट्लॊनर्चिन देवत लात्मभाग
मथि नंगीकरितु रय्यज्ञ पुरुषु
हरि भजिचिन सकल कार्यमुलु गलुगु ॥ 400 ॥

व. अनिन नातंडु संतानार्थंबु शिपिविष्टदेवताकंबयिन पुरोडाशंबु चे होमंबु गाविचिनं दत्तीय होमकुंडंबु नंदु हेममाल्यांबराभरणुंडयिन पुरुषुंडु हिरण्मय पात्रंबुन स्निग्ध पायसंबु गॊनुचु नुदयिंचिन नप्पुडु विप्रानुमतंबुन नाराजु दत्पायसंबु नंजलिचे ग्रहिंचि संतोषयुक्तुं डगुचु भार्य कॊसंगॆ नंत ॥ 401 ॥

अनुमति पाकर, मौन छोड़कर इस प्रकार कहा। ३९६ [आ.] हे अनघ चरितवाले ! आहूत होकर भी सुपर्व (देवता)-गण आत्म भाग स्वीकार नहीं करते। मेरा किया हुआ अपराध कैसा है ? [ऐसा] कहने पर उन्होंने इस प्रकार कहा। ३९७ [कं.] हे नरनाथ ! यह दुष्कृत अब किया हुआ नहीं है। पूर्वभव (जन्म) में किया गया दुरित (पाप) है। हे धन्य चरित्रवाले ! आदर से इतना तो हम समझाते है। ३९८ [कं.] हे भूवर ! तुम इतने (बड़े) होकर भी, [तुम्हारे] संतान-लाभ न पाने से वे देवता याग [का] भाग आज नही खाते। इसके लिए तुम, ३९९ [ते.] पुत्रकामेष्टि करके पुत्र को पाओ। ऐसा करने से देवता [गण] आत्म-भाग इच्छापूर्वक अंगीकृत करेंगे। यज्ञपुरुष होनेवाले उस हरि का भजन (सेवा) करने से सकल (सभी) कार्य संपन्न होंगे। ४०० [व.] ऐसा कहने पर उस [अंगराज] के संतानार्थ शिपिविष्ठ देवता के नाम पर पुरोडाश से होम करने पर, तदीय होमकुंड में हेम-माल्यांबर, आभरण [धारण किये हुए] पुरुष के हिरण्मय (सुवर्ण) पात्र में स्निग्ध पायस लेकर उदित होने पर, तब विप्रों की अनुमति से उस राजा ने तत् (उस) पायस [को] अंजलि से ग्रहण करके, सूँघकर, सतोषयुक्त होते हुए पत्नी को दिया। तब, ४०१ [चं.] कमलदलाक्षि ने कौतुक के साथ पायस खाकर [अपने] पति से संगम (संभोग) करने पर, तत्क्षण गर्भ

चं. कमलाक्षि पायसमु गोतुक मॊप्प भुजिंचि भर्तृ सं-
गममुन जेसि तत्क्षणम गर्भमु दाल्चि कुमारु गाँचॆ न-
क्कॊमरुडु नंत मातृ जनकुंडगु मृत्युवु बोलि ता नध-
र्ममुन जरिंचुचुंडॆ गुणमंडन ! वेनुडनंग निच्चलुन् ॥ 402 ॥

चं. ऒनयग बाल्यमंदु दन यीडु कुमारुल ग्रीड बोलॆ नॆ-
म्मनमुन भीतिलेक कृपमालि पशुप्रकरंबु नॊंचु पो-
लिकनि नरिकट्टि चंपुचुनु गिल्बिष लुब्धकवृत्तिमै शरा-
सन शरमुल् धरिंचि मृगजाति नसाधुगतिन् वधिंचुचुन् ॥ 403 ॥

व. इट्लु पापवर्तनुंडै चरियिंचु कॊडुकुं जूचियं गुडु विविध शासनंबुल
दंडिंचियु नतनि दुश्चेष्टितंबुलु मानुपं जालक दुःखितात्मुंडै मनंबुन ॥404॥

कं. अनयमु निट्टि कुपुत्रुनि, गनि परितापंबु बॊंदु कंटॆनु धरलो
ननपत्युंडगुटॊप्पुनु, वनजाक्षु भजिंचु नट्टि वाडगु वाडुन् ॥ 405 ॥

व. अनि वॆंडियु निट्लनियॆं ॥ 406 ॥

सी. जनुलकु दुष्पुत्रकुनिचेत नयकीर्तियु नधर्ममुनु सर्वजन बिरोध-
मुनु मनोव्यथयुनु मुनुकॊनि प्रापिंचु नट्टि कुपुत्रु मोहंबु विडुव
जालक वहुमान संगति गनु नॆव्व डतनि गेहंबु दुःखालयंबु
नगु ननि मरियु निट्लनु मनुजुंडु शोकस्थानमगु पुत्रु कतन जेसि

धारण करके, कुमार को जन्म दिया ! हे गुणमंडन ! वह कुमार तब माता के लिए जनक होनेवाली की तरह वेन स्वयं सदा अधर्म [मार्ग] पर चलता था। ४०२ [चं.] बाल्य में बराबर अपनी उम्र के कुमारों (बालकों) का क्रीड़ा में जैसे अपने मन में आवे, वैसा विना भीति के, कृपा-रहित हो पशु-प्रकर (-समूह) को झुकाने (वश में करने) की तरह रोककर, मार डालते हुए, किल्विष (पापी)-लुब्धक (शिकारी) की वृत्ति (तरह) से शरासन (धनुष) [और] शर (बाण) धारण करके मृगजाति का असाधु-गति से वध करते हुए, ४०३ [व.] इस प्रकार पापवर्तन वाला बनकर, विचरनेवाले बेटे को देखकर, अंग विविध शासनों से दंड देकर भी, उसकी दुश्चेष्टाओं को न रोक सक, दुःखित आत्मा वाला बनकर, मन में ४०४ [कं.] ऐसे कुपुत्र को जन्म देकर सदा परिताप पाने की अपेक्षा वनजाक्ष (विष्णु) का भजन करनेवाले व्यक्ति का धरा (भूमि) में अनपत्य (निस्संतान) होना अच्छा है। ४०५ [व.] यों कहकर फिर ऐसा बोला। ४०६ [सी.] जनों (लोगों) को दुष्पुत्रक से अपकीर्ति, अधर्म, सर्वजन से विरोध [और] मनोव्यथा पहले प्राप्त होती है। वैसे कुपुत्र का मोह छोड़ न सककर, जो बहुमान (अधिक गौरव) से देखता है, उसका

ते. यनुपम क्लेश भाजनं बयिन गृहमु
विडुचु गावुन निट्टिविवेकहीनु
डगु कुपुत्रु सुपुत्रुगा नात्म दलतु
ननुच नाराजु बहु दुःखितात्मुडगुचु ॥ 407 ॥

कं. तगु महवैश्वर्योदय-
मगु गृहमुनु ब्रजल निद्र नंदिन भार्यन्
दिग विडिचि यॅक्कडेनिनि
जगदीशुडु सनॅ निशीथ समयमुनंदुन् ॥ 408 ॥

व. अंत दद्वृत्तांतंबंतयु सुहृद्बांधव पुरोहितामात्य प्रभृतुलयिन प्रजलॅंरिगि दुःखिचुचुन्नतदनंतरंब ॥ 409 ॥

अध्यायमु—१४

सी. समधिक ब्रह्मनिष्ठातिगरिष्ठुलौ भृग्वादि मौनींद्र बृंदमपुडु
लोकावनैकावलोकनोत्सुकुलैन जनुलु स्वरक्षक जन विभुंडु
लेमि बशुप्रायुलै मॅलंगुट गनि यंत वेनुनि मात यगु सुनीथ
यनुमति नखिल प्रजावळि कप्रियुंडैन नव्वेनु बट्टाभिषिक्तु

गेह (घर) दुःख का आलय (मंदिर) होता है। यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। [ते.] शोक का स्थान होनेवाले पुत्र के कारण मनुज अनुपम क्लेश का भाजन होनेवाला बनकर, गृह छोड़ देता है। ऐसे विवेकहीन होनेवाले कुपुत्र को सुपुत्र [के रूप में] आत्मा में सोचता हूँ—ऐसा कहते हुए वह राजा बहुदुःखित आत्मा वाला बनते हुए, ४०७ [कं.] अच्छे महान् ऐश्वर्य का उदय होनेवाला गृह, प्रजा को, निद्रा में मग्न पत्नी को छोड़ देकर अकेले [वह] जगतीश (राजा) निशीथ समय में चला गया। ४०८ [व.] तब तत् (वह) सारा वृत्तांत सुहृत् (मित्र), बांधव, पुरोहित, अमात्य, प्रभृति (आदि) होनेवाली प्रजा के जानकर, दुःखी होने के बाद, ४०९

अध्याय—१४

[सी.] समधिक ब्रह्मनिष्ठा में अति गरिष्ठ होनेवाले भृगु आदि मुनींद्रों के वृंद ने तब लोकावन (लोक की रक्षा करनेवाले के) एकावलोकन (एक मात्र अवलोकन) में उत्सुक रहनेवाले होने से जनों को, स्वरक्षक [होनेवाले] विभु के न रहने के कारण पशुप्राय होकर, जीवन बिताते देखकर, तब वेन की माता होनेवाली सुनीथा की अनुमति से [उन्होंने] अखिल प्रजावलि (प्रजासमूह) के लिए अप्रिय होनेवाले उस वेन को पट्टाभिषिक्त बनाया

ते. जेसिरंतट महितोग्र शासनुडगु
वेनु वट्टंबु गट्टुट विनि समस्त
तस्करुलु सर्पभीतिचे दलगु मूष-
कमुल कॅवडि गडगिरि गहनमुलनु ॥ 410 ॥

व. अंत नतंडु ॥ 411 ॥

चं. परुवडि नष्टलोकपरिपालक मुख्य विभूति युक्तुडै
परगि नृपासनंबुन विभासितुडौट स्वभावसिद्धमै
वडलु महावलेपमुन वारक संतत माननीय स-
त्पुरुषुल नॅल्लनॅंबु वरिभूतुल जेयुचु नुंडॅ निच्चलुन् ॥ 412 ॥

चं. मरियु नतंडु भूगगन मार्गमुलं दॉकवेळ नॉक्कडै
यरदमु नॅक्कि कुम्मरु निरंकुश वृत्ति जरिंचु मत्तसिं-
धुर विभु पोल्कि सत्पुरुष-दूषित-वर्तन नॉप्पुचुन् निरं-
तर सुजनापराध कृति तत्पर मानमुडै क्रमंबुनन् ॥ 413 ॥

कं. दिव्युलु वॅरगंदग वृ, थ्वी व्योममुलगल भेरि वेयिंचॅ 'नय-
ष्टव्यमदातव्यमहो, तव्यं विप्रा' यनुचुदात्त ध्वनुलन् ॥ 414 ॥

कं. अनि यिट्टुलु भेरीरव, मुन जेसि समस्त धर्ममुलु वारिंपन्
मुनु लविनीतुंडगु वे, नुनि दुश्चरितंबु जन मनो भयमगुटन् ॥ 415 ॥

(गद्दी पर बिठाया)। [ते.] तब महित (बड़ा) उग्र शासक होनेवाले वेन के राजतिलक को सुनकर, समस्त तस्कर (चोर) सर्प [की] भीति से हट जानेवाले मूषकों (चूहों) की तरह, गहनों (वनों) में भाग गये। ४१० [व.] तब वह, ४११ [चं.] नष्ट हुई लोक-[के] परिपालक-मुख्य (-आदि) [की] विभूति से क्रम से युक्त होकर, नृप के प्रसिद्ध आसन पर विभासित होना स्वभावसिद्ध होकर प्रकाशित होता है। [वेन] महान् अवलेप (गर्व) से अनवरत सतत माननीय सब सत्पुरुषों को सर्वत्र, सदा परिभूत (पराभव) करता रहा। ४१२ [चं.] और वह कहीं भू [और] गगनमार्ग पर अकेले (एकमात्र होकर) रथ पर चढ़कर, निरंकुश-वृत्ति (-स्वभाव) से मत्तसिंधुर-विभु (मस्त हाथी) की तरह घूमता था। सत्पुरुषों का दूषण करते हुए निरंतर (लगातार) सुजनों के प्रति अपराध-कृति (-करने) में क्रम से तत्पर मन वाला बनकर रहता था। ४१३ [कं.] दिव्य [पुरुष] आश्चर्यचकित हो जाएँ, पृथ्वी और व्योम (आकाश) में, उदात्त ध्वनियों में (जोर से) यह कहते हुए भेरी (डंका) बजवायी कि "नयष्टव्यम्, अदातव्यम्, अहोतव्यम् विप्राः"। ४१४ [कं.] इस प्रकार भेरी के रव से समस्त धर्मों को रोकने से, मुनियों ने अविनीति वाले वेन के दुश्चरित के कारण, जन (प्रजा) के मन में, भय उत्पन्न

ते. कनि कृपायत्तुलगुचु निट्लनिरि यिट्टि
राज चोर भयंबु ली भूजनुलनु
बलसि यिरुवंकलनु बाधपरुव जौच्चे
दारुवंबुल वह्निनचंदमुन बॅलुच ॥ 416 ॥

चं. अरय नराजकंबगु महाभयमुं दॉलगिचु वारमै
करमतदर्हु गर्हितुनि क्षमापति जेसिन यट्टि दोषमुं
बरुवडि जॅंदॆ दुग्धरस पानमुनं बरिवृद्धि नॊंदु न
य्युरग भयंबु पोषकुनि नॊंदिनरीति ननर्थ हेतुवै ॥ 417 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 418 ॥

कं. मुनुकॊनि सुनीथ गर्भ-
बुन जनियिंचियु स्वभावमुन दुर्जनुडै
यॅनय ब्रजा पालनमुन-
कुनु बालपडि प्रजल मनिकि गॊन जॊच्चं गदे ॥ 419 ॥

व. अदिगान या वेनुंडु पूर्वबुन ज्ञ न संपन्नुल चेत राजुगा जेयंबडियॆ गावुन निट्टिवानि मन मंदरमुनु गूडि प्राथितमु। लोकरक्षणार्थंबगुट वद्दोषंबु मनल स्पृशिपदु। समीचीनोक्तुलं जेसि वीनि ननुनयिप वानि ग्रहिप कुंडेनेनि मुन्न लोक धिक्कारारिग्न संदग्धुंडगु वीनि मन तेजोमहाग्नि चेत

होते। ४१५ [ते.] देखकर कृपायत्त (कृपा से पूर्ण) होते हुए ऐसे कहा— ऐसे राजा और चोर [का] भय, इन भू जनों को दोनों ओर से बहुत बाधा (पीड़ा) देने लगे जैसे दारुओं (लकड़ियों) में बह्नि। ४१६ [चं.] सोच-विचारने पर, अराजक होने से उत्पन्न होनेवाले महान् भय को दूर करनेवाले होकर, इस [राजपद] के लिए अधिक अतदर्ह एवं गर्हित होनेवाले को क्षमापति (राजा) बनाने का दोष शीघ्रता से अनर्थ का हेतु बना, जैसे दुग्धरस (दूध) के पान से परिवृद्धि पानेवाले उरग का भय उसके पोषक को होता है। ४१७ [व.] इसके अतिरिक्त, ४१८ [कं.] पहले सुनीथा के गर्भ से जन्म लेकर भी, स्वभाव से दुर्जन होकर बराबर प्रजा का पालन करने का भार लेकर, प्रजा का जीवन लेने लगा न! ४१९ [व.] यही नहीं, यह वेन पूर्वकाल में ज्ञान संपन्न लोगों से राजा बनाया गया। इसलिए ऐसे [राजा] से हम सब मिलकर प्रार्थना करेंगे। लोक की रक्षा के अर्थ (के लिए) होने से [प्रार्थना करने से] तद्दोष (उसका दोष) हमें स्पर्श नहीं करेगा। समीचीन-उक्तियों से इसके प्रति अनुनय करने पर; उन्हें [उन बातों को] अगर वह ग्रहण नहीं करेगा तो पहले से ही लोक के धिक्कार की अग्नि में संदग्ध होनेवाले इसे अपने तेजस की महती अग्नि से भस्मीभूत कर देंगे। इस प्रकार सोचकर गूढ़मन्य (छिपे हुए क्रोध वाले)

भस्मीभूतुं जेयुदमनि यालोचिंचि गूढमन्युलगुचु वेनुनि गदियं जनि यतनि किट्लनिरि ॥ 420 ॥

कं. नरपालक ! नीकायुवु, सिरियुनु बलमुनु यशंबु जेकुरु वृद्धि
बोंरयुदु गाकनुचु मनो, हरमुग नाशीर्वदिंचि यतिविनयमुनन् ॥ 421 ॥

व. इट्लनिरि। नरेंद्रा ! येमीवकटि विन्नविचेंदमवधरिंपुमु। पुरुषुलकु वाङ्मनःकाय वृत्तुल वलन नाचरिंचु धर्मंबु समस्त लोकंबुलनु विशोकंबुलं जेयु, नसंगुलयिन वारिकि मोक्षंबु निच्चुनट्टि धर्मंबु प्रजलकु क्षेम कारणंबु गावुन नोयंदु जेडकुंडुंगाक यनि पलिकि मरियु धर्मंबु नाशंबु नोंदिन नैश्वर्यंबुचे राजु विडुवंबडु ननि चेप्पि वेंडियु निट्लनिरि। दुष्ट चित्तुलगु नमात्युलवलननु दस्करुल वलननु ब्रजलु नाशंबु नोंदकुंड रक्षिंचुचु यथान्यायंबुग वारलचे गरंबु गोनुचुनुंडु महीपति यिह पर सौख्यंबुल नंदु। नवियुनुं गाक येव्वनि राष्ट्रंबुनने पुरंबुन यज्ञेश्वरुंडयिन पुरुषोत्तमुंडु निजवर्णाश्रमोचितंबयिन धर्मंबुगल वारिचेत यजियिपंबडु नट्टि निजशासन वर्तियगु राजुवलन सर्वभूत भावनुंडुनु महाभागुंडुनु भगवंतुंडुनगु सर्वेश्वरुंडु संतुष्टुंडगु नट्टि सकल जगदीश्वरुंडैन सर्वेश्वरुंडु संतोषिंचिन राष्ट्राधिपतिकि सर्वसौख्यंबुलु ब्रापिंचु लोकपालकुलगुवारु सर्वेश्वरुनि

होते हुए वेन के पास जाकर, उससे इस प्रकार कहा। ४२० [कं.] हे नरपालक ! तुम्हें आयु, श्री (संपदा), बल, यश प्राप्त हो जाय ! [तुम] वृद्धि पाओ। ऐसे मनोहर रूप में आशीष देकर अतिविनय से ४२१ [व.] यों बोले। हे नरेन्द्र ! हम एक [बात का] निवेदन करेंगे, अवधारण करो (सुनो)। पुरुषों के वाक्, मनः, काय (शरीर) की वृत्तियों से आचरित धर्म लोकों को शोक-रहित बना देगा। आसक्ति-रहित होनेवालों को मोक्ष देगा। वैसा धर्म प्रजा के लिए क्षेम का कारण है। इसलिए तुममें [वह धर्म] नष्ट न हो जाय। ऐसा कहकर फिर [बोले कि] धर्म के नाश से ऐश्वर्य राजा को छोड़ जाता है, इस प्रकार कहकर फिर इस तरह बोले। दुष्टचित्त वाले अमात्यों से [और] तस्करों से प्रजा का नाश न होने देकर [प्रजा की] रक्षा करते हुए, यथान्याय उनसे कर लेनेवाला महीपति इह [और] पर-सौख्य को पाता है। इसके अतिरिक्त जिसके राष्ट्र में, जिसके पुर में यज्ञेश्वर होनेवाले पुरुषोत्तम का निजवर्णाश्रमों के लिए उचित धर्मवालों से यजन किया जाता है, ऐसे निजशासनवर्ती होने वाले राजा से सर्वभूतभावना वाला, महाभाग, भगवान और सर्वेश्वर संतुष्ट होता है। ऐसे सकल जगदीश्वर होनेवाले सर्वेश्वर के संतुष्ट होने पर राष्ट्राधिपति को सर्वसौख्य प्राप्त होते हैं। लोकपालक होनेवाले सर्वेश्वर के प्रति बलि प्रदान करते हैं। समस्त लोक, देवता [और] यज्ञ

कौरकु बलिप्रदानंबुलु सेयुदुरु। समस्त लोक देवता यज्ञादि संग्रहुंडुनु वेदमयुंडुनु द्रव्यमयुंडुनु दपोमयुंडुनगु नारायणुनि विचित्रंबुलैन यज्ञंबुल चेत यजनंबु सेसिन नीकु नभयंबगु मोक्षंबुनुं गलुगुंगावुन नी राज्यंबुन मखंबुलु सेयुमनि याज्ञापिंपुमु नी देशंबुन जेयंबडिन यज्ञंबुलचेत हरि कळायुक्तंबुलगु देवगणंबुलु स्विष्टंबुलै तुष्टंबुलगुचु भवदीय वांछितार्थं-बुल नित्तुरु गावुन देवता तिरस्कारंबु नीकु युक्तंबु गादु। वेद चोदितं-बुलगु धर्मंबुलं दासक्तुंडवु गम्मनिन वेनुं डिट्लनियं ॥ 422 ॥

कं. मुनुलार ! मीर लिप्पुडु
ननु नी गति बडुचु दनमुनं बलिकिति रै-
ननु मीर लधर्ममु दग,
ननयमु धर्मंबटंचु ननियेद रैनन् ॥ 423 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 424 ॥

चं. अनयग जार कामिनि निजेशुनि स्रुच्चिलि जारपूरुषुं
दन पतिगा दलंचुगति दह्यु मूढमनस्कुलै तन-
र्चिन नरपाल रूपमु धरिंचिन यीश्वरु नन्नेरुंग क-
न्युनि भजियिप मीरिहपरोन्नत सौख्यमुलंद रेन्नडुन् ॥ 425 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियें। यज्ञपुरुषुंडन नेव्वं डेव्वनि यंदु मीकु भक्ति

आदि का संग्रह [कर्ता], वेदमय, द्रव्यमय, [और] तपोमय होनेवाले नारायण का विचित्र यज्ञों से यजन करने से तुम्हें अभय हो जायगा। मोक्ष भी प्राप्त होगा। इसलिए अपने राज्य में मख (यज्ञ) करने की आज्ञा दो। तुम्हारे देश में किये जानेवाले यज्ञों से हरि-कला से युक्त देवगण स्विष्ट होकर (तुष्ट होते हुए), भवदीय वांछित-अर्थ देंगे। इसलिए देवताओं का तिरस्कार तुम्हारे लिए युक्त नहीं है। वेदों से चोदित धर्मों में आसक्त बनो। ऐसा कहने पर वेन ने इस प्रकार कहा। ४२२ [कं.] हे मुनिवृन्द ! तुम लोगों ने अब मुझसे इस तरह बाल्य-चेष्टा से कहा। अधर्म को बार-बार कहने से वह कहीं धर्म कहला सकता है ? ४२३ [व.] इसके अतिरिक्त ४२४ [चं.] जार-कामिनी (व्यभिचारिणी) के निजेश (अपने पति) को वंचित करके, जार-पुरुष (बिट) को अपना पति समझने के समान, अधिक मूढ़ मनस्क वाले बनकर, प्रकाशमान होनेवाले नरपाल का रूप धारण कर ईश्वर होनेवाले मुझे न जानकर, अन्य का भजन करने पर तुम लोग इह [और] पर [लोकों] के उन्नत सौख्य कभी नहीं पाओगे ४२५ [व.] यह कहकर फिर इस प्रकार कहा। यज्ञ-पुरुष कहें तो [वह] कौन है ? किसमें तुम लोगों को भक्ति और स्नेह का उदय हुआ ? भर्तृस्नेह से विदूर होनेवाली कुयोषिता-गण (बुरी स्त्रियों के

स्नेहंबु लुदर्यिचॆ ? भर्तृस्नेह विदूरलैन कुयोपिद्गणंबुलु जारु नंदु जेयु भक्ति चंदंबुन वलिकॆंदरदियुनुं गाक ॥ 426 ॥

कं. हरि हर हिरण्यगर्भ
स्वरधीश्वर वह्नि शमन जलधिपति मरु
न्नरवाहन शशि भू रवि
सुर मुख्युलु नृप शरीर सूचकु लगुटन् ॥ 427 ॥

कं. परिकिंचि ननु भजिंपुडु, धरणीशुडु सर्वदेवता मयुडगु म-
त्सर मुडुगुडु ना कंटॆनु, बुरुपुडु मरियॆव्वडग्र पूजार्हुंडिलन् ॥ 428 ॥

व. अदिगान मीरु नायंदु वलिविधानंबुलु सेयुंडनि पापकर्मुंडु नसत्प्रवर्तकुंडु नष्टमंगळुंडु विपरीतज्ञानुंडु नगु वेनुंडु पंडितमानि यगुचुं बलिकि मुनुल वचनंबुलु निराकरिंचि यूरकुन्न नम्मुनुलु भग्न मनोरथुलै तमलो निट्लनिरि। ई दारुण कर्मुंडयिन पातकुंडु हतुंडगुंगाक। वीडु जीविंचॆनेनि वीनि चेत नी जगंबुलु भस्मंबुलु गागलवु। इदि निश्चितंबु। दुर्वृत्तुंडगु वीडु महाराज सिंहासनंबुन कर्हुंडु गाडु। वीडु मुन्नु ने सर्वेश्वरु ननुग्रहंबुन निट्टि विभूतियुक्तुंडय्यॆ नट्टि यज्ञपतियैन श्रीविष्णुनि निंदिंचुचुन्नवाडु। गावुन निर्लज्जुंडैन हरि निंदकुनि हननंबु

समूह) के जार (विट) में की जानेवाली भक्ति की तरह [तुम लोग] बोलते हो। इसके अलावा ४२६ [कं.] हरि, हर, हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), स्वरधीश्वर (इन्द्र), वह्नि (अग्नि), शमन (यम), जलधिपति (वरुण), मरुत् (वायु), नरवाहन (कुबेर), शशि, भू, रवि, सुर-मुख्य (-आदि) नृप के शरीर के सूचक है। ऐसा होने से, ४२७ [कं.] मेरा भजन करो (मेरी सेवा करो)। देखने पर धरणीश (राजा) सर्वदेवतामय है। मत्सर छोड़ दो। इस भूमि पर मुझसे बढ़कर और कौन पुरुष अग्रपूजा के लिए अर्ह है? ४२८ [व.] इसलिए तुम लोग मुझमें (मेरे प्रति) बलि (पूजा) के विधान करो। इस तरह पापकर्म वाले, असत्प्रवर्तक, नष्टमंगल [तथा] विपरीत-ज्ञानी वेन के पंडितमानी (पंडितों का दूषण करनेवाला) होते हुए बोलकर, मुनियों के वचनों का निराकरण करके, मौन रह जाने पर, उन मुनियों ने भग्न मनोरथ वाले बनकर आपस में इस प्रकार कहा। दारुण कर्मवाला पापी हत हुए बिना जीवित रहेगा तो इससे ये जग भस्म हो जायेंगे। यह निश्चित है। दुर्वृत्त वाला यह [वेन] महाराजा के सिंहासन के लिए अर्ह नहीं है। यह पूर्व में जिस सर्वेश्वर के अनुग्रह से इस प्रकार की विभूति से युक्त हुआ, उस यज्ञपति श्रीविष्णु की निंदा कर रहा है। इसलिए निर्लज्ज होनेवाले हरिनिंदक का हनन करना चाहिए। इस प्रकार सोचकर मुनियों ने उद्योग (प्रयत्न) करके, आत्म-

सेयवलयुननि मुनुलुद्योगिंचि यात्म प्रकाशितंबैन क्रोधंबुनं जेसि हुंकार मात्रंबुन ना यीश्वर निंदाहतुंडगु वेनुनि बौलियिंचिरंत ॥ 429 ॥

कं. अरय सुनीथयु शोका, तुरयै तन सुतुडु दनुवु दौरगिन ददनं-
तरमुननु योगशक्ति, वरुवडि निज तनयु तनुवु बरिपालिचॅन् ॥ 430 ॥

व. अंत नौक्कनाडु ॥ 431 ॥

सी. मुनिवरेण्युलु भवित दनर सरस्वती सलिलंबुलनु गृतस्नानुलगुचु
मुनुकौनि तत्तीरमुन नग्निहोत्रमुल् विलसिल्ल नियति गाविंचि यचट
दविलि सत्पुरुष कथा विनोदंबुलु सलुपुचु नुंडग सकल लोक
भयदंबुलगु महोत्पातमुल् दोचिन मसलि लोकंबुल मंगळमुलु

ते. वौरयकुंडॅडु गाकनि बुद्धिलोन
दलचुचुंडग बॅलुच नुदग्रमगुचु
सर्वदिशलनु बांसुवर्षंबु गुरिसॅ
दस्करुलु सर्वजनुल वित्तमुलु गौनिरि ॥ 432 ॥

व. इट्टि लोकोपद्रवं बॅरिगि जननाथुंडुपरतुंडगुटं जेसि जनपदंबु लराजकंबुलै यन्योन्य हिंसल नौंदुचुं दस्कर बाधितंबुलगुचु नुंडुट यॅरिगियु दन्निवारणं-बुनकु समर्थुलय्युनु जोरादि बाधलं गनुंगौनुचु मुनुलु वारिपक युंडिरि। मरियु समदर्शनुंडु शांतुंडु मननशीलुंडु नगु ब्राह्मणुंडु दीनुल नुपेक्षिंचिन

प्रकाशित क्रोध के कारण हुंकार मात्र से उस ईश्वर की निंदा से हत (मरे हुए) वेन को मार डाला। तब ४२९ [कं.] यह जानकर, सुनीथा ने भी शोकातुरा बनकर, अपने पुत्र के तनु (शरीर) को छोड़ देने के बाद भी, योगशक्ति से अच्छी तरह निज तनय की तनु का परिपालन किया (रक्षा की)। ४३० [व.] तब एक दिन, ४३१ [सी.] मुनिवरेण्यों के भवित के शोभित होने पर सरस्वती [नदी के] सलिलों में कृत-स्नान होते हुए, लगकर तत्तीर (उस नदी के तीर) पर अग्निहोत्रों को नियतिपूर्वक (शास्त्र के अनुसार), प्रकाशमान करते हुए, वहाँ कड़ी आसक्ति के साथ सत्पुरुषों की कथाओं से विनोद करते समय, सकल लोकों के लिए भयद होनेवाले महान् उत्पातों के दिखाई पड़ने पर, [ते.] [मुनियों के] अपनी बुद्धि (मन) से यह सोचते समय कि लोकों का अमंगल न हो, बड़ी उग्र होते हुए सर्व दिशाओं में पांसु (धूलि) की वर्षा हुई। तस्करों ने सब जनों का वित्त ले लिया (चुराया)। ४३२ [व.] ऐसा लोक का उपद्रव जानकर, जननाथ (राजा) के उपरत (मृत) होने से, जनपदों का अराजक होकर, अन्योन्य हिंसाएँ पाते हुए, तस्करों (चोरों) से बाधित होना जानकर भी उनके निवारण के समर्थक होकर भी, चौर्य आदि की बाधाओं को

नतनि तपंबु भिन्नभांडगतंबयिन क्षीरंबु चंदंबुन स्रविचुं गावुन नंग वसुधाधीश वंशोद्भवुलु हरिपदाश्रयुलगुट जेसियु नमोघ सत्त्व निष्ठुलगुट जेसियु वीरल वंशंबु विच्छित्ति नोंदिप ननर्हंबु गान स्थापनीयंबगुननि निश्चयिंचि मृतुंडैन वेनुनि कळेबरंबु डग्गर वच्चि तदूरु मथनंबु गाविप नंदु ॥ 433 ॥

सी. घनकाक कृष्णसंकाश वर्णुडुनु ह्रस्वावयवुडु महाहनुंडु
ह्रस्व बाहुंडुनु ह्रस्व पादुंडुनु निम्न नासाग्रुंडु नेंऱ्ऱयु रक्त
नयनुंडु दाम्र वर्णश्मश्रुकेशुंडु नतिदीन वदनुंडु नैन यट्टि
योक्क निषादकुंडुदयिंचि येमि सेयुदु ननि पलुकुचुनुन्न जूचि

ते. वर मुनुलु 'निषीद' यनुचु वलुकुटयुनु
दान वाडु निषादाभिधानुडय्ये
नतनि वंश्युलु गिरि काननाळि वेनु
कल्मषमु चॅर्पुचुंडिरि कडक मऱ्ऱियु ॥ 434 ॥

देखते हुए, मुनिगण बिना रोके रह गये। और समदर्शन वाला, शांत [और] मननशील होनेवाले ब्राह्मण के दीनों की उपेक्षा करने पर, उसका तप भिन्न-भांड-गत (टूटे बर्तन में होनेवाले) क्षीर की तरह स्रवित (नष्ट) होता है। इसलिए अंगवसुधाधीश के वंश में उद्भव होनेवाले [तथा] हरिपद के आश्रयी होने के कारण, अमोघ सत्त्वनिष्ठ होने से, इनका वंश विच्छिन्न होने में अनर्ह है; इसलिए स्थापनीय (स्थापित करने योग्य) है; इस प्रकार निश्चय करके, मृत वेन के कलेवर (शव) के पास आकर, तदूरु (उसकी ऊरु) का मथन किया तो उसमें, ४३३ [सी.] घन (बड़ा) काक (कौए) [की तरह] कृष्ण (काला) संकाश (समान) वर्णवाला, ह्रस्व अवयव वाला, महान हनु (जबड़े) वाला, ह्रस्व बाहु वाला, ह्रस्व पाद वाला, निम्न-नासाग्र वाला, पूर्णरक्त नयन वाला, ताम्र वर्ण के श्मश्रु [एवम्] केश वाला [और] अतिदीनवदन वाला एक निषाद उदित होकर 'क्या करूँ?' [ऐसा बोला] ऐसे बोलनेवाले को देखकर, [ते.] वर (श्रेष्ठ) मुनियों ने 'निषीद' कहा; इसलिए वह निषादाभिधान (निषाद नामक) बन गया। उसके वंश्य (वंशज) सप्रयत्न फिर गिरियों [एवम्] काननों में वेन का कल्मष व्याप्त करते रहे। ४३४

अध्यायमु—१५

कं. कनि वारनपत्युंडगु, मनुजेंद्रुनि बाहुलंत मथियिंचिन नं-
दनघंबगु नोक मिथुनमु, जनियिंचेनु सकल जनुलु सम्मदमंदन् ।।435।।

व. अंदु लोकरक्षणार्थंबुगा नारायणांशंबुन नोक्क पुरुषुंडुनु हरिकि नित्यानपायिनियै लक्ष्मी कळा कलितयै गुणंबुलनु भूषणंबुलकु नलंकार प्रदात्रियुनगु कामिनियु जनियिंचें नंदु बृथुश्रवुंडुनु बृथुयशुंडु नगुट नतंडु पृथु चक्रवर्ति यनु पेरं बसिद्धुडय्यें नय्यंगनयु नर्चि यनु नामंबुनं दनरुचु नतनि वरियिंचें ना समयंबुन ।। 436 ।।

सी. अंदंद कुरियिंचिरमरुलु मुनिनाथ वितति मोवंबंद विरुलवान
बरमानुरक्ति शंभुल्लील जूपट्टॆ सुरपति वीट नच्चरल याट
कर्ण रसायन क्रममुन वीतेंचें बरुपैन तेट किन्नरुल पाट
यनिमिषकरहतंबै चाल जेलगेनु विभवोत्सवंबु दुंदुभि रवंबु

ते. मुनिनुति सॆलंगॆ शिखि गुंडमुल वॆलिगॆ
नंत नचटिकि सरसीरुहासनुंडु

अध्याय—१५

[कं.] देखकर तब उन्होंने अनपत्य (निस्संतान) होनेवाले उस मनुजेन्द्र की बाहुओं को मथ डाला तो उसमें से अनघ होनेवाले एक मिथुन का जन्म हुआ जिससे सकल जनों ने सम्मोद (आनन्द) पाया। ४३५ [व.] उसमें लोक की रक्षा के लिए नारायण के अंश में एक पुरुष [और] हरि के लिए नित्य अनपायिनी होनेवाली लक्ष्मी की कला से कलिता बनकर गुणों [और] भूषणों को अलंकार-प्रदात्री होनेवाली कामिनी का जन्म हुआ। उसमें पृथुश्रव [और] पृथुयश होने से वह पृथुचक्रवर्ति नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस अंगना ने भी अर्चि नाम से प्रसिद्ध होते हुए उसे वरण किया। उस समय ४३६ [सी.] हे मुनिनाथ ! जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) अमरों ने अधिक आनन्द से पुष्प की वृष्टि की। परम अनुरक्ति के साथ शुंभत् लीला से (आनन्द के साथ) स्वर्ग में अप्सराओं का नाट्य दिखाई पड़ा। क्रम से कर्ण (कान) के रसायन के किन्नरों का विस्तृत [और] मधुर गान सुनाई पड़ा। विभव के उत्सव की दुंदुभि का रव (ध्वनि) अनिमिष (देवताओं) के हाथ से हत होकर (बजकर) अधिक व्याप्त हुआ। [ते.] मुनियों की नुति (प्रशंसा) बढ़ गई। अग्निकुंडों में शिखि (अग्नि की ज्वाला) बल उठी। तब वहाँ सरसीरुहासन (ब्रह्मा), गरुड़, गंधर्व [तथा] किन्नरगण के साथ इच्छा से सम्मोद (आनन्द) के बढ़ने से

गरुड गंधर्व किन्नर गणमु तोड
नर्थि जनुदेंचॆ सम्मोद मतिशयिल्ल ॥ 437 ॥

व. अंत ॥ 438 ॥

कवि.※ अरयग वैन्युनि दक्षिण हस्तमु नंदॆ रमा रमणी सुमनो-
हरु ललितायुध चिह्नमु पादमुलंदु समग्र हलांकुश भा-
स्वर कुलिशध्वज चाप सरोरुह शंख विराजित रेखलु वि-
स्फुर गति नॊप्प पितामह मुख्युलु चूचि सविस्मयुलै मरियुन् ॥ 439 ॥

व. इतंडु नारायणांश संभूतुंडु नितनि यंगन रमांशसंभूतयुंगानोपुदुरनि तलंचि यय्यवसरंबुन ब्रह्मवादुलगु ब्राह्मणोत्तमु लतनिकि विध्युक्त प्रकारंबुन राज्याभिषेकंबु गाविंचु समयंबुन ॥ 440 ॥

कं. सरिदंभोनिधि खगमृग, धरणीसुर वर्त्म पर्वत प्रमुखमुलै
परगिन भूत श्रेणुलु, नरवरुनकु दग नुपायनमु लिच्चॆ नॊगिन् ॥ 441 ॥

ते. समधिक ख्याति न। पृथु चक्रवर्ति
देवियगु नर्चितोगूड दिव्य वस्त्र
गंधमाल्य विभूषण कलितु डगुचु
पावकुडु वोलॆ सत्प्रभा भासियय्यॆ ॥ 442 ॥

वहाँ आ पहुँचा । ४३७ [व.] तब ४३८ [कवि]※ देखने पर वैन्य (वेन के पुत्र) के दक्षिण हस्त में रमारमणी के सुमनोहर के ललित-आयुध (चक्र) का चिह्न, पादों में समग्रता से हल, अंकुश, भास्वर (प्रकाशमान) कुलिश (वज्र), ध्वज, चाप, सरोरुह, [और] शंख की विराजित रेखाएँ प्रकाशमान हो जाने पर पितामह (ब्रह्मा) मुख्य (आदि) देखकर, सविस्मय बनकर, फिर ४३९ [व.] यह नारायणांश [से] संभूत [और] इसकी अंगना (पत्नी) रमा के अंश से संभूता हो सकती है —इस प्रकार सोचकर, उस अवसर पर, ब्रह्मवादी होनेवाले, ब्राह्मणोत्तमों ने विधि-युक्त प्रकार से उसका राजतिलक किया। उस समय ४४० [कं.] सरित् (नदियों), अंभोनिधि (समुद्र), खग, मृग, धरणीसुर (ब्राह्मण), वर्त्म, पर्वत प्रमुख (आदि) से प्रवर्तमान होनेवाले भूतश्रेणियों ने उस नरवर को योग्य उपायन (उपहार) क्रम से दिये ४४१ [ते.] समधिक ख्याति से वह पृथु चक्रवर्ति [अपनी] देवी अर्चि के साथ दिव्य वस्त्र, गन्ध [और] माल्यों से प्रभूषणों से कलित [युक्त] होते हुए, पावक की तरह सत्प्रभा [से] भासित (प्रकाशित) हुआ। ४४२ [सी.] राजराजा (कुबेर) ने

※ 'कविराज विराजितमु' छंद के लिए [कवि०] संकेत दिया जा रहा है।

सी. राजराजा पृथु राजुकु हेममयंबैन वीरवरासनंबु
जलपति जलकण स्रावकंबगु पूर्ण चंद्रसन्निभ सितच्छत्रमु मरि
बवमानु डमल शोभनमगु वालव्य जनसमंचित चामरमुलु
धर्मुंडु निर्मलोद्यत्कीर्तिमयमगु महनीय नवपुष्प मालिकयुनु

ते. जंभवैरि किरीटंबु शमनु डखिल
जननियामक दंडंबु जलजभवुडु
निगममय कवचंबु वाणी ललाम
यच्चमगु नव्यहारंबु लिच्च मरियु ॥ 443 ॥

सी. दामोदरुंडु सुदर्शन चक्रंबु नव्याहतैश्वर्यमब्जपाणि
चंद्रार्धधरुडुनु जंद्रमंडल दश कमनीय कोशसंकलित खड्ग
मंबिक शतचंद्रमनु जोडु चंदुरु डमृतमय श्वेत हयचयंबु
त्वष्ट रूपाश्रयोदात्त रथंबुनु भानुंडु घृणिमय बाणमुलुनु

ते. शिखियु नजगो विषाण संचित महाज-
गव मनंवगु चापंबु नवनि देवि
योगमयमैन पादुका युगमु गगन-
चरुलु गीतंबु लिच्चिरि संतसमुन ॥ 444 ॥

व. वेंडियुं बतिदिवसंबु नाकाशंबु पुष्पंबुलु गुरियिप महर्षुलु सत्यंबुलैन

पृथुराजा को हेममय वीर वरासन, जलपति (वरुण) ने जलकण का स्रावक (चूनेवाला) [और] पूर्णचन्द्र-निभ (-के समान) भासित (प्रकाशमान) छत्र, और पवमान ने अमल शोभन होनेवाला वाल-व्यजन (चमरी की पूंछ से बने) समंचित (सुन्दर) सित (श्वेत) चामर, धर्म ने निर्मल [और] उद्यत् (अधिक) कीर्तिमयी होनेवाली महनीय [और] नवपुष्पमालिका, [ते.] जंभ-वैरि (इन्द्र) ने किरीट, शमन (यम) ने अखिल जन का नियामक [करनेवाला] दण्ड, जलजभव (ब्रह्मा) ने निगममय कवच और वाणी-ललामा (सरस्वती) ने स्वच्छ नव्य हार दिये। ४४३
[सी.] दामोदर ने सुदर्शन चक्र, अब्जपाणि ने अव्याहत (बेरोक) ऐश्वर्य, चन्द्रार्धधर (शिवजी) ने चन्द्रमण्डल-दशा (के समान) कमनीय (सुन्दर) कोश-संकलित (म्यान से युक्त) खड्ग, अम्बिका ने शतचन्द्र नामक कवच, चन्द्रमा ने अमृतमय श्वेत हयों (घोड़ों) का चय (समूह), त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने रूपाश्रय (एवम्) उदात्त रथ, भानु ने घृणि (कांति) मय बाण, [ते.] शिखि (अग्नि) ने अज, गो-विषाण (सींग) से संचित-(निर्मित) महाजगव नामक चाप, अवनि-देवी (भूमि) ने योगमय होने वाला पादुकायुग [और] गगनचरों ने आनन्द के साथ गीत दिये, ४४४
[व.] फिर प्रतिदिवस आकाश के पुष्प बरसाने पर, महर्षियों के सत्य

याशीर्वचनंबुलु सलुप समुद्रंडु शंखंबुनु नदंबुलु पर्वतंबुलु नदुलुनु रथमार्गंबु नीसर्गं। तदनंतरंब सूतमागध वंदि जनंबुलु दन्नु नुतियिंचिनं ब्रताप शालियगु नव्वैन्युंडु मंदस्मित सुंदर वदनारविंदुंडै चतुर वचनुंडगुचु मेघ गंभीर भाषणंबुल वारल किट्लनियें ॥ 445 ॥

सी. वंदिमागधसूतवरुलार ! नायंदु गमनीय गुणमुलु गलिगॆनेनि
नर्हंबु नुति सेय नवि लेवु नायंदु नदि गान मी नुति व्यर्थमय्यॆ
निटमीद गुणमुल नेपारि युंडिन नपुडु नुतिचॆंवमंटिरेनि
सभ्यनियुक्तुलै चतुरत नुत्तम श्लोकुनि गुणबु लस्तोक भू प्र-

ते. सिद्धमुलु गान सन्नुति सेयु डजुनि
नतनि बहुविध भावंबु लभिनुतिप
नलवि गाकयं युंडुदु रदियु गाक
चतुर मतुलार ! मागधजनमुलार ! ॥ 446 ॥

व. मरियु महात्मुल गुणंबुलु दनयंदु संभावितंबुलु सेय सामर्थ्यंबुलु गलिगिन नंदु महात्मुल गुणंबुलु प्रसिद्धंबुलु गावुनं दत्तमंबुगा नॆट्लु नुतिप वच्चु ? नॆव्वंडे नौकंडु शास्त्राभ्यासंबुनं दनकु विद्या तपोगुणंबुलु गलुगु ननि पलिकिन वानि जूचि सभ्युलु परिहसितु रदि कुमति यगु वाडंडुंगंडवियुनुंगाक ॥447॥

आशीर्वचन करने पर, समुद्र ने शंख, नदों, पर्वतों [तथा] नदियों ने रथमार्ग दिये। तदनंतर सूत-मागध-वंदि जनों के उसकी नुति (स्तुति) करने पर, प्रतापशाली होनेवाले उस वैन्य (वेन के पुत्र पृथु) ने मंदस्मित, सुन्दर बदनारविंद वाला बनकर, चतुरवचन वाला बनते हुए, मेघगम्भीर भाषणों से उनसे इस प्रकार कहा। ४४५ [सी.] [हे] वंदिमागध सूतवर (श्रेष्ठ) ! अगर मुझमें कमनीय गुण होते तो नुति (स्तोत्र) करने के लिए अर्ह होते; लेकिन मुझमें वे [गुण] नहीं हैं; इसलिए तुमसे की गई नुति व्यर्थ हुई। अगर तुम कहते कि इसके बाद गुणों के अतिशय होने पर नुति करेंगे, तो तुम लोग सभ्यों से नियुक्त होकर, चतुरता से उत्तमश्लोक वाले (प्रसिद्ध या पूज्य) के गुण अस्तोक हैं, [ते.] भूलोक में प्रसिद्ध हैं, इसलिए अज ब्रह्मा की सन्नुति करो। उसके बहुविध भाव अभिनुति करने में अशक्य रहते हैं; इसके अतिरिक्त, हे चतुर मतिवालो [एवं] मागधजनो ! ४४६ [व.] और महात्माओं के गुणों को अपने में संभावित करने की सामर्थ्य रखने से, उसमें महात्माओं के गुण प्रसिद्ध होते हैं। इसलिए उनके समान [कहकर] कैसे नुति कर सकते हैं ? अगर कोई एक कहे कि उसको शास्त्राभ्यास से विद्या, तप और गुण [लभ्य] होते हैं, उसे देखकर सभ्य [जन] परिहास करते हैं; उसे कुमति होनेवाला नहीं जानता। इसके अतिरिक्त ४४७ [कं.] अतिपरिशुद्ध, लज्जान्वित,

कं. अति परिशुद्धुलु लज्जा, न्वितुलु महोदारुलधिकनिर्मलु लात्म-
स्तुति परनिंदलु दोषमु, लति हेयमुलनि तलंतुरात्मल नेपुड्न् ॥ 448 ॥

कं. वंदि जनंबुलु लोकमु, लंदु नविदितवर कर्मुलगु भूपतुलन्
नंदिचुटवश्यंबे, नं बगवु नुतिंप शिशुजनंबुल पगिदिन् ॥ 449 ॥

अध्यायमु—१६।

कं. अनि सूत वंदिमागध, जनु ला नरनायकुनि वचनमुलु विनियुन्
मुनि चोदितुलै क्रम्मर, ननुरागमुलुप्पतिल्ल नम्मनुजेंद्रुन् ॥ 450 ॥

व. अमृतोपमानंबुलयिन मधुर वाक्यबुल निट्लनिरि ॥ 451 ॥

कं. वेनांगसंभवुंडवु, श्रीनाथ कळांशजुडवु चिरतरगुण स-
म्मानार्हुंडवतर्कित. मैन भवन्महिम बोगड नलवियें माकुन् ॥ 452 ॥

कं. अनि वेंडियु निट्लनि रे, ननु नोक मार्गंबु गलदु नंदिप भव-
द्धन चरितामृतपानं, बनु जेसियु मुनुल वचनमुल जेसि तगन् ॥ 453 ॥

व. श्लाघ्यंबुलैन भवदीय चरित्रंबुल स्तुतियिंचेदमनि यिट्लनिरि ॥ 454 ॥

महान् उदार [और] अधिक निर्मल [होनेवाले] अपनी आत्माओं में सदा समझते है कि आत्मस्तुति [और] परनिंदा अतिहेय हैं। ४४८ [कं.] वंदिजनों को लोको में विदित वर कर्म [वाले] भूपतियों को आनंदित करना आवश्यक है, फिर भी शिशु जनों की तरह नुति करना योग्य नहीं है। ४४९

अध्याय—१६

[कं.] इस प्रकार सूत [और] वंदिमागध जन उस नरनायक (राजा) के वचन सुनकर भी, मुनियों से चोदित होकर, फिर अनुराग के अधिक होने पर, उस मनुजेंद्र से ४५० [व.] अमृतोपमान होनेवाले मधुर वाक्यों से इस प्रकार बोले। ४५१ [क.] [तुम] वेन [के] अंग [से] संभवित (उत्पन्न) हो। श्रीनाथ के कलांशज हो। चिरतर गुणो से सम्मान के लिए अर्ह हो। क्या हमारे लिए अतर्कित होनेवाली भवन्महिमा की प्रशंसा करना संभव है? (नही है) ४५२ [कं.] यों कहकर फिर इस प्रकार बोले। फिर भी एक मार्ग है। भवत् (तुम्हारा) घन (श्रेष्ठ) चरित्र रूपी अमृत [का] पान करके मुनियों के वचनों के कारण ठीक तरह से ४५३ [व.] श्लाघ्य होनेवाले भवदीय चरित्र की स्तुति करेंगे। यों कहकर इस प्रकार बोले। ४५४ [सी.] यह वैन्य अखिल लोकों के समूह [की], धर्म के अनुवर्तनों से [उन लोकों को]

सी. ई वेन्युडखिल लोकावलि धर्मानुवर्तनमुल नॅग्ड्डु वरूल जेसि
घनधर्ममार्ग वर्तनुललो धन्युडै धर्मसेतुवु प्रीति दगिलि प्रोचु
धरनु शात्रवुलनु दंडिचु नष्ट दिक्पालक मूर्ति संकलितुडगुचु
नय्ययि कालंबुलंदु पोषण दानमुल प्रजारंजनमुल वनचुं

ते. सवन सद्वृष्टिकरणादि सक्तुडगुट
नुभय लोकंबुलकु प्रीति नॊदव जेयु
न्याय मार्गंबुननु भूजनाळि धनमु
बुच्चुकॊनु निच्चु सूर्युडु बोलॅ यितडु ॥ 455 ॥

व. मरियुनु ॥ 456 ॥

सी. सर्वभूतमुलकु समुडुनु वर्यतिक्रममुन लोकापराधमुलनु
नति कां तसंयुक्तुड सहिचुचु नार्तुलगुवारियॅड गृपायत्तुडगुचु
नररूपधारियौ हरिमूर्ति गावुन निद्रुंडु वषिचि यॅल्ल प्रजल
रक्षिचु गति दानु रक्षिचु नमृतांशु सन्निभवदनाब्ज सस्मितानु

ते. रागमिळितावलोकन राजि जेसि,
सकल जनुलकु संप्रीति संभविप
जेयु संततमुनु गूढ चित्तुडगुचु,
शत्रुवरुल कगम्युडै संचरिचु ॥ 457 ॥

सदा प्रकाशमान करके, घन (महान्) धर्ममार्ग का वर्तन करनेवालों में श्रेष्ठ होकर, धर्म की सेतु की प्रीतियुक्त हो रक्षा करेगा। धर्म के शत्रुओं को दण्ड देगा। अष्टदिक्पालकों की मूर्ति [से] संकलित होते हुए, सब कालों में पोषण [और] दानों से प्रजा को रंजन [से] संतुष्ट करेगा। [ते.] सवन (यज्ञ) और सद्वृष्टिकरण आदि [में] आसक्त होने से, उभय लोकों को प्रीति पहुँचा देगा। न्यायमार्ग में भूमि (पर) जनालि (प्रजा के समूह) [से] धन लेते हुए, सूर्य की तरह यह [उस धन को वापस] दे देगा। ४५५ [व.] और ४५६ [सी.] सर्व भूतों के लिए सम, पर्यतिक्रम में लोकों के अपराधों को अति (अधिक) शांतिसंयुक्त होकर सहन करते हुए, आर्त (दुःखित) होनेवालों के प्रति कृपायत्त होते हुए, नर रूप-धारी होनेवाले हरि की मूर्ति होने के कारण जैसे इन्द्र वर्षा देकर सारी प्रजा की रक्षा करता है, वह स्वयं रक्षा करेगा। अमृतांश (चन्द्र)-सन्निभ (-सम) वदन रूपी अब्ज (कमल) [वाला हो] सस्मित [और] [ते.] अनुराग-मिलित अवलोकन-राजि (-पंक्ति) से सकल जनों को संप्रीति संभवित करेगा। संतत (सदा) गूढ़ चित्त वाला बनते हुए शत्रुवरों को अगम्य बनकर संचरण करेगा। ४५७ [व.] यों कहकर फिर प्रवेश

व. अनि वॆंडियु ब्रवेश निर्गम शून्यमार्ग निगूढ कार्युंडुनु, नपरिमित महत्त्वादि गुण गणैकधामुंडुनु, समुद्रंबु भंगि गंभीर चित्तुंडुनु, सुगुप्त वित्तुंडुनु, वरुणुंडुनु बोलॆ संवृतात्मुंडुनु शात्रवासह्य प्रताप युक्तुंडुनु, दुरासदुंडुनु, समीपवर्ति यय्युनु दूरस्थुनि भंगि वर्तिचुचु वेनारणि जनित हुताशनुंडु गावुन हुताशनु चंदंबुन नन्यदुस्स्पर्शनुंडुनुनै चारुल वलन सकल प्राणि बाह्याभ्यंतर कर्मंबुलं दॆलियुचु, देहधारुलकु नात्मभूतुंडै सूत्रात्मकुंडैन वायुवु भंगि वर्तिचुचु, नात्मस्तुति निंदल वलन नुदासीनुंडगुचु धर्मपथंबुन वर्तिचुचु नात्मीय सुहृद्बंधुवुल वलनं दप्पु गलिगिननु दंडिचुचु, नात्म शत्रुवुल नैन नदंड्युल दंडिपक धर्ममार्ग गतुंडगुचु दन याज्ञा चक्रं बप्रतिहतं बगुचु मानसाचलपर्यंतंबु वर्तिप सूर्युंडु निजकिरणंबुल चेत नॆंत पर्यंतंबु भूमि ब्रकाशिपंजेत नंत पर्यंतंबु निजगुणंबुल चेत लोकंबुल रंजिल्लंजेयु नदियुनुंगाक प्रकृति रंजकंबुलैन गुणंबुल चेत दृढव्रतुंडुनु सत्यसंधुंडुनु ब्रह्मण्युंडुनु सर्वभूत शरण्युंडुनु वृद्ध सेवकुंडुनु मानप्रदुंडुनु दीन वत्सलुंडुनु बरवनितामातृभावनुंडुनु दन पत्नि नर्धशरीरंबुगा दलंचु वाडुनु नगुचुं ब्रजल यॆड दंड्रि वलॆ ब्रीति सेयुचु रक्षिचुचुंडु मद्रियुनु ॥ 458 ॥

सी. तलपोय ब्रह्मविद्यायुक्त जनमुल कनयंब गिंकरुंडैन वाडु
नखिल शरीरिगुणाप्त सुहृज्जनतानंद करुडन नलरु वाडु

[और] निर्गम शून्य मार्ग [का] निगूढ़ कार्यवाला, अपरिमित महत्त्व आदि गुण-गण का एक धाम, समुद्र की तरह गम्भीर चित्तवाला, सुगुप्तवित्तवाला, वरुण की तरह संवृतात्मा, शत्रुओं के लिए असह्य प्रताप से युक्त, दुरासद, समीपवर्ती होकर भी दूरस्थ की तरह प्रवर्तमान होते हुए, वेन रूपी अरणि में जनित हुताशन (अग्नि) होने से हुताशन की तरह अन्यों के लिए दुस्पर्शन बनकर, गुप्तचरों से सकल प्राणियों के बाह्य [और] आभ्यंतर कर्म जान लेते हुए, देहधारियों के लिए आत्मभूत बनकर सूत्रात्मा होनेवाले वायु की तरह प्रवर्तमान होते हुए, आत्मस्तुति [तथा] निंदाओं से उदासीन होते हुए, धर्मपथ में रहते हुए, आत्मीय, सुहृत् [एवम्] बन्धुओं से भी क्यों न हो, दोष होने पर दण्ड देते हुए, आत्म (अपने) शत्रु के पुत्र होने पर भी अदंड्यों को दण्ड न देते हुए, धर्ममार्गगत होते हुए, अपने आज्ञा-चक्र के अप्रतिहत बनाते हुए, मानसाचल पर्यंत चलने पर सूर्य निज किरणों से जहाँ तक भूमि को प्रकाशमान करता है, वहाँ तक निज गुणों से लोकों को रंजित करेगा। इसके अतिरिक्त प्रकृति [को] रंजित करनेवाले गुणों से दृढ़व्रती, सत्यसंध, ब्रह्मण्य, सर्वभूतशरण्य, वृद्धसेवक (वृद्धों का सेवक), मानप्रद, दीनवत्सल, पर (दूसरों की) वनिता (पत्नी) के प्रति मातृभावना रखनेवाला [और] अपनी पत्नी को अर्धशरीर माननेवाला होते हुए प्रजा के प्रति प्रीति रखते हुए [उसकी] रक्षा करते रहेगा। और ४५८

संसारघन कर्म संगहीनुलयंदु संग संप्रीतुडै जरगु वाडु
दुर्मार्ग मनुज संदोहंबुनकु नुग्रदंडधरुंडन दनरु वाडु

ते. प्रकृति पुरुषुल कधीशुडै परगुवाडु,
भगवदवतारयुक्तुडै नेगडु वाडु
नगुचु वर्तिचु सम्मोद मतिशयिल्ल,
चारुतरमूर्ति यी राज चक्रवर्ति ॥ 459 ॥

व. मरियुं द्र्यधीशुंडु गूटस्थुंडु वरमात्मयु ब्रह्मकळा रूपुंडु नगु वाडुनुनै युर्दायिचें गावुन नितनि यंदु नविद्यारचितंबैन भेदंबु निरर्थकंबगु ननि पेद्दलगुवारलु चूतुरु मरियुनु ॥ 460 ॥

सी. उदयाद्रि पर्यंत मुर्वीतलं बेकवीरु डै रक्षिचि वेलयु नीत
डोकनाडु विजय यात्रोत्सवं बेपार सन्नद्धुडै मणिस्यंदनंबु
नेक्कि चापमु बूनि दिषकुल सूर्युनि पगिदिनि शत्रु भूपाल तमसु
विरियितुननि चाल वेलुगोंदुचुनु धराचक्र प्रदक्षिणशालियगुचु

ते. तिरुगुनेड सर्व दिक्पालवर समेत
पार्थिवोत्तम निकर मुपायनंबु

[सी.] सोचने पर, चारुतर मूर्ति [वाला] यह राज-चक्रवर्ति, ब्रह्म-विद्या [से] युक्त जनों के लिए सदा किंकर (दास) बननेवाला, अखिल शरीरियों के लिए आप्त [और] सुहृज्जनता [के लिए] आनन्दकर कहलाते शोभित होनेवाला, संसार [के] घन (बड़े) कर्म [से] संगहीनों (अनासक्तों) के संग (सांगत्य) में संप्रीत होकर रहनेवाला, दुर्मार्ग [वर्ती] मनुजों के संदोह (समूह) के लिए उग्र-दण्डधर (-यम) के रूप में विलसित होनेवाला, [ते.] प्रकृति [और] पुरुष के लिए अधीश बनकर रहनेवाला, भगवदवतारयुक्त हो प्रवर्द्धमान होनेवाला, सम्मोद (आनन्द) के अतिशय होने पर, बना रहेगा। ४५९ [व.] और त्र्यधीश, कूटस्थ, परमात्मा और ब्रह्मकला-रूप वाला बनकर पैदा हुआ; इसलिए इसमें अविद्या-रचित-भेद निरर्थक होगा —ऐसा बड़े (ज्ञानी) लोग देखते (समझते) हैं। और ४६० [सी.] इस प्रकार कहा— उदयाद्रि पर्यंत उर्वीतल की रक्षा एकमात्र (अकेला) वीर बन करके, प्रकाशमान होनेवाला यह [राजा] एक दिन विजय-यात्रा के उत्सव के अतिशयित होने पर, सन्नद्ध होकर मणि [मय] स्यंदन (रथ) पर चढ़कर, चाप (धनुष) लेकर, दिशाओं में सूर्य की तरह, शत्रु-भूपाल (राजा) [रूपी] तम अंधकार को मिटा दूंगा —यों कहकर बहुत प्रकाशमान होते हुए, धराचक्र की प्रदक्षिणाशाली बनते हुए, [ते.] घूमते समय सर्वदिक्-पालक-वर (-श्रेष्ठ)-समेत पार्थिवोत्तमों का निकर (समूह) उपायन (भेंट) देकर, वह चक्रपाणि

लिच्चि तनु जक्र पाणिनि नैनयुनादि
धरणि विभुडनि नुतियिंचि तलतु रनुचु ॥ 461 ॥

कं. ई नृपति धराचक्रमु, धेनुवुगा जेसि पिदुकु धृति नखिल पदा-
र्थानीकमु विबुधुलु स, न्मानिपग ब्रजकु जीवन प्रदुडगुचुन् ॥ 462 ॥

चं. अमरवरेण्यु बोलि यनयंबु नितंडुनु गोत्र भेदन
त्वमुन जॅलंगु दानजगव प्रदरासन शिंजिनी निना
दमुन विरोधि भूपतुलु दल्लडमंद नसह्य सिंह वि-
क्रममुन संचरिंचु ननि कौतुक मॉप्पग बलिक वेंडियुन् ॥ 463 ॥

व. इट्लनिरि ॥ 464 ॥

चं. सकल जगन्नुतुंडितडु चारु यशोनिधि यश्वमेधमुल्
प्रकटमुगा शतंबु दग बावनमैन सरस्वती तटी
निकट धरित्रि जेयुतरि नेर्पुन नंतिम यागमंदु गॉ
जक मखसाधनाश्वमुनु जंभविरोधि हरिंचु नुद्धतिन् ॥ 465 ॥

सी. ऑकनाडु निज मंदिरोपांत वनमुनकु जनि यंदु सद्गुणशालि यैन
घनुनि सनत्कुमारुनि गांचि यम्मुनिवरु ब्रह्मतनयुगा नॅरिगि भक्ति
बूजिंचि विज्ञानमुनु बॉदु दानिचे ब्रह्मवेत्तलु मुनि प्रवरुवलन
भावित सुक्ति संपन्नुले वर्तितु रिम्महाराजु महीतलंबु

(विष्णु) के समान धरणी का आदि-विभु (-राजा) है, ऐसा कहकर स्तुति करके स्मरण करेंगे। [इस प्रकार] कहते हुए, ४६१ [कं.] यह नृपति [सारे] धरा-चक्र [को] धेनु (गाय) बनाकर, धृति (धैर्य) से अखिल पदार्थों के अनीक (समूह) को प्रजा के लिए जीवनप्रद बनाते हुए, दुह लेगा जिससे विबुध (पण्डित) उसका सम्मान करें। ४६२ [चं.] अमर-वरेण्य (इन्द्र) की तरह सदा यह गोत्र-भेदनत्व (पहाड़ों को तोड़ने) में प्रकाशमान होते हुए, स्वयं अजगव [नामक] प्रदरासन (धनुष) की शिंजिनी (ज्या) के निनाद से असह्य-सिंह-विक्रम के साथ संचरण करेगा जिससे विरोधी भूपति व्याकुल हो जायँ। कौतुक के बढ़ने पर इस प्रकार कहकर फिर ४६३ [व.] यों बोले। ४६४ [चं.] यह सकल जग में नुत (प्रशंसित) होगा। [यह] चारु (सुन्दर) यशोनिधि के (पृथु के) प्रकट रूप से शत अश्वमेध (यज्ञ) अधिक पावन सरस्वती तटी (नदी) के निकट धरित्री (भूमि) पर करते समय, बड़ी चतुरता से अन्तिम याग में संकोच न करके, मखसाधनाश्व (यज्ञ के घोड़े) का जंभ-विरोधी (इन्द्र) उद्धति (पराक्रम) से हरण करेगा। ४६५ [सी.] एक दिन निज मंदिर के उपांत (समीप) के वन में जाकर, उसमें सद्गुणशाली [तथा] घन (श्रेष्ठ) सनत्कुमार को देखकर, उस मुनि-वर (-श्रेष्ठ) को ब्रह्मा

ते. नंबु विश्रुत विक्रमु डगुचु मिगुल
दन कथावळि भू प्रजातति नुतिप
नक्कडक्कड विनुचु शौर्यमुन नखिल
दिक्कुलनु गॆल्चि वर्तिंचु धीरयशुडु ॥ 466 ॥

अध्यायमु—१७

व. इट्लु विपाटित विरोधिशल्युंडु सुरासुर जेगीयमान निज वैभवुंडुन धराचक्रंबुन कितंडु राजय्येडि नॆनि यिव्विधंबुन स्तोत्रंबु सेसिन वंदिमागध सूत जनंबुलं बृथुचक्रवर्ति पूजिंचि मरियु ब्राह्मण भृत्यामात्य पुरोहित पौर जानपद तैलिक तांबूलिक नियोज्य प्रमुखाशेष जनंबुलं दत्तदुचित क्रियलं बूजिचॆं। अनि मैत्रेयुंडु सॆप्पिन विनि विदुरं डिट्लनियॆ ॥ 467 ॥

पृथु चक्रवर्ति गोरूपधारिणि युगु भूमि वलन नोषधुल पिदुकुट

सी. एमि निमित्तमै भूमि गोरूपिणि यय्यॆ ? दानिकि वत्समय्यॆ नॆव्व ? गॊनकॊनि दोहनमुनकु नहँबैन पात्र मॆय्यदि ? दलपंग दोग्ध

का तनय जानकर, भक्ति से [उसकी] पूजा करके, विज्ञान पायेगा। ब्रह्मवेत्ता मुनि-प्रवर (-श्रेष्ठ) भावित मुक्तिसंपन्न बनकर, इस महान राजा के महीतल पर (राज्य में) प्रवर्तमान रहेंगे। [ते.] अधिक विश्रुत (प्रसिद्ध) विक्रम वाला बनते हुए रहेगा, जिससे इसकी कथावलि [की] भू [की] प्रजातति (प्रजासमूह) स्तुति करेगी। जहाँ-तहाँ सुनते हुए शौर्य से अखिल दिशाओं को जीतकर [यह] धीर-यश वाला प्रवर्तमान रहेगा। ४६६

अध्याय—१७

[व.] इस प्रकार विपाटित (चीरे हुए) विरोधी-शल्य वाला, सुर [एवम्] असुर [से] जेगीयमान (प्रशंसित) निज वैभव [वाला] बनकर, धरा (भूमि)-चक्र के लिए यह राजा बनेगा। इस तरह स्तोत्र करनेवाले वंदि, मागध, सूत जनों की पृथु चक्रवर्ति ने पूजा करके और ब्राह्मण, भृत्य, अमात्य, पुरोहित, पौर, जानप्रद, तैलिक, तांबूलिक, नियोज्य प्रमुख (आदि) अशेष जनों की तत्तत् (उन-उनके योग्य) उचित क्रिया से पूजा की। इस प्रकार मैत्रेय के कहने पर सुनकर विदुर ने इस प्रकार कहा। ४६७

पृथु चक्रवर्ति का गोरूप-धारिणी भूमि से ओषधियों को दुहना

[सी.] हे अनघचारित्र (चरित्रवाला)! मैत्रेय! किस निमित्त

यैन या पृथु वे पदार्थमुल् पितिकॅनु ? वरिकिप नवनि स्वभावमुननु
विषमसैयुंडियु वॅलयंग नेरीति समगति जेंदॅनु जंभवैरि ?

ते. क्रतु हयंबुनु गॊनिपोव गार्य मॆव्वि ?
धीरनिधि यातडु सनत्कुमारुवलन
गलितविज्ञानु डगुचु नेगतिनि बॊंदॆ ?
ननघचारित्र ! मैत्रेय ! यवियुगाक ।। 468 ।।

व. मरियु बरब्रह्मंबुनु भगवंतुंडुनु बुण्यश्रवणकीर्तनुंडुनु सर्वनियामकुंडुनु नगु कृष्णुनि यवतारांतराश्रयंबगु पुण्य कथलन्नियु नीकुनु, नधोक्षजुनकुनु दासुंड नैन नाकु नॆरिंगिपु मनिन वासुदेवकथा संप्रीत चेतस्कुंडगु विदुरं बशंसिचि मैत्रेयुं डिट्लनियॆ । अट्लु ब्राह्मण जनंबुल चेत राज्यंबुनंदभिषिक्तुंडगुचु सकल प्रजापालन नियुक्तुंडै पृथुवु राज्यंबु सेयुचुंडु नंत नीरसयगु धरित्रियंदन्न रहितुलगुचुं ब्रजलु क्षुत्पीडा क्षीण देहुलै वैन्युनि जूचि यिट्लनिरि ।। 469 ।।

कं. अरयग नेमु बुभुक्षा, परिपीडं बडिति मय्य ! पॆकॊनि तरु को-
टर जनित वह्नि चेतनु, दरिकॊनु वृक्षमुल बोलि धरणीनाथा ! ।।470।।

भूमि गोरूपिणी बनी ? उसका वत्स (बछड़ा) कौन बना ? यत्न करके दोहन (दुहने) के लिए अर्ह (योग्य) होनेवाला पात्र कौन-सा था ? सोचने पर दोग्धा (दुहनेवाला) होनेवाले उस पृथु ने कौन-कौन से पदार्थ दुहे ? सोचने पर अवनि (भूमि) ने [अपने] स्वभाव से विषम होते हुए भी, शोभा से समगति कैसे पायी ? जंभवैरि (इन्द्र) के [ते.] क्रतु (यज्ञ)-हय (घोड़े) को ले जाने का कारण क्या था ? धीरनिधि होनेवाले उसने (पृथु ने) सनत्कुमार से कलित-विज्ञानी बनकर किस गति को पाया ? इसके अतिरिक्त ४६८ [व.] और परब्रह्म, भगवान, पुण्यश्रवण-कीर्तन वाला और सर्व-नियामक होनेवाले कृष्ण के अवतार के अंतर के आश्रित होनेवाली सभी पुण्यकथाएँ तुम्हारे [और] अधोक्षज के दास होनेवाले मुझे समझा दो। [इस प्रकार] कहने पर वासुदेव की कथा से संप्रीत-चेतस्क होनेवाले विदुर की प्रशंसा करके मैत्रेय ने इस प्रकार कहा। उस प्रकार ब्राह्मण जनों से राज्य में अभिषिक्त होते हुए सकल प्रजा के पालन में नियुक्त होकर पृथु राज्य करता रहा। तब नीरस होनेवाली धरित्री में अन्नरहित होते हुए लोगों ने क्षुत्पीड़ा से क्षीण-देही बनकर वैन्य को देखकर इस प्रकार कहा। ४६९ [कं.] हे स्वामिन् ! हे धरणीनाथ ! देखने पर, लगकर तरु (पेड़) के कोटर [में] जनित वह्नि (आग) से जलनेवाले वृक्षों की तरह हम बुभुक्षा की पीड़ा से पीड़ित हैं। ४७० [कं.] हे नरनायक !

कं. शरण शरण्युडवगु निनु, शरणमु वेडदमु माकु सत्कृप नन्नं
वरसि कृप सेसि प्रोवुमु, नरनायक ! यनुचु प्रजलु नतुलै पलुकन् ॥471॥

कं. विनि दानिकि सदुपायमु, जननायकु डात्म दलचि सक्रोधुंडै
धनुवुन बाणमु दॉडिगॅनु, घन रौद्रुंडैन त्रिपुर घस्मरु पगिदिन् ॥ 472 ॥

व. इट्लु दॉडिगिन ॥ 473 ॥

कं. महिपति नप्पुडु गनुगॉनि, महि गोरूपमुन गंप्यमानमु नगुचुन्
गुहकुंडगु लुब्धकु गनि, गहनंबुन बारु हरिणि कैवडि बारॅन् ॥ 474 ॥

व. इट्लु धरणि पारिन नतंडुनु गुपितारुणेक्षणुंडै वॅटं दगिलि नल्दिक्कुलनु विदिक्कुलनु भू नभोभागंबुल नॅक्कड जनियॅ नक्कडक्कडिकि वॅनु दगिलि युद्यतायुधुंडै चनुचुंड, नव्वॅन्युनिगनि मृत्युग्रस्तुलगु प्रजल चंदंबुन ननन्य शरण्ययै यति भयंबुनं वरितप्यमान हृदय यगुचु निट्लनियॅ वॅन्या ! धर्मज्ञुंड, वापन्न वत्सलुंडवु, महात्मुंडवु, सकल प्राणि परिपालनावस्थितुंडवु-नैन नी वी दीनयु पाप रहितयु गामिनियु नगु ननु वधियिपं बूनि येल वॅनुदगुलुचुन्नवाडवु ? धर्मतत्त्वं वॅरुंगु वारु सती जनंबुलु कृतापराधलैनं

शरणागतों के लिए शरण्य होनेवाले तुम्हारी शरण की प्रार्थना करते हैं। हमें सत्कृपा से अन्न देकर कृपा करके [हमारी] रक्षा करो। इस प्रकार कहते हुए प्रजा के नत होकर कहने पर, ४७१ [कं.] [ये वातें] सुनकर जननायक (राजा) ने उनका सदुपाय आत्मा में सोचकर [और] सक्रोधी बनकर, घन (बड़े) रौद्र से युक्त होनेवाले त्रिपुर-धस्मर (शिव) की तरह धनुष पर वाण चढ़ाया। ४७२ [व.] ऐसा चढ़ाने पर, ४७३ [कं.] महीपति (राजा) को तब देखकर मही (पृथ्वी) गो (गाय) के रूप में कंपमाना होते हुए, कुहक (वंचक) लुब्धक (शिकारी) को देखकर गहन (जंगल) में भाग जानेवाली हरिणी की तरह भाग गयी। ४७४ [व.] इस प्रकार धरणी के भाग जाने पर वह भी कुपित अरुण-ईक्षण (-आँख) वाला बनकर [गाय के] पीछे पड़कर, चारों दिशाओं मे [और] विदिशाओं (कोनों) में भू [और] नभो भागों में जहाँ [वह गाय] गयी वहाँ गया। जहाँ-तहाँ [गाय के] पीछे पड़कर उद्यत-आयुध (उठाये गये आयुध) वाला बनकर, जाते समय उस वैन्य (पृथु) को देखकर मृत्यु-ग्रस्त होनेवाली प्रजा की तरह अनन्य-शरण्या बनकर, अतिभय से परितप्यमान हृदय वाली होती हुई [पृथ्वी ने] इस प्रकार कहा। हे वैन्य ! [तुम] धर्मज्ञ हो, आपन्नवत्सल हो, महात्मा हो, सकल प्राणियों का परिपालन करने में अवस्थित हो। ऐसे तुम इस दीना, पाप-रहिता [और] कामिनी होनेवाली मेरा वध करने के लिए तैयार होकर, क्यों मेरा पीछा कर रहे हो ? धर्म का तत्त्व जाननेवाले सतीजन के, कृतापराधाएँ होने पर भी, दीनवत्सलता के कारण [उनका]

दीनवत्सलतं जेसि वधियिंपरु। अनि पलिकि, मरियु ना धरणि पृथु चक्रवर्ति किट्लनियें ॥ 475 ॥

कं. जननाथचंद्र ! यी भू, जनकोटिकि यानपात्र सदृश स्थितितो
घन दृढ शरीर नगुचुनु, ननयमु नाधारभूत नयि चरियिंतुन् ॥ 476 ॥

ते. इट्टि नन्नु गृपामति यँडलि यिट्टु वि-
पाटनमु सेसि त्रुंचेंदु ? प्रजलु नीट
मुनुगकुंडंग ने रीति ननघचरित !
यरसि रक्षितुवन नतंडवनि कनियें ॥ 477 ॥

व. धरित्री ! मदीयाज्ञोल्लंघनंबु सेयुचुन्नदानवु। अदियुनुंगाक नीवु यज्ञंबुलंदु हविर्भागंबुल ननुभविंपुचु धान्यादिकंबुल विस्तरिंपंजेयक गोरूपंबु धरियिंचि यनयंबु तृणभक्षणंबु सेयुचु बालुं बितुकक नीयंदणंचिकोंटिवि। नयिदुन्नयोषधीबीजंबुलु ब्रह्मचेतं बूर्वंबुनंद कल्पिपंबडिनयवि। वानिनि नी देहमंदयणंचिकोनि यिप्पु डीयक मूढ हृदयंबु, मंदमतिवियुने यपराधंबु जेसिन दुष्टुरालवगु निनु ना बाणंबुलचे जर्जरीभूत शरीरंजेसि वधियिंचि नी मेनि मांसंबुनं जेसि क्षुद्बाधितुलु दीनुलु नगु नी प्रजल यार्ति निवारिंचेंद।

वध नहीं करते। यों कहकर, फिर धरणी ने पृथु चक्रवर्ती से इस प्रकार कहा। ४७५ [कं.] हे जननाथ-चंद्र ! इस भूमि की जन-कोटि (समूह) के लिए यानपात्र (जहाज)-सदृश स्थित हो (रहकर), घन और दृढ़-शरीरा बनते हुए अनय (सदा) आधारभूता बनकर रहती हूँ। ४७६ [ते.] ऐसी मुझे कृपामति (करुणा) को छोड़कर, इस प्रकार चीरकर तोड़ डालना चाहते हो। हे अनघचरित्र ! [तब मेरे न रहने पर] प्रजा को पानी में डूबे बिना किस प्रकार तुम [उनकी] रक्षा करोगे ? ऐसा कहने पर उस [राजा] ने अवनि से कहा। ४७७ [व.] हे धरित्री ! [तुम] मदीय आज्ञा का उल्लंघन करती हो। इसके अतिरिक्त तुम यज्ञों में हविर्भागों का अनुभव करते हुए, धान्य आदि का विस्तार न करके, गो का रूप धारण करके अनय (सदा) तृण (घास) का भक्षण करती हुई, दूध न दुह (दे)कर, अपने में [दूध को] दबा करके रख लिया, तुममें जो ओषधियों के बीज हैं, वे ब्रह्मा से पूर्वकाल में ही कल्पित किए गये हैं। उनको अपनी देह में ही दबा रखकर, अब न देकर, मूढ़हृदया [और] मंदमति बनकर अपराध करनेवाली [दुष्टा होनेवाली] तुम्हे [मैं] अपने बाणों से जर्जरीभूत-शरीरा बनकर, [तुम्हारा] वध करके, तुम्हारे शरीर के मांस से क्षुत्बाधित, दीन होनेवाले इस प्रजा की आर्ति का निवारण कर दूँगा। तुमने कहा कि तुम कामिनी हो। स्त्री, पुरुष (और) नपुंसकों में चाहे कोई भी हो, जो बिना भूतदया के, स्वमात्र (केवल अपने) पोषक होते

नीवु कामिनि नंटिवि। स्त्रीपुरुष नपुंसकुललो नॆव्वरेनि भूतवय लेक स्वमात्र पोपकुलगुच्चु निरनुक्रोशंबुन भूतद्रोहुलै वर्तितुरु वारिनिराजुलु वधियिंचिनन् वधंबु गादु गान दान बापंबु वोरयदु। नीवु कामिनिवैनन् दुर्मदवु, स्तब्धवु नगुचु माया गोरूपंबुनं वारिपोवुचुन्न निन्नु विललंतलु खंडंबुल चेसि ना योग महिमं ब्राणिकोटि नुद्धरिंचॆद। अनि पलिकि, रोष भीपणाकारंबु धरियिंचि दंडधरुडुनु बोलि वर्तिंचु पृथुनि जूचि वडंकुचु मेदिनि प्रांजलियै यिट्लनि नुतियिपं दॊडंगॆ ॥ 478 ॥

कं. ओ नाथ! परमपुरुषुड, वै निजमाया गुणंबुलंदिन कतनन्
नानाविध देहमुलं, बूनुदु सगुणुंड वगुचु बुधनुतचरिता! ॥ 479 ॥

व. अट्टि नीवु ॥ 480 ॥

कं. ननु सकल जीवनतिकिनि, मुनु नीवाधार भूतमुग निर्मिपन्
विनु नायंदु जतुर्विध, घनभूतविसर्ग मयि गैकॊन वलसॆन् ॥ 481 ॥

व. अट्लैयुंड ॥ 482 ॥

कं. ननु नुद्यतायुधुडवै, मनुजेंद्र! वधिंपबूनि मसलॆदु नीकं
टॆ नितरु नॆव्वनि निपुडे, घनमुग शरणंबु सॊत्तु गरुणाभरणा! ॥ 483 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 484 ॥

हैं, निरनुक्रोश (दयाविहीन) हो भूतद्रोही बनकर रहते हैं, अगर राजा लोग उनका वध करते है, तो वह वध नहीं हैं। इसलिए उससे पाप नही लगता। यद्यपि तुम कामिनी हो, तुम दुर्मदा हो, स्तब्धा बनते हुए माया-गोरूप में भाग जानेवाली तुम्हारे तिल के समान [छोटे-छोटे] खंड करके अपनी योगमहिमा से प्राणिकोटि का उद्धार करूँगा। इस प्रकार कहकर रोष [से] भीपण (भयंकर) आकार धारण करके, दण्डधर (यम) की तरह रहनेवाले पृथु को देखकर कंपित होते हुए मेदिनी (भूदेवी) प्रांजलि बनकर (हाथ जोड़कर) इस प्रकार स्तोत्र करने लगी। ४७८ [कं.] हे नाथ! हे बुधों से नुत चरित्रवाले! परमपुरुष होकर, निज मायागुणो को पाने के कारण, सगुण होते हुए, नाना विध देह पाते रहते हो। ४७९ [व.] ऐसे तुम ४८० [क.] पूर्वकाल में तुमने मुझे सकल जीव-तति (-समूह) का आकार-भूत बनाकर [मेरा] निर्माण किया तो, सुनो, मुझमें चतुर्विध घन भूतों के विसर्ग को, इच्छापूर्वक लेना पडा। ४८१ [व.] ऐसा होने पर ४८२ [क.] हे मनुजेंद्र! उद्यत (ऊपर उठाये गये) आयुधवाला बनकर, मेरा वध करना चाहते हो। हे करुणाभरण! तुमसे बढ़कर मैं अब घन रूप से (बढ़कर) और किसकी शरण में जाऊँ? ४८३ [व.] इसके अतिरिक्त ४८४ [सी.] हे अनघ! स्वकीय (अपना) होकर, अतर्कित होकर, महिमा से भरी हुई भवन्माया (तुम्हारी माया) से सकल चर और

सी. अनघ ! स्वकीयंबुनै यर्तकितमुनै महिम नोप्पिन भवन्माय चेत
सकल चराचर सर्गबु निर्मिंचि धर्मपरुंडवै तनरुदीश !
नी विक्रममु नवनीरजलोचन सकल लोकुलकु दुर्जयमु दलप
दगुनट्टि नीवु स्वतंत्रुड वगुटनु ब्रह्म बुट्टिंचि या ब्रह्मचेत

ते. सकल जगमुल जेयितु समत बेंचि
येकमय्यु महात्म ! यनेक विधमु
लगुचु वेलुगोंदुचुंदु वीयखिलमंदु
जारुतरमूर्ति ! यो पृथु चक्रवर्ति ! ॥ 485 ॥

व. मरियु महाभूतेंद्रिय क्रिया कारक चेतनाहंकारंबुलनु शक्तुलं जेसि यी जगंबुल कुत्पत्ति स्थिति लयंबुल गाविंपुचु समुत्कट विरुद्ध शक्तुलुं गल पुरुषुनकु नमस्करिंचेद। अट्टि परमपुरुषुंडवैन नीवु निजनिर्मितंबु भूतेंद्रियांतःकरणात्मकंबुनैन यी विश्वंबु संस्थापिंपं बूनि ॥ 486 ॥

सी. आदिवराहुंबवगुचु रसातलगत नैन नन्नु नक्रटिक तोड
नुद्धरिंचितिवि वट्टि युदकाग्रभागंबुनंदर्थि नुन्न ने ननेंडि नाव
यंदुन्न निखिल प्रजावळि रक्षिंप गोरि यी पृथुरूपधारि वैति
वट्टि भू भरणुंडवैन नी विपुलु पयोनिमित्तंबुगा नुग्रचरुड

अचर के सर्ग (सृष्टि) का निर्माण करके, हे ईश ! [तुम] धर्मपर होकर प्रकाशमान होते हो। हे नव-नीरज-लोचनवाले ! तुम्हारा विक्रम सकल लोगों के लिए दुर्जेय है। स्मरण करने योग्य होनेवाले तुम स्वतन्त्र होने से ब्रह्मा को पैदा करके, उस ब्रह्मा से, [ते.] सकल जगों को बनवाते हो। हे महात्मन् ! समता के क्रम से [तुम] एक होकर भी अनेक विध होते हुए, हे चारुतम मूर्ति वाले ! हे पृथुचक्रवर्ति ! तुम इस अखिल [विश्व] मे प्रकाशमान होते हो। ४८५ [व.] और महाभूत, इंद्रिय, क्रिया, कारक, चेतना [और] अहंकार नामक शक्तियों के कारण इन जगों की उत्पत्ति, स्थिति [और] लय करते हुए, समुत्कट-विरुद्ध शक्तियों को धारण करनेवाले पुरुष को नमस्कार कर रही हूँ। ऐसे परमपुरुष होनेवाले तुम निज निर्मित [तथा] भूतेन्द्रियों के अंतःकरणात्मक होनेवाले इस विश्व की संस्थापना करने की इच्छा करके ४८६ [सी.] हे विश्वसंपाद्य (विश्व से संपादन करने योग्य) ! निरवद्य (श्रेष्ठ) ! वेदवेद्य (वेदों से जानने योग्य) ! भव्यगुणसांद्रा (अच्छे गुणों के समूह) ! वैन्य भूपालचन्द्र ! आदिवराह बनते हुए रसातल-गता होनेवाली मेरा उद्धार उस क्रूर [के हाथ] से किया। ऐसे उदक के अग्र भाग में इच्छा से रहनेवाली मुझ रूपी नाव में रहनेवाली निखिल प्रजावली की रक्षा करने की इच्छा करके, यह पृथु रूपधारी बन गये हो।

ते. वगुचु नन्नु वधिचेंद ननुचु बुद्धि
दलपु चुन्नाडविदि विचित्रंबु गादे !
विश्वसंपाद्य ! निरवद्य ! वेदवेद्य !
भव्यगुणसांद्र ! वैन्य भूपालचंद्र ! ॥ 487 ॥

व. कावुन नीश्वरगुण सर्गरूपंबैन मायचे मोहितांतःकरणुलमैन मावंटि वारल चेत हरिभक्तुल चेष्टितं बेंडुंगंबडदन्न हरिचेष्टितं बेट्लेंडुंगंबडु ? अट्टिजितेंद्रिय यशस्करुलैन वारलकु नमस्करिंतु। अनुचु निव्विधंबुनं गोप प्रस्फुरिताधरुडैन पृथुनि नभिनुतिंचि धैर्यंबवलंबिंचि वेंडियु निट्लनियें ॥ 488 ॥

अध्यायमु—१८

कं. विमलात्म ! नाकु नभयमु
समकूर्रेडु नट्लु गाग सन्मति नी को-
धमु नुपशमिंचि करुणिं-
पुमु ना विन्नपमु विनुमु पुरुषनिधाना ! ॥ 489 ॥

कं. धर विरुलु गंदकुंडग, सरसगतिन् दुव्वदेनॅ जवि गॊनु निदि-
दिर विभु कॅवडि बुधुडगु, पुरुषुडु सारांश मात्म नुनि ग्रहिंचुन् ॥ 490 ॥

[ते.] ऐसे भू-भरण होनेवाले तुम अव पय के निमित्त उग्रचर (राक्षस) होते हुए मेरा वध करने का बुद्धि (मन) में सोच रहे हो। क्या यह विचित्र नहीं है ? ४८७ [व.] इसलिए ईश्वर के गुणों के सर्ग (सृष्टि) का रूप होनेवाली माया से मोहित अंतःकरणवाली होनेवाली हमारे जैसे लोगों से हरि के भक्तों की चेष्टाएँ जब जानी नहीं जाती हैं, तब हरि की चेष्टाएँ कैसे जानी जा सकती हैं ? वैसे जितेन्द्रिय यशस्करों को नमस्कार करती हूँ। कहते हुए इस प्रकार कोप से प्रस्फुरित (फड़कनेवाले) अधर वाले पृथु की अभिनुति करके, धैर्य का अवलंबन करके, फिर इस प्रकार कहा। ४८८

अध्याय—१८

[कं.] हे विमल आत्मा वाले ! पुरुषनिधान ! मुझे अभय प्राप्त हो, [तदर्थं] सन्मति से अपने क्रोध का उपशमन करो। करुणा दिखाओ। मेरा निवेदन सुनो। ४८९ [कं.] पुष्प विगड़ न जाय, [ऐसी] सरस गति से पुष्प के मधु का आस्वादन करनेवाले भ्रमर-विभु की तरह, धरा पर बुध (पण्डित) होनेवाला पुरुष आत्मा से सारांश को ग्रहण करेगा। ४९० [सी.] सुनो, तत्त्वदर्शी होनेवाले सन्मुनियों से ऐहिक

सी. विनुमय्य ! तत्त्व वर्शनुलैन यट्टि सन्मुनुलचे नैहिकामुष्मिकंबु-
लैन फल प्राप्ति कांथि गृष्याद्यग्नि होत्राद्युपायंबु लुर्वि मीद
दृष्टंबुलुनु ना चरितमुलु नगुचु दानैनयंग दद्दुपाय मॅव्वडाच-
रिंचुनु वाड प्राधिंचु दत्फलमुनु विद्वांसुडैननु वॅलय वीनि

ते. नावरिंपक तनयंत नाचरिंचॅ-
नेनि नायासमे यगु गानि तत्फ-
लमुनु बॉंदडु बहुळकालमुनकैन
विनुत गुणशील ! माटलु वेयुनेल ? ॥ 491 ॥

व. अनि मट्रियु महि यिट्लनियॅ ॥ 492 ॥

चं. जलरुहगर्भु चेत मुनु चाल सृजिपग बड्डु योषधुल्
कलुष मतिन् धृतव्रतुलु गानि यसज्जन भुज्यमानलै
वॅलयुट चूचि ये नृपति वीरुलु मान्पमि जोर बाधलन्
बलुमरु बॉंदि तानपरिपालितनै कृशियिंचि वॅंडियुन् ॥ 493 ॥

कं. अनुपम मखकर्म क्रिय, लनयमु लेकुंट ने ननाहृत नगुचुन्
जननायक ! यी लोकमु, घन चोरीभूत मगुट गनुगॉनि यंतन् ॥ 494 ॥

कं. सवनादि सिद्धि कॉरकै
तविलि तदीयौषधी विततुलनु धरणी-

[और] आमुष्मिक होनेवाले फल की प्राप्ति की इच्छा करके कृष्यादि अग्निहोत्र आदि उपाय उर्वी पर दृष्ट [और] आचरित होते हैं, जो अच्छी तरह उसका उपाय (विधान) करता है, वह उसका फल प्राप्त करता है। चाहे विद्वान ही क्यों न हो, [ते.] इसका आदर न करके, अपने-आप आचरण करेगा तो मात्र प्रयास ही होगा; बहुत समय तक भी उसका फल प्राप्त नहीं करेगा। हे विनुतगुणशील वाले ! हजार बातें क्यों ? ४९१ [व.] यों कहकर फिर मही यों बोली। ४९२ [चं.] पूर्वकाल में जलरुह-गर्भ (विष्णु) से बनाई गयी अनेक ओषधियाँ कलुषमति वालों से जो धृतव्रती नहीं है [और] जो असज्जन है, भुज्यमान होकर (खायी जाकर) रहते देखकर [भी] किसी नृपति वीर के न रोकने पर, कई बार चोरों की बाधाओं को पाकर [मैं] अपरिपालिता बनकर, कृश (दुबली-पतली) होकर रही, फिर ४९३ [कं.] हे जननायक ! अनुपम मख-कर्म-क्रियाएँ कभी न होने से अनेक बार अनादृता (बिना गौरव पाये) होते हुए इस लोक के घन (अधिक) चोरों के भूत (वश) होते देखकर, तब ४९४ [कं.] हे धरणीधव (धरणी के पति = राजा) ! सवन आदि की सिद्धि के लिए प्रयत्नपूर्वक तदीय ओषधि-वितति (समूह) को मैंने तब ग्रहण किया; वे भी बाद को मुझमें जीर्ण हो गये। ४९५ [कं.] हे भूवरचन्द्र ! सुनो।

धव ! ये नपुडु ग्रसिचिति
नवियुनु ना यंदु जीर्णमय्यॆ गडंकन् ॥ 495 ॥

कं. विनु वानि नीॊक युपायं
बुन ग्रम्मर बडयवच्चु भूवरचंद्रा !
विनुमदि यॆरिगिंचॆद नी
कनुवत्सलुराल नगुट ननघचरित्रा ! ॥ 496 ॥

कं. अनयमु ना कॊकवत्समु, ननुरूप सुदोहनम्मु ननुरूपक दो-
ग्धनु गल्पिपुम यट्लैं, ननु नी भूतमुल कवनिनायक ! दानन् ॥ 497 ॥

कं. परग नभोप्सितमुलु बल
करमुलु नगु नन्न दुग्ध कलितमु लगु भा-
सुर कामंबुल वितिकॆद
नरनायकचंद्र ! विनुमु नावचनंबुल् ॥ 498 ॥

चं. मनुजवरेण्य ! येनु विषमस्थलिनै यिपुडुन्न वान गा-
वुन जलदागमोदित पयोनिवहंबु ददागमंबु पो-
यिननु ददंबुवुल् पुडमि निकक यंतट निल्चुनट्लुगा
मनुनिभ ! नन्नु निप्पुडु समस्थलिनै पॆनुपोंद जेयवे ! ॥ 499 ॥

कं. अनि यिव्विधमुन नाभू, वनितामणि पलुकु मधुर वचनंबुलु दा
विनि यनुरागम दन मन, मुन गडलुकॊनंग राजमुख्युं डंतन् ॥ 500 ॥

उनको एक उपाय से फिर पाया जा सकता है। मैं तुम्हारी अनुवत्सला होने से उसे तुम्हें समझा दूंगी, हे अनघचरित्र ! सुनो। ४९६ [कं.] हे अवनिनायक ! सदा के लिए मेरे एक वत्स (बछड़े) की, अनुरूप सुदोहन (दुहने का काम) [तथा] अनुरूपक (योग्य) दोग्धा की कल्पना करो। ऐसा करने से, उनसे इन भूतों को ४९७ [कं.] हे नरनायक चन्द्र ! सोचने पर सारे अभीप्सित (इच्छाएँ) बलकर (बलप्रद) अन्न [और] दुग्ध (दूध) कलित होनेवाले प्रकाशमान कामों को दुह दूंगी (दे दूंगी)। मेरे वचन सुनो। ४९८ [चं.] हे मनुजवरेण्य ! मैं अब विषमस्थली (ऊबड़-खाबड़) बनकर रहती हूँ। इसलिए जलदों (बादलों) के आने से प्राप्त पयोनिवह (जल की राशि), यद्यपि तदागमन (बादलों के आने) [और] चले जाने पर भी, तदंबु (उनका जल) पृथ्वी में न सोखकर, वैसे ही रह जाएँ, हे मनुनिभ ! मुझे अब ऐसा बनाओ ताकि समस्थली बनकर वृद्धि को पाऊँ। ४९९ [कं.] इस प्रकार उस भू-वनितामणि के बोले हुए मधुर वचन स्वयं सुनकर, अपने मन में, अनुराग होने पर, तब उस राज-मुख्य ने ५०० [चं.] मनु को बछड़ा बनाकर, बड़प्पन के साथ अपने पाणितल

चं. मनुवुनु दूड जेसि गरिमन् निजपाणितलंबु लील दो-
हनमुग जेसि यंदु सकलौषधुलं बितिकें ग्रमंबुनन्
दनरग दद्विधंबुननु दत्पृथु वत्सलयैन भूमियं
दनयमु वारु वारुनु प्रियंबगु कोर्कुल बौंदि रुन्नतिन् ॥ 501 ॥

सी. बलसि ऋषुल् बृहस्पति वत्सकंबुगा नर्थिचि तम यिद्रियंबुलंदु
नंचितच्छंदोमय क्षीरमुनु देवतलु सुरराजु वत्सकमु गाग
गनक पात्रमु नंदु दनरु नोजो बल वीर्यामृतंबुनै वेलयु पय सु
दैत्य दानवुलु दैत्य श्रेष्ठुडगु गुणशालि प्रह्लादुवत्संबु जेसि

ते. सत्सुरासव पय आयस चषकमुन
नप्सरोजन गंधर्वु ललरि यपुड्
दनर विश्वावसुनु वत्ससुनुग जेसि
पद्ममय निर्मितंबैन पात्रमंदु ॥ 502 ॥

व. माधुर्य सौंदर्य सहित गांधर्व क्षीरंबुनु, पितृदेवतलु सूर्यवत्सकंबुगा नाम पात्रमंदु गव्यंबनु दुग्धंबुनु, सिद्धुलु कपिलवत्सकंबुगा नाकाशपात्रमंदु संकल्पनारूपाणिमादि सिद्धियनु क्षीरंबुनु, विद्याधरादुलु दद्वत्सकंबुग दत्पात्रकंबुनुगा खेचरत्वादि विद्यारूप क्षीरंबुनु, किंपुरुषादुलु मयवत्सकंबुनु

(हाथ) से, विलासयुक्त हो, दोहन करके क्रम से उसमें सकल ओषधियों को दुह लिया। प्रकाशमान हो, उस विध (प्रकार) तत् पृथुवत्सला होने वाली उस भूमि में सदा सब लोगों ने अपनी-अपनी प्रिय इच्छाओं की बड़ी उन्नति से प्राप्ति की। ५०१ [सी.] अधिक उत्साह से ऋषिगणों ने बृहस्पति के वत्स के रूप में चाहकर, अपने इन्द्रियों में अचित (पूजनीय) छंदोमय क्षीर को, देवताओं ने सुरराज के वत्सक होने पर, कनकपात्र में प्रकाशमान ओजस्, बल और वीर्यामृत बनकर रहनेवाले पयस् (दूध) को, दैत्य दानवों ने दैत्यों में श्रेष्ठ होनेवाले गुणशाली प्रह्लाद को वत्स (बछड़ा) बनाकर, [ते.] सत् (अच्छा) सुरा-आसव [और] पय (दूध) को आयस (लोहे के) चषक (पात्र) में, तब अप्सराओं और गंधर्व आदि ने संतुष्ट होकर, तृप्त हो जायँ ऐसा, विश्वावसु को वत्स बनाकर, पद्ममय निर्मित पात्र में, ५०२ [व.] माधुर्य और सौंदर्यसहित गधर्व-क्षीर को, पितृदेवताओं ने सूर्य को वत्स बनाकर, नाम-पात्र में कव्य नामक दुग्ध को, सिद्धों ने कपिल को वत्स बनाकर, आकाश-पात्र मे संकल्पना रूपी अणिमा आदि सिद्धि नाम क्षीर को, विद्याधरों ने तत् को वत्स बनाकर, तत्-पात्र बनाकर, खेचरत्व (आकाश-गमन) आदि विद्या रूपी क्षीर को, किंपुरुष आदि ने मय को वत्स बनाकर, आत्मा को पात्र बनाकर संकल्पमात्र प्रभव (पैदा होना),

नात्म पात्रंबुनुंगा संकल्पमात्र प्रभवंबुनु नंतर्धानादभुतात्म संबंधियु नगु माय यनु क्षीरंबुनु, यक्ष रक्षो भूत पिशाचंबुलु भूतेशवत्सकंबुगा गपाल पात्रकंबुनुगा रुधिरासवंबनु क्षीरंबुनु, नहि दंदशूक सर्प नागंबुल तक्षक वत्सकंबुगा बिलपात्रंबुन विषरूप क्षीरंबुनु, बशुवुलु गोवृषवत्सकंबुनु, नरण्य पात्रंबुनुंगा दृणंबनु क्षीरंबुनु, ग्रव्याद मृगंबुलु मृगेंद्रवत्सकंबुगा, नात्म कळेवर पात्रकंबुगा ग्रव्यंबनु दुग्धंबुनु, विहंगंबुलु सुवर्ण वत्सकंबु, निजकाय पात्रंबुनुगा गीटक फलादिकंबनु दुग्धंबुनु, वनस्पतुलु वट वत्सकंबुग भिन्न रोहरूप पयस्सुनु, गिरुलु हिमवद्वत्सकंबुनु, निज सानुपात्र-कंबुनुगा नानाधातुवुलनु दुग्धंबुलु निव्विधंबुन समस्त चराचर वर्गंबु स्वमुख्यवत्सकंबुनु, स्वस्त्रपात्रकंबुनुगा भिन्नरूपंबुलैन क्षीरंबुलं बितिकि-रनि चॆप्पि मर्त्रियुनु ॥ 503 ॥

कं. क्रममुन निट्टु पृथ्वादुलु, दम तम कामितमु लनगदगु भिन्न क्षी-
रमु वोहन वत्सक भे, दमुनंवग वितिकि रंत धरणीधवुड्नु ॥ 504 ॥

ते. समुचितानंदमुनु बॊंदि सर्वकाम
दुघ यनंदगु भूमिनि दुहित गाग

अंतर्धान [तथा] अद्भुत आत्म-संबंधी माया नामक क्षीर को, यक्ष, रक्ष (राक्षस), भूत [और] पिशाचों ने भूतेश को वत्स बनाकर, कपाल-पात्र में रुधिर आसव नामक क्षीर को, अहि (साँप), दंदशूक, सर्प नाग ने तक्षक को वत्स बनाकर, बिल रूपी पात्र में विष रूपी क्षीर को, पशुओं ने गो [और] वृष (बैल) को वत्स बनाकर, अरण्य को पात्र बनाकर, तृण नामक क्षीर को, क्रव्याद (मांसाहारी) मृगों ने मृगेंद्र को वत्स बनाकर [और] आत्म (अपने)-कलेवर (शव) को पात्र बनाकर, क्रव्य (मांस) नामक दुग्ध को, विहगों ने सुपर्ण (गरुड़) को वत्स बनाकर, निजकाय (अपने शरीर) को पात्र बनाकर, कीटक [और] फल आदि नामक दुग्ध को, वनस्पतियों ने वट [वृक्ष] को वत्स बनाकर, भिन्न-रोह(-वृक्ष) रूपी पय को, गिरियों ने हिमवान को वत्स बनाकर, निज सानु [रूपी] पात्र में नाना (अनेक) धातुनामक दुग्ध को, इस प्रकार समस्त चर [और] अचर वर्ग ने स्वमुख्यों को वत्स [और] स्व-स्व (अपना-अपना) पात्र बनाकर, भिन्न रूप होनेवाले क्षीर को दुह लिया। यों कहकर फिर, ५०३ [कं.] इस प्रकार क्रम से पृथु आदि ने अपनी-अपनी इच्छा कहलाने योग्य भिन्न-[भिन्न] क्षीर को दोहन [और] वत्सक भेद से अच्छी तरह दुह लिया। तब धरणीधव (राजा), ५०४ [ते.] समुचित आनंद पाकर सर्वकामदुघ कहलाने योग्या भूमि के दुहिता होने पर, इच्छापूर्वक स्वीकार करके, निज धनुष की कोटि (नोक) से भूरि (बड़े) गिरि-कूटों (समूहों) को चूर्ण

गोरि कैकोनि निज धनु:कोटि चेत
भूरि गिरिकूटमुल जूर्णमुलुग जेसि ॥ 505 ॥

ते. चंड दोर्दंड लील भूमंडलंबु समतलंबुग जेसि शश्वत्प्रसिद्धि
नोंदि यविभुडी लोकमंदु नेल्ल, प्रजकु दंड्रियु जीवनप्रदुडु नगुचु ॥506॥

ते. अक्कडक्कड पूर्वंबु नंदुलेनि ग्राम पट्टण दुर्ग खर्वट पुळिंद
खेट शबरालय व्रज वाट घोष विविध निलयमुलर्थि गाविंचे नंत ॥507॥

कं. वारुनु भय विरहितुलै
भोरन तत्तन्निवासमुल यंदु सुख
श्रीरुचि नोप्पुचु नुंडिरि
वारक या पृथुनि बोगड वशमे ? धरित्रिन् ॥ 508 ॥

अध्यायमु—१९

सी. अनि चेप्पि मुनिनाथुडैन मैत्रेयु डव्विदुरुन किट्लनु वेड्क तोड
ननघात्म ! राजर्षियैन वैन्युंडश्वमेधशतंबु सन्मेध तोड
गाविंतुमनि दीक्ष गैकोनि व्रतनिष्ठ बिविरि ब्रह्मावर्त देशमंदु
नलरु मनुक्षेत्रमंदु सरस्वती नदि पोंत दा महोन्नति नोनर्चु

बनाकर, ५०५ [ते.] चंड (भयंकर) दोर्दंड (भुजादंड) की लीला से भूमंडल को समतल बनाकर, शश्वत् (शाश्वत)-प्रसिद्धि पाकर, वह विभु (राजा) इस लोक में समस्त प्रजा के लिए पिता [और] जीवन-प्रद होते हुए, ५०६ [ते.] कहीं-कहीं पूर्व में न होनेवाले, ग्राम, पट्टण, दुर्ग (किले), खर्वट (कस्बे), पुलिंद (एक जाति विशेष), खेट (एक जाति विशेष), शबरालय (शबर नामक एक अरण्य जाति का नाम), व्रजवाट (पशुशालाएँ), घोष (अहीरों की बस्ती) [एवं] विविध निलयों (स्थलों) का निर्माण कराया। तब, ५०७ [कं.] वे भी भय विरहित होकर शीघ्र तत्तत् (उन-उन) निवासों में सुख [और] श्री [की] रुचि से शोभायमान होकर रहे। धरित्री (भूमि) पर अवारित रूप से उस पृथु की प्रशंसा कहाँ कर सकते है ? ५०८

अध्याय—१९

[सी.] इस प्रकार कहकर, मुनिनाथ मैत्रेय ने कौतुक के साथ उस विदुर से यह कहा, हे अनघात्म ! राजर्षि होनेवाले वह वैन्य (वेन का पुत्र, पृथु) अश्वमेध शत, सन्मेधा (अच्छी बुद्धि) से करूँगा, ऐसी दीक्षा लेकर व्रतनिष्ठा में लगकर, ब्रह्मावर्त देश में विराजमान मनुक्षेत्र में सरस्वती

ते. सवनकर्म क्रियकु नतिशय विशेष
फलमु गलिगेंडि ननि बुद्धि दलचि यचट
वरुस गाविंचु नतिशयाध्वर महोत्स-
वमु सहिंपक युंडे नय्यमर विभुडु ॥ 509 ॥

पृथु चक्रवर्ति यश्वमेधंबु सेयुनेंड निंद्रुंडश्वमु नपहरिंचुट

सी. अट्टि यध्वर कर्ममंदु साक्षाद्भगवंतुंड् हरि रमेश्वरुडु लोक
गुरुडुनु सर्वात्मकुंडुनु विभुडुनु नीरजभव भवान्वितुडु लोक-
पालक निखिल सुपर्वानुगुंडुनु यज्ञांगुडखिलाध्वरादि विभुडु
गंधर्व मुनि सिद्धगणसाध्य विद्याधराप्सरो दैत्य गुह्यालि दान

ते. वादि जेगीयमानुडु नलघु यशुडु
प्रकट नंद सुनंदादि पार्षदुंडु
कपिल नारद वर सनक प्रमुख्य
महित योगींद्र संस्तूयमानु डजुडु ॥ 510 ॥

व. मरियुं बरम भागवत सेवितुंडुनु, नारायणांश प्रभवुंडुनु नैन पृथुचक्रवर्ति-
कि भूमि हविरादि दोग्ध्रि यय्युनु सर्वकाम दुघयै समस्त पदार्थंबुलं बिदुकु
चुंडॆ, मरियु दरुवुलु घनतराकारंबुलु गलिगि मकरंद स्रावु लगुचु निक्षु

नदी के समीप, वह स्वयं महोन्नति से करनेवाले, [ते.] सवन (यज्ञ) कर्म की क्रिया के कारण अतिशय विशेष फल होगा —ऐसा बुद्धि (मन) में सोचकर वहाँ एक-एक करके किये जानेवाले अतिशय अध्वर-महोत्सव को वह अमर-विभु (इन्द्र) सह न सका । ५०९

पृथु चक्रवर्ति के अश्वमेध करते समय इन्द्र का अश्व का अपहरण करना

[सी.] वैसे अध्वर कर्म में साक्षात् भगवान, हरि, रमेश्वर, लोक का गुरु, सर्वात्मा, विभु, नीरजभव (ब्रह्मा) [और] भव (शिव) से अन्वित (युक्त), लोकपालक, निखिल सुपर्व (देवता) के अनुग (जिसके पीछे चलते हैं), यज्ञांग वाला, अखिल अध्वरों का विभु (स्वामी), गंधर्व, मुनि, सिद्धगण, साध्य, विद्याधर, अप्सर, दैत्य, गुह्यालि (देवता विशेषों का समूह), [ते.] दानव आदि [से] जेगीयमान (प्रकाशमान) अति-अलघु (बड़ा) यशवाला, प्रकट [रूप से] नंद, सुनंद आदि पार्षदों [के साथ रहने वाला], कपिल, नारद, सनक आदि क्रम मुख्य [और] महित योगींद्रों से संस्तूयमान [एवं] अज, ५१० [व.] और परम भागवतों से सेवित, नारायण के अंश से प्रभव (पैदा हुआ) होनेवाले पृथु चक्रवर्ति के लिए भूमि हविस् आदि दोग्ध्रि (दुही जानेवाली) होकर भी सर्वकामदुघा होकर,

द्राक्षादि रसंबुलुनु दधिक्षीराज्य तक्रपानकादिकंबुलुनु वर्षिप नवि यॆल्ल नदुलु वहिंचॆ। समुद्रंबुलु हीरादि रत्न विशेषंबुल नीनुचुंडॆ। बर्वतंबुलु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्यंबुलनु चतुर्विधान्नंबुलु गुरियुचुंडॆ। लोकपाल समेतुलैन सकल जनंबुलु नुपायनंबुलु दॆच्चि यिच्चुचुंडिरिट्टि, परिपूर्ण विभवाभिरामुंडै यथोक्षजसेवा परायणुंडगु पृथु चक्रवर्ति येकोन-शताश्वमेधंबुलु सन्मेधंबुनं गाविंचि नूरव यागंबु नंदु यज्ञपति यैन पुंडरी-काक्षुनि यजिचुचुंड ददीय परमोत्सवंबु सहिंपं जालक ॥ 511 ॥

कं. अमरेंद्रुडु घन रोषो, द्गमुडै पाषंडवेषकलित तिरो भा-
वमु नंदन्मखपशुवुं, ग्रम मेदि हरिंचि चनियॆ गगनंबुनकुन् ॥ 512 ॥

व. अट्लु सनुनप्पुडु ॥ 513 ॥

कं. अनघुंडगु नत्रि महा, मुनि चोदितुडगुचु बृथुनि पुत्रुडु बाणा-
सन तूणीरधरुंडै, यनिमिषपति वॆनुक जनियॆ नति दर्पमुनन् ॥ 514 ॥

व. अट्लु सनि चनि मुंदट ॥ 515 ॥

सी. यज्ञसाधन पशु हरणुनि वधियिंचु धर्मंबुनंदु नधर्ममनॆडि
बुद्धि बुट्टग जेय भूरिमाया वेषधारियै यरुगु सुत्रामु गदिसि

समस्त पदार्थों को दुह (प्रदान कर) रही थी; और तरु (वृक्ष) घनतर-आकार धारण करके, मकरंद का स्राव करनेवाले होते हुए इक्षु (ईख), [और] द्राक्ष आदि रस, दधि (दही), क्षीर, आज्य (घी), तक्र (मट्ठा) [और] पानक आदि की वर्षा करने से, उन सबको सब नदियों ने वहन किया। समुद्र हीरा आदि रत्न विशेष उगलते थे। पर्वत भक्ष्य, भोज्य, लेह्य [और] चोष्य चतुर्विध अन्न बरसाने लगे। लोकपाल-समेत सकल जन उपायन (भेंटें) लाकर देते थे। ऐसे परिपूर्ण विभव [से] अभिराम होकर, अधोक्षज (विष्णु) के सेवापरायण होनेवाले पृथु चक्रवर्ति के एकोनशत (निन्यानबे) अश्वमेध सन्मेध से पूरा करके, सौवें याग से यज्ञपति पुंडरीकाक्ष का यजन करते समय तदीय (उसका) परम-उत्सव सह न सककर, ५११ [कं.] अमरेन्द्र (इन्द्र) घन (बड़े) रोष के उद्गम वाला होकर (अधिक रुष्ट होकर), पाषड वेष [से] कलित तिरोभाव से (अदृश्य होकर) तत् (उस) मख पशु को वह क्रम को (विधान) को तजकर, हरकर, गगन चला गया। ५१२ [व.] वैसे जाते समय, ५१३ [कं.] अनघ अत्रि महामुनि से चोदित होते हुए, पृथु का पुत्र बाणासन (धनुष) और तूणीर (तरकस) धारण करके, अति-दर्प (-गर्व) से अनिमिष-पति (इन्द्र) के पीछे चला। ५१४ [व.] वैसे जा-जाकर सामने, ५१५ [सी.] यज्ञ का साधन होनेवाले पशु का हरण करनेवाले का वध करने के धर्म में, [यह] अधर्म नामक बुद्धि (ऐसे विचार) को पैदा करने के लिए भूरि माया वेषधारी

निलु निलु मनि यांचि निजगुणध्वनि सेसि घनजटाभस्मास्थिकलित मयिन
मूर्ति गनुंगॊनि मूर्तीभविंचिन धर्मंबका बुद्धि दलचि यमर

ते. नायकुनिमीद सायक मेय जाल-
कुन्न गनुगॊनि यत्रि विद्वन्नुतुंडु
वॆन्यजुनकॊ वासवु वलनु चूपि
मनमु लोपल रोषंबु मल्लडिप ॥ 516 ॥

कं. विनु मितडु यज्ञ हंतयु, ननिमिष निकराधिपुंडु नगु निन्नुडु गा-
वुन नितनि जयिंपुमु नी, वनि मुम्माऱुच्चरिप नव्वॆन्यजुडुनु ॥ 517 ॥

म. विनुवीथि जनु देववल्लभुनिपै वीरुंडु ग्रोधांतरं-
ग निरूढिन् मृगराट् किशोरमु महागंध द्विपेंद्रंबु मी-
दनु लंघिंचु विधंबुनं बडिन नातंडश्वचौर्यैक सा-
धनुरूपंबु ददश्वमुन् विडिचि यंतर्धानमुं बॊंदिनन् ॥ 518 ॥

कं. वीरुडु पृथु भूपाल कु, मारुडु निजयज्ञ पशुवु मरलं गॊनि दु-
र्वरि वलुडगुचु जनकुनि, भूरि सवन राज पुण्य भूमिकि वच्चॆन् ॥ 519 ॥

व. अय्यवसरंबुन नच्चटनुन्न परमर्षिपुंगवुलतनि यद्भुत कर्मंबु गनुंगॊनि
याश्चर्यंबु नॊंदि यतनिकि जिताश्वुंडनु नन्वर्थनामंबु वॆट्टि युन्न
समयंबुन ॥ 520 ॥

वनकर जानेवाले सुत्राम (इन्द्र) के पास जाकर 'ठहरो, ठहरो' कहकर, पुकार कर, अपने गुण (धनुष की ज्या) की ध्वनि करके घन (बड़ी) जटा [और] अस्थि से कलित होनेवाली मूर्ति को देखकर, मूर्तिमान धर्म होने पर [अपनी] बुद्धि (मन) मे सोचकर, [ते.] अमरों के नायक (इन्द्र) पर बाण को छोड़ न सकते देखकर, विद्वानों से नुत (स्तुत) अत्रि ने वासव (इन्द्र) की ओर दिखाकर, मन में रोष के अतिशय होने पर, वैन्यज (पृथु के पुत्र) से कहा, ५१६ [कं.] सुनो, यह यज्ञहंता, अनिमिष (देवताओं के) निकर (समूह) का अधिप इन्द्र है। इसलिए तुम इसे जीतो। इस प्रकार तीन बार उच्चरित करने पर उस वैन्यज के, ५१७ [म.] आकाश पर जानेवाले देवतावल्लभ (इंद्र) पर वीर पृथु का पुत्र क्रोध से भरे अंतरंग की निरूढि से, मृगराट् (सिंह)-किशोर (शावक) के महागंध (मस्त)-द्विपेन्द्र (हाथी) पर कूदने की तरह, कूदने पर, मात्र उस अश्व के चौर्य के साधन वाले रूप को एवं उस अश्व को छोड़कर उसके (इन्द्र के) अंतर्धान होने पर, ५१८ [कं.] वीर, पृथु भूपाल का कुमार, निज यज्ञपशु को फिर लेकर, दुर्वार वली होते हुए [अपने] जनक की भूरि (वड़ी) सवनराज-पुण्यभूमि में आया। ५१९ [व.] उस अवसर पर वहाँ स्थित परम ऋषिपुंगवों ने उसके अद्भुत कर्म को देखकर, आश्चर्य

चं. मरियुनु देवतापति तमःपटलंबु जनिंप जेसि यॆ-
व्वरु दनु गानकुंड ननिवारण गांचन पाशबद्धमै
सुरुचिर यूपदारु परिशोभितमैन हयंबु गॊंचु जॆ-
च्चॆर विनवीथि नेगग ऋषि प्रवरुंडगु नत्रि सॆप्पिनन् ॥ 521 ॥

कं. विनि पृथु भूवर तनयुडु
घन बलमुन जनि कपाल खट्वांगमु लो
लिनि धरियिंचि रथंबुन
जनु निंद्रुनि गांचि नॊंपजालक यंतन् ॥ 522 ॥

उ. क्रम्मर नत्रिचे दॆलुपगाबडि वैन्य तनूभवुंडु रो-
षम्मुन दोक द्रॊक्किन भुजंगम पुंगवु बोलि युग्रुडै
यम्मरि बोसिनं गनि सुराधिपु डॆप्पटि यट्ल पाडॆ न
श्वम्मुनु रूपमुन् विडिचि चाल दिरोहितुडै रथंबुनन् ॥ 523 ॥

व. अट्लु सनिनं बशुवुं गॊनि मरलि यव्वीरोत्तमुंड पितृयज्ञशालकुं जनुदॆंचॆ नंत ॥ 524 ॥

सी. हरिहयुंडध्वर हय हरणार्थमै मिंचि कैकॊनि विसर्जिचि नट्टि
भूरि यमंगळ भूतमाया रूपमुलनु धरियिंचिरि मूढजनुलु

पाकर, उसे जिताश्व कहकर अन्वर्थ-नाम (सार्थक नाम) दिया तो, उस समय पर, ५२० [चं.] और देवतापति (इन्द्र) के तमःपटल (अंधकार का समूह) पैदा करके, जिससे कोई उसे (इन्द्र को) न देख सके, अनिवारण कांचन पाशबद्ध करके, सुरुचिर यूपदारु [से] परिशोभित हय को लेकर शीघ्र आकाश वीथि पर जाने पर, ऋषिप्रवर अत्रि के कहने पर (चोर की सूचना देने पर) ५२१ [कं.] सुनकर, पृथु भूवर (राजा) का तनय घन (श्रेष्ठ) बल से जाकर, कपाल और खट्वांग को लोल (क्रम से) धारण करके, रय (वेग) से जानेवाले इन्द्र को देखकर [उसे] झुका (जीत) न सककर, तब ५२२ [उ.] फिर अत्रि से समझाए जाकर, वैन्य-तनूभव रोष से, पूँछ के रौंदे गए भुजंग-पुंगव की तरह उग्र होकर, बाण का सन्धान कर, सुराधिप पूर्व की तरह तिरोहित होकर, वेग से अश्व को [और] अपने [माया] रूप को छोड़कर भाग गया। ५२३ [व.] ऐसे जाने पर, पशु (अश्व) को लेकर, फिर वह वीरोत्तम पितृयज्ञशाला में आया। तब ५२४ [सी.] हरिहय (इन्द्र) के अध्वर के हय के हरणार्थ (हरण करने के लिए) अतिशय रूप में लेकर (धारण कर), [बाद को] विसर्जित किये गये भूरि (बड़े) अमंगलभूत माया-रूप को मूढ़ जनों ने धारण किया। पाषंड चिह्नों से विलसित होने से वे जगति पर नग्न वेष धारण करनेवाले जैन, भूरि (बड़े) काषाय वस्त्र धारण करनेवाले बौद्ध [और]

पाषंड चिह्नमुल् वरगुट वारलु जगति पै नग्नवेषमुलु गलुगु
जैनुलु भूरिकाषाय वस्त्रंबुलु धरियिंचु बौद्धुलु दग जटास्थि

ते. भस्मधारुलु नयिन कापालिकादु
लनग वॅलसिरि लोकंबुलंदु जाल
वलप धर्मोपमंबनदगु नधर्म
मंदु नभिरति वॅडमिन यज्ञजनुलु ॥ 525 ॥

व. तदीय चिह्नंबुलु पारंपर्यंबुगा धरियिंप दॊडंगिरि। तद्वृत्तांतंबु भगवंतुंडयिन पृथु चक्रवर्ति यॅरिंगि कुपितुंडै युद्यत कार्मुकुंडगुचु निद्रुनि मीद बाणंबु नेय नुद्यमिंचिन ऋत्विक्कुलु शक्र वधोद्युक्तुंडु नसह्यरंहुंडु नयिन पृथु चक्रवर्ति गनुंगॊनि यिट्लनिरि ॥ 526 ॥

कं. जननायक! यज्ञमुलं, दनुपम विधि चोदितंबुलनदगु पशु बं-
धन हिंसलकाकतरुल, घन दीक्षितुनकु वधिप गादंड्रु बुधुल् ॥ 527 ॥

व. कावुन नी विपुडिंद्र वधोद्योगंबुपसंहरिंपुमु भवदीय धर्मविरोधियैन यट्टि यिंद्रुनि ॥ 528 ॥

कं. जनपाल! वीर्यवंतमु
लनदगु मंत्रमुल चेत नाह्वानमु से-
सिन नतडिच्चटिकि वच्चुनु
जनुदेंचिन यमर विभुनि सरभसत दगन् ॥ 529 ॥

जटा, अस्थि [और] [ते.] भस्मधारी होनेवाले कापालिक आदि कहलाकर अधिक सोचने पर, धर्मोपम कहने योग्य अधर्म में अभिरति (अधिक प्रेम) रखनेवाले अज्ञ-जन (मूढ़) लोक में विलसित हुए। ५२५ [व.] तदीय (उनके) चिह्नों को परंपरा से [वे अज्ञ] धारण करने लगे। तद्वृत्तांत (उस समाचार) को भगवान पृथु-चक्रवर्ती जानकर [और] कुपित होकर उद्यत कार्मुक (उठाये गये धनुष को धारण करनेवाले) होते हुए, इन्द्र पर बाण छोड़ने को तैयार होने पर, ऋत्विकों ने शक्र (इन्द्र) का वध करने को तैयार [और] असह्य रंह (वेग) [युक्त] होनेवाले पृथु चक्रवर्ती को देखकर इस प्रकार कहा। ५२६ [कं.] हे जननायक! बुध (पंडित) कहते हैं कि घनदीक्षा वाले को यज्ञों में अनुपम विधि से चोदित (प्रोत्साहित) होनेवाले पशुओं के बंधन एवम् हिंसा के अतिरिक्त दूसरों का वध करना नहीं चाहिए। ५२७ [व.] इसलिए तुम अब इन्द्र का वध करने का उद्योग (प्रयत्न) उपसंहरित करो (छोड़ दो)। भवदीय-धर्म का विरोधी होनेवाले इन्द्र का ५२८ [कं.] हे जनपाल! वीर्यवान कहलाने योग्य मंत्रों से आह्वान करने पर, वह यहाँ आएगा। आए हुए अमर विभु को जल्दी के साथ, ५२९ [कं.] धृति (धैर्य) विगड़ जाय, [उसे] पकड़कर,

कं. धृति सॅवर बट्टि शिखि का, हुति गा वेल्चॅदमु दान नुर्वीवर! नी
वितत महोहतवीर्यो, न्नतुडे चॅडिपोवु नमर नाथुंडंतन् ॥ 530 ॥

व. अनि पृथुनि वारिंचि ऋत्विग्जनंबुलु गुपितस्वांतुलै हस्तंबुल स्रुक् स्रुबंबुलु धरियिंचि वेल्चु समयंबुनं जतुर्मुखुंडु सनुदेंचि ऋत्विजुलं गनुंगोनि यिट्लनियें। यज्ञंबुलंदु यजिपंबडु देवतलॅव्वनि यंशंबु लॅव्वंडु यज्ञ नामकंबगु भगवदंशंबगु नट्टि यिंद्रुंडु मी चेत वधार्हुंडुगाडितंडु भगवदंश संभवुंडगुट नी यज्ञकर्म विध्वंसनेच्छुंडयि काविचु धर्म व्यतिकरंबुलु सूचु-चुंड वलयुं गानि प्रतिकारंबुलु गर्तव्यंबुलुगावी पृथु कीर्तियगु नी पृथुनकु नेकोनशतंबगु नध्वर प्रयोगफलंबु सिद्धिचुं गाक यनि पृथु चक्रवर्ति किट्लनियें ॥ 531 ॥

सी. मनुजेंद्र मोक्षधर्ममु नॅरिगिन नीकु सवनमुल् सेयुट सालु मरियु
ने विधंबुन नैन देवेंद्रुमनमुन गैकोनि रोषंबु गदुरकुंड
वर्तिप वलयुनु वासवुंडुनु नीवु बूनि सुश्लोकुलु गान मीकु
मंगळंबगु गाक मानवनाथ ! नी चित्तंबु लोपल जित दीरगि

ते. मिंचि मद्वाक्यमुल नादरिंचि विनुमु
दैव हतमगु यज्ञंबु दगिलि चेयु

शिखि (अग्नि) को आहुति करके जला देंगे। उससे, हे उर्वीवर (राजा)! तुम्हारी अत्यंत उन्नति से हत (खोई हुई) वीर्य की उन्नति वाला बनकर, तब अमरनाथ (इन्द्र) नष्ट होगा। ५३० [व.] इस प्रकार पृथु को रोक कर ऋत्विक् जन कुपित स्वांतवाले बनकर हस्तों में स्रुक् [और) स्रुव धारण करके, होम करते समय चतुर्मुख (ब्रह्मा) ने आकर ऋत्विजों को देखकर, इस प्रकार कहा, 'यज्ञों में यजे जानेवाले देवता जिसके अंश होते हैं, जो यज्ञ नामक भगवान का अंश होता है, ऐसा इन्द्र तुम लोगों से वध के लिए अर्ह नहीं होगा। यह भगवान के अंश से संभवित (उन्पन्न) है, इसलिए तुम्हारे यज्ञकर्म का विध्वंस करने का इच्छुक बनकर किये जाने वाले धर्म के व्यतिकर (विरुद्ध कर्म) को देखते रहना चाहिए; लेकिन प्रतीकार कर्तव्य नहीं हैं। पृथु (बड़ी) कीर्ति होनेवाले इस पृथु को एकोनशत (निन्यानबे) अध्वर-प्रयोग-फल सिद्ध हो जाय।' इस प्रकार कहकर पृथु चक्रवर्ति से यों बोला। ५३१ [सी.] हे मनुजेन्द्र! मोक्ष धर्म जानने वाले तुम्हारा सवन (यज्ञ) करना पर्याप्त है। फिर किसी भी तरह ऐसा आचरण दिखाना चाहिए कि देवेंद्र के मन में रोष न हो जाए, वासव (इन्द्र) [और] तुम बड़े सुश्लोक (कीर्तिवान) हो। इसलिए तुम्हारा मगल हो जाय; हे मानवनाथ! अपने चित्त से चिंता दूर करके, [ते.] अतिशयता से मद्वाक्यों का आदर करके सुनो। दैव से हत (नष्ट) होनेवाले यज्ञ

कॊरकु भवदीय चित्तंबु गुंदि रोष
कलुषितंबॆन नज्ञान कलित मगुनु ॥ 532 ॥

व. भवदीय यज्ञ हननार्थं बश्वहरणुंडॆन यिंद्रुंडु देवतल लोनं दुराग्रहुंडगुटं जेसि यतनि चेत निर्मिपंबडि चित्ताकर्षकंबुलॆन यी पापंड धर्मंबुल चेत धर्मव्यतिकरंबुगलुगुं गान यी यज्ञंबु सालिपु मनि मरियु निट्लनियॆ ॥533॥

सी. अदिगाक विनुमु . वेनापचारंबुन बूनि विलुप्तंबुलॆन यट्टि
यलघु नाना समयानुधर्मंबुल बरिपालनमु सेय वरगि वेनु
देहंबु वलननु दिविरि जनिचियुन्नाडवु नारायणांशजुडवु
गावुन नीवीश! कलित लोकंबुन बुट्टिन तॆरगु नी बुद्धि दलचि

ते. ऎवरिचे नैमित्तिकि सृजियिपबडिति
वट्टि यात्रह्मसंकल्प मवनिनाथ !
तप्पकुंडग बालिपु धर्मगतिनि
जारुशुभमूर्ति ! यो पृथु चक्रवर्ति ! ॥ 534 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियॆ। उपधर्ममातयु प्रचंड पापंड मार्गंबुनॆन यी यिंद्र कृतंबगु मायनु जयिपु मनि वनजसंभवुंडानतिच्चिनं पृथु चक्रवर्तियु ववाज्ञापितुंडॆ देवेंद्रुनि तोड बद्ध सख्युंडय्यॆ नंत नवभृथानंतरंबुन ॥535॥

में लगकर करने के लिए भवदीय चित्त क्रुद्ध होकर, रोषकलित हो अज्ञान-कलित हो जायगा। ५३२ [व.] भवदीय यज्ञ के हनन के लिए अश्व का हरण करनेवाला इन्द्र देवताओं में दुराग्रह करनेवाला होने से उससे निर्मित होकर, चित्त को आकर्षित करनेवाले इन पापंड धर्मों से धर्म का व्यतिकर (क्षोभ) होगा। इसलिए यह यज्ञ बन्द करो। यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। ५३३ [सी.] इसके अतिरिक्त सुनो, वेन के उपचार के कारण, प्रयत्न करके जो अलघु (बड़े) नाना समयों [के अनुकूल] धर्म विलुप्त हो गए, उनका परिपालन करने के लिए प्रवर्तमान होकर वेन की देह से इच्छापूर्वक जन्म लेकर रहते हो। [तुम] नारायण के अंशज हो। इसलिए तुम, हे ईश! इस लोक में पैदा होने का ढंग अपनी बुद्धि में सोचकर, [ते.] जिससे जिसके लिए तुम्हारी सृष्टि हुई है, ऐसे उस ब्रह्म के संकल्प का, हे अवनिनाथ! हे चारु शुभमूर्ति! ओ पृथु चक्रवर्ती! धर्म की गति (मार्ग) का, अवश्य पालन करो। ५३४ [व.] यों कहकर फिर इस प्रकार कहा। उपधर्म की माता एवम् प्रचंड पापंड का मार्ग होनेवाली और इन्द्रकृत होनेवाली इस माया को जीत लो। इस प्रकार वनज-संभव (ब्रह्मा) के आज्ञा देने पर, पृथु चक्रवर्ती भी उससे आज्ञापित होकर, देवेन्द्र के साथ बद्ध-सख्य वाला बन गया। इसके बाद अवभृथ के अनंतर ५३५

चं. सुरुचिर लब्ध दक्षिणल सौंपुन बौंपिरि वोयि भूसुरुल्
वरुसनु बॅक्कु दीवन लवारण निच्चिरि सर्वदेवतल्
भरितमुदंतरंगमुल बायनि वेड्क वरंबु लिच्चि रा
नरवरुडैन वैन्युनकु नंदित कीर्तिकि बुण्य मूर्तिकिन् ॥ 536 ॥

व. अंत नच्चटि जनंबु लिट्लनिरि ॥ 537 ॥

ते. अनघ ! नीचेत नादृतुलेरि सर्व-
जनुलु मरि दान मानोपचारमुलनु
बितृ सुदेवर्षि मानव वितति पूज
नौंदि संचित मोदंबु नौंदे नय्य ! ॥ 538 ॥

अध्यायमु—२०

व. अनि पलुकु समयंबुन यज्ञभोक्तयु यज्ञविभुंडुनु भगवंतुंडुनैन सर्वेश्वरुं डिद्रसमेतुंडै यच्चटिकि जनुदेंचि या पृथुन किट्लनियें ॥ 539 ॥

यागंबुन नारायणुंडु प्रसन्नुंडै पृथु चक्रवर्ति ननुग्रहिंचुट

कं. जनवर ! भवदीयंबै, जननुतमगु नश्वमेधशतमुन किपु डी
यनिमिषपति भंगमु से, सिन कतन क्षमापणंबु सेसेंडि गंटे ? ॥ 540 ॥

[चं.] सुरुचिरलब्ध दक्षिणाओं के कारण भूसुरों ने अतिशय मोद पाकर, क्रम से बेरोक टोक अनेक आशीष दिये। सभी देवताओं ने मुद (संतुष्टि) से भरित अंतरंगों से अधिक कौतुक के साथ नरवर (श्रेष्ठ नर) उस वैन्य को जो आनंदित की कीर्ति [और] पुण्य की मूर्ति था, वर दिये। ५३६ [व.] तब वहाँ के जनगण ने इस प्रकार कहा। ५३७ [ते.] हे अनघ ! सर्वजन तुमसे आदृत (मान्य) हुए। फिर दान [और] मान के उपचारों से पितृ, देवर्षि, मानव-वितति (समूह) ने पूजा पाकर संचित (एकत्रित) मोद (संतोष) पाया। ५३८

अध्याय—२०

[व.] ऐसे कहते समय यज्ञभोक्ता, यज्ञविभु [और] भगवान सर्वेश्वर ने इन्द्र-समेत वहाँ आकर उस पृथु से इस प्रकार कहा। ५३९

याग में प्रसन्न होकर नारायण का पृथु चक्रवर्ती को अनुगृहीत करना

[कं.] हे जनवर ! भवदीय होकर, जनों से नुत (स्तुत्य) होनेवाले अश्वमेध-शत का भंग करने के कारण अब यह अनिमिष-पति (इन्द्र) क्षमा

व. कावुन नितनि क्षमिपुमु। सत्पुरुषुलगुवारु देहाभिमानुलु गाकुंडुट जेसि भूतंबुल यॅड द्रोहं बाचरिंप रट्लगुटंजेसि नीवंटि महात्मुलु देवमाया मोहितुलैन परोपतापंबुलु सेसिरेनि दीर्घतरंबैन वृद्ध जनसेव व्यर्थंबु गादे? यदियुनुंगाक यीशरीरंबविद्या काम कर्मंबुल चेत नारब्धंबनि तॅलिसिन परमज्ञानि यी देहंबु नंदु ननुषक्तुंडु गाकुंडुट सहजंबन देहोत्पादितंबुलैन गृह दारादुलयंदु ममत्वंबुलेकुंडुटं जॅप्पनेल? यिट्टि देहंबु नंदुन्नयात्म येकंबुनु शुद्धस्वरूपंबुनु स्वयंज्योतियु निर्गुणंबुनु गुणाश्रयंबुनु व्याप्यव्यापकंबुनु नसंवृतंबुनु साक्षिभूतंबुनु निरात्मंबुनु नगु। दीनि देहंबु कंटॅ वेरुगानॅव्वंडु तॅलियु वाडु मत्परुंडगुटं जेसि देहधारियै युंडियु तद्गुणंबुलं बॉरयक वर्तिंचु मरियु नॅव्वंडेनि स्वधर्माचारपरुंडुनु निष्कामुंडुनु श्रद्धायुक्तुंडुनै नन्नॅल्लप्पुडु भजियिंचु नट्टि वानि मनंबु क्रमंबुन प्रसन्नंबगुनट्लु प्रसन्न मनस्कुंडुनु त्रिगुणातीतुंडुनु सम्यग्दर्शनुंडुनु नैन यतंडु मदीय समवस्थानरूप शांति नॊंदु। अदिय कैवल्यपदं बनंबडु। कुटस्थंबैन यी यात्म युदासीन भूतंबननु दीनि द्रव्यज्ञानक्रिया मनंबुलकु नीश्वरुंगा नॅव्वंडु दॅलियु वाडु

की प्रार्थना करता है। देख रहे हो न? ५४० [व.] इसलिए इसे क्षमा करो। सत्पुरुष होनेवाले [जन] देह के प्रति अभिमानी (आसक्त) न होने से भूतों (प्राणिकोटि) के प्रति द्रोह का आचरण नहीं करते। ऐसा होने के कारण तुम्हारे जैसे महात्मा देवों की माया से मोहित होकर, परों का उपताप (संताप) करें तो दीर्घतर (दीर्घकालीन) वृद्धजनों की सेवा व्यर्थ नहीं होगी? इसके अतिरिक्त इस शरीर को अविद्या [तथा] काम के कर्मों से आरब्ध मानकर, जाननेवाला परम ज्ञानी का इस देह में अनुषक्त (आसक्त) न होना [सहज है], देह से उत्पादित गृह [और] दारा आदि में ममत्व न होने के बारे में क्या कहें। [आसक्ति नहीं होती है।] ऐसी देह में स्थित आत्मा एक शुद्धस्वरूप वाली, [स्वयंज्योति] और निर्गुण और गुणाश्रयी और व्याप्य व्यापक और असंवृत और साक्षीभूत और निरात्मक होती है। इसे देह से अलग जो जानता है, वह मत्पर होने से देहधारी होकर भी तद्गुणों को न पाकर प्रवर्तमान होता है। और कोई भी हो, जो स्वधर्म का आचार-पर और निष्कामी और श्रद्धायुक्त होकर सदा मेरा भजन करता है, उसका मन क्रम से (धीरे-धीरे) प्रसन्न होता है। वैसा मन वाला और त्रिगुणातीत और सम्यक् दर्शन वाला मदीय समवस्थान रूपी शांति पाता है। वही कैवल्य पद कहलाता है। कूटस्थ होनेवाली यह आत्मा उदासीनभूत होने पर भी, इसके द्रव्य, ज्ञान, क्रिया [और] मन के लिए [आत्मा को] ईश्वर के रूप में जो समझता है, वह भव (पुनर्जन्म) नहीं पाता। यह संसार द्रव्य, क्रिया, कारक, चेतनात्मक होने से प्रभिन्न

भवंबु नोंदकुंडु। ई संसारंबु द्रव्य क्रिया कारक चेतनात्मकंबगुटं जेसि प्रभिन्न देहोपाधिकंबु गावुन ब्राप्तंबुलैन यापत्संपदल यंदु मत्परुलैन महात्मुलु विकारंबु नोंदरु। कावुन नीवु सुखदुःखंबुल यंदु समचित्तुंडवुनु समानोत्तम मध्यमाधमुंडवुनु जितेंद्रियाशयुंडवुनुनै विनिष्पादिताखिलामात्यादि संयुतुंडवै यखिल लोक रक्षणंबु सेयुमनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 541 ॥

सी. पार्थिवोत्तमुलकु ब्रजल रक्षिचुट परमधर्मबगु नरवरेण्य!
धरणीशुलकु ब्रजा परिपालनंबुन बूनि लोकुलु सेयु पुण्यमंदु
षष्ठांश मर्थिनि संप्राप्त मगुनट्लु प्रजल ब्रोवनिराजु प्रजल चेत
नपहृत सत्पुण्युडै वारु गाविचु घन पाप फलमु दा ननुभविचु

ते. गान नीवुनु विप्रवरानुमतमु, सांप्रदायिक विधमुनै जरगु धर्म
महिम जेपट्टि यर्थकाममुल यंदु,समत नम्मूटियंदु नासक्ति लेक ॥542॥

व. इव्विधंबुन ॥ 543 ॥

कं. जनुलकु ननुरक्तुडवै, जननायक नीवु धरणि समचित्तुडवै
यनयमु वरिपालिचिन, सनकादुल गांतु वात्म सदनमु नंदुन् ॥ 544 ॥

व. अनि वेंडियु निट्लनि यानतिच्चें ॥ 545 ॥

देहोपाधिक है; इसलिए प्राप्त आपदाओं [और] संपदाओं में मत्पर (मेरी चिंता करनेवाले) महात्मा लोग विकार नही पाते। इसलिए तुम सुखों और दुःखों में समचित्त और समान उत्तम, मध्यम [और] अधम [तथा] जितेंद्रिय के आशयवाले बनकर, विनिष्पादित (सिद्ध) अखिल अमात्य आदि [से] संयुत होकर, अखिल लोक की रक्षा करो। इस प्रकार कहकर फिर यों बोला। ५४१ [सी.] हे नरवरेण्य! पार्थिवोत्तमों को प्रजा की रक्षा करना परम धर्म होगा। धरणीशों को प्रयत्न करके प्रजा का पालन करने से लोगों के किये गए पुण्य में षष्ठांश (छठा भाग) इच्छा से संप्राप्त होता है, वैसे ही जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता वह प्रजा से अपहृत सत्पुण्य वाला बनकर, उनके किये हुए घन (बड़े) पापों के फलों का वह स्वयं अनुभव करता है। [ते.] इसलिए तुम विप्रवरों के अनुमत (अनुसार) सांप्रदायिक (पारम्परिक) विधि से होनेवाले धर्म की महिमा ग्रहण करके अर्थ और काम (इच्छा) में समता [दिखाओ]; उन तीनों में बिना किसी आसक्ति के, ५४२ [व.] इस प्रकार, ५४३ [कं.] हे जननायक! प्रजा से अनुरक्त होकर तुम [इस] धरणी का, समचित्त बनकर, सदा पालन करो तो आत्म-सदन (-घर) में सनक आदि को देखोगे। ५४४ [व.] इस प्रकार कहकर फिर इस तरह आज्ञा दी। ५४५ [सी.] हे भूवर! योग, तप और मखों के कारण मैं सुलभ नहीं हूँ; लेकिन मैं समचित्त

सी. भूवर ! योग तपोमखंबुल चेत गैकोनि सुलभुंडगानि येनु
समचित्तुलैन सज्जनुल चित्तंबुल वर्तिचु चुंडेडि वाड नगुट
जेसि तावक शम शील विमत्सर कीर्तनमुल वशीकृतुड नैति
ने नीकु नीक वरं बिच्चेद वेडुमु नावुडु विनि मेदिनीवरुंडु

ते. लोक गुरुडैन यप्पुंडरीकनयनु-
डानतिच्चिन मृदुललितामृतोप-
मान वाक्यमु लात्मीय मस्तकमुन
दालिच सम्मोदितात्मुडै धरणिविभुडु ॥ 546 ॥

कं. तन पादमुलकु भक्तिन्
विनतुंडै यात्मकर्म वितितिकि लज्जं
दनरुचुनुन्न सुरेंद्रुनि
गनुंगोनि सत्प्रेम मोदव गौगिट जेर्चेन् ॥ 547 ॥

व. इट्लु गौगिटं जेर्चि गतद्वेषुंडैयुन्न यनंतरंब ॥ 548 ॥

म. भगवंतुंडनु विश्वरूपकुडुनै भासिल्लु नव्विष्णु डा
जगतीनाथ कृतार्चना नतुलचे संप्रीत चेतस्कुडुन्
निगृहीतांघ्रि सरोरुह द्वयुडुनै निल्चें प्रयाणाभि मु-
ख्य गरिष्ठात्मकुडय्यु ना पृथुनि पै गारुण्य मेपारगन् ॥ 549 ॥

व. इट्लु वनमोदि यनुग्रहंबुनं जेसि विलंबितुंडगुटयु नय्यादिराजन्युंडैन पृथु

होनेवाले सज्जनों के चित्तों में प्रवर्तमान रहता हूँ; इसलिए तावक (तुम्हारे) शम, शील [और] विमत्सर (द्वेष-रहित) कीर्तनों से वशीकृत बन गया हूँ। मैं तुमको एक वर दूंगा, माँगो। ऐसा बोलने पर सुनकर, मेदिनीवर ने [ते.] लोक [का] गुरु होनेवाले उस पुंडरीकनयन (विष्णु) के आज्ञा देने पर [उसके] मृदु, ललित [और] अमृतोपमान वाक्यों को आत्मीय (अपने) मस्तक पर धारण करके, वह धरणी-विभु ने सम्मोदित (संतुष्ट)-आत्मावाला बनकर, ५४६ [कं.] अपने पाँवों पर भक्ति से विनत होकर आत्म (अपने)-कर्म की विनति के लिए लज्जित होकर रहनेवाले सुरेन्द्र (इन्द्र) को देखकर, सत्प्रेम से आलिंगन कर लिया। ५४७ [व.] इस प्रकार आलिंगन करके गतद्वेषी बनकर रहने के बाद, ५४८ [म.] भगवान विश्वरूपी बनकर भासमान (प्रकाशमान) होनेवाले वह विष्णु उस जगतीनाथ (राजा) से कृतअर्चना (की गई पूजा) [और] नतों (प्रार्थनाओं) से संप्रीत-चेतस्क (-मन वाला), निगृहीत (पकड़े गये) अंघ्रि (चरण)-सरोरुह-द्वय बनकर, प्रयाण [के लिए] अभिमुख्य गरिष्ठ आत्मा वाला बनकर भी, उस पृथु पर कारुण्य बढ़ने पर, खड़ा हो गया। ५४९ [व.] इस प्रकार अपने पर [होनेवाले] अनुग्रह के कारण विलंबित होने

चक्रवर्ति यम्मुकुंद संदर्शनानंद बाष्पजल बिंदु संदोह कंदळित नयनार-विंदुडै यविभु मूर्तिगनुंगोनि कनुंगोनलेक गद्गदकंठुंडै पलुकलेक युंडियु नॆट्टकेलकु वन हृदयंबुन नद्देवुनि नुपगूहनंबु गाविंचि तन्मूर्ति धरियिंचि कन्नुलं दॊरंगु नानंद बाष्पंबुलु दुडिचिकोनि विलोकनंबु सेयुचु नतृप्त दृग्गोचरुंडुनु गरुडस्कंध विन्यस्त हस्तुंडुनु वसुधातलस्थित पाद कमलुंडुनुनै यॊप्पु नद्दिव्यपुरुषुन किट्लनियॆ ॥ 550 ॥

कं. वरदा ! यीश्वर ! निनु स-
त्पुरुषुडु देहाभिमान भोग्यमुलकु नी
वर मॆट्लु गोरु ? निह सुख
वरमुलु नारकुलकैन वड्डलवॆ ? चॆपुमा ! ॥ 551 ॥

चं. घनमगु देव ! यी वरमॆ कादु महात्मक ! वाग्विनिर्गतं-
बन वगु तावकीन चरणांबुज चारु मरंद रूपमै
तनरिन कीर्तियुन् विनि मुदंबुनु बॊंदगलेनि मोक्षमै
ननु मदि गोरनॊल्ल नघनाश ! रमेश ! सरोजलोचना ! ॥ 552 ॥

कं. अदि गान पद्मलोचन, सदमल भवदीयघन यशमु विनुटकुनै
पदि वेल चॆवलु कृपनि, म्मदिये ना यभिमतंबु नगुनु मुकुंदा ! ॥ 553 ॥

से, उस आदि-राजन्य होनेवाले पृथु चक्रवर्ती ने उस मुकुंद के संदर्शन से [जनित] आनंद [के] बाष्पजलों [के] संदोह (समूह) [से] कंदलित-नयन [रूपी] अरविंद बनकर, उस विभु की मूर्ति को देखकर [भी], देख न सककर, गद्गद कंठ वाला बनकर, बोल न सककर भी, अंत में अपने हृदय में उस देव को उपगूहन (आलिंगन) करके, तन्मूर्ति (उस मूर्ति) को धारण करके, आँखों से बहनेवाले आनंदबाष्पों को पोंछकर, विलोकन करते हुए अतृप्त दृग्गोचर, गरुड़ के स्कंध पर विन्यस्त (रखे हुए) हस्त वाला [और] वसुधातल [पर] स्थित पाद [रूपी] कमल वाला बनकर, सुंदर लगनेवाले उस दिव्य पुरुष से इस प्रकार कहा। ५५० [कं.] हे वरद ! ईश्वर ! सत्पुरुष देह के अभिमान, [आसक्त होनेवाले] भोग्यों के लिए तुमसे वर कैसे माँगेगा ? इह सुख [के] वर नारकों को भी, कहो, [क्या] प्राप्त नहीं होगे ? ५५१ [चं.] हे घन (श्रेष्ठ) होनेवाले देव ! हे अघ (पाप) नाशक ! रमेश ! सरोजलोचन ! यह वर ही नहीं, हे महात्मक ! वाक् [से] विनिर्गत योग्य तावकीन (तुम्हारे) चरण [रूपी] अंबुज [के] चारु (सुंदर) मरंद [का] रूप होकर, प्रकाशमान कीर्ति [को] सुनकर, मुद (आनन्द) को न पानेवाले मोक्ष को भी [अपने] मन से माँगना नहीं चाहता। ५५२ [कं.] इसलिए, हे पद्मलोचनवाले ! सदमल (स्वच्छ) भवदीय घन (बड़े) यश [के बारे में] सुनने के लिए, कृपा

चं. अनघ ! महात्म ! वाग्गळितमैन भवत्पद पंकजात सं-
जनित सुधा कणा निलमु सक्रम विस्मृत तत्त्वमार्ग व-
र्तनुलगु दुष्टयोनुलकु ग्रम्मर दत्त्वमु जूप जालु नि-
ट्लीनगट दक्क नन्यवर मोल्ल वयोरुहपत्रलोचना ! ॥ 554 ॥

सी. विनुत मंगळ यशोविभव ! सर्वेश्वर ! यिंदिर गुण संग्रहेच्छ जेसि
ये ? नीवु शिवतरंबैन सत्कीर्तिनि नर्थिमै वरियिंचॅ नट्टि कीर्ति
चतुर सत्पुरुष संगतमु गल्गुचुनुंड धृति नॅव्वडेनि यादृच्छिकमुन
जेसियु नोकमाट्टु चॅवुलार विन्न वा डनयंबुनु गुणज्ञुडय्यॅनेनि

ते. विरति नेरीति वोंदुनु ? धरणि बशुवु
दक्क दक्किनतज्ञुंडु दनुजभेदि !
गान युत्सुक मति नैन येनु लक्ष्मि
करणि निन्नु भजितु नो परमपुरुष ! ॥ 555 ॥

व. इट्लु भवदीय सेवा तत्परुलमैन यिंदिरयु नेनु नेक पदार्थाभिलाषं
जेसि स्पर्धमानुलगुचुन्न मा यिद्दरकुनु पर्यायसेवं जेसि कलहंबु लेकुंड
निम्मट्लुगाक भवदीय चरण सरोरुह सेवासक्त मनो विस्तारुल मगुट

करके, दस हज़ार कान दो। हे मुकुंद! वही मेरा अभिमत है। ५५३
[चं.] हे अनघ ! महात्मा ! वाक् [से] गलित भवत्पद [रूपी] पंकजात (कमल) [से] संजनित सुधाकणों के अनिल (वायु) से ठीक विस्मृत तत्त्वमार्ग [में] प्रवर्तमान दुष्ट योगियों को फिर से तत्त्व को दिखा सकनेवाले के जैसे होने के अतिरिक्त, हे पयोरुहपत्रलोचन वाले ! अन्य वर [मैं] नहीं चाहता। ५५४ [सी.] हे विनुत मंगल-यशोविभववाले ! सर्वेश्वर ! इंदिरा ने गुणों के संग्रह की इच्छा के कारण ही तुम्हारी शिवतर कीर्ति की, इच्छा करके, वरण किया; वैसी कीर्ति के चतुर सत्पुरुष के सांगत्य से मिलने पर, धृति से कोई भी यादृच्छिकता से भी, एक बार कर्ण (कान) भर [उस नाम को] सुननेवाला, यदि गुणज्ञ होगा [ते.] तो किस रीति से धरणि पर पशु को छोड़कर अन्य तज्ञ (उसे जाननेवाला) विरति पाएगा ? दनुज-भेदी ! इसलिए उन्सुकमति होनेवाला मैं, हे परमपुरुष ! लक्ष्मी की तरह तुम्हारा भजन करूँगा। ५५५ [व.] इस प्रकार भवदीय सेवातत्पर होनेवाली इंदिरा के [और] मेरे एक [ही] पदार्थ की अभिलाषा रखने से, स्पर्द्धा रखनेवाले हम दोनों में पर्याय-सेवा (बारी-बारी से की जानेवाली सेवा) के कारण ऐसा करो कि [हममें] कलह न हो। हे देव ! ऐसा न हो तो भवदीय चरण [रूपी] सरोरुहों की सेवा में आसक्त मन का विस्तार करनेवाले होने से 'मैं पहले, मैं पहले' भजन करूँगा [या करूँगी], ऐसे विचारों से कलह भी हो तो होने दो। इस प्रकार कहकर फिर

जेसि येन येन मुन्न भजियितु ननु तलंपुलं गलहंबयिननु गानिम्मु देवा ! यनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 556 ॥

सी. जगदीश ! देव ! युष्मत्पद कैंकर्य परत दनर्चु सागर तनूज
कृत्यंबु नंदु नकिल्बिष बुद्धि ने ब्रीति गोरुट जगन्मातयैन
या रमा सति तोड वैर मवश्यंबु गल्गु नैननु दयाकार ! नीवु
दीनवत्सलुडवु गान स्वल्पंबुनु नधिकंबु सेयुदु वट्लु गान

ते. भव्यचरित ! निजस्वरूपंबुनंदु
नभिरतुडवैन नीवु नन्नादरिंचु
पगिदि निंदिर नादरिंपवु महात्म !
भक्तजनलोकमंदार ! भवविदूर ! ॥ 557 ॥

व. इट्लगुटं जेसि सत्पुरुषुलैन वारलु निरस्तमायागुणविभ्रमोदयंबु गल निन्नु भजियितुरु। वारलु भवत्पादानुस्मरण रूपंबयिन प्रयोजनंबु दक्क नितर प्रयोजनंबुल नेरुंगरु देवा ! सेवक जनंबुलनु वरंबुलु वेडुमनि जगद्विमोहंबुलैन वाक्यंबुलु पलुकुदुवट्टि भवदीय वाक्य तंत्री निबद्धुलु लोकुलु गाकुंडिरेनि फलकामुलै कर्मंबुल नेट्टु लाचरिंतु रीशा ! भवदीय माया विमोहितुलै जनुलेमि कारणंबुन नीकंटे नितरंबुल गोरुचुंदु रिट्लगुटं जेसि तंड्रि दनंतन वालहितंबाचरिंचु नट्लु माकु नीव हिताचरणं

यों बोला ५५६ [सी.] हे जगदीश ! देव ! युष्मत् पद के कैंकर्य (सेवा) [में] परत (लगी हुई) सागर-तनूजा (लक्ष्मी) के कृत्य में अकिल्बिष (स्वच्छ) बुद्धि से मेरा प्रीति से [भाग की] इच्छा रखने से जगन्माता उस रमा सती से वैर अवश्य होगा; फिर भी हे दयाकर ! तुम दीनवत्सल हो; इसलिए स्वल्प को अधिक करते हो। [ते.] इस कारण हे भव्य चरितवाले ! निज स्वरूप में अभिरत होनेवाले तुम जिस प्रकार मेरा आदर करते हो, हे महात्मा ! हे भक्तजनलोकमंदार ! भव-विदूर ! [उस प्रकार] इंदिरा का आदर नहीं करते हो। ५५७ [व.] इस प्रकार होने से सत्पुरुष माया-गुण-विभ्रमोदय (भ्रांति का उदय) को निरस्त करने वाले तुम्हारा भजन (सेवा) करते हैं। वे भवत् (तुम्हारे) पादों का अनुस्मरण रूप होनेवाले प्रयोजन के अतिरिक्त इतर (दूसरे) प्रयोजन को नहीं जानते। हे देव ! सेवक जनों से जगत् को मोहित करनेवाले ऐसे वाक्य बोलते हो कि वर माँगो। ऐसे भवदीय वाक्य [रूपी] तंत्री से निबद्ध [जन] लोक (प्रजा) नही होंगे तो फलों के कामी बनकर कर्मों का आचरण कैसे करेंगे ? हे ईश ! भवदीय माया से विमोहित बनकर जन (लोग) किस कारण से तुमसे बढ़कर इतरों को (दूसरी चीज़ों को) चाहते रहते हैं ? जैसे पिता स्वयं बालक के हित का आचरण करता है, वैसे तुम ही

वार्चरिप नहुँड वनि पलिकिन नादिराजर्षियैन पृथु चक्रवर्ति यर्थवंतंबु लयिन वचनंबुलु विनि विश्व द्रष्टयगु नारायणुंडु संतुष्टांतरंगुंडै यिट्लनियें। ओ महाराजा ! दैव प्रेरितुंडवै नायेड निट्टि बुद्धि गलुगुटं जेसि यचलाचलंबगु भक्ति बोंडमु। दानिचे दुस्तरंबगु मदीय मायं दरितुवु। नीवु नाचे नादिष्टंबगु कृत्यंबप्रमत्तुंड वगुचु नाचरिंचिन सकल शुभंबुलं बोंदुदुवु। मदीय भक्त जनंबुलु स्वर्गापवर्ग नरकंबुलं दुल्यंबुलुगा नवलोकितुरु गावुन नी यध्यवसायंबु नट्टिदिय। मरियु मदीयादेशंबुन दुस्त्यजं बगु रोषंबुनु वर्जिंचि नायेड भक्ति सलिपितिवि। गान यिदियें नाकु वरम हर्षदंबगु ननि यभिनंदिंचि यनुग्रहिंचि यतंडु गाविंचु पूजलु गयिकोनि गमनोन्मुखुंडय्यें। नय्यवसरंबुन ॥ 558 ॥

सी. नरसिद्धचारण सुरमुनि गंधर्व किन्नर पितृ साध्य पन्नगुलुनु
नखिल जनंबुलु हरि पार्श्ववर्तुलु नानंद मग्नांगुलगुचु वेड्क
यज्ञेशचिंतनुंडैन या पृथुवुचे सत्कारमुल बोंदि सम्मदमुन
जनिरि निजाधिवासमुलकु भगवंतुडैन नारायणुं डच्युतुंडु

ते. दग नुपाध्याय सहितुडै तनरु पृथुनि
विमल मतुलयि चूचुचु नमरवरुलु

हमारे हित का आचरण करने अर्ह (योग्य) हो। इस प्रकार बोलने पर आदि-राजर्षि होनेवाले पृथु चक्रवर्ती के अर्थवान वचनों को सुनकर विश्वद्रष्टा नारायण ने संतुष्ट-अंतरंगवाला बनकर इस प्रकार कहा। हे महाराज ! दैव से प्रेरित होकर मेरे प्रति ऐसी बुद्धि होने से अचंचल भक्ति [प्राप्त] होगी। उससे दुस्तर होनेवाली मदीय (मेरी) माया को तरोगे (पार करोगे)। अगर तुम मुझसे आदिष्ट (आज्ञापित) कृत्य अप्रमत्त होते हुए आचरित करोगे तोसकल शुभ प्राप्त करोगे। मदीय भक्तजन स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) [एवम्] नरक को तुल्य [मानकर] ही अवलोकन करते हैं। इसलिए तुम्हारा अध्यवसाय (उत्साह) भी वैसा ही है। इसके अतिरिक्त मदीय आदेश से दुस्त्यज (छोड़ने में मुश्किल) होनेवाले रोष को त्यजकर मेरे प्रति भक्ति [प्रकट] की। इसलिए यही मेरे लिए परम हर्षद (हर्ष देनेवाला) होगा। इस प्रकार [पृथु का] अभिनंदन करके [और] अनुगृहीत बनाकर उसकी की हुई पूजाएँ लेकर, गमन (जाने) के लिए उन्मुख हुआ। उस अवसर पर ५५८ [सी.] नर, सिद्ध, चारण, सुर, मुनि, गंधर्व, किन्नर, पितृ, साध्य, पन्नग और अखिल जन, [और] हरि के पार्श्ववर्ती जन आनंदमग्न अंगवाले बनते हुए, कुतूहल से यज्ञेश [का] चिंतन करनेवाले उस पृथु से सत्कार पाकर, सम्मद (मोद) से निज अधिवासों को चले गये। [ते.] योग्य उपाध्याय (वेद पढ़ानेवालों) सहित होकर, प्रकाशमान होनेवाले पृथु को अमरवर (देवता) विमल

दन्नु जय जय कलित शब्दमुल चेंगड
जनियें नप्पुडु वैकुंठ सदनमुनकु ॥ 559 ॥

अध्यायमु—२१

व. अंत वृथु चक्रवर्तियु निंद्रियागोचरुंडय्युनु दर्शितात्मुंडुनु देवदेवुंडुनु नयिन वासुदेवुनकु नमस्करिंचि निज पुरंबुनकुं जनुदेंचु समयंबुन मौक्तिक कुसुम मालिका दुकूल स्वर्ण तोरणालकृतंबुनु, ललित सुगंधि धूप विलसितंबुनु, रत्नमय रंगवल्लिका विराजितंबुनु, फल पुष्प लाजाक्षत दीपमालिका स्तंभपूगपोताभिराम प्रतिगृह प्रांगणंबुनु, मृगमद घनसार चंदनागरुवा:पूर संसिक्त रथ्यावळीविभासितंबुनु, दरु पल्लवाभिशोभितंबुनु नैन पुरंबु ब्रवेशिंचि राजमार्गबुनं जनुदेर मंडित रत्नकुंडल मणि मरीचुलु गंड फल कंबुलं दांडवंबुलु सलुपं बुर कामिनुलु गनकपात्र विरचितंबुलयिन यशेष मंगळ नीराजनंबुल निवाळिप शंख दुंदुभि प्रमुख तूर्य घोषंबुलुनु ऋत्विङ्निकायाशीर्वचनंबुलुनु जेलंग वंदि मागध जनसंस्तूयमानुंडगुचु विगत गर्वुंडै यंत:पुरंबु ब्रवेशिंचि यनंतरंब ॥ 560 ॥

मतिवाले बनकर, देखते हुए जय-जय कलित (युक्त) शब्दों से अपनी प्रशंसा करने पर, तब भगवान नारायण, अच्युत वैकुंठसदन को चला गया। ५५९

अध्याय—२१

[व.] तब पृथु चक्रवर्ती इंद्रियों को अगोचर होकर भी दर्शित-आत्मा [और] देवदेव होनेवाले वासुदेव को नमस्कार करके, निज पुर में आते समय मौक्तिक, कुसुम-मालिका, दुकूल [और] स्वर्णतोरणों से अलंकृत, ललित, सुगंध-धूप [से] विलसित, रत्नमय रंगवल्लिकाओं से विराजित, फल, पुष्प, लाज, अक्षत, दीपमालिकास्तंभ, पूगपोत (सुपारी के पौधों से) अभिराम होनेवाले प्रतिगृह के प्रांगण, मृगमद (कस्तूरि), घनसार (कर्पूर), चदन, अगरु के वा:पूर (जलप्रवाह) से ससिक्त रथ्यावली (राजमार्गों की समूहों) से विभासित, तरुपल्लवों से अभिशोभित होनेवाले पुर में प्रवेश करके, राजमार्ग से आने पर, मंडित (अलंकृत) रत्नकुंडलों की मणियों की मरीचियों (किरणों) के, गंडफलकों पर तांडव करने पर, पुर-कामिनियों के, कनक-पात्रों में विरचित अशेष मंगल नीराजन (आरती) उतारने पर, शंख, दुंदुभि प्रमुख (आदि) तूर्यघोष, ऋत्विकों के निकायों (समूहों) के आशीर्वचनों के व्याप्त होने पर, वदि-मागध जनों से संस्तूयमान (स्तुत्य) होते हुए विगत गर्व [वाला] बनकर, अंत:पुर में प्रवेश करके, अनंतर (इसके

सी. समधिक गति पौरजन जानपदुलचे दनरारु विविध पूजनमु लोंदि
राजु संतुष्टांतरंगुडु प्रियवरप्रदुडनै वारल बहु विधमुल
बूजिचें निव्विधंबुन महत्तरमुलैनट्टि कर्मंबुल नाचरिंचु-
चुनु निरवद्यचेष्टुंडै महात्मु डन नोप्पु ना पृथुमनुज विभुडु

ते. मिंचि भूमंडलंबु बालिंचि विशद
यशमु सर्वधराचक्रमंदु निलिपि
चारुशुभमूर्ति राजन्य चक्रवर्ति
परममोदमुन बरम पदमु नोंदे ॥ 561 ॥

कं. अनि मैत्रेय महामुनि, यनघुडु विदुरुनकु जेप्पे ननि शुकुडभिम-
न्युनि सुतुनकु जेप्पिन तेर, गनि सूतुडु सेप्पे शौनकादुल तोडन् ॥562।

पृथु चक्रवर्ति सभासदुलकु सद्धर्ममुल नुपदेशिंचि ब्राह्मण प्रशंस सेयुट

व. अट्लेरिंगिचि वेंडियु निट्लनिये। निव्विधंबुन नशेष गुणविजृंभितंबुनु, निर्दोषंबुनु, सत्पुरुष सत्कृतंबुनु नगु पृथु चक्रवर्ति यशंबुनु प्रकटंबुगा जेयंजालु मैत्रेयुनि जूचि महाभावतुंडैन विदुरुंडिट्लनिये ॥ 563 ॥

वाद) ५६० [सी.] समधिक गति से पौरजनों [और] जानपदों से प्रकाशमान विविध पूजाएँ प्राप्त कर, राजा ने संतुष्ट अंतरंगवाला [और] प्रियवरप्रद [बनकर], उनकी बहुविधियों से पूजा की। इस प्रकार महत्तर होनेवाले कर्मों का आचरण करते हुए, निरवद्य (निर्दोष) चेष्टा वाला बनकर, महात्मा कहलाने योग्य वह पृथु मनुज-विभु (राजा) [ते.] अतिशय भूमंडल का पालन करके [अपना] विशद यश को सर्व धरा-चक्र में स्थापित कर, चारु शुभ मूर्ति [और] राजन्य-चक्रवर्ती ने परम मोद से परम पद प्राप्त किया। ५६१ [कं.] सूत ने शौनक आदि [मुनियों से] कहा कि शुक ने अभिमन्यु के सुत (परीक्षित) से जो कहा उसका ढंग यह है—इस प्रकार अनघ मैत्रेय महामुनि ने विदुर से कहा। ५६२

पृथु चक्रवर्ती का सभा के सदस्यों को सद्धर्मों का उपदेश देकर
ब्राह्मणों की प्रशंसा करना

[व.] उस प्रकार समझाकर, फिर इस तरह कहा। इस प्रकार अशेष गुणों से विजृंभित, निर्दोष, सत्पुरुषों से सत्कृत होनेवाले पृथु चक्रवर्ती के यश को प्रकटित कर सकनेवाले मैत्रेय को देखकर महाभागवत होनेवाले विदुर ने इस प्रकार कहा। ५६३ [सी.] हे मुनिनाथ! सुनो। पृथु-जनपाल-चन्द्र ने शोभा बढ़ने पर, मेदिनी-सुरों (ब्राह्मणों) से राज्याभिषेक से संपूज्य

सी. मुनिनाथ ! विनु पृथु जनपालचंद्रुंडु सौबगोप्प मेदिनीसुरुल चेत
राज्याभिषेक संपूज्युडै देवतागणमुचे लब्धार्हंगुणुडु नगुचु
वैष्णव तेजंबु वलनोप्प धरियिंचि यथि नेये कर्म माचरिंचे
नदि नाकु नेरिंगिपु मनघात्म! भूमि येव्वनि रूढि गोदोहन रूपमैन

ते. विक्रमोच्छिष्टमै योप्पि वेलयु चुंडु
कर्ममुन निंड्डु राजन्य गणमु ब्रदुकु
नट्टि पृथु कीर्ति धरलोन नति विवेकि
दविलि येव्वडु विनकुंडु ? धन्यचरित ! ॥ 564 ॥

कं. नावुडु विनि मैत्रेयुं, डा विदुरुनि जूचि पलिकें नति विनयमुनं
बावन चरितुडु पृथुडु ध, रावरनुतु डलघुयशुडु प्रमदं बलरन् ॥ 565 ॥

सी. रंगदुत्तुंगतरंग गंगायमुनामध्यमंदु नुन्नति वसिंचि
केकोनि प्रारब्धकर्म संघमुल बुण्य क्षयार्थंबुगा ननुभविंचु-
चुनु सर्वदेशंबुलनु दनयाज्ञ य प्रतिहत सत्प्रतापमुन जेल्ल
बूनि सर्वद्वीपमुलकु दानोक्कंड वैष्णव भूसुरावलिकि दक्क

ते. दक्कु गलिगन प्रजकेल्ल दंडधरुनि
बोलि वर्तिंचुचुनु गोंत काल मरुग
दविलि योकनाडु दीर्घसत्त्रंबु सेय
नथि गैकोनि दीक्षितुं डय्येनंदु ॥ 566 ॥

होकर, देवतागणों से लब्ध (प्राप्त) अर्हंगुणी होते हुए, वैष्णव तेजस् को अच्छी तरह धारण करके इच्छापूर्वक क्या-क्या कर्म किये हैं, वह मुझे समझाओ। [ते.] हे अनघात्म ! भूमि जिस रूढि (स्पष्टता) से गोदोहन रूप [के] विक्रम से उच्छिष्ट होकर [और] प्रकाशमान होकर विराजमान है; ऐसे कर्म से अब अन्य राजगण जीवित रहता है। ऐसे पृथु की कीर्ति [के बारे में] धरा पर जो अति विवेकी [जन] है, उनमें अच्छी तरह, हे धन्य चरित ! कौन सुनता न रहेगा ? ५६४ [कं.] तब सुनकर, मैत्रेय ने उस विदुर को देखकर कहा कि अति विनय से पावन चरित्र वाला पृथु जो धरावर (ब्राह्मण) से नुत है [और] अलघु (बड़ा) यश वाला है, प्रमद (मोद) होने पर, ५६५ [सी.] रंगत (अच्छी तरह) उत्तुंग (ऊँची) तरंगों से [भरी हुई] गंगा [एवं] यमुना के मध्य उन्नति से रहकर, प्रारब्ध कर्म के संघों को (समूहों को) पुण्य के क्षयार्थ (क्षीण होने को) लेकर, अनुभव करते (भोगते) हुए, सर्व देशों मे अपनी आज्ञा के अप्रतिहत (बेरोक-टोक) हो सत्प्रताप से चलने पर, प्रयत्न करके सर्व द्वीपों के लिए वह अकेला वैष्णव भूसुरावली (ब्राह्मणों के समूह) को छोड़कर, [ते.] बाक़ी सारी प्रजा के लिए दंडधर (यम) की तरह रहते हुए, कुछ

ते. राजऋषि दैवऋषि पितृ ब्रह्मऋषुलु
जनवरुनि चेत विहित पूजनमुलोंदि
समधिकैश्वर्य गति नुन्न समयमुननु
जिरसुभाकारुडा राजशेखरुंडु ॥ 567 ॥

सी. उन्नतोन्नतुडु समुत्तुंग भुजुडु सन्महनीयतर शोभमान मुखुडु
जारु संफुल्ल कंजारुणेक्षणुडु सुनासापुटुंडु मंदस्मितुंडु
वक्र सूक्ष्मस्निग्ध वरनीलकेशुंडु गमनीय रुचि कंबु कंधरुंडु
सुभग विशाल वक्षुंडुनु द्रिवळिशोभित मध्यभागुंडु वृथुनितंब-

ते. मंडलुंडु नावर्त समान नाभि
विवरुडुनु गांचन स्तंभ विलसवूरु
राजितुडु मरि यरुण चरणुडुनु धृत
नव दुकूलोत्तरीयुडुन्नत यशुंडु ॥ 568 ॥

व. मरियु नियम निमित्तंबुनं वरित्यक्त भूषणुंडगुटं जेसि व्यक्ताशेषगात्र श्रीकुंडुनु गृष्णाजिन धरुंडुनु श्रीमंतुंडनु गुशहस्तुंडनु गृतोचितुंडुनु शिशिर स्निग्धताराक्षुंडुनु नैन पृथु चक्रवर्ति सभामध्यंबुनं दारागण मध्य विभासितुंडुनु सकल जनाह्लादकरुंडुनु नगु सुधाकरुंडनं बोलॆं वॆलुंगुचु

काल के बीत जाने पर, एक दिन दीर्घ सत्र (यज्ञ) करने की इच्छा में लगकर उसमें दीक्षित हुआ। ५६६ [ते.] राजर्षि, देवर्षि, पितृ [तथा] ब्रह्मर्षि जनवर (राजा) से विहित पूजाओं को प्राप्त कर, समधिक ऐश्वर्य-गति से रहते समय चिर शुभ आकार वाला वह राजशेखर, ५६७ [सी.] उन्नतोन्नत (उन्नतों मे सबसे ऊँचा), समुत्तुंग भुजाओं वाला, सन्महनीयतर शोभायमान मुखवाला, चारु (सुंदर) संफुल्ल (विकसित) कंज (कमल के जैसे) अरुण-ईक्षण (-आँख) वाला, सुनासापुट (नाक) वाला, मंदस्मित वाला, वक्र (घुंघुराले) सूक्ष्म स्निग्ध वर (श्रेष्ठ) नील केश वाला, कमनीय (सुंदर) रुचि (कांतियुक्त) कंबु (शंख के जैसे) कंधर (कठ वाला), सुभग [और] विशाल वक्ष वाला, त्रिवलि से शोभित मध्य भाग (कमर) वाला, पृथु (बड़े) नितंब (पुट्ठे) मंडल वाला, [ते.] आवर्त (भँवर) समान नाभि-विवर (-रंध्र) वाला, कांचन (सुवर्ण) स्तंभों के समान विलसत् (प्रकाशमान) ऊरुओं (जांघों) से विराजित और अरुण चरण वाला, धृत नव दुकूल (उत्तरीय) वाला, उन्नत यश वाला, ५६८ [व.] और नियम के निमित्त परित्यक्त भूषण वाला होने से व्यक्त अशेष गात्र (शरीर)-श्रीक (श्री से युक्त), कृष्णाजिनधर, कुश हस्त, कृत उचित, शिशिर [ऋतु के] तारा [के समान] अक्ष (आँख) वाले पृथु चक्रवर्ती ने सभा के मध्य तारागण के मध्य विभासित [और] सकल जन के लिए

लेचि निलुचुंडि सदस्य संतोषदायकंबुलुनु चित्रपद विराजितंबुलुनु प्रसन्नंबुलुनु परिशुद्धंबुलुनु गंभीरार्थंबुलुनु नव्याकुलंबुलुनु नैन भाषणंबुल निट्लनियें ॥ 569 ॥

कं. विनुडी सभ्युलु धर्मंमु, ननयमु नॅरुगंग गोरु नट्टि जनुडु दा
दन तलपुन गल यर्थंबु, जनु नॅरिंगिपंग धीर सत्पुरुषुलकुन् ॥ 570 ॥

सी. एनु नी लोकवितानंबु नॅल्लनु शासिंचि भू प्रजा संततुलनु
दत्तद्विहित वृत्ति दानंबुलनु जेसि रक्षिप विविध मर्याद दप्पि
पोकुंड निलुपुटकै कमलजुचे नियोगिप बडिति निट्लौनरियुंड
नट्टि प्रजापालनाद्यनुष्ठान वशंबुन प्राक्कर्मसाक्षि यीशु

ते. डॅट्टि वानिकि संतुष्टि नॅसगु चुंडु
नट्टि वानिकि ने लोकमंद्रु बुधुलु
कामदुघमैन यट्टि लोकंबु नाकु
सरवि गलुगु ननुष्ठान परुड नगुट ॥ 571 ॥

व. इट्लु प्रजलनु धर्मंबुलयंदु ननुशासिपक यर्थकामुंडै वारि वलन नप्पनंबुलु गॊनॅने निवारल पापंबु दनकु प्राँपिपं देजोहीनुंडै भूविभुंडु सॆडुं गावुन् भूपति हितार्थंबुनकु स्वार्थंबुनकु नसूयारहितुलै वासुदेवार्पण बुद्धि

आह्लादकर होनेवाले सुधाकर की तरह प्रकाशमान होते हुए उठ खड़े होकर, सदस्यों के लिए संतोषदायक, चित्रपद विराजित, प्रसन्न, परिशुद्ध, गंभीरार्थ [और] अव्याकुल होनेवाले भाषणों से इस प्रकार कहा। ५६९ [कं.] सुनो, सभ्यगण ! अनय (सदा) धर्म जानने की इच्छा करनेवाला जन (मनुष्य) को स्वयं अपने मन में रहनेवाली बात को धीर सत्पुरुषों को समझानी चाहिए। ५७० [सी.] मैं इस सारे लोक-वितान का शासन करके भूमि [और] प्रजा की संततियों को तत्तत् (उन-उन) विहित वृत्तियों की दान करके रक्षा करने के लिए विविध मर्यादाओं का भंग न हो, [उनको] स्थिर करने के लिए कमलज (ब्रह्मा) से नियोजित हुआ। इस प्रकार होने से, ऐसे प्रजा-पालन आदि के अनुष्ठानवश प्राक् (पूर्व) जन्म के कर्मों का साक्षी [होनेवाला] ईश, [ते.] जिस प्रकार के मनुष्य को संतुष्टि देता है, ऐसा करनेवाले मनुष्य को बुधगण कौन सा लोक [प्राप्त होगा, ऐसा] मानते हैं ? कामदुघ होनेवाला ऐसा लोक मुझे क्रम से प्राप्त होगा। अनुष्ठान पर (अनुष्ठान करनेवाला) होने से, ५७१ [व.] इस प्रकार प्रजा को धर्मों में अनुशासित न करके, अर्थकामी बनकर उनसे भेंटें लेगा तो उनका पाप अपने को प्राप्त होने पर, तेजोविहीन बनकर, भू-विभु (राजा) बिगड़ (नष्ट हो) जाएगा। इसलिए [प्रजा को भूपति के हितार्थ और स्वार्थ के लिए] असूया-रहित होकर, वासुदेव को अर्पण

जेसि धर्मंबु नॆप्पुडु नाचरिंप वलयु। निदिय नन्नु ननुग्रहिंचुट यदियुनुं गाक पितृ देवर्षि तुल्युलगु मीरलनु मोदिंचि कर्तयु ननुशासकुंडु ननु ज्ञातयु नयिन नाकु वरलोकंबुन ने फलंबु गलुगु नट्टि फलंबुनकु सदृशंबैन कर्मंबाचरिंपवलयु नट्लयिन संतोषंबु नॊंदुदु ननिन वारला राजेंद्रुन किट्लनिरि ॥ 572 ॥

कं. जननायक ! प्रजलिरवॊं, दिन धर्ममु लॆल्ल वासुदेवार्पण बु-
द्धिनि जेय वलयु नंटिवि यनयंबुनु वासुदेवुडन गलडॆ महिन् ॥ 573 ॥

सी. अन विनि वारिकि मनुजेशुडनु नर्हतमुलार! विनुडथ्य तविलि!मीरु
यज्ञाधिपतियैन यखिलेश्वरुडु गॊन्नि मतमुल गलडु धीमंतुलार!
यट्लैन मीरलु नंदुकु विप्रतिपत्ति गल्गुट नुपपन्न मरय
गादंटिरेनि ना घनुनि चे रचितमै कांति मंतमगु जगंबु गान

ते. वडुचु नुन्नदि यिट्टि प्रपंच रचित
कर्म वैचित्र्य मम्मेटि गलुगकुन्न
नमरददि तदुक्तुलुपपन्नमुलु गावु
कान यव्वासुदेवुंडु गलडु मरियु ॥ 574 ॥

व. अदियुनुं गाक यी जगद्वैचित्र्यंबु गर्तयैन यीश्वरुंडु लेकुन्नं गर्मवशंबुनं जेसि युपपन्नंबगु नंटिरेनि ॥ 575 ॥

करने की वुद्धि (संकल्प) करके, सदा धर्म का आचरण करना चाहिए। यही मुझे अनुगृहीत करना है। इसके अतिरिक्त पितृ [और] देवर्षि [के] तुल्य होनेवाले तुम लोग अनुमोदन करके कर्ता, अनुशासक [और] अनुज्ञाता होनेवाले मुझे परलोक में जो फल मिले, ऐसे फल के सदृश कर्म का आचरण [मुझे] करना चाहिए। ऐसा हो तो संतोष (मोद) पाऊँगा। ऐसे वोलने पर उन्होने उस राजेन्द्र से इस प्रकार कहा। ५७२ [कं.] हे जननायक ! तुमने कहा कि प्रजा को सव स्थिर-धर्म वासुदेव को अर्पण [करने की]-वुद्धि से करने चाहिए। क्या सदा मही में (भूमि पर) वासुदेव कहलानेवाला [कोई विद्यमान] है ? ५७३ [सी.] [ऐसे] कहने से, सुनकर, उनसे मनुजेश ने कहा, हे अर्हतम ! वड़ी इच्छा से, ध्यान देकर, तुम लोग सुनो। यज्ञ का अधिपति होनेवाला अखिलेश्वर कुछ मतों में (के अनुसार) है। हे धीमान्, ऐसा होने से तुम लोग इसके लिए कहते हो कि विप्रतिपत्ति (विरोध) होने से, उपपत्ति, जाना जाए और [उसे आप] नकार दें तो उस घन (श्रेष्ठ) से रचित होकर, कांतिमान जग दिखाई पड़ रहा है। [ते.] ऐसा प्रपंच (संसार)-रचित कर्म-वैचित्र्य उस श्रेष्ठ के विना वनता नहीं, वे उक्तियाँ उपपन्न नही होतीं। इसलिए वह वासुदेव [विद्यमान] है। और, ५७४ [व.] इसके अतिरिक्त अगर

सी. पूनि प्रियव्रतोत्तानपाद ध्रुव मनुल कस्मत्पितामहु डनंग
दगु नंग मेदिनीधवुनकु मरियुनु विनुति कॅक्किन पृथिवीपतुलकु
बद्मसंभव भव प्रह्लाद बलिचक्रवर्ति प्रमुख भागवतुल कथि
वर्ग सुस्वर्गापवर्गंबुलकु ननुगत कारणुंडन घनत कॅक्कि

ते. हीनुलगु मृत्यु दौहित्रुडैन वेन
मुख दुरात्मुलु धर्म विमोहितुलुनु
दक्क दक्किन वारिकि दा प्रपन्न
वरदुडै यिच्चु नभिमतावळुल नतडु ॥ 576 ॥

व. इट्टि विद्वदनुभवंबुन भुवन हितुंडगु वासुदेवुंडु लेडनुट युपपन्नंबु गादवियुनुं गाक ॥ 577 ॥

उ. भूरि तपोभिराम मुनि पूजन मॅव्वनि पादपद्म से-
वारति वृद्धि बॊंदि यनिवारण बूर्व भवानुसार सं-
सार महोग्रतापमु भृशंबुग बापग नोपु दत्पदां-
भोरुह जात देव नदि बोलि यशेष मनोघ हारियै ॥ 578 ॥

व. मरियु ॥ 579 ॥

चं. अनुपम भक्ति नॅव्वनि पदांबुजमूलमु मंदिरंबुगा-
ननयमु बॊंदुवाडु निहताखिल भूरि मनोमलुंडु स-

तुम कहते हो कि इस जगत का वैचित्र्य, कर्ता होनेवाले ईश्वर के न होने पर भी कर्मवश उपपन्न (पैदा) होगा। ५७५ [सी.] प्रयत्न करके प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव [और] मनुओं को अस्मत् पितामह कहने योग्य अंग-मेदिनी-धव (-राजा) को और [अन्य] प्रसिद्ध पृथ्वीपतियों को, पद्मसंभव-भव (नारद), प्रह्लाद [और] बलि चक्रवर्ती प्रमुख (आदि) भागवतों को इच्छा से वर्ग, सुस्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) के अनुगत-कारण के रूप में, [ते.] प्रसिद्ध बनकर हीन [तथा] मृत्यु के दौहित्र होनेवाले वेन-मुख (-आदि) दुरात्मा [एवं] धर्म-विमोहितों को छोड़कर, बाक़ी लोगों को वह स्वयं प्रपन्न वरद होकर, अभिमत की आवलियाँ (समूह) देता है। ५७६ [व.] ऐसे विद्वत् अनुभव से भुवन का हित होनेवाला वासुदेव नहीं है —ऐसा कहना उपपन्न [तर्कसम्मत] नहीं है। इसके अतिरिक्त, ५७७ [उ.] भूरि तप से अभिराम मुनियों की पूजा जिसके पादपद्मों की सेवा-रति से वृद्धि पाकर, अनिवार्य-पूर्व-भव (जन्म) के अनुसार संसार (परिवार) [रूपी] महोग्रताप को तत् पद (उसके पद) रूपी अंभोरुह (कमल) से जात (उत्पन्न) देव-नदी की तरह अशेष (विस्तार) मनोघहारी (मानसिक पापों को दूर करने वाला) बनकर भृश (अधिक) दूर कर सकती है, ५७८ [व.] और, ५७९ [चं.] जो अनुपम भक्ति से जिसके पद [रूपी]-अंबुज (कमल) मूल को

द्विनुत विरक्तिवोध धृति वीर्य विशेष समन्वितुंडु दा-
नन दगि भूरि संसृति महत्तर दुःखमु नंद डॆंदडुन् ॥ 580 ॥

कं. नारायणुंडु जगदा, धारुंडगु नीश्वरुंडु दलप नतनिकिन्
लेरॆंदुसमुलु नधिकुलु, धीरोत्तमु डतडु नद्वितीयुंडगुटन् ॥ 581 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 582 ॥

उ. कर्मवशंवुननन् जगमु गल्गुनु हॆच्चु नडंगु नन्नचो
गर्ममु वुद्धि जूड जडकार्यमु गानि प्रपंच कल्पना
कर्ममु नंदु गर्तयनगा विलसिल्लग जाल दी जग-
त्कर्मक कार्यकारणमु गावुन नीशुडु विष्णु डारयन् ॥ 583 ॥

व. कावुन मीर लव्वासुदेवुनि नधिकारानुसारंवुन निश्चितार्थ फल सिद्धि गल वारलै मनोवाक्काय कर्मवुल निष्कपट वृत्ति दगिलि विनुति नति परिचर्या पूर्वकंवुगा गामदुघंवुलयिन यतनि पादपंकजंवुलु भजियिपुंड-दियुनुंगाक ॥ 584 ॥

सी. रूढि नीश्वरुडु स्वरूपंवुनंजेसि पूनि विशुद्ध विज्ञान घनुडु
नगुणुंडु नेन दा नरयनि कर्म मार्गमु नंदु व्रीह्यादि द्रव्यमुलनु

मंदिर के समान सदा पाता है, वह निहत-अखिल-भूरि-मनोमल (-मालिन्य) वाला, सद्विनुत (सत्पुरुषों से विनुत) विरक्ति [से] विशिष्ट बोध-धृति-वीर्य से समन्वित कहला सककर, भूरि (बड़ी)-संसृति (संसार) के महत्तर दुःख को कभी नहीं पाता। ५८० [कं.] नारायण जगत का आधार होनेवाला ईश्वर है। सोचने पर वह धीरोत्तम है, [और] अद्वितीय होने से कहीं भी उसके समान [या] अधिक होनेवाले कोई नहीं हैं। ५८१ [व.] इसके अतिरिक्त, ५८२ [उ.] अगर [तुम लोग] कहते हो कि कर्मवश ही जग [उत्पन्न] होता है, बढ़ता है और दब जाता तो वुद्धि से देखने पर (विचार करने पर) कर्म जड-कार्य है। किन्तु प्रपंच (संसार) के कल्पना-कर्म में कर्ता बनकर विलसित नहीं हो सकता। इसलिए यह जगत्कर्मक-कार्य-कारण, जानने पर, ईश विष्णु है। ५८३ [व.] इसलिए तुम लोग उस वासुदेव को [अपने-अपने] अधिकार के अनुसार निश्चित-अर्थ के फल की सिद्धि वाले होकर, मन, वाक् और काय (शरीर) के कर्मों से निष्कपट वृत्ति में लगकर, विनुति से अति परिचर्या-(सेवा)-पूर्वक काम-दुघ (इच्छाओं को दुहनेवाले) होनेवाले उसके पाद-पंकजों का भजन (सेवा) करो। इसके अतिरिक्त, ५८४ [सी.] रूढि से ईश्वरस्वरूप के कारण प्रयत्न करके, विशुद्ध विज्ञानघन है [और] अगुण होने पर, अपने अज्ञात कर्ममार्ग में व्रीहि (धान) आदि द्रव्य, शुक्ल आदि गुण, विस्फुरत् अवघात आदि सत्क्रियाएँ, मंत्रों का संचय, संकल्प,

शुक्लादि गुणमु विस्फुर दवघातादि सत्क्रियलुनु मंत्र संचयंबु
संकल्पमुनु याग साध्यमैनट्टि यखंडोपकारंबु घनपदार्थ

ते. शक्तियु मरि ज्योतिष्टोम संज्ञकम्मु
ननु ननेक विशेष गुणतनु मॆऱयु
नट्टि यध्वर रूपमै यखिल जगमु
नंदु ननिशंबु ब्रख्याति नॊंदुचुंडु ॥ 585 ॥

व. अदियुनुं गाक दारुस्थितंबैन यनलंबु तद्दारु गुणंबुलयिन दैर्घ्य वक्रत्वादि-कंबुल ननुसरिंचु चंदंबुन नव्यक्तंबु, तत्क्षोभकंबयिन कालंबुनु वासनयु नदृष्टंबु ननु कारणंबुल चेतं बुट्टिन शरीरंबु नंदु विषयाकारं-बयिन बुद्धि नॊंदि तद्विषयाभिव्यंग्यंबैन यानंदस्वरूपुंडगुचु क्रियाफलं-बुनं ब्रसिद्धि नॊंदु ननि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनु मदीय जनंबु लिम्मेदिनी तलंबुन दृढव्रतुलै यज्ञभुगीश्वरुंडुनु गुरुंडुनु नयिन सर्वेश्वरुनि हरिनि निरंतरंबुनु स्वधर्म योगंबुनं बूजिंचुचुन्न वारलु। वारु नन्नाश्चर्य-करंबुगा ननुग्रहिंचु वारनि हरिभक्ति तुलैन महात्मुल नुतियिंचि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 586 ॥

म. वर संपद्विभव प्रताप महदैश्वर्यंबुलं बॊल्चु नी
धरणीनाथुल तेज मंचित तपो दांति क्षमा विद्यलं

याग [से] साध्य होनेवाला अखंड उपकार, घन पदार्थ शक्ति [ते.] और ज्योतिष्टोम संज्ञक (नाम) अनेक विशेष गुणों से प्रकाशमान होनेवाले अध्वर-रूप बनकर, अखिल जग में अनिश (सदा) प्रख्याति पाता रहता है। ५८५ [व.] इसके अतिरिक्त दारुस्थित (काठ में रहनेवाला) अनल के तत्-दारु के गुण होनेवाले दैर्घ्य (लम्बाई) [और] वक्रत्व आदि का अनुसरण करने के समान अव्यक्त [और] तत्क्षोभक (व्याकुल करनेवाला) काल, वासना [तथा] अदृष्ट नामक कारणों से उत्पन्न शरीर में विषयाकार (रूपी) बुद्धि को पाकर, तत्विषयों से अभिव्यंग्य आनंद का स्वरूप होते हुए क्रिया-फल के रूप में प्रसिद्ध होता है। इस प्रकार कहकर, फिर इस प्रकार कहा। मदीय इस मेदिनीतल पर दृढ़व्रती बनकर, यज्ञ-भुगीश्वर (-भोक्ता) [और] गुरु होनेवाले सर्वेश्वर हरि की निरंतर स्वधर्म के योग से पूजा करते है। वे मुझे आश्चर्य-कर रूप से अनुगृहीत करते है। यों कहकर, हरिभक्ति में रत होनेवाले उन महात्माओं की नुति करके, फिर इस प्रकार कहा, ५८६ [म.] वर (श्रेष्ठ) संपत्, विभव, प्रताप [और] महत् ऐश्वर्यों से शोभित होनेवाले इन धरणी-नाथों का तेज पूज्य तप, दांति, क्षमा और विधाओं में अधिक प्रकाशमान होनेवाले धरा-सुपर्व (ब्राह्मण) [और], हरिभक्तों की श्रेणियों में धरा पर कभी प्रभवित नहीं होंगे। इस

गर मीप्पारु धरासुपर्व हरिभक्त श्रेणुलं वॆप्पुडु
धर लोनं बर्भविपकुंडु ननि यद्धात्रीविभुंडिट्लनु ॥ 587 ॥

चं. अरयग ने धरामर पदांबुज रेणुवु लर्थि दाल्चि य-
प्परमपुराण पूरुषुडु ब्राह्मण देवुडु नैन यट्टि यी-
श्वरुडु सदानपायिनिनि सागर कन्यनु सर्वलोक वि-
स्फुरित पवित्र कीर्तियुनु बॊंदि विभूतियु दनर्चॆ गावुनन् ॥ 588 ॥

सी. ए वसुधामर सेवनु जेसि यशेष गुणान्वित स्थिति बनर्चु
सर्वेश्वरुडु मरि संतुष्टुडगु नट्टि धरणि दिविजुल दद्धर्म परुलु
नलघु विनीतुलु नै यवश्यंबुनु सेविपरे! धरादेव नित्य
सेवचे बुरुषुडु चिरतरज्ञान विद्याभासि गाकुन्ननैन नतडु

ते. वेगमुन नंतरंगंबु विशदमगुट
जेसि कैवल्य पदमुनु जॆंदुनट्लु
गान लोकुलु भूदेवता निकरमु
दगिलि भजियिप वलयुनुदात्त मतिनि ॥ 589 ॥

व. मरियु ॥ 590 ॥

सी. विज्ञान घनुडन वॆलयु नीश्वरुडु तत्त्वज्ञानयुक्तुलैन वारि चेत
दीपिप निद्रादि देवतोद्देशंबु ननु भूमिसुर मुखंबुन हुतंबु

प्रकार कहकर, उस धात्रीविभु (राजा) ने इस प्रकार कहा। ५८७ [चं.] देखने पर धरामरों (ब्राह्मणों) के पद [रूपी] अंबुजों की रेणुओं की इच्छा करके, धारण कर, वह परम पुराणपुरुष और ब्राह्मण-देव (ब्राह्मण जिसके देवता हों), होनेवाला ईश्वर सदा अनपायिनी, सागर-कन्या (लक्ष्मी) को सर्वलोकों में विस्फुरित (प्रकाशित) पवित्र कीर्ति को पाकर, विभूति से प्रकाशमान हो गया। इसलिए, ५८८ [सी.] जिन वसुधामरों (ब्राह्मणों) की सेवा के कारण, अशेष गुणों से अन्वित स्थिति से विलसित होनेवाला सर्वेश्वर और भी संतुष्ट होता है, ऐसे धरणि-दिविजों (ब्राह्मणों) को तद्धर्मपर (उस धर्म का आचरण करनेवाले), अलघु (बड़े) [रूप से] विनीत होकर, अवश्य सेवा करें। धरादेव (ब्राह्मण) की नित्य-सेवा के कारण, पुरुष चिरतर ज्ञानविद्याभ्यासी न हो, [ते.] तो भी वह शीघ्र अंतरंग के विशद होने से, कैवल्य पद को प्राप्त करता है। इसलिए लोगों को भूदेवताओं (ब्राह्मणों) के निकर (समूह) से लगकर उदात्तमति से भजन करना चाहिए। ५८९ [व.] और, ५९० [सी.] हे आर्य जनगण! विज्ञान-घन के रूप में प्रसिद्ध होनेवाले ईश्वर के तत्त्वज्ञानयुक्त होनेवालों से, दीप्त होने पर, इंद्र आदि देवताओं के उद्दिष्ट भूमिसुर

लगु हविस्सुल दृप्ति नंदिन गति नचेतनमैन या हुताशनमुखंबु
वलन वेल्चिन हविस्सुलचेत दृप्तुंडु गाकुंडु गावुन लोकमंदु

ते. नग्नि मुखमुन कंटे धरामरेंद्र
मुखमु परिशुद्ध मत्यंत मुख्य मनग
बनरुनदिगाक भूसुरार्चनमु सकल
जनुलु गाविपवगु नार्यजनमुलार ! ॥ 591 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 592 ॥

सी. ए वेदमंदेनि नीविश्वमेल्लनु दर्पण प्रतिबिंबित प्रभूष-
निवहंबु कैवडि दविलि प्रकाशिचु नट्टि विरजमुनु नव्ययंबु
नगुचु सनातनंबगु वेदमे धरादेवताजनमनु दिनमु दगिलि
महित श्रद्धातपोमंगळमौन सयम समाधुल बॉलुपार , चुंडि

ते. यर्थि सदसद्विचारुलै यधिकरिंतु
रट्टि वारल पदरजं बर्थि दाल्चु
नलघुलकु सर्वपापक्षयंबु नखिल
सद्गुणावाप्तियुनु नगु जतुरुलार ! ॥ 593 ॥

व. कावुन नट्टि विप्रपाद सरोज रेणुवु लेनुनु गिरीटंबुन धरियिंतु निट्लु ब्राह्मण भजनंबुनं जेसि यवाप्त सकल गुणुंडुनु शीलधनुंडुनु कृतज्ञुंडुनु श्रद्धायुक्तुंडुनु नैन महात्मु नखिल संपदलु प्राप्तिचुं गावुन गोब्राह्मण कुलंबुनु

(ब्राह्मण) के मुख में हुत होनेवाले हविसों से तृप्त होने की तरह, अचेतन उस हुताशन के मुख में हुत किये गये हविसों से तृप्त नहीं होता। [ते.] इसलिए लोक में अग्निमुख की अपेक्षा धरा-अमरेंद्र (ब्राह्मण) का मुख परिशुद्ध [और] अत्यंत मुख्य बनकर शोभित होता है। इसलिए हे आर्यजनो ! सकल जनों को भूसुरों का अर्चन करना उचित होगा। ५९१ [व.] इसके अतिरिक्त, ५९२ [सी.] हे चतुरो ! जिस वेद में यह सारा विश्व दर्पण में प्रतिबिंबित प्रभूषों (आभरणों) के निवह (समूह) की तरह लगकर प्रकाशमान होता है, वैसे विरज [और] अव्यय होते हुए सनातन होनेवाले वेद पर जिस धरा-देवता-जन (ब्राह्मण) से अनुदिन (प्रतिदिन) लगकर, महित श्रद्धा, तप, मंगल होनेवाला मौन संयम [और] समाधियों से प्रकाशमान होते हुए इच्छापूर्वक सत् [और] असत् का विचार करने वाले बनकर, [ते.] अधिकार करते हैं, ऐसे लोगों की पदरज को इच्छा से धारण करनेवाले अलघुओं (बड़े लोगों) को, सर्वपापों का क्षय [एवं] अखिल सद्गुणों की अवाप्ति (प्राप्ति) होती हैं। ५९३ [व.] इसलिए ऐसे विप्रों के पाद रूपी सरोजों की रेणुओं को मैं भी किरीट में धारण करता हूँ। ऐसे ब्राह्मणों का भजन करने से अवाप्त सकल गुणी, शील

ननुचर समेतुंडयिन जनार्दनुंडनु नायॆडँ ब्रसन्नुलय्यॆदरु गाक यनि पलुकु-
चुन्न पृथु चक्रवर्ति गनुंगॊनि पितृदेव द्विज सत्पुरुषुलु संतुष्टांतरंगुलै
साधु वादंबुल नभिनंदिंचि यिट्लनिरि ॥ 594 ॥

कं. मनुजेंद्र ! नी कतंबुन, ननुपम घन ब्रह्मदंडहतु डत्यघ व-
र्तनुडु नगुनट्टि वेनुं, डनयमु नरकंबु वलन नधि दरिचॆन् ॥ 595 ॥

व. काबुनं "बुत्रेण लोकान् जयति" यनु वेदवचनंबु निश्चयंबवियुनं
गाक ॥ 596 ॥

चं. पुरुषवरेण्य ! हेम कशिपुंडु रमाललनेशु निंदचे
नरकमु नॊंद गोरियु गुणज्ञुडु भागवतुंडु नैन या
वर तनय प्रभावमुन वासिकि नॆक्कि विधूतपापुडै
निरयमु बॊंदडय्यॆ नति निर्मल कीर्ति दनर्चॆ गावुनन् ॥ 597 ॥

कं. अनि पलिकि वीरवर्युं, डन दगु पृथु चक्रवर्ति नयुताब्दंबुल्
दनरग जीवितुवु गा कनि तग नाशीर्वदिंचि यभिमत मॊप्पन् ॥ 598 ॥

व. वॆंडियु निट्लनिरि । देवा ! नीकु सकल लोक भर्तयगु नारायणु नंदु
निट्टि भक्ति बॊडमुटं जेसियु ब्रह्मण्य देवुंडु नुत्तमश्लोकुंडु नैन सर्वेश्वरुनि

(चरित्र) धनी, कृतज्ञ [और] श्रद्धायुक्त होनेवाले महात्मा को अखिल संपदाएँ प्राप्त होती हैं। इसलिए गो-ब्राह्मण-कुल [और] अनुचर समेत जनार्दन मेरे प्रति प्रसन्न हो जाएँ। ऐसा बोलनेवाले पृथु चक्रवर्ती को देखकर, पितृ, देव, द्विज [और] सत्पुरुषों ने संतुष्ट अंतरंग वाले बनकर, साधुवादों से अभिनंदन करके इस प्रकार कहा। ५९४ [कं.] हे मनुजेंद्र ! तुम्हारे कारण अनुपम, घन (श्रेष्ठ) ब्रह्म-दंड (ब्राह्मणों के दंडन) से हत (मारा हुआ) होकर भी अति-अघ (पाप)-वर्तन होनेवाला बेन अनय (सदा) नरक से, इच्छा के अनुसार, तर गया। ५९५ [व.] इसलिए "पुत्रेण लोकान् जयति" यह वेदवचन निश्चय (सत्य) है। इसके अतिरिक्त ५९६ [चं.] हे पुरुषवरेण्य ! हेमकशिपु ने रमाललनेश (विष्णु) की निंदा से नरक पाने की इच्छा करके भी, गुणज्ञ [और] भागवत होनेवाले उस वर (श्रेष्ठ) तनय (पुत्र) के प्रभाव से प्रसिद्ध होकर [तथा] विधूत (गँवाये गये)-पापवाला बनकर, निरय (नरक) न पाया; अति निर्मल कीर्ति से प्रकाशमान हुआ। इसलिए ५९७ [कं.] इस प्रकार कहकर वीरवर्य कहने योग्य [हे] पृथु चक्रवर्ती ! [तुम] अयुताब्द (दस हज़ार वर्ष) प्रकाशमान होते हुए, जीवित रहोगे। यों अच्छी तरह आशीर्वाद देकर अभिमत के बढ़ने पर, ५९८ [व.] फिर इस प्रकार बोले। हे देव ! तुम्हें सकल लोकों का पति होनेवाले नारायण में ऐसी भक्ति होने से [और] ब्रह्मण्य देव [तथा] उत्तम-श्लोक होनेवाले

सत्कथाजालंबु व्यक्तंबु सेयुचुन्न नीवु माकु नाथुंड वगुट जेसियु नेमु मुकुंद दासुलमैतिमि। भवदीय प्रज्ञानुशासनंबु प्रजानुरागंबु गल कारुण्य-मूर्तुलैन महात्मुलकु स्वभावंबुलु गावुन नाश्चर्यंबु गादु। दैव संज्ञितंबु-लयिन कर्मंबुल चेत विनष्ट ज्ञानुलमै परिभ्रमिचु मा दगु तमःपारंबु गंटि मे सर्वेश्वरुंडु ब्राह्मण जाति नधिष्ठिंचि क्षत्रियुलनु क्षत्रिय जाति नधिष्ठिंचि ब्राह्मणुलनु नीयुभयंबु नधिष्ठिंचि विश्वंबुनु भरियिंचु नट्टि विवृद्ध सत्वुंडु सर्वरूपुंडु महापुरुषुंडु नैन पृथुनकु नीश्वर बुद्धि जेसि येमु नमस्करितुमनु समयंबुन ॥ 599 ॥

अध्यायमु—२२

पृथु चक्रवर्ति योद्दकु सनकादुलरुगुदेंचुट

कं. विनुवीथिनुंडि मेल्लन, चनुदेंचिरि बालसूर्य संकाश तनुल्
जनविनुत ! सिद्धवर्युलु, सनकादुलु शेमुषी विचक्षणुलंतन् ॥ 600 ॥

सर्वेश्वर का कथा-जाल व्यक्त करनेवाले तुम्हारे हमारे नाथ होने के कारण हम मुकुंद [के] दास बन गये। तुम्हारा प्रज्ञानुशासन [और] प्रजानुराग कारुण्यमूर्ति वाले महात्माओं के लिए स्वभाव है; इसलिए आश्चर्य नहीं है। दैव-संज्ञित (दैव नामवाले) होनेवाले कर्मो से, विनष्टज्ञानी बनकर, परिभ्रमण करनेवाले [हमने] अपना तमःपार (अंधकार या तमोगुण का किनारा) पाया। जो सर्वेश्वर ब्राह्मण जाति पर अधिष्ठित होकर क्षत्रियों का, क्षत्रिय जाति पर अधिष्ठित होकर ब्राह्मणों का इन उभयों (दोनों) पर अधिष्ठित होकर विश्व का भरण करता है, ऐसे विवृद्ध सत्त्व वाला, सर्वरूप वाला [और] महापुरुष होनेवाले पृथु को ईश्वर की बुद्धि से (ईश्वर मानकर) हम नमस्कार करते है। ऐसा कहते समय, ५९९

अध्याय—२२

पृथु चक्रवर्ती के पास सनक आदि का आना

[कं.] तब आकाश-वीथी (मार्ग) से बालसूर्य के संकाश (समान) तनु (शरीर) वाले, जनों (प्रजा) से विनुत सिद्धवर्य, शेमुषी-विचक्षण वाले (बुद्धि से कुशल) सनक आदि धीरे-धीरे आये। ६०० [व.] ऐसे आने पर, ६०१ [कं.] अनघ आत्मा वालों के अतिथियों के रूप में आने पर

व. इट्लु चनुवेंचिन ॥ 601 ॥

कं. अनघात्मुलतिथिरूपं, बुन रा गृहमेधि प्राणमुलु नुद्गति चे
दनरिन ब्रत्युद्गति वं, दनमुल मरलं ब्रतिष्ठितमुलगु ननुचुन् ॥ 602 ॥

कं. विनवडु वचन न्यायं, बुन नुद्गतमुलगु प्राणमुल ग्रम्मर बॊं-
दनु गोरुवाडुनुं वलॆं, ननुचर ऋत्विक्सदस्युडै पृथुडंतन् ॥ 603 ॥

ते. इंद्रियेशुडु गंधादिकेष्ट गुणमु
गूर्चि युद्गमुनक्रिय गोरि चेयु
पगिदि बृथु चक्रवर्ति संभ्रममु तोड
महित भक्तिनि ब्रत्युद्गमंबु सेसॆं ॥ 604 ॥

कं. घन गौरवमुन नम्मुनि, जन चित्त वशीकृतुंडु सभ्युडु प्रियुडुन्
विनयानत कंधरुडै, जनवरुडा परमयोगि चंद्रुल नॆलमिन् ॥ 605 ॥

सी. पूनि यर्हासनासीनुल गाविंचि कर मर्थि विधिवत् प्रकारममुननु
बूजिंचि तत्पदांभोरुह क्षाळन सलिलंबु लात्म मस्तमुन दाल्चि
हाटक कलित सिंहासनासीनुलै विहिताग्नुलनु बोलि वॆलुगुचुन्न
शर्वाग्रजन्मुल सनकादुलनु जूचि यतुल श्रद्धासंयमान्वितुंडु

ते. बरम संप्रीति मतियुनै पलिकॆ राजु
गोरि यो मंगळायनुलार! पूर्व

गृहमेधि (यजमान) के प्राण-उद्गति (ऊपर उठने की विधि) के प्रकाशमान होने पर, प्रत्युद्गति (उत्तर के रूप में उठने की विधि) की वंदनाओं से फिर प्रतिष्ठित होते हैं। इस प्रकार, ६०२ [कं.] सुनाई पड़नेवाले वचनों के न्याय से उद्गत होनेवाले प्राणों को फिर पाना चाहनेवाले की तरह अनुचर, ऋत्विक् [और] सदस्य समन्वित बनकर तब पृथु ने, ६०३ [ते.] जैसे इंद्रियेश गंध आदिक इष्ट गुणों के प्रति उद्गमन-क्रिया करता है, वैसे पृथु चक्रवर्ती ने संभ्रम से महित भक्ति के साथ प्रत्युद्गमन किया। ६०४ [कं.] घन (बड़े) गौरव से उन मुनिजनों के चित्त को वशीकृत करनेवाला, सभ्य और प्रिय विनय [से] आनत (झुके हुए) कंधर (कंधा) वाला बनकर जनवर (श्रेष्ठ जन = राजा) उन परम योगिचंद्रों को प्रेम के साथ ६०५ [सी.] प्रयत्नपूर्वक अर्ह आसनों पर आसीन करके, अधिक इच्छा से विधिवत् प्रकार से पूजा करके तत् (उनके) पाद रूपी अंभोरुह (कमल) के क्षालन-सलिल (जल) को आत्म (अपने) मस्तक पर धारण करके, हाटक (सुवर्ण) से कलित (सुंदर) सिंहासनों पर आसीन होकर विहित अग्नियों की तरह प्रकाशमान होनेवाले, शर्व (शिव) के अग्र-जन्मा सनक आदि को देखकर, [ते.] अतुल (वेजोड़) श्रद्धा [और]

भवमुनँबॆद्दि मंगळप्रद सुकर्म-
मॆनु जेसिति ? मिमु जूड निपुडु गलिगॆ ॥ 606 ॥

व. अनि वॆंडियु ॥ 607 ॥

कं. भुवि नॆव्वनि यॆड विप्रुलु
भवुडुनु विष्णुडु ददीय भक्तुलुनु प्रस-
न्न वदनु लगुदुरु वानिकि
भुवि दिविनि नसाध्य कर्ममुलु लेवरयन् ॥ 608 ॥

व. अनि मरियु ननघात्मुलारा ! लोकंबुल नीक्षिचुचुं बर्यटनंबु सेयु मिम्मु सर्वदर्शनुंडयिन यात्मं गनुंगोन जालनि सर्वदृश्यंबु चंदंबुन नी लोकंबु गनुंगोनं जालकुंडु नट्टि महात्मुलरैन मी दर्शनंबुनं जेसि येनु धन्युंड नैति नवियुनुं गाक ॥ 609 ॥

चं. अरय धरित्रि नॆव्वनि गृहंबु महार्ह जनोपभोग्य वि-
स्फुरित तृणांबु भृत्य गृह भूमुल सारॆ दनर्चुनट्टि मं-
दिर पति पेद यैन जगति गडु धन्युडटंड्रु गान सु-
स्थिर मति मीरु वच्चुट नशेषशुभंबुल नेनु बॊंदॆदन् ॥ 610 ॥

व. अवियुनुं गाक ॥ 611 ॥

चं. वरमतुलार ! यॆव्वनि निवासमु दीर्घपवांतरंगुलै
परगिनयट्टि भागवत पाद जलंबुलु सोक वेनि द-

संयम से अन्वित [और] परम संप्रीत मति [वाला] बनकर, राजा ने कहा कि इच्छा करके, हे मंगलायन (शुभ मार्ग) वालो ! पूर्व भव (जन्म) में जो मंगलप्रद सुकर्म मैंने किया [उसके कारण] अब आप लोगों को देख सका। ६०६ [व.] इस तरह कहकर फिर, ६०७ [कं.] हे अनघ ! भुवि (भूमि) पर जिसके प्रति विप्र, भव (शिव), विष्णु [और] तदीय भक्त प्रसन्न वदन वाले बनते हैं, उसके लिए भुवि पर [और] दिवि (स्वर्ग में) देखने पर, कोई असाध्य कर्म नहीं हैं। ६०८ [व.] यों कहकर, फिर, अनघात्माओ ! लोकों का ईक्षण करते हुए (देखते हुए) पर्यटन करनेवाले आपको सर्वदर्शन वाले आत्मा को न देख सकनेवाले सर्वदृश्य की तरह यह लोक देख नहीं सकता। ऐसे महात्मा होनेवाले आपके दर्शन से मैं धन्य हुआ। इसके अतिरिक्त, ६०९ [चं.] सोच-विचारने पर कहते हैं कि धरित्री (भूमि) पर जिसके गृह [में] महान् अर्ह (योग्य) जनों के लिए उपभोग्य, विस्फुरित, तृण, अंबु, भृत्य, गृह, भूमियाँ बराबर प्रकाशमान होती हैं, ऐसे मंदिर-पति (यजमान) अकिंचन जगत में बहु धन्य होता है। इसलिए सुस्थिर मति से आपके आने से मैं अशेष शुभों को पाऊँगा। ६१० [व.] इसके अतिरिक्त, ६११ [चं.] हे वर (श्रेष्ठ)

रपुरुषुडु भूरि संपदल नॊप्पिरि योयिन नैन वानि मं-
दिर मुरग प्रकीर्णजगतीजमु वोलु नटंड्रु कोविदुल् ॥ 612 ॥

व. अनि पलिकि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 613 ॥

सी. परम पावनुलार ! बाल्यंबुनंदुंडि मानित श्रद्धा समन्वितुलुनु
गुण निधुल् धैर्य युक्तुलु मुमुक्षुवलुनै यधिक व्रतंबुल नाचरित्तु
रट्टि पुण्युलु भवदागमनंबु स्वागतमय्य ! सत्कृपाकलितुलार !
यनिवारित व्यसनार्णवं बयिनट्टि भूरि दुर्लंघ्य संसारमंदु

ते. मतिविहीन स्वकीय कर्ममुल जेसि
यडरि मग्नुलमै यिंद्रियार्थमुलनॆ
तिविरि पुरुषार्थमुलु गाग दॆलियु माकु
गुशलमुन्नदॆ ? लोकैककुशलुलार ! ॥ 614 ॥

व. मीर लात्मारामुलगुटं जेसि मीयंदुगुशलाकुशलरूपंबुलैन मतिवृत्तुलु संभविपवु गावुनं गुशल प्रश्नंबुपपन्नंबु गादु। नेनु गृत विश्वासुंडनै संतप्तुलयिन वारलकु सुहृत्तुलैन मिम्मु नाकु नी संसारंबु नंदु नेमिट वेगंबॆ क्षेमंबु गलुगुननि यडिगॆद नात्मवंतुलकु नात्मयु नात्मभावनुंडुनयिन यीश्वरुंडु भक्तानुग्रहंबु कॊरकु नीलोकंबुल मीवंटि सिद्ध रूपंबुन बतिचु

मतिवालो ! कोविद कहते हैं कि जिसके निवास (गृह) में तीर्थ-पदांतरंग (अनेक तीर्थस्थानों की यात्रा करनेवाले) बनकर, विलसित होनेवाले भागवतों के पाद-जल (चरण-तीर्थ) न लगें तो वह पुरुष भूरि संपदाओं के अधिक संपन्न होने पर भी, उसका मंदिर (गृह) उरगों (साँपों) से प्रकीर्ण (व्याप्त) जगतीज (वृक्ष) की तरह होता है। ६१२ [व.] इस प्रकार कहकर फिर इस तरह कहा। ६१३ [सी.] हे परमपावन ! (जो लोग) बाल्य में से मानित श्रद्धासमन्वित और गुणनिधि, धैर्ययुक्त [और] मुमुक्षु होकर अधिक व्रतों का आचरण करते हैं, ऐसे पुण्यात्मा होनेवाले भवत् (आपका) आगमन हुआ। स्वागत है। हे सत्कृपा-कलित जनो ! अनिवार्य व्यसनों का अर्णव (समुद्र) होनेवाले भूरि (बड़े) दुर्लंघ्य संसार में, [ते.] मतिविहीन (जन) स्वकीय कर्मों के कारण अधिक मग्न होकर, इंद्रियार्थों की ही इच्छा करके, पुरुषार्थ कहकर माननेवाले हमें हे लोकैककुशल ! कुशल कहाँ है ? ६१४ [व.] आपके आत्माराम होने से आप में कुशल [या] अकुशल रूप होनेवाली मति-वृत्तियों का संभव नहीं होता। इसलिए कुशलता का प्रश्न उपपन्न (जन्म) नहीं होता। मैं कृत विश्वास वाला बनकर संतप्तों के सुहृत् होनेवाले आपसे पूछ रहा हूँ कि इस संसार में मुझे किससे शीघ्र क्षेम होगा। आत्मवानों के आत्मा [और] आत्मभावन होनेवाला ईश्वर भक्तों के अनुग्रह के लिए इन लोकों

चुंडुननि पलिकिन यतनि गंभीरार्थगौरवंबुलुनु शुभकरंबुलुनु न्याय सहितंबुलुनु मिताक्षरंबुलुनु श्रोत्रप्रियंबुलुनु नयिन वचनंबुलु विनि संप्रीत चेतस्कुंडुनु मंदस्मितुंडुनै सनत्कुमारुंडिट्लनियें ॥ 615 ॥

म. धरणीशोत्तम ! सर्वभूत हित चेतस्कुंडवै धर्म सु-
स्थिर भाग्योदयशालिवै यॅसगु नीचे साधुलोकोत्त रो-
त्तर संप्रश्नमु सेयगाबडॅ महात्मा ! साधुलोकैक स-
च्चरितंबु दलपोय निट्टिद कदा चर्चिप लोकत्रयिन् ॥ 616 ॥

ते. धरणि सज्जन संगंबु दलप नुभय
सम्मतंबगु वारलु सलुपु नट्टि
सरस संभाषण प्रश्न सरणि निखिल
जनमुलकु सुख करमगु जनवरेण्य ! ॥ 617 ॥

व. अनि यभिनंदिंचि मोक्ष साधनोपदेशकामुंडैन पृथुचक्रवर्तिकि वॅंडियु निट्लनियॅं ॥ 618 ॥

सी. धरणीश ! मधुनिषूदनुडैन यट्टि नारायणुल ललित पादारविंद
वरगुण ध्यान धीपरिणतत्वंबुन सकलात्म मल विमोचनमुलैन
रतियुनु नित्य वैराग्यंबु मोदलुगा लोकोत्तरुडवैन नीकु गलवु
सम्यग्विचार शास्त्रमुलंदु जनुलकु सेमंबुनकुनु निश्चितमुलैन

में आप लोगों के जैसे सिद्ध रूप में विचरता रहता है। ऐसा कहने पर उस [राजा] के गंभीर अर्थ के गौरव से युक्त, शुभंकर, न्यायसहित, मिताक्षर [युक्त और] श्रोत्र-प्रिय वचन सुनकर संप्रीत चेतस्क [और] मंदस्मित बनकर, सनत्कुमार ने इस प्रकार कहा। ६१५ [म.] हे धरणीशोत्तम ! सर्वभूतों के प्रति हित करने का चेतस्क बनकर, धर्म के सुस्थिर भाग्योदयशाली बनकर, प्रकाशमान होनेवाले तुमसे साधु लोकोत्तरोत्तर संप्रश्न किया गया है। हे महात्मन् ! साधुलोकैक सच्चरित सोचने पर, लोकत्रय में चर्चा करने पर यही है न ! ६१६ [ते.] हे जनवरेण्य ! धरणी पर सज्जनों का संग सोचने पर उभयसम्मत होनेवालों के किए जानेवाले सरस संभाषण प्रश्नों का विधान निखिल जनों के लिए सुखकर होगा। ६१७ [व.] इस प्रकार अभिनंदन करके मोक्ष-साधनों का उपदेशकामी होनेवाले पृथु चक्रवर्ती से फिर इस प्रकार कहा। ६१८ [सी.] हे धरणीश ! मधु-निषूदन होनेवाले नारायण के ललित पाद [रूपी] अरविंदों के वर (श्रेष्ठ) गुणों के ध्यान [से प्राप्त] धी (बुद्धि) की परिणति के कारण आत्मा के सकल-मल-विमोचन वाली रति (अनुराग) [और] नित्य वैराग्य आदि लोकोत्तर होनेवाले तुममें पहले से ही हैं। हे सम्यक् विचार वाले ! हे इद्ध-चरित ! शास्त्रों में

ते. यात्म कन्यमुलगु वानियंदु वीत
रागत दलंप निर्गुण ब्रह्ममयिन
यात्मयंदुल रतियुनु ननग निविय
हेतुवुलु बुद्धि जिंतिप निद्धचरित ! ॥ 619 ॥

व. कावुन श्रद्धयु भगवद्धर्म चर्ययु दद्विशेष जिज्ञासयुनाध्यात्मिक योगनिष्ठयु योगेश्वरोपास्तियु बुण्यश्रवणंबुनु नैन नारायण कथालापंबुलु नर्थेंद्रिया-रामुलैन वारल तोडि संगतुलयंदु विरक्तियु वारल कभिमतंबुलैन यर्थकामंबुलंदु ननाकांक्षयु सर्वेश्वरुनि गुणकीर्तनामृतपानंबु बवक नितर पदार्थंबुलंदु वैराग्यंबु नादियात्मारामतं गलिगि विजन स्थलंबुलंदुल रुचि गलुगुटयुनु नहिंसयु शमादि प्रधानवृत्तियु नात्म हितानुसंधानंबुनु भगवत्कथानुस्मरणंबुनु नकाम्यंबुलयिन यम नियमंबुलुनु नितर भक्ति मार्गागर्हणंबुनु योगक्षेमार्थ क्रियाराहित्यंबुनु शीतोष्णादि द्वंद्व सहिष्णुतयु भागवत कर्णालंकार भूतंबगु भगवद्गुणाभिधानंबुनु वीनि चेत विजृंभमाणं-बयिन भक्तियोगंबुनं जेसि यनात्मयंदु नसंगंबुनु गार्यकारण रूपंबगु निर्गुण ब्रह्मंबु नंदु रतियुनु नॆप्पुडु गलुगु नप्पुडु सदाचार्यानुग्रहवंतुंडयिन पुरुषुंडु ब्रह्मनिष्ठुल तोड जॆलिमि सेयुचु नीषण त्रयंबु वर्जिंचि प्रकृति जेरक ज्ञान वैराग्य वेगंबुनं जेसि ॥ 620 ॥

जनों (प्रजा) के क्षेम के लिए निश्चित होकर आत्मा से अन्य (परे) होने वालों में वीतराग, [ते.] सोचने पर निर्गुण ब्रह्म होनेवाली आत्मा में रति, बुद्धि से चिंता करने पर, ये ही हेतु हैं। ६१९ [व.] इसलिए श्रद्धा, भगवद्धर्मचर्या, तद्विशेष जिज्ञासा, आध्यात्मिक योगनिष्ठा, योगेश्वरोपास्ति [और] पुण्य-श्रवण होनेवाले नारायण के कथालाप, अर्थेंद्रियाराम होने वालों के साथ संगति से विरक्ति, उनके लिए अभिमत होनेवाले अर्थ और काम में अनाकांक्षा, सर्वेश्वर के गुणों के कीर्तन रूपी अमृत के पान को छोड़कर इतर पदार्थों में वैराग्य पाकर, आत्मारामता प्राप्त कर, विजन स्थलों के प्रति रुचि होना, अहिंसा, शम आदि प्रधान-वृत्ति, [तथा] आत्म-हित का अनुसंधान, भगवत्कथा का अनुस्मरण, अकाम्य होनेवाले यम, नियम, इतर भक्तिमार्गों का अगर्हण (निन्दा न करना), योगक्षेमार्थ-क्रिया-राहित्य, शीत और उष्ण आदि द्वंद्वों की सहिष्णुता, भागवतों के कर्णों के अलंकारभूत भगवत् गुणाभिधान, इनसे विजृंभमाण होनेवाले भक्ति-योग से अनात्मा में असंग, कार्य-कारण-रूप होनेवाले निर्गुण, ब्रह्म में रति, जब होती है तभी सदाचार्यों से अनुग्रहवान होनेवाला पुरुष ब्रह्म-निष्ठा वालों के साथ मित्रता करते हुए, ईषण-त्रय को वर्जित करके, प्रकृति को न पाकर, ज्ञान-वैराग्य के कारण, ६२० [सी.] हे अनघ ! साक्षात्कार

सी. अनघ ! साक्षात्कारमगु भक्ति योगाग्नि गडगि जीवाधारकमुनु बंच-
भूतात्मकंबुनै पोलुचु हृद्ग्रंथिनि बूनि स्वकारण भूतमयिन
यरणि दहिंचु हुताशनु कैवडि निर्दहिंचिन निट्लु नॆऱसि दग्ध
चित्तुडै मुक्त निश्शेषात्म गुणुडु सद्धर्मुडु नैन यतंडु मिगुल

ते. नधि बाह्यंबुलयिन घटादिकमुलु
नांतरमुलैन सौख्य दुःखादिकमुलु
ननु विभेदमु लात्म भेदनमु लगुट
नय्युपाधि विनाशंबु नंदगलडु ॥ 621 ॥

व. अदि यॆट्लनिन ॥ 622 ॥

चं. पुरुषुडु निद्रवो गलल वॊंदिन यात्मसुखैक हेतुवै
परगिन राजभृत्य जनभावगुणंबुलु संप्रबोध मं-
दरयग मिथ्ययैन गति नांतर बाह्य गुण प्रभेदमुल्
परुवडि गानकुंडु जन पालन शील ननित्य खेलना ! ॥ 623 ॥

व. मरियुनु द्रष्टयैन यात्मयु दृश्यंबयिन यिंद्रियार्थंबु ननु वीनिकि नहंकारंबु
संबंध हेतुवगुटं जेसि यदि यंतःकरणंबुनंगलुगुचुंडु। जाग्रत्स्वप्नंबुल यंदी
भेदंबु गनुंगॊनुचुंडु निट्टि यंतःकरणंबु लेनिदि यगु सुषुप्ति कालंबुनं
बुरुषुंडु जलदर्पणादि निमित्ताभावंबगु नप्पुडु बिंब प्रतिबिंब भेदंबु

होनेवाली भक्तियोगाग्नि में प्रयत्न करके जीवाधार [और] पंचभूतात्मक होकर, प्रत्यक्ष होनेवाली हृदय-ग्रन्थि को प्रयत्न करके, स्वकारणभूत होने वाली अरणि (एक प्रकार की लकड़ी) को दहन करनेवाले हुताशन (अग्नि) की तरह दहन करने पर, इस प्रकार व्याप्त होकर, दग्धचित्त वाला बनकर, मुक्त निश्शेष-आत्म-गुणी और सद्धर्म वाला होने से, वह इच्छा से, [ते.] अधिक बाह्य होनेवाले घट (शरीर) आदिक, आंतर होनेवाले सौख्य [और] दुःख आदिक विभेदों के आत्मभेदक होने से उपाधि (आधार) का विनाश पा सकता है। ६२१ [व.] वह कैसे तो, ६२२ [चं.] हे जनपालन-शीलवाले ! नित्यखेलन करनेवाले ! पुरुष के सो जाने पर स्वप्नों में आत्मा (स्व)- सुख का हेतु बनकर प्रवर्तमान होनेवाले राजा, भृत्य [और] जन के भाव और गुण संप्रबोध (जाग्रदवस्था) में देखने पर मिथ्या होने के समान आंतर [एव] बाह्य गुणों के प्रभेद क्रम से नहीं दिखाई पड़ते। ६२३ [व.] और द्रष्टा होनेवाली आत्मा [और] दृश्य होनेवाला इंद्रियार्थ नामक इनका संबंध हेतु अहंकार है। वह अंतःकरण में होनेवाले जाग्रत् [और] स्वप्न (अवस्थाओं) में इस भेद को देखती रहती है। ऐसा अतःकरण के अभाव वाले सुषुप्ति काल में पुरुष जल [और] दर्पण आदि निमित्तों के अभाव में बिंब-

गनुंगॊननि चंवंबुन दृश्यभेदंबु गनुंगॊनकुंडु गावुन नंतःकरण विलयंबु नॊंदिन वाह्यांतर भेदंबु गनकुट्ट निश्चयंबनि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥624॥

सी. भुवि विषयाकृष्ट भूतलंबु लयिन यिंद्रियमुल चेतनु दिबिरि मनमु
दग विषयासक्ति दगिलि यांतरमैन महित विचार सामर्थ्यमॆल्ल
शरकुशादिस्तंबजालंबु ह्रदतोयमुलु ग्रोलुगति ग्रमंबुन हरिंचु
नी रीति नंतर्विचार सामर्थ्यंबु नपहृतंबयिन बूर्वापरानु-

तॆ. मेय संधानरूप संस्मृति नशिंचु
नदि नशिंचिन विज्ञान मंत वॊलगु
नट्टि विज्ञान नाशंबु नार्य जनुलु
स्वात्मकदि सकलापह्नवंबटंडु ॥ 625 ॥

व. अदियुनुंगाक "यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" यनु वेद वचनंबुनं जेसि विषयंबुलकुं ब्रियतमत्वंबैन यात्मोपाधिकंबु नॊंदि यात्मापह्नवंबुनं बाटिल्ल स्वार्थनाशंबॆद्दि गलुगु दानि कंटॆ लोकंबुन नधिकंबैन स्वार्थ नाशंबुलेददि यॆट्लनिन सर्वार्थनाशंबुनकु स्थैर्यंबु नॊंदिचु नट्टियर्थ कामाभिध्यानंबुनं दद्धेतुकंबैन स्वार्थनाशंबुनं बरोक्षापरोक्ष रूप ज्ञानंबुनं जेसि

प्रतिबिंब का भेद न देखने की तरह, दृश्य भेद को नहीं देख सकता। इसलिए अंतःकरण का विलय होने पर वाह्य [और] अंतर का भेद न देखना निश्चय है। इस प्रकार कहकर फिर यों बोले। ६२४ [सी.] भुवि पर, विषयों से आकृष्टभूत होनेवाले इंद्रियों से प्रयत्न करके, मन अच्छी तरह विषयासक्ति में लगकर, आंतर होनेवाले महित विचार की सारी सामर्थ्य को जैसे शर-कुश (कास) आदि का स्तंभ-जाल (-समूह) ह्रद (सरोवर) के तोयों (जलों) को पी लेता है, वैसे क्रम से हर लेता है। [ते.] इस रीति (पद्धति) से अंतर्विचार की सामर्थ्य अपहृत होने पर पूर्वापर के अनुमेय के संधान के रूप की संस्मृति नष्ट हो जाती है। उसका नाश होने पर, सारा विज्ञान मिट जाता है। आर्यजन कहते हैं कि इस प्रकार विज्ञान का नाश स्वात्मा के लिए वह सकल (सब) अपह्नव (असत्य) है। ६२५ [व.] इसके अतिरिक्त "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" इस वेदवचन के कारण विषयों को प्रियतमत्व होकर, आत्मोपाधि को पाकर, आत्मापह्नव में होनेवाला जो स्वार्थनाश होता है, उससे बढ़कर लोक में अधिक स्वार्थनाश नहीं है। वह कैसा कहें तो सर्वार्थनाश को स्थैर्य प्राप्त करानेवाले अर्थ-काम के अभिध्यान में, उसका हेतु होनेवाले स्वार्थनाश से परोक्ष [और] अपरोक्ष रूपी ज्ञान का नाश होगा। इसलिए आत्मा के अपह्नव से बढ़कर अधिकतर होनेवाला सर्वार्थ

नशिंचु गावुन नात्मापह्ननवंबुन कंटॆ नधिकतरंबैन सर्वार्थनाशंबुलेदनि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 626 ॥

सी. अनघ ! यी संसार मतिशयंबुन दरियिंपंगमदि निश्चयिंचुवाडु
गॆकॊनि धर्मार्थ काम मोक्षमुलकु नति विघातुकमॆद्दि ? यट्टि दानि
वलन संगमु सेय वलवदु धर्मादुलंदु द्रिवर्गंबु नंतकोग्र
भयकारि यगुटनु बरम मोक्षंबॆ मुख्यार्थमै विलसिल्लु नंड्रु बुधुलु

ते. भुवि गुण व्यतिकरमुन बुट्टि नट्टि
यब्जजातादुलकु नस्मदादुलकुनु
गाल विध्वंसिताखिल क्रममु गल्गु
गलुग दॆन्नडु सेमंबु गान विनुमु ॥ 627 ॥

व. कावुन मोक्षंबॆ परम पुरुषार्थंबनि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ। नरेंद्रा ! देहेंद्रिय प्राण बुद्ध्यहंकार परिवृतंबुलयिन यी स्थावर जंगमंबुल हृदयंबुलंदु व्यापकुंडु प्रत्यक्ष भूतुंड प्रत्यग्रूपुंडु भगवंतुंडु नयिन यीश्वरुं डंतर्यामि रूपंबुनं प्रकाशिंचुचुंड्रु न वि नारायणुनि सद्रूपंबुगावॆलियुमनि वॆंडियु मिट्लनियॆ ॥ 628 ॥

उ. भूवर ! ये महापुरुष भूषणुनंबुल नी समस्त वि-
श्वावळि लीलमै सदसदात्मक भावमु नॊंदि भूरि मा-

का नाश नहीं है। फिर इस प्रकार कहा। ६२६ [सी.] हे अनघ ! बुध (पंडित) कहते है कि अतिशय से इस संसार को तरने के लिए मन में जो [व्यक्ति] निश्चय करता है, उसे प्रयत्न करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए अतिघातक होनेवाले [काम] से संगम नहीं करना चाहिए। धर्म आदि में त्रिवर्ग (काम) अंतक (यम) के समान उग्र-भयकारी होता है, इसलिए बुध कहते हैं कि परम मोक्ष ही मुख्य अर्थ (प्रयोजन) होकर विलसित होता है। [ते.] भुवि पर गुण के व्यतिकर (सम्मेलन) के कारण हुए अब्जजात (ब्रह्मा) आदियों को [और] अस्मदादियों (हमारे जैसे लोगों) को काल से विध्वंसित अखिल का क्रम होता है। कभी [उनका] क्षेम नहीं होता। इसलिए सुनो। ६२७ [व.] इसलिए यह कहकर कि मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है, फिर इस प्रकार कहा— हे नरेन्द्र ! देह-इंद्रिय, प्राण, बुद्धि [और] अहंकार [से] परिवृत इन स्थावर [और] जंगमों के हृदयों में व्यापक, प्रत्यक्षभूत, प्रत्यक् रूप वाला [तथा] भगवान ईश्वर अंतर्यामी के रूप में प्रकाशमान होता रहता है। जान लो कि वह नारायण का सद्रूप है। इस प्रकार कहकर फिर इस तरह कहा। ६२८ [उ.] हे भूवर ! जिस महापुरुष-भूषण में यह समस्त विश्वावलि लीला से सत् [एवं] असत् आत्म-भाव को पाकर, भूरि (बड़ी) माया के विभवों

ग्रा विभवंबुलं दगि समग्र विवेक निरोधिस्रग्घना-
शी विष बुद्धि दोचुचु विशेष गतिन् वॆलुगॊंदु नॆप्पुडुन् ॥ 629 ॥

चं. सुमहित नित्यमुक्त परिशुद्ध विबुद्ध सुतत्त्वुडै युरु-
क्रमु डभिभूत सत्प्रकृति कर्म कळंकुडु नैनयट्टि यु-
त्तम चरितुं गृपाकरु नुदात्त गुणोन्नतु नीश्वरेशु जि-
त्तमुन दलंपुमय्य ! जनता परिरक्षण ! दुष्टशिक्षणा ! ॥ 630 ॥

सी. वसुमतीनाथ ! यॆव्वनि पादपद्म पलाश विलास सल्ललित भक्ति
संस्मरणंबु चे सज्जन प्रकरंबु घनकर्मसंचय ग्रथितमगु न
हंकारमनु हृदय ग्रंथि जॆरुतुरु विवरिंप निट्लु निर्विषय मतुलु
महि निरुद्धेंद्रिय मार्गुलु नैनट्टि यतुलकु जेरंग नलवि गानि

ते. यट्टि परमेशु गेशवु नादिपुरुषु
वासुदेवुनि भुवन पावन चरित्रु
नर्थि शरणंबुगा दत्पदांबुजमुलु
भक्ति सेविंपु गुणसांद्र ! पार्थिवेंद्र ! ॥ 631 ॥

म. अरिषड्वर्ग महोग्र नक्रनिकर व्याकीर्ण संसार सा-
गर मब्जोदर कीर्तनातरणि सांगत्यंबुनं बासि ता

में लगकर, समग्र विवेक के विरोधी स्रग्घन-आशीविष-बुद्धि से सूझते हुए विशेष गति से सदा प्रकाशमान होती रहती है, ६२९ [चं.] हे जनता की परिरक्षा करनेवाले ! और दुष्टों को दंड देनेवाले ! सुमहित नित्य-मुक्त, परिशुद्ध, विबुद्ध सुतत्त्ववाला बनकर, उरुक्रम वाला, सत् प्रकृति कर्म-कलंक अभिभूत होनेवाले, उत्तम चरित वाला, कृपाकर, उदात्त गुणों से उन्नत [एवं] ईश्वरेश है, उसको चित्त में स्मरण करो। ६३० [सी.] हे वसुमतिनाथ ! हे गुणसांद्र ! पार्थिवेन्द्र ! जिसके पाद रूपी पद्म-पलाश (पद्म-पत्र)-विलास [से]-सल्ललित भक्ति [युक्त] संस्मरण से सज्जन-प्रकर घन कर्म के संचय से ग्रथित होनेवाली अहंकार रूपी हृदय ग्रन्थि को नष्ट कर देते हैं; समझाने पर इस प्रकार निर्विषय मतिवालों का मही (भूमि) पर निरुद्ध इंद्रियमार्गी होनेवाले यतियों के पास पहुँचना अशक्य होता है, [ते.] ऐसे परमेश, केशव, आदिपुरुष, वासुदेव, भुवन-पावन चरित्र वाले की शरण पाकर तत् (उसके) पाद रूपी अंबुजों की, इच्छा करके, भक्ति से सेवा करो। ६३१ [म.] अरिषड्वर्ग [रूपी] महोग्र नक्रों (मगरों) के निकर (समूह) से व्याकीर्ण (व्याप्त) संसार [रूपी] सागर को अब्जोदर (विष्णु) के कीर्तन [रूपी] तरणि (नाव) के सांगत्य को छोड़कर, विरल सुखावह, प्रकट योग आदि क्रिया की युक्ति से तरने की मन में इच्छा करनेवालों के लिए [वह भवसागर] दुर्दांत होगा।

मरुदारस्न सुखावह प्रकट योगादि क्रियायुक्ति चे
दरियिंपन् मदिगोरु वारलकु दुर्दांतबगुं गावुनन् ॥ 632 ॥

म. धरणीशोत्तम! नीवु केवलसमुद्यद्भक्ति धीयुक्तिमै
वर गोविंद पदारविंदयुग भास्वन्नाव संधिचि दु-
स्तर भूरि व्यसनाकरोल्लसित दुर्दांतोग्र गंभीर सं-
सरणांभोधि दरिपवथ्य! परमोत्साहंबु दीपिपगन् ॥ 633 ॥

कं. अनि यी गति पंकरुहा-
सन सुतुडुनु ब्रह्मबोधशालियु नगु ना
घन योगि वल्लभुनि चे-
तनु वॅलियग बडिन ब्रह्मतत्त्वुंडगुचुन् ॥ 634 ॥

कं. जनपति मुनि बॊगडि मुदं-
बुन निट्लनु पूर्व कालमुन दीन जना
वनुडैन योश्वरुनिचे-
तनु नेनु ननु ग्रहिप दगिति मुनींद्रा! ॥ 635 ॥

कं. विनुडट्टि यनुग्रहसा, धनमुनकै मोरलिपुडु दग निच्चटिकि
जनुदेंचितिरि दयाळुरु, ननघुलु भगवत्तमुलुनु नगु मी चेतन् ॥ 636 ॥

सी. निरतंबु नायंबु निष्पादितमुलगु देहसमेत मदीय राज्य
सर्वसंपदलुनु सद्द्विजदत्तमुल् गावुन प्राणकांता विभूति

इसलिए ६३२ [म.] हे धरणीशोत्तम! तुम केवल समुद्यत् भक्ति [और] धी (बुद्धि) की युक्ति से वर (श्रेष्ठ) गोविंद के पद [रूपी] अरविंद-युग (जोड़ा) [रूपी] भास्वत् (प्रकाश) [रूपी] नाव का संधान करके दुस्तर भूरि व्यसनाकर [से] उल्लसित दुर्दांत उग्र गंभीर संसार [रूपी] अंभोधि [को] परम उत्साहदीप्त होने पर, तरो (पार करो)। ६३३ [कं.] इस प्रकार पंकरुहासन का सुत [और] ब्रह्मबोधशाली होनेवाले घन (श्रेष्ठ) योगिवल्लभ द्वारा जाने हुए ब्रह्मतत्त्व वाला होते हुए, ६३४ [कं.] जनपति (राजा) ने मुनि की प्रशंसा करके मुद (मोद) से इस प्रकार कहा, "हे मुनींद्र! पूर्वकाल में दीन-जनावन (दीनजनरक्षक) होनेवाले ईश्वर से मैं अनुगृहीत बन सका। ६३५ [कं.] सुनिए; ऐसे अनुग्रह के साधन के लिए आप लोग अब अच्छी तरह यहाँ पधारे, दयालु, अनघ, भगवत्तम, आपसे, ६३६ [सी.] हे अतुल गुणसांद्र! योगिकुलाब्धि-चन्द्र! निरत (सदा) मुझमें निष्पादित होनेवाले देह समेत मदीय राज्य, सर्व संपदाएँ, सद्द्विजों से दत्त [हैं], इसलिए प्राण, कांता (पत्नी), विभूति (संपदा), मंदिर, सुत, राज्य, मही, वल, कोश, परिच्छद सब,

मंदिर सुत राज्य महिबलकोशपरिच्छदंबुल नॆल्ल धृति दलंप
राजुकु भृत्युंडु राजकीयमुलगु तांबूल मुख पदार्थमुल जेसि
ते. रमण संतर्पणोपचारमुलुनडपु
गतिनि वारलकवि निवेदितमु लय्यॆ
गान मी कुपचार मे गति नॊनर्तु
नतुल गुण सांद्रुलार ! महात्मुलार ! ॥ 637 ॥
व. अदि यॆट्लु ब्राह्मणाधीनं बंटिरेनि सेनाधिपत्य राज्यदंडनेतृत्व सर्वलोकाधिपत्यंबुलु वेदशास्त्रवेदियैन ब्राह्मणुनक कानि यितरुलकु योग्यंबुलु गावु कावुन ब्राह्मणुलकु भोजन वसन दानंबुलु स्वकीयंबुलै युंडु। क्षत्रियादुलकु ब्राह्मणानुग्रहंबुन नन्नमात्रंबु दक्क दक्किन वस्तु स्वातंत्र्यंबु लेदु गावुन मीकु गुरुदक्षिण येमि समर्पिंचु वाड नवियुनुं गाक स्वातंत्र्यंबु गलिगिन निट्टि यध्यात्म विचारुलु वेदांतवेदुलु नैन भगवद्भक्ति नुपदेशिंचॆडु मी वंटि पुण्यात्मुलकुं बरिहासास्पदुंडु दक्क दक्किन वाडॆव्वडंजलि मात्रंबु दक्क दक्किन प्रत्युपकारंबु सेयंदलंचु नदि गावुन दयाळुवुलैन मीरलु स्वकृतोपचारंबुलं जेसि संतुष्टांतरंगुलगुडु गाकनि पलुकुचुन्न यादि राजयिन पृथु चक्रवर्ति चेत बूजितुलै यात्म योग

धृति से सोचने पर, राजा को भृत्य के राजकीय (सरकारी) होनेवाले तांबूल-मुख (-आदि) पदार्थों के कारण रमण (आनंद), [ते.] संतर्पण (तृप्ति) उपचार करने की तरह, वे उनको निवेदित हो गये। इसलिए आपका उपचार (सेवा) किस प्रकार कर सकता हूँ ? ६३७ [व.] अगर कहते हैं कि वह ब्राह्मणों के अधीन कैसे है ? तो सेना का आधिपत्य, राज्य, दण्ड, नेतृत्व, सर्वलोकों के आधिपत्य वेद शास्त्रवेदी होनेवाले ब्राह्मण के लिए ही हैं; लेकिन दूसरों के लिए योग्य नहीं हैं। इसलिए ब्राह्मणों के लिए भोजन [और] वसन (वस्त्र) [के] दान स्वकीय होकर रहते हैं। क्षत्रिय आदि के लिए ब्राह्मण के अनुग्रह से केवल अन्न को छोड़कर शेष वस्तुओं पर स्वातंत्र्य (अधिकार) नहीं है। इसलिए आपको गुरुदक्षिणा क्या समर्पित कर सकता हूँ ? इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्य (अधिकार) से युक्त होनेवाले ऐसे अध्यात्म विचार करनेवाले [और] वेदांतवेदी होनेवाले, भगवद्भक्ति का उपदेश करनेवाले आपके जैसे पुण्यात्माओं के लिए परिहासास्पद बननेवाले व्यक्ति को छोड़कर, अन्य कौन अंजलि मात्र (प्रणाम) को छोड़ और किस प्रकार का प्रत्युपकार करना चाहेगा ? इसलिए दयालु होनेवाले आप स्वकृत उपकारों के कारण संतुष्ट अंतरगवाले बनें। इस प्रकार बोलनेवाले आदिराजा पृथु चक्रवर्ती से पूजित होकर, आत्मयोग [में] निष्ठ होनेवाले सनक आदि उसके स्वभाव की प्रशंसा

निष्ठलैन सनकादुलतनि स्वभावंबु ब्रशंसिंचुचु समस्त जनंबुलु जूचुचुंड नाकाश गमनंबुन जनिरय्यवसरंबुन ॥ 638 ॥

पृथु चक्रवर्ति ज्ञानवैराग्यवंतुंडगुचु मुक्ति नोंदुट

आ. विनु महात्म ! मुख्युडन नोप्पु वैन्युडे-
काग्र चित्तु डगुचु नात्मनिष्ठु-
डैन यट्टि तनु नवाप्तकामुनि गाग
बुद्धिलोन दलचे भूवरुंडु ॥ 639 ॥

व. अंत ॥ 640 ॥

सी. कर्मंबुलनु यथा काल देशोचित बल वित्तमुलु गाग वरगु धर्म-
मुलनु ब्रह्मार्पण बुद्धिनि जेसि निरासक्तुडगुचु समाहितुंडु
प्रकृति कंटेनु दग्गु वरमैन यात्मनु गर्मसंचय साक्षि गाग बुद्धि
नथि दलंपुचु नाचरिपुचु नट्ल मेरसि साम्राज्य लक्ष्मीसमेत

ते. मंदिरोद्यानवन भूमुलंदु राज्य-
गरिम वर्तिपगा नहंकार रहितु-
डगुचु दमचित्तमुन निंद्रियार्थमुलनु
दगुलकय युंडे नातंडु तरणि पगिदि ॥ 641 ॥

व. इट्लध्यात्म योगनिष्ठुंडै कर्मंबुल नाचरिपुचु नर्चियनु भार्ययंदु

करते हुए, समस्त जनों के देखते रहने पर, आकाश-गमन से चले गये। उस अवसर पर, ६३८

पृथु चक्रवर्ती का ज्ञान-वैराग्यवान होकर मुक्ति पाना

[आ.] सुनो, महात्मा ! मुख्य कहने योग्य वैन्य (पृथु) एकाग्र-चित्त वाला होते हुए, आत्मनिष्ठ होनेवाले भूवर ने अपने को बुद्धि (मन) में अवाप्त काम (प्राप्त इच्छा वाला) समझा। ६३९ [व.] तब ६४० [सी.] कर्मों को यथा काल [और] देश के उचित बल [तथा] वित्त (धन) होने पर विस्तृत धर्मों को ब्रह्मार्पण की बुद्धि से करके, निरासक्त होते हुए, समाहित, प्रकृति से अलग अपने को पर (अन्य) होनेवाली आत्मा को, कर्म-संचय के साक्षी के रूप में बुद्धि (मन) में, इच्छापूर्वक सोचते हुए [और] आचरण करते हुए, विलसित होकर, [ते.] साम्राज्य-लक्ष्मी समेत मंदिरों [और] उद्यान वन-भूमियों में राज्य की गरिमा के प्रवर्तमान होने पर, अहंकार-रहित होते हुए, वह तरणि (सूरज) की तरह अपने चित्त में इंद्रियार्थों से लगा (आसक्त) नहीं रहता था। ६४१ [व.] इस प्रकार अध्यात्मयोगनिष्ठ होकर, कर्मों का आचरण करते हुए, अर्चि

विजिताश्वुंडु धूम्रकेशुंडु हर्यश्वुंडु द्रविणुंडु वृकुंडु ननु नात्मसमुलैन पुत्रुल नेवुरं गनियें नंत ॥ 642 ॥

कं. जनविनुत! भूमि वलननु, धनमुल मर्याद गॉनुचु दान निमित्तं-
बुन ग्रम्मर दानिच्चुचु,दिन नायकु बोलि वसुमतीपति यॉप्पॅन् ॥ 643 ॥

व. अतंडु मरियु नग्निचंदंबुनं देजो दुर्धर्षुंडुनु महेंद्रुनि पगिदि दुर्जयुंडुनु धरणि करणि सतत क्षमायुक्तुंडुनु स्वर्गंबुनुं बोलॅ नभीष्टदुंडुनु पर्जन्युनि भाति गामित प्रवर्षणुंडुनु समुद्रु रीति गांभीर्य युक्तुंडुनु मेरुवु पोलिकि सत्त्ववंतुंडुनु धर्मराजु कैवडि ननुशासकुंडुनु महेंद्रुनि विधंबुन नैश्वर्य-वंतुंडुनु गुबेरुनि माड्कि धनवंतुंडुनु वरुणुनि सरणि गुप्तार्थुंडुनु सर्वात्म-कुंडगु वायुवु चॅलुवुन बलौजस्तेजोयुक्तुंडुनु रुद्रुनि पगिदि नसह्य तेजुंडुनु गंदर्पुनि यनुवुन सौंदर्यवंतुंडुनु मृगराजु नोज नधिक शौर्योपेतुंडुनु मनुवु ननुवुन वात्सल्य युक्तुंडुनु नजुनि चदंबुनं बभुत्व समेतुंडुनु बृहस्पति गरिम ब्रह्मवादियु सर्वेश्वरुनि जाड जितेंद्रियुंडुनु नै विष्वक्सेनानुवर्तनुलैन गोगुरु विप्र जनंबुलंदु भक्ति गलिगि लज्जा विनयशीलंबुलंदुनु परोपकारंबु नंदुनु निरुपमुंड यिव्विधंबुन सर्वलोकपालक पृथग्विधगुणंबुल नन्निटिनि दानॉक्करुंड धरियिंचि ॥ 644 ॥

नामक पत्नी में विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यश्व, द्रविण और वृक नामक आत्मसम पाँच पुत्रों को जन्म दिया। तब, ६४२ [कं.] हे जनविनुत ! भूमि से धन को, मर्यादा (सीमा) से लेते हुए, उसके कारण, फिर उसे [वापस] देते हुए, दिननायक (सूरज) की तरह [वह] वसुमती-पति (राजा) शोभायमान हुआ। ६४३ [व.] वह फिर अग्नि की तरह तेजो-दुर्धर्ष (तेजस् से तिरस्कृत न होनेवाला) और महेंद्र की तरह दुर्जय और धरणि की तरह सतत क्षमायुक्त और स्वर्ग की तरह अभीष्टद और पर्जन्य की तरह कामित-प्रवर्षण (इच्छा के अनुसार वर्षा) करनेवाला और समुद्र की तरह गांभीर्य-युक्त और मेरु की तरह सत्त्ववान और धर्मराज की तरह अनुशासक और महेंद्र की तरह ऐश्वर्यवान और कुबेर की तरह धनवान और वरुण की तरह गुप्तार्थ (छिपा हुआ धन) वाला और सर्वात्मा होने वाले वायु की तरह बल ओज [और] तेजस् से युक्त और रुद्र की तरह असह्य तेजस्वी और कंदर्प की तरह सौंदर्यवान और मृगराज की तरह अधिक शौर्योपेत और मनु की तरह वात्सल्ययुक्त और अज (ब्रह्मा) की तरह प्रभुत्व-समेत और बृहस्पति की तरह ब्रह्मवादी और सर्वेश्वर की तरह जितेंद्रिय होकर विष्वक्सेन के अनुवर्ती गो, गुरु [और] विप्रजनों के प्रति भक्ति रखकर लज्जा, विनय, शील में, परोपकार में निरुपम (अनुपम) होकर इस प्रकार सर्वलोकपालकों के पृथक्-विध सब गुणों को वह अकेले

कं. अनघात्मक ! लोकत्रय, मुन सज्जन कर्ण रंध्रमुल विनबडु ना
विनुत यशोमहनीयुडु, जन विनुतुं डगुनु रामचंद्रुनि माड्किन् ॥ 645 ॥

चं. सरस वचोर्थ सत्पुरुष संघ समंचित गीयमान सु-
स्थिर वर कीर्ति पूरमु सुधीजन कर्णमुलंदु निंचि ता
निरुपम सौम्यभाषणमनीषल तोड प्रजानुरक्तुडै
धरणिनि राजनामसुन दा दगु रेंडव चंद्रुडो यनन् ॥ 646 ॥

अध्यायमु——२३

व. मरियु नम्महात्मुंडु विज्ञानियु वर्धिताशेषस्वानुसर्गुंडुनु प्रजापालकुंडुनु स्थावर जंगमवृत्तिदायकुंडुनु सत्पुरुष धर्म वर्तनुंडुनु निष्पादितेश्वरादेशि-कुंडुनु नैन पृथुंडोक्कनाडु दनवार्धकंबु नीक्षिंचि निजात्मज नात्मजुलयंदु निलिपि प्रजलु चिंतातुर चित्तुलगुचुंड निजभार्यासमेतुंडै यप्रतिहत नियमंबुन वैखानस सम्मतंबैन युग्रतपंबु नंदु बूर्वंबुन दिग्विजय प्रवृत्तुंडगु चंदंबुनं ब्रवृत्तुंडै तपोवनंबुनकुं जनि यंदु ॥ 647 ॥

धारण करके, ६४४ [कं.] हे अनघात्मक ! लोकत्रय में सज्जनों के कर्णरंध्रों में सुनाई पड़नेवाला वह विनुत-यशो-महनीय रामचंद्र की तरह जनों से विनुत होगा। ६४५ [चं.] सरस वच (वाक्), अर्थ, सत्पुरुष संघ [से] समंचित (अच्छी तरह) गीयमान, सुस्थिर [और] वर (श्रेष्ठ)-कीर्तिपूर [का] सुधीजनों के कर्णों में भरकर, वह स्वयं निरुपम सौम्य भाषण [एवं] मनीषी (बुद्धि) से प्रजा के लिए अनुरक्त होकर, धरणि पर राजा [के] नाम से, मानों दूसरा चंद्र हो, वह योग्य होगा। ६४६

अध्याय——२३

[व.] और वह महात्मा विज्ञानी और वर्धित अशेष स्वानुसर्ग प्रजापालक और स्थावर-जंगम वृत्तिदायक और सत्पुरुषधर्मवर्तन वाला और निष्पादित ईश्वरादेशिक (ईश्वर के आदेश को निष्पादित करने वाला) होनेवाला पृथु एक दिन अपना वार्धक्य देखकर निज आत्मजा-आत्मजों में [बुद्धि को] स्थिर करके, प्रजा की चिंता से आतुर चित्तवाले होते समय, निज पत्नी के साथ अप्रतिहत नियम से वैखानसों से सम्मत उग्र तप में पूर्व [काल] में जैसे दिग्विजय में प्रवृत्त हुआ, उसी तरह प्रवृत्त होकर, तपोवन में जाकर, उसमें ६४७ [मत्त.]* नृपसत्तम कंदमूल-

* 'मत्तकोकिलमु' छंद के लिए [मत्त] ऐसा संकेत दिया जा रहा है।

मत्त.ॐ कंदमूल फलाशियै वहुकाल मुग्रतपःपरि-
स्पंदुडै यट मीदटं दृण पर्ण भक्षण सेसि या
चंद मेदि जलाशियै नृपसत्तमुंडदि मामि ता
मंद गंधवहाशि यय्यॆ ग्रमंबुलन् दृढचित्तुडै ॥ 648 ॥

व. इट्लु वर्तिचुचु ॥ 649 ॥

सी. मॆंडुगा मिटमिट मंडु वेसवियंदु दप्तपंचाग्निमध्यमुन निलिचि
मानक जडि गॊन्न वानकालंबुन वॆगोक बेयक बयट निलिचि
जनुलु हू !हू ! यनु चलि वेळ गुत्तुक बंटितोयमुल लोपल वसिंचि
शिशिरंबु साल नल्विशल बर्विनवेळ वॆलय भूशयनुडै विश्रमिंचि

ते. महित नियति दितिक्षा समन्वितुंडु
नियत परिभाषणुडु जितानिलुडु दांतु
डिद्धमति यीश्वरार्पित बुद्धि यनघु
डूर्ध्व रेतस्कुडुनु नै क्रमोचितमुग ॥ 650 ॥

व. अतिघोरंबयिन तपं बाचरिंचॆ निव्विधंबुनंग्रमानुसिद्धंबयिन तपंबुन विध्वस्ताशेष कर्ममलाशयुंडुनु प्राणायामंबुलचे जितारि षड्वर्गुडुनु छिन्न-बंधनुंडुनु नै पुरुष श्रेष्ठुंडुन पृथुचक्रवर्ति भगवंतुंडैन सनत्कुमारुं डॆरिंगिचिन

फल आशि (खानेवाला) होकर बहुकाल उग्र तपःपरिस्पंद बनकर, इसके बाद तृण [और] पर्ण [का] भक्षण करके, उस विधान को छोड़कर जल को लेकर, उसे छोड़कर क्रम से दृढ़चित्त वाला बनकर, मंदगंधवहाशी (मंद मारुत खानेवाला) बन गया। ६४८ [व.] इस प्रकार रहते समय, ६४९ [सी.] अधिक जलनेवाले ग्रीष्म में तप्त पाँच अग्नियों के मध्य खड़े होकर, जोर से पानी बरसानेवाली वर्षाऋतु में, ऊपर (शरीर पर) वस्त्र के बिना बाहर खड़े होकर, लोगों के अधिक शीतकाल में हूहू करते (कंपित होते) समय कंठ तक आनेवाले (गहरे) जल में निवास कर, शिशिर की अधिकता से चारों दिशाओं में व्याप्त होने पर, भूशयनवाला होकर विश्राम कर, [ते.] महित नियति से तितिक्षा-समन्वित, नियत परिभाषण करनेवाला, जित अनिल (उच्छ्वास और निःश्वास को रोकनेवाला), दांत (तप के क्लेश को सहनेवाला), इद्धमति (परिशुद्ध बुद्धि वाला), ईश्वर की आराधना की इच्छा वाला, अनघ, ऊर्ध्वरेतस्क बनकर, क्रमोचित (उचित क्रम) से, ६५० [व.] [पृथु ने] अति घोर तप का आचरण किया। इस विधि (तरह) से क्रम से अनुसिद्ध तप में विध्वस्त बने अशेष कर्म मलाशय वाला, प्राणायामों से जित-अरिषड्वर्ग वाला और छिन्नबंधन वाला बनकर पुरुषश्रेष्ठ पृथु चक्रवर्ती ने भगवान सनत्कुमार के बताये योगमार्ग से सर्वेश्वर का भजन किया। इस प्रकार भगवद्धर्मपर वाले और साधु

योगमार्गंबुन सर्वेश्वर भजनंबु गाविचें निट्लु भगवद्धर्मपरुंडुनु साधुवर्तनुं-डुनु श्रद्धा समन्वितुंडुनु नैन पृथुनकु नारायणुनंदु भक्ति यनन्यविषयंबै प्रवृद्धंबय्यें निव्विधंबुन ॥ 651 ॥

कं. नरलोकोत्तर ! भगव, त्परिचर्याराधनमुल बरि शुद्धांतः-
करणुंडगु नापृथुनकु, सरसिरुहोदरु कथानुसंस्मरणमुनन् ॥ 652 ॥

कं. परिपूर्णंबगु भक्तिनि, गर मनिशमु संशयात्मकंबै चालन्
वड्लिन हृदय ग्रंथिनि निरसिंचु विरक्तियुत मनीष जनिर्चेन् ॥ 653 ॥

व. दानं जेसि यतंडु संछिन्न देहात्म ज्ञानुंडु नधिगतात्म स्वरूपुंडुनै गदाग्रजुं-डयिन श्रीकृष्णुनि कथासक्ति नोंदि समस्त योगसिद्धुलंदु निस्पृहुंडगुटनु हृदयग्रंथि विच्छेदकंबयिन ज्ञान योगंबुनु विडिचि यात्मयंदु नात्मयोगंबु गाविंचि ब्रह्मभूतुंडयि निजकळेबरंबु विडुव निश्चयिंचि ॥ 654 ॥

सी. कोरि मडमलचे गुदपीडनमु सेसि पूनि मुक्तासनासीनुडगुचु
दनरु मूलाधारमुन नुंडि वायुवु नोय्यन नॅगयिंचि योनर नाभि
कलितंबु गाविंचि क्रममुन हृद्वस्स कंठ शिरः कोष्ठकमुल जेर्चि
कॅकोनि मूर्ध भागमुनकु नॅगयिंचि प्राणमुल् विडिचि या पवनु बवनु

ते. नंदु नाकाश माकाश मंदु देज, मंदु देजंबु नुदकंबु नंबु नुदक
मर्थि गायंबु मेदिनी यंदु गलिपें, बूनि वानि यथोचितस्थानमुलुग ॥655॥

वर्तन वाले और श्रद्धासमन्वित होनेवाले पृथु को नारायण में भक्ति अनन्य विषय बनकर प्रवृद्ध हो गई। इस प्रकार ६५१ [कं.] हे नरलोकोत्तर ! भगवान की परिचर्या की आराधना से परिशुद्धांतःकरण वाले उस पृथु को सरसीरुहोदर (विष्णु) की कथा के अनुसंस्मरण से, ६५२ [कं.] परिपूर्ण भक्ति के कारण सदा अधिक संशयात्मक होकर व्याप्त हृदय की ग्रन्थि का तिरस्कार करनेवाली विरक्तियुक्त मनीषा (बुद्धि) पैदा हो गई। ६५३ [व.] इसके कारण वह संछिन्न देहात्मा ज्ञानी [और] अधिगत आत्म-स्वरूप वाला होकर, गदाग्रज होनेवाले श्रीकृष्ण की कथाओं में आसक्ति पाकर, समस्त योगसिद्धियों में निस्पृह होने से हृदय की ग्रन्थि का विच्छेदक होनेवाले ज्ञानयोग को छोड़कर, आत्मा में आत्मा का योग करके, ब्रह्मभूत बनकर निज कलेवर (काया) को छोड़ देने का निश्चय करके, ६५४ [सी.] इच्छापूर्वक एड़ियों से गुदा का पीडन करके, प्रयत्न से मुक्त आसन [पर] आसीन होते हुए, प्रकाशमान मूलाधार से वायु को धीरे-धीरे [ऊपर] उठाकर, अच्छी तरह नाभि से मिलाकर, क्रम से हृदय, वक्ष, कंठ, शिर [और] कोष्ठक (पेट का निचला भाग) से जोड़कर [फिर] उसे खींचकर मूधा भाग तक उठाकर, प्राण छोड़कर, उस पवन को पवन में, [ते.] आकाश को आकाश में, तेजस् को तेजस् में, उदक को उदक में इच्छा

व. मऱियु भूमि नुदकंबुनंदुनु नुदकंबुनु देजमंदु देजंबुनु वायुवुन वायुवु नाकाशंबुनंदु नाकाशंबुनु मनंबुन मनंबु निंद्रियंबुल निंद्रिय तन्मात्रल भूतादियैन यहंकारंबुनंदु नहंकारंबु महत्तत्त्वंबुनंदुनु गूर्चि यट्टि सर्वकार्य हेतुभूतंबैन महत्तत्त्वंबुनु जीवोपाधि भूतंबयिन प्रकृति यंदु गलिपि जीवभूतुंडयिन पृथुंडु ज्ञानवैराग्यंबुलचेत ब्रह्म निष्ठुंडै मायोपाधियासि मुक्तुं डय्येननि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 656 ॥

सी. अंत ना पृथुनि भार्यामणि यगुनर्चि पुडमिपै वड्डि नडुगिडिल गंदु
सुकुमार पादाब्ज सुंदरी रत्नंबु नतुल पतिव्रत यगुट जेसि
यात्मेश कृत सुव्रताचरणंबुनु सुमहित भक्ति शुश्रूषणमुनु
नार्षेयमगु देहयात्रयु ननु वीनि चेत मिविकलि गृशीभूत देह

ते. यय्यु प्रियनाथ कृतकरुणावलोक
करतल स्पर्शनादि सत्कारमुलनु
नवल सुखवृत्ति गॊंदि यय्यडवुलंदु
गृशत मदि दोपकुंड जरिंचुनपुडु ॥ 657 ॥

कं. तन मनमुन ने दुःखमु
ननयंबु नॆरुंगनट्टि यर्चि निजाधी-
शुनि प्राणरहित देहमु
गनुगॊनि विलपिंचि विगतकौतुक यगुचुन् ॥ 658 ॥

करके काया (शरीर) को मेदिनी (भूमि) में [पंचभूतों को] प्रयत्न-पूर्वक यथोचित स्थान में, मिला दिया। ६५५ [व.] फिर भूमि को उदक में, उदक को तेजस् में, तेजस् को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को मन में, मन को इंद्रियों में, इंद्रिय-तन्मात्राओं के भूत आदि अहंकार में, अहंकार को महत्तत्त्व में लगाकर ऐसे सर्व कार्यों के हेतुभूत होनेवाले महत्तत्त्व को जीवों के उपाधिभूत होनेवाली प्रकृति में मिलाकर, जीवभूत होनेवाले पृथु ज्ञान और वैराग्य से ब्रह्मनिष्ठ बनकर, माया उपाधि को छोड़कर मुक्त हुआ। ऐसा कहकर फिर इस प्रकार कहा। ६५६ [सी.] तब उस पृथु की भार्यामणि (पत्नी) अर्चि, जो पृथ्वी पर क़दम रखने से झुलसनेवाले सुकुमार पाद रूपी अब्ज (कमल) वाली सुंदरी रत्न है, अतुल पतिव्रता होने से आत्मेश [से] कृत सुव्रत आचरण, सुमहित भक्ति शुश्रूषण (और) आर्षेय (ऋषि-सम्मत) होनेवाली देहयात्रा नामक इनसे अधिक कृशीभूत देहवाली होकर भी, [ते.] प्रिय नाथ से कृत करुणावलोक (करुणा से देखना), करतल (हाथों) से स्पर्शन आदि सत्कारों को अवला सुखवृत्ति (सुख) पाकर, उन जंगलों में कृशता [को] मन में न लाकर [पति के संग] विचरण करते समय ६५७ [कं.] अपने मन में किसी प्रकार के दुःख को

सी. मानित मंदर सानुप्रदेशंबु नंदु जितारोप मॉथ जेसि
ललित महानदी सलिल सुस्नातयै कलित महोदार कर्मुडयिन
नाथुनकुदक दानक्रियल् गाविंचि यति भक्ति सुरलकु नतुलॊनर्चि
वह्निकि मुम्माटु वलगॊनि पति पादकमलयुगंबु जित्तमुन निलिपि

ते. वीरवरु डैन पृथु पृथिवीतलेशु
नंबु ननुगमनमु सेयु नट्टि साध्वि
नर्चि गनुगॊनि देवांगना सहस्र
मात्मनाथुलगूडि नॆय्यंबु तोड ॥ 659 ॥

कं. परमोत्कंठमुनु नम्मं, दर गिरि सानु प्रदेशतलमुन वरुसं
गुरियिंचिरि नव सुरभित, वर मंदार प्रसून वर्षमुलंतन् ॥ 660 ॥

कं. तरमिडि यच्चर लाडिरि
मारियिंचिरि शखतूर्यमुलु दिविजुलु वा
डिरि किन्नर जनुलु पर
स्परनुतु लॊनरिंचिरा सुपर्वागनलुन् ॥ 661 ॥

व. मरियु निट्लनिरि ॥ 662 ॥

सी. चर्चिच निट्टि याश्चर्य मॆंदेनिनि गनुगॊंटिरे यर्चियनु लतांगि
धन्यात्मुरालु गदा तन विभुतोगूडि यिंदिरारमणि यज्ञेशु गूडि

कभी न जाननेवाली अर्ची निज-अधीश (पति) की प्राणरहित देह को देखकर, विलाप करके विगत-कौतुक (नष्ट आनन्द) वाली बनती हुई, ६५८ [सी.] मानित मंदर [पर्वत की] उपत्यका प्रदेश में इच्छापूर्वक चिता का रोपण करके, ललित महानदी [के] सलिलों में सुस्नान करके, कलित (सुंदर) महान उदार कर्मिष्ठ होनेवाले नाथ के लिए उदकदान [तर्पण आदि] क्रियाएँ पूरी करके, अतिभक्ति से सुरों (देवताओं) को नत (नमस्कार) करके, वह्नि (अग्नि) की तीन बार क्रम से प्रदक्षिणा करके, पति के पाद रूपी कमल युग को चित्त में स्थापित करके, [ते.] वीरवर होनेवाले पृथु-पृथ्वीतलेश (राजा) का अनुगमन करनेवाली साध्वी अर्ची को देखकर, देवांगना-सहस्र ने आत्मनाथों के साथ स्नेह से ६५९ [कं.] तब परम उत्कंठा से उस मंदरगिरि की उपत्यका-प्रदेश-तल पर, क्रम से (एक-एक करके) नवसुरभित [और] वर (श्रेष्ठ) मंदार प्रसूनों की तब वर्षा की गई। ६६० [कं.] एक-एक करके अप्सराएँ खेलीं; दिविजों ने शंख और तूर्य बजाये; किन्नरों ने [गीत] गाये; सुपर्वागनाओं ने परस्पर नुतियाँ कीं। ६६१ [व.] फिर इस प्रकार बोली। ६६२ [सी.] चर्चा करने पर, ऐसा आश्चर्य कहीं देखा है ? अर्ची नामक लतांगी

वॆनुचनुकॆवडि ननुगमनमु सेसॆ निय्यम निज हृदयेशुडयिन
घनु वॆन्यु नूर्ध्व लोकम्मु बॊंदिचुनु नेडितवट्टनु निश्चितंबु

ते. परम योगींद्रुलकु दुर्विभाव्यमैन
दृढ सुकर्ममु वलन नतिक्रमिंचि
वॆन्य भूमीशु वॆनुचनि वरुसनूर्ध्व
गामिनियु मगु नीयिति घनत नॊंदि ॥ 663 ॥

व. कानं बतिव्रतलकु नसाध्यं बॆंदुनं गलदे यनि मऱियुनु ॥ 664 ॥

कं. परिकिंपग ने मनुजुडु, हरि पदमुनु बॊंद जेयुनट्टि विवेक-
स्फुरणं बनर्चु वानिकि, बरुवाड निल बॊंदरानि पदमुं गलदे ! ॥ 665 ॥

ते. अट्टि यपवर्गसाधनमैन मनुज-
भाव मॊंदियु विषय संबद्धुडगुचु
वसुध नॆव्वडु वर्तिचु वाडु धरणि
ननयमु निजात्म वंचकु डनग बरगु ॥ 666 ॥

कं. अनि वारलु दर्न्नर्थिनि, विनुतिंपग नर्चि यात्म विभुडगु पृथु डॊं
दिन यच्युत लोकंबुन, ननुपम विभवमुनु बॊंदॆननि विदुरुनकुन् ॥ 667 ॥

कं. मुनिवरुडगु मैत्रेयुडु, विनयंबुन नॆऱुग जॆप्पि वॆंडियु बग नि-
द्दलनु नम्महानुभावुं, डनघुडु भगवत्तमुंडु नगु पृथु डनघा ! ॥ 668 ॥

धन्यात्मा है न ! अपने विभु (पति) के साथ ऐसे अनुगमन किया जैसे इंदिरा रमणी (लक्ष्मी) यज्ञेश (विष्णु) के पीछे चलती है। यह [स्त्री] अपना हृदयेश होनेवाले घन (श्रेष्ठ) वैन्य (पृथु) को ऊर्ध्वलोक की प्राप्ति करा देगी। आज यहाँ तक तो निश्चित है। [ते.] परम योगींद्रों के लिए दुर्विभाव्य होनेवाले दृढ़ सुकर्म से अतिक्रमण करके वैन्य-भूमीश (-राजा) के पीछे जाकर क्रम से यह स्त्री श्रेष्ठता को प्राप्त करके ऊर्ध्व-गामिनी (ऊपर जानेवाली) बनेगी। ६६३ [व.] इसलिए पतिव्रताओं के लिए असाध्य कहीं होता है ? इस प्रकार कहकर फिर ६६४ [कं.] देखने पर, जिस मनुज को हरिपद की प्राप्ति करानेवाले विवेक के स्फुरण की व्याप्ति से युक्त वाले को, क्रम से ऐसा कौन सा पद है, जिसे वह प्राप्त नहीं कर सकता ? ६६५ [ते.] ऐसे अपवर्ग (मोक्ष) का साधन होनेवाले मनुज-भाव को पाकर भी, जो [मानव] विषयों से संबद्ध होकर, वसुधा पर रहता है, वह धरणी पर सदा निज आत्मा का वंचक कहलाता है। ६६६ [कं.] इस प्रकार उनके इच्छापूर्वक विनुति (स्तोत्र) करने पर, अर्ची ने जिस अच्युत लोक को आत्मविभु ने प्राप्त किया था, उसमें अनुपम विभव को प्राप्त किया। इस प्रकार कहकर [फिर] विदुर से ६६७ [कं.] मुनिवर मैत्रेय ने विनय से समझाकर फिर इस प्रकार कहा, हे अनघ!

कं. ए नीकिप्पुडु सॅप्पिति, मानुग नी पुण्यकथनु महित श्रद्धा-
धीनुंडै विस्फुर दव, धानुंडु यॅव्वडेनि दनरिन भक्तिन् ॥ 669 ॥

कं. विनिन वठिंचिन व्रासिन
विनिर्पिचिन वाडु पृथुडु विमलगतिं बॉं-
दिन क्रिय हरिपदमॉंदॅडु
ननयमु निर्धूत पापुडगुचु महात्मा ! ॥ 670 ॥

सी. ब्राह्मणु डंचित भक्ति वठिंचिन ब्रह्मवर्चसमु संप्राप्तमगुनु
क्षत्रियुंडर्थिमै जदिविन विन्ननु जगती-विभुत्वंबु संभविंचु
वैश्युंडु विनि धनवंतुडै यॉप्पुनु शूद्रुंडु विनिन सुश्लोकुडगुनु
मरियुनु भक्ति मुम्मारु पठिंचिन वित्तविहीनुंडु वित्तपतियु

ते. नप्रसिद्धुडु प्रख्यात यशुडु व्रजलु
लेनि यधमुडु वितत संतानयुतुडु
मूर्खचित्तुंडु विज्ञान बोधमतियु
नगुचु नुति कॅक्कुदुरु महितात्म ! मरियु ॥ 671 ॥

व. ई लोकंबुनं बुरुषुलकु स्वस्त्ययनंबुनु नमंगळ निवारणंबुनु धनप्रदंबुनु यशस्करंबुनु नायुष्करंबुनु स्वर्गदायकंबुनु गलिमलापहंबुनुनैन यी पुण्य चरित्रंबु चतुर्विध पुरुषार्थ कामुलैनवारिकि जतुर्विध पुरुषार्थकारणंबगुं

वह महानुभाव अनघ, प्रभु, भगवत्तम (परम भक्त) बनेगा। ६६८ [कं.] मैंने अब तुमसे कहा। अच्छी तरह इस पुण्य कथा को महित श्रद्धाधीन होकर विस्फुरत् अवधान वाले बनकर कोई भी हो, बड़ी भक्ति के साथ ६६९ [कं.] हे महात्मा ! चाहे जो [कोई भी] हो, सुने, पढ़े, लिखे, या सुनावे, वह सदा निर्धूत-पाप वाला होता हुआ उस हरिपद को प्राप्त करेगा, जिसे पृथु ने विमल गति से पाया। ६७० [सी.] अगर ब्राह्मण स्थिर भक्ति से पठन करेगा तो [उसे] ब्रह्म-वर्चस् (-तेजस्) प्राप्त होगा; क्षत्रिय इच्छापूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा तो [उसे] जगत की विभुता (प्रभुता) संभवित होगी (मिलेगी), वैश्य सुनकर धनवान हो जायगा; शूद्र सुनेगा तो सुश्लोक (कीर्तिवान) बनेगा; और भक्ति से तीन बार पढ़ने पर वित्त (धन)-हीन वित्तपति (धनवान), [ते.] अप्रसिद्ध [व्यक्ति] प्रख्यात यशस्वी, प्रजा (संतान)-हीन अधम व्यक्ति वितत (विपुल) संतानयुत और मूर्ख चित्त वाला विज्ञान-बोध-मति (बुद्धि) वाला होता हुआ, हे महात्मा ! नुति (स्तुति) पायेंगे। ६७१ [व.] इस लोक में पुरुषों को स्वस्त्ययन, अमंगल का निवारण करनेवाला, धनप्रद, यशस्कर, आयुष्कर स्वर्गदायक और कलि के मल का अपह (दूर करनेवाला) होनेवाला यह पुण्यचरित्र चतुर्विध पुरुषार्थकामी होनेवालों को (चाहनेवालों को) चतुर्विध पुरुषार्थों

गावुन विनंदगु। संग्रामाभिमुखुंडैन राजी चरित्रंबु ननुसंधिंचि विरोधि नेदिर्चिन नव्विरोधि पृथुनकुं वोलें गप्पंबु लिच्चु मुक्तान्य संगुंडुनु भगवद्भक्तुंडुनुनैन वाडु पुण्यंबुनु वैन्य माहात्म्य सूचकंबुनुनैन यी चरित्रंबु विनुचुं वठियिंचचुं गृतमतियै दिनदिनंबुनु नादरंबुनं ब्रकटंबु सेयुवाडु भवसिंधु पोतपादुंडुन सर्वेश्वरुनि यंदु नचलंबयिन भक्ति गलिगि पृथु चक्रवर्ति वोंदिन विष्णुपदंबु वोंदुनति यिप्पुण्य चरित्रंबु मैत्रेयुंडु विदुरुन कॅरिंगिचि वॅंडियु निट्लनियें ॥ 672 ॥

अध्यायमु—२४

कं. पृथुनकु नर्चिकि बुट्टिन, पृथुकीर्तिधनुंडु घनुडु पृथुतुल्युंडै
पृथुशौर्यधैर्य धुर्युडु, पृथिविन् विजिताश्वुडोप्पॆ बृथिवीपतियै ॥ 673 ॥

कं. विनुमंतर्धान गति, दनरु सुनासीरुवलन दग विजिताश्वुं
डुनु मरि यंतर्धानुं, डनु पेर ब्रसिद्धुडय्यॆ नति चतुरुंडै ॥ 674 ॥

सी. स्थिरमति राज्याभिषिक्तुडै यम्मेटि सममति नय्यनुजन्मुलैन
हर्यश्वुनकु समादरमुन दूर्पु दक्षिण दिश दग धूम्रकेशुनकुनु

का कारण होगा; इसलिए सुनने योग्य है। संग्राम का अभिमुख होनेवाला राजा इस चरित्र का अनुसधान करके विरोधी का सामना करेगा तो वह विरोधी पृथु को देने की तरह कर (राजस्व) देगा। मुक्त-अन्य-संगी (अन्य विषयों की संगति से मुक्त) [तथा] भगवद्भक्त होनेवाला पुण्यी [और] वैन्य के माहात्म्य को सूचित करनेवाला यह चरित्र सुनते हुए [और] पढ़ते हुए कृतमति बनकर, दिन-प्रतिदिन आदर के साथ प्रकट करने पर, [वह व्यक्ति] भवसिंधु (ससार रूपी समुद्र) के लिए पोतपाद (नाव रूपी चरण) होनेवाले सर्वेश्वर में अचल भक्ति प्राप्त कर, पृथु चक्रवर्ती ने जो विष्णु-पद प्राप्त किया, उसे प्राप्त करेगा। इस प्रकार यह पुण्यचरित मैत्रेय ने विदुर को समझाकर फिर इस प्रकार कहा। ६७२

अध्याय—२४

[कं.] पृथु तथा अर्ची को जो पृथु कीर्ति का धनी (बड़ी कीर्ति वाला) पैदा हुआ वह घन (श्रेष्ठ) पृथुतुल्य होकर पृथु (बड़े) शौर्य और धैर्य का धुर्य (भार ढोनेवाला) [और] पृथ्वीपति बनकर पृथ्वी पर वह विजिताश्व [नाम से] प्रसिद्ध हुआ। ६७३ [कं.] सुनो, अंतर्धान गति से प्रकाशमान होनेवाले सुनासीर से अच्छी तरह विजिताश्व अति चतुर बनकर अंतर्धान नाम से प्रसिद्ध हुआ। ६७४ [सी.] हे सज्जनों से स्तव्य (स्तोत्र पाने योग्य) चरितवाले [विदुर]! स्थिर मति से राज्य [में] अभिषिक्त

वरगंग वृकुनकु वश्चिम भागंबु द्रविणुन कथिनुत्तरपु विशनु
गोमरोप्प नलुवुरकुनु बंचि यिच्चॆ सत्कांतयेनट्टि शिखंडिकिनि

ते. मनुजयोनिनि जनियिपु डनुचु मुन्नु
पलिकिनट्टि वसिष्ठुशापमुन जेसि
पूनि त्रेताग्नु लतनिकि बुत्रुलगुचु
जनन मोंदिरि सज्जन - स्तव्यचरित ! ॥ 675 ॥

व. वारलु पावकुंडु ववमानुंडु शुचियु ननु नामंबुल मनुष्ययोनि बुट्टियु नात्म प्रभावंबुनं ग्रम्मर नग्नुलयि चनिरि। तदनंतरंब ॥ 676 ॥

कं. अतडु नभस्वति यनियेंडि, द्वितीयपत्नि वलननु हविर्धानुडु ना
सुतु गनि विजिताश्वुंडा, नत विमतुड्ड राज्यवर्तनमु दलपोयन् ॥ 677 ॥

कं. विमलात्म ! करादानमु
दमशुल्कादिकमु गरमु दारुण मनि धं-
र्यमुनं दीर्घमख व्या-
जमुनंबद्वर्तनंबु सममति विडिचॆन् ॥ 678 ॥

व. इट्लु विडिचि ॥ 679 ॥

कं. अतडात्म दर्शनं डयि
चतुरत बरमात्मु हंसु सर्वेश्वरु द-

होकर वह श्रेष्ठ [विजिताश्व] सममति से [अपने] अनुजन्म [छोटे भाई] होनेवाले हर्यश्व को समादर (अच्छा आदर) के साथ पूर्व दिशा को, धूम्रकेश को दक्षिण दिशा को, वृक को पश्चिम भाग [तथा] द्रविण को इच्छापूर्वक उत्तर दिशा को, अच्छी तरह चारों में बांट दिया। [ते.] सत्कांता होनेवाली शिखंडिनी के, मनुज योनि में जन्म लो —ऐसे पूर्वकाल में कहे गये वशिष्ठ के शाप के कारण प्रयत्नपूर्वक त्रेताग्नियों ने उसके पुत्र होकर जन्म लिया। ६७५ [व.] वे पावक, पवमान [और] शुचि नामों से मनुष्य योनि में पैदा होकर भी आत्म प्रभाव से फिर अग्नि बनकर चले गए। इसके बाद ६७६ [कं.] नभस्वती नामक द्वितीय पत्नी से हविर्धान नामक सुत को जन्म देकर, उस विजिताश्व के आनत (विधेय) विमति (शत्रु) हो, राज्य के वर्तन (चलाने) [के बारे में] सोचने पर ६७७ [कं.] हे विमलात्म ! कर (राजस्व) आदान (लेना) [और] अपना शुल्क आदि [लेना] बहुत दारुण (नीति-विरुद्ध) है, ऐसा सोचकर, धैर्य से दीर्घ मख (यज्ञ) के व्याज (बहाने) से तत्-वर्तन (वह आचार) सममति (अच्छी बुद्धि) से छोड़ दिया। ६७८ [व.] ऐसा छोड़कर, ६७९ [कं.] हे महात्मा ! उसने आत्मदर्शन [करनेवाला] बनकर, चतुरता

त्क्रतुवुन यजिंचि विमला-
द्भुतयोग समाधि मुक्ति वॊंदॆ महात्म ! ॥ 680 ॥

व. अंत विजिताश्वुंडु परलोकगतुंडयिन हविर्धानुंडु हविर्धानि यनु भार्य वलन वर्हिष्मदुंडु गयुंडु शुक्लुंडु गृष्णुंडु सत्युंडु जितव्रतुंडु ननु पुत्रुल नार्वुरं गांचॆनंदु वर्हिष्मदुंडु ॥ 681 ॥

सी. संतत सवन दीक्षाशालियगुचु धरातलं बॆल्लनु ग्रतुवुलकुनु
विलसिल्लु यजन शाललु वेऱु वेऱु कल्पिंचि यज्ञमुलु गाविंचु चुंडि
चिरकीर्ति यतडु प्राचीनाग्रकुशल चे क्षितितलं बॆल्लनास्तृतमु सेय
वसुध यॆल्लनु यज्ञवाटमै विलसिल्ल सत्क्रियाकांडनिष्णातुडगुचु

ते. सुभग योगसमाधि निष्ठुडु प्रजाप-
तियुग ननि तन्नु जनमु नुतिंप बॆलयु-
नट्टि घनुडु हविर्धानि यखिल जगति
बरगु गुशलनु प्राचीन बर्हि यय्यॆ ॥ 682 ॥

व. मऱियु नतंडु ॥ 683 ॥

चं. अलवड ने सतीमणि समंचित लील विवाह वेळ नु-
त्कलिक बदक्षिणंबु लिडगा गनि हव्यवहुंडु दॊल्लि यि

(कुशलता) से परमात्मा को, हंस (विष्णु) को, सर्वेश्वर को उस क्रतु में यजन करके, विमल अद्भुत योगसमाधि [से] मुक्ति पायी। ६८०
[व.] तब विजिताश्व के परलोकगत होने पर, हविर्धान ने हविर्धानी नामक पत्नी से वर्हिष्मद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य [एवं] जितव्रत नामक छः पुत्रों को पाया। उनमें वर्हिष्मद ६८१ [सी.] संतत (सदा) सवन (यज्ञ) का दीक्षाशाली होते हुए समस्त धरातल पर क्रतुओं के लिए विलसित् (प्रकाशमान) होनेवाली यजन (यज्ञ)-शालाओं की अलग-अलग कल्पना करके (वनवाकर), यज्ञ करते हुए, चिर कीर्ति [से] वह प्राचीन (पूर्वी दिशा) [की ओर] अग्र [भाग] वाली कुशाओं से सारे क्षिति-तल को आस्तृत (व्याप्त) करने पर, सारी वसुधा के यज्ञस्थल होकर प्रकाशमान होने पर, सत्क्रियाकांड से निष्णात वनते हुए, [ते.] सुभग योग-समाधि-निष्ठ प्रजापति है —इस प्रकार प्रजा के उसकी नुति (प्रशंसा) करने पर वह घन (श्रेष्ठ) प्रकाशमान होकर, वह हविर्धानि अखिल जगति पर कुशाओं को फैलाकर प्राचीनवर्हि बन गया। ६८२ [व.] फिर वह ६८३ [चं.] ठीक ढंग से जिस सतीमणि से अच्छी तरह विवाह के समय उत्कंठा के साथ प्रदक्षिणा करने पर देखकर जैसे हव्यवह (अग्निदेव) पूर्वकाल में सुख से शुकि को देखकर मोहित हुआ वैसे विमोही वना। वह

म्मुल शुकि जूचि मोहमुनु बोंदिन रीति विमोहियय्यें ना
ललित विनूत्न भूषण यलंकृत चारु शुभांगि वेंडियुन् ॥ 684 ॥

चं. सुरुचिर भंगि ना सति गिशोर वयः परिपाकयै रण
द्वर मणि हेमनूपुर रवंबु चॅलंगग नाडुचुन् दिवा
कर रुचि रेख नोप्पॅसगगा गनि निर्जितुलैरि देव कि-
न्नर नर सिद्ध साध्य मुनि नाग नभश्चर मुख्यु लंदरुन् ॥ 685 ॥

व. अट्टि सौंदर्यखनियु समुद्रपुत्रियु नयिन शतधृतियनु कन्यं ब्रह्मादेशंबुनं बाणिग्रहणंबु सेसॅ ना शतधृतिवलनं ब्राचीन बर्हिकि बदुगुरु गोडुकुलु जनियिंचिरि। वारलु तुल्य नामव्रतुलुनु धर्मपारगुलुनु नयिन प्रचेतसुलु। प्रजासर्गंबुनंदु दंड्रिचेत नाज्ञापितुलयि तपंबु गाविप वनंबुनकुं जनु समयंबुनं दन्मार्गंबुन ब्रसन्नुंडगुचु दृश्यमानुंडैन श्रीरुद्रुनि चेत नेदि युपदेशिपंबडॅ दानि जप ध्यान पूजा नियमंबुल सेविंचुचु दपःपतियैन नारायणुं बदिवेल दिव्य संवत्सरंबुलु पूजिंचिरनि चॅप्पिन विनि विदुरुंडु मैत्रेयुन किट्लनियॅ ॥686॥

रुद्रुंडु प्रचेतसुलकु योगादेशमनु स्तोत्रमुनु दॅलिय जेयुट

सी. तापसोत्तम! प्रचेतसुलकु ना वन-मार्गंबुनंदु ना भर्गु तोड-
संग मॅट्लय्यॅ ब्रसन्नुडै हरुडॅट्टि तिवुट वारल कुपदेश मिच्चॅ?

ललित [और] विनूत्न भूषणों से अलंकृत चारु (सुंदर) शुभांगी फिर ६८४ [चं.] सुरुचिर रूप से उस सती को किशोरवय (उम्र) से परिपाका (पुष्ट) बनकर, रणत (मधुर ध्वनि करनेवाले) वर (श्रेष्ठ) मणि [तथा] हेम (सुवर्ण) नूपुर रव (ध्वनि) होने पर, खेलते हुए, दिवाकर (सूरज) की रुचि (प्रकाश)-रेखा (किरण) [की तरह] प्रकाशमान होते हुए देखकर देव, किन्नर, नर, सिद्ध, साध्य, मुनि, नाग [आदि] सभी नभश्चर मुख्य (आदि) विनिर्जित हुए (हार गये)। ६८५ [व.] ऐसी सौंदर्य की खनि [एवं] समुद्र-पुत्री शतधृति नामक कन्या से ब्रह्मा के आदेश से पाणिग्रहण किया। उस शतधृति से प्राचीनबर्हि के दस पुत्र पैदा हुए। वे तुल्यनामव्रती [और] धर्मपारग होनेवाले प्रचेतस थे। उनके प्रजासर्ग में पिता से आज्ञापित होकर, तप करने वन को जाते समय, तन्मार्ग से (उस मार्ग में) प्रसन्न होते हुए, दृश्यमान श्रीरुद्र से जो उपदेश [उनको] दिया गया, उसका जप, ध्यान [और] पूजा के नियमों से सेवन करते हुए तपःपति होनेवाले नारायण की, दस सहस्र दिव्य वर्ष पूजा की। ऐसा कहने पर सुनकर विदुर ने मैत्रेय से इस प्रकार कहा। ६८६

रुद्र का प्रचेतसों को योगादेश नामक स्तोत्र समझा देना

[सी.] हे तापसोत्तम! प्रचेतसों को उस वनमार्ग में उस भर्ग

जीवव्रजमुन का शिवुतोडि संगंबु गडु दुर्लभं बीजगंबुनंदु
जर्चिप नम्मेटि सन्मुनींद्रुलकुनु संचितध्यान गोचरुडु गानि

ते. पुडमि ब्रत्यक्षमुन गान वडडु मरियु
नंचितात्म सदा रामु डखिल लोक
रक्षणार्थंबुगा विरूपाक्षुडात्म
शक्तितो गूडि जगति पै संचरिंचु ॥ 687 ॥

कं. कावुन भगवंतुंडुनु, देवाधीशुंडु नयिन देवुनि संगं-
बे वॆरवुन घटियिंचॆनो, या विधमंतयुनु दॆलिय नानति योवे ! ॥ 688 ॥

कं. अनवुडु विदुरुन कम्मुनि, -जननायकुडनियॆ नट्टि साधुमनीषं-
दनरु प्रचेतसुलुनु निज, जनकुनि सद्भाषणमुलु सम्मति तोडन् ॥ 689 ॥

कं. शिरमुन वहिंचि पडमटि, करिगॆडि समयमुन नॆदुर नंबुधिकंटॆन्
बड्पगु नॊक सरसि मनो, -हर निर्मल सलिल पूर्णयै यदि मरियुन्॥690॥

सी. रक्तोत्पलेंदीवर प्रफुल्लांभोज कमनीय कह्लार कलितमगुचु
गंजात किंजल्क पुंज विक्षेपक मंद गंधानिलानंदमगुचु
रमणीय हंस सारस चक्रवाक कारंडव निनंदाभिराममगुचु
वरमत्त मधुप सुस्वर मोद पल्लवांकुरित लता तरु भरितमगुचु

(शिव) से संगम (भेंट) कैसे हुआ ? प्रसन्न होकर हर ने श्रद्धापूर्वक उनको क्या उपदेश दिया ? जीव-व्रज (-समूह) के लिए उस शिव के साथ संगम इस जग मे बहु दुर्लभ है। चर्चा करने पर उत्तम सन्मुनींद्रों को भी सचित ध्यान के अतिरिक्त और किसी भी मार्ग से गोचर न होनेवाला [वह विष्णु] पृथ्वी पर प्रत्यक्ष नही दिखाई पड़ता। [ते.] फिर संचित आत्मा [में] सदाराम अखिल लोक के रक्षण के अर्थ (के लिए) विरूपाक्ष आत्मा की शक्ति के साथ मिलकर जगति पर संचार करता है। ६८७ [कं.] इसलिए भगवान और देवाधीश होनेवाले देव का संगम किस प्रकार घटित हुआ, वह सब विधान जानने की आज्ञा दो। ६८८ [कं.] तब उस मुनिजन नायक ने विदुर से कहा— ऐसे साधु मनीषा से प्रकाशमान होनेवाले प्रचेतसों के निज जनक के सद्भाषणों को सम्मति से ६८९ [कं.] सिर पर वहन करके पश्चिम की ओर जाते समय, सामने अंबुधि (समुद्र) से भी बढ़कर एक विशाल, मनोहर, निर्मल और सलिल (जल) से पूर्ण सरसी दिखाई पड़ी। वह और ६९० [सी.] रक्त उत्पल (लाल कमल), इंदीवर, प्रफुल्ल (विकसित) अंभोज, कमनीय (सुंदर) कल्हारों से कलित (पूर्ण, सुंदर) होते हुए, वर (श्रेष्ठ) मत्त मधुपों के सुस्वरों से मुदित (संतुष्ट) पल्लवों के अंकुरण से युक्त लता [एव] तरुओं से भरित (भरा हुआ) होते हुए कंजातों (कमलों) के किंजल्कों के पुंज (समूह) के

ते. सज्जनुनि हृदयमु बोलि स्वच्छमगुचु
हरि पदाकृति दिविज विहारमगुचु
घनुनि सिरि भंगि नर्हं जीवनमु नगुचु
मानवति वृत्ति गतिनि निम्नंबु नगुचु ॥ 691 ॥

व. ऑप्पुनट्टि सरोवरंबु बॊडगनि यंदु नॊक्क दिव्य पुरुषुनिगनिरतंडु ॥692॥

म. समय श्रीक मृदंग वेणु मुख भास्वन्नादमै दिव्य मा-
र्गं मनोरंजकमै तनर्चु विलसद् गांधर्व गानंबु नॆ-
य्यमु संधिल्लग विंचु दन्महिम कत्याश्चर्यमुंबॊंदि वे-
गमुनंदत्कमलाकरंबु वॆडलॆन् गौतूहलोल्लासियै ॥ 693 ॥

व. इट्लु वॆडलि वच्चिन ॥ 694 ॥

म. कनिराताापस-पुंगवुल् दिविज लोक श्रेष्ठुनि दप्त कां-
चन वर्णुन् सनकादियोगिजन भास्वद्गीयमानुं द्रिलो-
चनु भक्तानुगुणानुगुन् सुमहितैश्वर्युन् ब्रसादाभि शो-
भन वक्त्रुन् निहताघ कर्तृजनसंपद् भद्रुनिन् रुद्रुनिन् ॥ 695 ॥

विक्षेपण से मंद गंधानिल से आनंद [मग्न] होते हुए, रमणीय हंस, सारस, चक्रवाक (और) कारंडवों के निनदों (ध्वनियों) से अभिराम होते हुए, [ते.] सज्जनों के हृदय की तरह स्वच्छ होते हुए, हरि के पदों की तरह दिविजों के लिए विहार [-स्थल] होते हुए, घन (श्रेष्ठ) की श्री (संपदा) की तरह अर्ह जीवनयुक्त होते हुए, मानवती की वृत्ति (प्रकृति) की तरह निम्न (गहरी) होते हुए ६९१ [व.] सुंदर लगनेवाले सरोवर को देखकर, उसमें एक दिव्य पुरुष को देखा। वह ६९२ [म.] उनके समद-श्रीक (-शोभायमान) मृदंग, वेणु-मुख (आदि) के भास्वत् (मधुर) नादयुक्त हो, दिव्य मार्ग (शास्त्रीय विधान) से मनोरंजक होकर व्याप्त, विलसित गांधर्व गान से स्नेह का अच्छी तरह संधान करते हुए सुनते रहने पर, उसकी महिमा को [देखकर] अति आश्चर्य पाने पर, वह [दिव्य पुरुष] शीघ्र तत् कमलाकर (सरोवर) से बाहर, कुतूहल [और] उल्लास से भरकर आया। ६९३ [व.] ऐसे बाहर निकल आने पर ६९४ [म.] उन तापस पुंगवों ने [उस] दिविज-लोक-श्रेष्ठ, तप्तकांचन वर्णवाले को, सनक आदि योगी-जन (-समूह) से भास्वत् (अच्छी तरह) गीयमान, त्रिलोचन वाले को, भक्तों के अनुगुण अनुग (अनुचर), सुमहित ऐश्वर्य वाले को, प्रसाद से अभिशोभित वक्त्र (मुख) वाले को, निहत-अघ-कर्तृजन (करने वालों के पापों को निहत करनेवाले को), संपत् [देनेवाले] भद्र [और] रुद्र को देखा। ६९५ [कं.] देखकर अपने मनों में अनुराग [और]

कं. कनि वारलु दम मनमुल
ननुरागमु नद्भुतंबु ननयमु बॊडमन्
विनयमु दोपग दत्पद
वनजमुलकु म्रॊक्कि भक्तिवशगतुलगुड्डन् ॥ 696 ॥

व. भगवंतुंडुनु नखिल धर्मुंडुनु गृपाळुंडुनु भक्तवत्सलुंडुनु नखिल पाप हरुंडुनु नयिन हरुंडु प्रीतुंडगुचुं बसन्नांतःकरणुलु धर्मज्ञुलु शीलसंपन्नुलु संप्रीतुलु नयिन वारल किट्लनियॆ ॥ 697 ॥

रुद्रगीत

सी. विनुडु नृपाल नंदनुलार ! मी मदि गल तलंपॆल्लनु गान वच्चॆ
मीकु भद्रंबगु मी यॆड नेननुग्रह बुद्धिचे निट्टु गान बडिति
गॊकॊनि यिपुडु सूक्ष्ममु द्रिगुणात्मकमुनगु नाप्रकृति कंटॆनु धरणिनि
वरगु जीवुनि कंटॆ वरुडैन वासुदेवुनि चरणाब्जमुल् दनरु भक्ति

ते. नर्थि नॆव्वरु भजियिंतु रट्टि वारु
नाकु बियतमुल् वारिकि नयचरित्रु-
लार ! येनु ब्रियुंडनै भूरि महिम
वॆलयु चुंडुदु नदिगाक विनुडु मीरु ॥ 698 ॥

व. स्वधर्म निरतुंडैन पुरुषुंडनेक जन्मांतर सुकृत बिशेषंबुलं जतुर्मुखत्वंबु नॊंदि,

---

अद्भुत के वार-वार उत्पन्न होने पर [और] विनय के सूझने पर, तत् (उसके) पद-वनजों (-कमलों) को नमस्कार करके, उनके भक्तिवशगत होने पर ६९६

[व.] भगवान, अखिल धर्मज्ञ, कृपालु, भक्तवत्सल [और] अखिल पाप-पर होनेवाले हर ने [प्रीत होते हुए], प्रसन्न अंतःकरण वाले, धर्मज्ञ, शील-संपन्न [और] संप्रीत होनेवाले उनसे इस प्रकार कहा। ६९७

रुद्रगीता

[सी.] सुनो, नृपालनंदन ! [मैंने] जान लिया कि तुम अपने मन में क्या सोच रहे हो। तुम लोगों की भलाई हो। तुम लोगों के प्रति होनेवाली अनुग्रह-बुद्धि से इस प्रकार [मैं] दिखाई पड़ा। अब सूक्ष्म और त्रिगुणात्मक होनेवाली मेरी प्रकृति से और धरणी पर वर्तमान जीव से पर (इतर) होनेवाले वासुदेव के चरणाब्जों को विलसित भक्ति से इच्छापूर्वक जो [लोग] भजन (सेवा) करते हैं, [ते.] वे लोग मेरे लिए प्रियतम हैं। हे नय (सुंदर) चरितवाले ! [उनके लिए] मैं प्रिय बनकर भूरि (बड़ी) महिमा से प्रकाशमान हो जाऊँगा। इसके अतिरिक्त तुम लोग सुनो। ६९८ [व.] स्वधर्म में निरत (मग्न) होनेवाला पुरुष

तदनंतरंबुनं बुण्यातिरेकंबुन नन्नुंबोंदियधिकारांतंबुन .नेनुनु देवता-
गणंबुलुनु नव्याकृतंबैन ये हरिपदंबुनु बोंदुदु मद्दिपदंबु भागवतुंडु दनंतनें
पोंदु गावुन मीरु भागवतत्वंबु नोंदुटं जेसि नाकुं ब्रियुलै युंडुवुरु।
भागवत जनंबुलकु नाकंटें नधिक प्रियुंडुलेडु। गान विविक्तंबुनु जप्यंबुनु
पवित्रंबुनु मंगळंबुनु निश्श्रेयसकरंबुनुनैन नावचनंबु नाकर्णिपुडु।
सर्गादिनि ब्रह्म निजनंदनुल कोंरिगिंचिन श्रीहरिस्तोत्रंबु मीकु नेंरिंगिंतु
विनुंडदि यॆट्टिदनिन ॥ 699 ॥

कं. वनजासनु डात्मजुलगु
सनकादुल जूचि पलिकें सम्मति तोडन्
विनुडु कुमारकुलारा !
वनजोदरु मंगळस्तवंबेंरिंगिंतुन् ॥ 700 ॥

व. अनि हरि नुद्देशिंचि वारलु विन निट्लनियें नो यीशा ! यात्मवेदुलैन
वारलकु भवदीयोत्कर्षंबु स्वानंद लाभकरंबु गावुन नट्टि स्वानंदलाभंबु
माकुं गलुग वलयु। नीवु परिपूर्णानंद स्वरूपुंड विट्टि सर्वात्मकुंडवैन
नीकु नमस्करिंतुननि वेंडियु निट्लनियें ॥ 701 ॥

सी. पंकजनाभाय संकर्षणाय शान्ताय विश्वप्रबोधाय भूत-
सूक्ष्मेन्द्रियात्मने सूक्ष्माय वासुदेवाय पूर्णाय पुण्याय निर्वि-

---

अनेक जन्मांतरों के सुकृत-विशेषों से चतुर्मुखत्व (ब्रह्मत्व) प्राप्त कर, तदनंतर पुण्य के अतिरेक से मुझे पाकर, अधिकार के अन्त में, मैं [और] देवतागण जिस अव्याकृत (पृथक् न होनेवाले) हरिपद (विष्णुलोक) को प्राप्त करते हैं, भागवत (भक्त) आपसे आप ऐसा पद प्राप्त करेगा। इस कारण, तुम लोगों के भागवतत्व प्राप्त करने के कारण, मेरे लिए प्रिय बनकर रहोगे। भागवत जनों के लिए मुझसे बढ़कर अधिक प्रिय [कोई] नहीं है। इसलिए विविक्त (एकांत), जप्य, पवित्र, मंगल [तथा] निश्श्रेयस्कर (मोक्षदायक) होनेवाला मेरा वचन सुनो। सर्ग (सृष्टि) के आदि में ब्रह्मा ने निज नंदनों को जो श्रीहरिस्तोत्र समझा दिया, उसे तुम लोगों को समझा दूंगा। सुनो; वह कैसा है, कहें तो ६९९ [कं.] वनजासन ने आत्मज होनेवाले सनक आदियों को देखकर सम्मति से कहा। सुनो, हे कुमार ! वनजोदर (विष्णु) का मंगल-स्तव समझा दूंगा। ७०० [व.] इस प्रकार हरि को उद्दिष्ट करके, ताकि वे लोग सुनें, इस तरह बोला। हे ईश ! आत्मवेदियों (आत्मज्ञानियों) को भवदीय उत्कर्ष स्वानंद- (लाभकर-प्रदायक) है। इसलिए ऐसा स्वानंदलाभ हमें होना चाहिए। तुम परिपूर्ण आनंदस्वरूप हो। ऐसे सर्वात्मक होनेवाले तुम्हें नमस्कार करता हूं। इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। ७०१

कारायकर्म विस्तारकाय त्रयीपालाय त्रैलोक्यपालकाय
सोमरूपाय तेजो वलाढ्याय स्वयंज्योतिषे दुरंताय कर्म

ते. साधनाय पुरापुरुषाय यज्ञ
रेतसे जीव तृप्ताय पृथ्विरूप-
काय लोकाय नभसेऽन्तकाय विश्व
योनये विष्णवे जिष्णवे नमोऽस्तु ॥ 702 ॥

सी. स्वर्गापवर्ग सुद्वाराय सर्वरसात्मने परम हंसाय धर्म-
पालाय सद्धित फलरूपकाय कृष्णाय धर्मात्मने सर्वशक्ति-
युक्ताय घन सांख्य योगीश्वराय हिरण्य वीर्याय रुद्राय शिष्ट-
नाथाय दुष्ट विनाशाय शून्य प्रवृत्ताय कर्मणे मृत्यवे वि-

ते. राट्छरीराय निखिल धर्माय वाग्वि-
भूतये निवृत्ताय सत्पुण्य भूरि
वर्चसेऽखिल धर्मदेवाय चात्म
ने ऽनिरुद्धाय निभृतात्मने नमोऽस्तु ॥ 703 ॥

ते. सर्वसत्ताय देवाय सन्नियाम-
काय बहिरन्तरात्मने कारणात्म-
ने ऽसमस्तार्थ लिंगाय निर्गुणाय
वेधसे जितात्मक साधवे नमोऽस्तु ॥ 704 ॥

व. अनि मट्रियु प्रद्युम्नुंडवुनु, नंतरात्मवुनु समस्त शेप कारणुंडवु, जातुर्होत्र

[सी.] पंकजनाभाय, संकर्षणाय, शान्ताय, विश्वप्रबोधाय, भूत सूक्ष्म-इन्द्रियात्मने, सूक्ष्माय, वासुदेवाय, पूर्णाय, पुण्याय, निर्विकाराय, कर्म-विस्तारकाय, त्रयीपालाय, त्रैलोक्यपालकाय, सोमरूपाय, तेजोवलाढ्याय, स्वयं-ज्योतिषे, दुरंताय, [ते.] कर्मसाधनाय, पुरापुरुषाय, यज्ञरेतसे, जीवतृप्ताय, पृथ्विरूपकाय, लोकाय, नभसे, अन्तकाय, विश्वयोनये, विष्णवे, जिष्णवे, नमोऽस्तु । ७०२ [सी.] स्वर्गापवर्गसुद्वाराय, सर्गरसात्मने, परम-हंसाय, धर्मपालाय, सद्धितफलरूपकाय, कृष्णाय, धर्मात्मने, सर्वशक्ति-युक्ताय, घनसाङ्ख्ययोगीश्वराय, हिरण्यवीर्याय, रुद्राय, शिष्टनाथाय, दुष्ट-विनाशाय, शून्यप्रवृत्ताय, कर्मणे, मृत्यवे, [ते.] विराट्शरीराय, निखिल धर्माय, वाग्विभूतये, निवृत्ताय, सत्पुण्य भूरिवर्चसेऽखिल धर्मदेवाय चात्मने निरुद्धाय, निभृतात्मने नमोऽस्तु । ७०३ [ते.] सर्वसत्ताय, देवाय, सन्नियामकाय, वहिरन्तरात्मने, कारणात्मने, समस्तार्थ लिङ्गाय, निर्गुणाय, वेधसे, जितात्मक साधवे नमोऽस्तु । ७०४ [व.] इस प्रकार कहकर, और प्रद्युम्न अंतरात्मा, समस्तशेषकारण, जातुर्होत्ररूप, अंतक, सर्वज्ञ, ज्ञानक्रियारूप [और] अंतःकरणवासी होनेवाले तुम्हें नमस्कार करता

रूपुंडवुनु नंतकुंडवुनु सर्वज्ञुंडवुनु ज्ञानक्रिया रूपुंडवुनु नंतःकरण वासिविधु-
नेन नीकु नमस्करिंतु ननि ॥ 705 ॥

कं. अनघा ! देव ! भवत्पद, वनरुह संदर्शनेच्छ वडलिन माकुन्
विनु वैष्णव सत्कृतमै, येनयु भवद्दर्शनंबु नीवे महात्मा ! ॥ 706 ॥

व. अदि यॆट्टिदनिन ॥ 707 ॥

कं. अनघ ! सकलेंद्रिय गुणां, जनमुनु भक्त प्रियंबु जलद श्यामं-
बुनु सौंदर्य समग्रमु, ननुपममुनु निखिल मंगळावहमगुचुन् ॥ 708 ॥

व. मरियुनु ॥ 709 ॥

सी. अळिकुलोपमलसदलक शोभितमगु नमृतांशुरेखानिभाननमुनु
समकर्ण दिव्य भूषा प्रभाकलितंबु सुंदरभ्रूनाससुरुचिरंबु
सललित कुंदकुड्मल सन्निभ द्विजपूरित स्निग्ध कपोलयुगमु
पद्मपलाशशोभन लोचनंबुनु मंदस्मितापांग सुंदरमुनु

ते. सस्मितालोक सतत प्रसन्न मुखमु
गंबु सुंदर रुचिर मंगळगळंबु
हार मणिकुंडल प्रभापूर कलित
चारु मृगराज सन्निभस्कंधयुतमु ॥ 710 ॥

व. वॆंडियु शंख चक्र गदा पद्म कलितायत बाहु चतुष्टयंबुनु वैजयंती

हूँ। इस तरह कहकर, ७०५ [व.] हे अनघ ! देव ! भवत् पद [रूपी] वनरुहों (कमलों) का संदर्शन करने की इच्छा रखनेवाले हमें, सुनो, वैष्णव-सत्कृत होकर विलसित हे महात्मा ! अपने दर्शन दो। ७०६ [व.] वह कैसा है, कहें तो ७०७ [कं.] हे अनघ ! सकल इंद्रियों के गुणों के लिए अंजन, भक्तों के लिए प्रिय, जलद (बादल) की तरह श्यामल, सौंदर्य समग्र, अनुपम, निखिल मगलावह (मंगलकर) होते हुए ७०८ [व.] और ७०९ [सी.] अलिकुल (भ्रमरों के समूह) की तरह प्रकाशमान अलकों से शोभित होनेवाले अमृतांश (चन्द्रमा) की रेखा-निभ (-समान) आनन (मुख), समकर्ण दिव्य भूषा की प्रभा से कलित (सुंदर), सुंदर भ्रू और नासा से सुरुचिर, सललित कुद-कुड्मल (-कली) सन्निभ (समान), द्विजों (दांतों) से पूरित स्निग्ध (कोमल) कपोलयुग, पद्मपलाश [की तरह] शोभन-लोचन, मंदस्मित अपांगों (कनखियों) से सुंदर, [ते.] सस्मित आलोक [से] सतत प्रसन्नमुख, कंबु के समान सुन्दर, रुचिर [एवं] मंगल गला (कंठ), हार, मणि [व] कुडल के प्रभापूर से कलित, चारु (सुंदर) मृगराजसन्निभ (समान) स्कंधों से युक्त ७१० [व.] फिर शंख, चक्र, गदा [और] पद्म [से] कलित (सुंदर) आयत

वनमालिका कौस्तुभ मणि श्री विराजितंबुनु नित्यानपायिनि यगिन यिंदिरा सुंदरी रत्न परिस्पंदंबुनं दनरि तिरस्कृत निकषोपलंबैन वक्षस्स्थलं-बुनु नुच्छ्वास निश्वासंबुलं जंचलंबुलैन वळित्रय रुचिर प्रकाशमान दळोदरंबुनु बूर्व विनिर्गत निखिल विश्वंबुनं ब्रविष्टंबु सेयुरीति नोंदु सलिलावर्त सन्निभ गंभीर नाभि विवरंबुनु बंकज किंजल्क विभासित दुकूल निबद्ध कनक मेखला कलाप शोभितश्याम पृथु नितंब बिबंबुनु नील कदळी स्तंभरुचिरोरु युगळंबुनु समचारु जंघंबुनु निम्नजानु युगळंबुनु बद्म पत्र भासुर पादद्वयंबुनु मदीयांतरंग तमोनिवारक निर्मल चंद्र शकल सन्निभ नखंबुनु गिरीट कुंडल ग्रैवेय हार केयूर वलय मुद्रिका मणि नूपुरादि विविधभूषण भूषितंबुनु निरस्त समस्त नत जन साध्वसंबुनु भक्तजन मनोहरंबुनु सर्व मंगळाकरंबुनुनैन भगवद्दिव्यरूपंबु दामस जन सन्मार्ग प्रदर्शकुंडवैन नीवु माकुं जूपि मम्मु गृतार्थुलं जेयुमनि वेंडियु निट्लनियॆ ॥ 711 ॥

सी. आत्मकु बरिशुद्धि नर्थिच वारिकि ध्येयवस्तुवु भवद्दिव्य मूर्ति
यंचित स्वर्गराज्याभिषिक्तुनकैन समधिक स्पृहणीयतमुड वीवु

(लंबे) बाहु चतुष्टय, वैजयंती, वनमालिका [और] कौस्तुभमणि [से] श्रीविराजित, नित्य अनपायिनी होनेवाली इंदिरा सुंदरीरत्न [के] परिस्पंदन से तृप्त होकर, तिरस्कृत निकष-उपल (-कसौटी) सम वक्षस्स्थल, उच्छ्वास [और] निश्वासों से चंचल वलित्रय [के] रुचिर, प्रकाशमान, दलत् (शोभायमान) उदर, पूर्व विनिर्गत निखिल विश्व को प्रविष्ट करने की रीति को पानेवाला सलिल के आवर्त (भँवर)-सन्निभ (-समान) गंभीर नाभि का विवर, पंकज के किञ्जल्क [के समान] विभासित दुकूल से निबद्ध कनक-मेखला-कलाप से शोभित श्याम पृथु नितंब का बिंब, नील-कदली-स्तंभ [की तरह] रुचिर ऊरु युगल (जाँघ), सम चारु (सुंदर) जंघाएँ, निम्न जानुयुगल, पद्मपत्रों के समान भासुर पादद्वय, मदीय अंतरंग के तम (अंधकार) का निवारक निर्मल चंद्र के शकल सन्निभ नख, किरीट, कुंडल, ग्रैवेय, हार, केयूर, वलय, मुद्रिका, मणि [और] नूपुर आदि विविध भूषणों से भूषित, निरस्त (तिरस्कृत) समस्त नत (विधेय) जन का साध्वस (भय), भक्तजनों के लिए मनोहर [तथा] सर्वमंगलाकर होनेवाला भगवद्दिव्य रूप को, जो तामस जन [को] सन्मार्ग का प्रदर्शक है, हमें दिखाकर, हमें कृतार्थ बनाइए। ऐसे कहकर फिर इस प्रकार कहा। ७११ [सी.] आत्मा की परिशुद्धि की इच्छा रखनेवालों के लिए भवत् दिव्यमूर्ति ध्येय वस्तु है। अंचित स्वर्गराज्य [में] अभिषिक्त [व्यक्ति] के लिए भी तुम समधिक स्पृहणीयतम हो। सद्भक्तियुक्त

सद्भक्ति युत भक्तजन सुलभुंडव् दुष्टात्मुलकु गड्ड दुर्लभुंड
वात्मदर्शनुलकु नरय गम्युंडवुने यथि विलसिल्लु.दनघचरित !

ते. यिट्टि निखिल दुराराध्यु नीशु निन्नु
नेट्रय सुजनुलकैन वर्णिपरादु
वरल नेव्वडु पूजिच वाडु विडुव
जालुने ? पद्मदळनेत्र ! सच्चरित्र ! ॥ 712 ॥

चं. अंनसिन भक्तियोगमुन ने भवदीय पदाब्ज मोंदगा
ननयमु गोरुवाड चटुलाग्रह भीषण वीर्य शौर्य त
र्जनमुलचे ननूनगति सर्व जगंबुलु संहरिंचु न
य्यनुपमुडैन कालुनि भयंबुनु वोंदडु सुम्मु कावुनन् ॥ 713 ॥

ते. इट्टि नी पादमूलंबु लॅव्वडेनि
बोंदि धन्यात्मुडौ नट्टि पुण्युडोंडु
मनमु लोपल गोरुने मरचियेन
नव्ययानंद ! गोविंद ! हरि ! मुकुंद ! ॥ 714 ॥

कं. हरि ! नी भक्तुल तोडनु, निरुपमगति जॅलिमि सेयु निमिषार्धमु तो
सरिगादु मोक्षमनिन, चिरशुभमगु मर्त्यसुखमु जॅप्पग नेला ! ॥715॥

भक्तजनों के लिए सुलभ हो; दुष्टात्माओं के लिए बहुत दुर्लभ हो। आत्म-दर्शकों (देखनेवालों) के लिए गम्य होकर, हे अनघचरित्र [वाले] ! [ते.] इच्छायुक्त हो विलसित होते हो। ऐसे निखिल दुराराध्य [और] ईश [होनेवाले] तुम्हें जानने के लिए, सुजन भी वर्णन नहीं कर सकते। हे पद्मदलनेत्र ! सच्चरित्र ! प्रकाशमान होने पर जो [तुम्हारी] पूजा करता है, क्या वह [उस पूजा को] छोड़ सकता है ? ७१२ [चं.] बड़े भक्तियोग से भवदीय पदाब्ज को पाने के लिए जो सदा चाहता है, वह चटुल आग्रह (अधिक क्रोध), भीषण, वीर्य, शौर्य [और] तर्जनों (धमकियों) के साथ अनून (बड़ी) गति से सर्व जगों का संहार करनेवाले उस अनुपम काल (यम) से भी भय नहीं खाता। इसलिए ७१३ [ते.] हे अव्ययानंदवाले ! गोविंद ! हरि ! मुकुंद ! जो कोई भी हो, ऐसे तुम्हारे पाद-मूल को पाकर धन्यात्मा होता है, ऐसा पुण्यात्मा भूलकर भी मन में और कुछ पाना चाहता है ? [नहीं] ७१४ [कं.] हे हरे ! ऐसा कहने पर कि मोक्ष, तुम्हारे भक्तों से निरुपम गति से स्नेह करने के अर्ध निमिष के समान नहीं है, अचिर शुभ होनेवाले मर्त्य-सुख के बारे में क्या कहना ? ७१५ [कं.] हे दुरित (पाप) का विनाशक [होनेवाले] पद

कं. दुरित विनाशक पद पं, -करुह् भवत्कीर्ति तीर्थकणचयवाह्यां-
तर सेकधूत कल्मष, पुरुषुलु धर मीद दीर्थ भूतुलु गारे ! ॥ 716 ॥

व. अट्टि भूतदया समेतुलुनु रागादि विरहित चित्तुलुनु नार्जवादिगुण युक्तुलुनु नयिन भागवत जनुल संगंबु माकुं गलुगं जेयुमिदिय मम्मनुग्रहिंचुट यनि वॅडियु निट्लनियॆ ॥ 717 ॥

चं. सरसिजनाभ ! सत्पुरुषसंग समंचित भक्तियोग वि-
स्फुरण ननुग्रहिंप बडि शुद्धमु नॊंदिनवानि चित्त म-
स्थिर वहिरंगमुं गनदु चॅंददु भूरितमस्स्वरूप सं-
सरणगुहं जिरंबु गन जालु भवन्महनीय तत्त्वमुन् ॥ 718 ॥

व. अदि यॅट्टिदनिन ॥ 719 ॥

सी. अरयंग नेमिदियंदु नीविश्वंबु विदितमै युंडु नी विश्वमंदु
नेदि प्रकाशिंचु नॆप्पुडु नट्टि स्वयंज्योति नित्यंबु नव्ययंबु
नाकाशमुनु बोलि यविरळ व्यापकमगुनात्म तत्त्वंबु नधिक महिम
दनरु परब्रह्म मगुननिपल्कि यिट्लनियॆ नविक्रियुंडॆन वाडु

ते. नॆव्व डातडु दनयंदु नॆपुडु नात्म, कार्य करण समर्थंवुगानि भेद
बुद्धि जनकंबु नादगु भूरि माय, जेसि विश्वंबु सत्यंबुगा सृजिंचॆ ॥ 720 ॥

[रूपी] पंकरुहवाले ! भवत्कीर्ति [रूपी] तीर्थों के कणचय (समूह) से बाह्य [एवं] अंतर [को] सेकधूत कल्मप (छिड़काने से दूर किये गये पाप वाले) क्या धरा पर पुरुष लोग तीर्थभूत (पवित्र) नही होते ? ७१६ [व.] ऐसे भूतदया समेत, राग आदि [से] विरहित चित्त [वाले], आर्जव आदि गुणयुक्त होनेवाले भागवत जनों का संग हमें होने दो; यही हम पर अनुग्रह करना है। इस प्रकार कहकर फिर ऐसा कहा। ७१७ [चं.] हे सरसिजनाभ ! सत्पुरुषों की संगति से समंचित भक्तियोग के विस्फुरण से अनुगृहीत होकर जो [व्यक्ति] शुद्धता को प्राप्त करता है, उसका चित्त अस्थिर वहिरंग (बाह्यलोक) को नही देखता। भूरि (बड़े) तमस् (अंधकार) स्वरूप संसरण (संसार) [रूपी] गुफा में चिर [काल] तक नही रहता, भवत् महनीय तत्त्व को देख सकता है। ७१८ [व.] वह कैसा है, कहें तो ७१९ [सी.] देखने पर, जिसमें यह विश्व विदित होकर रहता है, इस विश्व में सदा जो प्रकाशमान रहता है, वैसी स्वयं ज्योति नित्य [और] अव्यय है। आकाश की तरह अविरल व्यापक आत्मतत्त्व के अधिक महिमा से शोभित होनेवाला [व्यक्ति] स्वयं परब्रह्म हो जाता है। इस प्रकार कहकर [फिर] यों बोला। जो अविक्रिय है, [ते.] जो अपने में सदा आत्मकार्य-करण-समर्थ न होनेवाली [और] भेद बुद्धि का जनक कहलानेवाली भूरि (बड़ी) माया से विश्व की सृष्टि

आ. मरल मरल बॆक्कु मारु ली विश्वंबु
जनन वृद्धि विलय संगतुलनु
नंद जेयु चुंडु नट्टि योश्वरुडवै
तनरु निन्नु नात्मतत्त्वमुगनु ॥ 721 ॥

व. तॆलियुदुमनि वॆंडियु निट्लनियॆं। योगपरायणुलगुवारु श्रद्धा समन्वितुलै क्रिया कलापंबुल नंतःकरणोपलक्षितंबयिन भवदीय रूपंबु यजितुरु। वारु वेदागम तत्त्वज्ञानुलु नीवाद्युंडवुनु ननादियु नद्वितीयुंडवुनु माया शक्ति युक्तुंडवुनुनै विलसिल्लुचुंडुदु वट्टिमाया शक्ति चेत ॥ 722 ॥

सी. चतुरात्म ! सत्त्वरजस्तमो गुणमुलु वरुस जनिचॆनु वानि वलन
महदहंकार तन्मात्र नभोमरु दनल जलावनि मुनि सुपर्व
भूत गणात्मक स्फुरण नीविश्वंबु भिन्न रूपमुन नुत्पन्नमय्यॆ
देव ! यी गति भवदीय मायनु जेसि रूढि जतुर्विध रूपमैन

ते. पुरमु नात्मांशमुन जॆंदु पुरुषु डिद्रि-
यमुलचे विषय सुखमु लनुभविंचु
महिनि मधुमक्षिका कृत मधुवुलोलि
यतनि बुरवर्ति यगु जीवु डंड्रु मर्त्रियु ॥ 723 ॥

व. इट्टि जगत्सर्जकुंडवैन नीवु ॥ 724 ॥

सत्य ही (सचमुच विश्व की सृष्ट) की। ७२० [आ.] बार-बार अनेक बार इस विश्व में जनन, वृद्धि [और] विलय की संगतियों को पहुँचाने वाले ईश्वर बनकर प्रकाशमान होनेवाले तुम्हें आत्म तत्त्व के रूप में ७२१ [व.] जानते हैं। [इस प्रकार] कहकर फिर इस तरह कहा। योग-परायण होनेवाले [व्यक्ति] श्रद्धा [से] समन्वित होकर, क्रिया [के] कलापों से अंतःकरण [में] उपलक्षित होनेवाले भवदीय रूप का यजन (पूजा) करते हैं। वे वेद [और] आगमों [के] तत्त्व-ज्ञानी है; तुम आद्य, अनादि, अद्वितीय [तथा] माया [की] शक्ति [से] युक्त बनकर विलसित रहते हो। ऐसी माया [की] शक्ति से ७२२ [सी.] हे चतुरात्म ! सत्त्व, रज [और] तम —ये गुण क्रम से उत्पन्न हुए। उनसे महत् अहंकार [तथा] तन्मात्र [होनेवाले] नभ (आकाश), मरुत्, अनल (आग), जल, अवनि (भूमि), मुनि, सुपर्व (देवता), भूत गणात्मक-स्फुरण [से] यह विश्व भिन्न रूप में उत्पन्न हुआ। हे देव ! इस प्रकार भवदीय माया के कारण रूढि से चतुर्विध रूप होनेवाले पुर को आत्मा के अंश से प्राप्त करता है। [ते.] महि (भूमि) पर मधुमक्षिका (मक्खी) से कृत मधु [के सेवन] की तरह पुरुष इंद्रियों से विषय सुखों का अनुभव करता है। उसे पुरवर्ती होनेवाला जीव कहते हैं। ७२३ [व.] इस

कं. भूतगणंबुल चेतनँ, भूतगणंबुलनु मेघ पुंजंबुल नि-
र्धूतमुग जेयु ननिलुनि, भातिनि जरियिंप जेसि पौरुप मॉप्पन् ॥ 725 ॥

ते. रूढि दत्तत्क्रियालब्ध रूपुडवुनु
सुमहितस्फुरदमिततेजुडवु जंड
वेगुडवु नयि घन भुजा विपुल महिम
विश्वसंहार मर्थिगाविंतु वीश ! ॥ 726 ॥

व. अदि यॅट्लननिन ॥ 727 ॥

कं. इति कर्तव्य विचारक, -मतिचे दगनॅप्पुडं ब्रमत्तंबुनु सं-
चित विषय लालसमुनू-, र्जित लोभमुनैन यट्टि सृष्टि गडंकन् ॥ 728 ॥

ते. अप्रमत्तुंड वगुचु वद्माक्ष ! नीवु
म्रिगुदुवु चाल नाकट ग्रेगुचुंडि
नालुकलु ग्रोयु भूरि पन्नगमु वात
वडिन यॅलुकनु भक्षिचु पगिदि ननघ ! ॥ 729 ॥

चं. अनिशमु नस्मदीय गुरुडैन सरोरुह-संभवुंडु न-
म्मनुवुलु नात्म संशयमु मानि भजिंचु भवत्पदाब्जमुल्
मनमुन निलिप युष्मदवमान महाव्यय जेंदुनट्टि स-
ज्जनुडु परित्यजिंचुनॅ भुजंगमतल्पक भक्तकल्पका ! ॥ 730 ॥

प्रकार के जगत्सर्जक (जगत् का सृष्टिकर्ता) होनेवाले तुम ७२४ [कं.] भूत-गणों के द्वारा ही भूतगणों को, मेघपुंजों को निर्धूत करनेवाले अनिल की तरह, पौरुष के बढ़ने पर, प्रवर्तित कर ७२५ [ते.] हे ईश ! रूढि से तत्-क्रिया-लब्ध-रूप वाले तथा सुमहित स्फुरत्-अमित तेजस्वी [और] चंड वेग वाले बनकर घन भुजाओं की विपुल महिमावाले [तुम] इच्छा करके विश्व [का] संहार करते हो। ७२६ [व.] वह कैसा है, कहें तो ७२७ [कं.] इति-कर्तव्य के विचार की मति से सदा प्रमत्त, संचित विषयों के प्रति लालस [और] अर्जित लोभ वाली सृष्टि [को] सप्रयत्न ७२८ [ते.] हे पद्माक्ष ! तुम [उस सृष्टि को] अप्रमत्त होते हुए, ऐसे निगल लेते हो जैसे, हे अनघ ! अधिक भूख से व्याकुल पन्नग [अपने] जीभों को फैलाकर अपनी पकड़ में आये हुए चूहे को खा डालता है। ७२९ [चं.] हे भुजंगमतल्पक (शेषशायी) ! भक्त-कल्पक (कल्पतरु) ! सदा अस्मदीय गुरु होनेवाला सरसीरुह-संभव (ब्रह्मा) [और] मनु आत्म-संशय को छोड़कर तुम्हारे जिन चरणों का भजन (सेवा) करते हैं, ऐसे पद (रूपी)-अब्जों को मन में स्थिर करके, युष्मत् (तुम्हारे द्वारा किए गए) अवमान की महती व्यथा को पानेवाला सज्जन [तुमको] परित्याग करता है ? (नहीं) ७३० [कं.] इसलिए मेरे और सूरि (पंडित) जनावलि

कं. कावुन नाकुनु सूरि ज-
नावळिकिनि सर्वसंशयंबुलु वापं
गावनु ग्रोवनु दगु गति
नीवनि विनुतिंचि नट्टि यीस्तव मॅलमिन् ॥ 731 ॥

व. रुद्रुंडु प्रचेतसुल कॅरिंगिंचि वॅंडियु निट्लनियॆ। प्रचेतसुलारा! यिट्टि योगादेश नामकंबैन यी स्तोत्रंबु वहु वारावृत्ति चे वठिंचि मनंबुल धरियिंचि समाहित चित्तुलै मीरंदरु नादरंबुन विश्वास युक्तुलुनु स्वधर्माचारवंतुलुनु भगवदर्पिताशयुलुनुनै जपियिंचुचु सर्वभूतावस्थितुंडु नात्मारामुंडुनैन सर्वेश्वरुनि नुतिंचुचु ध्यानंबु सेयुचु बूजिंचु चुंडुडु तॊलिल यी स्तोत्रंबु भगवंतुडैन पद्मसंभवुंडु सिसृक्षुवगुचु नात्मजुलमैन माकुनु सृजियिंप निच्चगिंचु भृग्वादुलकुनु नॆरिंगिंचॆ। मेमु नाभृग्वादुलुनु प्रजा सर्गंबुनंदु ब्रह्मचोदितुलमै यी स्तोत्रंबुनं जेसि विध्वस्त समस्त तमोगुणुलमै विविध प्रजासर्गंबु गाविंचितिमि। कावुन नीस्तोत्रंबु नॆल्लप्पुडु नेकाग्रचित्तुंडुनु वासुदेव परायणुंडु नै यॆव्वंडु जपियिंचु वाडु वेगंबॆ श्रेयस्सुनु बॊंदि तदीय ज्ञान प्लवंबुन व्यसनार्णव रूपंबयिन संसारंबुनु सुखतरंबुग दरियिंचुनट्टि मदुपदिष्टंबयिन श्रीहरिस्तवंबु नॆव्वंडु सदुवुचु बुरा-

के सर्वसंशयों को दूर करने एवं [हमारी] रक्षा करने के लिए युक्त गति तुम ही हो। ऐसी विनति करनेवाला यह स्तव (स्तोत्र) प्रेम के साथ ७३१

[व.] रुद्र ने प्रचेतसों को समझाकर फिर इस तरह कहा, हे प्रचेतस! ऐसे योगादेश नामक इस स्तोत्र को आचार्य के उपदेश से वहुत बार आवृत्ति करके, मन में धारण करके, समाहित चित्त [वाले] बनकर तुम सब लोग आदर के साथ विश्वासयुक्त, स्वधर्म का आचरण करनेवाले [और] भगवान को अर्पित आशय (मन) वाले बनकर जप करते हुए सर्वभूतों में अवस्थित [तथा] आत्माराम होनेवाले सर्वेश्वर की स्तुति करते हुए, [और] ध्यानयुक्त हो पूजा करते रहो। पूर्व में इस स्तोत्र को भगवान पद्मसंभव (ब्रह्मा) ने सिसृक्षु (सृष्टि करने की इच्छा रखनेवाला) होते हुए आत्मज होनेवाले हमें [और] सृजन करने की इच्छा करनेवाले भृगु आदि को समझाया। हमने [और] भृगु आदियों ने प्रजा-सर्ग (-सृष्टि) में ब्रह्मचोदित होकर इस स्तोत्र के कारण विध्वस्त समस्त तमोगुण (नष्ट हुए समस्त तमोगुण वाले) बनकर, विविध प्रजा का सर्ग (सृष्टि) किया। इसलिए इस स्तोत्र को सदा एकाग्रचित्त वाला [और] वासुदेवपरायण बनकर जो जप करता है, वह शीघ्र ही श्रेयस् पाकर तदीय ज्ञान रूपी प्लव (नाव) से व्यसनों के अर्णव (समुद्र) रूपी संसार को सुखतर हो (सरलता से) पार करेगा। ऐसे मदुपदिष्ट (मुझसे उपदेशित) यह हरिस्तव पढ़ते

राध्युंडैन श्रीहरि बूजिचु चाडु मदुक्त स्तोत्र गान संतुष्टुंडुनु श्रेयस्सुलकु नेकाश्रय भूतुंडुनु नगु श्रीमन्नारायणुनि वलन समस्ताभीष्टंबुलं बॊंदु। नॆव्वंडेनि प्रभातंबुन लेचि प्रांजलियु श्रद्धासमन्वितुंडुनै यी मंगळस्तव-राजंबुनु विनिन विनिपिंचिनं गर्म बंध विमुक्तुंडगु ननि मरियु निट्लनियॆ ॥ 732 ॥

कं. नर देवतनयुलारा !, पुरुषाधीशुंडु परम पुरुषुडनगु नी-
श्वरु सुस्तोत्रमु मीका, -दरमुन दॆलिपितिनि मीरु दद्द्यु भक्तिन् ॥ 733 ॥

कं. एकाग्रचित्तुलुनु सु, श्लोकुलुनै जपमु सेयुचुनु घन तपमुं
गैकॊनि चेसिन मीकुनु, जेकुरु महितेप्सितार्थ सिद्धि गडंकन् ॥ 734 ॥

अध्यायमु—२५

कं. अनि यी गति नुपदेशं, बॊनरिंचि सदाशिवुंडु नॊगि वारलचे-
तनु बूजितुडै वारलु, गननंतर्धानुडय्यॆ गौतुक मॊप्पन् ॥ 735 ॥

व. अंत ॥ 736 ॥

ते. तिवुट वारलु रुद्रोपदिष्टमैन
यच्युत स्तवमु जपिंचु चयुत संख्य

हुए जो दुराराध्य श्रीहरि की पूजा करेगा, वह मदुक्त (मुझसे उक्त) स्तोत्र-गान से संतुष्ट [और] श्रेयों का एकाश्रयभूत होनेवाले श्रीमन्नारायण से समस्त अभीष्ट प्राप्त करेगा। जो कोई भी हो, प्रभात समय में उठ (जाग) कर, प्रांजलि [और] श्रद्धा-समन्वित होकर यह मंगलस्तवराज सुनेगा [या] सुनाएगा, कर्मबंध [से] विमुक्त होगा। इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। ७३२ [कं.] हे नरदेव के तनय (राजपुत्र) ! [मैंने] पुरुषाधीश [और] परमपुरुष होनेवाले ईश्वर का सुस्तोत्र तुमको आदर के साथ समझा दिया। तुम लोग बड़ी भक्ति के साथ ७३३ [कं.] एकाग्र-चित्त [वाले] [और] सुश्लोक बनकर, जप करते हुए प्रयत्न करते, घन (बड़ा) तप करने पर, तुम लोगों को महित ईप्सित (इच्छाओं की) अर्थ-सिद्धि प्राप्त होगी। ७३४

अध्याय—२५

[कं.] कहकर, इस प्रकार उपदेश देकर, सदाशिव क्रम से उनसे स्वयं पूजित होकर, उनके देखते रहने पर [और उनके] कुतूहल के बढ़ने पर, अंतर्धान हो गया। ७३५ [व.] तब ७३६ [ते.] इच्छापूर्वक उनके रुद्र

वत्सरमु लुग्र तपमु दुर्वारः वारि
मध्यमुन जेयुचुन्न समयमु नंदु ॥ 737 ॥

नारदुंडु प्राचीन बर्हिकि ज्ञानमार्गमुनु दॆलिय जेयुट

व. अंतं गर्मासक्त चित्तुंडैयुन्न प्राचीन बर्हि कडकु नध्यात्म वेदियुं गृपाळुवु-नैन नारदुंडु सनुदेंचि या राजुनकु ज्ञानबोधंबु सेयु कॊरकु नतनितो निट्लनियॆ। राजा ! यी कर्मंबुनं जेसि यॆट्टि श्रेयस्सु नभिलषिचु-चुन्नवाड वट्टि यरिष्ट निरसनंबु नभीष्ट प्राप्तिकरंबु नयिन श्रेयंबी कर्मंबुवलन लभिंपदनिनं प्राचीन बर्हि नारदुनकिट्लनियॆ ॥ 738 ॥

सी. अनघ ! मुनींद्र महाभाग येनु गर्मापहत ज्ञानुडगुचु मोक्ष
मॆरुंगंग लेनेति निट्टि ना किप्पुडु गडु विमलंबुनु गर्म बंध
नाशकंबुनु नगु ज्ञानोपदेशंबु गाविंपु मति दयाकार.! कूट
धर्मंबुलगु गेह ततुलंदु जॆंदि जाया तनूजातधनाधिकमुलॆ

ते. भूरि पुरुषार्थमुलु गाग बुद्धि दलचु
मति विहीनुंडु संसार मार्गमुलनु
दग बरिभ्राम्यमाणुडै नॊगिलि मोक्ष
पदमु नॊंदंग जालडु भव्यचरित ! ॥ 739 ॥

से उपदिष्ट अच्युत के स्तव का जप करते हुए, दस हज़ार वर्ष दुर्वार वारि (जल)-मध्य में उग्र तप करते समय ७३७

नारद का प्राचीनबर्हि को ज्ञान का मार्ग समझा देना

[व.] तब घन-कर्म में आसक्त चित्तवाला बनकर रहनेवाले प्राचीनबर्हि के पास अध्यात्मवेदी [तथा] कृपालु होनेवाले नारद के आकर उस राजा को ज्ञान का बोध कराने के लिए उससे इस प्रकार कहा— हे राजा ! यह कर्म करके जिस श्रेयस् की अभिलाषा कर रहे हो, अरिष्ट का निरसन [करनेवाला तथा] अभीष्ट प्राप्ति-कर (-प्रद) होनेवाला वह श्रेय इस कर्म से लभ्य नहीं होता। ऐसा कहने पर प्राचीनबर्हि ने नारद से इस प्रकार कहा। ७३८ [सी.] हे अनघ ! मुनींद्र ! महाभाग ! मैं कर्मों से अपहत (मार खाए हुए) ज्ञानी बनकर, मोक्ष को नहीं जान सका। ऐसे मुझे अब बहुत विमल और कर्म-बन्धों का नाश करनेवाले ज्ञान का उपदेश करो, अतिदया के आकारवाले ! कूट धर्म वाले गेह-ततियों (गृहों के समूहों) में लगकर जाया,-तनूजात, [ते.] धन आदि को ही भूरि पुरुषार्थों के रूप में बुद्धि से मानकर, मतिहीन [व्यक्ति] संसार के मार्गों में अधिक परिभ्राम्यमान बनकर हे भव्यचरितवाले ! विकल होकर मोक्ष का पद प्राप्त नहीं कर सकता। ७३९ [कं.] ऐसा बोलने से उससे वह [इस

कं. अनवुडु नतनिकि नतडुनु, ननघा यी यध्वरंबुलंदुनु गृप मा-
लिन नीचे विशसिपं, जनि कूलिन पशुलु वेल संख्यलु गनुमा ॥ 740 ॥

व. कावुनं वशु व्रातंबुलु द्वदीय वैशसंबुनु स्मरिंचुचुन्नवि यगुचु लोह यंत्रमय श्रृंगंबुल चेत नॆप्पुडु नीवु परलोकंबु नॊंदॆद वप्पुड निन्नु हिंसितुमनि भवदीय मृतिकि नॆदुरु चूचुचुन्न विट्टि संकटंबु नॊंदंगल नीकु निस्तारकं बयिन यॊवक यितिहासंबु गल दॆरिंगितु विनुमनि यिट्लनियॆ ॥ 741 ॥

पुरंजनोपाख्यानमु

सी. भूमीश ! विनवय्य पूर्वकालमुन बुरंजनुंडनु नॊवक राजु गलडु
नतनिक विज्ञातुडनु.पेर दगिलि विज्ञात चेष्टितुडगु सखुडु गलडु
ना पुरंजनुडु पुरान्वेषियै धराचक्रंबु गलयंग संचरिंचि
तन कनुरूपमै पॆनुपॊंदु पुर मॆंदु वीक्षिप जालक विमनुडगुच

ते. ने पुरमुलुर्वि वॊडगनॆ ना पुरमुलु
गाममुल गोरु तनकु नवकाममुलनु
वॊंदुटकु वानिनि ननर्हंमुलुग दन म-
नमुन दलचि यॊकानॊक नाडतंडु ॥ 742 ॥

व. चनुचुन्न समयंबुन हिमवत्पर्वत दक्षिण सानुवुलंदु ॥ 743 ॥

प्रकार बोला] अनघ ! इन अध्वरों में कृपारहित होनेवाले तुमसे हिंसा पाकर जो पशु मर गये है, उनकी संख्या हजारों में है, देखो न। ७४०
[व.] इसलिए पशु-व्रात (-समूह) त्वदीय वैशस (हिंसा) का स्मरण करते हुए, लोहयंत्रमय श्रृंगों से [युक्त हो], जब तुम परलोक में जाओगे तब तुम्हारी हिंसा करेंगे —ऐसा कहकर भवदीय मृति की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसे कष्ट को [भविष्य में] पानेवाले तुम्हारे लिए निस्तारक (पार करानेवाला) एक इतिहास (कथा) है। समझा दूँगा। सुनो। इस प्रकार कहकर यों बोला। ७४१

पुरंजन का उपाख्यान

[सी.] हे भूमीश ! सुनो ! पूर्वकाल में पुरंजन नामक एक राजा था। उसका एक सखा था जिसका नाम था अविज्ञात और वह विज्ञात चेष्टावाला था। वह पुरंजन पुरों का अन्वेषी (ढूंढ़नेवाला) बनकर, धराचक्र को ढूंढ़ डालकर, अपने लिए अनुरूप होकर विलसित होनेवाले पुर को कहीं भी वीक्षण न कर सक, विमन होते हुए, [ते.] जिन-जिन पुरों को उर्वि (भूमि) पर देखता था, वे पुर काम (इच्छाएँ) चाहते थे। स्वयं को उन कामों को पाने के लिए अपने मन में अनर्ह समझकर, एक दिन उसने ७४२ [व.] जाते समय हिमवत्पर्वत की दक्षिण सानुओं में ७४३

सी. वर नव द्वार कवाट गवाक्ष तोरण देहळी गोपुरमुल नोप्पि
प्राकारयंत्र वप्र प्रतोळी परिखाट्टालकोपवनाळि दनरि
सौवर्ण रौप्याय सघन श्रृंगंबुल रमणीय विविध गेहमुल मिंचि
रथ्या सभाचत्वर ध्वज क्रीडायतनसुचैत्यापण तति दनर्चि

ते. मरकत स्फटिक विदूर मणि विनूत्न
मौक्तिकायत खचित हर्म्यमुलु गलिगि
विद्रुमद्रुम वेदुल वॅलयु नोक
पुरमु गनॅ भोगवति कॅन बोलु दानि ॥ 744 ॥

व. इट्लु गनुंगोनि यनंतरंब मुंदटं बुर बाह्यांतरंबुन दिव्य द्रुमलता कुंज-पुंजंबुनु समद नदद्विहंगमत्त मधुकर कुल कोलाहल संकुल जलाशयशोभितं-बुनु हिम निर्झर बिंदु .संदोह परिस्पंदकंदळित मंदमलय मरुदुच्चलित प्रवाळ विटप नळिनी तटबुनु बांथ जन मनोरंजनाह्वान बुद्धि जनक कलहंस राजकीर कोकिलालाप विराजमानंबुनु मुनिव्रत नानाविध वनमृग व्रात बाधारहितंबुनु नैन पुर बाह्योद्यान वनंबु नंदु यादृच्छिकंबुग

[सी.] वर (श्रेष्ठ) नव (नूतन) द्वारों, कवाटों, गवाक्षों, तोरणों, देहलियों [तथा] गोपुरों से शोभायमान होकर, प्राकारों, यंत्रों, वप्रों (बड़ी सड़कों), प्रतोलियों, खंदकों, परिखाओं, अट्टालिकाओं [तथा] उपवनालियों से व्याप्त होकर, सौवर्ण्य (स्वर्णमय) [और] रौप्याय (चाँदी के) सघन (सांद्र) श्रृंगों में रमणीय [और] विविध गेहों से श्रेष्ठ बनकर, रथ्याओं (सड़कों), सभाओं, चत्वरों (चौक), ध्वजों, क्रीडायतनों (क्रीडास्थलों), सुचैत्यों (यज्ञशालाओं) [एवं] आपण-तति (दूकानों के समूह) से व्याप्त होकर, [ते.] मरकतों, स्फटिकों, विदूर मणियों, विनूत्न मौक्तिकों से खचित (जड़े हुए) हर्म्यों से भरकर विद्रुम द्रुमों की वेदियों (चबूतरों) से प्रकाशमान होनेवाले [और] भोगवती के समान रहनेवाले एक पुर को देखा। ७४४

[व.] इस प्रकार देखकर, अनंतर सामने पुर के बाह्य अंतर में (आँगन मे), दिव्य द्रुम-लता-कुंजों के पुंज (समूह) से [युक्त], समद नदत् (कल-कल ध्वनि करनेवाले) विहंग, मत्त मधुकर-कुल [के] कोलाहल से संकुल जलाशय से शोभायमान, हिम-निर्झर के बिंदु-संदोह से परिस्पंद [और] कंदलित मंदमलय मरुत् [से] उच्चलित प्रवाल-विटपों [और] नलिनी तट से युक्त, पांथ-जनों के लिए आह्वान (निमंत्रण) करने की बुद्धि-जनक (बुद्धि को उत्पन्न करनेवाले) कलहंस, राजकीर, कोकिलाओं के आलाप से विराजमान, मुनिव्रत [के लिए] नानाविध वनमृग के व्रात (समूह) की बाधा से रहित होनेवाले पुर के बाह्य उद्यान वन में, यदृच्छा से एकैक शतनायक होनेवाले अनुचर दशक के, पंच मस्तक सर्प प्रतीहार के साथ आने पर, आनेवाली भर्त्रन्वेषिणी (पति के लिए अन्वेषण करनेवाली) कामरूपिणी

नेकैक शतनायकंबैन यनुचर दशकंबुनु वंच मस्तक सर्प प्रतीहारंबुनु वोड-
रा जनुदेंचुचुन्न भर्त्रन्वेषिणियुं गाम रूपिणियु नवोढयु नयिन यट्टि ॥745॥

सी. घन सम विन्यस्तकर्णकुंडल रुचुल् गंड भागंबुल निंडि पर्व
दम्मिरेकुल सिरि दटमटपग जालु मॆऱुगु गन्नुलु दल दिरिगि राग
जघन संकलित पिशंगनी विद्युति कनक कांची रुचि गरमु पॆनुप
जरण सरोज भासुर चलन्नूपुर झणझण ध्वनि नर्म सरणि जूप

ते. ललित यौवन लक्ष्मी विलासभासु-
रोदय व्यंजित प्रभायुक्त पीन
सम निरंतर कुच कुट्मलमुल व्रीड
जॆंदि पय्यॆद गप्पु वालेंदु मुखिनि ॥ 746 ॥

व. मरियुनु बालयु सुदतियु गजगामिनियु नयिन यॊक्क प्रमदोत्तमं गांचि ॥ 747 ॥

कं. तरमिडि प्रेमोद्गमै, मरु विड्लंबोलु कन्बॊमलु गल तरुणी
सरसापांग विलोकन, शर परिविद्धांगुडगुचु जनविभु डनियॆन् ॥ 748 ॥

कं. ऎव्वरि दानवु जनकुं, डॆव्वडु पेरेमि भृत्युलीपदि यॊकरि
वॆव्वरु सतु लॆव्वरु मरि, यिव्वनमुन नुंड गार्य मॆद्दि मृगाक्षी ? ॥ 749 ॥

[तथा] नवोढ़ा होनेवाली ७४५ [सी.] घन [और] सम [रूप] में विन्यस्त कर्णो के कुंडलों की रुचि (कांति) से गंडस्थलों के भरकर प्रकाशमान होने पर, पद्म-पत्रों की श्री (कांति) को अपहृत करनेवाले प्रकाशमान नेत्रों के मुख में रहने पर, जघनों पर सकलित पिशंगनी-विद्युति के कनक-कांची रुचि को अधिक करने पर, चरण रूपी सरोजों में भासुर (प्रकाशमान) हो चलत् (हिलनेवाले) नूपुरों की झण-झण के नर्म-सरणि (सरस ध्वनि) के दिखने पर, [ते.] ललित यौवन की लक्ष्मी के विलास से भासुर (प्रकाशमान) उदय के व्यंजित (दिखाई देनेवाली) प्रभा [से] युक्त [हो] निरंतर (सदा) कुच [रूपी] कुट्मों (कलियों) की लज्जा को पाकर, आँचल [से] ढँक लेनेवाली बालेंदुमुखी को ७४६ [व.] और बाला, सुदती [तथा] गजगामिनी होनेवाली एक प्रमदोत्तमा (उत्तम स्त्री) को देखकर ७४७ [कं.] अत्यधिक प्रेमोद्गत हो, मदन के धनुष की तरह होनेवाले भौंहों से युक्त तरुणी के सरस अपांगों (कनखियों) के विलोकन [रूपी]-शरों से परिविद्ध (विध गए) अंगवाला होते हुए जन-विभु ने कहा। ७४८ [कं.] [तुम] किसकी हो ? [तुम्हारा] जनक कौन है ? [तुम्हारा] नाम क्या है ? इन ग्यारहों में भृत्य कौन है ? सतियाँ कौन हैं ? हे मृगाक्षी ! इस वन में रहने का कारण क्या है ? ७४९ [कं.] भवदीय पुरस्सर (सामने) स्थित पवन-अशन (सर्प)

कं. भवदीय पुरस्सरुडगु, पवनाशनु डॆव्वडति कृपा मति नाकुन्
विवरिंपु मनुचु वॆंडियु, धवळेक्षण जूचि धरणिधवु डिट्लनियॆन् ॥750॥

सी. तरलाक्षि पति यगु धर्मु नन्वेषिंप जरियिंचु ह्री यनु सतिवॊ काक
रुद्रनन्वेषिंचु रुद्राणिवो ? काक ब्रह्मनु वॆदकु भारतिवॊ ? काक
नारायणुनि भक्ति गोरि यन्वेषिंचु निंदिरवो ? काक यॆव्वरीवु ?
त्वत्पाद कामनत्वमुननु संप्राप्त सकल कामुंडगु सरसु नॆट्टि

ते. वानि वॆदकॆदु तरुणी भवत्कराग्र
पद्मकोशंबु नेडॆंदु बतितमय्यॆ ?
नाकु नॆरिंगिंप दगुदु विवेक चरित !
यनि नृपालुडु मरियु निट्लनियॆ सतिकि ॥ 751 ॥

कं. कर मॊप्पग नी विट्टु भू-
चरवगुटन् ह्रीवि शिववु शारदवुनु सा-
गरकन्यवु गाकुंडुट
दरुणी ! पॊडगंटि ननि पदंपडि पलिकॆन् ॥ 752 ॥

सी. मॊनसि यदभ्र कर्मुडनैन नाचेत निपुडु पालितमैन यी पुरंबु
सरसिजोदरुनि भुजापालितोदात्त ललित वैकुंठ मलंकरिंचु

कौन है ? हे अति कृपामतिवाली ! मुझे समझाओ। ऐसा कहते हुए फिर [उस] धवलेक्षणा को देखकर, धरणीधव (राजा) ने इस प्रकार कहा। ७५० [सी.] हे तरलाक्षि ! [तुम अपने] पति-धर्म का अन्वेषण करने के लिए विचरनेवाली ह्री नामक सती तो नहीं हो ? रुद्र का अन्वेषण करनेवाली रुद्राणी हो क्या ? ब्रह्मा को ढूँढ़नेवाली भारती हो क्या ? भक्तियुक्त हो नारायण का अन्वेषण करनेवाली इंदिरा तो नहीं हो ? फिर तुम कौन हो ? त्वत् (तुम्हारे) पादों की कामना करने से ही संप्राप्त-सकल-काम (-इच्छा) वाले किस सरस [पुरुष] को ढूँढ़ रही हो ? [ते.] हे तरुणी ! भवत् कर (हाथ) का अग्र [भाग का] पद्मकोश आज कहाँ पतित हुआ है ? मुझे समझा सकती हो न। हे विवेक चरितवाली ! इस प्रकार कहकर नृपाल ने [उस] सती से फिर इस तरह कहा। ७५१ [कं.] तुम अच्छी तरह इधर भूचरा (भूमि पर विचरण करनेवाली) होने से तुम ह्री, शिवा, शारदा या सागर-कन्या नहीं हो। हे तरुणी! मैंने [इसे] देख लिया है। इस प्रकार कहकर फिर कहा। ७५२ [सी.] प्रयत्न करके यत्-अभ्र-कर्मी होनेवाले मुझसे पालित इस पुर को, अब तुम अलंकृत करोगी (मुझे स्वीकार करोगी) तो सरसिजोदर (विष्णु) की भुजाओं से पालित उदात्त वैकुंठ के समान, जो इंदिरा सुंदरी से अलंकृत है, बन जाएगा। हे

निंदिरासुंदरि चंदंबुननु नीवलंकरिंप गडंगु पंकजाक्षि
यदि गाक तावकीनापांगरुचि मोहितांतरंगुंडनैनट्टि नन्नु

ते. महित सव्रीड भाव सन्मंदहास
चारु विभ्रम भ्रूलता प्रेरितुडग
दनरु भगवंतुडगुनट्टि मनसिजुंडु
पडति ! युडुगक पीडिंप दॊडगॆ निपुडु ॥ 753 ॥

व. कावुन ॥ 754 ॥

चं. तरुणि सुतारलोचनयुतंबुनु मंजु सुधा समान भा-
सुर मृदु वाक्य युक्तमुनु शोभित कोमल लंबमान सुं-
दर चिकुराभिराममं नु.ारमु नैन भवन्मुखाब्जमुन्
सुरुचिर लील नॆत्तिननु जूडुमु सिग्गुनु जॆंद नेटिकिन् ? ॥ 755 ॥

व. अनि यिव्विधंबुन नधीरुंडै पलुकु पुरंजनुं जूचि या प्रमदोत्तम वीर मोहित-
यै सस्मितानन यगुचु नानंदंबु नॊंदि यिट्लनियॆ ॥ 756 ॥

कं. पुरुषवर ! नाकु नीकुनु, गुरुवुनु नाममुनु गुलमु गोरि यॆरुंग नी
पुरमुन नुंडुदु गानी, पुरमुनु निर्मिचिनट्टि पुरुषु नॆरुंगन् ॥ 757 ॥

कं. वीरलु नासखुली लल, ना रत्नमु लार्य विनुत नाचॆलु लो वृ-
द्धोरग मे निद्रिपग, धीरत मेलकांचि पुरमु धृति वालिचुचुन ॥ 758 ॥

पंकजाक्षी ! इसके अतिरिक्त तावकीन (तुम्हारी) अपांग (कनखियों की) रुचि (कांति) से मोहित अंतरंग वाले, [ते.] मुझे महित सव्रीडा (लज्जा के साथ)-भाव, सत्-मंदहास, [तथा] चारु (मनोहर) विभ्रम (विलासयुक्त)-भ्रूलता से प्रेरित हो प्रकाशमान होनेवाला भगवान मनसिज (मन्मथ), हे स्त्री ! विना छोड़े अब [मुझे] पीड़ित करने लग गया है। ७५३ [व.] इसलिए ७५४ [चं.] हे तरुणी ! सु (अच्छे) तार-सहित लोचनों से युक्त और मंजु सुधा के समान भासुर मृदु वाक्यों से युक्त और शोभित और कोमल लंबमान (दीर्घ) सुंदर चिकुरों (अलकों) से अभिराम (सुंदर) [तथा] उदार होनेवाला भवत् (अपना) मुख [रूपी]-अब्ज को सुरुचिर लीला से उठाकर, मुझे देखो। लज्जा करना क्यों ? ७५५ [व.] इस प्रकार कहकर इस तरह अधीर होकर बोलनेवाले पुरंजन को देखकर, उस प्रमदोत्तमा ने वीरमोहिता बनकर सस्मितानना (मंदहास से युक्त आनन वाली) होते हुए, आनंद पाकर इस प्रकार कहा। ७५६ [कं.] हे पुरुषवर ! मेरे [और] तुम्हारे लिए गुरु, नाम या कुल को जाने विना इस पुर में रहती हूँ। मैं उसे नहीं जानती जिसने इस [पुर] का निर्माण किया है। ७५७ [कं.] ये मेरी सखियाँ हैं। हे आर्यों से

व. वॅंडियु निट्लनियॅ ॥ 759 ॥

सी. मनुजनायक ! नीवु मद्भाग्य वशमुन निटकु नेतेंचिति विपुड नीकु
मंगळंबगु नीवु महितेंद्रिय ग्राम भोग्यंबुलगु कामपुंजमुलनु
नर्थि संपादितु वनघात्म यी नवद्वार प्रयुक्तमै तनरु पुरमु
नीवु गैकॉनि येलु नीकंटॆ निदुकु नधिकु डन्युंडु लेडनघ यिदु

ते. मदुपनीतमुलैन काममुल ननुभ-
विंपिचुनु समाशत मधिष्ठिपु मॆलमि
गोरि नी कंटॆ ब्रियुलु नॆव्वारु नाकु
नरसि चूडंग मनुजेंद्र ! यवियु गाक ! ॥ 760 ॥

व. मरियु रतिज्ञान विहीनुंडु नकोविदुंडु निहपर चिंता शून्युंडु बशु प्रायुंडु त्वदन्युंडु नैन वानि नॆव्वनि वरियिंतु गृहस्थाश्रममंदु धर्मार्थ काम मोक्ष प्रजानंदंबुलुनु यशंबुनु यति वेद्यंबुलु गानि रजस्तमोविहीन पुण्यलोकंबु-लुनु गलुगु बितृ देवर्षि मर्त्यभूतगणंबुलकुं दनकु नीलोकंबुन गृहस्थाश्रमंबु सर्व क्षेमार्थंबयिन याश्रमं बंड्रु गावुन वदान्युंडवु, वीर विख्यातुं-

---

विनुत ! ये ललना-रत्न मेरी सखियाँ हैं। यह वृद्ध उरग (सर्प) मेरे सो जाने पर, धीरता के साथ जागकर, धृति (धैर्य) से [इस] पुर का पालन करता है। ७५८ [व.] फिर इस प्रकार कहा। ७५९ [सी.] हे मनुजनायक (राजा) ! तुम मेरे भाग्यवश यहाँ आ गये हो ! अब तुम्हारा मंगल होगा। तुम महित इंद्रियों के ग्राम (समूह) से भोग्य होनेवाले काम-पुंजों (इच्छाओं के समूहों) को इच्छापूर्वक कमाओगे (प्राप्त करोगे)। हे अनघात्म ! नव द्वारों से प्रयुक्त हो प्रकाशमान होनेवाले इस पुर को लेकर तुम पालन करो। तुमसे बढ़कर इसके लिए अधिक [योग्य] अन्य कोई नही है। [ते.] हे अनघ ! इसमें मेरे उपनीत (समीप लाये हुए) कामों (इच्छाओं) का अनुभव (उपभोग) करते हुए समाशत हो अधिष्ठित हो जाओ। हे मनुजेंद्र ! सोचकर देखने से संतोष के साथ इच्छा करने के लिए तुमसे बढ़कर मेरे लिए और कौन प्रिय हैं ? इसके अतिरिक्त ७६० [व.] और रतिज्ञानविहीन और अकोविद और इह-पर चिंताशून्य और पशुप्राय [और] त्वदन्य (तुमसे अन्य) होनेवाले किसे वर लूंगी ? (वरण करूँगी ?) गृहस्थाश्रम में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, प्रजा-आनंद और यश और यतियों को भी वेद्य न होनेवाले रज [तथा] तम [से] विहीन पुण्यलोक प्राप्त होते है। कहते हैं कि पितृदेव, ऋषि [और] मर्त्यभूत गणों के लिए और अपने को इस लोक में गृहस्थाश्रम सर्व क्षेमार्थ होनेवाला आश्रम है। इसलिए वदान्य, वीरों में विख्यात, प्रिय-दर्शन, [और] स्वयं प्राप्त होकर भोगिभोग (साँप का फन) सदृश भुजा-

डवु, त्रियदर्शनुंडवु, स्वयं प्राप्तुंडवु नयि भोगि भोग सदृश भुजा दंडंबुलचे नॉप्पु भवादृशुं दगिलि मादृश यगु कन्य वरियिंपकुंडुने यनि वॅडियु ॥ 761 ॥

कं. करुणारसपरिपूर्ण, स्फुरित स्मित रुचि विलोक पुंजमु चेतं
गर मॅथि दीन जन भय, हरणुडवै संचरिंपु मखिल जगमुलन् ॥ 762 ॥

कं. अनि यी गति वलिकिन या
वनजाक्षि बुरंजनुंडु वरियिंचि मुदं-
बुन नन्योन्य प्रीति
दनरुचु दत्पुरमु सॉच्चि धन्युंडगुचुन् ॥ 763 ॥

चं. शतसमकालमप्पुरि नजस्रमु भूरि समस्त सौख्य सं-
गतुल दर्नाचि वंदि जन गायक सद्विनुतोपगान मो
दित मति नॉप्पि सुंदर सती जन सेवितुडै नृपाल को-
चित ललित स्थलंबुल बसिचुचु क्रीडलु सल्पु चुंडगन् ॥ 764 ॥

कं. नरनाथुडु लोकभयं, करगति वर्तिचु ग्रीष्मकालमु दोपं
दरळ लहरीमनोहर, वर ह्लादिनि सलिल मंदु वसियिंचे दगन् ॥765॥

व. इट्लु वसियिंचि कतिपयदिनंबु लरुगु समयंबुन ॥ 766 ॥

सी. अवनीश्वरोत्तम ! यप्पुरंबुन नाल्गु वंकल नुन्न गवकुलु विनुमु
तूर्पु विवकुननु नैदुनु दक्षिणोत्तरंबुल रेंडु वश्चिमंबुननु रेंडु

दंडों से प्रकाशमान भवादृशों (तुम्हारे जैसों) को पाकर मदृशा (मेरी जैसी) कन्या वरण किए बिना रह सकती है ? इस प्रकार कहकर फिर ७६१ [कं.] करुण रस से परिपूर्ण, स्फुरित (प्रकाशमान) स्मित रुचि के विलोक (दृष्टि) के पुंज से युक्त हो, बड़ी इच्छापूर्वक दीन जनों के भय का हरण करनेवाला बनकर, अखिल जगों में संचरण करो। ७६२ [कं.] इस प्रकार बोलनेवाली उस वनजाक्षी का पुरंजन वरण करके मुद (संतोष) से अन्योन्य प्रीति से प्रकाशमान होते हुए उस पुर में प्रवेश करके धन्य होते हुए ७६३ [चं.] शतसमकाल (एक सौ वर्ष) तक उस पुर में अजस्र (निरन्तर) भूरि-समस्त-सौख्य संगतियों से तृप्त होकर, वंदिजन, गायक, सद्विनुत उरुगान से मोदित मति से प्रकाशमान होकर, सुंदर सतीजन से सेवित होकर, नृपाल के उचित ललित स्थलों में वास (निवास) करते हुए क्रीडाएँ करते समय ७६४ [कं.] नरनाथ (पुरंजन) लोक के लिए भयंकर गति से प्रवर्तमान ग्रीष्म काल के आने पर, तरल (चंचल) लहरों से मनोहर वर (श्रेष्ठ) ह्लादिनी (सरोवर) के सलिल में अच्छी तरह रहा। ७६५ [व.] इस प्रकार निवास करके कतिपय दिनों के बीत जाने पर ७६६ [सी.] हे अवनीश्वरोत्तम ! उस पुर में चारों ओर रहनेवाले

गाग नातोम्मिदि गवकुल नुपरि दिक्कुन नेडु ग्रिदि दिक्कुननु रॆंडु
नथि युंडु मग्रि वानि यंदु बृथग्विध विषयगत्यर्थमै वॆलयु नीश्व

ते. रं डॊकं डरय गलंडु रूढि दत्पु, रंबु बालिचु नट्टि पुरंजनुंडु
ना पुरद्वार नवकंबुनंदु लोन, नथि प्राग्द्वार पंचक मंदु वरुस ॥ 767 ॥

व. खद्योतयु हविर्मुखियु ननु नामंबुलु गल द्वार युगंबुन द्युमत्सखुंडै विभ्राजिताख्य जनपदंबुनु बॊंदु। वॆंडियु नळिनियु नाळिनियु ननु पेळ्ळु गल वाकिळ्ळु रॆंटि यंदु नवधूत-सखुंडै सौरभ रूपंबुलयिन विषयंबुलं बॊंदु। मग्रियु मुख्यानामकंबैन प्रधान प्राग्द्वारंबुन रसज्ञ विपणान्वितुंडै यापण बहूदनंबुलनु विषयंबुल बॊंदु। बितृहू नामकंबयिन दक्षिण द्वारंबुन श्रुतधरान्वितुंडै दक्षिण पांचालंबनु राष्ट्रंबु नॊंदु। देवहू नामकंबयिन युत्तरपु वाकिट श्रुतधरान्वितुंडै युत्तर पांचालंबनु राष्ट्रंबु नॊंदु। वॆंडियु बडमटि वाकिळ्ळु रॆंटियंदु नासुरी नामकंबैन वाकिट दुर्मद समेतुंडै ग्रामक नामकंबैन विषयंबुनु निर्ऋति नामकंबयिन वाकिटियंदु लुब्धक-युक्तुंडै वैशसंबनु विषयंबु नॊंदुचुंडु। वॆंडियुं बुरंजनुंडप्पुरंबुनं बौर जनंबुलंदु निर्वाक्पेशस्करुलनु निद्दरंधुलु गलरु। वारल चेत गमन

पुरद्वारों के बारे में सुनो। पूरब की दिशा में पाँच, दक्षिणोत्तर में दो, पश्चिम में दो होने पर उन नौ द्वारों के ऊपर की दिशा में सात, नीचे की दिशा में दो होते हैं; फिर उनमें पृथक्-विध-विषय-गति का अर्थ होकर, [ते.] सोचने पर ईश्वर एक रूढ़ि से है। उस पुर का पालन करनेवाला पुरंजन उस पुर के नौ द्वारों में इच्छापूर्वक प्राक् (पूरब) के द्वार-पंचक (पाँचों द्वारों) में क्रम से ७६७ [व.] खद्योता [तथा] हविर्मुखा नामक द्वारयुग पर द्युमत् का सखा बनकर विभ्राजित जनपद को प्राप्त करेगा। फिर नलिनी [और] नालिनी नामक दो द्वारों पर अवधूत का सखा बनकर, सौरभ रूप होनेवाले विषयों (प्रदेशों) को प्राप्त करेगा। और मुख्या नामक प्रधान प्राक् (पूर्वी) द्वार पर रसज्ञ विपणान्वित बनकर, आपण [एवं] बहूदन नामक विषयों (प्रांतों) को प्राप्त करेगा। पितृहू नामक दक्षिण द्वार पर श्रुतधरान्वित बनकर, दक्षिण पांचाल नामक राष्ट्र को प्राप्त करेगा। देवहू नामक उत्तर द्वार पर श्रुतधरान्वित बनकर, उत्तर पांचाल नामक राष्ट्र को प्राप्त करेगा। फिर पश्चिम के दोनों द्वारों पर आसुरी नामक द्वार पर दुर्मद समेत होकर, ग्रामक नामक विषय (प्रांत), निर्ऋति नामक द्वार पर लुब्धक युक्त बनकर, वैशस नामक विषय (प्रांत) को प्राप्त करेगा। फिर पुरंजन उस पुर के पौरजनों में रहनेवाले निर्वाक् [तथा] पेशस्कर नामक दो अंधों से गमन [और] करण नामक क्रियाएँ पाते हुए, जब अंतःपुरगत होते समय, विषूची-समन्वित होकर जाया (पत्नी)

करणंबुलनु क्रियल नॊंदुचु नंतःपुर गतुंडगुनप्पुडु विषूची समन्वितुंडै जायात्मजोद्भवंबुलन मोह प्रसाद हर्षंबुल नॊंदुचुंडु नव्विधंबुन गर्मासक्तुंडु, गामात्मकुंडुनै बुद्धि यनु महिषि चेत वंचितुंडय्यॆ नक्कामिनियु ॥ 768 ॥

सी. पानंबु सेसिन दानु वानमु सेयु गुडिचिन दानुनु गुडुचु मरियु
भक्षिप दानुनु भक्षिचु नडचिन नडचुनु नव्विन नव्वु नेड्व
नेड्चु वाडिन वाडु विन्ननु विनु जूचिन जूचु गूर्चुन्न नुंडु
दुःखिप दीनुडै दुःखिचु निलिचिन निलुचु निद्रिपग निद्र बोव

तॆ. मुट्टिननु मुट्टु मूर्कॊन्न मूरुकॊनुनु
वलुक वलुकुनु वर्वळिप वव्वळिचु
हर्षमुनु बॊंद नात्मनु हर्ष मॊंदु
मोदमुनु बॊंद दानुनु मोद मंदु ॥ 769 ॥

व. इव्विधंबुन नतंडु महिषी विप्रलब्धुंडुनु वंचित स्वभावुंडुनुनै पारवश्यंबुनं जेसि यज्ञुंडुनु नितरेच्छा विरहितुंडुनुनै क्रीडामृगंबु चाड्पुन वर्तिचुचु ना पुरंबुन गापुरंबुंडु। नापुरंजनुं डॊकानॊक दिनंबुन धनुर्धरुंडै ॥770॥

[और] आत्मजोद्भव होनेवाले मोह, प्रसाद [और] हर्ष पाता रहेगा। इस प्रकार कर्मासक्त [तथा] कामात्मक होकर, बुद्धि नामक महिषी से वंचित हुआ। [वह] उस कामिनी के ७६८ [सी.] पान करने पर स्वयं पान करता; उसके खाने पर वह फिर खाता; भक्षण करने से वह भक्षण करता; चलने पर चलता; हँसने पर हँसता है; रोने से रोता; गाने से गाता; सुनने से सुनता; देखने से देखता; बैठने से बैठता; दुःखित होने पर दीन बनकर दुःखित होता; खड़ी रहने पर खड़ा रहता; [ते.] सोने से सोता; छूने से छूता; चूमने से चूमता; बोलने से बोलता; लेटने से लेटता; हर्षित होने से आत्मा में हर्षित होता; मोद पाने से वह भी मोद पाता। ७६९ [व.] इस प्रकार वह महिषी-विप्रलब्ध [और] वंचित स्वभाव वाला बनकर पारवश्य के कारण यज्ञ [एवं] इतर इच्छा से विरहित बनकर, क्रीडा मृग की तरह प्रवर्तित होते हुए, उस पुर में रहता। उस पुरंजन ने एक दिन धनुर्धर बनकर, ७७०

अध्यायमु—२६

सी. पंचाश्वयुक्तंबु पंचबंधनमु जक्रद्वितयमुनु युगद्वयंबु
नाशुवेगंबु नेकाक्षंबु कूबरद्वयमु बताकात्रितययुतंबु
नेकरश्मियुतंबु नेकसारथिकंबु सप्तवरूथंबु स्वर्ण भूष-
मुनु बंवविक्रममुनु नेकनीडंबु ब्रकट पंचप्रहरणमु नयिन

ते. रथमु कांचन रचित वर्ममु धरिंचि
विलसदक्षय तूणीर कलितुडगुचु
गडक दीपिप नेक्कि येकादश प्र-
संख्य सेवा समेतुडै सरभसमुग ॥ 771 ॥

व. पुरंबु वेडलि पंचप्रस्थंबनु वनंबुनकुं जनि यंदु विडुवरानि महिषिनि विडिचि मृगयासक्तुंडै दृप्तुंडगुचु धनुर्बाणंबुलु धरियिंचि संचरिंचुचु नासुरवर्तनंबुनं दगिलि घोरात्मुंडु नदयुंडुनै निशात सायकंबुल चेत नम्मृगव्रातंबुलं बरिमार्चे। राजुलकु मृगयाविनोदंबु विहिता-नुष्ठानंबगुचुंडनासुर वृत्ति येट्लय्येननि यंटिवेनि निवि रागप्राप्तंबगुटनु विहितंबु गादु विनुम। तीर्थंबुलंदु प्रख्यात श्राद्ध दिवसंबुलयंदु राजेन वाडु मेध्यंबुलयिन पशुवुलनु वनंबुनंदे यथोपयुक्तंबुगाने वधियिंपंजनु

अध्याय—२६

[सी.] पाँच अश्वों से युक्त, पाँच बंधन वाले, दो चक्रों से युक्त, युगद्वय (चार) आशुवेग युक्त, एक अक्षवाले, दो कूबर (गाड़ी का एक भाग) वाले, त्रितय (तीन) पताकाओं से युक्त, एक रश्मि (पगहा) युत, एक सारथि वाले, सप्त वरूथों (चक्रों में रहनेवाली शलाकाओं) से युक्त, स्वर्ण से भूषित (अलंकृत) पंच विक्रम वाले, एक नीड वाले और प्रकट पच-प्रहरण वाले [ते.] रथ पर कांचन से रचित वर्म (कवच) धारण करके, विलसत् (प्रकाशमान) अक्षय तूणीर से कलित (प्रकाशमान) होते हुए, आरूढ़ होकर, एकादश प्रसख्या वाली सेना-समेत होकर सरभस (वेग) से ७७१
[व.] पुर से निकलकर पंचप्रस्थ नामक वन मे जाकर, उसमे छोड़ देने जो लायक़ नही होती ऐसी महिषी को छोड़कर, मृगयासक्त बनकर, दृप्त (मस्त) बनते हुए, धनुष और बाण धारण करके संचरण करते हुए, आसुर-प्रवर्तन में लगकर, घोरात्मा [तथा] अदय बनकर, निशित सायकों (बाणों) से उन मृग-व्रातों (समूह) का संहार किया। अगर तुम पूछोगे कि राजाओं के लिए मृगया (आखेट) विनोद-विहित अनुष्ठान है, तब वह आसुर वृत्ति कैसे हो गई है, यह राग प्राप्त होने से विहित नहीं

ननु नियममात्रंबु गलदु गावुन ज्ञानियैन विद्वांसुं डाचरिपंडुगाक। आचरिंचिनं गर्मानुष्ठान जनितंबयिन ज्ञानंबुनं जेसि यंदु वीरयं बट्लु गाक नियमोल्लंघनंबुनं गर्माचरणं डगुवाडभिमानंबु नौंदि कर्मबद्धुंडै गुण-प्रवाह पतितुंडुनु नष्ट प्रज्ञुंडुनुनै यधोगति गूलु निट्लगुटं जेसि साधु-जनुलकु सर्व प्रकारंबुल नासुर वृत्ति मानं दगुननि वेंडियु निट्लनियें। नंतं बुरंजनुं डव्वनंबुन ॥ 772 ॥

कं. वर चित्र पक्ष सुनिशित
शरमुलचे शश वराह चमरी रुरु का-
सर गवय शल्य हरिणी
करि हरि वृक पुंडरीक कपि खड्गमुलन् ॥ 773 ॥

व. वधियिंचि मरियुनु ॥ 774 ॥

सी. वरुस मेध्यामेध्य वनमृगंबुल घृण सन दुस्सह क्रीड संहरिंचि
श्रमयुक्तुडै वेट सालिंचि मरलि मंदिरमुन कथि नेतेंचि यंदु
समुचित स्नान भोजन कृत्यमुलु दीर्चि यति विश्रममुन शयानुडगुचु
वरिमळ मिळित धूप व्रात वासित सर्वांगुडगुचु स्रक्चंदनमुलु

है। सुनो। यह नियम मात्र है कि केवल राजा ही मात्र तीर्थों में, प्रख्यात श्राद्ध दिवसों (दिनों) पर ही, मेध्य होनेवाले पशुओं का ही, केवल वनों में, यथोपयुक्त रूप में ही वध कर सकता है। इसलिए ज्ञानी होनेवाला विद्वान [ऐसा] आचरण न करे। आचरण करने पर भी कर्म के अनुष्ठान से जनित (उत्पन्न) ज्ञान से उसमें लिप्त न रहे। ऐसा न होकर नियमों का उल्लंघन करके कर्मो का आचरण करनेवाला अभिमान पाकर कर्मबद्ध हो, गुणप्रवाह [में] पतित [और] नष्टप्रज्ञ बनकर, अधोगति को पाता है। इसलिए साधुजनों के लिए सर्व प्रकार से आसुर वृत्ति छोड़ देने योग्य है। इस प्रकार कहकर फिर यों बोला। तब पुरंजन ने उस वन में ७७२ [कं.] वर (श्रेष्ठ) चित्रपक्ष [तथा] सुनिशित शरों से शश, वराह, चमरी, रुरु (बारहसींगा), कासर (भैंसा), गवय (वन्य भैंसा), शल्य (काँटों वाला वन्य सुअर), हरिणी, करि, हरि (सिंह), वृक, पुंडरीक (बाघ) [और] कपियों का, खड्गों (खड्गमृगों) का ७७३ [व.] वध करके, फिर ७७४ [सी.] लगातार मेध्य (पवित्र) [और] अमेध्य वनमृगों का घृणा (दया) से रहित हो, दुस्सह क्रीडा से संहार करके श्रमयुक्त हो, शिकार बन्द करके, लौटकर मंदिर (प्रासाद) में इच्छापूर्वक जाकर, उसमें समुचित स्नान [और] भोजन-कृत्य पूरा करके अति विश्राम से शयन की इच्छा करते हुए, परिमल से मिलित धूप-व्रात (समूह) [से] वासित सर्वांगवाला होते हुए, स्रक् (मालाएँ),

ते. विविध भूषण चेलमुल् वॅलय दाल्चि
तुष्टुडनु हृष्टुडुन् मरिधृष्टुडै य-
नन्यजाकृष्ट चित्तुंडनै रति प्र-
संग कौतुक मात्मनु दॊंगलिप ॥ 775 ॥

व. अंत स्वकीय प्राणवल्लभयगु महिषि यंदु मनंबु नुनिचिन नावरारोहयु गृह मेधिनियुनैन गृहिणि गानक विमनस्कुंडै निजांतःपुर कामिनुलं गनुंगॊनि यिट्लनियॆ ॥ 776 ॥

कं. रामा जन संघमुला, रा ! मानवती ललाम रामामणि ना
राम कृप बडसि मॆलगुदु, रा? मानुग गुशलमा? परामर्शिपन् ॥ 777 ॥

उ. सार विवेकलार ! गृह संपद लीयॆड बूर्व रीतिचे
नारयगा रुचिपवु गृहस्थुनकुं गृहमंदु मातगा
नी रमणानुकूल रमणीमणियै तनरारु भार्यगा
नी रुचि नॊंदकुन्न गन नेर्चुनॆ तद्गृहमेधि सौख्यमुल् ॥ 778 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 779 ॥

कं. पॊगडॊदु जननि गानी, तगवुन वर्तिचु नट्टि दयितय कानी
तग नुंडनि गृहमुन नुं, टगु जक्र विहीन रथमुनंबु टरयन् ॥ 780 ॥

व. कावुन ॥ 781 ॥

[और] चंदन, [ते.] विविध भूषण [एवं] चेल (वस्त्र) अच्छी तरह धारण करके, तुष्ट, हृष्ट [तथा] धृष्ट होकर, अनन्यज (मदन) से आकृष्ट चित्तवाला बनकर, आत्मा में रति के प्रसंग का कौतुक होने पर, ७७५ [व.] तब स्वकीय प्राणवल्लभा होनेवाली महिषी पर मन लगने पर, उस वरारोहा (स्त्री) [एवं] गृहमेधिनी होनेवाली गृहिणी के न दिखाई पड़ने पर, विमनस्क बनकर, निज अंतःपुर की कामिनियों को देखकर, इस प्रकार कहा। ७७६ [कं.] हे रामा (स्त्री) जन संघ ! मानवती ललाम [होनेवाली], रामा-मणि उस रामा (नारी) की कृपा को पाकर [तुम लोग] रहती हो न ? परामर्श (पूछताछ) करने पर क्या कुशल हो न ? ७७७ [उ.] हे सार-विवेक-वालियो ! यहाँ गृह की संपदाएँ पूर्व-रीति (-पद्धति) से देखने पर, अच्छी नहीं लगतीं। गृहस्थ को गृह में माता या रमण (रति) के लिए अनुकूल रमणीमणि के होकर प्रकाशमान होनेवाली पत्नी के रूप में न रहने पर, वह गृहमेधि (गृहस्थ) सुख पा सकता है ? (नहीं) ७७८ [व.] इसके अतिरिक्त ७७९ [कं.] प्रशंसिता जननी या उचित प्रवर्त्तन (आचरण) करनेवाली दयिता (पत्नी) जिस घर में नहीं रहती, ऐसे गृह में रहना, देखने पर, चक्र-विहीन रथ में रहने के समान है। ७८० [व.] इसलिए ७८१ [चं.] प्रयत्न करके, मुझमें स्वयं हर क्षण

चं. तलकॊनि नाकु दा ननुपदंबुनु बज्ञ जनिप जेसि सं-
चल दुरु दुर्भर व्यसन सागर मग्नुडनैन नन्नु नि-
श्चल मति नुद्धरिंचि यनिशंबुनु मत्प्रिययैन भार्य ये-
वलन जरिंचु चुन्नदनि वारण ना कॆरिंगिपरे! दयन् ॥ 782 ॥

कं. अनवुडु विनि यक्कांतलु
जनपति किट्लनिरि राजसत्तम! यदिगो!
वनकॊंगैननु बरपुग
नॊनरिपक नेल बॊरलुचुन्नवि वगलन् ॥ 783 ॥

ते. एमि कतमुन नुन्नदो यॆरुग मेमु
नीवु सूडु मटन्न ना भूवरुंडु
नेलबडि पॊरलॆडु भार्य बोल जूचि
मनमुलो दुःखतापंबु मल्लडिप ॥ 784 ॥

व. अंत ॥ 785 ॥

आ. जलज नेत्र प्रणय संजातरोष भा, वमुन नयिन यट्टि वक्र दृष्टि
जन विभुंडु सूचि यनुनय कोविदु, डगुचु नप्पयोरुहाक्षि जेरि ॥ 786 ॥

कं. पॊलतुक दन युत्संगं-
बुल निडि तत्पादयुगळमुनु नंटुचु मं-
जुल मृदुभाषणमुल ना
ललनामणि जूचि पलिकॆ लालन मॊप्पन् ॥ 787 ॥

प्रज्ञा (ज्ञान) पैदा कर, संचलित उरु (बड़े) दुर्भर व्यसन रूपी सागर में मग्न होनेवाले मेरा निश्चल मति से उद्धार करके, अनिश (सदा) मत्-प्रिया होनेवाली पत्नी कहाँ विचरण कर (घूम) रही है ? दया से अवश्य मुझे समझाओ। ७८२ [कं.] ऐसे पूछने पर, सुनकर, उन कांताओं ने जनपति से इस प्रकार कहा, हे राजसत्तम ! वह देखो, अपने आँचल को भी विस्तर की तरह न फैलाकर, दुःख से भूमि पर लोट रही है। ७८३ [ते.] वह क्यों ऐसी है, हम नहीं जानतीं। तुम [जाकर] देखो। ऐसा बोलने पर वह भूवर ज़मीन पर लेटकर, करवटें बदलनेवाली पत्नी को अच्छी तरह देखकर, मन में दुःख के अधिक होने पर ७८४ [व.] तब ७८५ [आ.] जलजनेत्र वाली के प्रणय से संजात रोष के भाव से होनेवाली वक्र दृष्टि को जनविभु (राजा) ने देखकर, अनुनयकोविद होते हुए, उस पयोरुहाक्षी के पास जाकर ७८६ [कं.] [उस] नारी को अपने उत्संगों (जाँघों) पर रखकर, तत् पाद युगल को छूते हुए, मंजुल [और] मृदु भाषणों से, उस ललनामणि को देखकर समझाते-बुझाते हुए कहा। ७८७

चं. रमणिरो ! भृत्युलंदु नपराधमु गलिगन नायकुल् स्वप-
क्षमु दलपोसि युग्रतर शासनमुं देगि चेय रट्लु गा-
क मनमु लोनि किन्क दमकंबुन नाज्ञ नोनर्चिरेनि नि-
क्कमुग ननुग्रहिंचुटय काक तलंपग नाज्ञ सेयुटे ॥ 788 ॥

कं. कमलानन बांधव कृ-
त्यमु दलपक रोष चित्तुडगु कुटिलात्मुन्
ममतं ग्रोधियु नीति
क्रम रहितुडुनैन बालुगा नेन्न दगुन् ॥ 789 ॥

व. अनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 790 ॥

म. सरसोदार सुधारसोपम वचश्चातुर्य सौभाग्यमै
हरि नीलोपम कोमलालकयुतंबै विभ्रम भ्रू लता-
परिपुष्ट स्मित सद्विलोकनमुनै भासिल्लु युष्मन्मुखां-
बुरुहंबुन् भवदीय दासुनकु जूवोणी ! कृपन् जूपवे ! ॥ 791 ॥

कं. विनु वीर पत्नि ! नीयेंड, ननयंबुनु ब्राह्मणुलुनु हरि भक्तुलु द-
क्कनु नितरु लेग्गु सेसिन, वनिता! शिक्षिंतु नेंतवारल नयिनन् ॥ 792 ॥

कं. ई मुल्लोकमुलंदुनु, नामनमुन रोष मोदवि नन् भयरहितुं-
डै मदिलो बरितोषमु, तो मेलगेंडु वानि गान दोयजनेत्रा ! ॥ 793 ॥

[चं.] हे रमणी ! अगर भृत्यों से अपराध हो जाए तो नायक (स्वामी) स्वपक्ष [के बारे में] सोचकर, उग्रतर शासन (दंड) नहीं करते। अगर ऐसा न होकर [अपने] मन के क्रोध से [दंड की] आज्ञा तो सचमुच वह अनुग्रह करना ही है; सोचने पर वह आज्ञा करना (दंड देना) है ? ७८८ [कं.] हे कमलानने ! बांधव-कृत्य को मन में न रखकर, रोषचित्तवाले कुटिलात्मा को ममता से क्रोधी [एवं] नीतिक्रम [से] रहित होनेवाला बालक समझना चाहिए। ७८९ [व.] इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। ७९० [म.] सरस, उदार, सुधारसोपम वचन-चातुर्य [के] सौभाग्य से युक्त, हरिनीलोपम-कोमल अलकों से युक्त, विभ्रम-भ्रूलता [से] परिपुष्ट स्मित-सत्-विलोकन युक्त हो भासमान (प्रकाशमान) होनेवाले युष्मत् (तुम्हारे) मुखांबुरुह (मुखकमल) भवदीय दास को, हे रमणी ! कृपया दिखाओ न। ७९१ [कं.] हे वीरपत्नी ! सुनो, सदा ब्राह्मणों एवम् हरिभक्तों को छोड़कर और किसी ने तुम्हारे प्रति बुरा किया है तो, हे वनिते ! चाहे कितने भी बड़े हों, [उन्हें] मैं दंड दूँगा। ७९२ [कं.] हे तोयज नेत्रवाली ! इन तीनों लोकों में, मेरे मन में रोष [उत्पन्न] होने पर, भयरहित होकर, मन में परितोष (संतोष) से रहनेवाले किसी को मैंने नहीं देखा। ७९३ [सी.] हे इंदीवरेक्षणे !

सी. इंदीवरेक्षण ! ये नेंडु भवदीय तिलक विरहितमु मलिनयुतमु
हर्षशून्यंबु नपास्तरागंबुनु नत्यमर्ष युतंबु नयिन मुखमु
गळितास्र विंबु संकलित संचित शोभमान पीनस्तन मंडलमुनु
रमणीयतांबूल राग विहीनमै नट्टि सुपक्व बिंबाधरंबु

ते. गान निट्लुंट किपुडेमि कतमु नाकु
नर्थि नेरिंगिपवे ! मृगयातिसक्ति
नबल ! नीकेरिंगिपक यरिगि नट्टि
तप्पु सैरिंचि कावंग दगुदु नेनु ॥ 794 ॥

कं. वनिताजन परवशुडै, मनसिज शरबाध्यमान मानसुडगु वा-
निनि दग गर्तव्यार्थमु, लनु भजियिपक तोलंगु ललनलु गलरे ? ॥795॥

व. अनुचुं ददीय विभ्रम वशंगतुंडै पलिकिन विनि ॥ 796 ॥

कं. कंजातपत्रनेत्र पु, रंजनु देस रोष मुडिगि रमणीय श्री
मंजुल मृदूक्तुल मनमु, रंजिचुचु वलिकें सदनुराग मॅलर्पन् ॥ 797 ॥

व. अंत ॥ 798 ॥

कहीं भी तिलक से विरहित, मलिनयुक्त, हर्षशून्य, अपास्तराग (निर्वतित प्रेम वाला), अति अमर्ष (क्रोध) से युक्त भवदीय मुख को, गलित अश्रु-विंदुओं से संकलित [एवं] संचित शोभायमान पीन (पुष्ट) स्तन मंडल को, रमणीय तांबूल के राग से विहीन सुपक्व बिंब जैसे अधर को नहीं देख पा रहा हूँ। [ते.] ऐसा रहने का अब क्या कारण है ? इच्छापूर्वक मुझे समझाओ न। हे अबले ! मृगया (शिकार) की अति आसक्ति के कारण तुमको सूचित किये बिना [मेरे] जाने की ग़लती को क्षमा करके, रक्षा करने योग्य हूँ मैं। ७९४ [कं.] वनिता जन के परवश होकर, मनसिज (मन्मथ) के शरों से बाध्यमान (पीड़ित) मनवाले की अच्छी तरह कर्तव्य [एवं] अर्थ से सेवा न करके दूर हटनेवाली ललनाएँ कहीं होती है ? ७९५ [व.] [यों] कहते हुए तदीय (उसके) विभ्रम के वश होकर बोलने पर, सुनकर ७९६ [कं.] कंजातपत्र के जैसे नेत्रवाली [वह नारी] पुरंजन के प्रति क्रोध छोड़कर रमणीय-श्री-मंजुल-मृदूक्तियों से मन को रंजित करते हुए सदनुराग के अधिक होने पर बोली। ७९७ [व.] तब ७९८

अध्यायमु—२७

सी. अम्महादेवि नॅय्यंबुन मंगळ स्नानयै मृदुल वस्त्रमुलु गट्टि
स्रक्चंदनादि भूषणमुलु धरियिंचि कमनीय मोहनाकार यगुचु
वतिकड निलिचिन नतडु संतुष्टांतरंगुडै यभ्यंतरमुन नुंडि
यन्योन्य सरस गाढालिंगनंबुलु गाविंचि गोप्य वाक्यमुल चेत

ते. नतडु प्रमदापरिग्रह व्यसनमुननु
गडक नपकृष्ट घनविवेकंबु गलिगि
पगलु रेयनि प्रॉद्दुलेर्परुपलेक
यॅनसि यायुर्व्ययंबु दा नॅरुगडय्यॅ ॥ 799 ॥

व. मरियु नतंडुन्नद्ध मदुंडुनु, महामनुंडुनु, नर्हशय्याशयानुंडुनु, महिषी भुजो-पधानुंडुनुनै यज्ञानाभिभूतुंडगुटं जेसि स्वरूप भूत परम पुरुषार्थंबु नॅरुंगक निजमहिषियॅ परमपुरुषार्धबुगा दलंचुचु रमिंचुचुं गाम कश्मल चित्तुंडैन यतनिकि नवयौवनंबैन कालंबु क्षणार्धंबुनुं बोलॅ गतंबय्यॅ नंत ॥ 800 ॥

कं. विशद यशोजलनिधि या-
शशिमुखि यगु भार्य वलन सम्मति नेका-

अध्याय—२७

[सी.] वह महादेवी स्नेह से मंगल स्नान कर, मृदुल वस्त्र पहनकर, स्रक् (मालाएँ) [एवं] चंदन आदि भूषण धारण करके, कमनीय मोहन आकार वाली बनते हुए, पति के पास खड़ी रही तो वह (राजा) संतुष्ट अंतरंग वाला बनकर, अभ्यंतर (अन्तःपुर) में रहकर, अन्योन्य सरस गाढ आलिंगन करके, [ते.] गोप्य (रहस्यमय) वाक्यों से वह प्रमदा के परिग्रह के व्यसन से, यत्न करके अपकृष्ट (छोड़े गए) धन (बड़े) विवेक से दिन और रात का भेद न जानते हुए, उसने आयु का व्यय नहीं जाना। ७९९
[व.] और वह उन्नद्धमदवाला (अधिक मस्त), महामन, अर्हशय्या [पर] शयान और महिषी की भुजा को उपधान (तकिया) बनानेवाला बनकर, अज्ञान से अभिभूत होने के कारणस्वरूपभूत परमपुरुषार्थ को न जानकर, निज (अपनी) महिषि ही को परमपुरुषार्थ मानते हुए, रमण करते हुए, काम (लैंगिक इच्छा) से कश्मल चित्त होनेवाले उसका नवयौवन-काल क्षण के अर्ध भाग के समान गत हुआ (बीत गया)। तब ८००
[कं.] विशद यश के जलनिधि (पुरंजन) ने शशिमुखी होनेवाली उस पत्नी से सम्मति से एकादशशत पुत्रों को, रणकर्कश देहियों को पाकर, फिर

दश शत पुत्रुल रण क-
र्कश देहुल गांचि कौतुकंबुन मरियुन् ॥ 801 ॥

कं. गुरु शीलौदार्य गुणो, त्तरलनु सल्ललित गुण कदंबल प्रियलन्
वर कुल पावनल दशो, त्तरशत दुहितलनु गांचें दत्सति वलनन् ॥802॥

व. इट्लु पुत्र पुत्रिका जनंबुलं गनि युन्नंत ॥ 803 ॥

कं. विनु मातनि यायुवुलो-
ननु नर्धंबरिगें नंत नरपति कुल व-
र्धनुलगु सुतुलकु परिणय
मौनरिचॆंन् सदृशलयिन युविदल तोडन् ॥ 804 ॥

कं. नरनाथुं डाडु बिड्डल, वर रूप वयो विलास वैभवमुलचे
वरगिन निज तनय सदृश, वरुलकु संप्रीतितो विवाहमु चेसॆंन् ॥ 805 ॥

व. अट्लु विवाहंबुलु गाविंचि युन्न समयंबुन ॥ 806 ॥

कं. विनु तत्सुतु लॊक्कॊकनिकि, ननयमु पांचाल देशमंदुल पौरं
जनकुल वर्धनुलगुचुन्, जनियिंचिरि नूर्वुरेसि शौर्यबलाढ्युल् ॥ 807 ॥

आ. अनघ ! यट्टि रिक्थ हारुलु गेह को
शानु जीवयुतुलु नयिन यट्टि
नंदनादुलंदु जॆंदिनममत नि
बद्धुडय्यॆ नंत पार्थिवुंडु ॥ 808 ॥

कौतुक से ८०१ [कं.] उस सती से गुरु (बड़े) शील, औदार्य गुणोत्तराओं, सल्ललित गुण-कदंब (-समूह वाली) प्रियाओं, वर (श्रेष्ठ) कुल [का] पावन बनानेवाली दशोत्तर शत (एक सौ दस) दुहिताओं को पाया। ८०२ [व.] इस प्रकार पुत्र-पुत्रिका जन को पैदा कर रहते समय ८०३ [कं.] सुनो, उसकी आयु में अर्ध बीत गया। तब नरपति ने कुलवर्द्धन होनेवाले सुतों के परिणय, सदृशा (समान) होनेवाली कन्यकाओं से किये। ८०४ [कं.] नरनाथ ने अपनी कन्याओं के वर, रूप, वय, विलास [तथा] वैभवों से युक्त अपनी उन तनयाओं के विवाह [उनके] सदृश वरों के साथ कर दिया। ८०५ [व.] ऐसा विवाह कर रहते समय ८०६ [कं.] सुनो, तत् (उन) सुतों में से एक-एक के क्रम से, पांचाल देश में, पौरंजनकुलवर्द्धन होते हुए, सौ-सौ शौर्य-बलाढ्य [पुत्र] पैदा हुए। ८०७ [आ.] हे अनघ ! ऐसे रिक्थ हारवाले, गेह, कोश के अनुजीवन वाले नंदन आदियों में होनेवाली ममता में [वह] पार्थिव निबद्ध बन गया। ८०८ [चं.] हे भूवर ! स्थिर निष्ठा से वह

चं. तिरमगु निष्ठतो नतड् दीक्षितुडै पशुमारकंबुलुन्
नरिदि भयंकरंबुलगु सन्मखमुल् दग बॅक्कु सेसि या
दरमुन नीवुनुं बलॅनु दत्तदनून फल प्रकामुडै
सुर पितृ भूत संघमु नसूय दनर्प भजिंचे भूवरा ! ॥ 809 ॥

व. इट्लात्म हितंबुलैन कर्मंबुल यंदनवहितुंडुनु गुटुंबासक्त मानसुंडुनै युन्न यतनिकि विरोधियै प्रियांगना जनंबुलकु नप्रियंबगु कालंबु संभविचिनं जंड वेग विख्यातुंडनु गंधर्वाधीशुंडु षष्ट्युत्तर शतत्रय संख्याकुलैन गंधर्वुलुनु नंदरु गंधर्वी जनंबुलुनु सितासित वर्णबुलु गलिगि मिथुनीभूतु लगुचु ननुगमिपं जनुदेंचि स्वपरिभ्रमणंबुचेतने सर्व कामंबुल निर्मितंबगु ना पुरंबु निरोधिचिन नप्पुडा चंड वेगानुचरुलैन गंधर्वुला पुरंजनु पुरंबु व्याकुलंबु नॉर्दिचुचु नपहरिप नुपक्रमिंचु समयंबुन बुरंजन पुराध्यक्षुंडैन प्रजागरुंडनुवाडु विंशत्युत्तर सप्तशतंबुलैन गंधर्व गंधर्वी जनंबुल निवारिंचि बलवंतुंडै संवत्सर शतबु युद्धंबु गाविंचि यॊक्करुंडय्यु नप्पॆक्कंड्रतोनिट्लु पोरि क्षीणुंडैनं बुरंजनुंड् दान निलिचि तत्पुरंबुन नल्प सुखंबु लनुभविचुचु बांचाल देशंबुलंदु निज पार्षदुल चेत नानीतंबुलैन पदार्थंबुल

दीक्षित होकर, पशु को मार डालनेवाले, दुर्लभ तथा भयंकर होनेवाले अनेक सत् मख करके, आदर के साथ तुम्हारी तरह, तत्तत् अनून (बड़े) फल का प्रकामी (अधिक चाहनेवाला) बनकर, सुरों, पितरों [और] भूत संघों की सेवा की जिससे [देखनेवालों को] डाह हो जाय। ८०९ [व.] इस प्रकार आत्महित [कर] होनेवाले कर्मों में अनवहित (असावधान) [तथा] परिवार से आसक्त मनवाला बने हुए, उसके विरोधी बनकर, प्रियांगना-जन के लिए अप्रिय होनेवाले काल के आने पर चंड वेग के कारण विख्यात बने गंधर्वाधीश (काल, मृत्यु) के षष्ट्युत्तर शतत्रय संख्या (३६०) में गंधर्वों [तथा] उसी संख्या में गंधर्वी जनों के सित [और] असित वर्णों के मिथुनीभूत होते हुए (दंपती बनकर), अनुगमन करने पर, आकर, स्वपरिभ्रमण मात्र से सर्वकामों (इच्छाओं) के निर्मित होनेवाले उस पुर का निरोध करने पर, तब उस चंडवेग वाले के अनुचर होनेवाले गंधर्वों के उस पुरंजन के पुर को व्याकुल करते हुए, अपहरण करने का उपक्रम करते समय पुरंजन पुर का अध्यक्ष प्रजागर नामक [एक] व्यक्ति विंशत्युत्तर सप्तशत (७२०) होनेवाले गंधर्व-गंधर्वी जनों का निवारण करके, बलवान बनकर, सौ संवत्सर युद्ध करके, अकेले रहने पर भी उन अनेकों के साथ इस प्रकार लड़कर क्षीण होने पर, पुरंजन उस [पुर] में रहकर, अल्प सुखों का अनुभव करते हुए पांचाल देश में निज पार्षदों से आनीत (लाए गए) पदार्थों को पाते हुए, कामिनीजन समेत होकर, भय का

नॊंदुचुं गामिनी जन समेतुंडै भय पर्यालोचनंबु सेयनेरक राष्ट्र पुर बांधव समेतुंडै यार्ति नॊंदि चिंताक्रांतुंडै युंडें नंत ॥ 810 ॥

कं. अनयंबु गाल पुत्रिक
यनु नॊक कामिनि वरेच्छ नखिल जगंबु
वनयंतगलय दिरुगुचु
जनि चनि यॊकनाडु राजसत्तम! विटे! ॥ 811 ॥

सी. अनघात्म! राजर्षियैन ययाति कुमारकुंडयिनट्टि पूरु चेत
वरियिंपगा बडि वलनॊप्प ततनिकि वरमिच्चि दौर्भाग्य वशत नॊंदि
प्रख्याति गनुट दुर्भगयनु पेरनु बरगु नक्कांत ने पुरुषयडु
वरियिंपडय्यॆ ना तरुणियु नॊकनाडु गरमॊप्पु ब्रह्मलोकमुन नुंडि

ते. वसुधकेतेंचि विनु बृहद्व्रतुड नयिन
नन्नु वरियिंप गोरि मनमुन गाम
शरविमोहितयै वेड गरमु नेनु
सम्मतिपक युन्न रोषमुन नलिगि ॥ 812 ॥

व. इट्लनु मुनींद्रा! मदीयाशाविमुखुंडवैन नीकु नेकत्रावस्थानंबु लेक युंडु गाक यनि शापिंचि विहत संकल्पयै मदुपदेशंबुनं जनि यवनेश्वरुंडगु भयनामकुं-डनु नयिन वानि गदिसि यिट्लनियॆ ॥ 813 ॥

कं. अवनीपति! भय नामक
यवनकुलाधीश्वरुंडवगु निनु वति गा

पर्यालोचन न कर सककर, राष्ट्रपुरबांधव समेत होकर आर्ति पाकर चिंता से आक्रांत होकर रहा। तब ८१० [कं.] हे राजसत्तम! सुनो। क्रम से काल पुत्रिका नामक एक कामिनी वर की इच्छा से अखिल जग में स्वयं घूमते हुए, जा-जाकर एक दिन ८११ [सी.] हे अनघात्म! राजर्षि होनेवाले ययाति के पुत्र पुरु से वरण की जाकर, अपने प्रेम करने का वर देकर, दौर्भाग्यवश होकर प्रख्याति पाकर दुर्भगा नाम से विश्रुत हुई, उस कांता को किसी भी पुरुष ने वरण नहीं किया। [ते.] वह तरुणि एक दिन अच्छी तरह ब्रह्मलोक से वसुधा पर आकर, सुनो, बृहतव्रती होनेवाले मुझे वरण करने की इच्छा करके मन में काम (मदन) के शरों से विमोहिता बनकर, प्रार्थना करने पर, जब मैंने स्वीकार नहीं किया तो रोष से रुष्ट होकर, ८१२ [व.] इस प्रकार कहा, मदीय आशा के विमुख होनेवाले तुमको एकत्र-अवस्थान (रहने के लिए एक स्थान) न हो, ऐसा शाप देकर विहत (भग्न)-संकल्प वाली बनकर, मेरे उपदेश से जाकर यवनेश्वर (एवं) भय नामक [व्यक्ति] के पास जाकर इस प्रकार कहा। ८१३ [कं.] हे अवनीपते! भय नाम वाले [तथा] यवनकुल का अधीश्वर होनेवाले

दविलि वरिंपग वच्चिति
सविनयमुग विनुमु भूत संकल्पमुनन् ॥ 814 ॥

व. कलुगु मत्कामितंबु वृथ गादु लोकंबुन वेदंबुलंदु देयग्राह्य रूपंबैन वस्तुवु याच्यमानं बगुचुंड नॆव्वं डॊसंगं डॆव्वंडिदु दीयमानं बगुचुंडं गोरंडट्टि वीर लिद्दरुनु जडस्वभावुलनि सत्पुरुषुलु शोकंबु नॊंदुदुरु। गावुन निन्नु भजियिंचुचुन्न नन्नुं गरुणार्द्र चित्तुंडवै भजियिंपु मिट्टि यार्तानुकंपयु बुरुष धर्मंबनि पलिकिन यक्काल पुत्रिक वचनंबुलु विनि यवनेश्वरुंडु देहगुह्य चिकीर्षुवगु दानि गनुंगॊनि मंदस्मित वदनुंडगुचु निट्लनियॆ ॥ 815 ॥

कं. विनु तरुणि! याच्यमानं, बन दगु नी लोकमंदु नत्यशुभवु स-
ज्जनमुल कसम्मतवु नगु, निनु नभिनंदिपकुंड्रु नॆड्रि नॆव्वारुन् ॥ 816 ॥

व. कावुन नेनु ज्ञानदृष्टि जेसि नीकुं बति निरूपणंबु सेसॆदनि यॆट्लननिन मदीय सेना साहाय्यंबु वडसि प्रजानाशंबॊनर्चिरचु नट्टि नीवव्यक्त गतिवै कर्म-निर्मितंबैन लोकंबु ननुभविंपुमु। प्रज्वारुंडनुवाडु नाकु सहोदरुडु। नीवु मदीय भगिनिवि। ई यिद्दरुं गूडि यी लोकंबु नंदु नव्यक्तुंडनु भीम सैनिकुंडनै येनु वर्तितुनु।

तुमको पति के रूप में चाहकर वरण करने आयी हूँ। सविनय सुनो, भूत संकल्प से ८१४ [व.] होनेवाला मत्-कामित (मेरी इच्छा) वृथा नहीं होगा। लोक में वेदों में देय (देने योग्य) [तथा] ग्राह्य रूपी वस्तु जब याच्यमान होती है (माँगी जाती), कोई भी नहीं देता। कोई भी इसमें दीयमान होते समय (दी जाने पर) नहीं चाहता। सत्पुरुष शोक (दुःख) करते हैं कि ऐसे ये दोनों जड़ स्वभाव वाले है। इसलिए तुम्हारा भजन करनेवाली मेरी, करुणार्द्र चित्तवाले बनकर सेवा करो। आर्तों के प्रति ऐसी अनुकंपा पुरुषों का धर्म है। ऐसा बोलने पर, उस कालपुत्रिका के वचन सुनकर, यवनेश्वर ने देहगुह्य-चिकीर्षु (सभोग की इच्छा रखनेवाली) को देखकर मंदस्मित वदनवाला होते हुए इस प्रकार कहा। ८१५ [कं.] हे तरुणी! सुनो। याच्यमान कहलाने लायक इस लोक में [तुम] अति अशुभा हो। सज्जनों के लिए असम्मता होनेवाली तुम्हारा अभिनंदन कोई नहीं करेगा। ८१६ [व.] इसलिए मैं ज्ञानदृष्टि से तुम्हारे लिए पति का निरूपण कर दूंगा। वह कैसा है पूछती हो तो मदीय सेना की सहायता पाकर, प्रजा का नाश करनेवाली तुम अव्यक्त गतिवाली बनकर, कर्म से निर्मित लोक का अनुभव करो। प्रज्वारु नामक [एक] व्यक्ति मेरा सहोदर है। तुम मेरी भगिनी हो। तुम दोनों के साथ इस लोक में अव्यक्त [तथा] भीम-सैनिक वाला बनकर मैं रहूँगा।

अध्यायमु—२८

व. अनिन ना भय नामकुंडयिन यवनेश्वरुनि दिष्टिकारुलैन सैनिकुलु प्रज्वार काल कन्यायुक्तुलै भूमंडलंबॆल्ल दिरुगुचु नॊक्क नाडति वेगंबुन भौम भोगाढ्यंबुनु जरत्पन्नग पालितंबुनु नयिन पुरंजनु पुरंबु नावरिंचि युन्नंत स्वाभिभूतुंडयिन पुरुषुनकु निस्सारत्वंबु गलिगिंचु नट्टि काल कन्यक बलात्कारंबुन ना पुरजनु पुरंबु ननुभविंचॆ नट्लु कालकन्य कोप भुज्यमानंबैन पुरंबु सर्वद्वारंबुलंदुनु सर्वतोदिशंबुगा नयव्वनुलु प्रवेशिंचि तत्पुरंबुनु समस्तंबुनु बॊडिप निट्लु पुरंबु प्रपीड्यमानंबगुचुंड नभिमानियैन पुरंजनुंडु ॥ 817 ॥

सी. अनघ ! यॆंतयु ममताकुलचित्तुडै बहुविध भूरि तापमुल बॊंदॆ
घनकुटुंबियु गाल कन्योपगूढुंडु नष्ट संपदुडु विनष्ट मतियु
विषयात्मकुंडुनु विनिहतैश्वर्युंडु गृपणुंडु साल नकिंचनुंडु
नगु पुरंजनुडु शोकाविलभावुडै गंधर्व यवन संघमुल चेत

ते. नोज सॆडि विकलत नॊंदु नैजपुरमु
दविलि प्रतिकूलुरुनु ननादरण युतुलु

अध्याय—२८

[व.] ऐसा बोलने पर, उस भय नामक यवनेश्वर दिष्टिकारी होनेवाले सैनिक प्रज्वार [तथा] काल-कन्यायुक्त होकर सारे भूमंडल में घूमते हुए एक दिन अति वेग से भौम (सांसारिक)-भोग से आढ्य (संपन्न) [और] जरत् (वृद्ध)-पन्नग से पालित होनेवाले पुरंजन पुर को आवृत करके (घेर कर) रहने पर, स्वाभिभूत होनेवाले पुरुष को निस्सारता पहुँचानेवाली कालकन्यका ने बलात्कार से उस पुरंजन पुर का अनुभव किया। इस प्रकार कालकन्यका से उपभुज्यमान होनेवाले पुर में सर्व द्वारों से, सर्वतो-दिशा से वे यवन प्रवेश करके तत् समस्त पुर का नाश कर चुके तो उस पुर को प्रपीड्यमान होते हुए [देखकर] अभिमानी पुरंजन ने ८१७ [सी.] हे अनघ ! इसने ममता [से] आकुल चित्त वाला बनकर, बहुविध भूरिताप पाया। घन (बड़े) कुटुंबी (अधिक सन्तान वाला) कालकन्या से उपगूढ (आलिंगित), नष्ट संपत् वाला, विनष्ट मति वाला, विषयात्मा वाला, विनिहत ऐश्वर्य वाला, कृपण (क्रूर) और अधिक अकिंचन होनेवाला पुरंजन ने शोक से आविल (कलुषित) भाव वाला बनकर, गंधर्व [एवं] यवन के संघों से कांति खोकर, [ते.] विकलता पाई। नैज (निज)-पुर से लगकर प्रतिकूल [रहने] वाले [और] अनादरयुत होनेवाले पुत्रों, पौत्रों, अनुचरों,

नयिन पुत्रुल बौत्रुल ननुचरुलनु
सचिव पौरोहितुल निज सतिनि जूचि ॥ 818 ॥

व. मरियुं गालकन्याग्रस्तुंडयिन तन्नु नरिदूषितंबुलैन पांचाल बलंबुलनुं जूचि यपार चिंतं नोंदि तत्प्रतीकारंबु सेय नेरक काल कन्यापहृत वीर्यंबुलयिनं गामंबुल नभिलषिंचुचु दीनुंडुनु विगतात्म गतिकुंडुनु स्नेहंबुनं जेसि पुत्रदारोपलालनपरुंडुनुनै कालकन्योपमर्दितंबुनु गंधर्व यवनाक्रांतंबुनुनैन पुरंबु विडुव निच्च लेकयु विडुव नुपक्रमिंचें नप्पुडु ॥ 819 ॥

कं. अनघा! भयनामाग्रजु, डनगल प्रज्वारुडप्पुडरुदेंचि पुरं
बुनु सकलंबुनु भयना, मुनिकि प्रीतिग दहिंचें मुनुकोनि यंतन् ॥820॥

व. अट्लु पुरंबु दह्यमानंबगुचुंड बौर भृत्य वर्गादि समन्वितुंडुनु, कौटुंबिकुंडुनु, पुत्रादि समन्वितुंडुनु यवनोपरुद्धालयुंडुनु, गाल कन्याग्रस्तुंडुनु, नयिन पुरंजनुं डप्पुरंबु नंदु प्रज्वारसंस्पृष्टुंडै यनुतापंबु नोंदि तत्पुर पालनंबुनंदु समर्थुडु गाक पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुंडयि यंदुंड नशक्तुंडय्यें नंत ॥ 821 ॥

कं. दवशिखियुत तरु कोटर
निवसित पन्नगमु पगिदि निजपुरि वेडलं

सचिवों, पौरोहितों [तथा] निज-सती को देखकर ८१८ [व.] और काल कन्याग्रस्त होनेवाले अपने को, अरि (शत्रु) से दूषित होनेवाले पांचाल-बल (-सेना) को देखकर, अपार चिंता पाकर, तत् प्रतीकार करना न जानकर, काल-कन्या से अपहृत वीर्य होनेवाले कामों की अभिलाषा करते हुए, दीन [और] विगत आत्मा की गति वाला बनकर, स्नेह के कारण पुत्रों [तथा] दारा (पत्नी) का उपलालनपर (समझानेवाला) बनकर, कालकन्या से उपमर्दित (पीड़ित) [और] गंधर्व यवनों से आक्रांत पुर को छोड़ देने की इच्छा के न होने पर भी, छोड़ देना चाहा। तब ८१९ [कं.] हे अनघ! भय नामाग्रज (भय जिसका अग्रज है) प्रज्वार ने तब आकर पुर को [और] सब कुछ को, भय नामक [अपने अग्रज को] प्रीत हो, ऐसा लगकर दहन कर डाला। ८२० [व.] उस प्रकार पुर जब दह्यमान हो रहा था, [पौर] भृत्य वर्ग आदि से समन्वित, कौटुंबिक (बड़ा परिवार वाला), पुत्र आदि से समन्वित, यवनों से उपरुद्ध आलय (घिरे हुए घर) वाला [तथा] कालकन्याग्रस्त होनेवाला पुरंजन उस पुर में प्रज्वार से संस्पृष्ट होकर, अनुताप पाकर, उस पुर के पालन में समर्थ न होकर, पुरुकृच्छ्रोरु वेपथ (पुरु की बाधा की अधिकता से काँपनेवाला) बनकर, उसमें रहने में अशक्त हुआ। तब ८२१ [कं.] दवशिखियुत (दावाग्नियुक्त) तरु के कोटर में निवसित पन्नग की तरह निज पुर से

विवुरुचु नतडु शिथिल दव
यवुडुनु गंधर्वगण विहत शौर्युडुनु ॥ 822 ॥

सी. अथि चाल घुरघुरमनु शब्द मडरंग मनमुन जितानिमग्नुडगुचु
गौडुकुल गोडंड्रु गूतुल नल्लुर मनुमल नाप्तुल ननुचराळि
ननयंबु नल्प मात्रावशिष्टंबैन गृह कोश निवह परिच्छदमुल
मसलु नहंकार ममकारमुल जेसि मतिहीनुडगुचु नॆम्मनमु लोन

ते. गडक दलचुचु विप्रयोगमुन दानु
गटकटा ! यिट्लु परलोक गतुडनैन !
यिट्टि भार्य यनाथयै यी कुमार
वरुल नेरीति ब्रोचुनो ? यरनि ननुचु ॥ 823 ॥

व. मरियु निट्लनि तलंचु ॥ 824 ॥

सी. पडति ये मुनु भुजिपक भुजिपदु नेनु निद्रवोवक मरि निद्रवोदु
नेनु नोळ्ळाडक नोळ्ळाड नॊल्लदु पदरि ये गोपिप भयमु नॊंदु
भंजिचिननु माऱु वलुकक वायोडु बुद्धिहीनुडनैन बुद्धि सॆप्पु
ललि मोड्र निट्टि कळत्रंबु तो नेनु गडगि देहांतरगतुडनैन

ते. ननयमुन दानु बुत्रिणि यगुट जेसि
यात्म शोचिनि यगुचु गृहस्थ धर्म

बाहर जाने के लिए प्रयत्न करते हुए वह शिथिल अवयव वाला, गंधर्वगण से विहत शौर्य वाला। ८२२ [सी.] होकर 'घुरघुर' शब्द के बहुत बढ़ जाने से, मन में चिन्ता-निमग्न होते हुए पुत्रों, पुत्रवधुओं, पुत्रियों, जामाताओं, पोतों, आप्तों, अनुचरालियों को क्रम से स्वत्व-मात्रावशिष्ट होनेवाले गृहकोशनिवह (समूह) और परिच्छदों (वस्त्रों) पर होनेवाले अहंकार-ममकारों के कारण मतिहीन होते हुए अपने मन में प्रयत्नपूर्वक सोचते हुए विप्रयोग से वह ओह ! [ते.] ऐसे मैं परलोकगत होऊँ तो ऐसी पत्नी अनाथा होकर इन कुमार वरों की किस प्रकार जानकर रक्षा करेगी ? [यों] सोचते हुए। ८२३ [व.] फिर इस प्रकार सोचने लगा। ८२४ [सी.] पत्नी पहले मेरे भोजन किये बिना भोजन नहीं करती। मेरे सोए वग़ैर नहीं सोती। मेरे स्नान करने से पहले स्नान करना नहीं चाहती। जल्दबाज़ी में मेरे क्रोध करने पर, डरती; डराने पर भी उत्तर न देकर, मुँह बन्द कर रहती; अगर मैं बुद्धिहीन बनता तो समझा देती। [ते.] प्रेम बढ़ जाने पर ऐसी कलत्र (पत्नी) से मैं प्रयत्न करके देहांतरगत होऊँ तो सदा उसके पुत्रिणी (सन्तानवाली) होने से आत्मशोचिनी होते हुए गृहस्थ धर्म का आचरण करते हुए रहेगी या अनुगमन (सहगमन) करेगी, ऐसा मन

माचरिंचु नुंडुनो ? यनुगमनमु
सेयुनो यनि मनमुन जित नोंदि ॥ 825 ॥

कं. तनपुत्रुलु दनपौत्रुलु, ननयमु दा जनिन यॅड निराश्रयुलगुचुन्
वननिधि मध्यंबुन नवि, सिन कलमुं बोलॅ नॅट्लु जीविंचॅदरो?॥ 826 ॥

कं. अनि यिव्विधमुनगृपणुनि, यनुवुन घन बुःख विह्वलानहुंड-
य्युनु बुःखिचु पुरंजनु, ननयमु गोनि पोव निश्चितात्मुंडगुचुन् ॥ 827 ॥

कं. चनुदॅचॅनु भयनामुंडनु, वाडप्पुडु पुरंजनाख्युडु पॅलुचन्
विनुतात्म पशुवु भंगिनि, मनमु गलग यवन नीयमानुंडय्यॅन् ॥ 828 ॥

व. अनुचर वर्गंबु भृशातुरुलुनु दुःखितुलुनै वॅनु चनुचुंड नुपरुद्धंबगु भुजंगमं बप्पुरंबु नॅपुडु वासॅनप्पुडा पुरंबु पुरंजनु बासि विशीर्णंबै प्रकृति बॊंदॆ। बलवंतुंडयिन यवनुनि चेत बलात्कारंबुन विकृष्यमाणुंडॆन पुरंजनुंडु दमः पिहितुंडै पूर्व सुहृत्तगु सखुनीश्वरु नॅरुंगकुंडॆ नंत परलोक गतुंडॆन पुरंजनुं गदिसि पूर्वंबुन नदयुंडॆन यतनि चेत हिंसिपं बडिन यज्ञ पशुवुलु क्रोधोद्रेकंबुन गुठारंबुल नतनि नरिकॅ निव्विधंबुन प्रमदासंग दोष-दूषितुंडनु नपारतमो निमग्नुंडु नष्टज्ञानुंडुनुनयि पुरंजनुंडनेक कालंबु

में चिंता पाकर ८२५ [कं.] अपने पुत्र, अपने पौत्र, अवश्य मेरे [गुजर] जाने पर, निराश्रय बनते हुए, वननिधि (समुद्र) [के] मध्य जीर्ण बनी नाव के समान, न जाने, कैसे जीवन बिताएँगे ? ८२६ [कं.] इस प्रकार कृपण (क्रूर) की तरह घन (बड़े) दुःख से विह्वल [और] अनर्ह होकर भी दुःखित पुरंजन को अवश्य ले जाने के लिए निश्चित-आत्मा वाला होते हुए। ८२७ [कं.] भय नामक व्यक्ति तब आया। हे अनघात्मा ! पुरंजनाख्य पशु की तरह यवनों से जबरदस्ती नीयमान (लिया जानेवाला) बन आया। ८२८ [व.] अनुचर वर्ग भृश (बहुत) आतुर [और] दुःखित होकर पीछे जाने लगा तो उपरुद्ध (रोका हुआ) भृजग जब उस पुर को छोड़ चुका, तब उस पुर ने पुरंजन को छोड़कर विशीर्ण होकर (शुष्क होकर) प्रकृति को पाया। बलवान होनेवाले यवन से बलात्कार करके विकृष्यमाण (खींचा गया) होनेवाला पुरंजन तमःपिहित होकर (अंधकार से ढँका जाकर) पूर्वसुहृत होनेवाले सखा ईश्वर को न जान सका। तत्र परलोकगत पुरंजन के पास जाकर पूर्वकाल में अक्षय होनेवाले उससे हिंसा पाये हुए यज्ञपशुओं ने क्रोध के उद्रेक से कुठारों से उसको काट डाला। इस प्रकार प्रमदा के संग के दोष से दूषित, अपार तमोनिमग्न (अधिक तमोगुण में मग्न) [और] नष्टज्ञान वाला बनकर पुरंजन अनेक (बहुत) काल [तक] परलोक में आर्ति (दुःख) का अनुभव करके तत् (उसकी)

परलोकंबुन नाति ननुभविंचि तद्भार्ययैन प्रमदोत्तमं चित्तंबुन नश्रांतंबुनु दलंचुचुंड ददीय संस्मरणंबुनं जेसि तरवाति जन्मंबुन विदर्भराज गृहंबुनं प्रमदोत्तमयै जन्मिंचॆ नंत ॥ 829 ॥

सी. नरवर! वीर्य पणंबैनयट्टि वैदर्भिनि मलयकेतनु डनंग
वरपुरंजयुडैन पांड्य भूमीशुंडु दारुण संगरस्थलमु नंदु
शक्ति ननेक राजन्युल निर्जिंचि परिणयंबय्यॆ ना गुरभुजुंडु-
नाविदर्भात्मजयं दसितेक्षणयैन कूतुनु द्रविडाधिनाथु-

ते. लैन कॊडुकुल नेड्वुर नर्थि गनियॆ –
वारलकु नॆल्ल नॊक्कॊक्क वरुस नर्बु
दार्बुद सुतुलु संजातुलैरि यतनि
सुत धृतव्रत नायगस्त्युडु वरिंचॆ ॥ 830 ॥

कं. अतडा कन्यक वलननु, जतुरुंडै यिध्मवाह जनकुडगु दृढ
च्युतुडनु मुनींद्रु गनियॆनु, मति नंत विरक्तुडगुचु मलयध्वजुडन् ॥831॥

ते. क्ष्मातलं बॆल्ल निजतनूजातुलकुनु
वंचि यिच्चि सरोजाक्ष पाद पंक-
जार्चना यत्तुडगुचु गुलाद्रि करुग
नंत मदिराक्षि सतियगु ना विदर्भि ॥ 832 ॥

ते. कडक गृहमुलु नखिल भोगमुलु विडिचि
चंद्रु वॆनुचनु चंद्रिक चंदमुननु

पत्नी होनेवाली प्रमदोत्तमा का चित्त मे अश्रांत (सदा) स्मरण करने से तदीय संस्मरण से, पश्चात् के जन्म में विदर्भराजगृह में प्रमदोत्तमा होकर पैदा हुआ। तब ८२९ [सी.] हे नरवर! वीर्य-पण होनेवाली वैदर्भी से मलयकेतन नामक अपर-पुरंजय (दूसरे पुरंजय) होनेवाले पांड्य भूमीश ने भयंकर संगरस्थल में [अपनी] शक्ति से अनेक राजन्यों को हराकर, परिणय किया। उस गुरु (बड़ी) भुजावाले ने उस विदर्भात्मजा में असितेक्षणा होनेवाली बेटी को, द्रविड़ के आधिनाथ होनेवाले सात पुत्रों को इच्छापूर्वक पैदा किया। [ते.] उनमें सबके एक-एक करके अर्बुद (दस करोड़) [और] अर्बुद सुत संजात हुए। उसकी सुता धृतव्रता को अगस्त्य ने वरण किया। ८३० [कं.] उसने उस कन्यका से चतुर (कुशल) बनकर इध्मवाह का जनक होनेवाले दृढ़च्युत नामक मुनींद्र को जन्म दिया। मति से तब विरक्त बनते हुए मलयध्वज ने। ८३१ [ते.] सारे क्ष्मातल को निज तनूजातों को बाँट देकर सरोजाक्ष (विष्णु) के पादपंकजों की अर्चना के लिए आयत्त होते हुए कुलाद्रि को जाने पर तब मदिराक्षी [और] सती होनेवाली वह विदर्भी ८३२ [ते.] प्रयत्न के साथ गृह

भक्ति वळुकोत्त बांड्य भूपालुडयिन
मलयकेतनु वॅनुकौनि मगुव सनिये ॥ 833 ॥

व. अट्लु धर्मपत्नि वेंट रा जनि यंदु जंद्रमसा ताम्रपर्णी नवोदकलनु नवुल पुण्य जलंबुल सुस्नातुंडयि प्रक्षाळित बाह्याभ्यंतरमलुंडुनु गंदमूलफल बीज पुष्प पर्ण तृण तोयाहारुंडुनै काय कर्शनंबैन तपंबाचरिंचुचु शीतोष्ण वर्षवातंबुलु क्षुत्पिपासलु प्रिया प्रियंबुलु सुखदुःखंबुलु ननुद्वंद्वंबुल समदर्शनुंडै जयिंचि तपोविद्यायम नियमंबुल जेसि पक्व कषायुंडै ब्रह्मंबुनंदु निजात्म ननुसंधिंचि विजितेंद्रिय प्राणचित्तुंडै स्थाणुवु बोले दिव्य वर्ष शतंबु वर्पंबु सेसि भगवंतुंडयिन वासुदेवुनियंदु प्रीति वहिंचुचु नन्यंबेरुंगक वर्तिंचुचु तन्नु स्वप्नमंदु 'ममेदं शिर श्छिन्नमिति, यनु प्रतीति यंबु बोले व्यतिरिक्तुनिगा व्यापकुनिगा नंतःकरणवृत्ति साक्षिनिगा नेरिंगि ॥834॥

सी. साक्षात्कृतुंडुनु सर्वेश्वरुंडुनु भगवंतुडुनु गृपा परुडुनैन
हरियनु लोकैक गुरुनिचे नुक्तमै सर्वतोमुखमुनु स्वप्रकाशि
तमुनगु महित शुद्ध ज्ञान दीप प्रभा ततिचे परब्रह्ममंबु
दन्नुनु दनयंदु दग बर ब्रह्मंबु नेनय गन्गोनुचु दग्धेंधनाग्नि

[और] अखिल भोग छोड़कर चंद्र के पीछे जानेवाली चंद्रिका की तरह, भक्ति के प्रकाशमान हो जाने पर, पांड्य भूपाल मलयकेतन के पीछे वह स्त्री चली गई। ८३३ [व.] उस प्रकार धर्मपत्नी के अपने साथ आने पर जाकर उसमें चंद्रमसा, ताम्रपर्णी [और] नवोदका नामक नदियों के पुण्य जलों में सुस्नात होकर, प्रक्षालित बाह्य [और] अभ्यंतर मल (दोष) वाला और कंदमूल, फल, बीज, पुष्प, पर्ण, तृण [और] तोय (जल) का आहार लेनेवाला बनकर, कायकर्शन (शरीर को क्षीण बनाने वाला) तप का आचरण करते हुए शीत और उष्ण, वर्षा और वात (वायु), क्षुत् और पिपासा, प्रिय और अप्रिय [तथा] सुख और दुःख नामक द्वंद्वों का समदर्शन करनेवाला बनकर जीतकर, तप, विद्या, यम [और] नियमों के कारण पक्व कषाय होकर ब्रह्म में निज आत्मा का अनुसंधान करके, विजित इंद्रिय, प्राण [और] चित्तवाला बन कर स्थाणु की तरह दिव्य वर्षशत तप करके भगवान होनेवाले वासुदेव में प्रीति वहन करते हुए अन्य को न जानकर प्रवर्तित होते हुए अपने को स्वप्न में "ममेदं शिरश्छिन्नमिति" वाली प्रतीति (विश्वास) में जैसे व्यतिरिक्त, व्यापक [तथा] अंतःकरण-वृत्ति का साक्षी जानकर, ८३४ [सी.] साक्षात्कृत, सर्वेश्वर, भगवान् [तथा] कृपापर (कृपायुक्त) होनेवाले हरि नामक लोकैक-गुरु से उक्त होकर, सर्वतोमुख [और] स्वप्रकाशित होनेवाली महित [और] शुद्ध ज्ञान-दीप की प्रभाततति से परब्रह्म में अपने को, अपने में अच्छी तरह परब्रह्म को बराबर

ते. भंगि नीषणमुल वॅडबासि भूरि
व्यसन सागर संसृति वलन जाल
नुपरतुंडय्यॅ ना महितोन्नतुंडु
नवनिनायक ! विनु मप्पुडतनि भार्य ॥ 835 ॥

कं. पतिदैवत शील समं, चित वेणीभूत चिकुर चीरांबर सु-
व्रत चर्या क्षामांगि वि, गत दोष विदर्भराजकन्यक यचटन् ॥ 836 ॥

ते. कमललोचन निखिल भोगमुल वीडगि
मलय केतनु बरमधर्मज्ञु जेरि
निरुपमैक पतिव्रता नियम मॊप्प
साध्वियै भक्ति वरिचर्य सलुपुचुंडॆ ॥ 837 ॥

कं. विमल मति निजेशु समी-
पमुनन् सति धूमरहित पवमान सखा-
ग्रमुन वॅलुगॊंदु कील वि-
धमुन ब्रकाशिंचु चुंडॆ दद्दयु वेड्कन् ॥ 838 ॥

कं. पति दन प्राणेश्वरुडु प-
रतुडगुट मनंबुलो नरयकनु पूर्व-
स्थिति नुपचारक्रिय लं-
चितमति गाविप दलचि चिरतर भक्तिन् ॥ 839 ॥

देखते हुए, [ते.] दग्ध ईंधन की अग्नि की तरह ईषणों (इच्छाओं) की वाधा से निर्वृत्त होकर भूरि (वड़ी) व्यसन [रूपी] सागर-संसृति (प्रवाह) से वह महित उन्नत अधिक उपरत (विगत, मृत) हुआ। हे अवनिनायक ! सुनो। तव उसकी पत्नी ८३५ [कं.] पतिदैवतशीला (पति को देव माननेवाली), समंचित वेणीभूत चिकुरा, चीरांवर [धारण करनेवाली], सुव्रतचर्या वाली, क्षामांगी (कृश देहवाली) [ऐसी] विदर्भराजकन्यका ने वहाँ ८३६ [ते.] [उस] कमललोचना ने निखिल भोगों को पाकर [फिर] छोड़कर परमधर्मज्ञ [होनेवाले] मलयकेतन के पास जाकर निरुपम पतिव्रता नियम के अच्छा लगने पर, साध्वी वनकर भक्ति से परिचर्या करने लगी। ८३७ [कं.] विमलमति वाली [वह] सती निज ईश (पति) के समीप, धूम-रहित पवमान-सखा (अग्नि) के अग्र [भाग] पर प्रकाशमान होनेवाली कीला (ज्वाला) के समान वड़े कुतूहल से प्रकाशमान हुई। ८३८ [कं.] [उस] सती ने मन में यह न जानकर कि उसका प्राणेश्वर विगत हुआ, पूर्वस्थिति से उपचार क्रियाओं को अंचित (पूज्य)-मति से करना चाहकर चिरतर भक्ति से ८३९

कं. अनुपम सुस्थिर नियमा-
सनुडगु निजनाथुडाय जनि पूर्वगतिन्
विनमितयै सति तत्पद-
वनजमु लर्चिचु नपुड्ड वरु पादमुलन् ।। 840 ।।

कं. विनु मूष्मत लेकुन्ननु, गनि यूथभ्रष्ट हरिणि कैवडि सति नें-
म्मनमुन वॅगडुचु दीनत, मनयंबुनु बंधुरहितयै शोकिचॅन् ।। 841 ।।

चं. अनयमु निट्लु शोक विपुलाश्रु पयःकणसिक्त मानित
स्तन युगयै वियोग परितापमुनन् हृदयंबु गंद शो-
भन ललिताधरोष्ठ नवपद्ममु शोषिल सुस्वरंबुगा
वनजदळाक्षि यॅड्चॅ ननिवारण दद्विपिनांतरंबुनन् ।। 842 ।।

उ. हा नरनाथ ! हा सुमहितात्मक ! हा गुणशालि ! यिक नं-
भोनिधि मेखला कलित भूमि यधार्मिक राजचोर पी-
डानिरति गृशिप नकटा ! तगु नय्य युपेक्ष सेय ? शो-
भा नयशालि ! नीवु परिपालन सेयुदु लॅम्मु भूवरा ! ।। 843 ।।

चं. अनि विलपिंचुचुन् सरसिजाक्षि निजेशु पदारविंदमुल्
दन निटलंबु सोक बरितापमुनं बडि विट्टु चाल रो-

[कं.] अनुपम [और] सुस्थिर नियम से आसन [लगानेवाले] निजनाथ के पास जाकर पूर्वगति से [वह] सती विनमिता (बिधेया) बनकर, तत् (उस पति के) पद रूपी वनजों (कमलों) की अर्चना की। करते समय उनके पाँवों को ८४० [कं.] सुनो, ऊष्मता (गर्मी) रहित होने से देखकर यूथभ्रष्ट (अपनी भीड़ से भटकी हुई) हरिणी की तरह [उस] सती ने अपने मन में रोते हुए, दीनता के साथ अतिशय बंधुरहिता बनकर शोक किया। ८४१ [चं.] ऐसे अधिक शोक से विपुल अश्रु के पयःकणों से सिक्त (भीगा हुआ) मानित स्तनयुगवाली बनकर वियोग के परिताप से हृदय के झुलसने पर, शोभन [और] ललित अधरोष्ठ रूपी नवपद्म के शोषित होने पर, अनिवारण [होनेवाले] तत् (उस) विपिनांतर में वनजदलाक्षी सुस्वर से रोयी। ८४२ [उ.] हे नरनाथ ! हा सुमहितात्मके ! हा गुणशाले ! अब अंभोनिधि (समुद्र) रूपी मेखला (कमरबंद) से कलित (बनी) भूमि के अधार्मिक राजाओं [और] चोरों की पीड़ा-निरति (आसक्ति) से कृश होने पर अहो ! उपेक्षा करने योग्य है ? हे शोभानयशाले (शोभित नीतिवाले) ! हे भूवर ! तुम परिपालन करने उठो। ८४३ [चं.] ऐसे विलाप करते हुए, सरसिजाक्षी निज ईश के पदारविंदों के अपने निटल (माथे) पर लगाकर, परिताप में डूबकर अधिक रोदन करते हुए, दारुओं (लकड़ियों) में चिता लगाकर उनमें तत्

दन मॊनरिंचुचुं दगिलि दारुवुलं जिति जेंचि यंबुलो
वेंनुपगु तत्कळेबरमु वंट्टि शिखि दरिकॊल्पि यिम्मुलन् ॥ 844 ॥

कं.ताननुगमनमु सेयं, बूनुटयुनु नंत लोन बूर्व सखुडु वि-
ज्ञानस्वरूपु डमलुडु, नॊन धरादिविजुडॊक्क डबलं गनुचुन् ॥ 845 ॥

कं. चनुदेंचि यत्तलोदरि, सुनयोक्तुल ननुनयिंचु चंदग ननियॆन्
वनिता! नीवॆव्वतॆ? वॆ, व्वनि दान? वितं डॆवंडु? वगचॆद वेला? ॥846॥

कं. अनि यडिगि वॆंडियुनु नि, ट्लनियॆनु नी सृष्टि पूर्वमंदुनु नी वॆ-
व्वनि तोडि सख्य सौख्यं, बनवरतमु ननुभविंचि तट्टि सखुंडन् ॥ 847 ॥

कं. नन्नॆरुगु देनि मनमुन, नन्नॆरुगक युन्ननैन नळिनदळाक्षी !
निन्नु बुरातनसखुगा, नॆन्नंगलदान ननियु नॆरुगवॆ चॆंपुमा ॥ 848 ॥

व. कावुन नीवुनु नेनुनुं बूर्वंबु नंदु मानस निवासुलमैन हंसलमै युंडि गृहंबु बासि सहस्र वत्सरंबुलु सखुलमै वर्तिचु नंत नीवु नन्नुं बासि भौम भोगरतुंडवै पदंबु निच्चगिंचुचु महीमंडलंबु गलयं ग्रुम्मरु नप्पुडॊक्क कामिनी-निर्मितंबु बंचारामंबु नवद्वार समेतंबु नेक पालकंबु त्रिकोष्ठंबु षट्कुलंबु बंच विपणंबु बंच प्रकृतियु स्त्रीनायकंबु नैन यॊक्क पुरंबु जॊडगंटिवदियॆट्टि दनिनं बंचारामंबुलनं बंचेंद्रियार्थंबुलु नवद्वारंबु लन नासिकादि द्वारंबुलु।

(उस) बड़ा कलेवर (शव) रखकर उपाय से शिखि (ज्वाला) करके ८४४ [कं.] वह स्वयं अनुगमन करने के प्रयत्न में थी कि इतने से पूर्वसखा विज्ञानस्वरूप [और] अमल होनेवाला एक धराद्विज (ब्राह्मण) [उस] अबला को देखते हुए ८४५ [कं.] आकर उस तलोदरी को सुनयोक्तियों से अनुनय करते हुए, अच्छी तरह [इस प्रकार] कहा, हे वनिते ! तुम कौन हो ? किसकी हो ? यह कौन है ? क्यों रो रही हो ? ८४६ [कं.] ऐसा पूछकर इस प्रकार कहा, इस सृष्टि के पूर्व में तुमने जिससे सख्य [एवम्] सौख्य का अनवरत अनुभव किया था, मैं वह सखा हूँ । ८४७ [क.] मुझे अपने मन में तुम जानती हो या नहीं जानती हो, हे नलिनदलाक्षी ! यह कहो कि 'तुम्हें पुराने सखा की तरह मान सकती हूँ'; क्या तुम यह नहीं जानती हो ? कहो । ८४८ [व.] इसलिए तुम और मैं पूर्वकाल में मानस के निवासी हंस बनकर रहकर, गृह छोड़कर, सहस्र वर्ष सखों की तरह रहते समय तुमने मुझे छोड़कर, भौमभोगरत बनकर, पद की इच्छा करते हुए, महीमंडल भर घूमते समय कामिनी से निर्मित, पंच आराम (बाग़) वाले, नवद्वार समेत, एक से पालित, त्रिकोष्ठवाले, षट्कुल वाले, पंच विपणवाले, पंचप्रकृतिवाले, [तथा] स्त्रीनायक वाले एक पुर को देखा। वह कैसा है, पूछते हो तो पंच आराम का अर्थ पंचेन्द्रियार्थ हैं, नवद्वार का अर्थ नासिका

एकपालकंबनं ब्राणपालनंबु। त्रिकोष्ठंबुलनं देजोभिन्नंबुलु। षट्कुलंबुलन निंद्रिय संग्रहंबु। विपणंबुलन गर्मेंद्रियंबुलु। पंचप्रकृति यनं बंचभूतंबुलु। प्रकृति यनु कामिनि यन बुद्धि। निट्टि पुरंबुनं ब्रविष्टुंडैन पुरुषुंडंगना परतंत्रुडु नज्ञुंडुनैन नीव यप्पुरंबुनं गामिनी संस्पृष्टुंडवै रमिंचुचु दत्संगमंबुन नष्टस्मृतिवै .वैदर्भी जन संभावित सुखा-भासंबुलगु दुःखंबुलचे निट्टि पापिष्ठंबैन दशं बौंदितिवि गावुन ॥ 849 ॥

सो. नीवु वैदर्भिवि गावु वीरु डितंडु विवरिंपगा गाडु विभुडु नीकु
नींगि मुन्नु पुरमुन नुपरुद्धु जेसिन या पुरंजन पति वरय गावु
अथि नीविपुडु परांगन ननियुनु जर्चिपगा बूर्व जन्ममंदु
बुरुषुंड वनियुनु बुद्धि दलंचुट यरयंग नीयुभयमु नसत्य

ते. मितयुनु मामकीनमै यँसगु माय
जेसि कल्पितमय्यें जर्चिप मनमु
पूर्वमुन हंसलम यनि पूनि यॅरुग
बलिकिति दॅलिय मनल रूपंबु जूडु ॥ 850 ॥

व. एने नीवु गानि यन्युंडवु गावु। नीवेने गानि यन्यंडं गानु। इट्लनि यॅरुंगुमु। विद्वांसुलु मन यिद्दर यंदु नंतरंबु नीक्षिपरु। पुरुषुंडु वनु

आदि द्वार हैं, एक पालक का मतलब प्राण का पालन है, त्रिकोष्ठ का अर्थ है तेजोभिन्न, षट्कुल का अर्थ इंद्रियों का संग्रह है, विपण का अर्थ है कर्मेद्रिय, पंच प्रकृति का अर्थ पंचभूत हैं, प्रकृति-कामिनी का अर्थ बुद्धि है —ऐसे पुर में प्रविष्ट होनेवाला पुरुष अंगना-परतंत्र [और] अज्ञ होता है। तुम्हीं ने उस पुर में कामिनी से संस्पृष्ट होकर रमण करते हुए, तत्संगम में नष्टस्मृति वाले बनकर, वैदर्भीजन से संभावित सुख के आभास होनेवाले दुःखों से ऐसी पापिष्ठ दशा प्राप्त की। इसलिए ८४९ [सी.] तुम वैदर्भी नहीं हो; विवरण करने से यह वीर तुम्हारा विभु (पति) नहीं है। क्रम से सोचने पर पहले पुर में उपरुद्ध किये गये (रोके गये) वह पुरंजन-पति [भी] नही हो। इच्छा से अब तुम्हारा [अपने को] परांगना मानना, चर्चा करने पर पूर्व जन्म में [तुम] पुरुष हो, ऐसा बुद्धि में सोचना भी, सोचने पर ये उभय (दोनों) असत्य हैं। [ते.] यह सब मामकीन (मेरी) माया के कारण कल्पित हुआ है। चर्चा करने पर हम [दोनों] पूर्व [काल में] हंस थे; इस प्रकार दृढ़ता के साथ समझा दिया। जानने के लिए फिर हमारा रूप देखो। ८५० [व.] मैं ही तुम हो; अन्य नहीं हो। तुम ही मैं हूँ; अन्य नहीं हूँ। ऐसे जान लो। विद्वान हम दोनों में अंतर नहीं देखते। जैसे पुरुष केवल अपने को ही आदर्श चक्षुओं से भिन्न रूप में समझता है, ऐसा सूझता है कि हम दोनों मे भेद है। इस प्रकार

नीवकनिनै यादर्श चक्षुवुलंवु भिन्न रूपुनिगा दलंचु चंदंबुन मन यिद्दरिकिनि भेदंबु गलिगिन यट्ल तोच् ननि यिव्विधंबुन नतंडतनि चेत नीवु पूर्वंबुन मदीय सखुंडवैन हंसवनि तेलुपंवडि स्वस्थुंडै तद्वियोग नष्टंवन ज्ञानंबु ग्रम्मरं वोंदे ननि चेप्पि नारदुंडु प्राचीनवर्हि जूचि यी यध्यात्म तत्त्वंबु राजकथा मिषंवुन नोकु नेरिंगिंचिति ननिन ॥ 851 ॥

अध्यायमु—२९

कं. विनि भूमीशुंडु नारद, मुनिकिनु भवदीय वचनमुलु सूरुलु व-
षकनु गर्म मोहितुलमै, वनरेंडु नेमेंट्लु देलियु वारमु चेंपुमा ! ॥852॥

व. अनिन योगींद्रुंडु राजेंद्रुन किट्लनियें। नरेंद्रा ! येमि कतंबुन नात्म येक द्वि त्रि चतुष्पादंबुनु वहु पादंबुनु नपादंबु नगुचु वुरंजनु देहंबु प्रकटं-बौनर्चु नाकतंबुनं बुरंजनुंडु पुरुषुंडय्ये नट्टि पुरुषुनकु नामक्रियागुणंबुल विज्ञातुंडु गाकुंडुटं जेसि यविज्ञात शब्दंबुनं जेप्पंवडु सखुंडीश्वरुंडु पुरुषुंडु साकल्यंबुनं जेसि देह परिग्रहंबु सेय निच्छिचुनप्पुडु नवद्वारकलितंबुनु द्विहस्तचरणयुक्तंबुनु नयिनपुरंबेदि गल ददि लेस्स यनि तलंचि यप्पुरं-वनु देहंबु नंदु वुरुषुं डिंद्रियंबुलं जेसि ये वुद्धि नधिष्ठिंचि विषयंबुल

उसने उससे 'तुम पूर्वकाल में मदीय सखा होनेवाले हंस हो' —ऐसा समझाया जाकर स्वस्थ वनकर, तद्वियोग से नष्ट होनेवाले ज्ञान को फिर पाया। इस प्रकार कहकर नारद ने प्राचीनवर्हि को देखकर यह अध्यात्मतत्त्व राजकथा के मिस (वहाने) तुम्हें समझा दिया —ऐसा कहा तो ८५१

अध्याय—२९

[कं.] सुनकर भूमीश ने नारद से कहा, भवदीय वचन सूरों (पंडितों) को छोड़कर, कर्म से मोहित होनेवाले हम सरीखे कैसे जान सकते हैं ? वोलो। ८५२ [व.] ऐसा वोलने पर योगींद्र ने राजेन्द्र से इस प्रकार कहा, हे नरेन्द्र ! जिस कारण आत्मा एक, द्वि, त्रि, चतुष्पाद, बहुपाद एवम् अपाद वाली होते हुए पुरंजन की देह में प्रकट होती है, उस कारण पुरंजन पुरुष वना। ऐसे पुरुष को नाम से, क्रिया से और गुणों से विज्ञात न होने से अविज्ञात शब्द द्वारा कहा जानेवाला सखा ईश्वर है। पुरुष साकल्य (सकलत्व) के कारण देहपरिग्रहण करने की इच्छा करते समय यह सोचकर कि नवद्वार-कलित, द्विहस्तचरणयुक्त होनेवाला जो पुर है वह अच्छा है, पुर रूपी उस देह को प्राप्त करता है। पुरुष इंद्रियों के कारण जिस बुद्धि पर अधिष्ठित होकर विषयों का अनुभव करता है, अहंकार [और] ममकारों के

ननुभविंचु नहंकार ममकारंबुलकु ने बुद्धितत्त्वंबु गारणंबगु नट्टि बुद्धि प्रमदोत्तम यनंबडु दानिकि सखुलु ज्ञान कर्मकारणंबुलैन यिंद्रियगुणंबुलु सखीजनंबुलु ददीय वृत्तुलु पंचमुखोरगंबनं बंचवृत्तियन प्राणंबु नेकादश महा भट्टुलन बृहद्बलुंडु नुभयेंद्रिय नायकुंडुनैन मनंबु नवद्वार समेतंबैन यप्पुरंबु ड्चुट्टि वच्चिन पांचाल देशंबुलनं बंचविषयंबुलु नवद्वारंबुलन नक्षि नासिका कर्ण मुख गुद शिश्नंबुलु नंदु नक्षि नासास्यंबु लेडुनुं बाग्द्वार पुरस्कृतंबुलु दक्षिणोत्तर कर्णंबलु दक्षिणोत्तर द्वारंबुलु गुदशिश्नंबुलु पश्चिमद्वारंबलंडु नेकस्थल निर्मितंबुलैन खद्योताविर्मुखुलु नेत्रंबुलु विभ्राजितुंबन रूपंबु द्युमंतुंडनं जक्षुरिंद्रियंबु नळिनी नाळिनुलन नासिका द्वारंबुलु सौरभंबनं गंधंबु नवधूत यन घ्राणेंद्रियंबु मुख्य यन नास्यंबु विपणंबन वाक्कु रसज्ञुंडन रसंबापणंबन व्यवहारंबु बहूदनंबन विविधान्नंबु पितृहु वन दक्षिण कर्णबु देवहु वन नुत्तर कर्णबु चंड वेगुंडनं गालोप-लक्षकंबैन संवत्सरंबु गंधर्वुलन दिवंबुलु गंधर्वी जनंबुलन रात्रुलु परीवर्तनं बन नायुर्हरणंबु गाल कन्यक यन जर यवनेश्वरुंडन मृत्यु वतनि सैनिकुलन नाधि व्याधुलु प्रज्वारुंडनं प्राणिहिंस यंदु शीघ्र वेगंबु गलिगि

लिए जो बुद्धि तत्त्वकारण होती है, वह बुद्धि प्रमदोत्तमा कहलाती है। उसके सखा ज्ञान [और] कर्म के कारण होनेवाले इन्द्रियगुण है। [उसके] सखीजन तदीय वृत्तियाँ हैं। पंचमुखोरग का अर्थ पंचवृत्ति होनेवाला प्राण है। एकादश भट का अर्थ है बृहत् बलवाला [और] उभयेंद्रियों का नायक होनेवाला मन है। नवद्वार समेत होनेवाले उस पुर को घेरकर घूम-फिर आनेवाले पांचाल देशों का अर्थ है पच विषय; नवद्वार का अर्थ है अक्षि, नासिका, कर्ण, मुख, गुद और शिश्न; उनमे अक्षि, नासा, आस्य पाँचों प्राग्द्वार पुरस्कृत है; दक्षिण और उत्तर कर्ण दक्षिण और उत्तर के द्वार हैं; गुदा और शिश्न पश्चिम द्वार हैं; उनमें एक स्थल पर निर्मित होनेवाले खद्योत और आविर्मुख नेत्र हैं; विभ्राजित नाम रूपी द्युमान अर्थात् चक्षुरिंद्रिय है। नलिनी [और] नालिन का मतलब है नासिकाद्वार; सौरभ का अर्थ है गंध; अवधूत का अर्थ है घ्राणेंद्रिय; मुख्य का अर्थ आस्य है; विपण है वाक्; रसज्ञ है रस; आपण का अर्थ है व्यवहार; बहूदन का अर्थ विविधान्न है; पितृहु का मतलब दक्षिण कर्ण है; देवहु का मतलब उत्तर कर्ण है; चंडवेग का मतलब कालोपलक्षक होनेवाला संवत्सर है। गंधर्व दिन हैं; गंधर्वीजन रातें हैं; परिवर्तन का अर्थ है आयु का हरण; कालकन्यका कहो तो जरा है; यवनेश्वर का अर्थ है मृत्यु; उसके सैनिक आधि और व्याधि हैं। प्रज्वार का अर्थ प्राणिहिंसा में शीघ्र वेग धारण करके शीतोष्ण भेदों में द्विविध ज्वर है; दक्षिण पांचाल का अर्थ है पितृलोक

शीतोष्ण भेदंबुलं द्विविधंबैन ज्वरंबु दक्षिण पांचालंबनं बितृ लोक प्रापकंबुनु प्रवृत्ति रूपकंबुनैन शास्त्रं बुत्तर पांचालंबन देवलोक प्रापकंबु निवृत्ति संज्ञिकंबु नयिन शास्त्रंबु श्रुतधरुंडन श्रोत्रंबु नासुरी नामकंबनं वश्चाद्द्वारंबनं मेढ्रंबु ग्रामकंबन सुरत सुखंबु दुर्मदुंडन गुह्येंद्रियंबु निर्ऋति नामकंबैन पश्चिम द्वारंबन गुदंबु वैशसंबन नरकंबु लुब्धकुंडनंबायुबु संधुलन हस्तपादंबुलंतःपुरंबन हृदयंबु विषूचि यनब मनंबनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 853 ॥

सी. अनघात्म ! विनुमु जायात्मजु ननुगुणात्मकंबगु मरि बुद्धि तत्त्व मर्थि
वेलय नेयेगति विकृति सेयंबडु नेयेतेरंगुल निंद्रियमुलु
विकृतिनि बोंदु ना विधमुन दद्गुणान्वितुडुनु वरुस दद्वृत्तलकुनु
घनुडु नुपद्रष्टयुनु दगु नात्मयु दद्वृत्तुलुनु बलात्कारमुननु

ते. ननुकरिपंग नर्थि जेयंग बहुट
ननवरत मात्म महिषिनि ननुसरिंचु-
टयु नेरुंगग जेप्पि यिट्लनियेनु मरियु
जन वरेण्युनितो योगिसत्तमुंडु ॥ 854 ॥

व. मरियु नरथंबन देहंबु दुरंगंबुलन निंद्रियंबु लीषा द्वयंबन संवत्सरंबुनं दत्कृत वयस्सुनु चक्रद्वयंबनं बुण्य पापकर्मद्वयंबु वेणुत्रयंबन गुणत्रयंबु

प्रापक [एवं] प्रवृत्तिरूपक होनेवाला शास्त्र; उत्तर पांचाल का मतलब है देवलोकप्रापक [एवं] निवृत्तिसंज्ञिक होनेवाला है शास्त्र; श्रुतधर का अर्थ है आसुरी नामक पश्चात् द्वार होनेवाला मेढ् (शिश्न); ग्रामक का अर्थ सुरत-सुख है; दुर्मद का अर्थ है गुह्येन्द्रिय; निर्ऋति नामक पश्चिम द्वार गुदा है; वैशस का अर्थ है नरक; लुब्धक का अर्थ है आयु; अंध का अर्थ है हस्त [और] पाद; अंतःपुर का अर्थ है हृदय; विषूचि का अर्थ मन है; इस प्रकार कहकर फिर यों बोला। ८५३ [सी.] हे अनघात्म ! सुनो, जाया, आत्मज के अनुगुणात्मक होनेवाला बुद्धितत्त्व, इच्छापूर्वक प्रकाशमान होने के लिए जिस-जिस प्रकार विकृत बनाया जाता है, जिन-जिन प्रकारों से इन्द्रिय विकृति को पाती हैं, उसी प्रकार तत् गुणान्वित क्रम से तत् वृत्तियों को घन (बड़ा) [और] उपद्रष्टा (कार्यों का विचारण करनेवाला), [ते.] होनेवाली आत्मा का तत् वृत्तियाँ बलात्कार से अनुकरण इच्छा कराए जाने पर अनवरत आत्मा (अपनी) महिषी (पटरानी) का अनुसरण करना [आदि] समझा देकर, फिर जनवरेण्य से योगिसत्तम ने इस प्रकार कहा। ८५४ [व.] रथ का अर्थ देह है, तुरग का अर्थ इंद्रिय है, ईषाद्वय का अर्थ है संवत्सर, तत्कृत वय (उम्र), चक्रद्वय का अर्थ है पुण्य-पाप कर्मद्वय, वेणु-त्रय का अर्थ है गुणत्रय, पंचबंधुर का

पंचबंधुरंबनं बंचप्राणंबुलु रश्मियन मनंबु सारथियन बुद्धि रथिकोप-वेशस्थानंबन हृदयंबु गूबरंबुलन शोकमोहंबुलु पंच प्रहरणंबुलनं बंचेद्रियार्थप्रक्षेपंबु पंचविक्रमंबनं गर्मेंद्रियंबुलु सप्तवरूथंबुलन धातुवुलु हैमोपस्करंबन रजोगुणं बक्षय तूणोरंबन ननंत वासनाहंकारोपाधि येकादश चमूपति यन नेकादशेंद्रियंबेन मनं बासुरीवृत्ति यनं बाह्य विक्रमंबु पंचेद्रियंबुल चेत मृगया विनोदंबु चंदंबुन हिंसादुलं जेसि बिषयंबुलनु भविचुटय मृगयाचरणं बोविधंबुन नुंड जोवुंडु देहंबुन स्वप्न सुषुप्ति जाग्रदवस्थल यंदु नाध्यात्मिकाधि दैविकाधि भौतिकंबुलैन बहुविध-दुःखंबुलं जेसि क्लेशंबुल ननुभविचुचु नज्ञानावृतुंडयि वर्षशतंबु निर्गुणुंडय्युनु ब्राणेंद्रिय मनो धर्मंबुलं दनयंदु नध्यवसिंचि कामलवंबुल ध्यानंबु सेयुचु नहंकार ममकार साहितंबुगा गर्माचरणंबु सेयुचुंडु ॥ 855 ॥

कं. पुरुषुडु निज प्रकाशत, बरगियु नलघुडु बरुंडु भगवंतुडुनन्
गुरुडगु नध्यात्मनु दग, बरुवडि नेरुगंग लेक प्रकृति गुणमुलन् ॥ 856 ॥

कं. विनु मेपुड दगुलु नप्पुड, यौनरंग गुणाभिमानियुनु गर्मवशुं-
डनवगु ना पुरुषुडु दा, घनमगु त्रैगुण्य कर्म कलितुंडगुचुन् ॥ 857 ॥

अर्थ है पंचप्राण, रश्मि का अर्थ है मन, सारथी का अर्थ है बुद्धि, रथिकोपवेशस्थान का अर्थ है हृदय, कूबर का अर्थ है शोक [और] मोह, पंच प्रहरण का अर्थ है पंचेंद्रियार्थ प्रक्षेप, पंचविक्रम का अर्थ है कर्मेन्द्रिय, सप्तवरूथ का अर्थ है धातुएँ, हैमोपस्कर का अर्थ है रजोगुण, अक्षय तूणीर का अर्थ है अनंत वासनाहंकारोपाधि, एकादश चमूपति का अर्थ है एकादशेंद्रिय-युक्त होनेवाला मन, आसुरी वृत्ति का अर्थ है बाह्यविक्रम, पंचेंद्रियों से मृगया-विनोद की तरह हिंसा आदि के कारण विषयों का अनुभव करना ही मृगया-चरण है। इस तरह होता है, तब जीव देह में स्वप्न, सुषुप्ति, जाग्रत् अवस्थाओं में आध्यात्मिक, आधिदैविक [और] आधि-भौतिक वहुविध दुःखों के कारण क्लेशों का अनुभव करते हुए, अज्ञान से आवृत होकर, वर्षशत निर्गुण होकर भी प्राण, इंद्रिय और मन के धर्मों से अपने में अध्यवसित होकर, काम लवों का ध्यान करते हुए, अहंकार-ममकार-सहित हो कर्म का आचरण करता रहता है। ८५५ [कं.] पुरुष निज प्रकाश से विलसित होकर भी, अलघु (बड़े), पर (परमात्मा), भगवान [और] गुरु होनेवाले उस आत्म-[पदार्थ] को, क्रम से प्रकृति के गुणों के कारण अच्छी तरह न जान सककर, ८५६ [कं.] सुनो, जब [सांसारिक विषयों में] लग जाता है, तब ठीक तरह से गुणाभिमानी [और] कर्मवशवर्ती होनेवाला वह पुरुष स्वयं घन (बड़े) त्रैगुण्य-कर्म से कलित (युक्त) होते हुए, ८५७ [सी.] धृति (स्थिरता) से अच्छे

सी. धृति नॉप्पुचुन्न सात्त्विक कर्ममुनन्नु प्रकाश भूयिष्ठ लोकमुल भूरि
राजस प्रकट कर्ममुन दुःखोदर्क लोल क्रियायास लोकमुलनु
गैकोनि तामस कर्मंबुनन्नु दमश्शोक मोहोत्कट लोकमुलनु
बॊंदुचु वुंस्त्री नपुंसक मूर्तुल देव तिर्यङ्मर्त्य भावमुलनु

ते. गलुगु गर्मानुगुणमुलु गाग जगति
बुट्टि चच्चुचु ग्रम्मर वुट्टुचिट्लु
दिविरि कामाशयुंडैन देहि यॆप्डु
नुन्न तोन्नत पदवुल नॊंदुचुंडु ॥ 858 ॥

व. अनि मरियु निट्लनियॆं ॥ 859 ॥

म. ऎनयन् क्षुत्परिपीड गुंदि शुनकं बिंटिंटिकि बोव बू-
निन दद्दैविकमैन दंडहति गानी काक चौर्यान्नमे-
ननु गानी तग बॊंदु चंदमुन नॆन्नन् दैवयोगंबु पॆं-
पुन नी जीवुडु दा ब्रिया प्रियमुलं बॊंदु द्रिलोकंबुलन् ॥ 860 ॥

कं. गॊनकॊनि यिट्टि दुःखमुलकुं ब्रतिकारमु मानवेंद्र ! क-
लिगन विन् तत्प्रतिक्रिय नकिंचन वृत्ति जनुंडु मस्तकं-
बुन निडुमोपु मूपुनन्नु बूनिन दद्भर दुःखमात्म वा-
यनि गति जीवुडुं द्रिविधमै तगु दुःखमु बायडॆन्नडुन् ॥ 861 ॥

लगनेवाले सात्त्विक कर्म में प्रकाश से भूयिष्ठ (भरे हुए) लोकों में भूरि (बड़े) राजस् से प्रकट कर्म में, दु:खों से उदर्क (भविष्यत्) में लोल (चंचल) क्रियाओं से आयास [पानेवाले] लोकों को लेकर, तामस कर्म में तम, शोक मोह से उत्कट लोकों को प्राप्त करते हुए, पुरुष, स्त्री [और] नपुंसक मूर्तियों, देव, [ते.] तिर्यक् (जानवर) [और] मर्त्य भावों से होनेवाले कर्मानुगुण होने पर, जगत् में पैदा होकर, मरते हुए, फिर पैदा होते हुए, इस प्रकार इच्छा करके कामाशय होनेवाला देही सदा उन्नत [से] उन्नत पदों को प्राप्त करता रहता है। ८५८ [व.] इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। ८५९ [म.] बड़ी क्षुत् (भूख) की परिपीड़ा से दु:खित होकर शुनक के घर-घर जाने पर, तत् दैविक होनेवाली दंडहति (लाठी की मार) हो अथवा चौर्यान्न (चोरी से मिला अन्न) ही हो, अच्छी तरह पाता है, वैसे ही योग्य दैव-योग के बढ़ने पर यह जीव स्वयं त्रिलोकों में प्रिय [और] अप्रिय को पाता है। ८६० [चं.] हे मानवेंद्र ! सुनो; प्रयत्न करके ऐसे दु:खों का प्रतीकार हुआ तो तत् प्रतिक्रिया से अकिंचन वृत्तिवाले जन (व्यक्ति) को 'मस्तक पर रखी गई गठरी को पीठ पर रखने पर भी तत् भर (भार) का दु:ख आत्मा से नहीं छूटता, उसी प्रकार जीव त्रिविध दु:खों को कभी छूट नहीं पाता। ८६१

कं. घन दुःख हेतु कर्म, बुनु दत्प्रतिकार कर्ममुनु ननु माया
जननमु लगुटनु बुरुषुडु, गनु गललो दोचिनट्टि कलचंदमुनन् ॥ 862 ॥

व. सवासनोच्छेदकंबु गादनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 863 ॥

सी. नरनाथ ! विनुमु स्वप्नंबु चंदंबुन नज्ञान विलसितंबगुट जेसि
तिविरि मिथ्याभूत देहादिकमुनकु नरय निवर्तना यास मेटि-
कनि यंटिवेनिनि नर्थंबु लेकुन्न नर्थि सोपाधिकंबैन मनमु
वांछतो स्वप्नमु वर्तिप बुरुषुनि बूनि जाग्रद्बोधचे नुपाधि

ते. चॅडक स्वाप्निक संसृति विडुवनट्लु
तत्त्व विज्ञानमुन नविद्या निवृत्ति
दार देहादिक निवृत्ति दगुलकुन्न
विवुट संसृति दानि वर्तिपकुंडु ॥ 864 ॥

चं. घन पुरुषार्थभूत मनगादगु नात्मकु नेनिमित्तमै
यीनर ननर्थ हेतु वन नूल्कोनु संसृति संभविंचु न-
ट्लनयमु दन्निमित्त परिहारक मर्थि जगद्गुरुंडु ना
दनरिन वासुदेव पद तामरसस्फुट भक्ति यारयन् ॥ 865 ॥

कं. पूनिन तद्भक्ति समी, चीन गति देलिय ननघ! चिर वैराग्य
ज्ञान जनकमगु भक्ति नि, धानमु गोविंद वर कथाश्रयम यगुन् ॥ 866 ॥

[कं.] घन दुःख का हेतु (कारण) कर्म, तत् प्रतीकार का कर्म, इनके माया जनित होने से पुरुष स्वप्न में देखे गये स्वप्न की तरह [इन्हें] देखता है। ८६२ [व.] [यह]सवासना का उच्छेदन करनेवाला नहीं है। फिर इस प्रकार कहा। ८६३ [सी.] हे नरनाथ ! सुनो। स्वप्न की तरह अज्ञान से विलसित होने के कारण इच्छा करके मिथ्याभूत देह आदि को जान लेने पर निवर्तन (लौट जाना) का आयास (श्रम) क्यों ऐसा कहते हो तो अर्थ न होने से इच्छा करके सोपाधिक होनेवाला मन वांछा से स्वप्न के प्रवर्तमान होने पर पुरुष को प्रयत्न करके जाग्रत् बोध से उपाधि को न बिगाड़ कर, [ते.] स्वाप्निक-संसृति को जैसे नही छोड़ते, तत्त्वविज्ञान में अविद्या की निवृत्ति दारा (पत्नी), देह आदि की निवृत्ति न लगने पर इच्छा की संसृति उससे प्रवर्तमान न होती। ८६४ [च.] घन (श्रेष्ठ) पुरुषार्थभूत कहने योग्य आत्मा के लिए मैं निमित्त (कारण) होकर, अनर्थ-हेतु बनी हुई संसृति संभवित होती है, उस तरह सदा उस निमित्त का परिहार करनेवाले जगत्गुरु वासुदेव के पद-तामरस (चरण-कमल) में इच्छा से स्फुट (स्पष्ट) भक्ति को, सोचने पर, ८६५ [कं.] गृहीत तत् भक्ति की समीचीन (उचित) गति को ज्ञात कर लेने के लिए हे अनघ ! चिर वैराग्य ज्ञान का जनक होनेवाली भक्ति का निधान (स्थान) गोविंद की

व. कावुन नदि तत्कथाकर्णन गान निरतुंडु विश्वास संयुक्तुंडु नैन वानिकि संभविंचु मरियुनु ॥ 867 ॥

कं. धर साधुलु विमलांतः, -करणुलु भगवद्गुणानुकथन श्रवण
स्फुरित स्वांतुलु ननघुलु, वरमतुलुन्नॆन भागवत निलयमुलन् ॥ 868 ॥

कं. सरसोदार महात्म मु, खरितमुलगु मधु विरोधि कमनीय गुणो-
त्कर सुरुचिर चरितामृत, परिपूरित वाहिनुलनु बरम प्रीतिन् ॥ 869 ॥

कं. मनमलरग श्रोत्रांजलु, -लनु बानमु सेयु पुण्युलकु क्षुत्तृष्णा
घन भय शोक विमोहमु, लनयंबुनु सोककुंडु नवनीनाथा ! ॥ 870 ॥

व. कावुन निट्टि भागवत सहवासंबु लेक तनंतन भगवद्भागवत गुणाभि-वर्णन कथानुचिंतनादुल यंदु ब्रवर्तिंचिन नालस्यादि दोषंबु लॊंदियी जीव लोकंबु सहज क्षुधादिकंबुन नुपद्रुतंबै सर्वेश्वर कथामृत वाहिनि यंदु रति जेयदिदि निश्चितंबनि मरियु निट्लनियॆ ॥ 871 ॥

सी. पद्मसंभवुडुनु भवुडुनु मनुकुल समिति दक्षादि प्रजापतुलुनु
नैष्ठिकुलैन सनक मुख्यमुनुलु बुलस्त्युंडु भृगुवु बुलहुडु ग्रतुवु

वर कथा का आश्रय होगा। ८६६ [व.] इसलिए वह [भक्ति] तत्कथाकर्णन-गान में निरत [और] विश्वाससंयुक्त होनेवाले को उपलब्ध होगी। और, ८६७ [कं.] धरा पर साधु, विमल अंतःकरणवाले, भगवान के गुणों के कथनों को श्रवण करने में स्फुरित (उत्साहित) स्वांत (मन) वाले, अनघ (पापरहित), वर मतिवाले, भागवतों के निलयों में, ८६८ [क.] सरस [और] उदार [तथा] महात्माओं से [मुख से] मुखरित होनेवाले मधुविरोधी (विष्णु) के कमनीय गुणों के उत्कर (समूह) के सुरुचिर चरित रूपी अमृत से परिपूरित वाहिनियों में परम प्रीति से, ८६९ [कं.] मन संतृप्त हो जाय, ऐसा श्रोत्र रूपी अंजलियों से पान करनेवाले पुण्यात्माओं को, हे अवनिनाथ ! क्षुत् (भूख), तृष्णा (प्यास) घन (अधिक) भय, शोक और विमोह, कभी व्याप्त नहीं होते। ८७० [व.] इसलिए ऐसे भागवत-सहवास के बिना अपने-आप भगवत् [तथा] भागवतों के गुणों के अभिवर्णन की कथाओं का अनुचिंतन आदि में प्रवर्तमान होने से आलस्य आदि दोष पाकर यह जीवलोक सहज क्षुधा आदि के उपद्रुत (वेग) से सर्वेश्वर की कथा रूपी अमृतवाहिनी में रति (प्रेम) नहीं होने पाता। यह निश्चय है। फिर इस प्रकार कहा। ८७१ [सी.] हे इद्धचरितवाले ! पद्मसंभव (ब्रह्मा), भव (शिव), मनुकुल की समिति (समूह), दक्ष आदि प्रजापति, नैष्ठिक होनेवाले सनक मुख्य (आदि), पुलस्त्य, भृगु, पुलह, क्रतु, अत्रि, मरीचि, अंगिरस, अरुंधती का विभु (वसिष्ठ), रूढ़ि से प्रकाशमान होनेवाले ऐसे बहु

नत्रि मरीचियु नंगिरसुंडु नरुंधती विभुडुनु रूढि मॅट्रय
बहु पुण्यु ले गडपल गाग गल ब्रह्मवादुलुनु नंदरुनु वाक्कुलकु दगनु

ते. नॅनय नीश्वरुलै युंडियुनु समग्र
मति दपोयोग विद्या समाधि वरवि-
चारुलै युंडियुनु सर्व साक्षियैन
यीश्वरुनि वॅदकियु गान रिद्धचरित ! ॥ 872 ॥

व. अदि यॅट्लंटेनि ॥ 873 ॥

म. घनविस्तार मपार मद्वय मनंगा नॉप्पु वेदंबु दा-
मनुवर्तिचुचु मंत्रयुक्ति विविधंबै नट्टि देवाख्य शो-
भन सामर्थ्यमु चेत निद्रमुख रूपं बिष्टदेवंबुगा
गनि वेड्कन् भजियिंचु वारलु गनंगा नेर्तुरे यीश्वरुन् ॥ 874 ॥

कं. विनु सात्म भावितुंडन, नॅनसिन भगवंतुडॅप्पु डॅव्वनि गरुणन्
दनरुचु ननुग्रहिचुनु, मनुजेश्वर ! यपुडवाडु महितात्मकुडे ॥ 875 ॥

कं. धीरत नीलोक व्यव, -हारंबुनु वैदिकंबु नन दगु कर्मा-
चारमु लंदु विनिष्ठित, -मै रूढि दनर्चु बुद्धि नर्थिन् विडुचुन् ॥ 876 ॥

सी. कावुन राजेंद्र ! नीवुनु बरमार्थरूपंबुलगुचु ब्ररोचमान-
मुलुनु गर्णप्रियंबुलु नगु नस्पष्ट वस्तुवुलुनु दग वरलु कर्म

पुण्यात्मा [तथा] ब्रह्मवादी, [ऐसे जन] समस्त वाक्-समिति के अच्छी तरह ईश्वर (अधिकारी) होते हुए भी, [ते.] समग्र मति से, तप, योग, विद्या [एवं] समाधि से वर विचार करनेवाले होकर भी, सर्वसाक्षी होनेवाले ईश्वर को अन्वेषण करके भी देख नहीं सकते। ८७२ [व.] वह कैसा, अगर ऐसा पूछते हो तो ८७३ [म.] घन (बड़े) विस्तार, अपार [और] अद्वय बन विलसित वेद के स्वयं अनुवर्तन करते हुए (अनुरूप अनुसरण करते हुए) मंत्रयुक्ति से विविध देवाख्य के शोभन सामर्थ्य से, इन्द्र-मुख (-आदि) रूप को इष्ट दैव मानकर, कुतूहल से जो भजन करते हैं [क्या वे] ईश्वर को देख सकते हैं ? (नहीं) ८७४ [कं.] हे मनुजेश्वर ! सुनो। आत्मा से भावित होकर भगवान जब जिसको करुणा से अच्छी तरह अनुगृहीत करता है, तब वह महितात्मा बनकर, ८७५ [कं.] धीरता के साथ, इस लोक व्यवहार को, वैदिक कहने योग्य कर्म के आचरणों में, विनिष्ठित होकर रूढ़ि से प्रकाशमान होनेवाली बुद्धि को इच्छा से छोड़ देता है। इसलिए ८७६ [सी.] हे राजेन्द्र ! तुम भी परमार्थ रूपी होते हुए, अधिक रुचिकर [और] कर्णप्रिय होनेवाले अस्पष्ट वस्तु बनकर प्रवर्तमान होनेवाले इन विविध कर्मों में पुरुषार्थ बुद्धि मत लगाओ। अति घन

मुल यंदु बुरुषार्थ बुद्धि गाविपकुमति घनस्वांतुलै नट्टि वारु
परगु जनार्दन प्रतिपादकंबैन श्रुति गर्म परमनि चूपुचुंडु

ते. वारु वेदज्ञुलनदगु वारु गारु
रूढि मरि वारु नित्य स्वरूपभूत-
मैन यी यात्मतत्त्वंबु नलरु वेद
कलित तात्पर्यमनि यात्म वॆलिय लेरु ॥ 877 ॥

व. कावुनं ब्रागग्रंबुलैन दर्भल चेत सकल क्षिति मंडलास्तरंबु गाविचि यहंकार युक्तुंडवु, नविनीतुंडवुनै पॆक्कु पशुवुल जंपने कानि कर्म स्वरूपवुनु विद्यास्वरूपंबुनु नॆरुंग वा कर्म विद्यास्वरूपंबु लॆट्टि वनिन सर्वेश्वर परितोषकंबेदि यदिय कर्मंबु सर्वेश्वरुनियंदु नेमिट मति संभविंचु नदिय विद्य। यतंडे देहुलकु नात्मयु नीश्वरुंडु नगुचुंडु गावुनं बुरुषुलकु क्षेम करंबयिन याश्रयंबु तत्पाद मूलंब यतंडु प्रियतमुंडुनु सेव्यमानुंडुनु नगुचुंड नणुमात्रंबयिन दुःखंबु लेदट्टि या भगवत्स्वरूपं बॆव्वं डॆरुंगुनु वाडु विद्वांसुंडुनु गुरुंडुनु हरियु ननि चॆप्पि वॆंडियु निट्लनियॆ ॥ 878 ॥

कं. अवनीश ! यी विधंबुन
भवदीय प्रश्न मिट्लु परिहृत मय्यॆन्
दविलि यिक नीवक गोप्युमु विवरिंचॆद
जित्तगिंपु विमलचरित्रा ! ॥ 879 ॥

(बड़े) स्वांत (मन) वाले श्रेष्ठ जनार्दन का प्रतिपादक होनेवाला श्रुति कर्म है, [ते.] ऐसा कहकर बतानेवाले, वेदज्ञ कहलाने योग्य नहीं हैं। रूढि से फिर वे नित्य स्वरूपभूत होनेवाले इस आत्मतत्त्व को प्रकाशमान वेद-कलित तात्पर्य है [ऐसा कहकर अपनी] आत्मा में नहीं जानते। ८७७ [व.] इसलिए प्राक् अग्र होनेवाली दर्भाओं से सकल क्षितिमंडल को फैलाकर, अहंकारयुक्त [और] अविनीत बनकर, अनेक पशुओं को मारने के अतिरिक्त, कर्मस्वरूप [और] विद्या-स्वरूप को नहीं जानते हो। अगर तुम पूछते हो कि वे कर्म [और] विद्या के स्वरूप कैसे हैं, तो जो [कुछ] सर्वेश्वर के लिए परितोषक (तृप्त करनेवाला) होता है, वही कर्म है; जिसके कारण उस सर्वेश्वर पर मति (बुद्धि) लग जाती हो, वही विद्या है। वही देहियों के लिए आत्मा [तथा] ईश्वर होता है। इसलिए पुरुषों के लिए क्षेमंकर होनेवाला आश्रय तत् (उसका) पाद (चरण) मूल ही है। जब वह प्रियतम [एवं] सेव्यमान होता है, [तब] अणुमात्र का भी दुःख नहीं है। ऐसे उस भगवत्स्वरूप को जो जानता है, वह विद्वान, गुरु और हरि है। इस प्रकार कहकर फिर यों बोला। ८७८ [कं.] हे अवनीश ! इस प्रकार भवदीय प्रश्न परिहृत (हटाया गया) हो गया है।

सी. ललि सुमनोवाटिकल यंदु नल्प प्रसूनमरंद गंधानुमोद
संचारियुनु मृगी सहितमु दन्निवेशित चित्तमुनु मधुव्रत निनाद
मेदुर श्रवणानुमोदितमुनु बुरोभाग चरन्निज प्राण हारि
दीपित वृकगणाधिष्ठितमुनु लुब्धक क्रूर घन सायक प्रभिन्न

ते. पृष्ठ भागंबुनै तगनैदनु मृत्यु-
भीति वाटिल्ल नौडुदप्पिप वैरवु
गान कडवि जरिंचु मृगंबु पगिदि
भूवरोत्तम ! विनवय्य पुरुषु डेपुडु ॥ 880 ॥

व. अंगना निवासंबुल यंदु क्षुद्रतमंबगु काम्य कर्म परिपाक जनितंबैन जिह्वोपस्थादि कामजनित सुखलेशंबुल नन्वेषिंचुचु गामिनीयुक्तुंडुनु दन्निवेशित मानसुंडुनु नति मनोहर वनिता जनालाप श्रवण तत्पर चित्तुंडुनु प्रत्यक्षंबुन नायुर्हरण कारणाहोरात्रादि काल विशेषगणनापरुंडुनु गाक परोक्षंबुनं गृतांत शर निर्भिन्नगात्रुंडुनु नगुचु नी जीवुंडु विहरिंचुचुंडु गावुन नीवु नी जीवुनि मृग चेष्टितुनिगा विचारिंचि श्रोत्रादुलंदुन्न

अब और एक गोप्य (रहस्य) समझा दूंगा। हे विमल चरित्र वाले ! सुनो। ८७९ [सी.] हे भूवरोत्तम (राजा)! सुनो। सुंदर सुमनों (पुष्पों) की वाटिकाओं में, अल्प प्रसूनों (फूलों) के मरद (मकरंद) [की] गंध के अनुमोद (युक्त) से संचरण करनेवाले, मृगी-सहित, तत् (उसमे) निवेशित (लगाया गया) चित्त को, तथा मधुव्रतों (भ्रमरों) का निनाद अच्छी तरह श्रवण करने [से] अनुमोदित, पुरोभाग में (सामने) चरनेवाले प्राणहारी की तरह दीप्त वृकगण से अधिष्ठित, लुब्धक (शिकारी) के घन (तेज़) सायकों (बाणों) से प्रभिन्न (बिंधा गया) पृष्ठभाग वाला बनकर, [ते.] मन में मृत्यु की [बड़ी] भीति होने पर, बच सकने का अन्य उपाय न जानकर, जंगल में घूमनेवाले मृग की तरह सदा पुरुष ८८० [व.] अंगनाओं के निवासों में क्षुद्रतम काम्य कर्म के परिपाक से जनित जिह्वा [और] उपस्था आदि काम से जनित सुखलेशों का अन्वेषण करते हुए, कामिनीयुक्त, तन्निवेशित मानस वाला (उस कामिनी पर लगाया हुआ मन वाला), अति मनोहर वनिता जन के आलापों को श्रवण करने में तत्पर चित्त वाला [तथा] प्रत्यक्ष में आयु का हरण करने के कारण होनेवाले अहोरात्रि आदि काल-विशेष की गणना में पर (रत, लगा हुआ) न बनकर, परोक्ष में कृतांत (यम) के शरों से निर्भिन्न (बिंधे गये) गात्र (शरीर) वाला बनते हुए यह जीव विहार करता रहता है। इसलिए तुम अपने जीव को मृगचेष्टित मानकर श्रोत्र आदि में रहनेवाले शब्द आदि की तरह बाह्य वृत्तियां होने-वाले श्रौत [और] स्मार्त आदि कर्मों को हृदय में नियमित करते हुए, असज्जनों

शब्दादुलं बीलॅ बाह्य वृत्तुलगु श्रौतस्मार्तादिरूप कर्मंबुलनु हृदयंबुनंबु नियमिंचुचु नसज्जन यूथवार्त्तासहितंबॅन गृहाश्रमंबु विडुवुमु। सकल जीवाश्रयुंडॅन योश्वरुनि भजियिपु मिट्लु सर्वतोविरक्तुंडवु गम्मनि नारदुंडु पलिकिनं ब्राचीनबर्हि यिट्लनियॅ ॥ 881 ॥

कं. मुनिवर भगवंतुंडवु, ननुपम विज्ञान निधिवि ननदगु नीचे-
तनु विवरिपंगा दगि, यॅनसिन यी यात्म तत्त्व मिट ना चेतन् ॥ 882 ॥

व. श्रुतंबुनु विचारितंबुनु नय्यॅ गर्म निष्ठुलगु नुपाध्यायुलॅन वारली यात्म तत्त्वंबु नॅरुंग रॅरिगिरेनि नुपदेशिपरु। गावुन दत्कृतंबयिन महासंशयंबु नीचेत निवृत्तंबय्यॅ ननि वॅंडियु निट्लनियॅ ॥ 883 ॥

सी. अनघात्म ! येमिटि यंदु नी यिंद्रियवृत्तुलु दग ब्रवर्तिपकुंडु
टनु जेसि ऋषुलॅन घनमुग मोहितुरट्टि यर्थंमु नंदु नात्म संश-
यमु गल्गु चुन्नदि यदि यॅट्टिदनिननु बुरुषुडेये देहमुननु जेसि
कर्ममुल् सेसि तत्कायंबु नीलोक मंदुने विडिचि तानन्य देह-

ते. मथितो घटियिंचि लोकांतरमुनु
बॉदितत्कर्मफलमुनु बॉदु ननुचु
ब्रकटमुग वेद वेत्तलु वलुकुचुंडु-
रन्न नदि यॅट्लु विन नुपपन्नमगुनु ? ॥ 884 ॥

के यूथों (समूहों) की वार्त्ता-सहित होनेवाला गृहस्थाश्रम छोड़ दो। सकल जीवों का आश्रय होनेवाले ईश्वर का भजन (सेवा) करो। इस प्रकार सर्वतोविरक्त (सर्वथा विरक्त) बनो। इस प्रकार नारद के कहने पर प्राचीनबर्हि ने इस प्रकार कहा। ८८१ [कं.] हे मुनिवर ! भगवान [और] अनुपम विज्ञान की निधि कहलाने योग्य तुमसे, तुम्हारे समझाने से योग्य बना हुआ यह प्रसिद्ध आत्मतत्त्व, इधर मुझसे ८८२ [व.] श्रुत [एवं] विचारित हुआ। कर्मनिष्ठ होनेवाले उपाध्याय होनेवाले इस आत्मतत्त्व को नहीं जानते। जानने पर भी उपदेश नहीं देते। इसलिए तत्कृत महासंशय तुमसे निवृत्त हो गया है। इस प्रकार कहकर फिर इस प्रकार बोला। ८८३ [सी.] हे अनघात्म ! जिसमें इन इंद्रिय-वृत्तियों के अच्छी तरह प्रवर्तमान न होने के कारण ऋषिगण भी घन (अधिक), मोह करते हैं, ऐसे अर्थ में [मुझे] आत्म-संशय हो रहा है। वेदवेत्ता प्रकट रूप से कहते है कि पुरुष किन-किन देहों के कारण कर्म करके तत् काय (शरीर) को इसी लोक में छोड़कर, [ते.] वह स्वयं अन्य देह को इच्छापूर्वक घटित करके लोकांतर को पाकर तत् कर्म का फल पाता है; यह सुनने को मुझे कुतूहल हो रहा है। ८८४ [व.] इसके अतिरिक्त

व. अदियुनुं गाक याचरितंबैन कर्मंबु तत्क्षणंब विनष्टंबगुटं जेसि देहांतरं-बुन लोकांतर भावियैन फलं बॆट्लु संभविंच ननिन प्राचीनबर्हिकि नारदुंडिट्लनियें। नरेन्द्रा! स्वप्नावस्थयंदु लिंगशरीराधिष्ठातयैन जीवुंडु जाग्रद्देहाभिमानंबु विडिचि तादृशंबकानि यतादृशंबकानियैन शरीरांतरंबु नॊंदि मनंबुनंदु संस्कार रूपंबुन नाहितंबैन कर्मंबु ननुभविंचु चंदंबुनं बुरुषुंडे लिंगशरीरंबुनं जेसि कर्मंबु नाचरिंचु नालिंगशरीरंबुन लोकांतरंबुन देह विभेदंबु नॊंदक तत्फलंबनुभविंचु नदियुनुं गाक दान-प्रतिग्रहादुल यंदु स्थूलदेहंबुनकुं गर्तृत्वंबु गलदंटिवेनि नहंकार ममकार युक्तुंडयिन पुरुषुंडु मनंबुनं जेसि येये देहंबु परिग्रहिंचु नाया देहंबुन सिद्धंबैन कर्मंबा जीवुंडनुभविंचु नट्लु गाकुन्न गर्मंबु पुनर्भवकारणं-बगुट युपपन्नंबु गाकुंडु गावुन मनःप्रधानंबैन लिंगशरीरंबुनके कर्तृत्वं बुपपन्नंबगु ननि वॆंडियु निट्लनियें ॥ 885 ॥

कं. क्षिति नुभयेंद्रिय कर्म-
स्थितुलनुभवमंद बडिन चित्तमु पगिदिन्
धृति जित्त वृत्तुलनु ल-
क्षितमगु दत्पूर्व देहकृत कर्मंबुल् ॥ 886 ॥

व. अदि यॆट्लनिनिन नी देहंबुनं जेसि ये रूपंबु ने प्रकारंबुन नॆप्पु डॆच्चट नगु

आचरित कर्म तत्क्षण ही विनष्ट होने से देहांतर में लोकांतरभावी होनेवाला फल कैसे संभव होता है? ऐसा पूछने पर प्राचीनबर्हि से नारद ने इस प्रकार कहा। हे नरेन्द्र! स्वप्न की अवस्था में लिंगशरीर का अधिष्ठाता होनेवाला जीव जाग्रत्-देह का अभिमान (आसक्ति) छोड़कर, तादृश या यतादृश होनेवाले शरीरांतर को पाकर, मन में संस्कार-रूप में अहित कर्म का जैसे अनुभव करता है, वैसे पुरुष जिस लिंग शरीर से कर्म का आचरण करता है, उस लिंगशरीर में लोकांतर में देह-विभेद न पाकर, तत् फल का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त दान [और] प्रतिग्रह आदि में स्थूल देह के लिए कर्तृत्व है—अगर तुम ऐसा कहते हो तो, अहंकार [और] ममकारयुक्त पुरुष मनन के कारण जिस-जिस देह का परिग्रहण करता है, उस-उस देह में सिद्ध होनेवाले कर्म का वह जीव अनुभव करता है। ऐसा न होता तो कर्म का पुनर्भव का कारण होना उपपन्न नहीं होगा। इसलिए मनःप्रधान होनेवाले लिंगशरीर ही को कर्तृत्व उपपन्न होता है। इस प्रकार कहकर फिर इस तरह कहा। ८८५ [कं.] क्षिति पर उभयेंद्रिय कर्म स्थितियों का अनुभव पानेवाले चित्त की तरह धृति (धैर्य) से चित्तवृत्तियों को तत्पूर्व देह से कृत कर्म लक्षित होते है। ८८६ [व.] अगर तुम पूछते हो कि वह कैसा है, तुम्हारी देह के कारण जो रूप

नदि यननुभूतंबुनु नदृष्टबुनु नश्रुतंबुनुनै युंडु नट्टिदि यॊकानॊक कालंबुन वासनाश्रयुंडयिन पुरुषुनकु दवनुभवादियुक्तंबगु पूर्वदेहंबुन ननुभूतंबुनु दृष्टंबुनु श्रुतंबुनु ननि विश्वसिपुमी मनंबुन ननुभूतार्थंबु गोचरिपजालदी मनंबॆ पुरुषुलकु शुभाशुभ निमित्तंबुलैन पूर्वापर देहंबुलं ब्रकाशिपंजेयुचुंडु नीमनंबु नंदु नदृष्टंबु नश्रुतंबुनैन यर्थंबु स्वप्नादिकमंदुं दोचु नंटिवेनि नदि देशकाल क्रियाश्रयंबनि तलंपंदगु समस्त विषयंबुलु क्रमानु रोधंबुन मनंबुनं जेसि भोग्यंबुलगुननि मरियु ॥ 887 ॥

चं. सुमहित शुद्ध सत्त्वगुण शोभितमुन् सरसीरुहोदरो-
त्तम गुण चिंतनापरमु धन्यमु नैन मनंबु नंदु भू-
रमण सुधांशुनंदु नुपरागमुनन् दिवि दोचु राहु चं-
दमुनन् गोचरंबगु नुदारत नी यखिल प्रपंचमुन् ॥ 888 ॥

व. अनि वॆंडियु निट्लनियॆ। लिंगदेहमुनकु गर्तृत्व भोक्तृत्वंबुलु स्थूल देहद्वारकंबुलगुटं जेसि स्थूल देह विनाशंबु गलुगगं जीवुनकु गर्तृत्व भोक्तृत्वंबुलु लेकुंडुटं जेसि मुक्ति गलुगुनंटिवेनि नी स्थूल देह संबंधंबु जीवुनियंदु बुद्धि मनोमोक्षार्थगुण व्यूह रूपादि लिंग शरीर भंग पर्यंतंबु गलुगु चुंडुनु। सुषुप्ति मूर्छादुलयंदु निष्ट वियोगादि दुःखमंदु नहंकारंबु गलिगि युंडु नदि यिंद्रियोपहतिं जेसि यमावास्य यंदलि चंद्रुडुनुं बोलॆ

जिस प्रकार [जब जहाँ] बनता है, वह अननुभूत, अदृष्ट [और] अश्रुत होकर रहता है। किसी-न-किसी काल में वासनाओं के आश्रय में रहनेवाले पुरुष को तदनुभव आदि से युक्त पूर्वदेह में अनुभूत, दृष्ट [और] श्रुत है, ऐसा विश्वास करनेवाले तुम्हारे मन में अननुभूतार्थ गोचर नहीं होता। यही मन पुरुषों को शुभ और अशुभ निमित्त होनेवाले पूर्व और अपर देहों को प्रकाशमान करता रहता है। अगर तुम कहते हो कि तुम्हारे मन में अदृष्ट [और] अश्रुत होनेवाला अर्थ स्वप्न आदि में भी सूझता है, तो ऐसा समझना चाहिए कि वह देश, काल [और] क्रिया का आश्रय है। समस्त विषय, क्रमानुरोध से, मन के कारण भोग्य होते हैं। इस प्रकार कहकर फिर ८८७ [चं.] सुमहित, शुद्ध [और] सत्त्वगुण से शोभित और सरसीरुहोदर (विष्णु) के उत्तम गुणों का चिंतनापर और धन्य होनेवाले मन में, हे भू-रमण! सुधांशु (चन्द्रमा) में उपराग (ग्रहण) के कारण दिवि पर (आकाश पर) दिखाई पड़नेवाले राहु की तरह यह अखिल प्रपंच (संसार) उदारता से गोचर होता है। ८८८ [व.] इस प्रकार कहकर, फिर इस तरह कहा। अगर तुम कहते हो कि लिंगदेह के लिए कर्तृत्व [और] भोक्तृत्व स्थूल देह द्वारा होने से, स्थूल देह का विनाश होने पर, जीव के लिए कर्तृत्व [और] भोक्तृत्व न होने से मुक्ति मिलती है, तुम्हारी स्थूल

दरुण पुरुषुनकु गर्भ बाल्यावस्थलयंबु निद्रिय पौष्कल्यंबु लेकुंडुटं जेसि येकादशेंद्रिय स्फुरण समर्थंबैन यहंकारंबु गर्भादुलकु ब्रकाशिपनि चंदंबुनं वोपकुंडु गावुन स्थूलदेह विच्छेदकंबु लेकुंडुटं जेसि वस्तुभूतार्थंबु लेकुन्न नी संसारंबु विषयंबुलयंदासक्तुंडगु जीवुनकु स्वाप्निका नर्थागमनंबुनं बोले निर्वर्तिपदी तीरुन बंचतन्मात्रात्मकंबुनु द्रिगुणात्मकंबुनु षोडश विकारात्म विस्तृतंबुनु नयिन लिंगशरीरंबु नधिष्ठिंचि चेतनायुक्तुंडैन जीवुंडनि चॅप्पंबडु सद्रियुनु ॥ 889 ॥

सी. तिविरि यप्पुरुषुंडु देहंबुननु जेसि यनयंबु बॅक्कु देहांतरमुल
नंगीकरिंचुचु नदि विसर्जिंचुचु सुखदुःख भय मोह शोकमुलनु
बॊंलुपॊंदु तद्देहंबुलनॆ पॊंदुचुनुंडु नदि यॆट्टुलन्ननु नग्रभाग
तृणमूदि मरि पूर्व तृण परित्यागंबु गाविंचु तृण जलूकयुनु बोलॆ

ते. जीवु डवनि गोंत जीविंचि म्रियमाणु-
डगुचु नॊंडु देह मर्थि जॆंदि
कानि पूर्वमैन कायंबु विडुवड
गान मनमॆ जन्म कारणंबु ॥ 890 ॥

देह का संबंध, जीव में बुद्धि, मनोमोक्षार्थ गुण, व्यूह [और] रूप आदि लिंगशरीर के भंग (नाश) पर्यंत होता रहता है। सुषुप्ति और मूर्च्छा आदियों में, इष्ट वियोग आदि दुःख में अहंकार होता है। वह इंद्रियोपहति के कारण अमावास्या के चंद्रमा की तरह तरुण पुरुष को गर्भ [और] बाल्य की अवस्थाओं में इंद्रियों का पौष्कल्य न होने के कारण एकादश इंद्रियों के स्फुरण में समर्थ होनेवाला अहंकार जैसे गर्भ [दशा] आदि में प्रवेश नहीं करता वैसे नहीं सूझता। इसलिए स्थूल देह का विच्छेद न होने से वस्तु-भूतार्थ न हो तो यह संसार विषयों मे आसक्त होनेवाले जीव के लिए स्वाप्निक अनर्थों के आगमन की तरह निवर्त नही होता। इस प्रकार पंच-तन्मात्रक, त्रिगुणात्मक [और] षोडश विकारात्मक [तथा] विस्तृत होनेवाले लिंगशरीर में अधिष्ठित होकर चेतनायुक्त जीव कहलाता है। फिर ८८९ [सी.] इच्छा करके वह पुरुष देह के कारण सदा अनेक देहांतरों को अंगीकृत (स्वीकृत) करते हुए उनका विसर्जन करते हुए, सुख, दुःख, भय, मोह [और] शोकों को अच्छी तरह तत् (उन्ही) देहों को ही प्राप्त करता रहता है। अगर तुम पूछते हो कि वह कैसे [संभव] है ? अग्रभाग पर तृण पकड़कर फिर पूर्ण तृण का परित्याग करनेवाले तृण-जलूक (जोंक) की तरह जीव अवनि पर कुछ काल तक जीवित रहकर, [ते.] म्रियमाण होते हुए (मरते हुए), दूसरा शरीर इच्छा से पाये विना पूर्वकाय को नहीं छोड़ देता। इसलिए मन ही जन्म का कारण

त. नरवरोत्तम ! यट्लु गान मनंबे जीवुलकॅल्ल सं-
सरण कारण मट्टि कर्मवशंबु नन् सकलेंद्रिया-
चरणु डौट नविद्य गल्गुनु संततंबु नविद्यचे
वरगुटन् बहु देहकर्म निबंधमुल् गलगुं जुमी ॥ 891 ॥

चं. विनुमदि गान भूवर ! यविद्य लयिंचुटकै रमापतिन्
घन जननस्थिति प्रळय कारण भूतुनि पद्मपत्र लो-
चनु बरमेशु नोश्वरुनि सर्वजगंबु ददात्मकंबुगा
गनुगोनुचुं ददीय पदकंजमु लर्थि भजिपु मॅप्पुडुन् ॥ 892 ॥

कं. अनि यी गति भगवंतु-
डनघुडु भागवत मुख्युडगु नारदुडा
घनुनकु जीवेश्वर गति
घनकृप नॅरिगिंचि सिद्धगति जनिन यॅडन् ॥ 893 ॥

सी. राजर्षि यॅनट्टि प्राचीनर्बाह् दा दग प्रजापालनार्थंबु सुतुल
धरकु नियोगिंचि तपमु चेयुटकुनै कपिलाश्रमंबुन करिगि वेग
नच्चट नियति नेकाग्रचित्तुंडुनु मुक्तसंगुंडुनु भूरि धैर्य-
युक्तुंडु नगुचुन् भक्तियोगंबुन ननघ ! गोविंद पदारविंद

ते. चिंतनामृतपान विशेष चित्तु -
डगुचु विधि रुद्र मुख्युल कंदरानि

है। ८९० [त.] हे नरवरोत्तम ! इसलिए मन ही सभी जीवों के लिए संसरण (संसार) का कारण है। ऐसे कर्मवश सकल इंद्रियों के आचरण का होना अविद्या से होता है। सतत अविद्या से रहने से बहुदेहकर्मों के निबंधन प्राप्त होते हैं। ८९१ [चं.] हे भूवर ! सुनो। इसलिए अविद्या के लय होने के लिए रमापति, घन (बड़े) जनन, स्थिति [और] प्रलय का कारण-भूत, पद्म-पत्र-लोचन, परमेश [तथा] ईश्वर का सर्व जग को तत् आत्मा के रूप में देखते हुए तदीय पद पंकजों का सदा भजन करो। (सेवा करो)। ८९२ [कं.] इस प्रकार भगवान, अनघ [और] भागवत-मुख्य होनेवाला नारद उस घन (श्रेष्ठ) [प्राचीनर्बाह] को, जीवेश्वर [की] गति को घन (बड़ी) कृपा से समझाकर, सिद्ध गति को चला गया तो ८९३ [सी.] राजर्षि होनेवाले प्राचीनर्बाह ने तब स्वयं अच्छी तरह प्रजा-पालनार्थ सुतों को धरा (राज्य) पर नियुक्त करके, तप करने के लिए तब कपिलाश्रम में गया, शीघ्र वहाँ नियति से एकाग्रचित्त वाला, मुक्त संगवाला [और] भूरि (बड़ा) धैर्ययुक्त होते हुए भक्तियोग से, हे अनघ ! [ते.] गोविंद [के] पदारविंद [की] चिंतना [रूपी]-अमृत-पान [में] विशेष चित्त वाला बनते हुए विधि (ब्रह्मा) [और] रुद्र मुख्यों

यव्ययानंदमय पद मंदॆ नप्पु-
डनुचु मैत्रेयमुनि विदुरुनकु जॆप्पि ॥ 894 ॥

व. वॆंडियु निट्लनियॆ। निट्लु मुकुंद यशंबुनं जेसि भुवन पावनंबु मनश्शुद्धिकरंब सर्वोत्कृष्ट फल प्रदायकंबु। देवर्षि वर्यमुख विनिस्सृतंबुनैन यी यध्यात्म पारोक्ष्यंबु नॆव्वंडु पठियिंचु नॆव्वंडु विनु नट्टिवारु लिंगशरीर विधूननंबु गाविंचि मुक्त समस्तबंधुलयि विदेह कैवल्यंबु नॊंदि संसारमु नंदु बरिभ्रमिंप रनिन मैत्रेयुनकु विदुरुंडिट्लनियॆ ॥ 895 ॥

अध्यायमु—३०

कं. मुनिनाथ ! प्रचेतसुला, घनमगु रुद्रोपदिष्ट कमलोदर की-
र्तनमुननॆ गति बॊंदिरि, वनजाक्षुडु संतसिंप वारनघात्मा ! ॥ 896 ॥

ते. कडगि मरि वारु यादृच्छिकतनु जेसि
हरिकि नित्य प्रियुंडगु हरुनि गांचि
यतनि वलनि यनुग्रह मंदि मोक्ष
मंदिरनि चॆप्पितदि निश्चयंबु मरियु ॥ 897 ॥

कं. हरिदर्शन पूर्वं बिह, -परलोकमुलंदु ना नृपाल तनयु लं-
दिरि ये फलमुल नंदरु, निरति नॆरिंगिंपु मन मुनि वरुडु वलिकॆन् ॥898॥

को भी न मिलनेवाले अव्यय आनंद पद को प्राप्त किया। इस प्रकार मैत्रेय मुनि ने विदुर से कहकर ८९४ [व.] फिर इस प्रकार कहा। इस प्रकार मुकुंद के यश के कारण भुवनपावन, मनश्शुद्धिकर, सर्वोत्कृष्ट-फलप्रदायक [और] देवर्षिवर्य मुख से विनिस्सृत यह अध्यात्म पारोक्ष्य जो पढ़ेगा [और] जो सुनेगा, वह लिंगशरीर का विधूनन करके, मुक्त समस्तबंध वाला बनकर, विदेह-कैवल्य को पाकर, संसार में परिभ्रमण नहीं करेगा। ऐसा कहने से मैत्रेय से विदुर ने इस प्रकार कहा। ८९५

अध्याय—३०

[कं.] हे मुनिनाथ ! अनघात्मा ! प्रचेतसों ने उस घन रूप से (श्रेष्ठ रूप से) रुद्र से उपदिष्ट कमलोदर के कीर्तन [करने] से, जिससे वनजाक्ष संतुष्ट हो गया, कौन सी गति (लोक) पायी ? ८९६ [ते.] तुमने कहा और यह निश्चय है कि प्रयत्न करके फिर उन्होंने यादृच्छिकता के कारण हरि को नित्यप्रिय होनेवाले हर को देखकर उससे अनुग्रह पाकर मोक्ष को प्राप्त किया। फिर ८९७ [कं.] उन सभी नृपतनयों ने हरि-दर्शन पूर्व होनेवाले इह [और] परलोकों में कौन-कौन से फल पाये।

कं. विनु जनकादेशमु मुद, -मुन दाल्चि नृपात्मजुलु समुद्रोदर मं-
दनुपम जप यज्ञंबुन, नॊनर दपं बूनि मुदमु नॊंदुचु नुंडन् ॥ 899 ॥

कं. पदिवेलेड्लु निष्ठनु, वदलक तप माचरिंप वारल कथिन्
सदयांतरंगुडभय, प्रदुडु सनातनुडु नॆन पद्मोदरुडुन् ॥ 900 ॥

कं. अनुपम शांतमुलगु निज, तनुरश्मुलचे नृपाल तनय तपो वे-
दनलु शमिंपग जेयुचु, ननयमु प्रत्यक्षमय्यॆ नच्युतुडंतन् ॥ 901 ॥

सी. घन मेरु शृंग संगतमैन मेघंबु नॆरि गरुडस्कंध निवसितुंडु
गमनीय निजदेह कांति विपाटिताभीलाखिलाशांतराळतमुडु
सुमहिताष्टायुध सुमनो मुनीश्वर सेवक परिजन सेवितुंडु
मंडित कांचन कुंडल रुचिरोपलालित वदन कपोलतलुडु

ते. चारु नवरत्न दिव्य कोटीर धरुडु
कौस्तुभ प्रविलंब मंगळ गळुंडु
ललित पीतांबर प्रभालंकृतुंडु
हार केयूर वलय मंजीरयुतुडु ॥ 902 ॥

कं. ललितायताष्ट भुज मं-
डल मध्यस्फुरित रुचि विडंबित लक्ष्मी

आसक्ति से समझा दो। ऐसा पूछने पर मुनिवर ने कहा। ८९८ [कं.] सुनो, जनक के आदेश को मुद (मोद) से ग्रहण करके, नृपात्मज समुद्र के उदर में अनुपम जप [और] यज्ञ से अच्छी तरह तप करने की इच्छा से मुद (संतोष) पाते रहते समय ८९९ [कं.] दस सहस्र वर्ष, निष्ठा को छोड़े बिना तप करने पर, उन्हें इच्छा से सदयांतरंगवाला, अभयप्रद [और] सनातन होनेवाला पद्मोदर ९०० [कं.] अनुपम शांत निज तनु (शरीर) की रश्मियों (किरणों) से नृपाल के तनयों की तपो-वेदनाओं को शम (शांत) करते हुए, अच्युत तब शीघ्र प्रत्यक्ष हुआ। ९०१ [सी.] घन (श्रेष्ठ) मेरु शृग से संगत (लगे हुए) मेघ की तरह गरुड़ के स्कंध पर निवसित (निवास करनेवाला), कमनीय निज देह की कांति से विपाटित (भेदा गया) आभील (भयंकर) आशा (दिशा) के अन्तराल (मध्य भाग) के तम (अंधकार) वाला, सुमहित अष्टायुधों [से], सुमनसों (देवताओं), मुनीश्वरों, सेवकों [एव] परिजनों से सेवित, मंडित (अलंकृत) कांचन के कुंडलों की रुचिर (सुन्दर) उपलालित (प्रकाशमान) वदन के कपोलतल वाला, [ते.] चारु (सुदर) नवरत्नों के दिव्य कोटीर (किरीट)-धर (धारण करनेवाला), कौस्तुभ के प्रविलंबन (लटकने) से मंगल गला वाला, ललित पीतांबर की प्रभा से अलकृत, हारों, केयूरों, वलयों [तथा] मंजीरों से युत ९०२ [कं.] ललित आयत (दीर्घ) अष्टभुजमंडल के मध्य स्फुरित

ललना कांति स्पर्धा
कलित लसद्वैजयंतिका शोभितुडुन् ॥ 903 ॥

कं. सुरगरुड यक्ष किन्नर, निरुपम जेगीयमान निखिलाशा सं-
भरित यशोमहनीय, स्फुरणुंडगु नप्पुराण पुरुषुंडेलमिन् ॥ 904 ॥

कं. करुणावलोकनंबुल, निरवोंद नृपाल सुतुल नोक्षिचि रमा-
वरु डंबुद गंभीर म, धुर भाषल बलिकॅ ब्रियमु दूकोनुचुंडन् ॥ 905 ॥

ते. तापसोत्तमुलगु प्रचेतसुलु ! वेड्क
विनुडु मोरलु सौहार्दमुन नभिन्न-
धर्मुलगुट भवत्सौहृदमुन केनु
जाल बरितोष मंदिति समत नेडु ॥ 906 ॥

कं. अनयमुनु मी मनोरथ, मोंनरिंतु नॅरुंग बलुकु डुत्तमुलगु मि-
म्मनुदिनमु नॅव्वडु सुखश- यनुडै मदिलोन दलचु ना नरुडॅपुडुन् ॥ 907 ॥

कं. भ्रातृजन सौहृदंबुनु, भूतदयागुणमु विमल बुद्धियु सुजन
प्रीतियु गलिग सुखिचुनु, वीत समस्ताघुडगुचु विश्वमु लोनन् ॥ 908 ॥

व. मरियु रुद्रगीतं बयिन मदीय स्तवं बॅव्वरनुदिनंबुनु स्तोत्रंबु सेयुदुरु
वारल कभिमत वरंबुलु शोभनकरंबगु प्रज्ञयु नित्तु मीरलु मुदन्वितुलॅ

(प्रकाशमान) रुचि (कांति) [से] विडंबित (तिरस्कृत) लक्ष्मी-ललना [की] कांति [की] स्पर्धा से कलित लसत् (प्रकाशमान) वैजयंतिका से शोभित ९०३ [कं.] सुर, गरुड़, यक्ष [और] किन्नरों के निरुपम जेगीयमान निखिल आशा (दिशा) से संभरित यश [से] महनीय स्फुरण होनेवाला वह पुराणपुरुष प्रेम से ९०४ [कं.] करुणा [पूर्ण] अवलोकनों के स्थिरता को पाने पर, नृपाल सुतों को देखकर, रमावर (विष्णु) अंबुद (मेघ) [की तरह] गंभीर [और] मधुर भाषा (वचनों) से प्रिय (प्रेम) के प्रकट होने पर बोला। ९०५ [ते.] तापसोत्तम होनेवाले हे प्रचेतस! सुनो, तुम लोग सौहार्द में अभिन्न धर्म वाले होने से भवत् सहृदयता के लिए मैंने आज समता के साथ बहुत परितोष पाया। ९०६ [कं.] सदा मैं तुम लोगों का मनोरथ पूरा करूँगा। मुझे समझाकर बोलो; उत्तम होनेवाले तुम लोगों का अनुदिन सुख-शयन होकर जो [अपने] मन में स्मरण करेगा वह नर सदा ९०७ [कं.] भ्रातृ जन का सौहृद, भूतदयागुण, विमल बुद्धि और सुजन प्रीति पाकर सुखी होगा, विश्व में वीत (छूटा हुआ) समस्त अघ (पाप) वाला होते हुए ९०८ [व.] फिर रुद्रगीत बने मदीय स्तव का जो अनुदिन स्तोत्र करेगा उनको अभिमत वर [एवं] शोभनकर प्रज्ञा दे दूंगा। तुम लोगों के मुदन्वित (प्रसन्न) होकर जनक का आदेश अंगीकृत

जनकादेशंबंगीकरिचुटं जेसि मी कीर्ति लोकंबुल विस्तरिल्लु। मीकु ननून ब्रह्मगुणुंडु नात्म संतति जेसि लोकत्रय परिपूर्णगुणाकरुंडुनैन पुत्रुंडु संभविपं गलंडु। कंडु महामुनि तपो-विनाशार्थंबुगा निंद्रुनि चेत ब्रेरित-यगु प्रम्लोचयनु नप्सरस गर्भंबु दाल्चि यम्मुनींद्रुनि वीड्कोनि दिवंबुनकुं जनु समयंबुनं ब्रसूतयै तत्पुत्रिनि वृक्षंबुलंदु वॅट्टि चनिन ॥ 909 ॥

सी. आ शिशुवपुडु पेराकलिचे गुंदि वाविच्चि बिट्ट वापोवुचुंड
नालिचि यटकु राजैन सोमुडु वच्चि वललनोप्प नवसुधावर्षियैन
यात्मीय तर्जनि नर्थि वानम्मु सेयिपंग बॅरिगि यय्यिदु वदन
गन्य वरारोह गडक मदनुवर्तियैन बुण्युंडु प्राचीनबर्हि

ते. यत्नपुनिचे प्रजा विसर्गावसरमु
नंदु वेड्क ददादिष्टुलैन मीर
लंदरुनु नॅय्यमुन विवाहंबु गंड
यनि सरोरुहनयनु डिट्लनियॅ मरियु ॥ 910 ॥

व. अनघात्मुलारा! यभिन्न धर्म शीलुरयिन मीकु नंदरकु ना सुमध्ययैन कन्य यभिन्न धर्मशीलयु भवदर्पिताशययु नयिन भार्ययगु। मीरलप्रतिहत तेजस्कुलै दिव्य वर्ष सहस्रंबुलु भौम दिव्य भोगंबुलु मदनुग्रहुलै यनुभविचिंव

करने के कारण, तुम लोगों की कीर्ति लोकों में विस्तृत हो जायगी। तुम लोगों के अनून ब्रह्मगुण वाला, आत्मसंतति से लोकत्रय में परिपूर्ण गुणाकर होनेवाला पुत्र संभव होगा। कंडु महामुनि के तप के विनाशार्थ इंद्र से प्रेरिता प्रम्लोचा नामक अप्सरा के गर्भ धारण करके उस मुनींद्र से बिदा होकर [दिव (स्वर्ग) को] जाते समय प्रसूता होकर, तत् पुत्री को वृक्षों में रखकर चली गयी तो ९०९ [सी.] वह शिशु तव वड़ी भूख से रोकर मुँह खोलकर जोर से रो रही थी, तो सुनकर वहाँ राजा सोम ने आकर प्रेम से, नवसुधावर्षी आत्मीय तर्जनी को इच्छापूर्वक पान कराया तो बढ़कर वह इंदुवदना कन्या वरारोहा (स्त्री) [वनी] है। यत्नपूर्वक मदनुवर्ती होनेवाला पुण्यात्मा प्राचीनवर्हि नामक नृप से प्रजा के विसर्ग (छोड़ देना) के अवसर पर [ते.] कुतूहल से तदादिष्ट (उससे आदेशित होनेवाले) तुम सब स्नेह से [उस नारी से] विवाह करो। सरोरुहनयन (विष्णु) ने इस प्रकार कहा। फिर यों बोला। ९१० [व.] हे अनघात्मा! अभिन्न धर्मशील होनेवाले तुम सबके वह सुमध्या कन्या अभिन्न धर्मशीला [और] भवदर्पित आशया बनकर पत्नी होगी। तुम लोग अप्रतिहत तेजस्क बनकर दिव्यवर्षसहस्र मदनुग्रह से भौम दिव्य भोगों का अनुभव करोगे। इसके बाद मुझ पर जो भक्ति है, उसके कारण निर्मल अंतःकरण वाले बनकर, इन भोगों को निरयप्राय (नरकतुल्य) समझकर, मदीय स्थान प्राप्त करोगे।

रंत ना यंदुल भक्ति जेसि निर्मलांतःकरणुलै यी भोगंबुलु निरयप्रायंबुलुगा दलंचि मदीय स्थानंबु नीोंदेदरनि वेंडियु निट्लनियें ॥ 911 ॥

चं. अरय गृहस्थुलय्युनु मदर्पित कर्मुलु नस्मदीय सुं-
दर चरितामृत श्रवण तत्पर मानस यातयामुलुन्
सरस गुणाढ्युलं तनरु साधुल के गृहमुल् दलंप दु-
ष्कर भवबंध हेतुवुलु गावु नृपात्मजुलार ! यॅन्नडुन् ॥ 912 ॥

कं. सरसुड नगु ननु बोंदिन
पुरुषुलु घनशोक मोह मोदंबुल बों-
दरु गावुन नेनयगनु त्रि-
पुरुषाधीश्वरुड ब्रह्मभूतुडु नगुदुन् ॥ 913 ॥

व. अनि यिट्लु पलुकुचुन्न पुरुषार्थ भाजनुंडगु जनार्दनु दर्शिचि तद्दर्शन विध्वस्त रजस्तमोगुणुलयिन प्रचेतसुलु ॥ 914 ॥

चं. कर सरसीरुहंबु लॅसकं बॅसगन् मुकुळिचि गद्गद
स्वरमुल जेसि यिट्लनिरि सर्वशरण्यु नगण्यु निंदिरा-
वरु नजितुन् गुणाढ्यु ननवद्य चरित्रु बवित्रु नच्युतुं
बरु बरमेशु नीशु भवबंध विमोचनु बद्मलोचनुन् ॥ 915 ॥

सी. केशव ! संतत क्लेश नाशनुडवु कोरि मनो वागगोचरुडवु
निद्ध मनोरथ हेतु भूतोदार गुण नामुडवु सत्त्व गुणुड वखिल

यों कहकर फिर इस प्रकार बोला। ९११ [चं.] हे नृपात्मज ! सोचने पर गृहस्थ होकर भी मुझको अर्पित कर्मवाले, अस्मदीय सुंदर चरित रूपी अमृत को श्रवण [करने में] तत्पर होनेवाले, मन को यातयामी (विसर्जित करनेवाले), सरस गुणाढ्य बनकर प्रकाशमान साधुओं को कोई भी गृह [बन्धन] सोचने पर दुष्कर भवबंधन के हेतु कभी नहीं होंगे। ९१२ [कं.] सरस होनेवाले मुझे जिन पुरुषों ने प्राप्त किया वे घन शोक, मोह, मोद नही पाते। इसलिए सोचने पर मैं त्रिपुरुषाधीश्वर [और] ब्रह्मभूत बनूँगा। ९१३ [व.] इस प्रकार बोलते हुए पुरुषार्थ-भाजन होनेवाले जनार्दन के दर्शन करके तद्दर्शन से विध्वस्त रज [तथा] तमोगुण वाले प्रचेतस ९१४ [चं.] कर (हाथ) रूपी सरसीरुहों को अतिशयता से मुकुलित करके, गद्गदस्वर से सर्वशरण्य, अगण्य, इंदिरावर, अजित, गुणाढ्य, अनवद्य चरितवाले, पवित्र, अच्युत, परमात्मा, परमेश, ईश, भवबंध-विमोचन करनेवाले [और] पद्मलोचन से इस प्रकार बोले। ९१५ [सी.] हे केशव ! संतत क्लेशनाशक, इच्छा से मन, वाक् के लिए अगोचर, इद्ध (परिशुद्ध) मनोरथ के हेतुभूत, उदार गुण नाम वाले, सत्त्वगुणी, अखिल विश्व के उद्भव, स्थिति [और] विलय के अर्थ (के

विश्वोद्भवस्थिति विलयार्थ धारित विपुलमायागुण विग्रहुडवु
महिताखिलेंद्रिय मार्गनिरधिगत मार्गुडवतिशांत मानसुडवु

ते. तविलि संसारहारि मेधस्कुडवुनु
देवदेवुडवुनु वासुदेवुडवुनु
सर्वभूत निवासिवि सर्वसाक्षि-
वैन नीकु नमस्कार मय्य कृष्ण ! ॥ 916 ॥

व. मरियुनु ॥ 917 ॥

उ. तोयरुहोदराय भवदुःखहराय नमोनमः परे-
शाय सरोजकेसर पिशंग विनिर्मल दिव्य दिव्य व-
स्त्राय पयोजसन्निभ पदाय सरोरुह मालिकाय कृ-
ष्णाय परापराय सुगुणाय सुरारि हराय वेधसे ॥ 918 ॥

व. अनि विनुतिंचि ॥ 919 ॥

चं. कमलदळाक्ष ! दुःख लय कारणमै तगु तावकीन रू-
पमु ननिवार्य दुर्भर विपद्दश दुःखमु नोंदु माकु नी-
सुमहित सत्कृपा गरिम जूपुट कंटे ननुग्रहंबु लो-
कमुन दलंप नोंडोक्किटि कल्गुने भक्तफलप्रदायका ! ॥ 920 ॥

उ. भूरि विवेकितावह विभूति समेत ! महात्म ! दीन र-
क्षारति नोप्पु नीवु चिरकालमु नन् सुखवृत्ति वीरु मा-

लिए) धारित (धारण किये गये) विपुल माया गुण-विग्रह वाले, महित अखिल इंद्रिय-मार्ग निरधिगत (अप्राप्य) मार्गवाले, अतिशांत मानस वाले, [ते.] लगे हुए संसार का संहार करनेवाले मेधस्क, देवदेव, वासुदेव, सर्व-भूतनिवासी और सर्वसाक्षी होनेवाले हे कृष्ण ! तुम्हें नमस्कार। ९१६ [व.] और ९१७ [उ.] तोयरुहोदराय, भवदुःखहराय, परेशाय, सरोज केसर पिशङ्ग विनिर्मल दिव्य भर्म वस्त्राय, पयोजसन्निभपदाय, सरोरुहमालिकाय, कृष्णाय, परापराय, सुगुणाय, सुरारिहराय, वेधसे नमोनमः। ९१८ [व.] इस प्रकार विनति करके ९१९ [चं.] हे कमलदलाक्ष ! हे भक्त-फलप्रदायक ! दुःख के लय का कारण बनकर तावकीन (तुम्हारे) योग्य रूप को, अनिवार्य, दुर्भर, विपत् दशा [और] दुःख पानेवाले हमें अपनी सुमहित सत्कृपा की गरिमा से, दिखाने की अपेक्षा, लोक में सोचने पर और कोई अनुग्रह हो सकता है ? ९२० [उ.] हे महात्मा ! हे अनवद्य (श्रेष्ठ) ! हे ईश्वर ! भूरि विवेकितावह (ज्ञानदायक), विभूति-समेत, दीन रक्षा [की] रति से प्रकाशमान होनेवाले तुम चिरकाल तक सुखवृत्ति से —ये हमारे हैं —कहते हुए बुद्धि में सोचने मात्र से सत्कार हो सकता है। ऐसा न हो तो इस प्रकार सन्निधि (साक्षात्कृत, समक्ष) बन गये हो। ९२१

वारलटंचु बुद्धि ननवद्य ! तलंचिन यंत मात्र स-
त्कारमें चालु नट्लगुट गाकिट्टु सन्निधिवेंति वीश्वरा ! ॥ 921 ॥

चं. अरयग क्षुद्र भूत हृदयंबुल यंदुलनंतरात्मवै
तिरमुग नुंडु नीवु भवदीय पदांबुरुह द्वयार्चना-
परमतुलैन मामक शुभप्रद भूरि मनोरथंबु लो-
वॆरुगवॆ ? भक्तलोक- हृदयेप्सितदायक ! मुक्तिनायका ! ॥ 922 ॥

सी. अयिननु विनु सरोजायत लोचन वरमोक्षमार्ग प्रवर्तकुडवु
बुरुषार्थभूत विस्तरुडवु नगु नीवु दगिलि प्रसन्नुडवगुट माकु
नर्थि मनोभीष्ठमैन वरंबय्यॆ नैननु नाथपरापरुंड-
वैन निन्नॊक वरं बर्थितु मनिननु भुवि दावकीन विभूतु लॆन्न

ते. नंत मॆरुगंगरामि ननंतु डनुचु
बलुकुवुरु निन्नु नदि गान परमपुरुष !
ये वरंबनि कोरुदु मेमु दप्पि-
गॊन्न बालकु डब्धि नीळ्ळॆन्नि ग्रोलु ? ॥ 923 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 924 ॥

उ. पूनि भवत्पदांबुरुह मूल निवासुलमैन मेमु मे-
धानिधि नीविलोकनमु दक्कग नन्य मॆरुंग नेर्तुमे
मानित पारिजात कुसुम स्फुट नव्य मरंद लुब्ध शो-
भानय शालियैन मधुपंबु भजिचुनॆ यन्य पुष्पमुल् ॥ 925 ॥

[चं.] हे भक्तलोकहृदयेप्सितदायक ! मुक्तिनायक ! सोचने पर क्षुद्र भूत हृदयों में अन्तरात्मा बनकर स्थिर रहनेवाले तुम भवदीय पदांबुरुह द्वय की अर्चना पर मति रखनेवाले मामक शुभप्रद भूरि मनोरथ को क्या तुम नहीं जानते हो ? ९२२ [सी.] हे सरोजायतलोचन वाले ! फिर भी सुनो। वर-मोक्ष-मार्ग-प्रवर्तक [और] पुरुषार्थ-भूत (-मूल) का विस्तार होनेवाले तुम्हारा इच्छा से प्रसन्न होना, हमारे इच्छापूर्वक मनोभीष्ट वर हो गया। फिर भी, हे नाथ ! परापर होनेवाले तुमसे एक वर माँगते हैं। ऐसा कहने पर भी भुवि पर तावकीन विभूतियों का, गणना करने पर अन्त नहीं जानते। [ते.] इस कारण तुम्हें अनंत कहते हैं। इसलिए हे परमपुरुष ! कौन सा वर हम माँगें ? प्यासा बालक अब्धि (समुद्र) में कितना जल पी सकता है ? ९२३ [व.] इसके अतिरिक्त ९२४ [उ.] प्रयत्न करके भवत् पदांबुरुह के मूल के निवासी होनेवाले हम, हे मेधानिधे ! तुम्हारे विलोकन को छोड़कर अन्य कुछ चाह सकते हैं ? मानित पारिजात कुसुम के स्फुट (स्पष्ट) नव मरंद में लुब्ध शोभानयशाली होनेवाला मधुप अन्य पुष्पों का भजन (आस्वादन) करता है ? नहीं ९२५

चं. हरि भवदीय माय ननयंबुनु जेंदिन नेमु निच्चलुन्
गर ननुरक्ति नेवि तुदगा भव कर्मुलमै धरित्रिपै
दिरुगुदु मंतदाक भवदीय जनंबुल तोडि संगतिन्
गुरुमति जन्म जन्ममुलकुन् समकूरग जेयु माधवा! ॥ 926 ॥

म. कमलाधीश्वर! तावकीन वरभक्त व्रात संसर्ग ले-
शमु तोडन् सरिगा दलंप मैंलमिन् स्वर्गापवर्गादि सौ-
ख्यमुलन्नन् विनु मानुषंबुलगु नी कामंबुलं जेंप्प ने-
ल मुनींद्रस्तुत पादपद्म सुजनालापानुमोदात्मका! ॥ 927 ॥

व. मरियु भगवद्भक्त संगंबुलयंदु तृष्णा प्रशमनंबुलैन मृष्ट कथलु चेंप्पबडुट चेत भूतंबुल यंदु वैरंबुनु नुद्वेगंबुनु लेकुंडुननि ॥ 928 ॥

चं. वनमुल मुक्तसंगुलगु वारु नुतिप दनर्तु वीवु गा-
वुन निल पुण्य तीर्थमुल नोप्प बुनीतमु सेय बूनि य-
थिनि वदचारुलै धर जरिंचु भवत्पद भक्त संग मं-
बनुपम भूरि संसृति भयस्थुनि बुद्धि रुचिपकुंडुने! ॥ 929 ॥

व. कावुन ॥ 930 ॥

चं. वनरुहपत्रलोचन! भवत्सखुडैन सुधांशुमौळि तो
डि निमिष मात्रसंगति गडिदि व्रणंबुनु दुश्चिकित्समु

[चं.] हे हरे! सदा भवदीय माया को प्राप्त हम निश्चय ही बड़ी अनुरक्ति से जिसे पराकाष्ठा मानकर, भवकर्म करनेवाले बनकर [जब तक] धरित्री पर घूमते-फिरते हैं, हे माधव! तब तक भवदीय जनों (भक्तों) के साथ संगति की गुरु (बड़ी)-मति जन्म-जन्म के लिए [हमें] प्राप्त करा दो। ९२६ [मं.] हे कमलाधीश्वर! मुनींद्रों से स्तुत पाद रूपी पद्म वाले! सुजनों के आलाप से अनुमोदित आत्मा वाले! तावकीन वर (श्रेष्ठ) भक्त-व्रात (-संघ) के संसर्ग के लेश मात्र के बराबर भी हम स्वर्ग [और] अपवर्ग (मोक्ष) आदि सौख्यों को नहीं मानते। तब सुनो, मानुष (मनुष्य संबंधी) होनेवाले इन कामों के बारे में क्या कहें? ९२७ [व.] और भगवद्भक्तों की संगतियों में, तृष्णा का प्रशमन करनेवाली मृष्ट (मधुर, निर्मल) कथाएँ कही जाती हैं। उसके कारण भूतों के प्रति वैर और उद्वेग नहीं होते। इस प्रकार [कहकर] ९२८ [चं.] वनों में मुक्त-संग होनेवालों के नुति (स्तुति) करने पर तुम संतुष्ट होते हो। इसलिए इस भूमि पर पुण्यतीर्थों को अच्छी तरह पुनीत करने का प्रयत्न करके, इच्छापूर्वक पादचारी बनकर, धरा पर चलनेवाले भवत्पदों के भक्तों का संगम (सांगत्य) अनुपम-भूरि-संसृति [के] भयस्थ की बुद्धि को रुचिकर नहीं लगती? (लगती है।) ९२९ [व.] इसलिए ९३० [चं.] हे वनरुहपत्रलोचन वाले! भवत्सखा

नवगु जन्म रोगमुन कर्मिलि बॅद्युडवैन निन्नु ने
मनयमु जूड गंटिमि कृतार्थुलमै तगमंटि मीश्वरा ! ॥ 931 ॥

व. देव मदीय स्वाध्यायध्ययनंबुलुनु गुरु प्रसादंबुनु विप्र वृद्धानुवर्तनंबुनुनार्य जन नमस्करणंबुनु सर्वभूतानसूययु नन्नविरहितंबुगा ननेककालंबुदकंबुलयंदु सुतप्तंबयिन तपंबु सेयुटयु निवि यन्नियुनु बुराणपुरुषुंडवैन भवदीय परितोषंबु कोंरकुनगुंगाक यनि विन्नविचॅद मनि वॅडियु निट्लनिरि ॥ 932 ॥

म. मनु पद्मासन धूर्जटि प्रमुखधीमंतुल् तपो ज्ञान स-
त्त्वनिरूढि दगुवारु नीमहिममुन् वर्णिप बारं बॅरुं
गनि वारय्युनु नोपिनंत विनुतुल् गाविंतु रट्लौट ने
मुनु निन्नर्थि नुतिंतु मीश ! वरदा ! बुद्ध्यादि मूलंबुगन् ॥ 933 ॥

व. अनि मरियु समुंडवु नादि पुरुषुंडवु बरुंडवु शुद्धुंडवु वासुदेवुंडवु सत्त्वमूर्तिवियु भगवंतुंडवुनैन नीकु नमस्करिंचॅदमनि यिट्लु प्रचेतसुल चेत नुतिपंबडि शरण्यवत्सलुंडगु हरि संतुष्टांतरंगुंडे वारल कोरिन यट्ल वरंबु लिच्चिन ॥ 934 ॥

त. अनुचु ना नृपनंदनुल् मुदमार सन्नुति जेयगा
मनमुलो बरितोषमंदि रमा हृदीशुडु भक्त पा-

होनेवाले सुधांशु-मौलि (शिव) के साथ निमिष-मात्र की संगति [वैसी ही है जैसे] अशक्य व्रण दुश्चिकित्सा से ही [ठीक] हो सकता है। हे ईश्वर ! जन्म [रूपी] रोग के लिए कुशल वैद्य होनेवाले तुम्हें हम सदा देख सके हैं; कृतार्थ होकर जी सके हैं। ९३१ [व.] हे देव ! मदीय स्वाध्याय, अध्ययन और गुरुप्रसाद और विप्र वृद्धों का अनुवर्तन और आर्य जनों के प्रति नमस्करण और सर्वभूतों के प्रति अनसूया, अन्न-विरहित होकर अनेक (बहुत) काल [तक] उदकों में सुतप्त तप करना —ये सब पुराणपुरुष होनेवाले भवदीय परितोष के लिए ही है। इस प्रकार विनति करते हैं। इस प्रकार कहकर फिर यों बोले। ९३२ [म.] मनु, पद्मासन (ब्रह्मा), धूर्जटि (शिव) प्रमुख धीमान जो तपो-ज्ञान-सत्त्व निरूढि से योग्य हैं, वे तुम्हारी महिमा का वर्णन करते पार नहीं पा सकते हैं; तब भी जहाँ तक हो सके, विनुतियाँ करते हैं; इसलिए हम भी, हे ईश, हे वरद ! बुद्धि आदि के मूल से चाहकर तुम्हारी स्तुति करते हैं। ९३३ [व.] इस प्रकार कहकर फिर [कहा] तुम सम हो, आदिपुरुष हो, शुद्ध हो, पर (परमात्मा) हो, वासुदेव हो, सत्त्वमूर्ति हो [और] भगवान हो —ऐसे तुम्हें नमस्कार करते हैं। यों प्रचेतसों से प्रशंसित होकर, शरण्यों के प्रति वत्सल होनेवाले हरि के संतुष्टांतरंग बनकर, उनकी इच्छाओं के अनुसार वर देने पर ९३४

लनकरंडु तदीय दर्शन लालसात्मकुलात्मलं
दनिवि सालक चूड नात्मपदंबु केगॅ रथंबुनन् ॥ 935 ॥

व. तदनंतरंब प्रचेतसुलु भगवदाज्ञ शिरंबुल धरियिंचि समुद्र सलिल निर्गतुलयि ॥ 936 ॥

कं. भूरि समुन्नति नाक, -द्वार निरोधंबु गाग दग वॅरिगिन या
भूरुह संछन्नाखिल, धारुणि नीक्षिंचि राजतनयुलु वरुसन् ॥ 937 ॥

चं. घन कुपितात्मुलै विलय काल भयंकर हव्यवाह लो-
चनु गतिनुग्रुलै धरणि चक्रमु निर्वसुधारुहंबु गा
ननयमु जेयबूनिन जनाधिप सूनुल मोमु दम्मुल-
न्ननल समीरमुल् जननमंदि कुजंबुल गाल्प जोच्चिनन् ॥ 938 ॥

कं. नलिन भवुडा महीज, प्रळयमु गनि वच्चि धरणिपाल तनूजा-
तुल मधुरोक्तुल नुपशां, तुल गाविंचुचुनु प्रियमु दूकोन बलिकॅन् ॥939॥

व. अट्लु पलिकि वारल नुपशमित क्रोधुलं जेसिन यनंतरंब ॥ 940 ॥

सी. अवशिष्ट धरणीरुहंबुलु भयमंदि तिविरि चतुर्मुखादेशमुननु
मारिष यनु सतीमणि दमकूतुनु ना प्रचेतसुलकु नर्थि निच्चॅ

[त.] इस प्रकार उन नृपनंदनों के अधिक मुद (प्रसन्नता) से सन्नुति करने पर, मन में परितोष पाकर, रमा का हृदीश, भक्तों का पालन करनेवाला, तदीय दर्शन की लालसा से युक्त आत्मावालों के [अपनी] आत्माओं में तृप्त न होकर देखते रहने पर शीघ्र अपने पद (लोक) को गया। ९३५ [व.] तदनंतर (इसके बाद) प्रचेतस भगवदाज्ञा को सिर पर धारण करके, समुद्र के सलिल से निर्गत होकर, ९३६ [कं.] भूरि समुन्नति के साथ नाक (स्वर्ग)-द्वार का निरोध करते हुए बहुत बढ़े हुए उन भूरुहों से (वृक्षों से) संपिहित (आवृत) अखिल धारुणी को ईक्षण करके (देखकर) राजतनय क्रम से ९३७ [चं.] घन कुपितात्मा वाले बनकर, विलय काल के भयंकर हव्यवाह-लोचन (आग्नेय-नेत्र) की तरह उग्र बनकर, सारे धरणी-चक्र को वृक्षहीन करने की इच्छा रखनेवाले जनाधिप-सूनुओं (राजपुत्रों) के मुख रूपी कमलों में अनल (आग) [और] समीर (वायु) के जन्म लेकर कुजों (वृक्षों) को जला देने लगने पर ९३८ [कं.] नलिनभव (ब्रह्मा) ने उस महीजों (वृक्षों) के प्रलय को देखकर, आकर धरणिपाल (राजा) के तनूजातों को मधुर उक्तियों से उपशांत करते हुए प्रिय (प्रेम) के बढ़ने पर कहा। ९३९ [व.] ऐसा बोलकर उनको उपशमित-क्रोधी (शांत) बनाने के बाद ९४० [सी.] अवशिष्ट धरणीरुहों ने डरकर, इच्छा करके, चतुर्मुख (ब्रह्मा) के आदेश से, मारिषा नामक अपनी बेटी, सतीमणि को, उन प्रचेतसों को इच्छापूर्वक दे दिया। उन नरपालक-सूनुओं ने सोचने पर

ना नरपालक सूनुलु दक्षुन करयंग मुन्नीश्वरापराध-
मुन ब्राप्तमैनट्टि जनपाल जन्मंबुनकु गारणंबैन नलिन नयन

ते. नादरंबुन गमलजु नाज्ञ जेसि
कडक दीपिप विधिवत्प्रकारमुननु
वरुस नंदरु गूडि विवाहमैरि
गडव वच्चुनॅ दैव संकल्पमैंदु ॥ 941 ॥

कं. कलदे जगति बदुरु नृ-
पुल किल नीक भार्य यदु बॉसगुनॅ विनगा
नलिनोदरु घन माया
कलितादभुतमुलकु नतुलु गाविप दगुन् ॥ 942 ॥

व. अंतं जाक्षुष मन्वंतरंबुन दैव चोदितुंडै यिष्ट प्रजासर्गंबु गाविचुचु प्रसिद्धुंडैन दक्षुंडु पूर्वदेहंबु गालविद्रुतंबगु चुंडं ब्रचेतसुलकु नम्मारिष यनु भार्य यंदु संभविंचि निजकांति जेसि समस्त तेजोधनुल तेजंबुनु बिहितंबुगा जेयुचु गर्मदाक्ष्यंबुन दक्षुंडनु नामंबु वहिंचि ब्रह्म चेतं ब्रजासर्ग रक्ष यंदु नियोगिपंबडि मरीच्यादुलं दत्तद्व्यापारंबुलंदु नियोगिंचि युंडेनंत ॥ 943 ॥

दक्ष को पूर्वकाल में ईश्वर के प्रति अपराध करने से प्राप्त, जनपाल के जन्म के लिए कारण होनेवाली नलिननयना को कमलज (ब्रह्मा) की आज्ञा से, [ते.] अधिक दीप्त होने से विधिवत् क्रम से सबने मिलकर विवाह कर लिया। क्या कहीं दैवसंकल्प का अतिक्रमण किया जा सकता है ? (नहीं) ९४१ [कं.] क्या कहीं जग मे दस नृपों के लिए इस लोक में एक पत्नी का होना [संभव] है ? सुनने में कैसे हो सकता है ? नलिनोदर (विष्णु) की घन (बड़ी) माया से कलित अद्भुतों के लिए नतियाँ (विनतियाँ) कर सकते है। ९४२ [व.] तब चाक्षुष मन्वंतर में दैव [से] प्रचोदित होकर, इष्ट प्रजासर्ग (सृष्टि) करते हुए, प्रसिद्ध दक्ष पूर्व देह के काल से विद्रुत (पिघला हुआ) होने पर, प्रचेतसों को उस मारिषा नामक पत्नी में संभव (पैदा) होकर, निज कांति से समस्त तेजोधनिकों के तेज को पिहित करते (ढँक देते) हुए, कर्म के दाक्ष्य (कुशलता) के कारण दक्ष नाम वहन करके, ब्रह्मा से प्रजासर्ग की रक्षा मे नियुक्त होकर, मरीचि आदि को तत्तत् (उन-उन) व्यापारों में नियुक्त करके रहा। तब ९४३

अध्यायमु—३१

सी. ऒनर ब्रचेतस्कु लुत्पन्न विज्ञानुलगुचु वेगंब नारायणोक्ति
दलचुचु नात्मनंदनु कड निज भार्य निडि वनवासुलै कडगि मुन्नु
जावलि यनु मुनीश्वरुडु सिद्धुंडैन भूरि पश्चिमवार्द्धि तीरमुननु
सर्व भूतात्म विज्ञानंबु गल यात्म घन विमर्शकृत संकल्पुलैरि

ते. यंत नचटिकि सम्मोद मतिशयिल्ल
नरसुरासुर यक्ष किन्नर वरेण्य
मानितोन्नत संपूज्य मानुडैन
नारदुंडु विवेक विशारदुंडु ॥ 944 ॥

व. चनुदेंचि निर्जित प्राण मनो वाग्दर्शनुलुनु जितासनुलुनु शांतुलुनु नसमान विग्रहुलुनु निर्मलंबैन परब्रह्मंबुनंदु नियोजितंबैन यंतःकरणंबु गलवारुनु नैन राजनंदनुल कड निलिचिन ॥ 945 ॥

कं. चनु देंचिन नारदमुनि
गनुगोनि नृपसुतुलु लेचि कौतुक मॊप्पन्
विनमितुलै समुचित पू-
जनमुल वरितुष्टु जेसि सद्विनयमुनन् ॥ 946 ॥

अध्याय—३१

[सी.] प्रचेतस अच्छी तरह उत्पन्न-विज्ञानी (जिनमें विज्ञान उत्पन्न हो गया हो) बनते हुए, वेग (शीघ्र) ही नारायण की उक्ति का मनन करते हुए, आत्मनंदन (पुत्र) के पास निज भार्या को छोड़कर, वनवासी बनकर, प्रयत्न करके, जहाँ पहले जावालि नामक मुनीश्वर सिद्ध बना था [वहाँ] भूरि (बड़ी) पश्चिम वार्धि (समुद्र) [के] तीर पर सर्वभूतात्मा के विज्ञान से युक्त, आत्मा [के] घन विमर्श से कृत संकल्प वाले बन गये। [ते.] तब वहाँ सम्मोद (प्रसन्नता) के अतिशय होने पर, नर, सुर, असुर, यक्ष [तथा] किन्नर-वरेण्यों (-श्रेष्ठ) से मानित, उन्नत-संपूज्य मान और विवेक-विशारद नारद ९४४ [व.] आकर प्राण, मन, वाक् और दर्शन को निर्जित करने (जीतने) वाले, जित आसन वाले, शांत, असमान विग्रह वाले, निर्मल परब्रह्म में नियोजित अंतःकरण वाले राजनंदनों के पास खड़ा रहा [तो] ९४५ [कं.] आये हुए नारद मुनि को देखकर, नृपसुत खड़े होकर, कौतुक के बढ़ने पर, विनमित होकर, समुचित पूजनों से परितुष्ट बनाकर, सद्विनय से ९४६ [चं.] हे अनघ! मुनींद्रचंद्र! भवदागमन

अनघ ! मुनींद्रचंद्र ! भवदागमनंबु समस्त लोक शो-
भनमगु नस्मदीयमगु भाग्यवशंबुन नेडु विश्व पा-
वन ! निनु जूड गंटि मनिवार्यं भवद्भ्रमणंबु लोक लो-
चनु गति बोलॅ ब्राणुलकु सर्वभयापहरंबु गावुनन् ॥ 947 ॥

अनि मरियु निट्लनिरि ॥ 948 ॥

सी. अनघात्म ! भगवंतुलैन केशव वामदेवुलचे नुपदिष्टमैन
यात्म तत्त्वंबु गृहस्थुलमगु माकु ननयंबु विस्मृतंबय्यॅ नट्टि
ईश-तत्त्वार्थ-प्रकाशकंबुनु भूरि घोर संसाराब्धि तारकंबु-
नै कर मोप्पारु नात्म तत्त्वमु नेडु चिर दयामति ब्रकाशिप जेयु-

ते. मनि प्रचेतस्कुलर्थि बलिकन जॅलंगि
भगवदायत्त चित्तुंडु भव्य गुणुडु
नखिल लोक विहारुंडुनैन यट्टि
नारदुडु बल्कॅ ना राकुमारुलकुनु ॥ 949 ॥

सी. चर्चिप नरुल की जन्म कर्मायुर्मनोवचनंबुल देवदेवु
डखिल विश्वात्मकुंडैन गोविंदुडु विलसिल्लु भक्ति सेविंप बडिनु
नविय पो जन्म कर्मायुर्मनोवचनमुलनु धरणि नॅन्नंग दगुनु
वनरुहनाभ-सेवा-रहितमुलैन जननोपनयन दीक्षा कृतंबु-

समस्त लोक के लिए शोभन (प्रद) होता है। हे विश्वपावन ! अस्मदीय भाग्यवश आज, तुम्हें देख सके हैं। अनिवार्य भवत् भ्रमण लोकलोचन (सूरज) की गति की तरह प्राणियों के लिए सर्व भयों का अपहरण [करने वाला] होता है। ९४७ [व.] इस प्रकार कहकर फिर यों बोले। ९४८ [सी.] हे अनघात्मा ! भगवान होनेवाले केशव [और] वामदेव से उपदिष्ट आत्मतत्त्व गृहस्थ बने हुए हमारे लिए सचमुच विस्मृत हो गया है। ईश के तत्त्वार्थ को प्रकाशित करनेवाला और भूरि (बड़े) घोर संसार रूपी अब्धि (समुद्र) को तारने (पार करने) वाला बनकर, अधिक शोभायमान आत्मतत्त्व को चिर दयामति से आज प्रकाशित करो। [ते.] इस प्रकार प्रचेतसों के इच्छा करके कहने पर, संतुष्ट होकर, भगवदायत्त चित्त वाले, भव्यगुणी [और] अखिल लोकविहारी होनेवाले नारद ने उन राजकुमारों से कहा। ९४९ [सी.] चर्चा करने पर, नरों के लिए जिन जन्मों, कर्मों, आयु, मन [और] वचनों से देवदेव [और] अखिल विश्वात्मा होनेवाले गोविंद की विलसित भक्ति के साथ सेवा होती है। वे ही जन्म, कर्म, आयु, मन और वचन धरणी पर प्रशंसनीय होते हैं। वनरुहनाभ (विष्णु) की सेवा से रहित जनन, उपनयन, दीक्षाकृत होनेवाले जन्म किसलिए ?

ते. लैन जन्मंबु लेल दीर्घायुवेल ?
वेद चोदितयगु कर्मवितति येल ?
जपतपश्श्रुत वाग्विलासंबु लेल ?
महित नानावधान सामर्थ्य मेल ? ॥ 950 ॥

व. मरियु हरि विरहितंबैन यिंद्रिय पाटवंबुनु निपुणयैन बुद्धियु प्राणायामादि योगंबुनु देहादि व्यतिरिक्तात्म-ज्ञानंबुनु सन्न्यासाध्ययनंबुलुनु दक्किन व्रत वैराग्यादि श्रेयस्साधनंबुलुनु नेल सर्वेश्वरुंडुनु समस्त श्रेयस्स्वरूपुंडुनु समस्त श्रेयोवधिभूतुंडुनु सर्वभूतावासुंडुनु सर्वभूतात्मप्रदुंडुनु सर्वभूत प्रियुंडुनु सर्वव्यापकुंडुनु गावुन ॥ 951 ॥

म. कमलाधीश्वरु बूज सेयुट समग्र प्रीति प्राणोपहा-
रमु सर्वेंद्रिय तृप्ति हेतुवुनु सर्वक्ष्माजमूलाभिषे-
कमु शाखा भुजपुष्टिदंबु नगु रेखन् सर्व देवार्हण
क्रममै योप्पु धरावरेण्य-सुतुलारा ! बुद्धि नूहिंचिनन् ॥ 952 ॥

व. अदियुनुं गाक ॥ 953 ॥

कं. पॅनुपगु वर्षाकालं, बुन दिननायकुनि वलन बॉडमिन सलिलं
बनयमु ग्रम्मर ग्रीष्मं, बुन सूर्युनियंदु जेंदु पोलिक मरियुन् ॥ 954 ॥

कं. धरणि जराचर भूतमु
लरयग जनियिंचि यंदे यडगिन पगिदिन्

[ते.] दीर्घायु किसलिए ? वेदों से प्रचोदित कर्मों की वितति (समूह) किसलिए ? जप, तप, श्रुत, वाग्विलास किसलिए ? महित नाना अवधानों की सामर्थ्य किसलिए ? ९५० [व.] और हरि-विरहित इंद्रियों का पाटव, निपुण बुद्धि, प्राणायाम आदि योग, देहादि व्यतिरिक्त आत्मज्ञान, संन्यास [और] अध्ययन, अन्य व्रत, वैराग्य आदि श्रेयस्साधन, किसलिए ? सर्वेश्वर, समस्त श्रेयों का स्वरूप है, समस्त श्रेयों का अवधि-भूत है, सर्वभूतावास, सर्व-भूतात्माप्रद, सर्वभूतप्रिय [और] सर्वव्यापक है, अतः ९५१ [म.] हे धरावरेण्य-सुतो ! बुद्धि से ऊहा (अनुमान) करने पर कमलाधीश्वर की पूजा करना समग्र प्रीति का, प्राणोपहार [और] सर्वेंद्रियों की तृप्ति का हेतु है। सर्व-क्ष्माजों (-वृक्षों) के मूल मे किया गया अभिषेक है, जो शाखाओं रूपी भुजाओं के लिए पुष्टिप्रद है। सर्वदेवों के लिए अर्हण (पूजा) क्रम बनकर शोभित होता है। ९५२ [व.] इसके अतिरिक्त ९५३ [कं.] उत्कट वर्षाकाल में दिननायक से जो सलिल उत्पन्न होता है, वह सदा फिर ग्रीष्म में जैसे सूर्य में लीन होता है; और ९५४ [कं.] धरणी पर चर और अचर भूत, सोचने पर, उसी मे जन्म लेकर उसी में जैसे विलीन

हरिचे बुट्टिन विश्वंमु
हरियंदे लयंबु नोंदु नदि यॅट्लन्नन् ॥ 955 ॥

म. अरयन् नभ्र तमःप्रभल् तुनु नभंबं दोप्पगा दोच्चियुन्
मरलंजूडगनंदे लेनि गति ब्रह्मंबंदु नी शक्तुलुन्
बरिकिंपन् द्विगुण प्रवाहमुन नुत्पन्नंबुले क्रम्मरन्
विरति बोंदुचु नुंडु गावुन हरिन् विष्णुन् भजिपं दगुन् ॥ 956 ॥

व. मरियुनु समस्त देहुलकु नात्मयु निमित्तभूतुंडुनु नद्वितीयुंडुनु शश्वत् प्रकाशुंडुनु प्रधान पुरुषुंडुनु स्वतेजो विध्वस्तगुण प्रवाहुंडुनु मानस बुद्धि सुखेच्छा द्वेषादि विकल्प रहितुंडुनु सगुणुंडुनु देहात्म भ्रम निवृत्त्युपलभ्युंडुनु नादि मध्यांत रहितुंडुनु नित्यानंद स्वरूपुंडुनु सर्वज्ञुंडुनु परमेश्वरुंडुनुनैन नारायणु नभेद बुद्धि जेसि भजिपुडतंड सर्वभूत दयाळुवुलुनु नेंत मात्रंबु संभविचु नंतमात्रंबुन संतुष्ट चित्तुलुनु सर्वेंद्रियोपशांतुलुनुनगु पुरुषुल यॅड संतुष्टुंडगुननि वेंडियु निट्लनियॆ ॥ 957 ॥

चं. चतुरतनट्टि यीश्वरुडु सज्जन लोक निरस्त सर्व का-
मित विमलांतरंगमुन मिश्रित भावन जेसि सन्निधा-
पितु डगुचुन् दयाकर गभीर गुणंबुल जाल नोप्पि या-
श्रित जन पारतंत्र्यमुनु जेकोनि पायक युंडु निच्चलुन् ॥ 958 ॥

हो जाते हैं, वैसे ही हरि से जो विश्व पैदा होता है [वह] हरि ही में लय हो जाता है। अगर तुम पूछते हो कि वह कैसे तो ९५५ [म.] सोचने पर अभ्रों (बादलों) के तमस् (अधकार) की प्रभाएँ पहले नभ पर अधिक दिखाई पड़ती हैं, फिर देखने पर उसी में जैसे नही होती है, वैसे ही ब्रह्म में ये शक्तियाँ, देखने पर, त्रिगुण प्रवाह में उत्पन्न होकर फिर विरति (विलय) को पाती हैं। इसलिए हरि का, विष्णु का भजन (सेवा) किया जाना चाहिए ९५६ [व.] और समस्त देहियों के लिए आत्मा, [और] निमित्तभूत, अद्वितीय, शश्वत प्रकाशक, प्रधान पुरुष, स्वतेजोविध्वस्त गुण-प्रवाह वाला, मानस-बुद्धि से सुख की इच्छा, द्वेष आदि विकल्पों से रहित, अगुण, देहात्मा के भ्रम की निवृत्ति से उपलभ्यमान, आदि-मध्यांत-रहित, नित्य आनंदस्वरूप, सर्वज्ञ[और]परमेश्वर होनेवाले नारायण का अभेद बुद्धि से भजन करो। वह सर्वभूतों के प्रति दयालु जनों के प्रति, जितने मात्र से संभव हो सकता है उतने मात्र से संतुष्ट चित्त वाले(यथालाभसंतुष्ट) [और] सर्वेंद्रियोपशांत होनेवाले पुरुषों के प्रति संतुष्ट होता है। इस प्रकार कहकर फिर यों कहा। ९५७ [चं.] चतुरता से ऐसा ईश्वर सज्जन लोक के निरस्त (तिरस्कृत) सर्वकामित वाले विमल अंतरंग में, मिश्रित भाव के कारण, सन्निधापित (सान्निध्य को पानेवाला) बनते हुए दयाकर [और]

कं. श्रुतधनकुल धर्म समु, न्नत मदमुल जेसि सज्जन प्रततिकि सं-
ततमुनु नॅग्गॊनरिंचु कु, -मतुलथि जेयु पूज मति गॊनडॆंदुन् ॥ 959 ॥

व. अदि यॆट्लनिन ॥ 960 ॥

सी. वल नॊप्प दनु ननुवर्तिचु निंदिरा कामिनीमणि ददाकांक्षुलगुचु
धृति ननुवर्तिचु देवेंद्रमुख्युल ने ननुवर्तिप कॊप्पु डात्म
नित्य स्वतंत्रुनि निज भक्त वरदुडु दीनवत्सलुडुनुनैन यट्टि
बुरुषोत्तमुनि जगद्भरितु सर्वेश्वरु नारायणुनि जिदानंदमयुनि

ते. नजितु नच्युतु बुंडरीकायताक्षु, दविलि सेविंपकुंडुने धर रसज्ञु-
डेन पुरुषुंडु सम्मोदितात्मुडगुचु,जारुमतुलार! राजकुमारुलार! ॥961॥

व. अनि मरियु निट्लनियॆं। भवदीय वंशधुर्युंडु जित्ररथुंडुनगु ध्रुवुंडु सपत्नी-मातृ वाग्बाण भिन्नहृदयुंडे पंचवर्षार्भकुंडगुचु दपोवनंबुन करुगु नपुडु मार्गंबुन नाचे नुपदिष्टंबैन क्रमंबुन भगवंतुंडगु पुंडरीकाक्षु नाराधिंचि यितरुलचे नॊंदरानि सर्वोत्तमंबगु पदंबु नॊंदॆं। गान मीरुनु रुद्रोपदेश क्रमंबुन सर्वभूतांतर्यामियगु नीश्वरु भवच्छेदंबुनकै भजियिंपुडु ॥ 962 ॥

गंभीर गुणों से वहुत अच्छी तरह शोभित होकर, आश्रित जन के पारतंत्र्य को पाकर, नित्य बिना छोड़े (अभिन्न भाव से) रहता है। ९५८ [कं.] श्रुत(यश),धन, कुल, धर्म[और]समुन्नत मद के कारण सज्जन प्रतति (समूह) की सतत बुराई करनेवाले कुमतियों से इच्छापूर्वक जो पूजा की जाती है, उसे अपनी मति से वह स्वीकार नही करता ९५९ [व.] अगर तुम पूछते हो कि वह कैसा है तो ९६० [सी.] हे चारुमति वाले ! हे राजकुमारो ! अच्छी तरह अपना अनुवर्तन करनेवाली इंदिरा कामिनीमणि को तदाकांक्षी होते हुए धृति (धैर्य) से अनुवर्तन करनेवाले देवेंद्र मुख्यों का कभी आत्मा में अनुवर्तन न कर, नित्य स्वतंत्र, निज भक्तवरद [और] दीनवत्सल होनेवाले पुरुषोत्तम, जगत्भरित, सर्वेश्वर, नारायण, चिदानंद-मय, [ते.] अजित, अच्युत [और] पुंडरीकायताक्ष के प्रति आसक्त होकर, धरा पर कृतज्ञ पुरुष सम्मोदित आत्मा वाला बनते हुए सेवा किये बिना कैसे रहेगा ? ९६१ [व.] इस प्रकार कहकर फिर यों बोला। भवदीय वंश का धुर्य (भारवाहक) [और] चित्ररथी होनेवाले ध्रुव ने सपत्नी-माता के वाक् रूपी वाणों से भिन्न (छिन्न) हृदय वाला बनकर, पंचवर्ष का अर्भक होते हुए, तपोवन में जाते समय मार्ग में मुझसे उपदिष्ट क्रम से भगवान, पुंडरीकाक्ष की आराधना करके अन्यों के लिए अप्राप्य सर्वोत्तम पद प्राप्त किया। इसलिए तुम लोग भी रुद्रोपदेश के क्रम से सर्व-भूतांतर्यामी होनेवाले ईश्वर को भवच्छेद के लिए भजो। ९६२ [कं.] इस

ड. अनि नारद मुनिराजकुमारुलकुनु मुदमु दलिर्पन्
वनजोदरु सच्चरितमु
विनिपिंचि सरोजभवुनि वीटिकि जनियॅन् ॥ 963 ॥

व. इट्लु नारदुंडु सनिन यनंतरंब ॥ 964 ॥

चं. नरवर नंदनुल् गडक नारद वक्त्र विनिर्गतंबु सुं-
दरमुनु मंगळावहमु धन्यमु लोक मलापहंबुनै
परगिन विष्णु कीर्ति विनि पायक तत्पद भक्ति चिंतना-
निरुपम भक्ति जेंदि हरि नित्य पदंबुनु बोंदिरुन्नतिन् ॥ 965 ॥

व. अनि मैत्रेयुंडु विदुरुन किट्लनियॅ। महात्मा! नीवु नन्नडिगिन प्रचेतो-
नारद संवाद रूपंबैन हरि कीर्तनंबु मनु पुत्रुंडैन युत्तानपादुनिवंश प्रकारंबुनु
जॅप्पिति ननि वॅंडियु निट्लनियॅ। नारदु वलनं ब्रियव्रतुंडात्म विज्ञानंबु
नोंदि महीमंडलंबु बरिपालिंचि यनंतरंबुन बुत्रुलकु राज्यंबु बंचि यिच्चि
परलोक गतुंडय्यॅननिन ॥ 966 ॥

कं. विनि विदुरुंडा तापसु, घन चरणमु लात्म मस्तकंबुन मधु सू-
दनु चरणांभोरुहमुलु, मनमुन दग दाल्चि पलिकॅ मैत्रेयुनितोन् ॥ 967 ॥

कं. मुनिनाथचंद्र! करुणा, वननिधि! -नीचेत भक्त वत्सलुडगु ना
वनजाक्षु तत्त्व मॅंड्रिगिति, ननि तत्पदमुलकु विनतुडै विनयमुनन् ॥968॥

प्रकार नारद मुनिराजकुमारों को मुद (प्रसन्नता) पहुँचाने के लिए वनजोदर (विष्णु) का सच्चरित्र सुनाकर सरोजभव (ब्रह्मा) के घर (लोक) चला गया। ९६३ [व.] इस प्रकार नारद के चले जाने के अनंतर ९६४ [चं.] नरवरनंदनों ने, यत्न करके, नारद के वक्त्र (मुख) से विनिर्गत (निकली हुई) सुंदर, मंगलावह, धन्य, लोक का मलापह (लोक के कालुष्य को दूर करनेवाले) विष्णु की कीर्ति को सुनकर, बिना छोड़े तद्पद भक्ति की चिंतना से निरुपम भक्ति पाकर उन्नति से हरि के नित्य पद को पाया ९६५ [व.] यों कहकर मैत्रेय विदुर से इस प्रकार बोला। हे परमात्मा! तुमने मुझसे जो प्रचेत-नारद-संवाद रूपी हरि-कीर्तन [और] मनुपुत्र होनेवाले उत्तानपाद का वंश-प्रकार (क्रम) पूछा, उस को बताया। इस प्रकार कहकर फिर यों बोला। नारद से प्रियव्रत आत्मविज्ञान पाकर महीमंडल का परिपालन करके, अनंतर पुत्रों में राज्य बाँट देकर, परलोक-गत हुआ। ऐसा कहने पर ९६६ [कं.] सुनकर विदुर ने उस तापस के घन (श्रेष्ठ) चरणों को आत्म मस्तक पर [और] मधुसूदन के चरण रूपी अंभोरुहों को [अपने] मन में अच्छी तरह धारण करके मैत्रेय से कहा। ९६७ [कं.] हे मुनिनाथचंद्र! हे करुणावननिधे! तुमसे भक्तवत्सल होनेवाले

कं. आमुनिचे नामंत्रितु, -डै मनमुन बंधुदर्शनाकांक्षितुडै
धीमहितुडैन विदुरुडु, सामज-पुरमुनकु जनियं सम्मदमॊप्पन् ॥ 969 ॥

कं. अनि शुकुडु परीक्षित्तुन, कनुकंपं जॆप्पॆ नीयुपाख्यानंबुन्
विनुवाडैश्वर्यायु, -र्धनकीर्ति स्वस्तिगतुल वग ब्रापिंचुन् ॥ 970 ॥

कं. अनि शुकयोगि परीक्षि, ज्जनपाल सुधा पयोधिचंद्रुन कथिन्
विनिर्पिचिन कथ मोदं, -बुन सूतुडु शौनकादि मुनुलकु जॆप्पॆन् ॥ 971 ॥

चं. सरस वचोविलास ! गुणसागर ! सागरमेखला मही-
भरण धुरंधर प्रकट भव्य भुजा भुजगेंद्र राज शे-
खर ! खरदूषण प्रमुखगाढ तमःपटल प्रचंड भा-
स्कर ! गरकंठ कार्मुक विखंडन खेलनभक्तपालना ! ॥ 972 ॥

कं. शर विदळित सारंगा ! सरस दयापांग! भक्त जलधि तरंगा!
दुरित ध्वांत पतंगा! वर जनक सुतानुषंग! वननिधि भंगा ! ॥ 973 ॥

मा. सुरविमत विदारी ! सुंदरी शंबरारी !
सरसविनुत सूरी ! सर्वलोकोपकारी !
निरुपमगुणहारी ! निर्मलानंदकारी !
गुरु समरविहारी ! घोर दैत्यप्रहारी ! ॥ 974 ॥

उस वनजाक्ष (विष्णु) का तत्त्व [मैंने] जान लिया। यों कहकर तत्पदों में विनत होकर विनय से ९६८ [कं.] उस मुनि से आमंत्रित होकर, मन में वंधुदर्शन की आकांक्षा से भरकर, धी-महित होनेवाला विदुर सम्मद (आनन्द) के बढ़ने पर सामजपुर (हस्तिनापुर) गया। ९६९ [कं.] इस प्रकार शुक ने अनुकंपा से परीक्षित से यह उपाख्यान कहा। [इसे] सुननेवाला ऐश्वर्य, आयु, धन, कीर्ति [और] स्वस्ति (मंगल) गतियों को ठीक तरह से प्राप्त करेगा। ९७० [कं.] इस प्रकार शुकयोगी ने परीक्षित को, जो जनपाल (राजा) रूपी सुधा-पयोधि के लिए चंद्रमा है, इच्छा से जो कथा सुनाई उसे मोद (आनन्द) से सूत ने शौनक आदि मुनियों को सुनाया। ९७१ [चं.] हे सरस वचोविलासवाले ! गुणसागर ! सागर की मेखला वाली मही के भरण की धुरंधरता को प्रकट करनेवाले भव्य भुजा-भुजगेंद्र ! राजशेखर ! खर-दूषण-प्रमुख (आदि) रूपी गाढ़ तमःपटल के लिए प्रचंड भास्कर ! करकंठ (शिव) के कार्मुक के विखंडन-खेलन (-लीला वाले) ! भक्त-पालन करनेवाले ! ९७२ [कं.] हे शरविदलित सारंग ! हे सरस दयापांग वाले ! हे भक्तजलधितरंगा ! दुरितध्वांत-पतंगा ! वर जनक सुताभिषंगा ! वननिधिभंगा ! ९७३ [मा.] सुरविमल (राक्षस)-विदारी ! सुंदरी शंबरारी ! सरसविनुत सूरी ! सर्वलोकोपकारी ! निरुपम गुणहारी ! निर्मलानंदकारी ! गुरुसमरविहारी ! घोर दैत्य-

ग. इदि श्रीपरमेश्वर करुणाकलित कविता विचित्र केसन मंत्रि पुत्र सहज पांडित्य पोतनामात्य प्रणीतंबैन श्रीमहाभागवतंबनु महापुराणंबु नंदु स्वायंभुवमनुवुनकु नाकूति देवहूति प्रसूति प्रियव्रतोत्तानपादुलु जन्मिचुटयु, नंदु नाकूतिनि रुचि प्रजापतिकि निच्चुटयु, नारुचि प्रजापतिकि नाकूति देनियंदु श्रीविष्णुमूर्त्यंशजुंडैन यज्ञुंड्नु लक्ष्मीकळांशजयगु दक्षिणयनु कन्यकयु नुद्भविचुटयु, मनुपुत्रियैन देवहूतिनि गर्दमुनकिच्चटयु प्रसूति दक्ष प्रजापति किच्चुटयु, प्रसूति दक्षुल वलनं प्रजा परंपरलु गलुगुटयु मरियु गर्दम प्रजापति पुत्रिका समुदयंबुनु क्षत्र ब्रह्मर्षुल किच्चुटयु, गर्दम पुत्रियैन कळवलन मरीचिकि गश्यपुंडनु पुत्रुंडुनु बूर्णिमयनु कूतुनं बुट्टुटयुनु, पूर्णिमवलन गंगयु विरजुंडनेडु कुमारुंडुनु जन्मिचुटयु, गश्यप प्रजापति वलन नयिन प्रजा परंपरलचे मुल्लोकंबुलापूर्णंबुलगुटयु, नत्रि महामुनि तपंबुनु नतनिकि हरि हर ब्रह्मलु प्रत्यक्षंबगुटयुनु, ननसूय पातिव्रत्य माहात्म्यंबु वलन ननसूयात्रुलकुं द्रिमूर्तुल कळांशजुलयिन चंद्र दत्तात्रेय दुर्वासुल जन्मंबुनु, दक्षात्मजल जन्मंबुनु, भृगुवु वलन ख्याति यनु नंगनकु श्रीमहालक्ष्मि जन्मिचुटयुनु, भृगुपौत्रुंडयिन मार्कंडेयु जन्मंबुनु धर्मुनकु मूर्ति वलन नरनारायणुलु संभविचुटयुनु, सत्रयागंबुनंदु दक्षुंडु शिवुनि निंदिचुट

प्रहारी ! ९७४ [ग.] यह श्री परमेश्वर की करुणा से कलित कविता विचित्र केसन मंत्री के पुत्र, सहज पांडित्य से युक्त पोतनामात्य से प्रणीत श्रीमहाभागवत नामक महापुराण में स्वायंभुवमनु के आकूति, देवहूति, प्रसूति, प्रियव्रत [और] उत्तानपाद का जन्म होना, उनमें आकूति को रुचि प्रजापति को देना, उस रुचि प्रजापति के आकूति देवी में श्रीविष्णु-मूर्ति के अंशज यज्ञ का, लक्ष्मी की कला की अंशजा दक्षिणा नामक कन्या का उद्भव होना, मनु की पुत्री देवहूति को कर्दम को देना, प्रसूति को दक्षप्रजापति को देना, प्रसूति और दक्ष के प्रजा की परंपराओं (संततियों) का होना, और कर्दम प्रजापति का [अपनी] पुत्रिका समुदय को क्षत्र-ब्रह्मर्षियों को देना, कर्दम की पुत्री कला से मरीचि के कश्यप नामक पुत्र [तथा] पूर्णिमा नामक पुत्री का पैदा होना, पूर्णिमा से गंगा [और] विरज नामक कुमार का जन्म होना, कश्यप प्रजापति से उत्पन्न प्रजा-परंपराओं से तीनों लोकों का आपूर्ण होना, अत्रि महामुनि का तप, उसे हरि, हर [और] ब्रह्मा का प्रत्यक्ष होना, अनसूया के पातिव्रत्य के माहात्म्य से अनसूया और अत्रि के त्रिमूर्तियों की कलाओं के अंशज चंद्र, दत्तात्रेय [और] दुर्वासा का जन्म, दक्षात्मजाओं का जन्म, भृगु से ख्याति नामक अंगना के श्रीमहालक्ष्मी का जन्म होना, भृगु के पौत्र मार्कंडेय का जन्म, धर्म के मूर्ति से नर [और] नारायण का सभव होना, सत्र याग में दक्ष का शिव की निंदा करना,

युनु दक्षाध्वर ध्वंसंबुनु, ब्रह्मचे ब्रार्थितुंडै शिवुंडु दक्षादुल ननुग्रहिंचुटयुनु, दक्षादिकृत श्रीहरि स्तवंबुनु, श्रीहरि प्रसन्नुंडै दक्षुनि यज्ञंबु सफलंबुगा ननुग्रहिंचुटयुनु, सतीदेवि हिमवंतुनकु जनिंचि हरुनकुं ब्रापिंचुटयु, नुत्तानपादुनि वृत्तांतंबुनु, ध्रुवोपाख्यानंबुनु, ध्रुवुंडु दंड्रिचेत नवमानितुंडै नारदोपदेशंबुन मधुवनंबुनकुं जनि तपंबु सेयुटयु, हरि प्रसन्नुंडै यतनि मनोरथंबु लिच्चुटयु, नतंडु मरल पुरंबुनकु वच्चुटयु, गुबेरानुचरुलैन यक्षुल तोडि युद्धंबुनु, ध्रुवुंडु यज्ञंबुलु सेयुचु राज्यभोगंबुलं दनिसि दनयु नुल्कलुनि वट्टंबु गट्टि हरि यनुग्रहंबुन ध्रुवक्षितिनि निलुचुटयु, नुल्कलुंडुनु वत्सरुडनु तन सुतुनि बट्टंबु गट्टि हरि जेरुटयु, वत्सरुनि वंशपरंपरयु, नंदु नंगुनि सुतुंडयन वेनु कळेवरंबुन लक्ष्मीनारायणुल यंशंबुन नर्चियु, बृथुंडुनु जन्मिचुटयु, बृथुंडु भूमि गामधेनुवरीति नखिल वस्तुवुलं बितुक निर्यामिचि, समस्थलिं जेसि, यिंद्रुंडु वशवर्तियै युंड बहुयज्ञंबुलु सेसिन नतनिकि हरि प्रत्यक्षंबगुटयु, नध्यात्म प्रबोधंबुनु, निंद्रुनि वलनं बाषंड-संभवंबुनु, निंद्रुनि जयिंचिन विजिताश्वुनि, नतनि तम्मुलनु बृथिवी-पालनंबुकु निलिपि, पृथुंडु नर्चियुं बरमपद प्राप्तुलगुटयु, विजिताश्वनकु वसिष्ठ शापंबुनं द्रेताग्नुलु तनयुलयि जनियिंचुटयु, बृथुनि पौत्रुंडैन

दक्षाध्वर का ध्वंस, ब्रह्मा से प्रार्थित होकर शिव का दक्ष आदि को अनुगृहीत करना, दक्ष आदि से कृत श्रीहरि का स्तव, श्रीहरि का प्रसन्न होकर दक्ष का यज्ञ सफल होने के लिए अनुग्रह करना, सती देवी का हिमवंत से जन्म लेकर हर को प्राप्त करना, उत्तानपाद का वृत्तांत, ध्रुव का उपाख्यान, ध्रुव का पिता से अपमानित होकर नारद के उपदेश से मधुवन में जाकर तप करना, हरि का प्रसन्न होकर उसे मनोरथ देना, उसका फिर पुर में आना, कुबेर के अनुचर होनेवाले यक्षों के साथ युद्ध, ध्रुव का यज्ञ करते हुए राज्य के भोगों से तृप्त होकर [अपने] तनय उल्कल को गद्दी पर बिठाकर हरि के अनुग्रह से ध्रुवक्षिति में खड़ा रहना, उल्कल का भी वत्सर नामक अपने सुत को गद्दी पर बिठाकर हरि को प्राप्त करना, वत्सर की वंशपरंपरा, उसमें अंग के सुत वेनु के कलेवर से लक्ष्मी और नारायण के अंश में अर्ची [और] पृथु का जन्म होना, पृथु के भूमि को कामधेनु की तरह अखिल वस्तुओं को दुहने के लिए नियमित करके समस्थली बनाकर, इंद्र के [अपने] वशवर्ती बनकर रहते समय बहुयज्ञ करने पर उसको हरि का प्रत्यक्ष होना, अध्यात्म-प्रबोध, इन्द्र से पाषंड का संभव, इन्द्र को जीतनेवाले विजिताश्व [और] उसके अनुजों को पृथ्वी का पालन करने के लिए ठहराकर पृथु [और] अर्चि का परमपद को प्राप्त होना, वसिष्ठ के शाप से त्रेताग्नियों का विजिताश्व के तनय होकर जन्म लेना, पृथु के पौत्र प्राचीनबर्हि का राज्य, उसके यज्ञों के असंख्यात होने पर

प्राचीनर्बाहि राज्यंबुनु, ननि यज्ञंबुलसंख्यातंबुलयिन नारदुंडु मान्पं दलंचि, पुरंजनु कथ नध्यात्म प्रपंचंबुगा देलुपुटयु, प्राचीनर्बाहि सुतुलयिन प्रचेतसुलु पदुवुरकु श्रीमहादेवुडु प्रत्यक्षंबयि हरिस्तवं बुपदेशिचुटयु, वारि तपंबुनकु मॅच्चि हरि प्रत्यक्षंबगुटयु, वारिकि मारिषवलन दक्षुंडु पूर्वकालंबुन शिवविद्वेष प्रयुक्त शापंबुन जनियिंचुटयु, प्रचेतस्कुलु मुक्तिकि जनुटयु, मॅदलगु कथलं जॅप्पिन विनि मैत्रेयुनि वीडकॉनि विदुरुंडु हस्तिपुरंबुन करुगुटयु, नंनु कथलं गल चतुर्थ स्कंधमु संपूर्णमु ॥ 975 ॥

॥ प्रथम से चतुर्थ स्कन्ध समाप्त ॥

[उनको] रोकने की इच्छा से नारद का पुरंजन-कथा को अध्यात्म प्रपंच के रूप में समझा देना, प्राचीनर्बाहि के सुत होनेवाले दसों प्रचेतसों को श्रीमहादेव का प्रत्यक्ष होकर हरि के स्तव का उपदेश देना, प्रचेतसों के तप से संतुष्ट होकर हरि का प्रत्यक्ष होना, उनके मारिषा से, दक्ष का पूर्व काल में शिव के प्रति विद्वेष से प्रयुक्त शाप के कारण पुत्र होकर जन्म लेना, प्रचेतसों का मुक्ति पाना, बिदुर का मैत्रेय से बिदा लेकर हस्तिपुर जाना —इन कथाओं से युक्त चतुर्थ स्कंध संपूर्ण हुआ है। ९७५

॥ प्रथम से चतुर्थ स्कन्ध समाप्त ॥

ताज़ी विज्ञप्ति

प्रकाशित हो चुके हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण ग्रन्थ:—

१ गुजराती—गिरधर रामायण (रचनाकाल-१८३५ ई०) हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृष्ठ संख्या १४६० मूल्य ६०·००

२ मलयाळम—अध्यात्म रामायण (एळुत्तच्छन् कृत) १५वीं शती हिन्दी अनुवाद, नागरी लिप्यन्तरण पृ० सं० ७५२ मू० ४०·००

३ ,, —महाभारत-एळुत्तच्छन् (१५वीं शती) पृ० १२१६ मू० ६०·००

४ बँगला— कृत्तिवास रामायण (पाँचकाण्ड)—१५वीं शती।
हिन्दी पद्या० सहित नागरी लिप्य० पृ० ६२४ मू० २५·००

५ ,, कृत्तिवास लंकाकाण्ड— ,, गद्यानुवाद पृ० ४८८ मू० २०·००

६ कश्मीरी—रामावतारचरित-प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत पृ० ४८९ मू० २०·००

७ ,, ललूद्यद—(नागरी) हिन्दी गद्य संस्कृत पद्यानु० पृ० १२० ,, १०·००

८ राजस्थानी—रुक्मिणी मंगल पदमभगत कृत। पृ० ३०० मू० १५·००

९ तमिळ— तिरुक्कुरळ्-तिरुवळ्ळुवर कृत। २००० वर्ष से अधिक प्राचीन; नागरी लिप्यन्तरण, गद्य-पद्य हिन्दी अनुवाद, पृ० ३५२ मू० २०·००

१० ,, कम्ब रामायण बालकाण्ड (९वीं शती) पृ० ६५२ मूल्य ४०·००

११ ,, ,, अयोध्या-अरण्य पृष्ठ १०२४ मू० ७०·००

१२ ,, ,, किष्किन्धा-सुन्दर ,, १०१६ मू० ७०·००

१३ ,, ,, युद्धकाण्ड पूर्वार्ध ,, १०१६ मू० ७०·००

१४ ,, ,, ,, उत्तरार्ध ,, ८४० मू० ७०·००

१५ कन्नड— रामचन्द्रचरित पुराणं, अभिनव पम्प विरचित (जैन-मतानुसार रामचरित्र ११वीं शती) पृ० ६९० मू० ४०·००

१६ तेलुगु— मोल्ल रामायण (१४वीं शती) पृ० ४०० मू० २०·००

१७ ,, रंगनाथ रामायण (१३वीं शती) अनु. पृ. १३३५ मू० ६०·००

१८ ,, श्रीपोतन्न महाभागवतमु १-४ स्कन्ध पृ० लगभग ८५६ ७०·००

१९ मराठी—श्रीरामविजय-श्रीधरकृत (१७वीं शती) पृ० १२२८ मू० ६०·००

२० मराठी— श्रीहरि-विजय (श्रीधर कृत) पृष्ठ १००४ मू० ७०·००

२१ फ़ारसी—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत उपनिषद-व्या०) २८० मू० २०·००

२२ उर्दू— शरीफ़ज़ादः (मिर्ज़ा रुस्वा कृत) पृ० १३६ मू० ८·००

२३ ,, गुज़श्तः लखनऊ (मौ० शरर) पृ० ३१६ मू० २०·००

२४ गुरमुखी—श्री गुरूग्रन्थ साहिब पहली सैंची पृ० ९६८ मू० ४०·००
२५ ,, ,, ,, दूसरी सैंची पृ० ९९२ मूल्य ५०·००
२६ ,, ,, ,, तीसरी सैंची पृ० ९६४ मू० ५०·००
२७ ,, ,, ,, चौथी सैंची पृ० ८०० मू० ५०·००
२८ ,, श्रीजपुजी सुखमनी साहब गुरमुखी पाठ तथा ख्वाज: दिल मुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनों नागरी लिपि में; पृ० १६४ मू० १०·००
२९ गुरमुखी— सुखमनी साहिब मूल गुटका नागरी लिपि। मूल्य ४·००
३० ,, श्री दसम गुरूग्रन्थ साहिब प्रथम सैंची पृ० ८२० मू० ५०·००
३१ सिन्धी— सामी, शाह, सचल की त्रिवेणी पृष्ठ ४१५ मू० २०·००
३२ नेपाली—भानुभक्त रामायण पृ० ३४४ मूल्य २०·००
३३ असमिया—माधवकंदली रामायण (१४वीं शती) पृ० ९४३ ,, ६०·००
३४ ओड़िआ—बैंदेहीश-बिळास उपेन्द्रभञ्ज (१८वीं शती) पृ० १०००,, ६०·००
३५ ,, तुलसी-रामचरितमानस—ओड़िआ लिपि में मूलपाठ तथा ओड़िआ गद्य-पद्य अनुवाद। पृ०सं० १४६४ मू० ६०·००
३६ संस्कृत—मानस-भारती रामचरितमानस-सहित संस्कृत पंक्ति-अनुपंक्ति पद्यानुवाद। पृ० ७४० मू० ५०·००
३७ ,, अद्भुत रामायण २०·००

प्रचारित प्रकाशन (ल.कि.घ.)

३८ अरबी क़ुर्आन शरीफ़ मूलपाठ अरबी तथा नागरी लिपि में तथा हिन्दी अनुवाद सहित पृ० १०२४ मू० ४६·००
३९ ,, ,, केवल मूल; अरबी, नागरी दोनों लिपि में पृ० ५२० मू० २३·००
४० ,, ,, केवल हिन्दी अनुवाद पृ० ५३० मू० २३·००
४१ ,, क़ौरानिक कोश (पठनक्रम) पृ० १९२ मू० १०·००
४२ ,, ज़ादे सफ़र (रियाज़ुस्सालिहीन) भाग १ पृ० ३३६ मू० १५·००
४३ ,, तफ़्सीर माजिदी (पार: १ से ५) क़ुर्आन शरीफ़ अरबी व नागरी, दोनों में मूल पाठ, तथा स्व० मौलाना अब्दुल् माजिद दर्याबादी का अनुवाद एवं वृहत् भाष्य हिन्दी में पृ० ५१२ मू० ४०·००
४४ बहुभाषाई— 'वाणी सरोवर' त्रैमासिक पत्र वार्षिक मूल्य १५·००

प्राप्ति-स्थान— भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३

'प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक संत की बानी ।
सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ।।'

बंगला
गुजराती
मराठी
प्राकृत
गुरुमुखी
कश्मीरी
पाली
सिन्धी
सिंहली
संस्कृत
फ़ारसी
पारसी
हिन्दी
रशियन
मैथिली
बर्मी
फ्रेंच
नेपाली
अंग्रेज़ी
जापानी
राजस्थानी
कन्नड
तेलुगु
उर्दू
मणिपुरी
ओड़िया
भोजपुरी
मलयालम
तिब्बती
तमिळ
असमिया
कोंकणी
अरबी

देवनागरी अक्षयवट

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ-३

प्रतिष्ठाता— पद्मश्री नन्दकुमार अवस्थी